
महादेवी वर्मा
अभिनन्दन ग्रन्थ



जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ॥

—उन पुण्यशील रससिद्ध कवियों की जय हो, जो अपने यशः शरीर से सदैव अजर-अमर रहते हैं।

•



त्वदीयं वस्तु हे देवि!

तुभ्यमेव समर्पये

भारती परिषद्, प्रयाग

२०२१

संयोजक - प्रकाशक
श्रीधर शास्त्री
महामंत्री
भारती परिषद्, प्रयाग

सम्पादन परामर्श मण्डल

श्री सुमित्रानन्दन पंत
पद्मभूषण

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
पद्मभूषण

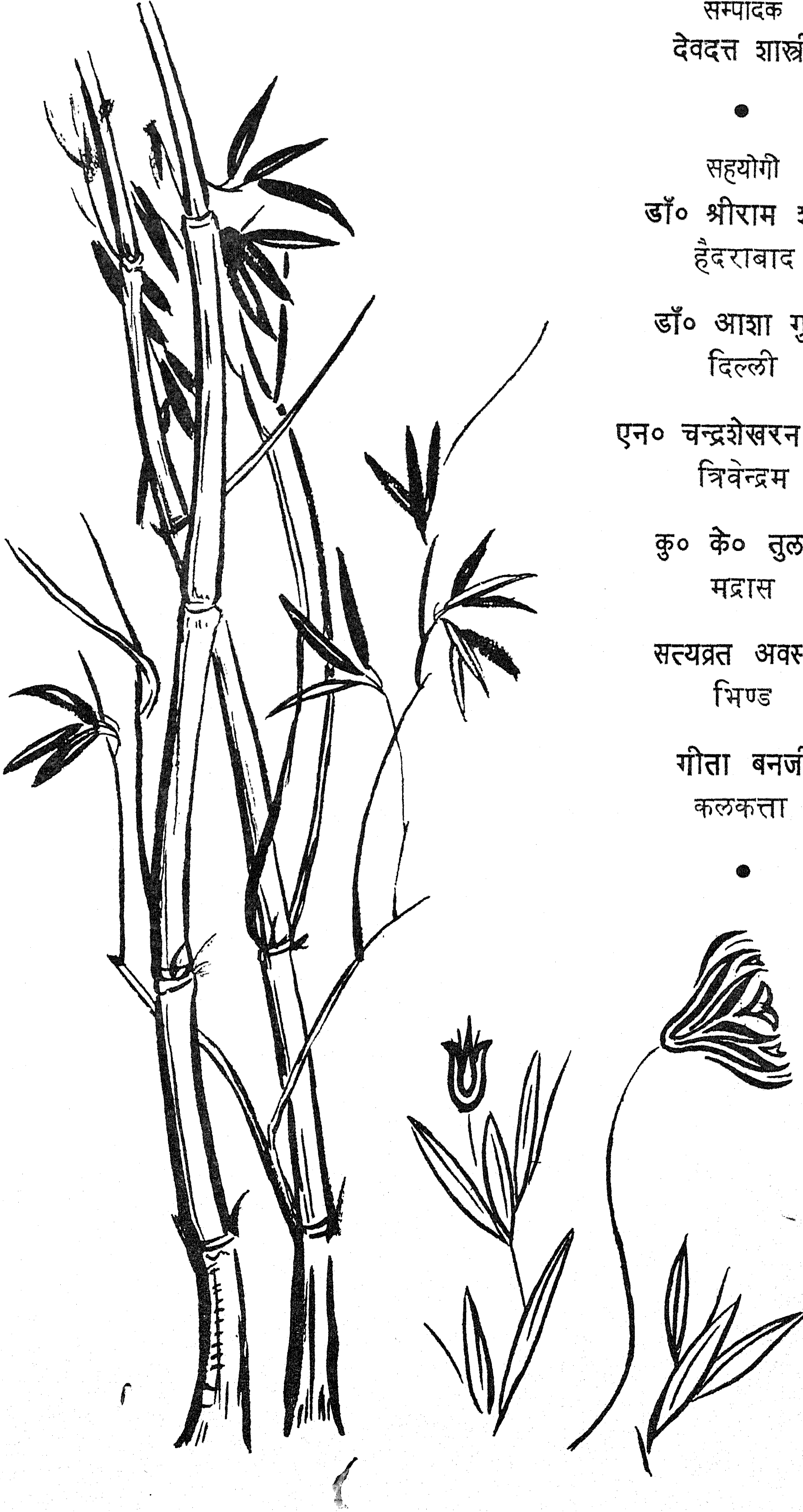
डॉ० रामकुमार वर्मा
पद्मभूषण

सी० बालकृष्णराव

डॉ० नगेन्द्र

●

मुद्रक
राष्ट्रीय मुद्रणालय, प्रयाग



सम्पादक

देवदत्त शास्त्री

•

सहयोगी

डॉ० श्रीराम शर्मा
हैदराबाद

डॉ० आशा गुप्ता
दिल्ली

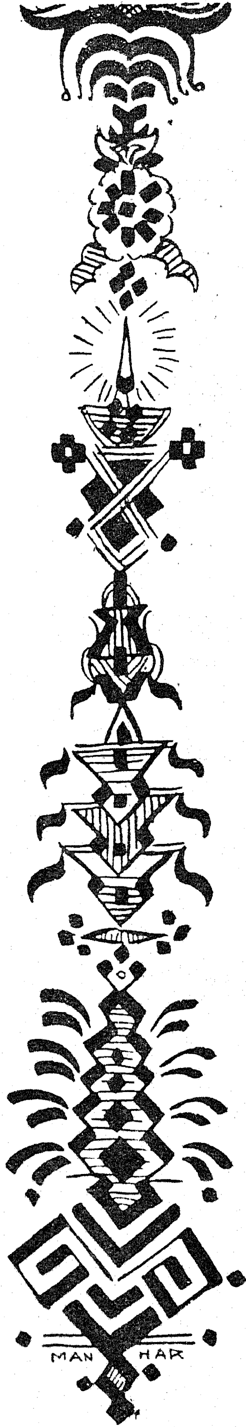
एन० चन्द्रशेखरन नायर
त्रिवेन्द्रम

कु० के० तुलसी
मद्रास

सत्यव्रत अवस्थी
भिण्ड

गीता बनर्जी
कलकत्ता

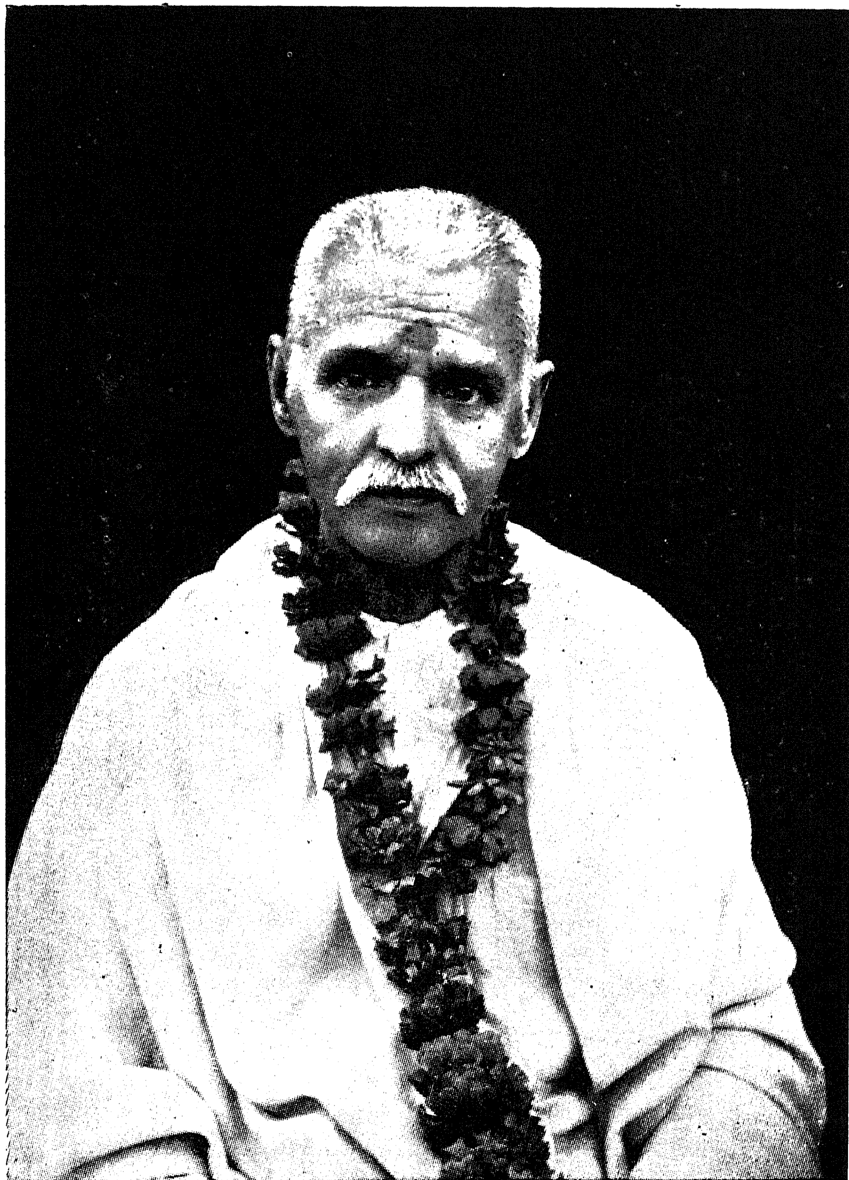
•



भारती परिषद्, प्रयाग

[अखिल भारतीय सांस्कृतिक संस्थान]

प्राणप्रतिष्ठापक	महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी
संस्थापना	सम्वत १९९४ विक्रमीय
अध्यक्ष	पण्डित सीताराम चतुर्वेदी, साहित्याचार्य, एम० ए०, (हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्रत्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृति), एल० एल० बी०, बी० टी०
महामन्त्री	श्रीधर शास्त्री, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न
उद्देश्य	भारतीय समाज को शिक्षित और उदात्त बनाने के लिए बौद्धिक एवं रचनात्मक कार्यों द्वारा भारत-भारती की प्रतिष्ठा बढ़ाना।
माध्यम	(क) भारती शोध संस्थान (ख) भारती संग्रहालय (ग) भारती विद्या संस्थान
प्रादेशिक शाखाएँ	दिल्ली, महाराष्ट्र, असम, कश्मीर, मध्यप्रदेश, बंगाल, हिमांचल, बिहार।



भारती परिषद्‌ के प्राणदस्पर्श



दिये व्यंग के उत्तर रचनाओं से रचकर
विदुषि रहीं विदूषक के समक्ष तुम तत्पर
हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा वाणी
स्फूर्ति, चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी
निकला जब "नीहार" पड़ी चंचलता फीकी
खुली "रश्मि" के मुख की श्रीयुग की युवती की
प्रति उर सुरभित हुआ "नीरजा" से निरभ्र नभ
शत-शत स्तुतियों से गूँजा यह सौरभ-सौरभ
"सान्ध्य गीत" गाये समर्थ कवियों ने सुस्वर
वीणा पर, वेणु पर, तन्त्र पर, और यन्त्र पर
"यामा", "दीपशिखा" के विशिखों के ज्यों मारे
अपल चित्र हो गये लोग, "चलचित्र" तुम्हारे
चला रहे हैं सहज, "श्रृंखला की कड़ियों" से
सजी, रँगी लेखनी तूलिका की छड़ियों से

काव्यत्मा निराला





सहजाभिन्न दो महादेवियाँ एक रूप में मिलीं मुझे
बता बहिन! "साहित्य शारदा" या "काव्यश्री" कहूं तुझे

—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

अश्रुकण हो शबनमी तुम

"नीरजा" के लोचनों में

एक विछुड़े बिहग का रव

"सान्ध्य" के अंतिम क्षणों में

सघनतम "नीहार" सी हो

प्रस्फुटित सी "रश्मि" नूतन

पीड़ मीराँ के हृदय की

सिसकियों की बीन उन्मन

महाकवि गोबर्धन भारती



उद्गीथ

श्रीमती महादेवी वर्मा केवल उच्चकोटि की साहित्यकार ही नहीं, बल्कि भारतीय महिला की सांस्कृतिक परम्परा की प्रतीक भी हैं।

—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

●



महादेवी जी की प्रतिष्ठा देखकर मुझे खुशी होती है।

—पं० जवाहरलाल नेहरू

●

महादेवी जी भारत में सबसे अच्छा गद्य लिखती हैं।

—डॉ० राममनोहर लोहिया

●

महादेवी की रचनाओं से उनके व्यक्तित्व का ज्ञान हमें हो जाता है और कितना सुन्दर है वह व्यक्तित्व! वह तो सहृदयता, सुशीलता और दयालुता की प्रतिमा सी मालूम होती हैं, और कठोरव्रती और कर्तव्यपरायण। मैं तो समझता था कि कवि होने के कारण उनका जीवन लिखने पढ़ने और काव्यचर्चा में ही बीतता होगा। लेकिन वह तो एक कुशल और दृढ़व्रती सामाजिक कार्यकर्त्री भी हैं। जितना कार्य इस दिशा में उन्होंने अब तक किया है, उसके बल पर तो साधारण तरह से लोगों को नेतागिरी प्राप्त हो जाती है। पर इनका सब काम एकान्त और बिना विज्ञापन के हुआ है।

सहृदयता
शील
दुखी नारी
शुद्ध और शिव की ओर

—जयप्रकाशनारायण

जयति

दूधिया खादी के परिधान से ढकी हुई जिनकी पूर्णचन्द्र सदृश काया आकाशगंगा में स्नात शशिलेखा-सी प्रतीत होती है, और पलकों पर अम्लान मन्दाकिनी प्रवाहित रहती है, जिनकी वाणी से अनागत अनाहत वीणा के स्वर झंकृत होते हैं, जो बाहर के "नित्य मुखरी से दूर" महानीरव से नीराजना प्राप्त करती हैं, जिनके गीत प्रत्यूषी भावनाओं का निर्माण करते हैं, जिनके छन्द भावात्मक सार्वभौमवाद से अनुप्राणित हैं, जिनके तुहिनविन्दु सदृश कोमल भावावेग मानव हृदय के विशुद्ध विकास बने हुए हैं, जिनका काव्य जीवन के प्रवहमान क्षणों की चित्तवृत्ति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है, जो उल्लासमयी, अश्रुमयी वेदनाकलित प्रकृति से तादात्म्य प्राप्त कर विश्लेषजन्यवेदना कम्पित उषा बनी हुई हैं। जो अपनी लयात्मक, गत्यात्मक, सहज प्रवण कविता की भाँति रागमयी, अनुरागमयी और तरंगमयी बनी हुई हैं। उन काव्यश्री महादेवी का हम अभिनन्दन करते हैं। जिन्होंने गीति काव्य को, शब्दों के स्वाभाविक उच्चारणों को नये आयाम दिये हैं, जिनकी कल्पनाओं का क्षितिज अनादि प्रत्यूषी रंग से अनुरंजित है, जिनकी अन्तश्चेतना का मूल उत्स आरण्यक है, जिनका सहज विश्वास ही जीवन पथ का आलोक बना हुआ है, उन कुदेन्दुतुषारहारधवला शुभ्रवस्त्रावृता रससिद्ध कवयित्री महादेवी का हम अभिनन्दन करते हैं।

रूपदक्ष शिल्पी

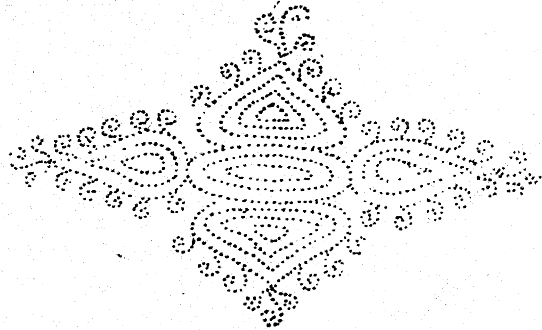
कवयित्री महादेवी के चित्र शिल्प में उनकी कल्पना के प्राण छन्द निहित रहते हैं। छोटे-बड़े सभी प्रकार के प्राण छन्दों से वह चित्रांकन करती हैं। उनकी चित्रकला के भाव की यथार्थ भंगिमा, गति और छन्द; मूल छन्द-प्राण पर ही आधारित हैं।

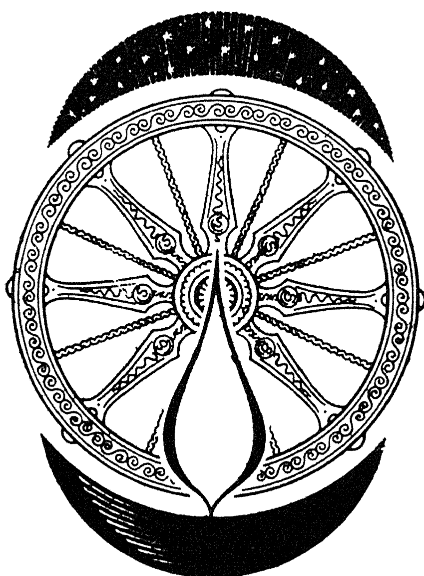
जिस प्रकार उनके काव्य में गीत छन्दों का वैशिष्ट्य रहता है उसी प्रकार वह प्रकृति के विभिन्न छन्दों को लेकर रूप की व्यंजना करके चित्र को प्राणवान बनाया करती हैं। महादेवी जी का जीवन दर्शन दो छन्दस् धाराओं में प्रवाहित है। एक जीवन की ओर ले जानेवाला छन्द है तो दूसरा मृत्यु की ओर ले जानेवाला छन्द है। कवयित्री और चित्रकर्त्री के रूप में महादेवी को दोनों प्रकार के छन्द अपने-अपने स्थान पर आराध्य हैं, क्योंकि दोनों में वह प्राणधर्म विद्यमान है जो कवि और शिल्पी के लिए परम आवश्यक होता है।

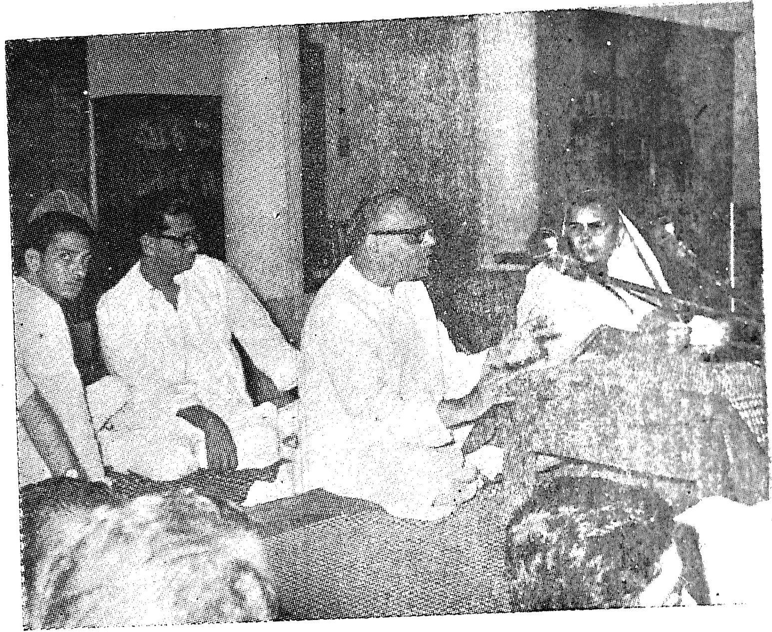
संवर्द्धना

हम भारती परिषद् का आभार मानते हैं जिसने महादेवी की वाङमयी अर्चना का सम्भार जुटाने का अवसर हमें प्रदान किया है। अपने समानधर्मा लेखक और लेखिकाओं की हम हार्दिक संवर्द्धना करते हैं जिनके निश्छल आत्मीय भाव एवं सात्विक सहयोग से 'महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ' इस रूप में प्रकाशित हो सका है।

—देवदत्त शास्त्री







लेखक-प्रकाशक संघ की साहित्य गोष्ठी के अध्यक्ष पीठासन पर



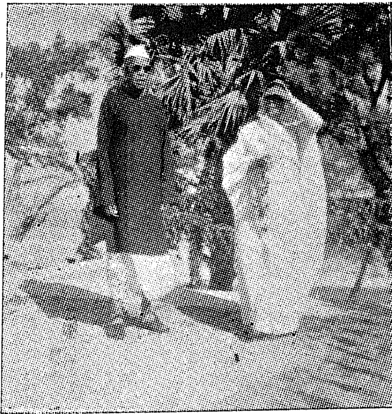
भावात्मक एकता के क्षणों में

सर्वश्री शेवड़े, वनफूल, रेणु, राजकवि श्रीपाद कृष्णमूर्त्ति, बोरकर, देशपांडे, सत्यार्थी के साथ महादेवी



साहित्यकार समवाय

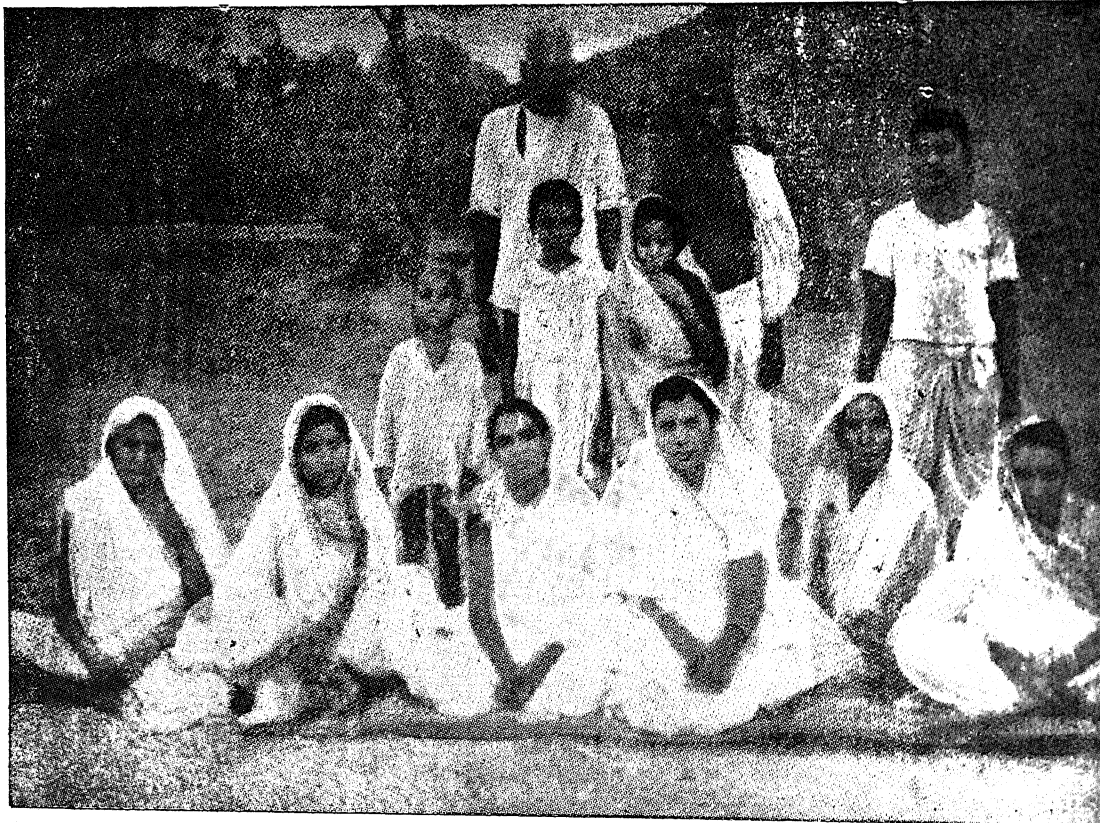
सर्वश्री सत्यार्थी, डा० मैथिलीशरण गुप्त, पद्मभूषण महादेवी, राजकवि श्रीपाद कृष्णमूर्त्ति,
भदन्त आनन्द कौशल्यायन, वनफूल के पीछे अनेक लेखक बन्धु



राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त :
रहस्यकवयित्री महादेवी जी

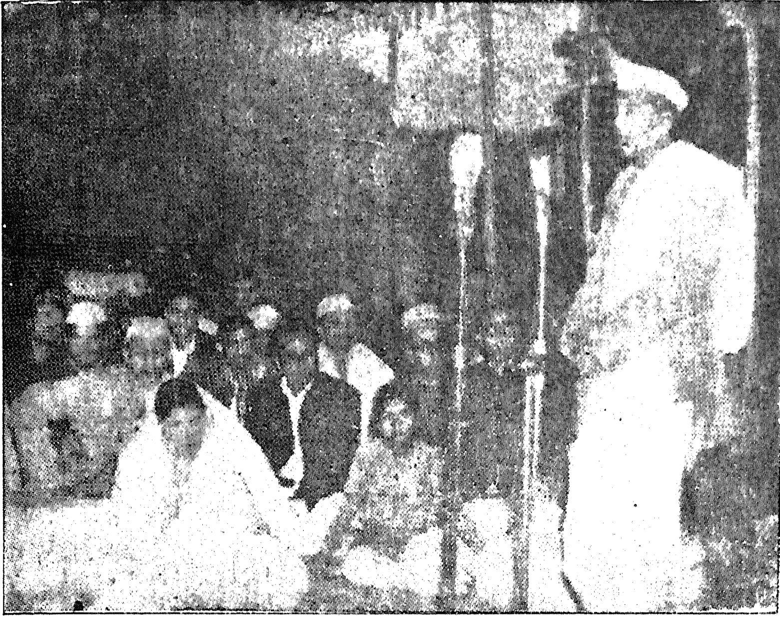


महादेवी जी : श्री माखनलाल चतुर्वेदी

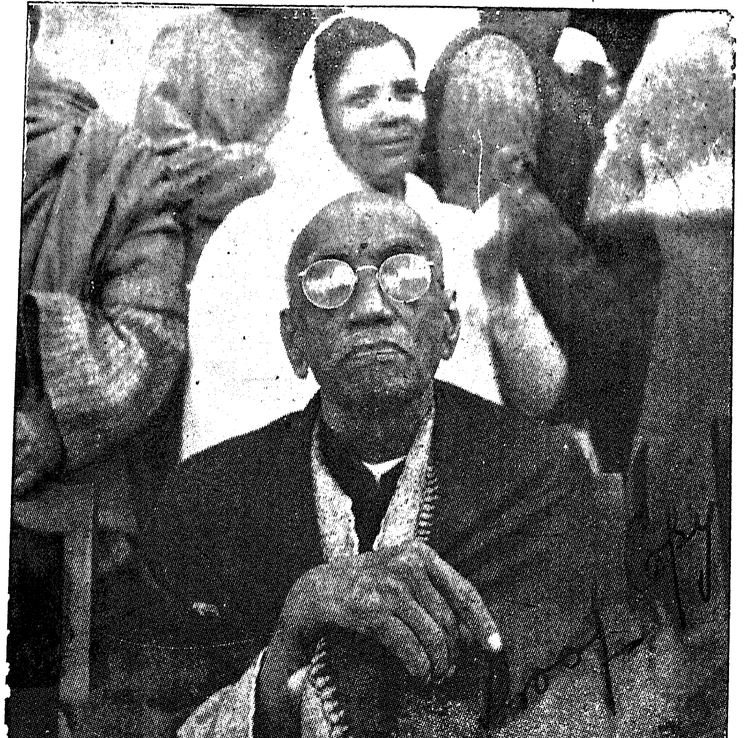


"अतीत के चलचित्र" के पात्रों के बीच महादेवी जी





साहित्यकार संसद का
उद्घाटन समारोह



राजकवि श्रीपाद कृष्णमूर्त्ति :
काव्यश्री महादेवी



स्नेहमयी महादेवी



अपने लाडले पौधों को संवारती हुई महादेवी



साहित्यवाचस्पति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद:
पद्मभूषण महादेवी



समय की शिला पर महादेवी



रूपदक्ष शिल्पी महादेवी



अभिनन्दक महादेवी

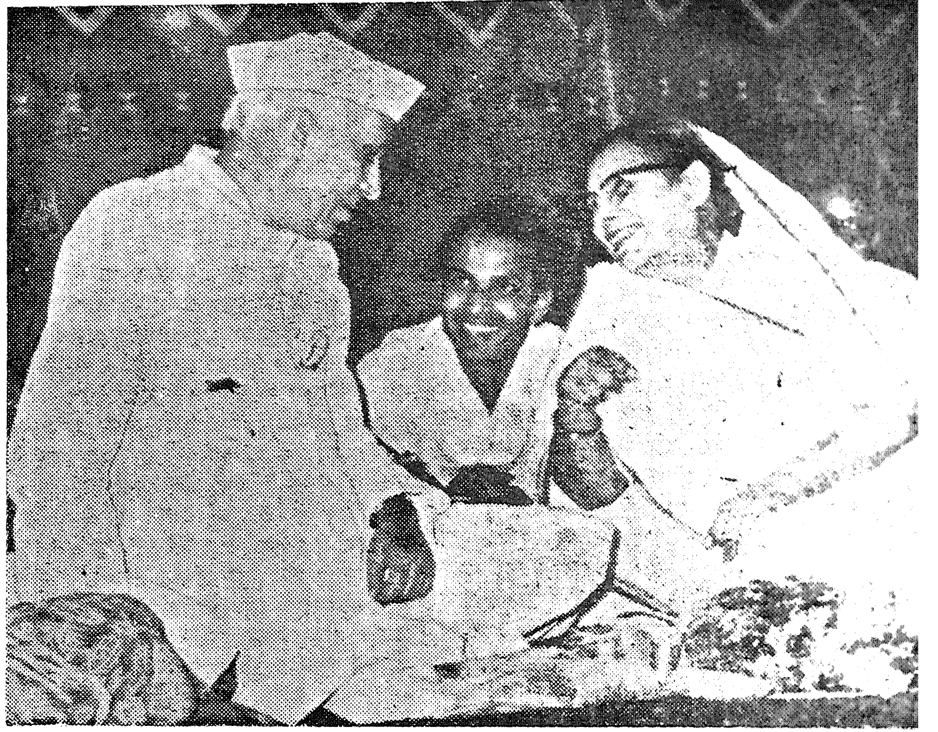


एकयुग के दो निर्माता--पंत और महादेवी





एक व्यक्तित्व के दो संस्करण



इतिहास पुरुष नेहरू : काव्यश्री महादेवी



प्रीति-प्राशन या चिन्तन



पथ के साथी और अनुगामी



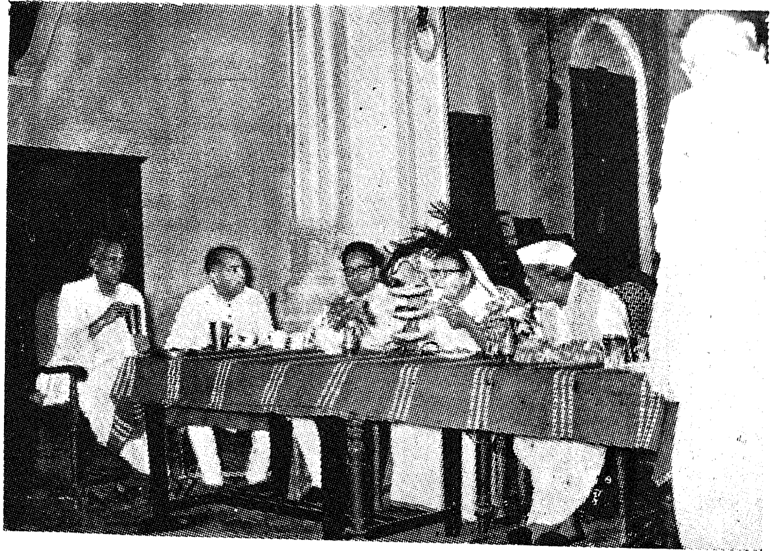
संसद का साहित्य पर्व : डॉ० सम्पूर्णानन्द, मामा बरेरकर, महादेवी जी



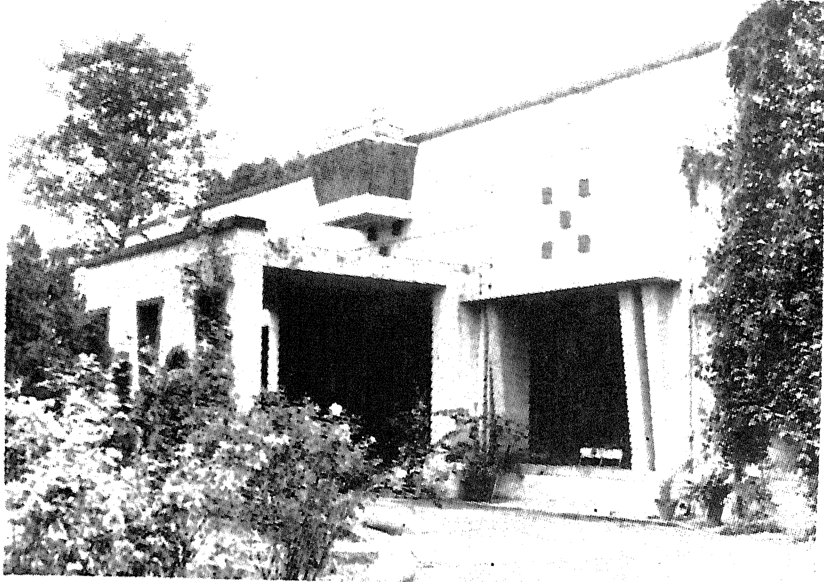
देवदारुकी छाँह में गल्पगोष्ठी



प्रयाग महिला विद्यापीठ का दीक्षान्त समारोह



मधुर जलपान—मधुर वार्ता



महादेवी जी का भव्य भवन



साहित्यकार संसद भवन



महादेवी के लाडले कुत्ते



महादेवी की प्रिय बिल्लियाँ


महादेवी
अभिनन्दन ग्रन्थ

भूति

●

इस खण्ड में देवी जी के काव्य में निहित समस्त तत्वों का विश्लेषण, उनकी काव्य साधना, रचनात्मक सौन्दर्य, चित्रकला, गद्य-गरिमा आदि विषयों का आलोचन, पर्यवेक्षण और अनुशीलन है।

●

महादेवी की रहस्य साधना—एक दृष्टि

०

प्रो० बी० नरसिंह राव

बन्धनों की स्वामिनी या बन्दिनी

हिन्दी और बंगला साहित्य को छोड़ कर प्रायः किसी और भारतीय भाषा के साहित्य में छायावाद एक विशिष्ट "वाद" के रूप में अवतीर्ण नहीं हुआ। अतएव हिन्दी साहित्य से जिन लोगों का संबंध दूरस्थ तथा अध्ययन पर आधारित रहा है, उनके लिये छायावाद की कविताओं का विशद विवेचन कर पाना बड़ी हद तक टेढ़ी खीर है। किसी छायावादी कहलाने वाले कवि की रचनाओं की समीक्षा करनी हो तो कई प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। उस तथाकथित "वाद" की साधारण मान्यताओं को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता और न उन मान्यताओं को पूर्णतया स्वीकार कर के आलोचना ही की जा सकती है। ऐसी दशा में सचमुच आलोचक असमंजस में पड़ जाता है।

उदाहरणार्थ, इस लेख में श्रीमती महादेवी वर्मा की रचनाओं की समीक्षा उद्दिष्ट है। यदि उन रचनाओं पर छायावाद और रहस्यवाद के लेबल न लगे होते तो समीक्षक का काम सरल होता। परंतु महादेवी जी की कविता उनकी इच्छा के विरुद्ध ही नाना प्रकार के "वादों" की कारा में बंद की गई जान पड़ती है। कई जबरदस्त दार्शनिक द्वार हैं, जिनमें आध्यात्मिकता के मोटे-मोटे ताले पड़े हैं। महादेवी जी अपने आपको "बंधनों की स्वामिनी" भले ही कहा करें, पर हम जैसे काव्य-पथिकों की दृष्टि में वे निरी बंदिनी बनी हुई हैं। तथापि निम्नलिखित पंक्तियों में "वादों" से परे हट कर एक सामान्य तथा सहृदय काव्य-रसिक की दृष्टि से महादेवी जी की रचनाओं की कुछ विशेषताओं का दिग्दर्शन करने की चेष्टा की जायगी।

नारी सहज कोमलता

महादेवी जी की पहली विशेषता यही है कि वे नारी हैं। यह ऐसी विशेषता है जो उनकी कविता पढ़ते समय रह रह कर याद आती है। पग-पग पर ऐसी उक्तियाँ मिलती हैं जो एक सहृदय नारी के लिए ही स्वाभाविक हैं, औरों के लिए वे लगभग असाध्य ही कही जा सकती हैं। श्रृङ्गार के—बल्कि काव्य ही के—सुदीर्घ इतिहास में नायिका का जो महत्व रहा है वह नायक को प्राप्त नहीं हुआ। संसार का श्रृङ्गार साहित्य तीन–चौथाई से भी अधिक नारी के मनोभावों के विशद वर्णन से ही भरा है। "लोहू पियो जो वियोगिनी को सु कियो मुख लाल पिसाचिनि प्राची"—कहने वाली नायिका को हम क्या कहें? उसकी वेदना इतनी तीव्र है कि एक अत्यन्त सुन्दर वस्तु में भी बड़ा वीभत्स दृश्य देखती है।....इसके विपरीत उसका विलासविभ्रम कटाक्ष भी अद्भुत है। जब वह आनन्द-विभोर होती है तो "रोम-रोम में नंदन पुलकित" हो उठता है।....पुरुष में—अकिंचन पुरुष में—कहाँ संभव है यह तल्लीनता? यहाँ तक कि पुरुष–सहज वीर रस से उत्कर्ष में भी नारी का समावेश अत्यन्त प्रभावशाली होता है। अन्य रसों की बात रहने दीजिये, पर श्रृङ्गार रस में नायक आश्रय की अपेक्षा नायिका आश्रय ही अधिक उपयुक्त है। यह शास्त्र का आदेश नहीं, औचित्य का ही निर्देश है। पुरुष के मनोभावों में प्रायः उत्कटता इतनी अधिक होती है कि उसके टक्कर से सरस

काव्य का ढाँचा छिन्न-भिन्न हो जाता है। इसी कारण प्रायः पुरुष को वास्तविक संसार में स्वामित्व प्राप्त हुआ, पर काव्य संसार की प्रभुता से वह निस्संदेह वंचित हुआ है। विश्वास, सरलता, भोलापन, क्षमा, मादकता, तल्लीनता—ये सब विभूतियाँ नारी की अपनी हैं। महादेवी जी की बहुत सी कविताएँ इन्हीं नारी-सहज विशेषताओं से ओत-प्रोत पाई जाती हैं। यही कारण है कि हम उनके नारीत्व को उनकी पहली विशेषता मानते हैं।

कृष्ण भक्ति की कविताओं के परिशीलन से यह बात और स्पष्ट हो जाती है। राधा और कृष्ण हिन्दी काव्य में रस के अक्षय भंडार कहे जा सकते हैं। ब्रज की गोपियाँ भी अविस्मरणीय हैं। अब यहाँ सोचने की बात यह है कि क्या किसी कवि ने लीला-नायक कृष्ण के मनोभावों के विशद वर्णन का प्रयास किया है? नहीं, जहाँ देखते हैं, गोपियाँ ही हिल डुल रही हैं, गोपियाँ ही व्याकुल हो रही हैं, गोपियाँ ही मस्त हो रही हैं, गोपियाँ ही रो रही हैं, गोपियाँ ही छटपटा रही हैं। कृष्ण कन्हैया सर्वत्र आलंबन ही हैं, कहीं आश्रय नहीं बन पाए।

इस प्रकार सभी कवियों ने नायिका-आश्रय ही को अपनाया है। कौन जाने, कृष्ण के अनन्य प्रेम में लीन राधिका ही हिन्दी संसार को मधुर प्रेम तथा आत्म-समर्पण की तल्लीनता का परिचय देने के संकल्प से मीराँबाई के रूप में अवतीर्ण हुई हो। वास्तव में मीराँ की भावुकता और सरलता अन्यत्र देखने में नहीं आती। औरों की कल्पित नायिका कभी प्रगल्भ हो सकती है, पर मीरा की बात भिन्न है। उसकी जादूभरी वाणी में सब कुछ भुला देने की शक्ति है। निरपेक्ष निश्शंक, तथा प्रेम विभोर निमग्नता में मीराँ की वाणी निस्संदेह अनुपम है।

दार्शनिकता और दुःखवाद आदि पर से थोड़ी देर के लिए ध्यान हटा कर हम कह सकते हैं कि महादेवी आधुनिक हिन्दी काव्य की मीराँबाई हैं। इन दोनों के प्रेम प्रदर्शन में पर्याप्त साम्य मिलता है। एक ओर ऐसी गंभीरता जो दुरूहता की सीमा तक जा पहुंची है; और दूसरी ओर ऐसी सरलता जो भक्ति परवशता में ही सम्भव है—इस प्रकार का विचित्र सम्मेलन महादेवी के अतिरिक्त अन्यत्र शायद ही मिल सके। कहने की आवश्यकता नहीं कि मीराँ और महादेवी [illegible] सीमा के भीतर ही हो सकती है; उस सीमा को पार करने पर उनके मार्ग अलग हो जाते हैं। परंतु हमारा आशय यह है कि यह साम्य-सीमा भक्ति की नहीं और प्रियाराधन की भी नहीं। यह सीमा है सहृदय नारीत्व की। इसी सीमा के भीतर दोनों की रस-विभोर वाणी एक-सी लगती है। अंतर केवल इतना है कि मीराँ का प्रियतम भारतीय काव्य संसार में चिरपरिचित होने के कारण अधिक सुस्पष्ट दीखता है। सारांश यह कि महादेवी जी की नारी-सहज कोमलता ही उनकी कविता का सर्व-प्रथम आकर्षण है।

करुणा की व्यंजना

अब हम महादेवी की दूसरी विशेषता पर विचार करते हैं जो साधारणतया उनकी सारी कविता में पाई जाती है। करुणा की व्यंजना छायावादी कवियों की एक सामान्य विशेषता है और अन्य कवियों की भाँति महादेवी जी ने भी इसका अनुसरण किया है। परंतु महादेवी जी की वाणी में सर्वत्र एक अनिर्वचनीय वेदना का अपूर्व स्वर सुनाई देता है। इस अव्यक्त वेदना-स्वर को एक ओर करुणा से पृथक् रखना होगा और दूसरी ओर दुःखवाद से, क्योंकि वह कभी उसमें विलीन होता दीखता है, कभी इसमें। करुणा और दुःखवाद की व्यंजना महादेवी जी के बस की बात है, उनमें कवयित्री की इच्छा शक्ति कार्यशील दीखती है। परंतु जिस अस्फुट स्वर का हम उल्लेख कर रहे हैं वह प्रायः इच्छा अनिच्छा पर अवलंबित नहीं है। उसका उद्गम ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता। यदि उसे सुन्दर काव्य की रसलीनता का ही लक्षण मान लें तो प्रश्न यह उठता है कि वही स्वर अन्य कवियों की सुन्दर कृतियों में क्यों नहीं सुन पड़ता? इसके विपरीत यदि हम उसे महादेवी जी के व्यक्तित्व से संबन्द्ध मान लें तो फिर यह उनकी इच्छा अनिच्छा से क्यों नियंत्रित नहीं होता? सचमुच यह एक पहेली है। सौंदर्य-सृष्टि से ही इस वेदना का अभिन्न संबंध स्थापित करने वालों में E. A. Poc अग्रगण्य हैं। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं:—

“The intense melancholy which seems to well up, perforce to the surface of all the poet's

cheerful sayings about his grave, we fitnd thrilling us to the soul—while there is the truest Poetic elevation in the thrill--. The impression left is one of a Pleasurable sadness if in the remaining composition there be mirt or less of a similar tone always apparent, let me remind of you that (how or why we know not) **this certain taint of sadness is insepa-rabley connected with all the higher manifestations of true Beauty.** It is never-the-less,

> A feeling of sadness and longing
> That is not akin to pain;
> And resembles sorrow only,
> As the Mist resenbles the rain.

महादेवी जी की कविता में लगभग सर्वत्र इस वेदना का आभास मिलता है, पर हम यहाँ एक ऐसा उदाहरण लेंगे जिसका संकेताभाव ही करुणा के प्रतिकूल है।

> चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना ?
> जाग तुझको दूर जाना।
> अचल हिमगिर के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
> या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,
> आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
> जाग या विद्युत शिखाओं में निठुर तूफान बोले !
> पर तुझे है नाश पथ पर चिन्ह अपने छोड़ जाना।
> ....कह न ठण्डी साँसमें अब भूल वह जलती कहानी
> आग हो उर में तभी दृग में सजेगा क्षार पानी,
> हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका !
> राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी !
> है तुझे अंगार शैय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !

इस गीत में कुछ ओज, कुछ प्रबोध, कुछ फटकार, कुछ उत्साह कुछ वीरता का आरोप—ये सब भाव मिलते हैं। पर सब की थाह में ऐसी टीस मौजूद है जो किसी एक भाव के रूप में व्यंजित नहीं हुई है। यह किसी खास जगह पर नहीं है जिसे हम बतला सकते। बल्कि जिस प्रकार षड्ज तथा पंचम को एक साथ छेड़ने से दोनों में से गांधार का स्वर भी आप ही आप निकल पड़ता है, उसी प्रकार यह वेदना स्वर भी गीत के अंतर में निहित सा अपने आप निकल पड़ता है। यदि गीत के पढ़ने में हमें भ्रम नहीं हुआ है, तो फिर अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं।

भाषा का माधुर्य

इसी वेदना-स्वर के साथ-साथ महादेवी जी की भाषा की कोमलता का भी थोड़ा बहुत संबंध है। छायावाद में आकर खड़ी बोली किस तरह मंज गई, यह सब को विदित है। परंतु छायावादी कवियों में भी महादेवी जी अपनी विशिष्टता रखती हैं। वास्तव में उन्होंने खड़ी-बोली को कोमलता और मधुरता का आगार बना दिया है। उनके गीतों का नाद-मधुर विन्यास और चुभती उक्तियों की व्यंजना-शैली निःसंदेह अत्यन्त रमणीय है। अधिकतर उनके तत्सम शब्द काव्योपयुक्त तथा सरसता के पोषक हैं। छंदोयोजना भी मुक्तक के उपयुक्त और संगीत के अधिक निकट है। "दीप शिखा" के कतिपय गीत तो ख्याल गायकी के लिये लिखे गए जान पड़ते हैं। आम-तौर पर कविताओं की पंक्तियाँ बेसिर पैर की नहीं मिलतीं, अर्थ की अन्विति अच्छी तरह हो जाती है। चरण की भरती के लिये अहे, अहो, अहा, हा, रे, अरे, हाय, आदि आश्च-र्यार्थक शब्द—जिनके प्रयोग में तिलभर भी आश्चर्य उद्दिष्ट नहीं होता—महादेवी की कविता में नहीं के बराबर हैं। यद्यपि उर, चिर, अलि सखे, री आदि शब्दों का कहीं-कहीं मनमाना प्रयोग भी मिलता है, तथापि कविता बहुत थोड़े स्थानों पर ही बिगड़ी है। "चिर" शब्द के अत्यधिक प्रयोग से कहीं-कहीं अर्थसौष्ठव को क्षति पहुंची है। तथापि "यामा" और "दीप शिखा" दोनों में मिलाकर कुछ दस-पांच स्थानों से अधिक नहीं, जहाँ शब्दों के मनमाने प्रयोग के कारण काव्यौचित्य को धक्का पहुंचा हो।.... बीसों अवतरण ऐसे दिये जा सकते हैं जो किसी और विशेषता के लिये न सही, केवल भाषा-माधुर्य के कारण उच्च कोटि के कहे जा सकते हैं। एक-एक शब्द अपनी जगह कोमल और मधुर है, अतएव अनेक शब्दों के स्वर-साम्य पर अवलंबित अनुप्रास आदि चमत्कार की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। धीरे-धीरे, स्वाभाविक गति से, प्रत्येक पंक्ति पूर्ण होती है।

कहीं भी यह गति किसी बीहड़ शब्द के कारण रुकती नहीं और न कहीं एक ही शब्द के महत्व के कारण अन्य शब्दों पर से ध्यान हट जाता है। महादेवी जी के काव्य-विवेचन में शब्द-योजना पर भी इतना जोर देना प्रायः असंगत लगता होगा, पर औरों की कटी-जुड़ी पंगु शब्दावली से बिंधे हुए कानों को यहाँ जो श्रवण-सुख प्राप्त होता है, वह अवश्य उल्लेखनीय है।

भावपक्ष

अब हम महादेवी जी की कविता के भावपक्ष का परिशीलन करेंगे। इस संबंध में सबसे पहली और सबसे आम बात, जो पाठक का ध्यान आकर्षित करती है, महादेवी जी का अहंभाव है। यहाँ हम "अहंभाव" शब्द को गर्व या घमंड के अर्थ में नहीं बल्कि एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त कर रहे हैं। मुख्यतया हमारा आशय इतना ही है कि महादेवी जी की कविता अधिकतर व्यक्ति-प्रधान है, वस्तु-प्रधान नहीं। तुलनात्मक दृष्टि से देखने से स्पष्ट विदित हो जाता है कि अन्य कवियों की अपेक्षा महादेवी जी के भावों में (EGO) का प्राचुर्य है। वास्तव में उनकी थोड़ी ही कविताएँ ऐसी हैं जिनमें उन्होंने आदि से अंत तक व्यक्ति-निरपेक्ष (mpersonal) दृष्टि निबाही हो। बहुत सी ऐसी कविताएँ मिल सकती हैं जो आरंभ में एकदम तटस्थ लगती हैं और वस्तु की प्रधानता ही प्रदर्शित करती दीखती हैं। परंतु कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद यकायक महादेवी जी का "मैं" कहीं से आ उपस्थित होता है। इस आकस्मिक भाव-परिणति पर कहीं-कहीं सचमुच आश्चर्य होता है। वाह्य प्रकृति की किसी वस्तु का भी यथावत् विशद वर्णन महादेवीजी नहीं करतीं उनके यहाँ प्रभाव-वर्णन ही वस्तु-वर्णन का स्थानापन्न है। स्पष्ट है कि प्रभाव-वर्णन में वैयक्तिक धारणाओं और कल्पनाओं का इतना अधिक योग होता है कि प्रकृति अपना नैसर्गिक रूप तज कर द्रष्टा का आरोपित स्वरूप स्वीकारती दीख पड़ती है। अतः इस प्रकार की कविता प्रकृति-कविता न होगी, भाव-कविता होगी और वास्तविक उपकरणों की अपेक्षा भाव-सौंदर्य का ही अधिक आश्रय लेती पाई जायेगी। महादेवी जी की कविता इसी कोटि की है। उसमें भाव गहनता भी है और साथ ही साथ वस्तु-संकोच और अर्थ-संकीर्णता भी। यदि गिनाने लग जाएँ तो वास्तव में महादेवी जी का वर्णित वस्तु-संचय है ही कितना ?—आँसू, निःश्वास, बादल, तूफान, कलियाँ, ओस-कण, दीप, शलभ, वर, अभिशाप चन्द्रमा, चातक, बंधन, मुक्ति, सावन, प्रात, सांझ, रजनी, अंधेरा, नया, पतवार, कोकिल आदि चंद इने-गिने परंपरागत उपकरणों में ही उनकी सारी कविता समा-सी गई है। "विस्तृत अर्थ-भूमि" के पुजारी यहाँ निराश ही होंगे। पर भाव-भूमि में प्रवेश करने पर इन्हीं इनी-गिनी वस्तुओं की कैसी विविध योजना हमें मिलती हैं। पदार्थ एक ही है, पर असंख्य भावाकृतियों में ढल कर हमारे सामने आता है। दूरारूढ़ कल्पना के कारण एक-एक आकृति में अपूर्व सप्राणता आ गई है, यहाँ तक कि पुनरुक्ति का भी तत्काल भान रहने नहीं पाता। हाँ, अंत में पुनरुक्ति का भान होने पर पाठक की बुद्धि उक्ति-वैचित्र्य में ही अधिकतर उलझ कर रह जाती है, सरसता की खोज में आगे नहीं बढ़ती। जो हो, महादेवीजी के अटल "अहं" का ही यह परिणाम है। लगभग उनकी किसी भी कविता में इस कथन का समर्थन हो सकता है।

महादेवी जी के भाव-पक्ष का प्रथम आधार है शृंगार। उनका शृंगार आध्यात्मिकता भी लिये हुए है और सरसता भी। हम देख आये हैं कि नारी-सहज कोमलता का उनकी कविताओं में कितना प्राचुर्य है। इसी प्रकार उनकी प्रेम-भावना भी उन्मुक्त और उत्कट नहीं बल्कि संयत और सूचक है। उन्होंने उस चिरंतन तथा अलौकिक व्यक्तित्व को अपना प्रियतम तथा प्रेमालंबन बनाकर विशुद्ध अनुराग की अनेक मार्मिक उक्तियों द्वारा व्यंजना की है। इतना सब होते हुये भी सरसता की दृष्टि से न जाने क्यों पाठक का पूर्ण समाधान नहीं हो पाता। प्रायः इस असमाधान के अनेक कारण हैं। वास्तव में महादेवी जी का प्रेम प्रौढ़ता की कोटि से भी बहुत आगे निकल चुका जान पड़ता है। उसमें हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क की ही अधिक महिमा दीखती है शायद यही कारण है कि इस प्रकार का चिंतन-प्रधान प्रेम सरसता की दृष्टि से उतना ठीक नहीं जँचता। हम अपने इस कथन की पुष्टि उदाहरणों से करेंगे—

शशि के दर्पण में देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर केश,

गूँथे चुन तारक पारिजात,
अवगुण्ठनकर किरणें अशेष,
क्यों आज रिझा पाया उसको,
मेरा अभिनव शृंगार नहीं ?

इस पंक्तियों में अंकित दृश्य की अलौकिकता आदि गुणों का विचार थोड़ी देर के लिये स्थगित कर के हम इसी लोक की एक सामान्य नायिका के मुख से उपर्युक्त उद्‌गार सुनेंगे उसका शृंगार ऐसा वैसा नहीं, "अभिनव" बतलाया गया है। ऐसी दशा में स्पष्ट है कि "क्यों" से शुरू करके जो प्रश्न पूछा गया है उसमें वितर्क की मनः स्थिति ही प्रतिबिंबित हो रही है। नायिका यह तो जानती है कि उसका अभिनव शृंगार प्रिय को नहीं रिझा पाया, फिक्र उसे इसी बात की पड़ी है कि क्यों नहीं रिझा पाया ? मानो वह कुछ भविष्य का बंदोबस्त करना चाहती हो। रसिक के नाते कोई भी कहेगा कि इतनी दूरंदेशी, इतनी छानबीन, इतना तर्क-वितर्क किसी शृंगारी नायिका को नहीं सोहता। महादेवी जी को राय देने का किसी को कोई अधिकार नहीं, पर इतना तो हम अवश्य कह सकते हैं कि उपर्युक्त प्रश्न "क्यों" के बदले "क्या" से शुरू किया जाता तो उसे पढ़ते ही मुग्धा और विस्मिता नायिका की मूर्ति आँखों के सम्मुख आ खड़ी होती। इसी प्रकार—

तुम सो जाओ मैं गाऊँ !
मुझको सोते युग बीते तुमको यों लोरी गाते,
अब आओ मैं पलकों में स्वप्नों से सेज बिछाऊँ !

यहाँ दार्शनिकता पर से तनिक ध्यान हटा कर यह सोचें कि कहाँ हमारे शृंगारी कवियों ने संयोग-वियोग दोनों दशाओं में नींद को एकदम हराम बना डाला था और कहाँ हमारी नायिक-अपने प्रिय से ही सोने सुलाने और लोरी गाने की बात कह रही है। जो हो, दोनों का अंतर तो सुस्पष्ट है। अतः महादेवीजी के प्रेम को चिंतन-प्रधान कहना हमें सर्वथा सुसंगत प्रतीत होता है। आश्चर्य तो इसी बात पर होता है कि उत्कट अनुराग के न होते हुये भी उनकी उक्तियों में आत्मीय भाव की प्रचुरता जगह-जगह स्पष्ट झलकती है। उनकी संयत भावना के कारण कविताओं में यथेष्ट दार्शनिक पहलू का हम अब परिशीलन करेंगे।

रहस्य-भेद

महादेवी जी के रहस्योद्‌गारों के अनेक उपभेद किये जा सकते हैं। सबसे पहले हम महादेवीजी को उस अज्ञात असीम से एक हो जाने को इच्छुक पाते हैं। अपनी इस इच्छा को अनेक स्थानों पर प्रकट करने के अलावा उन्होंने उस आने वाले मिलन प्रसंग का कल्पना द्वारा अनुमान तथा चित्रमय वर्णन भी किया है। उनका कल्पनागत मिलन विशिष्ट भी है और कुछ विलक्षण भी। जान पड़ता है, वे मिटने और मिलने में अधिक अंतर स्वीकार नहीं करना चाहतीं। कहीं-कहीं तो मिटने को ही मिलन की उपाधि दे डाली है। स्पष्ट है कि जब मिटने से मिलन प्राप्त होता है तो फिर जीवन ही इस शृंङ्गार-कांड में एक बाधा बन जाता है। तब फिर अमरता का पूछना ही क्या ? वह हुआ उससे भी जबरदस्त अभिशाप। इन्हीं भावों की व्यंजना महादेवीजी ने अपने अनोखे ढंग से की है :—

वीणा होगी मूक बजाने वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृत के चरणों पर लोटेंगे सौ सौ निर्वाण।
जब असीम से हो जायेगा लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव अमरता खेलेगी मिटने का खेल !

महादेवी जी ने स्थान स्थान पर जो अनोखा मरणोत्साह प्रकट किया है, आलोचकों ने उसकी कड़ी आलोचना की है। उनकी राय में कवयित्री का यह उत्साह स्वाभाविक नहीं वरन् एक प्रकार की चमत्कृति के लिये ही लाया गया है। परंतु इस मत से हम सहमत नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं कि उर्दू वालों का सा बेमौत मरने का खिलवाड़ हास्यास्पद ही समझा जायगा। परंतु महादेवी जी की विचारधारा पर समग्र दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होगा कि मरणोत्साह अनिवार्य रूप से समाविष्ट हुआ है। जब वह नश्वर जीवन खुद उस अनंत मिलन की राह में बाधा बना हुआ है तो फिर उसके प्रति उदासीनता प्रकट करने में कौन अस्वाभाविकता है ?.....अतएव प्रतिकूल परिस्थिति के होते हुये भी प्रिय मिलन के एक साधन—नश्वरता—पर अभिमान करने और उसी आशा में समाधान मानने में हमें तो अनुचित या अस्वाभाविक कुछ नहीं दीखता। या तो मिलन-सिद्धान्त को ही गलत बतलाना होगा, जो काव्य की सीमा के बाहर

है; या फिर मरणोत्साह की भी सराहना करनी होगी। यही काव्य रसिकों के लिये उचित है। महादेवी की वाणी यहाँ कितनी असंदिग्ध, कितनी सुस्पष्ट है, देखिये—

क्या अमरों का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे यह मेरा,
मिटने का अधिकार ।

● ● ●

इन्द्र धनुष सा घन अञ्चल में,
तुहिन बिन्दुसा किसलय दल में,
करता है पल पल में देखो,
मिटने का अभिमान !
दिया क्यों जीवन का वरदान ?

मिलनेच्छा के साथ-साथ महादेवीजी ने प्रियतम से ऐक्य-प्राप्ति का भी जगह-जगह वर्णन किया है। इच्छा के प्रदर्शन तथा इच्छा सिद्धि के अनुभव में कोई पूर्वापर क्रम नहीं पाया जाता। वास्तव में मुक्तक शैली में लिखी गई कविताओं में इस प्रकार का क्रम निबाहना संभव भी नहीं। तथापि सुविधा के लिये हम अपने विवेचन में इसी क्रम से चलेंगे। कभी न कभी द्वैत की अद्वैत में परिणति अनिवार्य थी ही। परंतु एक ही सत्ता के अंश होते हुये भी उस असीम और इस ससीम को बिछुड़ना पड़ा। "माया का देश" था, अजीब लोगों से पाला पड़ा था, अतः यह निर्वासन एक प्रकार की दिग्भ्रान्ति का उत्पादक बना। अपनों से भी नवीन परिचय की आवश्यकता हुई। अंत में मिलन के उपरांत जब मालूम हुआ है, तो अपनी दिशाभूल पर हँसी ही आने लगी। ये सब प्रसंग काव्य की दृष्टि से बड़े सुन्दर और मार्मिक हैं। प्रायः कोई वेदांती स्वप्न में भी न सोचता होगा कि द्वैत-अद्वैत के बखेड़ों में भी रसानुभूति की इतनी गुंजायश हो सकती है। देखिये महादेवी जी के उद्गार कितने सरल-मनोहर हैं :—

चित्रित तू मैं हूं रेखाक्रम मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
काया छाया में रहस्यमय, प्रेयसि प्रियतम का
अभिनय क्या ?

● ● ●

टूट गया वह दर्पण निर्मम
उसमें हंस दी मेरी छाया, मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँख मिचौनी प्रिय जिसके परदे में मैं,
तुम !
किसमें देख संवारूँ कुन्तल, अंगराग पुलकों का मल मल
स्वप्नों से आँसू पलकें चल,
किस पर रीझूँ किससे रूठूँ भरूँ किस छवि से अन्तरतम ?
आज कहाँ मेरा अपनापन, तेरे छिपने का अवगुण्ठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,
तुम मुझ में अपना सुख देखो मैं तुममें अपना दुख
प्रियतम !

इस ऐक्यानुभव के बाद सुख-दुःखों का एकरस हो जाना, मृत्यु से भी ममत्वसा हो जाना और एक प्रकार के करुणानुप्राणित विसर्जनभाव का उदय होना—ये सभी बातें क्रम-प्राप्त ही प्रतीत होती हैं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि महादेवी ने सुख दुख का केवल संतुलन ही नहीं किया बल्कि सुख की अपेक्षा दुःख से ही अपना निकटतम संबंध स्थापित किया है। कितनी ही युक्तियों द्वारा उन्होंने पीड़ा ही पीड़ा मांगी है। "अनंत दुःख" और "असीम पीड़ा" की उनकी कविताओं में जहाँ-तहाँ विपुल चर्चा हुई है। उन्हें दुःख ही सब कुछ भासता है और उस प्रियतम में भी दुःख ही दुःख प्रतिबिंबित दीखता है। संभव है हमारा यह अनुमान गलत हो, पर हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन मनोभावों की स्वाभाविकता पर खुद महादेवी जी को अधिक विश्वास न था ! प्रायः इसीलिए उन्होंने किसी प्रस्तावना में अपनी दुःखप्रियता की एक अनोखी ही व्याख्या की है उन्होंने पाठकों को विश्वास दिलाने की चेष्टा की है कि सुख के आधिक्य की प्रतिक्रिया के रूप में ही वे दुःख से मायूस सी हो गई हैं।....थोड़ी देर के लिए उनकी दुःख प्रियता को ही स्वाभाविक माना जा सकता है, पर इस विचित्र व्याख्या को नहीं।

विश्व के विविध व्यापारों में किसी भाव का आरोप करके उसी दृष्टि से विश्व का अवलोकन करना संसार के प्रायः

सभी साहित्यों में समान रूप से मिलता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह भाव मूलतः द्रष्टा का ही होता है और उसके अनुभूतिजन्य विश्वास के कारण ही वाह्य प्रकृति में आरोपित होता है। यह आरोपित भाव किस प्रकार का हो, इस बारे में कोई बड़े नियम नहीं बनाये जा सकते। आरोपक तथा निरूपक के व्यक्तित्व पर ही सब कुछ अवलंबित होता है।

यहाँ तक तो सब ठीक है। यह नहीं कि दुःखेच्छु व्यक्ति हो ही नहीं सकता, बिरला कोई अवश्य हो सकता है। परंतु "बिरलों" के संबंध में स्वाभाविकता का प्रश्न ही कहाँ उठता है?

जो हो, महादेवी जी की दुःखवादी कविताएँ भी मार्मिकता की दृष्टि से सुन्दर बन पड़ी हैं। दुःख के साथ, सूनेपन, पीड़ा, वेदना विरह आदि का भी समावेश पाया जाता है। कहीं-कहीं तो दुखवाद तथा महादेवीजी के "अहम्" के मेल से भावों में यथेष्ट विचित्रता आ गई है। उक्तियों में स्पष्टता है ही, अतः तत्काल तो पाठक अवश्य प्रभावित हो जाता है। कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

उनसे कैसे छोटा है मेरा यह भिक्षुक जीवन?
उनमें अनन्त करुणा है इसमें असीम सूनापन।

● ● ●

है पीड़ा की सीमा यह,
दुख का चिर सुख हो जाना।

● ● ●

दुख अतिथिका धो चरणातल,
विश्व रसमय कर रहा जल,
यह नहीं क्रन्दन हठीले,
सजल पावस मास रे कह!

● ● ●

शून्य मेरा जन्म था अवसान है मुझको सवेरा,
प्राण आकुल के लिये संगी मिला केवल अन्धेरा,
मिलन का मत नाम लो मैं विरह में चिर हूँ।

● ● ●

मरण का उत्सव अजर है, गीत जीवन का अमर है,
मुखर कण का संग मिला, पर चला पंथी अकेला,
मिल गया गन्तव्य पग को कंटकों के वेष में!

इसके बाद हम महादेवीजी को मृत्यु तथा नश्वरता की सराहना करते पाते हैं। मृत्यु की उन्होंने जो व्याख्या की है वह गम्भीर भी है और सरस भी। सृष्टि तथा स्थिति के साथ लय भी अनिवार्य है, बल्कि सृष्टि और स्थिति लय पर उतनी ही अवलंबित हैं जितनी स्थिति और लय सृष्टि पर अतएव मृत्यु का निर्भीक अवलोकन करने में अनुचित या अस्वाभाविक कुछ भी नहीं। इसके अतिरिक्त अनन्त मिलन के साधन के नाते मृत्यु का बहुत कुछ प्रयोजन है जिसका हम उल्लेख कर आये हैं। महादेवीजी ने यहाँ पर प्रतीक तथा उपमान पद्धति का अनुसरण किया है। दीपक का निर्वाण फूल का झरना, बीज का गलना इत्यादि चिर-परिचित दृष्टांतों ने मृत्यु के चित्र को बड़ी हद तक स्पष्ट कर दिया है। मृत्यु याचना दुःखयाचना की अपेक्षा अधिक सरस और अधिक सुसंगत जान पड़ती हैं। देखिये—

बिखर कर वन वन के लघु प्राण, गुनगुनाते रहते यह तान,
"अमरता है जीवन का ह्रास, मृत्यु जीवन का चरम विकास।"

● ● ●

अब न लौटाने कहो अभिशाप की वह पीर,
बन चुकी स्पन्दन हृदय में, वह नयन में नीर,
अमरता उसमें मनाती है मरण त्योहार।

● ● ●

छाँह में उसकी गये आ शूल फूल समीप,
ज्वाल का मोती संभाले भौम की यह सीप!
सृजन के शत द्वीप था प्रलय दीपाधार!

विसर्जन भाव

अब रह गया विसर्जन-भाव। दुःखवाद का परिणाम कहिए, या रहस्यवाद का, पर महादेवीजी की कविता में विसर्जन तथा पूर्ण आत्म-समर्पण के भाव यथेष्ट मिलते हैं। उनकी नारी-सहज कोमलता ने आत्म-समर्पण के भाव अधिक मार्मिक बना दिया है। कहीं कहीं उनके विसर्जन भाव में "नियति-

वाद'' का भी थोड़ा बहुत समावेश हुआ जान पड़ता है। उन के "अहम्" के कारण विसर्जन भाव में कोई बाधा न आने पाई, बल्कि वह भाव और भी सुस्पष्ट रूप से व्यञ्जित हुआ है। .... प्रियतम "उस पार" खड़ा अपने अज्ञात संकेतों द्वारा आमन्त्रण दे रहा था। घटाटोप अंधेरा चहुं ओर छा गया था, बीच बीच चपला का बेसुध नर्तन अंधकार को और घनीभूत कर देता था। बेचारी प्रियानुगामिनी नायिका अकेली थी, कोई संगी था न साथी। उसके पास एक टूटी फूटी नाव थी और उससे भी जीर्ण पतवार। इस परिस्थिति में बेचारी क्या करती? नाव के होते हुये घर बैठे रहना भी संभव न था और ऐसी नाव के सहारे मंझधार में कूद पड़ने का साहस भी न होता था। .... आखिर वही हुआ जो होना था। असमंजस में पड़ी नायिका को उसके विसर्जन भाव ने दिलासा दिया। उसकी दुविधा एकदम तिरोहित हो गई, यहाँ तक कि पतवार के छूट जाने पर भी उसे भय नहीं हुआ। सुनिये वह क्या कहती है :—

.... तरंग उठीं पर्वताकार भयंकर करतीं हाहाकार,
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास तरी का करते हैं उपहास,
हाथ से छूट गई पतवार कौन पहुँचा देगा उस पार?
सुनाई किसने पल में आन कानमें मधुमय मोहक तान?
तरी को ले जाओ मंझधार डूबकर हो जाओगे पार
विसर्जन ही है कर्णाधार, वही पहुँचा देगा उस पार।"

अब इसी विसर्जन भाव के व्यञ्जक कुछ अवतरण दिये जाते हैं, देखिए इनमें संपूर्ण आतमसमर्पण का भाव कितना स्पष्ट दीखता है। :—

मेरे जीवन की जागृति, देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें तुम चिर निद्रा बन जाना।

● ● ●

तेरा अधर विचुंबित प्याला,
तेरी ही स्मित मिश्रितहाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर क्यों पूछूँ मेरे साकी,
देते हो मधुमय विषमय क्या?

● ● ●

इस प्रकार के विसर्जन भाव की उपस्थिति में जगत् से भाग निकलने की प्रवृत्ति भी प्रायः उत्पन्न हो सकती थी। परन्तु महादेवी जी की रचनाओं में पलायनवृत्ति का कहीं आभास तक नहीं मिलता। जीवन की निस्सारता को वे स्वीकार करती हैं, प्रकृत और जीवन अर्थात् जो होना चाहिये और जो है—इन दोनों के परस्पर वैषम्य को वे भली भाँति पहचानती हैं। फिर भी जगत् को त्याग कर पलायन करने की इच्छा उन्होंने कहां प्रकट नहीं की है। इसके विपरीत उन्होंने अपने अनोखे ढंग से कर्म के मार्ग का ही समर्थन किया है। तब प्रश्न यह आ पड़ता है कि उनके विपुल "दुःखवाद" का मतलब क्या हुआ? देखने में यहाँ विचार विरोध भले ही हो, तथापि इन दोनों बातों का सामंजस्य भी असंभव नहीं है।

एक ओर दुःख की सत्ता की स्वीकृति को लीजिए, दूसरी ओर पलायन की इच्छा को। सोचने पर स्पष्ट होगा कि इन दोनों में अनिवार्य रूप से कोई कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। दोनों दो भिन्न मनोवृत्तियाँ हैं और एक दूसरे से सम्बन्ध करने के लिए किसी तीसरी वृत्ति की, माध्यम के रूप में, आवश्यकता होगी। वह तीसरा माध्यम है, निराशा। जब दुःख के अवलोकन तथा अनुभव के कारण नैराश्य का उदय होता है तभी पलायन-वृत्ति के लिए गुंजायश पैदा हो सकती है। अतः पहली दो कड़ियों को जोड़ने के लिए इस तीसरी कड़ी का रहना आवश्यक है।

अब महादेवीजी को देखिये। उनकी रचनाओं में पलायन-वृत्ति का उनक नैराश्य शायद ही कहीं मिल सकता हो। उनकी खूबी यही है कि उनके "दुःखवाद" ने "निराशावाद" का रूप धारण नहीं किया। उन्होंने दुःख का सर्वव्यापी स्वरूप निरूपित किया, नश्वरता की सराहना की, अमरता के प्रति उदासीनता प्रकट की, मृत्यु को उत्सुकता से आमंत्रण दिया—यह सब कुछ किया, पर निराशावश, नहीं, बर्ल्कि एक विशिष्ट तथा अलौकिक आशा से प्रेरित होकर वह आशा थी "अनंत मिलन" की। यहाँ आकर उनके मिलन सिद्धान्त का प्रयोजन महत्व तथा स्पष्ट विदित हो जाता है। अतः उनके दुःखवाद की ओट में एक महान ध्येय से अनुप्राणित अजेय आशावाद कार्यशील पाया जाता है।....

उन्होंने दुःख की सत्ता को इसलिए स्वीकार नहीं किया कि सुख की खोज में उन्हें निराश होना पड़ा था, बल्कि इसलिए कि दुःख की महत्ता सर्वोपरि दीख पड़ी। उन्होंने मृत्यु को इसलिए निमंत्रण नहीं दिया कि वे जीवन से उकता गई थीं, बल्कि इसलिए कि ध्येयसिद्धि के लिए जीवन-रूपी साधना की, मृत्यु के रूप में पूर्ति अनिवार्य थी। उन्होंने अपने आपको प्रिय के चरणों पर यह कह कर समर्पित नहीं किया कि चलो, फालतू चीज़ है, किसी को पकड़ा देंगे, बल्कि यह कह कर कि प्रियतम ! तुमसे एकाकार होने का जो मैं अनुभव करने लगी हूँ, इसके बाद अपने-पराये का भेदभाव उचित नहीं जचँता, अतः मैं भी तुम्हारे ही रूप में कार्यशील रहूँगी।....ऐसी दशा में निराशा के लिए स्थान ही कहाँ था? और निराशा की अनुपस्थिति में पलायनवृत्ति का कहाँ उदय हो सकता ?

दीपक का जलना, शलभ का मर मिटना और बादलों का बरसना आदि दृष्टांतों द्वारा महादेवी ने एक प्रकार के निर्हेतुक कर्मयोग का सन्देश दिया है। परन्तु इसे किसी सिद्धान्त के रूप में नहीं, केवल काव्य-विषय के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। रवीन्द्रनाथ की तरह महादेवी ने भी मुक्ति, मोक्ष आदि का तिरस्कार किया। संसृति के बन्धनों में ही उन्होंने प्रियदर्शन करने की चेष्टा की है। फलापेक्षा का भी निषेध किया है।

Deliverance ? Where is this deliverance to be found ? Our Master himself has joyfully taken upon h'm the Bonds of creation; he is bound with us all for ever.

—Rabindra Nath Tagore

मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
सीमा ही लघुता का बन्धन
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन।
है दृग के अक्षम कोषों से
तुम में भरती हूँ आँसू जल।
सजल सजल मेरे दीपक जल।

● ● ●

मेरे बन्धन आज नहीं प्रिय
संसृति की कड़ियाँ देखो।

● ● ●

सुधिविद्युत की तूली लेकर
मृदुमोम फलक-सा उर उन्मन
मैं घोल अश्रु में ज्वाला कण
चिरमुक्त ! तुम्हीं को जीवन के
बन्धनहित विकल दिखा जाती।
प्रिय ! मैं जो चित्र बना पाती।

● ● ●

खोज ही चिर प्राप्ति का वर, साधना ही सिद्धि सुन्दर,
रुदन में सुख की कथा है, विरह मिलने की प्रथा है,
शलभ जल कर दीप बन जाता निशा के शेष में।

● ● ●

मैं कैसे उलझूँ इति अथ में,
गति मेरी संसृति है पथ में,
बनता है इतिहास मिलन का,
प्यास भरे अभिसार अकथ में,
मेरे प्रति पग पर बसता जाता
सूना संसार किसी का।

● ● ●

और कहेंगे मुक्ति कहानी, मैंने धूलि व्यथा भर जानी,
हर कण को यूँ प्राण पुलक बंधन में बँध जाता है।
मिलन उत्सव बन क्षण आता है।
मुझे प्रिय ! जग अपना भाता है।

● ● ●

इसी कर्मवाद से मिलता जुलता एक और अनूठा भाव भी है जिसको महादेवी ने बड़ी सुन्दरता से व्यञ्जित किया है। जीवन के लिये अतृप्ति की जितनी आवश्यकता है उतनी तृप्ति की नहीं। वास्तव में तृप्ति ही जीवन की इतिश्री है। एक ओर नितांत अभाव से निराशा और स्थावरता आ जाती है तो दूसरी ओर इच्छासिद्धि से तृप्ति और अकर्मण्यता भी उत्पन्न हो जाती है। अतः किसी वस्तु का शोध तभी बना रहेगा जब कि वह वस्तु आँखों के आगे से ओझल भी न होने

पावे और मुठ्ठी में भी न आने पावे। महादेवी जी कहती हैं :—

तुम रहो सजल आँखों की सित असित मुकुरता बनकर,
मैं सब कुछ तुमसे देखूँ, तुमको न देख पाऊँ पर,
इस अचल क्षितिज रेखा से, तुम रहो निकट जीवन के,
पर तुम्हें पकड़ पाने के सारे प्रयत्न हों फीके।
द्रुत पंखों वाले मन को तुम अंतहीन नभ होना,
युग उड़ जावें उड़ते ही, परिचित हो एक न कोना।
तुम हो प्रभात की चितवन, मैं विधुर निशा बन आऊँ,
काटूँ वियोग पल रोते, संयोग समय छिप जाऊँ।

इस लेख में महादेवी जी की कुछ अपनी विशेषताओं का मुख्यतया उल्लेख किया गया है। स्पष्ट है कि एक छोटे से लेख के भीतर महादेवी जी की कविता का समग्र मूल्यांकन नहीं हो सकता। छायावाद और रहस्यवाद के तथाकथित मुख्य लक्षण उनकी कविता में विद्यमान हैं ही; परन्तु इन वादों के चौखट से परे भी उनकी कविता अपनी विशिष्ट सत्ता रखती है। यों तो आलोचकों की ही ज्यादती है कि महादेवी जी की रचनाओं पर किसी वाद का लेबुल लगाते हैं; तथापि विवेचन की सुविधा के लिए ऐसा करना कुछ अंशों में अनिवार्य हो जाता है। अतएव महादेवी जी की कविता के मूल्यांकन में जो बात विशेष रूप से, ध्यान देने योग्य है वह यह है कि वे छायावादी अवश्य हैं परन्तु केवल छायावादी नहीं, रहस्यवादी हैं, किन्तु निरी रहस्यवादी भी नहीं।

काव्यगत दोष

अंत में कतिपय खटकने वाली बातों का उल्लेख यहाँ असङ्गत न होगा। महादेवी जी की कविता में सबसे अधिक खटकने वाली बात है पुनरुक्ति। लगभग वही भाव, वही प्रतीक, वही रूपक, वही उद्‌गार, वही विचार अनेक स्थानों पर मिल सकते हैं। वास्तव में महादेवी की कोमल तथा प्रभावी भाषा और दूरारूढ़ कल्पना के ही कारण उनकी अनेकानेक पुनरुक्तियाँ सहसा उतनी नहीं खटकतीं। पुनरुक्तियों ने महादेवी की समूची काव्यभूमि को एक प्रकार का संकुचित तथा सीमित स्वरूप दे रखा है। प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से भी कविता कुछ स्थानों पर घटिया लगने लगती है। छायावाद की अनुगामिनी होने के कारण महादेवी की रचनाओं में अर्थ संकोच था ही, तिस पर पुनरुक्ति के कारण यह संकोच और भी अधिक दीखने लगा है।

क्लिष्टता और दुरूहता का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। अति क्लिष्टता को भी काव्यदोषों में गिनाकर हमारे आचार्यों ने कोई अनुचित कार्य नहीं किया है। फिर क्लिष्टता चाहे दार्शनिक विचारों के कारण हो, चाहे किसी और कारण — वह होगी क्लिष्टता ही और कही जायगी अवांछनीय ही। यह त्रुटि "दीपशिखा" में जगह-जगह पाई जाती है।

क्लिष्टता के साथ साथ "दीपशिखा" में कहीं-कहीं अन्विति तथा तज्जन्य प्रभावलोप भी देखा जा सकता है। किसी वृहत्‌काव्य में यह दोष बड़ी हद तक क्षम्य कहा जा सकता है। परन्तु मुक्त शैली में लिखे गीतों की सार्थकता तो मुख्यतया उनकी अखंड अर्थान्विति में होती है। गीत तभी सफल कहा जायगा जब कि वह आदि से अंत तक एक-सा चुभता चले। गीत रचना में यही प्रभावनिर्वहण सर्वोपरि महत्व रखता है। अनेक परस्पर भिन्न भावों को एक ही गीत में स्थान देना या किसी एक भाव का स्वाभाविक क्लायमेक्स आ जाने के बाद भी बेमतलब बातों से गीत को बढ़ाना सिद्धहस्त कलाकारों का काम नहीं। महादेवी की कुछ रचनाओं में इस आधारभूत नियम पर कम ध्यान रखा गया जान पड़ता है।

भूलें कहाँ नहीं हैं? त्रुटियों से कौन सा काव्य एकदम मुक्त रह सका है? ऐसा कौन महाकवि है जिसकी कविता में एक भी खटकने वाली बात नहीं होती? अतएव केवल एक आलोचक के नाते ही हमने महादेवी के काव्य की दो एक अवांछनीय बातों की ओर संकेत किया है। काव्य का आलोचक उतना अति उदार नहीं होता जितना की महादेवी का "करुणेश", जिसके सम्बन्ध में वे कहती हैं, "तुम्हें तब आता है करुणेश! उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार!" हाँ, रसिक आलोचक के बारे में "रसिक हंस गुण गहँहिपय, परिहरि बारि विकार"—यह कथन चरितार्थ होना चाहिये। अतएव हम निस्संकोच कह सकते हैं कि इन कतिपय त्रुटियों से महादेवी

जी के काव्य की महत्ता तिलभर भी कम नहीं हो सकती। आज के वस्तुवादी युग में छायावाद को बिल्कुल ही प्रयोजन हीन मानना भी हमें भ्रमपूर्ण लगता है। वस्तुपक्ष में न सही, अभिव्यञ्जनापक्ष में छायावाद की जो विशेषतायें हैं उनका हर समय उपयोग किया जा सकता है। एक वाद के रूप में छायावाद कुछ अधिक समय तक प्रायः मैदान में टिक नहीं सकेगा। बल्कि उसका तिरोगमन शुरू हो ही चुका है। परन्तु उसकी शैली की कतिपय पद्धतियों को अपनाते चलना ही हिन्दी काव्य की उन्नति में सहायक होगा। सूक्ष्म की बारीकियाँ भले ही लुप्त हो जाएँ, पर सूक्ष्मानुभूति की "अपील" कभी लुप्त होने न पाएगी। सामयिक समस्याओं तथा वास्तविक जीवन से परहेज-सा रखने वाले स्वप्नालु कवियों से संसार भले ही चिढ़ने लग जाए, परन्तु किसी भी वस्तु के मार्मिक पक्ष का संवेदनशील अवलोकन कर सकने वाले भावुक कलाकार का सदैव सम्मान हुआ करेगा। हमारा विश्वास है कि भारत के इन महान् कलाकारों में महादेवी एक समुन्नत पद की अधिकारिणी हैं। उनकी स्फूर्तिदायिनी वाणी काव्यपथ के कितने ही पथिकों को सदा सर्वदा नित्य नवीन तथा अदम्य उत्साह प्रदान करती रहेंगी। कवि-मन इसका साक्षी होगा और रसिक मन इसका ज़ामिन।

महादेवी जी के काव्य की साधना-भूमि

●

डॉ० भगीरथ मिश्र

साधक : कवि

कविता का आनन्द अलौकिक आनन्द कहा जाता है, किन्तु इस प्रकार के आनन्द प्रदान करने वाले काव्य कम हैं। साथ ही ऐसे लोग भी बहुत नहीं जो काव्यान्तर्निहित स्वर्गिक आनन्द को प्रदान करने में समर्थ होते हैं। प्रायः कविता मनोरंजक होती है, यही समझा जाता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। काव्य जिस आनन्द को देने में समर्थ हो सकता है, वह आनन्द वर्णनातीत है। साधना के पथ में एक योगी को जो आनन्द आत्मदर्शन से होता है, वही आनन्द एक कवि-हृदय को कविता पढ़ने व लिखने से होता है। कवि के लिये उस आनन्द की खोज योग के योगी से कम महत्व नहीं रखती और उसका कविता के रूप में प्रकाशन लोगों के लिये एक सिद्ध के दिये उपदेश या आशीर्वाद के समान हैं। यही कारण है कि एक सौन्दर्य प्रेमी योगी कवि हो जाता है और रहस्यवादी कविता का प्रादुर्भाव भी यही है। प्रसाद जी का मत है कि रहस्यवादी काव्य सर्वोच्च काव्य है, क्योंकि वह उस आनन्द का प्रकाशन है जो योगी की भाँति ही कवि अनुभव करता है। योगी उस आनन्द में मूक रह जाता है और कवि उसमें मुखर हो गा उठता है।

योग का सम्बन्ध साधना से है और योगी अपनी प्रथमावस्था में वियोगी अवश्य है। उस वियोगावस्था में मिलन का यत्न योग की साधना कहलाती है। संसार के अन्य लोगों को यह वियोग उतना नहीं खलता किन्तु कवि या साधक को इतना खलता है कि साधक उसके लिए साधना में तत्पर होता है और कवि गीत गाता है। अतः "वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान" की उक्ति तथ्यपूर्ण और सत्य है।

वियोग का अनुभव करते हुये भी जैसे योगी की अवस्था आनन्द की है उसी प्रकार वियोग के गीत गाते हुये भी कवि की अवस्था आनन्द की होती है। वरन् यह कहना चाहिये कि वियोग की अवस्था मिलन की अवस्था से विशेष आनन्द-दायी है। मिलन अचिर है, वियोग चिरस्थायी है। फिर उसमें विकलता है, वेदना है, छटपटाहट है। वेदना का सम्बन्ध आनन्द से है दुःख से नहीं। दुःख-सुख भौतिक वस्तुएँ हैं। वेदना आनन्द में मिलने वाली पयस्विनी है। वेदनात्मक गीतों में आनन्द की प्राप्ति का यही रहस्य है। हमारे साहित्य में इस प्रकार के कवि जिनका काव्य वेदना से प्रस्फुटित और साधना से पोषित है, कम नहीं और ऐसे काव्य के रचयिता, ही यथार्थ में उत्कृष्ट तथा सच्चे कवि हैं। कबीर, जायसी, मीराँ, सूर, तुलसी, प्रसाद सभी इसी कोटि के कवि थे और उनमें हम उसी कवि साधक का रूप देखते हैं। वर्तमान समय में इस प्रकार के साधक कवियों में महादेवी वर्मा का स्थान उत्कृष्ट है।

अनुभूति एक वैशिष्टय

वह बात व्यक्तिगत अनुभूति की हो सकती है, किन्तु सत्य है कि मुझे जो आनन्द महादेवी वर्मा के गीतों में प्राप्त होता है वह बहुत कम गीतों में प्राप्त होता है। फिर मैं उसे व्यक्तिगत भी विशेष इसलिये नहीं मानता कि जिस किसी को भी मैं पढ़ते देखता हूँ वही उसमें आनन्द पाता है। इसका कारण यह है कि जितनी कविता उनके गीतों में है उतनी

औरों के गीतों में प्रायः नहीं पाई जाती है। उनकी कविता के दो पदों में भी एक अनुभूति की सघनता, गहराई, हृदय की हिलोर तथा अलौकिक मधुरता पायी जाती है। काव्य के लिए किया गया प्रयत्न हमें उनकी कविता में नहीं दीखता है। उसमें सर्वत्र मृदुता है, यही उसके अन्तर्गत अलौकिक विशेषता होने का रहस्य है उनका परिचय भी अलौकिकता से युक्त है जब वे कहती हैं—

"अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी री।"

मैं नीर भरी दुख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय मेरा इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

इन दो पदों में कविता का वातावरण उपस्थित है। बिहारी की भाँति गागर में सागर भरनेवाली कला इसमें नहीं कही जा सकती, क्योंकि बिहारी के काव्य में मस्तिष्क की सूझ व सूक्ष्म दृष्टि की प्रधानता है, वे बाह्य-सौंदर्य के अलिप्त पारखी हैं। फिर भी "महादेवी वर्मा" के काव्य के प्रत्येक शब्द में एक अनुभूति हिलोर मारती है। इस प्रभाव को हम कलात्मक नहीं कह सकते। यथार्थ में कला, इस गुण से जो कि इस प्रकार कविता में पाया जाता है, निम्न श्रेणी की है क्योंकि उसमें रचयिता और पाठक दोनों की ओर प्रयत्न अपेक्षित है। इसमें मूक प्रभाव है, इसमें अनुभूति है और वह मिल्टन के सम्बन्ध में कहे गये काव्यमय रहन सहन से प्रादुर्भूत है जिसकी श्वास-निःश्वास भी काव्य हो जाती है। कवि का यही गुण उसे साधक की कोटि में रखता है जिससे उसकी कविता में एक अलौकिक आनन्द निहित रहता है।

कविता का एक उद्देश्य उसमें एक प्रकार का आदर्श प्रदर्शित करना कहा गया है। अनेक व्यक्ति उसका कुछ न कुछ उद्देश्य मानते हैं। किन्तु कविता की उद्देश्यहीनता उसमें अलौकिक आनन्द भर देती है। मनुष्य नित्य उद्देश्य को लेकर बात करता है किन्तु जो आनन्द निरुद्देश्य रूप में हृदय के उल्लास के अवसर पर निःसृत एक गीत लहरी में पाया जाता है, वह उद्देश्यपूर्ण रचनाओं में नहीं। पक्षियों की मधुर कलध्वनि कितनी उद्देश्यहीन है, किन्तु उसमें जो आनन्द है वह बाजार के कोलाहल में नहीं। यही बात अनुभूति के क्षणों में लिखे गये निरुद्देश्य और स्वप्नवाही महादेवी वर्मा के गीतों में हमें मिलती है। प्रसाद जी की कामायनी के समान 'तुमुल कोलाहल कलह में' उनके गीत 'हृदय की बात' कहते हैं।

उद्देश्यहीनता और आनन्दातिरेक की अलौकिकता हमारे एक विश्वास की सत्यता की जाँच करती है। प्रायः प्रत्येक जाति के साहित्य का प्रारम्भ कविता से होने के कारण लोगों का विचार यह है कि कविता का सम्बन्ध कुछ आदिम अवस्था या जंगलीपन से है। प्रारम्भ कविता से है इसमें सत्यता अवश्य है और कविता का सम्बन्ध कुछ उसी प्रकार की अवस्था से है यह भी सत्य है किन्तु उसकी यह व्याख्या कि वह जंगलीपन से सम्बन्धित है और गद्य सभ्यावस्था से, नितान्त असत्य है। उसे हम यों कह सकते हैं कि सभ्यावस्था के विकास के साथ साथ मानव के आनन्द की, अलौकिक आनन्द की मात्रा, कम होती जाती है। सामाजिक बन्धन उसे जकड़ते जाते हैं, स्वतन्त्रता छिनती जाती है। चिन्ता और विचार जिस प्रकार मानव-स्वास्थ्य को धक्का पहुँचाते हैं उसी प्रकार आनन्द के अनुभव को भी। इसी कारण से आनन्द खोजी योगी लोग मानव समाज को छोड़ कर प्रकृति का एकान्त कोना ढूँढ़ते हैं। अतःसभ्यता के साथ-साथ हमारे आनन्द का विकास व वृद्धि नहीं होती, वरन् वह कम होता जाता है और इस कारण कविता कम और गद्य अधिक होता जाता है। यही कारण प्रबन्ध काव्यों की भी कमी का है। सभ्यता के विकास के साथ आराम व सुख से साधनों की अभिवृद्धि अवश्य होती जाती है। किन्तु आनन्द का सुख से सम्बन्ध नहीं, उसका सम्बन्ध तो साधना-प्रसूता वेदना से है।

काव्य क्षेत्र-प्रकृति

महादेवी वर्मा के काव्य की अनुभूति उसी स्वाभाविक समीपता का आनन्द है जिसका क्षेत्र प्रकृति है, मानव संसार नहीं। अतः उसका क्षेत्र व प्रभाव भी प्रकृति के समान विशाल व शुभ है, मानव समाज की भाँति कलुषित व दोषपूर्ण नहीं। उनकी साधक-भावना वहीं पर प्रियतम का दर्शन करती है :—

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषाद मय,
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय ।

उनकी कविता-क्षेत्र प्रकृति है, किन्तु वह एक प्रबन्धकार की भाँति वर्णन नहीं, जैसा कि रघुवंश अथवा प्रियप्रवास व कामायनी में पाया जाता है । उन्हें प्रकृति में एक अनुपम सौन्दर्य दीखता है । शेली की भांति प्रकृति उन्हें सौन्दर्य की प्रतीक तथा रहस्य-भरी जान पड़ती है । मानव-समाज का सौन्दर्य तो मानों कलुषित और दोषपूर्ण-सा है । वे प्रकृति में भोला स्वर्गिक सौन्दर्य देखती हैं, जिनमें भावनाओं का सौन्दर्य भी चिर रूप से विद्यमान् मिलता है । प्रकृति भी वेदनापूर्ण, उल्लसित अथवा उत्सुक दीख पड़ती है किन्तु प्रकृति अपने भाव शब्दों में नहीं वरन् व्यापारों में व्यक्त कर रही है । नीरजा, के तीसरे गीत में :—

सकुच सलज खिलती शेफाली
अलस मौलश्री डाली डाली
बुनते नव प्रवाल कुञ्जों में
रजत श्याम तारों से जाली
शिथिल मधु पवन, गिन गिन मधु कण
हर सिङ्गार झरते हैं झर झर
आज नयन आते क्यों भर भर ।

प्रकृति मानों प्रियतम के स्वागत का साज सजा रही है । किसी इष्ट के स्वागत का साज देख कर नेत्र भर ही आते हैं और गीत के अन्त में वे कहती भी हैं :—

तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों में पग धर धर

उत्सुकता की कितनी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है ? इस प्रकृति के चित्रण में कितनी ही शुद्ध भावनाएँ खेल रही हैं । प्रकृति अपने प्रियतम का दर्शन पाती है तो उसकी सहेली भी दर्शन पायेगी ही । जो साधक अपने को प्रकृति के रंगों में घुला-मिला सकता है उसके लिए सर्वत्र प्रियतम के दर्शन हैं । यहाँ भी भरी हुई आँखें बादलों के समान है, अतः बिजली के समान प्रिय का उनमें आना सहज है । प्रकृति के साथ एकाकार होने के गीत बहुत से हैं वरन् यह कहना चाहिए कि प्रायः उनके गीत इसी प्रकार के हैं ।

मैं बनी मधुमास आली
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी ।
बरस सुधि से इंदु से छिटकी पुलक की चाँदनी
उमड़ आई री दृगों में
सजनि कालिंदी निराली ॥

इसी प्रकार "मैं नीर भरी दुख की बदली "तथा" प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन" आदि गीत भी हैं ।

प्रकृति के इस प्रकार संकेतमय चित्रण में आत्म-विस्मृति और एकाकार की भावना प्रचुर रूप से विद्यमान है । प्रकृति के समस्त व्यापार मानों किसी उद्देश्य को लिये हुए होते हैं और उनमें एक संकेत छिपा हुआ है । श्रीमती वर्मा के लिए वह संकेत इतना ही स्पष्ट है जितना कि एक साधक योगी या महात्मा को परमात्मा का संकेत या आत्मा की ध्वनि । तभी तो उनके प्रकृति व्यापार के चित्रण में उपमा या उत्प्रेक्षा वाचक शब्द मानों, जानों, जनु इत्यादि का अभाव है । वे प्रकृति में मानव व्यापारों की समानता नहीं देखती हैं वरन् मानव भावनाएँ ही स्वयं व्यंजित देखती है । प्रकृति अपने कार्यों द्वारा स्पष्ट भाव प्रकाशन कर रही हैं जैसे—

"धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी ।"
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि
कर में हो स्मृतियों की अंजलि
मलयानल का चल दुकूल अलि
चिर छाया सी श्याम विश्व को आ अभिसार बनी ।
सकुचती आ बसन्त रजनी ।
सिहर सिहर उठता सरिता उर
खुल खुल पड़ते सुमन सुधाभर
मचल मचल आते पद फिर फिर
सुन पिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी ।
सिहरती आ बसन्त रजनी ॥

उपर्युक्त दोनों पदों में दो भावनाओं का चित्रण है । भावनायें मानवी हैं किन्तु प्रकृति में उनका स्पष्ट प्रकाशन है । यह कवि की एक मधुर दृष्टि है । जड़ प्रकृति में भी कोई भाव देखना और उसी प्रकार मधुरता का अनुभव करना, जो कि मानवीय व्यापारों में होता है, एक विलक्षणता, विशालता

है। इसमें स्पष्ट है कि कवि के सम्मुख एक मधुमय वातावरण है और पारिभाषिक शब्दों में "मधुमती भूमिका" है जिसमें साधक एक अलौकिक आनन्द सर्वत्र देखता है। उसकी निजी अनुभूतियों में व्यापक रूप से प्रकृति कितना सहयोग देती है यह दृष्टि कवि को ही प्राप्त है। यह प्रकृति का मानवी रूप है।

जहाँ पर केवल निरपेक्ष रूप से प्रकृति का वर्णन है वहाँ पर भी उसमें अद्भुत सजीवता है। प्रकृति का कण-कण मानवी व्यापारों को प्रकट करता है। यहाँ तक कि प्रकृति के कार्य-कलाप मानवीय कार्यों से विशेष आनन्दमय है। "रश्मि" में रश्मि को संबोधित करते हुए कवयित्री ने मानवीय व्यापारों का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है।

चुभते ही तेरा अरुण बान।
बहते कन कन से फूट फूट मधु के निर्झर से सजल गान
नव कुंद कुसुम से मेघ पुंज
बन गये इन्द्रधनुषी वितान।
दे मृदु कलियों की चटक ताल
हिम बिन्दु नचाती तरल प्राण।
धो स्वर्ण प्रात में तिमिर गान,
दुहराते अलिनिशि-मूक तान।
सौरभ का फैला केश जाल।
करती समीर परियाँ बिहार।
गीली केसर मधु झूम झूम।
पीते तितली के नव कुमार॥
मर्मर का मधु संगीत छेड़
देते हैं हिल पल्लव अजान॥

इसमें हमें उल्लसित और आनन्द से आन्दोलित प्रकृति के दर्शन होते हैं यह दृश्य मनुष्य समाज के लिए स्पृहणीय वस्तु है। कवि का हृदय इस दृश्य को देख कर जितना आनन्द पाता है वह इस गीत में मानों पूर्ण रूप से प्रकाशित नहीं हो सकता और फिर भी इसमें भरा आनन्द इतना अधिक है कि उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। इन चित्रणों में पाया गया आनन्द सूक्ष्म माधुर्य रखता है। प्रभात और रश्मियों का वर्णन साहित्य में कम नहीं है किन्तु इसके द्वारा प्रभात जितनी आनन्द की वस्तु हो जाती है उतना अन्य स्थलों के वर्णन से नहीं। प्रभात का वर्णन हमें—

"उगेउ अरुण अवलोकहु ताता।
पंकज कोक लोक सुखदाता।"

के रूप में साधारण सा मिलता है किन्तु इसमें कोई मार्मिक बात नहीं। फिर कालिदास के रघुवंश में "रात्रिर्गता मतिमतां वर मुंचशय्याम्" इत्यादि के क्रम में प्रभात का सुन्दर वर्णन है।

"ताम्रोदरेषु पतितं तरु पल्लवेषु
निर्धौतहार गुलिकाविशदंहिमाम्भः।
आभाति लब्ध परभागतयाधरोष्ठे
लीलास्मितं सदशनार्चिरिवत्वदीयम्।"

ऊपर का वर्णन निस्सन्देह सुन्दर है, परन्तु जो अलौकिक और पवित्र आनन्द हमें "रश्मि" में या इसी प्रकार की अन्य कविताओं में मिलता है वह इसमें नहीं—

"फैला अपने मृदु स्वप्न पंख,
उड़ गई नींद निशि क्षितिज पार।
अधखुले दृगों के कंज कोष
पर छाया विस्मृति का खुमार।"
रँग रहा हृदय ले अश्रु हास।
यह चतुर चितेरा सुधि विहान॥

इसको पढ़ कर हमारा हृदय आनन्द से-अलिप्त-आनन्द से भर-सा जाता है और दृष्टि उसी पर ठहरी रहती है। यद्यपि तुलसी और कालिदास के वर्णन प्रसंगवश और यह वर्णन स्वतन्त्र है फिर भी दोनों की आभा में अन्तर है। इस चित्रण में प्रकृति अपने पूर्ण सौन्दर्य और असीम आनन्द को लिए खड़ी मिलती है। इसी प्रकार सन्ध्या का वर्णन करती हुई वे अपने व्यंग्यात्मक संकेतों से भावमय वातावरण और चिरस्मरणीय भाव चित्र उपस्थित करती हैं, जिसमें दिन प्रतिदिन के दृश्यों में एक विलक्षण सौन्दर्य फूटकर निकला पड़ता है।

रागभीनी री सजनि निश्वास भी तेरे रंगीले।
लोचनों में क्या मदिर तव,
देख जिसको नीड की सुधि

फूट निकली बन मधुर रव,
झूमते चितवन गुलाबी में चले गृह खग हठीले ॥

इसमें सन्ध्या समय चहचहाते पक्षियों के अपने-अपने नीड़ में लौटने का वर्णन है किन्तु उनके नित्यप्रति के स्वाभाविक कार्य के आर-पार कवि की दृष्टि एक सौन्दर्य देखती है और यह दृश्य चिरन्तन आनन्दमय हो जाता है और हृदय पर किसी मधुर स्मृति की भाँति प्रभाव डालता है। इसी प्रकार इसमें आगे कितनी दूर तक फैली प्रकृति का व्यापक चित्रण है—

रेख सी लघु तिमिर लहरी
चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमाहीन गहरी
गीत तेरे पार जाते बादलों की मृदु तरी ले ॥

निदान प्रकृति रहस्यमयी है कोई नित्य प्रयत्न करते रहने पर भी उसके संकेतों तथा कार्य-कलापों को ठीक-ठीक समझ सके यह असम्भव बात है। प्रकृति के रहस्य की यह गहनता प्रत्येक प्रयत्नशील को पग-पग पर भासित होती है। प्रकृति के इन प्रतिदिन के व्यापारों का फिर रहस्य क्या है? यह स्वाभाविक प्रश्न है। "रश्मि" में "अपनी" शीर्षक कविता में उन्हें प्रकृति के व्यापारों का अवलोकन करके यही प्रश्न विकल करता है और वे कहती हैं :—

कनक सा दिन मोती सी रात
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात
मिटाता रँग कर बारम्बार
कौन-सा जग का वह चित्राधार?
शून्य नभ में तम का चुम्बन
जला देता असंख्य उडुगन
बुझा क्यों उसको जाती मूक
भोर ही उजियाली की फूँक?

और यथार्थ में यह भी कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा का सारा काव्य इसी प्रकार के प्रश्नों के उत्तर में है। प्रकृति के व्यापारों की व्याख्या करती हुई, उसमें आनन्द व अलौकिक सौन्दर्य खोजती हुई, तथा उसका चित्रण करती हुई; वे इसी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देती हैं जो कि प्रत्येक उन्मुख और पवित्र आत्मा के स्वाभाविक प्रश्न हैं। इन प्रकृति चित्रणों में इन्हीं रहस्यमय प्रश्नों के रहस्य-उद्घाटन का मधुर प्रयास है। वे प्रकृति से तन्मय होकर उससे घुलमिल कर इसी प्रकार के हृदय में उठे हुए प्रश्नों के उत्तर की खोज करना चाहती हैं, जैसा कि—

तुम मानस में बस जाओ
छिप दुख के अवगुण्ठन से।
मैं तुम्हें ढूढ़ने के मिस
परिचित हो लूँ कण-कण से।

यही उनके प्रिय का रूप है, यही उसकी लीला का रहस्य है जिसे समझाना साधक का कार्य है और उनकी इस खोज की अवस्था की विशेषता यह है कि वे इसी प्रकार की खोज ही में निरन्तर लगी रहना चाहती हैं, अपने प्रिय को वे अपने पास ही स्थित रखना चाहती हैं, किन्तु वह अपरिचित और अप्रकट रूप में। अर्थात उनको जो सबसे प्रिय है वह है चिरन्तन साधना और चिर अतृप्ति। इसी भावना की अभिव्यंजना निम्न पंक्तियों में है—

तुम रहो सजल आँखों की
सित असित मुकुरता बनकर।
मैं सब कुछ तुममें देखूँ
तुमको न देख पाऊँ पर॥

यह अतृप्ति और साधना की निरन्तरता भक्तों की भक्ति के समान है जिसके सामने वे मोक्ष को भी ठुकराते हैं। महादेवी जी अपनी अमर साधना चाहती हैं, जीवन उनका साधना से ही ओतप्रोत है और वह उस प्रिय की खोज में ही लगी रहना चाहती हैं उससे मिलने को वे उत्सुक नहीं। सम्मिलन के उत्सुक और साफल्य के आकांक्षी निर्बल हृदय के व्यक्ति होते हैं। किन्तु यह कर्मयोग के समान है, जिसमें साधक निरन्तर साधना को अपनाता है और किसी भी वरदान को नहीं चाहता है—

"वर देते हो तो कर दो ना
चिर आँख मिचौनी यह अपनी,
जीवन में खोज तुम्हारी है।
मिटना ही तुमको छू पाना।"

जिसे यह आभासित हो गया है कि इस जीवन के साथ उसका सम्पर्क नहीं हो सकता है और न वह सम्पर्क चाहता ही है

और फिर भी वह जीवन को प्यार करता है, उससे दूर नहीं भागता; वह यथार्थ में संसार में सर्वत्र आनन्द ही देखता है। यह नहीं दुःख भी उसके लिए विशेष आनन्दमय हो जाता है। उसकी यह ध्वनि—

"तुम दुख बन इस पथ से आना
शूलों में नित मृदु पाटल सा
खिलते देना मेरा जीवन।
क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय का बिंधवाना।"

इस भावना को स्पष्ट करती है कि वह साधना पथ की कठिनाइयों से प्रेम का नाता जोड़ चुकी है, उनसे डरना और घबराना तो दूर रहा। और इस प्रकार उनके हृदय में प्रबल आत्मिक दृढ़ता विद्यमान है। उनकी दृष्टि सजग और निर्मल है, अविवेक और प्रमाद का पर्दा हट गया है। इसी दृढ़ता और आत्म विश्वास के बल पर ही तो अपने प्रियतम के कार्य-कलापों को देखती और मुसकाती हैं, इतना ही नहीं उनमें हस्तक्षेप करने का भी साहस रखती हैं। निम्नांकित पद में—

तुम सो जाओ मैं गाऊँ
मुझको सोते युग-युग बीते तुमको यों लोरी गाते।
अब आओ मैं पलकों में स्वप्नों से सेज बिछाऊँ॥
प्रिय तेरे नभ मन्दिर के मणि दीपक बुझ बुझ जाते।
जिनका कण कण विद्युत है मैं ऐसे प्राण जलाऊँ॥

जो अबुझ प्राणों का दीपक जलाने में समर्थ है उसकी साधना की गम्भीरता साधारण नहीं। वह साधारण प्रकार की पूजा और अर्चन से परे है किन्तु फिर भी उसकी पूजा का स्वरूप बड़ा ही गहन है। कबीरदास इस अवस्था का वर्णन करते हैं, जब वे कहते हैं—

"जहँ जहँ डोलूँ सो परिकरमा जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दंडवत् पूजूँ और न देवा॥

यह वह अवस्था है जब चेतना इतनी विशाल हो जाती है कि साधक परमात्ममय हो जाता है। महादेवी वर्मा के काव्य में वही उद्गार नीचे के पद में स्पष्ट प्रकट होता है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे।
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे।
पदरज को धोने-उमड़े आते लोचन में जलकण रे।
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे।
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे।
धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे।
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकोंका नर्तन रे॥

इस प्रकार अविराम अखण्ड कीर्तन की दशा में साधना जाकर ठहरती है। महादेवी जी की कविता में इसी प्रकार की साधना के उपचार अथवा अवस्थाओं का वर्णन है।

महादेवी वर्मा का पुजारी हृदय अपनी जीवन की चेतना के मध्य जब कभी सहज झपकी ले लेता है उस समय वे आत्मा को जगाती हैं। वे सुधिहीन नहीं हैं। उनकी सुरति अब भी बुद्ध और कृष्ण की आत्मा से सम्बन्ध सजग रखती है। यह बात निम्न पद में स्पष्ट है—

जाग बेसुध जाग।
अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक हार।
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रति द्वार॥
शूल जिसने फूल छू चन्दन किया सन्ताप।
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद चाप॥
करुणा के दुलारे जाग।
शंख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान।
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छविमान।
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार।
गूंजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज के पार।
वृन्दा विपिन वाले जाग॥

महादेवी की आत्मा की इस निद्रित अवस्था का कारण भी देती है। जब कि प्रियतम परमात्म-सुधि भुला देता है तभी साधक की आत्मा इस अवस्था को प्राप्त होती है। जीवन-मृण्मय जीवन की सीमाओं के बीच सर्वचेतना युक्त होना असम्भव है, अतः जब यह सुधि या कबीर के शब्दों में सुरति, विनष्ट हो जाती है तभी चेतना पथ-भ्रष्ट होती है। महादेवी वर्मा अपने गीत में कितनी मधुरता और विज्ञता के साथ कहती हैं—

प्रिय सुधि भूले री, मैं पथ भूली।
मेरे ही मृदु उर में हँस बस
श्वासों में भर मादक मधुरस
लघुकलिका के चल परिमल से
वे नभ छाये री मैं वन फूली।
प्रिय सुधि भूले री।
तज उनका गिरि सा गुरु अन्तर
में सिकता कण सी आई झर,
आज सजनि उनसे परिचय क्या ?
वे घन चुम्बित मैं पथ-धूली ।
प्रिय सुधि भूले री ।

आत्मा के पतन और प्रियतम से बिछोह का मनोहर दिग्दर्शन है। इस पद में जितना काव्य है उतनी ही दार्शनिकता सत्यता है। लोगों का कथन है कि दर्शन काव्य का विषय नहीं हो सकता है, सत्य काव्य से परे हैं; किन्तु यहाँ दार्शनिक सत्य और फिर भी अप्रतिम काव्य दोनों हैं। एक एक पंक्ति जितनी सरस है वह उसकी अनुभूति ही बता सकती है। इस प्रकार महादेवी वर्मा का काव्य साधना से प्रेरित है । वे हमें अपने काव्य में एक स्वर्ग की देवी-सी जान पड़ती हैं, मानों परीक्षार्थ कुछ दिन भूतल पर निवास करने आयी हैं । अपने जीवन की उच्चता और आनन्द का उन्हें पूर्ण आभास है और इस मर्त्यलोक के जीवन में भी वही आनन्द प्राप्त करती हैं। उनकी कल्पना एक साधारण वस्तु में भी असाधारण सौन्दर्य देखती है और उनका हृदय प्रकृति के व्यापार में तीव्र भावना, गहरी व्यञ्जना और संकेत का अनुभव करता है—

"लाये कौन सन्देश नये घन
अम्बर गर्वित हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय में उसके उमड़े री पुलकों के सावन।
लाये कौन सन्देश नये घन ॥

जहाँ उनके लिए घन सन्देश लाने वाले हैं, वहाँ की नभ-मण्डल भी उनके लिए कम संकेत भावना नहीं रखता । वह प्रिय से आने का संकेत करता है। श्रीमती वर्मा का हृदय इस संकेत को खो नहीं सकता है—

मुसकाता संकेत भरा नभ क्या अलि ! प्रिय
आने वाले हैं ?
विद्युत के चल स्वर्ण पाश में बँध हँस देता,
रोता जलधर,
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता
सागर ।
दिन निशि को, देती निशि दिन को, कनक रजत
के मधु प्याले हैं,
अलि क्या, प्रिय आने वाले हैं ?

जिस प्रकार की दृष्टि और जो हृदय हम श्रीमती महादेवीजी के काव्य में पाते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है । भाव-प्रकाशन आन्तरिक अनुभूतियों पर निर्भर है। इनके काव्य में साधारण विलास और मनोरंजन की भावनायें नहीं, वरन् साधना की प्रखर अग्नि में परितप्त और द्रवीभूत स्वच्छ और सरस हृदय के शुभ्र उद्‌गार हैं। प्रकृति का कण कण उन्हें आनन्द देता है और यही आनन्द उनकी कविता का प्राण है। वे अनुभूति के उस स्तर पर हैं, जब प्रत्येक कथन काव्य हो जाता है। उन्हें काव्य-रचना के लिए अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति और कथन विशेष की चिन्ता नहीं, उनकी सहज भावना ही आनन्दमय है और यही उनकी कविता का सरस माधुर्य और सहज रस का रहस्य है। उनमें कबीर का रहस्य, मीराँ की भावना, पंत की कोमलता और प्रसाद की कला सब एक साथ अपने परिमार्जित रूप में विद्यमान हैं। सारल्य और माधुर्य उनकी कविता का भूषण है फिर भी गहन भावना और साधना उसका प्राण। इतनी सरल और इतनी गहरी कविता किसी भी साहित्य के लिए गर्व की वस्तु है। कला की सूक्ष्मता इतनी है कि उच्च संगीत और हृदयग्राही चित्र-कला उनके काव्य का आधार बन कर आयी है। कोई भी चित्रकार उनकी कविता में उत्कृष्ट चित्रण सामग्री पा सकता है और साथ ही एक संगीतज्ञ उसमें सूक्ष्म लय और स्वर। उनकी कविता के चित्र चित्र-कला को काव्य बनाने में समर्थ हैं और उसके गीत संगीत को सचित्र भावना का रूप देते हैं। वे स्वयं काव्यमय बना देने का सामर्थ्य रखती है ।

आस्था और मानव-सौन्दर्य की कवयित्री—श्रीमती महादेवी वर्मा

•

डॉ० रामविलास शर्मा

महादेवी जी के बारे में प्रचलित प्रवाद यह है कि वे मूलतः दु:खवादी हैं; उनके काव्य में पीड़ा से मोह है, इसलिये वह जीवन की अस्वीकृति का काव्य है।

पीड़ा के चित्रण मात्र से कोई जीवन को अस्वीकार नहीं करने लग जाता। जीवन में वांछित सौन्दर्य और आनन्द न मिलने से भी मनुष्य को पीड़ा होती है। संसार में अगणित मनुष्यों को शोषित और त्रस्त देखकर किसी भी सहृदय कवि को पीड़ा होगी। इस तरह की पीड़ा की अभिव्यक्ति जीवन की स्वीकृति ही मानी जायगी। इसके विपरीत कुछ विचारकों के लिये संसार में जन्म लेना और जीवित रहना ही पीड़ा का महान् कारण है। उनके लिये संसार में सुख और आनन्द नाम की वस्तु प्रवञ्चना मात्र है। यह धारणा जीवन की अस्वीकृति है।

बहुत पहले स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद' जी ने अपने निबन्ध 'रहस्यवाद' में दु:खवाद का खंडन किया था। इस लेख में में उन्होंने छायावाद के उन आलोचकों को उत्तर दिया था जो प्रसाद जी और उनके समानधर्माकवियों पर यह आरोप करते थे कि वे लोक से पराङ्मुख होकर किसी परोक्ष अगोचर रहस्य की साधना में लीन रहते हैं। प्रसाद जी ने सिद्ध किया कि प्राचीन भारतवासियों—आर्यों—का मूल जीवनदर्शन आनन्दवाद था; दु:खवाद, मायावाद आदि विचारधाराओं का चलन बाद में हुआ। प्रसाद जी के नाटकों के बारे में यह भ्रम फैला हुआ था कि उन्होंने लोक-पराङ्मुख दृष्टिकोण अपनाया है। उनकी ललित रचनाओं के अतिरिक्त उनके चिन्तन प्रधान गद्य-लेखों से भी यह सिद्ध हो जाता है कि उन्हें शून्यवादी, मायावादी या किसी भी रूप में दु:खवादी मानना एकदम भ्रामक है। यही बात बहुत अंशों में महादेवी जी के बारे में भी कही जा सकती है।

छायावाद का मूल स्वर आस्था और जीवन की स्वीकृति का स्वर है। लोकोत्तर भी अनेक छायावादी कवियों के लिये—लोक से परे नहीं है। दस-बारह वर्ष पूर्व "प्रवाह" नामक पत्र में महादेवी जी पर मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें उपर्युक्त धारणा के अनुरूप मैंने उनके काव्य में सौन्दर्य और आनन्द की आकांक्षा की ओर संकेत किया था। मेरे अनेक मित्र इस धारणा से सहमत नहीं थे। उन्होंने अपने मन में मीराबाई का एक भावचित्र आँक रखा था और इसी भावचित्र में वे महादेवी जी की छवि भी देखते थे। जो देखते थे, वह न मीराबाई थीं, न महादेवी जी।

सौभाग्य से सभी छायावादी कवि गद्य-लेखक भी रहे हैं। उन्होंने अनेक दार्शनिक, साहित्यिक और सामाजिक समस्याओं पर विस्तार से और गंभीरता से विचार किया है। उनके काव्य की भव्यता के कारण उनका आलोचना-साहित्य साधारण पाठकों की दृष्टि से बहुत कुछ ओझल रहा है। विद्वान् आलोचकों ने भी उस पर कम ध्यान दिया है। इसका एक कारण यह भी है कि अनेक आलोचक छायावादी कवियों को अपने ही कल्पना-लोक में भावुकता का गुब्बारा बना कर उड़ाते हैं। इन कवियों में कहीं प्रखर चिन्तनशील बौद्धिकता भी है—यह तथ्य छायावाद के प्रति आलोचकों की

अति-छायावादी धारणा से मेल नहीं खाता। इस स्थिति के लिये छायावादी कवियों को दोष नहीं दिया जाता।

महादेवी जी ने तो अध्यापन-कार्य भी किया है। उनमें आलोचक-बुद्धि का स्फुरण और भी स्वाभाविक है। वे अपनी हँसी से जब श्रोताओं को हतप्रभ कर देती हैं—और वे या तो हँसती हैं, या बोलती हैं, सुनने का काम ज्यादातर दूसरों को ही करना पड़ता है—तब वे कवि की भावुकता से अधिक आलोचक की विश्लेषक बुद्धि का परिचय ही देती हैं। "सप्तपर्णा" में "अपनी बात" शीषर्क देकर उन्होंने प्राचीन भारतीय साहित्य पर एक लंबा रोचक निबन्ध लिखा है। कवयित्री महादेवी जी विदुषी रूप में यहाँ कालिदास, भवभूति, अश्वघोष पर ही अपना मत व्यक्त नहीं करतीं वरन् स्त्रियों के लिये वर्जित वेद और वैदिक साहित्य पर भी अपने सुदीर्घ चिन्तन का फल प्रस्तुत करती हैं। जिन लोगों को आधुनिक हिन्दी काव्य से, विशेषकर छायावादी काव्य से, उसमें भी महादेवी जी के काव्य से ममत्व हो, वे धैर्य से इस निबन्ध का अध्ययन करें।

मैं यहाँ इस निबन्ध के कुछ मूल सूत्रों की ओर संकेत करूँगा जिनसे सिद्ध होगा कि महादेवी जी का जीवन-दर्शन प्रसाद जी के दार्शनिक दृष्टिकोण के कितना निकट है और उनके दुःखवादी होने की प्रचलित धारणा कितनी निराधार है।

वैदिक साहित्य के बारे में उन्होंने लिखा है, "मनुष्य की प्रज्ञा की जैसी विविधता और उसके हृदय की जैसी रागात्मक समृद्धि वेद साहित्य में प्राप्त है, वह मनुष्य को न एकांगी दृष्टि दे सकती है न अन्धविश्वास।"

प्रज्ञा की विविधता, हृदय की रागात्मक समृद्धि—इससे अधिक हमें चाहिये और क्या? प्रज्ञा की विविधता में बुद्धि का निषेध नहीं है। हृदय की रागात्मक समृद्धि में मनोभावों के दमन का भाव नहीं है, उनके उदात्तीकरण का भाव अवश्य है। उपर्युक्त वाक्य में महादेवी जी ने वैदिक साहित्य की समृद्धि के प्रतिपादन के अतिरिक्त अपना जीवन-दर्शन भी प्रतिबिम्बित कर दिया है।

रवीन्द्रनाथ के समान महादेवी जी के लिये वाल्मीकि का युगान्तरकारी महत्व इस बात में है कि उनके काव्य में "प्रथम बार मानव ने देवताओं को सिंहासनच्युत कर दिया है।" मुनि वाल्मीकि की सहज मानवीय करुणा का अभिनंदन करते हुए उन्होंने फिर लिखा है: "उनके हृदय में कथा की प्रेरणा, किसी समाधि-स्थिति से नहीं उद्भूत हुई वरन् वह एक लघुकाय, अल्पप्राण पक्षी की वेदना से निःसृत हुई है।"

समाधि नहीं, वेदना—आदि कवि के जीवन-दर्शन का सारतत्व यह है। और वेदना का अर्थ, अपनी कुण्ठा का रोना नहीं, दूसरे के शोक से हृदय में उत्पन्न होने वाली सजीव संवेदना। इसीलिये महादेवी जी कहती हैं कि "क्रौंच के शोक से तादात्म्य करके" वाल्मीकि को नया छन्द ही नहीं मिला, वरन् "उससे उन्हें मानव-जीवन के महागीत के लिये स्वर, लय और ताल खोजने की प्रेरणा भी मिली।"

पुनः—कवि की दृष्टि जीवन की ओर उन्मुख है, जीवन से पराङ्मुख नहीं है।

भारतीय साहित्य का जो आदिकाव्य है, वह मानव-गाथा है। यह भारतीय साहित्य में व्याप्त गंभीर मानवतावाद की घोषणा है। महादेवी जी ने अपनी कवि-सुलभ शब्दावली में यह मत प्रकट किया है—"आदि कवि की मानव-गाथा मानो कर्तव्य का अचल पर्वत और उससे निकली करुणा की चिर चंचल स्रोतस्विनी है।"

बौद्ध-ग्रन्थों में जीवन से मुक्त होने की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है—"जिस धरती के जीवन से मुक्त होने की साधना है, वही अपने विविध रूपात्मक सौन्दर्य से ऐसी साधना की शक्ति देती है।"

धरती से मुक्त होकर कोई कवि नहीं बनता। काव्य में तो धरती के ही सौन्दर्य की साधना होती है।

अश्वघोष भी जीवन को दुःख का कारण मानते थे। किन्तु इससे उनका काव्य समृद्ध नहीं हुआ। वह महाकवि इसलिये हुए कि "बौद्ध अश्वघोष कवि अश्वघोष से परास्त हो जाता है।" अन्य बौद्ध विचारकों के समान अश्वघोष अपने अन्तर्मन से जीवन को अस्वीकार करते तो वह काव्य-रचना में सफल न होते।

कवि का सौन्दर्य बोध किसी अगोचर आत्मानुभूति के आधार पर विकसित नहीं होता। सौन्दर्य बोध का गहरा सम्बन्ध जीवन के प्रति आस्था से है। जो अनास्थावादी कवि अपनी रचनाओं में सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का दावा करते हैं, वे मृगमरीचिका से अपनी प्यास बुझाना चाहते हैं। महादेवी जी का यह वाक्य नयी पीढ़ी के अनेक उदीयमान कवियों के लिये विचारणीय है—"कवि का सौन्दर्य-बोध भी उसकी जीवन और जगत के प्रति आस्था से सम्बद्ध रहता है।"

आस्था और अनास्था में क्या भेद है? जो संसार मात्र को दुःख का कारण मानते हैं, वे वास्तव में अनास्थावादी हैं। पाठक से छिपा न रहेगा कि महादेवी जी स्वयं किस दार्शनिक दृष्टि-विन्दु के निकट हैं। अश्वघोष की ही चर्चा के संदर्भ में उन्होंने लिखा है, "यदि वह [कवि] जीवन और जगत को दुःखात्मक भ्रम-मात्र मानता है तो उसके निकट, उनमें न सौन्दर्य या सामंजस्य की अनुभूति सुलभ रहती है, न सौन्दर्य या सामंजस्य की स्थिति उत्पन्न करने के प्रयास की आवश्यकता।"

दूसरे शब्दों में कवि का कर्तव्य है, सौन्दर्य या सामंजस्य की स्थिति उत्पन्न करना। और इस दिशा में उसका प्रयास तभी सफल होगा जब वह संसार को दुःखात्मक भ्रम-मात्र न माने। यह दृष्टिकोण बुद्धि-ग्राह्य और तर्क संगत है। वह किसी भी रहस्यावरण में छिपा हुआ नहीं है। वह समाज और साहित्य की प्रगति के लिए शुभ और आवश्यक है।

महादेवी जी का काव्य इसी जीवन-दर्शन के अनुकूल रचा गया है। अपने इस लेख में उनके काव्य का विवेचन करके पूर्व स्थापना की पुष्टि करना मेरे लिए अनावश्यक है। उनके काव्य का विवेचन करके उसमें जीवन, सौन्दर्य, आनन्द की आकांक्षा की अभिव्यक्ति की चर्चा मैं अन्यत्र कर चुका हूँ। भारत के प्राचीन वाङ्मय पर महादेवी जी ने जो कुछ लिखा है, उसका मूल्याङ्कन भी यहाँ अभीष्ट नहीं है। उनके गद्य लेखक के मूल-सूत्रों की ओर संकेत मात्र यहाँ किया गया है। पंत, प्रसाद, निराला के साथ उन्होंने हिन्दी काव्य में जातीय भाषा खड़ीबोली हिन्दी को प्रतिष्ठित किया, इस प्रकार राष्ट्र-भाषा के विकास का मार्ग प्रशस्त किया और रीतिवादी अवरोध दूर करके उन्होंने नवीन मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति और अभिव्यक्ति का द्वार खोल दिया। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व प्रत्येक हिन्दी भाषी और राष्ट्र-प्रेमी के लिये वंदनीय और अभिनंदनीय है।

●

महादेवी का काव्य

डॉ० रामरतन भटनागर

(१)

महादेवी के काव्य में युग और युगेतर एक साथ जुड़ गये हैं क्योंकि मध्यवर्गीय चेतना की अंतरंगी आवश्यकताओं की पूर्ति उसके द्वारा हुई है और इस प्रकार उसने युगधर्म को वाणी दी है परन्तु एक दूसरी भूमिका पर भी वह निर्वाहित है और वह है शाश्वत और युगेतर की भूमिका। ये दो भूमिकाएँ इतनी ओतप्रोत होकर निराला को छोड़ कर अन्य किसी आधुनिक कवि के काव्य में नहीं उतरी हैं। फल यह हुआ है कि भारतवर्ष की शाश्वत आध्यात्मिकता का प्रतिनिधित्व करने वाला युगधर्मी काव्य हमें इन्हीं दोनों से मिला है। दोनों में अन्तर भी कम नहीं है क्योंकि व्यक्तित्व और साधना के दो छोरों पर दोनों स्थित हैं। निराला में भूमा की साधना है, महादेवी अणिमा की साधिका है। एक ने अपने अहम् को इतना विस्तार दिया है कि प्रकृति, मनुष्य और चराचर जगत को समेट कर विराट् का प्रतीक बन गया है तो दूसरे ने अपनी आत्मा के अंतरंगी कक्ष में प्रवेश कर वहीं मिलन और विरह की साधना के द्वारा अत्यन्त गहराई में उस एकता को पाया है जो सचराचर जगत को एक सूत्र में बाँधती है और मनुष्य को मनुष्य एवं प्रकृति से जोड़ती है। इसीलिए महादेवी में विस्तार की कमी है परन्तु भीतर की अपरिसीम गहराई व्यापकता और विविधता की पूर्त्ति करती है।

महादेवी का काव्य अंतरंगी साधना का काव्य है और उसे उनके विश्वास में से ही उपलब्ध करना होगा क्योंकि उसका कोई बाहरी प्रमाण हमें नहीं मिलेगा। वह मूलतः कवि-प्रकृति नारी की माधुर्य-साधना है जो एकान्त मिलनोल्लास और निभृत रुदन में ही सार्थकता प्राप्त करती है। उसे आत्मोपलब्धि का काव्य (पोएटरी ऑफ़ सेल्फरिएलाइजेशन) कहा जा सकता है या अंततः अध्यात्म का काव्य (पोएटरी ऑफ़ स्प्रिचुलिज्म)। वह अध्यात्म नहीं, काव्य है क्योंकि काव्यानुभूति उसके मूल में हैं, संत, मर्मी या भक्त की रहस्यानुभूति नहीं। इसीलिए उसमें आद्यन्त विस्मय-भाव है और प्रियतम के मिलन-वियोग की कल्पना में ही उसकी अभिव्यक्ति हुई है। काव्य की सम्पूर्ण रंगोनी, कल्पना की चित्रबेला और भावना की गहनता से पुष्ट महादेवी का काव्य भारतीय अध्यात्म-साधना की तीस शताब्दियों से रस खींच कर हिन्दू और बौद्ध चेतना के मिलन-बिन्दु पर स्थित है परन्तु उसमें भारतीय नारी का सतीत्व, रुदन, बलिदान और प्रेम भी कम सार्थक नहीं हुआ है। खड़ी बोली को अध्यात्म की सूक्ष्मतम चेतना में ही नहीं, काव्य और अनुभूति की श्रेष्ठतम भंगिमाओं से भर कर उन्होंने मानव-चेतना के सम्मुख एक नया मानदण्ड प्रस्तुत किया है जो उसे समग्रतः छूता है और विश्लेषण में नहीं, आस्वादन से ही पहचाना जा सकता है।

काव्य में दर्शन और अध्यात्म की स्थिति निरंतर विचार-शील रही है, परन्तु भारतीय परम्परा में इनका कोई विरोध नहीं है। दर्शन जहाँ प्रत्यक्षतः है, अनुभूति पर आधारित है, वहाँ वह काव्य के सिवा और क्या बनेगा ? इसी प्रकार जहाँ अध्यात्म व्यक्तित्व ही नहीं, आत्मा के चिरन्तन और जन्मजन्मान्तरों के अनुभवों को उद्घाटित करता है वहाँ उसमें हमारे विस्मय, रसात्मक आनन्द और इन्द्रियबोध को

पूर्णतः परितृप्त करने की काफी गुञ्जाइश है। काव्य वहाँ उच्छिष्ट है। पात्र को सहज भर कर बह जाने वाला आध्यात्मिक आनन्द छंद, भाषा और बिम्ब में बँध कर यदि काव्य बन जाता है तो इस नाते भी उसकी सार्थकता कम नहीं है। वह अतिरिक्त (सरप्लस) है। अध्यात्म, कला, काव्य, धर्म सभी में मनुष्य की भीतर की उन्मुक्ति ही तो चरितार्थ होती है। फलतः ये मानव-व्यक्तित्व के वे धरातल हैं जो उसके दैनंदिन जीवन की क्रियाशीलता से स्वतंत्र उसके भाव-जगत का निर्माण करते हैं। महादेवी का काव्य हमारी आन्तरिक सम्पन्नता और संपृक्ति अर्थात् एकता का ही सूचक है और इस दृष्टि से वह अभूतपूर्व है। वह रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' को भी पीछे छोड़ जाता है क्योंकि अनुभूति के जो क्षण अपनी सघनता और गहनता में महादेवी के गीतों में बंधे हैं वे महाकवि के बौद्धिक और तटस्थ अध्यात्मबोध के लिए विरल ही रहे हैं। रंगों और चित्रों की वाणी जहाँ मौन हो जाती हैं, भाव जहाँ लोकोत्तर को छोड़ कर मानवीय बन कर मर्ममधुर हो उठते हैं, हृदय ही उँडल कर काव्य की पंक्तियाँ बन जाता है, वह स्थिति हमें 'गीतांजलि' में नहीं मिलती। महादेवी एक क्षण के लिए भी तटस्थ नहीं हैं, वे पूर्णतः समर्पित हैं। उनकी भूमिका निवेदिता आत्मा की भूमिका है जो व्यथा और आनन्द में ढल कर ही सार्थक है, परन्तु जिसकी इनसे अतिरिक्त अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। अधिकांश आध्यात्मिक काव्य साधक के व्यक्तित्व को बचा जाता है और फलस्वरूप काव्य की भूमिका पर आस्वादनीय बना रहता है, परन्तु महादेवी का काव्य उनके व्यक्तित्व को काव्य में ही निःशेष कर उसे स्वतन्त्र रूप से अध्यात्म की सार्थकता दे देता है। वह आद्यन्त प्रतीक काव्य है। उसे न मीरा के काव्य के समकक्ष कहा जा सकता है, न सूर के काव्य के। वह एक भिन्न कोटि का काव्य है जो बाहर से पूर्णतः सजग है परन्तु भीतर से पूर्णतः समर्पित। काव्यालोचक सज्जा पर ही रुक कर और उसकी अलंकृति पर मुग्ध होकर रह जाता है और ड्योढ़ी पार कर भीतर के गर्भगृह तक पहुँच ही नहीं पाता जहाँ एकान्त भवन में 'सहज' की प्रतिष्ठा है।

भारतीय परम्परा में दर्शन अध्यात्म की भूमिका बन कर और दोनों काव्य की भूमिका बन कर ही सार्थक हुए हैं। फलतः यहाँ काव्य केवल लोकोत्तर रस की ही सृष्टि नहीं करता। वह हमें आध्यात्मिक आनन्द भी देता है और दर्शन के समकक्ष एक सुबद्ध एवं प्रामाणिक अंतर्दृष्टि को पुष्ट करता है। ऋग्वेद की ऋचाओं से सूरदास की रासलीला के पदों और तुलसी के कागभुशुण्डि-प्रसंग के राम के विराट रूप तथा 'विनयपत्रिका' के आत्म-समर्पण तक भारतीय काव्य का दार्शनिक और आध्यात्मिक भाव पुष्ट होता गया है। ऋग्वेद काव्य नहीं तो और क्या है? श्रीरामकृष्ण परमहंस ने शरद्-बलाका में ही तो अध्यात्म का पहला संस्पर्श प्राप्त किया था। प्रकृति के भीतर से प्रकृतिपर तक पहुँचने की साधना ही तो अध्यात्म है क्योंकि रूप की परिणति अरूप ही है। 'जुही की कली' से निराला का काव्य आरंभ होता है तो आश्चर्य ही क्या है। भारतीय अध्यात्म पुराण, काव्य, प्रकृति और मानव-जीवन को संदर्भतः आध्यात्मिक चेतना की भूमिका के रूप में उपयोग करता है। इस रहस्य को न समझ कर हम महादेवी और निराला जैसे अध्यात्मनिष्ठ और सांस्कृतिक चेतना से संपन्न कवियों और कलाकारों के प्रति चक्रमित रहते हैं। हम उनके कवि-कर्म पर ही रुक जाते हैं या अध्यात्म को उनके काव्य का विषय मात्र मान लेते हैं। दोनों दृष्टियाँ भ्रामक हैं। जहाँ अंततः दर्शन, अध्यात्म और काव्य एक रस हो जाते हैं वहाँ क्या काव्य से बड़ी उपलब्धि की कोई कल्पना हमारे मन में जाग्रत नहीं होती? यूरोपीय रोमांटिकों तक जिनकी पहुँच है, वे न भारतीय अध्यात्म की प्रकृति को समझते हैं, न भारतीय काव्य-परम्परा से ही परिचित हैं। उन्होंने मीरा को महादेवी से समझना चाहा है और महादेवी को मीरा से। वे गीत की गेयता की अनिवार्यता को भूल कर महादेवी के काव्य को पाठ्य कहते हैं। उनके लिए हस्ताक्षरों की मुद्रा ही सार्थक है, भाव के भीतर जो अक्षर प्रतिष्ठित है जो अधरों पर आकर और अध्यात्म-रसिक की चेतना में घुल कर स्वप्न बनता है, उसे उसका परिचय ही नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने आध्यात्मिक काव्य को वैयक्तिक जीवन के प्रवादों, बौद्धिक प्रमादों एवं यूरोपीय मनोविश्लेषणात्मक गर्त्तों से उबारें और अपनी जातीय तथा भौगोलिक प्रवृत्ति एवं परम्परा के अनुसार अधिमानसी धरातल से उसकी व्याख्या करें जिससे उसके रसास्वादन की

प्रकृत भूमि उद्घटित हो। महादेवी के काव्य का सम्यक् अध्ययन और आस्वादन हमें अपनी दर्शन, अध्यात्म और काव्य की श्रेष्ठ परम्परा से एक बार फिर जोड़ सके तो उसकी सार्थकता में एक नया अध्याय जुड़े।

अंग्रेजी शिक्षित समाज में यूरोपीय प्रभाव ने आधुनिक हिन्दू धर्म के तीन रूपों की सृष्टि की जिन्हें उत्तरोत्तर विकास के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है :—ब्राह्मसमाज (१८२८), आर्यसमाज (१८७५) और नव्य वेदांत (विवेकानन्द, १८८६-१९०२)। हिन्दी प्रदेश में आर्यसमाज और उसकी प्रतिक्रिया की ही प्रधानता रही है जिसका एक स्वरूप भारतेन्दु हरिश्चंद का 'तदीय समाज' था। शिक्षित हिन्दू बंगाली सन्यासियों के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही नव्य वेदांत के प्रभाव में आ गया था और एक प्रकार से आर्यसमाज और नव्य वेदांती समाज में बँट गया था। आर्यसमाज का प्रभाव उसकी बौद्धिक और सुधारवादी चेतना पर था और नव्य वेदांत उसकी आध्यात्मिक और भक्तिवादी प्रवृत्ति को पुष्ट करता था। दोनों में राष्ट्रीयता की टेक थी। हिन्दू चेतना ने बंकिमचंद्र चटर्जी के समय से ही कृष्णचरित्र की बुद्धिमूलक व्याख्या दृढ़ कर ली थी और गीता की अनेक व्याख्याओं के द्वारा उसे नये जीवन की कर्मधारा से संपर्कित कर लिया था। ऐसी स्थिति में पौराणिक राम-कृष्ण के प्रतीकों का चेतना से दूर हट जाना स्वाभाविक ही था। तात्पर्य यह है कि मध्यदेश की काव्य-चेतना जिस नए आध्यात्मिक समीकरण की आकांक्षी थी वह महादेवी वर्मा के काव्य में प्रतिफलित हुआ। उसकी भूमिका व्यक्तिगत रही हो परन्तु उसमें मध्यवर्गीय मन की समष्टिगत अभिव्यक्ति भी हुई है। मीरा का स्वर महादेवी का स्वर बन कर नारी-जागरण के प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ परन्तु उसमें कवियित्री की अत्यंत निगूढ़ और निजी व्यथा नए रहस्य की साधना बन गई। ऋग्वेद की ऋचाओं, उपनिषदों और बौद्ध ग्रन्थों तथा सूफी काव्यों के गंभीर अध्ययन-मनन ने उसे नया रूप प्रदान किया। व्यक्तिगत पीड़ा जहाँ घनीभूत होकर निर्वैयक्तिक एवं सर्वगत हो जाती है वहाँ महादेवी का व्यथाबोध जागता है। 'नीहार' की जीवन की नश्वरता, करुणा एवं अतृप्ति की दार्शनिकता उनके काव्य की पृष्ठभूमि बनी परन्तु 'रश्मि' से 'दीपशिखा' तक इस आधारशिला पर काव्य, कल्पना और अध्यात्म-गीति का जो देवमंदिर अनेक शिखरों को लेकर ऊपर उठा वह अपनी कारीगरी, शिल्पचातुर्य और रूप-वैभव में अद्वितीय था। यदि उसमें कुछ संवेदनशील हृदयों ने 'रहस्यवाद' पढ़ा तो ऐसे भी लोग कम नहीं थे जिन्होंने इस व्यथा में अपनी ही आत्मकथा पढ़ी।

निश्चय ही महादेवी के काव्य की अभिव्यंजना में आध्यात्मिक भाषा, प्रतीकों तथा संदर्भों का उपयोग हुआ है परन्तु उसमें साधना का स्वर नहीं है, क्योंकि उसकी प्रक्रिया बौद्धिकता से आरंभ होकर संकल्पात्मक अनुभूति तक चलती है और उसमें मध्ययुगीन मर्मियों, संतों और भक्तों की भावराशि और साधना का उपयोग व्यक्तिगत प्रेम की पीड़ा और अतृप्तिजन्य अवसाद में हुआ है। आध्यात्मिक काव्य में शताब्दियों से चले आते हुए बिम्ब और प्रतीक उनके काव्य की मार्मिकता बढ़ा कर उसे जातीय उपचेतन के रंग में रँग देते हैं। प्रकृति उनके उल्लास और पीड़ा की अभिव्यञ्जना का सुन्दर साधन है और वह एक प्रकार की भाषा ही बन गई है। व्यक्ति का जीवन जहाँ समष्टि की बीन बन जाता है वहाँ वह नितान्त मानसी और आत्मिक होता है। वहाँ व्यक्तिमत्ता निर्वैयक्तिकता में बदल जाती है और साधारणीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि कवि की बात में सब के मन की बात कह दी जाती है। महादेवी की साधना भावों की साधना उतनी नहीं है जितनी नई काव्य-भाषा (खड़ी बोली) के द्वारा नई संवेदना की सृष्टि की साधना। उनकी चित्रकर्त्री प्रतिभा और तरल गीतशैली में नारी-हृदय की आत्मकथा नया काव्य-समीकरण बन कर आई है। उसकी अभिव्यक्ति की सघनता, मार्मिकता तथा चित्रोपमता दर्शनीय है। निवेदन ही नारी की ओर से नहीं आया है उसमें नारी-कंठ की सजीवता और आकुलता भी है। उसका स्वर विलास का नहीं, आत्मसमर्पण और आत्मिक उल्लास का स्वर ही हो सकता था।

खड़ी बोली काव्य के पात्र में बहुत-सा पुराना नए में बदल कर आया है और यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था, क्योंकि मध्ययुग में जिन भूमिकाओं का निर्वाह अवधी और ब्रज में हुआ था वे उसके अपने उस रूप में छूट गई थीं जो

अब साधुभाषा के रूप में प्रचलित हो रहा था। उर्दू में सूफी भावभूमि पर अध्यात्म का एक ताना बाना अवश्य बुना गया था। परन्तु वह सूर, तुलसी, कबीर और मीरा के काव्य का स्थान नहीं ले सकता था। काव्य के भीतर से प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति "प्रसाद" की कामायनी और निराला तथा महादेवी के रहस्यवादी काव्य में खुल कर सामने आई। पन्त नए युग के प्रतिनिधि बौद्धिक तथा वर्तमान के साथ थे। उर्दू काव्य की अल्हड़ता, विद्रोह, प्रेम, विलास और उक्ति-वैशिष्ट्य की परम्परा बाद में 'नवीन', भगवती बाबू, बच्चन और "अंचल" के द्वारा भरी गई। राष्ट्रीयता, नए युगधर्म के रूप में सर्वत्र व्याप्त थी। माखनलाल चतुर्वेदी "भारतीय आत्मा" ने उसे भक्ति-युग की आध्यात्मिकता और वैणवधर्मी समर्पण-भावना के साथ सँजोया था। इस पृष्ठ-भूमि पर महादेवी का काव्य अपना निश्चित तथा केन्द्रीय महत्व रखता है क्योंकि उसमें गीत परम्परा को ही नया विकास नहीं मिला है, ज्ञानी और भक्त कवियों के निर्गुण तथा सगुण काव्य की प्रतिध्वनियाँ नए कण्ठ में पिरोई गई हैं। उसे रहस्यवादी काव्य कह कर उसके चारों ओर पानी की प्राचीर ही उठाते हैं। उसे आध्यात्मिक कोटि का काव्य कहने में हम क्यों लज्जा का अनुभव करते हैं, यह समझ में नहीं आता। महादेवी ने व्यक्तिगत, सामाजिक पीड़ा को यदि आध्यात्म की भाषा में अत्यन्त निगूढ़ता और मार्मिकता से अभिव्यक्त किया तो यह उनकी संकल्पात्मक अनुभूति की तीव्रता और एक सुनिश्चित भाव-लोक को जन्म देने और विश्वसनीय बनाने वाली कारयित्री प्रतिभा का वरदान ही समझना होगा। इस भाव-लोक को हम समझें और उसमें युग की पीड़ा पढ़ें तो महादेवी के व्यक्तित्व और उनकी संवेदना की तरलता द्वारा उनमें तारम्य भी स्थापित किया जा सकता है। कवि की चेतना में कालातीत क्षण ही काव्य का विषय बनता है और उसमें युग निरन्तर युगेतर में ढलता जाता है। महादेवी के काव्य में भी यही हुआ है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कविता रच कर कवि अपनी व्यथा से मुक्त हो जाता है तब वह युग का आनन्द बन जाती है। लोकोत्तर आनन्द (रस) के रूप में वह साधारणी कृत होकर सबके लिए आस्वादनीय बनती है। वह व्यक्ति और युग से कहीं बड़े अर्थ ध्वनित करने लगती है। वह संस्था बन जाती है। कवि से व्यक्तित्व और जीवन से स्वतन्त्र वह अपना व्यक्तित्व विकसित कर लेती है और अपना निज का जीवन आरम्भ करती है। उसके मूल्य उसी के भीतर अन्तर्निहित रहते हैं और समीक्षक को वहाँ उन्हें खोजना होगा। सहृदय पाठक के होठों पर उतर कर वह उसके मानस की तरलता बनेगी, तभी वह अपने को सार्थक कर सकेगी। इस प्रक्रिया में कवि का व्यक्तित्व और उसका युग पीछे छूट जाते हैं। उसमें हम अदृश्य गायक की बीन पर उठी रागिनी सुनने लगते हैं। बीन भी हूँ मैं, तुम्हारी रागिनी भी हूँ। आज हमें महादेवी की कविता को इसी भवितव्य की ओर बढ़ाना होगा। उसमें व्यक्ति और युग को पढ़ कर हम हास्यास्पद ही नहीं बनते, उसके चिरन्तन को भी छोटा करते हैं। जहाँ पश्चिम ने उपचेतन को देखा है वहीं कहीं चिरन्तन हो तो चिरनूतन बनकर प्रतिष्ठित नहीं है? क्या यह असम्भव है कि महादेवी का काव्य किसी शाश्वत सत्य का प्रमाण हो? उपनिषदों में ज्ञान और मध्ययुग में भाव-भक्ति के भीतर से जिस सत्य को देखा गया था, उसे यदि आज हम काव्य की रसात्मक भूमिका के भीतर से देखें तो उससे क्या वह अवास्तव बनता है? काव्य को हम विषय से कैसे रिक्त करेंगे? प्रकृति के सौन्दर्य से उद्भूत और लौकिक जीवन की विपर्यस्त स्थितियों से उत्पन्न वेदना को यदि हम कल्पना का सौन्दर्य और आध्यात्मिक अनुभूति की गहनता दे सकें तो क्या हम जीवन की मूलभूत एकता को ही पुष्ट नहीं करेंगे? अध्यात्म यदि सौन्दर्य की भाषा बन सकता है तो काव्य-रसिक को कुछ अधिक ही मिल जाता है।

परन्तु यहाँ प्रश्न हो सकता है कि अध्यात्म क्या है? क्या वह कोई पारलौकिक वस्तु है या उसका इस लोक के जीवन से कोई सम्बन्ध है ही नहीं? क्या वह केवल रहस्यात्मक अनुभूति मात्र है जिसके पीछे दार्शनिक ऊहापोह का बल है? जहाँ व्यक्तिगत सुख-दुख समष्टिगत आनन्द और वेदना का रूप ग्रहण करते हैं वहाँ क्या अध्यात्म नहीं है? प्रत्यक्ष के स्थूल रूप में सूक्ष्म चेतना का आभास ही तो अंतरंगी एकता की सृष्टि करता है और उसी का रूपक तो जीवात्मा का परमात्मा के प्रति

प्रेमावेदन है। दर्शन में उसे ब्रह्म-जिज्ञासा कहा जाता है परन्तु आध्यात्म में वह आगे बढ़ कर आन्तरिक पीड़ा का रूप धारण करती है और मिलन-वियोग के रूपकों में बँधकर दिव्य शृंगार को जन्म देती है। मूल वस्तु है एकता की अनुभूति चाहे वह स्थूल जगत के नीचे स्थित सूक्ष्म एवं चिन्मय जीवन-प्रवाह के रूप में हो या सार्वभौम करुणा से रूप में। चिन्मय सूक्ष्म को भाव की भाषा में ब्रह्म कहा जा सकता है और अभाव की भाषा में शून्य। ब्रह्मोपलब्धि या आत्मोपलब्धि और ब्रह्म विहार के दो ही रूप भारतीय अध्यात्म का निर्माण करते हैं। सर्वव्यापी चेतनता प्रियतम अथवा सार्वभौम करुणा विश्ववेदना के प्रति उत्कट आकर्षण जिस रहस्य-बोध की सृष्टि करता है वही महादेवी की कविता का विषय है। उसे उन्होंने उपनिषदों के अध्ययन से पाया, या सन्त साहित्य से, या मीरा से, या बुद्ध वाणी से, वह भारतीय अध्यात्म-परम्परा की चीज जो अनायास ही और सायास भी। महादेवी के द्वारा नई काव्य-भाषा और अभिनव गीत शैली में ढ़ल गई है। उसके ऊपर कवयित्री का दावा है भी नहीं। परन्तु वह जिस काव्य की चित्रबेला में प्रगट हुआ है वह नितान्त उनका है। हम उसी की परीक्षा या समीक्षा कर सकते हैं, उसके पीछे जो रहस्य-बोध या आत्मिक पीड़ा है उसे प्रमाण और मापदण्ड के अभाव में विवेचना का विषय नहीं बनाया जा सकता।

परन्तु क्या कवि का काव्य स्वतः प्रमाण नहीं है और क्या उसके मापदण्ड उसी के भीतर नहीं हैं? जिन समीक्षकों ने महादेवी के रहस्य-बोध को उत्कृष्ट, गम्भीर एवं सर्वोच्च कोटि की चीज बताया है परन्तु उनकी अभिव्यञ्जना को दुर्बल कहा है उनकी बात समझ में नहीं आती। विशुद्ध काव्य-दृष्टि अथवा तीव्र नैसर्गिक उन्मेष अथवा एकाङ्गिता की आड़ लेकर जहाँ महादेवी की काव्य-कला को छोटा किया गया है वहाँ तक तो समझ में आने वाली नासमझी ठीक है परन्तु काव्य का भाव-बोध अभिव्यञ्जना के भीतर से ही और उसको सम्पूर्णतः निःशेष करके ही है तो वस्तु और शिल्प को दो भिन्न और विरोधी धरातलों पर देखना कोई बड़ी समझ की बात भी नहीं है। राग और विराग के आधार पर काव्य की उत्कृष्टता-निकृष्टता निर्धारित नहीं की जा सकती क्योंकि जड़ के प्रति वैराग्य-भावना दिव्य प्रेम का प्रथम सोपान है। अंतरंगी होने से ही कोई काव्य वाह्यनिरपेक्ष नहीं हो जाता क्योंकि वह वाह्य-जगत के रूप-रंग का प्रचुर उपयोग अंतरंगता के दृढ़ करने के लिए कर सकता है। महादेवी के काव्य के मूल्यांकन के लिए हमें 'रहस्यवाद', सगुण-निर्गुण और गेय-पाठ्य की टेकों को छोड़ कर अधिक स्वाभाविक और विश्वसनीय मानदण्डों का उपयोग करना होगा। भाषा, छंद और शिल्प की कारीगरी के भीतर से भाव के मौक्तिक की अनेक परतों में निर्माण की कला काव्य-विषय के प्रति गहरी आस्था तो चाहती ही है, उसमें व्यक्तित्व की मानसिकता और तरलता को सुरक्षित रखते हुए भाव में उन गहराइयों तक उतरना होता है जो संचारियों में भी बँध नहीं पाई हैं। महादेवी की पंक्तियों के सहारे हमें उन गहराइयों में उतरना होगा।

अस्पष्टता काव्य का गुण नहीं है। अध्यात्म के क्षेत्र में रहस्यवाद चल सकता है परन्तु कवि तो सौन्दर्यविलासी है। अदृश्य प्रियतम के प्रति प्रेम-निवेदन और अभिसार प्राकृतिक उपमानों और समर्थ बिम्बों में बँध कर यदि प्रत्यक्षानुभूति की तीव्रता और विश्वसनीयता उत्पन्न नहीं कर सके तो काव्य असमर्थ ही कहा जायेगा। मिटता हुआ इन्द्रधनुष या जलता हुआ दीपक स्वयं अपने में काव्य हैं क्योंकि उनमें जीवन की नश्वरता और एकान्ततः प्रतीकबद्ध है। यदि महादेवी ऐसे समर्थ बिम्बों और सार्थक उपमानों को कल्पना की अतिशयता में बाँध कर उन्हें भाव की निगूढ़ता तथा अंतरंगता दे देती है तो कवि के नाते उनका कार्य पूरा हो जाता है। प्रत्येक गीत यदि प्रथम पंक्ति से अंतिम पंक्ति तक एक ही दृष्टिकोण, भाव या बिम्ब का प्रसार है तो उसमें पदों की संख्या गिनना व्यर्थ बात है। परिनिष्ठित भाषा से हट कर यदि मनुहार की मधुरता और आन्तरिक संकोच की अभिव्यञ्जना के लिए व्याकरण-सम्मत शब्द योजना में थोड़ा हेरफेर भी हो तो उससे क्या आता जाता है? प्रश्न यह है कि महादेवी की कविता में गीत की मार्मिकता और मधुरता भरपूर है या नहीं, अथवा उनका भाव-विन्यास पदों के बीच के

अंतराल को पार कर सुबद्ध चिन्तन की गरिमा अथवा अंतर्दृष्टि की परिपूर्णता को प्रमाणित करता है या नहीं ? एक-एक बिम्ब, प्रतीक या उपमान पर न टिक कर हमारी दृष्टि उनके प्रत्येक गीत की परिपूर्णता और समग्रता पर टिके, तभी हम उनके काव्यहेतु के प्रति संवेदित हों और उनकी अभिव्यञ्जना की महार्घता को समझें। अभी महादेवी का काव्य हमारे सम्यक् अध्ययन और आलोचन का विषय ही नहीं बना है क्योंकि आध्यात्मिक प्रतीकों की नई भाषा हमारे दैनंदिन जीवन और व्यवहार से दूर जा पड़ी है और हम उनकी नितांत हार्दिक संवेदना को बुद्धि के ऊहापोह और तर्क के विश्लेषण से अबूझा बना देते हैं। दीपदण्ड दीपक का स्थान नहीं ले सकता।

(२)

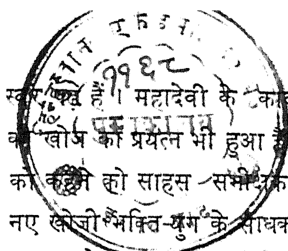
प्रश्न यह है कि हम महादेवी के काव्य को किस रूप में लें। निस्सन्देह उसमें एक सूक्ष्म भाव-जगत की विवृत्ति है, परन्तु हम उसे जीवन के यथार्थ से पलायन नहीं कह सकते जब तक कि हम आज की असंतोषमूलक सांस्कृतिक दृष्टि से उस पर आरोप नहीं करें। उस युग के कवियों की कोमल भावनाएँ और आध्यात्मिक कल्पनाएँ एक नए सौन्दर्य-लोक के निर्माण का प्रयत्न हैं जिसमें मानव की मूलगत आदर्शवादी प्रकृति को ही चरितार्थता मिली है। प्रकृति और नारी की तरह अध्यात्म को भी चमत्कृति की दृष्टि से देखना युग के तारुण्य का ही सूचक है। छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया कहा गया हैं परन्तु नई सौन्दर्यदृष्टि नारी और प्रकृति को लेकर ही अतीन्द्रिय लावण्य, माधुर्य और आनन्द की सृष्टि कर सकी। स्थूल की सौन्दर्यानुभूति में जड़ता के स्थान पर चेतनता और रहस्यमयता भर कर नया कवि कवित्त-सवैयों की नारी-देह की रूप-साधना से ऊपर उठा तो उसके सामने मध्ययुग के कृष्णकाव्य में व्यक्त स्थूल अध्यात्म को नई भाषा और नूतन भाव-भंगिमा में बाँधने का प्रश्न उठा। राष्ट्रीय चेतना और दैन्य की भूमिका पर दिव्य लौकिकता के अनेक चित्र भी कुछ कवियों द्वारा खींचे गये। परन्तु युग के अनुसार अध्यात्म को लेकर नई प्रतीक-भाषा और अभिव्यञ्जना के नए स्वरूपों का विस्तार भी रहस्यवाद के नाम पर हुआ। व्यष्टि-जीवन की अनुभूतियों को समष्टि-जीवन की भाषा में बाँधने वाला महादेवी का काव्य इस नई परम्परा की ही देन है। अध्यात्म की व्यापकता जिस करुणा में प्रकट होती है उसी की गहनता ज्ञान की भूमिका के भीतर से आत्मवाद (सर्वभाव) की सृष्टि करती है। व्यष्टि-जीवन की निराशा को समष्टि-जीवन के प्रतीक-रूप में कल्पित किसी मधुर व्यक्तित्व के प्रति निवेदित कर प्रेम-विरह की कोमलतम अनुभूतियों में बँधे मानव-मन को जो आनन्द मिलता है वह लोकोत्तर आनन्द (रस) ही है। क्यों महादेवी ने रहस्यवाद की सृष्टि की, यह कदाचित् अतिप्रश्न ही होगा, परन्तु उनके काव्य में मनुष्य की रहस्योन्मुख प्रवृत्ति के साथ सौन्दर्य की सूक्ष्म और अंतरंगी अभिव्यक्ति की चाह भी पुष्ट होती रही है। मध्ययुग के रहस्यवाद को लौकिक रूपक और हठयोग की भाषा से हटा कर उसे नए युग की सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति और भावनाओं के परिष्कार एवं विश्लेषण की नई प्रणाली की अभिव्यक्ति देने का साहस आधुनिक युग का चमत्कार ही कहा जायेगा। यह और भी आश्चर्यजनक है कि युग की इतिवृत्तात्मक, छायात्मक एवं नितान्त काल्पनिक काव्यचेतना ने उसमें बुद्धि और हृदय दोनों को समाधान पाया और काव्य की नई परिपाटी में उसे स्वीकार किया। जीवन को गति देने के लिए जिस भावना की आवश्यकता होती है वह न बौद्धिक निरूपण का विषय है, न लौकिक संदर्भों तक सीमित है। इसीलिए अंतर्जगत के सौन्दर्य और परिष्कार से सम्बन्धित तथा मिलन-विरह के रूपकों में बँधा महादेवी का काव्य छायावाद-युग के सभी राष्ट्रीय एवं सामाजिक समाधानों के ऊपर आज देदीप्यमान ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित है।

महादेवी की काव्य-शैली उनके विषय के अनुरूप ही है। वह प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की शैली है। इनके लिए जहाँ उन्होंने प्राचीन आध्यात्मिक काव्य को टटोला है वहाँ उपनिषद् और बौद्ध-साहित्य से भी प्रचुर सामग्री प्राप्त की है। अपनी तेजोद्दीप्त, प्रखर कल्पना-शक्ति को रंगों-रूपों की सारी सार्थकता देकर उन्होंने प्रणति, मान, मनुहार, अभिसार, प्रतीक्षा और मिलन के रूपक सँजोये हैं। प्रत्येक

के भीतर भाव-संवेदन के अनेक आवर्त्त-विवर्त्त चलते हैं और भाव को दूर तक विस्तार मिलता है। भाव की गहनता और सूक्ष्मता बौद्धिकता का आभास देने लगती है और सारा गीत एक प्रौढ़ त्रिच के रूप में सुगठित शब्द-राशि बन कर मानस-पटल पर अंकित को जाता है। बुद्धि के अंकुश ने हृदय को अपनी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करने दिया परन्तु वह कहीं भी अभिव्यक्ति के स्वच्छंद प्रसार में बाधक नहीं हुई है। न यह कहना संभव है कि उनके विशाल अध्ययन में वैदिक ऋचाओं से लेकर मध्ययुग के भक्ति-काव्य तक का क्या आया है, कितना और कहाँ आया है, न यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी प्रचुर कल्पना-शक्ति और भावना का कितना काव्य में बँधा है और कितना बाहर जगत के भाव और कर्म को मिला है। उन्होंने यह स्वीकार करने में लज्जा नहीं मानी है कि साहित्य उनके संपूर्ण जीवन की साधना नहीं है और उसके लिए युग-जीवन की विषमताओं को सामने ला कर दलीलें भी प्रस्तुत की हैं। परन्तु काव्य के भीतर से उन्होंने जितना दिया है वह एक परिपूर्ण इकाई बन गया है और उसे आध्यात्मिक काव्य नहीं तो अध्यात्म का काव्य तो कहा ही जा सकता है। वस्तुतः उसमें अध्यात्म को काव्य बनाया जा रहा है, काव्य को आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ देने का प्रयत्न नहीं है। यह संत की साधना नहीं, कवि की भाव-साधना है जो लौकिक जीवन की अनुभूति में अध्यात्म की गाँठ बाँध रहा है। भव और निर्वाण सिद्धों की सहज-साधना में जितने पास-पास बैठे हैं, उतने ही पास-पास मिलन और विरह, ब्रह्मानंद और करुणा, आत्मोपलब्धि और आत्मदान महादेवी के काव्य में हैं। उन्होंने अध्यात्म को धर्म के बंधन से मुक्त कर जीवन के सहज सौन्दर्य, शील, प्रेम, करुणा और शृंगार में ढाला है। मध्ययुग के संतों, भक्तों, मर्मियों की अत्यन्त निगूढ़ भावधारा को मध्यवर्ग की बुद्धिवादी, हृदयवादी जीवनचेतना का अभिन्न अंग बनाने का श्रेय यदि निराला के साथ किसी को मिल सकेगा तो उन्हें ही। उनका कार्य निराला के कार्य से भी बड़ा और महत्वपूर्ण है क्योंकि वह एकांततः और सूक्ष्मतः है और उसमें प्रथम श्रेणी की कला की कारीगरी है जिस पर स्वयं निराला मुग्ध थे। मुझे स्मरण है कि किस तरह तपती दोपहरी में वह गणेशगंज से मुझे साथ लेकर "विशालभारत" के एक अंक की तलाश में गंगा प्रसाद मेमोरियल लाइब्रेरी तक जाकर और वहाँ उसे न पाकर मित्रों के घर भटके थे और अन्त में हजरतगंज पहुँच कर नवल किशोर प्रेस के माधुरी आफिस में प्राप्त कर महादेवी के सद्यः प्रकाशित गीत को कई बार पढ़कर गद्गद् हो उठे थे। मीलों पैदल चल कर महादेवी के गीत की रहस्य माधुरी का रस लेने वाला निराला का अध्यात्मरसपिपासु हृदय यदि उन्हें सहोदरा से भी अधिक स्नेह दे सका तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि उन-जैसा कला की बारीकी को समझने वाला कलाकार और श्री परमहंस रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक स्वप्नों में पलने वाला साधक उस समय और कौन था? महादेवी के काव्य में उन्होंने अपने कलकत्ता-प्रवास के दिनों के आध्यामिक काव्य की वर्णच्छटा को नई गीति कला के साथ भाषा और नई पंखुड़ियाँ खोलते देखा था। वह उनके कितने गीतों पर कितनी बार भाव विभोर हुए हैं। स्नेह उन्होंने पन्त को दिया तो सौहार्दय महादेवी को। उनमें उन्होंने अपनी ही आत्मलीनता पढ़ी, अपना ही मुख देखा। हिन्दी का समालोचक आज भी महादेवी के काव्य को गीत-प्रगीत की कसौटियों पर आँक रहा है और उनके रहस्य-गान में युग की पराजय पढ़ रहा है। उसे न नारी का हृदय मिला है, न कोयल का कण्ठ। वह आधुनिक नारी के तेज पर मुग्ध है और उसकी वाग्मिता का प्रशंसक है, उसके भीतर की शाश्वत नारी के आत्म-समर्पण की पीड़ा और आनन्द को उसने नहीं जाना है। दर्शन जहाँ मस्तिष्क से उतर कर हृदय के रक्त की गति बन जाता है और काव्य भाषा, छन्द और लय के अन्तर्विरोधों से ऊपर उठ कर गीत के मर्ममधुर स्पन्दनों में उसे साथ लेकर चल पड़ता है वहाँ आज के समीक्षक की पहुँच ही नहीं है।

(३)

महादेवी की रचनाओं को लेकर एक प्रवाद यह उठाया गया है कि उनका काव्य निराशावाद का काव्य है और उसे युग पराजित मनोवृत्ति के प्रमाण में पेश किया गया है। पराजय और पलायन आरम्भ से ही आध्यात्मिक काव्य के साथ जोड़ दिये गये हैं और भक्ति-युग के सन्तों, भक्तों और मर्मियों में भी हमने राजनीतिक पराजय और सामाजिक कुण्ठा के



स्वर [illegible] हैं। महादेवी के काव्य में व्यक्तिगत जीवन-सन्दर्भों की खोज का प्रयत्न भी हुआ है यद्यपि गहरे जाकर किसी बात को कहने को साहस अभी तक नहीं कर सके हैं। सम्भव है नए खोजी भक्ति-युग के साधक-कवियों में आत्मदमन, यौनाकांक्षा और कुण्ठित काम देखें। परन्तु काव्य की आस्वादन-भूमियों का उसके प्रेरक स्रोतों और उत्सवों से कोई अनिवार्य सम्बन्ध हो, यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता। जिस व्यथा को महादेवी ने अपने गीतों में ऊँड़ेला है वह वहाँ आध्यात्मिक कथा बन कर ही प्रस्तुत है और उससे निगूढ़ अध्यात्म-रस ही प्राप्त हो सका है।

महादेवी के काव्य की व्यष्टि-चेतना आत्मवादी भावधारा से प्रभावित है और उन्होंने निजी बात कहने के लिए ब्रह्म-जीव के मिलन-वियोग के रूपकों को चुना है। केवलाद्वैत काव्य का विषय कहाँ तक बन सकता है यह कहना कठिन है परन्तु काव्य में ब्रह्मवाद सर्वात्मवाद बन कर ही अधिक आया है और अद्वैतभूमि पर इष्टदेव को मधुर व्यक्तित्व देने और उसके प्रति मिलन वियोग की भावनाएँ व्यक्त करने से एक प्रकार की सगुणता अनिवार्यतः इस प्रकार के काव्य में आ गई है। यह द्वैत की भूमि है। फलत काव्य में अद्वैतवाद रहस्यवाद बन कर ही मार्मिक अभिव्यक्ति पा सका है परन्तु उससे अद्वैत का वास्तविक रूप खंडित भी हुआ है। निराला ने महाकवि तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पंक्तियों को उद्धृत् कर काव्य में अद्वैत लिखने की कठिनाई को उदाहृत ही नहीं किया है, उन्होंने सन्त और कवि की भिन्न प्रकृतियों और मौन मुखरता में बदलने की प्रक्रिया में द्वैत के ही हाथ पड़ने की बात भी कही है। मजबूरी सन्त और कवि के अद्वैतानुभवों के विभिन्न धरातलों की ही नहीं है, उसकी अभिव्यंजना में भाषा के दैनंदिन और लौकिक सन्दर्भ भी बाधक होते हैं और वह साधना की अतरंगता एवं मूलगत एकता को नीचे से खण्डित करती है।

परन्तु एक दूसरी कठिनाई अनुभव की समष्टिगत भूमिका पर है जिसे करुणावाद कहा जा सकता है। कवि इसे किस प्रकार वाणी दे? विश्वव्यापी दुःख को जब कवि विश्व-वेदना कहता है तो हम उसे औपचारिक अथवा वायवी वस्तु मान लेते हैं। वह मौलिक वस्तु है और भावजगत की वस्तु है, वस्तु जगत की राजनीतिक और सामाजिक पीड़ा से उसका सम्बन्ध सीधा नहीं, परोक्ष का है, यह हमारी बुद्धि में नहीं जाता। विधवा, भिक्षुक और पत्थर तोड़ती हुई श्रमिक नारी निराला की भाव-संवेदना को जाग्रत कर सामाजिक करुणा को जन्म दे सके हैं, परन्तु इन व्यक्तिगत प्रसङ्गों को मिला कर जो सार्वभौम करुणा का स्वरूप बनता है उसके प्रगट करने के लिए कवि के पास क्या साधन है? उसे तो वह व्यक्तिगत जीवन के प्रतीकों की ही वाणी दे सकता है। महादेवी के काव्य में यह समष्टिगत वेदना प्रचुर मात्रा में है और यही उनके रहस्यवाद का मूलाधार है।

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह पीड़ावाद पलायनवाद और पराजयवाद है? क्या उसमें आध्यात्मिक निष्ठा की कमी है? उसे निराशावाद क्यों कहा जाए? बौद्ध दर्शन को लेकर आरंभ से ही निराशावाद का प्रश्न उठाया गया है, परन्तु यह नहीं बतलाया जा सकता कि वह निराशावाद क्यों है? अर्हत या संत के मानस में जब संसार का तिरोभाव हो जाता है और वह अपने इस लोक के जीवन में ही मुक्ति (निर्वाण) का आनन्द ले सकता है तो निराशावाद कहाँ है? 'अप्प दीपो भव' में जिस अकेलेपन की कल्पना है वह आस्था और साहस के साथ ही है, फलतः वह दुःखवादी नहीं हो सकती। लौकिक जीवन की निराशा आध्यात्मिक निराशा में बदल कर साधक-कवि उसके तृष्णा वाले उपसर्गों से छुटकारा पा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि उसके भावजगत में निराशा-आशा का प्रश्न नहीं रहता, केवल अभिव्यञ्जना रह जाती है। कवि की वासना की तरह कवि की निराशा का भी कोई अर्थ नहीं है। दुखःवादी होने पर भी मूल में बौद्ध दर्शन निराशावादी नहीं है क्योंकि उसमें दुःख का निदान और निराकरण दोनों हैं। वह बन्द गली नहीं है। उसमें प्रयत्न के अपरिसीम साहस से लेकर प्राप्ति के अतुलनीय आनन्द तक सारा भाव-क्षेत्र आ जाता है।

तात्पर्य यह है कि महादेवी अपने काव्य में युग के साथ कम हैं, युगेतर के साथ अधिक हैं। जहाँ वह युग के साथ हैं वहाँ भी सीधे संदर्भों को लेकर नहीं, आध्यात्मिक प्रतीकों और निर्वैयक्तिक निकायों को बीच में डाल कर हैं। फल यह है कि उनका काव्य व्यक्तिगत अनुभूति का स्फुरण न

रह कर सार्वभौमिक एवं निर्वैयक्तिक अभिव्यञ्जना बन गया है। उसमें उपनिषदों के ऋषियों, बुद्ध शून्यवादी साधकों, सिद्धों, मर्मी संतों एवं सूफियों की अनेक प्रति-ध्वनियाँ घुलमिल गई हैं। वह मानव-जाति की अनेक शताब्दियों की रहस्य-भावना और माधुर्य-साधना से पौढ़ता प्राप्त करता है। उसमें छायावादी भावव्यञ्जना, भाषा और शैली का साद्यन्त उपयोग है परन्तु कवयित्री की गीतिकला अपने में स्वतन्त्र और विशिष्ट उपलब्धि भी है और उसके विकास का अपना इतिहास है। खड़ी बोली के गीतों को लौकिक जीवन के संदर्भों और प्रतिदिन के मिलन-वियोग, हास-अश्रु, मान और अभिसार के प्रतीकों में बंध कर उन्होंने एक नए स्वप्न-लोक की सृष्टि की है जो मध्य युग के साधकों के भाव-जगत से कम मार्मिक नहीं है। उसकी विश्वसनीयता स्वयं उसके भीतर है, उसे बाहर युग के विश्वास में खोजना ठीक नहीं है और बिम्बों एवं प्रतीकों, छंदों एवं लयों के उपयुक्त और भावस्निग्ध प्रयोग पाठक की आस्था को कवयित्री की अध्यात्म-चेतना से कीलित कर देते हैं। भारतीय अध्यात्म-साधना से परिचित सहृदय को तो उसके रसास्वादन के लिए कोई प्रयत्न ही नहीं करना पड़ता। उसके लिए आस्था का प्रश्न ही नहीं उठता। भाषा की चित्रोपमता, अत्यन्त सारगर्भित प्रतीकों की योजना, गीत-कण्ठ की प्रौढ़ता और मधुरता तथा संगीत की लय-बद्धता से अनास्थावान या तटस्थ के लिए काफी गुञ्जाइश पैदा हो जाती है। जहाँ विश्लेषणात्मक बुद्धि और आधुनिक मनोविज्ञान के सहारे एक-एक भाव या प्रतीक या बिम्ब को समझ कर सतर्कतापूर्वक चलने का प्रश्न है वहाँ निराशा-वाद ही हाथ पड़ता है। महादेवी की अधिकांश रचनाएँ प्रगीत नहीं, गीत हैं। उनकी भाव की ध्वनियाँ दूर तक जाती हैं। वह मानव-जीवन के विराट संदर्भों, शृंगार-प्रतीकों, प्राकृतिक उपमानों एवं काव्यात्मक बिम्बों का उपयोग करती हैं और उन्हें जीवन-परिष्कार तथा भाव-गांभीर्य का साधन बनाती हैं। एक ही गीत में वह निराशा से आरम्भ कर इन्द्रधनुष के आशा के दूसरे छोर तक पहुँच जाती हैं। जो जीवन विरह का जलजात है, वेदना में जिसका जन्म हुआ और करुणा में जिसे आवास मिला, जिसका दिवस अश्रु चुनता है और रात अश्रु गिनती है, वही लीला-कमल बन कर अपनी समस्त संभावनाओं में खिल कर किसी के अधरों की स्मिति बन सकता है :—

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।
जीवन विरह का जलजात!

• • •

जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज।
खिल सके निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात।
जीवन विरह का जलजात।

इससे बड़ी संभावना मानव-जीवन की ओर क्या होगी? जीवन-साधक के लिए भाव ही निर्वाण है क्योंकि यही उसके उच्चाशयों की परीक्षा होती है और जीवन-परिष्कार के साधन उसे प्राप्त होते हैं। जब मनुष्य के हास-अश्रु समष्टि के प्रति करुणा और मंगल-भावना से रंजित हो जाते हैं और एक क्षण का स्वप्न युग-युग की पहचान बन जाता है तो मरण भय की वस्तु न होकर प्राण का पाहुन बन जाता है :—

पथ मेरा निर्वाण बन गया।
प्रति पग शत वरदान बन गया।

• • •

मिट मिट कर हर साँस लिख रही,
शत-शत मिलन विरह का लेखा।
निज को खोकर निमिष आंकते,
अनदेखे चरणों की रेखा।
पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी,
युग-युग की पहचान बन गया।
देते हो तुम फेर हास मेरा,
निज करुणा-जलकण से भर।
लौटाते हो अश्रु मुझे तुम,
अपनी स्मित से रंगोमय कर।
आज मरण का दूत तुम्हें छू,
मेरा पाहुन प्राण बन गया।

ऐसी स्थिति में मरणधर्मी व्यथाप्राण मानव अपने अस्तित्व में चिरन्तन सुख का अनुभव करता है। वह सृजन-श्वास बन जाता है। उसका समस्त व्यक्तित्व आरती की चिर अकम्पित स्नेह-लौ अथवा नयन का अभिषेक-जलकण बन कर मानव जन्म की चरितार्थता प्राप्त कर लेता है :—

हुए शूल अक्षत, मुझे धूलि चन्दन।
अगरु-धूम सी सांस सुधिगन्धसुरभित,
बनी स्नेह लौ आरती चिर अकम्पित,
हुआ नयन का नीर अभिषेक जलकण।
सुनहले सजीले रंगीले छबीले,
हसित कण्टकित अश्रु मकरंद गीले,
बिखरते रहे स्वप्न के फूल अनगिन।

● ● ●

व्यथाप्राण हूं नित्य सुख का पता मैं,
धुला ज्वाल में मोम का देवता मैं,
सृजन-श्वास हो क्यों गिनूं नाश के क्षण ?
वह सांझ का दूत है जो प्रभाती तक चलेगा;
यह मन्दिर का दीप, इसे नीरव जलने दो।

● ● ●

झंझा है दिग्भ्रांत, रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने ज्योति का यह प्रहरी।
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
दूत सांझ का, इसे प्रभाती तक चलने दो।

अमर जीवन से संपन्न और मानव की भविष्यत् की आस्था से संकल्पी यात्रिक के रूप में जिस महाप्राण की कल्पना महादेवी ने की है वह मनुष्य की देवोपम मूर्ति है जो कल के उच्चतर अध्यात्म को आज के कवि की वाणी में मुखरित करती है। भीतर की कातरता और बाहर के तिमिर-वात्याचक्र को ललकारने वाली महादेवी की यह आस्था क्या निराशावादी कवि की वाणी हो सकती है :—

पूछता क्यों शेष कितनी रात ?
अमर-सम्पुट में ढला तू,
छू नखों की कांति चिर,
संकेत पर जिनके जला तू,
स्निग्ध सुधि जिनकी लिये,
कज्जल-दिशा में धंस चला तू,
परिधि बन घेरे तुझे वे अंगुलियां अवदात।

● ● ●

प्रणत लौ की आरती ले,
धूमलेखा स्वर्ण-अक्षत,
नीलकुंकुम वारती ले,
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह-उज्ज्वल भारती ले,
मिल अरे बढ़ आ रहे यदि प्रलय-झंझावात।
कौन भय की बात।

महादेवी जी : कवि और काव्य-चिन्तक

डॉ० कमलाकान्त पाठक

गीति-कवि महादेवी जी की काव्य-कला का विशिष्ट व्यक्तित्व है और उनकी साहित्य-चिन्ता की एक पृथक् सरणी है। यहाँ पर उनकी रचना और विचारणा को पारस्परिक परिप्रेक्ष्य में रखने का उपक्रम किया गया है। महादेवी जी के काव्य की एक निश्चित दार्शनिक भूमिका ही नहीं है, बल्कि उसका चिन्तन भी कवित्व-पूर्ण है। वे कविता को परिपूर्ण क्षणों की वाणी के रूप में उपस्थित करती रही हैं। अतएव इन्हें प्रत्यक्ष सौंदर्य और व्याप्त चेतन में अंतर्हित सामंजस्य की स्थिति अथवा विश्वासी बुद्धि और विवेकी हृदय की आवश्यकता का निर्देश करना पड़ा है। कहा भी गया है कि उनकी विवेचना उनके कवि तथा विचारक के सामंजस्य का सुफल है। उनके विचार स्वभावतः चाहे साहित्य के स्थायी प्रतिमान न माने जा सकें, पर उनकी रचना को समझने में वे निस्सन्देह सहायक हो सकते हैं।

महादेवी जी को शाश्वतवादी या अखंडतावादी कवि और विचारक समझना चाहिए। अपने यहाँ अखंडत्व की अनुभूति अथवा परमसत्य या आत्म तत्व के साक्षात्कार को परम पुरुषार्थ माना गया है। महादेवी जी मुख्यतः यही दृष्टिकोण अपनाती हैं और इसी कारण वे आतिशयिक व्यापकता का संधान करती चलती हैं। इस व्यापकता की यह सीमा है कि सर्वत्र असाधारणता की गरिमा ही अवशिष्ट रहती है और साधारणता का महत्व नष्ट हो जाता है। इसकी यह उपलब्धि है कि इसी कारण महादेवी जी कविता और समीक्षा के क्षेत्रों में उदात्त मनोभूमि पर अधिष्ठित दिखाई पड़ती हैं। पर यह स्थिति तत्वान्वेषी अवश्य बनाती है, उनके संवेदना क्षेत्र को समृद्ध नहीं कर पाती। फलतः वे नितांत बैयक्तिक भूमिका पर सक्रिय होती हैं और निजी निष्ठा के कारण संपूर्ण जड़ और चेतन जगत से अपने को संबद्ध अनुभव करती हैं। संभवतः इसी विशेषता ने एक दृष्टिकोण से उन्हें छायावाद के प्रकृत क्षेत्र से बाहर रक्खा तथा दूसरे दृष्टिकोण से उनकी समस्त रचना को काम-कुंठा का परिणाम माना।

यहाँ इस केंद्रीय प्रश्न का विश्लेषण कर लेना चाहिए कि महादेवी जी की रचना-प्रेरणा क्या है? जो कुछ ज्ञात और उपलब्ध है, उसके आधार पर वे दार्शनिक कवियित्री कहीं जा सकती हैं। उनके अध्ययन ने उन्हें सर्ववादी विचारधारा प्रदान की। उनकी उत्तरवर्ती रचनाओं में इसकी अधिक अभिव्यक्ति हुई। बुद्ध के करुणावाद ने उनके वेदना-दर्शन को एक व्यापक वातावरण प्रदान किया। अपने आरंभिक काल में संभवतः वे रहस्य-काव्य से और विशेषतः उपनिषदों से प्रभावित रहीं। वे सर्वत्र सांकेतिक व्यंजनाओं से भी काम लेती रहीं। उनके काव्य में सामाजिक-अनुभूतियों की प्रायः अवहेलना हुई है। उन्हें एकांतिक और असामाजिक भाव-भूमि का कवि कहा जा सकता है। पर उनकी वृत्तियाँ सूक्ष्म सत्य का इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण करती हैं कि सर्ववाद उन्हें लोक-बाह्य् हो जाने से बचाये रखता है। पर ये सब वैचारिक प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्हें मनन के द्वारा अपनाया गया जान पड़ता है। कठिनाई यह है कि महादेवी जी लोक-सामान्य भाव-भूमि की कवियित्री हैं ही नहीं। कहीं भी माननीय साधारणता अथवा स्वच्छंदता को वे प्रकट ही नहीं कर पाई। उन्होंने भावोत्कर्ष और जीव-नादर्श की ही वाणी दी। यह नारी की शालीनता, संयम

और गोपन प्रवृत्ति का भी परिणाम है कि उनकी रचना की असामान्य भाव-भूमि सुस्थिर रही। अतः महादेवी जी की काव्य-प्रेरणा के संबंध में तीन प्रकार के विकल्प हो सकते हैं, यथा—

१. वे रहस्यवाद को न केवल व्यक्त करती हैं, वरन् वह उनकी जीवनानुभूति भी है।

२. रहस्यवाद उनके चिंतन का विषय है और उनकी प्रतिभा ने उसी का आरोप करते हुए उसे प्रकृत अनुभूति का स्वरूप दे दिया है। तथा

३. कोई एक घटना जैसे संपूर्ण जीवन को आन्दोलित कर जाती है, उसी भाँति व्यक्तिगत जीवन का कोई प्रसंग या प्रभाव भावोन्नयन करता हुआ रहस्यानुभूति के रूप में स्थिरता पा गया है।

एक चौथा विकल्प भी हो सकता है, पर मैं नहीं समझता कि महादेवी जी की विरह-वेदना को अवास्तविक कहा जा सकता है, क्योंकि कृत्रिम अनुभूतियाँ महान कला का निर्माण कभी नहीं कर पातीं। अस्तु, महादेवी जी को निरवधि विप्रलंभ का आदर्श-प्राण गीतिकार कहा जा सकता है। निश्चय ही यह विरहावस्था आवेगमयी नहीं हैं। उसका वातावरण प्रशांत है और अत्यन्त सूक्ष्म भी। वे शांत रस के आवेष्टनों में शृंगार को रूपायित करती हैं। वियोगिनी की विविध मनोदशाओं का जहाँ-तहाँ चित्रण भी होता गया है। मैं कहूँगा कि सौंदर्य और सात्विकता अथवा प्रेम और वैदुष्य को एक साथ प्रकट करने के कारण वे न केवल प्रेमिका रह पाई हैं, न केवल साध्वी। उभय गुणों को उन्होंने स्वीकृत वस्तु बना लिया है। इसी कारण उनका रचना-कार्य एक पृथक् कोटिक्रम को निर्दिष्ट करता है।

इस विवेचन का क्या यह निष्कर्ष तो नहीं है कि महादेवी जी को रहस्यवादी कवि मान लिया जाय और प्रकृत अनुभूतियों के कवियों से उन्हें अलग रखा जाय? वे सत्य की चिरंतनता या अखंडता का लक्ष्य भी अवश्य रखती हैं, पर वे जीवन की परिधि में सौंदर्य के माध्यम द्वारा ही उसे अभिव्यक्त करना चाहती हैं। यहीं वे छायावादी भाव-क्षेत्र से पृथक् होते-होते भी बच ही जाती हैं। प्रकृति का सौंदर्य, जीवन का दुःख और इनके प्रति आत्मीयता का भाव उनकी अनुभूति को अकाव्यात्मक परिच्छेद से पृथक् ही रखता है। वे प्रेम की कवयित्री, सौंदर्य की उद्भाविका और करुणा की देवी बन जाती हैं। अवश्य ही वे अपने रचना-कार्य में देवी अधिक हैं, मानवी कम। आशय यह है कि उनका व्यक्तित्व समुन्नत और सुसंस्कृत ही नहीं है, वे निष्कलुष अंतर्वृत्ति की कलाकार भी हैं। यह भी कहा जा सकता है कि मानवीय दुर्बलताएँ उनमें भी हैं, पर वे अपने को प्रकृत रूप में कहीं उपस्थित नहीं करतीं। उनका व्यक्तित्व आवरणों से आच्छादित है अथवा अप्राकृत स्वरूप अपनाये हुए है। पर इस प्रकार के अनुमान के लिए कोई प्रत्यक्ष आधार सुलभ नहीं हैं।

उन्होंने अपनी वेदना को पार्थिव दुःख के अभाव से अनुस्यूत माना है। दुःख और अभाव का न होना क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त के अनुसार क्या उनकी इस मानसिक स्थिति का कारण है? इसका सही उत्तर मनोविश्लेषक ही दे सकेंगे। मैं यही कहूँगा कि वेदना की मधुर अनुभूति महादेवी जी को स्वभावतः भी चाहे काम्य जान पड़ी हो, पर दुःखवादी बौद्ध दर्शन के प्रभाव के रूप में उसे ग्रहण अवश्य किया गया है। यही नहीं, कवयित्री ने उसे सोच-समझ कर एक सैद्धान्तिक परिणति भी दी है, यथा—"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।" दुःख की यह तर्क-सम्मत परिणति मानसिक ललक मात्र नहीं है। उन्हें दुःख के दोनों रूप प्रिय हैं—यथा—"एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।" मैं समझता हूँ कि यहाँ छायावाद और रहस्यवाद के अंतर को अनजाने ही लक्षित किया गया है। दुःख का पहला प्रकार महादेवी जी के गद्य में वाणी पा सका है, पर उनके गीतों में वह प्राकृतिक सौंदर्य तक ही अधिक से अधिक अग्रसर हो पाया है। दुःख के दूसरे प्रकार की उनके आरंभिक गीतों में काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है, पर उत्तरवर्ती रचनाओं में वह सर्ववादी दर्शन की व्याख्या या

विवरण का आभास भी देता है। दुःख का दूसरा प्रकार ही महादेवी जी का मूल भाव कहा जा सकता है। उनके गीतों की यही स्थायी अंतर्वृत्ति जान पड़ती है।

अस्तु, महादेवी जी की रचना-प्रेरणा है दुःख और वह भी वैयक्तिक, क्योंकि उनका काव्य प्रगीत शैली में रचा गया है, जिसकी अंतःप्रकृति ही स्वानुभूति की अभिव्यंजना है। स्वयं कवयित्री ने कहा है कि मेरे गीत मेरा आत्म-निवेदन मात्र हैं। अतएव दुःख के दूसरे रूप की ही व्याप्ति को प्रमाणित किया जा सकता है। यह विशेषता अवश्य है कि इस दुःख को दार्शनिक पीठिका पर प्रतिष्ठित किया गया है और इसे सैद्धान्तिक परिणति दी गई है। दुःख के कारणों के संबंध में चाहे जो ऊहापोह होते रहें, पर मानवीय दुर्बलता, लौकिक आसक्ति, मानसिक स्खलन इत्यादि से यह कहीं भी संपृक्त मात्र भी नहीं हो पाया, यह तथ्य निर्विवाद है और बुध-सम्मत भी।

महादेवी जी को अभी एक स्थान पर देवी जी कह आये हैं। वह इस कारण कि उनका रचना-कार्य कहीं भी लौकिक आकर्षण-विकर्षण या सामान्य राग-द्वेष के स्तर पर नहीं आ पाया। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके मन में जीवन की आकांक्षा या सौन्दर्य की लालसा नहीं हैं। उनके काव्य में नारीत्व का अपूर्व उन्मेष है। उनकी विकलता न केवल आध्यात्मिक है, वरन् लौकिक भी। उनके निकट मानव की आत्मोपलब्धि, नारी का पूर्णत्व और सत्य का साक्षात्कार अपृथक् किन्तु सूक्ष्म भावों की चित्र-योजना ही हैं। निराशा, पलायन आदि उनकी रचना के औपचारिक उपादान मात्र हैं। वास्तविक अध्यात्मवादी आस्थावान् होता है। अतएव वह आशा को त्याग नहीं पाता। अवश्य ही जीवन के संघर्षों को असार मान लेने के कारण कुछ अध्यात्म-वेत्ता साधनावस्था की अवधि में पलायन को काम्य मानते हों, पर वे ही आत्मोपलब्धि करके अपनी असीम करुणा की जगत पर अजस्र वर्षा भी करते देखे गये हैं। स्वयं महादेवी जी जिज्ञासामयी हैं, मुमुक्षु हैं, दार्शनिक हैं या साधक, इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है, पर उनके काव्य में जीवन की चाह है और सौंदर्य की लालसा है तथा गद्य-साहित्य में उनकी करुणा का व्यापक प्रसार हुआ है, यह जानना ही पर्याप्त है। 'जाग तुझको दूर जाना,' 'रात के उर न दिवस की चाह का शिर हूँ,' जैसे कथन उनकी जीवनास्था को ही व्यक्त करते हैं। स्थूल में ही सूक्ष्म की उपलब्धि होती है, शरीर द्वारा ही अध्यात्म का बोध होता है, मूर्त जगत में ही अमूर्त चेतना आभासित होती है, अतएव महादेवी जी को दुःखवादी दार्शनिक या सर्वात्मवादी रहस्यवादी ही कहना कदाचित् अर्द्धसत्य का निर्वचन समझा जायगा। वस्तुतः वे जीवन के प्रत्यक्ष सौंदर्य और परोक्ष सत्य को एक साथ अपनाती आयी हैं। इन दोनों से साम्य का अन्वेषण उन्हें काम्य है, भेद या विरोध का आविष्कार नहीं। वे मूलतः अध्यात्मवादी या आदर्शवादी हैं, पर वे अंशतः मानववाद को भी अपना सकी हैं। मानववाद की सौंदर्य-निष्ठा उन्हें प्रिय है, पर उसका अंतर्वर्ती करुणावाद उनके गद्य-साहित्य में और विशेषतः उनके जीवन में प्रत्यक्ष हुआ है।

महादेवी जी के साहित्य की मूल चेतना और मुख्य प्रवृत्ति को यहाँ स्पष्ट कर लेने का उपक्रम हुआ है। उन्हें छायावादी, रहस्यवादी या मानववादी कह देना अथवा निराशावादी, पलायनवादी या व्यक्तिवादी विशेषण से संयुक्त कर लेना कदाचित् हमें साहित्यिक विश्लेषण के क्षेत्र में अधिक दूर तक नहीं ले जा सकेगा। उन्हें सांस्कृतिक चेतना-संपन्न, उदात्त भाव-भूमि-युक्त, व्यापक सामंजस्यवादी दृष्टि-समन्वित तथा शाश्वतवादी रचनाकार कहना कहीं उपयुक्त होगा। अवश्य ही वे गीत कवि हैं, रहस्यवादी चिंतक हैं और सौंदर्य-चेता कलाकार हैं। न मानवीय अनुभूतियों का सतही स्वर ही उनके काव्य में कहीं सुनाई पड़ा, न ऐन्द्रिक आकर्षणों का चटकीलापन ही कहीं प्रकट हो पाया। वे उच्च मनोदशा की गीतिकार हैं। उन्होंने मानवीय अनुभूति की गरिमा और सात्विकता को वाणी दी है, पर उसका आधार एकांततः वैयक्तिक है।

(२)

हमारे सम्मुख यह प्रश्न समुपस्थित होता है कि दर्शन किस सीमा तक काव्य का उत्कर्ष-विधायक तत्त्व है और किस सीमा तक वह त्याज्य है? महादेवी जी का काव्य दर्शन से अनुप्राणित

है। मैं समझता हूँ कि दर्शन जहाँ तक काव्यानुभूति का सहायक तत्त्व है, वहाँ तक वह उपादेय है, पर जहाँ वह काव्यानुभूति का स्थानापन्न तत्त्व बनने का उपक्रम करने लगता है, वहां वह अपनी सीमा को लाँघ जाता है। महादेवी जी के काव्य में संस्कारिता और सुरुचि दोनों हैं और नारी-सुलभ भाव-विकृति भी, अतएव तत्त्व-दर्शन प्रायः काव्य को श्रीहत नहीं कर पाया। वह इस अर्थ में उपादेय है कि उसके कारण मानवीय अनुभूतियाँ संयत बनी रहती हैं। अवश्य ही दार्शनिक गांभीर्य के कारण यह काव्य गहन या गरिष्ठ हो गया है और एकांत क्षणों में ही आस्वादन करने की अपेक्षा रखने लगा है। कवयित्री इसे उपनिषदों का मर्म तो दे सकी, पर इसके काव्यत्व का सार्वजनिक आकर्षण नहीं निखार पायी।

महादेवी जी के काव्य की कठिनाई दूसरी ही है। वे लोक-सामान्य भाव-संवेदनों के स्थान पर विशिष्ट मनःस्थिति के वैयक्तिक भाव-चित्र आलेखित करती हैं। उनके काव्य में सूक्ष्मता, सुकुमारता, कल्पनाशील सांकेतिकता आदि का प्राधान्य है। वह अरूपात्मक (Abstract) रचना-कार्य है, जिसमें बीच-बीच में कल्पना-छबियाँ झाँक जाया करती हैं। वे प्रतीक-योजना के द्वारा ही प्रायः अपना काम चला लेती हैं। पर अंततः यह रूपवादी प्रवृत्ति है, जो अलंकृति को अवश्य बढ़ाती है, पर भावोन्मेष को बल नहीं देती। कटा-छँटा रचना-व्यापार, अलंकृति-पूर्ण छंद-शिल्प, सांकेतिक पद-योजना और लाक्षणिक चित्र-सृष्टि ये सब मिल कर काव्य को क्लिष्ट ही बनाते हैं। भावों की सहज अभिव्यक्ति यहाँ सम्भव ही नहीं रह पाती। इसी कारण महादेवी जी के रचना-कार्य को प्रायः आयास-साध्य या अकाव्योचित माना गया है। मैं समझता हूँ कि परवर्ती काव्य में जहाँ सांग रूपकों की योजना हुई है अथवा एक ही कल्पना संपूर्ण गीत में सुस्थिर रह सकी है अर्थात् जहाँ चित्र, अलंकार या भाव की अन्विति विद्यमान है, वहाँ रमणीय काव्यांशों के भी दर्शन होते हैं। महादेवी जी का काव्य छायावादी काव्य-शैली की समृद्धि और साज-सज्जा का काव्य है, पर जितना वह चमत्कार-पूर्ण है, उतना सहज संवेद्य नहीं। कवयित्री ने उसे सभी प्रकार से असाधारण, गहन-गंभीर और सांकेतिक बनाया है। बुद्धि और भावना दोनों के संयोग से कला की सृष्टि होती है और महादेवी जी ने इन्हीं के आधार पर अपने काव्य का धूप-छाँहीं वस्त्र बुना है। जो हो, महादेवी जी का काव्य विशिष्ट है, अपनी मिसाल आप है। उसमें उनकी बुद्ध की धारणा की भाँति दोनों तत्त्व मौजूद हैं कठोर बुद्धिवाद और कोमल मानवीय तत्त्व। पर कहीं-कहीं उनकी उक्तियाँ अतिशय मार्मिक हुई हैं।

आशय यह है कि महादेवी जी की काव्य-कला सामान्य-श्रेणी की नहीं है, पर उसमें कतिपय दोष विद्यमान हैं। वे काव्य को बुद्धि ही नहीं अभ्यास के धरातल तक ले जाती हैं और अपनी समीक्षा को, जो शास्त्र-सम्मत नहीं, स्वतंत्र चिंतन है, काव्यात्मक धरातल देती चलती हैं, फलतः कविता तो गहन ही हो सकती है, पर विवेचन भावना-संवलित जान पड़ता है भावमय बुद्धि और विवेकमय हृदय सामान्य कथन के रूप में चाहे ठीक जान पड़ें, पर इनका सम्यक् निर्वाह लौकिक क्षेत्र में प्रायः कठिन ही होता है। महादेवी जी के तर्क इसी कारण एकांगी व्यापकता या अपूर्ण पूर्णता से संयुक्त जान पड़ते हैं। उन्हें कवि-वचन मान कर ही संतोष करना चाहिए। पूर्ण मानवता या अखंड सत्य की धारणा के वे कदाचित् अधिक निकट हैं। महादेवी जी की काव्य-समीक्षा और गीति-रचना का सापेक्षिक महत्त्व है। उनके विचारों को निर्भ्रान्त या पूर्ण सत्य मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं है, पर वे इतने व्यापक हैं कि मतभेद की संभावना की एक सीमा तक विमुक्त हैं। अवश्य ही वे रहस्यात्मक गीति-काव्य, छायावादी सौंदर्य-सृष्टि और तद्-युगीन साहित्य-चिंतन उपस्थित करने में विशेषतः कृतकार्य हुई हैं। वे अपने युग की श्रेष्ठ और प्रतिनिधि कवि हैं। उनके चिंतन का उस युग की विचारधारा से समीपी संबंध है। उन्होंने न केवल साहित्य लिखा है, पर मैं समझता हूँ कि उन्होंने उसे जिया भी है। वे एक व्यक्ति नहीं, एक कवि नहीं, एक युग हैं।

महादेवी जी की साहित्य तथा कला सम्बन्धी विचारणा का आशय निश्चय ही आदर्शवादी कोटि का है। उनका आत्म-

वादी दृष्टिकोण उनके समस्त रचना-कार्य में परिव्याप्त है। यह रचना-कार्य न एकान्ततः बौद्धिक है, न पूर्णतः रागात्मक। मैं समझता हूँ कि विचारों के क्षेत्र में वे रागात्मक हैं और कविता के क्षेत्र में वे चिन्तक। मानवीय पूर्णता के लिए उन्हें हार्दिकता और बौद्धिकता का सामंजस्य अनिवार्य जान पड़ता है। उनके काव्य और समीक्षात्मक निबन्धों की यह सीमा हमें स्वीकार कर लेनी चाहिए। यह भी कह सकेंगे कि कवि और विवेचक के रूप में उनका चिन्तक व्यक्तित्व ही प्रकट हुआ है। शुद्ध बौद्धिकता उनमें कम ही है, अन्यथा उनकी रचना में शास्त्रीयता अधिक होती और प्रकृत रागात्मकता की उनमें न्यूनता है, अन्यथा वे स्वच्छन्द कवयित्री अधिक होतीं। उनका गद्य कवित्वपूर्ण है और काव्य सचेत कलाकारिता और बौद्धिक निष्ठा से आपूर्ण। अवश्य ही महादेवी जी की पूर्णत्व की यह कल्पना वैयक्तिक है और बहुत कुछ निर्विशेष भी। मैं समझता हूँ कि उसे संतों के स्वानुभूत दर्शन का नव्य निदर्शन नहीं कहा जा सकता। वहाँ स्वानुभूति का स्वरूप विशाल और निर्व्याज है, पर महादेवी जी के यहाँ वह अतिरंजित है और बौद्धिक निरूपणों से अपृथक्। अतएव उन्हें चिंतनशील कवि और भावुक समीक्षक समझना चाहिए। अनुभूति का आधार, कल्पना का वैभव अथवा विचारों का प्रकाश उन्हें अभीष्ट अवश्य है, पर मुख्य तो उनके चिंतनशील कलाकार की उपर्युक्त पूर्णत्व-कल्पना ही है।

(३)

साहित्य और साहित्यकार एवं काव्य तथा कला संबंधी अपने विचारों में महादेवी जी ने सर्वत्र उत्कर्ष-विधायिनी विचार-धारा का परिचय दिया है। "साहित्य-सृजन व्यक्तिगत रुचि मात्र न होकर महत्वपूर्ण सामाजिक कर्म है" कह कर महादेवी जी साहित्य को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करती हैं तथा उसे बहुमुखी दायित्व देनेवाला रागात्मक कर्म भी मानती हैं। वे समझती है कि साहित्य व्यक्ति के लिए ही नहीं, समष्टि के लिए भी मूलतः निर्माण है, जो सृजन के किसी विराट् ऋतु की परिधि में चलनेवाले एक जीवन-ऋतु की ही संज्ञा पा सकता है। मैं कहूँगा कि इस कसौटी पर उनका आत्म-निवेदनात्मक गीतिकाव्य किसी बड़ी सिद्धि को नहीं प्राप्त कर सकेगा। उन्होंने काव्य को चाहे ऋत समझा हो, पर वह किसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक दायित्व को चरितार्थता नहीं देता। अवश्य ही उनका नारीत्व-बोध सर्वत्र विद्यमान है।

काव्य को महादेवी जी सर्वोच्च कला स्वीकार करती हैं। सत्य को उसका साध्य तथा सौंदर्य को उसका साधन भी वे मानती हैं। उन्होंने सामाजिक दृष्टिकोण को अपेक्षाकृत बहुत बाद में ग्रहण किया है, पर परवर्ती निबन्धों में एतद्-विषयक उल्लेख मिलते हैं। आरम्भ में वे मानवतावाद के सन्निकट थीं, इसीलिए यह कह सकीं कि "कविता सबसे बड़ा परिग्रह है, क्योंकि वह विश्व मात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है।" उनके ऐसे कथनों में अर्थवाद ही समझना चाहिए, क्योंकि उनका संपूर्ण कवि व्यक्तित्व सूक्ष्म भाव-चेतना से गठित है और उनके काव्य में व्यक्त जीवन के संकेत प्रायः विरल हैं। उन्होंने सत्य के संधान-गीत लिखे हैं और प्राकृतिक या लौकिक सौंदर्य को मात्र माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। माध्यम का भी महत्व है, पर वह साध्य का समकक्ष तत्व नहीं है। इसी कारण उन्हें काव्य-कला को हृदय तथा 'मस्तिष्क का संधि-पत्र कहना पड़ा।' उनकी दृष्टि में सत्य शुष्क है, पर अनुभूति मधुर, जो सत्य को आनंद से स्पंदित कर देती है। संभवतः अनुभूति, माध्यम और लक्ष्य तीनों को इस प्रकार बाँटा नहीं जा सकता। अनुभूति मधुर क्यों है माध्यम सुन्दर क्यों है और लक्ष्य सत्य क्यों है तथा इन तीनों में क्या संबंध है? यह जानने के लिए एक ही भाव-प्रक्रिया को समझना होगा। कदाचित् महादेवी जी के काव्य में दर्शन को अनुभूति पर आरोपित करते हुए उसे व्यापक सौंदर्य में लक्षित करने का उपक्रम हुआ है। इसलिए जीव, जगत और परम तत्व का पृथक्करण कर लिया गया है। अवश्य ही इस व्याज से उनका तत्वज्ञान उद्‌घाटित हो गया है। वे समझती हैं कि युग-प्रवर्तक साहित्यकार तब पैदा होता है, जब भावना, ज्ञान और कर्म एक सम पर मिलते हैं। इस प्रकार के सुसंगठित मानसिक व्यक्तित्व की

की धारणा उत्कृष्ट हैं और काम्य भी, किन्तु तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ भी इस समय की भूमिका पर कदाचित् पूर्णतः प्रतिष्ठित समझे जा सकें।

महादेवी जी जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति के रूप में काव्य-कला को महत्वपूर्ण समझती हैं। उनका कथन है कि कलाकार का लक्ष्य, जीवन की कुरूपता तथा सौंदर्य, दुर्बलता तथा शक्ति, पूर्णता और अपूर्णता सबकी सामंजस्यपूर्ण रागात्मक अभिव्यक्ति है और उसकी चरम सफलता जीवन तथा विश्व में छिपे हुए सत्य को सब ओर से स्पर्श कर लेने में निहित है। वे पार्थिव जगत् और अंतर्जगत् दोनों का समकक्ष महत्व मानती है, क्योंकि बाह्य जीवन की सीमा में वामन जैसा लगने वाला कार्य भी हमारे अंतर्जगत की असीमता में बढ़ते-बढ़ते विराट् हो सकता है। अस्तु, महादेवी जी काव्य-कला को सत्य की ही अभिव्यक्ति समझती हैं। यह सत्य बुद्धि और भावना के दो अर्द्धवृत्तों से घिरा हुआ है। इसी कारण उन्हें "काव्य-कला का सत्य जीवन की परिधि में सौंदर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त अखंड सत्य" ज्ञात होता है। इस दृष्टि से वे अपनी स्थापनाओं का निर्वाह करती हैं कि उनके काव्य में पार्थिव सौंदर्य के माध्यम से अखंड सत्य की प्रतीति ध्वनित हुई है। कवि का वैयक्तिक सत्य यही है, जिसे काव्य कला का सत्य भी अनिवार्यतः कहा जायगा। पर उनके काव्य में सत्य को स्पर्श करने की चेष्टा ही है, उसे सब ओर से घेर लेने का प्रयास नहीं। यहाँ सत्य ही पूर्ण है, अनुभूति नहीं और उसकी उपलब्धि के साधन भी नहीं। इसी कारण महादेवी जी के गीत परिपूर्ण क्षणों की वाणी नहीं हैं और यदि हैं तो अंशतः ही हैं। यहाँ जीवन की पूर्णता की नहीं, पूर्णकामत्व की भी कामना नहीं की गयी। सत्य का बोध और व्याप्ति, उसके प्रति अनवरत आकर्षण और अपना सीमित अभाव, जो आनन्द का अक्षय स्रोत है, वस्तुतः महादेवी जी के गीतों की व्याख्या है। निश्चय ही यहाँ जीवन की पूर्णता नहीं है, वैविध्य में तात्विक एकता की अनुभूति नहीं है, यहां केवल सत्य के पूर्णत्व में विश्वास है और पार्थिव सौंदर्य में उसका आभास पानेवाली अपनी अनुभूति पर नारी-सुलभ अभिमान है।

महादेवी जी ने काव्य-कला को प्रतिभा और अनुकूल मानसिक गठन का परिणाम माना है। केवल अभ्यास को वे अनुपयोगी समझती हैं। साथ ही वे लोक-हृदय की पहचान पर भी बल देती हैं। उनका काव्य उत्कृष्ट प्रतिभा और उपयुक्त मानसिक गठन का परिणाम अवश्य है, पर उनकी कला में परिश्रम-साध्य अलंकृति मौजूद है। उनकी लोक-हृदय की पहचान अत्यंत परिमित है। यही कारण है कि उनकी कला अतिशय व्यक्ति-निष्ठ है। वह लोक-सामान्य कविता की श्रेणी में नहीं आ पाती? वे एक विशेष मानसिक धरातल पर काव्य-सृष्टि करती हैं, अतएव उसका यथावत् आस्वादन भी उसी प्रकार की मनःस्थिति में संभव हो पाता है। उनकी कला सूक्ष्म और भास्वर है तथा उनकी चिंतन-भूमि का आधार विशिष्ट और अपार्थिव है। उन्होंने श्रेष्ठ और शाश्वत काव्य के लक्षण स्पष्ट करते हुए अपने काव्य की सीमाओं या विशेषताओं का स्वभावतः कहीं निर्देश नहीं किया।

सत्य की साहित्यिक अभिव्यक्ति का या काव्य-कला का क्या प्रयोजन है? महादेवी जी के अनुसार कविता हमारे व्यष्टि-सीमित जीवन को समष्टि-व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक सत्य को अपनी परिधि में बांधती है, यह कथन एक ओर आध्यात्मिक काव्य की स्थिति स्पष्ट करता है तो दूसरी ओर व्यापक करुणा-भाव अथवा सहृदयता की आवश्यकता पर बल देता है। महादेवी जी की कविता निश्चय ही प्रथम कोटि की वस्तु है; दूसरी कोटि की संस्थिति उनके संस्मरणों में है, गीतों में नहीं। वे कवि के लिए यह आवश्यक समझती हैं कि "वह सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर अपनी संपूर्ण संवेदन-शक्ति के साथ जीवन में घुल-मिल जावे।" इस कथन की चरितार्थता महादेवी जी के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में देखी जा सकती है, उनकी कविता में नहीं। और उनकी दृष्टि में मानव-जीवन की यह व्याख्या है कि वह जड़ और चेतना का ऐसा स्थायी संधि-पत्र है, जिससे पार्थिवता से वलयित चेतना ही को विशेषाधिकार प्राप्त है। शरीर की गति चेतना के कारण है और चेतना का स्पंदन शरीर के कारण। उनका चिन्तन सर्वत्र एकरस है, जिसकी गति आन्तरिक है, बहिर्मुख नहीं।

काव्य-कला-विषयक इस विवेचन के अंतर्गत यह निर्देश करना होगा कि वे तात्विक और समन्वयवादी भूमिका पर

ही स्थिर रही हैं। निस्सन्देह उन्होंने अपना विशेष मार्ग इसी के अन्तर्गत निर्मित किया है। बुद्धि और भावना, स्वप्न और यथार्थ, वस्तु और अध्यात्म, उपयोगिता और संस्कारिता आदि के मध्य एक व्यापक साम्य की स्थिति का उल्लेख किया गया है। वे ऐसा उदात्त दृष्टिपथ स्थिर करती हैं कि, जिसके अन्तर्गत कहीं वैषम्य, विरोध या वैपरीत्य नहीं दिखायी पड़ता। वहाँ सब प्रकार के अंतर तिरोहित हो जाते हैं। यह विचार-सारणी अतिशय भावमयी और आदर्शनिष्ठ है। महादेवी जी के विचारों का खंडन तभी संभव है, जब उनसे इस भावात्मक आदर्शवाद अथवा सर्वातिशयी अध्यात्मदर्शन का विरोध किया जाय। मैं समझता हूँ कि महादेवी जी के दृष्टिकोण में भी सार है, पर उसकी अतिव्याप्ति ही उसका दोष है। उनकी दृष्टि में सत्य काव्य का साध्य है और सौंदर्य उसका साधन है। सत्य को वे उसकी एकता में असीम मानती हैं और सौंदर्य को उसकी अनेकता में असीम। स्पष्टतः यह आत्मवादी धारणा है, पर इसमें जगत का निषेध नहीं है। यह समन्वयशील दृष्टि कही जा सकेगी, पर इसमें भी साधन की अपेक्षा साध्य की प्रमुखता विद्यमान है। अतएव महादेवी जी अपने काव्य में प्रकृति अथवा दृश्य-जगत को मात्र माध्यम बना पायी हैं और यही उनके काव्य की प्रतीक-योजना, अलंकृति या सांकेतिक भाव-व्यञ्जना का कारण है। यहीं वे उस स्थिति को अपना लेती हैं, जहाँ वे मानववाद की सीमाओं को अतिक्रमित कर जाती हैं।

महादेवी जी के लिए आस्था वह भावभूमि है, जो जीवन की सहजात चेतना के विकास-क्रम में ही निर्मित होती है। उसे वे व्यक्ति के द्वारा समष्टि की स्वीकृति ही नहीं, ऋत का रागात्मक स्वरूप भी मानती हैं। अतएव व्यक्तिगत आस्था वे व्यापक जीवन-लक्ष्य से संबद्ध कर लेती हैं, जिसका सामाजिक विकास अथवा जगत की परिर्वतनशीलता से कोई विरोध नहीं है। वे समसामयिक और शाश्वत का है और 'होना चाहिए' के रूप से निर्वचन करती हैं। उनकी दृष्टि में इन दोनों के बीच कोई तात्त्विक विभेद नहीं है, क्योंकि वे इन्हें साधन और व्यापक लक्ष्य समझती हैं। इसीलिए आज के साहित्यकार की आस्था के संबंध में उनका कथन है कि यहीं उसे समसामयिक परिस्थितियों से संघर्ष कर उन्हें लक्ष्योन्मुख बना लेने की शक्ति दे सकती है। महादेवी जी आस्थावान रचनाकार हैं, यह असंदिग्ध है, पर उनकी आस्था का स्वरूप भावनामय और आदर्शवादी है। काव्य के अंतर्गत वे अपने इसी दृढ़ विश्वास के कारण अपार्थिव सत्ता के प्रति विरह- निवेदन कर सकी हैं, पर यथार्थवादियों के दृष्टि-कोण से आस्था का प्रश्न इस प्रकार हल नहीं हो पाता। परिस्थितियों की जटिलता के प्रति जीवनास्था को अडिग रखने का काम आत्मवादी के लिए जितना सहज है, उतना पदार्थवादी के लिए नहीं। आस्था को उन्होंने सृजन की दृष्टि से व्यक्तिगत, पर प्रसार की दृष्टि से समष्टिगत माना है। यह तभी संभव है, जब कला का उस सीमा तक साधारणीकरण होता चले, कि जिस सीमा तक जीवन-दृष्टि का विभेद थोड़ा भी बाधक न बन पाये। अवश्य ही यहाँ स्थायी या श्रेष्ठ कला-कृतियों की बात कही गई है। महादेवी जी हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या को 'निकटता की दूरी' समझती हैं। यहीं वे मानवता, शिवता तथा जीवनास्था की आवश्यकता अनुभव कर सकी हैं, क्योंकि हमारा समाज "न जीवन के व्यापक नियम से प्राणवंत है और न अपने देशगत संस्कार से रसमय।" उन्हें आज के भारत का मनोजगत ज्वर-ग्रस्त दिखाय पड़ता है। यह प्रसन्नता की बात है कि महादेवी जी की सामाजिक चेतना प्रसिद्ध रूप में प्रकट हो पाई। हमारे नये जीवन ने उनके संस्कारों पर आघात किया है और वे उपचार के लिए अपनी जीवन-दृष्टि का प्रसार चाहती हैं यह प्रवृत्ति उनकी रचना में अभी-अभी उभरी है, पर खेद है कि वे अपने कवि-कर्म तब से तक प्रायः विरत भी हो गयी हैं। 'बंगाल का काल' और 'हिमालय' शीर्षक काव्य-संकलनों के संपादन के मूल में यही लक्ष्य-बद्ध युग-चेतना सक्रिय हुई हैं।

(४)

नयी काव्य-धारा के विषय में महादेवी जी की धारणा है कि उसमें मर्मस्पर्शिता का अभाव है, जो काव्य का दोष है, नवीनता का अनिवार्य परिणाम नहीं। काव्य में सत्य का रागात्मक रूप ही अपेक्षित है, तार्किक नहीं। यह आवश्यक नहीं है कि उसकी कोई प्रत्यक्ष उपयोगिता भी हो। महादेवी जी समझती हैं कि यथार्थ का काव्यात्मक चित्रण

सहज कवि-कर्म नहीं है। उन्होंने बौद्धिक निरूपणों द्वारा कुछ प्रचलित सिद्धांतों का प्रतिपादन और आशीर्वाद की विरोध-भावना का व्यक्तीकरण कहते हुए क्रमशः प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की अकाव्यात्मक स्थिति स्पष्ट की है। गीति-परम्परा में उन्हें कवि के अहंकार की अनुभूति नहीं, रूढ़ि दिखायी पड़ी है। उन्होंने अश्लीलता के प्रश्न को एक विकृति रूप में देखा है और ऐसे साहित्य को पतनोन्मुख माना है। यह विकृति एक ओर समष्टिगत है और दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तवाद का परिणाम। यथार्थथवाद प्रकृति और विकृति दोनों को ग्रहण कर सकता है, पर उसने विकृति को ही संप्रति अपना रखा है। यह उसका विकास-विरोधी स्वरूप है। नारी-विषयक दृष्टिकोण की विवेचना करते हुए उन्होंने रहस्यवादी, छायावादी और आदर्शवादी धारणा से यथार्थवादी विचारणा का पार्थक्य स्पष्ट किया है। महादेवी जी का यह निरूपण अतिशय तलस्पर्शी है और इस मान्यता पर आधारित कि "कला और सौंदर्य, जीवन के परिष्करण और उससे उत्पन्न सामंजस्य के पर्याय हैं।" 'कला चिरंतन है' का अभिप्राय है कि वह क्रमागत है या ऐतिहासिक स्थिति रखती है; 'सौंदर्य सनातन है' का अर्थ है कि वह अस्तित्ववान् है, नया उत्पादन नहीं, तथा 'सत्य शाश्वत है' का आशय है कि वह जीवन-चेतना की क्रमबद्धता है, उसका दिक्काल-परिबद्ध रूप नहीं। महादेवी जी इसी व्यापक दर्शन के आधार पर समसामयिक साहित्य की प्रवृत्तियों का पर्यवेक्षण करती हैं; पर्यवेक्षण ही नहीं, संपूर्ण विश्वास के साथ उसकी सीमाओं का निर्देश तथ विकृतियों का खंडन करती हैं। यहीं उन्होंने प्रसंगतः बुद्धिजीवियों की विसंगतियाँ दिखायी हैं, जिनमें विद्यार्थी और शिक्षक वर्ग मुख्य हैं। उन्होंने नये कलाकारों और आलोचकों की स्थिति का परीक्षण भी किया है। 'मजदूर-कला' तथा 'राज-कला' आदि से सम्बन्धित समलेखन से विवादों की व्यर्थता भी उन्होंने सिद्ध की है। अंततः उनका निर्देश है कि "इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी, स्वप्न-द्रष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार, अध्यात्म से बँधा हो या भौतिकता का अनुगत, उसके निकट यही मार्ग शेष हैं कि वह अध्ययन में मिली चित्रशाला से बाहर आकर, जड़ सिद्धान्तों का पाथेय छोड़ कर, अपनी संपूर्ण संवेदना-शक्ति के साथ जीवन में घुल-मिल जावे।"

यहाँ आलोचक महादेवी जी को कला का श्रेय रूप, कल्याण-कारी पक्ष या शिवत्व का प्रतिपादन करने की आवश्यकता अनुभव हुई है। मैं कहूँगा कि यह सब नयी काव्य रचना के संबंध में कहा गया है। कवि महादेवी का इन समस्याओं से साबका नहीं पड़ा। निश्चय ही यह विवेचन उनके छायावादी काव्य-चिन्तन पर आधारित है। यहाँ उनकी सैद्धान्तिक मान्यताएँ प्रायः वे ही हैं, पर रहस्यवादी विवरणों के स्थान पर यहाँ प्रत्यक्ष जगत् और व्यक्त जीवन ही नहीं, मानवीय सत्य और सामाजिक कल्याण का अंतर्भाव भी कर लिया गया है। अंततः कला सौंदर्य ही है या सौंदर्य की संवेदना है, जो अब व्यष्टिगत सत्य की समष्टिगत परीक्षा बन गयी है। महादेवी जी के काव्य चिन्तन में सामाजिक तत्वों का प्रवेश संभव हुआ है और वे अधिक परिपूर्ण दृष्टिकोण उपस्थित कर सकी हैं। उनके काव्य की एकान्तिकता यहाँ आकर लोकाभिमुख दिखायी पड़ी। यह बात अलग है कि उनके विचार इतने व्यापक हों कि वे परमात्मा की भाँति पकड़ के बाहर रहें, पर यहाँ उन्होंने स्पष्टतापूर्वक अपनी धारणा को प्रकट किया है।

समस्याओं के प्रसंग में वे एक सारगर्भित बात कह गई हैं, जो इस प्रकार है—छायावाद एक प्रका से अज्ञातकुलशील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही न मिल सका। फलतः उसने आकाश, तारे, फूल, निर्झर आदि से आत्मीयता का संबंध जोड़ा और उसी संबन्ध को अपना परिचय बनाकर मनुष्य के हृदय तक पहुंचने का प्रयत्न किया। आज का यथार्थवाद बुद्धि और साम्यवाद का ऐसा पुत्र है, जिसके आविर्भाव के साथ ही, आलोचक जन्म-कुन्डली बना-बनाकर उसके चक्रवर्तित्व की घोषणा में व्यस्त हो गये।" इस आवतरण के दो पहलू हैं। छायावाद- विषयक निर्देश केवल महादेवी जी के काव्य पर अक्षरशः घटित हो पाता है, अन्य किसी छायावादी कवि पर नहीं। प्रसाद, निराला और पंत की स्वच्छन्द जीवनानुभूतियाँ सामाजिक चेतना से रिक्त नहीं हैं। प्रकृति और कल्पना का विनियोग अन्य कवियों के काव्य में अंशतः हुआ है और वह भी सौंदर्य के उपादान या विधान के हेतु। इसमें सत्य यही है कि छायावादी काव्य में अतीन्द्रियता के परमाणु अपेक्षया अधिक हैं। दूसरा पक्ष यथार्थवाद की खामियों को

लक्षित करता है। यह मंतव्य ठीक उसी प्रकार की मनःस्थिति को विज्ञापित करता है, जैसी मनःस्थिति नये प्रभावों को स्वीकार न करने वाले पुराने संस्कारों को ग्रहण न करने वालों के प्रति प्रकट करते हैं। मैं यह नहीं कहूँगा कि महादेवी जी उत्तर-छायावादी काव्य के प्रति असहृदय हैं, पर यह तथ्य है कि वे उसे जीवन-विकास की दृष्टि से विघटनकारी वस्तु मानती हैं। वे सूक्ष्म के एक अतिवाद पर स्थित थीं, यह स्थूल का दूसरा अतिवाद है। सम्भवतः अध्यात्म और पदार्थ या सूक्ष्म का समन्वित संतुलन ही मानवीय पूर्णता का लक्षण है। महादेवी जी भी सामाजिकता की बात कहती हुई इसी आधार को ग्रहण करने के लिए सचेष्ट हैं। उनकी अपनी पूर्णत्व की धारणा बहुत कुछ काल्पनिक और अपार्थिव ही रही है। यह उसी का नया विकास है, यथा—"यदि पहले मिली सौंदर्य-दृष्टि और आज की सौंदर्य-सृष्टि का समन्वय कर सकें, पिछली सक्रिय भावना से बुद्धिवाद की शुष्कता को स्निग्ध बना सकें और पिछली सूक्ष्म चेतना की व्यापक मानवता में प्राण-प्रतिष्ठा कर सकें, तो जीवन का सामंजस्य-पूर्ण चित्र दे सकेंगे।"

महादेवी जी ने आदर्श और यथार्थ-विषयक अपने चिन्तन को भी प्रकट किया है। वे इन्हें प्राण और शरीर की तरह समन्वित करती हुई कहती हैं कि "वह यथार्थ जिसके पास आदर्श का स्पंदन नहीं, केवल शव मात्र है और वह आदर्श जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं, प्रेतमात्र है।" अतएव आदर्श और यथार्थ एक दूसरे के पूरक रह कर ही जीवन को पूर्णता दे सकते हैं, अतः काव्य उन्हें विरोधियों की भूमिका देकर जीवन में एक नयी विषमता उत्पन्न करता है, सामंजस्य नहीं।" स्पष्टतः महादेवी जी यहाँ छायावादी समीक्षक, रहस्यवादी कवि, मानववादी निबंधकार प्रभृति अपने रूपों को समन्वित करती हुई आदर्श और यथार्थ, भाव और वस्तु या आत्म-दर्शन और पदार्थ-विज्ञान के एकीकरण पर बल देती हैं। महादेवी जी यहाँ स्वच्छंद विचारक हैं, किसी विशेष दार्शनिक पद्धति की अनुगामी नहीं। इसीलिए उन्हें पूर्णत्व का उद्भावक अथवा संतुलन का आविष्कार समझना चाहिए। उनकी विचारणा न एकांगी है, न सत्य को खंडित करने की अभ्यासी। अतएव यथार्थ की सापेक्ष सीमाएँ अथवा खंडत्व और आदर्श का निरपेक्ष सत्य या अखंडत्व अन्योन्याश्रित समझे गये हैं। यह सम्बन्ध न सतही वस्तु है, न उसकी क्षणिक सत्ता है। निश्चय ही ये उद्गार आदर्शवादी विचारक के हैं, यथार्थवादी कलाकार के नहीं। इसी कारण यह निष्कर्ष कि "आदर्श को संकीर्ण अर्थ में न ग्रहण करके यदि हम उसे जीवन की एक व्यापक और सामंजस्यपूर्ण स्थिति की भावना मात्र मान लें, तो वह हमारे एकांगी बुद्धिवाद और बिखरे यथार्थ को संतुलन दे सकता है"—अनिवार्य ज्ञात होता है। यहाँ 'सामंजस्य' और संतुलन शब्द विचारणीय हैं। इन्हीं के माध्यम से आदर्शवादी यथार्थ को स्वीकार कर पाता है। यहि परिपूर्णता की कल्पना तो है ही, इसे व्यावहारिक समझौता भी कहा जा सकता है। छायावादी काव्य-चिंतन के अंतर्गत सामाजिक या यथार्थवादी तत्त्वें का आकलन वस्तुतः उसके ही मंतव्यों को वस्तुगत आधार देता है और सापेक्षिक पूर्णता के सिद्धांत को चरितार्थ करता है। कतिपय आलोचकों ने छायावादी समीक्षा-पद्धति को वस्तुनिष्ठ आधार और सामाजिक आशय देने की समर्थ चेष्टा की है। कहना न होगा कि महादेवी जी के काव्य में इस प्रकार के संतुलित सामंजस्य का कोई प्रयास नहीं दिखायी पड़ा।

उपयोग की कला और सौंदर्य की कला का उल्लेख करते हुए महादेवी जी ने उपयोगितावाद को सार-हीन काव्य-सिद्धान्त कहा है। उनका मंतव्य है कि जब तक हमारे सूक्ष्म अंतर्जगत का वाह्य जीवन में पग-पग पर उपयोग होता रहेगा, तब तक कला का उपयोग संबंधी विवाद विशेष महत्व नहीं रखता। कला न स्थूल में निर्वासित हो सकती है, न सूक्ष्म में, क्योंकि उसकी भी जीवन की भाँति समन्वयात्मक स्थिति है। वे उपयोग की निम्नोन्नत भूमियों को स्पष्ट करती हुई द्विवेदी युगीन उपयोगितावाद तथा यथार्थवादी उपयोगिता के सिद्धान्त की सीमाओं का निर्देश करती हैं। वे कलाओं को उपयोग की उस भूमि पर स्थायी रूप से स्थापित करती हैं, जहाँ उपयोग सामान्य रह सके। वस्तुतः यह उपयोग नहीं, आस्वादन है, आदेश-उपदेश नहीं, सौंदर्य की संस्कारिता है। महादेवी जी कला की उपयोगिता का जो अभिप्राय ग्रहण करती हैं, वह उपयोग के गृहीत अर्थ को अपार्थिव भूमिका देता है। यहाँ उपयोग संवेदना है और भलाई संस्कार है।

यह विधि-निषेध नहीं है, बल्कि अंतर्जगत की स्फूर्ति है, जिसके कारण जीवन की गति उत्प्रेरित होती है। महादेवी जी ने कलावादी विचारणा को जीवन की संगति अवश्य दी है, पर वे उसे आदर्शवादी या यथार्थवादी की स्थूल उपयोगिता का पर्याय नहीं मान सकी हैं।

उनके छायावादी काव्य-चिंतन के अंतर्गत कला-तत्त्व ही जीवन की सबसे बड़ी उपयोगिता बन गया है। वस्तुतः यह अंतःकरण का परिष्कार ही है, जो सत्य के अनुशीलन और सौंदर्य के साक्षात्कार का परिणाम है। आशय स्पष्ट है कि कला कला है, जीवन का चरम मूल्य है, उसे किसी आवश्यकता की नाप या उपयोगिता की माप के अनुसार न गढ़ा जा सकता है, न उसकी उपयोगितावादी परिचयी तैयार हो सकती है। इसी कारण उनकी दृष्टि में जीवन में कविता का वही महत्त्व है, जो कठोर भित्तियों से घिरे कक्ष के वायुमंडल को अनायास ही बाहर के उन्मुक्त वायुमंडल से मिला देने वाले वातायन को मिला है। वे कविता और कला को छायावादी सौष्ठव से संपन्न और आदर्शवादी निष्ठा से व्युत्पन्न बताती हैं। उन्होंने काव्य-कला को जीवन का व्यापक अभिप्रेत ही नहीं दिया, उसे स्वानुभूति की गरिमा और सौंदर्य-बोध का वैभव भी प्रदान किया।

महादेवी जी की काव्य-सृष्टि और उनके काव्य-चिन्तन में यहाँ बिंब-प्रतिबिंब भाव विद्यमान है। उन्होंने 'सप्तपर्णा' और 'हिमालय' की सुगठित और सुचिंतित भूमिकाओं के अंतर्गत भारतीय जीवन के रागात्मक विकास के अमिट चरण-चिह्नों का विवेचन किया है। साहित्य हृदय का परिष्कार करता है और जीवन के सांस्कृतिक विकास को प्रत्यक्ष किसी भी सांस्कृतिक मूल्य के वस्तुगत उपयोग की माँग का महत्त्व ही क्या है। वह महत् आकांक्षा का विपर्यय मात्र है। महादेवी जी काव्य के सांस्कृतिक मूल्य को ही स्वीकार करती हैं, वस्तुवादी उपयोगिता के सिद्धान्त को नहीं।

(५)

अब हमें गीतिकाव्य, छायावाद और रहस्यवाद विषयक मंतव्यों की परीक्षा ही करनी है। महादेवी जी गीत को सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था-विशेष की अभिव्यक्ति मानती हैं और उसे गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना का उपयुक्त चित्रण कहती हैं। गीत की मर्मस्पर्शिता का कारण है वयक्तिक सुख-दुःख की व्यंजना। आशय यह है कि गीत का विषय सुख-दुःखात्मक अनुभूति ही है। वह भावावेशमयी अवस्था को लिये हुए है और उसकी सीमा व्यक्ति-विशेष है। गेयता उसकी शिल्पगत विशेषता है, जो उपयुक्त स्वर-साधना ही नहीं है, गिने-चुने शब्द-समूह का विशिष्ट विन्यास भी है। यहाँ महादेवी जी वैयक्तिक अनुभूति को उपयुक्त शब्द-योजना और सार्थक स्वर-साधना से समन्वित करती हैं। उनकी गीतिकाव्य की यह परिभाषा संक्षिप्त और सार्थक है कि साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। निश्चय ही उनका गीतिकाव्य वैयक्तिक है, विरहानुभूति से अनुप्राणित है, अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय है, पर वह तीव्र या भावावेशपूर्ण भी है, यह नहीं कहा जा सकता।

वे आवेशमयी गीतिकार हैं ही नहीं। वैचारिक गांभीर्य और नारीत्व का आत्म-संयम वैयक्तिक भाव-धारा का ऐसा बाँध है, जो उसके प्रवाह को उन्मुक्त नहीं होने देता। गीत की आरंभिक कड़ी में कहीं-कहीं आवेश का स्वर झंकृत होता है, पर प्रतीक-व्यंजना उसके स्वाभाविक विकास में बाधक सिद्ध होती है। दर्शन की छाया में रचे गये गीतों के भीतर भावों की बाढ़ स्वभावतः विरल होती है। उसमें स्थिर, गंभीर तथा मंथर गति की ही अपेक्षा हो सकती है। गेयता के संबंध में निवेदन है कि ये साहित्यिक गीत हैं, रागों या रागिनियाँ में रचे गये पद नहीं। इनमें संगीत का तत्त्व है अवश्य-पर वह प्राथमिक विशेषता नहीं है। यहाँ मुख्य वस्तु है कवि का भावाशय, अतः संगीत का मूल्य औपचारिक है। यह समृद्ध कला-सृष्टि भी है, अतएव अर्थ और ध्वनि में प्रायः एकता और सामंजस्य विद्यमान है।

गीतिकाव्य में तार्किक ज्ञान नहीं, सहज ज्ञान की अवस्थिति को लक्षित करती हुई महादेवी जी कहती हैं कि तर्क से परे इन्द्रियों की सहायता के बिना भी हमारी आत्मा अनायास ही जिस सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेती है, उसकी अभिव्यक्ति

में गेय स्वर सामंजस्य का विशेष महत्त्व रहा है। यहाँ वे शुष्क ज्ञान से पृथक् सहज बोध का निर्देश करती हैं। आत्मा को मन या अंतर्जगत मान लेने से इस वक्तव्य की बोधव्यता बढ़ जायगी। भाव-स्थिति स्वतः अमूर्त व्यापार है, पर उसे सत्य का संवेद्य या स्वाभाविक ज्ञान बौद्धिक आधार भी देता है। यह सहज ज्ञान एक ओर भावमय या सरस बना रहता है और दूसरी ओर वाणी को भाव-प्रलाप मात्र बनने नहीं देता। अतः गीतिकाव्य मानव संस्कृति का उच्चार हो जाता है। उसकी उच्चतर साहित्यिक स्थिति का यही रहस्य है। इसी कारण वह न आलाप मात्र है, न प्रलाप मात्र। निश्चय ही महादेवी जी का गीतिकाव्य गंभीर मनोदशा, सुसंस्कृत व्यक्तित्व और समृद्ध शब्द-संकेतों तथा अर्थ-ध्वनियों का व्यक्तीकरण है।

उन्होंने साहित्यिक गीतों को लोकगीतों से भिन्न वस्तु अवश्य माना है, पर दोनों के मूल में एक सी प्रवृत्ति की अविस्थिति स्वीकार की है। गीत प्रकृत्या मानवी सुख-दुःख के उद्गार हैं, अतएव लोकगीत और साहित्यिक गीत में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है। दोनों की भाषा, भाव और छंदों के भीतर साम्य के सूत्र मौजूद हैं। साहित्यिक गीतों में चिंतन, कल्पना या रचना संबन्धी समृद्धि और तज्जन्य सूक्ष्म व्यंजना-व्यापार संभव होता है, पर लोकगीतों में मानवीय अनुभूतियाँ अपने प्रकृत रूप में अभिव्यक्त होती हैं। महादेवी जी ने इन लोक-गीतों का आकर्षण अनुभव किया है और कहा है कि 'मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक-गीतों की धरती पर पले हैं।' महादेवी जी का गीतिकाव्य लोक-गीतों से कदाचित् समुचित प्रेरणा नहीं ले पाया। यह मात्र आकर्षण है, जिसका यहाँ उल्लेख हुआ है, कोई सुनिश्चित प्रभाव नहीं।

वे रहस्य-गीतों के विषय में कहती हैं कि उनका 'मूलाधार भी आत्मानुभूत अखंड चेतन है।' आत्मानुभूत ज्ञान ही गीतिकाव्य की प्रकृति में अंतर्युक्त हो पाता है। रहस्य-गीतों के अंतर्गत ज्ञान इतना प्रत्यक्ष नहीं हो पाता कि वह बुद्धि की परिधि में आ जाय और भाव इतना सूक्ष्म और अव्यक्त नहीं हो पाता कि वह हृदय की सीमा में न आ पाये। यहीं रहस्य और गीत के मूल तत्त्व एकान्वित होते हैं। "रहस्य-गीतों में आनन्द की अभिव्यक्ति के सहारे ही हम चित्त और सत् तक पहुंचते हैं।" महादेवी जी ने न केवल ज्ञान और भाव को चिंतन की भूमि पर एकत्र किया है, वरन् सौंदर्य के माध्यम की बात भी कही है। वस्तुतः रहस्य-गीत भावात्मक परिपूर्णता के सोपान हैं। भावात्मक या आभ्यंतर पूर्णता का अभिप्राय यह है कि रहस्यानुभूति वस्तुतः एकान्तिक है, लोक-संग्रही नहीं। निश्चय ही महादेवी जी के गीतों की भी यही विशेषता है। उनके काव्य की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि है अवश्य, पर वह धार्मिक रूढ़ियों का नहीं, दार्शनिक मनोवृत्ति का परिणाम है। यह दार्शनिक वृत्ति अंततः व्यक्तिगत चेतना है, जिसे अध्ययन, मनन और निदिध्यासन के अतिरिक्त बाह्य प्रभावों ने भी संगठित किया है।

(६)

महादेवी जी का चिंतन चिरंतनता और सनातनता तथा व्यापकता और पूर्णता को लिये हुए है, अतएव प्रत्येक विषय अथवा कविता की धारा, प्रवृत्ति या विधा के अंतर्गत वे इसी का संधान करती हैं। छायावाद को उन्होंने इसी व्यापक आधार पर निरूपित किया है। अवश्य ही उसे उदात्त पृष्ठ-भूमि दी जा सकी है। विचारकों ने छायावाद के सांस्कृतिक भाव-बोध का विवरण दिया है, पर महादेवी जी ने उसे दार्शनिक चेतना का प्रसार ही माना है। वे समझती हैं कि छायावाद ने मूर्त और अमूर्त विश्व को समन्वित करके उसे पूर्णता प्रदान की है। वे छायावाद के आविर्भाव का कारण कविता के बंधनों से मुक्त होने की प्रवृत्ति में खोजती हैं।

जिस स्वच्छंदता की प्रवृत्ति में उसका जन्म हुआ, उसे कवयित्री ने न चिंतन में, न अपने काव्य में, महत्त्वपूर्ण वस्तु माना है। कदाचित् वे उक्त प्रतिक्रिया को मूल तत्त्व के रूप में स्वीकार नहीं कर पायीं। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि नारी की सामाजिक सीमाएँ तथा उसकी नैतिक मर्यादाएँ उसे इस प्रकार की स्वच्छन्दता का अवकाश ही नहीं देतीं। अतएव आत्मानुभूति की व्यञ्जना को मुख्य वस्तु मानती हुई वे स्वच्छन्द को 'स्वच्छंद छंद' में ही सीमित कर लेती हैं। व्यक्तिगत सुख-दुःख ही छायावाद के उत्स हैं, जो अभिव्यक्ति के लिए आकुल रहे

हैं। अतः छायावादी कविता स्वानुभूति-प्रधान होने के कारण वैयक्तिक उल्लास-विषाद की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनी। वे इसका दूसरा प्रमुख तत्त्व 'प्रकृति की सौंदर्य-चेतना' को मानती हैं, जिसके कारण अनेक रूपों में प्रकट एकरूपता महाप्राण बन जाती है। फलतः "मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।" यहाँ सर्ववादी मान्यता स्पष्ट हुई है। यह छायावाद का मूल दर्शन नहीं है। प्रकृति पर चेतना का आरोप विशुद्ध दार्शनिक वस्तु है, यह नहीं कहा जा सकता। प्रकृति की सचेतनता मानवीय भावाक्षेप या मानवीकरण की आलंकारिक प्रवृत्ति का परिणाम भी है। उसे चेतनता का आभास देने वाला रूपक कहा जा सकता है। वस्तुतः प्रकृति अपने सौंदर्य और मानव-सापेक्ष अस्तित्व के कारण छायावाद में महत्त्वपूर्ण स्थान पा सकी है। उसे परिव्याप्त चेतना का प्रतिबिंब मानने की प्रायः आवश्यकता नहीं पड़ी। महादेवी जी के काव्य में प्रकृति को सर्वत्र यही दार्शनिक आशय नहीं दिया गया। वह प्रतीक और अलंकरण भी है, दिव्य चेतना का व्यक्तीकरण ही नहीं।

महादेवी जी प्रकृति को अपने भावात्मक दृष्टिकोण के कारण कल्पनाशील सौंदर्य से मंडित करती रही हैं। उनका वक्तव्य है कि छायावाद का कवि न प्रकृति के किसी रूप को लघु या निरपेक्ष मानता है, न अपने जीवन को, क्योंकि वे दोनों ही विराट रूप-समिष्ट में स्थिति रखते हैं और एक व्यापक जीवन से स्पंदन पाते हैं।

प्रकृति-जीवन का रूप-दर्शन है और जीवन प्रकृति का भावाकाश। यह विचारणा नितांत वैयक्तिक और काल्पनिक कही जायगी। संपूर्ण जगत् में एक ही सत्ता की व्याप्ति अनुभव करना, जितना दार्शनिक अभिप्रेत है, उतना स्वानुभूत तत्त्व नहीं। छायावादी कविता में व्यष्टि और समष्टि का ऐसा एकीकरण संभव नहीं हुआ। इसे उसका लक्ष्य या आदर्श अवश्य कह सकते हैं, जो उसकी कल्पनाशील प्रवृत्ति को लक्षित करता है। अतएव महादेवी जी छायावाद को प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ कहती हैं।

प्रकृति पर आधारित यह काव्य स्वभावतः कल्पनाओं की बहुरंगी और विविधरूपी सूक्ष्म रेखाओं से निर्मित हुआ। निश्चय ही महादेवी जी का काव्य कल्पनाशील है, पर दार्शनिक निरूपणों के कारण वह स्वतंत्र वस्तु नहीं, परोक्ष सत्य का अपरोक्ष माध्यम है। प्रकृत छायावादी अनुभूति प्रायः प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करती है, पर महादेवी जी के लिए वह मात्र रहस्य का व्यक्तीकरण है।

महादेवी जी इस मत का विरोध करती हैं कि छायावाद संघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन है, क्योंकि उसके निर्माण-युग में मध्यमवर्गीय चेतना का आभिजात्य मुखरित था, जिसमें सामाजिक क्षोभ और सांस्कृतिक असंतोष के तत्त्व में वस्तुतः सम्मिलित नहीं हो पाये थे। छायावाद भौतिक अस्तित्व की समस्याओं को अंतर्भुक्त नहीं करता। ये उस युग की अनिवार्यताएँ नहीं हैं। प्रसाद, निराला और पंत ने एक सीमा तक प्रत्यक्ष जीवन की चेतना आत्मसात् की थी, पर महादेवी उससे असंपृक्त रहीं। वे स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म की अभिव्यक्ति का निर्देश करती हैं। वे समझती हैं कि छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ था। अतः स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए संभव न हो सका। परन्तु उसकी सौंदर्य-दृष्टि स्थूल के आधार पर नहीं है, यह कहना स्थूल की परिभाषा को संकीर्ण कर लेना है।

महादेवी जी सूक्ष्म या सांकेतिक चित्रणों के अतिरिक्त स्थूल को सूक्ष्म सौंदर्य-बोध का आधार तक स्वीकार कर लेती हैं। इस दार्शनिक परिणति को महादेवी जी उस सीमा तक स्वीकार करती रहीं कि उनका काव्य रहस्यवाद के क्षेत्र की वस्तु बन गया। उन्होंने छायावाद को अपने प्रिय दर्शन का मात्र सोपान बनाया। उनकी वैयक्तिक अनुभूति स्वाभाविक मनोभावना न रह कर परिष्कृति और उदात्तीकृत रहस्य-जिज्ञासामयी प्रणय-भावना बन गयी।

मैं समझता हूँ कि स्वाभाविक मानवीय अनुभूतियों का काव्य अ-श्रेष्ठ नहीं होता। महादेवी जी का सूक्ष्मतावादी दर्शन चरम कला-कोटि नहीं है। अवश्य ही उनका काव्य अपने आंतरिक गुणों के कारण श्रेष्ठ है, उपर्युक्त तत्त्वज्ञान के कारण नहीं।

महादेवी जी के अनुसार छायावादी अभिव्यञ्जना की सांकेतिकता का कारण भाव को रूपायित करने की

आवश्यकता है। वे छंद को भाषा के सौंदर्य की सीमा कहती हैं और इसीलिए नयी छंद-योजना का समर्थन कर सकी हैं। शब्द-शोधन की कला उन्हें इसलिए आवश्यक जान पड़ी कि सूक्ष्म भाव-बोध को अभिव्यक्ति देनी थी। अतएव प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काट-छाँट कर तथा कुछ नये गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया गया। यहाँ खड़ी बोली के पदावली-संस्कार, छंद-निर्माण और संकेत-पद्धति की काव्य-शैली का अभिनव कौशल स्पष्ट किया गया है। महादेवी जी एक सचेत कलाकार रही हैं और इन क्षेत्रों में उन्होंने नवीन काव्याभिव्यञ्जना को यत्नपूर्वक सँवारा है। उनकी शैली में तरलता और मार्दव इसी कारण आ पाया है। छायावादी काव्य में उनकी शैली सर्वाधिक सांकेतिक है, जिसे प्रतीक-पद्धति का नव्य रूप समझना चाहिए।

छायावाद के पराभव के कारणों पर महादेवी जी ने टिप्पणी की है। वे कहती हैं कि छायावाद सौंदर्यलोक की वस्तु है, प्रत्यक्ष जीवन की नहीं, इसीलिए वह अपूर्ण है। वह एक भावात्मक दृष्टिकोण है, बौद्धिक दृष्टिकोण नहीं। परवर्ती दृष्टिकोण भी अपूर्ण है, क्योंकि वह बौद्धिक है। जीवनानुभूति की न्यूनता से संयुक्त कल्पनातिशयी प्रवृत्ति को उन्होंने छाया-वाद के ह्रास का कारण माना है। यही उनके काव्य की सीमा का निदर्शन है। वे भावात्मक पूर्णता की बात कहती भी आयी हैं। वस्तु और भाव, सौंदर्य और जीवन तथा बुद्धि और हृदय का एकीकरण ही संभवतः पूर्णता है। छायावाद को यथार्थ रूप में ग्रहण ही नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह सुनिश्चित आध्यात्मिक रूढ़ियों अथवा वर्गीकृत सिद्धांतों का संचय नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत और स्वच्छंद विचारों का निरूपण है। महादेवी जी ने इन सीमाओं या ह्रास के कारणों का वस्तुनिष्ठ विवेचन किया है। यह अत्यंत साहस का कार्य है, क्योंकि अंततः यह अपने रचना-कार्य का ही सीमोल्लेखन है। यह वक्तव्य सारवान् और तथ्यपूर्ण है।

अस्तु, प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप, कल्पनाओं की समृद्धि, स्वानुभूत सुख-दुःखों की अभिव्यक्ति को परस्पर सापेक्ष कहा गया है। ये ही छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं। महादेवी जी छायावाद को करुणा की छाया में सौंदर्य के माध्यम से व्यक्त होनेवाला भावात्मक सर्ववाद कहकर उसकी, उपयोगिता को सिद्ध करती हैं। वे प्रकृत अनुभूति को अपरोक्ष अनुभूति की रहस्यमयता से मंडित करती हैं, यथा— छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से "आधुनिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है, जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिला कर पूर्णता पाता है।" वे अपने इसी चिंतन-क्रम के कारण छायावाद को अतिव्याप्त करती हुई उसे रहस्यवाद की समकक्षता प्रदान करती हैं, यथा "बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखंडता का भावन किया, हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी हुई सौंदर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुःख-दुखों को मिला कर ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी, जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद और अनेक नामों का भार सम्हाल सकी।" यहाँ छायावाद युग-विशेष की काव्य-प्रवृत्तियों का परिचायक शब्द संकेत मात्र है। वस्तुतः छायावाद के अंतर्गत अध्यात्म की प्रवृत्ति अवस्थित रही है, पर वह यत्र-तत्र ही प्रकट हुई है। उसे मूल प्रवृत्ति नहीं कहा जा सकता। महादेवी जी ने अपने काव्य की विवेचना के रूप में ही कदाचित् छायावाद और रहस्यवाद को एक दूसरे का पूरक माना है। एक सौंदर्य का दर्शन है, दूसरा सत्य का अन्वेषण। वास्तविकता यह नहीं है।

महादेवी जी रहस्यवादी कवयित्री हैं, पर उनके काव्य में छायावादी काव्य-प्रवृत्तियाँ भी हैं। यथा—प्रकृति प्रेम, सौंदर्य कल्पना, स्वानुभूति, आदि सुविव्यस्त हैं। मैं समझता हूँ कि महादेवी जी का साध्य रहस्यवाद है और साधन छायावाद। ये जैसे पूर्ण या निरपेक्ष सत्य और उसके सौंदर्य रूपी माध्यम के पर्याय ही हैं अथवा ये अभिव्यंग्य या स्थायी भाव और उसकी अभिव्यंजना के प्रतिरूप हैं। इस प्रक्रिया के कारण ध्वन्यर्थ को चाहे जितनी रमणीयता प्राप्त हो जाय, पर बेचारे वाच्यार्थ का सौंदर्य सुरक्षित नहीं रह पाता। महादेवी जी के काव्य में छायावाद का मूल चारुत्व नहीं है, क्योंकि उसे काव्य-पद्धति के रूप में अपनाया गया है, स्वतंत्र सौंदर्य-बोध या भाव-चेतना के रूप में नहीं।

(७)

महादेवी जी ने रहस्यवाद का भी स्वरूप-विवेचन किया है। दो महायुद्धों के बीच छायावाद और रहस्यवाद एक दूसरे पर

आश्रित चाहे रहे हों, पर उनमें पार्थक्य भी है। उनके अनुसार जब प्रकृति की अनेकता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक एक अंश अक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा। परन्तु इस संबंध में मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानव-संबंधों में जब तक अनुरागजनित आत्म-विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती, हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना, काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।'' महादेवी जी के प्रणयमूलक आत्मनिवेदनात्मक गीतिकाव्य का यह तात्त्विक स्पष्टीकरण है। वे रहस्यवाद के दार्शनिक या बौद्धिक अथवा साधनात्मक रूप को अकाव्योचित समझती हैं। रहस्यवाद और रागात्मक स्वरूप ही उनका अभीष्ट है। उनका कथन है कि अखंड चेतन से तादात्म्य का रूप रहस्यानुभूति में हृदय का प्रेम हो जाता है, वह बुद्धि का ज्ञेय ही नहीं रहता। अतएव ''रहस्यवादी का आत्म-समर्पण बुद्धि की सूक्ष्म व्यापकता से सौंदर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है, अतः उसमें सत् और चित् की एकता में आनन्द सहज संभव रहेगा।'' सत्, चित् और आनन्द की पूर्णता ही नहीं-स्वयं रहस्यवादी की परिपूर्णता भी संभव है, क्योंकि मूर्त जगत् का यथार्थदर्शी अमूर्त जगत् का रहस्य-द्रष्टा बनकर ही पूर्णता प्राप्त करता है। महादेवी जी रहस्यवाद को जीवन का पूर्णत्व मानती हैं। अखंड और व्यापक चेतन के प्रति आत्म-समर्पण अवश्य संभव है, क्योंकि रहस्यात्मक कृतियाँ उसका प्रमाण हैं। रहस्यानुभूति अलौकिक होती है, पर उसकी अभिव्यक्ति अलौकिक ही रहेगी, यथा—''अरूप की अभिव्यक्ति लौकिक रूपकों में ही तो संभव होगी।'' यह व्यष्टिगत जीवन के परिष्कार और विकास पर निर्भर है कि अंतर्जगत् का समष्टिगत जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित हो हो जाय।

क्या कविता के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि उचित है? महादेवी जी के अनुसार इसका निर्णय व्यक्तिगत चेतना ही करेगी। वे समझती हैं कि ''न वही काव्य हेय है, जो अपनी साकारता के लिए केवल स्थूल और व्यक्त जगत् पर आश्रित है और न वही जो अपनी सप्राणता के लिए रहस्यानुभूति पर।'' उन्हें रहस्य-काव्य की संवेदनीयता के संबन्ध में कोई शंका नहीं है। हिन्दी के आधुनिक रहस्य-काव्य के सम्बन्ध में उनकी टिप्पणी है कि ''उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम की तीव्रता उधार ली और इन सब को सांकेतिक दांपत्य-भाव-सूत्र में बाँध कर एक निराले स्नेह-संबन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।'' स्पष्टतः महादेवी जी की रहस्य-कविता के सूत्रों का ही विश्लेषण है। वे यह स्वीकार करती हैं कि यह वाद काव्य की रूढ़ि बना और अपनी अपार्थिव पार्थिवता तथा साधना की न्यूनता के कारण सहज ही सबको आकृष्ट कर सका। अतएव यह विकृत होता गया। अत्यंत स्पष्ट रूप में वे कहती हैं कि ''रहस्यवाद आत्मा का गुण है; काव्य का नहीं।'' वे रहस्यवाद को मनःस्थिति और छायावाद को काव्य-कला समझती हैं।'' और यहीं कला स्वतंत्र नहीं रह पाती। वे उसे आध्यात्मिकता या मूल जीवन-चेतना के उपयोग को वस्तु मानती आयी हैं। इसे उन्होंने काव्य-क्षेत्र में व्यवहृत किया है। अतः महादेवी जी के रहस्य-विषयक विवेचन को विदग्ध और प्रामाणिक कहना चाहिए। यह उनकी काव्य-कला को केन्द्रीय मनःस्थिति का निर्वचन है। इसे आप्त वचन माना जा सकता है।

(८)

महादेवी जी का काव्य-चिन्तन न केवल उनके सुसंस्कृत व्यक्तित्व और प्रबुद्ध विचारक का स्पष्ट निदर्शन है, बल्कि उनके काव्य को समझने में बड़ी दूर तक हमारा सहायक है। स्वयं महादेवी जी छायावाद-युग की प्रमुख, प्रतिष्ठित और प्रतिनिधि कवयित्री हैं, अतएव उनके विचार सिद्धांतवाद के

रूप में स्वीकार किये जाते हैं। छायावादियों की प्रवृत्तियों में कतिपय साम्य के सूत्र उपलब्ध हुए हैं और उन्हीं के आधार पर उस युग की विवेचना की जाती रही है। अवश्य ही उनमें पर्याप्त अन्तर मौजूद रहा है, पर वह उनकी बैयक्तिक विशेषताओं का परिचायक समझा गया है। महादेवी जी मूलतः अध्यात्मवादी या रहस्यवादी हैं, पर अन्य सभी छायावादियों की यही केन्द्रीय मनःस्थिति नहीं है। अतएव महादेवी जी की कतिपय मान्यताओं की सीमाएँ यहाँ देखी-पहचानी गयी हैं। वे छायावाद को वैयक्तिक ही नहीं, आत्मवादी अभिप्रेत भी प्रदान करती हैं। स्पष्टतः यही मतभेद का कारण है। छायावाद के अंतर्गत सौंदर्य की स्वाभाविक अनुभूति ही प्रत्यक्ष हुई है। महादेवी जी उसे अमूर्त सत्य का माध्यम मात्र मान लेती हैं। कदाचित् इसे संपूर्ण युग के परिपार्श्व में प्रमाणित नहीं किया जा सकेगा।

महादेवी जी का अध्ययन विशद है, मनन-प्रक्रिया समुन्नत है और चिंतन-क्रम एक देशीय नहीं है। रहस्यवाद और छायावाद के विकास-क्रम का उन्होंने परिश्रमपूर्वक प्रामाणिक निरूपण किया है। उनका दृष्टिकोण अतिशय व्यापक है और वे सर्वत्र शाश्वत या चिरंतन सत्य को अनुभव करने के लिए कृतसंकल्प हैं। पूर्णत्व की अपनी धारणा उन्हें अतिशय प्रिय है, जिसे स्थूल और सूक्ष्म, व्यष्टि और समष्टि, मूर्त और अमूर्त, हृदय और मस्तिष्क, सत्य और सौंदर्य आदि के एकीकरण रूप के में निरूपित किया गया है। आशय यह है कि उन्हें पूर्णत्वकामी, शाश्वतलक्षी और असंकीर्ण द्रष्टा तथा आत्मवादी चिंतक समझना चाहिए। उनका आत्म-दर्शन क्रमशः सर्ववाद के रूप में उत्कर्षित हुआ है, वे भाववादी द्रष्टा हैं और अध्यात्मवादी कवि। वस्तुवादी जीवन दर्शन और यथार्थवादी काव्य के प्रति उनके मन में स्वभावतः संकोच का भाव विद्यमान है, पर उसे वे अपनी व्यापक विचार-सारिणी में समन्वित कर लेना चाहती हैं। अंततः वे सामंजस्यवादी दृष्टिकोण को अपना लेती हैं। यह उनके अपने ही सिद्धान्त का विस्तार या पल्लव है। संक्षेप में, महादेवी जी का काव्य-चिन्तन प्रौढ़ और सुसंयत है, सुचिंतित और कवित्वपूर्ण है। वह महादेवी जी के काव्य की अंतरंग परीक्षा का विशिष्ट प्रतिमान है। स्पष्टतः उसकी सीमाएँ वे ही हैं, जो छायावादी काव्य-समीक्षा की हैं। वह वैयक्तिक साहित्य-सिद्धांत है और उसमें वस्तु-निष्ठता का अभाव है।

और महादेवी जी का काव्य आत्माभिव्यंजक गीतिकाव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है, जिसका मूल तत्त्व रहस्यवाद है और जिसकी काव्य-कला छायावाद की उत्कृष्ट उपलब्धियों से सुसंपन्न है। वह वैयक्तिक और अलंकृति-पूर्ण गीति-काव्य होने के कारण सहज संवेद्य नहीं है, कम से कम संक्रामक तो नहीं ही है। पर यह गीति-कला विशिष्ट है और समृद्ध भी। महादेवी जी के गीति-काव्य का विशिष्ट व्यक्तित्व है, जो अपने पृथक् सौंदर्य के कारण महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बन गया है।

उनकी गीति-रचना का परिचय प्रायः "मैं नीर-भरी दुख की बदली" उक्ति से दिया जाता है। पर यह युक्ति-युक्त नहीं है। वे "तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान" से चलकर "बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ" की स्थिति को प्राप्त करती है। "है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना" कालान्तर में ही वे कह पाती हैं। उनकी "पंथ होने दो अपरिचित. प्राण रहने दो अकेला" की हठ न केवल 'सब आँखों के आँसू उजले, सबके सपनों में सत्य पला' का अनुभव करती है, बल्कि समझती है कि 'अलि मैं कण-कण को जान चली सब का क्रन्दन पहचान चली।' महादेवी जी के भाव-विकास के ये कतिपय इंगित हैं। वे केवल अश्रुमुखी वियोगिनी नहीं हैं, वे रहस्यवादी भी हैं, अतएव वे रात के उर में दिवस की चाह का शर हैं। जिन्हें महादेवी जी की रहस्यानुभूति पर संदेह है, वे उसे आरोपित वस्तु मान सकते हैं, पर विगत चालीस वर्ष की गीति-रचना और चिंतन-सृष्टि में एकनिष्ठ रह पाने की उनकी शक्ति की प्रशंसा उन्हें भी करनी चाहिए। जो आलोचक संत काव्य की नयी आवृत्ति न देखकर निराश हुए हैं और महादेवी जी के रहस्यवाद को मृगचर्म समझते रहे हैं, उन्हें किसी उत्तर की अपेक्षा ही नहीं है।

यह सामान्य नियम है कि प्रतिभा नवनवोन्मेषशील होती है, वह आवर्तन नहीं करती, निर्माण करती है और यह नव्यता प्रत्येक युग की काव्य-कला को नयी

अंग-संगति और नवीन भाव-भंगिमा से मंडित करती है। महादेवी जी का लक्ष्य सुस्पष्ट है और पथ सुनिश्चित। वे कहीं भटकी नहीं, उन्होंने कहीं अपना मार्ग नहीं बदला और वे निरंतर 'जाग तुझको दूर जाना' का अनुसरण करती रहीं।

अस्तु, महादेवी जी छायावाद-युग की रहस्योन्मुखी कृती कवि और अंतर्मुखी सुधी काव्य-चिंतक है और उनके ये दोनों रूप अवरोधी हैं। गीति-सीमा के अंतर्गत जो कुछ वे स्पष्ट नहीं कर पायीं, उसे वे समीक्षात्मक निबंधो में निरूपित कर सकी हैं। इन्हें अवश्य ही लक्षण और उदाहरण नहीं कह सकेंगे। यहाँ गीति-रचना कवि-कर्म है और काव्य-चिंतन अध्ययन-मनन का परिणाम। ये भूमिका या स्पष्टीकरण हैं, लक्षण-निरूपण नहीं। वे आलोचकों द्वारा किये गये आरोपों के उत्तर भी नहीं हैं।

महादेवी जी की यह महान उपलब्धि है कि उनके काव्य, तत्त्व-चिन्तन और साहित्य-समीक्षण में कोई बाह्य या आभ्यंतर विरोध नहीं हैं। इसका कारण यह है कि उनका व्यक्तित्व टूटा हुआ, अस्त-व्यस्त अथवा मुखौटा-धारी नहीं है। वह अतिशय सचेत और सुसंगठित है। प्रसाद जी के शब्द उधार लूँ तो मैं कहूँगा कि 'उसमें इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।' कथनी, करनी और रहनी की यह एकता, जो रचना, विचार और जीवन के रूप में अविरोधी जान पड़े, कोई सामान्य विशेषता नहीं है। महादेवी जी के लेखन की सचाई और उसके स्थायित्व के संबन्ध में इसी कारण हमें निःशंक होना चाहिए।

महादेवी का काव्य—महाश्वेता का आँसूभरा अंचल

•

डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

उपमा प्रायः एकाङ्गी होती है, जब-जब मैं महादेवी जी के साहित्य को पढ़ता हूँ विशेषकर कविता, तब मुझे कादम्बरी की महाश्वेता स्मरण हो आती है। महादेवी जी के गीत महाश्वेता के अश्रु भरे अंचल से प्रतीत होते हैं और उनमें अभिव्यक्त उनकी मूर्त्ति तपस्यादीप्त, संयम-पुलकित उदात्त किन्तु साथ ही कोमल भावनाओं से सजल महाश्वेता से पर्याप्त सादृश्य प्रस्तुत करती हैं। फिर भी महाश्वेता अभिशप्ता नारी थी और महादेवी ने दीपशिखा के समान स्वयं तिल-तिल मिटकर मानवता के अंधकार को दूर करने का व्रत लिबा हैं। वेदना वही वरेण्य होती है जो जागरूक होकर स्वीकार की गयी हो, अन्यथा वह निराशा की ही सृष्टि करेगी।[1]

यह स्थिति स्पष्टतः अतृप्तवासनावादी मनोविज्ञान द्वारा यों समझायी गयी है कि महादेवी का काव्य उनकी यामित इच्छाओं का प्रकाशन है। उनकी उच्च चिंतन भूमि व्यापक वेदना या पीड़ा, व्यक्तित्व को समर्पित न करने का आग्रह प्रेम का अलौकिक रूप यह सब किसी लौकिक अभाव का उर्ध्वप्रक्षेपण-मात्र है किन्तु इससे महादेवी की उत्कृष्ट कला का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता, केवल कार्य-कारण-परम्परा स्पष्ट होती है। तुलसीदास के मानस में रत्ना द्वारा उपेक्षित उनकी चेतना का अभाव व्यक्त हुआ है; यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। साहित्यकार और कलकार तत्वज्ञानी नहीं होते, अवश्य उनके अपने जीवन की कामनाओं का सतरंगा वस्त्र ही उनकी कला है, यहाँ तक कि उनका ज्ञान भी भावनाओं के अनुरूप ही होता है किन्तु इससे वस्तुतः उनके कृतित्व का स्वरूप अस्पष्ट ही रहता है। स्वयं महादेवी जी कोरे पुस्तकीय सिद्धान्तों को अनुपयुक्त और हानिकर मानती हैं। उन्होंने बार-बार जीवन पर बल दिया है, यहाँ तक कि छायावाद-यथार्थवाद के सैद्धान्तिक संघर्ष में केवल किताबी दृष्टि को छोड़कर उन्होंने जीवन को समझने पर जोर दिया हैं।[2] अतः महादेवी के व्यक्तित्व को समझने के लिए किसी एकांगी मनोविज्ञान-सम्प्रदाय से केवल ''व्यक्तिगत कारण'' पर ही प्रकाश पड़ता है। और वह भी इतना धूमिल, अपर्याप्त और अशुद्ध कि हम यह कहने पर कुछ भी नहीं कहते कि महादेवी में आप्त इच्छाओं का ही उदात्तीकरण हुआ है। अतएव हमें उस काल के जीवन को देखना होगा जो किसी एक कवि की कामनाओं से सम्बन्धित नहीं होता; जिसमें कोटि-कोटि जनो की कामनाएँ और धारणाएँ टकरातीं सामंजस्य पातीं, विशिष्ट परिस्थितियों के क्रोड़ में आविर्भूत होती हुई और उन्हें प्रभावित करती हुई अपने अस्तित्व को सार्थक करती हैं। किसी व्यक्ति विशेष की चेतना और उसकी अभिव्यक्ति को समझने का एकमात्र उपाय इसी ''संदर्भ'' को समझना है। मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय प्रायः इस संदर्भ की उपेक्षा करते हैं, वे व्यक्ति को सन्दर्भ से अलग करके, उसकी आदिम पूंजी के आधार पर ही विचार करते हैं, उपलब्ध पूंजी (विचार भाव आदि) उन्हें

[1]—जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण में निराशा का कुहरा है या व्यथा की आर्द्रता, यह दूसरे ही बता सकते हैं परन्तु हृदय से तो मैं आज निराशा का कोई स्पर्श नहीं पाती, केवल गंभीर करुणा की छाया ही देखती हूँ।—आधुनिक कवि, भूमिका, पृष्ठ ३७।

[2]—आज की सभी विकृतियों और संकीर्णताओं का एकमात्र उपाय जीवन में घुल-मिल जाना है।—दीपशिखा, पृष्ठ ५६।

उतने महत्त्वपूर्ण और निर्णायक नहीं लगते, जितने प्रकृति द्वारा प्राप्त मनोविकार।

महादेवी काव्य में जितनी ही निजतायुक्त प्रतीत होती हैं, उतनी ही वे अपनी आलोचनाओं में वस्तुपरक हैं, उन्होंने स्वयं ही जीवन और कलाओं पर विचार किया है और छायावादी कविता तथा यथार्थवाद के संघर्ष में छायावादी कविताओं के उपयोग और स्थायित्व पर विचार किया है, वस्तुतः इन्हीं स्थलों में हमें कवि की कला को समझने का सूत्र मिलता है।

महादेवी जी द्विवेदीयुगीन काव्य में सबसे बड़ा अभाव यह पाती हैं कि उसमें कवि की कोमल अनुभूतियों के लिए स्थान नहीं था; छायावाद ने इसी की क्षतिपूर्ति की, अतः छायावाद कवि की ही नहीं, व्यक्तिमात्र की मधुर अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होने के कारण अमर हैं; उसका स्थायी महत्त्व है; क्योंकि मनुष्य की कोमल अनुभूतियों का स्तर स्थायी स्तर है, वह लाखों वर्षों के इतिहास के पश्चात् भी स्वरूपतः वही है। अपने समस्त गुणात्मक परिवर्तनों के बावजूद मानवीय चेतना का यह रागात्मक जीवन अब भी इतना भिन्न नहीं हुआ है जो पहचाना न जा सके। महादेवी इसी स्तर को सर्वाधिक महत्त्व देती हैं, क्योंकि व्यक्ति जब तक अनुभूति के स्तर पर किसी तथ्य का भोग नहीं करता, तब तक सिद्धान्त उपदेश ही बनता है और द्विवेदीयुगीन काव्य में इस निजता का सर्वथा अभाव है। वहाँ समाज का कल्याण व्यक्ति की निजी अनुभूति बनकर प्रस्तुत नहीं है कि द्विवेदी युग और प्रगतिवादी युग के अभिव्यक्ति रूपों में काफी साम्य है, क्योंकि यथार्थ के प्रति कवियों की दृष्टि निजी पीड़ा या व्यक्तिगत संवेदना का रूप नहीं ले पाती। प्रचारात्मकता का अर्थ है कि सिद्धान्त आरोपित हो रहा है, वह जीवन के खटमिट्ठे अनुभवों के माध्यम से न गुजरकर सिर पर बँधे साफे की तरह भव्य और उदात्त लगने पर भी, अवयवी का अंग नहीं बन पाता। महादेवी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने सबके लिए उपयोगी इस कला-रहस्य पर प्रकाश डाला है। फिर भी महादेवी जी ने, युगान्त-युगवाणी के पन्त जी की तरह छायावाद की सीमाओं को समझ लिया था। छायावाद के कवि को एक नये सौंदर्यलोक में ही वह भावात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन में नहीं, इसीसे वह अपूर्ण है"[१] किन्तु साथ ही प्रयोगवाद और नयी कविता के आविर्भाव के पूर्व ही यथार्थवाद की बौद्धिकता को काव्य-प्रक्रिया के विरुद्ध जाते देखकर महादेवी ने किसी वाद के आधार पर नहीं, किन्तु जीवन के अनुभव के आधार पर स्पष्ट कहा था कि "छायावादी सौंदर्यलोक के ध्यान पर केवल बौद्धिक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा कर जीवन की पूर्णता में (उसे) देखना चाहेंगे, तो भी हम असफल रहेंगे" और जिस प्रकार प्रगतिवाद समाज के बौद्धिक समाधान को काव्य में निजी जीवन के माध्यम से पूर्णतः व्यक्त नहीं कर सका, उसी प्रकार प्रयोगवाद बौद्धिकता के बोझ से कराह उठा। यही कारण है कि छायावाद का सीमित सौन्दर्यबोध, उसकी आशा मनुष्य के भविष्य में उसका विश्वास; मनुष्य की चेतना को जड़ बनाने वाले अवरोधों का उसके द्वारा किया गया विरोध और आकर्षक अभिव्यक्ति आज भी प्रिय लगती है और लगती रहेगी।

यथार्थवादियों और अब नये कवियों का एक बहुत बड़ा आरोप छायावाद की पलायन-वृत्ति पर भी था। महादेवी ने आक्षेप के उत्तर के लिए भी जीवन को आधार बनाया है। प्रायः जिसे हम पलायन समझते हैं, वह आगामी संघर्ष के लिए तैयारी के रूप में भी समझा जा सकता है। "सत्य तो यह है कि परिचित से अपरिचित, भौतिक से अध्यात्म भाव से बुद्धिपक्ष, यथार्थ से आदर्श आदि की ओर मनुष्य को ले और इसी क्रम से लौटाने का बहुत कुछ श्रेय इसी पलायन वृत्ति को दिया जा सकता है।"[२] उपनिषद् युग के ऋषि अभाव के कारण नहीं, यथार्थ से अतिपरिचय के कारण रहस्यमय तत्त्व की ओर उन्मुख हुए, गौतम बुद्ध भी इसी आधार पर गृहत्याग के लिए प्रेरित हुए। यही नहीं, महादेवी के अनुसार दैनिक जीवन में भी यह पलायनवृत्ति एक सीमा तक दिखायी पड़ती है—

"आज भी व्यावहारिक जीवन में, पढ़ने से जी चुरानेवाले विद्यार्थी को जब हम खिलौनों से घेरकर छोड़ देते हैं, तब कुछ दिनों के उपरांत वह स्वयं पुस्तकों के लिए विकल ही

१-२—आधुनिक कवि—पृष्ठ २५

उठता है।"[१] इसी प्रकार महादेवी जी के अनुसार मचान पर स्थित कृषक फसल की रक्षा के संघर्ष में संघर्ष के गीत नहीं गाता; मिलन-विरह की स्मृति ही दुहराता है। इसी तरह "चक्की के कठिन पाषाण को अपनी साँसों से कोमल बनाने का निष्फल प्रयत्न करती हुई, दरिद्र स्त्री जब इस प्रयास को रागमय करती है तो उसमें चक्की और अन्न की बात न होकर किसी आम्रवन में पड़े झूले की मार्मिक कहानी ही रहती है।"[२] इस प्रकार छायावाद के विरुद्ध आरोपों में सत्यांश है, किन्तु वे आरोपपूर्ण सत्य नहीं है क्योंकि "जीवन" को न समझने के कारण और योरोप में रोमांटिक आन्दोलन विरोधी नये आन्दोलनों का यथावत् अनुकरण के कारण हम छायावाद के शुभ पक्षों की भी आज निन्दा करते हैं।

महादेवी की विशेषता है, व्यक्तिगत दुःख की समष्टिगत गंभीर वेदना में बदल सकने की क्षमता। यही कारण है कि उनके काव्य में यद्यपि कलागत चातुर्य अवश्य मिलता है किन्तु भावनागत कृत्रिमता नहीं मिलती। मीरा के साथ उनमें जो सादृश्य माना गया है, वह इसी कारण। काव्य की सफलता, किसी अनुभूति को तीव्रता के साथ अनुभव करके इस प्रकार व्यक्त करने में है कि वह मनुष्य मात्र की सम्पत्ति बन जाये, अपने अहंसापेक्ष अनुभव को अहं-निरपेक्ष करना ही कला की सफलता है, महादेवी जी में यह क्षमता अत्यधिक है।

छायावाद का व्यक्तिवाद तात्कालिक यथार्थ की पूर्ति, यथार्थ में अभीप्सित परिवर्तन करने और नये सामाजिक सम्बन्धों की प्रतिष्ठा करने का काव्यगत प्रयत्न था। मध्यकालीन युग में "नारी" और "निम्न वर्ग"—ये दो उत्पीड़न के आखेट थे। चिन्तन के स्तर पर यह उत्पीड़न 'कर्मवाद' और 'कर्मवाद' 'आत्मा—ब्रह्मवाद' से समर्थित हुआ था। कला के स्तर पर नारी का समाज में स्वतंत्र स्थान न होने के कारण उसे पुरुष की वासना के क्रोड़ में रखकर ही देखा जा सकता था। छायावाद ने इन सम्बन्धों के विरुद्ध संघर्ष किया था। समाजशास्त्रीय सृष्टि से नारी के लिए उनके पास कोई सही सैद्धान्तिक समाधान चाहे न हो, किन्तु पल्लव, गुञ्जन, जुही की कली, राम की शक्ति-पूजा, तुलसीदास, कामायनी और महादेवी के गीतों में सर्वाधिक बल नारी की रीतिकालीन मूर्ति के स्थान पर उसे एक दिव्य स्थान दिया गया है। सर्वत्र नारी के सौन्दर्य का ही आरोप कर नवीन सौन्दर्य की ही सृष्टि नहीं की गयी है, अपितु इस प्रक्रिया में नारी पुरुष के भावनागत प्रेम और समानता के स्तर पर उनके परस्पर सम्बन्धों की प्रतिष्ठा भी की गयी है। किन्तु मध्यकाल से अभिशप्त निम्नवर्ग के लिए छायावाद में विशेष भावुकता नहीं मिलती। यह कार्य प्रगतिवादियों ने पूरा किया; किन्तु छायावाद में उसकी सर्वथा उपेक्षा भी नहीं हुई। निराला की वह तोड़ती पत्थर "विधवा", "घायल", "जागो फिर एक बार" आदि रचनाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं। पन्त, प्रसाद में भी जो वेदना है, उसका एक अंचल मानव की इस पीड़ा का भी स्पर्श करता है। महादेवी में तो यह स्पर्श निराला से भी कहीं कहीं अधिक मात्रा में मिलता है; गद्य के क्षेत्र में तो महादेवी जी ने इसी दरिद्रता को वाणी दी है किन्तु पद्य में भी प्रारम्भ से ही यह व्यापक करुणा का भाव कहीं अंतर्द्वन्द्व के रूप में और कहीं निरपेक्ष पीड़ा के रूप में व्यक्त होता रहा है—छायावादियों की वेदना में इस प्रकार निजी पीड़ा और व्यापक पीड़ा का अंतर्भाव अवश्य हुआ है—

कह दे माँ मैं क्या देखूँ
देखूँ खिलती कलियाँ या प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा या जर्जर जीवन देखूँ।[३]

फिर भी यह मानना होगा कि महादेवी के काव्य में युगों-युगों से अभिशप्त नारी जाति के अश्रु-रोदन और साथ ही उज्जवल प्रेम का ही वर्णन है। गद्य में उन्होंने करुणा का द्वितीय रूप स्पष्ट किया है।

महादेवी जी के वैयक्तिक जीवन का असंतोष कटुता में परिणत न होकर सूक्ष्म रहस्यमय सत्ता के प्रति आत्मनिवेदन के रूप में परिणत हुआ है इसे देखकर आश्चर्य होता है। किन्तु गद्य में कटुता की मात्रा अधिक है। "श्रृङ्खला की

[१-२]—वही—पृष्ठ २६।

[३]—वही—पृष्ठ ३७।

कड़ियाँ और "नीहार-रश्मि-दीपशिखा"—इन दो रूपों में एक ही व्यक्ति के दो सधे हुए अनुभूति स्तर देखकर स्तंभित रहना पड़ता है; उसी प्रकार जिस प्रकार 'कामायनी' और 'कंकाल' को एक ही लेखक की कृतियाँ जानकर हमें आश्चर्य होता है। वस्तुतः ये दोनों परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाएँ न होकर एक दूसरे की पूरक हैं। गद्य में जिस वेदना को उसके कार्य-कारण सहित विश्लेषण के रूप में, अपनी पूर्ण व्यापकता के रूप में हम पाते हैं, कविता में वही करुणा निजी स्तर पर कार्यरत हुई है। 'ब्रह्म' में अपना गन्तव्य पाकर लौकिक कटुता या अभाव से पलायन के रूप में देखने पर भी हमें उसका महत्त्व नहीं भूलना चाहिए। यह टीस कविता में कार्य-कारण रहित रूप में और इसलिए निरपेक्ष सी प्रतीत होती हुई है, किन्तु उचित सामाजिक समाधान का अभाव उसकी अभिव्यक्ति का केवल एक पक्ष है। प्रश्न वास्तव में यह है कि यह वेदना अभिव्यक्त तो हुई ही है, क्या यह कम महत्त्वपूर्ण बात है? छायावाद के पूर्व सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में नवीन मानवीय सम्बन्धों की स्थापना की यह नूतन आकांक्षा और कहाँ है?

"अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गयी परदेशिनी री"

इस पंक्ति के आविर्भाव के पीछे भौतिक जीवन की कठोरता और अन्याय का दंशन तीव्रतम मात्रा में है, अतः इसमें ऐसे समाज को गढ़ने की प्रेरणा भी है, जिसमें मनुष्य के कोमल भाव-जगत् का अपमान न हो।[1]

इसी प्रकार महादेवी का रहस्यवाद मध्ययुगीन रहस्यवाद से स्वरूपतः भिन्न हैं, क्योंकि उसमें साधनात्मकता का अभाव है और इसमें तात्कालिक सामाजिक जागरूकता का बोध सहज भाव से इस प्रकार मिल गया है कि जो "सर्वथागत व्यक्तिगत" प्रतीत होता है, उसकी पृष्ठभूमि में व्यक्ति और परिस्थिति का द्वन्द्व ही समाहित है। यथार्थ के इसी स्पर्श को न समझने के कारण महादेवी जी के काव्य में मध्यकालीन रहस्यवाद की यथावत् प्रतिध्वनि न पाकर क्रोध प्रकट किया गया है, जैसे कि यह महादेवी जी का अपराध था कि उन्होंने रहस्यवाद को अधिक सामाजिक बनाया है।

काव्य की परख में पुराने और नये सांचों के मनमाने प्रयोग पर महादेवी जी ने इसीलिए आक्रोश प्रकट किया है कि हिन्दी के आलोचकों का "समाज के विभिन्न स्तरों से सम्पर्क इतना कम और पीड़ित वर्ग से परिचय इतना बौद्धिक है कि व्यक्तिगत सिद्धान्त-प्रियता, समष्टिगत जीवन की उपेक्षा बन जाती है। उसका कर्तव्य वैसा ही निश्चित और एकरस है, जैसा अस्त्र रखने का लायसेन्स देनेवाले का होता है। लेनेवाला यदि निश्चित नियमों की परिधि में आ जाता है तो वह अस्त्र पाने का अधिकारी है, चाहे वह उसे चींटी पर चलावे, चाहे तारे पर और चाहे मारने के लिए कुछ न रहने पर आत्मघात करे, देनेवाले पर इसका लेशमात्र भी उत्तरदायित्व नहीं।"[2]

आलोचकों की इस भूल का क्या कारण है? परम्परावादी पुराने सूत्रों में सब कुछ समेटना चाहते हैं और यथार्थवादी नये सूत्रों में तथा नये कवि अति नये सूत्रों में। जीवन में वैविध्य है; यह उपेक्षणीय हो जाता है। महादेवी जी का ध्यान इस तथ्य पर भी गया है कि साहित्य स्रष्टाओं और आलोचकों की आर्थिक स्थिति में अन्तर है। "कवियों में एक-दो को अपवाद छोड़कर शेष ऐसी अनिश्चित स्थिति में रहे और रहते आ रहे हैं, जिसमें न लिखने का अनिवार्य परिणाम उपवास-चिकित्सा है। इसके विपरीत आलोचकों में दो-एक अपवाद छोड़कर शेष की स्थिति इतनी निश्चित है कि लिखना, अध्यापन और स्वाध्याय का आवश्यक फल हो जाता है। वे अपने उच्च वर्ग की [illegible] परिग्रह-जीवन सम्बन्धी सुविधाएँ देखकर खिन्न होते हैं अवश्य, पर यह खिन्नता जीवन की विशेष गहराई से सम्बन्ध नहीं रखती, अतः उनका कार्य प्रस्ताव के अनुमोदन से अधिक महत्त्व नहीं रखता। एक दीर्घकाल से हमारा बुद्धिजीवी वर्ग जीवन के स्वाभाविक और सजीव स्पर्श से दूर रहने का अभ्यस्त हो

[1]—भौतिक के कठोर धरातल पर, तर्क से निष्करुण और हिंसा से जर्जरित जीवन में व्यक्त युग को देखकर स्वयं कभी-कभी मेरा व्यथित मन भी अपनी करुण भावना से पूछना चाहता है, अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गयी, परदेशिनीरी—

[2]—दीपशिखा, पृष्ठ ५४-५५। आधुनिक कवि—३८

चुका है । परिणामतः एक ओर उसका मस्तिष्क विचारों को व्यायामशाला बन जाता है और दूसरी ओर हृदय निर्जीव चित्रों का संग्रहालय मात्र रह जाता है। आलोचक भी इसी वर्ग का प्रतिनिधि होने के कारण मानसिक पूँजीवाद और जीवन का दारिद्र्य साथ लाये बिना न रह सका।[1]

रूपवादी और परम्परागत आलोचना पर यह यथार्थ व्यंग्य है। छायावादी कविता में व्यक्ति और परिस्थिति के संघर्ष और सामंजस्य अथवा दूसरे शब्दों में यथार्थ के प्रति कवि की एप्रोच को सर्वाधिक महत्व न देने के कारण प्राचीन रस, अलंकार, रहस्यवाद आदि के सिद्धान्तों पर इस काव्य को परीक्षित करने का परिणाम निराशाजनक और कवियों के लिए अपमानजनक ही हो सकता है।

छायावाद में सर्ववाद या प्रकृति में किसी अलक्षित सत्ता के आभास की अधिकता मिलती है। रहस्यवाद में इसी "छाया" को । प्रेमपात्र बनाकर उसके साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित का मिलन-विरह के गीत गाये जाते हैं। किन्तु महादेवी के छायावाद-रहस्यवाद की विशेषता यह है कि इस अलक्षित सत्ता को चित्र के लिए चित्रफलक की तरह, एक आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसका अर्थ यह नहीं कि उनका दिव्य सत्ता में विश्वास नहीं है, किन्तु वह काव्य में विश्वास के सिवा, भावनाओं के आधार रूप में प्रस्तुत होने के कारण कला-प्रकिया के अंग के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। अतः यह सर्ववाद (पैंथीइज्म) प्राचीन दार्शनिक विश्वास से भिन्न है; "भावों के अनन्त वैभव के साथ ज्ञान की अखंड व्यापकता की स्थिति वैसी ही है जैसी कहीं, रंगीन, कहीं सितासित, कहीं सघन, कहीं हल्के, कहीं चाँदनीधौत और कहीं अश्रुस्नात बादलों से छाये आकाश की होती है।"[2]

अतः ब्रह्म या दिव्य सत्ता का नाम आते ही न तो अंधविश्वास के आधार पर इसकी उपेक्षा हो सकती हैं, क्योंकि कला-प्रकिया की दृष्टि से उसका महत्त्व है और साथ ही उसके आधुनिक रूप में प्रयोग होने के कारण भी उसका उपयोग है, और न इस आधार पर वह निन्दा का विषय है कि उसके प्रति कबीर और मीरा जैसा सर्वसमर्पण नहीं है। आधुनिक परिस्थितियों में—छायावादी युग में साम्राज्यवादी संस्कृति के विरुद्ध भारतीय संस्कृति की धारणाओं को नवीन रूप में अपनाना एक ऐतिहासिक प्रकिया थी, और दूसरी ओर पुराने रहस्यवाद का अनुकरण भी सम्भव नहीं था, इसीलिए ब्रह्म से महादेवी का आत्मनिवेदन नीहार में भी नवीन रूप में है—

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद
क्या अमरों का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव अरे !
यह मेरे मिटने का अधिकार।

यह बात बार-बार महादेवी जी दुहराती हैं, यहाँ तक कि पुनरावृत्ति की भी चिन्ता नहीं करतीं, आखिर क्यों ? इसलिए कि वह बीसवीं शताब्दी के एक विशिष्ट सामाजिक सोपान के लिए नूतन रहस्यवाद की रचना करना चाहती हैं, अतः मीरा कबीर और जायसी के सादृश्य के बावजूद वह अपनी विशिष्टता पर बल देती हैं और "साँचावादी" आलोचक इसी बात पर नाराज हैं कि वे कबीर और मीरा का यथावत् अनुकरण क्यों नहीं करतीं ?

नयी कविता में अस्तित्ववाद के प्रभाव के कारण अस्तित्व-रक्षा का ध्यान अधिक रहता है। सामूहिक आन्दोलनों से नए कवि को व्यक्ति के अस्तित्व का भय है, तब महादेवी को ब्रह्म से प्यार करके भी यदि अपने अस्तित्व से प्रेम है, तो यह आधुनिक नारी की विशिष्टता को व्यक्त करता है या महादेवी जी के व्यक्तिगत अहंकार को ? महादेवी जी की उपलब्धि ही यही है कि पुराने गंतव्य को मानकर भी उनकी "यात्रा" या गति की विशिष्टता सुरक्षित है और यह विशिष्टता उनका व्यक्तिगत अहंकार नहीं, जातीय दुर्दशा को देखकर उत्पन्न स्वाभिमान मात्र है।

[1]—दीपशिखा—पृष्ट ५४
[2]—वही, ५८

एकाकीपन आज की कविता का एक विशेष वर्ण्य विषय है। किन्तु महादेवी जी को इस अनुभूति का बोध बहुत तीव्रता के साथ हुआ है। ब्रह्म के साथ अस्तित्व चेतना की तरह यह सूनापन भी महादेवी जी का विशिष्ट अनुभव है, जो पुस्तकीय न होकर जीवनगत है। यह सूनापन विरहजन्य भी है और उसके साथ-साथ नारी जाति की सर्वत्र उपेक्षा के कारण भी यह उत्पन्न हुआ है, अतः यह अकेलापन, यह ऊब अधिक प्रभावशाली प्रमाणित हुई है—

उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते
आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसाकर रीते
अपने इस सूनेपन की, मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों का दीप जलाकर, करती रहती रखवाली।

ऊब का यह वर्णन अंतर्निहित रागसूत्र के कारण जीवन से असम्पृक्त नहीं महसूस होता, वह अनुभूत लगता है। नये कवि जब छायावाद पर आक्रमण करते हैं, तब यह भूल जाते हैं कि उनकी प्रिय "ऊब" का एक रूप छायावाद में भी मिलता है, यह दूसरी बात है कि वह अधिक मार्मिक बन पड़ा है। क्योंकि यह सूनापन केवल एक व्यक्ति की अस्तित्व चेतना में ही सीमित नहीं है, वह एक व्यापक पीड़ा या जनसंवेदना से सम्बन्वित है—

चिन्ता क्या है, हे निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा
हो जायेगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अँधेरा।

मानव की दुर्बलताओं का तीव्र दर्शन ही इस दुःखवाद का कारण है। यह इसीलिए दार्शनिक दुःखवाद नहीं, जीवन की अपूर्णता को देखकर उत्पन्न मानवीय संवेदना है। महादेवी जी का कथन है कि यद्यपि वह गौतम बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित हैं, तथापि सुख से अधिक दुःख को वे इसलिए भी महत्त्वपूर्ण मानती हैं, क्योंकि सुख व्यक्तिवादी और दुःख समष्टिवादी होता है, तभी तो दुःख को बाँट कर भोगने की प्रवृत्ति होती है, अतः कादम्बरी की महाश्वेता के दुःख से महादेवी जी का दुःख अधिक व्यापक है। वह अनेकार्थक होने के कारण अधिक सार्थक है और अपने समय की व्यष्टि-समष्टि की वास्तवकिता को अधिक सूक्ष्म और फलीभूत रूप में व्यक्त करता है।

वास्तविकता के प्रति इसी जागरूकता के कारण तथा निजी अभाव को साधारणीकृत कर सकने के कारण महादेवी जी का कला-स्वरूप भी विशिष्ट हो गया है। प्रायः गीत सन्ध्या या रात के चित्रण से प्रारम्भ होते हैं, (अधिकतर गीत रात में ही लिखे गये हैं) और जहाँ प्रातःकाल के अरुण-बाणों की चुभन का वर्णन है, वहाँ भी "सजल गान" के निर्झर ही प्रवाहित होते हैं अतः जहाँ पन्त जी की कला पल्लवों के समान किसलयी कला है—चिरमधुर मधुर, कोमल-कोमल—वहीं निराला की कला में घनीभूत रंगों के चित्र हैं और महादेवी में एक धूमिलतायुक्त सन्ध्या के समान सितारों जड़ी सारी पहने चन्द्रमुखी कला प्रायः निशा का आकर्षक रूप ही प्रस्तुत करती है। वह निशा की तरह अधिक रहस्यमयी और सांकेतिक भी है और साथ ही पन्त जी जैसा चटक रंग भी वहाँ नहीं है, प्रसाद जैसी मादक रहस्यमयता भी वहाँ नहीं है; एक करुण रागिनी गाती हुई सुन्दरी रजनी के समान ही महादेवी की कला है और उसका कारण जान-बूझ कर अपनाये गये बिम्बों के उत्पादन में नहीं, अपितु वास्तविकता के प्रति कवयित्री की दृष्टि के कारण ही कला का यह स्वरूप प्रस्तुत हुआ है।

यह अभी तक अदेखा ही रह गया है कि महादेवी जी की रचनाओं में लोकगीतों का स्पन्दन अन्य छायावादियों से अधिक है। छायावाद की अलंकृति तो महादेवी में बाह्य आभूषणवत् है, उसका प्राण तो लोकगीतों की सुरभि ही है। विशेष रूप से नारियों द्वारा गाये गये गीतों का संवेदन उनमें अधिक है। संवेदन ही नहीं, वर्ण्य विषय भी बहुत कुछ एक जैसे हैं—

"अनेक बार उनके (लोक बालाओं के) लोकगीत सुनकर ऐसा भी लगा है कि यह भाव मेरे गीत में होता! "एक कदम की डार बसैं दो पंखियाँ", गाने वाली ग्रामीण सखी इस गीत को अपने जीवन की अन्योक्ति बनाकर गाती है। साधारण शाब्दिक अर्थ में यह गीत दो विहगों के करुण बिछोह की कथा है। परन्तु अलौकिक अर्थ में ग्रहण कर लेने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती। अपने छोटे घर के द्वार पर टेढ़ा-मेढ़ा स्वस्तिक बनाकर उसके दोनों ओर हाथ की छाप लगाने वाली सरल गृहिणी की कल्याण-कामना

चाहे बहुत स्पष्ट न हो, पर मूलतः यह मेरी उस भावना से भिन्न नहीं; जिसके कारण मैं शून्य भित्ति पर बुद्ध का चित्र बना देना चाहती हूँ।"[१]

इस साम्य पर अब आलोचकों का ध्यान जाना चाहिए। छायावाद को अलौकिक मात्र समझने का ही कारण है कि भारतीय उपेक्षिता नारी की विश्वासमयी, सहनशीला और अश्रुस्नाता मूर्त्ति ही महादेवी के काव्य में चित्रित होकर भी, उनके काव्य को पूर्वनिश्चित रहस्यवाद के मापदण्डों के अतिरिक्त किसी जीवनजन्य मापदण्डों से नापने की ओर हमारी प्रवृत्ति ही नहीं होती।

महादेवी जी ने कहा है कि उनकी कविता में चाहे नवीन प्रभात के वैतालिकों का स्वर न हो, परन्तु उनकी यह दीपशिखा की लौ रात की सघनता को नष्ट करने में अवश्य समर्थ है। रात के अंधकार को दूर करने की तीव्र कामना महादेवी की कविता को इस देश की मानवतावादी परम्परा को मजबूत करती है और वस्तुतः इसी कल्याणमयी भावना के कारण उसमें इतनी उदात्तता है कि मूलगत अतृप्त वासना खाद बन गयी है। और उसने जिस पुष्प की सृष्टि की है, उसे देखने में मुग्ध दर्शक का ध्यान यदि 'खाद' की ओर नहीं जाता, तो कोई हानि नहीं है। यह तो साधारण सत्य है कि पुष्प के लिए भूमि, जल और खाद की आवश्यकता है, यदि महादेवी जी महाश्वेता अथवा मीरा न होकर, राधा होतीं, तो निश्चित रूप से उनकी कला का स्वर भिन्न होता, किन्तु यदि उन्होंने अपने जीवन की विषम परिस्थिति से आघात खाकर, अपने हृदय-राग को सारे विश्व के लिए अर्पित कर दिया, तो यह साधारण उपलब्धि नहीं है; उस समय जैसे गाँधी जी 'राग' को व्यापक बनाने में सफल हुए थे, उसी प्रकार भाव के क्षेत्र में छायावादी कवि अपनी निजी आशा-आकांक्षाओं के माध्यम से सारे समाज के स्वप्नों और वेदनाओं को वाणी दे रहे थे। महादेवी में भी इसी निजता समाज का, अंतर्मुखता और बहिर्मुखता का, पलायन और संघर्ष का, स्नेह और करुणा का लोकगीतों की, मधुर सरलता और ताजमहलीय अलंकृति का, भाव और कल्पना का, यथार्थ की कसक और स्वप्नों के माधुर्य का तथा गति की चेतना और गंतव्य के आकर्षण का कुछ ऐसा विशिष्ट समन्वय हुआ है कि उनकी गीतियाँ हिन्दी में अपनी अद्वितीयता के लिए प्रसिद्ध हैं।

निस्संदेह महादेवी जी में एकरसता है, वैविध्य भी अधिक नहीं है, किन्तु इसीलिए केन्द्रीयता (सेण्ट्रलिटी) भी उनमें सबसे अधिक है। उनका अपना मार्ग है, अपनी सचिक्कण पदावली है, अपने प्रतीक हैं, बिम्ब हैं, जिनका वे बार-बार प्रयोग करती हैं, किन्तु उनमें पुनरावृत्ति भले ही मिल जाये, भावना की कृत्रिमता अवश्य दुर्लभ है। उनके गीत वस्तुतः जीवन की कठोरता से श्रान्त किसी बन्द कमरे में स्थित दुःखी व्यक्तियों के लिए एक ऐसे वातायन के समान हैं, जो इस जगत् के सम्पूर्ण कार्य-कलाप के आधारभूत तत्व की ओर उन्मुख करके हमें केवल सतही दृष्टि से ही न देखने के लिए प्रेरित करते हैं, जो बाहर की मुक्त वायु के शीतल झोंके से हमें आगामी संघर्ष के लिए प्रस्तुत करते हैं, जो वैयक्तिक कटुता और दुर्व्यवहार से चेतना को कुण्ठित न करके, व्यापक सामाजिक कारणों को खोजकर, एक ऐसे समाज की रचना का संदेश देते हैं, जो मानवीय करुणा पर आधारित हो, केवल बाह्य साम्य विधान पर नहीं—

"एक बहुत बड़े मानव समूह को हमने ऐसी दुर्दशा में रख छोड़ा है, जहाँ साहित्य का प्रवेश कल्पना की वस्तु है। वह समाज, हृदय की बात समझता है, पर व्यक्ति के माध्यम से।....ऐसे समाज में काव्य पहुँचाने से अधिक महत्त्व का प्रश्न मनुष्य पहुंचाना है जो अपनी सहज संवेदना से उनके हृदय तक पहुंचकर बुद्धि की खोज खबर ले सके।"[१]

यह सहज मानवीय संवेदना ही महादेवी जी की कविता का प्राण है; इसी से उसे विशिष्टता प्राप्त हुई है; इसी के कारण उनकी कला उनकी कविता को सर्वसाधारण के योग्य बनाये रखती है, इसी के कारण वह मनुष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण करुण भावना को जाग्रत करती है। क्रौञ्चवध से दंशित बाल्मीकि की चेतना की अभिव्यक्ति से जिस मानवतावादी

१—दीपशिखा, ६२

१—दीपशिक्षा ६३।

काव्य का जन्म हुआ; उसका दूसरा छोर छायावाद में प्रकट हुआ है। जब तक मनुष्य को मनुष्य से प्यार रहेगा, जब तक नारी और पुरुष के भावुक हृदय उदात्त प्रेम और परस्पर सम्मान के भाव से झंकृत होते रहेंगे; जब तक प्रकृति की अनेकानेक भव्य छवियाँ हमें मुग्ध करती रहेंगी और जब तक मनुष्य अपनी वैयक्तिक चेतना तथा सामूहिकता के अंतर्विरोधों के विरुद्ध जागरूक होकर उनका समाधान प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहेगा, तब तक इस युगानुयुगों से चले आने वाले अनादि संघर्ष की प्रक्रिया में महादेवी जी का कृतित्व एक पाथेय का कार्य करता रहेगा और जब कभी मनुष्य अपनी सम्पूर्ण असंगतियों पर विजय प्राप्त कर लेगा, तब भी स्नेह से भीगे इन गीतों का आनन्द हमें द्रवित करता रहेगा; मानवता की यह अमर निधि कभी विस्मृत नहीं हो सकती—

दूसरी होगी कहानी शून्य में जिसके,
मिटे स्वर धूलि में खोई निशानी।
आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित।
मोतियों की हाट और,
चिनगारियों का एक मेला।

महादेवी के काव्य में वेदना का वैभव

•

डॉ० कन्हैयालाल सहल

रवि बाबू ने Personality नामक व्याख्यान-संग्रह में एक स्थान पर लिखा है कि हमारी सबसे बड़ी आशा ही यह है कि संसार में दुःख का अस्तित्व है। बच्चे को माता में पूर्ण विश्वास रहता है, इसीलिए तो वह चिल्लाता है। यदि ऐसा न हो तो उसकी वाणी मूक हो जायगी। इसी प्रकार मनुष्य की अपूर्णता का अर्थ ही यह है कि पूर्णता में उसकी श्रद्धा है। इस दुःख से प्रेरित होकर ही तो मनुष्य उपासना द्वारा अपने ही हृद्देश में प्रच्छन्न असीम परमात्मा के द्वार खटखटाता है, जिससे उसकी गहन अन्तर्वृत्ति का उद्‌घाटन होता है और बिना तर्क-वितर्क के वह आदर्श की सचाई में विश्वास करने लगता है।

बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों[1] में से दुःख को प्रथम आर्य सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार सांख्य दर्शन के चतुर्व्यूहात्मक मोक्ष शास्त्र[2] में भी हेय अर्थात् दुःख पहला व्यूह माना गया है।

एक दृष्टि से देखा जाय तो दुःख विभु का वरदान है, क्योंकि दुःख में चित्त की कठोरता दूर होती है, अहं विगलित होता है, हृदय में करुणा जाग्रत होती है, पाप से डर पैदा होता है और मनुष्य ईश्वरोन्मुख होने लगता है। कविकुलगुरु कालिदास के शब्दों में "भली भाँति तपायें जाने पर लोहा भी मृदुता धारण कर लेता है, प्राणधारियों का तो कहना ही क्या है।"

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु।

रहस्यवादी निर्गुण संतों तथा कवियों ने भी दुःख की महिमा का गान किया है। कबीर कहते हैं कि जब मैं सुख की खोज कर रहा था, तभी दुःख से मेरा साक्षात्कार हो गया। मैंने सुख से विदा लेते हुए कहा कि हे सुख! अब तुम अपने घर जाओ, अब तो हम जाने और हमारा दुःख।

कबीर सुख को जाइ था, आगै आया दुक्ख।
जाहि सुक्ख घरि आपणैं, हम जाणौं अरु दुक्ख॥

कबीर की दृष्टि में 'सुखिया संसार' तो खाने और सोने में मस्त रहता है, कबीरदास जैसा 'दुखिया' ही जाग्रत रहता है और दुःख सहता है।[1] सुख में परमात्मा के दर्शन नहीं होते, दुखी व्यक्ति ही अपने आँसुओं द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होता है।[2]

जायसी भी दिव्य लोक की प्राप्ति में दुःख की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं।

"एहि रे पंथ सो पहुँचै, सहै जो दुक्ख वियोग।"

[1]—(चार आर्य सत्य) १. दुःख २. दुःख-हेतु ३. दुःख-निरोध ४. दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपत्ति (मार्ग)

[2]—(सांख्य के चतुर्व्यूह) १. (त्रिविध दुःख) २. हान (दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति) ३. हेय हेतु (अविद्या) ४. हानोपाय (तत्त्व ज्ञान)

[1]—सुखिया सब संसार हैं, खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥

[2]—हँसि-हँसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
जे हाँसें ही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागनि कोइ॥

किन्तु मीरा की निम्नलिखित उक्ति को हम परमार्थता अथवा गंभीरता के रूप में ग्रहण नहीं कर सकते।

"जो मैं ऐसा जानती, प्रीत करे दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत करे ना कोय॥"

कोई भी सच्चा प्रेमी दुःख के भय से प्रेम करना नहीं छोड़ता। कबीर के शब्दों में वह भली भाँति जानता है कि प्रेम का घर खाला का घर नहीं होता, इसमें तो वही प्रवेश कर सकता है, जो अपना सिर काट कर पृथ्वी पर रख देता है।[1] इस सम्बन्ध में तो टेनीसन की वह उक्ति सार्थक प्रतीत होती है, जहाँ कहा गया है।

It is better to hove loved and lost
Than never to have loved at all.

वस्तुतः जैसा जायसी कहते हैं, दुःख में जो प्रेम का माधुर्य है, उसी के कारण प्रेमी को सुख और विश्राम की प्राप्ति होती है।

"दुख भीतर जो प्रेम मधु जामा।
सुख पाइअ मन होइ बिसरामा॥

हिन्दी के छायावादी कवि भी दुःख के गौरव का गान करने में किसी से पीछे नहीं रहे हैं। श्री सुमित्रानन्दन पन्त दुःख के बिना सुख को निःसार समझते हैं, बिना आँसू के जीवन उनकी दृष्टि में भार है; दुनिया में दीनता और दुर्बलता के कारण ही क्षमा, दया और प्यार दिखलायी पड़ते हैं।

बिना दुःख के सुख है निःसार
बिना आँसू के जीवन भार,
दीन दुर्बल है रे संसार
इसी से क्षमा, दया औ प्यार।

---

[1]—कबिरा यहि घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुँइँ धरै, सो पैठे एहि माहिं॥
दुख इस मानव आत्मा का रे, नित का मधुमय भोजन।
दुख के तम को खा-खा कर, भरती प्रकाश से वह मन।
(पन्त)

जो व्यक्ति सदा सुखी रहता है, वह दूसरों के दुःखों की ओर कभी ध्यान नहीं देता। "आँसू" के कवि के शब्दों में—

बेसुध जो अपने सुख से
जिनकी हैं सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको
सुनने को करुण कथाएँ ?

खाली न सुनहली संध्या माणिक मदिरा से जिनकी
वे कब सुनने वाले हैं दुख की घड़ियाँ भी दिन की।

प्रसिद्ध है कि कुन्ती से जब वर माँगने के लिए कहा गया तो उसने भगवान से दुःख का ही वर माँगा था, क्योंकि कबीर के शब्दों में दुःख के समय ही मनुष्य भगवान् को याद करता है।

सुख के माथे सिल पड़ो, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, पल-पल नाम रटाय॥*

यही कारण है कि साधक तथा भक्त दुःख को अभिशाप न समझकर भगवान का वरदान समझते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख हुआ है, जिनमें 'आर्त' की गणना सर्वप्रथम की गई है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी भगवत्स्मरण में भले ही कुछ देर कर दें, किन्तु आर्त के लिए विलम्ब असह्य हो उठता है।

जब गजेन्द्र के प्राण संकट में पड़ गये और ग्राह से अपने छुटकारे का जब कोई उपाय उसे न सूझा, तो उसने भगवान की शरण लेते हुए कहा—

"भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि।" ८।२।३३॥ अर्थात् (कालरूपी सर्प से) भयभीत तथा शरणागत की जो रक्षा करता है एवं जिसके भय से काल चारों ओर मैं भगा करता है, मैं उसी परमेश्वर की शरण लेता हूँ।

Danger past, God is forgotten.

गजेन्द्र की पुकार पर जब भगवान उसके स्थान पर पहुंचे तो गजेन्द्र ने कमल सहित सूँड़ को ऊपर उठाकर आर्त स्वर में पुकार कर कहा।

"उत्क्षिप्य सांबुजकरं गिरमाहकृच्छ्रा,
न्नारायणाऽखिलगुरो भगवन् नमस्ते।"

हे नारायण, हे सकल जगत् के गुरु भगवन्! आपको मेरा नमस्कार है।

जब भगवान ने उस पीड़ित गजराज को देखकर यह समझा कि गरुड़ यथासमय उस तक नहीं पहुंच सकेगा तो गरुड़ से उतर कर वे तत्काल ही उसके पास पहुंचे और उसका उद्धार किया।

श्रीमद्भगवद्गीता जैसे विश्वविश्रुत ग्रन्थ का प्रारम्भ जो अर्जुन के विषाद से होता है, वह सर्वथा उचित है, क्योंकि विषाद अथवा दुःख ही ऐसी तीव्रानुभूति है, जिसके द्वारा आत्मजागर्ति तथा आत्मोपलब्ध होती है। गीता के प्रथम अध्याय को केवल अर्जुन विषाद न कहकर "विषाद योग" की संज्ञा दी गयी है। "योग" शब्द के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ० राधाकृष्णन् लिखते हैं।

अध्याय का अन्त निराशा और दुःख में होता है, इसे भी "योग" कहा गया है, क्योंकि आत्मा का यह अंधकार भी आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रगति के लिए एक आवश्यक सोपान है। हममें से अधिकांश लोग प्रश्नों का सामना किये बिना ही सारा जीवन बिता देते हैं। कभी बिरले संकट के क्षणों में ही, जब हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ ढेर हुई हमारे पैरों के पास पड़ी होती हैं, जब हमें पश्चात्ताप तथा व्यथा के साथ अनुभव होता है कि हमने अपने जीवन की क्या दुर्दशा कर डाली है, हम चिल्ला उठते हैं ("हम यहाँ किसलिए हैं? और हमें यहाँ से कहाँ जाना है?" "मेरे परमात्मा, मेरे परमात्मा, तूने मुझे क्यों त्याग दिया है?" द्रौपदी चिल्ला उठती है) "न पति मेरे हैं, न पुत्र, न सम्बन्धी, न भाई, न पिता मेरे हैं और हे कृष्ण, तुम भी मेरे नहीं हो।"

नैव मे पतयः सन्ति, न पुत्रा न च बान्धवाः।
न भ्रातरो न च पिता, नैव त्वं मधुसूदन॥

अर्जुन एक महान आत्मिक तनाव में से गुजर रहा है। जब वह अपने आपको सामाजिक दायित्वों से पृथक् कर लेता है और पूछता है कि उसे समाज द्वारा उससे प्रत्याशित कर्तव्यों को क्यों पूरा करना चाहिए, तो वह अपने सामाजिकीकृत आत्मा को पीछे कर देता है और अपने आपको व्यष्टि, एकाकी और सबसे पृथक् रूप में पूरी तरह अनुभव करता है। वह संसार के सम्मुख भयावनी अवस्था में पटक दिये गये एक अजनबी व्यक्ति के समान खड़ा होता है। यह नयी स्वतन्त्रता चिन्ता, एकाकीपन, सन्देह और असुरक्षा की गम्भीर अनुभूति उत्पन्न कर देती है। यदि उसे सफलतापूर्वक काम करना हो, तो उसे इन अनुभूतियों पर विजय पानी ही होगी।"[1]

वर्तमान हिन्दी कवियों में यदि दुःख को सर्वाधिक गौरव प्रदान किया है तो महादेवी वर्मा ने। दुःख को 'जीवन के काव्य' के रूप में ग्रहण करती हुई वे लिखती हैं। "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो, सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी नहीं पहुंचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख को सब बाँट कर। विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार कि जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।" ('रश्मि' की भूमिका)

दुःख वस्तुतः एक बड़ी तीव्र अनुभूति है, जो रवि बाबू के शब्दों में मनुष्य को आत्मोपलब्धि अथवा "आत्म संप्राप्ति" की ओर ले जाती है। दुःख यदि अप्रिय है तो साहित्य में उसे उपभोग्य क्यों ठहराया गया है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए गुरुदेव ने लिखा है कि दुःख अप्रिय नहीं है, इसका प्रमाण स्वयं साहित्य है। जो वस्तु हमारे मन पर जबर्दस्त छाप छोड़ जाती है, उसका प्रभाव भी बड़ा प्रबल होता है। जिस वस्तु का हम विशेष रूप से अनुभव करते हैं, उसके द्वारा हम अपने आपको ही प्राप्त करते हैं। दुःख एक ऐसी

[1]—श्री विराज एम० ए० द्वारा अनूदित।

उत्कट अनुभूति है जो हमें सदा सचेत बनाये रखती है। इसलिए महादेवी के काव्य में यदि दुःख का प्राधान्य हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। और फिर उन पर तो भगवान बुद्ध के दुःखवाद का बड़ा प्रभाव है, जिसे वे निम्नलिखित शब्दों में स्वीकार कर चुकी हैं।

"बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार का दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। ('रश्मि' की भूमिका) किन्तु महादेवी का यह कथन कि जीवन में मुझे अतिशय प्यार-दुलार मिला, जिसकी प्रतिक्रिया के परिणाम-स्वरूप ही मेरा काव्य वेदना-बहुल हो गया, हिन्दी के अधिकांश आलोचकों को ग्राह्य नहीं हुआ। हिन्दी के सतर्क तथा समर्थ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी महादेवी जी की वेदना के सम्बन्ध में यही कहना पड़ा—

"वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी-ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।"

कवयित्री की रचनाओं में वेदना और दुःख के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं। 'विकसते मुरझाने को फूल, उदित होता छिपने को चन्द 'आदि द्वारा महादेवी ने जीवन की नश्वरता के चित्र भी खींचे हैं। निम्नलिखित मार्मिक पंक्तियाँ उदाहरण के लिए लीजिए।

मैं नीर भरी दुख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

किन्तु नश्वरता के चित्रण से ही उनके काव्य को निराशा-मूलक समझ लेने की भ्रांति नहीं होनी चाहिए जैसा कि नीचे के पद्य से स्पष्ट है—

चिन्ता क्या है हे निर्मम।
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अंधेरा।

स्वयं कवयित्री के शब्दों में "जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण में निराशा का कुहार है या व्यथा की आर्द्रता, यह दूसरे ही बता सकेंगे, परन्तु हृदय में तो मैं आज निराशा का कोई स्पर्श नहीं पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया ही देखती हूँ।" आस्था का धनी कोई भी रहस्यवादी कवि निराश नहीं होता। उसके अश्रुओं में निराशा का स्वर नहीं, आश्वासन का स्वर गूँजता है।

"Blessed are they that weep, for they shall be comforted"

भगवान जब किसी के हृदय को दिव्य ज्योति से आलोकित करना चाहता है, तो पहले उसे तमसाच्छन्न कर देता है। प्राकृतिक जगत् में भी हम देखते हैं कि 'दुःख की पिछली रजनी के बीच सुख का नवल प्रभात विकसित होता है।' पौ फटने से पहले नभ में घना अंधकार छाया रहता है। महादेवी के करुणामय को भी तम के परदों में आना अच्छा लगता है।

करुणामय को भाता है तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियो! तुम पल भर को बुझ जाना।

किन्तु कभी-कभी साधक को यह अनुभूति होती है कि उसके चारों ओर घोर तम छाया हुआ है, क्षितिज पर घनघोर घटाएँ घिर आयी हैं, प्रतिकूल वेग से ऐसी हवा चलने लगी है, जिसमें पर्वतमूल भी हिले जाते हैं, सागर बारम्बार गरजने लगा है, ऐसी स्थिति में, जब साहस का भी अन्त होने लगा है, उस पार कौन पहुंचा देगा? ऐसे समय कोई कान में आकर कह जाता है कि 'डूब कर ही पार हो जाओगे, विसर्जन ही कर्णाधार है और वही उस पार पहुंचा देगा।' वस्तुतः साधक जब तक अहं का विसर्जन नहीं करता, तब तक उसे दिव्य लोक की झाँकी नहीं दिखलायी पड़ती। खुदी का 'विसर्जन' किये बिना खुदा प्राप्त नहीं हो सकता। अहं के विसर्जन की यह प्रेरणा तभी स्फुरित होती है, जब साधक दुःख के पारावार में डूबने लगता है, जब उसका वह नक्षत्र-प्रकाश भी बुझने लगता है, जिसमें उसकी आशा चमकती है। आध्यात्मिक विकास के लिए दुःख निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण सोपान है।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो अपने साध्य पर पहुंच चुका हो, जहाँ जीवन की विषम समस्याओं के साथ संघर्ष करने

मनुष्य के बीच में जो खाईं पड़ जाती है, उसे पाट देने का पुनीत कार्य दुःख द्वारा ही सम्पन्न होता है, सुख तो इस प्रकार की खाईं को और भी गहरा कर देता है। इस सम्बन्ध में यीट्स (yeats) की निम्नलिखित उक्ति ध्यातव्य है—

Tragedy must always be a drowning and breaking of the dykes that separat man from man, and it is upon these dykes comedy keeps house.

साधना का दीपक जल-जल कर जितना क्षीण होता रहता है, आराध्य उतना ही निकट आता जाता है—

तू जल-जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय।

वेदना के कारण मनुष्य यह इच्छा करने लगता है कि मुझे भले ही दुःख मिलता रहे किन्तु, संसार सुखी रहे। जगत् को सुखी बनाने के लिए वह सहर्ष आत्म-बलिदान करता रहता है। महादेवी जी अपने आराध्यदेव को संबोधित करती हुई कहती हैं—

मेरे हँसते अधर नहीं, जग की आँसू-लड़ियाँ देखो।
मेरे गीले पलक छुओ मत, मुरझाई कलियाँ देखो।
हँस देता नव इन्द्रधनुष की,
स्मित में घन मिटता-मिटता
रँग जाता है विश्व राग से,
निष्फल दिन ढलता-ढलता,
कर जाता संसार सुरभिमय,
एक सुमन झरता-झरता,
भर जाता आलोक तिमिर में,
लघु दीपक बुझता-बुझता,
गल जाता लघु बीज असंख्यों,
नश्वर बीज बनाने को,
तजता पल्लव वृन्त पतन के,
हेतु नये विकसाने को,
मेरे बन्धन आज नहीं प्रिय,
संसृति की कड़ियाँ देखो।

बादल मिटता-मिटता इन्द्रधनुष के रूप में हँस देता है, दिन ढलता-ढलता विश्व को राग से रंजित कर जाता है, झरता-झरता पुष्प संसार को सुरभिमय कर जाता है, बुझता-बुझता लघु दीपक तिमिर में आलोक भर जाता है। लघु बीज अपने को गला कर असंख्य बीजों को जन्म देता है, पुराना पत्ता अपने को गिरा कर नये पत्तों का विकसित करता है।

महादेवी की वेदना करुणा और आत्मदान से तरंगायित है। जैसा पहले कहा जा चुका है, उनकी वेदना के मूल में निराशा नहीं, किन्तु वह करुणा है, जो दूसरों के शूलों को फूलों के रूप में परिवर्तित कर देती है, जो दूसरों के संताप को शीतल चंदन का रूप देने के लिए आकुल-व्याकुल है। इस प्रकार की करुणा के आदर्श भगवान बुद्ध हैं, जो बेसुध मानव को जगाने के लिए आज भी प्रेरणा का काम देते हैं। महादेवी के शब्दों में—

जाग बेसुध जाग।
अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक हार.
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार,
शूल जिसने फूल छू, चन्दन किया संताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पदचाप,
करुणा के दुलार जाग।

वह वेदना धन्य है, जिसके कारण मनुष्य करुणा से द्रवित होकर आत्म-बलिदान द्वारा दूसरों को सुखी देखना चाहता है, वह वेदना धन्य है, जिसके कारण वह संसृति के क्रन्दन को अपने जर्जर जीवन में भर लेना चाहता है,[1] वह वेदना धन्य है जिसके कारण वह सौ-सौ लघुतम बन्धनों में मुक्ति को बाँध लेना चाहता है,[2] जिसके कारण वह यह वरदान माँगने लगता है कि सौ-सौ बन्धनों की कामना लेकर मुक्ति का आगमन हो[3] और निश्चय ही धन्य है वह वेदना की परा-काष्ठा जिसमें साधक पीड़ा में ही परमेश्वर को ढूँढ़ने लगता है और परमेश्वर में भी पीड़ा ढूँढ़ने की अभिलाषा रखता है।[4]

---

[1]—भरती में संसृति का क्रन्दन
हंस जर्जर जीवन अपने में।

[2]—प्रिय मैं लेती बांध मुक्ति
सौ-सौ लघुतम बन्धन अपने में।

[3]—आज वर दो मुक्ति आवे बन्धनों की कामना ले।

[4]—तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा।

महादेवी का काव्य-दर्शन

डॉ० विमल कुमार जैन

महादेवी जी आधुनिक काल के छायावादी कवियों में एक ख्याति प्राप्त प्रतिनिधि कवयित्री हैं, जिनकी काव्य कृतियों ने लक्ष लक्ष सहृदयों के मानस में आनन्द तरङ्गों को कल्लोलित किया है तथा संवेदना की कोमल कलियों को प्रस्फुटित किया है क्योंकि उन्हीं के अनुसार उनकी रचनाओं में व्यष्टिगत दुख ने समष्टिगत गम्भीर वेदना का रूप ग्रहण कर लिया है तथा प्रत्यक्ष के स्थूल रूप ने एक सूक्ष्म चेतना का आभास दिया है।

यद्यपि इन्होंने गद्य-पद्यात्मक दोनों ही प्रकार की रचनाएँ कीं तथा इनकी गद्य भी काव्य का सा ही रसास्वाद कराती है जैसा कि इनकी 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' पुस्तकों से प्रतीत होता है, तथापि इन्हें अमर बनाने वाले इनके काव्य-ग्रन्थ ही हैं, जो इस प्रकार हैं—नीहार, रश्मि, नीरजा, साँध्यगीत, और दीपशिखा, इनमें से प्रथम चार 'यामा' नामक संग्रह में संकलित हैं।

'यामा' से अभिप्राय याम-संग्रह है, अर्थात् नीहार आदि चार याम हैं। नीहार से तात्पर्य कुहरे से है तथा रश्मि से किरण नीरजा से कमलिनी और सान्ध्यगीत से संध्या के गीत है। इस प्रकार इनकी सार्थक संज्ञा से विदित होता है कि जीवन के अहोरात्र के आठ प्रहरों में से ये दिवस के चार प्रहर हैं। उषाकाल में नीहार की धुन्ध से सम्पूर्ण वसुधा आच्छन्न होती है, पुनः भगवान भास्कर अपनी भास्वर रश्मियों से संसार को आलोकित करते हैं, जिससे नीहार का सिक्त साम्राज्य समाप्त हो जाता है और उल्लास व्याप्त हो जाता है, कमलिनियाँ विकसित हो जाती हैं तथा एक लम्बे समय तक विश्वव्यापार चलता है। तदनन्तर अहोरात्र की सन्धि होती है और सन्ध्या अपने धूसर वेष में विश्व-व्यापार को समाप्त कर मलिनता व्याप्त करा देती है।

इसी प्रकार नीहार में विषादपूर्ण वातावरण है। महादेवी जी का हृदय संसार-दुख को देखकर विषाद से भर गया है अतः वह एक अज्ञात प्रियतम की खोज में निकल पड़ा है परन्तु मार्ग निश्चित नहीं कर पाता। रश्मि में नीहार का विषाद मालिन्य अपसृत हो गया है। इसमें सर्वत्र उल्लास परिव्याप्त है तथा इसके गीतों में प्रेमी और प्रेयसी के मध्य व्याप्त अनुराग की बड़ी ही सुन्दर व्यञ्जना है एवं विरह वेदनाएँ भी आशा का संचार होने से एक मधुर वातावरण है रश्मि के पश्चात् नीरजा का विकास होता है। इस काव्य में हृदय-कमलिनी की भाव-पंखुरियाँ बड़े ही गूढ़ किन्तु मनोहारी ढंग से खोली गई हैं। प्रभात से सन्ध्या तक का समय भी लम्बा होता है, अतः इसमें गीतों की संख्या भी अन्य कृतियों की अपेक्षा अधिक है। सान्ध्य गीत में पुनः विषाद दृष्टिगोचर होता है।

नीहार की रचनाओं से महादेवी जी की वैराग्य-भावना व्यक्त होती है। संसार का दुख देखकर वे संसार से पलायन कर असीम की शरण लेती हैं। वे उसके सौंदर्य से मुग्ध हो जाती हैं और उसे प्रियतम समझ कर अपना दृढ़ सम्बन्ध जोड़ लेती हैं। यहां से अद्वैत की भावना तो प्रारम्भ हो गई है परन्तु विरहिणी विरह-वेदना का आनन्द प्राप्त करने के लिये पृथकत्व स्वीकार करती है। रश्मि की अधिकाँश रचनाओं में ईश्वर, जीव और प्रकृति

का सम्बन्ध बतलाया गया है। यह इनकी प्रौढ़ कृति है, जिसमें भाषा और भाव की सुन्दरतम रूप दृष्टिगोचर होता है। इसमें पूर्णतः अद्वैत की प्रतिष्ठा हुई है। नीरजा नीहार की भाँति अनुभूति-प्रधान काव्य है, जिसमें अद्वैत के शुष्क ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का सरस राग है। प्रेम के लिये पार्थक्य अभिप्रेत है, अतः इसमें महादेवी जी अपने दूरस्थ प्रियतम की विरहिणी बन कर पुनः अपना अस्तित्व स्वीकार करती हैं। सांध्य गीत में प्रेम पक्ष कर उपासना का रूप धारण कर गया है।

'यामा' के इन द्वितीय चार यामों के अतिरिक्त 'दीपशिखा' में जीवन-रात्रि के अवशिष्ट चार याम समष्टि रूप में अभिव्यंजित हैं। इसकी अधिकांश रचनाएँ दीपक पर हैं, जो आत्मा का प्रतीक है। जिस प्रकार दीपक मिलन-बेला (प्रभात) तक जलता रहता है, उसी प्रकार आत्मा को भी मिलन पर्यन्त जलने के लिये इसमें प्रेरणा दी गई है। इस काव्य में प्रतीकों का बड़ा प्रयोग है। दीपक के अतिरिक्त स्नेह प्रेम का, लौ सुख का, प्रकाश आत्म-प्रकाश का, झंझावत विषम बाधाओं एवं मृत्यु का, रात्रि विरह-रात्रि का अन्धकार वेदनाकृत मालिन्य का प्रतीक है।

यद्यपि उपर्युक्त सभी ग्रन्थ मुक्तक-संग्रह हैं, तथापि इनमें एक भाव सूत्र अनुस्यूत् होने से भावों का एक संश्लिष्ट संगठन है।

काव्य-साधना

जिस समय छायावाद अपने पूर्ण विकास पर था, महादेवी जी ने काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया और शीघ्र ही अपनी रचनाओं से ख्याति प्राप्त की। उनकी रचनाओं में छायावाद एवं रहस्यवाद दोनों का ही उज्ज्वल रूप दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के विवेचन में उन्होंने हिन्दी छायावाद के विषय में लिखा है—"बुद्धि की सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति पर बिखरी हुई सौन्दर्य-सत्ता की अनुभूति की, और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख-दुःखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी, जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, छायावाद और अनेक नामों का भार सँभाल सकी।"

इस छायावाद की व्याख्या को यदि एक छोटे से वाक्य में कहा जाय तो इस प्रकार रख सकते हैं कि प्रकृति के विविध सौंदर्यपूर्ण अंगों में व्यापक चेतन सत्ता की छाया का भान होना ही छायावाद है। उपर्युक्त महादेवी जी की परिभाषा में अध्यात्मवाद और छायावाद एक ही तत्व के पर्यायवाची शब्द हैं। अध्यात्मवाद से तात्पर्य रहस्यवाद है या कुछ अन्य यह विचारणीय है। रहस्यवाद के विषय में वे यामा की भूमिका में लिखती हैं—"मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म निवेदन कर देना इस काव्य (छायावाद) का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया।"

महादेवी जी की इन छायावाद एवं रहस्यवाद की परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने से हम इस परिणाम पर आते हैं कि छायावाद में प्रकृति सचेतन प्रतीत होती है जिससे अन्तः उल्लास मिलता है तथा रहस्यवाद में इससे आगे बढ़कर उस व्याप्त विराट सत्ता से सम्बन्ध जोड़ने की तीव्र अभिलाषा होती है। प्रसाद जी ने प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्तिगत चित्सौंदर्य के दर्शन से भिन्न नहीं माना है अतः वे व्यष्टि सौंदर्य दृष्टि को समष्टि-सौन्दर्य-दृष्टि से पृथक नहीं मानते इस प्रकार उनकी दृष्टि में छायावाद और रहस्यवाद में कोई अन्तर नहीं। परन्तु महादेवी जी प्रकृतिपरक व्यष्टि सौंदर्य-दृष्टि को आत्म परक समष्टि सौंदर्य-दृष्टि की प्राथमिक निश्रेणी मानती हैं अतः उनके अनुसार रहस्यवाद छायावाद की पराकाष्ठा है।

महादेवी जी से मान्य रहस्यवाद पर ज्ञान प्रधान उपनिषदों का पूर्ण प्रभाव होते हुये भी वह उनके रहस्यवाद से भिन्न है क्योंकि यहाँ रीति का माधुर्य है। मध्यकालीन भक्तों में से कबीर आदि निर्गुणिए सन्तों के रहस्यवाद में योग की जटिलता और गम्भीर दार्शनिकता थी तथा जायसी आदि प्रेममार्गी संतों के 'रहस्यवाद में' वैष्णव भावना का प्रभाव

था एवं मीरा के रहस्यवाद में साकारोपासना थी। आधुनिक रहस्यवाद, जिसकी महादेवी जी प्रतिनिधि कवयित्री हैं, इन सभी के आँशिक लक्षणों से युक्त हैं अतः यह औपनिषदिक एवं मध्यकालीन रहस्यवाद से विशिष्ट है।

इन्होंने 'यामा' के प्राक्कथन में 'अपनी बात' नामक द्वितीय अंश में आधुनिक रहस्यवाद की रूपोद्भावना के विषय में वेदांत, योग, सूफीमत एवं कबीर के रहस्यवाद की पृथक २ विशेषता बतलाते हुये लिखा है—

"आज गीत में हम जिसे नये हरस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं वह इन सबकी विशेषताओं से युक्त होने पर भी इन सबसे भिन्न है। उसने पराविद्या की अपार्थिवता की, वेदांत के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भावसूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर गली जो मनुष्य के हृदय को अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका, तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।"

इस विवेचन से ज्ञात होता है कि महादेवी जी के अनुसार रहस्यवाद छायावाद का अग्रिम आध्यात्मिक धरातल है, जहाँ मानवीय हृदय सायुज्य का आनन्द लेता है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्रकृति का चित्सौंदर्य मानव-हृदय को आकृष्ट कर उसे एक विराट सत्ता का भान करा देता है और पुनः उसे विमुग्ध कर उससे अभिन्न सम्बन्ध जोड़ने के लिए तीव्र उत्कण्ठा से भर देता है। इस मानसिक स्थिति में पराविद्या की अपार्थिवता भी है और वेदांत के अद्वैत की छाया भी जो कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भावसूत्र से आबद्ध है। उनकी कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव की इस व्याख्या के आधार पर कि वह वैष्णव युग के उच्चतम कोटि तक पहुंचे हुए प्रणय-निवेदन से भिन्न नहीं है, अनेक आलोचकों ने उन्हें वैष्णवी समझकर आधुनिक मीरा भी कहा हैं परन्तु यह विचारणीय है।

मीरा साकारोपासिका थीं जब कि महादेवी निराकारोपासिका हैं। वे गिरिधरलाल के गुणों पर मुग्ध होकर विरहिणी की भाँति तड़पती थीं, वह तड़पन इनमें भी हैं परंतु आलम्बन में भेद है—एक का आलम्बन साकार का सौंदर्य था तो दूसरी निराकार का सौंदर्य है जो प्रकृति के प्रतीकों से ही उद्भासित हो सका है। मीरा की साधना के समान ही महादेवी जी की साधना में दुःखवाद का साम्राज्य है किन्तु मीरा की रहस्य-भावना अन्तर्मुखी थी जिसका आधार संसार से विरति और प्रिय से रति है जब कि इनकी भावना अन्तर्मुखी होती हुई प्रिय की रति पर तो आधृत है परंतु संसार से विरत नहीं। मीरा पर योगी प्रभाव भी था क्यों कि उनके गीतों में शून्य, त्रिकुटी, अनहदनाद और सुषुम्ना आदि नाड़ियों एवं योगियों के चिह्नों का वर्णन है परंतु महादेवीं जी ने योग-साधना को महत्व नहीं दिया। वे प्रकृति के प्रतीकों से अपने प्रियतम की छवि को निहारती हैं, उसमें सुरत भी लगाती हैं और मानसिक उपकरणों से उसकी आरती भी करती हैं परंतु वे काय-साधन एवं चिह्न धारण को मूल्य नहीं देतीं। मीरा में हृदय तत्व की प्रधानता है जब कि महादेवी के काव्य में कल्पना का प्राधान्य होने से उसका आधार बौद्धिक अधिक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीरा और महादेवी की साधना में बड़ा अंतर है। हाँ, एक साम्य है और वह है विरह-वेदना का, दोनों ही विरह में तड़पती हैं और दुख प्रकट करती हैं। महादेवी जी की साधना में दुःख स्वसंवेद्य है अतः इस दुख ने ही उन्हें अज्ञात प्रियतम की ओर उन्मुख किया है। अपने दुःखवाद के विषय में वे 'रश्मि' की भूमिका में लिखती हैं —

"अपने दुःखवाद के विषय में भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुःख धूप छाँही डोरों से बुने हुये जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए भी किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है परंतु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह इसकी प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।"

इन शब्दों से विदित होता है कि जिस दुख से उनमें वेदना जग पड़ी है वह स्वसंवेद्य होता हुआ भी आत्मीय नहीं, वह

विश्व-दुख की प्रतिच्छाया है, जो उनके हृदय-पटल पर आकर पड़ी उन्हें विकल बना गई। यह बात 'आधुनिक कवि' की भूमिका के उनके इन शब्दों से प्रमाणित होती है कि "हृदय में तो निराशा के लिये कोई स्पर्श नहीं पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया देखती हूँ।"

इसका स्पष्टीकरण यामा की भूमिका से हो जाता है, जहां वे लिखती हैं—"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें। किन्तु हमारा एक बूँद आंसू भी जीवन को अधिक भोगना चाहता है परंतु दुःख सबको बांट-कर विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिंदु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

इससे स्पष्ट विदित होता है कि उनकी वेदना संसार दुख की प्रतिक्रिया है, जो उनके हृदय में बचपन से ही भगवान् बुद्ध के जीवन परिचय से संवेद्य हो गया था। रश्मि की भूमिका में उन्होंने यहां भाव व्यक्त भी किया है।

महादेवी जी को दुख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को विश्व से एक अटूट बन्धन में बांध देता है और दूसरा वह जो देश और काल के बंधन में पड़े हुये जीवात्मा का क्रन्दन है। इनकी दुःखाभिव्यक्ति में एक संयम है अतः इनकी विरह-वेदना के प्रकाशन में तुलसीदास एवं गुप्त जी की भाँति परम संपत्ति है। इस अभिव्यक्ति के प्रकाशन-प्रकार को स्पष्ट करते हुये इन्होंने 'सांध्यगीत' के वक्तव्य में गीत को आर्त्त क्रन्दन के पीछे छिपे हूये संयम से बाँधना ही श्रेयस्कर बतलाया है।

इस पर्यालोचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी जी को जीव प्रकृति और ईश्वर पर अटूट विश्वास है। ईश्वर सबका स्रोत है। जीवात्मा ने प्रकृति के वैभव में उस विराट के वैभव को देखा और उसे ऐसा जान पड़ा कि यह सब उसी का सौंदर्य-विभव है, जिसका कि वह स्वयं एक अंश है। बस यही भावना जीव के अंदर ईश्वर के प्रति अद्वैत प्राप्ति के निमित्त तीव्र होती चली जाती है। जीवात्मा का संसार-चक्र में पड़कर ईश्वर से चिर-विभेद हो गया है अतः विरह-तड़पन भी चिरकालीन है और इसी हेतु मिलन के लिये प्रचंड विकलता है। जीवात्मा इसके लिये ईश्वर को प्रियतम मानकर साधना-पथ पर अग्रसर होती है। यही एक तत्त्व है जिसे महादेवी जी ने अपने काव्य में प्रकट किया है यही उनकी दार्शनिकता है। इसका स्वरूप निरूपण हम उन्हीं के कतिपय काव्यांशों से नीचे करते हैं।

महादेवी जी के अनुसार एक असीम ब्रह्म सर्वत्र प्रकाश रूप में व्याप्त हो रहा है और हम सभी क्षुद्र तारकों के समान हैं यदि वह व्यापक प्रकाश है तो हम एक प्रकाश बिंदु हैं और इसी प्रकार वह निराकार साकार बना हूआ है।

तुम असीम विस्तार ज्योति के मैं तारक सुकुमार,
तेरी रेखा रूप हीनता है, जिसमें साकार।

उसी की आभा का कण कांतिमानों को कांति दे रहा है। रात्रि में तमसावृत निस्सीम गगन में टिमटिमाते तारक-दीपकों की ज्योति और निशानाथ की रजत समान ज्योत्स्ना तथा प्रभाकर की स्वर्गीय प्रभापूर्ण राशि उसी की आभाका तो परि-चय दे रहे हैं।

इस प्रकार हम अद्वैत की भावना को उनकी रचनाओं में व्याप्त हुआ देखते हैं। 'रश्मि' में वे एक स्थान पर लिखती हैं—

मैं तुमसे हूं एक-एक है जैसे रश्मि प्रकाश,
मैं तुमसे हूं भिन्न-भिन्न ज्यों घन के तड़ित विलास।

अर्थात् समस्त संसार उसी प्रकाश पुञ्ज की रश्मियाँ हैं अतः हम एक ही हैं। यदि भिन्न भी हैं तो उसी प्रकार जैसे वारिद से विद्युत जिनकी भिन्नता में भी एकरूपता है।

महादेवी जी उस असीम को किसी एक स्थान पर सीमित हुआ नहीं देखतीं और न संसार को ही मिथ्या मानती हैं। वे ईश्वर और जीवात्मा के बीच एक आँख मिचौनी के खेल की सी झलक पाती हैं परन्तु वह विश्वात्मा कौन है, इसका उन्हें निश्चय नहीं—

शून्य काल से पुलिनों पर आकर चुपके से मौन,
इसे बहा जाता लहरों में वह रहस्यमय कौन।

वह रहस्यमय कौन है? कौन है वह जो रात्रि के नीरव प्रहर में जब चन्द्र रश्मियाँ कुमुद की वेदना को हरती हैं और पवन के स्पर्श से चकित अनजान सी तारिकायें चौंक पड़ती हैं तब दूर-दूर कहीं उस पार सङ्गीत सा उन्हें बुलाया करता है—

कुमुद दल से वेदना के राग की,
पोंछती जब आँसुओं से रश्मियां।
चौंक उठती अनिल से विश्वास छू,
तारिकायें चकित सी अनजान सी।
तब बुला जाता मुझे उस पार जो,
दूर से सङ्गीत सा वह कौन है।

यदि कोई हो, अलक्ष्य रूप से संकेत भी करे और मौन वाणी में बुलाये भी पर मिल न सके तो मिलन की चाहना उत्पन्न हो जाती है और फिर यही चाहना चिरवेदना का कारण बन जाती है। महादेवी जी भी उसी चिरवेदना में मग्न हैं। वे प्रिय की स्मृति में दीप-शिखा पर शलभ की भांति जलने को ही जीवन का सर्वस्व मानती हैं। वे चाहती हैं कि दीपक की भाँति युग युगों तक जलती रहें और अपने आराध्य की चिर अनुरागिनी बनी रहें—

दीप सी युग युग जलूँ,
वह सुभग इतना बता दे।
फूँक से उसकी बुझूँ,
तब क्षार ही मेरा पता दे?
वह रहे आराध्य चिन्मय,
मृणमयी अनुरागिनी मैं।

उन्हें पीड़ा ही प्रिय है अतः वे पीड़ा में ही उसे खोजना चाहती हैं और चाहती हैं केवल प्यासी आँखों में नित्य आंसुओं का सागर, इसके लिये वे तृप्त का कण भी नहीं चाहती—

मेरे छोटे जीवन में,
देना न तृप्ति का कण भर।
रहने दो प्यासी आँखें,
भरती आँसू से सागर।

हम सब और वह एक दिन एकाकार थे परंतु वियुक्त होकर पृथक् हो गये। जब ज्ञात हुआ तभी से जीवन द्रवित होकर विरहाग्नि से वाष्प हो बदली बन गया है। अब तो जीवन की चेष्टाओं में भी जड़ता छा गई है। करुण क्रन्दन में भी इतना आकर्षण हो गया है कि विश्व आहत होकर भी मुग्ध हो गया है तथा नेत्रों में दीपक से जल रहे हैं और पलकों मे तरंगिणी तरंगें ले रही हैं। इस प्रकार के भाव अनेक गीतो व्यक्त हुये हैं।

इन वेदनापूर्ण गीतों से स्पष्ट विदित हो रहा है कि महादेवी जी के मन में कितना विरह दुख भरा पड़ा है, उनका काम तो निरंतर जलना है और वह हो रहा है परंतु प्रियतम फिर भी द्रवित नहीं हुआ है अतः वह निष्ठुर अरूप की अर्चना आरंभ करती हैं। यह अर्चना वाह्य रूप से नहीं है। उसमें लघुतम जीवन ही प्रिय का सुन्दर मंदिर है और श्वासें ही अभिनंदन है अश्रु, अर्घ्य, रोम, अक्षत् और वेदना चंदन है तथा स्नेह भरा मन ही दीपक, लोचन-तारक ही विकसित कमल और स्पंदन ही जलती धूप है, एवं पलकों का नर्त्तन तथा 'प्रिय प्रिय' जपते हुये अधरों का ही ताल है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनंदन रे
पद-रज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे
मेरे दृग से तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे
धूप बने उड़ते रहते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे
प्रिय-प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे

इससे हमें निराकार की मानसिक अर्चना का स्पष्ट संकेत मिल रहा है, जिस पर वैष्णवी भावना का प्रभाव भी है।

महादेवी जी की साधना में प्रकृति का भी बड़ा हाथ रहा है, यद्यपि इन्होंने प्रकृति का चित्रण उस रूप में नहीं किया, जिस रूप में पंत जी ने किया है। इन्होंने प्रकृति का अवलम्बन ले बड़े ही मनोहारी चित्र अंकित किये हैं।

अनेक स्थलों पर तो प्रकृति ही उनके भाव-चित्रों की पृष्ठभूमि है उनके सुख दुख एवं आशा-निराशा का प्रकटीकरण प्रायः प्रकृति के आरोपों द्वारा ही हुआ है निम्न पंक्तियों में अलक्ष्य प्रियतम के प्रति प्रकृति में प्रतिबिम्बित सुखोद्भूत आत्म-शृङ्गार का भव्य चित्र दर्शनीय हैं—

जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु बयार।
रञ्जित कर दे यह शिथिल चरण ले
नव अशोक का अरुण राग।
मेरे मण्डन को आज मधुर ला
रजनी गन्धा का पराग।
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार।
पाटल से सुरभित रङ्गों से रङ्ग दे
हिम सा उज्ज्वल दुकूल।
गुथ दे रशना में अलि गुञ्जन-
से पूरित करते बकुल फूल।
रजनी से अञ्जन माँग सजनि
दे मेरे अलसित नयन सार

इसी प्रकार और भी अनेक चित्र प्रकृति के प्रतीकों से चित्रित किये गये हैं किन्तु उनमें प्रकृति काव्य का वाह्य शृंगार नहीं वरन् अध्यात्म प्रकाशन का माध्यम है। प्रतीकों में रात्रि विरहरात्रि का, अन्धकार विरहजन्य विवाद का, उषा उल्लास का, दिवस दीर्घ विकास का, वर्षा करुणा का, ग्रीष्म क्रोध का, पतझर दुख का और वसन्त सुख का प्रतीक है। ऐसे और भी अनेक प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। महादेवी जी की इस काव्य-साधना का साध्य सत्य है और साधन सौंदर्य है। सत्य अपनी एकता में असीम रहता है और सौंदर्य अपनी अनेकता में अनंत, इसीलिये सौंदर्य के परिचय से सत्य की विस्मयकारक पूर्ण स्थिति तक पहुंचने का क्रम आनन्द की तरङ्गें उठाता हुआ अग्रसर होता है।

यहाँ तक हमने महादेवी जी की काव्य-साधना में भाव पक्ष पर विचार किया, अब तनिक कला पक्ष पर भी दृष्टि डालना समुचित होगा।

कलापक्ष

महादेवी जी ने प्रायः अपनी समस्त काव्य रचनाएँ गीतों में ही कीं। हिन्दी में गीत-परम्परा विद्यापति से प्रारम्भ होकर कबीर, सूर, तुलसी एवं मीरा की रचनाओं में होती हुई आधुनिक काल तक आई। हाँ, रीति काल में भक्तों के अतिरिक्त अन्य कवियों के द्वारा गीतों का निर्माण न हुआ। इस पूर्ववर्ती गीत-शैली एवं आधुनिक गीत-शैली में एक अंतर है और वह यह है कि पूर्ववर्ती पदों में राग रागिनियों का व्यवहार हुआ था परन्तु आधुनिक काल के कवियों ने इन्हें महत्व नहीं दिया, हाँ सङ्गीत को अवश्य अपनाया। गुप्त, प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी आदि सभी कवियों ने इस नूतन प्रणाली को ही ग्रहण किया। इन्होंने जिन गीतों की रचना की वे प्रायः मात्रिक छन्दों के ही अंतर्गत आते हैं।

महादेवी जी के गीति अन्य आधुनिक कवियों से एक विशेषता रखते हैं कि उन्होंने मात्रिक छंदों के अतिरिक्त अनेक लोक गीतों के भी प्रयोग किए हैं। महादेवी जी के गीत शीघ्र ही हृदय में उतर जाते हैं, केवल कुछ ही गीत ऐसे हैं, जो पहले बुद्धि से चर्चित होते हैं और पुनः हृदयंगत होते हैं। प्रसाद जी प्रसादगुणोपेत होते हुये भी अपेक्षाकृत दुरूह हैं। निराला जी में गंभीर दार्शनिकता है तथा उनके संगीत में वही स्वाद है जो शर्करा में होता है। पंत जी का गीत काव्य मधुर तो है परंतु विविध विषयी है। महादेवी जी के गीतों में प्रायः एक ही आलम्बन के प्रति भावों का उद्गत प्रवाह है. जिसमें तरलता और मधुरता गुण अपने पूर्ण विकास पर हैं। वास्तव में उनके सङ्गीत का स्वाद गूँगे का गुड़ चखना है, जो अनुभूत तो होता हैं परंतु व्यक्त करने के लिए दुष्कर है।

इनकी भाषा बड़ी ही परिमार्जित एवं व्यञ्जनापूर्ण है जिसमें सुगढ़ शब्द-योजना इनकी कला का सुन्दर प्रदर्शन है। इनकी रचनाओं में शृंगार, करुण, अद्भुत एवं शाँत रस उपलब्ध होते हैं, जिनके चित्रण में माधुर्य एवं प्रसाद गुण अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ छविमान हैं। साथ ही उपनागरिका वृत्ति भी तदनुकूल ही है।

इनके गीतों में अलंकार योजना भी बड़े ही नैसर्गिक रूप में हुई है क्योंकि उन्होंने गीति के सौंदर्य को निहित नहीं किया है। छायावादी शैली के अनुसार इन्होंने उपमान भी प्रायः सनातन नहीं वरन् नवीन शैली पर ही प्रयुक्त किये हैं। उदाहरणतः मिम्नलिखित उपमा और रूपक के उदाहरण दर्शनीय है।

उपमा—रात सी नीरव व्यथा, तम सी अगम मेरी कहानी।

× × ×

तरल मोती सा जलधि जब कांपता।

रूपक—घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय!
जलधि-मानस से नव-जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग व्योम में।

इस प्रकार भावपक्ष के अतिरिक्त इनका कलापक्ष भी अत्यन्त मनोहारी है। अन्त में आपके गौरव-प्रदर्शनार्थ हम निराला जी के शब्दों को यहाँ उद्धृत करते हैं, जो इस प्रकार हैं—

हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा-पाणी,
स्फूर्ति चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी।

हम भी इसी रूप में आपको श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

महादेवी का काव्योन्मेष

अरविन्द कुमार देसाई

भारतीय काव्य साहित्य की सबसे प्रमुख विशेषता दर्शाते हुए कहा गया है कि इस देश के समस्त काव्य साहित्य में आस्तिकता की एक प्रबल धारा विद्यमान है, जो इसे सदैव ही एक प्रकार का गौरव प्रदान करती रही है। महादेवी का काव्य भी बुद्धि समन्वित भावुकता, दार्शनिकता और सक्रिय आस्तिकता का काव्य है। उनमें संगीतज्ञ, चित्रकर्त्री तथा कवयित्री की त्रिवेणी का सुन्दर सामंजस्य है। इसीसे उनके गीतों में संगीत के सुरावरोह एवं सूक्ष्मतम अनुभूतियाँ साकार हो पाई हैं। साधनापूत आस्तिक माता से प्राप्त भावुकता को दार्शनिक पिता से चिंतन मिला। सांसारिक वैपरीत्य, सामाजिक संघर्ष और अध्ययन से अतृप्त आकाँक्षा से करुणा को परिपोष मिला। इसके परिणामस्वरूप उलझन, अंधकार तथा विकलता ने उनमें एक विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण किया।

महादेवी में स्थित इस विचित्र व्यक्तित्व ने जिस वेदना की कवयित्री को जन्म दिया उसकी काव्य रचना का प्रारंभ माता की अर्चना व आराधना से अनुप्रेरित होकर हुआ है। उन्होंने स्वयं कहा है, "माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा रचना आरंभ की थी।" इस प्रकार प्रारंभ से ही उनमें अव्यक्त के प्रति आकर्षण, उपासना, कौतूहल, रहस्यात्मकता और अंतस्थ विकलता प्रादुर्भाव दिखाई देता है। अन्य कुछ भक्तों या कवियों की भाँति रहस्यवाद के लिए उन्हें किंचित् भी प्रयास नहीं करना पड़ा प्रतीत होता। उनका यह रहस्यवाद प्राचीन भक्त कवियों के रहस्यवाद से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि इसमें साधना अथवा योग का जरा भी प्रभाव नहीं है, जो कि प्राचीन रहस्यवाद का एक प्रमुख तत्व माना गया है। महादेवी का रहस्यवाद स्वाभाविक और शुद्ध भावात्मक रहस्यवाद है। रूप-रंजन के अनुसार भावात्मक रहस्यवाद के चार प्रमुख भेद प्रेम और सौन्दर्य समन्वित रहस्यवाद, दार्शनिक रहस्यवाद, उपासना-प्रसूत रहस्यवाद एवं प्रकृतिपरक रहस्यवाद—दर्शाये गये हैं। उन सबका सुभग समन्वय प्रारंभ से ही उनकी कविताओं में पूर्ण रूप से देखा जाता है।

'नीहार' कवयित्री का प्रथम काव्य संग्रह है। इस काव्य-संग्रह का हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में सादर अभिनंदन करते हुए परिचय लेखक श्री हरिऔध जीने उनमें अवस्थित प्रतिभा बीज का साक्षात्कार पा लिया था, और इसीलिए लिखा था, "यह ग्रन्थ कवयित्री का आदिम ग्रन्थ है, फिर भी इसमें उनकी प्रतिभा का विलक्षण विकास देखा जाता है। ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष नहीं है, किन्तु इसमें अनेक इतनी सजीव और सुन्दर पंक्तियां हैं कि उनके मधुर प्रवाह में उधर दृष्टि जाती ही नहीं।.......ग्रन्थ की भावुकता और मार्मिकता उल्लेखनीय है। उसका कोमल शब्द-विन्यास एवं रहस्यात्मकता भी अल्प आकर्षक नहीं।"

इस 'नीहार' की कविताओं को पढ़ने से स्वतः ही प्रतीत हो जाता है कि अभी महादेवी की अनुभूति के क्षितिज ने केवल ऊषा की लालिमा का स्पर्श पाया है। इस रक्तिम आभा में मध्याह्न के सूर्य की प्रखरता का आभास भले ही

न मिलता हो, किन्तु कवयित्री के चित्त की सक्रियता, ऊर्मि तथा संवेदना के स्वरूप की झांकी अवश्य मिलती है। स्वयं महादेवी ने अपने इस काव्योन्मेष के स्वरूप को स्पष्ट रूप से परखते हुए लिखा है, "नीहार के रचना काल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल-मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, जैसे किसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली ऊषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।"

'नीहार' के वर्ण्य विषयों में कहीं पर 'कहाँ ?' और 'कौन ?' कुतूहल है, तो कहीं 'नीरव भाषण', 'प्रतीक्षा', 'स्मृति', एवं 'स्वप्न' का उल्लेख है। एक स्थान पर 'मिटने का खेल' है तो अन्यत्र 'आँसू की माला' पिरोई गई है।' कहीं 'मुरझाया फूल' व 'समाधि के दीप से' अनुभूति सक्रिय बनी है तो कहीं पर 'चाह', 'सन्देह', 'अनुरोध' और 'विसर्जन' मुखरित होता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार उनके प्रारंभिक वर्ण्य विषयों में ही अन्तर्मुखता स्पष्ट हो जाती है। कवयित्री के भावों का आलंबन स्थूल संसार की अपेक्षा व्यक्तिगत सूक्ष्म भाव जगत् अधिक रहा है। इससे स्वाभाविक रूप से ही उनके काव्य ने अंग्रेजी साहित्य के रोमांसवाद की विशेषताओं को समाहित कर लिया है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध आलोचक एबरक्रोंबी ने रोमांसवाद की परिभाषा देते हुए लिखा है, "Romanticism is that attitude of the mind in which it withdraws itself from Commerce with the outer world, and turns in upon things it finds within itself." इस अन्तर्मुखी जीवन दृष्टि का उत्स रोमांसवाद अध्ययन-आकर्षण में है, ऐसा नहीं कहा जा सकता और न ही इसमें परंपरा, यांत्रिकता, शब्द-मोह या व्याकरणगत शुद्धता के आग्रह के प्रति क्रान्ति का उन्मेष है। वस्तुतः यह तो एक स्वयं प्रसूत स्रोत है, जो संस्कारजन्य व परिस्थिति से उत्प्रेरित होता है। जिसने काव्य को आकार दिया है और जो रोमांसवाद की गोलाई, तरलता, रमणीयता और भावोच्छ्वास को अपने में समाहित कर सका है। आध्यात्मिक स्तर का प्रकृति प्रेम, उदार मानवतावाद तथा काव्य की स्वच्छन्द अभिव्यक्तिप्रणाली—रोमांस की ये तीनों ही प्रमुख प्रवृत्तियाँ हिन्दी के छायावाद तथा रहस्यवाद में प्रकट हुई हैं। इन सबका सुन्दर समन्वय महादेवी के काव्योन्मेष में बड़ी स्पष्टता और स्वाभाविकता के साथ हुआ है। इसीलिए डाक्टर देवराज ने कवियित्री की एक कविता की आलोचना करते हुए कहा है, "महादेवी की आत्मा जीवन के विशिष्ट दिव्य क्षणों में, या यों कहिए अपनी उन्मुक्तावस्था में सत् चिन्मय तत्व के साथ तादात्म्य की अनुकृति में अनुप्राणित हो उठी। उसे समझ में आया, अब तक मैं कितनी भूल में थी। यदि हम दुनिया को और इसकी सारी हलचल को अपने प्रिय से मिलाकर देखें तो कहाँ दुःख, कहाँ ससीम और असीम। सारा विश्व एक आनन्दोल्लास से थिरकता-सा दिखलाई पड़ेगा। वह मौलिक सत् पदार्थ, जिसे आत्मा ने अपनी उन्मुक्तावस्था में देखा था, उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति इसी रूप में हो सकती थी, जिस रूप में वह काव्य-शरीर धारण कर खड़ी है।" इस सम्बन्ध में डाक्टर नगेन्द्र के ये शब्द भी सर्वथा उचित लगते हैं कि महादेवी ने छायावाद पढ़ा नहीं अपितु अनुभव किया है।

उनके काव्य में आरम्भ से ही रहस्यवाद और छायावाद की सभी विशेषताओं का समावेश पाया जाता है। यही नहीं उनके वेदनापूर्ण काव्य-विहार की नींव भी यहीं से पड़ गई है। "नीहार" का नामकरण भी कदाचित् इसी के कारण बन पड़ा है। प्रकृति में प्रभात होने से पहले जो एक धुंधलापन या तुक्षार छाया रहता है उसी को नीहार कहते हैं। कवयित्री के जीवन में भी किसी अज्ञात के प्रति गहन वेदना और निराशा के भाव भरे हैं। उन्हें अपने उस अज्ञात प्रियतम की ओर प्रेरित करने वाली प्रेरणा तो प्राप्त होती है, किन्तु वहाँ तक पहुंचने का मार्ग अनिर्दिष्ट है। इसीलिए इसमें एक कुतूहल मिश्रित वेदना आदि से अन्त तक परिलक्षित होती है। उनके प्रथम काव्य-संग्रह में तो सचमुच ही यह भावना बड़े उत्तम ढंग से अभिव्यक्त हुई है यद्यपि इस प्रथम काव्योन्मेष में कहीं-कहीं आरंभिक खुरदरापन भी दिखाई देता है। जैसे—

> विश्व में हे फूल! तू सबके हृदय भाता रहा!
> दान का सर्वस्व फिर भी हाय हर्षाता रहा!

(नीहार : पृष्ठ ४४)

और बाल-सुलभ कुतूहल से इसके स्वार्पण तथा सांसारिक निष्ठुरता को देखकर कवियित्री फिर कह बैठती हैं—

जब न तेरी ही दशा पर दुःख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन! हमसे मनुज निःसार को।
(वही : पृष्ठ ४४)

परन्तु इसमें मिलन-विरह की क्रीड़ा के समावेश से यही कुतूहल रहस्यपूर्ण बन गया है और भावना में तरलता आ गई हैं। अपने इस प्रथम काव्योन्मेष में ही महादेवी को आभास मिल गया है कि उनकी अनुभूति-वीणा के तारों की अस्फुट झंकृत विश्ववीणा से मेल नहीं रख पाएँगी। इसीलिए वे इसे विश्ववीणा में विसर्जित कर देने की अभीप्सा व्यक्त करती हैं। संभवतः इसी अभीप्सा के उत्तर में उनकी मधुमय मुरली की तान सुनाई दी। वह भी कहाँ? सिहरते हुए नीरव कूल पर, रात्रि के तमस् में और हृदय की तरलावस्था में। जब कभी जीवन में मिलन का क्षण आया तो उसमें चल चितवन के दूत ने उनकी निर्निमेष पलकों में ऐसे उत्पात मचाये कि उन्हें बरबस कहना पड़ा—

जीवन है उन्माद तभी से निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले!
(नीहार : पृष्ठ १२)

मिलन के इस क्षण के चिरगामी प्रभाव ने 'दिव्य मिलन' का सा कार्य किया है। अब उन्हें प्रकृति की विविध क्रीड़ाओं में भी प्रतीक्षामय संकेत मिलने लगते हैं। मधुमास निर्जन में बिखरा है तो मन्द वतास सूना कोना खोज रहा है। फूलों की पलकें न जाने किसका पंथ देखती हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टि ही किसी की प्रतीक्षा में लीन है।

परिवर्तित संसार के विविध दृश्य देखकर उनके मन में एक विचित्र सी भावना पैदा होती है। कभी उन्हें निशावसान में बुझते तारों के नीरव नयनों के हाहाकार में संसार की अस्थिरता का आभास मिलता है, तो कभी उषा काल में सुनहरे अंचल में रोली बिखरते देखकर लहरों की बिछलन पर मचलती और नाचती किरणों को देखकर पल्लव के सुकुमार घूंघट उठाकर छलकी हुई पलकों से कहती हुई कलियों से 'संसार की मादकता' की मादकता का संदेश मिलता है। किन्तु साथ ही पवन को सौरभदान देकर भी आँखों में धूल पाने वाले फूलों का मर्मर रुदन सुनकर 'संसार की निष्ठुरता' का आभास भी उपलब्ध होता है फलतः प्रकृति से प्रतीक्षा एवं सांसारिक परिवर्तन में निस्सारता पाकर कवयित्री अन्तर्मुखता का ही आश्रय ग्रहण करती हैं। उन्हें वेदना, संताप तथा वियोगावस्था के प्रति एक अद्भुत प्रेम हो जाता है। इसी वेदना, अवसाद व जलन के कारण उन्हें इसी पृथ्वी की चाह उत्पन्न हो गई है। यदि प्रिय की करुणा के उपहार के रूप में वेदनाहीन अमरों का लोक भी मिलता हो तो वह भी उन्हें स्वीकार्य नहीं। इसीलिए तो वे कहती हैं—

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।
(नीहार : पृष्ठ १७)

महादेवी की इस वेदना में इतना अधिक आनन्द प्राप्त होता है कि वे अपनी कामना प्रकट करती हुई कहती हैं कि उनका सारा शरीर ही नेत्र बन जाय, जिससे इस वेदना का आनन्द और अधिक लिया जा सके—

आज आए हो हे करुणेश!
इन्हें जो तुम देने वरदान,
गला कर मेरे सारे अंग
कर दो आँखों का निर्माण।
(वही पृष्ठ ७०)

वस्तुतः यह बड़ी सुकुमार और भावुक कल्पना है जो स्वतः ही कवयित्री की अनुभूति की गहराई का ज्ञान करा देती है। इस प्रकार इस पृथ्वी की और जीवन की चाह पाकर अब उन्हें स्मृति कोष की संपत्ति पर जीवन व्यतीत करना है। वहाँ भी हृदयस्पर्शी अनुभूतियों का बाहुल्य है। ऊषा का सिन्दूर चुराकर उनका प्रात मुस्कराता है तो कोई उस लाली में छिपाकर सुनहला प्याला लाता है। 'वह कौन है?' का जिज्ञासा मूलक प्रश्न प्राणों में प्रतिध्वनित होता है, तो वहाँ मँडराता हुआ उन्माद है और साथ ही चिरंतन व्यथा की

चिर पिपासा भी है। प्रेम व्यथा के इस घूंट से भावस्रोत का उद्‌गम पाने की अभिलाषा जाग उठती है। इसी अभिलाषा ने काव्य-स्रोत का पथ प्रदर्शन किया है। मुग्धावस्था में व्रीडा-युक्त ललचाई पलकों के उस प्रथम दर्शन की स्मृति व प्रियतम के निरन्तर स्मरण ने जीवन-निधि भर दी है। इस स्मृति चर्वणा ने भावना की तरलता तथा रागात्मक द्रव तैयार किया है, अतः अब वे दृढ़ता से कह सकती हैं—

मेरी आहें सोती हैं इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है इन दीवानी चोटों में !!

(नीहार : पृष्ठ २१)

इस मूक अन्तर्व्यथा से समृद्ध कोष ने अनैक्य के भाव को नष्ट करके अब एकता की भावना जगा दी है। तभी तो पूर्ण विश्वास और निश्चिन्त होकर कवयित्री कहती हैं—

चिन्ता क्या है, हे निर्मम ! बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा !

(वही : पृष्ठ २१)

प्रियतम की अव्यक्त सत्ता की खोज की चाह अब उसके अस्तित्व के विश्वास का आभास पाती है। शंकाएँ विरम जाती हैं और आत्मा अपने आप को दिव्य वातावरण में पाकर सात्त्विक आश्वासन पाती है। अब चारों ओर उसी का स्पन्दन है व उसी के अंश का अस्तित्व है। यह वही है जो उनके अन्तर में निवसित है। उन्हें अपने आंतर स्वत्त्व में एवं वाह्य सात्विक प्रसार में अभिन्नता दिखाई देती है। इसी एकत्व की घोषणा करते हुए वे गाती हैं—

मैं कंपन हूँ तू करुण राग
मैं आँसू हूं तू है विषाद,
मैं मदिरा तू उसका खुमार
मैं छाया तू उसका अधार।

(नीहार : पृष्ठ ४७)

वे उभय के एकत्व की घोषणा करती हुई भी द्वैतजन्य संयोग और वियोग का वर्णन करती हैं। अद्वैत स्थिति में रागात्मक संबन्ध का विनाश हो जाने के कारण वे मायाबद्ध द्वैतभाव को ही पसन्द करती हैं। उनकी दुःखी आत्मा उस अज्ञात प्रियतम का सान्निध्य तो चाहती है किन्तु साथ ही उसे यह भय भी रहता है कि कहीं आत्मज्ञान की उपलब्धि पाकर यह अद्वैत स्थिति न प्राप्त कर ले। इस प्रकार की दुविधा पूर्ण स्थिति में ही न जाने कितने ही सन्दर्भों में उन्होंने एकत्व की घोषणा की है। कवयित्री ने अपनी मानवीय विवशता में व प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में एक अलक्षित शक्ति के प्रभाव तथा अस्तित्व की कल्पना को मूर्त रूप दिया है। उनके हृदय की भाव-क्रीड़ा ने केवल ससीम की सीमाओं में अथवा आकुलता में ही सीमित न रहकर दिव्य अनुभूति तक प्रसार पाया है। भावावेश में दिव्य अनुभूति पाकर पार्थिव अस्तित्व से ऊपर उठकर अपार्थिव महा अस्तित्व के साथ एकात्म का अनुभव करने लगा है और अज्ञात रूप से ही उनकी 'बुद्धि का श्रेय हृदय का प्रेय' बन गया है।

अपने प्रारंभिक काव्योन्मेष में ही महादेवी को प्राकृतिक व्यापारों में सजीवता दिखाई देती है, जिससे वे अपने सूक्ष्म आलंबन का सर्वत्र प्रसार देखने लगती हैं। इससे प्रभावित अन्तः प्रकृति में उद्वेलन की अनुभूति से उनकी वेदना विवृत्त होती है और यह वेदना ही तो उनका सर्वस्व है। वे तो इसी को अपना प्रमुख शस्त्र व लक्ष्य बताते हुए कहती हैं :—

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममें ढूँढूंगी पीड़ा।

उनकी यह भावुकता काव्य के प्रारंभिक उन्मेष में मिलनाकांक्षा, कुतूहल मिश्रित वेदना, विरह जनित क्षीणता, वियोग की तड़प आदि विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है इसी से उनकी यह संवेदना पाठक के मर्म को छू सकने में पूर्ण रूप से समर्थ हो सकी है। कवयित्री के निजी सुख दुःख की भावावेशमयी अवस्था के ये चित्र स्वरसाधना के उपयुक्त बनने का प्रयास करते हुए पाये जाते हैं। इनमें स्वानुभूति आरंभिक वातावरण के सृजन के बाद प्रकाशित होती हुई चरम सीमा पर पहुँचती है। इससे कहीं-कहीं भावान्विति में शिथिलता का आभास भी मिल पाता है। आरंभिक वातावरण सृजन के लिए अधिकांश गीतों में

प्राकृतिक परिपार्श्व को ही चुना गया है। गीत के अनुकूल प्राकृतिक व्यापार के चैतन्यपूर्ण दर्शन के पश्चात् उनकी अनुभूति इसी में पिरोई गई है, जो क्रमशः बढ़ती हुई चरम-सीमा पर पहुँचती है। अनुभूति की इस सच्चाई व भावावेग को सरल शब्द-योजना, सुमधुर वर्णविन्यास, छन्दों के कम्पन तथा अनुप्रासादि अलंकारों ने समुचित योगदान दिया है। इसी के फलस्वरूप उत्कृष्ट गीत रचना की कवयित्री की क्षमता की झाँकी यहीं से मिल जाती है। प्रतीकात्मकता, मूर्तविधान, अलंकरण एवं लाक्षणिक प्रयोगों ने उनकी अनुभूति को यथावत् आकार देने पर्याप्त सहयोग दिया है।

इस प्रकार महादेवी का यह काव्योन्मेष उनके ससीम की विकलता, सक्रियता तथा स्वानुभूति से युक्त है। यह विकलता प्रमुखतः ससीम के घेरे में ही बंधी रही है, किन्तु इसने असीम का कुछ आभास अवश्य पा लिया है, जो भावी दार्शनिक योग का यहीं से संकेत करने लगी है। युग की बौद्धिकता ने उनकी भावान्विति को शिथिल नहीं होने दिया है, इसका कारण उनकी नितान्त अन्तर्वैयक्तिकता एवं अन्तर्जगत की गहरी तहों की गहनता है। स्वतंत्र और मौलिक छन्द चयन ने भी उनकी कविता को सफल बनाने में उचित योगदान दिया है।

महादेवी वर्मा की काव्य-भाषा सम्बन्धी मान्यताएँ

रमेशचन्द्र गुप्त

छायावाद के समर्थकों में कवयित्री महादेवी वर्मा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। गीतों के माध्यम से इस काव्यधारा को समृद्ध बनाने में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। अपने समकालीन कवि-विचारकों की भाँति उन्होंने भी काव्य रचना के साथ-साथ काव्य-सृजन के सिद्धाँतों की पर्याप्त चर्चा की है। उनका यह सिद्धाँत-निरूपण अधिकतर छायावाद के अंतरङ्ग से सम्बद्ध रहा है। काव्य-शिल्प के संयोजक तत्त्वों पर भी उन्होंने विचार किया है, किन्तु परिणाम की दृष्टि से इस दिशा में उनकी प्रत्यक्ष उक्तियों की संख्या सीमित ही कही जाएगी। इन मान्यताओं के अध्ययन के लिये उनके निबन्ध-संकलनों 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' तथा 'साहित्यकारकी आस्था और अन्य निबंध' का अध्ययन विशेष उपादेय है। 'रश्मि', 'साँध्यगीत', 'दीपशिखा', 'आधुनिक कवि (भाग एक)' 'यामा' आदि काव्य संकलनों की भूमिकाओं में भी इस दिशा में पर्याप्त संकेत किये गये हैं।

काव्य-भाषा के संबंध में महादेवी जी की मान्यताओं का विवेचन करते समय हम उन पर भावपक्ष एवं कला पक्ष की सापेक्षिक महत्ता, भाषा का स्वरूप, लोक-भाषा का महत्व, वाग्विस्तार का अनौचित्य, भाषा की चित्रात्मकता, नवीन शब्द-प्रयोग तथा भाषा-माधुर्य, लक्षणा-व्यञ्जना की महत्व-स्वीकृति आदि विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत विचार करेंगे।

भाव पक्ष एवं कला पक्ष की सापेक्षिक महत्ता

भाव पक्ष एवं कला पक्ष काव्य-शरीर के दो महत्वपूर्ण अंग हैं। उत्कृष्ट काव्य में इनमें से किसी की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। फिर भी, इसमें संदेह नहीं की सापेक्षिक महत्व की दृष्टि से भाव पक्ष ही प्रबल है। छायावादी और प्रयोगवादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करते समय महादेवी जी ने इस तथ्य को इस प्रकार वाणी प्रदान की है—'साधारणतः कवि की प्रथम रचना में छंद, भाषा आदि की त्रुटियां रहने पर भी ऐसा भावातिरेक मिलता है, जो अन्य प्रौढ़ रचनाओं में सुलभ नहीं। छायायुग के कवियों ने अपनी किशोरावस्था में जो काव्यसृजन किया है वह भावाधिक्य के कारण शुद्ध काव्य की दृष्टि से विरोधियों की कसौटी पर भी खरा उतरता है। पर भाव और संवेदनीयता की न्यूनता के कारण नवीन रचनाएँ इतनी अशक्त हैं कि उनके समर्थक नवीनता की दोहाई देकर निष्पक्ष कसौटी से भी उन्हें बचाने का प्रयत्न करते हैं।'[1]

इस उक्ति से स्पस्ट है कि यदि कवि की रचना में भावों का प्रबल आवेग है तो कला की दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट न होने पर भी ऐसी कृति की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

छायावाद की प्रारम्भिक रचनायें सूक्ष्म अनुभूतियों से समृद्ध होने के कारण ही सहसा तिरस्कृत नहीं की जा सकीं। इसके विपरीत आज का प्रयोगशील कवि प्रायः अनुभूति की अपेक्षा उसकी विशिष्ट अभिव्यक्ति (?) पर अधिक बल दे रहा है—और सम्भवतः इसी कारण काव्य-जगत में उसका उचित स्वागत नहीं हो पा रहा।

अनुभूति की प्रबलता के कारण कविता में एक प्रकार का स्वाभाविक ओज और आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। जिस

[1]—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ २११

प्रकार सत्य का प्रतिपादन करने वाले की वाणी में निर्भीकता और व्यक्तित्व में सहज सौंदर्य रहता है, उसी प्रकार अनुभूति-सम्पन्न काव्य की प्रतिपादन शैली भी सहज-सरल होती है। उसमें शब्दाडम्बर या कृत्रिम अलंकारिता के लिये कोई स्थान नहीं होता। निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति काव्य में स्वानुभूति की प्रधानता की चर्चा करते हुये उन्होंने यह मत व्यक्त किया है—"सब प्रकार की अलंकारिता से शून्य सरल लोकगीतों में जो अन्तरतम तक प्रवेश कर जाने वाली भाव-तीव्रता है, वह भी स्वानुभूतिमयी ही मिलेगी।"[1]

भाव पक्ष के साथ-साथ महादेवी जी ने कला-पक्ष को भी पर्याप्त महत्व दिया है। रीतिकालीन काव्य के कला-वैभव पर विचार करते हुये उन्होंने लिखा है—रीति-काल की सौंदर्य-भावना स्थूल और यथार्थ एकाँगी था, परन्तु उक्तियों में चमत्कार की विविधता, अलंकारों में कल्पना की रंगीनी और भाषा में मधुरता का ऐश्वर्य इतना अधिक रहा कि इसकी संकीर्णता की ओर किसी की दृष्टि का पहुंचना कठिन था।"[2]

इस उक्ति में महादेवी जी ने अप्रत्यक्षतः दो बातों की ओर संकेत किया है—(१) उक्ति-चमत्कार में भाव को छिपा लेना गुण नहीं है। (२) उक्ति-वक्रता, अलंकार-वैभव, भाषा-माधुर्य आदि काव्य के ऐसे गुण हैं जो प्रमाता को आकर्षित करने के अचूक साधन माने जा सकते हैं। रीतिकालीन काव्य में जीवन-मूल्यों की दृष्टि से उदात्त न रहने पर भी उस काल के कवियों में कला के प्रति असाधारण आसक्ति थी। वाग्वैदग्ध्य, अलंकार वैभव और शब्द-माधुर्य उनकी कविता के ऐसे गुण रहे हैं, जिन्होंने सहृदय को अनायास ही अपनी और आकृष्ट कर लिया।

प्रस्तुत स्थल पर यह ज्ञातव्य है कि यदि कवि भाव-शैथिल्य को छिपाने के लिए के लिए कला का आश्रय लेगा तो उस की यह प्रवृत्ति स्वस्थ दृष्टिकोण की परिचायक नहीं होगी। आलोच्य कवयित्री ने भी रीतिकालीन काव्य के प्रसङ्ग में कला की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये अप्रत्यक्षतः इसी ओर संकेत किया है कि उन कवियों ने प्रमाता की संवेदना को भाव की अपेक्षा कला के माध्यम से जगाना चाहा है, किन्तु यह विधिवत् मार्ग नहीं है। कला की उपयोगिता तभी है जब उससे स्वस्थ भावनाओं का अलंकरण हो, अन्यथा वह काव्य के लिये मात्र अभिशाप बनकर रह जायगी।[1]

कला की उपयोगिता पर विचार करते हुये महादेवी जी ने उसकी एक अन्य विशेषता की ओर भी संकेत किया है। उनके अनुसार कला में इतनी शक्ति-सामर्थ्य है कि वह घृणित कुत्सित अथवा संकीर्ण विचारों को भी दोष-मुक्त कर देती है। यथार्थवादी कलाकार कलात्मक अभिव्यक्ति का आश्रय लेकर घृणित यथार्थ के प्रति भी सहृदय की संवेदनशीलता को जाग्रत कर सकता है, किन्तु कला की उपेक्षा करके वह अपने उद्देश्य में असफल ही रहेगा—काव्य में अपनी प्रतिष्ठा के लिए इसे (यथार्थवाद को) कला की रूपरेखा में बंधना ही पड़ेगा। ··· कला के उस सहज, सरल और स्वाभाविक सौंदर्य के प्रति उसकी सतर्क विरक्ति उचित नहीं, जो जीवन के घृणित कुत्सित रूप के प्रति भी हमारी ममता को जगा सकता है।

कला की महत्ता के प्रति व्यक्त की गई इस विचारधारा के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। कला एक प्रकार से सौंदर्य का ही दूसरा नाम है, और सौंदर्य के प्रति अनुरक्त होना कौन नहीं चाहेगा? इसी कारण जब कटु से कटु यथार्थ को भी कला का आश्रय लेकर प्रस्तुत किया जायगा तो प्रमाता ऐसे साहित्य का अध्ययन अवश्य करेगा, अन्यथा अनगढ़ अभिव्यक्ति देखकर वह उससे विमुख हो सकता है। महादेवी जी द्वारा भाव पक्ष एवं कला पक्ष के महत्व के सम्बन्ध में कही गई विभिन्न उक्तियों का विवेचन करने के अनन्तर हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि उन्होंने काव्य-रचना में इन दोनों का महत्वपूर्ण स्थान माना है। इनमें से किसी एक की उपेक्षा उन्हें मान्य नहीं। वैदिक साहित्य के प्रशस्ति-गान के समय उन्होंने अपनी कतिपय उक्तियों में इन दोनों के समन्वय की आवश्यकता को व्यञ्जित भी किया है। यथा—

---

[1]—साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध, पृष्ठ ८५

[2]—साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध, पृष्ठ ६४

[1]—साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध, पृष्ठ १६६

(अ) "ऐसे धर्म-ग्रन्थों की संख्या अधिक है जो अपने कथ्य की मर्मस्पर्शी सामान्यता, शैली की मधुर स्पष्टता और भाषा के सहज सात्विक प्रवाह के कारण साहित्य की कोटि में स्थिति रखते हैं।"[1]

(आ) "ऋग्वेद ऋक् या छन्दस् का संग्रह है × × × जो कथ्य की मौलिकता की दृष्टि से तो महार्घ हैं ही, भाषा, शैली, छन्द और चमत्कारिक उक्तियों के कारण भी मानव-जाति का महत्वपूर्ण अधिकार हैं।"[2]

इन दोनों उक्तियों में कवयित्री द्वारा वैदिक ग्रन्थों की प्रशंसा का मूल कारण यह है कि इनमें अनुभूति की प्रबलता और कथ्य की मौलिकता के साथ-साथ अभिव्यंजना शैली का उत्कर्ष भी सहज सुरक्षित रहा है। स्पष्ट है कि अनुभूति और अभिव्यक्ति के समवाय को स्वीकार करने वाले साहित्य की प्रशंसा करके कवयित्री ने अप्रत्यक्षतः भाव और कला के समन्वय की आवश्यकता पर ही बल दिया है।

भाषा का स्वरूप : साहित्यिक और व्यावहारिक

महादेवी जी ने साहित्यिक भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषा में स्पष्ट पार्थक्य माना है। वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते समय व्यवहृत होने वाली भाषा तथा साहित्यिक भाषा की परस्पर तुलना करते हुए उन्होंने लिखा है—"किसी हाट में क्रय-विक्रय के कार्य के लिए आवश्यक शब्दों की संख्या अधिक नहीं होती, परन्तु जब हम अपने भाव-जगत् विचार-मन्थन, सौन्दर्य बोध आदि को आकार देने बैठते हैं, तब हमें ऐसी शब्दावली की आवश्यकता पड़ती है जो भाव के हर हल्के-गहरे रंग को व्यक्त कर सके..., सौन्दर्य की हर सूक्ष्म-स्थूल रेखा को आँक सके।"[3]

साहित्यिक और व्यावहारिक भाषा के सम्बन्ध में कवयित्री का यह मत नितान्त उपयुक्त है। सामान्य जीवन में हम गिने-चुने शब्दों में ही भावों का आदान-प्रदान कर लेते हैं, किन्तु साहित्य में प्रतिपादित भाव-सम्पदा अपेक्षाकृत सूक्ष्म होती

[1]—सप्तपर्णा, अपनी बात, पृष्ट १३

[2]—सप्तपर्णा, अपनी बात, पृष्ठ १६

[3]—क्षणदा, पृष्ठ १०२

है अतः सूक्ष्म भावों के लिए शब्द-चयन भी इस प्रकार का होना चाहिए जिसकी अर्थ-सम्पदा पर्याप्त सांकेतिक हो।

इन पंक्तियों से यह भी स्पष्ट है कि कवयित्री ने साहित्यकार के लिए शब्द-ज्ञान की व्यापकता पर बल दिया है। भाव के हल्के-गहरे रंगों को व्यक्त करने के लिये कवि को शब्द के विभिन्न पर्यायों द्वारा ध्वनित होने वाले अर्थों के सूक्ष्म अन्तर पर समुचित ध्यान देना पड़ेगा। छायावाद के अन्य कवियों में 'पन्त' जी का मत भी यही है। उन्होंने शब्दों की आन्तरिक अर्थ-संगति के आधार पर ही उनका प्रयोग करने का परामर्श दिया है। 'हिलोर' 'लहर' तथा 'तरंग' शब्दों के अर्थ-वैविध्य का विवेचन करते हुए उन्होंने इसी ओर संकेत किया है।[1]

लोक-भाषा का महत्त्व

साहित्यिक और व्यावहारिक शब्दावली में अन्तर मानने पर भी महादेवी जी सामान्य जीवन की सहज भाषा की उपेक्षा करने के पक्ष में नहीं हैं। व्यावहारिक दृष्टि से अपने काव्य में स्थान-स्थान पर लोकगीतों की भाषा-शैली को स्वीकार करके उन्होंने इसी की पुष्टि की है। 'दीपशिखा' की भूमिका में उनकी आत्मस्वीकृति है कि "मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त्त अकाश के नीचे लोक-गीतों की धरती पर पले हैं।"[2]

स्पष्ट है कि आलोच्य कवयित्री किसी प्रकार की कृत्रिम साहित्यिक भाषा के पक्ष में नहीं हैं। उन्होंने साहित्यिक और व्यवहारिक भाषा में अन्तर अवश्य माना है, किन्तु केवल उसी सीमा तक जब तक कि भावाभिव्यक्ति में व्याघात न पहुंचे। यदि लोक-शब्दावली के माध्यम से भावों की सफल अभिव्यञ्जना सम्भव हो तो कवि को इसकी स्वच्छन्दता रहनी चाहिए। यदि हम काव्य-भाषा को नित्य-प्रति के प्रयोग की शब्दावली से बचाने का बलात् प्रयत्न करेंगे तो काव्य जीवन से बहुत दूर चला जायगा। 'हमारा देश और राष्ट्रभाषा' शीर्षक लेख में भी महादेवी जी ने इन्हीं विचारों को व्यक्त किया है। यथा...."भाषा केवल

[1]—देखिए, 'पल्लव', प्रवेश, पृष्ठ २९-३०

[2]—दीपशिखा, पृष्ठ ६०

संकेत-लिपि नहीं है, प्रत्युत् उसके हर शब्द के पीछे संकेतिक वस्तु स्पन्दित रहती है और प्रत्येक शब्द का एक सजीव इतिहास होता है। अतः एक जीवित भाषा का जीवन के साथ ही विकसित और परिमार्जित होते चलना स्वाभाविक है। भाषा भी गढ़ी जाती है, परन्तु वह कुम्भकार का घट-निर्माण नहीं, मिट्टी का अंकुर निर्माण है।''[1]

इन पंक्तियों में कवयित्री ने यह प्रतिपादित किया है कि भाषा का अनायास निर्माण नहीं किया जा सकता, वरन् उसमें प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक शब्द का परम्परागत इतिहास होता है। उसकी अर्थ-ध्वनियां जीवन के विकास के साथ ही विकसित और परिवर्तित होती रहती हैं। जिस प्रकार अंकुर मिट्टी के सम्पर्क में रहकर ही विकास को प्राप्त होता है, उसी प्रकार भाषा का विकास भी सामान्य जीवन में घुल-मिल कर होता है। स्पष्ट है कि यहाँ भी कवयित्री ने अपनी उसी मान्यता को दुहराया है कि काव्य भाषा लोक-भूमि से पृथक् होकर जीवित नहीं रह सकती।

वाग्विस्तार का अनौचित्य

महादेवी जी ने कवि के लिए वाग्विस्तार की प्रवृत्ति को त्याज्य माना है। वे चाहती हैं कि कवि विवेकपूर्ण ढंग से शब्द-चयन करे और अपने भावावेग को सीमित शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास करे। गीत की परिभाषा प्रस्तुत करते समय उन्होंने इसी ओर संकेत किया है..."सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था-विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।''[2] गिने-चुने शब्दों में भावाभिव्यक्ति तभी की जा सकेगी जब कवि को शब्दों के अर्थ-भेद का सम्यक् ज्ञान हो। उसी दशा में विपुल अर्थ-ध्वनियों को व्यक्त करने वाले शब्दों का प्रयोग करके अनावश्यक विस्तार से बच सकेगा।

इस उक्ति में महादेवी ने अप्रत्यक्षतः तीन बातों की ओर संकेत किया है—भाषा की सांकेतिकता, सामासिकता और

[1]—क्षणदा, पृष्ठ १०७

[2]—यामा, अपनी बात, पृष्ठ ७

शब्दगत औचित्य। भाषा की इन्हीं तीन विशेषताओं के आधार पर 'गिने-चुने शब्दों में' भावाभिव्यक्ति की जा सकती है। यदि सांकेतिकता के स्थान पर अभिधा का आश्रय, सामासिकता की अपेक्षा कथन व्यास-शैली और शब्दगत औचित्य की अवहेलना करके बिना सोचे-समझे अनुपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया जायगा तो काव्य-भाषा सुगठित नहीं रह पाएगी। अतः यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कवयित्री को भाषा के इन तीन गुणों के प्रति कवि को सजग रहने का परामर्श देना अभीष्ट रहा है।

तुलनात्मक दृष्टि से यह अवेक्षणीय है कि वाग्विस्तार के अनौचित्य के प्रति व्यक्त की गई महादेवी जी उपर्युक्त मान्यता ग्रीक के प्रमुख काव्य-चिन्तक लांजाइनस की विचार-धारा से साम्य रखती है। लांजाइनस ने भी वाग्विस्तार को काव्य की गरिमा और औदात्य को बाधित करने वाला तत्त्व मान कर कवि को इस अस्वस्थ प्रवृत्ति से बचने का परामर्श दिया था।[1]

भाषा की चित्रात्मकता

काव्य-भाषा के विषय में कविवर 'पन्त' के समान महादेवी जी ने भी यह प्रतिपादित किया है कि उसमें चित्रात्मकता का गुण श्रेयस्कर है। इस सम्बन्ध में उनका प्रत्यक्ष मत तो अनुपलब्ध है, किन्तु निम्नस्थ उक्तियों से इस कथन की पुष्टि अवश्य होती है—

(अ) "कलाओं में चित्र ही काव्य का अधिक विश्वस्त सहयोगी होने की क्षमता रखता है।''[2]

(आ) "कुछ अजन्ता के चित्रों पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से, चित्रों में यत्र-तत्र मूर्त्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष यह तो मैं नहीं बता सकती पर इस चित्र-मूर्त्ति-सम्मिश्रण ने मेरे गीत भार से नहीं दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।''[3]

[1]—देखिए 'काव्य में उदात्त तत्त्व', भूमिका, पृष्ठ १९-२०

[2]—दीपशिखा, चिन्तन के कुछ क्षण, पृष्ठ ६३

[3]—दीपशिखा, चिन्तन के कुछ क्षण, पृष्ठ ६४

इनमें से प्रथम उक्ति में चित्र को काव्य का विश्वस्त सहयोगी मानकर उन्होंने इस ओर संकेत किया है कि भावप्रेषण के लिए काव्य में चित्रात्मकता का अवलम्बन लेना चाहिए। इसी प्रकार दूसरी उक्ति में चित्र-शैली को अपने काव्य की विशेषता बताकर उन्होंने प्रकारान्तर से कवि-कर्म के लिए इसे आवश्यक बताया है। वस्तुतः महादेवी जी स्वयं एक चित्रकर्त्री हैं। उन्होंने रंग और रेखाओं की सहायता से अनेक भावों को चित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। 'दीपशिखा' के प्रत्येक गीत के आधार पर एक स्वतन्त्र चित्र का निर्माण उनकी अद्भुत सामर्थ्य का परिचायक है। अतः चित्रकला में विशेष निपुण होने के कारण उन्होंने काव्य-कला और चित्रकला में विरोध नहीं माना।[1] काव्य में चित्र-कला के उपयोग से प्रमाता के सम्मुख भावों का साकार रूप प्रस्तुत हो जाता है जिससे प्रभावान्वित में सहायता मिलती है। अतः इसका आश्रय लेना उचित ही है।

नवीन शब्द-प्रयोग तथा भाषा-माधुर्य

महादेवी जी ने कवि को साहित्य-जगत् में प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने के साथ-साथ नवीन शब्दों का व्यवहार करने का परामर्श भी दिया है। किन्तु, ऐसा करते समय वे कवि से यह आशा करती हैं कि शब्द-प्रयोग अनगढ़ न हो, और साथ ही उसमें माधुर्य का ध्यान रखा गया हो। निम्नांकित उक्तियां इसी तथ्य की परिभाषा हैं—

(अ) "काव्य की भाषा बदलना सहज नहीं होता और वह भी ऐसे समय जब पूर्वगामी भाषा अपने माधुर्य में अजेय हो, क्योंकि एक तो नवीन अनगढ़ शब्दों में काव्य की उत्कृष्टता की रक्षा कठिन हो जाती है, दूसरे उत्कृष्टता के अभाव में प्राचीन का अभ्यस्त युग उसके प्रति विरक्त होने लगता है।"[2]

[1]—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी इन दोनों में परस्पर संबन्ध का उल्लेख किया है। देखिए—चित्र-कला और कविता का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों में एक प्रकार का अनोखा सादृश्य है। × × × कविता भी एक प्रकार का चित्र है।"

—कविता कलाप, भूमिका, पृष्ठ १

[2]—साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध, पृष्ठ ६२-६३

(आ) छायावाद ने नये छन्द-बन्धों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नहीं सह सकता था। अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तौल और काट-छांट कर तथा कुछ नये गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया।"[1]

उपर्युक्त उदाहरणों में से प्रथम उक्ति ब्रजभाषा-काव्य को लक्षित करके लिखी गई है। माधुर्य को आत्यन्तिक स्थिति के कारण ब्रजभाषा की अनायास उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी कारण कवयित्री ने अप्रत्यक्ष संकेत किया है कि यदि ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की नवीन शब्दावली की प्रतिष्ठा करनी है तो वह माधुर्य-संयुत होनी चाहिए। माधुर्य के बल पर ही एक भाषा के स्थान पर दूसरी भाषा की प्रतिष्ठा की जा सकती है। दूसरी उक्ति में भी कवयित्री ने छायावाद की भाषा की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए सांकेतिक रूप से यह व्यक्त किया है—(१) शब्द-माधुर्य की रक्षा करना एक प्रमुख कवि-कर्म है। (२) कवि को ध्वनि की दृष्टि से शब्दों की अर्थ-व्यंजना को समृद्ध करने का प्रयास करना चाहिए।

वस्तुतः छायावादी काव्य में सूक्ष्म अनुभूतियों और कोमल सौन्दर्य को वाणी प्रदान की गई है। इन कोमल भावों को व्यक्त करने के लिए ऐसी शब्दावली आवश्यकता थी जो स्वयं भी मसृण हो। अतः इन कवियों ने पूर्ववर्ती काव्य की शब्द-सम्पदा में वर्ण अथवा ध्वनि-सम्बन्धी परिवर्तन करके उनका प्रयोग किया तथा कतिपय नवीन शब्दों का निर्माण करके सफल अभिव्यंजना के लिए उनकी सहायता भी ली। कवयित्री महादेवी वर्मा भी छायावाद की प्रकाश-स्तम्भ रही हैं। अतः उन्होंने भी 'नये शब्द गढ़ कर' इस दिशा में अपनी व्यावहारिक स्वीकृति दी है। तात्पर्य यह है कि सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टि से आलोच्य कवयित्री का यह मत है कि कवि अर्थ-संगति के आधार पर माधुर्यपूर्ण नवीन शब्दों का निर्माण करने में स्वच्छन्द है।

लक्षणा-व्यंजना की महत्त्व-स्वीकृति

आलोच्य कवयित्री ने काव्य में अभिधा अथवा लक्षणा के प्रयोग के सम्बन्ध में पृथक् विचार नहीं किया है, किन्तु

[1]—साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध, पृष्ठ ६८-६९

उनकी निम्नस्थ उक्तियों से इतना संकेत अवश्य मिलता है कि वे लक्षणा-व्यंजना का समर्थन करती हैं—

(अ) "इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में भाव रूप चाहता है, अतः शैली का कुछ संकेतमयी हो जाना सहज सम्भव है।"[1]

(आ) "भाषा संस्कृति का लेखा-जोखा रखती है, अतः वह भी अनेक संकेतों और व्यंजनाओं में ऐश्वर्यवती है।"[2]

वस्तुतः काव्य में लक्षणा-व्यंजना का आश्रय लेना आवश्यक भी है। शब्दों के अभिधेय अर्थ के आधार पर उदात्त काव्य की रचना नहीं की जा सकती। अरस्तू ने भी काव्य-शैली में औदात्य का समावेश करने के लिए अतिव्यवहृत शब्दों के चयन को पर्याप्त न मान कर उनमें गरिमा की स्थिति पर बल दिया है।[3] प्रकार-भेद से हम कह सकते हैं कि उन्होंने अभिधा के साथ-साथ लक्षणा और व्यंजना को आवश्यक माना है। व्यावहारिक दृष्टि से भी महादेवी जी के काव्य की यह अन्यतम विशेषता है उसमें अभिधा का तिरस्कार नहीं है, किन्तु उनका बल लाक्षणिक भंगिमाओंपर ही रहा है। छायावाद के अन्य कवियों की भी यही विशेषता रही है। इस सम्बन्ध में श्री राममूर्ति त्रिपाठी का यह निष्कर्ष नितान्त उपयुक्त है—"आभ्यन्तर प्रभाव-साम्य के आधार पर लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ एवं प्रचुर विकास छायावादी काव्य-शैली की असली विशेषता है।"[4]

उपसंहार

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि महादेवी जी काव्य में भाव पक्ष को अधिक महत्व देने पर भी कला के प्रति उपेक्षा नहीं दिखातीं। उनके मत में सफल काव्य वही है जिसमें इन दोनों का समन्वय हो। काव्य की भाषा को कृत्रिम बनाने के पक्ष में भी वे नहीं हैं। यद्यपि उन्होंने साहित्यिक और व्यावहारिक भाषा के अन्तर का विवेचन किया है, तथापि 'प्रायोगिक' दृष्टि से लोक-गीतों की भाषा-शैली को ग्रहण करके उन्होंने काव्य-भाषा में स्वाभाविकता की रक्षा का समर्थन किया है। चित्रात्मक भाषा तथा शब्द-माधुर्य को वे प्रभावान्विति के लिए आवश्यक मानती हैं। वाग्विस्तार की अपेक्षा उन्हें लक्षणा-व्यंजना की सहायता से सांकेतिकता का विधान करना मान्य रहा है। महादेवी जी की काव्य-भाषा सम्बन्धी मान्यताओं का निरूपण करने के अनन्तर यह स्थिर करना आवश्यक है कि उसमें प्रायः परम्परा का अनुसरण ही रहा है। इयत्ता की दृष्टि से भी उनकी उपलब्धि अधिक समृद्ध नहीं कही जा सकती। 'प्रसाद', 'पन्त' एवं 'निराला' की तुलना में उनका विवेचन अत्यन्त सीमित रहा है। सम्भवतः इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि उनकी दृष्टि छायावादी काव्य के शिल्प की अपेक्षा विचार पक्ष के उद्घाटन की ओर अधिक रही है। फिर भी, काव्य-भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने न्यूनाधिक रूप में जो विचार व्यक्त किए हैं उनका निजी महत्व तो है ही।

महादेवी जी के विवेचन का एक प्रमुख अभाव यह है कि उनकी अधिकांश मान्यताएं प्रत्यक्ष उक्तियों के रूप में कथित न होकर सांकेतिक रूप में ही ग्रहण की जा सकती हैं। काव्य की किसी विशिष्ट धारा या ग्रन्थ की समीक्षा करते समय उसके सम्बन्ध में उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं वही उनकी काव्य-मान्यताओं का दिशा-निर्देश करते हैं। किन्तु, यह उल्लेख्य है कि सांकेतिक होने पर भी इन मान्यताओं की पृष्ठभूमि में कवयित्री का गहन चिन्तन-मनन रहा है। इसी कारण उनका विवेचन सामयिक न होकर शाश्वत बन गया है। डा० नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में उचित यी लिखा है—"महादेवी के ये निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर आख्यान हैं आज साहित्यिक मूल्यों के बवण्डर में भटका हुआ जिज्ञासु इन्हें आलोक-स्तम्भ मान कर बहुत-कुछ स्थिरता पा सकता है। अतएव साहित्य का विद्यार्थी उनकी विवेचना का आप्त वचन के समान ही आदर करेगा।"[1]

---

[1]—साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध, पृष्ठ ८५

[2]—क्षणदा, पृष्ट १०२

[3]—देखिये 'अरस्तू का काव्य शास्त्र' अनुवाद भाग, पृष्ठ ५७—५८

[4]—व्यंजना ओर नवीन कविता, पृष्ठ १९७

[1]—महादेवी वर्मा (सं० शचीरानी गुर्टू), पृष्ट १०९

महादेवी जी की काव्य-भाषा

डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया

वैसे तो काव्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली का प्रयोग यत्र-तत्र मध्यकाल से होता चला आ रहा था पर व्यवस्थित रूप में हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारम्भ में ही इसको गति मिली और फिर भी भारतेन्दु युग तक विशेष सफलता नहीं मिली। इस दिशा में सर्व प्रथम विशेष प्रयास अयोध्याप्रसाद खत्री ने किया। साथ ही २०वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में काव्य-जगत् में ब्रजभाषा का ही प्राधान्य बना रहा। उस समय की स्थिति का परिचय हमको महादेवी जी के इस कथन से स्पष्ट हो सकेगा, "काव्य की भाषा बदलना सहज नहीं होता और वह भी ऐसे समय जब पूर्वगामी भाषा अपने माधुर्य में अजेय हो, क्योंकि एक तो नवीन अनगढ़ शब्दों में काव्य की उत्कृष्टता की रक्षा कठिन हो जाती है, दूसरे उत्कृष्टता के अभाव में प्राचीन का अभ्यस्त युग उसके प्रति विरक्त होने लगता है।" इस प्रकार महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के समय तक आते-आते खड़ी बोली के माध्यम से भी कविता लिखी जाने लगी। आचार्य द्विवेदी ने खड़ी बोली में लिखी कविता को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया। इस संबन्ध में गीतिका की भूमिका में महाप्राण निराला ने स्पष्ट किया है, "......फिर भी खड़ी बोली केवल बोली में ही नहीं खड़ी कुई कुछ भाव भी उसके ब्रजभाषा संस्कृति से भिन्न अपने कहकर खड़े किये हैं यद्यपि वे बहिर्विश्व की भावना से संश्लिष्ट हैं।" इस दिशा में निराला से पूर्व मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, श्रीधर पाठक आदि कविगण सक्रिय थे। वस्तुतः इनके प्रयास के खड़ी बोली को ब्रजभाषा के साथ स्थान मिल सका फिर तो प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, बच्चन, रामकुमार वर्मा, दिनकर आदि कवियों ने खड़ी बोली को कलात्मक बनाने की दिशा में योग दिया जिससे खड़ी बोली हिन्दी के स्पष्ड दो रूप सामने आये—

१—संस्कृतनिष्ठ हिन्दी जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य रहा। कहीं-कहीं लम्बे-लम्बे समास भी आ जाते थे, महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास इसका उदाहरण है।

२—संस्कृत के शब्दों से युक्त होते हुए भी संधि और समास (विशेषकर बड़े-बड़े) से मुक्त हिन्दी का रूप जिसमें कहीं-कहीं समुचित तद्भव शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है।

छायावाद ने खड़ी बोली को जो मधुरता और कोमलता प्रदान की है उसका सम्यक् विवेचन सुमित्रानन्दन पन्त ने पल्लव की भूमिका में किया है। महादेवी वर्मा ने भी छायावाद द्वारा प्रदत्त अनेक कला-विषय विशेषताओं को ग्रहण करते हुए भी अपनी भाषा का सहज शृंगार किया है। इस संबंध में आपके निजी विचार उनके 'छायावाद' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत किये जा रहे हैं,

"रीतिकालीन रूढ़िवाद से थके हुए कवियों ने जब सामयिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर तथा बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता और प्रचार की सुविधा समझकर ब्रजभाषा का जन्मजात अधिकार खड़ीबोली को सौंप दिया तब साधारणतः लोग निराश ही हुए। भाषा लचीलेपन से युक्त थी और उक्तियो में चमत्कार न मिलता था। इसके साथ-साथ रीतिकाल की प्रतिक्रिया भी कुछ कम

वेगवती न थी अतः उस युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनाएँ विद्रोह कर उठीं। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय की अधिकांश रचनाओं में भाषा लचीली न होने पर भी परिष्कृत, भाव सूक्ष्मता-रहित होने पर भी सात्विक, छन्द नवीनता शून्य होने पर भी भावानुरूप और विषय रहस्यमय न रहने पर भी लोकपरिचित और संस्कृत मिलते हैं। पर स्थूल सौन्दर्य की निर्जीव आवृत्तियों से थके हुए और कविता की परम्परागत नियम-श्रृंखला से ऊबे हुए व्यक्तियों को फिर उन्हीं रेखाओं में बंधे स्थूल का, न तो यथार्थ चित्रण रुचिकर हुआ और न उसका रूढ़िगत आदर्श भाया। उन्हें नवीन रूप रेखाओं में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की आवश्यकता थी जो छायावाद में पूर्ण हुई।

छायावाद ने नये छन्दबन्धों में, सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कटोरता नहीं सह सकता था। अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप तौल और काट छांटकर तथा कुछ नये गढ़कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया।

छायावादी युग में सूक्ष्म एवं अमूर्त्त की अभिव्यंजना के साथ शैली अवश्य दुरूह हो गई, पर भाषा की शक्ति और सौंदर्य में विकास हुआ। कहीं-कहीं अस्वाभाविक रूपों के होते हुए भी खड़ी बोली में माधुर्य जैसा गुण इस काल में ही आया। महादेवी वर्मा की भाषा इसका स्पष्ट उदाहरण है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य होते हुए भी उनकी शब्दावली में जितनी सरसता है अन्यत्र नहीं। तत्सम के साथ तद्भव रूपों के समुचित प्रयोग में आपको हिचकिचाहट नहीं। श्रीमती वर्मा ने अपने काव्य में भाव गति को विशेष महत्व दिया है। 'पन्त और महादेवी' शीर्षक निबन्ध में छायावादी आलोचक शांतिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है पन्त ने जिस खड़ी बोली को रमणीयता दी, महादेवी ने उसे मार्मिकता देकर प्राण प्रतिष्ठा कर दी। ताजमहल के भीतर उन्होंने दीपक जला दिया। भाषा के सौन्दर्य में पंत बेजोड़ हैं, अभिव्यक्ति की मार्मिकता में महादेवी।"

महादेवी गीतों की रानी हैं उन्होंने लयतत्व के माध्यम से अपने भावतत्व को पूर्णतया सुरक्षित रखा है, छन्द के निर्वाह तथा तुक बनाये रखने के लिए प्रायः कवि शब्दों को तोड़ा मरोड़ा करते हैं और भावों को भी पर्याप्त क्षति इस प्रकार पहुंचती है, महादेवी जी ने इस दृष्टि से शब्दों को सबसे कम तोड़ा है या बिगाड़ा है, कुछ ही इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं जैसे आधार के लिए "अधार" ज्योति के स्थान पर 'ज्योती' आदि।

सूक्ष्मतम भावों को वाणी प्रदान करने के लिए प्रायः कवियों को लाक्षणिक प्रयोगों का आश्रय लेना पड़ता है। विभिन्न प्रतीकों के प्रयोग से संकेतात्मक भाषा लिखने में महादेवी जी पटु हैं। छायावाद काल में प्रतीकों का मुक्त प्रयोग बढ़ा। इन प्रतीकों में विविधता तथा अनेकार्थता मिलती है। छायावादी कवियों ने जो प्रतीक प्रयुक्त किये हैं उनसे इतर भी महादेवी के काव्य में मिलते हैं। कुछ प्रतीकों में मौलिक दृष्टि भी मिलती है। वेदना की अभिव्यक्ति के लिए महादेवी जी ने प्रतीकों का व्यापक आश्रय लिया है। वेदना के लिए मुख्यतः 'दीपक' प्रतीक अपनाया है जिससे आन्तरिक वेदना व्यक्त होती है। वेदना की गहनता के लिए और भीर भी प्रतीकों का प्रयोग किया है।

दीपक[1]—करुण जीवन के लिए
जलना—विश्वसेवा के निमित्त आत्मत्याग

दीपशिखा में

दीपक—साधक की आत्मा
तेल—आंतरिक स्नेह
अंधकार—पीड़ा
झंझावात—विघ्नबाधाएँ

---

[1]—मूक करके मानस का ताप
सुलाकर वह सारा उन्माद
जलाना प्राणों को चुपचाप
छिपाये रोता अन्तर्नाद,
कहां सीखी यह अद्भुत प्रीति
मुग्ध है मेरे छोटे दीप। यामा।५३।

देवता की वेदी के

आगे दीपक—एकांत साधना

सामान्यतः महादेवी के इन प्रतीकों पर कवीन्द्र रवीन्द्र की स्पष्ट छाप है। फिर भी महादेवी ने कुछ प्रतीक सीधे भारतीय संस्कृति से अपनाये हैं। यामा की इन पंक्तियों में,

नीलम मरकत के सम्पुट दो
जिनमें बनता जीवन मोती।

'नीलम-मरकत के सम्पुट' प्रतीक केदाराण्य में मैत्रेय को भगवान ने उपदेश दिया कि माता-पिता सीप की तरह हैं।[1]

डा० सुधीन्द्र ने 'हिन्दी कविता का क्रान्तियुग-छायावाद' में छायावादी प्रतीकों को एकत्रित किया है प्रायः सभी प्रतीक महादेवी के काव्य में भी मिलते हैं। महादेवी के प्रतीकों की सूची यहाँ दी जा रही है :

अंधेरा—विषाद

बदली—संतों और भक्तों के यहाँ धीर, गंभीर, सेवा करने वाली

वर्षा—करुणा
ग्रीष्म—क्रोध

बसन्त—आनन्द, प्रफुल्लता, सजगता
पतझर—विषाद, निराशा
मलयपवन—मधु और रश्मि

मकरन्द—आँसू[1]
नभ की दीपावली—तारक गण
मधुशाला—विश्व
चषक—मानव जीवन
वीणा—हृदय, आत्मा
वीणा के तार—हृदय के भाव
गायक—साधक
प्रभात—आनन्दोद्रेक
उषा—सुख
चन्द्रिका—सुखात्मक परिस्थिति, प्रिय की सुखद स्थिति
चन्द्र-ज्योत्सना—शांति, प्रेम
प्याली—जीवन का प्रतीक
अश्रुसिक्त—वेदना की अनुभूति
रात्रि—जीवन का विषाद
कालिन्दी—अश्रुधारा[2]
मधुमास—आनन्दभाव
कली—सुन्दरी
पवन—प्रेमी नायक

भ्रमर[3]—सामान्य सुख चाहने वाला गृहस्थ या दर्शक मुक्त आनन्द विलास करने की चिंता करने वाला

मधुप—अनुरक्त भाव
तरी—मानव जीवन
पतवार—साहस भाव

---

[1]—जगदीश नारायण त्रिपाठी—आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान, १९६२ पृष्ठ १८१।

[2]—कुछ बहुप्रयुक्त प्रतीक इस प्रकार हैं :

फूल–सुख, शूल–दुःख, दिन–सुख, रात्रि–दुःख, आलोक–ज्ञान तथा आनन्द, तिमिर–अज्ञान तथा अवसाद, मानस–मन, लहर–कामना, मूर्च्छना रागिनी–वेदनाएँ, मधु–आनन्द, मदिरा–रूप, संध्या–अवसान या विलास, इंद्रधनुष–रंगीनी या क्षण भंगुरता, बसंत–यौवन, मधुप–प्रेमी, स्वर्ण–वैभव, रजत–रूप आदि।

[1]—आँसू के लिए नक्षत्र, आंखों का फूल, तुहिन आदि का प्रयोग भी हुआ है।

[2]—उमड़ आई री दृगों में सजनि कालिन्दी निराली। यामा।

[3]—देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल
जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल?
अब इनका क्या सार मधुर जब गाती भौंरों की गुञ्जार
मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार।
। यामा।

लहर—हृदय का भावावेग
झंझला—क्षोभ, संघर्ष, विघ्न बाधाएँ
बिजली—वेदना की व्याप्ति
नीरदमाला—अश्रु प्रवाह
तम, अंधकार—अज्ञानाच्छादित आत्मा
प्रकाश—मन का आलोक
सांध्यगगन—अलौकिक के प्रति अनुराग
गोधूलि—करुणामिलन बेला
सरिता—करुण
रश्मि—ज्ञान की किरण
शृंगार—मन का उत्साह, आह्लाद
लू—प्रेम का अन्त
सागर—संसार चक्र
बुद्बुद—क्षण
तारा—असमर्थ विवेकवादी
इंद्रधनुष—मधुर मिलन की स्मृतियाँ
झंकार—हृदय का स्पन्दन
तरल मोती—आँसू

महादेवी जी के प्रतीकों पर आचार्य विनयमोहन शर्मा ने 'महादेवी की कविता' शीर्षक निबन्ध में विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं, "शब्द की अभिधा शक्ति का वहाँ जरा भी सम्मान नहीं है। लक्षणा, प्रतीक और व्यंजना से ओतप्रोत है। कवयित्री प्रतीकों के प्रयोग में बहुत स्वच्छन्द है। एक प्रतीक एक अर्थ में सब जगह प्रयुक्त नहीं होता। कभी-कभी भिन्न स्थलों पर संदर्भ के अनुसार भिन्न अर्थ देता है। इसी से काव्य प्रायः दुर्बोध हो जाता है।"

दुरुक्ति की प्रवृत्ति

भावों की अभिव्यक्ति में 'दुरुक्ति' विशेष सहायक सिद्ध हुई हैं :

मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या क्या उत्पात।

'नीहार'

बूँद-बूँद होकर भरती वह
भरकर छलक छलक जाती।

यामा। १२०

चाह - चाह थक - थक कर
हो जाते प्रस्तर से प्राण।

यामा। ११७

सिहर-सिहर उठता सरिता-उर
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर
मचल मचल आते पल फिर फिर।

यामा। १३०

पलक पलक उर, सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर-भर।

यामा। १३१

रोम रोम में नन्दन पुलकित
सांस सांस में जीवन शत शत।
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित।
आंसू से लिख लिख जाता है
कितना अस्थिर है संसार।

'नीहार'

शशि को छूने मचली सी
लहरों का कर कर चुम्बन।
छिप छिप किरणें न आती जब
मधु से सींची गलियों में।

'मेरा राज्य' नीहार।

करते हो आलोक जहाँ
बुझ बुझ कर कोमल प्राण।

'चाह' नीहार।

जब तारे फैला फैला कर
सूने में गिनता आशा।

'सूनापन'

जिसके निष्फल जीवन से
जल जल कर देखी राहें।

नीहार

जिनकी रज को धो-धो जाता था
मेघों का मोती - सा नीर।

'नीहार'

घुल-घुल जाता यह हिम-दुराव
गा गा उठते चिर मूक भाव
अलि सिहर सिहर उठता शरीर

'रश्मि'

इन आँखों में करुणा के
घिर घिर आते थे सावन

'रश्मि'

इसी प्रकार मधुर-मधु । पुलक-पुलक, विहँसि-विहँसि, बिखर बिखर, सहज-सहज, सजल-सजल, सरल-सरल, मदिर-मदिर, आदि दुरुक्तियाँ काव्य में भरी पड़ी हैं ।

इन सभी दुरुक्तियों में कवयित्री को कनकन (कण कण) विशेष प्रिय है :

जाती नवजीवन बरसा
जो करुणा घटा कण कण में

●

सुषमा का कण कण एक खिलाता
राशि राशि फूलों के वन ।

● ● ●

कन कन में बिखरा है निर्भय ।

● ● ●

कन कन में बिखरी सोती है समाधि से ।

● ● ●

कहीं-कहीं तो एक एक पंक्ति में दुरुक्तियों की भीड़ होती जाती है ।

पीती थक झुकझुक झूमझूम ।
तू घूँट घूँट फेनिल सीकर ।
मैं पिक बन गाती डाल डाल
सुन फूट फूट उठते पल पल ।
सुख दुख मंजरियों के अंकुर ।

चित्रात्मकता:

भाव विह्वलता के अनेक उदाहरण महादेवी जी के काव्य में भरे पड़े हैं जिनमें प्रेमी हृदय की दशाओं का चित्रांकन किया गया है । स्वयं एक उत्कृष्ट चित्रकर्त्री होने के कारण उन्हें इस शैली का प्रयोग करने में अधिक सफलता प्राप्त हुई है और उसके फलस्वरूप उनके काव्य में इस प्रकार के अनेक सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर-भर

इन पंक्तियों में क्रियाओं की आवृत्ति से मन की उस वृत्ति का भी चित्र उपस्थित्त हो रहा है जिसके अनुसार 'रह रहकर मन में' हूक उठती है ।

वर्ण मैत्री भी सहायक सिद्ध होती है । संश्लिष्ट चित्र भी है जिनमें वेशभूषा और वाह्याकृति के साथ वातावरण और आँगिक चेष्टाओं का चित्र उपस्थित हो जाता है,

रूपसि तेरा धन केश पास
श्यामल श्यामल कोमलकोमल
लहराता सुरभित केश पाश ।

● ● ●

सौरभ मीना झीना गीला
लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल
चल अञ्चल से झर झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल ।

उपर्युक्त पंक्तियों में स्वर्ण फूल की चर्चा है जब कि निम्न-लिखित पंक्तियों में स्वप्न फूले जिसमें उपयुक्त विशेषणों का प्रयोग द्रष्टव्य है ।

सुनहले सजीले रँगीले छबीले
हसित कंटकित अश्रु-मकरन्द-गीले
बिखरते रहे स्वप्न के फूल अन-गिन

'दीपशिखा' ७७

महादेवी के इन चित्रों पर टिप्पणी करते हुये प्रसिद्ध आलोचक प्रकाश चन्द्र गुप्त 'महादेवी की काव्य-साधना' शीर्षक निबन्ध में लिखते हैं 'दीपशिखा' के गीतों में भाषा मोती के समान स्वच्छ और निर्मल है उसके शब्द चित्र अनायास ही हृदय मथ डालते हैं किन्तु इस प्रौढ़ काव्य प्रेरणा के पीछे किसी प्रबल झंझावात का अनुभव भी अवश्य है ।

हम श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य को एक अनोखी चित्र-शाला के रूप में देख सकते हैं। आपके छन्द अधिकतर शब्द चित्र हैं। आपकी अलंकृत भाषा और प्रकृति साधना शब्द चित्रों में ही व्यक्त हुई है।

प्रकृति-बाला के अगणित अनुपम चित्र आपकी कविता में है। आपकी चित्रशाला में प्रकृति के अनेक रेखाचित्र हैं दृढ़, सुष्ठु रेखाओं से अंकित।

झुक झुक झूम झूम कर लहरें
भरती बूँदों के मोती,
यह मेरे सपनों की छाया
झोकों में फिरती रोती।

'नीहार'

● ● ●

गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहंसती संध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण पराग।

यामा

श्रीमती वर्मा ने चित्रों को प्रस्तुत करने में प्रायः रूपक तथा उपमा अलंकारों का आश्रय लिया है। ध्वन्यात्मकता से भी चित्र अधिक स्पष्ट हो सके हैं।

ध्वन्यात्मकता

चित्रों में जहाँ उपयुक्त ध्वनियों की योजना हो गई है वहाँ चित्र में और भी अधिक सजीवता आ गई है,

जब उनकी चितवन का निर्झर
भर देता मधु से मानस-सर
स्मित से झरतीं किरणें झर-झर
पीते दृग जलजात।

यामा ९२।

मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि
अलि-गुञ्जित पद्में की किंकिणि
भर पद-गति में आ बस तरंगिणि

यामा १३०

उपयुक्त वर्णों की आयोजना और शब्दों की ध्वनियाँ नृत्य का चित्र उपस्थित करती है। लघु वर्णों की बार बार आवृत्ति मन्द मन्द गति से होने वाले नृत्य का द्योतक है। सागर गर्जन से तबलेकी ध्वनि और रुनझुन सेमं जीर की किंकिणी की अनुस्वर-युक्त ध्वनि लघु वर्ण घुंघरू की ध्वनि के योग से नृत्यमय वातावरण का चित्र उपस्थित करती हैं :

आलोक तिमिर सित असित चीर
सागर गर्जन रुनझुन मंजीर
उड़ता झंझा में अलक जाल,
मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर
असरि तेरा नर्तन सुन्दर।

संध्या, रात्रि, और प्रातः काल के वातावरण का चित्रमय अभिव्यक्ति साधारणतः अन्य कवियों द्वारा प्रस्तुत चित्रों से अधिक मन पर प्रभाव डालती है।

शिथिल मधु पवन, गिन गिन मधु कण
हर सिङ्गार झरते हैं झर झर।

महादेवी जी के यहाँ एक ओर चित्रकला की गोद में काव्य-कला खेलती है और दूसरी ओर काव्य कला की अमूर्त्तता रेखा और रङ्ग के सहारे चित्रित (मूर्त हो गई है) उनके चित्रों में दीपक, शतदल, बादल आदि का प्रयोग वैसे ही है जैसे उनके गीतों में।

शान्ति प्रिय द्विवेदी

चित्रशैली की पूर्ण प्रदान करने के लिए काव्य में रङ्ग-वैभव की संयोजना से भावनाएं तथा विविध दृश्य उपस्थित हो जाते हैं।

तू जल जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय
मधुर मिलन में मिट जाता तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुलमिल
मदिर मदिर मेरे दीपक जल
प्रियतम का पथ आलोकित कर

'रंग' का प्रयोग रुचिकर होने के कारण काव्य में भी उसका प्रयोग अत्यधिक होना स्वाभाविक ही है,

चितवन तम श्याम रङ्ग
इन्द्र धनुष भृकुटि-भंग
विद्युत का अंगराग
दीपित मृदु अंग-अंग।

दीपशिखा। १०२।

रज से रंगों में अपना तू
झीना सुरभि दुकूल रंगा ले।

दीपशिखा। ९७।

क्यों अश्रु न हों श्रृङ्गार तुझे।
रंगों के बादल निस्तरंग।

दीपशिखा। १२५।

लौटाते हो अश्रु मुझे तुम
अपनी स्मित के रंगों से भर।

दीपशिखा। १३३।

मैं उन मुरझाये फूलों पर
सन्ध्या के रंग जमा जाती।

दीपशिखा। १३४।

तम-कारा-बन्दी सान्ध्य रंगों-सी चितवन।

दीपशिखा। १०७।

अप्रस्तुत योजना

महादेवी के काव्य में उपमेय-उपमान के अमूर्त रूप विशेष रूप से व्याप्त है। सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त तथा मूर्त के लिए अमूर्त की योजना छायावादी काव्य शैली की प्रमुख विशेषता है, वैसे मूर्त से मूर्त की अभिव्यक्ति में आप नहीं हिचकिचाती। ऐसे स्थलों पर भी मौलिकता का परिचय मिलता है। यह रूप साम्य, गुणधर्म साम्य तथा प्रभाव साम्य के आधार पर संयोजित है।

प्रभाव साम्य :

तड़ित है उपहार तेरा
बादलों सा प्यार मेरा। दीपशिखा

मूर्त-मूर्त

जब कपोल गुलाब पर शिशु प्रात के
सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से।

अमूर्त-मूर्त

प्यास की तरलता-विद्युत से
स्वप्नों के लिए-चाँदनी के बादल।

मूर्त-अमूर्त

शून्य नभ में जब उमड़ मधुभार सी
नैश तम में सघन छा जाती घटा
बिखर जाती जुगनुओं की पंक्ति सी
जब सुनहले अ.सुओं के हार सी। यामा

अमूर्त-अमूर्त

आवे बन मधुर मिलन क्षण
पीड़ा की मधु कसक सा
हँस विरह उठे ओठों में
प्राणों में एक पुलक सा। यामा

इस प्रकार के सैकड़ों उपमान जिनमें मौलिकता भी पर्याप्त है महादेवी जी के काव्य में स्थान-स्थान पर सहज ही आ जाते हैं :

चांदी सी स्मित
मोम सी पीड़ा
धूमिल घन सा
निदाघ से मानस में
निर्धन के धन सी हास रेख
मधुर आसव-सी तेरी याद
बनबाला के गीतों सा मधुमास
तमकारा बन्दी सान्ध्य रङ्गों सी चितवन
चपल पारद-सा विकल तन
सजल नीरद-सा भरा मन

कहीं-कहीं विराट कल्पनायें मिलती हैं, जैसे एक स्थान पर अवनि और अम्बर को विशाल सीप बनाकर उसमें अपार जलधि के तरल मोती को प्रतिष्ठित किया है :

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में
सरल मोती सा जलधि जब काँपता
तैरती धन मृदुल हिम के पुञ्ज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में।

यामा।

कुछ प्रसिद्ध रूपक इस प्रकार हैं :

लक्ष्य-क्षितिज, पावस-प्यार, मुकुर-मानस, पलक-दोल, दृग-द्वार पलक-प्याले, मानस-मन्दिर, विश्वासों का नीड़, पल्लव के घूँघट सुकुमार।

साँग रूपक भी पर्याप्त मिलते हैं :

इन हीरक से तारों को
कर चूर बनाया प्याला
पीड़ा का सार मिलाकर
प्राणों का आसव ढाला।

'स्वप्न' नीहार।

रूपकों में भी विराट कल्पनाएँ मिलती हैं :

विश्व-वीणा में कब से मूक
पड़ा था मेरा जीवन-तार

मानवीकरण :

छायावादी कवियों ने प्रकृति को सचेतन व्यक्तित्व प्रदान करते हुये मानवीकरण शैली को अपनाया है। प्रकृति के जड़ रूप को न लेकर उसके गत्यात्मक विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे,

रजत रश्मियों के तारों पर
बेसुध सी गाती थी रात।

'संदेह'

अलसाती थीं लहरें पीकर
मधुमिश्रित तारों की ओर।

'संदेह'

धीरे धीरे उत्तर क्षितिज से आ बसंत रजनी

'यामा'

मानव-दोलों में सोती शिशु
इच्छाएँ अनजान,
उन्हें उठा देती नभ में दे
द्रुत पंखों का दान।

यामा। १०३

गर्जन के द्रुत तालों पर
चमला का बेसुध नर्तन।

निशा को धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा को मोल

विरोधाभास के उदाहरण भी मिलते हैं। विरोधाभास १—दो विरोधी धर्मों का प्रभाव साम्य तथा २—विरोध पूर्ण शब्दों के प्रयोग के आधार पर संयोजित किये गये हैं :

ताज है जलती शिखा चिनगारियाँ शृङ्गार माला
ज्वाल अक्षय कोष है अंगार मेरी रंगशाला।

सूक्ष्म अनुभूति :

उनकी दृष्टि में कविता हृदय की अनुभूति है। पालिश करने से उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसलिए वे जो रचनाएँ लिखती हैं एक ही बार लिखती हैं उसे 'संशोधन', 'खराद' या 'पालिश' की कसौटी पर नहीं कसतीं। यही कारण है कि उसमें कृत्रिमता का आभास नहीं मिलता और वे हृदय से उद्भूत भावों और अनुभूतियों की एकरूपता प्रदर्शित करती हैं। इस अकृत्रिमता के कारण उनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त कोमल है।'

डा० इन्द्रनाथ मदान

रजत प्याले में निद्रा ढाल
बाँट देती जो रजनी बाल
उसे कलियों में आँसू घोल
चुकाना पड़ता किसको मोल ?

नित सुनहली साँझ के पद से लिपट आता अँधेरा।
पुलक पंखी विरह पर उड़ आ रहा मिलन मेरा
कोन जाने है बसा उस पार
तम या रागमय दिन।

'यामा'

विशेषणों का सार्थक प्रयोग मिलता है। विशेषणों में अनुप्रास की झलक भी मिलती है;

चिन्तित चितवन
लजीली लतिकाएँ

विजन विपिन
झीने जीवन

ईला । ईले प्रत्ययों से निर्मित शब्द विशेष प्रिय हैं,

रजनी के श्याम कपोलों
पर ढरकीले श्रम के कन ।

नीहार ८०

हठीले मेरे छोटे प्राण ।

विशेषण का संज्ञा रूप में प्रयोग भी मिलता है,

सो रहा है मेरा एकान्त ।

नीहार ४४

कोमलकान्त पदावली :

गुण की दृष्टि से माधुर्य गुण आपकी कविता में सर्वत्र व्याप्त है । माधुर्य के साथ ही प्रसाद गुणयुक्त शब्दावली भी मिलती है । कोमल वर्णयुक्त कोमल कान्त पदावली पदे-पदे दृष्टिगत होती है :

श्यामल श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश पाश ।

यामा १४० ।

कोमल कोमल लज्जित मीलित
सौरभ सी लेकर मधुर पीर ।

यामा १२९ ।

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
आँसुओं में सहमें अभिराम
तारकों से हे मूक अजान !
सीखकर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण ?

आ० कवि गीत १३

पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृत भी
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ ।

यामा १३९

अनुस्वरान्त शब्दों के बहुल प्रयोग से भी भाषा में माधुर्य आ गया है ।

छायावादी कवियों को कुछ शब्द बहुत प्रिय हैं उनमें से एक 'चिर' है पन्त इसमें सबसे आगे हैं पर महादेवी जी भी कम नहीं,

यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना ।

● ● ●

चिर करुणा धन

● ● ●

गीतों में भर चिर सुख चिर दुख ।
चिर तृप्ति कामनाओं की
सुख की चिरपूर्ति यही है
चिर ध्येय यही जलने का
दुख का चिर सुख हो जाना

अन्य शब्दों में 'तुहिन' का प्रयोग बहुत मिलता है,

तुहिन के पुलिनों पर छविमान

● ● ●

तुहिन बिन्दु सा, मंजु सुमन सा

'समाधि के दीप'

तुहिन कणों पर मृदु कंचन से,
सेज बिछा दे गान

'चाह'

रजत करों की मृदुल तूलिका से
तुहिन बिन्दु सुकुमार

'मिलन'

लोक शब्दावली

लोक से दूर न रहने के कारण महादेवी जी लोकगीतों से प्राप्त होने वाले सहज प्रवाह से प्रभावित हुये बिना न रह पायीं, यही कारण है कि ग्रामीण शब्दावली भी सहज रूप में आपके काव्य में प्रवेश पा गई । इससे एक विशेष काव्य सौंदर्य झलक उठा है । ऐसे शब्दों का सहज प्रयोग हुआ है ।

रात्रि के स्थान पर 'रैन' तथा वायु के लिए 'बतास' ऐसे ही प्रयोग हैं। 'लीप' का सटीक प्रयोग द्रष्टव्य है,

गुलालों से रवि का पथ लीप
'रश्मि'

'व्रजभाषा के कुछ शब्द एक विशिष्ट मनोदशा में जितने सटीक बैठते हैं उतने संस्कृत के नहीं। 'चितचोर' ऐसा ही शब्द है। विरहणी के लिए मारग शब्द में जो करुणा है 'बिछोह' में जो मधुर पीड़ा है, सपनों में जो प्यास है वह संस्कृत शब्दों में नहीं मिलता। अतएव ऐसे शब्दों को आधुनिक कविता ने प्रेम से गले लगाया है।

मोहन अवस्थी
आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प, पृष्ठ ३१५,

कह जाती उस पार बुलाता
है हमको तेरा चितचोर
नीहार

इन्हीं पलकों ने कंटकहीन
किया था वह मारग बेपीर।
नीहार

ऐसे ही अनेक शब्द, जैसे हौले, अनखाना, उढ़ाना, पाँति, धावा, करतार, भाना, मरम, अधार, जोरना, बिछलना, आदि मिलते हैं।

अरबी-फारसी शब्दावली

संस्कृत के तत्सम शब्दों की ओर विशेष झुकाव होते हुये भी महादेवी जी के काव्य में चलते हुये अरबी-फारसी के शब्द भी आ गए हैं। आपने अपने काव्य में रहस्यवाद से सम्बद्ध स्थलों पर ऐसे शब्दों का विशेष प्रयोग किया है। बहु प्रचलित शब्द तो प्रवाह में अनायास ही चले आते हैं।

विश्व छा लेती छोटी आह
प्राण का बन्दीखाना त्याग
नका प्यार'। नीहार।

'दाग' शब्द विशेष आवृत्ति पर है,

आँखों की नीरव भिक्षा में
आँसू के मिटते दागों में
'सूनापन।

चकित सा सूने में संसार
गिन रहा हो प्राणों के दाग।
'मेरी साध'

कुमुद दल से वेदना के दाग को

अंग्रेजी शब्दावली

महादेवी जी के गद्य में तो अंग्रेजी शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है पर पद्य में अनुवाद के रूप में कुछ शब्द अनायास ही आ गये हैं।

हिम अधर का प्रयोग कई स्थानों में हुआ है, जैसे—

हिम शीतल अधरों को छूकर
तप्त कणों की प्यास।
यामा, १०१

देख रहे अविराम तुम्हारे हिम अधरों की राह
यामा, ११६

नाश के हिम अधरों से मौन
लगा देता है आकर कौन? आधुनिक कवि-३५

व्याकरणिक भूलें

'अभिलाषा' का 'बहुवचन अभिलाषायें'[1] होता है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि 'आँखें' से तुक मिलाने के लिए ही कवयित्री को यह प्रयोग करना पड़ा,

होकर सीमाहीन, शून्य में
मंडरायेंगी अभिलाषें। 'मिटने का खेल से'

लिंग का प्रयोग तो किसी वस्तु के रूप के आधार पर न कर कवि की मनोदशा पर आश्रित है।

---

[1]—अभिलाषा का शुद्ध संस्कृत रूप अभिलाष होता है। अभिलाष की हिन्दी बहु वचन अभिलाषें उपयुक्त है।
—सम्पादक

कहीं-कहीं नवीन क्रियारूप भी मिलते हैं,

> आज न सज अलकों से हीरे
> चौंका दे जग साँस न सीरे।

मय युक्त शब्दावली की भरमार है, जैसे मधुमय, विषमय, स्वप्नमय, विषादमय, रहस्यमय, जलमय, छलनामय, तममय, सुखमय, दुखमय, श्रवणमय, नयनमय, परिमलमय, छविमय, भ्रान्तिमय, श्रान्तिमय, जलकणमय, और इसी प्रवाह में बहु-वचन के साथ भी-मय जोड़ दिया गया है,

रङ्गोंमय, भूलोंमय, तारोंमय, घड़ियोंमय, नवरङ्गोमय, आदि।

विरामचिह्न का सम्यक् प्रयोग

आधुनिक काल में विराम चिह्नों का प्रयोग भी सार्थक होने लगा है। महादेवी जी के काव्य में कहीं-कहीं तो विराम चिह्न अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं,

> वे मुस्काते फूल, नहीं—
> जिनको आता है मुरझाना,
> वे तारों के दीप, नहीं—
> जिनको भाता है बुझजाना।

> ऐसा तेरा लोक, वेदना
> नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
> जलना जाना नहीं, नहीं—
> जिसने जाना मिटने का स्वाद
>
> 'अधिकार', नीहार।

अब अन्त में महादेवी की का- (भाषा के सम्बन्ध में प्रकाश-चन्द्र गुप्त के एक उद्धरण देकर समाप्त करते हैं,

'श्रीमती महादेवी वर्मा के गीतों का एक बड़ा आकर्षण उनकी किन्हीं अनमोल साँचों में गढ़ी हुई भाषा है। भाषा की दृष्टि से आप आज हिन्दी के किसी भी कवि से पीछे नहीं हैं। पन्त की भाषा क्लिष्ट और संस्कृत भार से आक्रान्त है। 'निराला' के शब्दों में अबाधवेग अवश्य है किन्तु उनकी भाषा में वह पच्चीकारी नहीं। अन्य कवियों में इस प्रकार चुनचुनकर मोतियों की जड़ाई नहीं मिलती। भगवतीचरण वर्मा और बच्चन सर्व साधारण के अधिक निकट हैं। किन्तु इस मधुर निर्झरिणी का मदिर कलकल निनाद अद्वितीय है। यह शब्दों की शिल्पकला आपकी अपनी विशेषता है, वह भाषा अलंकार भार से झुकी अवश्य है किन्तु बड़े चतुर कारीगर के गढ़े ये अलंकार हैं एक-एक शब्द चुन चुनकर इस शिल्पी ने सजाया है।'

महादेवी वर्मा के काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

•

पूनम दईया

क्या कवि मनसा दर्शन की खोज में रहते हैं? अथवा दर्शन ही अन्त में काव्य के सिवाय कुछ नहीं? सर्व प्रथम इसी स्थिति पर विचार करें।

यदि हम दर्शन को सत्यान्वेषण मानें अथवा यह मानें कि दर्शन सत्य के कारणों की खोज करता है तो कविता से सम्बन्धित दर्शन में कुछ नहीं है। जहाँ पर सिवाय छन्द व कुछ अलंकारों के कविता के विशिष्ट गुणों का अभाव है वह काव्यमय नहीं हो सकता। किन्तु कविता वस्तुओं पर मक्खन की तरह नहीं फैलाई जा सकती थी, वह प्रकाश की तरह पड़नी चाहिये और ऐसा माध्यम हो जिसके द्वारा हम उसे समझ सकें।

दर्शन की उपपत्ति (विवेक, तर्कशक्ति) और खोजें दुष्कर होती हैं और यदि कविता उससे सम्बन्धित कर दी जाय तो वह कृत्रिम और लालित्य विहीन हो सकती है। परन्तु दर्शन की दृष्टि भव्य और उच्च होती है। यह जिस क्रम को संसार के समक्ष रखता है या प्रकट करता है वह मन को सुन्दर, दुःखान्त, सहानुभूतिमय लगता है, और प्रत्येक कवि उसे बड़े अथवा छोटे पैमाने पर पकड़ने का हमेशा प्रयत्न करता है।

स्वयं दर्शन में उपपत्ति व खोजें केवल अनगढ़ साधन मात्र हैं, साध्य नहीं। वे अन्त में अन्तर्दृष्टि में विलीन हो जाते हैं या उसके उच्च अर्थ में यदि लें तो सिद्धान्त बन जाते हैं अर्थात् सब चीजों का उनके क्रम वा योग्यतानुसार समाहित चित्त से विचार करना। यह विचार करने की प्रकिया सृजन शील है, प्रतिभान्वित है। पर जिसका मन विशाल व हृदय सौम्य नहीं होता है वह इस सिद्धान्त तक नहीं पहुंच सकता। जो दार्शनिक इसकी सिद्धि पाता है वह उस क्षण के लिए कवि है और वह कवि जो स्वयं की अभिजात कल्पना से सब चीजों का पुनर्निर्माण करता है या एक चीज का सबकी पार्श्वभूमि में पुनः निर्माण करता है वह उस क्षण के लिये दार्शनिक हो जाता है।

कविता (काव्य) का छोटापन उसकी काव्यात्मकता में बाधक नहीं होता। उसकी काव्यात्मकता उसके विशाल परिणाम के आयामों में रहती है और कविता में बहुत चीजें भरने से यदि वह बोझिल हो जाय तो उसका दोष कवि की कमजोर बुद्धि में है, कविता के उन आयामों में नहीं। एक तेज दार्शनिक-दृष्टि और संश्लेषणात्मक कल्पना बहुत से दार्शनिक सत्यों को अनायास पकड़ पाती है, और इसके फलस्वरूप काव्य में जो चित्र बनता है वह विस्तीर्णता के कारण अप्रभावक और कमजोर न बनकर गहराई व शक्ति से भरा हुआ रहता है। इसका कारण यह है कि उसमें छोटी कविता की तरह अन्विति तो है ही पर उसके साथ-साथ परिमाण भी रहता है। श्रेष्ठ नाटक के उत्कर्ष क्षण में (ऐसा लगताहै जैसेकि हमारा सारा जीवन वर्तमानके एक क्षण में) केन्द्रीभूत हो गया हो और उसकी उपयुक्तता हमारी चेतना को और निर्णयों को रूप देती है क्योंकि दार्शनिक कवि के लिहाज से मनुष्य की यह सारी दुनिया एक साथ समाहित है और वह कवि उस हद तक कवि नहीं है जब तक एक उद्गार में स्वयं के परिचित जगत को अभिव्यक्त नहीं करता है और खुद के भाग्य का, लक्ष्य का स्वागत नहीं करता है। जीवन को समझना जीवन का सार है और कविता की सबसे

बड़ी उन्नति देवताओं की भाषा बोलना है—देववाणी बन जाना है।

काव्य और दर्शन दोनों नागर कलाएँ हैं; वे दोनों ही एक विशिष्ट काल और देश में पली हुई विशिष्ट प्रतिभा के योग्य। हैं। एक कवि जो भावना और संवेदनाओं के सागर में तैर कर और यथार्थ तथा अयथार्थ सम्भाव्य और असम्भाव्य, मानुष व अमानुष के चित्रों की खोज में रहता है वह कला की कर्मशाला में सामग्री ला सकता है। मगर वह स्वयं कलाकार नहीं बन सकता।

इस जाग्रत कला का एक और कार्य है जो कवि के आदर्श को निरूपित कर सकता है और जिसकी ओर हम विशिष्ट परिस्थितियों में बढ़ रहे हैं। हमारी एक-एक प्रतिक्रिया एक अन्तर्निहित तत्त्व की अभिव्यक्ति मात्र है, हमारे स्वभाव का एक धर्म जो हमें खुद की दिशा को निर्देशित करता है और जिस दिशा के सहारे व्यावहारिक कलायें दुनिया को पलट सकती हैं। जो बाहर की दुनिया है वह भीतर की दुनिया के लिए ही है; नियम या नियन्त्रण अन्तिम स्वातान्त्र्य के लिए हैं और जीत स्वयं को पाने के लिए है। यह भीतर की दुनिया बड़ी ही समृद्ध है याने उसमें केवल चेतना मात्र ही नहीं रहती है जिसके सहारे हमारी काया बाहर की दुनिया से खुद को सहलाती रहती है। हमारे प्रत्येक अर्थ में एक अनिश्चित गुण रहता है और हमारी प्रत्येक बोली में एक अनिश्चित लय और छन्द रहता है; प्रत्येक खेलमें उसके विधायक नियम रहते हैं, प्रत्येक पट में उसकी कोमल थिरकन रहती है और रहस्यमय सपने रहते हैं। जीवन एक किनारा है जो लीला का है जो बढ़ सकता है यदि उसकी केन्द्रीय शक्ति को स्थगित करें। हर नागरिक-सभ्यता कर्मयोग के साथ (कर्म कौशल) लीलाओं को बढ़ा सकती है।

जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अर्थों या विचारों से ही संचालित होता है। अर्थों का साक्षात्कार ही दर्शन है। प्रत्येक युग में दर्शन और साहित्य गाड़ी के दो पहियों की भाँति सहयुक्त रहते हैं। 'साहित्य' 'दर्शन' की पूर्णता है। 'दर्शन' बुद्धि के आधार पर जिन बातों को निश्चित करते हुये शंका करता रहता है साहित्यिक उसी में अपनी भावना द्वारा निश्चितता ला देता है।

"जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई सुवर्णादि धातुओं को खोजने वाला व्यक्ति भीतर पहुंचकर चारों ओर छिटकती हुई धातु गर्भित सींवनों को उधेड़ता है और उस संस्थान से परिचित हो जाता है जिससे उस खान का रूप निर्मित हुआ हैं, उसी प्रकार की कुछ स्थिति साहित्य में गर्भित विचारों के इतिहास की भी है।"[1] दर्शन को अपने में समाहित कर जो अभिव्यक्ति होती है वही सच्ची दार्शनिक अभिव्यक्ति कहलाती है। कविता के माध्यम से केवल विचारों को सिद्धान्त के रूप में रख देना—कवि का काम नहीं है। दार्शनिक विचारों से ओतप्रोत काव्य की सबसे बड़ी कसौटी यही है कि कवि अपनी व्यक्तिगत साधना को सामहिक साधना में और दार्शनिक निश्चयों को जनता के हृदय में उतारने में कितना सफल हुआ है। अपनी साधना में कवि कितना जिया है—दर्शन और जीवन का कितना एकाकार हुआ है।

श्रीमती महादेवी वर्मा का काव्य ऐसा ही है जिसने अपने दर्शन को समाहित कर लिया है उसके पीछे उनका अपना जीवन-दर्शन है। महादेवी जी में बचपन से ही इस विश्व के प्रति विस्मय-भावना छिपी हुई थी। बड़ी हुईं तो पहले से आती हुई रहस्य-भावना से उनका परिचय हुआ। उनका अपना जीवन, जीवन की करुणा, वेदना, अभाव, सुख-दुःख, लोकसेवा को अपना लेना, विभिन्न दर्शनों का चिंतन, मनन उनके विशाल काव्य-फलक के आधार हैं। साथ ही उनके युग की परिस्थितियाँ भी उनके अनुकूल पड़ीं। धर्म में आर्य समाज के प्रभाव ने, पश्चिम में विज्ञानवाद और नवीन बुद्धि-प्रधान शिक्षा के सहयोग से, अवतारवाद की भावना को शिक्षित हृदयों में शिथिल किया। स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के वेदान्तों सम्बन्धी व्याख्यानों की गूँज मानों दार्शनिक पृष्टभूमि बनने के लिए ही उठी थी उधर रवीन्द्रनाथ की वाणी का प्रसार व प्रभाव उस समय के सभी कवियों पर लक्षित होता है रहा। महादेवी अपने अन्तर का कुतूहल लेकर खड़ी हुईं और संस्कृत के दार्शनिक ग्रन्थों ने इन्हें इस दिशा में प्रोत्साहित किया। इसके साथ ही

[1]—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : भूमिका भाग—'हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि'—पृ० १.

संसार का जो असुखद अनुभव उन्हें हुआ वह उन्हें रहस्यवाद की ओर ले गया।

महादेवी जी ने जीवन में सत्य के जिस रूप को स्वीकार किया है उसका धरातल बौद्धिक की अपेक्षा आत्मिक अधिक है। इनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण सदा एकसा ही रहा है। भारतीय दर्शन के साथ-साथ बौद्ध दर्शन का भी उनपर पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है परन्तु उन्होंने उसकेअनीश्वर-वाद को तनिक भी ग्रहण नहीं किया है। केवल संसार में व्याप्त करुणा तथा व्यथा से विशेष रूप से परिचय कराकर उनमें एक असीम करुणा तथा सहानुभूति भर दी है। परमात्मा से मिलने के लिए विकल आत्मा का आर्त्त-क्रन्दन उनके सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है। महात्मा बुद्ध, ईसामसीह, महात्मागांधी और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनके आदर्श पुरुष रहे हैं और सरस्वती तथा श्रीकृष्ण इनके उपास्य देवता हैं।

महादेवी वर्मा ने वेदना को अपने काव्य का मूल तत्त्व रखा है। वेदना दुःखपूर्ण अवश्य है पर प्रत्येक स्थिति में वह दुखजनक नहीं होती। काव्य में जीवन की वही अनुभूति अभिव्यक्त होती है जो कवि को प्रिय होती है। वेदना भी प्रिय हो जाने पर काव्य का अंग बन जाती है। उन्होंने वेदना को काव्य का विषय बनाकर उसके द्वारा सुखवाद का उल्लास प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

इस व्यापक सत्ता में एक ऐसा आकर्षण है जो प्राणी को सदैव अपनी ओर खींचता है। मनुष्य अपूर्ण है। वह सदैव उच्चादर्श की पृष्ठ भूमि में अपनी त्रुटियों के प्रति सचेष्ट रहता है। कभी-कभी उस आदर्श की प्राप्ति के लिए आतुर हो उठता है। ससीम असीम में अपने को लीन कर देना चाहता है। यह प्रकृति कई रूपों में दिखाई पड़ती है। आराध्य-आराधक, गुरू-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि भिन्न-भिन्न सम्बन्धों के रूप में प्रकट हुई है। प्रायः स्त्री-पुरुष के रूप में यह सम्बन्ध अधिक दृष्टिगोचर होता है। महादेवी जी इस विषय में कहती हैं—

"जो सीमित है वह असीम में अपनी मुक्ति चाहता है। पर इस मुक्ति को पाने के लिए उसे अपनी सीमा का समर्पण करना ही होगा। समर्पण के भाव ने ही आत्मा को नारी की स्थिति दे डाली। सामाजिक व्यवस्था के कारण नारी अपना कुलगोत्र आदि का परिचय छोड़कर पति को स्वीकार करती है और स्वभाव के कारण उसके निकट अपने भावों को पूर्णतः समर्पित कर उस पर अधिकार पाती है। अतः नारी के रूपक से सीमाबद्ध आत्मा का असीम में लय होकर असीम हो जाना सहज ही समझा जा सकता है।"

कबीर ने अपने को 'राम की बहुरिया' कहा है। सूफीमत में स्थिति पूर्णतः विपरीत है वहाँ प्रेमी, प्रेमिका से मिलने के लिए उत्सुक दिखाई पड़ता है अतः आत्मा प्रेमी है और परमात्मा प्रेमिका (माशूका) है। जायसी के 'पद्मावत' में रत्नसेन पद्मावती को पाने के लिए विकल है। पाश्चात्य रहस्यवादी कवि Patmore ने भी आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के रूप में देखा है। दूसरे 'रहस्यवादी काव्य' आदर्शवादी होगा। रहस्य-द्रष्टा को अपने आराध्य से साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि वह साधारण प्राणी के स्तर से ऊँचा उठे तथा अपने आराध्य के गुणों को प्राप्त करने का उचित प्रयास करे। रहस्यद्रष्टा अपने स्वयं में एक अपूर्व सुख का भी अनुभव करता है और उसमें नैराश्य भावना लेशमात्र भी नहीं रहती।

महादेवी जी के दार्शनिक चिन्तन एवं तद्जनित उनकी रहस्य-भावना (और उनके जीवन-दर्शन पर भारतीय रहस्य की मूल भावना) का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित है। इस प्रभाव को व्यक्त करते हुए डाक्टर रामरतन भटनागर ने लिखा है—"महादेवी जी के जीवन-दर्शन को हम उपनिषदों और बौद्ध दर्शन की परम्परा तक पीछे बढ़ा सकते हैं। जहाँ तक जीवन, मृत्यु, सृष्टि में व्याप्त चिन्मय सत्ता और मनुष्य (ससीम) और इस चिन्मयसत्ता (असीम) का सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में उनके विचार आत्मदर्शी औप-नैषदिक ऋषियों से भिन्न नहीं है। उपनिषद् के ऋषि भी जीवन की अनिर्वचनीय शाश्वत अखण्डता में विश्वास करते हैं। वे मृत्यु को जीवन का ही एक अविच्छिन्न अंग मानते हैं। इसीलिए वह मृत्यु से भयभीत नहीं होते। जहाँ वह है, वहाँ मृत्यु नहीं हैं, भय नहीं है, दुःख और पीड़ा नहीं।

जो उस अस्तित्व को जान लेता है, वह उसी की तरह अमर और निर्भय हो जाता है।''

महादेवी की कविताओं के संकलन 'नीहार' 'रश्मि' 'नीरजा' 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' से उनके आध्यात्मिक चिंतन और रहस्यवादी भावना का पता चलता है। 'नीहार' 'रश्मि' 'नीरजा' तथा 'सांध्यगीत' की १८५ कविताएँ एक ही संग्रह 'यामा' में संकलित कर दी गई हैं। वस्तुतः 'यामा' में नीहार से लेकर सांध्यगीत तक की रचनाएँ कवयित्री के जीवन का एक युग प्रस्तुत करती हैं। इन रचनाओं में जो भाव विकसित हुए हैं उनका मूल जीवन-दर्शन एवं विश्वास, आदि से अब तक ज्यों का त्यों रहा है। कवयित्री ने इस युग की रचनाओं को स्पष्ट करते हुए कहा है—''नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक चिन्तन प्रिय था। परन्तु नीरजा और सान्ध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे, जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुःख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा। ××× फिर यह सुख दुःख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त में मेरे मन ने जाने कैसे उस बाहर भीतर में एक सामञ्जस्य ढूँढ़ लिया है जिसने सुख-दुःख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।'' ('यामा' की भूमिका पृष्ठ ६)।

चिन्तन रहस्यवादी रचनाओं का एक अनिवार्य अङ्ग है। रहस्यवादी भी एक अनुभूति प्रधान-दार्शनिक है। 'नीहार' की रचनाओं में अनुभूति प्रधान है और चिन्तन को बहुत कम अवकाश मिल पाया है। किसी के रूप-दर्शन की स्मृति बार-बार उनके हृदय में खटकती है। प्रियप्रियतम का सम्बन्ध इन्हीं रचनाओं में प्राप्त होता है। संसार की अस्थिरता, क्षण-भंगुरता, निष्ठुरता, निर्ममता उसके स्वार्थ और विश्वासघात का प्रतिपादन भी है। प्रकृति भी उन्हें ब्रह्म के लिये व्याकुल दिखाई देती है। प्रियतम, प्रिया और प्रकृति तीनों की यहाँ पर पृथक्-पृथक सत्ता है किन्तु उनका प्रियतम अज्ञात होते हुए भी सबका 'साक्षी' है। यहीं से अद्वैतवाद का दृढ़ आधार उन्हें मिलता है। महादेवीजी ने जिसे अज्ञात कहा है और अद्वैतवादी भाषा में जो 'अज्ञेय' है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह—ब्रह्म—है ही नहीं। वह है तो सही; पर मन और बुद्धि की उस तक पहुंच नहीं है। वह 'अवाङ्मानसगोचर' सत्य है। इन्द्रियाँ उसका निरूपण नहीं कर सकती, वह स्वयं अनुभूतिमय है, वह स्वयं 'देखना रूप' है, वह 'स्वयं प्रकाश' है—बुद्धि को वही प्रकाशित करता है।

> ''वे कहते हैं उनको मैं
> अपनी पुतली में देखूं
> यह कौन बता जायेगा
> किसमें पुतली को देखूं ?''

'येनेदं ज्ञायते सर्वं तत् केनान्येन ज्ञायताम्'

'पञ्चदशी'

'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति।'
'यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति'

'केन' १/६

'नीहार' में जहाँ आत्मा, परमात्मा और प्रकृति पृथक् पृथक् थी, वहाँ 'रश्मि' की रचनाओं में एक ओर आत्मा (और परमात्मा) और दूसरी ओर प्रकृति और परमात्मा के द्वैत का निराकरण हुआ। अद्वैतानुसार यह दृश्य-जगत मिथ्या है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं। सृष्टि कभी हुई ही नहीं। महादेवी जी ने भी सृष्टि को स्वप्न के समान ही माना है।

> शून्यता में निद्रा की बन
> उमड़ आते ज्यों स्वप्निल घन

(अद्वितीय ब्रह्मतत्वे स्वप्नोऽयमखिलं जगत्)

वह अद्वितीय ब्रह्म एक बार एकाकीपन के भार से अकुला उठा—

> हुआ त्यों सूने पन का भान
> प्रथम किसके उर में अम्लान ?

और किस शिल्पी ने अनजान
विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण ?'

'न व्यक्तेः पूर्वमस्त्येव'—सृष्टि होने से पहले सृष्टि का अस्तित्व नहीं था और 'असङ्गों ह्ययं पुरुषः'—यह सृष्टि उस अनन्त निर्विकार में हुई—

'न थे जब परिवर्तन दिन रात
नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात
व्याप्त क्या सूने में सब ओर
एक कंपन थी एक हिलोर ?'
'न जिसमें स्पन्दन था न विकार ।'

आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता स्थापित करने के लिए महादेवी जी ने चन्द्रमा और उसकी किरणों के उदाहरण दिये हैं 'तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान' इत्यादि। माण्डूक्य उपनिषद् के समान देवी जी ने भी यह अनेक जगह कहा है कि जन्म, मृत्यु और जन्मान्तर के परिवर्तनों को स्वीकार करने पर भी आत्मा में आकाश के समान कोई विकार संभव नहीं ।

'नीरजा' में 'नीहार' के विचार जो 'रश्मि' में ज्ञान बनकर आये थे अनुभूतिमय हो गये हैं। यहाँ पर महादेवी जी की विचारधारा ज्ञान और प्रेम, ब्रह्म और जगत तथा सूक्ष्म और स्थूल के बीच रही है। ज्ञान की अपेक्षा यहाँ प्रेम की ओर अधिक झुकाव है। तात्पर्य यह कि विचारों को महादेवी जी ने आत्मसात कर उन्हें अनुभूत सत्य द्वारा व्यक्त किया है। स्वरूप की विस्मृति यद्यपि नहीं है फिर भी अस्तित्व की पृथकता का भाव अवश्य है।

'काया छाया में रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?'

● ● ●

'हारूँ तो खोऊँ अपनापन
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन
जीत बनूँ तेरी ही बन्धन ।'

और प्रियतम, उपनिषद् में जिस प्रकार अन्तःकरण को पुरुष का निवास-स्थान बतलाया गया है, हृदय में बसा हुआ है :

'मेरे ही मृदु उर में हँस बस'
और 'प्रिय मुझी में खो गया
अब दूत को किस देश भेजूँ'

'सांध्यगीत' में उपासना भाव को लिए साधना के गीत हैं। परन्तु अनुभूति की प्रधानता होते हुये भी चिंतनशीलता छूटी नहीं है। यह चिंतनशीलता आसक्ति को दृढ़ करने वाली है।

'तोड़ देता खीझकर जब तक
न प्रिय यह मृदुल दर्पण।
देखले उसके अधर सस्मित,
सजल दृग, अलख आनन ।'

'यहाँ ऐसा प्रतीत होगा जैसे सूफियों से मिलती हुई यह भावना अद्वैतवादियों से भिन्न जगत को नवीन दृष्टिकोण प्रदान कर रही है। पर ऐसा नहीं है। स्मरण रखना चाहिये कि संसार को मिथ्या समझते हुये भी अद्वैतवादी उससे इस प्रकार द्वेष नहीं रख सकते कि यह जगत नष्ट या विलीन हो जाय। उनका केवल दृष्टिकोण बदल जाता है'। (विश्वम्भर मानव) प्राणी, जड़ और चेतना का संयोग हैं। उसका स्थूल शरीर मृतिका-निर्मित है और आत्मा परमात्मा का प्रतिरूप। उस पर पृथ्वी का अधिकार है या अकाश का इस पर अन्तिम बात नहीं कही जा सकती। 'दीपशिखा' में पृथ्वी के प्रति कवयित्री के अन्तर में विरक्ति नहीं रह जाती ।

'वह जड़ता हीरों से डाली
यह भरती मोती से थाली,
नभ कहता नयनों में बस
रज कहता प्राण सँभाले,
कजरारे ………… मतवाले,
कहाँ से आये बादल काले ?

'सांध्यगीत' की इन पंक्तियों में—'नीर भरी दुख की बदली' व विस्मृत नभ का कोई कोना उसका न कभी अपना होना'—जहाँ थोड़ी पीड़ा हुई थी 'दीपशिखा' में इसी आभास का सन्देह दूर हो गया है।

भीति ! क्या मिट चली
नभ से ज्वलित पग की निशानी,
प्राण में भू के हरी हैं
पर सजल मेरी कहानी !'

उपनिषद् में ब्रह्म को 'रसोवैसः' कहा है । वह जहाँ आता है, सब सरस हो जाता है । महादेवी जी ने भी कहा है कि प्रिय की मधुर भावना से समन्वित हो कर प्रिय प्राप्ति की साधना के मार्ग के कष्ट और आपत्तियाँ सब मधुर हो गये हैं और अब साधिका ने दुःख सुख में एक अद्भुत सामंजस्य ढूंढ़ लिया है । दुःख भी सरस हो गया है ।

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा,
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ, न सीखा ।
मधुर मुझको हो गया सब
मधुर प्रिय की भावना ले ।'

'सांध्यगीत' ।

महादेवीजी के दर्शन की चिन्ता का दूसरा पहलू है ब्रह्म के प्रति सांकेतिक दाम्पत्य-भाव ।

जिसे सन्तों ने अद्वैतवादी चिन्तन धारा को अपनी उपासना का मूल भाव बनाया और दाम्पत्य भाव या पति पत्नी के प्रतीक द्वारा अपनी रहस्य भावना की अभिव्यक्ति की । निर्गुण ब्रह्म को इन सन्तों ने विविध नामों से पुकारा है । इसी निर्गुण के प्रति महादेवी जी ने युगानुकूल प्रतीकों से अपनी भावना व्यक्त की है । उन्होंने कबीर आदि संतों के विचार अवश्य अपनाये हैं पर प्रियतम के प्रति जो आकुल प्रणय निवेदन है वह उनकी आत्मा की पुकार है । दो उदाहरण दे कर इस बात को और स्पष्ट कर देते हैं ।

'चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर सङ्गम्
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !'

'तरल मोती से नयन भरे ।
मानस से ले, उठे स्नेह-धन,
कसक विद्युत पुलकों में हिम-कण,
सुधि स्वाति की छाँह पलक की सीपी में उतरे !'

सूफियों की रहस्यभावना अद्वैतवाद के मूल सिद्धान्त को लेकर ही चली है । पर उसका मूल आधार 'प्रेम की पीर' है । उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को प्रेयसि और आत्मा को प्रियतम मानकर साधना की-'प्रेम की पीर' की मार्मिक अभिव्यक्ति की है । महादेवी जी ने इस प्रेमजनित आत्मानुभूति एवं चिरन्तन प्रिय के प्रति प्रकट की हुई वेदना को योग के समकक्ष माना है । सूफी प्रकृति को परमात्मा का प्रतिबिंब मानते हैं और इसी को परमात्मा तक पहुंचने का साधन मानते हैं । महादेवी जी ने सूफियों की भाँति प्रकृति को उस विराट का प्रतिबिंब न मानकर सहोदर माना है और इस प्रकार अपनी रहस्यभावना में उसका महत्व प्रतिपादित किया है । जहाँ सूफियों में 'प्रेम की पीर' एकान्तिक साधना का स्वरूप हैं वहाँ महादेवी जी की 'प्रेम की पीर' उनके सेवा-भाव से करुण हृदय की सजलता का पुट लिए हुये है अतः उसमें करुणा का प्राधान्य हो गया है और फलस्वरूप यह सामाजिक वस्तु बन गयी है ।

महादेवी जी दुःखवादी हैं । उन पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव स्पष्ट ही है । बचपन में उननें भिक्षुणी बनने की भावना उठा करती थी । वस्तुतः उनका व्यावहारिक जीवन आज भी सेवा में रत एक सच्ची भिक्षुणी का जीवन है । बुद्ध के संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से उनका असमय में ही परिचय हो गया । इससे उनकी भावनायें और दृष्टिकोण बदला । बुद्ध दर्शन के प्रभाव के कारण उनमें करुणा की भावना छा गई । इसी से उन्होंने बुद्ध की अहिंसा मैत्री, विराग और करुणा की भावना को अपनाया । यह महादेवी जी के जीवन दर्शन की मूल भावना है । मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता उन्हें व्यथित कर देती है । पर इसके साथ गहरी करुणा का भाव उनमें आया जिसने उन्हें सेवा का सक्रिय जीवन अपनाने की ओर प्रेरित किया । जीवन की क्षणभंगुरता में उनमें निराशा का संचार नहीं किया

वरन् व्यथा की आर्द्रता प्रदान की जिसका व्यावहारिक रूप सेवा का जीवन है।

'नहीं अब गाया जाता देव,
थकी अँगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज,
मिला लो यह अस्फुट झंकार।'

प्रकृति को भी इसी रूप में देखती हैं :

'रजतकरों की मृदुल, तूलिका,
से ले तुहिन बिन्दु सुकुमार,
कलियों पर जब आँक रहा था।
करुण कथा अपनी संसार।
तरल हृदय की उच्छ्वासें जब
भोले मेघ लुटा जाते,
अन्धकार दिन की चोटों पर
अंजन बरसाने आते।

● ● ●

'दुःख के पद छू बहते झर-झर
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर।'

इस प्रकार जहाँ भी देखिए, वहीं पर दुःखवाद का पुट मिलेगा। इसी कारण मुक्ति या निर्वाण ही कवयित्री का ध्येय है।

'जब असीम से हो जाएगा,
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल।'

महादेवी जी अपने इस दुःखवाद के सम्बन्ध में दो कारण बतलाती हैं। "जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।" इसके अलावा 'बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण, उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।' इस दुःख के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करती हुई वे लिखती हैं। 'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।'

महादेवी जी की वेदना वस्तुतः एक विशिष्ट रूप में प्रकट हुई है। इसका कारण भौतिक अभाव नहीं है पर यह उनका आन्तरिक सौंदर्य है। यद्यपि वे दुःख और सुख के स्वरूप को स्पष्ट कहीं पर भी नहीं कर पाई हैं। परन्तु इसमें कवयित्री का सेवा का जीवन-दर्शन स्पष्ट झलकता है। लौकिक प्रेम की विफलता उनकी भावनाओं के उदात्तिकरण और सेवा के जीवन-दर्शन को अपनाने में कारण रूप में अवश्य विद्यमान है। मुख्यतः वेदनानुभूति की प्रेरणा उनकी कल्पना प्रवणता, बौद्ध दर्शन का प्रभाव, सेवा के जीवन-दर्शन और दार्शनिक प्रवृत्ति में है। "एक बड़ा दार्शनिक सदा रोता रहता है तो इसका मतलब यह नहीं कि वह भौतिक दुःखों से पीड़ित है। वह तो संसार के दुःखों से दुःखी है। महादेवीजी की वेदनानुभूति उनके हृदय का सौन्दर्य है, आध्यात्मिक कलाजन्य अभिव्यक्ति है"—(जय किशन प्रसाद एम० ए०)।

यहाँ पर एक बात की ओर लक्ष्य कर देना अधिक उचित रहेगा कि बौद्ध धर्मानुयायी ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखते। इस प्रकार महादेवी जी की रहस्य-भावना, आकुल प्रणय-निवेदन, विरह-व्यञ्जना का बौद्धों की करुणा से मेल नहीं बैठता। इस कारण उसकी वेदनानुभूति का एक रूप बौद्ध साहित्य की करुणा भी है। किन्तु, उसे अनेक हृदय में नया जन्म लेना पड़ा है। महादेवी जी अन्य दुःखवादी दर्शनों की तरह प्रकृति से और विस्तृत रूप से जगत व्यापार से आँख नहीं हटा लेतीं, बल्कि वह उनकी तरह और भी प्रबलता के साथ खिंचती हैं। महादेवी जी का काव्य उनके दार्शनिक चिंतन और जीवन का संतुलन है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के शब्दों द्वारा हम इसे और भी स्पष्ट रूप में देख सकते हैं : "महादेवी के काव्य में वैराग्य-भावना

का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में भी दुःख की मुद्रा नहीं मिलती) किंतु बौद्ध संन्यासियों और संन्यासिनियों सरीखी एक चिंता-मुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शांति के प्रति एक अशांति महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है। किंतु इस कारण उनकी कविता में एकरूपता 'मोनोटोनी' नहीं आई है, जैसा कुछ लोग आरोप करते हैं। उनमें प्रचुर वैभिव्य है।

इससे पूर्व इस निबन्ध की अपनी अन्तिम बात कहूँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि मेरा प्रयास इस पूरे निबन्ध में महादेवी जी के चिंतन के दर्शन की उपयोगिता के प्रश्न व इनकी विचारधारा का खण्डन मण्डन करना न होकर इनके काव्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि देना मात्र ही रहा है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि इनका काव्य कल्पना की उत्कृष्ट उड़ान और भावों की मर्मस्पर्शिणी अगम गहराई एवं गम्भीर विचारों से ओत-प्रोत है। महादेवी जी के गीत धरती के गीत हैं उनमें व्याप्त वेदना धरती की वेदना है। काव्य में प्राप्त दर्शन इनका अपना जीवन-दर्शन है। वेदना से उठी करुणा उनके द्रवित मन की है। दार्शनिक कवयित्री की यही साधना है और यही उसका अमर सन्देश है—

'अब धरा के गान ऊँचे,
मचलते हैं गगन छूने,
किरण-रथ दो,
सुरभि-पथ दो,
और कह दो अमर मेरा हो चुका सन्देश।

'दीपशिखा'

और अन्त में, मैं उनका अभिनन्दन करता हुआ, पन्त जी की निम्न पंक्तियों से अपना निबन्ध समाप्त करता हूँ :

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
बरसकर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

महादेवी-काव्य का दार्शनिक आधार

•

विश्वम्भर मानव

चिन्तन रहस्यवादी के जीवन का एक अनिवार्य अंग है। रहस्यवादी एक अनुभूति-प्रधान दार्शनिक है। कबीर जैसे रहस्यवादियों की रचनाओं में भी जिन्हें व्यवस्थित रूप से शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था और जिन्होंने सत्संग से ही शास्त्र की बातों की जानकारी प्राप्त की थी सैद्धान्तिक प्रक्रिया से सम्बन्ध रखने वाली बहुत-सी ऐसी बातें पाई जाती हैं। जिनकी परिभाषा जाने बिना अर्थ नहीं खुल सकता, जैसे 'भाग त्याग लक्षणा' के आधार पर छन्दोग्य उपनिषद के 'तत्त्वमसि' महावाक्य के अर्थ को खोलने के लिए "तत पद त्वं पद और असी पद 'वाच' लक्ष्य, पहिचाने, 'जहद लक्षणा' 'अजहद' कहते 'अजहद' जहद', बखाने" वाले वर्णन में लक्षणा के भेदों का ज्ञान फिर सुशिक्षिता महादेवी जी की रचनाओं में यदि वेदान्त शास्त्र सम्बन्धी बहुत-सी उक्तियों, धारणाओं और अनुभूतियों का 'अनुवाद,' मिले तो क्या आश्चर्य है।

'नीहार' एक अनुभूति प्रधान ग्रन्थ है। उसमें चिन्तन को बहुत कम अवकाश मिला है। हृदय के झकझोरे जाने का ही वह परिचय देता है। जिस समय रई जमें हुए दही को केवल फोड़ कर क्षुब्ध करती है, उस दशा को 'नीहार' व्यक्त करता है। परन्तु मन्थन होने से धीरे-धीरे नवनीत के जो कण ऊपर आते हैं वह आगे की बात है। नीहार की रचनाओं से हमें इतना ही पता चलता है कि सभी संसारी जीवों की भाँति सामान्य गति से चलनेवाले उनके जीवन में सहसा परिवर्तन उपस्थित हुआ। किसी के रूप दर्शन की स्मृति बार-बार उनके हृदय में खटकती है। इन्हीं रचनाओं में प्रिया-प्रियतम का सम्बन्ध थापित होता है। इसके उपरान्त उनके हृदय को वैराग्य की ओर मुड़ते देखते हैं। यहाँ चिन्तन का प्रवेश होता है। इस मायात्मक जगत में विरक्ति उपलब्ध करना साधकों का लक्ष्य रहा है महादेवी जी ने भी कहा है 'सखे यह है माया का देश।' संसार की अस्थिरता, क्षण भंगुरता, निष्ठुरता, निर्ममता, उसके स्वार्थ और विश्वासघात का प्रतिपादन भी है। 'नीहार में वैराग्यवान होने के साथ एकान्त की प्रेमिका भी वे लगती हैं। प्रकृति भी उन्हें ब्रह्म के लिए व्याकुल दिखाई देती है। यहीं तक नहीं, वह चंचल भी प्रकृति से छेड़छाड़ करता प्रतीत होता है। अतः महादेवी सोचती ही रह जाती हैं कि जो मन में छिपा बैठा है वह बाहर कैसे शरारत करता फिरता है?

> घूँघट पट से झांक सुनाते
> अरुणा के आरक्त कपोल
> जिसकी चाह तुम्हें है उसने
> छिड़की मुझ पर लाली घोल।'
> वे मंथर-सी लोल हिलोरें
> फैला अपने अचल अछोर,
> कह जाती 'उस पार बुलाता'
> है हमको तेरा चितचोर?
> यह कैसी छलना निर्मम
> कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार!
> तुम मन में हो छिपे
> मुझे भटकता है सारा संसार!

इस प्रकार 'नीहार' में 'प्रियतम' पृथक्, प्रिया पृथक और प्रकृति पृथक है। प्रियतम को अज्ञाव कहते हुये भी इस तथ्य की उप-

लब्धि इस ग्रन्थ में अवश्य हुई है। कि उन्होंने अपने प्रियतम को सबका 'साक्षी' माना है यहीं से अद्वैतवाद का दृढ़ आधार उन्हें मिलता है। उन्होंने जिसे अज्ञात कहा है और अद्वैतवादी जिसे 'अज्ञेय' कहते हैं, उसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह है ही नहीं। वह है तो सही, पर मन और बुद्धि की उस तक पहुंच नहीं है वह 'अवाङ्मनसगोचर' सत्य है। इन्द्रियां उसका निरूपण नहीं कर सकतीं। अनुभव में इसलिए नहीं आता कि वह अनुभूतिमय है। दिखाई इसलिए नहीं देता कि वह कोई दृश्य नहीं, स्वयं 'देखना रूप' है। उस पर बुद्धि क्या प्रकाश डालेगी, वह 'स्वयं प्रकाश' है। बुद्धि को भी वही प्रकाशित कर रहा है। जिससे सब कुछ जाना जाता है उसे किस वस्तु से जाना जाय ?

(अ) वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली में देखूँ
यह कौन बता जायेगा
किसमें पुतली को देखूँ ।

(आ) येनेदं ज्ञायते सर्वं तत् के नान्येन ज्ञायताम्
—पंचदशी

(इ) अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति ।

(ई) यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
केन १।६

महादेवी जी की दूसरी कृति 'रश्मि' उनकी प्रथम प्रौढ़ रचना है। इसके भाव अधिक स्पष्ट, भाषा अधिक प्राँजल और मधुर तथा विचार अधिक स्थिर है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे 'रश्मि' की रचनाओं का प्रारम्भ करने से पहले महादेवी जी ने कुछ काल तक कतिपय मान्य दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया हो। 'रश्मि' की ३५ रचनाओं में आधी से अधिक अत्यन्त भावमयी भाषा में आत्मा, प्रकृति और परमात्मा का स्वरूप निरूपण करती है। उनमें सृष्टि, प्रलय और परिवर्तन की चर्चा है इन सभी रचनाओं में उन्होंने अद्वैतवाद का अनुकरण किया है। और विभिन्न उपनिषदों के विचारों की स्पष्ट छाप उनके गीतों पर है। यह दूसरी बात है कि सिद्धान्त-प्रतिपादन मौलिक ढङ्ग से हुआ हो, पर विचारों की आत्मा वही है।

अद्वैतवादियों के अनुसार यह दृश्य जगत मिथ्या है। परमार्थ इतना ही है, कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सृष्टि कभी हुई ही नहीं। पर भ्रमकाल में भाषित होती है। जैसे बालू में, जल की, सीपी में रजत की और रज्जू में सर्प की प्रतीति इस भ्रम को दूर करने के लिए उपनिषदों या अन्य वेदान्त ग्रन्थों में ईश्वर जीव और सृष्टि के वर्णन मिलते हैं। मिथ्या वस्तु से भी मिथ्या वस्तु का विनाश संभव है। जैसे स्वप्न की बन्दूक से स्वप्न के सिंह का। इसी से तत्ववेत्ता शङ्का-समाधान के लिए वर्णन के बखेड़े में पड़ते हैं कहा गया है।

न विरोधो न चोत्पत्तिर्न वद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ।
मांडूक्य २/३

अवाङ्मनसगम्यं तं श्रुतिवोधयितं सदा ।
जीव मीशं जगद् वापि समाश्रित्य प्रवेधयेत् ।

यह सृष्टि स्वप्न के समान मिथ्या है—प्रतीत होते हुये भी असत् है। स्वप्न हमारी कल्पनाओं का साकार होना है। रात्रि को हम किसी का स्मरण करते हुये सो जाते हैं। थोड़ी देर में उसका दर्शन कर लेते हैं। कभी-कभी हम ऐसी वस्तुओं को भी देखते हैं जो उस रूप में बाह्य सृष्टि में नहीं पाई जातीं, जैसे सोने का पर्वत या एक ऐसा जीव जिसका मुख तो सिंह का है और शेष शरीर आदमी का। पर सोना और पर्वत, इसी प्रकार सिंह और मनुष्य तो हमारे जाने पहचाने हैं। दो भिन्न वस्तुओं की भावनाओं ने मिलकर स्वप्न में एक विलक्षण रूप धारण कर लिया। कभी-कभी और भी विलक्षण परिवर्तन होते हैं। जैसे यदि यह इच्छा हो कि हम वायुयान में उड़ें तो स्वप्न में अपने को वायुयान में उड़ता न पाकर यह देख सकते हैं कि हम एक ऊँची दीवाल पर दौड़ रहे हैं, साइकिल पर घूम रहे हैं, नदी में तैर रहे हैं, आकाश में उड़ रहे हैं। यहाँ केवल गति के के स्वरूप में परिवर्तन हो गया है। हमारी कल्पना जब विलक्षण सृष्टि का सृजन कर सकती है तब ब्रह्म की

कल्पना जो कर दे वह थोड़ा है। स्वप्न काल की प्रतीत को गजारण काल में सभी मिथ्या ठहराते हैं। महादेवी जी ने इस सृष्टि को स्वप्न के समान ही माना है—

(अ) शून्यता में निद्रा की वन
उमड़ आते ज्यों स्वप्निल घन

(अ) अद्वितीये ब्रह्म तत्त्वे स्वप्नोऽयमखिलं जगत्।

वह अद्वितीय ब्रह्म एक बार एकाकीपन के भार से अकुला उठा—

(अ) हुआ त्यों सूने पन का भान
प्रथम किसके उर में अम्लान ?
और किस शिल्पी ने अनजान
विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण।

(आ) सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय

(इ) आत्मा व इदमेक एवाग्र आसीत।
नान्यत्किंचनामिषत् स ईक्षत लोकान्नु
सृजा इति। ऐतरेय ।१।१।१

(ई) स इयांल्लोकानसृजत। ऐतरेय ।१।१।२

सृष्टि होने से पहले सृष्टि का अस्तित्व न था+न व्यक्तेः पूर्वमस्त्येव—और यह सृष्टि उस अनन्त निर्विकार में हुई—

असंगो ह्ययं पुरुषः।

इन दोनों बातों को कवयित्री ने निम्न प्रकार से स्वीकार किया है :—

(आ) न थे जब परिवर्तन दिन रात
नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात
व्याप्त क्या सूने में सब ओर
एक कंपन थी एक हिलोर।

(अ) न जिसमें स्पन्दन था न विकार।

सृष्टि के अभेद के साथ आत्मा और परमात्मा के समान गुणों की और फिर एकाकार की चर्चा 'रश्मि' में अनेक प्रकार से हुई है। उदाहरण लीजिए—

(आ) सिन्धु को क्या परिचय दें देव
विगड़ते बनते वीचि विलास।
क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश।

(अ) मैं तुमसे हूँ एक एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश

आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता स्थापित करने के लिए महादेवी जी ने जिस प्रकार चन्द्रमा और उसकी किरणों का उदाहरण दिया है, उसी प्रकार आत्मा को इन्द्रियों का लय स्थान मानते हुए प्रश्नोपनिषद् में सूर्य और मरीचियों के उदाहरण द्वारा यह समझाया गया है कि जैसे स्वप्न काल में सभी इन्द्रियाँ मन में लीन रहकर जाग्रतावस्था में फिर सक्रिय हो जाती है। उसी प्रकार सृष्टि काल में हम किरणों के समान उन पुरुष-दिवाकर से पृथक् होकर भी उसके निष्क्रिय काल में उसी में लीन रहते हैं। देखिये—

(आ) तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर
कौतूहल के बाण,
ओस धुले पथ में छिप तेरा
जब आता आह्वान,
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में
होती अन्तर्धान।

(अ) यथा गार्ग्य मरीचयो अर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिन् तेजोमण्डल एकी भवन्ति। ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्ति। प्रश्न ४।२

माण्डूक्य उपनिषद् के अद्वैत प्रकरण में आत्म-तत्त्व को अधिकारी सिद्ध करने के लिए आकाश को उदाहरण स्वरूप सामने लाया गया है कि अविवेकी पुरुष ही मल (धुंआ, धूलि अथवा मेघ) के कारण आकाश को मलिन समझते होंगे, आगे बढ़कर यहाँ तक कहा गया है कि जन्म, मृत्यु और जन्मान्तर के परिवर्तनों को स्वीकार करने पर भी आत्मा में आकाश के समान कोई विकार सम्भव नहीं।

यह बात दूसरे ढंग से अनेक परिवर्तनों के आधारभूत निस्संग आकाश के सम्बन्ध में हमारी कवयित्री ने 'रश्मि' में सिद्ध की है :—

(अ) यथा भवति वातानाम गगनं मलिन मलैः।
तथा भवत्यबुद्धानामात्मा.प मलिनो मलैः।
मरणे सम्भवे चैव गत्या गमनयोरपि।
स्थितौ सर्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः।

। माडूक्य ३।८।९

(आ) वक्ष पर जिसके जल उडुगन
बुझा देते असंख्य जीवन,
कनक औ नीलम यानों पर
दौड़ते जिस पर निशि वासर,
पिघल गिरि से विशाल बादल
न कर सकते जिसको चंचल,
तड़ित की ज्वाला घन-गर्जन
जगा पाते न एक कंपन।
उसी नभ सा क्या वह अविकार
और परिवर्तन का आधार ?

इस प्रकार 'नीहार' में जहाँ आत्मा, परमात्मा और प्रकृति पृथक्-पृथक् थे वहाँ 'रश्मि' की रचनाओं में एक ओर आत्मा और परमात्मा और दूसरी ओर प्रकृति और परमात्मा के द्वैत का निराकरण हुआ। मानों इस सिद्धांत की मूक घोषणा हुई कि—

सर्वं ब्रह्मेति जगता समानाधिकरण्यवत्।
अहं ब्रह्मेति जीवेन सामानाधिकृत भवेत॥

'नीरजा' फिर एक अनुभूति प्रधान रचना है। जैसे गिरि के चरणों में बहनेवाली किसी श्रोतस्विनी की लहर ऊँची उठ कर गिरि पर चढ़ तो जाय; पर अपनी गति के लिए शुष्क और कठोर भूमि पाकर फिर तलहटी के सरस भूमि पर उतर आवे, वैसे ही 'नीहार' की तरनी से उत्पन्न जो विचार की लहर उठी थी वह 'रश्मि' में ज्ञान के गिरि पर तो चढ़ी पर अपने संचार के लिये उपयुक्त भूमि न पाकर 'नीरजा' में फिर अनुभूति के पथ पर लौट आई काव्यत्व की रक्षा के लिए यह अच्छा ही हुआ 'नीरजा' में महादेवी जी की विचारधारा ज्ञान और प्रेम के दो फूलों के बीच ब्रह्म और जगत के दो कगारों के बीच, सूक्ष्म और स्थूल के दो पाटों के बीच वही हैं। बहाव ज्ञान की अपेक्षा प्रेम की ओर अधिक है। स्वरूप की विस्मृति न होते हुए भी अस्तित्व के लिए पृथकता का मान दृढ़ हो गया है और प्रेम का आनन्द लेने के लिए उस पृथकता में आनन्द आने लगा है। आत्म-सर्मपण को स्वीकार नहीं किया, दोनों बातें देखिये—

(१) काया छाया में रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।

(२) हारूँ तो खोऊँ अपना पन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन।

महादेवी जी ने अनेक स्थलों पर प्रियतम को हृदय में बसा हुआ बतलाया है। उपनिषद् भी अंतकरण को उस पुरुष का निवास स्थल निर्देशित करते हैं—

(अ) वह गया बन्ध लघु हृदय में।

नीरजा

(आ) मेरे ही मृदु उर में हंस बस।

नीरजा

(इ) प्रिय मुझी में खो गया
अब दूत को किस देश भेजूँ

दीपशिखा

(ई) इहैवान्तः शरीरे सौम्य स पुरुषः।

प्रश्न। ६।२

'सांध्य गीत' के गीतों में उपासना का भाव प्रबल है। वे साधना के गीत हैं। प्रिया और प्रियतम का भाव उनमें और भी मुखर हो उठा है। इन गीतों में अनुभूति की प्रधानता होते हुए भी चिंतनशीलता छूटी नहीं है। किन्तु वह चिंतन-शीलता भी आसक्ति को दृढ़ करने वाली है—

तोड़ देता खीझकर जब तक
न प्रिय यह मृदुल दर्पण।
देख ले उसके अधर सस्मित,
सजल दृग, अलख आनन ॥

यहाँ ऐसा प्रतीत होगा जैसे सूफियों से मिलती हुई यह भावना अद्वैतवादियों से भिन्न जगत को नवीन दृष्टिकोण प्रदान कर रही है; पर ऐसा नहीं है। स्मरण रखना चाहिए कि संसार को मिथ्या समझते हुए भी अद्वैतवादी उससे इस प्रकार का द्वेष नहीं रखते कि यह जगत् नष्ट या विलीन हो जाय। उनका केवल दृष्टिकोण बदल जाता है। द्वैत दो प्रकार का होता है। एक ईश्वर कृत और दूसरा जीव कृत। जगत् ईश्वर कृत द्वैत है। ईश्वर के संकल्प से यह उत्पन्न हुआ है, उसी के संकल्प से नष्ट होगा। इस जगत को लेकर मन की विविध वासनाएँ जीव-कृत द्वैत हैं। यही पिछला द्वैत बन्धन का मुख्य कारण है। पंचदशीकार ने एक उदाहरण देते हुए कहा है। कि यदि किसी का पुत्र परदेश में सुखी हो और कोई वंचक कह दे कि तुम्हारा पुत्र मर गया, तो पिता पुत्र के जीवित रहने पर भी विलाप करने लगता है। कारण यह है, कि उसका मानस-पुत्र नष्ट हो गया; अतः दुःख हुआ। यही जगत-बन्धन का कारण है। अतः मन को सत्पथ पर डालना चाहिये ईश्वर-कृत द्वैत तो साधना का साधक है। उसी के सामने रहने से ज्ञान होता है। क्योंकि प्रलय काल में जब जगत नहीं रहता तब तो ज्ञान की बात उठती ही नहीं। विवेक द्वारा जगत के केवल मिथ्या स्वरूप को समझना है, उसे नष्ट करने की व्यर्थ प्रार्थना नहीं करनी है—

प्रलये सन्निवृत्तौ तु गुरु णास्माद्य भावत।
विरोधि द्वैत भावेपिन शम्यं बोद्धुय द्वमम ॥

प्राणी जड़ और चेतन का संयोग है। उसका स्थूल शरीर मृत्तिका निर्मित है। और आत्मा परमात्मा का प्रतिरूप। उस पर अधिकार पृथ्वी का है अथवा आकाश का यह विवाद का विषय है। इस सम्बन्ध में अंतिम बात कहनी कठिन है, क्योंकि भौतिकवाद और अध्यात्मवाद की दो विचार-धाराएँ सृष्टि के प्रारम्भ से रही है और किसी-न-किसी अनुपात में सदैव रहेंगी। 'नीरजा' में कई रचनाएँ ऐसी है जिनमें से किसी में इस स्थित का ज्ञान किसी में शरीर की महत्ता का उद्घोष और किसी में जड़ चेतन के अन्तर का व्याख्यान पाया जाता है। 'दीपशिखा' में पृथ्वी के प्रति महादेवी जी के अन्तर में विरक्ति रह नहीं जाती। पहले तो वे बादल वाले गीत में नभ और रज दोनों ओर के प्रबल आकर्षण का वर्णन करती है—

वह जड़ता हीरों से डाली
यह भरती मोती से थाली,
नभ कहता नयनों में बस
रज कहता प्राण समा ले!
कजरारे मतवाले,
कहाँ से आए बादल काले ?

सांध्यगीत में 'नीर भरी दुख की इस बदली' को इस अधिकार पर थोड़ी पीड़ा हुई कि 'विस्तृत नभ का कोई कोना उसका न कभी अपना होना।' 'दीपशिक्षा' में इस असंतोष से मुक्ति मिल गई और अपने अव्यवस्थित आवास का जो सन्देह था वह दूर हो गया, सान्त्वना के दृढ़ स्वर ने कहा—

भीति क्या यदि मिट चली
नभ से ज्वलित पग की निशानी,
प्राण में भू के हरी है
पर सजल मेरी कहानी!

आत्मा की गायिका होते हुए भी महादेवी जी जीवन की व्याख्याता हैं। जीवन और मृत्यु के दो कूलों के भीतर व्यथा की सरिता बहाकर उन्होंने सनातन दिव्य गान को गुनगुनाया है—न प्रेमी मुक्ति चाहता है, न भक्त और न रहस्यवादी। ये तीनों अनासक्त रह कर आसक्त रहते हैं उन्होंने जन्म और मृत्यु की डोरियों पर सधे सुख-दुःख की वानीर-तीलियों से बने झूले पर अपने सुमार प्राण-शिशु को लोरी देकर झुलाया है। इससे कहीं द्वैत आ जाता है। ऐसी आशंका भ्रम है—

मैं ऊर्मि विरल,
तू तुंग अचल वह सिंधु अतल,

बांधे दोनों को मैं चल चलं,
धो रही द्वैत के सौ कैतव।

इस असीम गगन में विहार करनेवाली आत्मा की इस विहगी ने हमारी धरित्री की धूलि को महत्ता प्रदान की है। उसकी इस उदार-कोर की तरलता को हम विस्मय ही नहीं, स्नेह की दृष्टि से भी देखते हैं—

मेरे ओ विहग से गान।
नभ अपरिमित में भले ही,
पंच का साथी सबेरा,
खोज का पर अंत है यह,
तृण कणों का लघु बसेरा?
तुम उड़ो ले धूलि का
करुणा सजल वरदान।

महादेवी वर्मा की सौंदर्य साधना

कृष्णदेवप्रसाद गौड़

जब किसी कृति में सौंदर्य का सामंजस्य होता है तब वह कला होती है। कला और सौंदर्य एक प्रकार पर्याय है। कलाकार में जो सौंदर्य बोधात्मक शक्ति होती है उसी की प्रेरणा से उसकी रचना में वह गुण उत्पन्न होता है जिससे वह लोगों को रुचता है और लोगों को आकृष्ट करता है। एक कला वह भी होती है जो कृत्रिम ढंग से कलाकार अपने विद्या से सिद्धान्तों के पांडित्य द्वारा अपनी रचना में प्रकट करता है। वह बाहरी सजावट तथा पिच्चीकारी का सहारा लेता है। पद्माकर, पजनेश ऐसे मध्ययुगीन कवियों की अधिकांश रचनाएँ ऐसी ही हैं। कवि का हृदय उनमें हमें नहीं मिलता केवल रचना वैचित्र्य ही दिखाई देता है। सौंदर्यबोध आन्तरिक प्रेरणा का परिणाम है। इस स्थान पर इसका विवेचन हमें नहीं करना है कि यह शक्ति कहां से आती है अथवा किस प्रकार उत्पन्न होती है जन्म-जन्म का संस्कार हो या साधना से पैदा हुई हो यह शक्ति कुछ लोगों में स्वाभाविक होती है। माध्यम कोई हो रचयिता का यह सौंदर्यबोध उसकी रचना में उभर आता है।

महादेवी वर्मा कवि हैं, गद्यकार हैं और चित्रकार भी। उनकी रचनाओं की विशेषता है कि सौंदर्य, जो पार्थिव और मांसल स्वरूप से हटकर बारीक और अन्तर्जगत की ओर दृष्टि ले जाता है। शब्दों के चित्र वह निर्माण करती हैं उनमें कुछ ऐसी झलक होती है जो भाषा से कुछ दूर है। तनिक भी ध्यान से उनकी रचनाओं को पढ़नेवाला इसे देख लेता है।

महादेवी जी ने स्वयं अनेक स्थलों पर अपनी कविताओं के संबंध में कहा है कि इनमें पीड़ा तथा विदग्धता के स्वर हैं। जार्ज सन्तायना ने एक स्थान पर कहा है—'नथिंग कैन सो पियर्स द सोल ऐज़ द अटरमोस्ट साइ आव द बाडी।* साइ अर्थात आह तो मुख से निकलेगा ही। किन्तु यदि वह उच्छ्वास अनुभूतिपरक है तो वह हमारी आत्मा को स्पर्श कर सकता है अन्यथा नहीं। और यदि यह उच्छ्वास कला के रूप में हमारे सामने आये तब तो उसमें एक प्रकार का आनन्द सहृदय को मिलता है। इसी में सौंदर्यबोध है। इसी को ध्यान में रखकर संभवतः भवभूति ने कहा था 'को रसः करुणमेव निमित्त मेतात्।' महादेवी जी की वाणी करुणा लिये हुए प्रकट हुई, उन्होंने अपने को 'नीर भरी दुख की बदरी' बताया है इसका यह अभिप्राय नहीं है रोना ही उनका अथवा उनके संसार का ध्येय है। इस रोने में एक सौंदर्य है, एक आनन्द है यही उनका कविता का सौंदर्य है। यही उनका सौंदर्यबोध है।

उन्होंने रश्मि की भूमिका में कहा था—मेरा अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर आंसू की माला ही गूंथा करूँगी। उसके बाद उनकी कविताओं के कई संग्रह निकले किन्तु सब आँसू की माला ही हैं! इसका कारण यही है कि उनमें जो कवि है, 'ऐस्थीट' है कलाकार है वह सौंदर्य को इसी रूप में देखता है।

वास्तविक कलाकार की जो आन्तरिक सुन्दरता होती है वही जनमानस को आकृष्ट करती है। जहाँ उन्होंने पीड़ा के स्वर में नहीं गाया है जहाँ उन्होंने प्रकृति का चित्र खींचा है वहाँ

* Nothing can so Pierce the soul as the uttermost sigh of the boby.

की शब्दावली देखने से पता चलता है कि सुन्दरता का ही एक बहाने से चित्र है। देखिये :—

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता
तैरते घन मृदुल हिम से पुञ्ज से
ज्योत्सना के रजत पारावार में

● ● ●

जब कपोल गुलाब पर शिशुप्रात के
सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से
रश्मियों की कनक-धारा में नहा
मुकुल हंसते मोतियों का अर्घ्य दे

'रश्मि'

प्रकृति का यह चित्रण करके कवयित्री पूछती हैं वह कौन है जो इस प्रकार का चितेरा है और मुझको भ्रम जाल म डाल कर अपनी जादूगरी दिखलाता है। शैली वह है जिसे छायावाद के नाम से पुकारा जाता है। सबेरे-संध्या का वर्णन अनेक कवियों ने किया है और करेंगे ही। उनके सामने से नित्य यह झांकी गुजरती है पर इनकी रचना में जो सजीवता है और जो मादकता है वह कम देखी जाती है। 'नक्षत्र का सूखना' ऐसी पद व्यंजना है जो शायद ही किसी को सूझी हो।

इसी प्रकार वसन्त रजनी अथवा विभावरी में जो चित्रण इन्होंने किया है वह अपने ढंग का अकेला वसन्त रजनी को आमंत्रित करते हुए कवयित्री कहती हैं :

तारकमय नव वेणी बन्धन
शीश फूल पर शशि का नूतन
रश्मिवलय सित नव-अवगुंठन
मुक्ताहल अविराम बिछा दे
पुलकती आ वसन्त रजनी

● ● ●

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि
कर में हो स्मृतियों की अंजलि
मलयानिल का चल दुकूल अलि।
घिर छाया सा श्याम,
विश्व को आ अभिसार बनी

'नीरजा'

अभिज्ञ पाठकों को व्याख्या की आवश्यकता नहीं है किन्तु इतना कहने के लिये पाठक क्षमा करेंगे कि 'स्वप्नों की रोमावलि' नये ढंग की अभिव्यक्ति है। यह वही लिख सकता है जिसने प्रण कर लिया हो कि हमारे काव्य में बाहर और भीतर सौंदर्य का ही दर्शन हो। यदि बसन्त यों आया सब को आनन्दित कर गया, संसार को सुन्दर बना गया तो अच्छा ही है। परन्तु यदि वह अपने कर में स्मृतियों की अंजलि लेकर आये तो जितने वियोगजनित प्राणी हैं उनको अधिक उल्लास होगा इसी प्रकार विभावरी में वह कहती हैं :

चांदनी का अंगराग
मांग में सजा पराग
रश्मितार बांध मृदुल
चिकुर भार री,
ओ विभावरी
अनिल घूम देश-देश
लाया प्रिय का संदेश
मोतियों के सुमन कोश
वार वार री
ओ विभावरी

जैसे वसन्त से वहां कहा स्मृतियों से अंजलि भर लाने को वैसे ही यहां विभावरी के आने पर अनिल प्रिय का संदेश लाया। यह प्रिय कोई सांसारिक प्रिय नहीं है। वह अज्ञात विश्व का सत्ता है जिसको कोई जान नहीं पाया। जिसे वह स्वयं कहती हैं :

सुन रही हूं एक ही
झंकार जीवन में प्रलय में
कौन तुम मेरे हृदय में ?

महादेवी जी की सारी आराधना, सारी पुकार उसके प्रति है जो स्वयं सौंदर्य है जो सारे संसार के सौंदर्य का जन्मदाता

है । यही कारण है इनकी रचना में सुन्दरता का प्रकाश जग-मगाता फिरता है ।

महादेवी जी ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम गीत चुना । यह भी उनकी सफलता का एक कारण है । प्रबन्ध काव्य इतना बड़ा होता है और उसमें इतनी बातों का समावेश होता है कि सुन्दरता का साकार करना असंभव हो जाता है । अभी तक कोई ऐसा प्रबन्ध काव्य नहीं लिखा गया जिसकी प्रत्येक पंक्ति भाव तथा पद व्यंजना की दृष्टि से सुन्दर कहा जा सके । रामचरित मानस में भी ऐसी पंक्तियाँ मिलेगी जिनका लिखना आवश्यक था किन्तु कवि उसे आक-र्षक रूप न दे सका । दे भी नहीं सकता था । अब 'आगे चले बहुरि रघुराई' में कोई कलाकार क्या सौंदर्य दिखाता । मुक्तक में कवि की कला अपने चरम सीमा पर दिखायी जा सकती है ।

यही कारण है कि महादेवी जी की रचनाओं का प्रत्येक पंक्ति में भावों की गहराई है और शब्द के हीरे तराश-तराश कर बैठाये गये हैं । यहाँ पर एक बात और कह देना आवश्यक समझता हूँ । इस प्रकार की रचना केवल सबेरे शाम कविता मांजने और पालिश करने से नहीं होता । ऊपर कहा जा चुका है कि कला का संस्कार स्वाभाविक, एवं जन्मजात होता है । यदि बाल्मीकि वाली कथा ठीक है तो यह कहना ही होगा कि आत्मा में कवि बैठा रहता है कोई शक्ति झकझोर देती है और वह जाग्रत हो जाती है ।

मेरी दृष्टि से महादेवी जी ने दो सरिताओं का संगम किया है । पीड़ा और सुन्दरता । साधारण पाठक यह सोच सकते हैं कि पीड़ा हृदय को मसोसने वाली भावना है उसकी अभिव्यक्ति से रोना ही रोना हो सकता है । एक कोढ़ी बहुत घिनोना देख पड़ता है किन्तु अच्छा कलाकार जब उसका चित्र बनाता है तब उसे देखकर लोग वाह वाह कर उठते हैं । सड़े गले शरीर में सुन्दरता निखर पड़ती है । अपनी इस सुन्दरता के प्रकट करने की प्रेरणा की पूर्ति के लिये उन्होंने मुक्त चुना । वह स्वयं दीपशिखा की भूमिका में कहती हैं ।

काव्य की ऊँची-ऊँची हिमालय श्रेणियों के बीच में गीति मुक्तक एक सजल कोमल मेघखण्ड है जो न उनसे दबकर टूटता है और न बंधकर रुकता है, प्रत्युत हर किरण से रंगस्नात होकर उन्नत चोटियों का शृङ्गार बनकर आता है और हर झोंके पर उड़ उड़ कर उस विशालता के कोने कोने से अपना स्पन्दन पहुँचाता है ।

छायावाद के प्रमुख कवियों की अपनी विशेषताएँ रही हैं । उनकी और रचनाओं को छोड़ दिया जाय और केवल गीतों को ही ध्यान में रखा जाय तो यह देखा जायगा कि पीड़ा की अभिव्यक्ति जितनी महादेवी में है उतनी अन्य कवियों में नहीं । और अपनी कलात्मकता के बल पर इसे उन्होंने सुन्दर बनाया है । यह सुन्दरता पंक्ति-पंक्ति पर उनकी कविता में झलकती है ।

महादेवी वर्मा की सौन्दर्यानुभूति

डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित

सौन्दर्य का प्रथम साक्षात्कार वस्तु-विशेष के आकार अथवा उसके रूप-बोध के साथ सम्पन्न होता है और उसकी अन्तिम परिणति गृहीता की चेतना के सम्पर्क में अनुभूति के रूप में होती है। जगत् के साथ पहला सम्पर्क-क्षण मनुष्य को उनके वैभिन्य और वैचित्र्य के प्रति औत्सुक्यपूर्ण कौतूहल से विचलित कर देता है और उसके अंतर में आनन्द की तरंगवती धारा प्रवाहित कर देता है। अतः वैचित्र्य को ही सौन्दर्य का आधार स्वीकार कर लें तो उसकी अवस्थिति वस्तुगत माननी होगी। आरम्भिक स्थिति में व्यक्ति का मन सौन्दर्य का भोक्ता है और उसकी चेतना सौन्दर्य का निश्चय करने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है, ऐसा ज्ञान नहीं रहता। इस बात का बोध नहीं रहता कि सौन्दर्य की प्रतिष्ठा वस्तु में नहीं अपितु उसकी दृष्टि में ही अधिक संभव होती है। मनुष्य में इस चेतना का विकास शनैः शनैः होता है कि वस्तु का सौन्दर्य व्यक्ति-सापेक्ष, अथवा बहुत कुछ व्यक्ति-सापेक्ष भी, होता है।

औत्सुक्यपूर्ण कौतूहल की आरम्भिक भावना व्यक्ति-मन के प्रसादन के हेतु प्रायः मृदुल-कोमल को ही अपना आश्रय-स्थल बनाती है और प्रायः दृश्य-जगत् के बीच ही प्रसार पाती रहती है। चेतना के विकास और जगत् के नाना रूप-व्यवहारों की परिचिति और अनुभूति के साथ-साथ हमारा मन केवल अनेक वस्तुओं के वैविध्य के बीच से संचरित होता हुआ भी जब एक ही वस्तु के अनेक रूपों का भी परिचय-लाभ प्राप्त करने लगता है, तब गृहीता की दृष्टि अपनी चेतना के सहारे सौंदर्य का ऐसा पट बुनने लगती है जो उसकी कल्पना पर निर्भर और जीवन के राग-विरागात्मक भावों और उन्हें उभारने वाली वस्तुओं के सामंजस्य पर आश्रित रहता है।

स्थूल से आन्तरिक सूक्ष्म की ओर धावित होने का यह क्रम, वैचित्र्य और अनेकता से एकता की ओर धावित होने का क्रम बन जाता है। जगत् के नाना रूप-रङ्गों के बीच अनेकता में भी एकता की खोज करने वाला मन बुद्धि और हृदय में से कभी एक का और कभी दूसरे का सहारा लेता हुआ मार्ग ढूँढ़ने लगता है। बुद्धि की प्रेरणा उसे ज्ञान के क्षेत्र में घुमाती है और हृदय की प्रेरणा उसकी रागात्मक को छेड़कर जगा देती है और व्यक्ति कलाकार के रूप में मन चाहे माध्यम के सहारे दृश्य-जगत् के साथ-साथ अन्तर्जगत् के दृश्य भी उपस्थित करने लगता है। बाहरी रूपाकारों में आन्तरिक उत्फुल्लता का रङ्ग भरने लगता है। ऐसी दशा में प्रायः उसके मन का बाल या कैशोर-औत्सुक्यपूर्ण कुतूहल किसी अदृश्य सत्ता के प्रति निष्ठावान बन जाता है, जिसके परिणामस्वरूप जगत् का सारा प्रसार ही कलाकार को उस सत्ता से परिचालित-सा प्रतीत होने लगता है और उसकी निष्ठा जगत् के सारे रूपों के प्रति एक विशेष रागात्मक सम्बन्ध से जोड़ देती है। इसका एक सीधा परिणाम यह होता है कि कलाकार की आँखों के सामने से सुरूप और कुरूप का भेद हट जाता है और उसे सारी प्रकृति ही सुन्दर जान पड़ने लगती है। वह दोनों रूपों को उपस्थित करता चलता है और सब रूपों में एक ही सत्ता का आभास पाकर उसका चित्त सबके प्रति मुग्धता और आह्लाद से भर जाता है। इस रूप में, वह सौंदर्य के माध्यम से आनन्द की संप्राप्ति तो करता ही है, अखण्ड एकता के सत्य को भी साथ

ही ग्रहण करता चलता है। रहस्यवाद और सर्वचेतनावाद की भूमिका यही है।

अनुभूति की इस स्थित की कलाकार में दो दिशाएँ संभव हैं जिनके द्वारा वह इस अनुभूति को अभिव्यक्ति देता या दे सकता है। एक, वह सर्वत्र एक ही सत्ता का दर्शन या अनुभव करता हुआ केवल उस असीम और अनन्त की कल्पना में भी लीन रह सकता है और दूसरे, जगत् के नाना रूपों में उसी की छवि का प्रसार देखकर व्यावहारिक धरातल पर मनुष्य की एकता और जीवन की अखंडता का बोध कराने में प्रवृत्त हो सकता है। ऐसा कलाकार जीवन के नाना रूपों के चित्रण के माध्यम से उस विराट शक्ति की ही सूचना देता है, किन्तु पहले प्रकार के कलाकार के सदृश आत्मनिष्ठ या अन्तर्मुख न होकर वह समाजनिष्ठ और बहिर्मुख हो जाता है। पहला कलाकार महादेवी के समान होता है और दूसरा तुलसीदास के।

जो कलाकार सौंदर्य के इस राग-द्वेषात्मक, सुख-दुःखात्मक रूप का सामंजस्य करके उसका ग्रहण नहीं कर पाते वे अन्तर्वृत्तियों के सहज उन्मीलन-जनित सौंदर्य के स्थान पर वस्तु के बाहरी आकार-प्रकार में ही उसकी खोज करते भटकते हैं और रागात्मकता की अपेक्षा शब्दों की आभूषा-वृत्ति को प्रश्रय देते और कला को कला के लिए स्वीकार करते हैं।

महादेवी कला का लक्ष्य कला नहीं मानतीं। कला, काव्य का भी, लक्ष्य है अखण्ड सत्य की प्राप्ति। यह प्राप्ति जीवन से दूर रहकर नहीं अपितु उसी के बीच से रास्ता निकालकर ही हो पाती है और इस प्राप्ति में सौन्दर्य एक माध्यम बन जाता है। इस अखण्ड सत्य तक सौंदर्य के माध्यम से पहुंचते हुये कलाकार और गृहीता को आनन्द का अनुभव होता रहता है। अतः सौंदर्य जहाँ जीवन की अखण्डता और एकता का प्रतिष्ठाता है वहाँ आनन्द का प्रसारकर्त्ता भी है। इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुये, इसीलिए, महादेवी जी ने कहा है "कला का सत्य जीवन की परिधि में सौंदर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त अखण्ड सत्य है।"[1] अथवा सत्य काव्य

[1]—दीपशिखा, भूमिका, पृ० ६।

का साध्य और सौंदर्य साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त, इसी से साधन के परिचय-स्निग्ध खण्ड रूप से साध्य की विस्मय-भरी अखण्ड स्थिति तक पहुंचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है।"[1]

'जीवन की परिधि' और 'अनेकता में एकता' की चर्चा इसलिये आवश्यक हुई कि केवल व्यक्ति-सम्बन्ध से सौंदर्य का विचार करें तो देश-भेद से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच इतना अधिक रुचि-वैचित्र्य दिखाई देगा कि न तो सौंदर्य का ही कोई एक रूप निश्चित किया जा सकेगा और न ही सामंजस्य का। इस वैचित्र्य के कारण उपस्थित अव्यवस्था से बचने का एक मात्र रास्ता है सम्पूर्ण जीवन को स्वीकार करना। वस्तुतः कलागत सौंदर्य "जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है, केवल वाह्य रूपरेखा पर नहीं।"[2] जगत् की क्षुद्रतम वस्तु भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है और प्राणिजगत् की अनेकात्मक गतिशीलता से लेकर अन्तर्जगत् की रहस्यमयी विविधता तक सब स्थितियाँ सौंदर्य के अन्तर्गत गृहीत होती हैं। यहां तक कि "छोटा, बड़ा, लघु, गुरु, सुन्दर, विरूप, आकर्षक, भयानक कुछ भी कला-जगत् से बहिष्कृत नहीं किया जाता।"[3]

कला-जगत् में सुन्दर और विरूप दोनों का एक-साथ स्थान है। "व्यष्टि और समष्टि में समान रूप से व्याप्त जीवन के हर्ष-शोक, आशा-निराशा, सुख-दुःख आदि की संख्यातीत विविधता को स्वीकृति देने ही के लिये कला-सृजन होता है।"[4] किन्तु संसार में सुन्दर और विरूप जीवन-सापेक्षता में घट या बढ़कर भी दिखाई दे सकते हैं। "संसार में प्रत्येक सुन्दर वस्तु उसी सीमा तक सुन्दर है, जिस सीमा तक वह जीवन की विविधता के साथ सामंजस्य की स्थिति बनाए हुए है और प्रत्येक विरूप वस्तु उसी अंश तक विरूप है जिस अंश तक वह जीवन-व्यापी सामंजस्य को छिन्न-भिन्न करती है।"[5] किन्तु सुन्दर की हमारे जीवन में जैसी स्वाभाविक स्थिति है, वैसी विरूप की नहीं है। सौन्दर्य से

[1]—वही, पृ० १। [2]—वही, पृ० ६। [3]—वही, पृ० ७। [4]—वही, पृष्ठ १८। [5]—वही, पृष्ठ २०।

से हमारा परिचय अविभक्ति का है और विरूप से औपचारिक। दोनों एक ही सामंजस्य की ओर इंगित करते हुए भी परस्पर भिन्न हैं। "सौन्दर्य अपने समर्थन के लिये जिस सामंजस्य की ओर इंगित करता है विरूपता भी अपने विरोध के लिये उसी की ओर संकेत करती है, पर दोनों के संकेत में अन्तर है। प्रत्येक सौन्दर्य-खण्ड अखण्ड सौंदर्य से जुड़ा है और इस तरह हमारे हृदयगत सौन्दर्यबोध से भी जुड़ा है, पर विरूप, व्यापक सामंजस्य का विरोधी होने के कारण हमारे भीतर कोई स्वभावगत स्थिति नहीं रखता। सौन्दर्य से हमारा वह परिचय है जो अनन्त जलराशि में एक लहर का दूसरी लहर से होता है, पर विरूपता से हमारा वैसा ही मिलन है जैसा पानी में फेंके हुए पत्थर और उससे उठी लहर में सहज है।"[१] इतना ही नहीं सौन्दर्य की चिर-नवीनता उसे काव्य के लिये ग्राह्य बना देती है और विरूपता साधारण होकर उस सीमा में स्थान नहीं पाती। "सौन्दर्य चिर परिचय में भी नवीन है पर विरूपता अति परिचय में नितान्त साधारण बन जाती है। इसी से सौन्दर्य की रहस्यानुभूति ही अन्तहीन काव्य-कक्ष में नये परिच्छेद जोड़ती रहती है।"[२]

सौन्दर्य की अनुभूति एक प्रकार से रहस्यानुभूति ही है। वाह्य जगत ही नहीं अन्तर्जगत् में होने वाले व्यापार भी हमारे लिये कम महत्वपूर्ण नहीं होते। स्थूल और सूक्ष्म के सामंजस्य में ही जीवन है, केवल स्थूल या केवल सूक्ष्म की अपनी चाहे जैसी स्थिति हो जीवन के लिये उनका महत्व नहीं है। कर्म का जितना महत्व है उससे कम भाव का नहीं है। "हमारे जीवन में सूक्ष्म और स्थूल की जैसी समन्वयात्मक स्थिति है वही कला को, केवल स्थूल या केवल सूक्ष्म में निर्वासित न होने देगी। जब हम एक व्यक्ति के कार्य को स्वीकार करेंगे तब उसकी पट भूमिका पर बने हुए वायवी स्वप्न, सूक्ष्म आदर्श, रहस्यमयी भावना आदि का भी मूल्य आंकना आवश्यक हो जायगा।"[३] अन्तर्जगत् की यह स्थिति रहस्यानुभूति में आनन्द की प्रतिष्ठा करती है, अतः सौन्दर्यानुभूति को रहस्यानुभूति मान लेने पर उसमें

[१-२]—वही, पृष्ठ २८।
[३]—वही, पृष्ठ ९।

आनन्द को स्वीकार करना सहज हो जाता है। इसी से महादेवी जी का कथन है: "व्यापक अर्थ में तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सौन्दर्य या प्रत्येक सामंजस्य की अनुभूति भी रहस्यानुभूति है। यदि एक सौन्दर्य-अंश या सामंजस्य-खण्ड हमारे सामने किसी व्यापक सौन्दर्य या अखण्ड सामंजस्य का द्वार नहीं खोल देता तो हमारे अन्तर्जगत् का उल्लास से आन्दोलित हो उठना संभव नहीं। इतना ही नहीं किसी कर्म के सौन्दर्य और सामंजस्य की अनुभूति भी रहस्यात्मक हो सकती है, इसी से मनुष्य ऐसे कर्मों का आलोक-स्तम्भ बना-बनाकर जीवन-पथ में स्थापित करता रहा है।"[१]

सौंदर्यानुभूति से अलौकिक रहस्यानुभूति तक का यह यात्रापथ जीवन की विविधता को उसके सत्य एवं अखण्ड रूप में ग्रहण करने के कारण ही आनन्दमय बन जाता है। बुद्धि जिस रहस्य को ज्ञेय के रूप में ग्रहण करती है, हृदय का व्यापार उसे ही प्रेय बनाकर उपस्थित करता रहता है। प्रेय का यह व्यापार चाहे कितना ही अलौकिक क्यों न हो, कला के क्षेत्र में लौकिक भूमि पर ही संचरण करता है। रागात्मकता माधुर्यभाव का पल्ला पकड़कर ही आगे बढ़ती है। रहस्य की इस भूमि पर अन्तर्जगत् की अनुभूति भी वाह्य जगत् के समान ही सहज हो उठती है। दूसरे शब्दों में अखण्ड चेतन से तादात्म्य का रूप केवल बौद्धिक भी हो सकता है, पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का ज्ञेय ही हृदय का प्रेय हो जाता है। इस प्रकार रहस्यवादी का आत्मसमर्पण बुद्धि की सूक्ष्म व्यापकता से सौंदर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है, अतः उसमें सत् और चित् की एकता में आनन्द सहज सम्भव रहेगा। तथा रहस्यद्रष्टा जब खण्डरूपों से चलकर अखण्ड और अरूप चेतन तक पहुंचता है तब उसके लिये अपने अन्तर्जगत् के वैभव की अनुभूति भी सहज हो जाती है और वाह्य-जगत् की सीमा की भी। अपनी व्यक्त अपूर्णता को अव्यक्त पूर्णता में मिटा देने की इच्छा उसे पूर्ण आत्मदान की प्रेरणा देती है। यदि इस तादात्म्य के साथ माधुर्य भाव न होता तो यह ज्ञाता और ज्ञेय की एकता बन जाता, भावभूमि पर आधार-आधेय की एकता नहीं[३]।

[१]—वही, पृष्ठ २७–८। [२]—वही, पृ० २९।
[३]—वही, पृ० ३१।

सौंदर्य और रहस्यानुभूति सम्बन्धी इन मान्यताओं के विस्तृत स्पष्टीकरण की यहाँ आवश्यकता इसलिए हुई कि महादेवी के काव्य के सम्बन्ध में विचार की सही दिशा अपनाई जा सके। महादेवी जी की इन मान्यताओं के अनुरूप ही उनका काव्य भी है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने मान्यताओं को व्यावहारिक रूप देने के लिए ही काव्य की रचना की है। इसके विपरीत शायद यह कहना ठीक होगा कि अनुभूति के बल पर उपस्थित काव्य को जब चिंतन का सहारा मिला तब उन्होंने अपनी भूमिकाओं में उस अनुभूत सत्य को ही वाणी देने का प्रयास किया है। अस्तु,

महादेवी जी के काव्य में अपने ढङ्ग की सुख-दुःखात्मक विविधता भी है और अखण्ड सत्य की अनुभूति भी, उनमें सौंदर्य के प्रति औत्सुक्यपूर्ण जिज्ञासा भी है और माधुर्य-पूर्ण तरल भावुकता भी, सान्द्र अनुभूति को उपस्थित करने की शक्ति भी है और चित्रमय अंकन की सहज कलाकारिता भी। फिर भी महादेवी जी के काव्य की प्रसार-भूमि यद्यपि जीवन और जगत् भले ही हो तथापि जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण जितना आन्तरिक अनुभूतिपरक है उतना वाह्य-अनुभव परक नहीं। पहले ही कहा जा चुका है कि इस दृष्टि से महादेवी तुलसीदास जी से भिन्न स्थिति रखती हैं। जीवन और परिस्थितियों का सामाजिक-संदर्भ में जैसा रूप अंकित होना चाहिये या हो सकता है, महादेवी जी या तो उससे परिचित होकर भी उससे अपरिचित ही बना रहना चाहती हैं, या उसे पहचानती ही नहीं हैं। अतः उनके काव्य में अनुभूति की गीतात्मक तन्मयता तो है, किन्तु विराट सामाजिकता नहीं है। सुख-दुःख से उनका परिचय है अवश्य किन्तु उसके विविध रूपों के उद्‌घाटन में, अनेक घटनाओं के बीच उसके प्रकाशन में, उनकी वृत्ति नहीं रमती। परिणामतः उनका काव्य वाह्य प्रकृति में ही अभिव्यक्ति का सन्तोष ग्रहण करती है। उसके भी केवल प्रातः, सन्ध्या और रात्रि के चित्र ही उन्हें रुचिकर प्रतीत होते हैं, ऋतुओं में बसन्त और वर्षा ही उन्हें विशेष उल्लेखनीय ज्ञात होती है। मानवीय रूपों में नारी-रूप ही उन्हें मोहता है।

नीहार से दीपशिखा तक के पूरे पाँच चरणों में महादेवी सहज औत्सुक्य के रहस्य से ऊपर उठती हुई अन्ततः ऐसे स्थल पर पहुँच गई हैं जहां वे दृढ़ता के साथ कह पाती हैं "हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन" अथवा अश्रु-हास की समान महत्ता स्वीकार करती हैं।

"एक ही उर में पले, पथ एक से दोनों चले हैं,
पलक पुलिनों पर, अधर-उपकूल पर दोनों खिले हैं।
एक ही झङ्कार में दृग अश्रु, हास घुला चुकी हूं।"

और "दुःख से आविल, सुख से पंकिल" जीवन को वे भली भाँति समझ चुकी हैं, किन्तु नीहार और रश्मि में गूँजने वाला उनका उल्लास आज भी पूर्णतया खोया नहीं है। रश्मि में महादेवी ने जिस "कनक से दिन, मोती सी रात, सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात" को देखकर जग के चित्राधार की ओर जिज्ञासु-भाव से देखा था, उसका आकर्षण नष्ट नहीं हुआ है, केवल आन्तरिक अनुभूति में अपेक्षाकृत अधिक स्थैर्य के लक्षण प्रकट हो आये हैं। जीवन-बोध की, "कण-कण को जान लेने की जितनी तीव्र गन्ध दीपशिखा में है, उतनी ही उससे पूर्व की कृतियों में प्रकृति-बोध की मादकता भी है। न दीपशिखा में प्रकृति-बोध समाप्त हुआ है, न उससे पूर्व की कृतियों में जीवन-बोध। फिर भी महादेवी की रचनाओं का मूल सौंदर्याधार तो प्रकृति ही है—वाह्य प्रकृति। प्रकृति का चित्रण करते हुये महादेवी वर्ण, ध्वनि, गन्ध, स्पर्श और रस आदि के ऐसे सूक्ष्म ऐन्द्रियबोध जागृत करती हैं कि पाठक का संवेदनापूर्ण हृदय कहीं भी उल्लास-शिथिल नहीं होता। सौंदर्य के इतने भिन्नवर्णी चित्र महादेवी ने आँके हैं कि यहाँ सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता। कुछ दो-चार चित्र भी सामने रखे जा सकें तो बहुत है।

महादेवी ने मुख्यतः उषा, संध्या और रात्रि के ही चित्र अंकित किये हैं। किन्तु इन चित्रों में भिन्नता इतनी है कि कोई भी एक दूसरे से मिलता-जुलता नहीं है, अतः आकर्षण में दूसरे से कम नहीं है। उषा के पाँच भिन्न चित्र देखें। रश्मि की पहली कविता "चुभते ही तेरा अरुणा बान" नीरजा में "मत अरुण घूँघट खोल री", सान्ध्यगीत में "ओ अरुण वसना" तथा "आज सुनहली बेला" और दीपशिखा की "सजल है कितना सबेरा" कविताओं में पहली में प्रातःकालीन स्वर्णवर्णी सुषमा, जागरण की गति-भंगिमा और

वातावरण की मादकता का दृश्य अंकित है तो दूसरी में तारक-कुसुम, चुनने वाली सलज्ज नवोढ़ा का सौंदर्य उभर रहा है। सलज्ज अरुणवर्णा उषा, अम्बर के तारक-कुसुम नभ की हाट में सजे रजनी-रूपी नायिका के मोती का रूप और नव इन्द्रधनुषी मेघलहरियों में बिछलती-इठलाती यौवन-मत्त उषा का मूर्तिमन्त, मानवीकृत रूप उसकी ललित चेष्टाओं के माध्यम से बड़ी सहृदयता और सावधानी से अंकित किया गया है। "ओ अरुणवसना" में नव-वधू का रूप सामने आता है तो "आज सुनहली बेला" में भावी परिवर्तन के संकेतों से विह्वल चित्त की वर्त्तमान सौंदर्य को पकड़ लेने की ललक है और "सजल है कितना सबेरा" में रात्रि के घन-कुहासे को चीरकर उपस्थित होने वाली उल्लसित उषा का स्वागत है। लेकिन ये सब चित्र केवल उषा के ही नहीं हैं, निशा की सापेक्षता में उषा के चित्र हैं, अतः पट-परिवर्तन का सा परिणामकारक मोह-जाल फैलाते हैं।

उषा के समान ही सन्ध्या के भी कई चित्र हैं: रश्मि में सन्ध्या का आगमन "अथक सुषमा का सृजन-विनाश" का सूचक बनता है, प्रातःकाल से सांध्यकाल तक बदलते आकाशी रङ्ग-रूपों पर रात्रि का अन्धकार घिर आता है तो कहे बिना नहीं रहा जाता :

"गुलालों से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती संध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग,
उसे तम की बढ़ एक झकोर,
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा सृजन विनाश,
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?"

सांध्यगीत की संध्या भी अपने रूपाकर्षण में मोहक है। "यह सन्ध्या फूली सजीली" में पुनः

"आज सुनहली रेणु मली सस्मित गोधूली ने।
रजनीगन्धा आंज रही है नयनों में सोना।
हुई विद्रुम, वेला नीली।"

का रोमांचक चित्र है और अन्त में पूर्व कथित सिद्धान्त भी "सृष्टि भरने पर गर्वीली" शब्दों में दुहरा दिया गया है किन्तु दीपशिखा में "गोधूली अब दीप जला ले" कविता में केवल सांध्य-सौन्दर्य के बीच उभरती रजनी का स्वागत ही है, परिवर्तन का संकेत देकर किसी सिद्धान्त से उसका सिरा जोड़ने का प्रयत्न नहीं है। सांध्य-रंगों को देखकर महादेवी इतना ही कहती हैं :

"कुमकुम से सीमन्त सजीला,
केशर का आलेपन पीला,
किरणों की अंजन-रेखा,
फीके नयनों में आज लगा ले।"

अथवा यह कि "किरण-नाल पर घन के शतदल,
कलरव-लहर विहग-बुद्-बुद् चल,
क्षितिज-सिन्धु को चली चपल,
आभा-सरि अपना उर उमगा ले।"

उषा-वर्णन की भाँति न तो संध्या-वर्णन की बहुलता ही है और न वैसी विविधता ही, किन्तु रजनी के कई रूप महादेवी जी की कविताओं में अवश्य मिलते हैं। महादेवी जी की "प्रिय, सांध्यगगन मेरा जीवन" कहती अवश्य हैं, किन्तु संध्या के उतने चित्र नहीं उरेहतीं। सबसे अधिक उनका मन रमा है रात्रि-वर्णन में। रात्रि के प्रति उनका आकर्षण नीहार और रश्मि में पुलक भरा है, नीरजा में आवेशमय और सांध्यगीत तथा दीपशिखा में निर्वाणोन्मुख नीहार की निम्नांकित पंक्तियां सम्पूर्ण कविता के हर्ष-विषादमय वातावरण में मृदुल संवेदन और अन्तर्भावों को ही जागृत नहीं करतीं, बल्कि पाठक को मिलन के मादक व्यापार में विभोर भी करती हैं। शब्दों का ऐसा अर्थमय प्रयोग कम ही देखने को मिला करता है :

"रजनी ओढ़े जाती थी,
झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली।।
शशि को छूने मचली सी,
लहरों का कर कर चुम्बन।

बेसुध तम की छाया का,
तटिनी करती आलिंगन ।।''

सौन्दर्य की अखण्ड प्रतिमा की तरह रजनी महादेवी जी के भावार्चन का लक्ष्य बनती रही है । वसन्त ने शरीर और प्रकृति को जिस नवीन चेतना की गांठ खोलकर अकस्मात् ही हर्ष-निर्भर बना दिया है उसी से रजनी-रानी के अंगों को भी सहेज दिया है । सरद्-ज्योत्सना में नहाई हुई रजनी नहीं, वसन्त-रजनी ही महादेवी जी का ध्यान आकर्षित करती है । उसकी रूप-सज्जा के लिये उनका उपक्रम देखने योग्य है, पुलक, हास, संकोच और सिहरन का ऐसा क्रम है कि प्रिया का प्रिय से मिलन के पूर्व से लेकर उसके अन्त तक का चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है । प्रकृति पर नारी-भाव का आरोप तो महादेवी जी ने बार-बार किया है, किन्तु ''धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त-रजनी'' कविता में प्रसाधन-सौंदर्य और आन्तरिक उल्लास का जैसा चित्र अंकित किया है, वह स्थायी प्रभाव डालता है । यदि इस कविता में नवोढ़ा का लजीला-सजीलापन है तो नीरजा की ही दूसरी कविता ''रूपसि तेरा घन केश-पाश'' में सद्य-स्नाता का उद्दीपक सौन्दर्य अंकित है । उच्छ्वसित वक्ष, मलयज बयार बन जाने वाली निश्वासें, स्निग्ध लटें और पास ही कहीं कूजने वाली मयूरी-सारा दृश्य ही ऐसा है कि अनजाने ही मन छूने के लिये बेकल हो उठे, लेकिन यह बेकली रूप के लुटेरे की बेकली नहीं है, उदास जग-शिशु की माँ के आँचल में मुँह छिपा लेने की बेकली है । प्यार का ऐसा रूप, शीतलता का ऐसा स्पर्श भी कितना सुखद होता है, कितना सुन्दर । इन्हीं कविताओं की तुलना में नीरजा की ही ''ओ विभावरी'' कविता रखकर देखें, कितनी सीधी और कैसी संकेतात्मक है । साँध्यगीत की ''जाग जाग सुकेशिनी री'' में महादेवी का स्वर बदल गया है । उल्लास और आवेग की तीव्रता से स्थिरता आने लगी है, थिरकन अवशिष्ट है । एक अलस सा भाव, तन्द्रिलता सी और किसी का पथ देखती प्रेमिका की भाव, तन्मयता सी ही इस कविता में व्याप्त दीखती है और दीपशिखा की ''सपने जगाती आ'' शीर्षक कविता में उपस्थित रजनी सांसारिक सुख-दुःख के सन्दर्भ में केवल मृदुल लेप के लिए उपयोगी बन गई है ।

उषा, सन्ध्या और रजनी के रूप-चित्र तो केवल उदाहरण के लिये ले लिये गये । वस्तुतः महादेवी जी की कविताओं का सौंदर्य ही इस बात में है कि उनकी किसी भी रचना से प्रकृति और मानव-भाव को अलग-अलग करना सरल नहीं है । प्राकृतिक दृश्यों ने उनकी कल्पना को छेड़कर जगा दिया है, उनकी रागात्मकता को रहस्य का पथ प्रदर्शित किया है । प्रकृति के साथ भाव-तरङ्ग के मिश्रण के कारण ही उन्हें ''तारिकाएँ चकित सी अनजान सी'' जान पड़ती हैं और एक कुतूहल जाग उठता है कि ''दूर के संगीत सा वह कौन है ?'' महादेवी जी के सामने कभी प्रकृति कालिका बनकर उपस्थित नहीं होती, सदैव वर-वेशिनी ही बनकर आती है । उन्हें ''अवनि अम्बर की रुपहली सीप में, तरल मोती सा जलधि ही कांपती'' नहीं दिखाई देता, अपितु वारिद में विद्युत की मुस्कान भी दिखाई देती है, सित मेघ, दीपकों से जुगनू और फेनमय मुक्तावली से तारकों को देखकर उनका उल्लास कई गुना हो आता है । वे मधुमास और नीर भरी बदली भी बनती हैं तो भी उनके उल्लास में कोई न्यूनता नहीं आती । उन्हें तो यही लगता है—

''आज मधुर विषाद की घिर करुणा आई यामिनी ।
बरस सुधि के इन्दु से, छिटकी पुलक की चाँदनी ।''

दीपशिखा में अवश्य उन्हें उस प्रिय की समीपता और अपनी निर्वाणोन्मुखता का ऐसा ज्ञान हो आया है कि उन्हें कहना पड़ा—

''थम गया मदिर विलास, सुख का वह दीप्त हास,
टूटे सब वलय हार, व्यस्त चीर अलक-पाश,
बिंध गया अजान आज किसका मृदु-कठिन तीर ?''

किन्तु प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति उनका आकर्षण रहस्यवाद की ऊँचाइयों में बदला सा भले ही लगता हो, लुप्त नहीं हुआ है । जो बात महादेवी पहले चित्रों के माध्यम से कहती थीं, उसे दीपशिखा में वे प्रतीकों और विरोधाभासों के माध्यम से कहती रही हैं । अन्तर इतना ही है कि जो महादेवी किसी समय अल्हड़ बनीं कभी निरवरोध कहती थीं— ''मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है'' वे अब इस अवस्था को पार करके स्थैर्य-धैर्य की ऐसी भूमि पर पहुंच चुकी हैं जहाँ वे कहती हैं—

आज तार मिला चुकी हूँ।
सुमन में संकेत-लिपि,
चञ्चल विहग स्वर-ग्राम जिसके
वात उठता, किरण के
निर्भर झुके, लय-भार जिसके,
वह अनामा, रागिनी अब साँस में ठहरा चुकी हूँ।
सिन्धु चलता मेघ पर,
रुकता तड़ित का कंठ गीला
कंटकित सुख से धरा,
जिसकी व्यथा से व्योम नीला,
एक स्वर में विश्व की दोहरी कथा कह चुकी हूँ।

किन्तु, प्रकृति का उनका साथ आज भी छूटा नहीं है। अब वे प्रकृति की छवि के चित्र नहीं आंकतीं, मानव की छवि में ही प्रकृति का रूप अंकित करती हैं, फिर चाहे वह करुण रूप ही क्यों न हो। करुण को भी इस प्रकार की अभिरामता दे-देना भी इसीलिए संभव हुआ है कि वे सुख-दुःख के सामजस्य में ही विश्वास रखती हैं। अतः कहती हैं—

तरल मोती से नयन भरे।
मानस से ले, उठे स्नेह-घन,
कसक-विद्यु पुलकों के हिमकण,
सुधि-स्वाती की छांह पलक की सीपी में उतरे आदि।

तब वस्तुतः महादेवी जी की समस्त सौंदर्य-निधि उसी एक की आराधना में अर्पित है, हृदय के समस्त भाव उसी को समर्पित हैं। और जो उसे समर्पित है वह सुन्दर ही हो सकता है, या सुन्दर ही बनाकर दिया जा सकता है। अतएव महादेवी जी की उक्तियों में अनुभूति का भेद चाहे जैसा हो, सौंदर्य में अन्तर कभी नहीं आता। उसी के ऐश्वर्य से प्रकृति भी ऐश्वर्यमयी ही दीखती है, अतएव नीलम के बादल, प्रवाल सी उषा, मोती सी रातें, मोती से तारे, मोती सी आँसू की बूंदें, सोने के दिन और सन्ध्या में स्वर्ण-पराग ही उन्हें दिखाई देता है, बादलों में बिजली नीलम के मंदिर में हीरक प्रतिमा बन जाती है, मेघ-चूनर स्वर्ण-कुंकुम में बसाकर रङ्गी जाती है और निशि-वास कनक और नीलम के यानों पर दौड़ते जान पड़ते हैं। प्रकृति के ये रङ्ग कहीं उनकी कविता में रङ्गीनी, कोमलता, स्फूर्ति और आह्लाद के चित्र अंकित करते हैं, कहीं सौन्दर्य की क्षणिकता का परिचय देते हैं। इतना ही नहीं महादेवी जी को प्रकृति यदि उल्लास से गुदगुदाती है तो विरह के क्षणों में कंप, रोमाँच आदि सात्विकों की अभिव्यक्ति का सहारा भी बन जाती है। देह पर प्रकृति का आरोप करते हुये महादेवी जी उन स्थितियों का भो सुघर चित्र अंकित करने में अत्यन्त कुशलता प्रदर्शित करती हैं। सुकुमारता में ये चित्र अनूठे हैं और अनूठेपन में ही सुन्दरता का अधिवास है।

महादेवी जी की सौंदर्यानुभूति के सम्बन्ध में यहां भाषागत सौंदर्य का विचार करना उचित न होगा। उसके साथ न्याय करने के लिए पृथक लेख की आवश्यकता है, अतएव उनके द्वारा व्यक्त किए गए सौंदर्य-सम्बन्धी विचारों के संदर्भ तक ही इस लेख की सीमा मानना उचित है।

महादेवी वर्मा की कविता आलात्मक सौन्दर्य

डॉ० मो० दि० पराड़कर

गीतिकाव्य के माध्यम से मधुर आत्म निवेदन करने वाले आधुनिक कवियों में महादेवी वर्मा का स्थान बहुत ऊँचा है। छायावादी युग के काव्य की कला को संवारने में उन्होंने अनुपम सफलता पाई है। वनफूल की तरह अकृत्रिम एवं सीधे हृदय को छूने वाले गीत उन्होंने वर्तमान युग की हिन्दी कविता में प्राण डाले; उसकी भावात्मकता को समृद्ध एवं सुचारु रूप प्रदान किया। संपन्न एवं सुशिक्षित परिवार में जन्म, चित्रकला, संगीत जैसी कलाओं का अध्ययन, दार्शनिक चिन्तन के साथ-साथ तथागत के करुणामय जीवन की गहरी छाप, पति से पृथक एकाकी जीवन-सभी संयुक्त उपकरणों ने उनके व्यक्तित्व को जो बहुरंगी धागों वाला एवं अनूठा रूप प्रदान किया है उसी के आलोक में उनकी संयत, कलापूर्ण एवं वेदना-प्रधान कविता का मूल्य आंका जा सकता है। असल में उन्होंने अपने मानस के सूनेपन को पूरे संसार में बिखराने की चेष्टा की है। व्यक्तिगत विषाद को उन्होंने अपनी सेवा-भावना के बल पर व्यापक रूप प्रदान करने की चेष्टा की है। इसी से उनके रहस्यवाद का जन्म हुआ।

भाव पक्ष

सूनेपन की इस सम्राज्ञी ने 'प्राणों का दीप जलाकर' दीवाली मनाने की सोची है क्योंकि एक जमाना था जब उस चिर-सुन्दर एवं असीम प्रियतम से मूक-मिलन हुआ था। उस प्रियतम के प्यार से उनकी 'ललचाई पलकों पर' जब 'व्रीडा का पहरा' था तभी उसकी चितवन ने उन्हें पीड़ा का साम्राज्य दे डाला और अब—

'उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते!
आंखों के कोश हुए हैं
मोती बरसा कर रीते।'

एक विरहिणी की तरह उन्होंने 'दृग-जल की अक्षय सित मसि' की सहायता से अपने अरूप एवं असीम प्रियतम को सन्देश पहुंचाने की आकुलता दिखाई है, 'लाए कौन संदेश नये घन' में बादल को प्रिय का सन्देश-वाहक बनाया है और—

'तरल आंसू की लड़ियाँ गूंथ
इन्हीं ने काटी काली रात'

जैसी पंक्तियाँ लिखकर रात्रि-जागरण की ओर, विरह के उस मधुर सत्य की ओर संकेत भी किया है। इतना ही नहीं, 'सुनी हो हरि आवन की आवाज' कहने वाली मीरा की तरह महादेवी वर्मा भी अपने छलनामय पिय के नीरव आगमन का अनुभव करते हुए 'पुलक-पंखी विरह पर चढ़ आ रहा है मिलन मेरा' लिखती हैं, और अन्तरतम की छाया समेट मैं तुझमें मिट जाऊँ उदार 'फिर एक बार बस एक बार' कहकर मिलन की नारी-सुलभ उत्सुकता का यथार्थ परिचय देती है। फिर भी यह भूलना अनुचित होगा कि महादेवी वर्मा अरूप की साधिका हैं, भक्तिमार्ग की प्रेमिका नहीं। अतएव उनके 'प्रिय' की पूजा के लिए वाह्य उपकरणों को जुटाने की आवश्यकता नहीं है। उनका 'लघुतम जीवन' ही उस 'असीम का सुन्दर मन्दिर' है, उनकी श्वासें उसका अभिनंदन करती

रहती हैं उसका 'पद-रज' धोने के लिए उनके लोचनों के जल-कण उमड़ते हुए आते हैं, उनका पुलकित रोम अक्षत का और उनकी पीड़ा चंदन का कार्य करती है, उनके हृदय की धड़कन ही धूप बनकर उड़ती रहती है, उनके अधर ही 'पिय पिय' जपते रहते हैं और पलकों का नर्तन ही ताल देता है। ऐसी अवस्था में 'क्या पूजा क्या अर्चन रे' यही कहना समीचीन है। कोई अचरज नहीं कि उनके कई उद्‌गारों ने परमात्मा के प्रति आत्मा के, असीम के प्रति ससीम के निवेदन का रूप धारण किया हो।

रहस्यवादी कवि सृष्टि में सर्वत्र उस असीम की एवं चिर-सुन्दर की छाया देखता है और तारों में हंसने वाले, विद्युत् में चमकने वाले एवं ओस-कणों में रोने वाले के स्वरूप को समझने की आकांक्षा से प्रेरित होता है। प्रियतम के पथ पर आगे बढ़ते हुए आत्मा को विरह की पीड़ा का गुरु भार वहन करना पड़ता है। मतलब, विरह की तीव्र वेदना ही रहस्यवादी कवि के काव्य का सर्वस्व है। इसके अनुसार ही महादेवी वर्मा अपने को 'नीर भरी दुःख की बदली' एवं उस एक मात्र सत्ता की चिर-विरहिणी मानते हुए 'दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ' की दुहाई देती है। महादेवी के अनुसार आत्मा का परमात्मा से वही सम्बन्ध है जो विधु-बिम्ब का चन्द्रमा से चित्र का रेखाओं से एवं राग का स्वर से होता है अतएव अपना परिचय देने में असमर्थता प्रकट करते हुए उन्होंने उचित ही कहा :—

'सिन्धु को क्या परिचय दें
देव, बिगड़ते वीचि-विलास ?
क्षुद्र हैं मेरे बुद्-बुद् प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश।'

रहस्य की अनुभूति के लिए इस तरह के लौकिक दृष्टान्तों एवं रूपकों का आधार लेना आवश्यक ही होता है। साधना के पथ पर 'पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला' के अविचलित भाव से आगे बढ़ने वाली इस साधिका के 'नयन श्रवणमय' और 'श्रवण नयन-मय' होते हैं, उसके रोम-रोम में नया स्पन्दन होने लगता है और तब सीमा असीम में मिट जाती है, विरह की रात मिलन के प्रात में परिणत होती है और वह स्वयं बन्दिनी होकर भी बंधनों की स्वामिनी हो जाती है। ऐसी अवस्था में पहुँचकर समस्त विश्व का सुख दुःख उस प्रियतम के कारण मधुमय बन जाता है और साधिका गा उठती हैं :—

'मेरे पद को छूते ही
होते काँटे कलियाँ
प्रस्तर रसमय'

महादेवी जी के रहस्यवाद की विशेषता लघु ससीम को इस प्रकार गौरव प्रदान करने में है। वास्तव में उनका कहना है कि :—

विश्व में वह कौन सीमा हीन है
हो न जिसका खोज सीमा में मिला ?
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान् हो।

महादेवी वर्मा की कला का और एक पहलू है, प्रकृति और मानव को एक प्राण-सूत्र में गुम्फित कर देना। एक रहस्यवादी कवयित्री के नाते उन्हें प्रकृति के विविध रूपों में 'जग के उस चित्राधार' की छबि दिखाई देती है। क्या तडित् की मुसकान, क्या मुकुलों की हंसी, क्या ज्योत्सना का रजत-पारावार, क्या निर्झरिणी का गान सभी उनके मन में उसी के प्रति कौतूहल का भाव जगाते हैं। रमणीय मधुमास उनकी आँखों में उस प्रियतम की स्मित रेखा है और पतझड़ उसी की भ्रूभङ्गिमा। ऊषा में उस प्रियतम की लाली, नक्षत्रों में उसकी माया की झांकी और मेघों में उसकी करुणा के दर्शन पाकर उनके अन्तर्वाह्य में साम्य स्थापित होता है। इतना ही नहीं, दिन को कनक-रात्रि पहनाने वाले और विधु को चाँदी का परिधान प्रदान करने वाले अपने प्रियतम को नभ को अगणित दीपों के साथ अपार-नभ-तोम भी अर्पित करते हुए देखकर उन्हें अपनी लघुता का अनुभव होता है सही; किन्तु प्रेमानुभूति की तीव्रता के बल पर उनका हृदय तो यही कहता रहता है—

"रंगमय है देव दूरी
छू तुम्हें रह जाएगी यह

चित्रमय क्रीडा अधूरी
दूर रह कर खेलना
पर मन न मेरा मानता है।"

प्रकृति में प्रेमाकर्षण से चन्द्र और चपल बीचियों का जो मिलन संपन्न होता है उसी को अपने प्रिय के दरबार में उपेक्षित हुए देखकर महादेवी जी के जीवन का उल्लास विनष्ट होता है और उन्हें प्रकृति में सर्वत्र उदासीनता का कुहरा छाया-सा प्रतीत होता है। वियोग एवं नैराश्य से उत्पन्न व्यथा से आहत होकर ही 'सान्ध्य-गीत' में वे कह उठीं—

झूमा एक ओर रसाल
कांपा एक ओर बबूल
फूटा बन अनल के फूल
किंशुक का नया अनुराग
दिन है अलस मधु के स्नान
रातें शिथिल दुःख के भार
जीवन ने किया शृंगार
लेकर सलिल-कण औ आग

यह हुआ रहस्यवादी रुख ! अब जरा छायावादी ढंग की ओर भी देखना आवश्यक है। प्रकृति का मानवीकरण इसकी प्रमुख प्रवृत्ति रही है। माना कि पंत एवं निराला की तरह प्रकृति को सजीवता एवं चेतना प्रदान करने में महादेवी को अपनी अन्तर्मुखता के कारण उतनी सफलता नहीं मिली, फिर भी प्रकृति उनके सुख में सुखी एवं दुःख में दुःखी अवश्य है। 'नीरजा' में सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर क्षितिज से शनैः-शनैः अवतीर्ण होने वाली बसन्त-रजनी को उन्होंने कैसे साकार किया है देखिए—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ बसन्त रजनी
तारकमय नव वेणी-बन्धन
शशि-फूल कर शशि का नूतन
रश्मिवलय सित घन अवगुंठन
पुलकती आ बसन्त रजनी॥

मानव के हर्ष में यह प्रकृति भी पुलकित हो उठती है; सरिता का उर सिहर उठता है और 'खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा भर, इस तरह के प्रकृति के रूपक तो महादेवी की रचनाओं में भरे पड़े हैं। 'रूपसि तेरा धन केश पाश' में पावस का तथा 'लय गीत अमर, पद ताल अमर' में अप्सरा के रूप में प्रकृति का चित्रण दृष्टव्य है। प्रकृति के साथ कवयित्री के जीवन के अनुपम सामञ्जस्य की दृष्टि से 'प्रिय, सांध्य गगन मेरा जीवन' यह गीत सर्वोत्कृष्ट माना जाएगा। इसमें महादेवी का कहना है "गोधूलि-बेला के कारण धुँधला क्षितिज मेरे हृदय का विराग है, सांध्य नभ का 'नव अरुण अरुण मेरा सुहाग है, संध्या की शून्य छाया की समता मेरी राग-हीन काया से की जा सकती है और 'रंगीले घन ही मेरे सुधि-भरे स्वप्न' हैं। प्रकृति के कष्ट को देखकर उनके हृदय में हूक उठती है; विकसित पुष्प को 'धूल से धूसरित होते हुए देखकर उनकी आँखें भर आती हैं और उसकी अवहेलना करके अन्य फूल पर उड़ने वाले प्रेमी मधुप को झिड़की सुनाते हुए वे कहती हैं :—

तू अकिंचन भिक्षुक है मधु का
अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं'

इस प्रकार उनकी कविता में मानव और प्रकृति का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित अवश्य होता है फिर भी यह मानना पड़ेगा कि प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण उसमें नहीं के बराबर है। 'चूमते ही तेरा अरुण बान बहने कन-कन से फूट-फूट, मधु के निर्झर से सजल गान' जैसा प्रभात का नितान्त रमणीय चित्र प्रस्तुत करने वाला गीत भी अन्त में 'अध-खुले दृगों के कंजकोष पर छाया विस्मृति का खुमार' और 'रंग रहा हृदय ले अश्रु-हास यह चतुर चितेरा सुधि विहान' में अभिव्यक्त प्रिय-सुधि की समानता में परिणत होता है। प्रकृति की इस मानव-सापेक्षता ने उनके प्रकृति-चित्रण में एकरसता का निर्माण किया है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

कलापक्ष

यह तो रही भाव-पक्ष की कहानी एवं उनकी कला की आत्मा का रूप। अब उसके शरीर की ओर याने कलापक्ष

की ओर से निहारिए। इस सम्बन्ध में महादेवी की सफलता सन्देह से बिल्कुल परे है। भाषा पर उन्हें अनुपम अधिकार प्राप्त है। थोड़े में अधिक कहने की गागर में सागर भरने की कला कोई उनसे सीखे। इसीसे उनकी कविता चित्रमय हो उठी है। 'मुरझाया वह कंज बना जो मोती का होना' में उन्होंने प्रातःकालीन कमल को 'मोती का होना' कहकर उसकी सुषमा और मुरझाया' पद द्वारा असीम विषाद का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है। 'रजनीगन्धा आँज रही नयनों में सोना' की रजनीगन्धा के नयनों में 'संध्या की सम्पूर्ण विभूति के दर्शन हो सकते हैं।

"यह देख ज्वाला में पुलक
नभ के नयन उठते झलक
तू अमर होने नभ-धरा से
वेदना-पत्र में पली"

जैसी पंक्तियों में विरहिणी पंकज-कली के साथ-साथ तपस्विनी एवं महाश्वेता महादेवी जी पाठकों की सेवा में उपस्थित होती हैं।

साधारण से साधारण वस्तुओं को भी अपनी वर्णन-शक्ति के बलपर आकर्षक रूप प्रदान करने में महादेवी सिद्धहस्त हैं। उदाहरण के तौर पर,

अंचल में मधु जो भर लातीं
मुस्कानों में अश्रु बसातीं
बिन समझे जगपर लुट जातीं"

की कलियाँ सचमुच सजीव हो उठी हैं। गत्यात्मक सौन्दर्य का बड़ा ही सुन्दर चित्र उपस्थित करने के कारण उनके कई चित्र निखर उठे हैं।

"चौकीं निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत के कंकण"

जैसी पङ्क्तियों में शब्दों का जो चयन है उसी ने चित्र में गति भर दी है।

महादेवी का अप्रस्तुत-विधान भी उनकी कविता के कोमल सौन्दर्य में चार चाँद लगाता है। रहस्य वादी भावना की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें अपने गीतों को मधुर संकेतों एवं अनोखे अप्रस्तुतों से सँवारना पड़ा। मधुर संकेत का एक ही उदाहरण प्रस्तुत करना पर्याप्त है। वह यों है :—

'तम ने वर्ती को जाना है
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने
रजका अंचल पहचाना हैं।
चिर वन्धन में बाँध मुझे,
घुलने का वर दे जाना॥'

अप्रस्तुतों में उनके प्रिय अलंकार हैं उपमा, रूपक एवं अन्योक्ति महादेवी की उपमाएँ बड़ी मधुर एवं व्यंजना से परिपूर्ण रहा करती हैं। 'रात सी नीरव व्यथा तम सी अगम मेरी कहानी' बड़ा ही अर्थपूर्ण है अज्ञान आह्वान के लिए एक स्थान पर मार्मिक उपमाओं को प्रयुक्त करते हुए वे लिखती हैं :—

'दैव सा निष्ठुर, दुःख सा मूक
स्वप्न सा छाया सा अनजान
वेदना-सा तम-सा गम्भीर
कहाँ से आया वह आह्वान'

जीवन की लौ एवं उसकी क्षणिकता की व्यंजना करने के लिए उन्होंने उसकी तुलना 'सिकता में अंकित रेखा' तथा 'वातविकम्पित दीप-शिखा' के साथ की है और अन्त में 'काल कपोलों पर आँसू-सा ढल जाता हो म्लान कहकर' रसिक पाठकों को कवीन्द्र रवीन्द्र की याद दिलाई है। 'मचलते उद्गारों से खेल उलझते हों किरणों के बाल' में यदि मूर्त के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग है तो 'राह मेरी देखती स्मृति निराश पुजारिन-सी में अमूर्त के लिए मूर्तका।

रूपकों की राशियाँ महादेवी की कविता में सुसज्ज हैं। 'प्रिय, सान्ध्य गगन मेरा जीवन' का उल्लेख तो ऊपर हो चुका। प्रकृति के विराट रूप में असीम का दर्शन कराने के लिए उन्होंने नर्तकी का जो रूपक बाँधा है उसे उद्धृत करने के मोह का संवरण नहीं किया जा सकता :—

रूपसि तेरा नर्तन सुन्दर
आलोक-तिमिर सित-असित चीर
सागर-गर्जन रुनझुन मँजीर
उड़ता झंझा में अलक-जाल

मेघों में मुखरित किंकिणि-स्वर
रवि शशि तेरे अवतंस लोल
सीमंत जटिल तारक अमोल
चपला-विभ्रम, स्मिति इन्द्र-धनुष
हिमकण बन भरते स्वेद निकर

उपर्युक्त पङि्क्तयों में कवयित्री ने जो चित्र उपस्थित किया है वह पूर्णता के साथ भव्यता भी लिए हुए है इसमें सन्देह नहीं है।

अन्योक्तियों के उदाहरणों के रूप में 'शलभ मैं शाप भय वर हूँ', 'री कंज की शेफालि के', 'कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो' जैसे गीत आसानी से उपस्थित किये जा सकते हैं। 'निशा की, धो देना राकेश चाँदनी से जब अलकें खोल' में सुन्दर समासोक्ति है। अपरिचित का पहचाना हास में अगर विरोध मूलक वैचित्र्य दिखाई देता है तो किरणों के प्यासे चुम्बन में तथा 'आँखों की नीरव भिक्षा में' विशेषण-विपर्यय प्रस्तुत है। के साथ-साथ 'जिन चरणों की नखज्योति ने हीरक जाल लजाये' में 'प्रतीप' का चमत्कार देखने योग्य है। 'अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में तरल मोती-सा जलनिधि जब काँपता' जैसे पद्यांशों में रूपाकार की दृष्टि से 'जलधि' को 'मोती' तथा 'अवनि-अम्बर' को 'सीप' मानना बड़ा मौलिक माना जाएगा कहना पड़ेगा कि कहीं-कहीं अलंकारोंकी भरमारने दुर्बोधता भी पैदा की है। उक्त सभी विशेषताओं के साथ महादेवी की वाणी अत्यंत संकेतात्मक है, इसे भूलना अनुचित होगा। उनके काव्य का मर्म समझने के लिए इन संकेतों का ज्ञान अतीव आवश्यक है। विस्तार के भय के कारण इसके लिए भी एक ही उदाहरण प्रस्तुत करना मैं पर्याप्त समझता हूँ।

छिपे मानस में पवि नवनीत,
निमिष की गति निर्झर के गीत।
अश्रु, की उर्मि हास का वात,
कुहू का तम माधव का प्रात॥

इन पंङि्क्तयों में 'पवि' से कठोरता का और 'नवनीत' से मृदुता का बोध होता है। 'निमिष की गीत' में क्षण गुरुता, 'निर्झर के गीत' में कोलाहल युक्त गतिशीलता की ओर संकेत है। साथ-साथ 'कुहूका तम' अगर वेदना एवं अज्ञान की ओर संकेत करता है तो 'माधव का प्रात' सुषमा तथा उल्लास की ओर। रहस्यवाद के विराट एवं गूढ़ चित्रों का अभिव्यक्ति के लिए भी कहीं-कहीं कवयित्री ने इस तरह के संकेतों के सहारे काम लिया है। उदाहरण के लिए लीजिए :—

मूँद पलकों में अचंल,
नयन का जादू भर तिल!
दे रही हूँ अलख अविकल,
को सजीला रूप तिल तिल॥

इस पद के सीमित दायरे में असीम का बड़ा कलात्मक चित्र है। यहाँ 'अलख अविकल' में अद्वैतवाद, 'रूप' में भक्तों की सगुण-उपासना की और 'सजीला' में प्रणय की और नयनका जादू भर तिल में' रहस्यवादी की तन्मयता की व्यञ्जना है जिसे समझे बिना पद का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता।

उक्त गुणों के रहते हुए भी महादेवी की कविता को ज्ञान-प्रतिज्ञान निर्दोष तो नहीं कहा जा सकता। कुल मिलाकर उनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, अत्यन्त मधुर है सही; किन्तु स्वाभाविकता के आग्रह के कारण ही 'बातास' का 'बतास', 'कर्णधार' का कर्णाधारऔर आधार' का 'अधार' भी बना है। उनकी वाणी की संकेतात्मकता उनके काव्य में व्यंजना का चमत्कार अवश्य ले आती है किन्तु इसी से उसमें दुर्बोधता का निर्माण हुआ जिसने उनकी कविता को जन-साधारण से दूर ले जाने में सहायता प्रदान की है। इस सत्य को कैसे भुलाया जा सकता है? लेकिन ये त्रुटियाँ उनके गुण सन्निपात के सामने नगण्य हैं। यह बात सही है कि उनकी कला-साधना के कारण हिन्दी कविता में उनका स्थान अक्षुण्ण है। उनके व्यक्तत्व में जो अपार करुणा है उसी के बलपर उनकी लेखनी में, आजकल एक ऐसी शक्ति पैदा हुई है जो निश्चित रूप से कविता को वासन्ती वसन पहनाएगी और सन्त्रस्त भारत के लिए शांति का मार्ग प्रशस्त कर देगी।

महादेवी के काव्य का मानसिक वातावरण

प्रो० कृष्णानन्दन "पीयूष"

कविता कवि के जीवन की प्रतिमूर्ति यदि नहीं है तो प्रतिछाया तो अवश्य ही है, यह स्वीकार करना पड़ेगा। जीवन के भाव-अभावों के घूर्णित चक्रों से जो धूल उड़ती है वही कवि की कविता की सुरभि बन जाती है। फिर भी यह स्थापित सत्य ही है कि रचना की सृजन-प्रक्रिया के पीछे कवि या रचनाकार का परिवेश बहुत कुछ महत्वपूर्ण स्थान रखता है। परिवेश स्वयं में काव्य का विषय नहीं है पर जब वह काव्य-साधना की पृष्ठभूमि में सहयोगी होता है तब वह आवेष्ठन बनकर कवि को प्रेरित ही नहीं करता सृजनात्मक स्थिति तक उसे खींच ले जाता है। आवेष्ठन की स्थिति भी दो प्रकार की होती है और उसे हम वैज्ञानिक विकष के आधार पर दो स्थितियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथमतः आंतरिक, फिर वाह्य कवि की सृजनात्मक क्षणों की सम्पूर्ण गायिकी का आधार आंतरिक स्थिति ही है। में यहाँ जान बूझकर यह कहना चाहता हूँ कि वाह्य का प्रभाव जीवन को झकझोरता है अवश्य किन्तु जबतक वह वाह्य से आंतरिक स्थिति में नहीं पहुंचता वह आवेष्ठन की स्फुरित स्थिति का पर्याप्त नहीं बन पाता है। वाह्य जीवन की आपदायें संघात विषमता की संत्रस्तता से शरीर कराह उठता है, ऐसी स्थिति में मनुष्य रो भी सकता है उसकी आंखों में आसू छलछला आ सकते हैं पर उसके सृजनात्मक क्षणों का स्फुरण संभव नहीं है। जब यही 'वाह्य' अनुभूतिजन्य होकर आंतरिक संवेदना के रूप में परिणत हो जाता है तो कवि का मानसिक तत्व स्फुरित होता है उसकी वाह्य चीख ही आंतरिक मुखरता की ओर उत्मुख होकर कविता के रूप में फूट पड़ती है। तब कवि बाहर से हँसता होता है लेकिन उसके स्वरों के आरोह अवरोह की मूर्च्छानाओं से उसके मनस्राव का यही वातावरण (आवेष्ठन) काव्य के सृजन के लिए महत्वपूर्ण योग दान सिद्ध होता है। मेरे मन्तव्य का आशय यह है कि जीवन से कहीं अधिक महत्व कवि की कविता के लिए जीवन की अनुभूतियों का रागमयी होकर मानसिक स्तर में आवेष्ठन बन जाना है। जब तक क्षणों की अनुभूति क्षण की अनुभूति नहीं बन पाती तब तक वह सृजन की प्रक्रिया का स्वरूप नहीं ले पाती है। इसी आवेष्ठन को कविता के मानसिक वातावरण से सम्बधित मान सकते हैं। किसी भी काव्य के मानसिक वातावरण की पृष्ठभूमि को समझने के पूर्व रचना के सृजन की इस संघटित प्रक्रिया को भी जानना अत्यन्त आवश्यक है।

महादेवी की कविता के मानसिक वातावरण जैसे विषय पर जिस आवेष्ठन को मैं विवेच्य मानता हूं उसे भी दो वर्गों में विभाजित करना होगा। प्रथम वर्ग तो उस वाह्य आवेष्ठन का है जिसमें कवियत्री का बचपन से लेकर आज तक का वह जीवन है जो काव्य का उपजीव्य रहा है। भिर दूसरे वर्ग में वे आंतरिक अनुभूतियां हैं जो वाह्य की स्थिति से अन्तर्मुख होकर आंतरिक आवेष्ठन की स्थिति में आ पायी हैं। मानसिक वातावरण के लिए उपर्युक्त दोनों वर्गो की सामग्रियों का विवेचन अपेक्षित है। यद्यपि कवि के मानसिक वातावरण पर विवेचन करते समय जो आधारभूत सामग्री प्राप्त होती है वह उसकी रचना ही है, फिर भी समीक्षक को साधारण नहीं करना होता है जब वह रचनाओं के आधार पर ही रचनाकार के मानसिक तत्व की विवेचना करता है,

सृजनात्मक आवेष्ठनों के मूल उत्स की मीमांसा प्रस्तुत करता है। गोमुखी से चलकर गंगा की धारा के सागर मिलन की कथा को समझना साधारण कार्य ही है किन्तु सागर से चलकर गंगा को उद्गम की प्राप्ति करना साधारण यात्रियों के लिये सक्य नहीं है। फिर यदि कवि का परिवेश यदि अत्याधुनिक होकर विविध हो तो यह कठिनाई और भी अधिक बढ़ जाती है। महादेवी की कविता जो मेरे विवेच्य के अन्तर्गत आती है, इस अर्थ में एक विराटता और वैविध्य से युक्त तो है ही साथ ही आवरण से मंडित भी है फलतः उन रचनाओं के आधार पर जो समीक्षक को उत्स को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है, वह दुर्बल ही लगता है। फिर भी सत्यता की सीमा और दायित्व की मर्यादा को समझते हुए यहाँ मैं उनकी कविता के मानसिक वातावरण का आकलन करना चाहूंगा।

महादेवी का जीवन साधारण मनुष्य के राग-विराग, दुःख दर्द और भाव अभावों का जीवन है। एक अर्थ में महादेवी उन लोगों के बीच रही हैं जिन्होंने पूँजी के रूप में वेदना, आँसू को प्राप्त किया है और दूसरों को जो दिया है वह गरल नहीं होकर अमृत रहा है. आँसू नहीं होकर हँसी रही है—हँसी न कहकर यदि उसे अट्टहास कहें तो ज्यादा उपयुक्त रहेगा महादेवी के इस अट्टहास में जो उन्मुक्तता है वही उनके असीम बन्धन की कड़ी है। उनके वाह्य जीवन की जो आर्द्रता है वही उनके जीवन की विषादमयी स्थितियों की परिचायिका हैं। उनके द्वारा खींची गई तूलिका की सुदर्शन रेखाओं, कविता में उपस्थित चित्रों में अन्विति का अभाव है, वही उनके जीवन की अपूर्ण आकांक्षाओं की मार्मिक विवृत्ति का निदर्शन है। "नीहार" से लेकर दीपशिखा तक की महादेवी की काव्य यात्रा सागर मिलन को जाती हुई गोमुखी से निकली हुई उस गङ्गा की यात्रा है जो बीच में ही विषम जीवन की संत्रस्तता में उलझ गई है। महादेवी का जीवन जिस करुणा की बोधता प्राप्त कराकर बीच में ही उलझ गया है—उनके काव्यगत जीवन की विषमता का केन्द्र-बिन्दु है। महादेवी की वैयक्तिक आत्म-पीड़ा, घुटन, हाहाकार ही उनकी कविता में उच्छ्वास के रूप में परिवर्तित हो गया है। महादेवी ने अपनी कविताओं की व्याख्या स्वरूप जो स्थापनाएँ काव्य के विषय में दी है वे स्वयं उनकी कविता पर बहुत अंशों में सिद्ध होती है। +[1] साधारणतया यह देखा जाता है कि मनुष्य की हीनता, अभाव और आत्म-सन्तोष की घुटन के फलस्वरूप ही कविता का जन्म होता है। यदि विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य सर्जकों के व्यक्तिगत जीवन को आकलित किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि उसमें कहीं न कहीं अभाव अवश्य था जिसको भरने के लिए उसने अपनी रचनाओं का सृजन किया है। नियति या प्रारब्ध के वात्याचक्रों में उड़ता हुआ सूखे पत्ते सा जीवन ही काव्य के जन्म का कारण है। महादेवी के जीवन की अपूर्णता, स्त्रियोचित जीवन की काव्य भावना की रिक्तता ने उन्हें जहाँ ठोकर देकर करुणा से बोझिल बना दिया है, वहां उनकी बौद्धिकता संस्कार और अधीत ज्ञान के समुच्चय ने उन्हें दार्शनिकता का आवरण दे दिया है। किन्तु महादेवी की कविताओं के पीछे जो उनका मानसिक वातावरण दिखाई पड़ता है उसका सम्बन्ध किसी अतीन्द्रीय जीवन को रहस्यमयता से न जोड़कर जीवन की उन रागात्मक मनोभावों की विफलता के साथ जोड़ा जाना चाहिये जो ऐसे काव्य के जन्म के लिए महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष जैसे देश में काव्य में वैधक, विज्ञान, ज्योतिष, तंत्र और रहस्य का जहाँ विधान किया गया है, यह बात भी अब सिद्ध हो चुकी है कि शुद्ध वैयक्तिक कामिक कविताओं के बीच भी रहस्य की भावना का आरोपन किये बिना किसी को कवि नहीं माना जा सकता है। महादेवी की कविता पर रहस्यमयता का आरोप किया ही जाएगा। पर मेरा सदा से यह विनम्र निवेदन रहा है कि यदि महादेवी की कवितार्ओं के पीछे के मनस्तत्व का ईमानदारी से विश्लेषण किया जाय तो यह सत्य प्रमाणित

[1]—कविता हमारे व्यष्टि-सीमित जीवन को समष्टि व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक सत्य को अपनी परिधि में बाँधती है। साहित्य के अन्य अंग भी ऐसा करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु उनमें सामंजस्य को खोज लेने के कारण ही कविता उन ललित कलाओं में उत्कृष्टतम स्थान पा सकती है जो गति की बिभिन्नता, स्वरों की अनेक रूपता या रेखाओं की विषमता के सामंजस्य पर स्थित है।

(महादेवीः आधुनिक कवि पृष्ठ—५)

होता ही है कि महादेवी की कविता लौकिक ऐषण की आपूर्ति की रचनाएँ हैं जिसका सम्बन्ध जीवन के भौतिक समस्याओं से है। जो भाव छायावादोत्तर कवियों में बच्चन, अंचल, नरेन्द्र एवं दिनकर का कुछ रचनाओं में मिलता है। प्यास की कुछ वैसी ही तड़प, असमर्थता के कुछ वैसी ही आँसू महादेवी में भी है। किन्तु महादेवी ने स्वयं अपनी कविताओं पर नारीयोचित मर्यादा के फलस्वरूप जो स्थापनाएँ लाद दी हैं उससे ही उनके काव्य का रस प्रपाणक होकर भी अस्वस्थ नहीं हो पाया है। रहस्यवादी रचनाओं एवं छायावादी वैयक्तिक भावना से संपुष्ट रचनाओं में अंतर भी थोड़ा ही है। दोनों में औतसुक्य, कौतूहल एवं अज्ञात के प्रति शंका की भावना है, दोनों को प्रकटित करने की शब्दा वली एक ही है फलतः यह भ्रम दूर तक फैला है कि छायावाद की सम्पूर्ण रचना रहस्यवाद की रचना है। छायावाद के सभी समर्थ कवियों के बीच रहस्य और छाया का कुछ इस प्रकार से सम्मिलन हुआ है कि दोनों को तिलतंडुल न्याय से अलग करना कठिन है। इस बीच निराला ही एक मात्र ऐसे कवि हैं जिनमें जो है वह स्पष्टता के साथ आया है कहीं छद्मनी नहीं है, रूपान्तर नहीं है। किन्तु छायावादी कवियों के बीच रहस्य और छाया के बीच गत्यावरोध, पार्थक्य अभाव का जन्म देने वालों में महादेवी अग्रणी रही हैं। इनकी कविताओं में वैयक्तिकता ने रहस्यमयी बनकर अपना कार्य किया है। वस्तुतः इस भावना के पीछे परम्परा की शृँखला में जकड़ी हुई नारी की वह वैयक्तिक सीमा है जो उसे अस्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए बाध्य करती है। महादेवी की सम्पूर्ण कविता की पृष्ठभूमि उनकी नारीयोचित महत्वाकांक्षा की पराजित भावना का उच्छ्वास है जो करुणा विगलित स्वरों में 'प्रेम की पीर' की साधना बन गया है। 'रहस्य और प्रेम भारतीय चिन्तन' के दो ध्रुव रहे हैं जिससे सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय का साहित्य परिचालित रहा है। फिर भारतीय मत में प्रेम को 'रहस्य' का पर्याय भी माना गया है। फल यह हुआ है कि सम्पूर्ण कृष्णभक्ति और राम भक्ति का काव्य एक स्तर पर लौकिक काव्य की झांकी प्रस्तुत करता रहा है पर दूसरी ओर आध्यातमिकता का नारा भी देता दिखाई पड़ता है। रीति कवियों के बीच में भी यही चातुरी मिलती है। महादेवी ने इसी परम्परा में अपनी कविताओं को स्थापित कर दिया है। वैयक्तिक अभावों, मिलन, प्रेम, विरह, आवग्लानि, अभिसार मान, प्रहेला, विलोक, प्रकर्ष का उदाहरण महादेवी की कविता में बड़ी ही चातुरी से प्रकट किया गया है। यदि समीक्षक महादेवी की वैयक्तिकता के आधार पर इन रचनाओं की समीक्षा करना चाहे तो वह बड़ी स्पष्टता के साथ उस मानसिक वातावरण के घुमड़न की नीली वेदना की छायी हुई बदली का अंदाज कर सकता है जो आध्यात्मिक बदली के रूप में चित्रित की गयी है। ऐसी स्थिति में 'मैं नीर भरी दुख की बदली' जैसे गीत में जो आम पीड़ा की निर्द्वन्दता है; एक आत्मबोध की तड़प है वह स्पष्ट दिखाई देता है। मात्र दृष्टि के परिवर्तन की अपेक्षा है फिर तो—

> विस्तृत नभ का कोई कोना
> मेरा न कभी अपना होना
> परिचय इतना इतिहास यही
> उमड़ी कल थी मिट आज चली।

में कवयित्री की आत्म परिचित स्पष्ट दिखाई पड़ जायेगी। इसमें मीरा की दार्शनिकता और कबीर के 'साधो, गगन घटा घहरानी' के निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप निर्धारण की अपेक्षा भी नहीं रहेगी। ऊपर की पंक्तियों की सहजता और अनुभूति की ईमानदारी ही उसको महत्ता को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है—उन्हें बिना किसी दार्शनिक आवरण के भी महत्वपूर्ण माना जायेगा, इसमें आपत्ति नहीं है। एक दूसरे उदाहरण से मेरे मन्तव्य की पुष्टि की जा सकती है।

महादेवी का एक गीत है :

> कौन तुम मेरे हृदय में ?
> कौन मेरी कसकता में नित
> मधुरता भरता अलक्षित ?
> कौन प्यासे लोचनों में
> घुमड़धिर भरता अपरिचित ?
> स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा,

नींद के सूने निलय में।
कौन तुम मेरे हृदय में ?

इस सम्पूर्ण गीत में जो परिचित को जानकर भी नहीं जानने का उपक्रम है वह मात्र चेष्टा है। इसे मधुरता की पृष्ठभूमि में नोंक-झोंक, वक्रता, भंगिमा का चातुर्य निवेदित किया जाता है। सम्पूर्ण कविता का मानसिक वातावरण वही है जो ऐसी प्रेम सम्बन्धी कविताओं का होना चाहिए—किन्तु इस पर रहस्य का जो आरोप किया जा सकता है। उसका एक मात्र कारण प्रश्नवाचक वह चिह्न है जो सर्वत्र दिखाई देता है। महादेवी की अधिकांश कविताओं में उनका प्रश्नवाचक चिह्न (?), डैस (—) उनकी भावना की संवेदना को नष्ट करके कौतुक रचने में समर्थ होता है। महादेवी ने चातुर्य से युक्त दक्षता के साथ अपनी वैयक्तिक रागात्मक भावों पर दिव्यता का आरोप कर दिया है। ऐसी कविताओं की व्याख्या करते समय उसके अर्थ की सहजता और सृर्जनात्मक क्षणों के पीछे के वातावरण को ध्यान में रखना चाहिये। ऐसी स्थिति में मानसिक वाताधरण के रूप में महादेवी की इन कविताओं के लिये उनके जीवन का नैराश्य ही विशेष सहायक हुआ है, करुणा तो बाहर की थोपी हुई चीज है। भले ही कवयित्री इसे स्वीकार करने में असमर्थ हों।[1]

किसी कवि की कविता के मानसिक वातावरण को विश्लेषित करने के लिए एक बात की अपेक्षा और होती है: वह है कविता के सृजन के पीछे की मनोविकास प्रक्रिया। वस्तुत: कवि जीवन के जिस आवेष्ठन से ध्वनि प्राप्त करता है उसे वह उसी क्षण उसी प्रकार में व्यक्त करना नहीं चाहता है। यदि वह ऐसा चाहे तब भी उसे उसी रूप में व्यक्त कर कवित्त्व की सार्थकता को प्राप्त नहीं कर पायेगा कालान्तर में जब यही ध्वनि मानसिक स्तर में जाकर गूँज सी रह जाती है तो एक दिन अप्रत्याशित रूप में वह जाता है कि उसकी इच्छित भावना ही उपस्थित हो गई है। काव्य-सृजन की प्रक्रिया के बीच मानसिक रूप से यह संयोजन की वृत्ति रहती ही है। जो विगत के चित्रों को वर्तमान में अन्विति प्रदान करने का प्रयत्न करती है। महादेवी की कविता में जो निराश, कुहरा और जीवन की बीती बदली की छटा दिखाई पड़ती है उसका कारण बाह्य रूप में जहाँ जीवन का असन्तोष, अपूर्ण अकाँक्षाओं का विलयन है वहाँ आन्तरिक रूप में जीवन की समस्त स्थूल घटनाओं ने सूक्ष्मरूप धारण कर निराशा का स्वरूप प्राप्त कर लिया है। करुणा का ही बाह्य निराशा के घने अन्धकार के रूप में परिणत हो गया है, जिसे कवयित्री ने दर्शन का आवरण देकर एवं जटिल बनाने का अथक प्रयत्न किया है। महादेवी ने अपने मानसिक वातावरण को ईमानदारी के साथ रखा तो है, पर उसको शब्दजाल के बीच इस प्रकार उलझा दिया है कि आवरण ही ज्यादा महत्वपूर्ण बन गया है। महादेवी की इन पंक्तियों में स्वयं इस सत्य की स्वीकारोक्ति मिलती है।

छाँह को उसकी सजनि नव,
आवरण अपना बनाकर।
धूलि में निज अश्रु बोने में,
प्रहर सूने बिताकर।
प्रात में हंस छिप गई,
ले छलकते दृग यायित्री में।

यहाँ छाँह को आवरण बनाकर 'स्वत्त्व' को छिपाने का जो संकेत मिलता है, वही स्थिति महादेवी के सम्पूर्ण काव्य जीवन का है। जो बाह्य रूप से दर्शित हुआ है वह आँतरिक स्थिति का आवरण स्वरूप है—इसके भीतर जो तत्त्व छिपा हुआ है वही वास्तविक है।

संयोचित स्वभाव की दृष्टि से भी महादेवी की कविता के मानसिक वातावरण की समीक्षा की जाती है। महादेवी की कविता उस प्रकार की नारी की कविता है जिसके पास वियोग और आँसू ही धन हो गया है। वह विप्रलम्भ से युक्त है, उसमें पीड़ा एवं उच्छ्वास की सघनता है, पर

[1]—जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण में निराशा का कुहरा है या व्यथा की आर्द्रता यह दूसरे को बता सकेंगे, परन्तु हृदय में तो मैं आज निराशा का कोई स्पर्श नहीं पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया ही देखती हूँ।

आधुनिक कवि महादेवी पृष्ठ ३२

विनय का अभाव है। महादेवी की कविताओं में "मान" का चित्र सुन्दर रूप में आया है पर यह मान वैसा नहीं है जो कि पीड़ा से युक्त हो वरन् यह मान कहीं-कहीं अभिमान की कोटि में आ गया है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे Super ego का रूप दिया जा सकता है। जिसके कारण महादेवी स्वयं को निवेदित करना नहीं चाहती हैं। मान ने उनके जीवन को झुकने नहीं दिया है। वे स्पष्ट रूप में कहती भी हैं—

> मिलन-मन्दिर में उठा हूँ,
> जो सुमुख से सजल गुण्ठन।
> मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों,
> तप्त सिकता में सलिलकण।
> सजनि, मधुर निजत्व दे,
> कैसे मिलू अभिमानिनी मैं॥

ऊपर की पंक्तियों में जो "निजत्व" है वही कवयित्री की मानसिक स्थिति का मेरुदण्ड है। महादेवी इसी "निजत्त्व को बचाने के लिए ही अपने जीवन के आवरण को हटाना नहीं चाहती हैं। खलील जीवन में प्रेम की जिस तटस्थ स्थिति का चित्र दिया गया है। जिसमें साकी और साकोया दोनों की स्थिति मानी गई है—कुछ वैसी ही भावना महादेवी के प्रेम में भी है। महादेवी की कविता में प्रेम की वह अनन्यता नहीं है जो चन्डीदास, सूरदास, विद्यापति, जयदेव, में मिलती है जिसमें स्वत्त्व के एकाकार हो जाने को कल्पना है। महादेवी की भावना प्रेमी के प्रेम की अनन्यता की जगह विरह को स्वीकारने में भी अपनी सार्थकता प्राप्त करती है। वस्तुतः यही महादेवी की मानसिक स्थिति भी है।

> चिर ध्येय यही जलने का
> ठंढी विभूति बन जानाः
> है पीड़ा की सीमा यह
> दुख का चिर सुख हो जाना।

इस स्थिति में महादेवी "दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना" की उक्ति को चरितार्थ करती दिखाई पड़ती हैं।

महादेवी की प्रत्येक ऐसी कविता जो दर्शन और आध्यात्मक की स्थिति की रचना लगती है, ऐसे ही मानसिक वातावरण की पृष्ठभूमि में जन्म लेती है। कहीं-कहीं तो सम्पूर्ण कविता में वैयक्तिक प्रेमिक पीड़ा की तड़प मिलती है। भारतीय परित्यक्ता नारी के वियोग की ज्वाला धधकती दिखाई देती है जिसमें अंतिम क्षणों में उसी निष्ठुर कठोर प्रियतम के दर्शन की कामना है जिसने जीवन भर जलाया है।

यथा—

> दीप-सी युग युग जलूँ,
> पर वह सुभग इतना बतादे।
> फूँक से उसकी बुझूँ,
> तब क्षार ही मेरा पता दे।

कहकर महादेवी के भारतीय सुहागिन नारी को आकांक्षा ही करती है। 'फूँक से उसकी बुझूँ' में मरणोपरान्त सुहागिन नारी की पति द्वारा अंतिम संस्कार सम्पन्न किये जाने की भावना का सम्पर्क निदर्शन उपस्थित किया गया है। महादेवी के द्वारा भारतीय नारी की शील और मर्यादा का यह अप्रतिम उदाहरण है। पर इसी कविता के अंत में ऊपर के सम्पूर्ण चित्र की अन्विति को खंडित कर दिव्यता का जो बोध कराया गया है वही मानसिक वातावरण की दृष्टि से महादेवी के मन की वह दुर्बलता है जो रंगे हाथों वैयक्तिक प्रेम की गली में पकड़ी न जायेइसके लिए आध्यात्म और दर्शन का आवरण लेकर उपस्थित हो गयी है।

> सजल सीमित पुतलियों पर,
> चित्र अमिट असीम सा वह
> चाह एक अनन्त वसती—
> प्राण किंतु ससीम-सा यह,

या

> शून्य मेरा जन्म था,
> अवसान है मुझको सवेरा
> प्राण आकुल के लिए
> संगी मिला केवल अंधेरा

या

नाश भी हूँ; म्र-मैं अनन्त विकास का क्रम भी
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति कातम भी
वार भी, आघात भी, झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,

जैसी अंक्तयों में जो दर्शन का रंग दिखाई पड़ता है वह सब छलाका मात्र है—एक मृगतृष्णा की ऐसी नल रेखा है जिसकी ओर महादेवी जानबूझकर आगे बढ़ना चाहती हैं। मानसिक वातावरण के रूप में यह 'मधुर विस्मृति' की स्थिति ही है—जिसे महादेवी दिकता Inflinatuen के रूप में उपस्थित करना चाहती है।

महादेवी की कविताओं की परख करते हुए उपर्युक्त प्रणाली और दृष्टि बिन्दुओं को ध्यान में रखकर अपनी कसौटी निर्मिति करनी होगी—तभी महादेवी की कविताओं के पीछे की मानसिक स्थिति का सम्यक चित्रण सम्भव है।

आवेष्ठन से प्राप्त वेदना को महादेवी ने आर्द्र बनाकर जो काव्य का साम्य शिल्य उपस्थित किया है। उसका महत्व सम्पूर्ण हिन्दी कविता के बीच विशिष्ट है। वैयक्तिक प्रेम को इतने ऊँचे धरातल पर उपस्थित करने वाला दूसरा कोई कवि हिन्दी को नहीं मिला है, इसमें संदेह नहीं। महादेवी की कविता का मूल्यांकन प्रेम की कसौटी पर ही होनी चाहिए, यह विनम्र निवेदन है। शायद तभी महादेवी की कविताओं के साथ न्याय भी होगा, जो अभी तक समुचित रूप में नहीं हो पाया है।

●

महादेवी जी की चित्रकला

•

सम्पत ठाकुर

'चित्रकला में भी बहुत छोटे से ज्ञान-बीज पर मैंने रंग-रेखा की शाखाएँ फैला दी हैं।' (दीपशिखा पृष्ठ २२)

'मेरा चित्र गीत को एक मूर्त्त पीठिका मात्र दे सकता है, उसकी संपूर्णता बाँध लेने की क्षमता नहीं रखता।'

(वही पृष्ठ २२)

महादेवी जी की कलात्मक सीमाएँ

महादेवी जी की इन स्वीकृतियों से दो स्पष्ट तथ्य समझ पड़ते हैं:—एक तो यह कि उनके चित्रकला के तकनीकी ज्ञान का दायरा बहुत व्यापक नहीं है; और दूसरा यह कि चित्रों की सृष्टि एक कवि ने अपनी गीत रचना की 'मूर्त्त पीठिका' के रूप में की है, एक चित्रकार ने अपने किसी विशेष मूड की अभिव्यक्ति के लिये नहीं। यानी, चित्रों की अपनी कोई स्वतन्त्र हस्ती, कम से कम महादेवी जी को स्वीकार नहीं है, वे काव्यगत विषय के बंधन में बन्दी हैं। तो क्या उनका मूल्य एक हल्के-फुल्के बुक इलस्ट्रेशन की तरह आँका जाये?

महादेवी जी के चित्र अपनी समस्त सीमाओं के बावजूद न तो हल्के-फुल्के हैं न बुक इलस्ट्रेशन मात्र। अवश्य ही वे उनके काव्य की भाँति स्वयंस्फूर्त्त और सर्वथा मौलिक न होकर, प्रयत्नमूलक हैं और कवि की अपेक्षाकृत चेतना (कान्शस) मनः स्थिति की उपज हैं। फिर भी वे अपने को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं। लेकिन जैनेन्द्र जी ने उनके सम्बन्ध में एक अजीब खयाल व्यक्त किया है। उनका कथन है:—"महादेवी जी के काव्य-पुस्तकों में अंकित चित्र भावों को मूर्त्त करने के प्रयत्न में बने हैं, जीवन-प्रसंग से वे इतने जुड़े नहीं हैं, इससे वे पूरी तरह अनुभूति की पकड़ में नहीं बैठते।" (म० दे० व० काव्यकला और जीवन दर्शन, पृष्ठ ६) वास्तव में महादेवी जी के चित्र इतने मूर्त्त और मुखर हैं कि सहज ही कोई भी उनकी अनुभूति ग्रहण कर सकता है। इसके अलावा, महादेवी जी की कविताएँ उनके जीवन से असंबद्ध हैं—ऐसा संकेत करना, कवि की ईमानदारी को चुनौती देना है। अतः जीवन से अन्तरंग किन्तु अपेक्षाकृत सूक्ष्म और अमूर्त्त काव्य को मूर्त्त करने के प्रयत्नों में बने चित्र, जीवन-प्रसंगों से असंबद्ध कैसे हो गये?

महादेवी जी का विषय-संयोजन

महादेवी जी की एक भी चित्रकृति अपने मूल रूप में देख पाने के सौभाग्य से, इन पंक्तियों का लेखक अब तक वंचित है। मुद्रित रचना के आधार पर सही मूल्यांकन करने में कठिनाई होती है—विशेषतः रंग-संयोजन परखने में। और, चित्रकला में रंग-संयोजन का महत्व, विषय-संयोजन से न्यून नहीं है। जहाँ तक विषय का प्रश्न है, महादेवी जी के चित्र, उनके काव्य की ही भाँति आत्मपरक हैं। सामान्य मानव की भावनाओं, वासनाओं और संघर्षों को व्यक्त करने के उद्देश्य से वे नहीं बनाए गए हैं।

दीप शिखा और यामा के चित्रों की मूल प्रेरणा आत्म-निवेदन है। यह निवेदन किसके प्रति है, यह प्रश्न महादेवी जी के काव्यालोचकों को काफी परेशान करता चला आ रहा है। जहाँ तक चित्रों का प्रश्न है, आत्म-निवेदन का केवल यही अर्थ अभीप्सित है कि वे प्रणय-मूलक हैं और किसी

अकिंचन विरहणी के आत्म-समर्पण के अनेक मूडों को व्यक्त करते हैं। प्रेम में डूबे हुए व्यक्ति की मुख-मुद्रा या शारीरिक चेष्टाएँ मात्र देख कर, उसके इश्क के हकीकी या मजाजी होने का प्रमाण-पत्र नहीं दिया जा सकता, उसी प्रकार, यदि कविताओं पर ध्यान न देकर हम सिर्फ चित्र ही देखें तो हमें इस ऊहापोह में पड़ने की कोई आवश्यकता न होगी कि कलाकार का प्रियतम ज्ञात है या अज्ञात, शरीरी है या अशरीरी! पर चित्र अधिकांश में, केवल प्रणय की विरह-पूर्ण मनः स्थितियों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हैं, इसलिए महादेवी जी की वस्तु योजना में एक व्यापक एकरसता उत्पन्न हो गयी है।

विषय और शैली में एकरसता

महादेवी जी के चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे प्रणयिनी के आत्मनिवेदन और उसकी पूजा-भावना की बहुत सबल अभिव्यक्ति करते हैं। किन्तु प्रणय या विरह ही तो मानव का एक मात्र पक्ष या उसकी एकमात्र स्थिति नहीं है। महादेवी जी की कला में मानव-जीवन की वैविध्यपूर्ण व्यापकता का अभाव है, अतः दीपशिखा या यामा के चित्रों में इतनी एकरसता उत्पन्न हो गयी है कि उन्हें एक साथ देख कर आनन्द प्राप्त करने वाले कला पिपासु के साहस की दाद देनी होगी।

विषय की अपेक्षा भी महादेवी जी की शैली ने उनके चित्रों में कहीं अधिक एकरसता उत्पन्न की है। महादेवी जी ने स्वयं स्वीकार किया है :—"कुछ अजंता के चित्रों पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से, चित्रों में यत्र-तत्र मूर्त्ति की छाया आ गयी है।" चित्रकला में मुगल पूर्व भारतीय कलम आदर्शवादी है, अतः इससे प्रभावित महादेवी जी की शैली पूर्णतः आदर्शवादी है। यही कारण है कि उनके समस्त चित्र, रंग, रूप, आकार और रेखाओं में, स्वाभाविक ही अजंता के चित्रों की ही भाँति एकरस हो गये हैं। आदर्शवाद का प्रभाव महादेवी जी के कलाकार की सबसे बड़ी सीमा बन गया है।

शैलीगत साम्य होकर भी प्राचीन भारत की कला और महादेवी जी की कला के बीच एक मौलिक अंतर भी है। प्राचीन भारतीय कलाकारों ने शैली में आदर्शवाद अपना कर भी, अपनी कला की प्रमुख प्रेरणा के रूप में आनन्दवाद को अपनाया था। इसीलिए अजन्ता के चित्रों या कोणार्क के शिल्पों में विरहिणी भी कृशकाय शायद ही कहीं मिले। विरागी साधु-सन्यासिनियाँ भी हृष्ट-पुष्ट लावण्ययुक्त हैं। विषाद, करुणा, कुंठा और विराग है। विषय और शैली की इन्हीं एकरूपताओं के कारण, महादेवी जी की चित्रकला में एकरसता आ गयी है।

महादेवी जी की सौंदर्य-साधना

महादेवी जी को श्वेत और नीले रंग के हल्के-हल्के शेड्स बहुत प्रिय हैं। आश्चर्य की बात है कि विषाद और करुणा की गायिका ने चित्रांकन के लिए ये शीतल और सात्विक शेड्स क्यों अपनाए। प्रश्न उठता है कि काव्य में प्रणय और सौंदर्य की साधिका क्या चित्रों में विराग और शिव की साधिका बन गयी है?

महादेवी जी की चित्रकला के आलोचक की अनेक मजबूरियों में से एक यह भी है कि उसे उनके चित्रों को सम्बन्धित काव्य की पीठिका के रूप में देखने को विवश होना पड़ता है। हल्के नील और श्वेत या हल्के पीत रंगों का प्रभाव मानव मन पर जैसा कुछ पड़ता है, सम्बन्धित काव्य की मूल भावना से उसका यदि सामञ्जस्य होता, तो कठिनाई थी। किन्तु महादेवी जी की रंग योजना और सम्बन्धित काव्य की वस्तु योजना में बहुधा विरोध दिखाई पड़ता है, अतः चित्र अपने कठिन उद्देश्य की पूर्ति में कमजोर रह जाता है। एक दो उदाहरण लेकर इस कथन को स्पष्ट किया जाये।

कविता :

घोर तम छाया चारों ओर
घटाएँ घिर आईं घन घोर
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वत मूल
गरजता सागर बारम्बार
कौन पहुँचा देगा उस पार....

—यामा पृष्ठ १८

चित्र :

हल्के गुलाबी से मिलाकर भूरे-भूरे सफेद बादलों की सृष्टि की गयी है। नीले सागर की तरंगें हर पूर्णिमा या अमावस में उठने वाली तरंगों से भी मृदु हैं, एक सुकुमार सांवला व्यक्ति, जिस पर हल्का पीत प्रकाश पड़ रहा है, एक हाथ ऊँचा किये, एक में पतवार थामें, किसी को पुकारने का संकेत करता नाव पर खड़ा है। उसकी फ्लैट मुख मुद्रा में आवेग, उद्वेग, झंझा, कुण्ठा कुछ भी नहीं दीख पड़ता।

हल्के नील, श्वेत, पीत—सब मुलायम, सुकुमार, उद्वेगहीन रंग हैं। मन पर इनका असर बड़ा शीतल पड़ता है। इनके संयोजन से एक गूढ़ रहस्यात्मक अनुभूति जरूर हो सकती है, लेकिन सम्बन्धित काव्य बड़ी खूबसूरती से रहस्यों के अतिरिक्त भावावेगों, उद्वेग, सम्बलहीनता, और परिस्थितियों की दुर्गमता की अभिव्यक्ति भी करता है। एक और उदाहरण लें—

कविता :

चुभते ही तेरा अरुण बान
बहते कन कन से फूट फूट
मधु के निर्झर से सजल गान

● ● ●

नव कुन्द कुसुम से मेघ-पुंज
बन गये इन्द्र धनुषी वितान

● ● ●

सौरभ का फैला केश जाल
करती समीर परियाँ विहार
गीली केसर मद झूम-झूम
पीते तितली के नव कुमार

—यामा, पृष्ठ ७१

चित्र :

धुँधले कुहासे से भरा आसमान है। हल्की श्वेत बैंगनी भूमिका पर एक नारी मूर्ति, गेरुये-से गोले को लिए हुए, बादलों पर तैर रहा है। काव्य में वर्णित चटकीले-चमकीले रंगों की छाया तक नहीं है। काव्य पढ़कर जिस किरनीली सुबह की छवि बरबस मन को मुग्ध कर लेती है, सम्बन्धित चित्र उस पर एक धुँधला आवरण डाल देता है। और चित्र का शीर्षक है अरुण !

उक्त दोनों कविताएँ और दोनों चित्र अपने आप में खूबसूरत और प्रभावशाली हैं, लेकिन एक दूसरे से बंधकर एक दूसरे से संघर्ष करते हैं और प्रभावहीनता नहीं, जो उलझन (कनफ्यूजन) तो उत्पन्न करते ही हैं।

ऐसा क्यों हुआ ? यामा की भूमिका, (पृष्ठ ९) में हमें इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर मिल जाता है। 'चित्रकला वस्तुकला की अपेक्षा भौतिक आधार से स्वतंत्र होने पर भी काव्यकला की अपेक्षा अधिक परतंत्र है, कारण वह देश के ऐसे कठिनतम बन्धन में बंधी है, जिसमें उसे चित्रकला बने रहने के लिए सदा ही बंधा रहना होगा।....प्रत्येक कवि चित्र के लम्बाई-चौड़ाई से युक्त देश के बंधनों और भावों की अपेक्षाकृत सीमित व्यंजना से क्षुब्ध-सा हो उठता है।''

अजन्ता या मुगल कलम को ही चित्रकला की एकमात्र सार्वकालिक शैली के रूप में स्वीकार कर लिया जाय, तो निःसंदेह कला पर देश का घोर बंधन हमेशा के लिए जकड़ा रहेगा। महादेवी जी का यह कथा सर्वथा सत्य और उचित है कि कवि-कलाकार चित्रकला की सीमित और कुंठित व्यंजना से क्षुब्ध हो उठता है। किन्तु कलाकार के इसी क्षोभ ने चित्रकला में अभूत पूर्व क्षमता और शक्ति उत्पन्न कर दी हैं। बीसवीं सदी का कलाकार चित्रकला को अभिव्यक्ति के कुंठित माध्यम के रूप में स्वीकार करने को हर्गिज प्रस्तुत नहीं है। फलतः इस क्षेत्र में अमूर्तवाद (एबसट्रेक्शनिज्म) अतियथार्थवाद (सूरियलिज्म), प्रभाववाद (इंप्रेशनिज्म), प्रतीकवाद (सिंबोलिज्म), अभिव्यंजनाबाद (एक्सप्रेशनिज्म) जैसी अयथार्थवादी शैलियों का प्रयोग हो रहा है। कलाकार के क्षोम का ही परिणाम है कि आज चित्रकला में शायद शब्द की अपेक्षा कहीं बहुत अधिक और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की शक्ति उत्पन्न हो गयी है। आज का चित्रकार यह मानता है, कि शब्द अंततः रूढ़ होकर अपनी शक्ति कुंठित कर बैठता है, अशब्द चित्र कभी रूढ़ नहीं हो सकता; वह कल्पना की भांति उन्मुक्त और अनन्त हो सकता

है यदि चित्रकार में क्षमता और साहस हो। किन्तु जिस अलंकृत आदर्शवादी शैली को महादेवी जी ने अपनाया है, वह अवश्य ही शब्द की अपेक्षा भी कहीं बहुत अधिक रूढ़ और बंधनग्रस्त हो गयी है। आदर्शवादी शैली के सीमित दायरे में भी उनके कुछ चित्रों में अद्भुत सौंदर्य व्यक्त हो उठा है। वर्षा का बहारदार, बिजली और इंद्र धनुषी विभा से युक्त चित्र और 'यात्रा का अंत' ऐसे ही खूबसूरत प्रभावपूर्ण चित्र हैं। संयोगवश ये संबंधित काव्य से क्लेश भी नहीं करते। कुछ चित्रों पर अजन्ता के आदर्शवाद की अपेक्षा, कनु देसाई के आदर्शवाद की छाप भी दिखाई पड़ती है। 'दीपक' 'निशीथनी' और 'मिलन' ऐसे ही चित्र हैं—यद्यपि इन चित्रों में भी संबंधित काव्य के सौंदर्य की अपेक्षा, शांति और विराग के मंद सुखद स्वर ही अधिक सुनाई पड़ते हैं।

महादेवी की कला में शिव की साधना

महादेवी जी ने लिखा है : 'कला, जीवन में जो कुछ सत्यम् शिवम् सुन्दरम् है, सब का उत्कृष्टतम विकास है'....(यामा की भूमिका पृष्ठ ९) सत्य, शिव और सुन्दर की त्रयी की गुत्थी को जितना ही सुलझाने का प्रयत्न किया गया है, वह उतनी ही उलझती गयी है। अपेक्षाकृत आसान यह है कि इन तीनों को स्वतंत्र रूप में देखा-परखा जाये। इस जीवन में तमाम विषमताओं और विद्रूपताओं का अनुभव हमें होता है—वे इस जगत् के एक पहलू का यथार्थ और सत्य प्रतिनिधित्व करती हैं। पर यह जरूरी नहीं है कि उन्हें हम खींच-तानकर सुन्दर भी मानें और शिव भी। बल्कि अपेक्षाकृत अधिक औचित्य इस मान्यता में प्रतीत होता है कि जीवन की हर प्रवृत्ति में इन तीनों तत्त्वों में से किसी एक का प्राधान्य हो और शेष गौण रूप से मौजूद हों तो हों। वेश्या के अस्तित्व में सत्य प्रमुख है, शिव और सुन्दर गौण, संगीत-नृत्य में सुन्दर प्रमुख है, सत्य और शिव गौण, तो रामचरित मानस में शिव प्रमुख है, सत्य और सुन्दर गौण।

महादेवी के गीतों में निस्संदेह सौंदर्य तत्त्व का प्राधान्य लगता है, किन्तु उनके चित्रों में शिव का उनके गीतों में भावनाओं का उद्दाम प्रवाह है, किन्तु चित्र शांति, शीतलता और विरति का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। यदि हम 'सत्य है इसीलिए सुन्दर भी है और शिव भी है' इत्यादि वाली कसौटी अपना लें, तो महादेवी जी के काव्य और उनके चित्रों में एक सी ही शक्ति, क्षमता और व्यञ्जना मानने पर मजबूर होना पड़ेगा। किन्तु हम तो यथार्थ में पाते यह हैं कि उनकी हल्की नील-श्वेत रंग योजना, फ्लैट सुकुमार आकृतियाँ, अनन्त को जीवित प्रतीकों से व्यंजित करने की कोशिश, सभी तो मिलकर उनके चित्रों में शिव की अभिव्यक्ति करनी हैं।

इस प्रकार उनके चित्र देखकर, सामान्यतः मन में उद्वेग के स्थान पर शांति, वासना के स्थान पर पूजा, और प्रणय की तीव्रता के स्थान पर सहज आत्म निवेदन की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। और शायद यही महादेवी जी के चित्रों की मौलिकता और आत्म विशेषता है।



महादेवी की शिल्प-साधना

जयनाथ 'नलिन'

आलम्बन और आश्रय के सम्बन्ध की रागात्मक अभिव्यक्ति ही काव्य है। रागात्मक संबंध के तीन भाग किये जाते हैं, उन्हें तीन मंजिले, सोपान या यात्रा-खण्ड भी कहा जा सकता है। ये हैं: आलम्बन के स्वरूप की जिज्ञासा, सम्बन्ध बोध और सम्बन्धानुभूति। चित्रदर्शन, स्वप्न-दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन, गुण श्रवण आदि से आश्रय के हृदय में आलम्बन के स्वरूप की जिज्ञासा होती है। यही उसे प्रेरित करती है कि आलम्बन का सान्निध्य उसे प्राप्त हो। सान्निध्य (यथार्थ या काल्पनिक) प्राप्त कर स्वरूप-बोध होता है। बिना स्वरूप-बोध हुए सम्बन्ध-स्थापना की कामना न उगती है और न पनपती है। कामना जब गहन राग या वासना का रूप ले लेती है, तब सम्बन्धानुभूति बन जाती है।

आलम्बनगत उपकरणों से आकर्षित होकर ही आश्रय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। ये उपकरण हैं शारीरिक रूप-सुषमा, परिधान, प्रसादन, कर्म-गुण स्वभाव, चेष्टाएँ आदि। दूसरे उपकरण हैं वाह्य परिवेश आदि। काव्य में इन्हें ही उद्दीपन कहा जाता है। सम्बन्ध-बोध या सम्बन्ध-कल्पना हो जाने पर सम्बन्धानुभूति होने लगती हैं। ये उपकरण उस रागात्मक अनुभूति को और भी तीव्र करते हैं। इन उपकरणों को दो भागों में रखा जा सकता है। प्राकृतिक और स्वनिर्मित। यही विभावन-व्यापार कहलाता है। आलम्बन-आश्रय का सम्बन्ध-बोध, सम्बन्ध-कल्पना, सम्बन्धानुभूति, जिज्ञासा को भावना-व्यापार कहते हैं। दोनों के बिम्बात्मक चित्रण को अभिव्यंजना, शिल्प या कलापक्ष।

महादेवी जी का प्रिय परोक्ष भी है, प्रत्यक्ष भी। अतीन्द्रीय अगोचर होते हुए भी इन्द्रियगम्य है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और गोचरागोचर ब्रह्माण्ड-विस्तार के अणु-अणु में व्यापक विराट भी। उसका स्वरूप बहुत कुछ कबीर के द्वैता-द्वैत विलक्षण गुणवाले कन्त के समान है। रति का आलम्बन होने के कारण वह निर्गुण निर्विशेष नहीं रह जाता। उसे शरीरीरूप में प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। उसके प्रति जिज्ञासा का उदय होगा, सृष्टि-विस्तार के दर्पण में उसके मानस-प्रवेशी असाधारण, असामान्य और अनुपमेय सौंदर्य के प्रतिबिम्ब को देखकर, उसके सौंदर्य-शर-वेधन की प्रतिक्रिया को अनुभव करके।

> चुभते ही तेरा अरुण बाण।
> बहते कण कण से फूट-फूट
> मधु के निर्झर-से सजल गान।
> इन कनक रश्मियों में अथाह
> लेता हिलोर तम-सिंधु जाग।
> बुद बुद से बह चलते अपार।
> उसमें विहगों के मधुर राग।
> बनती प्रवाल का मृदुल कूल
> जो क्षितिज रेख थी कुहर म्लान।
>
> (यामा, पृष्ठ ६९)

यह सुकुमार प्रभात की सुषमा-स्वर्णाभ प्रथम झलक का सावयव-चित्रण है। काव्य-शिल्पी ने प्रथम अरुण सूर्य-रश्मि को बाण के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त किया है। यदि किसी रस-सम्पन्न पदार्थ (रसभरी अंगूर आदि) पर शराघात किया जाय, तो उसमें से रस फूट पड़ेगा। उस रस-पदार्थ की राशि को वेध दिया जाय तो निश्चय ही रस की धाराएँ बह

निकलेंगी। सृष्टि के कण-कण में लबालब रस भरा है, किरण बाण के लगते हीं वह फूट कर बह निकलता है। रश्मि-बाण-सिद्ध होकर कण-कण से वह नहीं बह निकलता, जिसका जीभ से आस्वादन किया जाय; बल्कि मधु के झरनों के गान बह निकलते हैं। प्रथम किरण के धरती पर आते ही भ्रमर गुंजारने लगते हैं, विहग कलरव कर उठते हैं, पूजाघरों में अर्चना-गान गूंज उठते हैं—लगता है, कण-कण से गीत मुखरित हो रहे हैं। चारों और संगीत सुनकर कल्पना की जा सकती है कि कण-कण में संगीत भरा था—यहाँ परिणाम से तथ्य का अनुसंधान हुआ। 'सजल' विशेषण से प्रवाहशीलता और अभिसिचनशीलता दो गुणों को गान में स्थापित किया गया है। गान में आगे बढ़ने, प्रसारित होने और मानस को डुबा देने के गुण होते हैं। एक बात और, संघर्ष या टूटने से शब्द उत्पन्न होता है। किरणों के आघात से कण टूटते हैं, तो उनमें शब्द विस्फोट-सिद्धान्त के अनुसार उत्पन्न होगा ही।

किरणों के उदय होने से पूर्व अंधकार की तहसी जमी रहती है। सम्पूर्ण धरातल पर सुप्त मनुष्य के समान अचल क्रिया हीन जड़वत तम-सिंधु फैला दीखता है। सच है, किरणें तारों के रूप में अँधेरे पर पृथक्-पृथक् नहीं पड़ती; प्रकाश के रूप में पड़ती हैं, तो भी किरणें हैं पृथक्-पृथक् ही प्रकाश-तारों या धागों के रूप में। कल्पना की आँखों में ऐसा ही दृश्य उतरता है कि अंधकार के आवरण पर किरणें अलग-अलग पड़ रही हैं।

तब झिलमिलाती किरणों के बीच-बीच में तम-कालिमा कांपती-सी मालूम होगी। रश्मि-आलोकित भाग ऊपर उठा हुआ और अनालोकित कला भाग नीचे दबा हुआ मालूम होगा। तरंगित समुद्र में ऐसा हीं दृश्य देखा जाता है। लहरें ऊपर उठीं हुई और शेष जल नीचे रहता है। क्रियाशीलता-कम्पन हो जागरण है; निस्तरंगता, जड़ता की नींद। किरणों के पड़ने से तिमिर-समुद्र तरंगायित मालूम होता है। ऊषा के उदयकाल में पूर्ण प्रकाश नहीं होता, आलोक-तिमिर मिलेमिले-से रहते हैं। ऐसे ही समय विहग चहचहाते-गाते हैं। विहग-स्वर से ही अर्धनिद्रित प्राणी तिमिर-आलोक-मिश्रित समय (पपेली फटने के समय) का आभास पाते हैं—ठीक इसी प्रकार जैसे बहते बुलबुलों से समुद्र के तरंगायित होने का। क्षितिज तमसिंधु के तट हैं, जो प्रवाल (मूंगे) के समान झीनी अरुण आभा से रंग जाते हैं। मूँगा चमकीला लाल नहीं, मद्धिम लाल होता है। दोनों में यथार्थ धर्म साम्य स्थापित हुआ है। सभी उपमानों का चुनाव कमाल का है। यहाँ इतना और कह देना आवश्यक है कि चित्र वसन्त कालीन ऊषा के उदय का है। सुबह पाँच बजे यह दृश्य किसी विस्तृत समतल मैदान में, जब सूर्य क्षितिज रेखा से किसलयों का पर्दा उठाकर झाँक रहा हो, प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

प्रकृति के असीम विस्तार में वह अतीन्द्रिय सुषमा का लबालब ज्वार उमड़ता देखती है। उत्तेजक वातावरण में साधिका के हृदय में रति भाव आकुल हो उठता है। उन्माद की दशा में विरहिणी उसे पत्र लिखना चाहती है।

> कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती ?
> दृगजल की सित मसि है अक्षय,
> मसि प्याली झरते तारक द्वय,
> पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर,
> सुधि से लिख श्वासों के अक्षर,
> मैं अपने ही बेसुधपन में
> लिखती हूं कुछ, कुछ लिख जाती।
>
> (यामा, पृष्ठ १५६)

आँखों में अजस्र अश्रु जल की स्याही भरी है, लेकिन वह सफेद है, सफेद कागज पर सफेद स्याही से लिखा जाय, तो न लेखक ही पढ़ सकेगा, न पाठक। साथ ही पत्र-पृष्ठ लगातार अश्रु बरसने से इतने भीग जायंगे कि सब लिखा-लिखाया पुत जायगा। बिरह दशा की बेताबी में साँसों की गति बहुत तीव्र हो जाती है। हर साँस भाषा-रचना में तीव्रता से लीन है, भावावेग में लिखना बहुत है। शक नहीं पृष्ठों का भी अनन्त भण्डार लेखिका के पास है, लेकिन क्षणों की गति इतनी तेज है कि प्रत्येक साँस का शब्द अंकित होने से पहले ही अनन्त पल-पृष्ठ तेजी से उड़ जाते हैं। समय की गति-तीव्रता अमाप्य है तब सन्देश सही रूप में कैसे लिखा जाय ?—असम्भव। प्रत्येक पल-पृष्ठ अमाप्य तीव्रता से उसी की ओर उड़ा जा रहा है, तो कुछ का कुछ, जो

भी लिखा जायगा उसके पास पहुंच जायगा। खण्डित, अखण्डित, अस्पष्ट, अश्रु-भीगे, विरह-बेताब, वेदना-ताप, झुलसे साँस प्रत्येक क्षण पर अंकित होंगे। यही अक्षर विरहणी के हृदय को सही अभिव्यक्ति देंगे। उन्माद, बेसुधी, झटपटाहट बेबसी, अवकाशहीन भावावेग की दशा में भाषा की सही रचना कभी हो ही नहीं सकती। पत्र-लेखन-दशा का रूपक उपस्थित करने के लिए स्याही, दवात, लेखनी, कागज, अक्षर के लिए जो उपमान उपस्थित किये गये हैं, हिन्दी में वे अलभ्य हैं। रहस्यवादी अभिव्यंजना का, इस संदर्भ में, यह आदर्श नमूना है।

महादेवी के काव्य में रूपकों का समृद्ध भण्डार भरा है। विरहसाधिका होने के कारण विरह सम्बन्धी रूपक अधिक संख्या में हैं—और भावोत्कर्षकारी भी हैं। इस संदर्भ में 'विरह का जलजात जीवन, विरह का जलाजात',[1] 'प्रिय सान्ध्यगमन मेरा जीवन'[2] 'शलभ में शापमय वर हूँ',[3] 'मैं नीर भरी दुख की बदरी',[4] दीपशिक्षा के पाँचवे गीत का तीसरा पद[5] और अठारहवें गीत के अंतिम तीन पद[6] देखे जा सकते हैं। ये हैं साँगरूपक। निरङ्गरूपक तो प्रत्येक पद में मिल जायंगे। जहाँ प्रकृति का वैयक्तिकरण करने के लिए मानव अवयवों को गिनाकर, उसका शरीरी रूप-गठन करने के लिए या स्वयं को प्रकृति पर आरोपित कर उसका शरीरी रूप उपस्थित करने के लिए रूपक-विधान किया गया है, वहाँ महादेवी जी उतनी ही असफल रही हैं, जितनी वे भावप्रधान, अनुभाव प्रधान, आत्म-निवेदन-प्रधान, और दृश्य प्रधान रूपकों में सफल हैं। इस सम्बन्ध में 'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी'[7] ओ विभारी'[8] 'शून्य मन्दिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी'[9] मैं बनी मधुमास आली'[10] आदि रचनाएँ देखी जा सकती हैं।

इन रूपकों में कहीं तो धर्म साम्य, रूप साम्य, स्थिति साम्य का अभाव है, कहीं शरीरी रूप साम्यटन का अभाव। इनमें से कुछ की समीक्षा प्रतीक-विवेचन के अन्तर्गत कर दी गई है।

काव्य और व्यावहारिक जीवन में उपमा का प्रयोग सर्वाधिक होता है। इसका प्रयोग जितना सरल है, उतना ही कठिन भी। कठिन इसलिये कि एक ही उपमान से व्यापक अर्थ-व्यापार इससे होता है। ऐसा उपमान तलाश करना जो रूपक, प्रतीक या अन्योक्ति के समान व्यापक अर्थ का अभिव्यंजक हो, अत्यन्त पैनी, विस्तारदर्शी, प्रबुद्ध प्रतीमा की ही सामर्थ्य है। सर्वोत्कर्षकारी उपमान वही कहलायगा, आकार, रूप, गुण, भाव, क्रिया, प्रभाव की दृष्टि से अतीत, वर्तमान और भविष्य को भी अपने में समाविष्ट किये हो।

कुछ उपमाएँ देखिए :—

मोम-सा मन घुल चुका अब
दीप सा तन जल चुका है।

दीपशिखा, गीत २३

नव मेघों को रोता था
जब चातक का बालक मन।
मेरे मन बालशिखी में
संगीत मधुर बन जाता।

यामा, पृष्ठ ८४

चकित-से विस्मित-से दृग बाल।
अकारण यह शैशव-सा हास।
तरंगों-से द्रुत पद सुकुमार।
मुकुर-से तेरे प्राण।

यामा, पृष्ठ १२६

विहग शावक-से जिसदिन मूक
पड़े थे स्वप्ननीड़ में प्राण।

यामा, पृष्ठ १०५

मोम तनिक-से ताप से पिघल जाता है। विरह-सन्ताप से मन पिघल गया है। मोम का कोई पदार्थ (बत्ती) जब पिघलता है, तब पिघले मोम की गोल-गोल बूँदें रपटती दीखती हैं। सारा मोम पिघल जाने पर बूँदें पिघले हुए मोम में विलीन हो जाती हैं। सारा मोम द्रवित तरल स्निग्ध पदार्थ बन जाता है। मन भी ऐसा द्रवणशील, तरल पदार्थ

[1]—यामा, पृष्ठ १३८, [2]—यामा, पृष्ठ २०३,
[3]—यामा, पृष्ठ २१८ [4]—यामा, पृष्ठ २२७,
[5]—दीपशिक्षा, पृष्ठ ७८ [6]—दीपशिखा, पृष्ठ १००
[7]—यामा, पृष्ठ १३०, [8]—यामा, पृष्ठ १६८,
[9]—यामा, पृष्ठ २१२ [10]—यामा, पृष्ठ १५८

बन गया है। अब सन्ताप-द्रवित आँसू भी फिसलते नहीं आते। 'मोम-सा मन घुल चुका' में व्यंजना से सन्ताप के आधिक्य, मन की द्रवणशीलता, प्रिय-साधना में सम्पूर्ण विनाश—इन सबके चित्र में प्रिय की निष्ठुरता, प्रेयसी की एकान्तनिष्ठा और प्रिय के प्रति करुणा का अनुरोध समाया है। दीप के सम्बन्ध में भी यही समझिए।

"चातक का बालक मन," "मन बालशिखी", "दृगबाल", "शैशव-सा हास", "विहग शावक से प्राण" में बालक और शैशव दो उपमान प्रयुक्त हुए हैं। बालक और चातक की हठ सर्वविदित है। बालक जिस बात पर अड़ जाय, मनवाकर ही मानता है। चातक भी स्वातिजल पीकर ही चैन लेता है। बालक अबोध होता है। साधिका का अबोध मनमोर भी आलम्बन श्यामघन को देखकर गा उठता है। आलम्बन के सुषमा-प्रभाव, शीतलता-दान, आश्रय के मन की मुग्धता की व्यञ्जना "बालशिखी" में है। बालक भोले होते हैं। थोड़ी-सी विलक्षणता, असाधारणता, असामान्यता पर विस्मित-चकित हो जाते हैं, यहां बालक के स्वभाव-भोलेपन, चपलता और मुग्धता को आँखों में स्थापित किया गया है। विहग शावक से भी प्राणों की अबोधावस्था, शैशव, निष्क्रिय, परिधिबद्ध अवस्था की व्यञ्जना की गई है। शैशव से शिशु के स्वभाव–निर्मलता, निष्कपटता, स्वच्छन्दता मधुरता, सुकुमारता, क्षीणता, लघुता का अर्थ लिया गया है। इन उपमानों में पदार्थ से गुण-स्वभाव, गुणस्वभाव से क्रिया, साकार से निराकार, निराकार से साकार, असाम्य से साम्य की व्यञ्जना पूरी सफलता से हुई है। साथ ही ध्यान देने की बात यह भी है कि एक शब्द (बालक) कितने विभिन्न अर्थों का बोधक है।

कवयित्री की अभिव्यञ्जना में भाव विशेष[१] या स्थिति विशेष की सूक्ष्मता,[२] भिन्न गुण स्थापना,[३] विपरीत और विरोधी स्वभाव-समावेश,[१] विपरीत परिणाम,[२] विपरीत क्रिया,[३] उक्ति वक्रता,[४] लक्षणा,[५] व्यञ्जना आदि सभी प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं।

अद्वैतवाद की काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद है। अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा अंश है, परमात्मा अंशी माया के व्यवधान या विभाजक-कर्मों के द्वारा परमात्मा से आत्मा अलग हो गई है। ज्ञान या प्रेम-साधना से आत्मा फिर परमात्मा में मिल जाती है। दोनों का सम्बन्ध समुद्र और लहर के समान है।[६] परमात्मा और आत्मा की एकरूपता को कवयित्री ने अनेक उपमानों द्वारा व्यक्ति किया है। इसमें सर्वाधिक सूर्य और दीपक को लिया गया है।[७] परमात्मा को विधू, जलराजि, ऋतुराज, निद्रा, ज्योतिविस्तार प्रकाश, ज्वाला, बादल और आत्मा को रश्मि, उर्मि, मधुश्री स्वप्न, तारक, रश्मि, उत्ताप, बिजली के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।[८] सूर्य और दीपक की सम्बन्ध कल्पना को

१—प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में आता चुपचाप।
मेरे निमिषों से भी नीरव है उसकी पदचाप।
यामा, पृष्ठ १०७

२—पीड़ा मेरे मानस-से भीगे पट-सी लिपटी है।
यामा, पृष्ठ २६

३—लय बनी मृदु वर्तिका, हर स्वर जला बन लौ सजीली।
फैलती आलोक-सी, झंकार मेरी स्नेह-गीली।
दीपशिखा, गीत ५

१—ज्वाल का मोती संभाले मोम की यह सीप।
सृजन के शत दाग थामे प्रलय दीपाधार।
दीपशिखा, गीत ४

२—प्यास वह पानी हुई इस पुलक के उन्मेष में,
शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष में।
दीपशिखा गीत १७

३—क्षर हुए, दुःख में मधु भरने,
तपे प्यास का आतप हरने,
इनसे धुलकर धूल भरे सपने उजले निखरे।
दीपशिखा गीत, १०

४—स्वजन स्वर्ण कैसा न जो ज्वाल धोया,
यह उड़ते क्षण पुलक भरे हैं
सुधि से सुरभित, स्नेह धुले
ज्वाला के चुम्बन से निखरे हैं
दीपशिखा गीत १२

५—जीवन पावस रात बनाने सुधि बन आया कौन।
यामा पृष्ठ १३३

६—यामा, पृष्ठ ९४, ७—यामा, पृष्ठ १४५-१४६, दीपशिखा गीत ४२, ४५, ४६ ८—यामा, पृष्ठ १०३-१०४

छोड़कर शेष उपमेय-उपमानों में कोई नवीनता नहीं, पुराने रहस्यवादी और भक्तों ने भी प्रायः भगवान और भक्त, साध्य-साधक और प्रियतम-प्रेयसी का अखण्ड सम्बन्ध इन्हीं प्रतीकों के द्वारा दिखाया है।

अप्रस्तुत-विधान में सर्वाधिक भावाभिव्यंजक है प्रतीक। अर्थ-सम्पन्नता और अभिव्यंजना की दृष्टि से इसकी समता की जा सकती है, तो अन्योक्ति से। प्रतीक में अर्थ इसी प्रकार समाया है, जैसे बीज में। वृक्ष की टहनियाँ, पत्ते फूल और फल आदि। प्रतीक भी धर्म साम्य को अभिव्यक्ति देने में जितना अधिक समर्थ होगा, उतना ही वह काव्य के लिए उपयोगी होगा—प्रतीक (प्रति + इक) का अर्थ है, और झुका हुआ। अभिव्यक्ति की सुबोधता-दुर्बोधता का ध्यान रखकर प्रतीक-कल्पना की जाती है। आलम्बन और आश्रय साकार होने पर भावन और विभावन-व्यापार को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक-विधान की आवश्यकता कम पड़ती है। आलम्बन सूक्ष्म परोक्ष, निराकार होने पर अनुभूति भी रहस्यमयी बन जाता है, तब तो प्रतीक एक अनिवार्य उपकरण हो जाता है। भावन और विभावन दोनों व्यापार गुह्य—रहस्यमय बन जाने पर उन्हें प्रतीकों द्वारा ही प्रकट किया जाता है। यही कारण है, निर्गुण माधुर्य भक्ति में जो प्रतीक-विधान मिलता है, वह सगुणभक्ति या लौकिक काव्य में नहीं।

महादेवी जी की काव्य साधना का आलम्बन है परोक्ष या सूक्ष्म। उनकी साधना रहस्यात्मक है, तब रहस्यमयी अनुभूति या व्यापार को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रतीक-पद्धति का आधार लेना ही पड़ेगा। मैं समझता हूँ, कबीर के ब द हिन्दी में दो ही काव्य-साधक प्रतीक-विधायक हुए—प्रसाद और महादेवी। कबीर के प्रतीकों में जो अटपटापन, अर्थ की दुरूहता, अभिधा का बहिष्कार और अर्थ का बलात समावेश है, वह प्रसाद और महादेवी में नहीं। महादेवी के प्रतीक तो और भी स्पष्ट हैं—अभिधार्थ की उँगली वे नहीं छोड़ते। साथ ही वह एक प्रतीक प्रस्तुत करके उसके सभी अंगों का उल्लेख कर साँग रूपक भी खड़ा कर देती है। तब तो दुर्बोधता रहती ही नहीं।

प्रतीक-रूप में महादेवी जी ने दीपक का सबसे अधिक प्रयोग किया है। जैसे तुलसी के प्रेम या भक्ति का आदर्श है चातक और कबीर के प्रेम का आदर्श सती और सूरमा, वैसे महादेवी की प्रेम-साधना का प्रतीक है दीपक। चातक विश्वमङ्गल विधायक घनश्याम के करुणा-वारि के लिए घटपटाता है, वर्षा, ओले, तूफान की परवाह नहीं करता, दीपक उस आलोक-पिण्ड सूर्य की साधना करता है, जिसका अरुण वाण चुभते ही कण-कण से मधु के निर्झर-से सजल गान बह निकलते हैं।

दीपक अपने ही हृदय के अक्षुण्ण स्नेह में तिलतिल जलकर राख होता जाता है। तो भी प्रतीक्षा-पथ को अपने स्वर्णिम प्रकाश से अभिसिंचित करता रहता है। सघन अंधकार से रुद्ध अतीत और कुहासे के समान धुंधला भविष्य। पीछे लौटना असम्भव और आगे बढ़ने में प्रकाश-परीक्षा, तो भी उत्ताल तरंगों में तैरता, आंधियों के आघात सहता असीम की ओर अग्रसर है। ऐसे बेधड़क प्रेमी से ही प्रेम की रीति सीखी जा सकती है।

> क्षार होता जाता है गात,
> वेदनाओं का होता अन्त,
> किन्तु करते रहते हो मौन,
> प्रतीक्षा का आलोकित पंथ,
> सिखा दो ना नेही की रीति
> अनोखे मेरे नेही दीप।
>
> (नीहार) यामा, पृष्ठ ५३

> कुहरे-सा धुँधला भविष्य है
> है अतीत तम घोर।
> कौन बता देगा जाता यह
> किस असीम की ओर।
>
> (रश्मि) यामा, पृष्ठ ७८

आरम्भ में दीपक का जो निरूपण हुआ है, देखने में वह आलम्बन-सा लगता है, लेकिन वह है शुद्ध रूप में प्रेरक, प्रकाश-दर्शक, प्रेम और साधना का आदर्श या गुरु। इसलिए वह उद्दीपन-रूप में प्रस्तुत है। साधनाभिलाषी, जिज्ञासु बन कर कवयित्री उससे स्नेह की रीति सिखाने का अनुनय करती है—'सिखा दो ना' में एक प्रकार का ऐसा अनुरोध और जिज्ञासु का शिशु-सुलभ भोलापन है, जिसे व्यावहारिक घरेलू भाषा में 'निहोरा' कहा जाता है। अपने आलम्बन

का आभास पा जाने, उसके विरह की अनुभूति करने, उसके प्रति अकम्पित चिरन्तन प्रेम हो जाने पर साधिका स्वयं दीपक बन युग-युग तक जलने और उसके हाथ से बुझ जाने की कामना करती है।

दीप-सी युग युग जलूँ
पर वह सुभग इतना बता दे।
फूँक से उस की बुझूँ
तब क्षार ही मेरा पता दे।

(सांध्यगीत) यामा, पृष्ठ २३७

प्रेम साधना के एकान्त लोक में, विरह-विषदशन के बीहड़ में, सन्नाटे के निर्जन में निष्ठा के शून्य निलय में, भाव योग के कक्ष में पहुंच कर साधिका का हृदय (आत्मा) चिरन्तन स्नेह-पुंज दीपक बन जलने लगता है। प्रियतम के पथ को आठों याम आलोकित करते रहने के लिए साधना का दीपक जलाती रहती है—न जाने कब आ जाय। सिहरते, पुलकते, मुसकराते, मदविह्वल हो झूमते, भोले-भाले दीपक को जलाती रहती है। उसे समझाती है—

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला-कन,
विश्व-शलभ सिर धुन कहता, मैं
हाय न जल पाया तुझ में मिल।
सिहर सिहर मेरे दीपक जल।
मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भयकर,
मैं अंचल की ओट किये हूं,
अपनी मृदु पलकों से चंचल।
सहज सहज मेरे दीपक जल।
तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खलेंगे नव खेल निरन्तर,
तम के अणु अणु में विद्युत-सा
अमिट चित्र अंकित करता चल।
सरल सरल मेरे दीपक जल।
तू जल जल कितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलने में मिट जाना तू,
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल।

(नीरजा) यामा, पृष्ठ १४५-१४६

साधिका की प्रेम साधना की विरह ज्वाला से आलोकित जिस दीपक से प्रेम-विरह-साधना की चिनगारियाँ जड़चेतन, नवीन, निर्बल साधक माँग रहे हैं, सिर धुन-धुन, तड़पतड़प कर, बेताब होकर मायालिप्त प्राणी उस प्रेम की आग में न जलपाने के कारण—वैसी विरह साधना न कर पाने के कारण पछता कर रह जाता है, उस साधक-दीप का क्या कहना! यह आश्वासन कि साधिका उसे बुझने न देगी—सबल संकल्प अचल निष्ठा, अखण्ड आस्था के अंचल से उसे ओट किए हैं साथ ही उसके क्षय होने से ही छलनामय उससे आ मिलेगा तब कौन-सा दीपक है, जो हँसते-हँसते न जलता रहे? आगे चलकर साधिका स्वयं दीपक बन जाती हैं।

शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठुर हूं।
ताज है जलती शिखा
चिनगारियां शृङ्गार माला,
ज्वाल अक्षय कोष-सी
अंगार मेरी रङ्ग शाला,
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ।

यामा, पृष्ठ २१८

"दीपशिखा" में महादेवीजी विविध दीप-रूपों में उतरी हैं। "दीपशिखा" उनकी अकम्पित अजस्र साधना की प्रतीक है। "दीपशिखा" के एक चौथाई गीत दीप की साधना के विभिन्न रूप उपस्थित करते हैं। कभी उच्छलित तूफानी समुद्र, उमड़ती, घटाएँ, कौंधती बिजलियाँ, प्रकम्पित दिशाएं उनके साधनादीप के लिए मङ्गलगान गाती हैं,[1] कभी आतंक-जड़ित तारों के मुद्रित नयन, सनसनाते ध्वंस, उन्मत्त आंधी कड़कती बिजली की हृदयकम्पी घड़ियों में बुझे दीपक जला, कवयित्री दीपक-रागिनी गाती है।[2] कभी आरती बेला समाप्त होने, शंखघड़ियाल, वंशीवीणा के मन्द पड़ जाने प्रणत शिरों के विसर्जित हो जाने पर भयंकर झंझावात में

[1]—दीपशिखा, गीत १

[2]—दीपशिखा, गीत ५

'ज्योति का यह लघु प्रहरी' पुजारी बनकर जागता है[1] कभी वह गोधूली को दीप जलाने के लिए कहती है[2], रात कितनी बीत चुकी, कितनी शेष है, इसके जानने की कामना नहीं, केवल जलना ही उसकी साधना है[3]।

मैं क्यों पूछूँ यह विरह-निशा,
कितनी बीती क्या शेष रही
उर का दीपक चिर स्नेह अतल
सुधि लौ शत झंझा में निश्चल
सुख से भीनी दुख से गीली
वर्ती-सी सांस अशेष रही।

दीपशिखा, गीत ३९

साधक आत्मा का पूर्ण स्वरूप जैसा दीपक के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त होता है, वैसा शलभ, चातक, चकोर, कमल, कुमुदिनी, मछली आदि से नहीं। रहस्यवादी काव्य में तो और भी नहीं। दीपक स्नेह (तेल) और साधक स्नेह (प्रेम) में अंधेरी रात (विरह-वेदना-तिमिर-आवृत) भर जलता रहता है। दोनों ही जलकर अन्धकार (अज्ञान-माया) को नष्टकर पथ आलोकित करते रहते हैं। दीपक से दीपक जलता है और साधक अन्य साधकों में विरह-चिनगारी जलाता है। दोनों ही तिलतिल जलकर अंशी सूर्य और परमात्मा के निकट पहुंचते हैं। दीपक की ज्योति अपने अंशी ज्योति के अनन्त सूर्य पिण्ड में और साधक की आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। दीपक लौ जलाए रहता है, साधक लौ लगाए रहता है। स्नेह, लौ और ज्वाला ने श्लेष द्वारा भी दीपक को साधक का सच्चा प्रतीक बना दिया है।

दीपक के बाद ध्यान जाता है रात पर। वसन्त रजनी[4], रूपसि[5], मिलन-यामिनी[6], विभावरी[7], सुकेशिनी[8], सपने

[1]—दीपशिखा, गीत १३
[2]—दीपशिखा, गीत १८
[3]—दीपशिखा, गीत ४२
[4]—(नीरजा) यामा, पृष्ठ १३०
[5]—(नीरजा) यामा, " १४०-१४१
[6]—(नीरजा) यामा, " १५४
[7]—(नीरजा) यामा, " १६९
[8]—(सांध्य गीत) यामा, पृष्ठ २४४

जगाती आ,[1] इन गीतों में रात को प्रतीक-रूप में रखा गया है। गीत संख्या १, ४, और ५ में प्रेयसी, गीत संख्या २ में वात्सल्यमयी जननी, गीत संख्या ३ में सखी और गीत संख्या ६ में दूती प्रेरक या पथदर्शिका बनकर प्रस्तुत हुई है। गीत संख्या २ में कवयित्री रात से अनुरोध करती है—

नत स्निग्ध लटों से छादे तन,
पुलकित अङ्गों में भर विशाल,
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से,
अंकित कर इसका मृदुल भाल,
दुलरा दे ना बहला दे ना,
यह तेरा शिशु जग है उदास।

गीत संख्या ३ में कवयित्री अनुनय करती है, ऐ मेरी चिर-मिलन यामिनी; सघनतिमिर बन घिर आ, सितारे भी छिप जाँय, समीर की साँसों और हर सिंगार के झरने का भी शब्द न हो, लहरें सो जांय, कलियाँ न रोवें, चातक पी-पी न पुकारे, क्योंकि आज—

सीमित की असीम में चिर लय
एक हार में हों शत शत जय
सजनि! विश्व का कणकण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी!

और गीत संख्या ६ में प्रात के अभिषेक को हर दृग सजाती आ का अनुरोध है।

गीत संख्या १, ४, और ५ में केन्द्रीय भाव एक ही है प्रेयसी आत्मा को प्रिय-मिलन के लिए प्रेरणा। १ और ४ में आत्मा को अभिसार के लिए तैयार किया जा रहा है। ५ में जड़ता की माया में सोती आत्मा को जगाया जा रहा है। सभी में प्रिय की 'पदचाप' सुनाई दे रही है।

[1]—दीपशिखा, गीत ३२
[1]—(नीरजा) यामा, पृष्ठ १३०
[4]—(नीरजा) यामा, " १६९
[5]—(नीरजा) यामा, " २४४
[1]—सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी।
[4]—प्रिय की पदचाप मदिर गा मलार री।
[5]—दिवस की पदचाप चंचल आ रही है निकट प्रतिपल।

शुक्लाभिसारिका मुग्धा वसन्तरजनी की शृंगार-सज्जा देखिए—

तारकमय नव वेणी बन्धन
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि-वलय सित घन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।
मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि,
अलिगुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पद गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे मृदुस्मित से सजनी।
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि,
मलयानिल का चल दुकूल अलि,
थिर छाया-सी श्याम विश्व को आ अभिसार बनी,
सकुचती आ वसन्त-रजनी

ऊपर वसन्त-रजनी का जो रमणीय रूप संघटित हुआ है, उससे अभिसारिका का कोई भी स्वरूप हमारी आँखों में चित्रित नहीं होता। किरणों से वलय, भौरों से समाविष्ट कमलों से किंकिणी, तरंगिणी से चरण, स्वप्नों से रोमावली, स्मृतियों से अंजली का कोई आकार सामने नहीं आता। न किरणों, और न कमल हाथों और कमर के चारों ओर लिपटे रहते हैं। जिन उपमानों की कल्पना शृंगार-सज्जा के लिए की गई है, वे सब विस्तृत अनन्त भूखण्ड में बिखरे पड़े हैं। केवल आंशिक धर्म-साम्य के कारण वे उपमेय-धर्म नहीं निभा सकते। वसन्त रजनी की नारी रूप कल्पना वैसी ही है, जैसे केशव की पावस रजनी को काली या पंचवटी की शिव या पार्वती के रूप की कल्पना। रजनी का वैयक्तिक करण तो किसी सीमा तक ग्राह्य हो सकता है पर सावयव रूप प्रस्तुत करना, कल्पना का बहुत अच्छा उपयोग नहीं कहला सकता।

वीणा और तीर भी प्रतीक रूप में अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं। वीणा का प्रयोग कहीं कवयित्री के निजी जीवन, कहीं हृदय के अर्थ में किया है। "जर्जर वीन लेकर बिखरे तारों को जोड़ कर, पीड़ा का भार ले कर अनन्त की ओर कैसे आऊँ?"[१] जब वह कहती है, तो उसी अर्थ को प्रकट करती है, जिसको प्रकट करने के लिए सूर ने "जर्जरतरी" का प्रयोग किया। जीवन के बिखरे तत्वों को उसी ने एकत्र किया, वही गाने को कहता है।[२] साधिका के प्राणों का तार-तार गा उठता है।[३]

वीणा द्वारा जीवन (विश्व जीवन) को भी व्यक्त किया गया है। समस्त सृष्टि को वीणा की संज्ञा दी गई है। वह जब कहती है, "इस जादूगरनी वीणा पर क्षण भर गा लेने दो गायक", तब साधिका के शरीर हृदय और जगत का अर्थ व्यक्त होता है।[४] समस्त जगत, सृष्टि या विशाल भू-मण्डल का अर्थ व्यंजित करने के लिए नीचे की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं।

तन्द्रिल निशीथ में ले आये
गायक तुम अपनी अमर बीन,
प्राणों में भरने स्वर नवीन।
तममय तुषारमय कोने में
छेड़ा तब दीपक राग एक।
प्राणों-प्राणों के मन्दिर में
जल उठे बुझे दीपक अनेक।
तेरे गीतों के पंखों पर
उड़ चले विश्व के स्वप्न दीन।
(सांध्ययगीत) यामा, पृष्ठ २४०

प्रलय की निस्तब्ध संज्ञाहीन बर्फीली रात में नाद ब्रह्म का स्फोट हुआ। जड़ में जीवन का उदय हो गया। उसके दीपक राग (चेतना-स्वर, नाद विस्फोट) से अनेक बुझे दीपक जल उठे—प्रलय निद्रा में सुप्त आत्माएँ जाग उठीं। स्पष्ट है, यहाँ नाद से सृष्टि के उदय का सिद्धान्त प्रतिपादित है। वीणा में स्वर है, झंकार है। स्वर शब्द है, झंकार कम्पन है। कम्पन ही क्रियाशीलता है, चेतना है, गति है। नाद भी गतिशील है। नाद अमर है। जीवन गतिशील है, अमर भी है—अनादि है, अनन्त है। इतिहास भी नहीं जानता,

---

१—यामा, पृष्ठ ४९, ७३
२—यामा, पृष्ठ ६१
३—यामा पृष्ठ ६५
४—यामा, पृष्ठ १५२, १३३

जीवन का आरम्भ कब हुआ। इसलिए वीणा को जीवन का प्रतीक मानना अत्यन्त उपयुक्त है।

प्रेम, विरह-वेदना, प्रेमानुभूति प्रेमबोध आदि को तीर के द्वारा अभिव्यंजित किया गया है।[1]

तीर चुभने पर प्राणी पीड़ा से तड़पता है, विरह-वेदना (प्रेम-पीड़ा) से भी प्रेमी छटपटाता है। परिणाम या प्रतिक्रिया की समानता के कारण दोनों समान है। कबीर ने भी प्रेम को शर या हथियार इसीलिए माना है। इस कल्पना का मूल है मदन के पुष्पवाण।

दीपक के साथ ही दीपक-राग का सम्बन्ध है। कहा जाता है, दीपक राग गाने पर बुझे दीपक जल उठते हैं। तब दीपक-राग का लाक्षणिक अर्थ होता है, स्नेह और ज्वाला। स्नेह का प्रेम, चिकनाई, भावना, राग, अनुराग और ज्वाला का अर्थ है प्रकाश। प्रकाश का अर्थ है ज्ञान, बोध, चेतना आदि। दीपक राग को भी महादेवी जी ने ज्ञान, चेतना और राग भावना का प्रतीक माना है। उस परम चेतन परोक्ष सत्ता ने "तममय, तुषारमय कोने में छेड़ा जब दीपक राग एक", तब "जल उठे बुझे दीपक अनेक"।[2] दीपक राग का उल्लेख 'दीपशिखा' में कई बार हुआ है।[3] साधिका घोरतम को विदीर्ण करने के लिए दीपक रागिनी गाती है। दीपक के अवयवों को उपमान बनाकर, राग के अंगों को उपमेय बनाकर, वह बहुत अच्छा रूपक निर्माण करती है :—

सब बुझे दीपक जला लूँ। घिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगालूँ। लय बनी मृदु वर्तिका, हर स्वर जला बन लौ सजीली। फैलती आलोक-सी झंकार मेरी स्नेह गीली। इस मरण के पर्व में मैं आज दीपाली मनालूँ। दीपशिखा, गीत ५

दर्पण को माया-व्यवधान[1] और शलभ को मायालिप्त जीव[2] का प्रतीक माना गया है। एक आध जगह शलभ को प्रेम भी कहा गया है।[3]

यहाँ महादेवी के काव्य-शिल्प की भी संक्षिप्त झाँकी देख लेनी चाहिए। प्राकृतिक परिवेश में वह अपने किसी भाव को उपस्थित करती है। प्रकृति अधिकतर उद्दीपन-रूप में प्रस्तुत रहती है। यह प्राकृतिक परिवेश-चित्रण कहीं-कहीं इतना अधिक हो जाता है, कि पाठक भ्रमवश इसे शुद्ध प्रकृति-चित्रण (आलम्बन रूप में) समझ बैठता है। प्रकृति के अनेक चित्र उपस्थित करके अन्त में निज को उपस्थित करती है। यामा, पृष्ठ एक पर चाँदनी रात, वसन्त और प्रभात को परिवेश (उद्दीपन रूप) में उपस्थित करके, छह पंक्तियों के बाद प्रियतम के प्रथम परिचय की बात कही गई है। यामा, पृष्ठ ९ पर चाँदनी रात, समुद्र की लहरों, मलयानिल, कलियों, सौरभ, छिपता चांद और उगता प्रभात उपस्थित करके, बाईस पंक्तियों के बाद दो पंक्तियों में अपनी मुग्धता का उल्लेख किया है। इसी प्रकार यामा, पृष्ठ ४५ पर चांदनी रात, प्रभात दीपक पर जलते शलभ, पावस और उगते हुए चांद के दृश्य उपस्थित करके, चौदह पंक्तियों के बाद अपने प्रियतम की प्रतीक्षा का उल्लेख करती हैं।

प्रकृति-परिवेश को एक दो जगह जीवन-बाधाओं और माया व्यवधानों के रूप में,[4] दो-चार बार प्रेयसी अभिसारिका के रूप,[5] कहीं-कहीं समान भावानुभूति-लीन प्रेमिका के रूप में[6] चित्रित किया गया है। कवयित्री के मानसिक विकास के साथ परिवेश कम होता गया है, भाव चित्रण बढ़ता गया है। भाव साधना के अंतिम शिखर पर पहुंच कर तो महादेवी भावहीनता की मूर्छना भरी धूप गंध बन गई हैं जिनकी सुवास और स्वर लहरी से हिन्दी-साहित्य अभिषिक्त है।

१—चुभते ही तेरा अरुण वाण। यामा, पृष्ठ ६९
किस सुधि-वसंत का सुमन-तीर? यामा, पृष्ठ ७०
रातके उर में दिवस की चाहका शर हूँ। यामा, पृष्ठ २१८
बिंध गया अजान आज किसका मृदु कठिन तीर?
दिपशशिखा, गीत २१
स्वर्णशर से साध के घन ने लिया उर वेध।
दीपशिखा, गीत ४

२—(सान्ध्यागीत) यामा, पृष्ठ २४०

३—जो न प्रिय पहचान पाती?
किस लिए हर सांस में मैं सजल दीपक-राग गाती।
दीपशिखा, गीत १६

१—टूट गया वह दर्पण निर्मम। यामा, पृष्ठ १६७
रहने दो रज का मंजु मुकुर, यामा पृष्ठ १६६

२—यामा, पृष्ठ २१८, १३७, १७१

३—यामा, पृष्ठ १६३

४—यामा, पृष्ठ १८

५—यामा, पृष्ठ १४५

६—यामा, पृष्ठ १३१, १३४

महादेवी और उनकी सहयात्री प्रकृति

•

डॉ० देवेन्द्र कुमार

मनुष्य का प्रकृति से द्विविध सम्बन्ध है। एक उपयोगितावादी और दूसरा भावात्मक। एक भौतिक आवश्यकताएँ जुटाता है, जबकि दूसरा भावबोध जगाता है। एक जीवन में अपनी सार्थकता खोजता है, दूसरा कविता में। कवि की रागात्मक चेतना, प्रकृति से अनुप्राणित ही नहीं होती, अपितु अपनी अरूपता को रूप देने के लिए उससे उपादान भी ग्रहण करती है। कविता में प्रकृति की इस अनिवार्यता के होते हुये भी, दोनों के सम्बन्धों के इतिहास में जो उतार चढ़ाव देखा जाता है, उसका कारण है, कवि की रागात्मक चेतना और प्रकृति की समय सापेक्ष्यता। समय के परिप्रेक्ष्य में ही प्रकृति मनुष्य की भावना को रँगती है, समय का तथ्य हटा देने पर, प्रकृति अपना सहज आकर्षण खो देती है। चाहे सांध्यनभ की रङ्ग-विरङ्गी मेघमाला हो, या उषाकाल का सिंदूरी क्षितिज, चाहे रात की रुपहली चाँदनी हो या मध्य दिन का प्रचण्ड आतप, सब समय की ही विभिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं। इसलिए काव्य में प्रकृति, दृश्य बनकर ही मनुष्य की भावना को अनुप्राणित करती है। प्रकृति पर समय की प्रतिक्रिया, दृश्य बनती है, और मनुष्य की अन्तः प्रकृति में भाव। निर्विकारात्मकेचित्ते भावः प्रथमविक्रिया" निर्विकार हृदय में विकार की लहरें कौन उठाता है? समय ही तो? इसीलिए संवेदनधर्मा कवि भाव के संदर्भ में दृश्य को और दृश्य के संदर्भ में भाव का आलेखन करता आया है। दृश्य भाव में अपनी सार्थकता खोजता है, और भाव दृश्य में अपनी पूर्णता। समय की यह गतिशीलता ही मनुष्य के सौंदर्यबोध के क्रम को बनाये रखती है, "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

साधारणतया महादेवी जी एक रहस्यवादिनी कवयित्री के रूप में जानी पहचानी जाती हैं। यदि हम, छायावाद की उस काव्यधारा को देखें, जो हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंचल में बहती है, तो उसमें एक नीली सी लहर दिखाई देगी, अन्धकार की सघनता और बाधाओं के झंझावात में, हीरकको सी चमकती हुई वेदना की एक रेखा। वह किनारों तक आती है, और उन्हें अनछुये ही लौट जाती है। उसमें सिहरन है कंपन नहीं, कातर क्रन्दन है, हाहाकार नहीं, उसमें ज्वार भाटा आता है, पर वह अपनी सीमा नहीं तोड़ती। संयोग से आप उस तक पहुंच जाँय और परिचय पूछ बैठें, तो वह संकेतों से कहेगी—"मैं अनुराग जनित आत्मविसर्जन करने जा रही हूं। मुझमें वेदना है, परन्तु उसका अर्थ विरक्ति नहीं, वह तो प्रियतम तक पहुंचने का एक साधन है, और आत्मा का प्रकाश भी। मेरा यह अभिसार समर्पण के लिए है, मिलने के लिए नहीं। आत्मनिवेदन के ये गीत मैं प्रियतम को भेंटना चाहती हूं। भला मैं क्या जानूं कि रहस्य क्या होता है। मैं अपनी साधना में पूर्ण स्पष्ट हूँ, यदि रहस्य कहीं है, तो प्रियतम में होगा। पर वह साधना ही क्या, जो साध्य के अवगुंठन को न उठा दे? मेरे ये स्वर जो शून्य को चीर रहे हैं और जिन्हें मैं शब्दों में सहेज रही हूं, मेरी इसी आत्म साधना के चरण हैं मेरा यह निवेदन उन तक पहुंचे या नहीं, यही मेरे लिए बहुत है कि यदि वह विश्वमन को छू सका।"

यह हैं महादेवी वर्मा! वेदना की मन्दाकिनी, कल्पना की साम्राज्ञी और साधना की दीपशिखा।

काव्य, उनकी इसी साधना की अभिव्यक्ति है, और प्रकृति, उस अभिव्यक्ति का सबसे समर्थ माध्यम। प्रकृति के संबन्ध में महादेवी जी स्पष्ट दृष्टिकोण रखती हैं—छायावाद ने मनुष्य से हृदय और प्रकृति के सम्बन्ध में नये प्राण डाल दिए जो प्राचीनकाल से बिंब प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती हैं। अब मनुष्य के अश्रु मेघ के जल कण और पृथ्वी के ओस विन्दुओं का एक कारण और एक ही मूल्य है। प्रकृति मनुष्य से मोहज्ञान का प्रतिबिंब न लेकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है।

साध्य की दृष्टि से भी प्रकृति का, वह कम महत्व नहीं आंकती, जब प्रकृति की अनेक रूपता में और परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर असीम चेतन; और दूसरा ससीम हृदय में समाया हुआ है, तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।

इस प्रकार, वह प्रकृति को सचेतन दृष्टिकोण से ही नहीं देखती, बल्कि उसे सुख दुख का भागीदार भी समझती है। उनके कवि और प्रकृति में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव में ही तादात्म्य है। दोनों सहयात्री हैं? यह अजीब सी बात है कि हिन्दी-आलोचक महादेवी की साधना को एकाकिनी समझते हैं जब कि उनकी साधना कितने ही रागात्मक सम्बन्धों के ताने बाने बुनती चलती हैं।

महादेवी की काव्य साधना के चार आयाम हैं। इन्हें उन्होंने चार यामों में बाँट दिया है, नीहार, रश्मि, नीरजा, और साँध्यगीत। उनका एक और आयाम है, दीपशिखा। अपनी चिरपरिचित शैली में वह कहती हैं, "यामा अन्तर्गजगत के चार यामों का चित्र है, ये याम दिन के हैं या रात के, कहना कठिन है, इनमें न दिन की थकान है और न निशा का विश्वास खोना। परन्तु निश्चय ही ये याम दिन के हैं, रात्रि के नहीं। प्राचीन विश्वास के अनुसार पञ्च यामो दिवसः, त्रियामा रात्रि:" (पाँच प्रहर का दिन और तीन प्रहर की रात) मानी जाती थी। महादेवी जी ने दोनों को चार-चार प्रहरों में बांट दिया है। यामा में दिन के प्रहर है और दीपशिखा में सघन निशा है, जो कालविभाजन से परे हैं। महादेवी की साधना केवल समय के तथ्य को स्वीकार कर चलती है। समय की सत्ता और आत्मा की टेक के बीच, रागात्मक सामंजस्य बनाये रखने का उनके पास एक ही माध्यम है, वह है प्रकृति। यही कारण है कि नीहार की बाल सुलभ कल्पना पूर्ण जिज्ञासा से लेकर, दीपशिखा की अखण्ड ज्वाला तक, कवयित्री महादेवी की हर भावना को प्रकृति के कैनवास पर अंकित करती हैं। साधना के प्रथम चरण में ही, एक रात की बात है कि जब मधुमास रूपहली चांदनी में नहाई हुई कलियों से मधुमदिरा का मोल पूछ रहा था, तभी उन्हें लगा जैसे कोई उन्हें संगीत सिखाने आया है। मन कल्पनाओं की सिहरन से भर उठता है और वह गुनगुना उठती हैं।

"निशा की धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल
कलि से कहता था मधुमास
बता दो मधुमदिरा का मोल
झटक जाता था पागल बात
धूल में तुहिन कणों के हार
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आए इस पार
बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर
गयी वह अधरों की मुसकान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर"

उन्हें लगता है कि प्रकृति का हर बदलता दृश्य प्रिय की खोज में है—

वन माला के गीतों सा
निर्जन में बिखरा है मधुमास
इन कुञ्जों में खोज रहा है
सूना कोना मन्द बतास
नीरव नभ के नयनों पर
हिलती हैं रजनी की अलकें।

(४४)

मुरझाए फूलों का भी यही हाल है—

"देकर सौरभ दान, पवन के
कहते जब मुरझाए फूल
जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल

प्रकृति में क्षणभंगुरता है, तभी तो शाश्वत् मूल्यों का यह अनुभव हो पाता है। वह अनुभव •मानवी भावों के सन्दर्भ में है। संसार की अस्थिरता, निष्ठुरता और मादकता का वह सुन्दर अंकन करती हैं। मादकता का चित्रण देखिए—

"हँस देता जब प्रात सुनहरे
अञ्चल में बिखरा रोली
लहरों की बिछलन पर जब
मचली पड़ती किरनें भोली"

तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार छलकी पलकों से कहती हैं कितना मादक है संसार क्षणिक करुणा और अमर निष्ठुरता का तारतम्य वह प्राकृतिक प्रतीक से बताती हैं।

वे नीलम के मेघ, नहीं
जिनको धुल जाने की चाह
अनन्त ऋतुराज नहीं,
जिसने देखी जाने की राह,
ऐसा तेरा लोक वेदना,
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद
जलना जाना नहीं नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद

प्रभात के क्षणों में निशा का यह अभिसार कितना करुण है—

रजनी ओढ़े जाती थी,
झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियारी
शशि को छूने मचली थी
लहरों का कर कर चुम्बन
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिंगन।

इधर किरनों की अठखेलियाँ हो रही हैं—

पल्लव के डाल हिंडोले,
सौरभ सोता कलियों में
छिप छिप किरनें आतीं,
जब मधु से सींची गलियों में

अपने रोने की सार्थकता वे प्रिय की मुसकानमें मानती हैं—

मैं फूलों में रोती वे।
बालारुण में मुस्काते
मैं पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ मैं उड़ जाते हैं,

प्रकृति का लाक्षणिक प्रयोग भी उनमें कम नहीं—

"कितनी रातों को मैंने
नहलाई है अँधियारी
धो डाली है सन्ध्या के
पीले सुन्दर से लाली।

साधना की भयंकरता के लिये, उनकी कल्पना यह प्राकृतिक योजना करती है—

"तरंगें उठीं पर्वताकार
भयङ्कर करती हाहाकार
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते उपहास
हाथ से छूट गई पतवार
कौन पहुँचा देगा पार।"

सुमन के माध्यम से मनुष्य जीवन का यह चित्र देखिए?

"था कली के रूप शैशव
में अहो सूखे सुमन
मुस्कराता था खिलाती
अङ्क में तुझको पवन
वही सुमन अब है,
सो रहा अब तू धरा पर
शुष्क बिखराया हुआ
गन्ध कोमलता नहीं
मुख मन्जु मुरझाया हुआ"

अब उनका जीवन तपोवन बन गया है, और प्रकृति के उद्दीपन से उन्हें चिढ़ है।

"यहाँ मत आओ मत्त समीर
सो रहा है मेरा एकान्त
बनाओ न इनसे लीला भूमि
तपोवन है मेरा एकान्त।"

यही अपेक्षा उनकी निर्झर से भी हैं।

"न कर हे निर्झर भङ्ग समाधि
साधना है मेरा एकान्त"

महादेवी की साधना का व्यक्तिगत लक्ष्य है वह फूल जो अनजाने अपनी लीला में लय हो जाता है–

"किसी अपरिचित डाली से
गिरकर जो नीरस बन का फूल
फिर पथ में बिछकर आँखों में
चुपके से भर लेता धूल
उसी सुमन सा पल भर हँसकर
सूने में हो छिन्न मलीन
झर जाने दो जीवन माली
मुझको रहकर परिचय हीन।"
(६७)

अपनी साधना के दूसरे चरण 'रश्मि' में प्रेम की किरण, देवी जी को सुख दुःख के रङ्गों में रँग देती है, और अनुभूति कल्पना के पंखों पर प्रकृति में विचरण करने लगती है—

"इन कनक रश्मियों में अथाह
लेता हिलोर सिंधुतम जाग
बनती प्रबाल की "मृदुल म्लान"
रंग रहा हृदय से अश्रु हास
यह चतुर चितेरा सुधि विहान"

अब सरिता उनके जीवन का लक्ष्य है—

"चिर विरह मिलन पुलिनों का
सरिता हो मेरा जीवन
प्रतिपल होता रहता है,
युग फूलों का आलिंगन"
(७८)

रश्मि में एक ओर प्राकृतिक रूपकों की बहुलता है और करुणा अधिक सक्रिय है—

"मन मेघों को रोता था
जब चातक का बालक मन
इन आँखों में करुणा से
घिर घिर आते सावन
अज्ञात वेदनाओं से मेरा मानस भर आता

इस प्रकार कवयित्री महादेवी निस्सीम सुख की अपेक्षा, असीम दुख को अपना लेती हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि दुख ही, साधना पथ में प्रकाश दे सकता है, एक क्षणिक क्रीड़ा का चित्र देखिए—

"मेघों में विद्युत सी छवि
उनकी बनकर मिट जाती
आँखों की चित्रपटी में
जिससे मैं आंक न पाऊँ

प्रसाद जी के प्राकृतिक प्रतीकों में जिज्ञासा है जबकि महादेवी के प्रतीकों में उपालम्भ। उनमें जिज्ञासा भी हैं पर वेदना के प्रति है, सौंदर्य के प्रति नहीं?

"घुमड़–घुमड़ क्यों रोते नवमेघ
रात बरसा जाती क्यों ओस
पिघल क्यों हिम का उर अवदात
भरा करते सरिता के कोष"

'नीहार' में जिज्ञासा है और 'रश्मि' में अन्तर्द्वन्द। नीरजा में संकल्प है और है लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पण। वसन्त रजनी के स्वागत में उनका यह संकल्प देखा जा सकता है—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी
तारकमय नव वेणी बन्धन
शीश फूल का कर कर नूतन
रश्मि वलय सित घन अवगुंठन
मुक्तादल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी"

प्रिय की पदचाप पाकर सारी धरती पुलकित हो उठती है—

सिहर सिहर उठता सरिता उर
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर
मचल मचल आते पल फिर फिर
सुन प्रिय की पदचाप
पुलकित अवनी" (१३४)

'नीरजा' में यह बताना कठिन है कि कवयित्री अपनी वेदना से प्रकृति को रंगती है या प्रकृति उनको। या दोनों ही वेदना के जुड़वे बच्चे हैं—

"विरह का जल जात जीवन
विरह का जल जात
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका
अश्रु चुनती रात
जीवन विरह का जलजात"

(१४२)

वर्षा का यह चित्रण सर्वथा स्वतन्त्र है:—

"रूपसि तेरा घन केशपाश
श्यामल श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केशपाश ?"

क्षण भंगुरता के खण्ड दृश्य नीरजा में भरे पड़े हैं, क्षणिकता में विभक्ति नहीं, उत्सर्ग का उल्लास है, क्योंकि निष्क्रिय अमरता से रचनात्मक विनाश, कहीं अच्छा है—

"हँस देता है नव इन्द्र धनुष की
स्मित में घन मिटता मिटता
रँग जाता है विश्वराग में
निष्फल दिन ढलता ढलता
कर जाता संसार सुरभिमय
एक सुमन झरता झरता"

(१५४)

'बसन्त का यह अभिसार गीत, हृदय में थिरक उठता है—

"मुखर पिक हौले बोल
हठीले हौले हौले बोल
मर्मर की बंशी में गूंजेगा
मधुऋतु का प्यार,
झर जावेगा कम्पित तृण से
लघु सपना सुकुमार"

विषमद के इन क्षणों में संध्या, साधिका कवयित्री का अनुरञ्जन कर रही है—

सज केश कपट तारक वेंदी
दृग अंजन मृदु पद में मेंहदी
आती भर मदिरा से गगरी
संध्या अनुराग सुहाग भरी
मेरे विषाद में वह अपने
मधुरस की बूँदें छलकाती" (१६१)

प्रकृति साधना की सहयात्री ही नहीं, प्रियतम के अनुराग का सुन्दरतम माध्यम भी है, विभावरी का मानवी चित्र, इसका प्रमाण है—

"ओ विभावरी
चांदनी के अङ्गराग
माँग में सजा पराग
रश्मितार बंध मृदुल
चिकुर भार से
ओ विभावरी"
कल दल में किरण अंकित
चित्र हूँ क्या मैं चितेरे
बादलों की प्यालियों पर
चांदनी के सार से
तूलिका का इन्द्र धनु
तुमने रँगा उर प्यार से

"सांध्यगीत" में वेदना का रङ्ग और गहरा हो जाता है। और सांध्य गगन अब उनके जीवन का प्रतीक है। अभी तक वह प्रकृति में अपने को देखती थीं, पर अब वह अपने में उसे देखती हैं—

प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन
यह क्षितिज बना धुंधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग
छाया सी काया वीतराग
सुधि भीने स्वप्न रङ्गीले घन

(२०९)

उनकी उग्र साधना देखकर प्रकृति के स्वर मूक हो उठते हैं—

"मैं आज चुपा आई चातक
मैं आज सुला आई कोकिल ?"

फिर वही प्रकृति से प्रसाधन उपकरण मांगती हैं—

रञ्जित करके शिथिल चरण ले
"नव नव अशोक का अरुण राग
मेरे मण्डन को आज मधुर ला
रजनी गंधा का पराग
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार"

'सांध्यगीत में' महादेवी की साधिका और प्रकृति एकाकार है।

"उमड़ता मेरे दृगों में
बरसता घन श्याम में जो
अधर में मेरे खिला नव
इन्द्र धनु अभिराम में जो"

(२२८)

अब बदली के माध्यम से वे अपना परिचय देती हैं—

मैं नीर भरी दुःख की बदली
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा

प्रकृति का यह सहारा पाकर वह विश्व के सुख दुख की प्रतिनिधि बन जाती हैं और इस सबका लक्ष्य है—

पुलक से नभ भर धरा को
कल्पनामय वेदना दी

इस प्रकार उन्होंने, आकाश को सुख दुख में रँगना सिखाया और धरती को अपने यथार्थ से ऊपर उठना। आदर्श यथार्थ की इन अनमिल रेखाओं को मिलाना ही, उनकी साधना का उद्देश्य है।

सांध्य गीत के साथ महादेवी जी की साधना का अंतिम चरण समाप्त होता है।

यामा साधना का पथ है, और 'दीपशिखा' उसकी 'लौ' नीरवता में जलते रहना ही, अब उसका एक मात्र लक्ष्य है—

"यह मन्दिर का दीप
इसे नीरव जलने दो"

इस सिद्धान्त वाक्य के बाद महादेवी जी की कल्पना फिर प्रकृति के निकट पहुंच जाती है—

सजल कितना सवेरा
ले उषा ने किरण अक्षत हास रोली
रात अंक से पराजय रेख धोली
राग ने फिर सांस का संसार घेरा

और तब वह, फूल की रङ्गीन स्मृति में मेघ सी घिरने लगती है। कल्पना और विस्मय के बीच उनकी साधना जारी है।

"नभ मेरा सपना स्वर्ण रजत
जग सङ्गी अपना चिर विस्मित
यह शूल फूल का चिर नूतन
पथ मेरी साधों से निर्मित"

महादेवी जी साधों के अपने जिस पथ पर चली हैं, प्रकृति उसकी एक मात्र संगिनी है। प्रिय का परिचय वह उसके माध्यम से करती हैं। साधना के उपकरण भी उसी से ले लेती हैं। अपनी अनुभूतियों में उसे रँगती हैं, और उसके रँगों को अपने में उतारती हैं। अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी देवी जी की सुखदुखों की भावावेशमयी अवस्था प्राकृतिक प्रतीकों में ही प्रचुर हुई है। निशा, सन्ध्या और उषा के कई सुन्दर चित्र उन्होंने काव्यदेवता को भेंट किए हैं। प्रकृति का अधिकांश चित्रण मानवी सम्बन्धों के संदर्भ में है महादेवी की आध्यात्म साधना सुखी मानवता से परिचित होने के लिए है, ब्रह्म से मिलने के लिए नहीं ? उनकी साधना रागमूलक है विरक्तिमूलक नहीं। चाहे प्रिय में मधुर व्यक्तित्व का आरोप हो, और या स्वयं साधिका की मधुरतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हो, दोनों के लिये वह प्रकृति से प्रतीक चुनती हैं।

महादेवी जी का जीवन-दर्शन

●

प्रो० श्रा० रुक्माजी 'भ्रमर'

मधुमास आया जीवन का उपहास करने। निशा में नीलगगन पर नक्षत्रों का हास देखा, किन्तु मन बहुत उदास हुआ। पौ फटते-फटते प्रातः पक्षियों का कोलाहल सुना तो मन मदमस्त होकर झूम उठा। हरित-तृणों पर मोतियों की भाँति लहराते ओस कणों को लखकर नयनों से अनायासआंसू बह निकले। सहस्र मोतियों का मूल्य सुयोग्य जौहरी के सिवा और कौन आँक सकता है। रात भर की यातनाओं से पीड़ित धरती ओसकण बरसाकर अपने हृदय की वेदना प्रकट करती है। उसी प्रकार कवि भी सहस्र पददलित, पीड़ित प्राणियों के प्रति संवेदनशील हो उठता है। हवा का झोंका आया, पत्ता पत्ता हिला, मर-मर ध्वनि सुनायी पड़ी। कवि के लिए वह हृदय को हिलाने वाली आवाज साबित हुई। कवि ने उदधि में उमंग-उमंग आते देखा तो उसमें भी उसे किसी के दिल की उदासीनता प्रतिबिम्बित हुई। आकाश-पटल पर श्याम घन उमड़-घुमड़ आते देखा तो उसे ऐसे लगा मानों कोई बादलों में भी बैठकर रोना ही चाहता है। बादल क्या बरसे किसी के दिल से झरने फूट पड़े। वीणा के तार बज उठे तो किसी का हृदय विदारक क्रन्दन सुनायी पड़ा। कुसुम मुस्कुराया तो उसके साथ मिलकर क्षणभर हँस लिए। उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हुए। उसकी मधुर सुगंधि के आस्वादन से आनन्दित हो उठे। दूसरे ही क्षण उसके जीवन की क्षणभंगुरता के बारे में सोचकर उदास हो गये। दिनकर के अस्त होते समय गगन लोहित हो गया। साँझ के समय गगन को निराश लखकर कवि का मन उदास हो गया। आसमान पर बिखरी लालिमा को देखकर दार्शनिक बन बैठे। दीपशिखा रात भर जलती रही, गलती रही, अश्क बहाती रही शायद कवि को अपने दिल की दर्द भरी दास्तान सुनाती रही। सुनहले किरणों की रंगीन चूनर पहनकर नवजात ऊषारानी आयी। आशा का नवल संदेश लायी तो कवि का विश्वास बंध गया। फिर भी जीवन की समस्या सुलझाने में कवि का मस्तिष्क उलझ ही गया आखिर। जीवन डगर पर हर कदम कण-कण में विपद ग्रस्त आत्मा की पुकार सुनने वाले विचित्र प्राणी कवि के लिए आहत प्राणियों के मुंह से निकलने वाली चीत्कार व आह की थाह तक पहुंचने की राह ढूंढना सर्वसाधारण बात है। भावपूर्ण अरुण बान के चुभते ही कवियत्री किस प्रकार तन्मय हो उठती है देखिये—

> चुभते ही तेरा अरुण बान।
> बहते कन-कन से फूट-फूट,
> मधु के निर्झर से सजल गान।
> इन कनक रश्मियों में आया है,
> लेता हिलोर तम सिंधु जाग,
> बुद्बुद् से बह चलते अपार,
> उसमें विहगों के मधुर राग,

यह समस्त संसार दुख-विषाद का पारावार है। आयेदिन जीवन पथ में पग पग पर संकट, विघ्न-बाधा, विषम परिस्थिति तथा जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रतिकूल परिस्थितियों के सम्मुख आते ही मनुष्य हताश, निराश व उदास हो जाता है। जीवन-पथ घनघोर घटाओं से आच्छादित हो जाता है। मन भय से विकम्पित हो उठता है। तन सिहर उठता है। मस्तिष्क में अनेक प्रकार के

संदेह व प्रश्न उठ खड़े होते हैं। अब जीवन की नैया किस तरह उस पार पहुंचेगी ? इसी प्रकार जीवन की घटनाओं से ऐकाकार होकर कवियित्री महादेवी पुकार उठती हैं।

घोरतम छाया चारों ओर
घटायें घिर आईं घनघोर;
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिल जाते हैं पर्वत-मूल;
गरजता सागर बारम्बार
कौन पहुँचा देगा उसपार ?
तरंगें उठीं पर्वताकार
भयंकर करतीं हाहाकार
अरे उनके फेनिल उछ्वास
तरी का करते हैं उपहास;
हाथ से छूट गयी पतवार;
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

जीवन के मार्ग में आंधी, तूफान व अनेक अड़चनें उपस्थित हो जाती हैं तो उन्हें देखकर मनुष्य साहस खो बैठता है। और कमजोरी महसूस करने लगता है। भय का भूत उसका पीछा करने लगता है। संकटग्रस्त मनुष्य की बुद्धि किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाती है। तब वह अपने आपको बेसहारा, अकेला किसमन का मारा, निरुपाथ महसूस करने लगता है। वह सहारे की खोज करने लगता है। वह सुगमता से जीवन का मार्ग तय करना चाहता है। घोर निराशा में भी कभी-कभी आशा की किरण झलक दिखलाती है। यही जीवन नौका को आगे बढ़ने में सहायता पहुंचाती है। नश्वर जगत का स्मरण आते ही आत्मा परमात्मा में लीन होने के लिए लालायित हो उठती है। इस क्षण-भंगुर संसार से नाता-रिश्ता तोड़कर अनन्त से रिश्ता जोड़ने के लिए तत्पर हो उठना स्वाभाविक है। आत्मा अनंत के चरणों में अजर-अमर हो जाया करती है ऐसा विश्वास है। अमरावती के संबंध में कवयित्री के विचारों पर दृष्टि डालिये जरा।

सुना था मैंने इसके पार
बसा है सोने का संसार;
जहां के हँसते विहग ललाम
मृत्यु छाया का सुनकर नाम !

जब तक आत्मा संसारिक चोला पहने रहती उसे जीवन के बंधनों से मुक्ति कहाँ। कांटों की राह पर चलना पड़ता है। पर्वतों से टकराना पड़ता है। विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ठोकरें खाना पड़ता है। संभल-संभल कर आगे बढ़ना पड़ता है। पीड़ा जब असहनीय हो जाती है तो मन रुदन करना ही चाहता। हृदयाकाश के घन शीतल पवन का झोंका पाकर बरस पड़ना ही चाहते हैं। उमड़-घुमड़ कर बादल क्यों आते है ?

पुलक पुलक उर, सिहर-सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर-भर ?

दुखों का दरिया पार करना आसान नहीं। तिसपर अकेले सभी संकटों का सामना करना पड़ता है तो बरबस आँखों से नदी-नाले बहने लगते हैं। नयनों से झरने झरते हैं तो हृदय की तपन कम हो जाती है। महादेवी जी का जीवन दर्शन भी भिन्न है। संसार के निर्माण का दृष्टिकोण देखिये –

जीवन जलकण से निर्मित सा;
चाह इन्द्रधनु से चित्रित सा;
सजल मेघ सा धूमिल है जग,
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा;

मन जीवन से ऊब जाता हैं। तब वह उदास हो जाता है। गगन भी उदास हो जाता है। समस्त प्रकृति उदासीन नजर आती है। विरह वेदना में तड़पने लगती है तब हृदय बीन के तार झंकृति कर दुःख का राग अलापने लगती है।

आंसू बन बन तारक आते
सुमन हृदय में सेज बिछाते;
कम्पित वानीरों के वन भी;
रह रह करुण विहाग सुनाते;

संसार वैज्ञानिक भौतिक उन्नति को लखकर चकाचौंध हो गया। आध्यात्मिक तथा आत्मजगत को भूलकर वाह्य जगत की नश्वर वस्तुओं में आनन्द का अनुभव करने लगा। अनंत आकाश पर उड़ान भरने वाले पंछी की आंखें धरती पर आहार खोजती रहीं। स्वार्थमय संसार की ओर आंखें गड़ी रहीं। किन्तु महादेवी जी अपनी अलमस्त बानी में हृदय वीणा के तार झंकृत कर करुण कहानी सुनाती रहीं। वेदनाओं का मधुर प्याला पीती रहीं। अश्रु नीर बहा-बहा

कर हृदयनल को शीतल करती रहीं। पथ के शूल भी मानों प्रिय फूल बन गये। विरह की घड़ियां भी कवयित्री के लिए मधुर एवं आनन्ददायक सिद्ध हुईं। आप निधड़क विरह वेदना का आह्वान करती रहीं। समस्त संसार राजनैतिक उथल-पुथल से गुजरता हुआ साम्राज्यवाद की मजबूत जड़ों को हिलाने के प्रयत्न में लगा रहा। साम्यवाद की सांस भरते-भरते मशीन युग का आगमन हुआ तो प्रगतिवाद के नारे बुलंद होने लगे। इधर कवयित्री अपने निर्दिष्ट जीवन पथ से विचलित न होकर हृदय को स्पर्श करने वाले जीवन के गान सुनाती रही।

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात ?
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात !
जीवन विरह का जलजात !

असंख्य आंसुओं को बटोरने एवं गिनने के व्यापार में ही दिन-रात बीतते हों तो फिर जीवन क्यों न विरह का जलजात होगा। वेदना में ही जिनका जन्म हुआ हो तो जीवन-भर आंसू बहाने के सिवा और यहाँ धरा ही क्या है। आँसू बहाना धर्म तथा पवित्र कर्म मान लिया जाय तो।

प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर !
दुख से आविल सुख से पंकिल,
बुद्बुद् के स्वप्नों से फेनिल,
बहता युग युग से अधीर !

नयनों का नीर भी प्यारा एवं दुख भी आनन्ददायक तथा मधुमय लगेगा। आत्म शुद्धि के लिए व आत्मतृप्ति के लिए हर दिन आंसू बहाना मानो साधना पथ बन जाय।

झरने नित लोचन मेरे हों !
जलती जो युग युग से उज्ज्वल,
आभा से रचरच मुक्ताहल,
वह तारक माला उनकी,
चल विद्यु त के कङ्कण मेरे हों !

कुबेर का कोष हाथ लगा है तो फिर दोनों हाथों से दान कर इस जीवन में पुण्य क्यों न कमा लिया जाय ! औरों को भी इससे सुख तथा आनन्द लूटने का मौका मिले। इस धरती पर जितने प्राणी हैं उनके दुख-दर्द का भी परिचय मिल जायगा। उनका अलग अपना एक नया इतिहास लिखा जायगा तब इन सहस्र नयनों की मोतियों का मूल्य अवश्य आंका जाएगा।

आज आंसुओं के कोषों पर
स्वप्न बने पहरेवाले हैं !
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय,
आज हो रही कैसी उलझन !
रोम-रोम में होता री सखि एक,
एक नया उर का सा स्पन्दन !
पुलकों से भर फूल बन गये,
जितने प्राणों के छाले हैं।

नये घन आकाश पटल पर छा जाते हैं। कोई नया संदेश लाते हैं। वह कौन सा संदेश ?

सुख-दुख से भर,
आया लघु उर,
मोती से उजले जलकण से,
छाये मेरे विस्मित लोचन।

जीवन इतिहास के पृष्ठों को भरने का साहस आपके सिवा और कौन कर सकता है ? जबकि आप स्वयं स्वीकार करती हैं कि—

मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !
मेरा पग-पग संगीत भरा,
स्वासों में स्वप्न पराग भरा !
नभ के नवरंग बुनते दुकूल
छाया में मलय बयार पली।

महादेवी जी का आराध्य देवता धरती का निवासी है। एक साधारण मानव में जिस प्रकार की त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होतीं हैं वे सब उनमें भी मौजूद हैं। उनका प्रियतम बड़ा निर्दयी है, कठोर है, निर्मोही है, क्रूर है। आप मानव जगत के साहित्य-

रूपी हृदय देवता पर सर्वस्व निछावर कर चुकी हैं। उनके काव्य में आप दुख का पारावार सुख का सार भी पायेंगे निराशा का गहरा कुहरा और साथ ही अंधकार को छिन्न-भिन्न करने वाली आशा की विद्युत् ज्योति भी। जिस प्रकार राधिका अपने प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण के वियोग में खिन्न रही""सीता जैसे अपने मन-मन्दिर के आराध्य श्री राम से विलग होकर वियोग की ज्वाला में जलती रहीं तथा उर्मिला अपने प्रियतम लक्ष्मण के वियोग में अश्रु नीर बहाती रहीं उसी प्रकार महादेवी जी धरती के निवासी अपने प्रियतम के वियोग में विरह वेदना की ज्वाला के बीच जलती रहीं, पलती रहीं, वे स्वयं आत्मा में परमात्मा को निहित मानती हैं। एतदर्थ मानव के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति, करुणा, दया आदि पायी जाती है। उनकी रचनाओं में दीन-दुखी, पीड़ित मानव के प्रति सहानुभूति, करुणामूलक भावना पाकर उन्हें प्रगतिवादी भी कहेंगे। प्रकृति के परिधानों से अपना श्रृंगार करते देख आलोचक प्रतीकवादी कहने जा दुस्साहस भी करेंगे। महादेवी जी का काव्य विरह वेदना जन्य, करुणा-मूलक व्यथित मानव जाति का प्रतिबिम्ब है। मानो कवयित्री ने अपने आंसुओं से मानव जाति का इतिहास लिख दिया। महादेवी जी के समान शायद ही किसी कवि या कवयित्री ने हिन्दी साहित्य जगत को असूल्य मोतियों का हार भेंट किया हो। सुख के अवसर पर सब कुछ कह देने की क्षमता होती है किन्तु दुख में व्यक्त करने की शक्ति लुप्त हो जाती है। परन्तु देवी जी ने दुख की पुस्तिका के पन्नों को अपने अनुरंजित आंसुओं से भिगो कर अपने अनूठे रंग में रंग दिया है। कवयित्री के इस अनुरंजित रूप सज्जा पर हिन्दी साहित्य को गर्व है।

महादेवी जी के काव्य निर्माण के प्रेरणा स्रोत के संबंध में एक आलोचिका ने क्या ही सही कहा हैं। नारी के हृदय को नारी ही भलीभांति समझ सकती है। श्रीमती शचीरानी गुटू ने स्पष्ट कहा है "यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन गगन के रक्ताम पटल पर स्नेह-ज्योत्सना छिटकी पड़ रही थी, तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखायें-सी अंकित कर गई। आत्म संयम् का व्रत लेकर उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकरा कर पीड़ा को गले लगाया, वह कालांतर में आंतरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपकाये रखने की मानो हठ पकड़ बैठीं।"

एक स्थान पर महादेवी जी कहती हैं "इस मानव समष्टि में जिसमें शत प्रतिशत साक्षर और एक प्रतिशत से भी कम काव्य के मर्मज्ञ हैं हमारा बौद्धिक निरूपण कुण्ठित और कलागत सृष्टि पंखहीन है। शेष के पास हम अपनी प्रसाधित कलात्मकता, और बौद्धिक ऐश्वर्य छोड़कर व्यक्ति मात्र होकर ही पहुँच सकते हैं। बाहर के वैषम्य और संघर्ष से चकित मेरे जीवन को जिन क्षणों में विश्राम मिलता है उन्हीं को कलात्मक कलेवर में स्थिर कर मैं समय-समय पर उनके पास पहुंचाती ही रही हूँ जिनके निकट उनका कुछ मूल्य है।"

कभी रात तारों की बारात लेकर आ जाती है तो कभी जीवन पथ अंधकारमय हो जाता है। आगे बढ़ना दूभर हो जाता है। महादेवी जी को किसी बाहर के दीपक की आवश्यकता नहीं है। वे अंधकारमय पथ को अपने ही हृदय का दीप जलाकर आलोकित करना चाहती हैं—

मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

जीवन नौका आँधी व तूफान से थपेड़े खाकर विशाल सागर के मध्य डगमगाने लगी। हाथ से पतवार भी छूट गई। उस पार कैसे पहुंचा जायेगा? शायद उनका आत्म विश्वास, प्रियतम से मिलने की आस-प्यास बिना खेवनहार बिन पतवार भी उस पार पहुंचा देगी। वे स्वयं एक स्थान पर लिखती हैं "निरन्तर एक स्पन्दित मृत्यु की छाया में चलते हुये मेरे अस्वस्थ शरीर और व्यस्त जीवन को जब कुछ क्षण मिल जाते हैं तब वह एक अमर चेतना और व्यापक करुणा से तादात्म्य स्थापित करके आगे बढ़ने की शक्ति प्राप्त करता है।"

निराशा मनुष्य को आगे बढ़ने से रोकती है। निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाला व्यक्ति जीवन में कदापि उन्नति नहीं कर सकता। ऐसे निराशावादी व्यक्ति को संसारिक जीवन

भारस्वरूप लगता है। यों तो दर्द के मारे रोने वाले अनेक हैं। उनका उपहास करने वाले और भी अधिक हैं। सुख के हिस्सेदार कई हैं किन्तु दुख के भागीदार बिरले ही कोई होंगे। दुखियारों के साथ सहानुभूति जताकर संवेदनशील होने वाली कवयित्री की वीणा-वाणी सुनिये—

मेरी आँखों में वह दुख
आंसू बनकर खोता है!
जग हंसकर कह देता है
मेरी आँखें हैं निर्धन,
इनके बरसाये मोती
क्या वह अब तक पाया गिन

दुख-सुख जीवन के चिर संगी साथी हैं। सत्य की अनन्त सीमा तक पहुंचने के लिये साधना की आवश्यकता है। साधना के पथ पर पहुंचने से पूर्व त्याग की विशाल भूमि से गुजरना पड़ता है। जीवन की विभिन्न विकट परिस्थितियों के बीच पलते हुये अपनी मर्यादा को कायम रखना व मनोदशा को आंच न आने देना कोई साधारण बात नहीं। जनता जनार्दन की पुकार सुन कवयित्री चीत्कार कर उठती हैं—

वेदना की वीणा पर देव
शून्य गाता हो नीरव राग,
मिलाकर विश्वासों से तार
गूंथती हों जब तारे रात,
उन्हीं तारक फूलों में देव
गूंथना मेरे पागल प्राण—

दुख दर्द के अनुभवों से वंचित व्यक्ति दैवी शक्ति के अनुभव से भी वंचित रहता है। महादेवी जी के विचारों से गेयटे के विचारों की साम्यता देखिये—

"Who never his bread in sorrow ate,
Who never the mournful midnight hours
Weeping on his bed has sate
He know you not, ye heavenly powers"

व्यक्ति को आशा जीवन दान देती है। साहस जीवन पथ पर अग्रसर होने में सहायक सिद्ध होता है तथा सफल जीवन की कुञ्जी सुख प्राप्त करने की लालसा है। जीवन में इन तीनों का संगम मुश्किल से हो पाता है। कवयित्री सुखमय आनन्दमय, मधुरमय जीवन की कल्पना कर रही थीं, किन्तु उनकी मनोकामना पूर्ण कभी हो पायी? यौवन के द्वार पर पहुंचकर उन्होंने सुख का साम्राज्य पाना चाहा पर यह क्या हुआ?

इन ललचाई पलकों पर
पहरा था जब व्रीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का!

जिस वस्तु को हम पाना चाहते हैं वह हमारे हाथ नहीं लगती, जिसे हम नहीं चाहते वह जबरदस्त हमारे गले पड़ती है। जीवन की दौड़-धूप में सुख-दुख सदा हमारे आगे-पीछे रहते हैं। इन्हें पहचानने में प्रायः इन्सान से भूल हो जाया करती है। अनुभव के अभाव में ऐसी भूल होना स्वाभाविक है।

विरह का युग आज दीखा
मिलन से लघु पल सरीखा,
दुख सुख में कौन तीखा
मैं न जानी औ सीखा।

सुख-दुख के मधुर मिलन से जीवन आकर्षक एवं सारमय प्रतीत होता है। जीवन डगर के उतार-चढ़ाव, धूप-छांव आदि सुखद तथा दुखद क्षणों पर जीवन के महत्व का अनुभव प्राप्त होता है। महादेवी जी से लांगफेलो की भावसाम्यता का परिचय प्राप्त कीजिये—

"Into each life some must fall
Some days must be dark and dreany.

जिनको सुख-दुख में कोई भेद नहीं दीखता, विरह मिलन में कोई अंतर नजर नहीं आता और जिन्हें कांटों का दर्शन भी प्रिय लगता, तलवार की धार पर चलना भी जिन्हें मंजूर हो तो फिर ऐसे व्यक्तियों के लिए जीवन की परिभाषा को भी बदलना पड़ेगा।

किसको त्यागूँ किसको मांगूँ
एक मुझे मधुमय विषमय;
मेरे पद छूते ही होते
कांटे कलियाँ प्रस्तर रसमय!

जिनमें जमाने को बदलने की क्षमता है, नूतन इतिहास के निर्माण करने की दक्षता है किसी दायरे में बाँधना दुस्साहस नहीं तो और क्या कहें। वे अपना मार्ग आप खोज लेते हैं। उन्हें किसी मार्ग दर्शक की जरूरत नहीं। जिनके जीवन पथ को प्रतिक्षण आशा आलोकित करती है, जिनके जीवन में निरन्तर उत्साह, उमंग रहती हैं. विश्वास, प्रेम, साहस जिनके जीवन साथी हैं और जिनके असफलता के घन सदा स्वर्णसूत्र से वलयित रहते हैं। उनके मतवाले मन में हमेशा विजय का उल्लास हँसता रहता है तो उन्हें जीवन अवश्य मधुर लगेगा ही। कवयित्री आत्मा को सम्बोधित कर कहती हैं।

> मधुरिमा के, मधु के अवतार
> सुधा से, सुषमा से छविमान,
> आंसुओं में सहमें अभिराम
> तारकों से है मूक अजान!
> सीखकर मुस्काने की बान
> कहाँ आये हो कोमल प्राण ?

इस संसार में जब जन्म लेकर आये हैं तो जो भी इस संसार के बाजार में मिलेगा उसे लेना ही पड़ेगा। जो भाग्य में लिखा है उसे भुगतना ही पड़ेगा। चाहे जीवन को अभिशाप समझें या वरदान, जीवन के अभियान से तो छुटकारा पाना आसान नहीं। जो भी जीवन की राह में आये उसे सहर्ष स्वीकार करना ही पुरुषार्थ है। आंसू बहाकर तृप्ति प्राप्त करने वालों के लिए दुखमय जीवन में सुख की आभा दृष्टि-गोचर होगी ही। आप ऐसे व्यक्ति का पता पाने के लिए लालायित हैं न ?

> व्यथा-प्राण हूँ नित्य सुख का पता मैं,
> धुला ज्वाल में मोम का देवता मैं।

उनका पता तो मिल गया अब उन्हीं की जबान से सुनिये आंसुओं से रँगी हुई सुख-दुख की मनोहर कहानी—

> आँसू के सब रंग जान चली,
> दुख को कर सुख आख्यान चली।

उन्होंने कमल दल पर किरणों को अंकित देखा, छाया की आँख मिचौनी देखी, सान्ध्य गगन में जीवन को ढाल लिया, रजनी को झिलमिल तारों की जाल ओढ़कर आते देखा, मुस्काता संकेत भरा नभ देखा तो न जाने वह किस जीवन की सुधि ले आया तो प्रियतम के दर्शन के लिए नयन तरसने लगे। विश्व सो रहा है किन्तु उनका प्रिय तारकों में छिपकर हँस रहा है। उतनी दूर आत्म संदेश कैसे पहुँचाती बेचारी ? साहस कर आगे बढ़ी तो पथ के शूल भी मानो फूल बन गये। आँखों में नींद भर आने लगी तो···कहा···जाग तुझको दूर जाना! आखिर सपनों का जाल बिछ गया। अपने प्रियतम को सपनों में ही बाँधना चाहती रही। इसलिये जीवन का बंधन प्रिय लगने लगा। जिस दर्पण में प्रिय की छवि निरख रही थी वह दर्पण सहसा टूट गया। उनका प्रिय बिछुड़ गया। जाते जाते प्रियतमा का सजल मुख देख लेता। इसकी उन्हें परवाह नहीं। उनके प्रियतम तो उनकी आत्मा में ही समा गये तो वे अमर सुहाग भरी बन बैठीं। सजग चिर साधना लेकर निर्वाण पथ की पाथेय बनी। उन्होंने गीतकार की वाणी को दुहराते हुए कहा—

> "अमरता है जीवन का ह्रास
> मृत्यु जीवन का चरम विकास।"

संगीतज्ञ वाद्ययंत्रों द्वारा ध्वनियों में प्राणों की पुकार सुनाता है, चित्रकार अपनी रंगीन तूलिका से निर्जीव रेखाओं में प्राण फूंक देता है। शिल्पी पाषाण में भी जान डाल देता है और कवि कल्पना एवं यथार्थ से सामंजस्य के शब्दों द्वारा जीवन का संगीत गुनगुनाता है। जीवन के वास्तविक तत्त्वों को लेकर कवि की रचनाओं का मूल्यांकन करना उचित होगा न कि परिस्थिति, काल अथवा वाद विशेष के आधार पर काव्य की सर्वमान्य परिभाषा उपस्थित करना कठिन है। काव्य के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों में भी घोर मदभेद पाया जाता है। काव्यकला के संबन्ध में जानसन का कथन है—

'Poetry is metrical composition', it is art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason. अर्थात काव्यकला छन्दोबद्ध रचना है जो कल्पना तथा तर्क के सहयोग से आनन्द और सत्य का समन्वय करती है। ले हन्ट के अनुसार काव्य की परिभाषा इस प्रकार है—

"Poetry is the utterance of passion for truth, Beauty and power embodying and illustrating its conceptions by imagination and fancy and modulating its language on the principle of variety in unity याने कल्पना तथा चयन शक्ति के सहयोग एवं भाषा के असम प्रयोग से सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति काव्य है। सृष्टिकर्त्ता की अपूर्व कृति मानव की अभिव्यक्ति का माध्यम एड्गर ऐलेन पो के शब्दों में उतरकर देखिये 'Poetry is the rhythmic creation of beauty अर्थात् सौंदर्य की लयपूर्ण सृष्टि काव्य है। काव्य की परिभाषा एवं विषय विश्लेषण के सम्बन्ध में स्वयं महादेवी जी लिखती हैं—"जो कुछ प्रत्यक्ष है केवल उतना ही मनुष्य नहीं कहा जा सकता—उसके साथ-साथ उसका जितना विस्तृत और गतिशील अप्रत्यक्ष जीवन है उसे भी समझना होगा, प्रत्यक्ष जगत में उसका भी मूल्यांकन करना होगा, अन्यथा मनुष्य के सम्बन्ध में हमारा सारा ज्ञान अपूर्ण और सारे समाधान अधूरे रहेंगे। ··· "मनुष्य के अन्तर्जगत का विकास उसके मस्तिष्क और हृदय का परिष्कृत होते चलना है—अभिव्यक्ति के वाह्य रूप में बुद्धि या भाव पक्ष की प्रधानता ही हमारी इस धारणा का आधार बन सकती है कि हमारे मस्तिष्क का विशेष परिष्कार चिन्तन में हो सका है और हृदय का जीवन में।"

काव्य जीवन की व्याख्या है। इसमें प्रत्यक्ष, यथार्थ, स्थूल के साथ-साथ अदृश्य, अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म का हृदयग्राही सामञ्जस्य एवं तर्क पूर्ण विश्लेषण आवश्यक है। महादेवी जी की रचनाओं में आप रहस्यवाद की स्वप्निल मधुर रसमयता पायेंगे, छायावाद की मनोरम चित्रमयता भी। कहीं अद्वैत का स्वर गम्भीर हो गया है, कहीं द्वैत की भावना प्रशस्त हो उठी है, कहीं स्थूल के प्रति रागात्मकता की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। उनमें निर्गुण सन्तों की वाणी प्रतिध्वनित हुई है तो कहीं सगुण के प्रति आसक्ति जाग्रत है।

हिन्दी के कतिपय आलोचकों का आरोप है कि निर्गुणवादी सन्तों के समान महादेवी जी के काव्य में अनुभूति की गहराई, सचाई व परछांई परिलक्षित नहीं है। उनकी कृतियों में ज्ञानयोग, भक्तियोग व कर्मयोग का समन्वय भी कहीं दिखाई नहीं देता है। उनके काव्य में यत्र-तत्र बिखरे प्रेम-तत्त्व के लक्षणों को लखकर उन पर सूफियों का प्रभाव है, कहें तो अतिशयोक्ति होगी। सारांश यह है कि देवी जी में कबीर के समान न हठयोग दीख पड़ता है न फक्कड़पन, सूफी सन्तों के समान आत्मसमर्पण की भावना भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती, न मीरा के समान मतवालापन ही उनमें नजर आता है।

महादेवी जी की विशेषता यह है कि उन्होंने जो कुछ भी लिखा है उसी में तन्मय हो गई हैं उनकी कृतियों पर भावुकता की छाप स्पष्ट लक्षित है। हृदय वीणा के तार झंकृत कर विरह की तान छेड़ने में आप पटु हैं। उनके गीतों में आत्मा का स्पन्दन सुनाई पड़ता है। कवयित्री के लिए यह विशाल संसार एक महान काव्य है एवं मनुष्य एक सुन्दर कविता है तो फिर भावुक व्यक्ति के लिये सृष्टि का कण-कण प्रिय होगा ही। 'यामा' की भूमिका में कवयित्री लिखती हैं "मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्द चित्र मात्र है जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है।"

प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशील होकर सहानुभूति जताने के लिए अश्रु बहाना ही पवित्र कर्म मान लिया हो, विरह वेदना की ज्वाला में जलजलकर जगत को ज्योति प्रदान करना अपना परम कर्तव्य व धर्म मान लिया हो तो मैं यह कहने का दुस्साहस करूँगा कि महादेवी जी की कृतियाँ मानवतावादी तो अवश्य हैं ही, उनमें जीवन का मधुर संगीत है।

महादेवी का पीड़ा-दर्शन

वारीन्द्र कुमार वर्मा

छायावादी परम्परा में मानव पीड़ा को नए संदर्भ देना और उसे नये संस्कार देकर किसी रहस्यमय अनुभूति का हर दिशा में उद्घाटन कर पाना महादेवी जी की अपनी विशेषता है। उनके चिन्तन के सम्बन्ध में 'पीड़ावाद' अथवा 'वेदनावाद' जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। किसी भी क्षेत्र में सिद्धान्तों और प्रस्थापनाओं का प्रतिपादन और उनका किसी वैशिष्ट्य के साथ ग्रहण किया जाना 'वाद' कहला सकता है। अतः जीवन की भूमिका में दुःख सम्बन्धी सिद्धान्तों और प्रस्थापनाओं की चर्चा मान्यताओं के रूप में अगर की जा सकती है, तो उसे दुःखवाद कहा जा सकता है। भारतीय दर्शन के समस्त प्रकारों में किसी न किसी रूप में यह व्यक्त भी होता रहा है। संसार से आत्मा की मुक्ति का परम आदर्श ही भारतीय दर्शन और संस्कृति का सार है। 'संसार' शब्द का मतलब ही दुःख होता था। बुद्ध ने तो स्पष्ट रूप में 'सर्वं दुखं' का उद्घोष किया। अतः संसार से मुक्ति अथवा दुःख का निवारण ही दर्शन की मुख्य समस्या रही है। लेकिन ऐसे दर्शन की पीठिका में महादेवी जी ने पीड़ा की सनातन युग व्यापी परम्परा में जीवन के निकट शाश्वत सत्य की अभिव्यक्ति को अनिवार्यता को पहचाना है और प्रकृति के रहस्यमय सौंदर्य के साथ जीवन की तमाम उपलब्धियों और संभावनाओं को व्यक्त रूप देते हुये देखा है; और इसलिए ही शायद उन्होंने पीड़ा को सत् और शाश्वत, सचेतन, शुचिमय और गरिमामय तथा सौंदर्य से पूर्ण भी माना है।

फिर भी प्रश्न बना रहता है क्या सचमुच ही पीड़ा-दर्शन जैसा कोई दर्शन भी हो सकता है? बुद्ध की बात दूसरी थी। चारों आर्य सत्य—कि जगत् में दुःख ही है, कि उसका कारण अथवा उसकी एक कारण शृंखला है, कि दुःख का निवारण संभव है और वह अष्टाँग मार्ग के अनुशरण की रीति में सम्पन्न होता है, और यह कि निर्वाण परम लक्ष्य है—नीति की आवश्यकता के साथ तत्त्वज्ञान की संपूर्ण दार्शनिकता लिए हुये हैं। निर्वाण आत्म-निषेध में है क्योंकि परिवर्तन ही सत्य नियम है, और इसीलिए किसी भी तरह का स्थायित्व मात्र एक भ्रम है। लेकिन यह बात महादेवी जी को स्वीकार नहीं। बौद्ध-धर्म की करुणा का हर स्पन्दन उनमें समा गया और वह एक विह्वलता लिए सहसा गा भी उठीं—

> **जाग बेसुध जाग!**
> **अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक-हार**
> **भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार**
> **शूल जिसने भूल छू चन्दन किया, संताप,**
> **सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पदचाप**
> **करुणा के दुलारे जाग!**
>
> (नीरजा महादेवी)

किन्तु, वह अनित्य-दर्शन न तो उनकी बुद्धि को ग्राह्य हुआ और न उनकी अखण्ड का संवेदन प्राप्त करने वाली अनुभूति को। चिर, अनादि और असीम की सत्ता में उनका विश्वास दृढ़ है। परन्तु यह विश्वास कदाचित् उन्होंने दार्शनिक की बौद्धिकता के बल पर प्राप्त नहीं किया, अपितु कवि की संवेदनशीलता और भावमयता की भूमि पर उसे अनायास ही जिया है। कवि और दार्शनिक के बीच सम्बन्ध और

परस्पर अन्तर की बात कहते हुये उन्होंने यह कहा भी है कि जहाँ तक सत्य के मूल स्वरूप का प्रश्न है, दोनों ने उसे अपनी-अपनी विशिष्ट राहों पर चलकर एक-सा ही पाया है। एक में हृदय एकता की अनुभुति देकर विभेद की ओर संकेत करता है तो दूसरे में बुद्धि भेद; अन्तर या विविधता की रीति में एकता की ओर संकेत करती है। सत्य एक है, किन्तु देश-काल की परिधि में परिवर्तन के नाम पर विविधता और अनेकता में व्यक्त होता रहता है। फिर भी इस परिधि में बँधे रहकर भी अनुभूति हमें परिधि के पार ले जाती है। अस्थिरता में स्थायित्व, क्षण-भंगुरता में अमरत्व, असीमता में असीमता, विनष्टि में सृजन और अनेकता में एकता, सब अनुभूत सत्य ही हैं। इनमें परस्पर विरोध नहीं, बल्कि अस्थिरता, क्षण भंगुरता, ससीमता, विनष्टि एवं अनेकता सत्य तक हमें पहुंचा देते हैं। "तट पर एक ही स्थान पर बैठे रहकर भी हम असंख्य नई तरङ्गों को सामने आते और पुरानी लहरों को आगे जाते देखकर नदी से परिचित हो जाते हैं। वह किस पर्वतीय उद्गम से निकल कर कहां-कहाँ बहती हुई किस समुद्र की अगाध तरलता में विलीन हो जाती है, यह प्रत्यक्ष न होने पर भी हमारी अनुभूति में नदी पूर्ण है और रहेगी।" (दीपशिखा महादेवी) अनुभूति में मिला यह एकता का सत्य वाह्यरूपों की अनेकता अर्थात् स्थूल की गतिशीलता के साथ हमारी आन्तरिकता यानी सूक्ष्म की व्यापकता और उसके जीवन व्यापी सामञ्जस्य की स्थिति में संभव हो पाया।

अतएव स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक फैलने वाले गतिशील किन्तु स्थाई सत्य की पकड़ और अभिव्यक्ति जितनी अधिक आंतरिकता लिए होगी—कि जिसमें अन्तर का जीवन-व्यापी दृष्टिकोण एवं सामञ्जस्य सन्निहित हो—उतनी ही अधिक मात्रा में सौंदर्य की उपलब्धि होगी। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्मतम तक का व्यापार सहज और सत्य है, और सौंदर्य रहस्य की उषा में नित नये रूपों में हर प्रभात खिलने लगता है? अतएव सीमा असीम के सत्य को बाँधे है और बन्धन मुक्ति के वर को लिये हुये हैं, और दोनों स्थितियों में यहाँ से वहाँ तक सौंदर्य बिखरा पड़ा है। लौकिक से अलौकिक तक का क्रम अविच्छिन्न है; या यों कहना चाहिये कि दोनों की एकता अटल है। अतः केवल इतना भर कह देना जैसे पर्याप्त नहीं है कि—

> प्रिय मैं सीमा की गोद पली
> पर हूं असीम से खेली भी

अपितु सम्बन्ध-व्यापार को और अधिक स्पष्ट करना जरूरी है—

> चित्रित तू मैं दूँ रेखा-क्रम
> मधुर राग तू मैं स्वर - सङ्गम
> तू असीम मैं सीमा का भ्रम
> काया छाया में रहस्यमय
> प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।
>
> (नीरजा)

लौकिक अलौकिक तक पहुंचाने का साधन-मात्र ही रह गया 'बीन' और 'रागिनी' दोनों एक हो रहे। 'साधना ही सिद्धि सुन्दर बन रही।' और फिर अलौकिक के साथ तादात्म्य कर पाने के लिए 'कण-कण से परिचित हो जाना' कितना स्वाभाविक है। लेकिन यह परिचय बुद्धिगत ज्ञान की चीज नहीं, उसमें अन्तर की स्निग्धता और अपनापन है। तभी वह सम्पूर्ण भाव-सौंदर्य के साथ इस रूप में व्यक्त हो पाया—

> तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा
> तुममें ढूंढ़ूंगी पीड़ा।
>
> (आधुनिक कवि : महादेवी)

रहस्य की दिशा में अनुभूति की यह एकता द्वैत को स्वीकार नहीं करती। किन्तु ज्ञान की सभी दशाओं में और नहीं तो कम से कम ज्ञाता और ज्ञेय का ही द्वैत बराबर रहता है। अपने इष्टदेव के प्रति श्रद्धा भक्ति दर्शन की दृष्टि से अथवा तर्क की दृष्टि से सम्पूर्ण तादात्म्य का सत्य नहीं कही जा सकती। किसी विशेष क्षण की अनन्तता में एकता को भोग पाना भले ही सम्भव हो जाए, किन्तु भक्ति-भावना की कोई भी रीति भक्त और भगवान के बीच पूर्ण तादात्म्य की स्थिति उत्पन्न नहीं कर सकती। दोनों दो अलग-अलग बातें हैं जिनका दर्शन में मेल नहीं हो सकता। फिर भी महादेवी जी की कविताओं में दोनों ही बातें हैं। अलौकिक के बीच आत्मसमर्पण की आकुलता केवल आँशिक तादाम्त्य तक

सीमित है; तभी दो का भेद भी उसकी पूजा-आकाँक्षा में है।

तम के पर्दे में छिपकर
भाता प्रियतम को आना,
ऐ नभ की तारावलियो,
तुम पल भर को छिप जाना।

लेकिन किसी विशेष क्षण में यही आत्म समर्पण स्वयं ही इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि अनायास सम्पूर्ति और उसमें मिलने वाला ऐक्स स्वानुभूति और सत्य का ही असली रूप है। फिर पूजा-अर्जना की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि दो होने का भाव ही नहीं रह जाता—

क्या पूजा क्या अर्चन रे!
उस असीम का सुन्दर मन्दिर
मेरा लघुतम जीवन रे!
(आनुनिक कवि)

भाषा की अपनी सीमाएँ हैं। वह द्वैत में ही पलती है। इसलिए अनन्त की एकता को वह शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती।

फिर भी एकता की दिशा में संकेत अवश्य कर सकती है। यही संकेत 'क्या पूजा क्या अर्चन रे' इस पंक्ति से मिल जाता है। लेकिन 'असीम का तथा 'लघुतम जीवन' का उल्लेख होते ही जैसे दो का होना सिद्ध हो जाता है। भाषा की कठिनाई के अतिरिक्त कवियित्री की आन्तरिक भक्ति भी इसका कारण है। और इस भक्ति ने ही सही माने में उनकी कला को सुन्दर बना दिया है। भाव की भूमि पर उनकी यह पंक्ति कितनी सुन्दर है कि—

मेरी श्वासें करती रहतीं नित,
प्रिय का अभिनन्दन रे।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल,
मेरा यह दीपक मन रे!

अतएव यह कहा जा सकता है कि बुद्धि के स्तर पर जो हमें स्वीकार नहीं वह भाव की भूमि पर अचानक सीमा-कठिनाइयों के बावजूद भी हमें मिल सकता है। इसलिए एकता और अनेकता आदि के संबंध में तमाम दार्शनिक विवादों और प्रतिपत्तियों तथा तर्क-प्रस्थापनाओं की बात न करते हुए मोटे तोर पर एकता को एक अनुभूत सत्य मानना भर उचित है, और फिर यह अधिक महत्व नहीं रखता कि यह एकता भक्ति की रीति में आंशिक रूप में ही व्यक्त हुई है अथवा आत्मानुभूति को सम्पूर्ति में पूर्णता के साथ। आत्मानुभूति की सम्पूर्ति विशेष क्षणों में प्राप्त हो जाती है, किन्तु इन विशेष क्षणों के बिना भक्ति को स्वीकार तो किया ही जा सकता है। दोनों बातों में अगर विरोध है तो सिर्फ इसलिए कि दोनों ही एक साथ एक ही समय में नहीं घट सकते। लेकिन इससे क्या, बारी-बारी से अथवा एक के बिना दूसरे को लक्ष्य के आदर्श में ग्रहण तो किया जा सकता है।

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन,
भर लाऊँ सीपी में सागर!

प्रिय! मेरी अब हार विजय क्या? (नीरजा) अगर जीवन के क्षणों में हार गये तो अपनी असह्यावस्था, असफलता, विवशता और सीमा में अपने 'स्व' को भूलकर हम ईश्वर के प्रति निष्ठा-आराधना में लग जाते हैं और असीम की भक्ति के बोध को पाकर अपने में आस्था और जीवन का संचार कर पाते हैं। 'अपनेपन' से 'निर्वासित' 'स्व' 'प्रियतम तक पहुंचता है। यह तो हुई भक्ति की बात। दूसरे में 'स्व' के सम्पूर्ण विस्तार की बात है। अगर जीत होती रही तो ससीमता को अनन्त शक्ति का विस्तार मिल जाएगा। असीम का सत्य आत्मा की पूर्णता में बँधकर ही रह पाएगा। अगर सीमा में असीम को बाँधा जा सकता है, अगर सीपी में सागर भरा जा सकता है, तो फिर हार और जीत जैसे शब्दों का भला क्या मतलब! सौ सौ मुक्तियाँ भी लघुतम बन्धन में सच हो जाती हैं।

प्रिय, मैं लेती बाँध मुक्ति
सौ सौ, लघुतम अपने बधन में।

जीवन में जीत-हार सुख-दुख सभी आते हैं, किन्तु सभी हमें स्वीकार्य होने चाहिए। जहाँ भी संपूर्ण स्वाभाविकता से ग्रहण न करते हुए हम ठिठक गए वहीं आत्मा का खंडन हो गया, बंधन की सीमा में अनेक घेरे बन गए और विरूपताएँ तथा विकृतियाँ पैदा हो गईं। इसलिए एक अलगाव, एक समन्वदर्शी-भाव का जीवन में अपनाया जाना बहुत महत्व रखता है। जीवन की परिभाषा पर भी इसका असर पड़ता है। जीवन फिर एक समझौता (Compromise) बन रहता है। नियतिवाद एक सत्य सिद्धान्त बन जाता है।

महादेवी जी ने भी नियति और समझौते की बातों को स्वीकार किया है। नियतिवाद अकर्मण्यता को जन्म भर देता हो, ऐसी बात भी नहीं—

> यह नियति-तिमिर-सागर अपार,
> बुझते जिसमें तारक-अँगार;
> मैं प्रथम रश्मि सी कर शृङ्गार,
> आ अपनी छवि से ज्योतिर्मय,
> कर देती उसकी लहर लहर!
>
> (नीरजा)

लेकिन हाँ, उनमें जीवन से समझौता कर लेने का संतोष है, कहीं कोई रोष नहीं, कहीं कोई खीझ नहीं—

> पल पल के उड़ते पृष्ठों पर,
> सुधि से लिख श्वासों के अक्षर-
> मैं अपने ही बेसुधपन में,
> लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती।
>
> (नीरजा)

अपनी आकांक्षा की रेखा और नियति की लेखा में कोई सामञ्जस्य नहीं, लेकिन कुछ का कुछ लिखा जाने पर भी कहीं कोई क्रोध नहीं, कोई क्षोभ नहीं 'लिखमा था कुछ, कुछ क्यों लिखती' ऐसी खीझ नहीं और न इस तरह प्रश्न पूछने की ही कोई उत्कंठा। सब कुछ जैसे एकदम स्वाभाविक है। और सबको सम्पूर्ण स्वाभाविकता के साथ आत्मसात् कर जाना ही जीवन की सबसे बड़ी शक्ति और उपलब्धि है। यह शक्ति फिर आती कहाँ से है? यह उपलब्धि फिर संभव किस प्रकार होती है? प्रकृति और जीवन को निकट से परखने और अपनी अनुभूति की आन्तरिकता में उनकी सभी स्थितियों को भोगने से ही।

और यहीं महादेवी जी के पीड़ा-दर्शन का महत्व स्पष्ट हो जाता है। 'पीड़ा-दर्शन' शब्द का उपयोग तत्त्व ज्ञान की सम्पूर्ण दार्शनिकता के अर्थ में नहीं हुआ है। हो भी नहीं सकता, यह पहले ही कहा जा चुका है। दार्शनिक के दर्शन और कवि के दर्शन से बहुत अंतर होता है, भले ही दोनों एक ही सत्य की बात क्यों न करें। अतएव कहने का तात्पर्य यह है कि कथित शब्द का प्रयोग वास्तव में कवि के दर्शन के रूप में ही किया गया है। पीड़ा अथवा दुःख की अनुभूति जीवन के स्थूल धरातल की विषमता से लेकर सूक्ष्मतम धरातल पर आत्मा की प्यास में अभिव्यक्त होता वाह्य जगत् की कठोर सीमाएँ और अन्तर्जगत की असीमता की अनुभूति दुःख को जीवन के आन्तरिक आयाम पर इस प्रकार फैलने देती हैं कि वह "आन्तरिक सामञ्जस्य प्राप्ति के लक्ष्य" को लेकर विस्तार पाता जाता है। किन्तु "वाह्य सामञ्जस्य देने का आग्रह" स्थूल धरातल की अनिवार्यताओं में जन्म लेने वाले दुख में है। समाज में आर्थिक समता का आधार भी कदाचित् यही है। वाह्य सामञ्जस्य की स्थिति की तुलना में आन्तरिक सामञ्जस्य एकानुभूति या तादात्म्य भावना में घटित होता है। फिर भी मूलतः दोनों में अंतर नहीं। लेकिन तरीके बदल जाते हैं। स्वयं महादेवी जी लिखती हैं—

"लक्ष्यतः एक होने पर भी अन्तर्जगत के नियम को भौतिक-जगत् नहीं स्वीकार करता उसमें हमें अपनी गहराई में दूसरों को खोजना पड़ता है और इसमें दूसरों की अनेकता में अपने आपको खो देना। दूसरे की आँखें भर लाने के लिए हमें अपने आँसुओं में डूब जाने की आवश्यकता रहती है, परन्तु दूसरे के डबडबाए हुए नेत्रों की भाषा समझने के लिए हमें अपने सुख की स्थिति को, दूसरे के दुःख में डुबा देना होगा। जब एक व्यक्ति दूसरे के दुःख में अपने दुःख को मिलाकर बोलता है तब उसके कंठ में दो का बल होगा। जब तीसरा, उन दोनों के दुःख में अपना दुःख मिलाकर बोलता है तब उसके कंठ में तीन का बल होगा। और इसी क्रम में जो असंख्य व्यक्तियों के दुःख में अपना दुःख खोकर बोलता है उसके कंठ में असीम बल रहना अनिवार्य है।" (दीपशिखा) और कवयित्री होने के नाते दुःख की शक्ति, स्वभाव, शुचिता और गरिमा की महिमा को वह नहीं भूल सकतीं। 'रश्मि' में अपने दुःखवाद की बात कहते हुए वह लिखती हैं कि "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सके किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँटकर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

तो दुःख सुख से अधिक बड़ा और मूल्यवान है। सुख की सीमाएँ हैं, किन्तु दुःख असीम है। एक क्षणिक है तो दूसरा शाश्वत। सुख के साझे में वैसे मानवीय मूल्यों की सृष्टि नहीं होती जैसे दुःख को बँटा लेने की रीति में। दया, करुणा और सहानुभूति ये सभी मूल्य हैं और ये दुःख की साझेदारी में जन्म लेते हैं और इस तरह की साझेदारी एकता के सत्य पर ही आधारित है। लेकिन सुख व्यष्टि-केन्द्र में बँधकर एकता से दूर ही रहता है। फिर उसमें अंतिम सत्य की परिणति और अभिव्यक्ति कैसे संभव हो सकती है? एक कारण और भी है। दुःख जितना तीव्र, सक्रिय और सचेतन होता है उतना ही सुख अपने विकास में विस्मृत लिए हुए होता है और निष्क्रिय होता जाता है। सुख में अगर विस्मृति पलती है तो दुःख में सजीवता। और इस चेतन, सजीव और सक्रिय दुःख की व्यापकता अनन्त है। दर्द और दाह कहां नहीं है? प्रकृति के सभी उपकरणों में तथा मानव के सभी व्यापारों में स्थूल से सूक्ष्मतम धरातल तक सभी जगह—ताप और पीड़ा पाई जाती है। दुःख का महत्व एक दृष्टि से और भी है। वह सुख की संभावना को सत्य बनाए रखता है और उसे सार्थकता प्रदान करता है। सुख साधें और स्वप्न सभी पीड़ा के सत्य से सत्य हुए हैं—

लौ ने वर्ती को जाना है
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने
रज का अंचल पहचाना है,

(दीपशिखा)

और, रुदन में सुख की कथा है,
विरह मिलने की प्रथा है,

(दीपशिखा)

तो सुख और स्नेह और मिलन, क्रन्दन, ज्वाला और विरह से ही सत्य हुए। अभिलाषाएँ और स्वप्न अभाव से ही जनमते हैं 'वेदना-जल, स्वप्न-शतदल' वेदना के जल में ही स्वप्नों के फूल खिलते हैं। वही बात अभिलाषाओं के संबंध में भी कही जा सकती है—

साधें करुणा-अंक ढली हैं,
सान्ध्य गगन सी रंगमयी पर
पावस की सजला बदली हैं।

(दीपशिखा)

अन्य मानव व्यापार भी अछूते नहीं। आत्मा की बन्धन से मुक्ति की प्यास और छटपटाहट में संघर्ष और शक्ति की हर आजमाइश में, अन्तर्द्वन्द में अपनी शक्ति के ही खण्डन में, राग की आसक्ति में और त्याग की तपस्या में, जिज्ञासा की बेचैनी में, अभाव की टीस में, असफलता के बोध में, विवशता के बोझ में, निराशा और कुन्हा में, भय और क्रोध और घृणा में, प्यार के नाना व्यापारों, प्रतीक्षा की आकुलता में, आकाँक्षा, आशंका, कातरता, शिकायत, रूठने, विरह और स्मृति के दर्शन में, श्रम की चेष्टा और थकन में, करुणा के विगलित होने में सहानुभूति की साझेदारी में, उल्लास और स्पन्दन सभी में दुःख व्याप्त है। प्रकृति के सृजन, विकास और विनष्टि के हर क्रम अथवा हर चरण में भी यही दुःख विद्यमान है। अतः जगत और जीवन को पीड़ा और करुणा और सहानुभूति के माध्यम समझना आवश्यक है। अतः पीड़ावाद पीड़ा के द्वारा जीवन और जगत् के एकात्म तत्व को तथा एकानुभूति के सत्य को ही व्यक्त करने का प्रयास करता है, और निराशावाद की छाया भी उस पर नहीं पड़ सकती जो जीवन की समस्त गति को निस्पंद बना देता है। दुःखवाद में आस्था का ही वरदान है और एक ही प्रार्थना-आकांक्षा है—

जले दीप का फूल का प्राण दे दो,
शिखा लय-भरी, साँस को दान दे दो,
खिले अग्नि-पथ में सजल मुक्ति जलजात!
अब धरा के गान ऊबे,
मचलते हैं गगन छूने,
किरण-रथ दो,
सुरभि पथ दो,
और कह दो अमर मेरा हो चुका सन्देश!

(दीपशिखा)

और मैं समझता हूँ हम सभी का मन इस प्रार्थना को दुहराने का ही होगा!

"महादेवी के काव्य की पीड़ा में निहित प्रेम तत्व"

डॉ० महाबीर सरन जैन

महादेवी जी के सम्पूर्ण काव्य को पढ़कर ऐसा लगता है मानों उसका सृजन ओठों की हँसती हुई पीड़ा से हुआ हो। उनके 'प्रियतम' उन्हें 'इस पार' चुपचाप मधुमय मुरली की तान सुनाने आए थे। अनेक युग बीत गए; 'वे' न जाने कहाँ चले गए, 'साधिका' उनका सा मनमोहन गान नहीं सीख पायी। 'उस पार' के मूक मिलन के बाद से उसके जीवन में 'पीड़ा' का साम्राज्य बस गया है। 'चल चितवन के दूत' ही उसकी पलकों में हलचल मचा गए हैं; इसी कारण—

जीवन है उन्माद तभी से,
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना,
के मन प्याले पर प्याले।

उसका मन असीम वेदना का पान करना चाहता है। इसका कारण यह है कि उसके जीवन में जो वेदना है, वह उसके 'मधुमय' द्वारा प्रदत्त है। इसीलिए, 'प्रिय-बिरह' में 'सूनेपन की मतवाली रानी' अपने प्राण रूपी दीपक को प्रज्वलित कर दीपावली मनाती रहती हैं। उसका समस्त जीवन ही वेदनामय हो गया है—

मेरी आहें सोती हैं
इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है
इन दीवानी चोटों में।

प्रकृति का सौन्दर्य उसकी पीड़ा को कम कर सकने में तो असमर्थ है ही; उसे पहचान भी नहीं पाता; ढूँढ भी नहीं पाता—

कितनी बीती पतझारें
कितने मधु के दिन आये,
मेरी मधुमय पीड़ा को
पर कोई ढूंढ न पाये।

उसके नीरव मानस रूपी सूने पथ पर, 'वे' अपने पैरों की चाप छिपाये धीरे-धीरे आए थे और आकर उसकी समस्त मधुवाली मदिरा ढुलका दी और उसके स्थान पर उसकी जीवन रूपी छोटी-सी प्याली को हँसकर पीड़ा से भर दी। ऐसा लगता है जैसे 'पीड़ा' ही परब्रह्म की सत्ता की सर्व व्यापकता का प्रतीक हो। दुःखात्मक ब्रह्म से मिलने की साधना भी तो दुःखपरक ही होनी चाहिए। साधिका को जब इस रहस्य का आभास मिला; तो 'पीड़ा' में ही मधुरिमा के दर्शन करना उसकी जीवन साधना का अनुक्रम हो गया—

इस मीठी-सी पीड़ा में
डूबा जीवन का प्याला,
लिपटी-सी उतराती है
केवल आँसू की माला!

परमात्मा का यदि एक बार भी आभास मिल जाए, तो आत्मा उसको पाने के लिए विह्वल हो उठती है। साधिका के 'मधुमय' तो 'रश्मि' बनकर आए थे और अप्रत्याशित रूप से, हृदय रूपी आत्मा में व्यथा का बाण बेधकर अन्तर्ध्यान हो गए; दृगों की अश्रु भरी मनुहार और मूक प्राणों की पुकार भी उन्हें रोक न सकी। 'उनकी' सुधियाँ प्राणों में कसक-कसक उठती हैं; वह उनको किस प्रकार ढूँढ निकाले यही विकट समस्या है—

अलि कैसे उनको पाऊँ ?
वे आँसू बनकर मेरे
इस कारण ढुल-ढुल जाते
इन पलकों के बन्धन में
मैं बाँध-बाँध पहनाऊँ।

साधना के प्रथम चरण में उसकी चेतना "नीर भरी दुख की बदली" के समान उमड़कर मिटती सी अनुभव करती है किन्तु बाद को बदली के मिटने में 'वह' दुःख का अनुभव नहीं करती; प्रत्युत विसर्जन में ही उसे गौरव की प्रतीति होती है—

मेघ सी घिर भर चली मैं
पंथ के हर शूल का मुख
मोतियों से भर चली मैं।

इस प्रकार पहले उसे नष्ट होने में दुख होता है, बाद को वह एक नया रहस्यान्वेषण करती हैं कि नाश और सृजन सृष्टि के चिरन्तन पक्ष हैं, असीम तम और चिर प्रकाश निरन्तर अपना खेल खेलते रहते हैं। साधिका को कुछ सन्तोष होता है। और आगे बढ़ने पर, जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि 'एक के मिटते' में शत् शत् विकास की सम्भावनाएँ निहित हैं, तब वह जलना चाहती है, मधुर मिलन में मिट जाना चाहती है। अपनी आत्मा को सर्वात्मा में मिला देना चाहती है। चूँकि, अज्ञात प्रिय द्वारा प्रदत्त पीड़ा ही उसका मार्ग है और वही प्रिय को प्राप्त करने का एकमात्र साधन है, अतः वह पीड़ा से समझौता कर लेती है—

प्राण हँस कर ले चला चिर व्यथा का भार
स्वर्ण-शर से साध के
घन ने लिया उर वेध
स्वप्न विहगों को हुआ यह
क्षितिज मौन निषेध
क्षण चले करने कणों का पुलक से शृङ्गार।

चिर व्यथा के भार से जब उनके प्राण समझौता कर लेते हैं, तब व्यथा भी मधुर हो जाती है। इसी मधुर व्यथा को उन्होंने आगे चलकर अपना आराध्य एवं साध्य-सा मान लिया है। वस्तुतः सम्पूर्ण काव्य में उन्होंने पीड़ा को उदात्त बनाने का प्रयास किया है। संयोग में एकाकारिता है, जड़ता है; चिर-वियोग की पीड़ा ही आनन्द प्रदान करती है। विरह के बिना प्राण चिरन्तन-प्रिय का परिचय प्राप्त नहीं कर सकते। सुख हृदय-पट बन्द कर देता है; दुख ही उन्हें खोलता है। जीवन की सत्यता एवं यथार्थता विरह में ही निहित है। विरह-जल में जीवन-कमल विकसित होता है—

'विरह का जलजात जीवन,
विरह का जलजात'

विरह-वेदना से ही जीवन में आनन्द आता है। दुख में हमारी प्रवृत्ति अन्वेषण प्रिय हो जाती है। जगत एवं परब्रह्म के परिचय का माध्यम पीड़ा ही है। उसी के द्वारा जगत के बाध्य और मन के आभ्यन्तर सौन्दर्य का वास्तविक परिचय मिलता है। पीड़ा रूपी अग्नि से जलने पर ही दीपक रूपी आत्मा पवित्र हो सकती है। इसी कारण वे कहती हैं—

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

वे अच्छी प्रकार अनुभव करती हैं कि जब तक जीवन में वेदना नही होती, तब तक साधक चिर सजगता का अनुभव नहीं कर सकता। इसी कारण वे अपने 'प्रिय' के वियोग में निरन्तर अश्रु बहाना चाहती हैं—

झरते नित लोचन मेरे हों

पीड़ा में पलकर ही शुद्धानुभूति सम्भव है जिसमें 'प्रिय' से मिलन हो सकता है। जिस प्रकार पाटल का कोमल पुष्प काँटों में ही विकसित होता है, उसी प्रकार शूलों रूपी कष्टों के मध्य ही साधक इस योग्य हो सकता है कि उसे आराध्य की सहानुभूति प्राप्त हो सके। यही कारण है कि साधिका को वियोग-ज्वाला शान्ति प्रदान करती है। 'ज्वाला' वस्तुतः ब्रह्म का ही रूप है, इस कारण उसकी कामना है—

नित ज्वाला रहने दो तिल तिल
अपनी ज्वाला में उर मेरा
इसकी विभूति में, फिर आकर
अपने पद-चिह्न बना जाना।

वस्तुतः पीड़ा, वेदना एवं विरह साधिका के चिन्तन, विचार और अनुभूति में एक प्रकार का जीवन-दर्शन बनकर आया है। साधना-पथ की समस्त बाधायें उसे 'प्रिय' हैं। इस कारण वह ज्वाला के देश की ओर प्रस्थान करना चाहती है, (जहाँ केवल अँगारे मात्र हैं) क्योंकि विरह ही उसका साध्य सा लक्षित होता है—

खोना पाना हुआ
जीत वे हारे ही हैं
प्रिय-पथ के यह शूल
मुझे अति प्यारे ही हैं।

जो 'प्यास' को ही जीवन समझती हो, वह तृप्ति में किस प्रकार जीवित रह सकती है—

प्यास ही जीवन, सकूँगी
तृप्ति में, मैं जी कहाँ?

सर्वात्मवाद से प्रेरित, वह सृष्टि के कण-कण में ईश्वर की सत्ता देखती है। इसी दृष्टिकोण के कारण सुख और दुख दोनों ही मधुर हैं—

मधुर मुझको हो गए
सब मधर प्रिय की भावना ले'

सुख और दुख दोनों ही जीवन के सत्य हैं, किन्तु उनका 'प्रिय' दुःख के रास्ते से ही आता है और उसे पीड़ा से ही कसकर पकड़ा जा सकता है। इसीलिए वह कहती है—

करुणामय को भाता है,
तम के परदों में आना
हे नभ की दीपावलियों,
तुम पलभर को बुझ जाना

साधिका की पीड़ा में प्रेम की मधुरता निहित है, इस कारण वह विरह में मिलन का अनुभव करती है। पीड़ा एवं विरह में मिलन के सूक्ष्म एवं रहस्यमय संकेत कवयित्री ने दिए हैं। साधना के चरण में वह अपने मन से प्रश्न करती है कि न जाने कौन उसकी कसक में निरन्तर अलक्षित भाव से माधुर्य का संचार करता है? यही जानने की उसकी अभिलाषा है—

पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?

ज्योंही 'निस्सीम प्रिय' उसके ससीम हृदय में आबद्ध हो जाता है, त्योंही विरह की रात मिलन सुख प्रदान कर नवीन प्रभात का सन्देश देने लगती है। रात और दिन साधारण जीवन के क्रम मात्र नहीं रह जाते, अपितु रात उसके प्रियतम के नयनों की श्याम पुतलियों के समान काली तथा दिन उसकी उज्जवल स्मिति के समान कान्तिमान हो जाता है—

मैं मिटी निस्सीम प्रिय में,
वह गया बँध लघु हृदय में,
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह

● ● ●

एक प्रिय-दृग-श्यामता सा,
दूसरा स्मित की विभा सा,
यह नहीं निशिदिन इन्हें
प्रिय का मधुर उपहार रे कह

रात एवं दिन जीवन के सब पक्ष परमात्मा के ही कारण है। परमात्मा ही सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। जब आत्मा पर माया का आवरण पड़ जाता है, तब वह इस सत्य को नहीं पहचान पाती। तपस्या के माध्यम से भौतिक सुखों के समाप्त हो जाने पर ससीम निस्सीम में मिल जाता जाता है। तब तक जीवन में सुख एवं भौतिकवाद है; तब तक आत्मा सर्वात्म के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार कभी नहीं कर सकती। पीड़ा में पलकर ही प्रिय से मिलन सम्भव है। साधिका ने भी इसी माध्यम से निर्वाण सुख को प्राप्त किया है। प्रिय दर्शन ने उसके अंधकारमय जीवन को उज्वलता से परिपूरित कर दिया—

पथ मेरा निर्वाण बन गया!
प्रति पथ शत वरदान बन गया,
आज थके चरणों ने सूने
तम में विद्युत-लोक बसाया,
बरसाती है रेणु चाँदनी
की यह मेरी धूमिल छाया,
प्रलय मेघ भी गले मोतियों,
का हिम तरल उफान बन गया।

प्रिय का स्पर्श ऐसी शक्ति है, जिसके सामने मृत्यु की समस्त भयंकरता समाप्त हो जाती है। प्राण 'मरण के दूत' को पाहुन के रूप में स्वीकार कर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं—

देते हो तुम फेर हास निज
करुणा जल कण मय कर
लौटाते हो अश्रु मुझे अपनी
स्मित के रंगों से भर
आज मरण का दूत तुम्हें छू
मेरा पाहुन प्राण बन गया
पथ मेरा निर्वाण बन गया।

इस प्रकार साधिका 'पीड़ा' से पहले समझौता करती है; क्योंकि वह प्रिय प्रदत्त है। तत्पश्चात् 'पीड़ा के ही माध्यम से वह 'प्रिय' को प्राप्त करना चाहती है। इस अवस्था में उसके लिए सुख दुख सब मधुर बन जाते हैं। किन्तु जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि उसका प्रिय केवल पीड़ा के ही माध्यम से पकड़ा जा सकता है; तो वह पीड़ा के ही मार्ग पर चलती है। पीड़ा एवं वेदना के मार्ग पर चलते चलते 'उसे' अपने सूक्ष्म प्रिय के दर्शन भी होने लगते हैं। किन्तु साधिका अब 'प्रिय' को प्राप्त कर सुख नहीं चाहती, उसमें भी पीड़ा ही ढूँढ़ना चाहती है। जो साध्य प्राप्ति का साधन मात्र था; उसी को आराध्य एवं साध्य मान लेना; तथा प्रिय में भी उसी की प्राप्ति की कामना करना साधिका का जीवन दर्शन है। यही कारण है कि वह अमर लोक की आकांक्षा नहीं करती; वह अपने पीड़ामय संसार में ही मग्न रहना चाहती है—

क्या अमरों का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार
रहने दो हे! देव अरे,
यह मेरा मिटने का अधिकार

अब 'प्रिय-पथ' के 'शूल' ही उन्हें प्रिय लगने लगते हैं। वे 'मिलन' का नाम भी लेना नहीं चाहतीं; विरह वेदना का आनन्द क्या कम है? जीवन की पूर्णता संयोग में नहीं, विरह में है। उनके लिए अतृप्ति ही विजय है, तृप्ति हार है तृप्ति से जीवन में निष्क्रियता आ जाती है। जब इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं; तो उनके प्रति विरक्ति हो जाती है। इसी कारण साधिका भगवान से प्रार्थना करती है कि कभी उसके लघु प्राणों में सन्तोष का कण मात्र भी व्याप्त न करना; क्योंकि वह वेदना में ही प्रसन्नता का अनुभव करती है—

चिर ध्येय यही जलने का
ठंडी विभूति बन जाना;
है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना
मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें
भरती आँसू के सागर।

बादल का सजल होना इसी में है कि सारा जल बरसा कर रीता हो जाए; सुख की पूर्णता इसी में है कि उससे मन फिर जाए . यही कारण है कि कामनाओं की चिर तृप्ति जीवन को निष्फल बना देती है।

वह अपने प्रियतम के माध्यम से तो सब कुछ देखना चाहती हैं; किन्तु प्रियतम को देखना नहीं चाहती। वह साधना करते करते समाप्त हो जाना चाहती है, पंथ की सीमा प्राप्त करना नहीं चाहती—

तुम अमर प्रतीक्षा हो, मैं
पग विरह-पथिक का धीमा
आते जाते मिट जाऊँ
पाऊँ न पंथ की सीमा

साधिका वियोग के समय को रोते-रोते काट देने की इच्छा रखती है। वह वियोग में हो रत रहना चाहती है; संयोग के समय छिप जाना चाहती है। वह अपने जीवन को चिर अतृप्तिमय बना लेना चाहती है। यही उसकी इच्छा है और इसी के प्रति उसकी ललक भी है—

तुम हो प्रभात की चितवन
मैं मधुर निशा बन आऊँ
काटूँ वियोग - पल रोते
संयोग समय छिप जाऊँ

आरम्भ में वह मिलन के ऐसे क्षणों के लिए लालायित होती है, जिनमें पीड़ा की मधुर कसक अन्तर्हित हो। बाद को जब उसे यह ज्ञान होता है कि इस प्रकार की इच्छा रखना भी तो एक प्रकार की तृष्णा ही है, तो वह कह उठती है—

पाने में तुमको खोऊँ
खोने में समझूँ पाना।

प्रकृति उसे यह बताती हुई लक्षित होती है कि अमरता जीवन का ह्रास है और मृत्यु जीवन का चरम विकास है। वह भी मिलन का नाम लेना नहीं चाहती, विरह में ही निमग्न रहना चाहती है—

शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला केवल अँधेरा
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।

किसी के आँसुओं के सदृश प्यार को कण कण में ढालकर तथा किसी का सुकुमार सपना पलकों में पालकर, जब साधिका एकाकी रूप से आसुओं के देश में धूलि भरे मार्ग पर चलने लगी तो ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मानों उसे चलते चलते गन्तव्य स्थल प्राप्त हो गया हो—

मरण का उत्सव अजर है
गीत जीवन का अमर है
मुखर कण का सङ्ग मेला
पर चला पंथी अकेला
मिल गया गन्तव्य, पग को कंटकों के वेष में।

मुरझाए सुमन, मूक तृण, बेसुध पिकी एवं चिर पिपासित चातकी सब मिलकर साधिका को इस रहस्य से अवगत कराना चाहते हैं कि खोज ही चिर प्राप्ति का वर है; साधना ही सुन्दर सिद्धि है, रुदन में सुख की कथा एवं विरह में मिलन निहित है। किन्तु साधिका का जीवन दर्शन तो भिन्न ही है। वह विरह के पंथ में आदि अन्त मानती ही नहीं है। उसे विरह का जगत् ही प्रिय है; मुक्ति से उसे कोई प्रयोजन नहीं है—

और कहेंगे मुक्ति कहानी
मैंने धूलि व्यथा भर जानी
हर कण को छू कर प्राण
पुलक बन्धन में बँध जाता है।
मिलन उत्सव बन क्षण आता है!
मुझे प्रिय! जग, अपना भाता है।
मुझे प्रिय! पथ, अपना भाता है!

जब उसे पीड़ा-पथ ही प्रिय है तब वह यह क्यों पूछे कि साधना-पथ कितना शेष और है? मैं क्यों पूछूँ यह विरह निशा कितनी बीती क्या शेष रही?

वह तो मिटने में ही निर्माण का रूप मानती है 'मिटने का कर निर्माण चली'। 'पीड़ा' के माध्यम से ढूढे हुए प्रिय में भी 'पीड़ा' ही ढूँढना चाहती है—

तुमको ढूँढ़ा पीड़ा में
तुममें ढूढूँगी पीड़ा

इस प्रकार चिर अतृप्ति की साधना में लीन रहने वाली साधिका का भाव ही महादेवी जी का काव्य है।

रहस्यवादिनी कवयित्री महादेवी वर्मा

सिंधु ज्ञानेश्वर भिंगारकर

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में जब महादेवी जी का अविर्भाव हुआ तब कविता के प्राँगण में नवयुग के स्वर्ण चरण पदन्यास कर रहे थे। महादेवी ने अपनी कविता के हीरक हारों से उसे अलंकृत किया। आधुनिक काव्यकला का साजश्रृंगार करने का बहुत सा श्रेय महादेवी को ही देना पड़ेगा।

महाबीर प्रसाद द्विवेदी-युग की प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दी कविता के क्षेत्र में छायावादी तथा रहस्यवादी कविताओं का निर्माण होने लगा था। इस नव सृजन के प्रेरक कवियों में महादेवी की गणना की जाती है। देश की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियां ही ऐसी थीं कि कवियों की वृत्ति अन्तर्मुखी हुये बिना न रहतीं। राजनैतिक विवशता तथा विफलता के कारण अवसाद तथा निराशा की निशा सघन होने लगी थी। इस तरह की बाह्य परिस्थिति के होते हुये हमारे सौभाग्य से, पाश्चात्य साहित्य के परिशीलन से तथा वेदान्त, उपनिषदों के ज्ञानामृत सिंचन से भक्ति की भावभूमि पर कवि कल्पना की रजनीगंधा खिलने लगी। अन्तर्मुख होकर कवि ("सौंदर्य की" साधना में लीन हो गये।) सृष्टि के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक हुए।

सृष्टि निर्माण के प्रति तथा निर्माता के प्रति मनुष्य की जिज्ञासु वृत्ति सृष्टि के प्रारम्भ से ही बनी हुई है। सृष्टि संचलक के साथ कभी कभी कुछ तादात्म्य के क्षणों का उसने अनुभव किया है। रहस्यवाद के बीज हमें इसी में मिल जाते हैं।

आज तक विश्व के तरह-तरह के साहित्य में रहस्यवाद की अनेक प्रकार की परिभाषायें हुई हैं और आगे भी होती रहेंगी क्योंकि उस असीम अनन्त के अन्वेषण की जिज्ञासा-वृत्ति मनुष्य में अमिट रहेगी भले ही 'रहस्यवाद' अपने नामाभिधान में परिवर्तन कर ले।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने अपनी परिभाषा में रहस्यवाद के दार्शनिक पक्ष का उद्घाटन किया है। उनके अनुसार "साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।"

कबीर के रहस्यवाद को स्पष्ट करते समय डा० रामकुमार वर्मा जी लिखते हैं, "रहस्यवाद आत्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है, और वह सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता है।"

चरम अव्यक्त सत्ता के साथ रागात्मक सम्बन्धों के भावों की अभिव्यक्ति को बाबू गुलाबराय ने विशेष महत्व दिया है, "रहस्यवाद उस भाव प्रधान मनोदशा की शाब्दिक अभिव्यक्ति को कहते हैं जो व्यक्ति और विश्व के मूल में स्थित चरम-सत्ता के अव्यक्त या व्यक्त रूप के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने पर या करने की इच्छा से प्राप्त होती है।"

रहस्यवाद की परिभाषा करते समय गागर में सागर भरने का प्रयत्न विश्वम्भर मानव जी ने किया है। उनकी छोटी

परन्तु अर्थ पूर्ण परिभाषा रहस्यवाद का स्वरूप संक्षेप में अच्छी तरह से स्पष्ट करती है। उनकी सार-गर्भित परिभाषा है—"आत्मा और ब्रह्म की पारस्परिक प्रणयानुभूति को रहस्यवाद कहते हैं।"

रहस्यवाद के अग्रगण्य कवि जयशंकर प्रसाद तथा महादेवी वर्मा जी ने की कीहुई परिभाषायें रहस्यवाद पर प्रकाश डालने में अधिक सहायक होंगी। जयशंकर प्रसाद जी की दृष्टि से "काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की मुख्य धारा का नाम रहस्यवाद है।" महादेवी जी भी अखण्ड चेतन से हार्दिक तादात्म्य को विशेष महत्त्व देती हैं।" अखंड चेतन से तादात्म्य के रूप केवल बौद्धिक भी हो सकती है पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का ज्ञेय ही हृदय का प्रेय हो जाता है। इस प्रकार रहस्यवादी का आत्मसमर्पण बुद्धि की सूक्ष्म व्यापकता से सौंदर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है अतः उसमें सत् और चित् की एकता में आनन्द सहज सम्भव रहेगा।"

हिन्दी के इन महामान्य आलोचकों तथा कवियों की रहस्यवाद की परिभाषा से रहस्यवाद का स्वरूप स्पष्ट और विशद हो जाता है। सृष्टि के प्रारम्भ से मनुष्य उस अनन्त अलौकिक शक्ति के प्रति जिज्ञासा की दृष्टि से देखता आया है। सृष्टि कब और कैसे निर्मित हुई, उसके निर्माण के पहले क्या था, वह स्वयं कहां से आया और कहाँ जाने वाला है इन सभी बातों के प्रति उसका कुतूहल सजग हुआ। सृष्टि के सूत्रधार को जानने का औत्सुक्य चरमसीमा पर पहुंचा और बुद्धि तथा हृदय दोनों अपनी भरसक शक्ति तथा वृत्तियाँ लगाकर उसी की ओर उन्मुख हुईं। दार्शनिकों ने बुद्धि के माध्यम से तथा कवियों ने हृदय की रागात्मिका वृत्ति से उस असीम अनन्त से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया।

असीम अनंत सत्ता के प्रति प्रणय निवेदन रहस्यवाद की सर्वप्रथम विशेषता है। रहस्यवादी उस परमात्म तत्व को अपना प्रिय मानते हैं, वही उनका अराध्य भी है। दूसरी महत्व की बात है प्रणयानुभूति। परमात्म तत्व के साथ वास्तव में माता, पिता, सखा बंधु आदि अनेक संबंधों का आरोप किया जा सकता है परन्तु हृदय की रागात्मिका वृत्तिका सर्वतोमुखी अविष्कार तथा लौकिक एकात्मकता का अनुभव जैसेप्रिय कर प्रेयसी के संबंध में हो जाता है वैसे अन्यत्र संभव नहीं। हृदय की रागात्मिका वृत्ति का सर्वतोमुखी अविष्कार रहस्यवादी चाहते हैं, इसीलिए वे उस अनंत के साथ रागात्मिक वृत्तिका प्रियतम प्रेयसीका संबंध जोड़ते हैं। प्रणय सूत्र की मधुरिमा रहस्यवाद में पायी जाती है। और यहीं प्रणय आत्मा को ब्रह्म के इतने समीप ले जाता है कि अंत में दोनों में कुछ अंतर ही नहीं रहता, प्रेमी प्रिय में खो जाता है, दोनों में अद्वैत की स्थापना हो जाती है।

रहस्यवाद में प्रेम की विशेष महत्ता मानी जाती है, इस प्रेम के लिए ज्ञान की आवश्यकता नहीं। प्रेम की पूर्णता के लिए, अद्वैत स्थापना के लिए संपूर्ण आत्म समर्पण की नितांत आवश्यकता है। ज्ञानी, भक्त तथा रहस्यवादी संपूर्ण आत्म समर्पण करने पर ही अपनी मंजिल पर पहुंच सकते हैं उस अनंत को प्रणय निवेदन करते-करते संपूर्ण आत्म समर्पण करना रहस्यवादी का चरम लक्ष्य है। रहस्यवाद को और स्पष्ट करने के लिए रामकुमार वर्मा जी लिखते है, "परमात्मा को खोजने के लिए आत्मा दिगकाल की सीमा पार करके सारे विश्व का सफर करती है, "तथा दोनों में होने वाली भावनाओं के बारे में लिखते हैं, "आत्मा में उसके आराध्य के प्रति आत्मसमर्पण की भावना हो, आत्मा का परमात्मा के प्रति निश्चल प्रेम संबंध हो, आत्मा को अपने आराध्य से मिलने की भावना का स्मरण रहे, उन दोनों का ऐक्य हो, एकीकरण नहीं।

इन सब बातों से रहस्यवादी का व्यक्तित्व प्रेम से ओत-प्रोत हो जाता है। अनंत के इस अलौकिक प्रेम में न किसी प्रदर्शन की आवश्यकता है न उसमें "अहम्" के लिए कोई स्थान है। "अहम्" धुले बिना संपूर्ण आत्मसमर्पण संभव नहीं। कबीर ने कहा है।

'जब "मैं" था तो हरि नहीं
अब हरि है "मैं" नाँहीं।"

अत्यंत कोमल तथा विनम्र भाव से ही प्रियतम का मिलन हो सकता है। प्रेम में हृदय के टुकड़े टुकड़े करने की आवश्यकता है क्योंकि प्रेम के एक ही तरल और सूक्ष्म माध्यम से रहस्यवादी अपने प्रिय के पास पहुंच सकता है। प्रिय

को तुष्ट करने के लिए उसके पास दूसरा साधन ही क्या है ?

इस अलौकिक प्रेम पंथ की विशेषता यह है कि यह पंथ एकाकी पंथ है। इस पंथ पर से साधक को अकेला चलना पड़ेगा। अध्यात्म का मार्ग अकेले का मार्ग है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी अपनी कविता में लिखा है—

"एकला चलो रे, एकला चलो।"

भारतीय साहित्य के लिए रहस्यवाद की यह अभिव्यंजना कोई नई अनुभूति नहीं है। हमारे प्राचीन साहित्य में उसकी उत्कृष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। आधुनिक रहस्यवादी काव्य धारा के अंतर्गत जिस दर्शन की, जिस आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है वह तो हमारी पुरातन अनमोल धरोहर है। उपनिषदों में हमें रहस्यवाद का मूल उद्गम स्थान मिल जाता है। रहस्यवाद की अनुभूति की इतनी रमणीय और सशक्त अभिव्यक्ति विश्व के साहित्य में अन्यत्र शायद ही मिलेगी। जगत् के उत्पत्ति के कारणों का अन्वेषण करने वाले मनीषी ऋषियों को "एकोऽहं बहुस्याम" तत्त्व का रहस्य ज्ञात हुआ। उस विराट तत्त्व की अनुभूति अनिर्वचनीय थी। योग, साधना के द्वारा सर्वातीत चरमसत्ता का साक्षात्कार होने पर वाणी के द्वारा उसका वर्णन करना कठिन था। इस साक्षात्कार में अद्वैत की अनुभूति उनकी चरम उपलब्धि थी। योग, तपस्या, ज्ञान, साधना आदि के द्वारा जिस आत्म तत्त्व का उन्हें अनुभव हुआ उसको उन्होंने "पराविद्या" कहा है। उपनिषदों में वर्णित रहस्यवाद में साधनावस्था तथा सिद्धावस्था दोनों को समान महत्त्व दिया है।

रहस्यवाद का वर्गीकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने इस प्रकार किया है—

रहस्यवाद
- साधनात्मक रहस्यवाद
- भावात्मक रहस्यवाद

साधनात्मक रहस्यवाद में साधना और उपासना प्रमुख बात है। हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादी कवियों की परंपरा साधनात्मक रहस्यवादी थी। उनके रहस्यवाद की दृढ़ आध्यात्मिक नीव थी। कबीर, जायसी, दादू रैदास आदि कवि साधनात्मक रहस्यवादी थे।

आधुनिक रहस्यवाद भावात्मक रहस्यवाद है। प्रेम ही इन कवियों का सर्वस्व है, सर्वोत्कृष्ट साधन है। काव्यकला की दृष्टि से यह रहस्यवाद अत्यन्त सरस तथा मर्मस्पर्शी है पर इसके अध्यात्मिक पक्ष के बारे में शंका उठाई जाती है। इस शाखा के कवि हैं, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, निराला, सुमित्रानन्दन पंत आदि।

कबीर हिन्दी साहित्य के सर्व प्रथम रहस्यवादी कवि हैं। कबीर का रहस्यवाद हठयोग की साधना पर अवलंबित है। कबीर के प्रियतम निर्गुण निराकार है। वे अपने को इस निर्गुण "राम की बहुरिया" मानते हैं। कबीर के काव्य में समाज की अंधरूढ़ियों पर जितनी कटुता से प्रहार मिलते हैं, उतने ही प्रियतम की लाली में रंगे हुए सरस गीत भी मिलते हैं। अद्वैतवाद में कबीर विश्वास रखते हैं। वे कहते हैं—

'लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी ह्वय गई लाल।"

उस परमसत्ता के विरह में वे जलते हैं तो उसके मिलन उल्हास में गा उठते हैं—

"दुलहिन गावहु मंगलाचार"

साधनात्मक रहस्यवाद के दूसरे महान् साधक हैं मलिक मुहम्मद जायसी। उनका रहस्यवाद सूफी साधना में पगा हुआ है। सूफी साधना में निम्नलिखित अवस्थायें मानी जाती जाती हैं—(१) शरीअत—साधक ईश्वरोन्मुख हो जाता है यह अवस्था ब्रह्म जिज्ञासु की है (२) तरीकत—साधक निरंतर साधना में लीन हो जाता। (३) मारिफत—उस दिव्य सौंदर्य की झाँकी मिलने लगती है। (४) हकीकत यह पूर्णता की अवस्था है। प्रिय का मिलन हो जाता है। सूफी साधना में परमात्मा को प्रेयसी और आत्मा को प्रियतम माना जाता है, रतिभाव आत्मोपलाब्धि का मुख्य साधन माना जाता है। सूफी साधक चरमावस्था में भी ईश्वर और जीव का भेद बनाये रखना चाहता है। सूफी साधक जायसी ने अपनी रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति प्रबन्ध काव्य के द्वारा की है। अन्योक्ति पद्धति से रूपक बांधकर

प्रबंध कथा के द्वारा जायसी ने अपने को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

कबीर, जायसी के सिवा रैदास, दादू, नानक आदि संतों की वाणी से भी रहस्यवाद का प्रस्फुटन हुआ है।

पाश्चात्य दर्शन तथा साहित्य में भी रहस्यवाद की अभिव्यक्ति मिल जाती है। रहस्यवाद के अर्थ में Mysticism शब्द वे उपयोग में लाते हैं। इस शब्द में होने वाला My मूल धातु का अर्थ है चुप रहना। यहाँ उस शब्द का अभिप्राय है आत्मा और परमात्मा की प्रणयानुभूति की अनिर्वचनीयता। पाश्चात्य रहस्यवादी ईसाई संतों ने रहस्यवाद की पांच अवस्थायें मानी हैं। (१) जागरण की अवस्था (स्टेट आफ दी अवेकनिंग) (२) परिष्करण (प्युरिफिकेशन आफ दि सोल) (३) अंशानुभूति (इल्यूमिनेशन) (४) विघ्नों की अवस्था (डार्क नाइट आफ दि सोल) (५) मिलन (युनिटिव्ह स्टेट)।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद की जो अभिव्यंजना हुई है उसपर वेदान्त उपनिषदों का, कबीर जायसी का, रहस्यवादी पाश्चात्य ईसाई साधकों का तथा कवींद्र रवीन्द्र के रहस्यवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से आधुनिक रहस्यवाद भारतीय दार्शनिक विचार धारा, सूफीवाद, पाश्चात्य मिस्टीसिज्म आदि के अद्भुत मिश्रण से अलौकिक से लौकिक का प्रणय निवेदन है। परन्तु इन सब प्रभावों को मान्य करते हुये भी कहना पड़ता है कि प्राचीन रहस्यवादियों के जैसे आधुनिक रहस्यवादियों की परंपरा निर्माण नहीं हुई। प्रत्येक रहस्यवादी अपनी अनुभूति की पृथक्, स्वतंत्र तथा स्वच्छंद अभिव्यंजना करता है।

प्राचीन रहस्यवादी कवियों ने साधना के द्वारा अपने प्रेय को प्राप्त किया था, आधुनिक रहस्यवादियों के काव्य में वैसी साधना का अभाव है—यह आक्षेप किया जाता है। परन्तु आधुनिक रहस्यवाद साधनापर अवलंबित न होकर भावना पर अवलंबित है। केवल भावनामूला रहस्य की वृत्ति काव्य के सत्य के अंतर्गत अभिव्यंजित की जाती है। प्राचीन रहस्यवाद और आधुनिक रहस्यवाद में तुलना करते हुए 'सांध्यगीत' की प्रस्तावना में स्वयं महादेवी जी लिखती हैं,

"प्राचीन कालके दर्शन में रहस्यवाद का अंकुर मिलता अवश्य है परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिए उसमें स्थान कहाँ? आज गीत में हम जिस नये रहस्यवाद के रूप को ग्रहण कर रहे हैं वह प्राचीन सब की विशेषताओं से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न हैं। उसने पराविद्या की अपार्थिवता ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दांपत्य भाव-सूत्र से बांधकर एक निराले स्नेह संबंध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलंबन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।"

महादेवी के इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक रहस्यवादी ब्रह्म के रागात्मक रूप के आराधक हैं। आज का रहस्यवाद ब्रह्म से प्रणय व्यापार है। उसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं—(१) कवि अलौकिक शक्ति के प्रति आत्म निवेदन करता है २) प्राचीन साधनात्मक रहस्यवादियों ने अनंत के सत् और चित् रूप का साक्षात्कार किया तो आधुनिक रहस्यवादी उस "चिरसुन्दर" की उपासना में लीन हैं। प्रकृति की सुन्दरता में इन रहस्यवादियों को अपने प्रियतम की झांकी मिलती है। (३) आधुनिक रहस्यवादियों का आराध्य अनंत शक्ति, सौंदर्य प्रेम का अजस्र स्रोत है। (४) इन कवियों ने एक अनोखी तथा अभिनव अभिव्यंजना प्रणालीका आश्रय लिया है। अपनी सांकेतिक तथा सूक्ष्म अभिव्यंजना द्वारा इन कवियों ने वासनाविहीन और पावन प्रेम का प्रकाशन किया है जिससे पाठक का मन शांति, आलोक और माधुर्य से भर जाता है।

आधुनिक रहस्यवाद के क्षेत्र में महादेवी ने जो कार्य किया है शायद ही दूसरे किसी कवि ने किया हो। अन्यान्य कवि इस मार्ग पर आये और आगे उन्होंने दूसरा पथ पकड़ लिया। महादेवी अकेली ऐसी कवयित्री है, जिसने अपने इस अलौकिक अनंत प्रियतम के प्रति निष्ठा बनायी रखी। अपने कविता संग्रह के लिए महादेवी ने जो नाम दिये हैं वे भी उनके मन की वृत्तियों के प्रतीक हैं। रहस्य पथ पर कवयित्री भी एक-एक सोपान आगे बढ़ती है काव्य संग्रहों के नाम उन सोपानों के ही निदर्शक हैं। "नीहार" मन के कुहरे का प्रतीक है। कुहरे का वातावरण अवसाद का

वातावरण होता है। महादेवी का प्रियतम अनंत, असीम होने से मन की प्राथमिक अवस्था अस्पष्ट तथा धुंधली है। मन के भावों में स्पष्टता से अभिव्यक्ति की सामर्थ्य नहीं है। विषादमय वातावरण में अज्ञात आराध्य की उपासना नीहार के गीतों में दृष्टिगोचर होती हैं। सूरज की सुनहली किरणों के आगमन से 'नीहार' घुल जाता है। सूर्य के रश्मि नीहार को चीरकर प्रसन्नता तथा उत्साह के वातावरण की सृष्टि करते हैं। 'रश्मि' काव्य संग्रह में महादेवी के मन की प्रसन्नता की अभिव्यंजना है। मधुर वेदना को सहने की प्रसन्नता इन गीतों में पिरोयी है। रश्मि के स्पर्श से कमल खिल उठता है। महादेवी के हृदय कमल को भी कनक रश्मि के स्पर्श की अनुभूति होकर उसके भावों की पंखुड़ियाँ खुल गयी हैं। जैसे-जैसे दिन चढ़ता जाता है, कमलिनी को ताप सहना पड़ता है। महादेवी का हृदय कमल भी विरह का प्रखर ताप उत्साह से प्रसन्नता से सह रहा है। 'नीरजा' के गीतों में विरह के ताप की महिमा का, विरह वेदना की पीड़ा का वर्णन मिल जाता है। संध्या की छाया ताप को कम करके एक प्रकार की स्निग्धता लाती है। सांध्य गीतों में साधिका दीर्घ पथ पार करके विश्राम स्थान के नजदीक आयी हुई दीखती है। दीप शिखा का "दीप" आत्मा का प्रतीक है। उस दीप शिखा को निष्कंप भाव से विरह में जलने के लिए महादेवी ने प्रोत्साहित किया है जब तक मिलन का प्रभात दीख पड़े।

महादेवी ने गीतों में अपने आराध्य को प्रियतम, देव, अनन्त आदि विशेषणों से संबोधित किया है। उन्होंने जिस रहस्यवाद की सृष्टि की उसमें प्रेम और पीड़ा का साम्राज्य फैला हुआ है, वेदना का सागर लहराता है। अपने प्रियतम के दर्शन के लिए सृष्टि का कण-कण ढूँढ़ने के लिए वह तैयार है। व्यथा और करुणा की पीठिका पर ही उनके गीतों का निर्माण हुआ है। उनके प्रियतम करुणामय होने के साथ साथ अनंत सौंदर्यशाली भी हैं। उस चिर सुन्दर के लिए महादेवी का हृदय व्याकुल हो जाता है प्रकृति में इस चिर सुन्दर के रूप की झलक उनको प्राप्त हो जाती है।

रहस्यवादी की प्रारंभिक अवस्था कुतूहल की होती है। सृष्टि क्या है उसकी रचना करने वाला कौन हैं? सृष्टि निर्माण के पहले क्या था? जीव कहाँ से आया? विश्व के पीछे कौन सी चित् शक्ति काम करती है आदि अनेक प्रश्न उसके सामने आ जाते हैं, रहस्यवादी उनका विश्लेषण करने का प्रयत्न करता है। महादेवी के सामने भी प्रश्न है।

किन उपकरणों का दीपक
किसका जलता है तेल
किसकी वर्ति कौन करता
इसका ज्वाला से मेल?

विश्व के निर्माण का, उसके रहस्य का पता महादेवी को दार्शनिकों ने बताया। सृष्टि निर्माण के पहले तो कुछ था ही नही, एकाकार ब्रह्म को सूनेपन का भान हुआ तब विश्व प्रतिमा का निर्माण हुआ।

हुआ त्यों सूनेपन का भाव
प्रथम किसके उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अनजान
विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण।

अपनी कल्पना को और स्पष्ट करने के लिए कवयित्री ने उपनिषद् में आया हुआ मकड़ी के जाल का उदाहरण दिया है—

"स्वर्ण-लतासी कब सुकुमार
हुई उसमें इच्छा साकार
उगल जिसने तिन रंगे तार
बुन लिया अपना ही संसार।"

महादेवी को उस ब्रह्म की आराधना के पथ पर एक और साधिका मिल जाती है वह है प्रकृति। 'प्रकृति भी ब्रह्म की प्रेमिका है। महादेवी प्रकृति के कण-कण में उस परमसत्ता की झाँकी देखती है। कलियाँ उनको कहती है "मैंने सीखा उनकी आँखों से सस्मित मौन।" ऊषा के लाल कपोल अनोखा रहस्य बता देते हैं।"

घूँघट पट से झाँक सुनाते
ऊषा के आरक्त कपोल
जिसकी चाह तुम्हें हैं उसने
छिड़की मुझपर लाली घोल।"

सृष्टि सौंदर्य के दर्शन से उसका निर्माण और संचलन करने वाली महाशक्ति के प्रति आस्था निर्माण हो जाती है और

इस आस्था से अनंत शक्ति का आभास व्यापक प्रकृति में कहीं कभी मिल जाता है, तो इस आभास से आस्था और भी दृढ़ हो जाती है। फूलों के हास्य में महादेवी प्रिय का हास्य देखती हैं।

कैसे कहती हो सपना है
अलि, उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।"

रहस्यवाद में आत्मा परमात्मा से अपना अनोखा विशिष्ट सम्बन्ध स्थापित करती है। रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा की प्रणयानुभूति है, जिससे साधना का पथ प्रणय का पथ है और यह प्रणय भावना अलौकिक के प्रति है। महादेवी जी ने अपने को उस चिरन्तन प्रिय की सुहागिनी माना है।

"प्रिय चिरन्तन है सजनी,
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।"

उस अमर चिरन्तन प्रिय को पाकर साधिका का सुहाग भी अमर हो गया है, उस चिरन्तन से प्रेम की महिमा इतनी है कि साधिका के पद स्पर्श से ही कांटे, प्रस्तर तक रसमय हो जाते हैं। समस्त विश्व का सुख दुःख प्रिय के कारण मधुर बन गया है।

"सखि मैं हूं अमर सुहाग भरी
प्रिय के अनन्त सुहाग भरी।"

यद्यपि महादेवी जी का प्रियतम अलौकिक है पर उसके प्रेम का प्रकटीकरण तो लौकिक संकेतों के द्वारा ही हो जायगा। सृष्टि के कण कण में परमात्मा की झाँकिया दीखने लगती हैं तो प्रिय के दर्शन की लालसा तीव्र हो जाती है। एक बार भी वह आ गए तो? जीवन सोना बन जायगा।

"जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग।"

प्रिय के मिलन की उत्सुकता कबीर में भी पाई जाती है, वे कहते हैं।

"वे दिन कब आवेंगे भाई
जा कारण हम देह धरी हैं,
मिलिबौ अङ्ग लगाई।"

प्रणय के पथ पर जैसे जैसे महादेवी आगे चरण बढ़ाती है वैसे वैसे प्रिय के रूप की आभा उसे प्रत्यक्ष होने लगती है। प्रियतम के उस रूप का वर्णन करने का प्रयत्न महादेवी ने किया है परन्तु निर्गुण, निराकार, असीम, अनन्त प्रिय के रूप का वर्णन भी क्या करे? दर्शन तो अभी उसने दिया नहीं। उसके अमिताभ रूप की झांकी प्रकाश किरणों द्वारा ही मिली है। ब्रह्म प्रत्यक्ष दर्शन का विषय भी नहीं है अतः उसके रूप के वर्णन के सम्बन्धों में साधक प्रायः प्रकाश और नाद का वर्णन करते हैं। महादेवी अपने अनन्त प्रकाशमय प्रियतम का वर्णन करती हैं—

"तेरी आभा का कण नभ को
देता अगणित दीपक दान
दिन को कनक राशि पहनाता
विधु को चाँदी का परिधान।"

उस अनन्त प्रकाशमय प्रियतम के पदों के नख की आभा हीरक-राशि को लजा देती है, जैसे चरणों पर महादेवी ने अपने आँसू बहाये हैं।

दूसरा अनुभव है नाद का मुरली की तान सुनाकर वह चला जाता है। सङ्गीत के सम्मोहन से वह महादेवी को अपनी ओर आकर्षित करता है। सुरभि के मिस से उसके स्पर्श की अनुभूतियाँ भी महादेवी को आ गई हैं।

"सुरभि बन जो थपकियां देता मुझे
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है?

रहस्यवादी अध्यात्मवादी होता है। जन्म जन्माँतर पर उसका विश्वास है। उन बीते दिनों की याद साधिका को आ रही है जब निसर्ग के सुख दुःख में वह सहभागिनी थी, उन्हीं मधुदिनों में प्रियतम का मिलन हुआ था। आज खोई हुई स्मृतियां धीरे-धीरे जाग्रत होने लगी हैं। मिलन की वह प्रभात आज याद आ रही है, अतीत की मधुर स्मृतियाँ फिर आँखों के सामने घूम रही हैं। प्रियतम सूनेपन के कूल पर मिले थे। दोनों में कुछ आदान-प्रदान हुआ था—

"मुझे उसकी धुँधली याद
बैठ जिस सूनेपन के कूल
मुझे तुमने दी जीवन बीन
प्रेम शतदल का मैंने फूल।"

महादेवी ने अपने प्रियतम को प्रेम कमल दिया, प्रियतम ने भी एक अनोखी भेंट महादेवी को दी वह है।

"जीवन-वीणा"

ब्रह्मा की सृष्टि निर्माण का इतना भावमय, रङ्गीन और रसीला चित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

मधुमय गान सिखाने के लिए प्रियतम आ जाते हैं पर संगीत सिखाते-सिखाते प्रणय की व्यथा का बाण चुभोकर एक पल में वे अन्तर्धान हो जाते हैं, "हृदय में बेध व्यथा का बाण हुये फिर पल में अन्तर्धान।" ऐसे उस प्रियतम को मिले हुए कितने ही युग बीत गए हैं, कितने ही दीप निर्वाण हो चुके हैं।

भक्ति का क्षेत्र हो या साधना का ज्ञान का क्षेत्र हो या रहस्य का सभी के लिए संपूर्ण आत्म समर्पण की आवश्यकता है। साधिका महादेवी के कान में तो किसी ने मधुर स्वर में समर्पण का महामन्त्र दिया। वह महामन्त्र है—

"तरी को ले जाओ मंझधार
डूबकर हो जाओगे पार
विसर्जन ही कर्णाधार
वही पहुँचा देगा उस पार।"

संपूर्ण आत्म समर्पण, आत्मविसर्जन करके डुबकी लगाने से हो उस पार पहुंच सकते हैं। कबीर ने भी कहा है।

जो डूबा तिन पाइया, गहरे पानी बैठ
जो बौरा डूबनडरा रहा किनारे बैठ।"

दीपशिखा की प्रस्तावना में महादेवी ने लिखा है, "अनेक युगों से रहस्यात्मक कृतियों में अखण्ड और व्यापक चेतन के प्रति कवि के आत्म समर्पण की ही अभिव्यक्ति हुई है।"

विरह वे प्रेम को नया जीवन देता है। विरह के ताप में जल कर ही तो प्रेम के कंचन की परीक्षा होती है। रहस्यवाद में प्रिय अलौकिक है तो उनका विरह भी अलौकिक है। प्रियतम अलक्ष्य और दुष्प्राप्य होने से तो मिलन के अवसर बहुत ही कम आ जाते हैं, बाकी सारा विरह ही विरह है। यहाँ जीवन का प्रारम्भ ही विरह से होता है "विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।" महादेवी का बहुतांश काव्य विरह से आप्लावित हैं। महादेवी के गान गीले हैं, अश्रु से अभिषिक्त हैं।

अपने प्रियतम से मिलने को प्रेयसी अत्यन्त अधीर है और ये अनन्त प्रियतम "प्रेम नदी के नीरा" कब मिलेंगे क्या पता? प्रेयसी ने इसी से शृंगार रच रखा है। अपनी सखि से अशोक के अरुण राग से चरण रञ्जित करने को वह कहती है, रजनी गंधा का पराग उसको सजाने के हेतु लाने के लिए कहती है, पाटल पुष्पों के सुरभित रंगों से उसके उज्वल दुकूल रंगाने को कहती है, रजनी से अंजन मांगकर अलसित नयनों की शोभा बढ़ाना चाहती है। जिस तरह का अनुपम शृंगार करके वह अभिसार के लिए निकली है। पर यह शृंगार लौकिक शृंगार है और मिलना अलौकिक से है। स्वयं महादेवी ने ही कहा है कि "अलौकिक को समझने के लिए लौकिक की आवश्यकता है।" पर महादेवी जैसी अभिसारिका इस शृंगार से संतुष्ट कैसे होगी? उन्होंने अपना अनोखा शृंगार रच रखा है—

"शशि से दर्पण में देख देख
मैंने सुलझाये तिमिर केश
गूँथे चुन तारक पारिजात
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष
क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृङ्गार नहीं।"

प्रियतम बड़े निष्ठुर हैं। नववधु लाज के मारे अभी बोलने भी नहीं पाई थी कि उसका त्याग करके चले गए हैं, जाते-जाते साम्राज्य उसे दे दिया है पीड़ा का।

इन ललचाई पलकों पर
पहरा था जब व्रीडाका
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीडा का

प्रियतम को पत्र लिखना या संदेश भेजना ही विरह में सांत्वनाका अनुपम उपाय है। पर रहस्यवादी के भाग्य में

वह भी बदा नहीं। प्रियतम निर्गुण निराकार है, अनन्त असीम हैं, पत्र लिखकर सन्देश भेजना है तो कहाँ भेजे? कैसे सन्देश के द्वारा प्रेयसी के विरह की जलन का पता उन्हें लगा दे? सन्देश तो तैयार है—

कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती?
दृगजल सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरते तारक द्वय
पल पल के उजले पृष्ठों पर
सुधि से लिख श्वासों से अक्षर

प्रेम का व्रत वैसे ही असिधारा व्रत है, तिस पर ये प्रियतम अलौकिक हैं तो कठिनाइयों का कहना ही क्या? यहां विरह अक्षय है और मार्ग बहुत लम्बा है। महादेवी यह जानती हैं, "पाथेय मुझे सुधि मधुर एक है विरह पथ सूना अपार।" फिर भी दृढ़ विश्वास से वह उसी पथ पर आगे बढ़ेगी, "पन्थ होने दो अपिरिचित मार्ग होने दो अकेला और होंगे चरण हारे।"

कहने को तो कह दिया कि वह चलती रहेगी पर पथ इतना लम्बा और सूना लग रहा है कि कभी समाप्त होगा या नहीं? और मार्ग पर अकेले चलना है। विघ्न बाधाओं से जूझना है। इसी से समय आता है कि निराशा की सघन घटायें मानस पर गहराने लगती है जो वरदान मिला था वह अभिशाप हो गया है।

विरह का तम हो गया अपार
मुझे अब वह आदान प्रदान
बन गया है देखो अभिशाप
जिसे तुम कहते थे वरदान।

सूनापन के कूल पर जो आदान प्रदान हुआ था, प्रिय ने जीवन-बीन दी थी, वह अब अभिशाप बन गया है। प्रिय की दी हुई चीजें विरह में हृदय को और भी जलाती है। यह विरह कब समाप्त होगा? प्रिय कब मिलेंगे? कहीं ऐसा न हो कि वे बहुत देरी से आए प्रियतम मिलने की व्याकुलता अब सही नहीं जातीं।

प्रतीक्षा में मतवाले कौन?
उड़ेंगे जब सौरभ के साथ
हृदय होगा नीरव आह्वान
मिलोगे क्या तब हे अज्ञान?

प्रिय की राह देखते-देखते मीरा भी ऐसी ही थकी थी। प्रिय का नाम रटते-रटते जिह्वा में छाले पड़े हैं, प्रिय का पथ निहारते-निहारते आँखों में झाँई पड़ गयी है, मीरा आर्द्रता से पुकारती है कि हे प्रियतम, तुम कब मिलोगे? विरह वेदना से व्याकुल विह्वल कबीर कहते हैं कि यह वेदना अब मुझसे सही नहीं जाती। विरह में आठों पहर जलने की अपेक्षा मुझे मौत क्यों नहीं देते?

"कै विरहनि कूँ मीच दै, कै आपा दिखलाई
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाई।"

महादेवी भी विरह के गीत गाते गाते थक गई है। प्रियतम से वह विनय करती हैं—

"नहीं अब गाया जाता देव,
थकी अंगुली, है ढीले तार।
विश्व वीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार।"

परन्तु पीड़ा सहते-सहते वही मधुमय बन गयी है। उस मधुमय न्यास को साधिका अपने प्राणों में छिपाना चाहती है, अब आँसू ही उसका शृंगार है उसका मोम का हृदय अंगारों में तपने के लिए मचल उठा है। विरह में जलने में ही सुख मिलने लगा है "जलना ही प्रकाश उसमें सुख।" अपना सर्वस्व वह दीवानी चोटों में छिपाना चाहती हैं "मेरा सर्वस्व वह दीवानी चोटों में।"

अब तक महादेवी प्रियतम को पीड़ा में ढूँढती थी, अब पीड़ा महादेवी को इतनी प्रिय हुई है कि प्रियतम में भी पीड़ा ढूँढना चाहती है। पीड़ा के कारण ही तो प्रेम की महिमा बढ़ गयी, उसी महिमा से पीड़ा सहने वाली का गौरव भी बढ़ गया है।

"लघु प्राणों के कोने में,
खोई असीम पीड़ा देखो।
आओ हे निस्सीम! आज
इस रजकण की महिमा देखो।"

दुःख, वेदना में ऐसी शक्ति है कि सारी दुनिया की असीमता को वह आमंत्रित करती है—

"दुःख के पद छू बहते झर-झर
कण कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर

लघु मानस में वह असीम
जग को आमंत्रित कर लाता।"

महादेवी जी पीड़ा की ही चिर साधिका बनी रहना चाहती है। प्रियतम का मिलन होने के अर्थ हैं मिट जाना और मिटने से तो काम नहीं चलेगा अत: पीड़ा सदैव बनी रहे। अगर महादेवी का दीपक बुझ गया तो वह चिन्ता क्यों करे? प्रिय के पीड़ा के राज्य में ही अंधेरा छा जायेगा।

"चिन्ता क्या है हे निर्मम
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अंधेरा।"

पीड़ा सहने वाले अपने प्राणों पर महादेवी को गर्व है, अभिमान है, प्रिय को वह पूछती है—

"मेरी लघुता पर आती,
जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा?"

वह अभिमानिनी अपना निजत्व देकर उसे मिलना नहीं चाहती। उसकी इच्छा है कि मधुर मिलन के क्षण भी पीड़ा की कसक बनकर आ जाये। पीड़ा के द्वारा ही वह प्रियतम को आवाहन करती है "तुम दुख बन इस पथ से आना।" पीड़ा, वेदना का साम्राज्य प्राप्त करने पर महादेवी के मुक्ति की भी कामना नहीं रही।

क्या अमरों का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे,
मेरा मिटने का अधिकार!

प्रियतम से महादेवी एक वरदान माँगती हैं। जिन आँखों ने आँसुओं से पीड़ा का अभिषेक किया; विरह के चिर पथ पर जो महादेवी के साथी रहे, रात दिन प्रिय की राह देखी, उनके लिए प्रिय दर्शन वरदान ही सिद्ध होगा अतः—

"आज आये हो हे करुणेश,
इन्हें जो तुम देने वरदान।
गलाकर मेरे सारे अंग,
करो दो आँखों का निर्माण।"

'दीपशिखा' संग्रह में महादेवी ने दीपक को निष्कंप रूप से जलने देने की प्रार्थना की है। विरह की निशा अब समाप्त होगी विरह के दिन तो सदैव नहीं रहते विरह के कलप निमिष में बीत गये हैं। जीवन जलजात अब प्रियतम का लीला कमल बनेगा यह आशा मन में खिल उठी है क्योंकि निशा बीत गयी है और उषा की पग ध्वनि की आहट आने लगी है—

"जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज।
खिल उठे, निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात।"

वीणा के तार महादेवी मिला चुकी हैं। उस विश्ववीणा के तार के साथ अपनी वीणा से तार यद्यपि महादेवी ने मिलाये हैं फिर भी अब थोड़ी सी व्यथा सहना बाकी है, व्यथा का अंतिम छंद उन्होंने अभी गाया नहीं।

"आज तार मिला चुकी हूँ।
पर न मैं अब तक व्यथा का
छन्द अंतिम गा चुकी हूँ।"

अनन्त के पथ पर अपनी छोटी सी तरी लेकर निकली हुई महादेवी अंत में वेदना से ही वरदान माँगती है कि वही उसके उस सुख के पुलिन पर पहुँचा दे। मिलन की बेला आ पहुंची है। वह प्रिय के आगमन के शकुन भी मनाने लगी है :—

कलप युग व्यापी विरह को
एक सिहरन में सँभाले।
शून्यता भर तरल मोती
से मधुर-सुधि-दीप बाले
क्यों किसी के आगमन की
शकुन स्पंदन में मनाती?"

प्रिय के पदचिन्ह मिल गये हैं। अब तो विरह के पुलक पंखी पर बैठे मिलन उड़कर आ रहा है। इतनी त्वरा से मिलन बेला समीप आती हुई दीखने लगी है—

"सजनि, प्रिय के पद चिन्ह मिले
तिमिर में वे पद चिन्ह मिले
पुलक पंखी विरह पर
उड़ आ रहा हे मिलन मेरा।"

आखिर स्वर्णिम बेला आ पहुंची। हर क्षण मिलन उत्सव बना गया है। पथ ही निर्वाण हो गया है। थके चरण

सार्थक हो गये हैं, तम पथ पर विद्युत रोशनी से प्रिय आगमन के उत्सव मनाने जाने लगे हैं।

"पथ मेरा निर्वाण बन गया
प्रति पग शत वरदान बन गया
आज थके चरणों ने सूने
तम में विद्युत लोक बसाया।"

अब तो संदेश की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि प्रियतम ही महादेवी में खो गया है—

नयन पथ से स्वप्न में मिल
प्यास में घुल, साध में खिल
प्रिय मुझी में खो गया,
अब दूत को किस देश भेजूँ ?"

विरह की आराधना से महादेवी स्वयं आराध्य ही हो गयीं है "हो गयी आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले।" सजल सबेरा हो गया है। दीपक का काम था कि मिलन के प्रभात तक जलना। अब अपनी कल्पना में प्राण संचार होते देख दीपक सो गया है। महादेवी जी सृष्टि के कण-कण के रहस्य को जान गयी हैं। रहस्यवादी अद्वैत पर विश्वास रखते हैं, प्रियतम से अभिन्नता उनका इष्ट है, कोई ऐक्य चाहता है, कोई एकीकरण। कबीर ने कहा है—

"हेरत हेरत हे सखी रहया कबीर हेराइ
बूँद समानी समँद्र में सोकत हेरी जाय।"

महादेवी कहती है कि तुम विधु के बिब हो तो मैं रश्मि हूँ। कबीर के जैसे ही अनुभूति महादेवी को हुईं है वह कहती हैं "तुम अनंत जल राशि उर्मि मैं।" इस तरह अद्वैतवाद में महादेवी डूब चुकी हैं, प्रिय से अभिन्नता का अनुभव महादेवी को हो गया है।

महादेवी की इस सरस कविता धारा से स्पष्ट लक्षित होता है कि रहस्यवाद की सभी अवस्थायें महादेवी की कविता में मिल जाती हैं, सृष्टि के प्रति कुतूहल से, प्रिय अद्वैत स्थापना तक के एक एक सोपान पार करके कवयित्री अपनी मंजिल के अत्युच्च शिखर पर विराजमान है।

महादेवी का योग भाव योग है। भावना की तीव्रता के द्वारा ज्ञान के धरातल पर महादेवी की साधना सफल हुई है। विश्वम्भर मानव जी कहते हैं "महादेवी का योग भाव योग है। ज्ञान की भूमि पर उनकी उपासना चल रही है और रहस्यवाद ज्ञान और भाव का ग्रन्थि बन्धन ही तो है।"

महादेवी के रहस्यवादी काव्य पर आज तक अनेक आक्षेप लगाये गये हैं, उन सबका निराकरण करना इस संक्षिप्त लेख में संभव नहीं। आज के कुछ मनोवैज्ञानिक आलोचक कहते हैं कि महादेवी की साधना किसी भक्त की साधना न होकर मन के किसी अभाव की पूर्ति के लिए वह अनंत की ओर मुड़ गयी हैं परन्तु अनेक भक्त कवियों के जीवन के परीक्षण से ज्ञात होता है कि भक्ति मार्ग पर उन्हें अग्रसर कराने का मूल कारण जीवन का कोई अभाव ही रहा है। यद्यपि साधनात्मक रहस्यवादियों की साधना महादेवी ने नहीं की फिर भी आधुनिक रहस्यवादी कवि के भावयोग की साधना में महादेवी निःसंशय अग्रगणी है।

कहा जाता है कि महादेवी के गीतों पर भगवान बुद्ध के दुख वाली छाया अत्यधिक मात्रा में पड़ गयी है। महादेवी की कविता में विरह के अश्रु गीले गीत अधिक मात्रा में हैं जरूर, पर हर्ष से पुलकित होकर गाये हुए मिलन के भी गीत महादेवी ने गाये हैं। साधना का पथ जिसका जितना लम्बा होगा विरह की कहानी उतनी ही करुण और दीर्घ होगी। यह अपने पूर्व संचित का फल है। कोई जन्म से ही परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त करते हैं तो किसी को साक्षात्कार के लिए अखंड साधना करनी पड़ती है। मीरा को भी विरह की लंबी अवधि काटनी पड़ी है। और महादेवी की काव्य साधना अभी समाप्त कहाँ हुई हैं ? आशा का दिव्य, दीर्घ स्वर्ण भविष्य महादेवी के सामने अभी शेष है।

आधुनिक कवियों में महादेवी ने सरस्वती के चरणों पर जो कनक, रत्न आभूषण चढ़ाये हैं। उसके लिए हिन्दी साहित्य महादेवी का चिर-ऋणी रहेगा।

महादेवी की काव्यानुभूति

•

शशिप्रभा शास्त्री

मानव-मानव के सर्वाधिक निकट होते हुए भी एक दूसरे को पहचानने में पूर्ण-रूपेण समर्थ है, इसमें सन्देह है, फिर कवि जो अति सुकोमल भावनाओं का एक पुञ्ज होता है उसके हृदय की अन्तर्भावनाओं को टटोलना तो और कठिन है। महादेवी जी के अपने शब्दों में ही—

मनुष्य चाहे प्रकृति के जड़ उपादानों का संघात विशेष माना जाए और चाहे किसी व्यापक चेतना का अंशभूत, परन्तु किसी भी अवस्था में उसका जीवन इतना सरल नहीं है कि हम उसकी पूर्ण तृप्ति के लिए गणित के अंकों के समान एक निश्चित सिद्धान्त दे सकें।[1] ऐसी स्थिति में कलाकार की कला ही उसके मनोभावों का दर्पण कहा जा सकता है, जिसनें उसकी भावनाओं के प्रतिबिम्बों का स्पष्ट दर्शन किया जा सकता है।

छायावादी तथा रहस्यवादी युगों की सफल कवयित्री महादेवी, आज के बौद्धिक युग में भी महिला कवयित्रियों में अपना सर्वश्रेष्ठ स्थान अक्षुण्ण बनाए हुए हैं। आपके काव्य का मूल्य जैसा अपने उदय काल में सुस्थिर था, वैसा ही अपितु उससे अधिक स्थायित्व उसने आज प्राप्त किया हुआ है। आगामी किसी भी युग में वह अपने महत्त्व को खो सकेगा इसकी संभावना नहीं।

महादेवी रचित काव्य (नीहार; रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत तथा दीपशिखा) की मूल अनुभूति वेदना से सम्बन्ध रखती है। वरिष्ठ आलोचक श्री नन्द दुलारे वाजपेयी के अनुसार— 'महादेवी के काव्य में वैराग्य भावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भांति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में दुःख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध संन्यासियों सरीखी एक चिन्ता मुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शान्ति के प्रति एक अशान्ति महादेवी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है।'

श्री अमृतराय भी महादेवी जी के काव्य को आत्म केन्द्रित मानते हैं और पीड़ा के वृत्त में उसकी समाप्ति भी देखते हैं। महादेवी जी रचित अनेकानेक पद भी इसी तथ्य के परिचायक हैं यथा—

शून्य मन्दिर में बनूँगी
आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।
अर्चना हो शूल भोले,
क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले
आज करुण स्नात उजला
दुःख हो मेरा पुजारी।[1]

(आधुनिक कवि पृष्ठ ७६)

और मेरी लघुता पर आती
जिस देवलोक की ब्रीड़ा
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?

[1]—आधुनिक कवि—"अपने दृष्टिकोण से"—पृष्ठ १ प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन; प्रयाग (२००३)

[1]—सांध्य गीत (यामा पृष्ठ २१३)

तथा आलोक यहाँ लुटता है
बुझ जाते हैं तारागण
अविराम जला करता है
मेरा दीपक सा मन।

(आधुनिक कवि)

उपर्युक्त पद महादेवी जी के निम्नलिखित कथन का स्पष्ट प्रतिवाद करते हुए प्रतीत होते हैं—

"संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी प्रिय लगने लगी।"[1]

इसके विपरीत एक अन्य स्थल पर वे कहती हैं—

"समता के धरातल पर सुख दुःख का मुक्त आदान प्रदान यदि मित्रता की परिभाषा माना जाए तो मेरे पास मित्र का अभाव है।"

इन दो कथनों के विरोध की इस स्थिति में नारी कलाकार की काव्यानुभूति को परखना और भी दुस्तर बन जाता है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं, कि प्रत्येक कलाकार अपनी सृजनावस्था में अपने परिवेश तथा अपनी परिस्थितियों से अवश्य ही प्रभावित होता है। महादेवी जी भी इसका अपवाद नहीं है। अपने जीवन के यौवन काल में ही आपने भौतिक सुखों से मुख मोड़ लिया था। भिक्षुणी बनने की साध भी आपके हृदय में जगी थी।[2] इसके अतिरिक्त बौद्ध दर्शन ने भी आपको पर्याप्त प्रभावित किया। यों भी आप प्रकृति से ही करुणा बहुल रही हैं—'आधुनिक कवि' की भूमिका में निम्नलिखित कथन इसी तथ्य का साक्षी है—

"विद्यालय में रचित मेरी प्रारम्भिक कविताओं की समाप्ति के साथ ही मेरी प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई, जिसमें व्यष्टिगत दुःख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा। कहना नहीं होगा कि इस दिशा में मेरे मन को वही विश्राम मिला जो पक्षिशावक को कई बार गिर उठ कर अपने पंखों के संभाल लेने पर मिलता होगा। मेरी काव्य जिज्ञासा कुछ तो प्राचीन साहित्य और दर्शन में सीमित रही और कुछ सन्तयुग के रहस्यात्मक आत्मा से लेकर छायावाद के कोमल कलेवर तक फैल गई। करुणाबहुल होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।"[1]

निश्चित ही महादेवी जी के व्यक्तिगत अभावों का उनके काव्य में प्रबल प्रभाव के रूप में ही ग्रहण करना उचित है, आधार के रूप नहीं। यहाँ यह सत्य दृष्टव्य है कि महादेवी जी के काव्य की इस प्रमुख अनुभूति (वेदना) ने उनके काव्य को पूर्ण रूपेण आवृत करते हुए भी अनुभूति परिचायक अन्य विभिन्न अंकुरों को आच्छन्न नहीं होने दिया है। वेदना के इस आधिक्य ने ही महादेवी जी के काव्य में एक नये वाद (दुःखवाद) को ही जन्म दे डाला है।

नीहार और रश्मि में उनका यह दुःखवाद तीव्र रूप में प्रकट हुआ है। महादेवी जी के अपने शब्दों में—

"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है, पर दुःख सबको बांट कर। विश्ववेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार जन्म बिन्दु समद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

महादेवी जी के काव्य में उनकी यही दृष्टि मुखरित होती हुई जान पड़ती है। तभी न महादेवी जी के काव्य ने आलोचक प्रवर श्री विश्वम्भर मानव को यह विचारने पर विवश कर दिया है कि—

---

[1]—'रश्मि' की भूमिका से

[2]—महादेवी विचार और व्यक्तित्व—"शिवनागर के पत्र विश्वम्भर मानव के नाम" पृष्ठ ९६

[1]—आधुनिक कवि अपने दृष्टिकोण से—पृष्ठ ३१

"पीड़ा के पथ को पार करने पर भी महादेवी उर्मिला की भांति लक्ष्मण से मिल नहीं सकतीं, गोपा की भाँति गौतम के दर्शन नहीं कर सकतीं, लैला की भांति अपना अस्तित्व खोये बिना मजनूँ में घुल मिल नहीं सकती हैं।"[1]

रहस्यवादी कवयित्री होने के कारण महादेवी जी पर वेदना की यह चोट दुहरी पड़ती है। लौकिक प्रियतम के दर्शन तो दुर्लभ नहीं रहते—यहाँ प्रियतम का दैहिक वियोग ही प्राणों को सालता है, किन्तु रहस्यवादी कवि का प्रियतम निराकार होने के कारण केवल कल्पना और अनुभूति की वस्तु ही रह जाता है। साक्षात्कार का प्रश्न वहाँ इस रूप में नहीं उठता। ऐसी स्थिति में मुख से अनपेक्षित व्यंग्य बाणों का निसृत हो जाना स्वाभाविक है, किन्तु महादेवी जी का संयम इस स्थल पर सराहनीय है। अधरों की राह जो अनचाही अनब्याही दर्दीली श्वासें बलात बाहर फूट पड़ना चाहती है, कवयित्री उन्हें भी अपने ओठों की ओट में छिपा कर रख लेना चाहती है।

मेरी आहें सोती हैं, इन ओठों की ओटों में
मेरा सर्वस्व छिपा है, इन दीवानी चोटों में।

(आधुनिक कवि पृष्ठ ७)

पीड़ा की इन दीवानी चोटों ने सिद्ध कवयित्री की नस-नस को झकझोर कर रख दिया है, पोर-पोर तक वेदना के सागर में बोर कर छोड़ दिया है, पर मजाल है कि वेदना की इस साधिका ने कहीं पर भी दुःख के इन अनगिनत बन्धनों से मुक्ति की कामना की हो। प्रत्युत पीड़ा के इन झकझोलों ने उनकी आत्मा को दुःक्ष का स्वागत करने के लिए और अधिक सुदृढ़ बना दिया है। प्रिय के पथ के शूलों से उन्हें तनिक भी भय नहीं रह गया है—

जिसको पथ सूलों का भय हो
वह खोजे नित निर्जन गह्वर
प्रिय के सन्देशों के वाहक
मैं सुख दुःख भेटूंगी भुजभर।

(आधुनिक कवि पृष्ठ ९३)

प्रिय के मिलन हेतु यह "नीर भरी बदली" "नयनों में दीप जलाये" "पलकों में मचलती हुई निर्झरिणी" को बांधे और यह मानती हुई भी कि विस्तृत नभ का कोई कोना मेरा न "कभी अपना होना" पीड़ा का स्वागत करने लिए आतुर है।

मैं नीर भरी दुःख की बदली
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली

● ● ●

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

'सान्ध्यगीत' (आधुनिक कवि पृष्ठ ८९)

दुःख को आमन्त्रित करने का साहस महादेवी जी में भरपूर है। "तुम दुःख बन इस पथ से आना" पद में आप दुःख का आवाहन तो करती ही हैं, दुःखों की तुला पर तुलते रहने में भी उन्हें संकोच नहीं है, अपितु विश्वास करती हैं—

"क्या हार बनेगा वह
जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना।

(आधुनिक कवि पृष्ठ ७१)

चलते रहने में, धुलते रहने में हो वे साधना की सिद्धि देखती हैं—

खोज ही चिर प्राप्ति का वर
साधना की सिद्धि सुन्दर
और "अति विरह के पंथ में मैं
तो न इति अथ मानती री।"

निसन्देह दुःख का वहन करने से आत्मा में बल आता है, आत्मा उज्जवल बनती है, इसीलिए महादेवी जी मिलन की अपेक्षा विरह को अधिक महत्व देती हैं—

मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूं।

(आधुनिक कवि पृष्ठ ८८)

[1]—महादेवी की रहस्य साधना—विश्वम्भर मानव पृष्ठ १०४

नीहार और रश्मि में उनका यह दु:खवाद तीव्र रूप में प्रकट हुआ है। उनका कथन है—

"दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर और उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है, परन्तु दु:ख सब को बांट कर। विश्वजीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला लेना जिस प्रकार जल विन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

पीड़ा सम्भवतः उन्हें इसीलिए प्रिय है कि यही आनन्द की चरमावस्था तक ले जाने का साधन है। तभी वे अमरों के लोक को भी ठुकरा देती है—

> क्या अमरों का लोक मिलेगा
> तेरी करुणा का उपहार
> रहने दो हे देव ! अरे यह
> मेरा मिटने का अधिकार !

(आधुनिक कवि पृष्ठ २३)

महादेवी जी के सम्पूर्ण काव्य में यत्र तत्र बिखरी वेदना और नैराश्य की छाया के सर्वत्र दर्शन होने पर भी आश्चर्य यही है कि कवयित्री इस व्यथा का पर्यवसान नहीं चाहतीं। पीड़ा में प्रियतम और प्रियतम में पीड़ा को ढूँढने के लिए वे दृढ़बद्ध रहती हैं। उनके प्रियतम और पीड़ा परस्पर इतने घुलमिल गये हैं कि अन्तर दीख ही नहीं पड़ता।

वेदना तथा नैराश्य का परिचयात्मक पद

> विकसते मुरझाने को फूल
> उदय होता छिपने को चन्द
> शून्य होने को भरते मेघ
> दीप जलता होने को मन्द
> यहाँ किसका अनन्त योवन ?
> अरे अस्थिर छोटे जीवन !

(आधुनिक कवि पृष्ठ १८)

> पर शेष नहीं होती यह
> मेरे प्राणों की क्रीड़ा
> तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा
> तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।

वेदना को महादेवी जी सम्भवतः इसीलिए संजोती हैं कि पीड़ा और अभाव अतृप्ति के परिचायक हैं—अभाव और अतृप्ति जब तक जीवन में रहेंगे तभी तक व्यक्ति कर्मशील रहेगा। मिलन और सुख जीवन में नैष्कर्म्य तथा जड़ता को स्थान दे देंगे—अतएव इस प्रकार का आन्दोलन रहित जीवन महादेवी जी को नहीं रुचता।

महादेवी जी एक महान साधिका हैं। पीड़ा के अपार सागर को सहेजे हुए भी अपने कल्पित प्रियतम की छांह में वे निरन्तर चलती रहती हैं। प्रिय और प्रियतम की इस भावना ने उनके काव्य को माधुर्य भावना से ओत प्रोत कर दिया है। साधकों ने भगवान को अपना निकटतम बन्धु मान कर माता, पिता, स्वामी, सखा, प्रिय और प्रियतमा विविध रूपों में देखा है, किन्तु महादेवी जी ने अपने आराध्य देव के साथ प्रियतम और प्रियतमा का नाता ही जोड़ा है। 'नारी का मन' इस रूप को अपनी सुकोमल भावनाओं से रंग कर सार्थकता का जो बाना पहना पाया है, सम्भवतः किसी पुरुष का "नारी जैसा मन" इस दिशा में उतना समर्थ नहीं हो पाता।

प्रेमी प्रेमिका की यही भावना माधुर्य भाव की संज्ञा को प्राप्त करती है। प्रियतम प्रेमिका के इस संसार में हास परिहास के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है, किन्तु महादेवी जी सदा सर्वदा गंभीर रही हैं।

प्रेम व्यापार के—दर्शन सौन्दर्य वर्णन, विरह तथा मिलन इत्यादि विविध सोपानों में से दर्शन में मुग्धता और कसक का वर्णन नीहार में मिलता है। इसके पश्चात् के पल दीर्घ विरह के हैं, जिनके मध्य प्रियतम की स्पष्ट कभी अस्पष्ट झांकी महादेवी जी को मिलती रहती है। "प्राणों का दीप जलाए" "प्रियतम के पथ को आलोकित करती हुई" प्रतीक्षा में निरंतर बैठी रहती हैं। अपनी "द्रुततर निश्वांसों से न बुझने का आश्वासन भी वे उस 'नन्हे दीप' को इस आधार पर

देती चलती हैं कि अपनी चंचल मृदु पलकों के अंचल से उसकी ओट किए हुए हैं।

मेरी निश्वासों से द्रुततर
सुभग न तू बुझने का भय कर
मैं अंचल की ओट किये हूँ
अपनी मृदु पलकों से चंचल !
(आधुनिक कवि पृष्ठ ५९)

मधुर मधुर मेरे दीपक जल,
प्रियतम का दिल आलोकित कर।
नीरजा (यामा, पृष्ठ १४५)

करुणामय उनके प्रियतम को तम के पर्दा में आना भाता, है, इसलिए नभ की दीपावलियों से पल भर बुझ जाने का आग्रह भी वे करती हैं।

करुणामय को भाता है,
तम के परदों में आना
हे नभ की दीपावलियों
तुम पलभर को बुझ जाना।
नीरजा (यामा पृष्ठ १४५) आधुनिक कवि पृष्ठ १६

कभी उन्हें प्रियतम दूर देश से पुकारता सा प्रतीत होता है तो कभी तड़ित की मुस्कान में उसकी झांकी देख वे विस्मय विमुग्ध रह जाती है, किन्तु मन का नैराश्य प्रियतमा को उबार ही नहीं पाता।

कुमुद दल से वेदना के दाग को
पोंछती जब आंसुओं से रश्मियाँ
चौंक उठतीं अनिल के निश्वास छू
तारिकाएँ चकित सी अनजान सी
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है ?

और शून्य नभ पर उमड़ जब दुःभार सी
नैश तम में सघन छा जाती घटा
बिखर जाती जुगनुओं की पांति सी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी
तब चमक जो लोचनों को मूंदता
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है।
(आधुनिक कवि पृष्ठ ३१)

वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली में देखूँ
यह कौन बता जाएगा
किसमें पुतली को देखूँ ?
आधुनिक कवि पृष्ठ १९

तथापि प्रियतम का अभिनन्दन करने के लिए वे सदा प्रस्तुत हैं। प्रिय के प्रति अति सामीप्य की भावना अर्चना के लिए किन्हीं भौतिक उपकरणों की आवश्यकता को अनुभव नहीं होने देती—

उस असीम का सुन्दर मन्दिर
मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं
नित प्रियतम का अभिनय रे।
पद रज को धोने उमड़े
आते लोचन में जल कण रे।
अक्षत पुलकित रोम मधुर
मेरी पीड़ा का चन्दन रे।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल
मेरा यह दीपक मन रे।
मेरे दृग के तारक में नव
उत्पल का उन्मीलन रे।
धूप बने उड़ते रहते हैं
प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे।
आधुनिक कवि पृष्ठ ७३

स्वयं भी उन्हें किसी अस्वाभाविक साज सज्जा की अपेक्षा नहीं है, यद्यपि मिलन की शुभ बेला में नारी का शृंगार उपेक्षणीय वस्तु नहीं माना जाता, किन्तु असाधारण साधिका का असाधारण शृंगार होना ही अनिवार्य है। महादेवी जी का विचित्र शृंगार भी इस वेला में अति स्पृहणीय बन जाता है—

तू स्वप्न सुमनों से सजा तन
विरह का उपहार ले
अगणित युगों की प्यास का
अब नयन अंजन सार ले।

अलि मिलन गीत बने मनोरम
नूपुरों की मदिर ध्वनि ।

माधुर्य भाव की इस अनुभूति में प्रियतम के पास सन्देश भेजने की उत्कण्ठा को पत्राचार की रूढ़ि निभाने के रूप में भी लिया जा सकता है किन्तु प्रियतम तथा प्रिया में दूरी शेष न रहने के कारण प्रश्न को महादेवी जी कबीर मीरा की प्राचीन परिपाटी से ही सुलझाती प्रतीत होती है ।

नयन पथ में स्वप्न में मिल
प्यास में घुल साध में खिल
प्रिय मुझी में खो गया,
अब दूत को किस देश भेजूँ ।

किन्तु यह प्रेम व्यापार एक पक्षीय ही है ।

वेदना तथा माधुर्य मिश्रित अनुभूति को महादेवी जी ने स्थान स्थान पर प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है अतएव प्रकृति भी उनकी काव्य अनुभूति का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। छायावादी काव्य में यों भी प्रकृति का कई रूपों में वर्णन हुआ है । कहीं प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण किया गया है तो कहीं यह भावना को उद्दीप्त करती हुई मानवमन के सुख दुःख के सहचर के रूप में विहरण करती प्रतीत होती है। महादेवी जी ने अधिकतर अपनी सुख दुःखात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए ही प्रकृति का पल्ला पकड़ा है। स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण केवल यामा में एक ही स्थल पर हुआ है, जहां उन्होंने हिमालय के सम्बन्ध में लिखा है। अन्यथा अन्य कवियों के सदृश ब्रह्म की ओर जाती हुई प्रकृति के सौंदर्य से आकर्षित होते हुए भी वे आत्मगत भावनाओं को छिपाने में असमर्थ ही रही है। कहीं-कहीं तो ऐसा भास होता है कि किसी लौकिक सहचर की अभाव पूर्ति उन्होंने पूर्णरूप से प्रकृति के सामंजस्य में ही देखी है, तभी न महादेवी जी की गीत रूपी तरणि प्रकृति रूपी पतवार को थाम कर ही चली है ।

निशा को धो देता राकेश,
चाँदनी में जब अलकें खोल
कली से कहता है मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल ।

(नीहार आधुनिक कवि पृष्ठ १)

और गर्जन के द्रुत तालों पर
चपला का बेसुध नर्तन
मेरे मन बाल शिखी में,
संगीत मधुर जाता बन

यों प्रकृति का झिलमिलाता रूप महादेवी जी के लिए औत्सुक्य का विषय भी रहा है तथापि सृष्टि का सृष्टिकर्ता अधिक—

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली सांझ गुलाबी प्रात
मिटाता रंगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ।

आधुनिक कवि पृष्ठ २५

चिन्तन का प्राधान्य भी उनकी काव्यानुभूति का प्रधान विषय है । चिन्तन दार्शनिकता की ओर ले जाता है । आत्मा परमात्मा के मध्य एक माया का आवरण रहता है जिसके तिरोहित होने से परमात्मा का दर्शन किया जा सकता है । रहस्यवादी कवि सर्वत्र उसकी छाया को देखकर पूछ बैठता है कि वह न जाने कौन है जो तारों में हँसता है, विद्युत में चमकता और ओस बिन्दुओं में रोता है । उस कौन को पा लेने के लिये वह व्यग्र हो उठता है । महादेवी जी के शब्दों में -

"जायसी की परोक्षानुभूति चाहे जितनी एकान्तिक रही हो, परन्तु उनकी मिलन विरह की मधुर स्पर्शी व्यञ्जना क्या किसी लोकोत्तर लोक से रूपक लाई थी । हम चाहे आध्यात्मिक संकेतों से अपरिचित हों परन्तु उनकी लौकिक कलारूप सप्राणता से हमारा पूर्ण परिचय है । कबीर की रहस्यानुभूति के सम्बन्ध में भी यही सत्य है । कबीर और जायसी की भांति ही महादेवी जी की रहस्यानुभूति लौकिक रूपकों द्वारा व्यक्त हुई है—

ओस धुले पथ में छिप तेरा जब आता आह्वान
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में होती अन्तर्धान ।

और चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं छाया का भ्रम
क्या छाया में रहस्यमय,
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

आधुनिक कवि पृष्ठ ५७

"तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ?"

बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ—वाले पद में साधिका अपने आराध्य के साथ बिल्कुल एकाकार हुई दीखती है। चित्र का रेखाओं से, राग का स्वर से, असीम का सीमा से और काया का छाया से जो सम्बन्ध है, वही आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध है।

वस्तुतः जायसी के बाद हिन्दी में रहस्यवाद की परम्परा को आगे बढ़ाने वाली महादेवी जी एकमात्र कवयित्री हैं। मीरा जैसा सारल्य न होते हुये भी उनके काव्य में अनुभूति की व्यञ्जकता अवश्य है। हां अनुभूति में अस्पष्टता का कारण छायावादी युग का वह वैशिष्ट्य है जो प्रतीकात्मक पद्धति के रूप में विकसित हुआ था। महादेवी जी की इस रहस्यानुभूति में भी पलायन के स्वर कहीं नहीं हैं, यह निर्विवाद है। अपने काव्य में पलायन के सम्बन्ध में महादेवी जी का कथन है—

"चक्की के कठिन पाषाण को अपनी साँसों से कोमल बनाने का निष्फल प्रयत्न करती हुई दरिद्र स्त्री, जब इस प्रयास को रागमय करती है तो उसमें चक्की और अन्न की बात न होकर किसी आम्रवन में पड़े झूले की मार्मिक कहानी रहती है। इसे चाहे हम यथार्थ की पूर्ति कहें चाहे उससे पलायन की वृत्ति, परन्तु वह परिभाषातीत मन की एक आवश्यक प्रेरणा तो है ही।" [1]

आपके काव्य में भावधारा का क्रम कुछ इस प्रकार है—नीहार में आकर्षण और पीड़ा की अनुभूति है तो रश्मि में दार्शनिक सिद्धान्तों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। नीरजा में विरह व्यथा, सान्ध्यगीत में आत्मतोष और दीपशिखा में साधना की अविरल गति की मनोरम झांकी प्राप्त होती है। यामा (नीहार, रश्मि, नीरजा, और सान्ध्यगीत) मानो जीवन के चारों याम अथवा मनःस्थितियों के चढ़ाव उतार का ही संकलन है।

चिन्तन और साधना की दृष्टि से महादेवी जी को एकान्त घोर निस्तब्धता और तम प्रिय हैं तथापि आत्मानुभूति में डूबकर भी वे अपने वाह्य परिवेश से एक दम निसंग होकर नहीं रह पाई हैं। महादेवी जी का कवि हृदय अपने चारों ओर की सामाजिक विषमताओं पर भी रोया है। तभी वे हठात कह उठी हैं—

कह दे माँ क्या अब देखूँ
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ।
देखूँ हिम हीरक हँसते
हिलते नीले कमलों पर
या मुरझाई पलकों से
झरते आंसू के कण देखूँ।

(आधुनिक कवि पृष्ठ ३७)

नारी के कायिक तथा मनोद्वन्द्वात्मक प्रणय चित्र संचित करने में भी महादेवी जी ने अपनी सुकुमार अनुभूति का मार्मिक परिचय दिया है, किन्तु इसमें पुरुषों की रसलोलुपता की दृष्टि न होकर एक निसङ्ग चितेरे की तूलिका के ही दर्शन अधिक होते हैं। हां, प्रसंगवश यह कहना गलत न होगा कि महादेवी जी ने अपनी सुदृढ़ लेखनी से कल्पना एवं अनुभूतियों को जो काव्यात्मक रूप दिया है, वह इस सत्य का परिचायक है कि नारी अपनी अनुभूति के सम्बन्ध में मुखर न होते हुये भी कितनी संवेदनशील एवं भावप्रवण होती है कि यदि उसे इसके निष्कासन का कोई मार्ग न मिले तो उसके अन्तस्तल से जो भारी विस्फोट उठे वह अनेकों ज्वालामुखियों से बढ़कर प्रलंयकारी होगा।

समग्रतः आपकी काव्यानुभूति वेदना प्रचुर होते हुये भी मधुर भावना से सिक्त है, जिसमें प्रणय की सुकोमल लहरियां प्रकृति के आँगन में इठलाती, बलखाती अपने किसी कल्पित मंजुलप्रियतम की चरण रज को चूमने के लिए अति मर्यादित एवं संयमित ढङ्ग से अग्रसर होती हुई दीख पड़ती हैं। निषाद नैराश्य वेदना टीस इत्यादि का अपार सागर होते हुए भी आपके समग्र काव्य अध्ययन की परिसमाप्ति हृदय में एक ही गूँज छोड़ जाती है—

सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।

(आधुनिक कवि पृष्ठ ९३)

[1]—आधुनिक कवि 'अपने दृष्टिकोण से' पृ० २०

महादेवी के काव्य में स्वप्न संयोग : एक मनोविश्लेषण

डॉ० केवल धीर

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यदि विचार एवं मनन किया जाय तो ज्ञात होगा कि हम प्रायः जिन इच्छाओं एवं कामनाओं को अपने मानस में संजोते हैं तथा उनकी पूर्ति की आशा करते हैं, उनमें से अधिकांश पूर्ण नहीं हो पातीं तथा वे अतृप्त ही रह जाती हैं, किन्तु यही इच्छायें एवं कामनायें हमारे स्वप्नों में साकार रूप धारण कर लेती हैं तथा हम तृप्ति अनुभव करते हैं। एक साधारण व्यक्ति के लिये भले ही इन स्वप्नों का कोई विशेष महत्व न हो, किन्तु एक कवि की कल्पना की परिधि में ये स्वप्न आ ही जाते हैं तथा उसकी कविताओं में उच्छ्वसित हो उठते हैं। उस कवि का मानसिक वातावरण कैसा है, उसे अपने जीवन में यह तृप्ति किस सीमा तक उपलब्ध हुई है तथा तत्संबन्धित उसका मनस्तत्त्व दृष्टिकोण क्या है—कवि की कविताओं में ये सभी तत्त्व उजागर होते हैं, किन्तु महादेवी वर्मा का काव्य ऐसे स्वप्नों से लदा पड़ा है।

यदि स्वप्न-संयोग एवं इसके मनोवैज्ञानिक पक्ष पर हम विचार करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि महादेवी के काव्य में इसका अत्यधिक समावेश है। स्वप्न-संयोग के अनेक मात्रा-भेद एवं स्थिति भेद हैं तथा भिन्न साहित्यिक मनोविद्-विश्लेषकों ने भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं किन्तु श्री मदरूप गोस्वामी जी की इस व्याख्या के विषय में प्रायः सभी एकमत हैं कि इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक स्वप्न-संयोग को मात्रा-भेद एवं स्थिति-भेद के आधार पर चार प्रकार में विभाजित किया जा सकता है—(क) संक्षिप्त स्वप्न-संयोग, (ख) संकीर्ण स्वप्न-संयोग, (ग) सम्पन्न स्वप्न-संयोग, (घ) तथा समृद्धिमय स्वप्न-संयोग। यदि हम उपर्युक्त चारों प्रकार के मात्रा एवं स्थिति भेदों के आधार पर महादेवी के काव्य को परखें तो हम इसे स्वप्न-संयोग की किसी एक मात्रा अथवा स्थिति-भेद के दायरे में नहीं रख सकते, क्योंकि इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी विशेष भेद की पूर्णता हमें उनके काव्य में उपलब्ध नहीं होती—अर्थात् दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि महादेवी के काव्य में स्वप्न-संयोग के भिन्न मात्राओं एवं स्थितियों का सम्मिश्रण तो है, किन्तु किसी विशेष भेद की पूर्णता नहीं। महादेवी के अतृप्त स्वप्न एवं आकांक्षायें सजग हैं तथा कल्पना के पंख लगा कर वे बहुत ऊँची उड़ानें भी भरते हैं किन्तु इन स्वप्नों ने कवि के हृदय को किसी एक भेद तक सीमित न रखकर समस्त मानसिक चेतन एवं अवचेतन को अपनी सीमा में ले लिया है। यही कारण है कि कवि का हृदय कभी करुणा से भर जाता है और कभी अवचेतन की सुखद प्रेरणात्मक अनुभूति उसे पुलकित कर देती है। किसी ने महादेवी के काव्य का विवेचन इन थोड़े से शब्दों में कितना ठीक किया है—"महादेवी का काव्य आंसुओं का देश है जहाँ केवल बिरह की बयार ही चलती रहती है, किन्तु मरुस्थल के विरले 'ओनेसिस' की भांति अश्रुओं के उस विरही देश में भी यदा-कदा कल्पित मलय समीर की लहर मिल जाती है।" समीर की इस लहर की अनुभूति महादेवी को केवल स्वप्नों के संसार में ही हो सकी है, जाग्रतावस्था में नहीं। उनके

काव्य में 'विरह की बयार' की अनुभूति तो प्रायः होती है किन्तु पुलकित कर देने वाली समीर की लहर का स्पर्श कभी-कभार हो पाता है, और वह भी स्वप्नों के संसार में। यही उनके मानसिक वातावरण में 'स्वप्न संयोग' का स्थान ग्रहण करता है। यही कारण है कि स्वप्न-संयोग के आधार पर ही महादेवी के स्वप्न कृत्रिम स्वप्न-चरिता के वाहक न होकर विचार बोधक हैं तथा इसीलिये इनमें छद्म धर्मिता भी अत्यधिक है, क्योंकि, यदि हम उनके व्यक्तित्व पर नजर दौड़ायें तो हमें उनके व्यक्तित्व की विखण्डता का भी भास होगा। उनके जीवन में पद्य, गद्य, सामाजिकता आदि सभी प्रकार विखण्डता स्पष्ट एवं पृथक् रूप में देखी जा सकती है। यह भिन्नता यद्यपि एक दूसरे से असम्पृक्त नहीं है तथापि इसे हम अन्वित एवं अयुतसिद्धावयव भी नहीं कह सकते।

उपर्युक्त विश्लेषण से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि महादेवी के साहित्य में—विशेष रूप से पद्य साहित्य में स्वप्न-संयोग का अत्यधिक समावेश है। 'सांध्यगीत' की ये पंक्तियां—

अश्रु मेरे मांगने जब नींद में वह पास आया।
स्वप्न सा हँस पास आया !!
हो गया दिव्य की हंसी से
शून्य में सुर चाप अंकित,
रश्मि रोमों में हुआ निस्पन्द
तम भी सिहर पुलकित,
अनुसरण करता अमा का
चांदनी का हास आया !
नींद में वह पास आया !!

उपर्युक्त पंक्तियों से जहाँ हमें स्वप्न-संयोग की अनुभूति होती है, वहां इसमें प्रिय-प्रियतम के मिलाप (स्वप्न में ही) का समावेश भी है। महादेवी के काव्य में स्वप्नों की अधिकता का एक दूसरा उदाहरण है :—

बिछाती थी सपनों के जाल।
तुम्हारी वह करुणा की कोर ॥

हिन्दी आलोचकों का कहना है कि महादेवी के काव्य में अधिकतर कुण्ठित एवं अवदमित वासनाओं को ही अभिव्यक्त किया गया है। यदि हम स्वप्न-संयोग सम्बन्धी फ्रायड के सिद्धांतों पर विचार करें तो इस आधार पर हम कह सकते हैं कि उन्होंने अपने काव्य में 'चेतन' पर बल नहीं दिया, बल्कि अधिकतर 'अवचेतन' का ही आश्रय लिया है। फ्रायड के मतानुसार भावनायें चेतन के प्रभाव से ही नहीं दबतीं, बल्कि जब ये स्वप्नों में आती हैं तो भी चेतन द्वारा प्रभावित रहती हैं। इन भावनाओं को हम वासना का नाम भी दे सकते हैं तथा ये भावनायें अथवा वासनायें स्वतंत्र न रह कर परतंत्र हो जाती हैं एवं छद्मवेष धारण कर लेती हैं। परतंत्रता के भय से जब ये भावनायें स्वप्न का रूप धारण कर लेती हैं तो इनका रूप-परिवर्तित हो जाता है—अर्थात ये इसी रूप में दृष्टिगोचर होती हैं, जो व्यक्ति के 'सेल्फ' का रूप होता है। इस परिवर्तन के पीछे व्यक्ति का मानस ही क्रियाशील होता है इस। प्रकार की विखण्डता एवं परिवर्तन के कारण ऐसे छद्मवेषी स्वप्न सुकर नहीं रहते तथा परिणाम यह होता है कि इनकी थाह पाने के लिये अनेक अन्य साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। ये साधन विस्थापन एवं संघनन हो सकते हैं। इस प्रकार के विस्थापन की स्पष्ट झलक महादेवी के काव्य में मिलती है, जैसे :—

मैं पलकों में पाल रही हूं
यह सपना सुकमार किसी का।

'सांध्यगीत' की ये पंक्तियाँ भी इसी विस्थापन को स्पष्ट करती हैं :—

कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने !
याद में उन अंगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने !!

विस्थापन का अर्थ है—मूलभूत भावना को छद्मवेष का रूप देने के लिये अनुभूति को किसी अलौकिक आलम्बन की ओर विस्थापित करना। महादेवी की उपर्युक्त पंक्तियों में इस विस्थापन का भास स्पष्ट है। संघनन का अर्थ हैं संक्षिप्त करना—अर्थात जो बात हमें पांच सौ पंक्तियों में कहनी है, इस पाँच पंक्तियों में ही कहा जा सके। इसका उदाहरण 'दीपशिखा' की इन पंक्तियों से मिलता है :—

पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी
युग-युग की पहचान बन गया।

स्वप्नों की यह संघननता संक्षिप्त एवं क्षणिक होने के कारण मन उचाट जाती है तथा शेष रह जाता है पश्चाताप। महादेवी भी अपनी कविताओं में ऐसे प्रियतम का उल्लेख करती हैं जो उनके स्वप्न-संसार में मात्र क्षण भर के लिये

आता है और अब वह उसे रिझाकर स्थायी बनाने का प्रयास करती हैं तो वह दूर कहीं खो जाता है। अपने प्रियतम को रिझाने एवं मिलन के इन क्षणों को स्थिर बनाने के उनके सभी प्रयास विफल हो जाते हैं तथा शेष रह जाता है मात्र पश्चात्ताप। अपने प्रियतम को रिझाने, मिलन के क्षणों को स्थिर बनाने एवं बाद में पश्चात्ताप करने का उल्लेख उनकी कविताओं में प्रायः हुआ है—

तुम्हें बांध पाती सपने में!
तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती
इस छोटे क्षण अपने में!!

—नीरजा

कवयित्री के मन-मस्तिष्क में तब कैसा छंद उठता है, 'नीरजा' की ये पंक्तियाँ—

निद्रा उन्मन, कर-कर विचरण
लौट रही सपने संचित कर।

जब, कवयित्री का प्रियतम उसके स्वप्नों में आयेगा, इसका भास उन्हें होता है तो अपने आने वाले प्रियतम की वह किस प्रकार प्रतीक्षा करती हैं तथा मिलन की इस बेला को चिर एवं स्थायी बनाने की वह कैसी कल्पना करती हैं, ये पंक्तियां :—

वह सपना बन बन आता,
जागृति में जाता लौट;
मेरे श्रवण आज बैठे हैं,
इन पलकों की ओट!

अब यह कल्पना भी साकार नहीं होती तो भी कवयित्री साहस नहीं हारती एवं वह नयनों में सपनों की सेज ही सजाये रहना चाहती हैं :—

अब आओ मैं पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊँ!

वह इस सेज को सजाने के लिये स्वप्न-मोती ढूंढ़ लाती हैं तथा प्रियतम की प्रतीक्षा करती हैं :—

नींद सागर से सजनि!
जो ढूँढ़ लाई स्वप्न मोती!
गूंथती हूँ हार उनका!
क्यों कहा मैं प्रात रोती?

—सांध्यगीत

जब यह सब व्यर्थ सिद्ध होता है तो कवयित्री इन्हीं स्वप्नों से अपने नयन अंजित कर लेना चाहती हैं :—

किसमें देख संवारूँ कुंतल
अंगराग पुलकों का मलमल
स्वप्नों में आंजूं पलकें चल

—नीरजा

सपनों की रज आज गया
नयनों में प्रिय का हास!

—सांध्यगीत

जब इन सपनों के आंसू भी सूखकर सूखे सुमन बन जाते हैं कवयित्री यह कहे बिना नहीं रहती :—

बरुनियों में उलझ बिखरे
स्वप्न के सूखे सुमन ले!
खोजने फिर शिथिल पग
निश्वास दूत निकल चुका है!!

—दीपशिखा

जब कवयित्री इन काल्पनिक स्वप्नों से ऊब गई तो कह उठी :—

मेरे जीवन की जागृति
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें
तुम चिर निद्रा बन जाना।

—नीहार

यदि हम महादेवी के स्वप्नों के गुणों पर विचार करें तो हम पायेंगे कि उनके स्वप्न मूल न होकर स्वप्नों का केवल स्मरण मात्र है, क्योंकि उनके काव्य में लौकिक अनुभूति की उष्मा हमें नहीं मिलती। 'नीरजा' की ये पंक्तियां इसका उदाहरण हैं :—

मिलन बेला में अलस तू
सो गई कुछ जाग कर जब,
फिर गया, वह स्वप्न में!
आ रही प्रतिध्वनि वही फिर!
नींद का उपहार ले!
चल सजनि दीपक बार ले!!

यदि हम स्वप्नों की मौलिकता एवं स्मृति स्वप्नों पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि दोनों में साम्य नहीं है। स्मृत स्वप्न

अपने आनुपूर्वी गुणों को खो देते हैं। फ्रायड के कथनानुसार स्मृत स्वप्न 'विकृत स्थानापन्न' होते हैं। इन दोनों में सब से बड़ा अन्तर यह है कि मौलिक स्वप्न 'अवचेतन' का सर्वाधिकार है किन्तु इसके विपरीत स्मृत स्वप्नों को स्मरण क्षणों में चेतन द्वारा प्रभावित होना पड़ता है। इस प्रकार स्मृत स्वप्न मौलिक स्वप्नों की अपेक्षा विकृत हो जाते हैं। इसी कारण फ्रायड ने इन्हें 'विकृत स्थानापन्न' कहा है। प्रो० विमल जी ने एक स्थान पर लिखा है :—"महादेवी के काव्य-निबद्ध स्मृत स्वप्नों में बराबर 'कौन' कह कर अभिहित किया जाने वाला, अलौकिक अनुभूतियों का प्रेरक नायक अवश्य ही मूल स्वप्न में किसी निश्चित व्यक्ति वाचक संज्ञा का चिरपरिचित 'छलिया' रहा होगा। स्मृत स्वप्नों का सामान्य एवं स्वाभाविक विकृति से महादेवी के काव्य निबद्ध स्वप्नों को सरलता पूर्वक अलौकिक धरातल मिल गया है। फ्रायडीय मनोविश्लेषण की शब्दावली में कहा जा सकता है कि महादेवी के काव्यनिबद्ध स्वप्नों में हमें व्यक्त स्वप्न-वस्तु (मैनीफैस्ट ड्रीम कान्टेक्ट) मिलती हैं किन्तु उनके गुप्त स्वप्न विचार (लेटेस्ट ड्रीम थाट्स) को जानने के लिये हमें आसंग व्याख्याका आश्रय लेना पड़ेगा, जिसमें निश्चित रूपेण लौकिक अनुभूतियां मिलेंगी, जबकि मनोविश्लेषण के अनुसार गुप्त स्वप्न विचार का ही महत्व है, व्यक्त स्वप्न वस्तु तो उस तक पहुँचने का केवल माध्यम मात्र है।"

उपर्युक्त विश्लेषण का चित्र हम इन पंक्तियों में देख सकते हैं :—

> अश्रु मेरे मांगने जब
> नींद में वह पास आया !
> स्वप्न सा हंस पास आया !!
> हो गया दिव की हंसी से
> शून्य में सुरचाप अंकित !
> रश्मि रोमों में हुआ,
> निस्पन्द तम भी सिहर पुलकित,
> अनुसरण करता अमा का,
> चाँदनी का हास आया !
> नींद में वह पास आया !!

—सांध्यगीत

महादेवी की कविताओं में 'स्थानापन्न मनोबिम्बों' के विषय में प्रो० विमल ने लिखा है कि उनकी स्मृत-स्वप्नों की ऐन्द्रिय लौकिक अनुभूतियों को न पकड़ पाने का एक कारण यह है कि इनकी अभिव्यक्ति अधिकतर स्थानापन्न मनोबिम्बों (सब्स्टीच्यूट ईमेज) द्वारा हुई है। स्थानापन्न मनोबिम्बों की विशेषता यह है कि वे अन्योक्ति अथवा समासोक्ति की तरह किसी दूरवर्ती अप्रस्तुत को सरलता पूर्वक संकेतिक कर देते हैं। अतः महादेवी के स्वप्नों में आध्यात्मिकता को अनुस्युत करने वाले बीच स्थानापन्न बिम्बों का तत्त्वों के प्रमुख स्थान हैं :—

> नीरव तम की छाया में
> छिप सौरभ की अलकों में
> गायक वह गान तुम्हारा
> आ मंडराया पलकों में !

यहाँ 'गायक का गान' स्थानापन्न बिम्ब है। यह अवश्य ही प्रिय की या प्रिय का स्पर्श अथवा प्रिय की बात के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

महादेवी को करुणा, विरह एवं वेदना की वाहक कवयित्री कहा गया है तथा यह स्वाभाविक ही है कि ऐसे कवियों अथवा कवयित्रियों की रचनाओं में सुख-स्वप्न नहीं मिलते, बल्कि इनमें अधीर स्वप्नों की ही अधिकता होती है। महादेवी के काव्य के मानसिक वातावरण का यदि हम मनोविश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि उनके काव्य में भी स्वप्नों की अधीरता ही है—स्वप्न सुख नहीं। इसका उदाहरण है 'नीहार' की ये पंक्तियाँ, जिसनें उन्होंने लिखा है कि जब प्रियतम तम की छाया में छिपकर उनकी पलकों में समा गया, तब—

> हाला-सी, हलाहल सी
> बह गई अचानक लहरी
> डूबा जग भूला, तन-मन
> आंखें शिथिलाईं, सिहरी !

—नीहार

महादेवी जी की काव्य साधना

परशुराम शर्मा

सम्पूर्ण संसार के भिन्न भिन्न वाङ्मयों के आचार्यों तथा मनीषियों ने अपने-अपने अनुभव तथा प्रतिभा के अनुसार 'काव्य' को परिभाषा की परिधि में सीमित करने की चेष्टा की है। परन्तु आज तक का परिभाषा-शास्त्र इस तथ्य का साक्षी है, कि जैसे-जैसे इस शब्द की नवीन-नवीन परिभाषायें की गईं, वैसे वैसे यह 'शब्द ब्रह्म' अपने किसी और ही रूप में प्रकट होकर परिभाषा-कर्ताओं को आश्चर्य चकित करता आया है। "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी" के अनुसार किसी विज्ञ लक्षणकार ने इस (काव्य) के केवल भाव पक्ष को ही अवगत करके "भावमय अनुभूतियों का उद्‌भावक शब्द समुच्चय ही काव्य है; यही मत प्रस्तुत करके इतिश्री कर दी। इसके विपरीत किसी महानुभाव ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रस-युक्त वाक्य ही काव्य कोटि में निहित किया जा सकता है, यह कथन करके रस की प्रधानता को ही सर्वतोऽधिक् महत्त्व दिया। उसके विचार में विविध कला सम्पन्न मनस्तरंगों को उद्वेलित करने वाली भी रचना यदि रस से शून्य है तो वह काव्य कोटि में उपन्यस्त नहीं की जा सकती।

परिभाषा-शास्त्रियों में एक श्रेणी कलात्मकतावादियों की भी उत्पन्न हुई। उनके अनुसार काव्य का कला पक्ष ही सर्वेसर्वा है। जिस वाक्य बन्ध में कला का अभाव है जिसे पढ़ते ही या जिसके श्रवण मात्र से ही उसके प्रति आकर्षण न हो जायें या जिसके स्वरूप पर ही पाठक या श्रोता विभोर न हो उठे वह रचना अति गांभीर्य-पूर्ण-भावमय होती हुई भी काव्य की संज्ञा की अधिकारिणी नहीं हो सकती। 'रीतिरात्मा काव्यस्य' अर्थात् विशिष्ट प्रकार के पद-संगठन युक्त शैली ही काव्य की आत्मा होती है, इस मत के अनुगामी शैली को ही काव्य का सर्वस्य मानते हैं। वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्' अर्थात् चमत्कार पूर्ण ढंग से किसी तथ्य को सीधे स्पष्ट रूप में न प्रस्तुत कर कुछ वक्रता-युक्त उक्तियों से प्रतिपादन करना—जिससे पाठक या श्रोता पर उस उक्ति का आकस्मिक एवं विस्मयोत्पादक प्रभाव पड़े—ही काव्य का मुख्य अंग माना जाता है। किं बहुना 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना। जिस विचारधारा ने जिसके मस्तिष्क को प्रभावित किया उसने तदनुसार काव्य का स्वरूप प्रतिपादन कर दिया। कौन पूर्णतया सत्य है और कौन-अन्यथा। आज तक तो कोई दृढ़ता-पूर्वक ऐसा निर्णय करने में समर्थ नहीं हो सका। हाँ, 'सब मतों का समन्वय सर्व मान्य हो सकता है' इस मत में कदापि दो सम्मतियाँ संभव नहीं। दार्शनिक रूपेण समन्वय में घटनात्मकता है और असमन्वय में विघटनात्मकता। अतः विज्ञ मनीषियों का अनुसरण करते हुये हम भी इसी निर्णय र पहुंचते हैं कि भाव तथा कला दोनों ही सत्काव्य के लिए अनिवार्य तत्व हैं। एक से भी रहित काव्य सर्वाङ्गीण कदापि नहीं कहा जायगा। हाँ, माया की न्यूनता या अधिकता उपेक्षित हो सकती है। आशय यह है, कि यदि किसी रचना में भाव शत-प्रतिशत है और कला पचास प्रतिशत तो वह रचना भी काव्य पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है परन्तु यदि किसी कृत में दोनों अंगों में से किसी एक का सर्वथा अभाव हुआ तो उसका समावेश काव्य में न हो सकेगा।

यदि हम यहाँ पर यह प्रतिपादन कर दें कि ब्रह्माण्ड का प्रत्येक मानव स्वभावतः कवि है तो अनुचित न होगा। भावना

मयोहि परुषः अर्थात् पुरुष भावनाओं, संवेदनाओं एवं अनुभूतियों का जन्म स्थान है। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में नित्य प्रति शोक, हर्ष, भय आदि जब उत्पन्न होते हैं और वह अपनी संवेदनाओं के द्वारा अपने समन्तात् प्रत्येक पदार्थ एवं प्राणी में स्वानुभूत हर्ष शोक आदि का समावेश पाता है। वियुक्त अथवा वियुक्ता के हृदय में एक वरयात्रा को देखकर यही विचार उत्पन्न होगा कि आज जिन दो प्राणियों का गठ-बन्धन होने जा रहा है एक दिन आयेगा जब ये भी मेरी तरह वियोगाग्नि में परितप्त होंगे। यह ठीक है, कि प्रत्येक मनुष्य भावना-पूर्ण होता है और हमारी उपरि प्रतिपादित रूप रेखा के अनुसार उसे कवि नाम उपलब्ध होना चाहिये। परन्तु यहाँ हमें यह न भूलना चाहिये कि भावना-मय होते हुये और उन भावनाओं को अपने चारों ओर के वातावरण में ओत प्रोत करते हुये भी प्रत्येक मनुष्य वास्तविक रूप में 'कवि' इस कारण नहीं हो सकता। उसकी भावनाओं का उद्वेल्लन अपने तथा अपने चतुर्दिक के पदार्थों तक ही सीमित होकर रह जाता है जब कि कवि मनस्तरंगों, अनुभूतियों संवेदनाओं को स्वयं उपजाकर उन्हें दूसरे लोगों के हृदयों में भी प्रवेश करने का सामर्थ्य रखता है। वह एक अद्भुत तादात्म्य उत्पन्न करके अपने काव्य को समान भावनाओं एवं मनोभावों के उत्पादनार्थ एक अनुपम माध्यम बना देता है इसीलिए तो उसे 'ब्रह्मा' की उपाधि से विभूषित किया गया है। उसकी सृष्टि मानव मात्र के आनन्दोद्रेक का कारण बनती है। कवि हमें संबल प्रदान करता है कल्पना लोक में उड़ान भरने के लिए। कवि हमें सामान्यता से ऊपर उठा कर विशेषता के दर्शन कराता है। उसका काव्य लौकिक और पारलौकिक सुख की सामग्री जुटा देता है। कवि हमें मानवता से अतिमानवता तक पहुंचा देने की क्षमता रखता है। वह केवल हमें सत्यं, शिवं, सुन्दरं का पाठ ही नहीं पढ़ाता अपितु उन दुष्प्राप्य तत्वों एवं तथ्यों को हमारे संमुख ह्स्तामलकवत् उपस्थित कर देता है। 'पश्य देवस्य काव्यं, न ममार न जीर्यति' अर्थात् जिस प्रकार परमदेव का वेद रूपी काव्य या यह ब्रह्माण्ड रूपी काव्य न अवसन्न होता है न जीर्ण होता है—इसका प्रतिक्षण रूप परिवर्तित होता रहता है ठीक उसी प्रकार कवि का काव्य पदे-पदे नवीनता को धारण करता रहता है, सर्वदा अमर रहता है।

ऊपर लिखे विवरण से हमने काव्य की विविध रूप रेखायें तथा स्वरूप निर्धारण संबन्धी विचार व्यक्त करके यही निष्कर्ष निकाला है कि काव्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यद्यपि काव्य को परिभाषा रूपी परिधि में यदि सीमित करना असंभव है तो भी हम उसी शब्द विन्यास को काव्य की संज्ञा दे सकते हैं जो अपने आप में परिपूर्ण का प्रभाव दूसरों पर प्रदर्शित कर सके तथा जिस प्रकार वह शब्द विन्यास उसके स्रष्टा के मनोवेगों के उद्वेल्लन का मूर्त प्रतीक है उसी प्रकार वह पाठक अथवा श्रोता के हृदय में भी उद्वेल्लन—तरंगोत्पादन की क्षमता रखता हो।

कहना न होगा कि ऐसे काव्य की साधना सुकर नहीं वह तो स्वभावज ही हो सकती है। हां, अनुकूल वातावरण पाकर उसका उद्भूत होना सरल मात्र अवश्य हो जाता है। आदि कवि वाल्मीकि व्यास, कालिदास, तुलसी, मीरा आदि में काव्य के संस्कार प्रकृतिज थे जैसे ही उन्हें अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध हुईं वे वेग पूर्वक उन कवियों के अन्तस् से फूट पड़े। "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः" इत्यादि अनीश्वर उक्तियाँ किसी कृत्रिम साधन का परिणाम नहीं कही जा सकतीं। ये तो उन स्वाभाविक भावों का प्रस्फुटन हैं जो एक जलौघ की भांति सभी बन्ध प्रतिबन्धों को तोड़ता हुआ अपना मार्ग आप निर्माण करता जाता है। महादेवी जी की काव्य साधना भी कुछ इसी प्रकार की ही है। हमें महादेवी जी की जीवनी और उसके द्वारा उनके काव्य पर प्रतिफलित होने वाली विचारधारा पर कुछ कहना अभीष्ट नहीं। हमें तो केवल यहीं दर्शाना है कि साधिका में अन्य प्राचीन स्वयंसिद्ध स्वाभाविक कवियों की भांति कुछ काव्य-मय संस्कार थे जो अवसर प्राप्त होते ही बरबस फूट पड़े। उन मनोभावों ने न उनकी आयु का ध्यान रखा न पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को मान्यता प्रदान की। उन्हें तो फूट पड़ना था अतः फूट पड़े।

साधक की दृष्टि प्रतिक्षण अपने उसी लक्ष्य पर केन्द्रित होती है जिसके निमित्त वह साधना-संलग्न होता है। जहाँ तक हमने महादेवी जी की काव्य कृतियों का अध्ययन किया है हम उनकी काव्य-साधना का एक ही दृष्टि-कोण

समझ पाये हैं और वह है उनकी संवेदनशीलता। उनकी काव्य साधना के अन्य सभी विषय या अंग उनकी संवेदन-शक्ति रूपी अंगों के पूरक मात्र हैं। वे समष्टि को ही सब कुछ समझती हैं। यह भाव उनकी निम्नलिखित उक्ति से पूर्णतया परिपुष्ट हो जाता है।

दीप मेरे जल अकम्पित, घुल अकम्पित।
पथ न भूले एक पग भी, पर न खोये लघु विहग भी।
स्निग्ध लौकी तूलिका के आक सबकी छांह उज्ज्वल।

उपर्युक्त शब्दों से उनकी संवेदना फूटी पड़ती है। इस संवेदना का मूल्य शाश्वत है—स्थायी है। क्या कभी कोई क्षण ऐसा आया है या आएगा जब संवेदना परिहेय होगी युग परिवर्तित हुये हैं और होते रहेंगे, आत्मिक मूल्यों में उलट फेर होते हैं और निश्चित रूपेण होते भी रहेंगे, काव्य शैलियों की विविध विधायें वनती और बिगड़ती रहेंगी, रुचि वैविध्य परिलक्षित होते आये हैं और होते रहेंगे परन्तु महादेवी जी का साध्य उनका केन्द्र बिन्दु उनके जन्म जन्मा-तर के संस्कारों का परिपाक, उनकी साधना का फल संवेदन अविभाज्य, अपरिवर्तनीय, अकाट्य रहता आया है और आगे भी रहेगा। हम तनिक अत्युक्ति से काम लें, (परन्तु वह अत्युक्ति अयथार्थता का अंश लिए हुए नहीं) तो हम निश्शंक रूप से कह सकते हैं कि महादेवी जी की विशिष्टता केवल इसी बात में है कि जहां अन्य कवियों ने संवेदन को अन्य उपकरणों के सार्ष सामान्य स्थान दिया है वहाँ सहादेवी के लिए तो अन्य उपकरण अथवा काव्य विषय या तो विद्यमान हैं ही नहीं यदि हैं भी तो उनके लक्ष्य के पूरक मात्र हैं। संवेदन उनके मन वाणी और कर्म में ओत प्रोत है। उनका संवेदन इतना व्यापक है कि उनकी समष्टि व्यष्टि एकाकार हो गई है। कई बार तो ऐसा अनुभव होने लगता है कि संवेदन ही उनका व्यक्तित्व है और उन्होंने अपने व्यक्तित्व को मानो संवेदन के सांचे में ढाल रखा है। वर्डस्वर्थ का स्थान अंग्रेजी साहित्य में उत्कृष्ट है। वे अपने 'प्रील्यूड' में लिखते हैं कि मेरे जीवन में कुछ एक छोटी बड़ी घटनायें घटीं जिन्होंने मेरे जीवन को प्रभाबित किया। इसी प्रकार कालिदास, सूर, तुलसी, मीरा आदि कवियों की रचनाओं के परिशीलन से उनके अपने व्यक्तित्व से प्रभावित कुछ भावों के धुँधले से (और कभी कभी पूर्णतया स्पष्ट) भावों के दर्शन होते हैं। परन्तु महादेवी जी की कृतियों में तो मानों अपना पृथक् कोई अस्तित्व है ही नहीं। उन पर तो "यत्पिंडे तद् ब्रह्माण्डे" (जो शरीर में है वही संसार में है) कि उक्ति चरितार्थ होती है। महादेवी के सामने तो मैं तू का भेद है ही नहीं। इसी का नाम तो संवेदना है।

साधना के लिए जब तक लक्ष्य निर्धारित कर लिया तो फिर उसकी प्राप्ति के लिए निरन्तर तपस्या अपेक्षित होती है। महादेवी के सम्बन्ध में जिससे भी जो कुछ भी सुना है उससे हमने एक ही परिणाम निकाला है कि 'साधिका' शब्द की सार्थकता उन्हीं पर ही हो सकती है। व्यक्तित्व को भुलाकर, सस्ती प्रशंसा (और बहुमूल्य भी) से ऊपर उठकर, मनः सूत्र का संयोग करके, सामाजिक तत्वों का समूलोन्मूलन करके अपने जीवन-दीप को तिल-तिल जलाने वाली कवयित्री ने 'साधिका' कहलाने की अधिकारिणी हो सकती है अन्य कोई भी नहीं।

संवेदना के लिए वेदना अनिवार्य है। सम्यक् वेदना से ही तो संवेदना की उत्पत्ति होती है। अन्य विचारकों की भांति हम इस पचड़े में पड़ना नहीं चाहते कि वेदना दुःख प्रेरिका हैं या सुख-जननी। हमें तो उन्हीं आलोचकों की हाँ में हां मिलानी है जो कहते हैं कि महादेवी ने वेदना को अपना रखा है।" किस लिए? यह प्रश्न ही व्यर्थ है। कारण और कार्य का सम्बन्ध वहाँ अपेक्षित होता है जहाँ इन दोनों की सत्ता का पार्थक्य असीम हो। परन्तु हमारे उपरिदत्त विवरण के अनुसार जिस कवि के समक्ष 'संवे-दना' के अतिरिक्त और किसी पदार्थ तत्त्व या विचार की सत्ता हो न हो उसकी वेदना किसी कारण विशेष की अपेक्षा रखे यह विचार समीचीन प्रतीत नहीं होता। अपने में और किसी अज्ञात में ऐसा प्रदर्शित करती हुई वे कहती हैं—

मैं कण कण में ढाल रही अलि,
आंसू के मिस प्यार किसी का
मैं पलकों में पाल रही हूँ,
यह सपना सुकुमार किसी का।"

महादेवी जी अपने जीवन दीप को बुझाकर पीड़ा के राज्य को अंधकारमय नहीं बनाना चाहतीं। वे कहती हैं—

चिन्ता क्या है निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अँधेरा।

महादेवी जी की 'यामा' (नीरजा, रश्मि, नीहार, और सान्ध्यगीत का कविता-संग्रह) तथा दीपशिखा में सर्वत्र संवेदना, आत्मा और परमात्मा में अभेद तथा संवेदनार्थ करुण क्रन्दन के दर्शन होते हैं।

तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा। में कितनी मार्मिकता है। इष्टदेव, साधक तथा पीड़ा की अभिन्नता का ऐसा प्रमाण और कहीं नहीं मिल सकता। विरह और मिलन की वास्तविकता का मिथ्यात्व प्रतिपादन करती हुई कवयित्री कितने सुन्दर तथा आलंकारिक ढंग से इस मर्म को समझाती हैं।

विरह का क्षण मिलन का पल,
मधुर जैसे दो पलक चल।"

पलकों का स्थायिरूपेण खुले रहना या बन्द रहना भला किसे भाएगा? कहना ही होगा कि जिस प्रकार पलकों का संयोग तथा परस्पर वियोग दोनों ही मधुर होते हैं ठीक उसी प्रकार जीवन में संयोग तथा वियोग दोनों ही मनोरम होते हैं। इसी तथ्य पर महादेवी जी की वेदनाप्रियता आश्रित है।

यह सार्वभौम तथा शाश्वत सत्य है कि पदार्थ पहले विद्यमान होता है और उसका परिचायक लक्षण बाद में बनता है। विषय, मत, तथ्य आदि की सत्ता पूर्व होती है और भिन्न-भिन्न विचारों वाले व्यक्ति अपनी-अपनी मति के अनुसार उनके भिन्न-भिन्न लक्षण बाद में बनाते हैं। उदाहरण के लिए जल पदार्थ पहले विद्यमान था दार्शनिकों ने उसके लक्षण एवं स्वरूप-निर्माण बाद में किए। यही शाश्वत सिद्धान्त! महादेवी जी की रचनाओं में रहस्यवाद तथा छायावाद जैसे अनेक वादों के समावेश करने में घटित होता है। महादेवी जी ने अपनी रचना करते समय किसी बाद-विशेष को लक्ष्य बनाया हो ऐसा सोचना ही बालिशता है। कवियों की विशेषता इसी तथ्य में तो है कि यद्यपि वे अपनी अमर कृतियों द्वारा अपने अभीष्ट एवं मनोनीत संदेश को जनता तक प्रेषित करना चाहते हैं तथापि सहृदय पाठक एवं श्रोता तुममें से स्वतः एक से अधिक भावनाओं मतों, वादों आदि की उपलब्धि कर लेते हैं। इसी में तो स्रष्टा का स्रष्टत्व है। यदि हम 'रहस्यवाद' आदि वादों को ही उनकी रचनाओं में खोजने चलें तो शायद ही उनकी कोई ही रचना होगी जिसमें अत्यधिक रूप में इन वादों की छाया (परन्तु कहीं-कहीं पूर्णता भी) न मिले।

मैं तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यों घन से तड़ित विलास।

इस कवितांश में रहस्यवाद अपनी चरम सीमा को प्राप्त हुआ प्रतीत होता है। एकाकारता और भिन्नता! इस विरोध में भी समन्वय की झलक मिलती है। किरण और उसके प्रकाश को, बादल और बिजली को हम एक भी कह सकते हैं और परस्पर भिन्न भी। यही प्रपञ्च हमें आत्मा और परमात्मा में मिलता है जिसे महादेवी जी ने अपनी उपरिनिर्दिष्ट पंक्तियों में रहस्यवाद के द्वारा अवगत कराने की चेष्टा की है।

विरोधात्मक रहस्य का एक उदाहरण और :—

पाने में तुमको खोऊँ,
खोने में समझूँ पाना।
यह चिर अतृप्ति हो जीवन,
चिर तृष्णा हो मिट जाना॥

पाना खोना तो उपाधिमात्र है। मनोदशा एवं प्रवृत्ति के द्वारा उनको ग्रहण किया जाता है। जिसे हम पाना समझते हैं साधक उसे ही परम नाश मानता है। यही तो वह रहस्य है है जिसे रहस्यवादी कवि या सहृदय पाठक ही समझ सकता है। "बरसे कंबल भीगे पानी" का तत्त्व क्या साधारण बुद्धिगम्य हो सकता है। इसी तथ्य को श्री मद्भगवतगीता में में श्रीकृष्ण महाराज ने निम्न प्रवचन के द्वारा समझाया है—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सानिशा पश्यतो मुनेः॥

यह रहस्य चिन्तन का विषय नहीं अनुभव का विषय है। यह तत्व करनी कथनी से न्यारा है। इसी लिये तो भक्त कह गया है :—

जा मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने ही ते पाइये, पूरन परमानन्द।

नाश में, पीड़ा में, करुणा में, विलाप में क्या अनुपमता है ? यह तो महादेवी से ही पूछना चाहिये। हमें सन्देह है कि वह भी संभवतः इस अलौकिक चर्वणा के आनन्द को शब्दों का कञ्चुक पहनाने में अपने आपको असमर्थ ही पायेंगी। क्योंकि यह तो गूंगे का गुड़ है, जिसका रस अवर्णनीय है—केवल अनुभवनीय है।

यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं कि रहस्यवाद अत्यन्त प्राचीन काल से चले आ रहे वेदान्त-प्रतिपादित एकात्मवाद का ही नवीनतम एवं आधुनिक श्रम है। कण-कण में निज को और निज में कण-कण को अनुभव करना ही वह एकात्मवाद है, रहस्यवाद है जिसका संकेत महादेवी जी ने यत्र-तत्र अपनी कविता में किया है—

अली मैं कण-कण को जान चली।
सब का क्रन्दन पहचान चली।
और अणु-अणु का कम्पन जान चली।
प्रति पग को कर लयवान चली॥ इत्यादि

जब संसार का एक एक अणु अपना है तो फिर अभिशाप और वरदान में भेद कैसा ? उनकी सत्ता ही किस लिये ? देखिये—

विरह का तम हो गया अपार,
मुझे अब वह आदान प्रदान।
बन गया है देखो अभिशाप
जिसे तुम कहते थे वरदान॥

रहस्यवादी कवि की दृष्टि में दुःख सुख का अन्तर मानो है ही नहीं। संवेदन शीला महादेवी इस रहस्य को निम्न-लिखित पंक्तियों द्वारा व्यक्त करती हैं—

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा।
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ न सीखा॥

दुःख सुख की तीक्ष्णता वह क्यों सीखे ? अश्रु हाला का मद उसे वैसा करने का अवसर ही कब देता है—

घुल गई इन आँसुओं में
देव जाने कौन हाला,
झूमता है विश्व पी पी
घूमती नक्षत्र माला॥

महदेवी जी के मतानुसार नक्षत्र मण्डल, ग्रह, उपग्रह, प्राणि मात्र नहीं अणु मात्र इसी हाला की मस्ती में झूम रहा है—प्रेरणा पाकर गतिशील है। यही प्रेरणा, यही अलौकिक मादकता महादेवी जी को ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थ में निजत्व के दर्शन करने के लिये बाध्य करती है। संसार का बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा पदार्थ मानो उसके जीवनेतिहास की एक घटना मात्र है। वे कहती हैं—

"ओढ़े मेरी छाँह रात देती उजियाला,
रजकण मृदु-पद चूम हुये मुकुलों की माला
मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं।"

कवयित्री और ब्रह्माण्ड की एकात्मकता का एक और उदाहरण देखिए—

अश्रु मेरे मांगने जब
नींद में वह पास आया
स्वप्न सा हँस पास आया।
हो गया दिन की हंसी से
शून्य में सुर चाप अङ्कित
रश्मि रोमों में हुआ निस्पंद
तम भी सिहर पुलकित। इत्यादि।

रहस्यवादी और छायावादी कवि की रचनाओं में प्रकृति का वाहक रूप धारण कर लेना स्वाभाविक ही है। जब वह प्राकृतिक पदार्थों के साथ ऐक्य स्थापित कर लेता है तो परिणाम स्वरूप वह अपने भावों का प्रकाशन करने के लिये प्रकृति से इतना और कोई भी उत्कृष्ट माध्यम नहीं पाता। इसीलिये महादेवी जी की भावरूपिणी आत्मा प्रकृति रूपी कलेवर के पर्दे की ओट में अपना आभास

देती है। प्रकृति के समस्त अंगों को कवयित्री ने अपनी कविता में स्थान दिया है।

विरह का जलजात जीवन···
मैं नीर भरी दुःख की बदली···
तुम हो विधु के बिम्ब और
मैं मुग्धा रश्मि अजान···
जब कपोल गुलाब पर शिशुप्रात
के सूखते नक्षत्र जल के बिंदु से···
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय,
जलधि मानस से नव जन्म पर
सुभग तेरी ही सजल
श्यामल मन्थर मूक सा···

ऐसे ऐसे प्रकृति सम्बन्धी वर्णन महादेवी जी की कविताओं में प्रायः सर्वत्र मिलते हैं। प्रकृति मानो उनकी कविता का अविभाज्य अंग है। छायावाद का आधार प्रकृति में अज्ञात शक्ति के प्रतिबिम्ब की सत्ता है। सत्यं, शिवं, सुन्दरं की खोज में रत आत्मा जब प्राकृतिक पदार्थों में उसकी झलक पाती है तब छायावाद की उत्पत्ति होती है। छायावादी कवि प्रकृति के साथ अविच्छिन्न सम्पर्क स्थापित कर लेता है। इस तथ्य का उदाहरण महादेवी जी की निम्नलिखित कविता में देखें—

"प्रिय साँध्य गगन मेरा जीवन
साधों का आज सुनहलापन
घिरता विषाद का तिमिर सघन
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन,
यह अश्रुमती हँसती चितवन।

और भी—

प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन।

इसी प्रकार—

क्यों वह प्रिय आता पार नहीं
शशि के दर्पण में देख-देख,
मैंने सुलझाए तिमिर केश;
गूँथे चुन तारक पारिजात,
अवगुंठन कर किरणें अशेषः,
क्यों रिझा पाया उसको,
मेरा अभिनव शृङ्गार नहीं।

तथा—

"इन्द्र धनु के नित सजी सी,
विद्युत हीरक से जड़ी सी
मैं भरी बदली रहूँ
चिर मुक्ति का सम्मान कैसा?

महादेवी जी की कविता में कलात्मकता का समावेश स्वतः ही हो गया है। यह इतिहास सिद्ध बात है कि कवि अपनी रचना में कला का संनिवेश करने के लिए यत्न शील नहीं होता। कला बरबस उसके भावों का अनुकरण करती चली जाती है। महादेवी जी की सफल कविताओं का आधार ही कुछ ऐसा है कि रस, रीति अलंकार आदि कला के प्रतिनिधि अंग स्वभावतः हो उसमें आते चले गए हैं। रूपक का सुन्दर विन्यास निम्नलिखित कवितांश में देखिये—

तुहिन कणों पर मृदु कम्पन से
सेज बिछा दें गान—
जहाँ सपने हों पहरेदार,
अनोखा एक नया संसार।

उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सम्मिश्रण निम्नलिखित कविता में देखें :—

पीले मुख पर सन्ध्या के
वे किरणों की फुलझड़ियाँ।
विधु की चांदी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी
जिसमें उजियाली रातें
लुटती घुलतीं मिसरी सी,
भिक्षुक से फिर जाओगे
जब लेकर यह अपना धन
करुणामय तब समझोगे,
इन प्राणों का महंगा पन॥

शब्दात्मक चित्रों का चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये :—

"दुख से आविल, सुख से पंकिल,
बुद्-बुद् से स्वप्नों से फेनिल
बहता है युग-युग से अधीर !
प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर !"

शब्द चित्रण का एक उदाहरण और देखिए :—

प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।
श्वासों में सपने कर गुम्फित,
बन्दनवार वेदना चर्चित।
भर दुख से जीवन का घट नित,
मूक क्षणों से मधुर भरूँगी आरती।
दृग मेरे दो दीपक झिलमिल,
भर आंसू का स्नेह रहा ढल।
सुधि तेरी अविराम रही जल,
पद ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती ॥

महादेवी जी के मधुर गायन में संगीतात्मकता तो है ही, साथ ही अनुप्रास आदि शब्दालंकारों के मनोरम पुट ने उसे और भी अभिराम बना दिया है :—

"पुलक-पुलक उर, सिहर-सिहर तन,
आज नयन क्यों आते भर-भर ?
सकुच सलज खिलती शेफाली,
उल्लास मौलश्री डाली - डाली,
बुनते नव प्रवाल कुञ्जों में
रजत श्याम तारों से जाली।
शिथिल मधुप वन गिन-गिन मधुकण,
हर सिंगार झरते हैं झर - झर
आज नयन आते क्यों भर-भर ?"

उपरिलिखित गीत में लयात्मकता, नृत्यात्मकता तथा गीतात्मकता उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होती चली गई है।

अलंकारों की भरमार निम्नलिखित मनोरम गीत में प्रचुर मात्रा में है :—

"धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त रजनी !
तारक मय नव वेणी बन्धन,
शीश फूल शशि का कर नूतन,
रश्मि वलय, सित धन अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी,
पुलकती आ वसन्त रजनी।"

और कितने उदाहरण प्रस्तुत किये जायें ? कवयित्री का तो प्रत्येक अक्षर आलंकारिक, चित्रमय, भावपूर्ण रहस्यात्मक, छायामय लय-पूर्ण तथा संगीत से ओतप्रोत है। ये सभी काव्य गुण अन्य किसी कवि की रचना में मिलेंगे यह हम प्रश्न सूचक चिन्ह (?) लगाकर ही कह सकते हैं।

महादेवी जी ने यद्यपि पद्य को ही अपने भावों की अभिव्यक्ति का साधन बनाया परन्तु उन्होंने गद्य में भी अपनी स्वभाविक प्रतिमा का प्रमाण उपस्थित किया है। काव्यमयता गद्य में भी तो निखर सकती है। इसीलिये तो किसी महानुभाव ने कह डाला :—'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्य ही कवियों की कसौटी है। गद्य में उनके निबन्ध संग्रह है—'शृंखला की कड़ियां' क्षयदा इत्यादि। इनके अतिरिक्त उनके रेखाचित्र और संस्मरण भी उच्च कोटि के हैं। निबंधों की साहित्यिकता और सामाजिकता उत्कृष्ट स्तर की है। इनमें महादेवी जी के भावों का गाम्भीर्य, मननशीलता, समस्याओं का प्रस्तावन और फिर उनका समाधान, मार्मिकता, चिन्तन आदि स्पष्ट रूप से व्यक्त है। उनके निबन्ध भी काव्यमय है इससे सिद्ध होता है कि मूलरूपेण वे काव्य-साधना की ही साधिका हैं।

कई विद्वानों को महादेवी का शाश्वत करुण विलाप अति मात्रा में खटका है। वे कहते हैं कि निष्कारण वेदना और तज्जन्य विलाप भी किस काम ? उनकी वेदना क्यों, किसके लिये और कैसे ? ऐसे-ऐसे प्रश्न विद्वानों को शंका में ग्रस्त किये हैं। हमारा मन्तव्य इस सम्बन्ध में निर्णयात्मक एवं ग्राह्य होगा ऐसी कल्पना हम कदापि नहीं कर सकते परन्तु संक्षेप में हम यह अवश्य कहेंगे कि जब तक खेतिहर अपने आपको मृत्तिकामय नहीं कर देता तब तक वह मिट्टी में

से सोना नहीं प्राप्त कर सकता। कवयित्री की वेदना के सम्बन्ध में उट्टङ्कित प्रश्नों के समाधानार्थ हमें उनके काव्य-महोदधि में गोता लगाना होगा, उसके तल तक पहुंचना होगा एक बार नहीं, दो बार नहीं, अनेक बार, तब निश्चय ही उनकी वेदना का रहस्य हमारी समझ में आ जायेगा। हां, अपनी तुच्छ बुद्धि अनुसार विश्वास पूर्वक हम कह सकते हैं कि उनकी वेदना केवल वेदना के लिये होती हुई भी किसी अज्ञात तत्त्व की प्राप्ति के लिये है। यह अभाव उनकी कविता में एक-एक वर्णन में उपलब्ध होता है। अभावग्रस्त प्राणी करुण क्रन्दन न करेगा तो और क्या करेगा? बस इस विषय में हम और कुछ न कहेंगे। नम्रता पूर्वक हमारा यही निवेदन है कि किसी को समझने के लिये उसकी विचारधारा परिस्थितियों एवं मनोदशाओं का अध्ययन सम्यक्तया कर लेना अत्यन्त आवश्यक होता है। कवयित्री तथा उनकी विचारधारा उनकी अपनी है उसे अवगत करने के लिये हमें अपने आपको उनकी विचार धारा के सांचे में ढालना होगा तब उनकी वेदना तथा तत्सम्बन्धी अन्य विचार सुगमता से बोधगम्य हो जायेंगे! साधिका की भांति हमें भी साधना-लीन होना होगा। अन्त में हम निश्शंक भाव से कह सकते हैं कि महादेवी जी का काव्य साधना शाश्वत सर्वाङ्गीण और सार्वभौम है। उनकी रचनाओं में लौकिक और पारलौकिक दोनों पक्षों का सुन्दर मिश्रण है। भाव और कला का उत्कर्ष उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र मिलता है। उनकी कृतियों में जहां भाव-प्रवणता चिन्तन शीलता तथा ममनात्मक गांभीर्य है वहाँ पर साथ ही साथ पद-लालित्य स्वर-माधुर्य, संगीतात्मकता और हृदयोल्लासकारी लय भी है। काव्य साधना ही उनका लक्ष्य है और काव्य साधना को ही वे उस लक्ष्य पूर्ति का माध्यम बनाये हुए हैं। भारत अनादि काल से 'महादेव' का आराधन करता आया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि उत्तम कविता द्वारा उसी आराधना का सौभाग्य महादेवी को भी प्राप्त होगा।

●

महादेवी की काव्य साधना

उमाराय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के कवियों के बीच महादेवी वर्मा एक विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी हैं। छायावादी कवियों के मध्य प्रसाद, निराला और पन्त के साथ ही उनका भी स्थान है। किन्तु अन्यान्य छायावादी कवियों से वे एक स्वतन्त्र और निर्जन राज्य की अधिवासिनी हैं। शायद इसका प्रधान कारण यह है कि यह एक संवेदनशील कोमल-हृदया नारी हैं। मैं महादेवी के काव्य में आन्तरिक अनुभूति का प्रकाश पाती हूं उनके साधना के पथ पर वह ही अकेली पथिक हैं। यह अकेला पथ ही उनका वाक्य है। इसलिये उन्होंने 'दीपशिखा' में कामना की है।

"पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला।"

क्योंकि—

'अन्य होंगे चरण हारे
और हैं जो लोटते,
दे शूल को संकल्प सारे।'

अधिकतर छायावादी कवियों ने परवर्तीकाल में उनके काव्य को एक आध्यात्मिक रूप देना चाहता है। लौकिक दृष्टि में यह बात स्थूल लगती है और आध्यात्मिकता आरोपित होकर उस बात को अनायास ही प्रवेश पत्र मिल जाता है। किन्तु प्रत्येक छायावादी कवि रहस्यवादी नहीं हैं। रहस्यवादियों के चित्त में किसी न किसी रूप में प्रेममय चिरन्तन प्रिय के प्रति विश्वास होना अत्यावश्यक है। यह विश्वास दो पथों से आ सकता है—चिन्ता या मनन से अथबा अन्तर के गंभीर वेदनाजिनत व्याकुलता से प्रसाद को प्रथम श्रेणी के पथ का रहस्यवादी कहा जा सकता है, किन्तु द्वितीय श्रेणी के रहस्यवाद के क्षेत्र में महादेवी अनन्या हैं। केवल मात्र मध्ययुगीय सन्त कवयित्री मीराबाई के साथ ही उनकी उपमा दी जा सकती है।

महादेवी के काव्य के आरंभ में ही हम लोग उनके अति संवेदनशील हृदय की तीव्र अनुभूति का परिचय पाते हैं। 'नीहार' परवर्ती काव्य में उनका रहस्यवादी रूप ही अधिकतर प्रकट है। महादेवी की यह रहस्यवादी भावना सम्पूर्ण रूप से (वैयक्तिक) किन्तु वह व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख तक ही सीमित नहीं है। व्यक्ति को स्पर्श करके इस भावना ने विश्वानुभूति को प्राप्त किया है। साधिका महादेवी ने परिपूर्ण रूप से उनके रूप के अन्तरालवर्ती अरूप के पास आत्मनिवेदन किया है—

मिलन मंदिर में उठा दूं
जो सुमुख से सजल गुंठन
मैं मिटू प्रिय निटा जो
तप्त सिकता में सलिल कण

आज मेरे मुख पर से सजल उनका कहना है।

"मैं नीर भरी दुख की बदली।"

एक बादल के समान अपने को विलीनकर बिला देने में उनकी सार्थकता है। प्रिय के साथ अपने सम्पर्क को बताते हुये कहा है—

"प्रिय चिरन्तन है सजनि?
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।"

अकरुण प्रियतम के लिए अपने दुर्निवार आकर्षण की व्याख्या करती हुई वह कहती हैं—

शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठुर हूँ

वेदना के अश्रु के भार से अवनत दोनों आँखों में इसी प्रिय के लिए वह अनन्तकाल तक प्रतीक्षा करती रहेंगी। मिलन की अपेक्षा विरह ही उनको काम्य है। क्योंकि—

"जान लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला।"

इसीलिये कहती हैं—

"मिलन का मत नाम ले
मैं विरह में चिर हूं।"

उनके चिरन्तन रूप का ध्यान करते करते वे जैसे खुद ही प्रिय रूप को प्राप्त कर लेती हैं। कहती हैं—

'शून्य मन्दिर में बनूँगी,
मैं प्रतिमा तुम्हारी।'

और इस एकान्त पूजा के नैवेद्य में—

'अर्चना हो शूल भोले
क्षार दृग जल अर्घ्य होले
आज करुणा स्नात उजला
दुःख हो मेरा पुजारी।'

यह दुःख ही उनके अंगों का भूषण है यही उनका श्रेष्ठ अर्घ्य है। इसीलिए—

'पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
उस दिन दूर क्षितिज के पार।
मिटता था निर्वाण जहाँ,
नीरव रोदन था पहरेदार।'

वहीं पर इस पीड़ा के साम्राज्य में अधिष्ठात्री साधिका हार मानने के लिये प्रस्तुत नहीं है। वह कहती हैं—

पर शेष नहीं होगी यह,
मेरे प्राणों की क्रीड़ा।
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा,
तुममें ढूढ़ूँगी पीड़ा।

लेकिन हमारी यह जीवन लीला कभी भी समाप्त नहीं होगी, तुमको पीड़ा के मध्य ढूँढ़ा है और तुम्हारे में ही (तुममें) पीड़ा को ढूढ़ूँगी।

सोचने से आश्चर्य होता है कि महादेवी के इस दुःखवाद ने उन्हें आत्मकेन्द्रित नहीं किया, वरन् उनको विश्वहृदय के निकट पहुंचाया है। शायद उसका कारण यह कि यह जो दुःख है जो केवल लौकिक दुःख ही नहीं है वह है गंभींर आध्यात्मिक वेदना का प्रकाश। इसीलिये व्यक्ति से लेकर विश्व तक उनकी अबाध गति है। दुःख के सम्बन्ध में कहते हुये महादेवी 'यामा' की भूमिका में कहती हैं कि यह दुःख ही मनुष्य को सहानुभूतिशील करता है एवं समस्त संसार को एक अच्छेद्य बन्धन में बाँधने में समर्थ होता है। मनुष्य की आँखों की एक बूँद अश्रु ही जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर कर देता है। मनुष्य अकेला ही सुख का उपभोग करता है लेकिन दुख का सबके साथ।

महादेवी का काव्य गति-प्रधान है। महादेवी जी अंग्रेजी और बंगला के रोमान्टिक काव्य द्वारा अत्यधिक प्रभावित और साथ ही प्राचीन भारतीय साहित्य तथा सन्त युग के रहस्यवादी कवियों के काव्यों का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया है। इसीलिए उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों का वाहन उनकी गीति कविताएँ हैं। सुन्दर उपमा, उपयुक्त शब्द चयन और भावप्रकाश के आन्तरिकता में महादेवी जी इसीलिये हम लोगों के हृदय को जीत लेती हैं। जब वह 'साम्ध्य-गीत' में जनाना चाहती हैं।

'यह सुख दुःखमय राग
बजा जाते हो क्यों अलबेले?'

तब उनकी कविता में हम लोग मैदान का मीठा वंशी-स्वर सुन पाते हैं। यही स्वर वृन्दावन के अतीत स्मृति को वहन करके लाते हैं।

महादेवी के काव्य की आलोचना करते समय बहुत से रूढ़ समालोचक उनकी आध्यात्मिक आकुलता की आन्तरिकता पर सन्देह प्रकट किया है। कहा है—'उनके काव्य में वक्तव्य का प्रकाश अस्पष्ट है, यहां तक कि कहीं-कहीं दुर्बोध्य भी है। वे यह भी कहते हैं कि इसीलिए यह विरह खूब स्वाभाविक नहीं है वह केवल कल्पना—विलास

मात्र है। यहां पर यही प्रतीत होता है कि महादेवी जी तीक्ष्ण-बुद्धि-सर्वस्व कवयित्री नहीं हैं उन्होंने केवल हृदय के उद्वेल उच्छ्वास और आवेग को ही अपने काव्य में प्रधान स्थान दिया है। इसीलिये उनके काव्य को पढ़ते समय अर्थ का वैसा अति सूक्ष्म विचार करने से पाठक को ठग जाना पड़ेगा।

इस प्रबन्ध में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि क्या महादेवी पर रवीन्द्रनाथ का कोई प्रभाव पड़ा है या नहीं, क्योंकि आधुनिक हिन्दी कविता में रवीन्द्रनाथ का प्रभाव अवश्य स्वीकार्य है। आलोचना के प्रारंभ में यह बता देना आवश्यक है कि महादेवी वर्मा और रवीन्द्रनाथ के काव्य-सुर में एक विराट पार्थक्य है। रवीन्द्र काव्य में आनन्द-वाद का जयगान, और दूसरे पहलू पर महादेवी के काव्य में दुःखवाद का आन्तरिक प्रकाश है। किन्तु व्यापक रूप में छायावादी तथा रहस्यवादी कवि लोग रवीन्द्रनाथ के भाव, भाषा और छन्द से बहुत प्रभावित हैं। महादेवी जी ने छायावाद की आलोचना के प्रसङ्ग में कहा है ये छायावादी लोग बहिर्विश्व में आपात विच्छिन्न खण्डवस्तुसमूह के मध्य में एक अखण्डता और एक निर्विच्छन्नता का अनुभव करते हैं। रवीन्द्रनाथ ने भी परिदृश्यमान सीमा के मध्य में असीम का सन्धान पाया है। इसीलिये महादेवी के काव्य में जबः

'क्षितिज की रेखा घुले धुल,
निमिष की सीमा मिटे मिल।
रूप के बन्धन गिरें खुल।

(दिगंत की सीमा रेखाएँ खो जायें, निमिष की सीमा विलीन होवे, रूप के बन्धन खुल जावें।)

रवीन्द्रनाथ ने प्रत्यक्ष किया है—

रौद्र मारवानो अलस वेलाय
तरु मर्मरे छायार खेलाय
की मुरति तव नीलाकाशशायी
नयने उठे गो आभासी।

इस अरूप रतन को महादेवी कहती हैं—

मेरे नीरव मानस में
वे धीरे - धीरे आये

(मेरे नीरव हृदय में वे धीरे धीरे आये।)

रवीन्द्रनाथ जैसे उन्हीं के चरणों की मधुर ध्वनि सुनकर कहते हैं—

'तोरा शुनिस्नि कि शुनिस्नि
की तार पायेर ध्वनि।
से जे आशे, आशे, आशे।'

महादेवी जब जीवन-मन्दिर-दीप जलाकर रखती हैं—

यह मन्दिर का दीप जलने दो।

तब रवींद्रनाथ भी कहते हैं—

'आमार ए देहो खानि तुले धरो
तोमार ए देवालयेर प्रदीप करो'

महादेवी के समान रवीन्द्रनाथ ने भी दुःख को निर्भय आह्वान किया है। किन्तु रवीन्द्र काव्य दुःख में ही दुःख की परिसमाप्ति नहीं है। यह दुःख जीवन को परिशुद्ध करता है पूर्णतर कर देता है। रवीन्द्रनाथ मन प्राण से जानते हैं—

'आमार ए' धूप ना पोड़ाले
गन्ध कि छुई नाहि ढाले
'आमार ए' दीप ना ज्वालाले
देयना किछुई आलो।'

दूसरी तरफ महादेवी के काव्य में तब सुख दुःख एकाकार हो जाता है।

'विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा।
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ न सीखा।
मधुर मुझ को होगए सब,
मधुर प्रिय की भावना ले।'

आज विरह का दीर्घ युग मिलन के क्षण काल मात्र के समान लग रहा है। लेकिन मैं न सीख पाई, मैं जान भी न पाई कि दुःख और सुख में कौन अधिक तीक्ष्ण है। मधुर प्रिय की भावना के कारण आज मेरे लिये विश्व मधुमय है।

दुःख का अतिक्रमण करके किसी सार्थकता की प्रत्याशा वह नही रखतीं।

महादेवी एक निभृत-दुःख साम्राज्य की अधीश्वरी हैं। यहां वह स्वतन्त्र है एकाकी और अनन्या।

महादेवी की अचिन्त्य वेदना

●

डॉ० श्याम प्रकाश

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥'

कविता के जन्म की कहानी के सम्बन्ध में संस्कृत का यह श्लोक सर्व प्रसिद्ध है। महर्षि वाल्मीकि के कण्ठ से तमसा के तट पर क्रौञ्च पक्षी की मृत्यु देखकर जो करुणामयी वाग्धारा प्रवाहित हुई, उसे ही गीत की प्रथम पंक्ति मानते हैं। साथ ही हिन्दी की ये पंक्तियां भी अवलोकनीय हैं—

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से निकला होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान ॥'

अस्तु कविता की सृष्टि, जीवन के सुखदुखात्मक मनोवेगों द्वारा ही हुई होगी।

महादेवी जी ने गीतिकाव्य ही अधिक लिखा है। उन्होंने गीति-काव्य के स्वरूप का अत्यन्त ही सुस्पष्ट एवं सुसमृद्ध विवेचन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार—

'सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था-विशेष का, गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।'

'गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिका वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुखदुखात्मक अनुभूति ही रहेगी। पर अनुभूति मात्र गीत नहीं, क्योंकि गेयता तो अभिव्यक्ति-सापेक्ष है। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुखदुखात्मक अनुभूति का वह शब्दरूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।'

'गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें सन्देह नहीं।'

मानव-जीवन में वेदना की स्थिति चिरकाल से रही है। फलतः साहित्य में वेदना का चित्रण भी अनादि काल से होता आया है। यह वेदना आध्यात्मिक हो सकती है अथवा सांसारिक। सांसारिक वेदना के दो रूप हो सकते हैं—एक तो वह जिसमें मानव अपने पारिवारिक दुःखों से अभिभूत रहता है और दूसरा जिसमें वह अन्य प्राणियों की दयनीय स्थिति पर संवेदना प्रकट करता है। महादेवी जी की कृतियों में इनमें से किस वेदना का अवलोकन होता है, यह विचारणीय है। इस सम्बन्ध में महादेवी जी द्वारा अपने दुःखवाद के विषय में लिखी गयी पंक्तियों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

'सुख और दुःख के धूपछाहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है; उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक

समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।'

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महादेवी जी के काव्यों में सांसारिक वेदना के दो रूपों में से प्रथम का सर्वथा अभाव है। दूसरे के होने का कारण बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। इस प्रकार उनकी कृतियों में आध्यात्मिक वेदना तथा सांसारिक वेदना के दूसरे रूप, इन दोनों के ही दर्शन होते हैं। वेदना के दूसरे रूप इन दोनों के ही दर्शन होते हैं। उनकी इन पंक्तियों से प्रकट होता है—

'मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।'

'महादेवी जी की कविता अलौकिक प्रेम और आध्यात्मिक विरह में सने हुए हृदय का मार्मिक उद्गार है, जिसमें अभाव-जन्य अतृप्ति की गन्ध नहीं और इस कविता-कामिनी के अविकल कलेवर में पावनता का ऐसा साम्राज्य है, जिसमें वासना के दंश का किंचित् भी लेश नहीं। जीवात्मा ने प्रकृति के अपार वैभव का दर्शन किया और इसमें उसने उस विराट् के सौन्दर्य-वैभव की कल्पना की। जीवात्मा की यही भावना अद्वैत-प्राप्ति के लिए तीव्रतर होती गयी।

वेदना की निष्पत्ति अधिकांशतः विप्रलम्भ शृंगार जन्य होती है। महादेवी जी के काव्यों में वेदना की अभिव्यक्ति का अधिकांश रूप यही रहा है। उन्होंने आत्मा को प्रेयसि और परमात्मा को प्रियतम के रूप में माना है और उस अज्ञात के साथ पति-पत्नी का मधुर सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया है। अपनी ललचायी हुई आँखों पर व्रीड़ा का पहरा होने के कारण उन्होंने उस अज्ञात एवं असीम प्रियतम की बस एक झलक भर पायी थी कि उस चितवन ने उन्हें पीड़ा की साम्राज्ञी बना डाला—

> 'इन ललचाई पलकों पर
> पहरा था जब व्रीड़ा का
> साम्राज्य मुझे दे डाला
> उस चितवन ने पीड़ा का।'

महादेवी जी को अज्ञात की उस प्रेममयी सत्ता में अटूट विश्वास है। उससे उनका मूक मिलन अवश्य हुआ था—

> 'कैसे कहती हो सपना है
> अलि! उस मूक मिलन की बात?
> भरे हुए अब तक फूलों में
> मेरे आँसू उनके हास।'

तथा—

> 'गई वह अधरों की मुस्कान
> मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।'

और फलतः उनकी यह अवस्था हो जाती है—

> 'जीवन है उन्माद तभी से
> निधियाँ प्राणों के छाले
> माँग रहा है विपुल वेदना
> के मन प्याले पर प्याले।'

इस वेदना के प्रति महादेवी जी का क्यों इतना अनुराग है, यह क्यों उनको इतनी प्रिय लगने लगी है कि प्याले क्या केटली (Kettle) की केटली खतम कर देने पर भी उनका जी नहीं भरता। वेदना के प्रति उनकी इस रुचि के कई कारण हैं। सब से पहला कारण यह है कि यह उन्हें उस असीम प्रियतम के द्वारा दी गयी है और प्रिय की दी हुई वस्तु होने के कारण वह मधुर भी है—

> 'मधुर मुझको हो गए सब
> मधुर प्रिय की भावना ले।'

उस विराट् पुरुष को मधुरता का अधिपति कहा गया है और उसके सारे अंगों को तथा व्यापारों को मधुर बतलाया गया है—'मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्' अतएव उस मधुरता की मूर्ति द्वारा दी गयी वेदना का भी मधुर होना स्वाभाविक ही है। यह पीड़ा ही, प्रिय का उपहार होने के कारण अब देवी जी के लिए सर्वस्व हो गयी हैं—

> 'मेरा सर्वस्व छिपा है
> इन दीवानी चोटों में।'

वेदना के प्रिय लगने का दूसरा कारण ही उस अखण्ड प्रियतम की याद सदा उनके मन में बनी रहती है। यह पीड़ा ही है जो प्रिय की मधुर स्मृति का सुख प्रदान करती

है। अतएव वे इस पीड़ा से विलग नहीं होना चाहतीं और उनके इस कथन में कितना आग्रह भरा हुआ है—

'वर देते हो तो कर दो ना
चिर आँख मिचौनी यह अपनी।'

पीड़ा के सुखद लगने का तीसरा कारण है कि उन्होंने पीड़ा में ही उस अनन्त प्रियतम को पाया है और उसमें वे पीड़ा ही ढूँढ़ना चाहती हैं—

'तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा
तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा।'

पीड़ा के प्रिय लगने का चौथा कारण है कि इससे जीवन की साधना सफल होती है! साधना में भय का स्थान नहीं। साधना की सिद्धि प्राप्ति में नहीं, प्रत्युत् विसर्जन में है। वेदना का यह संसार बहुत ही अनोखा होता है, जिसे एक सच्चा साधक ही सम्यक् रूप से जानने में समर्थ हो सकता है। मृत्यु से उसे भय नहीं, क्योंकि वह तो जीवन के विकास के लिए एक सोपान है और अमरता तो जीवन का ह्रास है—

'बिखर कर कन-कन के लघुप्राण
गुनगुनाते रहते यह तान।
अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास॥'

इसीलिए वे अमरों के लोक को भी ठुकरा देती हैं और अपने मिटने का अधिकार माँगती है—

'क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।'

उनके लिए ऐसे लोक का कोई मूल्य नहीं, जिसमें न वेदना है, न अवसाद, न जलन और न मिटने का रस।

'ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं—
जिसने जाना मिटने का स्वाद।'

विरह-मदिरा के मादक असर से वे ऐसी सराबोर हो चुकी है कि उसे छोड़ना उन्हें नहीं रुचता—'प्रिय से कम मादक पीर नहीं' वे अपने जीवन में उस अनन्त प्रियतम से तृप्ति का कण भर भी नहीं चाहतीं—

'मेरे छोटे जीवन में देना
न तृप्ति का कण भर
रहने दो प्यासी आँखें
भरती आँसू के सागर।'

वे तो चिर अतृप्ति की साधिका हैं। वे उस असीम की ओर निरन्तर बढ़ी जा रही हैं, जिसकी खोज में चिर विरह ही है, तृप्ति का स्थान नहीं। उनका यह विश्वास है कि कामनाओं की चिर-तृप्ति जीवन को निष्फल कर देती है और हमारी प्यास बुझते ही विरक्ति का स्वरूप ले लेती है। बादलों का सजल होना इसी में है कि सारा जल बरसा कर रीते हो जायँ तथा सुख की पूर्णता इसी में है कि उससे मन फिर जाय—

'चर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन।
पूर्णता यही भरने की
ढुल कर देना सूने घन,
सुख को चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन।'

उन्हें विरह में ही सुख प्राप्त होता है। वे मिलन नहीं चाहतीं और पीड़ा को ही अपना सर्वस्व मानती हैं—

'मिलन का मत नाम ले
मैं विरह में चिर हूँ।'

उन्हें एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित दिखाई पड़ता है, एक लघु क्षण निर्वाण के सौ-सौ वरदान देने वाला प्रतीत होता है और उन्हें ऐसा भान होता है कि उन्होंने वेदना में किसी अपूर्व निधि की प्राप्ति कर ली है—

'एक करुण अभाव चिर तृप्ति का संसार संचित
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत

पा लिया मैंने किसे इस वेदना से मधुर क्रम में,
कौन तुम मेरे हृदय में ?'

मुक्ति की उन्होंने कभी कामना नहीं की—

'जिसमें कसक न सुधि का दंशन
प्रिय में मिट जाने के साधन
वे निर्वाण – मुक्ति उनके
जीवन के शत बन्धन मेरे ।'

उन्होंने मधुर मिलन की स्थिति में भी तृप्ति की आकांक्षा नहीं की और उस मिलन-सुख में भी विरह-वेदना के व्याप्ति की ही कामना की है —

'आवे बन मधुर मिलन क्षण
पीड़ा की मधुर कसक सा ।
हँस उठे विरह ओठों में
प्राणों में एक पुलक–सा ।'

यह वेदना महादेवी जी के जीवन में व्याप्त हो गयी है और वह किसी भीगे वस्त्र के समान उनसे जा लगी है—

'पीड़ा मेरे मानस में
भींगे पट सी लिपटी है ।
डूबी सी यह निश्वासें
ओठों में आ सिमटी है ।'

उनके जीवन में वेदना का आतिशय्य इन पंक्तियों से स्पष्ट प्रतीत होता है –

'इस मीठी सी पीड़ा में
डूबा जीवन का प्याला,
लिपटी सी उतराती है
केवल आँसू की माला ।'

महादेवी जी ने उस अखण्ड सत्ता से मिलन-प्राप्ति के लिए उद्वेग, विकलता एवं व्यग्रता का मार्मिक चित्रण किया है, वस्तुतः अद्वितीय है—

गये तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंनें पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान ।
नहीं अब गाया जाता देव ।
थकी अंगुली हैं ढीले तार,
विश्व-वीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार ।'

यही नहीं अब तो उनका वह मन रूपी दर्पण भी टूट गया है जिसमें वे अपने प्रिय का स्वरूप निहारती रहती थीं । उन्हें चहुं ओर से विषाद की भावनाएँ ही घेरती चली जा रही हैं । व्याकुलता के तीव्रतर हो जाने के कारण उन्हें अपनी श्वासें भी प्राचीर सदृश लग रही हैं । आत्मा और परमात्मा के मिलन की यह उत्कण्ठा कितनी स्वाभाविक और कितनी आवेगपूर्ण है—

मेरे सजल मुख देख लेते,
यह करुण मुख देख लेते ।'

उनकी पीड़ा इतनी बढ़ गयी है कि वह समस्त विश्व को व्याप्त कर लेना चाहती है । यही कारण है कि वे इस दुःख, करुणा एवं संवेदना के आधार पर सम्पूर्ण सृष्टि से ही अपना सम्बन्ध स्थापित कर चुकी हैं—

'अलि मैं कण-कण को जान चली,
सबका क्रन्दन पहचान चली !'

प्रियतम ने उनकी अवहेलना कर दी है, पर उनको कोई गम नहीं । वे तो उसकी चिर-साधिका हैं । वे प्रियतम की अवहेलना की चोट को हृदय से लगाये उनके मार्ग में छलकती आँखें और हँसते ओठ ही बिछाती हैं । परन्तु साथ ही महादेवी जी की साधना में मान एवं आत्मसम्मान का भाव भी निहित है । इसीलिए वे यह प्रश्न कर बैठती हैं—

'मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्यलोक को व्रीड़ा,
उनके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?
उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन
उनमें अनन्त करुणा है
मुझ में असीम सूनापन ?'

दूसरी ओर महादेवी जी के मान का वह स्वरूप भी दर्शनीय है। उनका यह दावा है कि यदि वे उसके प्रति स्नेह न रखती तो भला उस प्रिय को पूछने वाला ही कौन था।

'चिन्ता क्या है, हे निर्मम !
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जाएगा तेरा ही,
पीड़ा का राज्य अँधेरा।'

वस्तुतः यह किसी दर्प का रूप नहीं है। भक्त एवं ईश्वर के बीच कभी-कभी एक ऐसी भी स्थिति आती है जब वह ईश्वर को दो-चार बातें सुना लेता है। इस सम्बन्ध में किसी भक्त की ये बातें याद आती हैं, जब वह कहता है—

'कृपा की न होती आदत तुम्हारी,
तो सूनी ही रहती अदालत तुम्हारी।
गरीबों के दिल में जगह तुम न पाते,
तो किस दिल में होती हिफाजत तुम्हारी।
न मुलजिम ही होते न तुम होते हाकिम,
न घर-घर में होती इबादत तुम्हारी।
गरीबों की दुनिया है आबाद तुमसे,
गरीबों से है बादशाहत तुम्हारी।
तुम्हारे ही उलफ़त के हैं नेत्र-बिन्दु,
तुम्हें सौंपता हूँ अमानत तुम्हारी।'

प्रेयसि उस अनन्त प्रियतम के पास पत्र द्वारा कुछ संदेश भेजने की बात भी सोचती है। पर उस विरह-व्याकुलता की तो दशा ही कुछ और है। वह उसकी मधुर याद में अपनी सारी सुध-बुध खो बैठी है। यही कारण है कि वह लिखना कुछ चाहती है, पर लिख कुछ और ही जाती है—

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती ?
दृग जल की सित मसि है अक्षय,
मसि प्याली झरती तारक द्वय,
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर,
सुधि से लिख श्वासों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुध पन में
लिखती हूं कुछ, कुछ लिख जाती।
कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती ?

एक बात और भी है। वह पत्र लिखे भी तो कहाँ ? उनका प्रियतम तो उन्हीं में खो गया है। अतः अब किसे और कहाँ सन्देश भेजा जाय—

'अलि कहाँ सन्देश भेजूँ ?
मैं किसे सन्देश भेजूँ ?
नयन-पथ से स्वप्न में मिल
प्यास में घुल, साध में खिल,
प्रिय मुझी में खो गया
अब दूत को किस देश भेजूँ ?'

ऊपर कहा जा चुका है कि महादेवी जी मिलन की भूखी नहीं हैं, पर मिलन की चाहना उनके मन में अवश्य है। इस मिलन में भी वे पहले प्रिय के कारणों को आँसुओं से ही धोना चाहती हैं। वेदना की अभिव्यक्ति अश्रुओं द्वारा उत्कट रूप में हो जाती है, इसीलिए विरहिणी अपने सारे अंगों को गलाकर नेत्र-द्वय के ही निर्माण की याचना करती है—

'आज आये हो हे करुणेश !
इन्हें जो तुम देने वरदान।
गला कर मेरे सारे अंग,
करो दो आँखों का निर्माण।'

महादेवी जी उस निराकार अखण्ड परमेश्वर प्रियतम की मानसिक अर्चना भी प्रारंभ करती हैं, जिसमें उनका लघुतम जीवन ही प्रिय का सुन्दर मन्दिर है और श्वासें ही नित्य उसका अभिनन्दन करती रहती हैं—

'क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर
मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं
नित प्रिय का अभिनन्दन रे।
पद-रज को धोने उमड़े
आते लोचन में जल कण रे।
अक्षत पुलकित रोम मधुर
मेरी पीड़ा का चन्दन रे।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल
मेरा यह दीपक मन रे।

मेरे दृग के तारक में नव
उत्पल का उन्मीलन रे।
धूप बने उड़ते रहते हैं
प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे।
प्रिय - प्रिय जपते अधर
ताल देता पलकों का नर्तन रे।'

जब साधिका इस वेदना और आँसुओं के बल पर अपने साध्य को प्राप्त कर लेती है तब उसे यह स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि प्रिय और प्रेयसी एक ही हैं तथा दुःख सुख में बदल जाता है और विरह मिलन में। इस स्थिति में वह गा उठती है—

'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

● ● ●

दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।'

जब प्रिय और प्रेयसि एक ही हैं तब उस प्रगाढ़ तादात्म्यावस्था में एक दूसरे के परिचय का प्रश्न ही नहीं उठता

'तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या ?'

वस्तुतः आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही हैं। केवल अज्ञान मात्र ही उसमें पार्थक्य का भ्रम उपस्थित करता है। इस अज्ञानावरण के हटते ही प्रेयसि और प्रियतम के अभिनय की भी इति श्री हो जाती है—

'चित्रित तू मैं रेखाक्रम,
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?'

उनका प्रिय चिरन्तन है और इस चिरन्तन प्रिय को प्राप्त कर उनका सुहाग भी अमर हो गया है—

प्रिय चिरन्तन है सजनि,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।'
'सखि मैं हूं अमर सुहाग भरी,
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी।'

आत्मा अमर है, पर जब आत्मा प्रियतम परमात्मा में लीन हो जाती है, तब उसका यह अमरत्व भी नष्ट हो जाता है—

'जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तब देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल।'

महादेवी जी के काव्य में वेदना के उस रूप का, जिसमें मानव अन्य प्राणियों की दयनीय स्थिति पर संवेदना प्रकट करता है, अधिक चित्रण उपलब्ध नहीं होता, पर साथ ही उनकी कृतियों में इसका नितान्त अभाव भी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने सुख में लीन व्यक्तियों की अपेक्षा दुःखाभिभूत समाज एवं उनकी कारुणिक स्थिति पर विशेष प्रकाश डाला है। महादेवी जी दुःख को सुख से अधिक महत्व देती है। उनका यह विश्वास है कि दुःख ही मानव मात्र को परस्पर निकट लाने का एक मात्र साधन है।

'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सब को बाँट कर—विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।'

उनकी इस वेदना के मूल में दुःखी प्राणियों के प्रति कल्याण-कामना ही निहित प्रतीत होती है। महादेवी जी के काव्य में प्रकृति ने एक सहायिका के रूप में योग-दान दिया है। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति का मानवीकरण करते हुये उसे वेदना में लीन चित्रित किया है। रात्रि के करुण रोदन का कितना मार्मिक चित्रण किया गया है—

'घोर घन का अवगुण्ठन डाल,
करुण-सा क्या गाती है रात।'

महादेवी जी ने प्राकृतिक तत्वों को प्रतीकवत् ग्रहण करते हुये उनके माध्यम से मानव-वेदना की ओर ही संकेत किया है। सुगन्धि से पूरित पुष्प के सुगन्धि रहित होकर मुरझा जाने में पीड़ित मानवता की ओर ही संकेत किया गया है—

देकर सौरभ दान पवन में
कहते जब मुरझाये फूल,
'जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल।'
'अब इनमें क्या सार' मधुर
जब गाती भौंरों की गुंजार,
मर्मर का रोदन कहता है
'कितना निष्ठुर है संसार

इस वेदना के समक्ष वे प्राकृतिक सौंदर्य को भी विस्मरण कर देती हैं। प्राकृतिक सौंदर्य से सज्जित भारत माता से उनका कितना स्वाभाविक प्रश्न है—

मृदु रजत रश्मियाँ देखूँ
उलझी निद्रा पंखों में,
या निर्निमेष पलकों में
चिन्ता का अभिनव देखूँ
तुझ में अम्लान हँसी है
इसमें अजस्र आँसू जल,
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ।

कवयित्री ने प्रकृति से संसार की क्षण-भंगुरता का उपदेश भी ग्रहण किया है।

विकसते मुरझाने को फूल
उदित होता छिंपने को चंद
शून्य होने को बढ़ते मेघ
दीप जलता होने को मंद
यहाँ किसका अनन्त यौवन!

महादेवी जी को दुःख प्रिय है, यह कहा जा चुका है। यह स्पष्टतः बौद्ध-दर्शन का ही परिणाम है कि वह दुःख के सोपान से समष्टि तक पहुंचना चाहती हैं और इसीलिये वे कण-कण से परिचित हो लेना चाहती हैं—

'तुम मानस में आ बस जाओ
छिप दुःख के अवगुण्ठन से
मैं तुम्हें खोजने के मिस
परिचित हो लूँ कण-कण से!'

महादेवी जी की वेदना के संबन्ध में एक बात जो स्मरण रखने की है, वह यह है कि इनकी वेदना हृदय के मर्मस्थल पर चोट करने वाली तो है पर कभी अमर्यादित उद्वेग या अनर्गल प्रलाप का रूप नहीं धारण करती। इस प्रकार महादेवी जी की दुःखाभिव्यक्ति में एक प्रकार का संयम सर्वत्र व्याप्त है।

महादेवी जी के संबन्ध में एक बात और दृष्टव्य है कि उनके संपूर्ण काव्यों के वेदना से परिप्लावित होने पर भी, वे अपने हृदय की बात पूर्ण रूप से अभी तक नहीं अभिव्यक्ति कर सकी हैं—

'पर न मैं अब तक व्यथा का
छन्द अन्तिम गा सकी हूं।'

वस्तुत महादेवी जी की वेदना अचिन्त्य है। फिर जो अचिन्त्य है, उसे चिन्त्य—चिन्तन का विषय, कैसे बनाया जा सकता है।

महादेवी का छायावाद

अनन्त कुमार पाषाण

'तरी को ले जाओ मझधार,
डूबकर हो जाओगे पार।'
—महादेवी

सुश्री महादेवी का छायावाद अन्य महान् छायावादी कवियों से कैसे भिन्न है? जिस आन्दोलन की सामूहिक शक्ति को छायावाद नाम दिया जाता है, उसका नेतृत्व चार ऐसे महान् कवियों ने किया था, जो अपने विचारों और वृत्तियों में एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न थे। छायावाद के महान् कवियों की यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही उसकी शक्ति है। प्रसाद जी में जहाँ मधुर श्रृंगार भावना का विलास था, वहीं दर्शन की ऋजुता भी थी। निराला जी पौराणिक कथाओं का आधार लेकर चले थे। उनकी महानतम रचनाएँ पौराणिक या परम्परागत सत्यों से सम्बन्धित हैं—"पंचवटी प्रसङ्ग 'राम की शक्ति पूजा,' 'महाराज शिवाजी का पत्र,' 'गीतिका' और 'आराधना' के गीत, 'तुलसीदास' आदि सभी भारतीय परम्परा के गौरव को अभिव्यक्त करते हैं। निराला जी ने रामकृष्ण-वचनामृत का अनुवाद हिन्दी में किया था और वह रामकृष्ण-मिशन से भी संबन्धित रहे थे। स्वामी विवेकानन्द की कई कविताओं का अनुवाद भी उन्होंने किया था। स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में पन्त जी की भी एक कविता 'वीणा' में है—"माँ अल्मोड़े में आये थे जब राजर्षि विवेकानन्द तब मग में मखमल बिछवाया दीपावली का विपुल अमन्द!" आगे चलकर 'वीणा' के कवि पंत ने विदेशी उपलब्धियों का समन्वय भारतीय भावनाओं से किया और 'पल्लव' की सृष्टि की। 'पल्लव' की भूमिका में भारतीय परंपरा को उन्होंने नापा-जोखा और नवीन सम्भावनाओं की विकास-शक्ति पर विचार किया। यदि प्रसाद में वय प्रौढ़ता की तटस्थता थी और निराला में यौवन का ओज था, तो पन्त जी में कैशोर्य की मधुरता थी और बालकों का सा सरल भाव था। विद्रोह के बावजूद भी पन्त जी में परंपरा के प्रति समुचित सम्मान था और अपने प्रति एक समीक्षात्मक दृष्टि। फलतः मनन कर, मनन शकुनि, नादान।" हँसते हैं विद्वान् आदि।

महादेवी जी ने किसी का अनुकरण नहीं किया और अन्य कवियों ने भी पूर्णरूपेण उनका अनुकरण करने में अपने को असमर्थ पाया। छायावादी कवियों में महादेवी जी शायद सबसे अधिक स्वतन्त्र हैं। जहां तक छायावादी शैली का प्रश्न है, उन्होंने अपनी शैली कभी नहीं बदली। वह आरंभ से अन्त तक छायावादी रही हैं। शायद स्वभावतः वह ही सबसे अधिक छायावादी ही हैं, पर अतिशय स्वतन्त्र व्यक्तित्व के कारण उनका छायावाद किसी बनाई हुई परिभाषा में न बँध सका। छायावादी कवियों में महादेवी जी पर ही सबसे कम विश्लेषणात्मक साहित्य है। निराला जी पर लिखा अधिकाँश साहित्य व्यक्ति विश्लेषण होकर ही रह गया! पर दुर्भाग्यवश महादेवी जी का व्यक्तित्व अतिशय मौन और शाँत होने के कारण विश्लेषण का विषय न बन सका। निराला जी ने परिमल की भूमिका में और पन्त जी ने 'पल्लव' की भूमिका में, व प्रसाद जी ने 'छायावाद' नामक अपने लेख में अपने-अपने ढङ्ग से छाया-

वाद का बचाव किया। महादेवी जी ने जहाँ भी लिखा, केवल अपने विचारों को व्यक्त करने को, विरोध को नहीं। उन्होंने कभी लड़ाई नहीं की। फलतः उनका प्रभाव एकदम से उभर कर सामने नहीं आ सका। कवि सम्मेलनों से वह बचती थीं और प्रगतिवाद के युग में भी उन्होंने न कोई सामञ्जस्य ही किया और न विरोध ही। छायावाद के चारों महान् कवियों में केवल उन्होंने ही जमकर नौकरी की और नौकरी भी शिक्षा देने की अध्यापकों का-सा धैर्य उनमें सदा रहा और वैसा ही विनय भी। प्रधान अध्यापिका होने के अलावा, वह चित्र भी बनाती हैं और उनके जीवन का एक भाग उत्तर-प्रदेश के बाहर मालवा में बीता है। इंदौर एक सुन्दर नगर है, मैं जानता हूं क्योंकि मैं वहाँ रहा हूँ। श्री माखनलाल चतुर्वेदी का संबन्ध भी मालवे से है। पन्त जी और प्रसाद जी सदा उत्तर प्रदेश में ही रहे (प्रधानतः) केवल निराला जी का प्रगाढ़ संबन्ध बंगाल से रहा। निराला जी ने जूही की कली में मलयानिल को बुलाया, जो बंगाल में बहता है। महादेवी जी के काव्य में रात्रि के वातावरण की प्रधानता है और मालवे की रातें प्रसिद्ध हैं।

इंदौर का महत्व महादेवी जी के जीवन में क्या है, यह उनके 'अतीत के चलचित्र' पढ़कर जाना जा सकता है। वहीं उनकी चित्रकला का आरंभ भी हुआ और दरिद्र किन्तु भोले मालवी लोगों से उनका परिचय हुआ। हिन्दी साहित्य के विकास में ही मालवा ने योग नहीं दिया, अपितु भारतीय राजनीति पर भी मालवीय संस्कृति की गहरी छाप पड़ी। मालवा का प्रधान गुण है स्वतन्त्रता, जो राजनीति में भी वैसा ही रहा।

महादेवी जी के प्रकृति-वर्णन पर मालवे की गहरी छाप है। मालवे की सुरम्य पर शान्त मृदुल प्रकृति को कालिदास ने अपने 'मेघदूत' में वाणी दी थी। 'मेघदूत' का प्रकृति-वर्णन एक ही शक्ति से प्रेरित हैं। 'मेघदूत' में भी प्रकृति अपने स्वतंत्र रूप में वर्णित है, याने केवल उद्दीपन होकर ही नहीं रह गयी है। मालवे में बादल भी आते हैं तो हौले से, दोपहर को मुखर पिक भी हौले-हौले बोलते हैं (मुखर पिक हौले-हौले बोल), साँझ भी रेशम के जूते पहन कर आती है और धूप भी मालवे की अन्य प्रान्तों से अधिक नम्र होती है। यह शान्त प्रकृति की मौन मधुरता ही महादेवी जी के काव्य में सर्वत्र व्याप्त है—

> छाया की आँख मिचौनी
> मेघों का मतवालापन,
> रजनी के श्याम कपोलों
> पर ढरकीले श्रम के कन;
> फूलों की मीठी चितवन
> नभ की ये दीपावलियाँ,
> पीले मुख पर सन्ध्या के
> वे किरणों की फुलझड़ियाँ।

कालिदास प्रकृति के मृदुल पक्ष के कवि हैं। महादेवी जी ने एम० ए० संस्कृत में किया है पर उनकी भाषा में समासों का अभाव है। इस दृष्टि से महादेवी जी और प्रसाद जी समास-शैली से बचे हैं। यह बचना जानबूझ कर नहीं है। उनका संगीत खड़ी-बोली के प्राणों से स्वभावतः अनुप्राणित है।

छायावाद के प्रधान कवियों में पन्त जी प्रकृति के कवि माने गये हैं। लगभग एक ही विषय पर पन्त जी और महादेवी जी की रचनाएँ देखने से उन दोनों के व्यक्तित्व का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्रातःकाल के वातावरण पर पन्त जी की प्रसिद्ध उक्तियाँ हैं—

> प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!
> तूने कैसे पहिचाना?

● ● ●

या

> कनक छाया में जबकि सकाल
> खोलती कलिका उर के द्वार,
> सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
> पिवल बन जाते हैं गुञ्जार···

अब लगभग इन्हीं विषयों पर महादेवी जी की उक्तियाँ देखिये—

> चुभते ही तेरा अरुण बान,
> बहते कन-कन से फूट-फूट,
> मधु के निर्झर से सजल गान।

● ● ●

सौरभ का फैला केश-जाल
करतीं समीर परियाँ विहार;
गीली केसर-मद झूम-झूम
पीते तितली के नव कुमार;

पंत जी ने मधुप को लिया है—कन्या के रूप में—प्रभाव पड़ता है अल्हड़पन का, बाल-सुलभ चपलता का। उन्होंने उस कुमारी के गुञ्जन के स्वर को लिया है, वही गुण उन्होंने बहुत पसन्द किया है। उन्हें स्वर प्रिय है। फिर चुने कटोरों में मधुपान है—कवि-सुलभ चयन की वृत्ति है स्वाद के प्रति, भोग की परिष्कृति का आग्रह है और वह संयमपूर्वक—कुछ-कुछ मधुपान .... एक मानसिक स्थिति है। महादेवी जी ने समस्त संसार में मधु के निर्झरों को बहते देखा है। पन्त जी में कुतूहल अधिक है, महादेवी जी ने समस्त संसार में मधु के निर्झरों को बहते देखा है। पन्त जी में कुतूहल अधिक है, महादेवी जी में व्यापक परिवर्त्तनों की सुखद स्वीकृति। पन्त जी में व्यक्ति का भाव-संघर्ष है—एक कलिका कनक की छाया अर्थात् तारुण्य की अवस्था में हृदय के द्वार खोल देती है; महादेवी जी समीर की मुक्त-केशा परियों को विहार करते देखती हैं। पन्त जी ने पुरुष मधुप को कन्या बनाकर ग्रहण किया है, महादेवी जी ने नारी के छोटे-छोटे बच्चे लिये हैं—'तितली के नवकुमार'। पन्त जी ने सुरभि की सम्मोहक पीड़ा में व्यक्तित्व का विलय देखा है—प्रेम का आत्मसमर्पण। गुञ्जार गीत में व्यक्त हुआ है—मधुपों के बाल नहीं रह गये हैं केवल गुञ्जार रह गयी है। कवि नहीं रह गया है—अपने गीतों की गूँज में उसका दैहिक व्यक्तित्व अन्तर्धान हो गया है। पन्त जी ने जहाँ मधुप के श्याम सुन्दर बाल लिये हैं, वहाँ महादेवी जी ने बहुरंगी तितलियों के नवीन (उत्साहपूर्ण) कुमार (पवित्र हृदय) लिये हैं। कुतूहल और विस्मय दोनों में है पर पन्त जी में स्वर के प्रति आकर्षण है, महादेवी जी में रंग व गन्ध के प्रति; पन्त जी में शृंगार की भावभूमि है, महादेवी जी के नवकुमारों में वात्सल्य की भी छाया है; पन्त जी में भी आर्द्रता है और महादेवी जी में भी; पन्त जी ने प्रातःकाल की कनक छाया में गुञ्जार का आयोजन किया है; महादेवी जी ने प्रातःकाल को ही सूत्रधार माना है, पन्त जी में कवि और प्रकृति दोनों हैं, महादेवी जी में केवल प्रकृति ही प्रकृति। है—सारा विश्व जिसमें खो गया है, कवि भी उसी में खो गया है। पन्त जी में आत्म-साक्षात्कार है, महादेवी जी में आत्म-विस्मृति।

निराला और प्रसाद में भी प्रकृति मानव की सहचरी है। प्रसाद में कहीं वह उद्दीपन है और कहीं नाटकीय घात-प्रतिघातों का अभिव्यक्त स्वरूप। 'कामायनी' में सर्वत्र मानवीय संघर्षों के अनुकूल होती हुई प्रकृति बदली गयी है। गीतों में प्रकृति ने कवि के अपने भावों और वृत्तियों को वाणी दी है—"बीती विभावरी जाग री!" प्रसाद जी में नाटकीय संघर्षों की प्रधानता है, उन्होंने न तो जबर्दस्ती समन्वय कराया है और न संघर्ष का ही आग्रह किया है। संघर्ष होता है, बढ़ता है और समन्वय संघर्ष की ही चरम स्थिति के रूप में सामने आता है। प्रकृति सृष्टि के चिरन्तन संघर्ष का प्रतिबिम्ब है। कामायनी का सारस्वत नगर मौन और विक्षुब्ध बन जाता है, वेदी की ज्वाला सहसा ही धधक उठती है और फिर हृदय की झंझा को व्यक्त करती वास्तविक झंझा और विनाश का आयोजन। विनाश के चरम शिखर पर पुनः सृष्टि का क्रम आरम्भ होता है, यात्रा फिर चल पड़ती है—सत्व, रज, और तम से अतीत—कर्मक्षेत्र में भी "सुख-दुख से है उदासीनता!" न्याय के आग्रह पर जब सत्य की प्रतिष्ठा पुनः नवीन रूप से होती है, बुद्धि समर्पण कर देती है और प्रकृति शान्त हो जाती है। निराला में या तो प्रकृति अपने स्वतंत्र रूप में है—

दिवसावसान का समय मेघमय
आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे............

और या फिर 'बादल-राग' में वह कृषक की अधीर पुकार से विचलित होती है और विप्लव का आयोजन करती है। 'तुलसीदास' में भारतीय इतिहास को निराला ने प्रकृति की भाषा में व्यक्त किया है—"शत-शत अब्दों का सान्ध्य-काल" आदि 'राम की शक्ति पूजा' की प्रकृति 'कामायनी' की प्रकृति की तरह मानवीय चरित्रों के संघर्षों का प्रतिनिधित्व करती है—"बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।" 'यमुना के प्रति' में भी प्रकृति

के द्वारा इतिहास अभिव्यक्त हुआ है। पर निराला में रहस्यवाद प्रधान था, इसीलिये उनकी कलियों को ब्राह्मण पूजा के लिए तोड़ता है—देवता के चरणों में समस्त प्रकृति अर्पित है और अन्ततोगत्वा तो सारी प्रकृति ही इष्टमय हो गयी है—

वन देवी के हृदय-हार के
हीरक झरते हरसिंगार के···

या

रही आज मन में
वह शोभा, जो देखी थी वन में।

या

अस्ताचल रवि, जल छलछल छवि,
स्तब्ध विश्वकवि, जीवन उन्मन,
मन्द पवन बहती सुधि रह-रह
परिमल की कह कथा पुरातन।

निराला में परिमल की कथा सदा पुरातन है, वैसे ही जैसे पन्त में सदा वह नवीन है। एक में स्मृति है, दूसरे में परिचय।

महादेवी जी में प्रकृति ने जहाँ एक ओर नश्वर जगत् के इतिहास को व्यक्त किया है, वहीं दूसरी ओर मानव-हृदय को चिरन्तनता का आश्वासन दिया है। नश्वरता इतनी व्यापक है कि विस्तृत नभ का कोई कोना उससे कभी खाली नहीं होता—"परिचय इतना, इतिहास यही आयी थी कल मिट आज चली।' यह सही है कि महादेवी जी में की व्यापकता के साथ स्वयं कवि भी व्यापक बन गया प्रकृति है—कवयित्री इन्द्रधनुषी नित सजी रहना चाहती है क्योंकि चलते रहना ही जीवन है। जो चिर-बटोही है वह बाट से मिलकर एक हो गया है और इसीलिये प्रश्न करता है—

"चिर-बटोही मैं, मुझे चिर-पंगुता का दान कैसा ?"

सन १९३२ में महादेवी जी ने रश्मि की भूमिका में लिखा था—"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।··· मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं—एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।"

इतना सब होते हुए भी दुःख के प्रति उनको अवांछित मोह नहीं है। 'रश्मि' की भूमिका में ही वह आगे जाकर कहती हैं—"व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व·····"—

मृगमरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मैं मधु हूं
मुझसे क्या पतझर का नाता।'
दुख के पद छू बहते झर झर,
कण कण से आँसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम
जग को आमन्त्रित कर लाता।

यही महादेवी जी के छायावाद की विशेषता है—वह व्यापक है पर सामञ्जस्य या विद्रोह दोनों ही उसमें नहीं है। वह परिवर्तन को स्वीकार करता है पर परिवर्तन के पल-पल बदलते दृश्यों में ही सौन्दर्य की सत्ता को पाता है—

पाहुन से आते जाते कितने सुख से दुख के दल,
वे जीवन के क्षण क्षण में भरते असीम कोलाहल
तुम बन आना नीरव क्षण!
प्राणों के अन्तिम पाहुन!

वह सूक्ष्म है किन्तु जितना अधिक सूक्ष्म वह बनता है, उतना ही अधिक स्थूल जगत् के सौन्दर्य का बोध उसे होता है। होते-होते कवि का 'स्व' इतना सूक्ष्म हो जाता है कि संसार की समस्त सत्ता में विविध रूपों में व्याप जाता है। आकृति के बन्धन टूट जाते हैं किन्तु निराकृति बन्धन नहीं बन पाती। एक अवस्था हो जाती है निर्विकल्प की-सी—जब प्रत्येक आकार कवि के हृदय को साकार करता है और निराकार का बोध कवि के अपने हृदय से अव्यक्त होता है। कवि का हृदय प्रकृति को देखने जाता नहीं है, प्रकृति अपना हृदय स्वतः उसके समक्ष खोल देती है। महादेवी जी कभी कव-

मित्री बनकर प्रकृति में लय हो जाती हैं और कभी प्रकृति बनती हैं और स्वयं अपने में लीन हो जाती हैं। प्रकृति और कवि-चेतना का यह आदान-प्रदान महादेवी जी के छायावाद की विशेषता है। सत्ता की सीमाओं के इस लोप को उन्होंने अनेक दृष्टियों से देखा है—

विरह का तम हो गया अपार
मुझे अब वह आदान-प्रदान,
बन गया है देखो अभिशाप,
जिसे तुम कहते थे वरदान।

या

किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,
है एक मुझे मधुमय विषमय ?
मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय !
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ
प्रतिरोमों में पुलकें लहरीं !

फलतः साधारण दैनिक जीवन-व्यापार और प्रतिदिन के सुख-दुख से भरे सम्पूर्ण जीवन को स्वीकार करने का आह्लाद उनके सम्पूर्ण काव्य में भरा पड़ा है—

जिसको पथ-शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन, गह्वर;
प्रिय के सन्देशों के वाहक
में सुख-दुख भेटूँगी भुजभर;
मेरी लघु पलकों से छलकी
इस कण-कण में ममता बिखरी !

इसी आह्लादकारी स्वस्थ सुन्दर स्वीकृति की गूँज उनकी प्रकृति ने प्रतिध्वनित की है—

झूमा एक ओर रसाल,
काँपा एक ओर बबूल।

या

ओढ़े मेरी छाँह
रात देती उजियाला,
रजकण मृदु पद चूम
हुए मुकुलों की माला।
मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं।

छायावाद में इतना आह्लाद दुःख के पैरों पर अन्यत्र खड़ा नहीं हुआ, स्थूल जीवन को इतनी पूर्णता से सूक्ष्म जीवन ने अन्यत्र आत्मसात नहीं किया।

कवि की चेतना विश्व-चेतना बन गयी है। स्नेह देने में भी देने का जो अहंकार होता है, वह यहाँ नहीं है। - For we receive but what we give, And in our lives alone does Nature live महादेवी जी के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि Nature lives as much in her life as she lives in the life of Nature. She is as much a part of Nature as Nature is a part of her अर्थात् उनके जीवन में प्रकृति उतनी ही अभिव्यक्त है, जितनी वह प्रकृति के जीवन में हैं, प्रकृति का वह उतनी ही अंश हैं, जितनी कि प्रकृति उनकी अंश है।

सच पूछा जाये तो अंश और अंशी का सम्बन्ध ही नहीं रह गया है, क्योंकि महादेवी जी के छायावादी विश्व में पूर्णता ने विरह का स्वाद चखने के लिये, संयोग को अधिक आवेग-मय बनाने के लिये अपने भीतर से ही अपूर्णता की सृष्टि की है—

सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता में है पूर्ति - विकास।

क्योंकि 'दृष्टि का निक्षेप है बस रूप-रङ्गों का बरसना।' पूर्णता में अनुभूति का भोग्य और भोक्ता एक हो जाते हैं इसलिये अपूर्णता में ही रस की भाव-सिद्धि सम्भव है—

शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा
प्राण आकुल के लिये
संगी मिला केवल अँधेरा,
मिलन का मत नाम ले
मैं विरह में चिर हूँ।

और इसी रससिद्ध का स्पष्टीकरण देखिये—

आकुलता ही आज
हो गई तन्मय राधा

विरह बना आराध्य
द्वैत क्या कैसी बाधा।
खोना - पाना हुआ
जीत वे हारे ही हैं।

और जब द्वैत की बाधा समाप्त भी होती है तो केवल आराधक ही रहता है किन्तु वह रहता है आराध्य बनकर—"शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।" यह व्यापकत्व, यह तादात्म्य उपलब्ध होता है प्रगाढ़ दुःख से। दुःख ही समस्त संसार को मिला सकता है, इसलिये ही उसमें मिलन का जो सुख है वह सुख में नहीं। सुख मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है, इसलिये सुख दुःख का कारण है किन्तु दुःख सबको मिला देता है, द्वैत को समाप्त कर देता है, इसलिये ही दुःख ही सुख का कारण है और दुःख ही ममता का उत्स है। वह असीम, वह अनन्त संसार की ममता का पुञ्जीभूत रूप है और इसीलिये उसमें सबके दुःख आत्मसात करने की शक्ति है। वह अनन्त असीम आराध्य अपने अपूर्ण आराधक से अश्रु माँगने आया क्योंकि अश्रु प्रेम के प्रतीक हैं और इन अश्रुओं की सहायता से ही आराधक आराध्य बनने की क्षमता से युक्त है। किन्तु जागते-जानते आराधक अपना दुःख अपने आराध्य को कैसे दे सकता है। इसीलिये आराध्य नींद में आता है—"अश्रु मेरे माँगने जब नींद में वह पास आया! स्वप्न-सा हँस पास आया।" इस प्राणमय क्रिया-प्रक्रिया का चित्रांकण छायावाद की विशेषता है और महादेवी जी में वह सर्वाधिक है। 'सान्ध्य-गीत' की भूमिका में वह स्वयं कहती हैं—"छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गयी; अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण, और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठिन शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्वल विद्युत रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चञ्चलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं।"

तो क्या बौद्धों के दुःखवाद को लेकर महादेवी जी के काव्य को नापना अन्याय है? 'रश्मि' की भूमिका में भगवान् बुद्ध के उल्लेख मात्र से कई लोग प्रभावित हो गये और महादेवी जी के काव्य में बौद्धों के नश्वरतावाद की खोज करने लगे हैं। भगवान् बुद्ध के दर्शन से उन्होंने करुणा ली होगी किन्तु जहाँ तक प्रकाशित काव्य का सम्बन्ध है, महादेवी जी में कहीं नैराश्य-वाद साध्य नहीं है उनका नैराश्य विरह के एक ऐसे उत्कट क्षण की अभिव्यक्ति है जिसमें विरही और विरह के विषय का संयोग हो जाता है।

यहीं महादेवी जी के छायावाद के अन्तर्गत उनका रहस्यवाद आता है, जिसकी विवेचना स्वयं उन्होंने 'सान्ध्य गीत' में की है—"आज गीत में हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं, वह भिन्न है। उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।"

और फिर आगे—"हम यह नहीं समझ सके हैं कि रहस्यवाद आत्मा का गुण है, काव्य का नहीं। काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नहीं, उसके लिये हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिये जो सबको अपने स्पर्श मात्र से सोना कर दे।... जल का एक रंग भिन्न-भिन्न रंगवाले पात्रों में जैसे अपना रङ्ग बदल लेता है, उसी प्रकार चिरन्तन सुख-दुख हमारे हृदयों की सीमा और रङ्ग के अनुसार बनकर प्रकट होते हैं। हमें अपने हृदयों की सारी अभिव्यक्तियों को एक ही रूप देने को आकुल न होना चाहिये, क्योंकि यह प्रयत्न हमें किसी भी दशा में सफल न होने देगा।"

तो महादेवी जी के छायावाद की विशेषता है उसकी व्यापकता। उसमें व्यापकता का अर्थ है कि सीमित कितना असीम है। प्रकृति के फलक पर पल-पल बदलते काल के नाटक में कभी अनेक पात्र नाचते-गाते हैं और कभी दर्शक नाचता-गाता है और पात्र दर्शक बन जाते हैं। दर्शक और दृश्य अपनी-अपनी जगहों की अदला-बदली करते रहते हैं। खूब वैविध्य है। कहीं दर्शक दृश्यों के विरोध से घबराकर पूछता है—

मृदु रजत रश्मियाँ देखूँ
उलझी निद्रा-पंखों में।
या निर्निमेष पलकों में
चिन्ता का अभिनय देखूँ।
तुझमें अम्लान हँसी है
इसमें अजस्र आँसू जल,
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ।

सर्वत्र महादेवी जी के काव्य में यही स्वर है—विनिमय का—

तब सीमाहीनों से था
मेरी लघुता का परिचय;
होता रहता था प्रतिपल
स्मित आँसू का विनिमय!
परिवर्तन पथ में दोनों
शिशु-से करते थे क्रीड़ा;
मन माँग रहा था विस्मय
जग माँग रहा था पीड़ा!
यह दोनों दो ओरें थीं
संसृति की चित्रपटी की;
उस बिन मेरा सुख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी।

अंग्रेजी के कवि शैली की प्रसिद्ध उक्ति है—"Our sweetest songs are those that tell of saddest thought" अर्थात् हमारे मधुरतम गीत हमारी अत्यधिक वेदना की अभिव्यक्ति होते हैं। महादेवी जी ने इस सत्य के दूसरे पक्ष को भी स्वीकार किया है—"Our saddest songs are those that tell of sweetest thought" अर्थात् हमारे अत्यधिक वेदनापूर्ण गीत हमारे सुख की अभिव्यक्ति होते हैं। साहित्य जिस उच्च अर्थ में सहित है सबके, उसी उच्च अर्थ में महादेवी जी का छायावादी काव्य है। उससे कहीं कुछ वञ्चित नहीं है। वह नाश को अस्वीकार करता है, परिवर्तन में रूप मात्र के नाश को स्वीकार करता है। रश्मि में उनकी 'अन्त' नामक कविता में यह बात स्पष्ट की गयी है। पुस्तक के अन्त में उस पर टिप्पणी है—"सृष्टि में कोई वस्तु नष्ट हो नहीं सकती, केवल उसके रूप में परिवर्तन हो सकता है। एक वस्तु विकास की चरम सीमा तक पहुंच कर परिवर्तित हो जाती है।'

उनकी शैली में तितली के नवकुमारों के झूमते हुए रंग हैं, और गीली केशर की आर्द्र सुरभि है साथ ही केशरी रंग की सुचारु सात्विकता भी है। उनमें संयुक्त अक्षरों का प्रायः अभाव ही है। 'स' और 'म' की मृदुता सब कहीं है। छन्द तीव्र गति वाले हैं। प्रत्येक कविता इस बात का प्रमाण है कि कवयित्री चित्रकार हैं। उनके चित्र चलचित्र हैं। चित्रों की इस गतिमयता का संचालन अनुभूति की विकासशीलता से हुआ है।

उन पर अंग्रेजी का प्रभाव लगभग नहीं हैं। वह सही अर्थ में खड़ी बोली की प्राण-शक्ति से प्रेरित हैं।

उनके छायावाद का उनके नारी होने से उतना ही सम्बन्ध है जितना पन्त जी के छायावाद का सम्बन्ध उनके पुरुष होने से है।

छायावाद हिन्दी का अपना था, न तो वह बँगला की नकल था और न अंग्रेजी की। उसका नेतृत्व जिन चार महान कवियों ने किया था, उनके सम्बन्ध में स्वयं महादेवी जी की एक उक्ति ठीक बैठती है—"हमारी एक ही काव्य-धारा अभिव्यक्ति की भिन्न शैलियों के अनुसार भिन्न वर्णों हो उठी है!"

महादेवी जी के काव्य में वेदना और प्रेम

●

शान्ति अग्रवाल एम० ए०

महादेवी जी ने अपनी सशक्त लेखनी के द्वारा हिन्दी साहित्य को जो निधि प्रदान की, उसकी भारत ही नहीं विश्व की किसी भी भाषा के साहित्य से तुलना की जा सकती है। यों तो वह गद्य एवं पद्य दोनों के ही सृजन में सिद्धहस्त हैं, परन्तु अपने गीतों के माध्यम से तो उन्होंने जो कुछ दिया वह अतुलनीय है। उनके गीतों की सराहना में अपने को असमर्थ पा, काव्य-प्रेमियों ने उन्हें आधुनिक युग में तेरा कहकर संतोष किया। किसी कवि ने लिखा है—

"समय की शिला पर मधुर चित्र कितने, किसी ने बनाये किसी ने मिटाये" लेकिन महादेवी जी ने अपने काव्य के द्वारा जो अनमोल चित्र प्रस्तुत किये वे अमर हैं, शाश्वत हैं, उन्हें कोई नहीं मिटा सका, न मिटा सकेगा क्योंकि वे समय की शिला पर नहीं काव्य-पारखियों के हृदय-पटल पर अंकित हैं।

महादेवी जी के काव्य के विषय में कुछ कहने से पूर्व, हमको उनके समय से कुछ पीछे की ओर मुड़कर देखना होगा जिसे हम द्विवेदी युग के नाम से पुकारते हैं। यह युग हिन्दी साहित्य में "निषेधवाद" का युग था। जीवन के मधुर सुन्दर एवं आकर्षक पक्षों का वर्णन वासना और पतन की ओर ले जाने वाला समझकर त्याग दिया गया था। सौंदर्य, प्रेम आदि हृदय की कोमल भावनाओं की अवहेलना कर स्थूल चित्रण को अपनाया गया था, परन्तु वाह्य नैतिकता की परिधि में बँधा केवल स्थूल का यह चित्रण मानव-मन को तृप्ति प्रदान न कर सका। इस युग का कवि समाज में शुभ परिवर्तन लाने का इच्छुक था, उसका उद्देश्य महान था, परन्तु वह काव्य प्रक्रिया की विशिष्टता का निर्वाह कम ही कर पाया। द्विवेदी युगीन काव्य में इतिवृत्तात्मकता, मर्यादावाद तथा उपदेशात्मकता का ही प्राबल्य रहा। कल्याण का भाव आरोपित और घोषित सा किया गया। काव्य-पद्धति आनन्दमय न हो सकने के कारण अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ न हो सकी, फलतः उपयोगी एवं लाभप्रद विचार बिना शकर चढ़ी हुई कुनीन की गोली के समान अरुचिकर से ही रहे। काव्य की यह सफलता कि पाठक या श्रोता को काव्य के पढ़ते या सुनते समय पूर्ण आनन्दानुभूति हो और उपयोगी विचार उसके मन में अनजाने में ही उत्पन्न हो जावें, द्विवेदी युगीन काव्य में दृष्टिगोचर नहीं होती। मर्यादा की अतिशयता तथा वाह्य नैतिकता के दुराग्रह के फलस्वरूप आंतरिक दुराचार के जागरण की आशंका हो उठी और एकाँत उपयोगितावाद की साधना ने काव्य को नीरस सा बना दिया। कवि अन्तरतम की अनुभूतियों के प्रकाशन के लिए आकुल हो उठा। द्विवेदी युग की इस कमी को दूर करने का सर्व प्रथम प्रयत्न प्रसाद जी ने किया। इस प्रकार द्विवेदी युग की काव्य-धारा ने एक नई धारा को जन्म दिया जिसे हम छायावाद कहते हैं।

छायावाद में द्विवेदी युग के निषेधवाद की प्रबल प्रतिक्रिया हुई। अथवा यों कहिये कि स्थूल की प्रतिक्रिया स्वरूप सूक्ष्म एवं वायवी भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ। अब काव्य में हृदय की कोमलतम अनुभूतियों का सूक्ष्म चित्रण किया जाने लगा। कवि प्रकृति के अणु-अणु में अपना रागात्मक सम्बन्ध देखने लगा। असीम विश्व का कोना-कोना उसका अपना हो गया। इस प्रकार वह ससीम होकर भी असीम

हो गया। प्रकृति के विभिन्न रूपों में उसे अपने अन्तरतम की अनुभूतियों की छाया दृष्टिगोचर होने लगी। मानव अनुभूतियों की इसी छाया को छायावाद के नाम से अलंकृत किया गया। प्रसाद जी के शब्दों में—"कविता के क्षेत्र में जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद से अभिहित किया गया। आंतरिक स्पर्श की पुलक नवीन शैली, स्वतन्त्र लावण्य आदि तत्त्व इसमें थे। मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है वैसी कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत में छाया और विच्छित्त को कुछ लोगों द्वारा निरूपित किया गया था। यह वाह्यालंकार मात्र नहीं, यह श्री की बहिन ही है, आन्तर अर्थ वैचित्र्य को प्रकट करने में इसका प्रयोग हुआ था।"

महादेवी जी के विचारानुसार छायावाद स्थूल के विरुद्ध प्रतिक्रिया था। विवेचनात्मक गद्य में उन्होंने लिखा है—"सृष्टि के वाह्यालंकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित मानव-अनुभूतियों का नाम 'छाया' उपयुक्त ही था। एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा है—छायावाद तत्वतः प्रकृति के बीच जीवन का उद्‌गीथ है अतः कल्पनाएँ बहुरंगी और विविध रूपी हैं। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति के माध्यम से व्यक्तिगत अनुभूतियों का प्रकाशन ही छायावाद है। इसमें प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में परोक्ष एवं सर्व व्यापक सत्ता का आभास मिलता है।

छायावादी तरंग के लास्य नृत्य पर दर्शक मन्त्र मुग्ध हो गये। द्विवेदी युगीन तरंग यह देख तिलमिला उठी। उसने छायावादी नवीन लहर का मूलोच्छेदन करने का भरसक प्रयास किया। छायावाद की कटु आलोचनाएँ हुईं। परन्तु इस ताण्डव को शान्त होना ही पड़ा। क्योंकि महादेवी जी ने छायावादी नवजात लहर को अमरता का वरदान दिया। काव्य के उपवन में प्रसाद ने छायावाद का पौधा लगाया, निराला और पन्त ने उसे सींचकर बड़ा किया परन्तु महादेवी जी ने तो अपने गीतों के वे सरस सुमन खिलाए, जिनकी आह्लादिनी भाव-गन्ध से काव्य उपवन सुरभिमय हो उठा। महादेवी जी के गीत जन-मन-मानस के हंस बन कर किलोलें करने लगे। यह भी सकारण था। कविवर पंत ने लिखा है—

> "वियोगी होगा पहला कवि,
> आह से उपजा होगा गान
> निकलकर आंखों से चुपचाप,
> बही होगी कविता अनजान।"

वास्तव में मधुरतम गीत वे ही माने जाते हैं जिनमें अधिकतम दुःख की व्यञ्जना होती है। इन गीतों का पाठक या श्रोता के मन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। महादेवी जी की कविता भी 'आह' से उपजी और इसीलिये उसने मानव-हृदय से इतना निकटतम रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लिया। 'आह' और दुःख ही छायावादी कविता की आधार शिला है। छायावादी कवि ने अपने कल्पना लोक के सौंदर्य में उतरकर जब देखा तो वास्तविक जगत में उसे एक कुरूपता और अभाव ही दृष्टिगोचर हुआ। मानवीय प्रयासों की असमर्थता एवं असफलता को देख वह बड़ा दुःखी और उदास हो गया। उसका भावुक हृदय विचलित हो उठा। उसके मानस को विश्व के प्रति करुणा की भावोर्मियों ने उद्वेलित कर दिया और तब उसके आहत उर की आहें गीतों के साकार रूप में प्रकट हुईं।

महादेवी जी ने तो दुःख और निराशा को अपनी साधना के रूप में ही स्वीकार कर लिया। 'रश्मि' की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है—"दुःख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद भी आंसू जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता।" यही कारण है कि सुख दुःख के धूप छांही डोरों से बुने हुये जीवन में वह सदैव दुःख ही गिना करती हैं। इसलिए कदाचित् उन्होंने कहा है—

> "रजत रश्मियों की छाया में,
> धूमिल घन सा वह आता।
> इस निदाघ से मानस में
> करुणा के स्रोत बहा जाता।"

उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बन्धन का।
संसृति के सूने पृष्ठों में,
करुण काव्य वह लिख जाता।

महादेवी जी का दुःख "धूमिल घन" बनकर आता है और उनके संतप्त हृदय में करुणा के स्रोत बहा जाता है। यही सबके बन्धन का सूत्र है। इसी की सहायता से कवि 'संसृति के सूने पृष्ठों में' करुण काव्य लिख सकने में समर्थ होता है। इस दुःख को तो महादेवी जी ने आत्मसात ही कर लिया है जैसा कि वह स्वयं कहती हैं—

पी-पी मैं चिर दुःख प्यास बनी ॥

उनके काव्य में वेदना शरीर में प्राण के समान रमी हुई है। वे कहती हैं—

"मैं नीर भरी दुख की बदली"

इस दुःख की बदली से जो दुख बरसा तो उसने उनके काव्य के प्रत्येक गीत की प्रत्येक पंक्ति के प्रत्येक शब्द को ही वेदना से शराबोर कर दिया। उनके काव्य में एक भी पंक्ति ऐसी नहीं मिलेगी जिसमें कसक न हो, तड़पन न हो। उनके तो जीवन का लक्ष्य ही तृप्ति नहीं अतृप्ति है क्योंकि—

"चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन।
मेरे छोटे जीवन में देना
न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें,
भरती आँसू के सागर।

अतृप्ति में वांछित वस्तु के पाने की व्याकुलता होती है परंतु तृप्ति हो जाने पर उस वस्तु के प्रति उदासीनता आ जाना स्वाभाविक है जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है—

"तुम मिले प्यार की साधना खो गई
तुम गए भावना को डगर मिल गई"

महादेवी जी नहीं चाहतीं कि वह अपने प्रिय के प्रति कभी भी उदासीन हों और इसीलिए उन्हें मिलन नहीं विरह ही प्रिय है। तभी तो उन्होंने कहा है—

"मिलन का मत नाम ले
मैं विरह में चिर हूँ।"

इसी विरह और प्रतीक्षा में वह मिट जाना चाहती हैं। संयोग का समय आने पर तो वह प्रिय के सम्मुख भी नहीं आना चाहतीं। क्योंकि प्रियतम से मिलन हो जाने पर तो प्रिय विरह की कसक मिट जाएगी। प्रिय के प्रति वह आकर्षण नहीं रहेगा अतः वह प्रिय को सम्बोधन कर कहती हैं—

"तुम हो प्रभात की चितवन,
मैं विधुर निशा बन आऊँ,
काटूँ वियोग पल रोते,
संयोग समय छिप जाऊँ ॥
आवे बन मधुर मिलन-क्षण,
पीड़ा की मधुर कसक सा,
हँस उठे विरह होठों में—
प्राणों में एक पुलक-सा ॥"
पाने में तुमको खोऊँ,
खोने में समझूँ पाना,
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना।

अपने इस मिटने के अधिकार के समक्ष तो वह देवलोक को भी तुच्छ समझती हैं। इसीलिये तो उन्होंने कहा है—

"क्या अमरों का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार।
रहने दो हे देव! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।"

दुख के सागर में महादेवी जी ने ऐसी डुबकी लगाई कि दुख ही उनके जीवन का सुख बन गया। उनका जीवन ही विरह का जलजात बन गया। वह अपने सूनेपन की रानी

बन बैठीं और 'प्राणों का दीप' जलाकर दीपावलि मनाने लगीं। उन्होंने तो 'दीवानी चोटों' में ही सब कुछ पा लिया जैसा कि उनकी इन सब पंक्तियों से स्पष्ट है—

"अपने इस सूनेपन की,
मैं हूं रानी मतवाली।
प्राणों का दीप जलाकर,
करती रहती दीवाली।
मेरी आहें सोती हैं,
इन ओठों की ओटों में।
मेरा सर्वस्व छिपा है,
इन दीवानी चोटों में।

महादेवी जी को तो अपने प्रिय की स्मृति ही प्रिय है। प्रिय की स्मृति उनके हृदय में एक कसक भर जाती है, विरह की अग्नि उन्हें जलाती है परन्तु "प्रिय पथ के ये शूल" उन्हें तो अत्यन्त प्यारे हैं क्योंकि—

"हीरक सी वह याद बनेगा जीवन सोना,
जल-जल, तप-तप किन्तु खरा इसको है होना
चल ज्वाला के देश जहाँ अंगारे ही हैं,
प्रिय पथ के ये शूल मुझे सखि प्यारे ही हैं!"

प्रिय का देश ही ज्वाला का देश है और महादेवी जी तो इस देश के पन्थ के शूलों की अभ्यस्त हो गई हैं क्योंकि वह तो इस पथपर युग युगान्तर से चली जा रही हैं। उनकी निम्नलिखित पंक्तियों से इसी का आभास मिलता है—

युग युगान्तर की पथिक मैं,
छू कभी लूँ छाँह तेरी।
ले फिरूँ सुधि दीप सी,
फिर राह में अपनी अँधेरी।"

प्रतीक्षा की घड़ियाँ जब समय को सीमा में नहीं बांध पातीं और विरही-हृदय चीत्कार कर उठता है—

दो पुलिनों के बीच बँधी,
है लहरों की तरुणाई।
किन्तु प्रतीक्षा निठुर समय
की सीमा बाँध न पाई।"

जब विरह-पंथ का पथिक जितना चलता जाता है राह उतनी ही बढ़ती जाती है, और मञ्जिल उतनी ही पीछे हटती जाती है तब एक ऐसी भी अवस्था आती है जब विरह में ही मिलन और विसर्जन में ही लक्ष्य की प्राप्ति का अनुभव होने लगता है। महादेवी जी की विरहिणी आत्मा को भी इसी प्रकार की अनुभूति हुई तभी तो वह पुकार उठीं—

"तरंगें उठीं पर्वताकार,
भयंकर करतीं हाहाकार।
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास,
तरी का करते हैं उपहास।
हाथ से गई छूट पतवार,
कौन पहुँचा देगा उस पार।"

व्याकुल आत्मा को उत्तर देते हुये महादेवी जी ने कहा है—

"तरी को ले आओ मझधार,
डूब कर हो जाओगे पार।
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार।"

और तब

"विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर
मधु की यामिनी सी।"

इस प्रकार महादेवी जी छायावाद की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री के साथ ही साथ दुःखवाद की भी प्रतिनिधि कवयित्री बन गईं। करुण रस उनके गीतों में सजीव हो उठा। इतना ही नहीं उनकी भावधाराएँ छायावाद को अमरता का वरदान देती हुई रहस्यवाद के प्रांगण में उतर गई; इसीलिये उनके काव्य की वेदना प्रेम से गीली हो गई। रहस्यवादी कवि प्रकृति के अणु-अणु में एक अज्ञात और रहस्यमय प्रियतम की झलक देखकर उससे अपना प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और उस अलौकिक प्रियतम को अपना सर्वस्व समर्पण कर देना चाहता है। यही रहस्यवाद की भावधारा की पराकाष्ठा है। मीरा के समान महादेवी जी के भी प्रत्येक गीत में एक प्रेमिका का हृदय बोल रहा है। प्रस्तुत पंक्तियों में प्रियतम को सम्बोधन कर वह कहती हैं :—

"जो तुम आ जाते एक बार।
कितनी करुणा, कितने संदेश,
पथ में बिछ जाते बन पराग।
गाता प्राणों का तार तार,
अनुराग भरा उन्माद राग॥
आँसू लेते वे पद पखार,
आंखें देतीं सर्वस्व वार।"

उपर्युक्त पंक्तियों में एक प्रेमिका के हृदय की व्याकुल एवं कामना को कितनी स्पष्टता तथा सुन्दरता से व्यक्त किया गया है। प्रेमिका की इच्छा है कि उसका प्रिय एक बार उसके पास आ जाता तो वह अपनी समस्त करुण, सब संदेश उसके पथ में बिछा देती। उसके प्राण प्रेम से भरा उन्माद का राग गा उठते। अपने अश्रु-जल से वह अपने प्रियतम के चरण धोती और इस प्रकार उसकी आँखें उन पावन चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर देतीं। परन्तु फिर प्रेमिका को ध्यान आता है कि पथ का अन्धकार मेरे प्रियतम के मार्ग में बाधा बन जाएगा अतएव वह अपने "प्राणों का दीप जलाकर" उससे कहती हैं :—

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन, प्रति क्षण, प्रति पल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।"

परन्तु दीपक को कहीं बुझने का भय न हो जाए ऐसा विचार कर वह इसे समझाती हैं :—

"मेरी निःश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर।
मैं अंचल की ओट किए हूं,
अपनी मृदु पलकों से चंचल।
सहज सहज मेरे दीपक जल।"

महादेवी जी का प्रियतम तो अलौकिक है इसीलिये वह श्रृंङ्गार करती हैं। 'शशि' के दर्पण में देख-देख कर वह "तिमिर" के केश सुलझाती हैं। 'तारक पारिजातों' को चुन कर 'किरणों' में उन्हें गूंथती हैं परन्तु फिर भी जब उनका आराध्य नहीं आता तो उनके गीत में प्रेमिका साश्चर्य प्रश्न करती है :—

"क्यों प्रिय आता पार नहीं ?
शशि के दर्पण में देख-देख,
मैंने सुलझाए तिमिर केश,
गूंथे चुन तारक पारिजात,
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष।
क्यों आज रिझा पाया उसको,
मेरा अभिनय श्रृङ्गार नहीं ?
क्यों प्रिय आता पार नहीं ?"

व्याकुल प्रेमिका पुनः प्रश्न करती है—

"अलि कैसे उनको पाऊँ ?
मेघों में विद्युत सी छवि,
उनकी बनकर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी में,
जिसके मैं आँक न पाऊँ।"

प्रेमिका जितना ही अपने प्रियतम को खोजने की चेष्टा करती है उतना ही वह उसे तंग करता है। कभी-कभी उसे ऐसा आभास होता है मानो उसका इष्टदेव उससे थोड़ी सी दूरी पर ही है। वह उसे पाने के लिये दौड़ती है परन्तु—

"इतनी दूर रही निधि जितनी
नयन क्षितिज की दूरी,
इतनी दूर मिलन-पल जितनी
है पग की मजबूरी।"

तब अपने प्रियतम की इस आँख मिचौसी से ऊब कर महादेवी जी के गीत की प्रेमिका मानों हार मानकर कहती हैं—

"हे मेरे चिर सुन्दर अपने !
खोज न पाऊँगी निर्मम,
आओ-आओ बन चंचल सपने।"

प्रेम की कोमल भावनाओं का बहुरंगी चित्रण महादेवी जी के काव्य की विशेषता है। उन्होंने 'प्रिय के पथ को' 'प्राणों का दीप जलाकर' आलोकित कर दिया और उससे आने के लिये अनुनय विनय की, आवाज दी परन्तु जब वह किसी प्रकार न आया तो प्रेमिका का मान जाग उठा और उन्होंने कहा :—

"चिन्ता क्या है हे निर्मम !
बुझ जावे दीपक मेरा !
हो जावेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा ।"

प्रस्तुत पक्तियों में तुलसीदास जी की सी वाग् विदग्धता दृष्टिगोचर होती है । तुलसीदास जी जब राम की विनती करते-करते थक गए तो उन्होंने भी एक स्थान पर इसी प्रकार अपने भाव को प्रकट किया है । वह राम को सम्बोधन कर कहते हैं :—

"कह तुलसिदास सुनु रामा,
तसकर लूटहिं तव धामा।
चिन्ता यह मोहि अपारा,
अपयश नहिं होहि तुम्हारा ।"

महादेवी जी की उपर्युक्त पंक्तियों में भी यही वाग्वैचित्र्य दिखाई देता है। वह अपने प्रिय से कहती हैं कि "हे निष्ठुर ! मेरे जीवन का प्रदीप बुझ जावे तो मुझे इसकी क्यों चिन्ता है क्योंकि मेरी इससे कुछ भी हानि नहीं होगी, अनिष्ट तो इससे तेरा ही होगा क्योंकि तेरे पीड़ा के राज्य में मेरा जीवन दीप बुझ जाने से अन्धकार छा जाएगा ।"

कैसा वाक् चातुर्य्य है ? भला, अपना अनिष्ट किसे प्रिय लग सकता है ? परन्तु उनका आराध्य इतना कहने पर भी जब नहीं आया तो उनके मन में आशंका हुई कि सम्भव है मेरे प्रियतम को अन्धकार ही प्रिय हो। आलोक में आने से वह सकुचाता हो अतः तारकावलियों को सम्बोधन कर वह कहती हैं—

"करुणामय को भाता है
तम के पर्दों में आना,
ओ नभ की दीपावलियो !
तुम पलभर को बुझ जाना ।"

महादेवी जी के गीतों में पवित्र प्रेम साकार हो उठा है। वासना या शारीरिक भोग-विलास की छाया भी उनके काव्य में नहीं मिल सकती । उन्होंने तो हृदय की कोमलतम भावनाओं के वे सुन्दर सतरंगे गीत सुमन चुन-चुन कर वीणा वादिनि माँ शारदा के चरणों में सनेह समर्पित किये जिनमें पीड़ा के पराग और प्रेम की सुगंधि का अक्षय कोष है । उनकी वेदना चिरन्तन है, उनका प्रेम अलौकिक है और इसीलिये उनका प्रियतम भी चिर है, शाश्वत है, असीम और अलक्षित है । वही उनकी वेदना में भी मधुरता भर जाता है, प्यासे लोचनों में घुमड़ कर झर पड़ता है। इसी अपरिचित रहस्यमय प्रियतम को पहिचानने को उत्सुक वह कहती हैं—

"कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?
स्वर्ग - स्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में—
कौन तुम मेरे हृदय में ?"

और फिर उस चिरन्तन प्रिय को पहिचान कर ही तो उन्होंने कहा :—

"प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं ।"

अपने और प्रियतम के सम्बन्ध को सीमित और असीमित का सम्बन्ध बताते हुये ही वह कहती हैं—

"तुम हो विधु के बिम्ब
और मैं मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर
कौतूहल के बान।
कलियों के मधु प्यालों में
जो करती मदिरा पान,
झाँक जला देती नीड़ों में
दीपक की मुसकान।
लोल तरंगों के तालों पर
करती बेसुध लास,
फैलाती नभ में रहस्य पर
आलिंगन का पाश।
ओस धुले पथ में छिप
तेरा जब आता आह्वान,
मूल अधूरा खेल तुम्हीं
में होती अन्तर्धान ।"

श्याम के प्रेम में राधा जैसे श्याममयी हो गई थी, महादेवी जी भी अपने असीमप्रिय के प्रेम में प्रियतममयी हो गई। उन्हें अपना आराध्य अपने अन्दर ही दिखाई देने लगा जैसा कि उन्होंने कहा है :—

"तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ?"

इस प्रकार महादेवी जी ने छायावादी पद्धति को अपना कर करुण रस के माध्यम से रहस्यवाद का प्रतिपादन किया। उनके काव्य में वेदना और प्रेम की तीव्रतम अनुभूतियों का गंगा यमुना का सा पावन संगम है। ये दोनों भावधाराएँ इनके काव्य में मिलकर ऐसी एकरूप हो गई हैं कि उन्हें पृथक् कर सकना असम्भव है, परन्तु उनके काव्य में वेदना एवं प्रेम के आध्यात्मिक रूप की ही व्यंजना की गई है।

कुछ आलोचकों का कथन है कि महादेवी जी के काव्य में लौकिक प्रेम की ही व्यंजना हुई है। पार्थिव जीवन की अपूर्णताओं ने ही उन्हें दुःखवाद की ओर ढकेल दिया। लौकिक जीवन के अभावों के कारण ही उनके गीतों में वेदना की तीव्रतम अनुभूतियों का ऐसा सजीव स्वरूप प्रकट हो सका अतः उस पर आध्यात्मिकता का आवरण चढ़ाना सत्य पर पर्दा डालना है। परन्तु उनके काव्य, उनके जीवन एवं उनके स्वयं के कथनों से मैं तो इसी निष्कर्ष पर हुंची हूं कि उनके व्यक्तित्व को पार्थिव बंधन कभी नहीं बाँध सके। लौकिक वैभव कभी उन्हें आकर्षित नहीं कर सका। यदि कोई लौकिक अभाव कभी उन्हें अखरा भी होगा तो उसकी लौकिकता भी काव्य में आते-आते अलौकिक बन गई। उनकी व्यष्टिगत चेतना ही समष्टिगत हो गई। समस्त विश्व की वेदना उनकी अपनी बन गई। उन्होंने स्वयमेव कहा है—

"विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-विन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

इसके अतिरिक्त रश्मि की भूमिका में अपने दुःखवाद का स्पष्टीकरण करते हुये उन्होंने लिखा है कि—"संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर पार्थिव दुःख की छाया भी नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी।" इसके अतिरिक्त जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है बाल्यावस्था से ही भगवान् बुद्ध के संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से यह प्रभावित हो गईं। भारतीय दर्शन की जीवन की क्षण भंगुरता में भी उनका विश्वास था जैसा कि उनकी निम्नलिखित पंक्तियों से सिद्ध होता है :—

"विस्तृत जग का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही
उमड़ी थी कल, मिट आज चली।"

उनकी विरहिणी आत्मा तो उसी असीम, अलक्षित, एवं रहस्यमय प्रियतम के प्रेम में पागल है जिसका परिचय उनकी इन पंक्तियों से मिलता है :—

"सिंधु को क्या परिचय दें देव,
बिगड़ते बनते वीचि विलास ?
क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद् प्राण,
तुम्हीं में सृष्टि, तुम्हीं में नाश।"

इस प्रकार महादेवी जी का आराध्य तो वही असीम है जिसमें समस्त सृष्टि की उत्पत्ति और लय निहित है।

महादेवी जी के करुण रस से ओत-प्रोत गीतों के श्रवण अथवा पठन से आँखों में आँसू छलछला आते हैं। हृदय वेदना से व्याकुल हो उठता है। ऐसा आभासित होता है मानों उनमें हमारे अपने ही अभाव, अपनी ही वेदना सिसक रही हो। हमारे हृदय से उनका एक अटूट संबंध सा प्रतीत होता है। इसका कारण यही है कि महादेवी जी अपने समस्त सुखों को विश्व पर न्योछावर कर उसने दुखों को स्वयं पी-पी कर 'चिर प्यास' बन गईं। उसी प्यास उसी अतृप्ति की व्याकुलता में उनके अन्तरतम से जो दर्दीली आहें निकलीं वे समस्त विश्व की अश्रु मालाओं के वे सजल गान बन गए जिनके करुण राग का वादी स्वर था वेदना और संवादी स्वर रहस्यमय असीम का प्रेम।

महादेवी के काव्य की पीड़ा में निहित प्रेम तत्व

कुमारी मधु

दुख की बदली, घुल-घुल कर गलने वाली दीपशिखा, ओस के आँसू बिखराती हुई पीड़ा-स्थिति, प्रिय की अनन्त प्रतीक्षा में लीन साधिका, पीड़ा के राज्य की रानी, अमरों का लोक त्याग कर मिटने का अधिकार माँगने वाली समर्पिता, जन्म को वियोग के नाम से अभिहित करने वाली चिर विरहिणी; ये हैं महादेवी जी के वे चित्र जो उनकी कविता का ध्यान करते ही कल्पना में झूमने लगते हैं।

काव्य-क्षेत्र में 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्य-गीत' और 'दीपशिखा' के अमिट चरण-चिह्न छोड़ने वाली कवयित्री के जीवन में पीड़ा की, विरह वेदना की इतनी तीव्र अनुभूति कहाँ से आई; यह प्रश्न बार-बार काव्य-प्रेमियों को आन्दोलित करता रहा है। पीड़ा कला का शाश्वत-स्वर रहा है। मनुष्य के अन्तर्जगत् और वहिर्जगत् की क्रिया प्रतिक्रिया की रागात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही काव्य तथा अन्य ललित कलाओं का रूप धारण करती है! काव्यान्तर्गत पीड़ा के भी दो रूप हैं—वाह्य परिस्थिति जन्य मानसिक वेदना, जो संसार की असारता, स्वार्थपरता और संकुचित मनोवृति से उत्पन्न होती है और अभिलाषाओं के अपूर्ण रहने पर मन की कचोट, प्रिय जनों के बिछुड़ने से भावुक हृदय की कातरता वाह्य प्राणियों के दुख-दैन्य से उत्पन्न व्यग्रता और करुणा की भावना में परिलक्षित होती है, दूसरे प्रकार की वेदना अन्तर्जगत से सम्बन्धित होती है और आध्यात्मिक कारणों से उत्पन्न होती है। परमात्मांश आत्मा काल सीमा के बन्धन में पड़कर विश्वात्मा में लीन होने के लिए आर्त्त क्रन्दन करती रहती है। पर यह एकाकार सहज सम्भव न होने से वह व्यथित हो रो पड़ती है। निराश हो प्रकृति के नाना उपकरणों में विश्वात्मा की झलक पाने के लिए अकुला उठती है। इस प्रकार मानव-जीवन में वेदना के इन दोनों रूपों का सहज विकास होता रहता है। बाह्य-जीवन की अभावजन्य दुःखानुभूति और अन्तर्जगत की विरह-भावना मन में पीड़ा और करुणा की अनन्त लहरें उठाया करती हैं। महादेवी जी की पीड़ा के प्रेरक तत्त्वों को जब काव्य प्रेमी उनके जीवन में खोजने का प्रयास करते हैं तब महादेवी जी का यह वाग्-जाल उन्हें उलझा देता है -

''संसार साधारणतः जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।''

लेकिन जीवन में अतिशय दुलार, आदर और सब कुछ बहुत मात्रा में मिलने की प्रविक्रिया से वेदना प्रिय नहीं हो जाती। अनुभूति के स्तर पर आए बिना प्रीति क्रियात्मक साहित्य मर्म स्पर्शी नहीं हो सकता। किन्तु महादेवी जी मर्म की सफल कवयित्री है। उन्होंने कवि सुलभ 'भावुका' और संवेदनशील हृदय पाया है अतः वे अपने सम्पूर्ण काव्य को प्रतिक्रियात्मक कहकर पाठकों को भ्रमा नहीं सकतीं। उसमें निहित पीड़ा बाहर से उधार ली हुई नहीं है। यह पीड़ा शुद्ध स्वानुभूति लिए हुए उनके अन्तर्जगत से फूटी एवं विकसित हुई है। 'नीहार' में उनके लौकिक प्रेम,

मानसिक संघर्ष और व्यक्तिगत दुख के स्वर हठी बालक के समान मुखर हो जाना चाहते हैं पर जैसे महादेवी जी ने सतर्कता पूर्वक उन्हें दबा दिया है। कुछ ऐसा ही आभास पाकर शायद श्रीमती शचीरानी गुटू यह तथ्य प्रकाशित करने पर लाचार हो गई हैं—"माता पिता की स्नेहच्छाया में अबोध शैशव बिताकर जीवन की कठोर वास्तविकता जब उनकी बुद्धि के सयानेपन से टकरायी तो अनमिल भावनाओं के कारण दो भिन्न हृदय प्रेम-सूत्र में न बँध सके और तभी से उनके मानस नीरवता, में बेचैनी और धुंधलेपन की छाया परिव्याप्त हो गई। यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत के लिए मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ पट पर स्नेह-ज्योत्सना छिटकी पड़ रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखायें सी अंकित कर गई। आत्म संयम का व्रत लिए हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकराकर पीड़ा को गले लगाया वह कालान्तर में आन्तरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ विखर तो गई किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानों हठ पकड़ बैठीं।"

असफल स्थूल प्रेम को लौकिक आलम्बन के सहारे व्यक्त करना 'एक व्यापक विकृति समय निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में जन्म लेने वाली संकोचशीला महादेवी जी के लिए संभव भी तो नहीं था। अतः जीवन की शुष्कता से लोक विमुख होकर वे लोकोत्तर आलम्बन की ओर उन्मुख हुईं और उनकी व्यथित आत्मा ने प्रेम का वह मधुर सम्बन्ध जो प्रेमी प्रेमिका के मध्य चलता है; केवल उस परम पुरुष से स्थापित किया जिसके अनुसन्धान में न कभी तृप्ति मिलती है न पीड़ा का अन्त होता है।

आध्यात्मिक-प्रेम पनपने के लिए उनका मन पहले से ही था। भावुक माता, सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता के संस्कार लेकर भावुकता, बौद्धिकता, साधना व्यापक दार्शनिकता और सम्प्रदायहीन चेतना के धरातल पर खड़ी होकर वे उस संस्कृत साहित्य और दर्शन शास्त्र के अध्ययन में लीन हो गईं जिनके मूल में आध्यात्मिकता के स्वर ही गूँजते हैं। बौद्ध धर्म की महाकरुणा और हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के सन्त कवियों की परमात्मा से एकाकार होने की 'तड़पन' मीरा का 'दर्द', सूफियों की 'प्रेम की पीर', सूर की राधा की गम्भीर विरह वेदना और तुलसी के मानस की लोक पीड़ा को उन्होंने आत्मसात किया था।

आधुनिक काल में वे रवि बाबू की आध्यात्मिकता, स्वामी विवेकानन्द और परमहंस रामकृष्ण की अद्वैतवादी विचार धारा से भी प्रभावित हुईं। अतएव उनकी अलौकिक-प्रेम वल्लरी एक स्वप्निल मानसिक वातावरण और व्यथा के सम्मोहन में बढ़ चली। महादेवी जी के काव्य में उनके विकास की एक अन्तर्धारा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है जिसके विषय में महादेवी जी ने 'यामा' में स्वयं लिखा है—"नीहार के रचनाकाल में मेरी वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती है जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। रश्मि को उस समय आकर मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक चिन्तन प्रिय था। परन्तु नीरजा और सान्ध्य गीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख दुख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा।"

प्रेम अनुभूति साध्य विषय है। उसका पहला लक्षण है अन्तर में कोमलता और स्निग्धता का उद्रेक होना। आकर्षण के जन्म लेते ही व्यक्ति के मुग्ध प्राणों को मधुरता मिश्रित बर्फ जैसी शीतल जलन की तीव्र अनुभूति होने लगती है। उस समय कोमलतम, मधुरतम काव्यमयी भावनायें अन्तर्मन के किसी निगूढ़ कोने से निकलकर चुपके से ओठों पर आ बैठती हैं जिनमें से कुछ गीत बन जाती हैं और कुछ मौन भाव से प्रेमास्पद के मधुर इंगितों को अपलक निहारती रहती हैं। 'नींहार' के गीतों में प्रेमविह्वला महादेवी जी की यही मुग्धता, मुखरता, मौनता और मधुर वेदनानुभूति अभिव्यक्त हुई है। यह प्रेम लौकिक अधिक, आध्यात्मिक कम है।

उनकी मुग्धावस्था का यह चित्र कितना आकर्षक है—

चल चितवन के दूत सुना
उनके, पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गये क्या क्या उत्पात।

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना–
के मन प्याले पर प्याले!

उनका यह मिलन काल्पनिक जगत् में नहीं, इसी संसार में हुआ है; इसे वे आगे प्रमाणित करती हैं—

कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात,
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास?

पीड़ा के राज्य की रानी दीप-सी जल-जल कर उसे आलोकित कर रही है। प्रेम की साधना करते-करते जिस दिन उसका जीवन दीप बुझ जायगा। प्रिय को दिए गए इस उपालम्भ में प्रेम की अमर साधिका का कैसा अद्भुत आत्म-विश्वास झलक उठा है—

चिन्ता क्या है हे निर्मम!
बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अंधेरा।

अपनी पीड़ा, सूनेपन और ससीमता पर उन्हें बड़ा अभिमान है। वे प्रिय से किसी बात में कम नहीं अतः उन्हें पूर्ण विश्वास है कि उनकी लघुता के कारण प्रिय को लज्जित नहीं होना पड़ेगा। स्वाभिमानिनी महादेवी जी का यह स्वर मन की गहराइयों में उतरता चला जाता है—

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन,
उनमें अनन्त करुणा है
इसमें असीम सूनापन।

सच तो यह है कि महादेवी जी के प्रिय को भी उनके समान पीड़ा, दुख, और करुणा प्रिय हैं तभी तो तम के पर्दे में आना भाता है—

करुणामय को भाता है
तम के पर्दे में आना,
हे नभ की दीपावलियो।
तुम पल भर को बुझ जाना।

फिर महादेवी जी को पीड़ा इतनी प्रिय क्यों न हो। इसीलिए उनकी ब्रह्म प्राप्ति की साधना दुःख परक है। रवि बाबू की साधना में भी इसी प्रकार के रङ्ग भरे हैं। 'गीताञ्जलि' के एक गीत में वेदना दूती आकर उन्हें सन्देश दे रही है—तेरे प्राण, तेरे ही लिए भगवान जाग रहे हैं।

"वेदनादूती गाहिछे, ओरे प्राण,
तोमार लागि जागेन भगवान।
निशीथे घन अन्धकारे
डाकेन तोरे प्रेमाभिसारे।
दुख दिये राखेन तोर मान।
तोमार लागि जागेन भगवान।"

महादेवी जी के मानस से पीड़ा भीगे वस्त्र-सी लिपटी है। यह पीड़ा प्रिय से मिलन का साधन है। वस्तुतः उनके लिए पीड़ा और प्रियतम एकरूप हो गए हैं—

"तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा
तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।"

तभी तो पीड़ा के विनिमय में उन्हें अमरों का लोक भी तुच्छ लगता है—

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।

'रश्मि' में महादेवी की कल्पना-प्रवणता कुतूहल मिश्रित वेदना और व्यक्तिगत जीवन के प्रश्न कुछ दब गये। चिन्तन द्वारा उनकी पीड़ा अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी हुई। भौतिक अभाव और सामाजिक विषमतायें मानव-जीवन के प्रमुख तत्त्व हैं, इस ज्ञानोपलब्धि ने उनके करुणा पूरित जीवन में अत्यन्त महत्व पाया। अतएव उन्होंने अपनी व्यक्तिगत पीड़ा विश्व-पीड़ा में मिला दी। विश्वात्मा का प्रेम विश्व के कण-कण में व्याप्त कर दिया। प्रियतम ब्रह्म के व्यक्त रूप

अभावग्रस्त और कष्टमय संसार को विस्मृत कर क्या प्रिय को पाया जा सकता था ? इसीलिए उन्होंने सारे विश्व से तादात्म्य कर लिया।

तुम मानस में बस जाओ
छिप दुख के अवगुण्ठन से,
मैं तुम्हें ढूँढ़ने के मिस
परिचित हो लूँ कण कण से

जब जब चातक का बालक मन नये मेघों के लिए रोया, किरणों ने तितलियों के चित्रित पंखों की माया चुरा लेनी चाही, बादलों ने नभ को ढक लिया, प्रेम साधिका महादेवी जी का मन करुणार्द्र हो उनपर सुख की छाया करने को आतुर हो उठा। जीवन की विषमता देखकर उन्होंने प्रश्न किया—

"कहदे माँ क्या अब देखूँ ?
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ।

'रश्मि' में यह है महादेवी जी की पीड़ा का नया रूप और दुख की व्यापकता। महादेवी जी ने दुख-पीड़ा के इसी रूप को कवि का मोक्ष कहा है। वे लिखती हैं—"दुख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुख सबको बाँटकर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

"मुझे दुख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुये असीम चेतन का क्रन्दन है।"

असीम चेतन का क्रन्दन तो उनके सम्पूर्ण काव्य में परिव्याप्त है जिसे काव्य सुधियों ने भावनात्मक रहस्यवाद भी कहा है। मनुष्य के संवेदनशील हृदय का सारे संसार से अविच्छिन्न सम्बन्ध जोड़ने वाले दुख से भी उनका काव्य वंचित नहीं है जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' में दुख का महारूप अधिक स्पष्ट हुआ है। प्रायः काव्य प्रेमियों और आलोचकों को महादेवी जी से वह शिकायत रही है कि वे काव्य में अन्तर्गत की रहस्यमय गलियों में ही भटकती रही हैं बहिर्जगत की यथार्थता को नहीं छू सकीं। महादेवी जी मधुर गीतों की गायिका हैं। गीतों में अन्तर्दर्शन और आत्मनिष्ठा की ही प्रधानता रहती है। महादेवी जी की बहिर्मुखता देखने के अभिलाषी उनके गद्य में उतरें।

'रश्मि' में प्रेम साधिका विश्व में डूबी अवश्य लेकिन आत्मिक पीड़ा को नहीं भुला पाई। अज्ञात प्रियतम के सान्निध्य से उन्हें श्रवण सुख, नयन सुख, घ्राण और स्पर्श सुख मिला, तृप्ति भी मिली—

श्रवण-सुख—

तब बुला जाता मुझे उस पार जो,
दूर के संगीत—सा वह कौन है ?

नयन-सुख—

तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?

घ्राण और स्पर्श सुख—

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्‌वास सा वह कौन है ?

पर उन्हें यह तृप्ति नहीं चाहिये। वे विरह की कामना करती हैं। कारण यह है कि विरह अतृप्ति है। जब तक अतृप्ति है अभाव है तभी तक उन्हें उल्लास और आनन्द की प्रेरणा मिलती है। मिलन होने पर उनका जीवन हलचल शून्य होकर मूक, भावनाहीन एवं जड़ हो जायगा; और महादेवी जी यही नहीं चाहतीं। तृप्ति का एक कण भी उन्हें स्वीकार नहीं—

पाने में तुमको खोऊँ,
खोने में समझूँ पाना।

यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना।

'रश्मि' में उन्होंने प्रिय को पीड़ा में ढूँढ़ा, चिर तृष्णा को अपनाया, और व्यक्तिगत सुख को विश्व वेदना में घुला दिया। इस प्रकार उन्होंने 'नीहार' की अनुभूतियों का दार्शनिक दृष्टि से चिन्तन कर अपना एक जीवन दर्शन सुनिश्चित किया। यही जीवन दर्शन अद्वैत और द्वैताद्वैत भावना का आधार लेकर रागात्मक अनुभूतियों का स्पर्श पाकर अधिक तीव्रता और तमन्यता के साथ 'नीरजा' 'सान्ध्यगीत' और 'दीपशिखा' में आया, कल्पना का प्राधान्य क्षीण हो गया; महादेवी जी का उपासना-भाव, प्रेम विह्वलता मानसिक आवेग, आत्मनिष्ठा और आनन्दानुभूति चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। अनादि काल से चली आ रही ईश्वरोन्मुख प्रेमाभिव्यक्ति में महादेवी जी ने आत्मा का रस मिला दिया। प्रिय का आह्वान, मिलन विछोह, आत्मनिवेदन, उत्सर्ग और समर्पण भौतिक अस्तित्व न रखते हुए भी उसी प्रकार भौतिक हो गए, जिस प्रकार कबीर जायसी की रहस्यवादी कविता में और मीरा के भाव भीने गीतों में है।

अब तक प्रकृति उनकी विरह-विदग्ध आत्मा को सहानुभूति के अश्रुओं से शीतल करती थी, अब महादेवी जी ने जड़-चेतन सभी में सार्वत्रिक प्रीति एवं प्रणय निवेदन देखा। प्रकृति से उन्हें आत्म विसर्जन की प्रेरणा भी मिली। उन्होंने एक पुष्प को झरते-झरते संसार में अपनी सुगन्धि फैलाते देखा, बुझते-बुझते लघु दीपक को अंधकार में आलोक भरते देखा। विसर्जन में ही सुख है इस सत्य को उन्होंने प्रकृति से समझा और अपने जीवन-दीप को धीरे-धीरे जलाकर प्रियतम का पथ आलोकित करने की प्रेरणा पाई। उनके इस आत्म समर्पण में कितनी पुलक, कितनी मृदुलता, कितना सारल्य और प्रिय में घुलने मिलने का कैसा पावन भाव निहित है–

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
तू जल-जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्ज्वल स्मिति में घुलखिल।
मदिर-मदिर मेरे दीपक जल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर

उनके लिए जीवन विरह जन्य उपादानों से निर्मित है "विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात।"

"मैं नीर भरी दुःख की बदली।"

वरदान भी वह घन बनने का चाहती हैं जिससे करुणामय के सन्तप्त संसार को हरियाली देकर वह प्रियतम को प्रसन्न कर सकें।

नित घिरूँ, झर-झर मिटूँ प्रिय,
घन बनूँ बर दो मुझे प्रिय।

'प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन' गीत में सांध्य-गगन की विविध रूप रंगमयता से उनके जीवन की विरहाकुलता, अभिलाषा, आशा, मिलनेच्छा न मिल सकने की कसक और विषाद के मिले जुले भावों की एकरूपता देखते ही बनती है। दुख सहते-सहते सन्ध्या हो गई। कवयित्री को पूर्ण विश्वास है कि अब मिलनेच्छा पूर्ण हो जायगी वह पुकार उठती है—

"उतरो अब पलकों में पाहुन।"

निष्ठुर प्रियतम भला क्यों आता। उन्होंने प्रकृति के उपकरणों से आध्यात्मिक शृंगार कर प्रियतम को रिझाना चाहा—

शशि के दर्पण में देख देख
मैंने सुलझाए तिमिर केश,
गूँथे चुन तारक - पारिजात
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष।

इतने पर भी जब प्रिय नहीं आया तो शृंगार की विफलता पर वे चुपके-चुपके रो उठीं—

क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृङ्गार नहीं?

वे कभी प्रिय की प्रतीक्षा करती हैं 'जो तुम आ जाते एक बार' कभी उसे अपनी दशा दिखाकर करुणार्द्र करना

चाहती हैं 'यह सजल मुख देख लेते, यह करुणा मुख देख लेते।' कभी उसे सपने में बाँधने की कामना करती हैं, कभी उन्हें एकान्त मिलन और अभिसार को साध सिहरा देती है। फिर भी क्षण-क्षण सुहागिनी का मान आँखों की राह पूर्णतः गला नहीं हैं। निजत्व देने की असमर्थता के कारण वह अभिमानिनी प्रिय से मिल भी नहीं पाती–

"सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमाननी मैं ?

उन्हें प्रियतम की आरती उतारने के लिए विश्व के सारे उपकरण व्यर्थ लगते हैं क्योंकि विरह का मूर्त रूप उनका जीवन ही नीराजना बन गया है–

प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती
श्वासों में सपने कर गुम्फित,
वन्दनवार वेदना चर्चित
भर दुःख से जीवन - घट नित,
मूक क्षणों में मधुर मरूँगी भारती।

यही भाव 'दीपशिखा' में भी आया है—

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

प्रियतम के सान्निध्य से आत्मा अहंकार शून्य हो आत्म विस्मृता सी प्रिय से तादात्म्य सुख पाती हैं, फिर उसे प्रिय से परिचय की आकांक्षा नहीं रहती 'तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या ?' युग युगांतर से पृथक् अस्तित्व के भ्रमजाल में पड़ी 'पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहिचानी नहीं' का करुण विलाप करने वाली आत्मा; सारे ताने बाने छिन कर दोनों की एकता को समझने लगती है और निराला के 'तुम तुङ्ग हिमालय शृंग और मैं चञ्चल गति सुर सरिता' के समान कहने लगती है—'बीन भी हूँ तुम्हारी रागिनी भी हूँ।" और

चित्रित तू, मैं हूं रेखा क्रम
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम
तू असीम, मैं सीमा का भ्रम
काया छाया में रहस्य में
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

विरह की यही वह चरमावस्था है जहाँ सुख दुख, विरह मिलन आत्मा परमात्मा में भेद नहीं रहता है। स्वप्न अनूठा आत्मतोष समस्त वेदनायें हर लेता है।

"विरह की घड़ियाँ हुईं अलि,
मधुर मधु की यामिनी सी।"
"मिलन का मत नाम ले,
मैं विरह में चिर हूँ।"
"हो गई आराध्यमय मैं",
विरह की आराधना ले।"

'दीपशिखा' में साधिका की प्रेम-साधना सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई हैं। यह साधना तीन रूपों में परिलक्षित होती है—

१—दीपक की तरह जलने की भावना

विरह-रात्रि को प्रकाशित करने के लिए यह प्रिय के समीप पहुँचने के लिये ही जैसे वे दीपशिखावत् तिलतिल करके जल रही हैं।

धूप सा तन, दीप सी मैं
आ रही अविराम मिट मिट
स्वजन और समीप सी मैं।

वे यह चिन्ता क्यों करें कि मिलन कब होगा ? प्रभात को पाना उनका लक्ष्य ही नहीं है। वे तो प्रभाती तक अनबरत जलती रहना चाहती हैं—

मैं क्यों पूछूँ यह विरह निशा
कितनी बीती, क्या शेष रही ?

दूसरी विशेषता करुणा स्निग्ध लौ से कण-कण को आलोक प्रदान करना है। पीड़ा-सन्तप्त उनका हृदय इतना सम्वेदन-शील हो गया है कि वह दूसरे की कथा को सहज ही हृदयंगम कर लेती हैं–

अलि मैं कण कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली।

उनकी लघु पलकों से ममता छलक-छलक कर कण-कण में बिखर गई है, वेदनाश्रु जहाँ भी गिरे, वहां की धूल पवित्र हो गई।

इन आँखों के रस से गीली
रज भी है दिव से गर्वीली;
सुख से चञ्चल दुख से बोझिल
क्षण क्षण का जीवन जान चली
मिटने को कर निर्वाण चली !

तीसरी विशेषता है प्रिय से प्रेरणा और मिलन संकेतों का मिलना। अपनी विरहानुभूति में उन्हें प्रिय से प्रेरणा मिल रही है और मिलन संकेत भी; जिससे कवयित्री को अतीव शक्ति मिलती है। वह अपनी वेदनानुभूति को विश्व के कण कण के माध्यम से उस अनन्त निरूपन के चरणों तक पहुंचा रही हैं। ऐसी साधना के पथ पर शूल अक्षत, धूल चन्दन, के समान लग रही है, प्रिय की सुधि से सांसें सुरभित हो गई हैं; प्रेम बाती जल रही हैं, नयन अश्रु बहाकर अभिषेक कर रहे हैं, निस्सन्देह साधना-मार्ग की यह वेदना बड़ी सरस और मधुर है–

हुए शूल अक्षत, मुझे धूलि चन्दन
अगुरु-धूम सी साँस सुधि गन्ध-सुरभित
बनी स्नेह लौ आरती चिर अकम्पित
हुआ नयन का नीर अभिषेक जलकण

साधनात्मक दृष्टि से ज्यों-ज्यों प्रियतम और साधिका के बीच की दूरी घट रही है, आत्मदर्शन हो रहा है, त्यों-त्यों मिलन की उत्कण्ठा और तज्जनित व्याकुलता भी तीव्र होती जा रही है, दूरी कम हुई तो पीड़ा बहुत अधिक बढ़ गई हैं—अब तो प्रतीक्षा के कुछ क्षण भी युग कल्प से लग रहे हैं। बस एक संकेत ही मिलन संकेत के लिये उनके प्राण शत शत बार मचल रहे हैं–

अन्तहीन विभावरी है,
पास अङ्गारक तरी है,
तिमिर की तटिनी क्षितिज की कूल रेख डुबा भरी है।
शिथिल कर से सुभग
सुधि पतवार आज बिछुड़ चुका है
अब कहो सन्देश है क्या ?
और ज्वाल विशेष है क्या ?
अग्नि पथ के पार - चन्दन
चाँदनी का देश है क्या ?
एक इङ्गित के लिए
शत बार प्राण मचल चुका है

उन्हें यह संकेत न भी मिला हो फिर भी वे पूर्ण विश्वास के साथ यह गाती रही हैं।

रात सी नीरव व्यथा,
तम सी अगम मेरी कहानी
फेरते हैं दृग सुनहले,
आँसुओं का क्षणिक पानी
श्याम कर देगी इसे
छू प्रात की मुस्कान !

प्रायः महादेवी जी को अलौकिक प्रेम की कविताओं और चिर पीड़ा के कारण चिन्तन प्रधान, भावुकता रहित और अनुभूति शून्य होने का आरोप सहना पड़ा है; जब कि हम 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक कहीं भी अनुभूति का रंग फीका नहीं देखते। 'दीपशिखा' के गीतों में भी जहाँ चिन्तन गहरा हो गया है, अनुभूति और भावुकता का आकर्षण और भी अधिक तीव्र होकर आया है।

उन्होंने अपने काव्य पर आरोपित आक्षेपों का समुचित उत्तर अपने काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं में दिया है; अनुभूति की यथार्थता के सन्देह का निवारण भी काव्य के द्वारा ही किया है। सर्व प्रथम तो वे लोगों की धारणा पर विस्मित हैं –

जाने क्यों कहता है कोई,
मैं तम की उलझन में खोई ?
मैं कण कण में ढाल रही अलि,
आँसू के मिस प्यार किसी का,
मैं पलकों में पाल रही हूँ,
यह सपना सुकुमार किसी का।

इस पर भी जब आलोचकों की बद्धमूल धारणायें नहीं बदलीं; उन्होंने उनसे अत्यन्त सहज भाव से अपने अनुभवों का कोई समाधान माँगा—

जो न प्रिय पहचान पाती।
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में
प्यास विद्युत सी तरल बन ?

क्यों अचेतन रोम पाते चिर
व्यथामय सजग जीवन ?
किस लिए हर साँस तम में,
सजल दीपक राग गाती ?
मेघ-पथ में चिन्ह विद्युत के
गए जो छोड़ प्रिय पद,
जो न उनकी चाप का मैं
जानती सन्देश उन्मद ।
किस लिए पावस नयन में,
प्राण में चातक बसाती ?

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उनके एकाकी और वेदनामय जीवन का कारण सुख और दुलार का अधिक नहीं है; कोई गहरी अतृप्ति है जिसने उनसे 'यामा' और 'दीपशिखा' जैसी सजल कृतियों की सृष्टि करवा ली है। पर उस अतृप्ति को स्थूल शारीरिक अर्थ में लेना सुसंस्कृत और संयत तपस्विनी के प्रति घोर अपराध होगा। कवयित्री होने के कारण पुरुष कवि की तरह उनका प्रणय निवेदन स्वभावत: ऐन्द्रिय, रोमानी, असंयत और मुखर नहीं है। वह स्वकीया की भावना लिए हुए संयत और गार्हस्थिक-सा परब्रह्म के प्रति अपार्थिव प्रणय निवेदन है। उसमें प्रच्छन्न रूप से प्रारम्भिक प्रणय का स्पन्दन भले ही हो किन्तु उसकी ऐन्द्रियता सूक्ष्म से सूक्ष्मतम होती हुई अतीन्द्रियता में परिणत हो गई है अर्थात् उसका उदात्तीकरण हो गया है। इसीलिए 'नीहार' में कहीं कहीं झलकने वाला लौकिक प्रेम पीड़ा के प्रशस्त मार्ग से चलकर 'दीपशिखा' तक आते-आते संस्कारित होकर आध्यात्मिक ऊँचाई तक पहुंच गया है और व्यक्तिगत पीड़ा को लोक व्यापी बनाता हुआ सुख दुख का सामंजस्य करता रहा है।

गद्य के माध्यम से महादेवी

❀

श्रीमती शशि तिवारी

सुरभि व्यक्ति को विवश करती है कि पुष्प का नैकट्य पा उसका रूप दर्शन किया जाय और कृतिकार की कृति ।

कृति कृतिकार को रूपायत करने का माध्यम जो है । इसीलिए पाठक कृति और कृती में तादात्म्य खोजता है । क्षमतावान समर्थ हर संवेदनीय कृति में इतनी घनी मोहासक्ति होती है कि पाठक मधुमक्खी हो उस पुष्प दर्शन के लिए उत्सुक हो उठता है, जिसका पराग मधुबन उसकी आत्मा को अलौकिक अनुभूति, भिन्न-भिन्न कोणों से मानवात्मा की विवशता, विशालता को रसभीनी कलम और अश्रुभीगे नयन व संवेदन डूबी अंतस् की गहराई व हृदय की व्यापकता से देता है ।

व्यक्ति की चाहें, माँगें, आकाक्षायें चाहे जो हों किन्तु हर साधारण के लिए यह असाधारण है कि वह जिस कृति को सराहे उसके कृतिकार के भौतिक दर्शन भी पाए हों । जिन्हें यह सुलभ नहीं वे साहित्यकार की विभिन्न कृतियों के माध्यम से उसी तरह एक काल्पनिक रूप चित्र नयनों में गढ़ लेते हैं जैसे भक्त भगवान् के । विश्व साक्षी है कि संसार की विभिन्न रंगीन जातियों में नीलवर्णी सिंहमुखी कोई जीवित प्राणी नहीं किन्तु भक्तों के भगवान् भी ऐसे नहीं थे यह कहने का दुःसाहस वही कर सकता है जिसे अपनी कपाल क्रिया निकट जान भी निर्विकारिता हो । इन अनोखे रूप चित्रों की जननी कृतियां ही तो हैं । जिन रूपों में कृतियां झलकीं वही रूप सजीव हो उठे ।

साहित्यकार के प्रति भी इस तरह की निःसीम जिज्ञासा असीम श्रद्धा होती है, उसका लघुतम से भी लघुतम पाठक की सर्वोत्तम निधि होता है जिसे थाती सा वह अपने परिचितों को सौंपता है, किन्तु कितने हैं जो साहित्यकार को निकट से देख पाते हैं, अधिकाँश तो उसकी कृतियों में ही ढूँढ़ एक रूप छवि अपने मानस में आँकते हैं ।

महादेवी जी भी अपवाद नहीं । अपने पाठकों के मध्य ठीक यही स्थिति उनकी भी है ।

पाठक जब कृतियों में महादेवी जी को खोजता है तो सूर्य-रश्मियों के सप्तरंग नयन झरोखे आते हैं और हर रंग क्षणों को दूसरे को सामने ठेल देता है, कवि महादेवी, चित्रकर्त्री महादेवी, प्रबुद्ध विवेचक महादेवी, अग्रजों को अंजलि देती श्रद्धावनत् महादेवी, समाज की कटु आलोचक महादेवी, साधारण को असाधारण दर्शाती महादेवी और स्मृतियों के पिटारे से दुख दर्द विवशता स्वाभिमान संकल्प व कर्तव्य की जीवंत मूर्तियों की शिल्पकार महादेवी, इन विभिन्न रंगों में क्षण-क्षण चाहे जिस रंग की झलक दिखाई दे किन्तु एक रंग स्थिर है और वह है रश्मि का अपना रंग, सफेद चमकीला व रजत । अपने इतने विभिन्न रूपों में जिस रूप में महादेवी पाठक के मन पर अंकित होती हैं वह है उनका चित्रकार और कवि । उनका गद्य भी द्राविड़ प्राणायाम के बगैर पल्ले नहीं पड़ता । नाक ठीक सामने होने पर भी पीछे से हाथ घुमाकर ही पकड़नी होती है । पकड़ में आने पर भले ही उसका सुडौलपन मन मोह ले पर सीधी सीधी पकड़ में आने वाली वह नहीं । दूसरा चित्र सामने आता है चित्रकार का जिस व्यक्ति पर उनकी कलम उठे वह अपने नख से शिख पर्यन्त, तन और मन के हर उठान, उभार के साथ आँखों में मूर्त

हो उठता है अतएव प्रमुख यही रूप है कवि और चित्रकार का। किन्तु क्या व्यक्ति महादेवी को उनका कवि और चित्रकार ठीक प्रस्तुत कर पाया है? अनदेखे व्यक्तियों को लगता है इन सुकुमार चित्रों को रेखाँकित करने वाली ललित कल्पनाओं की उपासिका गायिका सर्व सुविधा सम्पन्न एक राजकुमारी है जिसके निकट अवकाश का आकाश है तभी न ये कल्पनाएँ अपनी रंगीनियों में उनके निकट सजीव हैं,

"प्रियतम को भाता है, तम के परदों में आना
ऐ नभ की तारावलियों क्षण भर को बुझ जाना"

यह एकान्त आवाहन, यह विरह क्या औसत सहज मानवी के लिए संभव है, उसके निकट इतना अवकाश कि वह हीरे के तारों को चूर-चूर कर प्याला गढ़ने जाये ?? स्पर्श मात्र से जिनकी कोमल धवलता नष्ट होने का भय हो वे रुई के गालों से रेशे-रेशे बिखरे कोमल-कोमल नवनीत से स्निग्ध मोहक चित्र जो क्षण में पाठक को भी अपवर्ग की सैर करा स्थूल जगत से दूर ले जाने में समर्थ हों। क्या वे कवि के उस रूप को पाठकों के समक्ष नहीं प्रस्तुत करते कि इनकी सर्जिका [illegible] कभी धरती पर पाँव भी रखे हैं या नहीं ? या केवल मखमली बिछावन पर उस कमरे में बैठी जिसके वातायन [illegible] चमेली के राशि-राशि फूलों सी दूधिया चांदनी बिखरी [illegible]ड़ी हो और कवि वहाँ से द्वितीया के कृश और पूनम के [illegible]रे पूरे चाँद का सौंदर्य निहार-निहार काल्पनिक दुख में दुःखो [illegible]ख में सुखी होती हो। जिसके दृष्टि विस्तार में कल्पना [illegible]हलहाते बगीचे के झूमते फूलों की मस्त मदमाती अल्हड़ता [illegible] झूम रही हो और वे उस सुख में भी दुःख ही खोज [illegible]ी हो। बरस, तपन, ठिठुर की जिन रातों में सर्वहारा दिन [illegible]र के कठोर श्रम का लेखा जोखा कर भूख से विकल [illegible]हें काट नहीं पाता, उसी रजनी को वे तारों की झिलमिल [illegible]र ओढ़ा सजा संवार कर निःश्वासों के नीड़ बनाती है [illegible]सके वैभव पर उजियाली भी आँसू बहाती हो। पढ़कर [illegible]ता है इसके रचयिता की पगवट में फूल ही फूल हैं और [illegible]के पांवड़े तक संभवतः वैलवेट के हैं, तभी इसे यथार्थ ने [illegible]ीं से नहीं स्पर्शा। इसकी पार्थिव आँखों ने दुनिया नहीं [illegible]ारी।

महादेवी जी ही नहीं जहाँ तक दृष्टि विस्तार में आया संभवतः स्वयं रवीन्द्र का कवि भी व्यक्ति को भावना संघर्षों के निकट ला उसे आस्थावान नहीं बना पाता।

प्रश्न होता है क्या महादेवी वही हैं जो इनका पद्य दर्शाता है? पद्य ने व्यक्ति महादेवी के प्रति ईमानदारी नहीं बरती। महादेवी की अपराजेय आत्मा समाज से लोहा ले उसके प्रति जिहाद बोलने की क्षमता को पद्य नहीं दर्शा पाया। जबकि निराला का पद्य भी उनकी भावना, कर्म और ज्ञान की त्रिवेणी के निकट व्यक्ति को ला खड़ा करता है और नगण्य से नगण्यतर को निराला ने जो महत्ता दे मानवता का जयघोष किया है उनके पाठक का भी उसमें समवेत स्वर मिलता है।

भावना, कर्म और ज्ञान जब एक सम पर मिलते हैं तब युग-प्रवर्तक साहित्यकार जन्म लेता है। क्या इस प्रवर्तन में महादेवी जी का योग नहीं, है या उनमें ये एक सम पर नहीं मिले ? मिले हैं निस्सन्देह किन्तु वे पद्य के माध्यम से पाठक के सामने नहीं आये। उनका गद्य भी बताता है कि महादेवी जी केवल शब्दों और रंगों का जाल ही नहीं बुनती हैं वरन् उनमें कठोर कर्म और घनी कर्मठता भी है, तभी तो महादेवी जी के समय के इस अपव्यय को देख किसी को कहना पड़ा कि, "साहित्यकार यदि घूरे को लीपता फिरे तो महान बनने का प्रयास कब करे ?"

महादेवी के गद्य ने पग-पग पर दर्शाया है कि प्रयास करके महान नहीं बना जा सकता, वह तो कलाकार की व्यापक संवेदना है जो व्यक्ति के बाहरी सौंदर्य को ओट दे अपनी पारदर्शक अनुभूति से अन्तर में छिपी आत्मा के चिरन्तन सौंदर्य को पूजे, प्रतिष्ठापित करे वही उसका धर्म और मर्म है। जो कलाकार इनकी उपेक्षा कर अपना इतिहास बनाता है वह स्वयं कब रह पाता है इसमें भी सन्देह है। इसी घूरे को लीपने के प्रयास में अनजाने अनचाहे वे महा और देवी दोनों ही बन गयीं। उन्हीं के शब्दों में संघर्ष सृजन की शपथ है। इस संघर्ष ने जो सृजा उसमें ऐसा अछूता-अनोखा कुछ भी नहीं था जो किसी की समझ में न आया हो किन्तु दृष्टि के जिस कोण से महादेवी जी ने देखा, जिस ढंग से उनकी व्याख्या की वह उद्घोष करते चलती हैं कि जीवन

में इतना क्षुद्र तो कुछ भी नहीं जिसकी उपेक्षा की जा सके ।

महादेवी ने अपनी सूक्ष्म अंतर्दृष्टि से अपने हर पाठक को वह व्यापक दिव्य दृष्टि दी है कि वह प्रत्येक अशिव असुन्दर विरूप के अन्तर के शिवत्व सुन्दरत्व को परखे । प्रकृति उनकी दृष्टि में हीरा है अतएव उसका हर अंश अपना एक मूल्य रखता है । चाहिये केवल मूल्यांकन की अनुभूतिमयी दृष्टि जो पत्थर को परमेश्वर बना दे ।

महादेवी जी के पथ के साथी, अतीत के चलचित्र शृंखला की कड़ियों की शृंखला हमारी भी तो शृंखला की कड़ियों में से एक है, हमारे अतीत में भी ऐसे ही अनेकों चलचित्र हैं हमारे पथ में भी ऐसे अनेकों साथी आये हैं और आयेंगे, इनमें क्या अनोखापन है जो हमारे आपके जीवन में नहीं घटा, 'किन्तु मेरे अतृप्त जीवन में देना न तृप्ति का कण भर' की गर्विता गायिका ने इनकी अतृप्तियों को ऐक्सरे की, जिस पारदर्शक दृष्टि से देखा परखा हमें आपको दिखाया परखाया उसने हमारे आपके मनमें वह संवेदना जगाई कि क्षण भर को अनचाहे भी मन नयन अपने आप मुंद नियन्ता से अपनी सम्पूर्ण निष्ठा से एक ही मांग करते हैं कि प्रभो ! इनके जीवन में तुम तृप्ति का सागर लहरा दो ।

युग ने महादेवी को गढ़ा या महादेवी ने युग को स्वीकार किया, जो हो किन्तु यह निश्चय है कि उसने हर छोर से जीवन को स्पर्श किया और उसकी सम्पूर्णता से उसे स्वीकार किया तथा हृदय की विशालता, भावप्रसार की विलक्षण शक्ति, व्यंगों की विलक्षणता तीव्र चुभन, मर्मस्पर्शी उद्भावना व शब्द शिल्प के अद्भुत प्रयोगों की अनूठी जड़न ने उनके तूलिका चित्रों से अधिक कलम के चित्रों से व्यक्ति को जिन नए प्रतिमानों में संवेदन के जिस पारस से उभार-उभार कर छुआ उससे वे सब नगण्य भोथरी लौह कीलें हिरण्य हो उठीं ।

नारी के उत्पीड़न और विवश दैन्य के प्रति समाज पर जो उनका कटुतर आक्रोश है वह इन पंक्तियों में मुखर हुआ है, "भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरञ्जन के लिए रंग बिरंगे पक्षी पाल लेता है उसी प्रकार स्त्री को भी पालता है तथा पालित पशुओं के समान ही उसके शरीर और मन पर अधिकार समझता है हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए । उस समय उस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल सन्तानों की रोगिणी पीली माता में कौन सी विवशता कौन सी रुला देने वाली करुणा न मिले ।"

"इन स्त्रियों ने जिन्हें समाज पतित के नाम से सम्बोधित करता आ रहा है पुरुष की वासना वेदी पर कैसा घोरतम बलिदान किया है । इस पर कभी किसी ने विचार नहीं किया । पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल-तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो बूँद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा ।"

(शृंखला की कड़िया)

"पतित कही जाने वाली स्त्रियाँ भी मनुष्य जाति से बाहर नहीं हैं अतः उनके लिए भी मानव सुलभ प्रेम साधना और त्याग अपरिचित नहीं हो सकता । उनके पास भी धड़कता हृदय हैं जो स्नेह का आदान प्रदान चाहता रहता है । उनके पास भी बुद्धि है जिसका समाज के कल्याण के लिये उपयोग हो सकता है ।"

(शृंखला की कड़ियाँ)

अवैध सन्तानों ने भी उनकी सहानुभूति पाई है—"छोटी लाल कली जैसा मुँह नींद में कुछ खुल गया था और उस पर एक विचित्र सी मुस्कुराहट थी मानो कोई सुन्दर स्वप्न देख रहा हो । उनके आने से जाने कितने भरे हृदय सूख गए, कितनी सूखी आंखों मे बाढ़ आ गई और कितनों को जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया । इसका इसे ज्ञान नहीं ।"

इस प्रकार महादेवी जी का पद्य यदि अंतर्मुखी है तो गद्य समाजाश्रित ।

जब वे समाज के दोष गिनाने पर तुल जाती हैं तो उनमें स्त्री पुरुष का भेद मिटा दिया है केवल पीड़क पीड़ित का चित्रण है । नारी पर जितने अत्याचार स्वयं नारी करती है उतने पुरुष नहीं, वही पुरुष अत्यधिक पीड़ित होता है जिसके

उकसाने में कहीं नारी हो, यह बात दूसरी है कि शतियों से पुरुष की किस उत्पीड़ित जकड़ से नारी अपने हृदय के मधु रस को सुखा रेत हो गई है, किन्तु यहाँ तो प्रश्न है होने का। अन्यथा पिता को अपनी पुत्री की अत्यधिक दुर्बलता पर यह कहने को न विवश होना पड़ता कि "घर में दूसरी मां है" अतीत के चलचित्र के दूसरे चित्र में वे विधाता के दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय का एक पृष्ठ खोलती हैं कि, "सबसे कठिन दिन तब आते जब वृद्ध की सौभाग्यवती पुत्री नैहर आती, उसके जाने के बाद भाभी के दुर्बल गोरे हाथों पर जलने के लम्बे काले निशान और पैरों पर नीले दाग रह जाते हैं।"

भला क्यों? क्या आनन्द में नारी की आत्मा नहीं या सौतेली माँ में मां का ममत्व नहीं, नारी दोनों हैं।

शाश्वत सत्य सी संभवतः समाज की यह अनिवार्य दानवी भूख है कि यदि सामने कोई ऐसा है जिस पर शासन किया जा सके तो सद् से सद् भी अविवेकी बन असद् हो उठता है। पीड़क की पीड़ा देने के प्रकारों में चाहे जितनी भिन्नता हो किन्तु आने वाले के अंतस को तो वह क्षार-क्षार कर ही देती है। स्त्री पुरुष की संज्ञा यहाँ नहीं है, है केवल मानव मन। महादेवी जी के गद्य में ये सब उभरे ही नहीं अपनी समस्त पीड़ओं के साथ तन मन को बेसुध कर देते हैं।

'अतीत के चलचित्र' 'शृंखला की कड़ियाँ' और 'पथ के साथी' ने अनेकों अनछुए चित्रों को उभारा है। सुभद्रा जी और सियारामशरण गुप्त जी को जाने कितनों ने निकट से देखा है। सुभद्रा जी के मित्रों ने तो उनकी समाधि भी बना दी पर क्या किसी ने उन्हें उनकी समस्त विशिष्टताओं से अमर करने का भी प्रयास किया है? संभवतः उनकी सन्तानों ने भी नहीं। जब कि मुझे भी स्मरण है कि सुभद्रा जी अपने पूरे-पूरे मायनों में एक ममतामयी मां और कर्मठ गृहणी अधिक थीं। विकृति चाहे जितनी जन चर्चा दे किन्तु सुकृति केवल महादेवी जी ने ही दी है। भक्तिन, घीसा, सिस्तर के वास्ते, सरम करता माँ समाज के चरित्र हो गए, भक्तिन कहते ही एक अबोध कृतसंकल्पा सेविका का चित्र प्रस्तुत होता है जो अपने मालिक को संभवतः उसी दिन छोड़ेगी जब न साबुन से धोती साफ करने का अवसर होगा न बिदा लेने का। आज 'घीसा' से एकलव्य समाज में है जिनकी विशेषता और संकल्प दोनों खींचतान कर रहे हैं। सरम आता माँ ''में जो सरलता है वह पर्वत पुत्रों की पर्वतीय दृढ़ता से ही उभरी है।

संस्मरणों के इन पात्रों में ऐसे संभवतः कम ही पात्र हैं जो हमारे आपके जीवन में कहीं न आए हों, हर वर्ग के पात्रों को महादेवी जी ने ऐसी जादूभरी ममता की छड़ी से छुआ है, समाज के हर दोष को आँख में उंगली डाल-डाल, कुरेद-कुरेद कर व्यक्ति के दैन्य निराशा, उत्पीड़न, असफलता विवशता को दिखाया है, कि यह सिद्ध विष हमारा टानिक हो गया है, हम पर उपदेश में नहीं थोपे गए। अपने आप हमने इसे पी लिया, तभी उनके संकल्प हमारे हो कर हमें शक्ति दे गए, उनकी वेदना में हम भी सिसक उठे, उनकी अभिलाषाओं की कलियां चटकी पर फूल न बन पाने की निष्ठुरता पर इन बिन खिले गुन्चों के दुर्भाग्य पर हम भी आँसू बहा कभी कभी तो यह भी सोचने को विवश होते हैं कि यदि जीवन में सुख ही सुख होता तो सुख का महत्व क्या होता; सहानुभूति का स्थान कहाँ होता?

महादेवी जी के विवेचक गद्य से जो उन्होंने यामा दीपशिखा एवं आधुनिक कवि की भूमिका में दिया है उनके प्रखर पाण्डित्य और चिन्तनशैली का परिचय मिलता है, अनुभूति और विचारों के संयोग से बौद्धिकता के तथ्य को सुगम-सुलभ बना जो ऐतिहासिक एकसूत्रता उन्होंने दी है वह साहित्य का मेरु है। विवेचना के माध्यम से उन्होंने साहित्य को चिरन्तन सत्य के रूप में स्वीकार किया है। व्यक्ति में समष्टि और समष्टि में व्यक्ति की खोज, अनेकात्मकता में एकता, एकता में अनेकात्मकता की भांति वे जीवन और साहित्य के सामञ्जस्य को प्रतिपादित करती चलती हैं।

कवि और विवेचक महादेवी ने इन माध्यमों से अपने पाण्डित्य के चाहे जितने झन्डे फहरा कर गहन गरिमा ढोई हो किन्तु उनका गद्य क्षण-क्षण, पग-पग स्वीकार करता चलता है, कि वे न महा हैं और न देवी; वे तो महज एक सहज नारी हैं जिनमें नन्हीं बालिका की मांगें मनुहारें हैं, किशोरी की अल्हड़ता है, युवती की अभिलाषाएँ और तन कर चोट पर चोट देने की क्षमता के साथ बहिन की शुभकामना, स्नेह और

माता का निःसीम वात्सल्य भरा दुलार भी है। नेह और नीड़ का मोह उन्हें भी उतना बाँधता है जितना किसी अन्य नारी को।

'देव अब कैसी वरदान की स्पर्धा' करने वाली महादेवी को पढ़ कर कौन विश्वास करेगा कि यही महादेवी गोबर से आँगन लीप उसे भी सरहवाने की कामना करती होंगी। काव्य तो छोड़ ही दिया जाय, जिस महादेवी का गद्य भी मस्तिष्क के लिए एक ललित व्यायाम हो उसके लिए कभी साधारण तुकबन्दी भी गणित के प्रश्नों सी सरदर्द रही होगी, छायावाद की इस अंतिम गरिमामयीकवयित्री ने कभी स्याही से मुँह पर हिन्दुस्तान की रेल लाइन का नक्शा बना तुकबन्दी जोड़ने की धुन में इस बात की भी कामना की है कि कोई उसे कवि ही न स्वीकारे बल्कि सराहे प्रोत्साहे भी।

सुना गया है कि महादेवी हँसी की निर्झरणी हैं और गद्य ने उनकी पग-पग पर सादगी निर्विकारिता स्वीकारी है किंतु अपने दैनिक जीवन में उन्होंने चाहे जो अंगीकारा हो किन्तु सघन सुरक्षित बन की सी उनकी भाषा ने अपनी दुरूहता की भूल भुलैयाँ में व्यक्ति को खूब भरमाने का प्रयास किया है, किन्तु जब वह उसमें राह पा जाता है तो स्वयं हँसी की निर्झरणी हो उठता है। स्मृति की रेखाओं में—"हमारे यहाँ भी एक व्यक्ति जीवन में अकिंचन, रूप में कोयला, नाम से हीरालाल और उपनाम से शरतेन्दु होकर भी उपहासास्पद नहीं माना जाता।"

"अंग्रेजी की क्रियाहीन संज्ञाओं और हिन्दुस्तानी की संज्ञाहीन क्रियाओं के सम्मिश्रण से जो विचित्र भाषा बनती थी उसमें कथा का सारा मर्म बँध नहीं पाता था।"

इस व्यष्टि समष्टि की गायिका ने स्रष्टा पर क्रूरतम निष्ठुर व्यंगों के प्रहार किए हैं—

"ये भी मनुष्य के मनुष्य का रूप नहीं।"

"पर्वतीय पथ पर इन्हें खुर न देने वाले……"

इसी भांति अपने समानधर्मियों की नाटकीयता, प्रशस्ति की दयनीय भूख के साथ महार्थता सिद्ध करने वालों के छिछले प्रयासों के समक्ष उनके ठकुरी बाबा की रसविदग्ध आत्मा के संस्कारी शिष्ट मन की जो झांकी दी है वह महादेवी की कोमलकांत पदावली की रचयिता कम किंतु कीमती लेंस का कैमरा अधिक सिद्ध करता है, जो धुँधलके में भी क्षीण से क्षीण रेखा की छवि भी आँक लेता है।

महादेवी के दुरूह कवि ने निस्संदेह इस मृत्यु की कामना की है कि;

"मुझे तो उस लहर की सी मृत्यु चाहिए जो तट तक दूर आकर चुपचाप समुद्र में लौट समुद्र बन जाती है।"

किन्तु महादेवी की नारी ने सराहा है, सुभद्रा जी के दृष्टिकोण को ही, जो उनके कवि और नारी में, अंतर-वाह्य के अंतर को स्पष्ट करता है। सुभद्रा जी को उस मृत्यु की कामना थी जो उन्हें मिली भी, "मेरे मनमें तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूं मेरी एक समाधि हो जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलें, स्त्रियाँ गाती रहें; कोलाहल होता रहे"

यह भरा पूरापन ही तो नारी है, मां है, मरने के बाद भी वह आशीर्वाद का वरद-हस्त सन्तानों पर रखे रहे यही नारी की एकांत कामना है।

नारीत्व की गरिमा का एकांत मोह महादेवी का गुरुवर कवि भी नहीं भुला पाया।

महादेवी पर यह उनके गद्य का ऋण रहा जिसने आज की बहुप्रणम्य, बहुचर्चित कवि को एक अनुभूतिशील ममता स्नेह से ओतप्रोत नारी को सम्पूर्ण विशिष्टताओं में प्रतिष्ठापित किया, कवि की कसौटी पर सत्य को काव्य का साध्य और सौंदर्य को उसका उपादान मान उस पर महादेवी जी यदि खरी उतरी हैं तो यह उनका गद्य ही है जिसने किसी भी सम्पूर्ण नारी के समक्ष उन्हें ला खड़ाकर उतना ही सहज मानव सिद्ध किया जिस पर भक्तिन-भी शासन कर उन्हें शहरिन कम रख देहातिन अधिक बना दे।

महादेवी के वे पाठक एवं प्रबुद्ध आलोचक दोनों ही उनके गद्य के ऋणी रहेंगे, जिन्होंने महादेवी जी के व्यक्तिगत जीवन को देखा, उन्हें कोरा कवि नहीं वरन् अपने सम्पूर्ण अर्थों में परिपूर्ण मानवात्मा सिद्ध किया है।

निबन्धकार महादेवी

•

हर्षनन्दिनी भाटिया, एम० ए०

हिन्दी-साहित्य-जगत् में विख्यात कवयित्री के रूप में महादेवी जी से सभी परिचित हैं, पर मूलतः आप कला-प्रेमिका हैं। यही कारण है कि साहित्य एवं चित्रकला दोनों में आपकी समान गति है और उसका ही समन्वयात्मक रूप आपके 'रेखाचित्रों' में दृष्टिगत होता है। छायावाद और रहस्यवाद की प्रमुख कवयित्री जो भावजगत् में पीड़ा की रानी' कहलाती है, गद्यकार के रूप में जीवन को समीप से देखती है। कवि-रूप में जो महादेवी अन्तर्मुखी हैं वही गद्य-क्षेत्र में बहिर्मुखी हो गई हैं। डा० रामचरण महेन्द्र के शब्दों में "कल्पना चाँदनी की साड़ी पहिन, तारों की स्वप्निल जाली मुँह पर डाले, संध्या का सिन्दूर मुख-श्री पर लगाये, जिस कवयित्री की रहस्यवादी कविता मानव-जगत् से बहुत ऊँची उठकर भाव गगन में विहार करती है उसी गद्यकार महादेवी की 'शृङ्खला की कड़ियाँ' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' का धरातल यथार्थवादी, ठोस, और पार्थिव है।' वेदना, विरह, वियोग, पीड़ा और टीस के गीत गाने वाली महादेवी का योगदान गद्य में भी कम नहीं।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' के अनुसार यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो महादेवी इस कसौटी पर खरी उतरती हैं। फिर गद्य की कसौटी 'निबन्ध' है तो उसमें आप और भी श्रेष्ठतर हैं और निबन्धों में भी 'वैयक्तिक निबन्ध कसौटी है तो उसमें श्रेष्ठतम उतरती हैं। महादेवी हिन्दी के मौलिक गद्य-शैलीकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उनके गद्य में उनके कवि-हृदय की विशालता, उनकी कल्पना शक्ति, उद्भावना वृत्ति इतनी घुलमिल गई है कि उनका परिष्कृत गद्य जहाँ एक ओर चिन्तनपूर्ण हो गया है वहाँ दूसरी ओर भावमय।

एक साथ संस्कृतनिष्ठ तथा सरलतम् गद्य का सौन्दर्य यदि देखना हो तो उसकी झलक महादेवी के गद्य में मिलेगी जिसमें प्रौढ़ता, गम्भीरता, भावव्यंजकता, व्यक्तित्व की सरलता तथा सहजता भरपूर है। सफल कवयित्री, आलोचिका, उत्कृष्ट संस्मरण-लेखिका, कुशल चित्रकर्त्री, मन मुग्ध कर देने वाली व्याख्याता तथा प्रधानाध्यापिका महादेवी का सम्पूर्ण गद्य साहित्य निम्नलिखित माध्यमों से उपलब्ध होता है।

१. पत्र-पत्रिकाओं के लेख
२. भाषण
३. पत्र
४. पुस्तकों की भूमिकाएँ-प्रस्तावनाएँ
५. संस्मरण तथा रेखाचित्र
६. सम्पादकीय लेख

पत्र-पत्रिकाओं के लेख, भाषण तथा अन्य माध्यमों से प्राप्त निबन्ध जिनमें विवेचन की गहनता है निम्नलिखित संकलनों के रूप में प्राप्त हैं।

१. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य—इसमें काव्यकला, छायावाद, रहस्यवाद, गीतिकाव्य, यथार्थ और आदर्श तथा सामयिक समस्या शीर्षक छः निबन्ध संकलित हैं जिनमें उनका आलोचक का स्वरूप ही मुखर है।

२. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्धः—इसमें उपर्युक्त निबन्धों के अतिरिक्त केवल एक निबन्ध साहित्यकार की आस्था, बढ़ा दिया गया है।

इन दोनों संकलनों के संकलनकर्त्ता श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय की दृष्टि में 'इन निबन्धों में महादेवी जी की व्यापक तथा गहन अनुभूति, समन्वयात्मक चिंतन-मनन और सामंजस्यपूर्ण जीवन-दर्शन का जो उन्मेष उद्घाटित हुआ है वह जीवन और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने की अद्भुत क्षमता के साथ विवेचना के स्तर को ऊपर उठाने में भी सफल है ॥'

पुस्तकों में लिखित भूमिकाएँ तथा प्रस्तावनाएँ भी कम महत्व नहीं रखतीं। इस दृष्टि से निम्नलिखित पुस्तकों के अंश उल्लेखनीय हैं।

१. रश्मि में 'अपनी बात'। सन् १९३२।
२. सान्ध्यगीत में 'अपनी बात'। सन् १९३६।
३. यामा में 'अपनी बात'। सन् १९३९।
४. दीपशिखा में 'चिन्तन से कुछ क्षण'। सन् १९४२।
५. हिमालय में 'प्राकृतिक परिवेश और संस्कृति'। सन् १९६३।

इसके अतिरिक्त अन्य गद्य की पुस्तकों की भूमिकाएँ ली जा सकती हैं, जिनमें उनकी कुछ भिन्न शैली ही दृष्टिगत होती है।

संस्मरण और रेखाचित्र के रूप में आपके तीन संकलन प्रकाशित हो चुके हैं।

१. अतीत के चलचित्र।
२. स्मृति की रेखाएँ
३. पथ के साथी

सम्पादकीय लेखों का संग्रह 'शृङ्खला की कड़ियाँ' नाम से प्रकाशित हो चुका है जिसमें महादेवी जी के नारी हृदय कलाकार ने अपनी मर्मभेदी दृष्टि से नारी जीवन को बड़ी बारीकी से देखा है। 'वैधव्य विधान पर उनका प्रहार— अब उसे मृत पति का ऐसा निर्जीव स्मारक बनकर जीना पड़ता है जिसमें सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक होना तो दूर रहा उसे कोई मलिन करने की इच्छा भी रोकना नहीं चाहता देखते ही बनता है। इनका मूल विषय समाज तथा नारी की दयनीय स्थिति का परिचय है।'

अन्य फुटकर निबन्धों का संकलन 'क्षणदा' है जिसमें बारह निबन्ध संकलित हैं। इस पुस्तक की भूमिका में लेखिका ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'क्षणदा' में मेरे कुछ चिन्तन के क्षण एकत्र हैं। इनमें न तर्क की प्रक्रिया है और न किसी जटिल समस्या को सुलझाने के निमित्त प्रस्तुत समाधान। संगीत थम जाने पर गायक जैसे औरों के वाद्य और अपने गीत की संगति पर विचार करने लगता है वैसे ही इनमें मेरे विचार भाव की सीमारेखा पर स्थित हैं।

इस प्रकार उनका सम्पूर्ण प्रकाशित निबन्ध[1] साहित्य निम्न लिखित भागों में बाँटा जा सकता है।

१. विवेचनात्मक—मननशील साहित्य विशेषकर आलोचनात्मक साहित्य इसमें आता है, जैसे—

—विवेचनात्मक गद्य
—साहित्यकार की आस्था
—क्षणदा के कुछ निबन्ध

---

[1] – निबन्ध की परिभाषा में शिपले अपने ग्रन्थ डिक्शनरी अव् वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स में निम्न-लिखित विधाएँ सम्मिलित करते हैं।

निबन्ध

Treatise	Biographical	Editorial		Arkicle		Impressioniotic	Personal
Monograph	Scientific		Book-Review		Character		Playful
	Historical						Sketch
	Expsoitory						
	Critical						

संस्मरणात्मक—अतीत के चलचित्र
स्मृति की रेखाएँ
पथ के साथी

नारीविषयक —शृंखला की कड़ियाँ

संस्मरणात्मक शैली में लिखे गये रेखाचित्र यहाँ विवेच्य नहीं है अतएव प्रस्तुत निबन्ध की परिसीमा में केवल उनसे इतर निबन्ध साहित्य रह जाता है। महादेवी जी के विवेचनात्मक निबन्धों को छोड़कर शेष निबन्धों में विचार की प्रधानता है, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है—विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अधिक अच्छा लगता रहा है। अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है। आपके निबन्धों की चित्रोपमता पर प्रकाश डालते हुए डा० प्रभाकर माचवे लिखते हैं :—

महादेवी जी के निबन्धों की विशेषता है उनकी भाव-विभोर गहरी चिन्तनशील प्रवृत्त—जिसके कारण वे विवरण में जाकर वर्णन बहुत चित्रोपम करती हैं। काव्यमयता उनके निबन्धों की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है। वे भी रेखाचित्र और संमरण की सीमा-रेखा वाले निबन्ध ही लिखती हैं फिर भी उनके कई संस्मरणात्मक चित्र जैसे 'महाप्राण निराला' की भूमिका और उनके कई भावणात्मक निबन्ध बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। भगतिन, चीनी फेरी वाला और ऐसे ही चित्रों से भरे उनके निबन्धों की तुलना एक स्नेपशाटों के अलबम से की जा सकती है।'

उनके विवेचनात्मक निबन्धों में कविहृदय की इतनी प्रधानता नहीं, जितनी चिन्तन वैज्ञानिक विश्लेषण और मौलिक दृष्टि की है। 'शृंखला की कड़ियों' में तो अधिकतर नारी विषयक निबन्ध ही संकलित हैं जिनमें गहरी चिन्तनशीलता के स्थान पर भाव-विभोरता है 'शृंखला की कड़ियाँ' से इतर निबन्ध संग्रहों में संकलित निबन्धों को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :—

१. शास्त्रीय—कला और चित्रमय साहित्य
अभिनय कला
काव्य कला

२. आलोचनात्मक—साहित्य और साहित्यकार
छायावाद
रहस्यवाद
यथार्थ और आदर्श
गीतिकाव्य
साहित्यकार की आस्था

३. वर्णनात्मक—सुई दो रानी
स्वर्ग का एक कोना

४. समस्या प्रधान - सामयिक समस्या
हमारे युग की वैज्ञानिक समस्या

५. सामयिक—हमारा देश और राष्ट्रभाषा

६. विचारात्मक—कसौटी पर
करुणा का सन्देशवाहक
कुछ विचार
दोष किसका

उपर्युक्त निबन्धों के आधार पर उनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

उक्तिवैचित्र्य कथन शैली :—

कवि-हृदय होने के कारण महादेवी के गद्य में इस शैली के लिखे वाक्य भरे पड़े हैं, जिनमें से कुछ उदाहरण यहाँ पर्याप्त होंगे :—

'किसी भी युग में मनुष्य जीवन की धोई पोंछी स्लेट पर अपने अनुभवों की वर्णमाला नहीं आरम्भ करता। मनुष्य आँसू हँसी के कारण भिन्न हो सकते हैं परन्तु उनके मूलगत विषाद, आनन्द एक ही रहेंगे।'

'साहित्य जीवन का चित्र अवश्य है परन्तु वह फोटोग्राफी मात्र नहीं कहा जा सकता।'

'समय बैलगाड़ी रथ छोड़कर वायुयान पर उड़ने लगा है एक क्षण को छूकर इतिहास के असंख्य

पृष्ठ लिखने लगा है तब हमें अपनी समय संबन्धी धारणाएँ बदलनी चाहिए ।'

'काँटा चुभाकर काँटे का ज्ञान तो संसार देही देगा, परन्तु कलाकार बिना काँटा चुभने की पीड़ा दिये हुए ही उसकी कसक की तीव्र मधुर अनुभूति दूसरे तक पहुँचाने में समर्थ हैं ।'

[काव्यकला से]

'छायाबाद व्यथा का सबेरा है अतः उसके प्रभाती गीतों की सुनहली आभा पर आँसुओं की नमी है ।'

[गीतिकाव्य से]

'कला इस युग में सुधा और मदिरा दोनों लेकर उतरी है या केवल मदिरा ।'

[क्षणदा से]

महादेवी जी ने भावुकता के क्षणों में अपनी लेखनी से ऐसे वाक्य प्रसूत किये हैं जो उक्ति वैचित्र्य पूर्ण हैं ।

सूक्ति कथन-शैली

महादेवी जी की स्वनिर्मित सूक्तियाँ बड़ी मार्मिक और सारगर्भित हैं । छोटे से वाक्य में "गागर में सागर" भर देना ही उनकी अपूर्व कला है । कभी निबन्ध के प्रारम्भ में तो कहीं मध्य में और कहीं अन्त भी सूक्तियों द्वारा ही होता है । ये सुन्दर सूक्तियाँ सदैव मनन और कंठस्थ करने योग्य हैं

"परिस्थितियाँ श्रमजीवी होती हैं, परन्तु उनके संस्कारों का जीवन अक्षय ही रहता है ।"

क्षणदा पृ० १०० ।

"मनुष्य स्वयं एक सजीव कविता है ।"

। विवेचनात्मक गद्य पृ० ४१ ।

"सन्तान का जन्म माता की पीड़ा का भी जन्म है ।"

क्षणदा पृ० १२३ ।

"कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है—काव्यकला ।

"साहित्य समाज की अपराजेय शक्ति है ।

क्षणदा पृ० १२३ ।

"निकट की दूरी हमारे वैज्ञानिक युग की अनेक विशेषताओं में सामान्य विशेषता बन गई है ।

। क्षणदा पृ० १३१ ।

अतः दूरी की निकटता बनाने के मुहूर्त में हमें निकट की दूरी से सावधान रहने की आवश्यकता है ।

क्षणदा पृ० १३८ ।

"व्यावहारिक जगत में हमारा दान जिस परिमाण तक गुरू होता है, आदान उसी परिणाम तक मूल्य-वान बन जाता है ।

प्रणदा पृ० ३१

"विश्वासी बुद्धि और विवेकी हृदय अपने आप में सब शङ्काओं का समाधान है ।

मिश्र तथा संयुक्त वाक्यों की प्रवाहमयी शैली

विभिन्न समानाधिकरण से मिश्र तथा संयुक्त वाक्यों की प्रवाहमयी शैली में भरमार रहती है, जिसमें प्रधान वाक्य के साथ आश्रित उपवाक्य एक ही शैली में चलते चले जाते हैं । मूलतः एक ही भाव भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त करके शैली की गतिशीलता तथा प्राँजलता प्रदान करके उसे प्रभा-वोत्पादक बनाने की कला महादेवी जी निबन्ध कला की विशेषता है जो इस प्रकार हैं -

"कलाकार यदि सत्य अर्थों में कलाकार हों तो वह कल्पना को सुन्दर आकार देगा, उसमें वास्तविकता का रङ्ग भरेगा और उससे जीवन संगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर लेगा ।

उसके कला में साकार आदर्श तलवार की झनझना-हट में नहीं टूटते, बाँसुरी की मादक तान में नहीं बह जाते, मनुष्य की दुर्बलता पर हताश नहीं होते, कुरूपता पर कुंठित नहीं होते, और क्षणिक सौंदर्य पर चमत्कृत होना भी नहीं जानते ।

क्षणदा पृ० ५० ।

अपनी सोती हुई प्रेरणा को जगाने के लिए, बिखरे भावों को एकत्र करने के लिये तथा किसी भी विशेष दिशा में अग्रसर होने के लिये औरों से साहाय्य और संकेत की अपेक्षा करता रहता है !

'दोष किसका' से

'चाहे कभी न गलने वाला हिम का प्राचीर हो, चाहे कभी न जमने वाला अतल समुद्र हो, चाहे किरणों की रेखाओं से खचित हरीतिमा हो, चाहे एक रस शून्यता ओढ़े हुये मरु हो, चाहे साँवले भरे मेघ हों, चाहें लपटों में साँस लेता हुआ बवंडर हो, सब अपनी भिन्नता में भी एक ही देवता के विग्रह को पूर्णता देते हैं ।

['हमारा देश और राष्ट्रभाषा' से]

''एक सुन्दर स्वप्न अनेक सुन्दर स्वप्नों में समाकर जीवन को विराट सौंदर्य देता है, एक शिव संकल्प अनेक शिव संकल्पों में लीन होकर मनुष्य को विशाल शिवता देता है एक निष्ठामय कर्म अनेक निष्ठामय कर्मों में मिलकर विश्व को अक्षय गति देता है ।

['हमारा देश और राष्ट्रभाषा' से]

'जब तक हम स्वप्नों को सत्य करने के लिये गतिशील रहे, आदर्शों को मूर्त्त रूप देने के लिये कर्मठ रहे और सिद्धान्तों का खरापन कसने के लिये उतावले रहे, तब तक व्यावहारिक जीवन का बड़े से बड़ा मूल्य देने को प्रस्तुत रहे, क्योंकि हमारे अन्तर्जगत् को साकारता वहीं सम्भव है ।

['कसौटी पर' से]

'वृक्ष का अनेकरूपी वैभव न उसे भ्रमर के समान गुंजन की प्रेरणा देता है, न कोकिला के समान तान लेना सिखाता है और न मधुमक्षिका के समान परिश्रम शक्ति प्रदान करता है ।

['यथार्थ और आदर्श से']

उजले कमलों की चादर जैसी चाँदनी में मुस्कराती हुई विभावरी अभिराम है, पर अँधेरे के स्तर पर स्तर ओढ़कर विराट बनी हुई काली रजनी भी कम सुन्दर नहीं । फूलों के बोझ से झुक-झुक पड़ने वाली लता कोमल है पर शून्य नीलिमा की ओर विस्मित बालक सा ताकने वाला ठूँठ भी कम सुकुमार नहीं । अविरत जलदान से पृथ्वी को कँपा देने वाला बादल ऊँचा है पर एक बूँद आँसू के भार से नत और कम्पित तृण भी कम उन्नत नहीं । गुलाब के रंग और नवनीत की कोमलता में कंकाल छिपाये हुये रूपसी कमनीय है, पर झुर्रियों में जीवन का विज्ञान लिखे वृद्ध भी कम आकर्षक नहीं । वाह्य जीवन की कठोरता, संघर्ष, जय-पराजय सब मूल्यवान् हैं पर अन्तर्जगत की कल्पना, स्वप्न, भावना आदि भी कम अनमोल नहीं ।

['काव्यकला' से]

अलंकृत शैली :—

उपमा—

हमारे ज्ञान-युग के ऐश्वर्य के चरणों से व्यक्त जीवन का जो दैन्य बँधा है वह किसी सर्वाङ्ग सुन्दरी माता की रूप और विकलांग सन्तान के समान भिन्न और विस्मय की वस्तु होकर भी उसी के अस्तित्व से निर्मित है ।

हमारे अजस्रप्रवाहिनी सरिताओं से निरन्तर सिक्त देश ने जल को इतने बन्धनों से बाँधकर नर्तकी के समान लास सिखाने की आवश्यकता नहीं समझी थी ।

विशेषकर हमारे प्रौढ़ पत्र-साहित्य ने बालक के समान चित्रकला की उँगली पकड़कर इस प्रकार चलाना आरंभ किया है कि उसे अब चित्र साहित्य के नाम से पुकारना अधिक उपयुक्त होगा ।

जब क्षय से कीटाणुओं के समान विषैली दुर्भावनाओं और अस्वाभाविक वासनाओं के कीटाणु उनके रक्त में उनके विचारों में और उनकी कल्पनाओं में बस जाते हैं तब उनका स्वस्थ युवक हो सकना सम्भव नहीं ।

धर्म ने यदि अपने आपको कूप के समान पत्थरों से बाँध लिया है तो राजनीति से धरती के ढाल पर पड़े पानी के समान अनेक धाराओं में विभक्त होकर शक्ति को बिखरा डाला है।

सुन्दर भविष्य के सन्देस वाहक छोटे से अंकुर की प्राण के समान रक्षा करने वाले तथा बड़ी से बड़ी उच्छृङ्खल और उपवन के सौन्दर्य को घटा देने वाली शाखा को काटकर देने वाले माली के मोह और विराग के समान ही उसका प्रेम और उसकी कठोरता है।

जनसाधारण को उसकी रुचि के विरुद्ध कुछ देना हठी बालक को बहलाने के समान कठिन है।

इसी प्रकार अनेक उपमाएँ भरी पड़ी हैं, जैसे, शतरंज के मोहरों के समान, कठफोड़े की पैनी चोंच जैसी दृष्टि, संखिये के समान मारक, शतुर्मुर्ग के समान मिट्टी में, आदि।

उत्प्रेक्षा—

इन चित्रों में न सजीवता रहती है न कला, मानो लकड़ी पर एक आकार खोदकर सब स्थानों में छाप दिया हो।

रूपक—

भारतीय संस्कृति निश्चित पथ से काटछाँट कर निकाली हुई नहर नहीं, वह तो अनेक स्रोतों को साथ ले अपना तट बनाती और पथ निश्चित करती हुई बहने वाली स्रोतस्विनी है। उसे अन्धकार भरे गर्तों में उतरना पड़ा है, ढालों पर बिछलना पड़ा है।

आपके निबन्धों में उदाहरण तो भरे पड़े हैं, जैसे—सौंदर्य सम्बन्धी जिज्ञासाएँ और समाधान एक सामान्य वायुमण्डल में उसी प्रकार एकाकार हो जाते हैं जिस प्रकार अनेक फूलों के हृदय से निकला हुआ परिमल घुलमिलकर एक हो जाता है।

कोई केवल संपादक के आसन पर आसीन होकर ही अपने कर्तव्य की पूर्ति नहीं कर लेता, जैसे नश्तर हाथ में आ जाने से ही कोई डाक्टर नहीं हो जाता।

इस आशा के नष्ट होते ही उनके निकट सम्पादक का रूप उसी प्रकार परिवर्तित हो जाता है जैसे स्वर्ण-मृग क्षणधर में मारीच हो गया था।

उसके अन्तर्गत आलोक ने उसकी वाणी के हर स्वर को उसी प्रकार उद्भासित कर दिया जैसे आलोक हर तरंग पर प्रतिबिंबित होकर उसे आलोक की रेखा बना देता है।

व्यंग्यगर्भित लाक्षणिक शैली—

काव्य में लक्षणा और व्यञ्जना के सुन्दर उदाहरण मिलते ही हैं पर निबन्धों में भी लक्ष्यार्थ व्यंगार्थ की कमी नहीं—

इस चिर नवीन स्वर्ग ने, सुन्दर शरीर के मर्म में लगे हुये व्रण के समान अपने हृदय में कैसा नरक पाल रक्खा है, यह कभी फिर कहने योग्य करुण कहानी है।

'स्वर्ग का एक कोना' से

संजीवनी जड़ी तो आज तक किसी को नहीं ज्ञात हुई परन्तु मृत्यु को तत्क्षण उपस्थित कर देने वाली विष बूटियों को सब जानते पहचानते हैं।

हमारे विषम आचरण, भ्राँत असंस्कृत आवेग आदि प्रमाणित करते हैं कि हमारा मनोजगत ही ज्वरग्रस्त है।

मनुष्य के बाह्य जीवन की निर्धनता देखने के लिए वे सहस्राक्ष बनने पर बाध्य है और उसके अन्तर्जगत के वैभव के लिये धृतराष्ट्र होने पर विवश।

प्रश्नोत्तर शैली—

महादेवी जी विचारात्मक शैली के साथ-साथ प्रश्नोत्तर प्रणाली से उसको अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न करती है—

जो देश की एक बड़ी संख्या के मस्तिष्क के लिये भोजन प्रस्तुत करते हैं, उनका अज्ञान और उनका भ्रान्ति देखकर किसे विस्मय न होगा।

साधकों ने अपने कमंडल के पूत जल से इसे पवित्र बनाया है। साम्राज्यवाद का स्वर्ण मुकुट न इसकी

धूल धूसरित उन्मुक्त बलकों को बाँध सका है, बाँध सकेगा। दीपक की लौ पर सोने का खोल क्या उसे बुझा नहीं देगा ?

रेखाचित्र शैली—

'अतीत के चलचित्र' तथा स्मृति की रेखाएँ तो रेखाचित्र शैली में हैं ही, पर क्षणदा में भी दो निबन्ध 'क्षण भर' और 'स्वर्ग का कोना' रेखाचित्र शैली में ही लिखे गये हैं। आपने शब्द योजना द्वारा जो चित्र अङ्कित किये हैं वे किसी भी चित्रकार के चित्र से कम सुन्दर नहीं, जैसे—

'जर्जर वस्त्र में लिपटे क्षीण मलीन बालक का हाथ पकड़कर पेड़ के नीचे आ बैठने वाली अन्धी भिखारिन का चित्र आँकते आँकते यदि उसकी तूलिका थक गई हो और सुनहली गोधूलि में लौटते हुये श्रान्त कृशकाय कृषक और उसकी रूखे बिखरे बालों वाली बालिका का मुख यदि उसके कागज पर उतर आया हो, तो वह युवती का सौंदर्य भी अङ्कित करके और अधिक पवित्र हो उठेगा।'

भाषा की दृष्टि से संस्कृत-तत्सम शब्दावली की ओर ही आपका झुकाव है। आपकी भाषा संस्कृतनिष्ठ भाषा ही कही जायेगी। वैसे अन्य भाषाओं के समुचित प्रयोग में आप हिचकिचाती नहीं हैं, जैसे मार्जिन, टिकट, सप्लाई, लैटर बाक्स आदि। अंग्रेजी के शब्दों के कुछ सम्यक् प्रयोग द्रष्टव्य है।

रजिस्टर—उसे ज्ञान का रजिस्टर मात्र कहना चाहिये।

इन्जेक्शन—उसका धर्म भी भाले की नोक पर न आकर इन्जेक्शन की महीन सुइयों में आया।

परेड—कवच पहनकर जीवन-संग्राम के लिए परेड करनी पड़ी।

मशीन—हमारे जीवन की व्यवस्था उस मशीन की तरह है।

सिविल गार्ड्स्—जैसी आज बिल्ला लगाने में निपुण पर कर्तव्य में अनिपुण सिविल गार्ड्स् की हो रही है।

संस्कृत के ग्रन्थों का विशेष अध्ययन करने के कारण अपने निबन्धों में आपने संस्कृत साहित्य की सूक्तियों का मुक्त प्रयोग किया है। जैसे—

'शालयत्र कनकप्रभा,' 'मा किंस्यात् सर्वभूतानि', 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' 'सर्वभूलकित', 'मा हिंस्यात्' 'तद्भावगतेन चेतसा', द्वा सुपर्णा सायुजा' आदि अनेक सूक्तियाँ स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुई हैं।

अन्त में हम पाण्डेय जी के शब्दों में कह सकते हैं, अनुभूति के रंगों से रंजित और व्यवस्थित सांस्कृतिक चिन्तन से चित्रित समालोचना के ये संश्लिष्ट चित्र उसकी बहुमुखी प्रतिभा और उनकी स्वयं प्रकाश प्रज्ञा के प्रौढ़तम प्रतीक हैं।

●

महादेवी की गद्य-गरिमा

डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित

देवीजी छायावाद-युग की विशिष्ट गद्यकर्त्री हैं 'श्रृंखला की कड़ियाँ' 'साहित्यकार की आस्था' तथा अन्य निबन्ध 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएँ' 'पथ के साथी' और 'क्षणदा' आदि गद्य कृतियाँ इस युग की अक्षुण्ण-निधि हैं। उनके काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाएँ उस युग मात्र की भूमिकाएँ हैं। देवी जी यहाँ भावुक भावक की स्थिति पर आती हैं। उनकी कारयत्री और भावयत्री प्रतिभा का सम्मिलन वस्तुतः आलोचक एवं आलोच्य वस्तु का सम्मिलन है। कवि के स्पष्ट सिद्धांत पृथक् काव्य शास्त्र निरूपित करते हैं, जो आत्म प्रतीति के साथ-साथ गद्यात्मकता का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। ग्रन्थ को आचार्यों ने कवियों (कवि कर्म) की कसौटी ? कहा है। पत्र की एक मार्मिक उक्ति रचना में चमत्कार लावण्य एवं सरसता की सृष्टि कर सकती है, पर गद्य को साङ्गोपांग उत्कृष्ट होना आवश्यक होता है अभावों का प्रकटीकरण पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक सरलता से उपलब्ध है। अस्तु गद्यकार को आद्यन्त बड़ी सतर्कता, संयम और संतुलन का निर्वाह करना होता है। महादेवी जी के सम्बन्ध में एक ओर भी विलक्षणता है. वे मूलतः कवि हैं जो तीव्र संवेदन शीलता के आवेग में अपने गीले गानों द्वारा हृदयवाद की प्रतिष्ठा करती हैं। कवि की भावुकता रसात्मक व रागात्मक होकर आत्मस्फुरित, अजस्र-प्रवाह (Spontani vs overflow) में परिणत हो जाती है अतः वहां वैचारिक पक्ष का आग्रह अधिक तीव्र नहीं होता है। काव्य दृश्यतत्त्व के निकट है और मूर्छा तत्त्व से किञ्चित पृथक्। गम उसके विपरीत वैवाहिकता का अधिक आश्रय लेकर हार्दिकता की उपेक्षा करता है।

महादेवी जी की सफलता का यही मूल रहस्य है कि वे एक साथ भाव और विचार का सम्पर्क निर्वाह कर लेती है कवित्त्व के भावुक क्षणों में वे संवेग से प्रेरित होकर हृदय की अतलवर्ती परिधियों का संस्पर्श करती हैं, तो गद्य-लेखन के समय वे चिंतन के क्षणों में आत्मलीन होकर वैचारिक समस्याओं के अनेक विकल्प विश्लेषण और विवेचन प्रस्तुत करती हैं। उनकी इस साधना का निश्चित परिणाम है कि उनका सारा साहित्य (गद्य एव पद्य) भाव और विचार, बुद्धि और हृदय, संकल्प और विकल्प आदि एक ही प्रक्रिया से परिचालित और आन्दोलित हैं।

विद्वान का गद्य प्रायः गरिष्ट होता है किन्तु देवी जी पर यह उक्ति पूर्णतः चरितार्थ नहीं हो पाती। उनकी गद्यात्मकता कहीं भी गरिष्टता, क्लिषय्ता और अरोचकता का कारण नहीं हो पाती। गद्य-लेखन में उनकी सम्पन्न अनुभूतियाँ वैचारिक निष्कर्ष का स्वरूप धारण करके प्रकट हुई हैं परिणामतः वहाँ भी बुद्धिकवा का आतंक नहीं है, प्रत्युत हृदय की सुकुमार वृत्तियों का अन्तः—प्रकाशन भी है, काव्य और कला, छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि युगीन समस्याओं पर गम्भीर विवेचन करती हुई भी वे अपनी अभिव्यक्ति को इतना सरस-सम्प्रेषणीय और प्रभावोत्पादक बना देती हैं कि उसे स्पष्ट ही एक पृथक् गद्यकाव्य का नाम देना पड़ता है। अपने रेखाचित्रों में वे स्थूल और सूक्ष्म दोनों अवयवों को सतर्क निरीक्षण द्वारा संगठित करके अपनी मूक अनुभूतियों को भी सशब्द कर देती हैं, हर एक पात्र का अन्तर्वाह्य निरूपण, उसका वायवी रूपांकन और उसकी मानसिक ग्रन्थियों का उद्घाटन इतनी सरसता

और सुघरता के साथ कर सकना सामान्य कार्य नहीं है। अध्ययन व मनन के बाद चिन्तन की जो स्थिति होती है उस पर अधिष्ठित होकर वे वाह्य जीवन की स्थूलता और अन्तर्जीवन की सूक्ष्मता का सिद्धांत प्रतिपादित करती हैं। जीवन के सत्यं, शिवं एवं सौन्दर्य पक्ष को समुपस्थित करने के लिये वे अपने कृतित्व का नया मापदण्ड निर्धारित करती हैं जो परम्परा घोषित न होकर नितान्त अभिनव है, महादेवी का गद्य आयन्त केवल वैचारिक ही नहीं है उसमें मानसिक ग्रन्थियों के साथ ही हृदयवादी आस्था भी प्रमाणित हुई है। काव्य की वैयक्तिक भाव भूमि यहाँ निर्वैयक्तिकता के आंचल पर प्रशस्त हो उठी है। चिन्तन की मौन अनुभूतियाँ गद्य में सक्रिय हो रही हैं इसलिए वे यहाँ विचारक की अपेक्षा सुधारक अधिक हैं। नारी-आन्दोलन उनकी गद्य कृतियों में कुछ चरण आगे और बढ़ गया है उनकी मुक्त निस्पृह और उदासीन वेदना स्फुट ललकार और कर्मशील प्रेरणा के रूप में परिणत हो गई है। वे यहाँ तटस्थ तथा असम्पृक्त नहीं है उन असंख्य निरीह प्राणियों की घोर यंत्रणा के बाद वे दयनीय जीवन की असहायता से अपना मौन व्रत भंग कर गद्य-क्षेत्र में उत्तर पड़ी हैं और उस वर्ग को अपनी रागात्मक व बौद्धिक सहानुभूति देती हैं।

देवी जी के प्राक्कथनों के पीछे उस युग की अनिवार्यता का एकाग्रही स्वर है। कवित्त्व के क्षेत्र में अधिक प्रगल्भ नहीं है। काव्य की भावधारा अन्तर्मुखी होकर वैयक्तिल्क संवेदना में खो गई है। वहाँ चिन्तन और विविध समस्याओं के निरूपण के लिए अवकाश नहीं है। छायावादी काव्य स्वत: एक अस्पष्ट व्यजंना है, और रहस्य का आवरण डाल देने पर वह और भी दुरूह, गोपनीय और विस्मयकारक बन गया है, अत: यह उन कवियों का अनिवार्य दायित्व था कि वे प्रतीकों की रहस्यात्मकता अनुभूतियों की महानता और आलम्बन की रूपात्मकता को अधिक सशब्द करके गद्य के माध्यम से प्रकट करें। प्रत्येक छायावादी कवि इसीलिए व्याख्याता बन गया है। इस काव्य के मूल में एक सरल प्रतिक्रिया भी रही है। अत: साहित्यिक प्रतिवादों, सिद्धान्तों तथा अभिनव भाव भूमियों की स्पष्ट घोषणा करने के लिये प्रक्कथनों में इन्हें मुखर होना पड़ा है। देवी जी के काव्य में एक साथ अनुभूति की तीव्रता, दर्शन की बोझिलता और चिन्तन की बौद्धिकता समाहित हो जाती है, अत: उन्हें स्पष्ट करने के लिये पृथक् रूप से एक पूर्वाभास की अपेक्षा रहती है। इन भूमिकाओं में पंत की भाँति न ये अपना स्वशब्दवाची मूल्यांकन करना चाहती हैं और न निराला जी की भाँति अपने गर्वोक्त अहं प्रतिवादी विपक्षियों पर प्रहार करना चाहती हैं उनका कवि स्वयं बड़ा सहिष्णु है और वे आत्म के प्रति मौन हैं। पर युग की मिटती हुई आस्थाओं के रक्षणार्थ देवी जी अत्यन्त दूरदर्शिता के साथ सयत्न हो उठी हैं, गिरते हुए विश्वासों को वे पुन: प्रतिष्ठित करना चाहती हैं और इस यांत्रिक सभ्यता में साहित्य की उपयोगिता को सिद्ध करने का उपक्रम खोजती हैं।

महादेवी जी प्रारम्भिक रूप से कवि हैं और शनै: शनै: क्रमश: प्रौढ़ता के विकास के साथ नम्र-पथ पर उतरती जाती हैं। भाव से विचार, हार्दिकता से बौद्धिकता और राग से दर्शन की वृद्धि के साथ गद्य-लेखन में वे अधिकाधिक प्रवृत्त होती हैं। काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं के पीछे उनकी कुछ विवशताएँ हैं। छायावाद के प्रवर्तन-युग में अनुकूल समीक्षकों के अभाव के कारण उन कृतिकारों को स्वयं निर्णायक बनना पड़ा है, वस्तुत: गद्य इनकी आत्मरक्षा का साधन है; और उनकी सृजन-प्रक्रिया का स्वानुभूत साक्ष्य है। देवी जी के संयम का यह निश्चित परिणाम है कि उनकी भूमिकाओं में न आत्म-विज्ञापन का मन्तव्य हैं और न प्रतिक्रिया की बौखलाहट। वह विशुद्ध आत्मचिंतन और स्वस्थ युग-दर्शन है। प्राचीन शास्त्र, वैज्ञानिक सम्यता और उपयोगितावाद का यह नया समझौता है जिसे भारतीय संस्कृति के परिपार्श्व में रखकर परखा गया है। देवी जी अपने चिंतन के अन्तराल में लोक सहानुभूति से उत्प्रेरित हैं जिसे आधार में रखकर वे समसामयिक विचारणाओं में उलझाती हैं। भारतीय वाङ्मय को सन्दर्भ में रखकर तथ्यातथ्य की परीक्षा केवल बहुज्ञता-प्रदर्शन के लिए नहीं है अपितु वह लेखिका के अभिमतों की पुष्टि का साधन है। उनका उल्लेख प्रासंगिक है, इसलिए औपनैषदिक भावधारा और पुरातन संस्कृति का उल्लेख समानुपातिक क्रम में व्याघात उत्पन्न नहीं कर पाता।

आलोच्य गद्य-लेखन भाव-संपदा की दृष्टि से तो महत् है ही पर शिल्प और रचनातंत्र की दृष्टि से अपनी विशेष उपयोगिता रखता है। यह महादेवी जी की प्रायोगिक सिद्धि है कि वे एक साथ अपने निष्कर्षो को बौद्धिक विचारणा और काव्यात्मक रसात्मकता के परिपार्श्व से अनुप्राणित करके प्रस्तुत करती हैं। उनके रेखाचित्र केवल अभिधेय ही नहीं हैं उनमें विवेच्य वस्तुओं के बहुरंगी चित्र हैं, जो विषम-स्थिति की तीखी अनुभूति उत्पन्न करते हैं साथ ही अपनी अभिव्यक्ति-कौशल और भावभंगिमा द्वारा नूतन शिल्प की सृष्टि करते हैं। इन विवेचनों में भावात्मकता का संतुलित-संयोग हिन्दी गद्य के लिए एक नवीन आविष्कार हैं। और मैं समझता हूँ इसका गौरव प्रथम बार देवी जी को ही प्राप्त होता है। यही उनकी विशिष्ट गद्य-गरिमा है जिसका युगपत विकास और उसकी गतिविधि का संकेत प्रयोजनीय है प्रत्येक पात्र उनकी तीव्र सम्वेदना का फल है, जिसकी सृष्टि लेखिका ने अपने हृदय रस से अभिषिक्त करके किया है। इस अन्तर्ज्वाला में तपकर एक-एक वाक्य निरख उठा है इसलिए आत्म-संस्मरण के सन्दर्भ में वह भद्रता पूर्वक पात्रों के चटकीले रूपरंग दर्शन की सूक्ष्म रेखाओं और घटनाओं की क्रमबद्धता का सफल निर्वाह हो सका है।

महादेवी का गद्य तत्त्व-चिंतन और सौन्दर्योद्घाटन का सम्यक् निर्वाह करता है। वे जीवन की मार्मिक अनुभूति के कारण संवेदना और रसात्मक अभिव्यंजना द्वारा अपने दुरूह विषय को भी प्रेषणीय बना देती हैं। गद्यकला में केवल बौद्धिक विलक्षता ही नहीं लेखिका की आत्मा का अंश भी है। दर्शन अध्यात्म और मनुष्य की स्वच्छम् मनोवृत्ति का सयंम उनके गद्य में अवलोकनीय है, जल पृथ्वी पर तट बनाता है, ऊँचे-नीचे कगारो में बाँधता है पर धरती के नीचे जलथल से, ज्वाला से शिला-खंडों से और अनेक धातुओं से अनायास ही मिल जाता है, इनके बीच तट रेखाओं का प्रश्न नहीं उठता। प्रस्तुत उदाहरण उनकी विवेचना शक्ति, दार्शनिक गहनता और सूक्ष्म निरीक्षण की तल्लीनता का प्रमाण उपस्थिति करता है। चिंतन के पश्चात् निष्कर्ष निर्धारित करते समय उनका विषय बड़ा उदात्त और उसकी अभि-व्यक्ति-प्रणाली बड़ी उत्प्रेरक सिद्ध होती है। वैज्ञानिक युग के कवि कर्म के प्रति उनका निर्देश इस ओज गुण का स्मरण करता है। 'आज के कवि को अपने लिए अनागरिक होकर भी संसार के लिये गृही, अपने प्रति वीतराग होकर भी सबके प्रति अनुरागी, अपने लिये संन्यासी होकर भी सबके लिए कर्मयोगी होना होगा?'' इन चिंतनों में रस-सिद्धता की परिव्याप्ति विशेष उल्लेखनीय है।

महादेवी जी का गद्य काव्य की भांति गोपनीय रहस्यानुप्राणित और अप्रत्यक्ष नहीं है। वह सौन्दर्य-चमत्कार की सृष्टि से हमारी जिज्ञासा वृत्ति को दिग्भ्रमित नहीं करता अपितु अपनी प्रौढ़ वैचारिक अन्विति से हमारी मानसिक दृष्टि को प्रशस्त करता है। गद्य में वे किसी महत् सन्देश का आकुल आग्रह लेकर प्रकट होती हैं। काव्य की भाँति यहाँ वे आत्मानन्द या स्वान्तः सुख की आत्मप्रतीति या वैयक्तिक आत्मरोदन की एकांकी अभिव्यक्ति नहीं रखती अपितु किसी विषम-समस्या के अन्तर्मन्थन से उद्भूत अपने चिंतन का निष्कर्ष प्रतिपादित करती हैं। गद्य के क्षेत्र में देवी जी युग के प्रति एक असह्य वेदना, एक व्यापक प्रतिक्रिया और विकल मानसिक अशान्ति लेकर अवतरित होती हैं। काव्य के सीमित कलेवर में जीवन की विविधता सूचक जिस विडम्बना का पर्दाफास वे नहीं करना चाहती, उसकी पूर्ति गद्य में करती है। गद्य में उदात्त, अनुदात्त, सात्विक, अभिजात अथवा विद्रोहात्मक स्वरों का कोई निषेध नहीं है। वे अपने स्वाधीन विचार के लिए ही गद्य की परिधि में पैठती हैं। छंदों की जिस स्थिति को साहित्यिक कलेवर नहीं दे पाता उसे वे गद्य के अध्ययन से सजाकर, संवारकर प्रस्तुत करती हैं। अस्तु उनके गद्य की विवेच्य सामग्री पद्य की अपेक्षा बड़ी विराट् और उसकी परिधि बड़ी प्रशस्त है। समाज की वर्तमान कार्य प्रणाली के प्रति लेखिका असहिष्णु है। नारी जीवन के प्रति पुरुष वर्ग का जो पाशविक अत्याचर युग-युग से निरंतर होता आ रहा है उसके प्रति वें असहिष्णु हो उठी हैं, और साथ ही आज को अति आधुनिकता के अमर्यादित स्वरूप, वीभत्स लक्षणों के प्रति आशंकित हैं। इस द्विविधा का स्पष्टीकरण पद्य में सम्भव और सम्यक् नहीं है। गद्य का आश्रय लेने का यह प्रमुख कारण है इसके अतिरिक्त छायावाद की रहस्यात्मक वृत्तियों

का जो खंडन और छिद्रान्वेषण समसामयिक युग में मूर्धन्य आचार्यों द्वारा किया जाता रहा है उसकी पुष्टि और अपने अभिमतों का दृढ़ पुनरस्थापन इसी गद्य के क्षेत्र में सुविधेय रहा है। काव्य-ग्रन्थों 'दीपशिखा' यामा, 'आधुनिक कवि' आदि के प्राक्कथन इन्हीं मतों के विवेचन हेतु प्रस्तुत हुए हैं। साहित्य की समसामयिक प्रवृत्तियों अर्थात् प्रगतिशीलता, यथार्थवाद, गीतिकाव्य, छायावाद और विविध शास्त्रीय समस्याओं यथा काव्य और कला तथा अन्य आध्यात्मिक व दार्शनिक चिंतनों जैसे विज्ञान, जीवन, संघर्ष, आनन्द, प्रत्यक्ष परोक्ष आदि से सम्बद्ध प्रश्नों पर विचार विमर्श करने का उपयुक्त धरातल उन्हें गद्य की भूमि पर मिलता है यहाँ उनके तथ्यान्वेषी प्रवृत्ति, कवि की अन्तः प्रतीति के सन्दर्भ सहित लोक-जीवन का स्पर्श करती है। भाव से विचार की ओर सूक्ष्म से विराट की ओर प्राकृतवृत्ति से वास्तविकता की ओर उनका संचरण आधुनिक-विकास की दृष्टि से बड़ा समानुपातिक और सर्व सापेक्ष्य है। हिन्दी गद्य के विकास में देवी जी की यह विलक्षणता है कि वे आवेश में विवेचन का संयम नहीं खो देतीं और विवेचन की तहों में जाकर भाव की सरसता भुला नहीं पातीं। उनके प्रतिपाद्य तथ्यों में जहाँ गूढ़ व्यंग्य और कुछ सत्य का समावेश है, वहीं उनकी प्रतिभावन-पद्धति बड़ी कुतूहल पूर्ण, रमणीय तथा ललित है। उपयोगिता के परिप्रेक्ष्य में लालित्य का यह संयोग; मैं समझता हूँ महादेवी जी के गद्य-साहित्य का मेरुदण्ड है।

महादेवी के पद्य में आत्मपीड़न के कारण परस्पर व्यवच्छेदात्मकता और असामञ्जस्य परिलक्षित है किन्तु गद्य साहित्य इसके प्रतिकूल विचारों की स्वतन्त्रता एकस्वरता और आनुषंगिकता के लिये प्रख्यात हैं। काव्य-क्षेत्र में उनकी आस्था अन्तर्मुखी है। गद्य में वह बहिर्मुखी और आध्यात्मिक, रागात्मक तथा कवित्व पूर्ण अभ्यास से नितान्त पृथक् यहां लोक संवेद्य विषमताओं से संप्रेरित होकर गूढ़ चिंतन में तल्लीन होती हैं। गद्य में उनका जीवन और संयत मन, कल्पित समाजादर्श के साथ प्रतिष्ठित हुआ है अस्तु गद्य के स्वरों में उनकी आत्म-सत्यता अधिक से अधिक असन्दिग्ध हो उठी है। उनकी अनुभूतियाँ यहां कल्पना की झांकी सजाती हैं जिनमें यथार्थ का सच्चा निरूपण है। दार्शनिक मीमांसा के अवसर पर वे बड़े विराट रूपकों का आयोजन करती हैं। जीवन की ऐसे वृक्ष से समानता देना जो कहीं जड़ में अव्यक्त है, कहीं पत्रों में लहलहाता है, कहीं फूलों में सुन्दर है, कहीं फलों में उपयोगी है, और कहीं बीज में सृजनशील, यह उनकी अभिव्यक्ति की चरम-सिद्धि है।

रेखाचित्रों में देवी जी की गद्य-कला का उत्कृष्ट प्रमाण सुरक्षित है। उनका एक-एक शब्द अपनी स्पष्ट आकृति में भास्वरता धारण कर लेता है; कहीं-कहीं चिंतन की गहनता के कारण क्रमबद्धता अवश्य खण्डित हो जाती है। पर जो विवेच्य भाव उनकी संवेदना का लक्ष्य बना है। वह इन चित्रों की रंगीनी से साकार हो उठा है। पात्रों का एक रूप जीवन घटना, दिनचर्या, परिवेश और आकृति पूर्ण नाटकीयता, गतिशीलता और यथार्थ संवेदना के साथ अभिव्यक्त हुई है। इनके कारण दुरूह वचन वक्रता गत्यावरोध नहीं कर पाती। संस्मरणों और अनेक शिल्पों का प्रयोग तथा प्रवर्तन करती है। मुख्यतः वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, रूपात्मक, आलोचनात्मक, व्यंग्यात्मक, और उद्धरणात्मक शैलियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं। उनके सूक्त कथन पृथक् भाष्य की अपेक्षा रखते हैं। आर्ष वाक्यों की भांति वे सूत्रबद्ध विचार प्रकट करती हैं जिसकी स्पष्ट व्याख्या के लिये पर्याप्त अवकाश चाहिये। छायावाद की व्याख्या में उसे तत्त्वतः कृति के बीच में जीवन का उद्गीथ, कहना इसी प्रकार की गंभीर उक्ति है, 'ममता श्रद्धामय आत्मदान है,' 'कला चिरन्तन है, सौंदर्य सनातन है, सत्य शाश्वत है' और "क्रान्ति स्वयं एक साधना है", आदि इसी प्रकार के सूक्तकथन हैं।

भाषा के क्षेत्र में देवी जी का गद्य अभिनव है। वे भावानुकूल भाषा का निर्माण करने में समर्थ हैं। हास्यरस पूर्ण प्रसंगों में उनका प्रत्येक शब्द क्रीड़ा करता है। भक्तिन के कर्मकाण्ड और दिनचर्या के वर्णन में उनकी शब्दावली सरस हो उठती है। संवेदना की सृष्टि करते हुए वही शब्द अन्तः क्रन्दन करते हैं, और व्यंग्यात्मक प्रसंगों में हमें मर्माहित करते हैं। चिंतन की तह में डूबकर प्रत्येक शब्द अर्थ-गौरव से भिन्न होकर व्याख्येय हो जाता है, और आत्ममीमांसा का रस विकीर्ण करता है। कुछ शब्दों की

सृष्टि उनकी विलक्षण सूझ की परिचायक है 'धृतराष्ट्रता' आदि ऐसे ही शब्द हैं। दीर्घ काव्यात्मक एवं ललित रूपकों की सृष्टि में लेखिका का रचना-कौशल निर्विवाद प्रमाणित है। 'पथ के साथी' में उनके लक्षण कवित्त्वपूर्ण उद्भावनाओं के साथ सशब्द होकर निखर उठे हैं। वर्णन को साकार करके महादेवी ने उसके चत्रण की परम्परा निभाई है। 'कपड़े की सिकन जैसी चीनी की नाक' कथन केवल वर्णन ही नहीं बल्कि चित्र समक्ष रख देता है। प्राकृतिक दृश्यों, वाह्य पदार्थों और परिस्थितियों को उन्होंने अपने रचनाकौशल द्वारा और भी अधिक सजीव और सरस कर दिया हैं।

अन्तत: यह सहज स्वीकार्य है कि महादेवी जी गद्य के क्षेत्र में असाधारण सिद्धि सम्पन्न लेखिका हैं। पद्य की अपेक्षा गद्य कहीं अधिक भावप्रवण, विचार विदग्ध और विविधतापूर्ण है। कहीं-कहीं आलंकारिकता, रूपकात्मकता और कृत्रिमता का मोह रचनात्मक और भावबोध को असाध्य, दुरूह और वक्र बना देता है फिर भी उनका उक्तिवैचित्र्य, उनका विवेचनात्मक अन्तर्बोध और उनकी लाक्षणिक प्रतीति बड़ी सरस तथा प्रेषणीय है। 'आत्म' से परे 'पर' की ओर अधिगमन करके वे यहाँ अधिक व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित होती हैं और विश्व की अनेक रूपता के अनुकूल अपनी अभिव्यक्ति को विविधा बनाकर हृदयस्पर्शी कर देती हैं। उनके निष्कर्ष जहाँ संतुलित युग-सापेक्ष्य और स्वस्थ हैं वहीं उनका शिल्प सुरुचि सम्पन्न कलात्मक तथा विलक्षण है। उनकी गद्य-गरिमा ने हिन्दी के गद्य युग को अपनी अनमोल वाग्विभूति से परिपूर्ण किया है और स्वयं उनके अन्तर्वाह्य रहस्यों का विश्वस्त उद्घाटन करके पाठक को समुचित गति दिशा और प्रेरणा प्रदान कर सका है।



महादेवी की गद्य-गरिमा

•

डॉ० वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला

संस्कृत के आचार्य वामन ने अपने काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' (१. ३ २१) नामक ग्रन्थ में श्रव्य-काव्य के एक भेद गद्य की परिभाषा न देकर उसकी विशेषताओं को दुर्ज्ञेय तथा उसकी रचना को कठिन बतलाते हुए 'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' (गद्य को कवियों की कसौटी कहते हैं) उद्धरण देकर साहित्य में उसकी महत्ता का निर्देश किया है। शास्त्रीयता से परहेज रखने वाले जन-सामान्य के लिए गद्य की सबसे सरल, व्यापक और बहुमान्य परिभाषा हो सकती है कि शब्दार्थ-युक्त जिस भाषा का साधारण बातचीत में प्रयोग किया जाता है वही गद्य है। गद्य शब्द-रचना के वाह्य रूप का ही नहीं, उसकी आन्तरिक प्रकृति का भी द्योतक है। हम अनेक पद्य-बद्ध काव्यकृतियों को गद्यात्मक कहते हैं, क्योंकि उनमें संवेदनशीलता की अपेक्षा बोधवृत्ति की प्रधानता होती है। गद्य मुख्यतः बोध, व्याख्या, तर्क, वर्णन और कथा के क्षेत्रों में ही सीमित है। प्रयोग की दृष्टि से गद्य का साधारण रूप वह है जो व्यावहारिक उपयोग में आता है, परन्तु दो व्यक्तियों के बीच साधारण बातचीत से लेकर बड़ी-बड़ी सभाओं के कलापूर्ण प्रभावशाली भाषणों तक तथा कुशल-सम्बन्धी साधारण पत्र व्यवहार से लेकर शास्त्र और विज्ञान के विविध विषयों के विश्लेषण, विवेचन, अनुशीलन और अनुसन्धानपूर्ण प्रबन्धों (थीसिसों) तक गद्य के इस व्यावहारिक उपयोग में इतनी विविधता और अनेकरूपता है कि सामान्यतः उसकी गणना नहीं की जा सकती। गद्य के इन विभिन्न प्रयोगों में जहाँ एक ओर पारिभाषिक शब्दावली उसे विशेषता प्रदान करके उसके प्रेषण-क्षेत्र को सीमित कर देती है वहाँ दूसरी ओर गद्य के व्यावहारिक क्षेत्र में ही अलंकृत पदावली—साहित्यिक शैली का प्रयोग उसे उपयोगिता के साथ-साथ सौंदर्य से समन्वित कर देता है, जिससे उसकी प्रेषणीयता के क्षेत्र में विस्तार आ जाता है। गद्य का इसी प्रकार का लिखित प्रयोग आधुनिक काल में साहित्य की एक विशिष्ट विधा के नाम से अभिहित होने लगा है।

आधुनिककाल को गद्य-काल कहा जाता है, क्योंकि हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल से पूर्व केवल काव्य का प्राधान्य था, किन्तु अंग्रेज लोग यूरोपीय औद्योगिक क्रान्ति का जो दृष्टिकोण अपने साथ भारत में लाये थे उसके लिए गद्य ही उपयोगी सिद्ध हो सकता था। इसीलिए उनके शासनकाल के प्रारम्भ से ही गद्य का विकास दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में गद्य-साहित्य का आविर्भाव भारतीय जीवन में उस मंजिल का द्योतक है जब वह मध्य युगीन वातावरण से बाहर निकल कर वैज्ञानिकता का प्रतीक बना। हमारा समूचा गद्य-साहित्य जीवन के परिष्करण और उत्थान का साहित्य है और आज तो उसके माध्यम से हम अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आए हैं।

हिन्दी-साहित्य की आधुनिक कवयित्री महादेवी वर्मा ने सन् १९४२ ई० में लिखा कि विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं वाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है। मेरा सबसे पहला सामाजिक

निबन्ध तब लिखा गया था जब मैं सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी, अतः जीवन की वास्तविकता से मेरा परिचय कुछ नवीन नहीं है (देखें, 'अपनीबात –'श्रृंखला की कड़ियाँ' पृष्ठ ५) । कथा, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना आदि में तरंगायित होकर जीवन के असीम आकाश को अनन्त रूपों में बिम्बित-प्रतिबिम्बित करने वाला गद्य-साहित्य आधुनिक युग का महत्वपूर्ण दान है, इसमें सन्देह नहीं । अंग्रेजों की पराधीनता के विरोध में जाग्रत राष्ट्रीय चेतना तथा सामाजिक रूढ़िग्रस्तता के विद्रोह में उत्पन्न सुधार आन्दोलनों ने हिन्दी और मराठी दोनों के गद्य को प्रगतिशील विकास दिया है। अनुवाद, जिसका अथ कहा जा सकता है, वह गद्य आदर्श, आदर्शोन्मुख यथार्थ, कठोर यथार्थ की अनेक भूमियाँ पार करता हुआ आज मनुष्य के मनस्तत्व की ऐसी भूमि पर प्रतिष्ठित हो चुका है, जहाँ से वह मनुष्य के प्रत्येक कार्य और जीवन की प्रत्येक घटना को ही नहीं, उस कार्य और घटना की पृष्ठ भूमि में छिपे असंख्य संस्कारों और आवेगों का भी परीक्षण कर सकता है । कादम्बरी की अनुकृति से आकार पाकर उपन्यास और बालबोध कथा से गति पाकर कहानी-साहित्य आज जीवन के कोमलतम स्तरों के प्रत्यक्षीकरण और परिष्करण में समर्थ हो सके हैं (देखें, क्षणदा पृष्ठ ६३-६४) ।

महादेवी वर्मा के गद्योद्यान में एक ओर 'श्रृंखला की कड़ियां' और 'क्षणदा' नामक दो निबन्ध-पादप पुष्पित हैं। दूसरी ओर 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' संस्मरणों की सोंधी सोंधी महक बिखेर रहे हैं । इनके बीच रश्मि, नीरजा, साँध्यगीत, दीपशिखा, आधुनिक कवि, यामा और सप्तपर्णा की गद्य-क्यारियाँ लहलहा रही हैं ।

सन् १९३० ई० में हिन्दी के महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने महादेवी वर्मा के आदिम ग्रन्थ 'नीहार' का परिचय देते हुए लिखा—"मैं श्रीमती महादेवी वर्मा का हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में सादर अभिनन्दन करता हूं और उनसे यह विनय भी कि उनकी हृत्तन्त्री के अपूर्व झंकार में भारत माता के कण्ठ की वर्तमान ध्वनि की श्रुति होनी चाहिए, इससे उनकी कीर्ति उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होगी । माता की व्यथाओं के अनुभव करने की मार्मिकता मातृत्व पद की अधिकारिणी को ही यथातथ्य हो सकती है।" अग्रज की भाँति हरिऔध जी की विनय को महादेवी ने गांठ में बांध लिया । कविता को हम नहीं कहते, उनकी रचना में राजनीतिक आन्दोलनों की झलक देखना भी अभिप्रेय नहीं; पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भावुक हृदया महादेवी तरल हो जब गद्य में बही तो मातृत्व पद की अधिकारिणी का ध्यान भारतमाता की ओर आकृष्ट हुआ—उसके कानों में भारतीय नारी के पैरों में पड़ी बेड़ियाँ झनझना उठीं । विषम परिस्थितियों में सांस ले रही भारतीय नारी के प्रति किया जा रहा अन्याय 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नामक इनके निबन्ध संग्रह में मुखर हुआ । हमारी श्रृंखला की कड़ियां, युद्ध और नारी, नारीत्व का अभिशाप, आधुनिक नारी, घर और बाहर, हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व जीवन का व्यवसाय, स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न, हमारी समस्यायें, समाज और व्यक्ति और जीने की कला शीर्षक से इस ग्रन्थ में सन् १९३१ ई० से लेकर १९३७ ई० तक लिखे लगभग एक दर्जन निबन्ध हैं । समाज में नारी के बन्धन की कड़ियों को परिगणित करते हुए घोषणा की गई कि यहां नारी का विवेकहीन आदर्शाचरण भी उनके व्यक्तित्व को अधिक-से-अधिक संकुचित तथा समाज के स्वस्थ विकास के लिए अनुपयुक्त बनाता जा रहा है ।

जीर्ण-से-जीर्ण कुटीर में बसने वालों में भी कदाचित् ही, कोई ऐसा अभागा निर्धन होगा, जिसके उजड़े-आँगन में एक भी सहनशीला, त्यागमयी, ममतामयी स्त्री न हो। स्त्री किस प्रकार अपने हृदय को चूर-चूर कर पत्थर की देव-प्रतिमा बन सकती है, यह देखना हो तो हिन्दू-गृहस्थ की, दुधमुँही बालिका से शापमयी युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए, जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने हृदय की, हृदय के समान ही प्रिय इच्छाएँ कुचल-कुचल कर निर्मूल कर देती है, सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती है और इस पर भी दूसरों के अमंगल के भय से आंखों में दो बूँद जल भी इच्छानुसार नहीं आने दे सकती । जीवन को पूर्ण से पूर्ण रूप तक विकसित कर देने योग्य सिद्धान्त उसके पास हैं, परन्तु न

उनका परिस्थिति-विशेष में उचित उपयोग ही वह जानती है और न उनका अर्थ ही समझती है, अतः जीवन और सिद्धान्त दोनों ही भार होकर उसे वैसे ही संज्ञाहीन किये दे रहे हैं, जैसे ग्रीष्म की कड़ी धूप में शीतकाल के भारी और गर्म वस्त्र पहिने हुए पथिक को उसका परिधान।

सरस्वती-आराधनारता महादेवी वर्मा के हृदय में समाज व्यवस्था के प्रति विद्रोह यों उभरा :—धन की प्रभुता या पूँजीवाद जितना गर्हित है उतना ही गर्हित रूप धर्म और अधिकार का हो सकता है, फिर उसके विषय में तो कहना ही व्यर्थ है जिसे धन, धर्म और अधिकार तीनों प्रकार की प्रभुता प्राप्त हो चुकी है। समाज में उपार्जन का उत्तर-दायित्व मिल जाने से पुरुष को एक प्रकार की पूँजीपतित्व तो प्राप्त हो ही गया था, शक्ति अधिक होने के कारण अधिकार मिलना भी सहज-प्राप्य हो गया। इसके अतिरिक्त शास्त्र तथा अन्य सामाजिक नियमों का निर्माता होने के कारण वह अपने आपको अधिक-से-अधिक स्वछन्द और स्त्री को कठिन से कठिन बंधन में रखने में समर्थ हो सका। धीरे-धीरे बनते-बनते स्त्री को बांध रखने का सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक उपकरणों से बना हुआ यन्त्र इतना पूर्ण और इतना सफलतायुक्त सक्रिय हो उठा कि उसमें ढलकर स्त्री केवल सफलदासी के रूप में ही निकलने लगी। फलतः यहाँ अब प्रत्येक बालिका उत्पन्न होने के साथ ही अपने आपको ऐसे पराये घर की वस्तु मानने और बनने लगती है जिसमें न जाने की इच्छा करना भी उसके लिए पाप है। विवाह के व्यवसाय में उसकी विद्या पासंग बने हुए ठेले के समान है, जो तुला को दोनों ओर समान रूप से गुरु कर देता है, कुछ उसके मानसिक विकास के लिए, उसकी योग्यता, उसकी कला पति के प्रदर्शन तथा गर्भ की वस्तु है, उसे सत्यं, शिवं, सुन्दरं तक पहुंचाने का साधन नहीं, उसके कोमलता, करुणा, आज्ञाकारिता, पवित्रता आदि गुण उसे पुरुष की इच्छानुकूल बनाने के लिए आवश्यक हैं, संसार पर कल्याण-वर्षा के लिए नहीं। न स्त्री को अपने जीवन का कोई लक्ष्य बनाने का अधिकार है और न समाज-द्वारा निर्धारित विधान के विरुद्ध कुछ कहने का। उसका जीवन पुरुष के मनोरंजन तथा उसकी वंशवृद्धि के लिए इस प्रकार चिर निवेदित हो चुका है कि उसकी सम्मति पूछने की आवश्यकता का अनुभव भी किसी ने नहीं किया (देखें, शृंखला की कड़ियाँ पृष्ठ १५८)।

सन् १९५६ ई० में प्रकाशित 'क्षणदा' में करुणा का संदेश-वाहक, संस्कृति का प्रश्न, कसौटी पर, स्वर्ग का एक कोना, कला और हमारा चित्रमय साहित्य, कुछ विचार, दोष किसका, सुई दो रानी, अभिनय कला, हमारा देश और राष्ट्रभाषा, साहित्य और साहित्यकार, हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या शीर्षक से बारह निबन्ध है। इनमें से कुछ भारतीय संस्कृति से, कुछ भारतीय साहित्य से, कुछ भारतीय समाज से सम्बद्ध हैं। 'स्वर्ग का एक कोना' और 'सुई दो रानी' निबन्धों में काश्मीर और बद्रीनाथ के यात्रा-प्रसंग है।

इनके वर्णन प्रधान गद्य में सहज भाव-प्रेषणीयता का निदर्शन करना हो तो श्री नगर में इनके पड़ाव का वर्णन पढ़ें—वह आश्रम जहाँ हाउस बोट में जाने तक हमारे ठहरने का प्रबन्ध था, सहज ही किसी जन्तुशाला का स्मरण करा देता था। कारण, वहां अनेक प्रान्तों के प्रतिनिधि अपनी-अपनी विशेषताओं के प्रदर्शन-में दत्तचित्त थे। कहीं कोई पंजाबी युवती अपने वीरवेश में गर्व से मस्तक उन्नत किये देखने वालों को चुनौती-सी देती घूम रही थी। कहीं संयुक्त प्रान्त की कोई प्राचीना घूँघट निकाले इस प्रकार संकोच और भय से सिमटी खड़ी थी मानों सब उसी के लज्जा रूपी कोष पर आक्रमण करने को तुले हुए हैं और वह उसे छिपाने के लिए पृथ्वी से स्थान मांग रही है। कहीं कोई महाराष्ट्र सज्जन शिखा का गुरुभार सिर पर धारण किये लकड़ियों को धोते हुए दूसरों के कौतूहल का कारण बन रहे थे। कहीं कोई धर्म-दिग्गज धर्मपालन और उदरपूर्ति में कौन श्रेष्ठ है, इस समस्या के समाधान में तत्पर थे। प्रकृति की चंचलता की कमी की पूर्ति मनुष्य में हो रही थी। (देखें, क्षणदा पृष्ठ ४१-४२)। नगर-वर्णन की इनकी गद्यमयी साहित्यिक अभिव्यक्ति भी कम मनोरम नहीं। बदरीनाथ की झाँकी देने के लिए ये पंक्तियाँ समर्थ हैं—श्वेत कमल की पंखुरियों के समान लगने वाले पर्वतों के बीच में निरन्तर कलकल नादिनी अलकनन्दा के तीर पर बसी हुई वह पुरी, हिमालय के हृदय में छिपी इच्छा के समान जान पड़ी। वृक्ष, फूल और पत्तों का कहीं चिन्ह भी नहीं था। जहाँ

तक दृष्टि जाती थी निस्पन्द समाधि में मग्न तपस्विनी जैसी आडम्बरहीन सूनी पृथ्वी ही दिखाई देती थी। और उतने ही निश्चल तथा उज्ज्वल हिमालय के शिखर ऐसे लगते थे, मानो किसी शरद पूर्णिमा की रात्रि में पहरा देते-देते, चाँदनी समेत जमकर जड़ हो गये हों (देखें, क्षणदा पृष्ठ ८२)। यहाँ तीर्थ-स्नात-सा निखरा हुआ उत्प्रेक्षा का प्रयोग वस्तुतः अभिनन्दनीय है।

यथार्थतः 'क्षणदा' के गद्य में महादेवी वर्मा के कुछ चिन्तन के क्षण एकत्र हैं। साथ ही यहाँ उनकी महामैत्री और महाकरुणा के अवतार गौतम बुद्ध के बुद्धत्व, भारतीय संस्कृति, कला और चित्रमय साहित्य, साहित्य, साहित्यकार, सम्पादक, आधुनिक लेखक, अभिनय कला, राष्ट्र, राष्ट्रभाषा विषयक मीमांसाएँ भी मुखरित हुई हैं। गद्य-लेखन के समय कवयित्री महादेवी के आयाम में जो जगत् आता है उसमें व्याप्त मिथ्याचार और दम्भ से उसकी आत्मा क्षुब्ध हो बोलती है कि हमारी वर्तमान विकृति में अन्धकार जैसी व्यापकता और मृत्यु जैसी एक रसता तो है ही, साथ ही उसकी व्यावहारिक विभिन्नता में विचित्र एकरूपता भी मिलेगी। जो ग्वाला अठगुना दान लेकर भी दूध में पानी मिलाये बिना नहीं मानता और अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए प्रचलित तालिका में से एक भी शपथ नहीं छोड़ता, उसका मिथ्या, मन्दिर में देवता के चरणों के पास बैठ कर धर्म का व्यापार करने वाले पुजारी के मिथ्यावाद का सहोदर है। दूसरे के अर्थ पर संपाती जैसी तीक्ष्ण दृष्टि रखने वाले पूँजीपति की क्रूरता, उदार साम्योपासक की उस हृदयहीनता की सहचरी है, जो उसे थके घोड़े और टूटे शरीर वाले इक्केवान और आधी रात के समय बरसते पानी में सामान उतारने वाले कुली की मजदूरी में से दो पैसे काट लेने पर बाध्य कर देती है। दुर्बल भिखारी की उपेक्षा कर चींटियों को चीनी—आटे पर पालने वाले तिलक-धारी जपी में सहानुभूति का जो अभाव है, वही, त्यागी सुधारवादी को दूसरों की भूख पर अपने स्वार्थ का प्रासाद खड़ा करने की दुर्बलता देता रहता है।

जो विकृत वासना, विलास के कीटों को, जीवन का घुन बना देती है, वही शिक्षित और संभ्रान्त वर्ग की दृष्टि में एक अस्वस्थ प्यास बनकर झाँकती रहती है। अनेकों आंखों के सामने तुला से खेल करने वाली वणिक् की उंगलियों में जो बाजीगरी है, उससे वे हाथ भी अपरिचित नहीं, जो महँगे-सस्ते कागज पर आश्रित होकर बहुमूल्य और मूल्यहीन लेखनियों को आश्रय देते हैं। यह कथन कटु हो सकता है, पर असत्य नहीं। चाहे हम समाज, राजनीति, धर्म, साहित्य आदि किसी भी क्षेत्र का तत्वतः अध्यन करें और चाहे अपने अनन्य अध्यात्मवादी से लेकर घोर भौतिकवादी नेताओं के अनुभवों को एकत्र कर लावें, इस सत्य को मिथ्या प्रमाणित करना कठिन ही नहीं असम्भव होगा (देखें, क्षणदा पृष्ठ ३२-३३)।

महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' में संस्मरण की महक है। इसमें लेखक अपने समय के इतिहास को लिखना चाहता है। परन्तु इतिहासकार के वस्तुपरक रूप से वह बिलकुल अलग है। संस्मरण लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियां, संवेदनाएँ भी रहती हैं। इस दृष्टि से शैली में वह निबन्धकार के समीप है। वह वास्तव में अपने चतुर्दिक के जीवन का सर्जन करता है, सम्पूर्ण भावना और जीवन के साथ। इतिहासकार के समान वह विवरण प्रस्तुत करने वाला नहीं है। 'अतीत के चलचित्र' के अन्तर्गत 'अपनी बात' कहते हुए स्वयं महादेवी ने लिखा कि समय-समय पर जिन व्यक्तियों के सम्पर्क ने मेरे चिन्तन को दिशा और संवेदन को गति दी है, उनके संस्मरणों का श्रेय जिसे मिलना चाहिए, उसके सम्बन्ध में मैं कुछ विशेष नहीं बता सकती। परन्तु वहाँ लिपिबद्ध रामा, मारवाड़ी बाल विधवा, बिन्दा, सबिया, बिट्टो, अवैध सन्तान की विधवा माँ, घीसा, सभीत स्त्री, अलोपी, बदलू—रधिया—लक्खी, लछमा विषयक जो संस्मरण हैं, उन्हें देखने से लगता है कि बर्हिमुखी हो महादेवी ने अपने चतुर्दिक के जीवन का सर्जन किया है। यहाँ उभारे गये रेखा-चित्रों में ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन की झाँकियाँ नहीं हैं जिनका उद्देश्य आदर्श स्थापित करना, वरन् वे तो भारतीय जीवन के वे कुरूप एवं विकृत चिन्ह हैं जो शोषण के कारण उठने में असमर्थ हो गये हैं। इन चल-चित्रों में अशिक्षित दलित,

दीन तथा शोषितों के जीवन की झांकियां हैं, जिन्हें समाज नीच, हीन, अछूत तथा अशिक्षित कहकर ठुकरा देता है। ऐसे दीन, मलिन, दरिद्र तथा अनाकर्षक पात्र महादेवी वर्मा की महाकरुणा, महा मैत्री एवं सहानुभूति पाकर सजीव हो उठे हैं। बाह्य समाज के अधिकांश और उस अधिकांश के बोझ से दबी भारतीय नारी के अन्तरंग और बाह्य परिवेश का गम्भीर अध्ययन, और उसके प्रति किये अत्याचारों के प्रति असन्तोष की भावना इन संस्मरणों में है चाहे इनके पात्र पर्वतीय हों या समभूमि के, समाज के मनोविज्ञान का इन्हें वहां एक-सा परिचय मिला। इन्होंने लिखा है—'समाज के मनोविज्ञान का जैसा परिचय समतल में मिलता है, वैसा ही पर्वत की विषम भूमि में। एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियां उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहतीं' (देखें, अतीत के चलचित्र पृष्ठ ११३)।

पद्य में महादेवी ने जैसे अपने को टटोला है और अन्त में अपने को निवेदित किया है, उसके प्रति जो उनके अपने आत्म से भिन्न नहीं हैं। इस तरह घूम-फिरकर उनका पद्य अधिकांश उन तक ही लौट आता है। उसमें जगत नहीं है, मेरे खयाल से जगत-पिता भी नहीं हैं। इसलिए वह काव्य कुछ इतना वायव्य और सूक्ष्म है कि अनुभूति तक में मुश्किल से आता है। यह सुविधा गद्य में तो है नहीं। गद्य इतना पर-निरपेक्ष हो सकता ही नहीं है। इसलिए उनके गद्य में सहज भाव से हम, तुम की चर्चा हुई है। उनमें मानव पात्र हैं और वास्तव परिस्थियाँ हैं। केवल आत्म ही आत्म वहां नहीं हैं (देखें, शचीरानी गुटू सम्पादित 'महादेवी वर्मा' पृष्ठ ६) सामाजिक अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना का महादेवी की कविता में एकदम अभाव है, क्योंकि उनके गीतों में तो बस, किसी अदृश्य 'प्रिय' को ही सम्बोधन किया जाता है। भाषा की कोमलता इन गीतों की विशेषता है। मानव-मन के तार छेड़ सकने की क्षमता भी है इन गीतों में। सुख-दुःख के स्वरों पर निराशा और वेदना का गहरा रंग उस अवस्था का परिचायक है जब कवयित्री बाहर देखने की बजाय भीतर देखना ही अधिक पसन्द करती हैं। पर महादेवी के संस्मरण और रेखा-चित्र समाजिक पृष्ठ भूमि में उभरते हैं और यों लगता है कि जो बात कवयित्री महादेवी न कह पाई वह इन संस्मरणों और रेखाचित्रों की लेखिका महादेवी ने बड़ी आसानी से कह दी (देखें, शचीरानी गुटू सम्पादित महादेवी वर्मा पृष्ठ १४)।

कविताओं में तो वे अधिकांशतः एक प्रणयनी के रूप में ही दिखाई देती हैं, पर वे माँ के रूप में, बहिन के रूप में, स्वामिनी और प्रकृति प्रेमिका के रूप में भी अन्यतम हैं—यह उनके संस्मरणों से भली-भांति जाना जा सकता है। महादेवी की 'स्मृति की रेखाएँ' यथार्थवाद की भित्ति पर अंकित हैं। कला के उच्चतम विकास का स्पर्श इन रेखाओं में है। अनुभूति और कल्पना का भव्य सम्मिश्रण है। भाषा सहज बोधगम्य है। कथन की वक्रता कहीं-कहीं बहुत चमत्कार विधायिनी है। यहाँ उनके द्वारा प्रथम रेखा में अंकित भक्तिन की सेवा भावना और नाम का विवरण पठनीय है -"सेवक धर्म में हनुमान जी से स्पर्द्धा करने वाली भक्तिन किसी अंजना की पुत्री न होकर एक अनाय कन्या गोपालिका की कन्या है नाम है लछमिन अर्थात् लक्ष्मी। पर जैसे मेरे नाम की विशालता मेरे लिए दुर्वल है, वैसे ही लक्ष्मी की समृद्धि भक्तिन की कपाल की कुञ्चित रेखाओं में बँध न सकी।" इसके अतिरिक्त स्मृति की रेखाओं में गांव की दरिद्रता, पहाड़ी जीवन, धोबियों की परिवारिक झांकी के मार्मिक चित्र हैं।

सन् १९५६ में प्रकाशित 'पथ के साथी' विषयक 'दो शब्द' में महादेवी ने लिखा—'अपने अग्रजों और सहयोगियों के सम्बन्ध में, अपने आप को दूर रखकर कुछ कहना सहज नहीं होता। मैंने साहस तो किया है; पर ऐसे स्मरण के लिए आवश्यक निर्लिप्तता या असंगता मेरे लिए संभव नहीं है। मेरी दृष्टि के सीमित शीशे में वे जैसे दिखाई देते हैं, उससे वे बहुत उज्ज्वल और विशाल हैं, इसे मानकर पढ़ने वाले ही उनकी कुछ झलक पा सकेंगे।" कवीन्द्र-रवीन्द्र मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा नन्दन पन्त, सियाराम शरण गुप्त के रेखाचित्रों को महादेवी ने अपनी स्मृतियों के

बिभिन्न वर्णों में डुबोकर प्रकाशित किया है। सूक्ष्म निरीक्षण से युक्त शब्द चित्र में रवीन्द्र की सौम्य मुद्रा अभिनन्दनीय है—"मुख की सौम्यता को घेरे हुए वह रजत-आलोक मंडल जैसा केश-कलाप। मानो समय ने ज्ञान को अनुभव के उजले झीने तन्तु में कातकर उससे जीवन का मुकुट बना दिया हो। केशों की उज्ज्वलता के लिए दीप्त-दर्पण जैसे माथे पर समानान्तर रहकर साथ चलने वाली रेखाएं जैसे लक्ष्य पथ पर हृदय के विश्राम-चिन्ह हों (देखें, पथ के साथी पृ० २)।

निश्चय ही इन रेखा-चित्रों और संस्मरणों में महादेवी की आत्मा छायावाद की सुन्दर कोमल भूमि से यथार्थ की सुन्दर कठोर भूमि पर उतर आई है। लेकिन उनकी संवेदना इतनी सरस और पावन है कि जिन व्यक्तियों को लेकर ये रेखाचित्र लिखे गए हैं, उनसे महादेवी जी का रागात्मक सम्बन्ध हो गया है। उनकी दयनीय दशा का चित्र खींचते हुए महादेवी जी ने व्यंग का भी सहारा लिया है जो कि आज के गद्य की एक प्रमुख आवश्यकता है। गद्य इन सबके अनुकूल पड़ता है, इसीलिए महादेवी जी ने गद्य को अपनाया है। परन्तु वहाँ भी उनकी गहन दृष्टि का प्रकाश है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक और निबन्धकार बाबू गुलाबराय ने एक बार लिखा था कि वे गद्य में महादेवी जी का लोहा मानते हैं। महादेवी जी के गद्य की प्रौढ़ता का इससे बड़ा प्रमाण-पत्र और क्या हो सकता (देखें, शचीरानी गुटू सम्पादित महादेवी वर्मा पृष्ठ ८९)।

निबन्धों में या स्फुट गद्य में महादेवी की सामाजिकता खिली। कविता-ग्रन्थों की भूमिका रूप से भी इनका गद्य पर्याप्त मिलता है। आधुनिक कवि, रश्मि, नीरजा, दीपशिखा, सान्ध्यगीत आदि में पृथक् से या 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' रूप से जो लिखा गया उसमें साहित्य की समस्याओं—छायावाद, रहस्यवाद, गीतकाव्य आदि पर कवयित्री ने अपने गम्भीर विचार प्रकट किए हैं। आधुनिक साहित्यिक समस्याओं पर लिखे ये लेख महादेवी जी के अपने और विशिष्ट दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं। डा० नगेन्द्र के शब्दों में सारतः महादेवी के ये निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर व्याख्यान हैं? आज साहित्यिक मूल्यों के बवण्डर में भटका हुआ जिज्ञासु इन्हें आलोक-स्तम्भ मानकर बहुत कुछ स्थिरता पा सकता है।

'यामा' महादेवी वर्मा के चार गीति-काव्यों (नीहार, रश्मि, नीरजा, साँध्यगीत) का संग्रह है। इस संग्रह में लिखी भूमिकाएँ और निःसन्देह चित्र भी उनके काव्य पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। महादेवी ने लिखा है—"यामा मेरे अंतर्जगत् के चार यामों का छायाचित्र है।" ये याम दिन के हैं या रात के यह कहना मेरे लिए असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। यदि ये दिन के हैं तो इन्होंने मेरे हृदय को श्रम से क्लान्त बनाकर विश्राम के लिए आकुल नहीं बनाया और यदि रात के हैं तो इन्होंने अन्धकार में मेरे विश्वास को खोने नहीं दिया, अतः मेरे निकट इनका मूल्य समान हैं और समान ही रहेगा।"

सन् १९६० में प्रकाकित 'सप्तपर्णा' में महादेवी का अनुवादक रूप सामने आता है। इसमें आर्षवाणी, वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति, जयदेव, शीर्षक से उन्हीं के शब्दों में—"भारतीय वाङ्मय की रूपमयता विविध और चेतना सर्वात्मिका है। उसमें से कुछ पंक्तियां लेकर उसका परिचय देना, कुछ बूँद जल लेकर समुद्र का परिचय देने के समान हो जाता है (देखें, सप्तपर्णा, पृ० ६८)। भारतीय वाङ्मय की बहुशः आदृत रचनाओं के कुछ अंशों का यहाँ प्रवाहमय हिन्दी में सहज पद्यबद्ध अनुवाद तो है ही, साथ ही ६९ पृष्ठों की 'अपनी बात' है जिसमें भारतीय वाङ्मय की महत्वपूर्ण मीमांसाओं से सम्बद्ध तथ्य को और अपने अनुवादक के कर्म को विस्तार से महादेवी ने गद्य में निवेदित किया है। निश्चय ही इस गद्य का अनूदित पद्य से अधिक मूल्य है, क्योंकि यह उन पद्य-रचनाओं की पृष्ठिभूमि को प्रकाशित करने वाला है।

महादेवी वर्मा की गद्य-वाटिका का बिहार करने वाले को अनुभव होगा कि—

क. जहाँ उन्होंने सामाजिक जीवन की कठोर वास्तविकताओं का स्पर्श किया है, वहां वे क्षुब्ध हो उठी हैं। समाज की रूढ़ियों, दुःख, दैन्य और स्वार्थ की कुटिलताओं को देखकर उनकी आत्मा विद्रोह कर उटी है। समाज के शिकञ्जों में फँसी नारी की अन्तर्वेदना आपने प्रकट की है।

विधवाओं, वेश्याओं, घर की चहारदीवार में बन्द हिन्दू नारी, पुरुषशासित समाज की पुरानी-नई रूढ़ियों, मिथ्यादंभ और अत्याचार को प्रकाश में लाकर मार्मिक व्यंग किया है। विधवाओं, वेश्याओं तथा गृह-बन्धुओं के विषय में महादेवी ने बौद्धिक प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया है। शैली आलोचनाप्रधान होते हुये भी भावात्मक है।

ख. उनके सामाजिक लेखों में गम्भीर विवेचना, गवेषणात्मक चिन्तन एवं अनुभूति की संपुष्ट व्यंजना विराजती है। वे जड़ रूढ़ियों और बद्धमूल संस्कारों से मुक्ति पाने को प्रेरित करती हैं।

ग आज की सर्वग्रासी परिस्थिति में यदि हम अपने जीवन का क्रम अटूट रखना चाहें तो अपनी साँस्कृतिक चेतना को मूलतः समझना और उसकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति को सुरक्षित रखना उचित होगा। सैकड़ों फिट नीचे भूगर्भ में गहरी गुफाओं में या ऊंची-ऊंची शिलाओं में मिले हुये अतीत वैभव तक ही हमारी संस्कृति सीमित नहीं वह प्रत्येक भारतीय के हृदय में भी स्थापित है। हमारी खोज किसी मृत जाति के जीवन-चिन्हों की खोज नहीं, जीवित उत्तराधिकारी के लिए उसके पैतृक धन की खोज है और यह उत्तराधिकारी प्रत्येक झोपड़े के कोने में उसे पाने को उत्कण्ठित बैठा है (देखें, क्षणदा पृष्ठ २७)।

घ शिराओं के समान फैली और एक दूसरे से उलझी हुई गलियों (जिनमें दूषित रक्त-जैसा नालियों का मैला पानी बहता है और रोग के कीटाणुओं की तरह नंगे-मैले बालक घूमते हैं) से भरे भारतीय नगर व देहात का विशेष परिचय पाने के बाद महादेवी का कथन है—"आज तो प्रत्येक व्यक्ति एक संस्था है। उसकी प्रत्येक साँस जीवित स्वप्न है, उसका प्रत्येक शब्द बोलता आदर्श है और उसका प्रत्येक कार्य साकार सिद्धान्त है। ऐसी स्थिति में स्वच्छ आकाश जैसे व्यापक सत्य को चाहे कोई न देखे; पर असत्य के रंगीन बादल सबकी दृष्टि को आकर्षित कर सकते हैं। इस युग में जीवन के साथ हमारा मिथ्याचार कितनी व्यापकता के साथ भयानक हो सकता है, इसकी यदि एक बार हम कल्पना कर सकें, तो हमारे निर्माण के अनेक प्रश्न सुलझ जावें (देखें, क्षणदा पृष्ठ ३९)।

ङ. भारतीय समाज का लौकिक स्तर पर विश्लेषण करके महादेवी ने लिखा —"पुरुष समाज का न्याय है, स्त्री दया; पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा; पुरुष शुष्क कर्तव्य है स्त्री सरस सहानुभूति और पुरुष बल है, स्त्री हृदय की प्रेरणा।" ·· हमारे समाज में अपने स्वार्थ के कारण पुरुष मनुष्यता का कलंक है और स्त्री अपनी अज्ञानमय निस्पन्द साहिष्णुता के कारण पाषाण-सी उपेक्षणीय दोनों के मनुष्यत्व युक्त मनुष्य हो जाने से ही जीवन की कला विकास पा सकेगी जिसका ध्येय मनुष्य की सहानुभूति, सक्रियता, स्नेह आदि गुणों को अधिक-से-अधिक व्यापक बना देता है (देखें, शृंखला की कड़ियां पृष्ठ १४,१५९)।

च. महादेवी के गद्य में कथन की वक्रता, मानव तथा प्रकृति का चित्रण, भावावेग काव्य का हलका स्पर्श तो है ही, साथ ही यह उनकी कविताओं के मुकाबले सुपच भी है। भावुकता और संवेदनशीलता में कोई कसर नहीं। कवित्व निदर्शन की अपेक्षा यहां महादेवी वर्मा संसार के कंटकाकीर्ण पथ को प्रशस्त बनाना चाहती हैं—"हमारे चारों ओर कभी प्रदेश, कभी भाषा, कभी जाति कभी धर्म के नाम पर उठती हुई प्राचीरें प्रमाणित करती हैं कि बौद्धिक दृष्टि से हमारा लक्ष्य अभी कुहराच्छन्न है। पर, जिस दिन हमारी बुद्धि में अभेद और हृदय में सामञ्जस्य होगा, उस दिन हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं को नयी दिशा प्राप्त हो सकेगी। जीवन के नव निर्माण में साहित्य और कला विशेष योगदान देने में समर्थ हैं। क्योंकि वे मानव-भावना के उद्‌गीथ हैं। ··· हम विश्व भर से परिचय की यात्रा में निकलने से पहले यदि अपने देश के हर कोने से परिचित हों लें, तो इसे शुभ शकुन ही मानना चाहिए (देखें, क्षणदा पृष्ठ १३८)।

छ. निश्चय ही गद्य लिखते समय महादेवी ने अन्तर में झांकने की बजाय स्वयं देश के कोनों में झांका है और इस प्रकार मंगल-घोष किया है कि आज जब विज्ञान ने वर्षों को घंटों में बदल दिया है, तब वे मनुष्य को मनुष्य से अपरिचित क्यों रहने दें, बुद्धि को बुद्धि का आतंक क्यों बनने दें और हृदय को हृदय के विरोध में क्यों खड़ा होने दें। अतः आज दूरी को निकटता बनाने के मुहुर्त में हमें निकट की

दूरी से सावधान रहने की आवश्यकता है। (देखें, क्षणदा पृष्ठ १३८)।

ज. गद्य के माध्यम से जीवन के लिए मंगल-प्रसाद विकिरित करते हुए उन्होंने कहा है कि विश्वासी बुद्धि और विवेकी हृदय अपने आप में सब शंकाओं का समाधान है। यदि आज हम इन दो विशेषताओं को सुलभ करने की साधना में लग जायें, तो अन्य समस्याएँ स्वयं सुलझ जायेंगी (देखें, क्षणदा पृष्ठ १३०)।

झ. गद्य के माध्यम से महादेवी हमें जीने की कला सिखाना चाहती हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि आज चाहे हमारी आध्यात्मिता भीतर-ही-भीतर पाताल तक फैल गई हो, परन्तु जीवन का व्यावहारिक रूप विकृत-सा होता जा रहा है। जीवन का चिन्ह केवल काल्पनिक स्वर्ग में विचरण नहीं है किन्तु संसार के कंटकाकीर्ण पथ को प्रशस्त बनाना भी है। जब तक वाह्य तथा आन्तरिक विकास सापेक्ष नहीं बनते, हम जीना नहीं जान सकते।

ञ. गद्य लेखों में महादेवी ने विषमता ग्रस्त समाज से तादात्म्य स्थापित कर अपने दुःखवाद का ही अधिकांशतः प्रकाशन किया है। पुष्ट सामाजिक चेतना का स्वर तो यहाँ मुखर है ही प्रमाद और अविवेक के आवरण में लिपटी भारतीय नारी के कर्ण-रन्ध्रों को निनादित करने वाली यह शंख ध्वनि भी सुनाई पड़ती है—"अपने कर्तव्य की गुरुता भली भांति हृदयंगम कर यदि हम अपना लक्ष्य स्थिर कर सकें तो हमारी लौह-शृंखलाएँ हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती हैं, इसमें सन्देह नहीं।" निश्चय ही यह जीवन के परिष्कार और उत्थान की प्रेरणा है।

महादेवी के गद्य में मनःस्थितिका विश्लेषण

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन

महादेवी जी से भेंट करने के बाद उनके कृतित्व पर दृष्टि-पात करें तो मन में यह प्रश्न उठता है कि जो व्यक्ति इतना प्रतिभावान, प्रसन्नचित्त, वहिर्मुख और मुक्तकण्ठ से बोलने वाला है, उसका काव्य क्यों रहस्य के गर्भ में अन्तर्हित हो गया है, क्यों वह वेदना के करुण-क्रन्दन से आक्रान्त है, और क्यों वह 'अश्रु-हास से विश्व को सजाकर आँख मिचौनी' खेलना चाहता है? कवयित्री क्यों 'अपने सूनेपन की मतवाली रानी' बनकर 'प्राणों का दीप जला-जलाकर दीवाली करती रहती' हैं? क्यों वे अपने 'सांध्य-गगन' जीवन को 'विरह का जलजात' स्वीकार करने के लिए बाध्य होती हैं, और क्यों उनकी 'नीरभरी बदली' से दिन-रात अश्रु टपकते रहते हैं? क्या कारण है कि उनकी 'पीड़ा उनके मानस से भीगी पट सी लिपट' गयी है और अपने प्रियतम से दूर रहकर भी वे अपने आपको 'अखंड सुहागिनी' के रूप में देखती हैं? क्यों वे अपने दीपक को 'मधुर-मधुर' जलाकर उसके प्रकाश से 'प्रियतम के पथ को आलोकित' करने का स्वप्न देखती हैं, विशेषकर उस हालत में जब कि उन्होंने एकाकी व्रत स्वीकार किया है?

कवि-सम्मेलनों के अवसर पर भी जब कभी किसी के मुँह 'बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ', 'टूट गया वह दर्पण निर्मम' आदि उनके द्वारा रचित काव्य-पाठ श्रवण करने का अवसर मिला, तब भी मन में एक प्रकार की घुटन-सी ही पैदा होकर रह गयी और मैं सोचता रह गया कि क्यों उनकी कविता जान नहीं फूँकती, वह क्यों नहीं हँसाती, क्यों वह करुणा से ओतप्रोत हुई केवल शून्य, अतृप्ति, पीड़ा और पलायन की ओर लक्ष्य करती दिखायी देती है?

हो सकता है कि महादेवी जी के इस रहस्यवादी काव्य के पीछे जीवन की कुछ ऐसी अपूर्तियां रही हों जो जाग्रत जगत् में पूर्ण न हो सकी हों, अतएव उन्हें प्रतीकात्मक गूढ़ भाषा का आश्रय लेना पड़ा हो। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि उनका काव्य उच्चकोटि का नहीं। उच्चकोटि का वह है, और उसमें रसात्मकता की निष्पत्ति होती है। उनके गीतों के मुखड़े बहुत जल्दी जबान पर चढ़ जाते हैं और एक बार सुनकर हम उन्हें गुनगुनाते रहते हैं और लेकिन प्रश्न होता है कि वे प्रायः केवल करुण रस से ही क्यों आप्लावित हैं और क्यों ये आत्म केन्द्रित होकर रहस्य-वादी सीमा में बंध गये हैं? वस्तुतः यह चर्चा प्रस्तुत लेख का उद्देश्य नहीं है। हम समझते हैं इस प्रश्न का सही उत्तर स्वयं महादेवी जी से मिल सकता है, या फिर उनके अन्तर्जीवन के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा इस विषय पर खोजबीन की जा सकती है।

'यामा' की भूमिका में महादेवी जो लिखती हैं—"सुख और दुख के धूप-छांहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस 'क्यों' का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणतः जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।"

ध्यान रहे कि इस प्रतिक्रिया' रूप वक्तव्य में प्यार और दुलार की बात महादेवी जी के बचपन के सम्बन्ध की है। बौद्ध दर्शन की करुणा से भी वे बचपन में ही प्रभावित हुई थीं जबकि बौद्ध भिक्षुणी बनने का संकल्प उसके मन में उदित हुआ। लेकिन बचपन के बाद भी जीवन में एक स्थिति आती है जबकि मनुष्य धीरे-धीरे आत्म-परिचय प्राप्त कर अहम् की ओर उन्मुख होने लगता है। ऐसी दशा में यदि उसकी इच्छाओं और आकांक्षाओं को कहीं जाने-अनजाने ठेस पहुँची तो सम्भव है किसी प्रतिक्रिया के रूप में किसी भिन्न प्रकार से ही, वह हमारे सामने उपस्थित हो। एण्टन चेखब ने लिखा हैं—"पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मुझ में जो एक लेखक की प्रतिभा का उदय हो आया, उसका कारण था कि मुझे अत्यन्त कष्टदायक निम्न कोटि का जीवन व्यतीत करना पड़ा।" सुप्रसिद्ध नाटककार इब्सन ने भी इसी तरह के विचार व्यक्त किये हैं—"कलाकार केवल उसी का सर्जन कर सकता है जिसका प्रतिरूप वह अपने आप में पाता है।" यहाँ हम केवल महादेवी जी की विभिन्न मनः स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयत्न कर रहे हैं जिससे कि उनकी गद्य और काव्य रचना सम्बन्धी परस्पर विरोधी वृत्ति को समझा जा सके।

महादेवी जी का काव्य जितना अन्तर्मुखी और रहस्यवादी परदे में छिपा हुआ है, उतना ही गरिमामय उनका गद्य साहित्य वहिर्मुखी और जीवन के यथार्थवाद को लेकर आगे बढ़ता है। तीव्र अनुभूति दोनों में है। महादेवी जी का गद्य साहित्य सामान्यतया तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—काव्य ग्रंथों की भूमिकाएँ, विचारात्मक निबन्ध तथा संमरण और रेखा चित्र। यहाँ हम उनके रचनात्मक गद्य को ही लेंगे, विवेचनात्मक गद्य को नहीं। उनके निबन्धों में वैयक्तिकता की स्पष्ट छाप है। उनके संस्मरण और रेखाचित्र तो हिन्दी साहित्य में बेजोड़ हैं, और साहित्य का उन्हें गौरव कहा जा सकता है। इनमें उनकी तीव्र अनुभूति, सूक्ष्म परख, गहरी पकड़, कथन की वक्रता तथा हास्य और व्यंग्य का पुट दिखायी देता है। इनमें जगह-जगह सामाजिक विषमताजन्य अन्याय और अत्याचारों के अत्यन्त हृदयग्राही जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये हैं जिन्हें पढ़कर हृदय तिलमिला उठता है। किसी जागरूक लेखक का मन अपने चारों ओर के विषम वातावरण को देखकर किस प्रकार सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह कर उठता है, उसका उदाहरण इन रेखा-चित्रों में देखा जा सकता है। शोषित और प्रताड़ित ग्राम्य नारियों के कठोर दुस्सह जीवन को तो जान पड़ता है, महादेवी जी ने बहुत नजदीक से देखा है; इसीलिए, उनके चित्र अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी बन पड़े हैं।

"शृंखला की कड़ियों" में महादेवी जी ने भारतीय नारी की समस्याओं का बड़ी आत्मीयता से विश्लेषण किया है। अपनी इस विचारोत्तेजक रचना को उन्होंने "जन्म से अभिशप्त, जीवन से संतप्त, किन्तु अक्षय वात्सल्य-वरदान-मयी भारतीय नारी को" समर्पित किया है। लेखिका को यह जानकर अत्यन्त संताप होता है कि "युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े-बड़े साम्राज्य बह गये, संस्कृतियां लुप्त हो गयीं, जातियाँ मिट गयीं, संसार में अनेक असंभव परिवर्तन सम्भव हो गये, परन्तु भारतीय स्त्रियों के ललाट में विधि की वज्र लेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी।" आगे चलकर वे लिखती हैं, "हम पशु-पक्षियों को, पाषाणों को अपनी सहानुभूति बाँट सकते हैं, नारी को निर्मम आदेश के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे पाते। देवता की भूख हम समझते हैं, परन्तु मानवी की नहीं।" फिर, "हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब-सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उस समय, उस असमय प्रौढ़ा, कई दुर्बल सन्तानों की रोगिनी पीली माता में कौन-सी विवशता, कौन-सी रुला देने वाली करुणा न मिलेगी।" दरअसल महादेवी जी का अन्तर्मन आत्मग्लानि से भर जाता है जब वे देखती हैं कि "साधारणतः महान् दुराचारी पुरुष भी परम सती स्त्री का आलोचक ही नहीं, न्यायकर्ता भी बना रहता है।" वेश्याओं की दयनीय दशा पर कटु व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा है, "स्त्री, पत्नी बनकर पुरुष को वह नहीं दे सकती जो उसकी पशुता का भोजन है। इसी से पुरुष ने कुछ सौन्दर्य की प्रतिमाओं को पत्नीत्व तथा मातृत्व से निर्वासित कर दिया।" महादेवी जी का विश्वास है कि स्त्रियों को आर्थिक सुविधाएँ देना जरूरी है। यदि उन्हें अर्थ सम्बन्धी वे सुविधाएँ प्राप्त हो सकें जो

पुरुषों को मिलती आ रही हैं तो न उनका जीवन उनके निष्ठुर कुटुम्बियों के लिए भार बन सकेगा और न वे गलित अङ्ग के समान समाज से निकाल कर फेंकी जा सकेंगी।''

''स्मृति की रेखाएँ'' और ''अतीत के चलचित्र'' में निरन्तर जिज्ञासाशील महादेवी जी ने अपनी स्मृति के आधार पर अमिट रेखाओं द्वारा अत्यन्त सहृदयता पूर्वक जीवन के विविध रूपों को चित्रित किया है। इनमें गंवई नारियों, बालविधवाओं, विमाताओं, पुनर्विवाहिताओं, तथाकथित भ्रष्टाओं और बृद्ध-विवाह के कारण प्रताड़िताओं के अत्यन्त सशक्त एवं करुण चित्र प्रस्तुत किये हैं। अपने निष्कर्षों पर पुस्तक पढ़कर वे नहीं पहुँची, बल्कि उनके जीवन के साथ तद्रूप होकर उन्होंने उनका निकट परिचय प्राप्त किया है, यही इन रेखाचित्रों की विशेषता है।

भक्तिन नाम की किसी ग्वाले की कन्या देहात से महादेवी जी के पास आकर रहने लगी थी। अत्यन्त सेवा भाव से वह अपनी मालकिन की देख रेख करती थी। उनकी कोई ''पुस्तक प्रकाशित होने पर उसके मुख पर प्रसन्नता की आभा वैसे ही उद्भासित हो उठती, जैसे स्विच दबाने से बल्व में छिपा आलोक। वह सूने में उसे बार-बार छूकर, आँखों के निकट ले जाकर और सब ओर घुमा-फिराकर मानो अपनी सहायता का अंश खोजती और उसकी दृष्टि में व्यक्त आत्मतोष कहता कि उसे निराश नहीं होना पड़ा। और फिर भी वह नौकर नहीं थी। उसे नौकर कहना उतना ही असंगत था जितना अपने घर में बारी-बारी से आने-जाने वाले अंधेरे-उजाले और आंगन में फूलने वाले गुलाब और आम को सेवक मानना।'' कितनी आत्मनीयता की भावना है।

दूसरा चित्र कल्पवास के समय का है। कल्पवास का मोह नियम-धर्म के लिए नहीं, बल्कि इसलिए था कि थोड़े ही समय में जीवन का विस्तृत ज्ञान हो सके। जब समुद्रकूप की सीढ़ियों के निकट लेखिका के रहने के लिए स्थान बनाया गया तो उनकी आज्ञा प्राप्त कर आस पास के गांव के और लोग भी वहाँ पहुंच गए। उसी समय का एक सरस चित्र देखिए—''सफेद बूटेदार काली पुरानी धोती पहने हुये जो अधेड़ स्त्री कोने में लोटे से खोली हुई डोर की अरगनी बांधने में व्यस्त थी, उसे मैं नहीं देख सकी पर अरगनी पर गुदड़ी बाजार लगाने के लिए जो फटे पुराने कपड़े सम्भाले खड़ी थी उसने मेरे ध्यान को विशेष रूप से आकर्षित कर लिया। लाल किनारी की मटमैली धोती का नाक तक खींचा हुआ घूंघट ही उसे विशेषता नहीं देता, हाथ की मोटी कच्ची शर्बती रंग की चूड़ियां और पांव के कुछ ढीले पतले कड़े तथा दो २ बिछुए भी उसके भिन्न सामाजिक परिस्थिति का परिचय दे रहे थे। घूंघट से बाहर निकले मुख के अंश की बेडौल चौड़ाई और उसमें व्यक्त सौम्य भाव में कुछ ऐसी खींचखाच थी कि न आंख उसे सुन्दर कहती थी, न मन उसे कुरूप मानता था।'' ग्राम्य जीवन का कितना सूक्ष्म और सहानुभूतिपूर्ण चित्र है।

देहात के लोग प्रायः अशिक्षित होने के कारण स्वयं पत्र लिखना नहीं जानते, इसलिए उन्हें दूसरों से लिखवाना होता है। हमारे देश में बहुत कम पढ़े-लिखे लोग ऐसे होंगे जो उनके पत्र-लेखन में रस ले सकें। इन पत्र लिखाने वाले देहातियों में गुंगिया भी थी जो लेखिका के आँचल का छोर थामकर गूंगी होने के कारण विविध हाव-भाव द्वारा पत्र लिख देने का संकेत कर रही थी। बड़ी होने पर, किसी तरह धोखा-धड़ी से उसके बाप ने उसका विवाह कर दिया। लेकिन जब ससुराल में पहुंचकर वह कुछ बोल न सकी तो चारों ओर से गालियों की बौछार पड़ने लगी। उस समय गुंगिया ने पहली बार ''जीवन के निष्ठुर अभिशाप की वह छाया देखी जो नैहर में माँ-बाप की ममता से ढकी हुई थी। अन्त में गुंगिया के ससुराल वालों ने अपनी बहू को उसके नैहर भेजकर ही संतोष की साँस ली। गुंगिया के पिता ने अपनी दूसरी लड़की रुकिया का गुंगिया के पति से विवाह करके ससुराल वालों से समझौता कर लिया। कुछ समय बाद रुकिया की मृत्यु हो गई और उसके नवजात गूंगे शिशु का भार गुंगिया के कन्धों पर आ पड़ा। लेकिन गुंगिया ने गूंगे हुलासी का बड़े स्नेह से लालन-पालन कर अपने नेम को निबाहा। एक बार गाँव में बाबा वैरागियों का आगमन हुआ। ''अजगर की साँस, जैसे उसका आहार बनने योग्य जीव-जन्तुओं को खींचकर लाती है, वैसे ही बाबा जी की दृष्टि हुलासी को निकट खींच लायी।''

यह देखकर गुंगिया को बड़ी चिंता हुई। उसने अपना फटा आँचल फैलाकर बाबा से अपने एक मात्र बालक की भिक्षा माँगी। बाबा ने हुलासी को उसके पास फिर कभी न आने का आदेश दिया। लेकिन उसी दिन से हुलासी कहीं गायब हो गया। बहुत समय बीत जाने पर भी गुंगिया दिन-रात उसके आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। कभी तो रात के सन्नाटे में द्वार खोलकर वह किसी के आने की आहट सुनती। उसे पूर्ण विश्वास था कि हुलासी एक न एक दिन अवश्य लौटेगा, पर वह नहीं लौटा तो नहीं लौटा। इस प्रकार के अनेक हृदयस्पर्शी ममतामय चित्र महादेवी जी की सशक्त लेखनी से प्रसूत हुए हैं।

इसी प्रकार 'अतीत के चलचित्र' में बिन्दा, बिट्टो, सबिया, रधिया, लछमा और किसी वृद्ध की पोती आदि सामाजिक विषमताओं की शिकार बनीं नारियों के एक से एक करुण चित्र भरे पड़े हैं। बिन्दा की बिमाता बिन्दा को दण्ड देने के लिए कभी उसे आंगन की जलती धरती पर खड़ा कर देती, कभी चौके के खम्भे से दिन-भर बांधे रखती, और कभी भूखी-प्यासी हालत में घंटों अपने आपको और खटोले पर सोते हुए मोहन को पंखा झलने का आदेश देती। बिट्टो किसी ५४ वर्ष के वृद्ध महोदय की तीसरी नवोढ़ा पत्नी थी। "टसर की मटमैली साड़ी में लिपटी उस संकुचित मूर्ति में न रूप था, न स्वास्थ्य, न कोई उमंग शेष थी, न उल्लास।" आखिर जब विषम ज्वर के कारण वृद्ध महोदय चलते बने तो बिट्टो का भविष्य और भी अंधकारमय हो गया।

सबिया एक गरीब मेहतरानी थी, जिसका पति उसे छोड़कर, अपने जात-भाई की नववधू को लेकर किसी परदेश भाग गया था। उस समय सबिया प्रसूतिगृह में थी। वह "सबेरे ही नीम तले कंकरीली धरती पर एक फटा मैला कपड़ा डालकर बच्चे को लिटा देती और कुछ निगरानी करने और कुछ मक्खियां उड़ाने के लिए बचिया को बैठा, आप एक तार-तार पिछौरी से कमर कस कर झाड़ू सम्भालती। फिर कम्पाउण्ड के एक छोर पर झाड़ू के छर-छर संगीत के साथ हवा में उड़ती सी सबिया का नृत्य आरम्भ होता, और दूसरे छोर पर कभी वीरासन, कभी योगासन में बैठकर छोटे-छोटे हाथों से मक्खी उड़ाती और कभी एक पैर से, कभी दोनों पैरों से कूद-फांद कर कौवों को डराती हुई बचिया का रूपक विस्तार पाता।"

वृद्ध की पोती आठ वर्ष में मातृ-पितृ विहीन हो गयी थी, और ग्यारह वर्ष में उसका सुहाग छिन गया था। कई वर्षों तक तो वह अपने कठोर वैधव्य को निबाहती रही, लेकिन अठारह वर्ष की उम्र में जब उसे अवैध सन्तान पैदा हुई तो उस सन्तान को चुपचाप अनाथाश्रम में रख देने का विचार किया गया। कितने दयार्द्र भाव से महादेवी जी लिखती हैं—स्त्री अपने बालक को हृदय से लगाकर जितनी निर्भर है, उतनी किसी और अवस्था में नहीं। वह अपनी सन्तान की रक्षा के समय जैसी उग्र चण्डी है वैसी किसी स्थिति में नहीं। इसी से कदाचित् लोलुप संसार उसे अपने चक्र-व्यूह में घेरकर बाणों से चलनी करने के लिए पहले इसी कवच को छीनने का विधान कर देता है। यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि 'बर्बरो, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी' तो इनकी समस्याएं तुरन्त सुलझ जावें।"

पतित समझी जाने वाली किसी माँ की पुत्री की करुण दशा का चित्रण भी अत्यन्त व्यंगपूर्ण मार्मिक शैली में किया गया है—"उसे (पतिता को) पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देता है, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। जिसे समाज ने एक बार कुलबधुओं की पंक्ति से बाहर खड़ा कर दिया, उसे जन्म-जन्मांतर तक अपनी सभी भावी पीढ़ियों के साथ बाहर खड़े रहने को ही जीवन का सबसे बड़ा बरदान समझना चाहिए।...... समाज इन्हें न जाने कितने दीर्घकाल से, कितने ही उपायों के द्वारा समझाता आ रहा है कि यह माता, पुत्री, पत्नी आदि त्रिगुणात्मक उपाधियों से रहित जीवन्मुक्त

नारी-मात्र है, और इनकी इसी मुक्ति से समाज का कल्याण बंधा हुआ है। फिर भी यदि वह अपने गुरू कर्तव्य से च्युत होकर पत्नीत्व, मातृत्व आदि सम्बन्धों को चुराती फिरें, तो समाज चुराई हुई वस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार करके क्या अपना विधान ही मिथ्या कर दे।"

केवल नारियाँ ही नहीं, उपेक्षित पुरुष-वर्ग का भी भावुक हृदया महादेवी जी ने अत्यन्त तन्मयता से चित्रण किया है। रामा, घीसा, अलोपी और बदलू आदि के रेखाचित्र उनके असाधारण मानवतावाद की ओर इंगित करते हैं। रामा के वर्णन-प्रसंग में कवियित्री की शैशवकाल की स्मृतियां जाग उठती हैं। अपनी विमाता के अत्याचार से पीड़ित हुआ रामा किस तरह महादेवी को 'राजा बेटा' कह-कहकर उनका मुँह धुलाता, चम्मच से दूध पिलावा और फलों का नाश्ता कराता, इसका अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन लेखिका की सशक्त लेखनी द्वारा किया गया है। वे लिखती हैं— "रामा के एक हाथ की चक्र-व्यूह जैसी उंगलियों में मेरा सिर अटका रहता था और उसके दूसरे हाथ की तीन गहरी रेखाओं वाली हथेली सुदर्शन चक्र के सामन मेरे मुख पर मलिनता की खोज में घूमती रहती थी।" इतना सब होने पर भी महादेवी को शरारत सूझती और वे उसकी "लम्बी शिखा को साम्य की दीक्षा देने के लिए" हाथ में कैंची लिये घूमती रहतीं। उनका विश्वास है कि "निरक्षर रामा की स्नेह छाया के बिना मैं जीवन की सरलता से परिचित" नहीं हो सकती थी।

अंधे अलोपी का एक चित्र देखिए—"अलोपी के नेत्र नहीं थे, इसी से सम्भवतः वह न प्रकृति के रौद्र रूप से भयभीत होता था और न उसके सौंदर्य से बहकता था। मूसलाधार वृष्टि जब बर्फ के तूफान की भ्रांति उत्पन्न करती, बिजली जब लपटों के फव्वारे-जैसी लगती और बादलों के गर्जन में जब पर्वतों के बोलने का आभास मिलता, तब रग्घू तो चलते-चलते बाहर से आंखें छिपा लेता, पर भीगे चिथड़े के गुड्डे के समान अलोपी, नाक की नोक से चूते हुए पानी की चिन्ता न कर, भींगी उंगलियों से फिसलती लाठी थामे और हरे खेत के खण्ड-जैसी छावड़ी सम्भाले इस तरह पांव रखता, मानों उसे आज ही पृथ्वी का पूरा परिचय प्राप्त करना है।" अन्त में अलोपी के किसी अज्ञात-लोक की महायात्रा पर चले जाने के बाद महादेवी जी लिखती हैं—"आज भी देहली की ओर देखते ही मेरी दृष्टि मानों एक छाया मूर्ति में पुञ्जीभूत होने लगती है। फिर धीरे-धीरे उस छाया का मुख स्पष्ट हो चलता है। उसमें मुझे कच्चे काँच की गोलियाँ जैसी निष्प्रभ आंखें भी दिखायी पड़ती हैं और पिचके गालों पर सूखे आँसुओं की रेखा का आभास मिलने लगता है। तब मैं आंखें मल-मलकर सोचती हूँ—नियति के व्यंग से जीवन और संसार के छल से मृत्यु पाने वाला अलोपी क्या मेरी ममता के लिए प्रेत होकर मंडराता रहेगा?" अतीत के इस चलचित्र में कितनी माया-ममता भरी हुई है।

इसी प्रकार का चित्र बदलू कुम्हार का एक है-"जैसे मिट्टी के बर्तन कुछ सुखाने, कुछ पकाने और कुछ उठाने रखने में टूटते रहते थे, उसी प्रकार बच्चे भी कुछ जन्म लेते ही, कुछ घुटनों के बल चलते हुए और कुछ टेढ़े-मेढ़े पैरों पर डगमगा कर माता पिता के काम में सहायता देते हुए चल बसते थे। उनके जन्म या मृत्यु के सम्बन्ध में बदलू को सुखी या दुखी देखना सम्भव न हो सका। बदलू का चित्र खींच देना, किसी भी चित्रकार के लिए सहज नहीं, क्योंकि वह ऐसी परस्पर विरोधी रेखाओं में बंधा था कि एक को स्पष्ट करने में दूसरी लुप्त होने लगती थी।" बदलू के घर किसी बच्चे के जन्म के समय जैसे कोई कोलाहल नहीं होता था, वैसे ही मृत्यु के समय आडम्बर भी नहीं। एक बार बच्चे के समय माई ने चमारिन को इस-लिए नहीं बुलाया कि वह एक रुपया मांगती थी। उसने दराती से अपने आप नार काट दिया, यद्यपि वह ठीक से नहीं कट पाया।

इस प्रकार के एक से एक सुन्दर माया-ममता पूर्ण आत्मीयता के चित्र महादेवी जी के रेखाचित्रों में देखने में आते हैं जो उनके मानवतावादी दृष्टिकोण की घोषणा करते

हैं। उनका अनुभव है कि गाँव के लोग प्रायः मधुर भाषी, लज्जाशील और सेवाभावी होते हैं, फिर भी उनमें जो चिड़चिड़ापन है उसका कारण वहां की घोर दरिद्रता और असंख्य अभावों की मौजूदगी ही समझनी चाहिए। पहाड़ी कुलियों की असहाय अवस्था पर तीखा व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा है—"ये भी मनुष्य हैं, इसे हम अभ्यास-वश समझते हैं- इनमें मनुष्य का रूप पाकर नहीं।" इन कुलियों द्वारा वहन की जाती हुई डोलियों में बैठकर यात्रा करते हुए सम्पन्न लोगों के सम्बन्ध में वे कहती हैं—"डांडी में बैठा हुआ कोई लम्बोदर अपने हांफते हुए कुलियों को 'सर्प-सर्प' कहकर इस तरह दौड़ाता है कि उसे देखकर हमें स्वर्ग पर अधिकार पाकर भी देवता न बन पाने वाले नहुष का स्मरण हो आता है। किसी डाँडी में कोई सम्पन्न घर की शृंगारित प्रसाधित महिला पर्वत के सौन्दर्य की उपेक्षा कर झपकियाँ लेती जाती है।"

समाज में अत्यन्त साधारण समझे जाने वाले धोबी के प्रति उनका ममत्व देखिए—"धोबी जुआ खेलकर या शराब पीकर भी, न भले आदमी की परिभाषा के बाहर जाता है और न अकर्मण्यता का आलस्य को अपनाता है उसे आजीविका के लिए जो कार्य करना पड़ता है, उसमें आलस्य या बेईमानी के लिए स्थान नहीं रहता।"

लगता है कि कवि-सम्मेलनों का कवयित्री को सुखद अनुभव नहीं। कवि-सम्मेलनों में कविता पाठ के लिए आने वाले कवियों को 'आश्चर्य-पुत्र' कहकर उन्होंने उनपर करारे व्यंग्य कसे हैं। वे लिखती हैं—"हमारे सभ्यता-दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानन्द छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरंजन-मात्र रहता है, इसी से उसमें सम्मिलित होने वालों की भेद-बुद्धि, एक दूसरे को नीचा दिखलाने का प्रयत्न और वैयक्तिक विषमताएँ और अधिक विस्तार पा लेती हैं।"

"पथ के साथी" में महादेवी जी ने मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, "निराला", "प्रसाद", पंत और सियारामशरण गुप्त के संस्मरण दिये हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ गोबर से आंगन लीपने की प्रतियोगिता का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है—"पर आज मैं स्वीकार करती हूँ कि ऐसे कार्य में एकान्त तन्मयता केवल उसी गृहिणी में सम्भव है जो अपने घर की धरती को हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं।"

"क्षणदा" महादेवी जी का दूसरा निबन्ध संग्रह है जिसमें उनके "कुछ चिन्तन के क्षण एकत्र हैं।" "साहित्य-कार की आस्था तथा अन्य निबन्ध" में उनके आलोचनात्मक साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है! महादेवी जी साहित्य को जीवन का अलंकार स्वीकृत न कर उसे स्वयं जीवन ही मानती हैं। उनका विश्वास है कि साहित्यकार जीवन में गम्भीर आस्था के बिना "अपने जीवन को अपने सृजन में अवतार नहीं दे सकता।"

"हिमालय" में हिन्दी कवियों की हिमालय सम्बन्धी रचनाओं का चयन है। कवियित्री ने इसे "हिमालय में मिलकर धरती के लिए हिमालय बने हुए भारतीय जवानों की पुण्य-स्मृति" को समर्पित किया है। निश्चय ही यह उनके राष्ट्र के प्रति जागरूकता का सूचक है।

काश! कवियित्री अपनी अन्तर्मुखी वृत्ति से अवकाश प्राप्त कर स्वतन्त्र भारत की उपेक्षित जनता के उत्थान-यज्ञ में आहुति देने के लिए इस तरह के कुछ और रचनात्मक साहित्य-सर्जन का यश प्राप्त करतीं। किन्तु क्या यह सम्भव हो सकेगा?

महादेवी के गद्य का अन्तः गूढ़ स्वर

●

डॉ० सत्येन्द्र कुमार

वैसे तो साहित्य आत्माभिव्यक्ति ही है परन्तु इस सत्य का विशेष समर्थन और पुष्टि महादेवी के साहित्य से होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो साहित्य का सृजन अवचेतन मन की चेतन प्रक्रिया से होता है। यहाँ भी, प्रारम्भिक अवस्था के कड़वे-मीठे अनुभवों की अवचेतन मन पर गहरी और अमिट छाप पड़ी रहती है। महादेवी को नारी-जीवन के निष्ठुर पक्ष का कटु-परिचय अपने जीवन के उदय-काल में ही हो गया था। सरल एवं सुखद जीवन की सहजानुभूति की अपेक्षा उन्हें अपने जीवन में विवशता, घुटन एवं उत्पीड़न से उत्पन्न वेदना, जलन एवं कुंठाओं का अनुभव करना पड़ा। नारी की आँसुओं से गीली गाथा चिर परिचित सी लगने लगी। इधर निजी एवं सामाजिक बन्धनों की स्वाभाविक सीमाएँ थीं जिनके फलस्वरूप उनके लिए अपनी भावनाओं एवं प्रतिक्रियाओं की स्पष्ट एवं मुखर अभिव्यक्ति संभव नहीं थी। इस अवरोध ने उनके व्यक्तित्व को अन्तर्मुखी बना दिया। अमूर्त और सूक्ष्म के प्रति अनावश्यक मोह दिखाई देने लगा। सीधे और सरल भाव को भी दर्शन और अध्यात्म के माध्यम से व्यक्त करके दुरूह बना दिया गया। इस तरह महादेवी के व्यक्तित्व में अनिवार्य रहस्यात्मकता सर्वत्र मिलती है।

व्यक्तित्व के सहज विकास में सामाजिक बन्धनों एवं स्वाभाविक प्रस्फुटन तथा अभिव्यक्ति में गतिरोध के कारण महादेवी अपने विचार सहज एवं उन्मुक्त रूप से प्रकट नहीं कर पाई और न अपने उद्देश्य को स्पष्ट एवं बोध गम्य रूप से व्यक्त कर पाई हैं। अपने जीवन के अनुभव और समाज में नारी के जर्जर एवं विकृत स्वरूप को देख कर वे क्रोध या प्रतिशोध का भाव नहीं जागृत करना चाहतीं। वे हमारे हृदय में सहानुभूति एवं संवेदना पैदा करना चाहती हैं। इस प्रकार उनके समस्त साहित्य का उद्देश्य है—करुणा एवं दया का भाव जागृत करना ताकि नारी के प्रति हमारा सजल एवं स्वस्थ दृष्टिकोण हो। निश्चय ही यह करुणा उन्हें बुद्ध से प्राप्त हुई। माँ की भक्ति भावना और पिता के गम्भीर दार्शनिक स्वभाव ने भी इस दृष्टिकोण को समृद्ध एवं पुष्ट किया। सारांश यह कि नारी उनके साहित्य की मूल धुरी हैं। उनका लक्ष्य रहा है करुणा एवं संवेदना की जागृति। निजी और सामाजिक बन्धनों के कारण उनकी अभिव्यक्ति सूक्ष्म एवं रहस्यपूर्ण रही है।

विचार के क्षणों में महादेवी को गद्य लिखना अच्छा लगता है क्योंकि इसमें उन्हें अपनी अनुभूति ही नहीं, सामाजिक परिस्थितियों के परिवेश में विश्लेषण करने का अवसर मिलता है। परन्तु, वस्तु जगत् के यथार्थ धरातल पर उतर कर भी वे अपने कोमल रहस्यमुखी स्वरूप से अलग नहीं हो पाई। उनके अवचेतन मन पर व्यक्तित्व के आधारभूत गुणों की अमिट छाप है जिनका प्रस्फुटन यहाँ भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। हाँ, गद्य और पद्य का स्वाभाविक अन्तर तो मिलेगा ही।

महादेवी के गद्य का केन्द्र बिन्दु भी नारी जीवन ही है। कहीं वे उसके अस्तित्व की रक्षा एवं न्याय के लिए उसकी शृंखलाएँ तोड़ने का उग्र प्रयास करती हैं, कहीं उसे

संस्मरणों की कोमल रेखाओं में बांधती हैं, कहीं निबन्धों में प्रासंगिक चर्चा करते हुए उसके स्वरूप एवं महत्त्व पर प्रकाश डालती हैं और कहीं काव्य, कला, छायावाद, रहस्यवाद जैसे गूढ़ विषयों की विवेचना के द्वारा साहित्य में उसके प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण के लिए आग्रह करती हैं।

अपने संस्मरणों में महादेवी नारी-जीवन के बड़े मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली चित्र खींच सकी हैं। "स्मृति की रेखाएँ और "अतीत के चलचित्र" उनके संस्मरणात्मक रेखा-चित्र हैं। इसमें उन्होंने अपने "अक्षय ममता के पात्रों" का सजीव एवं हृदयग्राही रेखांकन किया है। समाज के निर्मम आचरण से उत्पीड़ित ये निरीह स्त्रियां स्नेह एवं सहिष्णुता की मूर्ति हैं। उनकी व्यथा पूर्ण गाथा करुणा से गीली है। लछमिन के दुर्भाग्य का उदय उसके ऊषा काल से ही हो गया था जो धीरे-धीरे निराशा के गम्भीर अन्धकार की ओर बढ़ता गया। इस अन्धकार की लपेट में केवल उसका वैधव्य और उससे उत्पन्न अत्याचार एवं अन्याय ही नहीं आया बल्कि इस जीवन व्यापी प्रकोप से उसकी पुत्री भी न बच सकी। परन्तु यह गंवार और अक्खड़ औरत ममता तथा एकनिष्ठता का अनन्त भण्डार थी, इसीलिए अपने जीवन की अविभाज्य अंग होने के कारण महादेवी उसकी अधूरी कहानी को पूरा नहीं करना चाहतीं। निर्धन और मातृहीन मुन्नू की माई बुढ़िया को असमय ही समझदार बनना पड़ा। अभी पिता का पूरा स्नेह-दुलार ही नहीं मिल पाया था कि वह चिरनिद्रा में सो गया और उसे कठोर एवं सहानुभूति-शून्य गुरु भाई की शरण में रहना पड़ा। यही नहीं, पति मिला तो वह जुआरी था और ससुर भिखारी था। कष्टों से दुखी और परिस्थितियों से आक्रान्त से आक्रान्त इस निरीह नारी को अपने नारीत्व की ही रक्षा नहीं करनी थी, बल्कि इन 'अपाहिजों' का पालन-पोषण भी करना था। 'बिबिया धोबिन' में कौन सी स्त्रियोचित विशेषताएँ नहीं हैं? वह कर्मठ एवं कर्त्तव्यनिष्ठ है, अपना ही नहीं, दूसरों का भी प्रसन्नता से काम-काज करती है। पर, इतने सहज निश्छल स्वभाव के होते हुये भी उसे अपने जीवन की आहुति देनी पड़ी। गुंगिया के साथ प्रकृति ने तो अन्याय किया ही, उससे कहीं अधिक समाज ने उसकी विवशता का लाभ उठाया। इससे उसके त्याग एवं सरल स्निग्ध-आचरण में कोई अन्तर नहीं आया।

'अतीत के चलचित्र' की बिंदा आकाश के झिलमिल तारों में अपनी सगी माँ की स्नेहमयी दृष्टि खोजती है परन्तु सौतेली माँ के नृशंस व्यवहार के कारण उसे इस पृथ्वी पर अधिक देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। वह जल्दी माँ की वात्सल्य-मयी गोद में पहुँच जाती है। सलज्ज और कर्तव्यनिष्ठ सबिया का जीवन एक दीपशिखा की तरह है, जो स्वयं जल कर दूसरों के लिए प्रकाश फैलाती है। एक स्त्री के साथ भागे हुये अपने पति नाम के व्यक्ति के लिए वह कब से बाट जोह रही थी परन्तु जब वह लौटा भी तो इस सहन-शीलता के दण्ड के तौर पर उसने उस स्त्री को साथ बसाने का निश्चय किया। सबिया को इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि उसके पौराणिक संस्कार उसे उसके (पति) पद के अनुरूप गौरव एवं आदर देने से वंचित नहीं कर सकते। इतने बच्चों की माँ रधिया का कष्टपूर्ण जीवन उसे दीनता की सजीव मूर्ति बना देता था। ऐसी करुण परिस्थितियों में उसकी साहिष्णुता भी असह्य लगती है। लछमा एक प्रबुद्ध तथा निडर स्त्री है जो अपनी ममता में सरल एवं निरीह है। वह अपने पागल पति के साथ गुजारा कर सकती है। परंतु ससुराल का अमानुषिक अत्याचार नहीं सह सकती। इसलिए इस अभागिन की गाथा आँसुओं से गीली और हृदय से भारी है।

उपर्युक्त सभी नारी पात्र अशिक्षित, अशिष्ट एवं पिछड़े वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। इनका सामाजिक और आर्थिक स्तर बहुत गिरा हुआ है। समाज की कुरीतियों एवं संस्कारों से आबद्ध ये गंवार स्त्रियां अपने परम्पराग्रस्त दायरे से ऊपर नहीं उठ सकतीं। परन्तु यह चित्र का केवल एक हिस्सा है अन्यथा स्वभाव से ये लोग निष्छल, स्निग्ध, एवं निरीह हैं इनका अकृत्रिम आचरण तथा स्वच्छ एवं निष्कपट व्यवहार सीधा हृदय को छूता है। स्पष्ट है इन्हें समाज की भाषा से नहीं आँकना चाहिए बल्कि इन्हें इनकी समृद्ध हृदय की भाषा में पढ़ना चाहिये। वस्तुतः समाज का ढाँचा ही इतना संकीर्ण एवं विकृत है कि इनके व्यक्तित्व का सही और स्वस्थ विकास नहीं हो सका। इसलिए इनके इस पिछड़े

स्वरूप में समाज का दोष अधिक है। इनका मूल्यांकन समाज की तथाकथित कसौटियों से नहीं करना चाहिये, इनका हृदय सरल एवं साफ है तथा आचरण स्वच्छ है जिससे इनके उच्च मानवीय गुणों का परिचय मिलता है। ये 'गुदड़ी में लाल' हैं।

समाज के अन्याय और पुरुष की कठोरता एवं संकीर्णता के व्यापक प्रभाव के बावजूद इनमें कहीं प्रतिशोध का भाव नहीं मिलता। बिबिया धोबिन और लछमा में अस्तित्व रक्षा के लिए आक्रोश का स्वर अवश्य मिलता है परन्तु इस साहस के लिए पर्याप्त दण्ड मिल जाता है। शेष सभी पात्र इसे अपना दुर्भाग्य या प्रकृति का अभिशाप समझकर चुपचाप सहते हैं। उनकी वेदना, पीड़ा एवं साहिष्णुता से हमारे हृदय में दया एवं सहानुभूति की जागृति होती है। कविता की तरह इन संस्मरणों का लक्ष्य भी अन्ततः करुणा एवं संवेदना का भाव जागृत करना है। क्या बुटिया, बिबिया गुंगिया, बिंदा, सबिया और लछमा के आँसुओं से गीले संस्मरण कविता के कारुणिक प्रभाव को व्यक्त नहीं करते? निश्चय ही गद्य-पद्य की एक ही अन्तर्धारा है जिसमें समान रूप से करुण स्वर प्रतिध्वनित होते हैं।

'शृंखला की कड़ियां' में महादेवी के कुछ भिन्न व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। उदय-कालीन निबन्ध होने के कारण, इनमें गूढ़ व्यञ्जना एवं रहस्यात्मकता का अभाव मिलता है। यहाँ उन्होंने नारी के प्रति अन्याय एवं अनीति का स्पष्ट एवं कड़ा विरोध किया है। इन्होंने यह विवेचना सामाजिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में किया है। यह पर्याप्त स्वाभाविक है कि कहीं-कहीं नारी होने के नाते वे नारी का पक्ष ले जाती हैं, परन्तु अधिकांश स्थलों पर उनका विश्लेषण विषय-परक रहा है। आधुनिक नारी के खोखले एवं कृत्रिम स्वरूप तथा पुरुष की अनावश्यक होड़ पर तीखा व्यंग्य कसा है। इस तरह जहाँ वे नारी के सुधार के लिए व्यग्र हैं। वहाँ वे अपने उद्धार के लिए चेतावनी देने में भी संकोच नहीं करतीं।

'क्षणदा' में वे भाव की सीमा से अलग नहीं हो पाईं। इनमें तर्क-वितर्क नहीं है। इसलिए कवित्वपूर्ण व्यक्तित्व का प्रस्फुटन यहाँ भी स्पष्ट रूप से मिलता है। चिंतन के क्षणों में वे अपने 'करुणा के सन्देश-वाहक बुद्ध' को नहीं भूलीं जिसकी उनके व्यक्तित्व पर गहरी छाप है। 'कला और हमारा चित्रमय जगत्' में नारी के नवीन स्वरूप पर कटाक्ष किया है। इस विज्ञापन-प्रधान युग में नारी का जिस प्रकार दुरुपयोग किया जा रहा है, वह उसके लिए गौरव एवं सम्मान का विषय नहीं। स्वतन्त्रता के बाद नारी ने समानता तो ग्रहण कर ली पर स्त्रीत्व का प्रदर्शन देकर। निश्चय ही यह बहुत बड़ा मूल्य है।

विवेचनात्मक गद्य में काव्य के विभिन्न पक्षों पर विचार प्रकट किए गए हैं। भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म की पृष्ठ-भूमि के फलस्वरूप विवेचन गूढ़ एवं दुरूह सा हो गया है। यह निश्चित रूप से उनकी रहस्यमुखी प्रवृत्ति का परिणाम है। इन निबन्धों में महादेवी ने भारतीय संस्कृति के परिवेश में काव्यकला, छायावाद, रहस्यवाद आदि का विश्लेषण किया है। इन गम्भीर निबन्धों में भी महादेवी ने कविता में करुण भाव का महत्व, छायावाद में नारी की स्थिति, नारी के प्रति मध्यकालीन अस्वस्थ दृष्टिकोण और आज के विकसित एवं वैज्ञानिक युग में नारी के प्रति समान एवं स्वस्थ व्यवहार की चर्चा की है। उनके अनुसार नारी के प्रति संकीर्ण एवं कामवादी दृष्टिकोण रखना उचित नहीं। इस प्रकार इन निबन्धों में यथास्थान अपने प्रिय विषय— करुणा और नारी का उल्लेख किया गया है।

अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनके गद्य अन्तः गूढ़ स्वर वही है जो उनकी कविता या उनके व्यक्तित्व का आधार है। निजी जीवन की विवशता और विषमता की तीव्र अनुभूति, करुणा के प्रति विशेष मोह, जिसे माँ की भक्ति भावना और पिता के गम्भीर स्वभाव से पुष्टि मिली है, ऐसे तत्व हैं जो पद्य के समान गद्य में स्पष्ट रूप से मिलते हैं। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व सर्वत्र अन्तर्व्याप्त है, दूसरे शब्दों में, साहित्य आत्माभिव्यक्ति है, यह सत्य महादेवी के साहित्य के लिए बहुत उपयुक्त एवं सार्थक है।

महादेवी जी के रेखाचित्र

•

उर्मिला कुमारी गुप्ता

श्रीमती महादेवी वर्मा ने काव्य-रचना के अतिरिक्त गद्य-रचना के क्षेत्र में भी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'अतीत के चलचित्र'[1] और 'स्मृति की रेखाएँ'[2] उनकी प्रसिद्ध गद्य-रचनाएँ हैं, जिनमें उन्होंने क्रमशः ग्यारह और सात रेखाचित्रों को स्थान दिया है। इनमें उन्होंने अपने परिचय में आए हुए विविध व्यक्तियों की जीवन-धारा का संस्मरणात्मक रूप में उल्लेख किया है। रचना-शिल्प की दृष्टि से ये रेखाचित्र कहानी के अधिक निकट हैं, अतः हम इनकी समीक्षा कहानी के तत्वों की दृष्टि से ही करेंगे।

(अ) कथानक

आलोच्य लेखिका ने अपने अधिकांश रेखाचित्रों में निम्न-वर्गीय पात्रों की विशेषताओं, दुर्बलताओं और समस्याओं को अंकित किया है। सेवक रामा की वात्सल्यपूर्ण सेवा, भंगिन सबिया की पति-परायणता और सहनशीलता, घीसा की निश्छल गुरुभक्ति, शाकभाजी के विक्रेता अन्धे अलोपी का सरल व्यक्तित्व, कुम्भकार बदलू तथा रधिया का सरल दाम्पत्य-प्रेम, पार्वत्य रमणी लछमा का महादेवी जी के प्रति अनुपम स्नेह-भाव, वृद्धा भक्तिन की प्रगल्भता तथा स्वामी-भक्ति, चीनी युवक की करुण-मार्मिक जीवन-गाथा, पार्वत्य कुली जंगबहादुर तथा उसके अनुज धनिया की कर्मठता आदि अनेक विषयों को लेखिका ने अपने रेखाचित्रों में स्थान दिया है और उनके प्रति पाठकों की संवेदना तथा सहानुभूति को सफलता पूर्वक जाग्रत किया है। ठकुरी बाबा-सम्बन्धी रेखाचित्र में उन्होंने उनके कल्पवास-काल के सहयोगी ग्रामीणों की जीवन-गाथा का वर्णन करते हुए ग्राम वासियों की धार्मिक प्रवृत्ति तथा निश्छल स्नेह का सजग-सरस चित्रण किया है। उनके अधिकांश रेखाचित्रों में समाज तथा भाग्य की विभीषिकाओं से पीड़ित नारियों के करुण जीवन-चित्र अंकित हैं—विमाता के दुर्व्यवहार से व्यथित बिन्दा और बाल-विवाह, अनमेल विवाह तथा अकाल वैधव्य के भार से बाधित बिट्टो, बूटा आदि पात्राओं के जीवन-चित्र इसी प्रकार के हैं। 'स्मृति की रेखाएँ' में गुंगिया के मातृ हृदय का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करने में भी लेखिका को अद्भुत सफलता मिली है।

उक्त स्मृति-चित्रों को महादेवी जी ने अपने जीवन के भीतर से प्रस्तुत किया है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि इनमें उनके अपने जीवन की विविध घटनाओं एवं उनके चरित्र के विभिन्न अंशों को स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को ज्यों-का-त्यों यथार्थ रूप में अंकित किया है कल्पना के रंगों से उन्हें सजाने-संवारने का प्रयास उन्होंने नहीं किया। इस विषय में उनकी यह उक्ति प्रमाण है—"मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपान्तरित हो जाएगा। फिर जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की सृष्टि क्यों करती।"[1] यहाँ

[1]—सातवाँ संस्करण, संवत् २०१५, भारती-भंडार, इलाहाबाद।

[2]—आठवां संस्करण, संवत् २०१९, भारती-भंडार, इलाहाबाद।

[1]—अतीत के चलचित्र, अपनी बात, पृष्ठ २

यह उल्लेखनीय है कि महादेवी जी के रेखाचित्रों में चरित्र-चित्रण का तत्त्व प्रमुख रहा है, कथानक उसका अंगीभूत होकर प्रकट हुआ है। ग्रामीण जन-जीवन के सहज चित्र अंकित करने में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। घीसा, अलोपी, भक्तिन, लछमा आदि से सम्बद्ध रेखाचित्रों से यह सहज स्पष्ट हो जाता है। इन रेखाचित्रों में लेखिका के गम्भीर लोक-दर्शन का भी पर्याप्त समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ बूटा के विषय में यह उक्ति देखिए—"निर्धन और मातृहीन बालिकाओं को बड़े होते देर नहीं लगती, क्योंकि आवश्यकता और स्वभाव दोनों मिलकर समय की कमी पूरी करके उन्हें असमय ही विशेष समझदार बना देते हैं। बूटा भी छः वर्ष की अवस्था से ही छोटे-मोटे काम करने लगी थी, पर सातवें वर्ष से तो वह बाप की गृहस्थी ही संभालने लगी।"[1] अतः यह कहा जा सकता है कि कथानक में स्वाभाविकता, परिस्थिति-सजगता, कौतूहल, साधारणीकरण में समर्थ मार्मिकता आदि गुणों का समावेश करने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है।

(आ) चरित्र-चित्रण

महादेवी जी के रेखाचित्रों में चरित्र-चित्रण का तत्त्व सर्वोपरि रहा है तथा अन्य तत्त्व प्रायः उसी के विकास में सहयोगी रहे हैं। पात्रों में या तो सरल हृदय ग्रामवासी हैं अथवा निम्नवर्गीय भंगिन, धोबिन आदि पात्र हैं जिनका शिक्षा अथवा सभ्यता से कभी परिचय नहीं हुआ, किन्तु सात्त्विक स्नेह, निश्छल निष्ठा, चारित्रिक दृढ़ता, कर्तव्य-परायणता, ममता, वात्सल्य आदि गुणों में ये इतने बड़े-चढ़े हैं कि पाठक को सहज ही प्रभावित कर लेते हैं। स्नेह-वत्सल सेवक रामा; गुरुभक्त घीसा, सरल विश्वासपूर्ण अलोपी, निष्ठामयी वृद्धा भक्तिन, हृदय में व्यथा तथा मुख पर हास्य लिये चीनी युवक, सहज स्नेहहिल ठकुरी बाबा आदि मात्र लेखिका के ममत्व की परिधि से ऊपर उठकर पाठकों के स्नेह तथा श्रद्धा के अधिकारी हो उठते हैं।

महादेवी जी की नारी-पात्राएँ पुरुष-पात्रों की अपेक्षा अधिक सजग, क्षमाशील, तथा कर्त्तव्यनिष्ठ हैं। पुरुषों के अत्याचारों को सहकर भी वे उनकी मंगल-कामना करती हैं। भंगिन सबिया का पति मैकू उसकी उपेक्षा कर गंदा को ले आता है, फिर भी सबिया उसकी तथा सपत्नी की निष्ठा पूर्वक सेवा करती है। मुन्नू की माँ बूटा निठल्ले पति से बंधकर भी अपने दुर्भाग्य पर आंसू नहीं बहाती, अपितु पति और ससुर की तन-मन से सेवा करती है। धोबिन बिबिया अपने पहले पति चरित्रहीन रमिया तथा दूसरे वृद्ध पति की गृहस्थी संभाल कर भी पुरुष-समाज की हृदयहीनता के कारण लांछित होती है और अन्त में आत्म हत्या कर लेती है। बाल-विवाह तथा वृद्ध विवाह की शिकार बिट्टो की जीवन-गाथा भी अत्यन्त करुण है। रधिया अभावों में भी अपने भोले पति को सान्त्वना देकर प्रसन्न रखती है। इन सभी नारियों ने सामाजिक एवं दैविक कष्टों के प्रति जिस अद्भुत सहन-शक्ति का परिचय दिया है, उससे भारतीय नारी के गौरव का भली भांति बोध हो जाता है। नारीत्व का चरम विकास मातृत्व में है, जो हमें गुंगिया तथा नवजात अवैध शिशु की विधवा माता अठारह वर्षीया बालिका में उपलब्ध होता है। गुंगिया ने मौसी होकर भी हुलासी का इतने स्नेह तथा प्यार से पालन किया, कि माँ भी जीवित होती तो संभवतः वैसा न कर पाती। किन्तु, विमाता को लेखिका ने हृदयहीना नारी के रूप में ही प्रस्तुत किया है। चीनी युवक की विमाता तथा बिन्दा की विमाता का व्यक्तित्व इसी का प्रमाण है।

महादेवी जी के ग्रामीण पात्र अशिक्षित भले ही हों, किन्तु प्रतिभा का अभाव उनमें नहीं है। यदि कोई प्रेरणा दे सके तो उनकी कला-मर्मज्ञता का परिचय सहज ही मिल सकता है। कुम्हार बदलू ने सरस्वती के एक चित्र को देखकर ही सुन्दर तथा सुडौल प्रतिमाएँ गढ़ना सीख लिया। इसी प्रकार महादेवी जी को चित्र बनाते देखकर लछमा ने भी प्रेरणा और प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया। ग्रामवासियों की संगीत-मर्मज्ञता का बोध ठकुरी बाबा की इन विशेषताओं से हो जाता है—"कहीं विरहा गाने का अवसर मिल जाता तो किसी के भी मचान पर बैठकर रात रात भर खेत की रखवाली करते रहते। कोई बारहमासा वाला रसिक श्रोता मिल जाता, तो उसके बैलों का सानी-पानी करने में भी हेठी न समझते। कोई आल्हा-ऊदल की कथा सुनना

[1]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ५५

चाहता, तो मीलों पैदल दौड़े चले जाते। कहीं होली का उत्सव होता, तो अपने कबीर सुनाने में भूख-प्यास भूल जाते।"[1]

महादेवी जी ने जहाँ अपने पात्रों के गुणों का वर्णन किया है, वहां उनकी दुर्बलताओं का उल्लेख करना भी नहीं भूली हैं बिबिया सर्वगुणसम्पन्ना होने पर भी जबान की जरा तेज थी और भक्तिन महादेवी जी के प्रति अमित स्नेह रखने पर भी कभी-कभी पैसे उठा लेती थी अथवा उनके लेखन-कार्य में अपनी वाचालता से बाधा उपस्थित कर देती थी। ग्रामवासियों के अन्धविश्वासों का भी लेखिका ने यत्र-तत्र उल्लेख किया है—सहुआइन द्वारा यह कहना कि दीपक को बुझा देना चाहिये, क्योंकि उसकी माता राह देखती होगी[2] अथवा लछमा द्वारा दुर्गा की प्रतिमा के सामने अपने पर कुदृष्टि डालने वालों के लिए टोटका करना[3] इसी के उदाहरण हैं।

महादेवी जी ने पात्रों की आंतरिक विशेषताओं का जितना विशद एवं मूर्त्त रूप अंकित किया है, उतना ही उनके वाह्य व्यक्तित्व (आकृति, वेषभूषा आदि) का भी सांगोपांग चित्रण किया है। उदाहरण स्वरूप मुन्नू के पिता का यह आकृति-चित्र देखिए—"मुन्नू का बाप मंझोले कद, गेहुएँ रंग और छरहरे शरीर का आदमी है। छोटे-छोटे बाल उसके सिर पर खड़े ही रहते हैं। आंखों के चारों ओर स्याह घेरे और गालों पर झाईं है, जिसके साथ मुँहासे कोढ़ में खाज की कहावत चरितार्थ करते हैं।[4]

(इ) कथनोपकथन

महादेवी जी ने पात्रों के व्यक्तित्व और उनकी जीवन-घटनाओं को अपने दृष्टिकोण से अंकित किया है। इसी प्रकार उनके भावों एवं विचारों को भी प्रायः उन्होंने अपने शब्दों में ही व्यक्त किया है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके रेखाचित्रों में संवाद-तत्त्व की सर्वथा उपेक्षा ही की गई है। उत्तर-प्रत्युत्तर-रूप वार्तालाप चाहे अत्यन्त विरल हैं, किन्तु पात्रों की स्वतन्त्र उक्तियों को प्रायः प्रत्येक रेखा-चित्र में स्थान प्राप्त हुआ है जहाँ पात्रों ने वार्त्तालाप-रूप में अपने भावों का आदान-प्रदान किया है, उन स्थलों में नाटकीयता का सजीव समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ महादेवी और भक्तिन का यह संवाद द्रष्टव्य है—"भक्तिन की वेशभूषा में गृहस्थ और वैरागी का सम्मिश्रण देखकर मैंने शंका से प्रश्न किया—"क्या तुम खाना बनाना जानती हो?" उत्तर में उसने ऊपर के ओठ को सिकोड़ और नीचे के अधर को कुछ बढ़ाकर, आश्वासन की मुद्रा के साथ कहा—"ई कउन बड़ी बात आय। रोटी बनावय जानित है, दाल राँध लेइत है, साग-भाजी छउक सकित है, अउर बाकी का रहा।"[1] एक तो भक्तिन का उपर्युक्त उत्तर ही कुछ कम रोचक नहीं है, दूसरे उसके होठों की मुद्राओं ने तो उसके स्वरूप तथा शब्दों को मानो साकार ही कर दिया है। पात्रों के वाह्य अथवा आन्तर व्यक्तित्व का चित्रण करते समय जहाँ आलोच्य लेखिका ने उनके भावों को मुखर अभिव्यक्ति दी है वहाँ भाषा-शैली में पात्रानुकूलता का भी सर्वत्र ध्यान रखा है। उन्होंने मुख्य रूप से ग्रामीण पात्रों का चित्रण किया है, अतः उनके संवादों में भी ग्राम-सुलभ तद्भव एवं देशज शब्दावली का मिश्रण है। बिबिया-सम्बन्धी रेखाचित्र में लखना अहीर, मँहगू काछी तथा खिलावन तेली की उक्तियाँ खड़ी बोली की अपेक्षा पूर्वी हिन्दी में प्रस्तुत कराई गई हैं,[2] जिससे उक्त मन्तव्य का ही समर्थन होता है। 'स्मृति की रेखाएँ' में चीनी युवक द्वारा 'सिस्टर' के स्थान पर सिस्तर का प्रयोग[3] तथा पर्वतीय कुली जंगबहादुर द्वारा 'अस्सा है मां'। 'कुछ तकलीस नहीं' कहना पात्रानुकूल शब्द-प्रयोग के सुन्दर उदाहरण हैं।[4]

(ई) देशकाल

महादेवी जी ने अपने रेखाचित्रों में ग्राम-जीवन के अत्यन्त स्वाभाविक चित्र अंकित किये हैं। ग्रामवासियों की सरलता, निश्छल स्नेह, सेवापरायणता, कर्त्तव्य-निष्ठा, सहृदयता,

[1]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ८२-८३

[2],[3]—देखिए अ स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ९१, (आ) 'अतीत के चलचित्र', पृष्ठ ११२

[4]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ४९।

[1]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ १०

[2]—देखिए 'स्मृति की रेखाएँ', पृष्ठ १०६

[3]–[4] देखिये 'स्मृति की रेखाएँ', पृष्ठ २९, ४०

उदारता, ममता आदि गुणों के अतिरिक्त उन्होंने उनके अशिक्षा अज्ञानता, रूढ़ि-प्रेम, अन्धविश्वास आदि दुर्गुणों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने उनकी व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं को भी यथा प्रसंग चित्रित किया है। नागरिक जीवन और ग्राम्य जीवन की तुलना करते हुए उन्होंने सर्वत्र ग्राम-जीवन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। उदाहरणार्थ ये उक्तियाँ देखिए—

(अ) उनका वाह्य जीवन दीन है और हमारा अन्तर्जीवन रिक्त। उस समाज में विकृतियां व्यक्तिगत हैं, पर सद्भाव सामूहिक रहते हैं। इसके विपरीत हमारी दुर्बलताएँ समष्टि-गत है, पर शक्ति वैयक्तिक मिलेगी।[1]

(आ) परमार्थ की उच्चतम भावना के साथ भी नागरिक जीवन में प्रवेश करने पर व्यक्ति को अविश्वास और सन्देह के अनेक पैने तीरों का लक्ष्य बनना पड़ता है। नागरिक जीवन का अकारण सन्देह, कर्मनिष्ठा को पंगु और उसका लक्ष्यहीन दुराव, जीवन-दर्शन को भ्रान्त कर देता है। इसके विपरीत ग्रामीण जीवन की पुस्तक खुली ही मिलती है।[1]

ठकुरी बाबा-सम्बन्धी रेखाचित्र में लेखिका ने ग्रामवासियों की धार्मिक निष्ठा का विस्तृत वर्णन करते हुए उनकी रसस्निग्ध गोष्ठियों को आडम्बरयुक्त नागरिक कवि-सम्मेलनों से अधिक सफल माना है।[2] ग्रामीण वातावरण का चित्रण करते समय उन्होंने वहाँ की सूक्ष्म तथा स्थूल सभी विशेष-ताओं की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। उदाहरणार्थ घीसा-सम्बन्धी रेखाचित्र में झूसी के खंडहर, दूर-पास बसे हुए गुड़ियों के-से बड़े घरोंदों, उनमें रहने वाली नारियों की भिन्नवर्णा चित्र-विचित्र वेशभूषा, ग्वालों और गड़रियों का जीवन-क्रम, मल्लाहों का "चुनरी त रंगाउब लाल मजीठी हो" आदि गाना—आदि दृश्यों का विस्तारपूर्वक चित्रण कर लेखिका ने मानो वर्ण्य को मूर्तरूप प्रदान कर दिया है।[3] लेखिका ने ग्रामवासियों के घरों की आन्तरिक व्यवस्था का भी प्रायः स्वाभाविक चित्रण किया है। बदलू

[1]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ९५

[2]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ १२५।

[3]—देखिए स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ९२-९४।

[4]—देखिए 'अतीत के चलचित्र', पृष्ठ ६३-६५।

कुम्हार की कोठरी में व्याप्त धुंआ, पिंडोर से पुती और दीमकों से भरी दीवार, घर के बीच में पड़ी झूले-जैसी ढीली खटिया आदि का उल्लेख इस प्रसंग में द्रष्टव्य है।[1] ग्राम-जीवन का यथातथ्य चित्रण करके उन्होंने लोकानुभूति का जिस विदग्धता से परिचय दिया है, कवयित्री होने के नाते पर्वत-श्रेणियों पर बसे हुए ग्रामों में जीवन की करुणा और प्रकृति—श्री का यह समन्वित चित्रण देखिए—"एक ओर श्वेत शतदल की पंखड़ियों की तरह कुछ खुली कुछ बन्द, कहीं स्पष्ट, कहीं अलक्ष्य पर्वत-श्रेणियों और दूसरी ओर कहीं हरितदल से फैले खेत और कहीं गली चाँदी जैसे स्रोतों के बीच में जो जीवन गतिशील है, उसे देखकर प्रसन्नता से अधिक करुणा आती है।[2] इसी प्रकार "लछमा" शीर्षक रेखाचित्र में भी पर्वत की प्रकृति-श्री का सजग निरूपण हुआ है। तथापि यह उल्लेखनीय है कि महादेवी जी ने अपने रेखाचित्रों में प्रकृति-चित्रण को गौण स्थान दिया है और प्रायः मानव-जीवन की विविधताओं का चित्रण करते समय प्रसंगवश प्रकृति-चित्रण किया है।

महादेवी जी ने अपने रेखाचित्रों में निम्नलिखित सामाजिक समस्याओं को स्थान दिया है—विमाता का दुर्व्यवहार, अकाल वैधव्य, बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के दुष्परिणाम, अवैध मातृत्व, वेश्या-विवाह का समाज द्वारा घोर विरोध चरित्र-भ्रष्ट पति के साथ जीवन-यापन की समस्या, सपत्नी की समस्या आदि। यद्यपि उन्होंने बिन्दा, बिट्टो, सबिया, बूटा, बिबिया आदि पात्राओं का आधार लेकर उक्त सम-स्याओं का व्यक्तिगत स्वरूप प्रस्तुत किया है, तथापि उनमें व्यापक यथार्थ के दर्शन होते हैं। उपर्युक्त सामाजिक रूढ़ियों के फलस्वरूप नारी-जाति का निर्बाध शोषण होता रहता है, किन्तु पुरुष सदैव स्वच्छन्द एवं निर्द्वन्द्व रहता है। तप, संयम नियम, दन्ड विधान सब नारी के लिये हैं, पुरुषों का तो यह जन्मसिद्धि अधिकार है कि वे नारी के साथ अन्याय करें। लेखिका ने इस तथ्य की ओर अनेक बार इंगित किया है कि नारी-समाज अपनी समस्याओं के लिए स्वयं उत्तरदायी है, क्योंकि उनमें पारस्परिक सौहार्द की अपेक्षा

[1]—देखिए 'अतीत के चलचित्र, पृष्ठ ९९।

[2] स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ३६।

ईर्ष्या-द्वेष की प्रधानता रहती है। उदाहरणार्थ बिबिया और लछमा-सम्बन्धी रेखाचित्रों से क्रमशः ये उक्तियां द्रष्टव्य है —

अ) "झनकू को पति का कर्तव्य सिखाने के लिये कभी एक पंच-देवता भी आविर्भूत नहीं हुये, पर बिबिया को कर्तव्य-च्युत होने का दण्ड देने के लिये उनकी पंचायत बैठी[1]।"

आ "एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहतीं।"[2]

(उ) उद्देश्य

महादेवी जी ने अपने जीवन के मार्मिक अनुभूति-चित्रों को साकार रूप देने के उद्देश्य से प्रस्तुत रेखाचित्रों का प्रणयन किया है। निश्छल तथा निरीह ग्राम-वासी, कुली, धोबी, सेवक, भंगिन आदि निम्नवर्ग के कतिपय पात्र उनकी ममता के विशेष अधिकारी रहे हैं और उनकी चारित्रिक सूक्ष्मताओं और समस्याओं का उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक संवेदनशील चित्रण किया है। इन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि निम्नवर्गीय अशिक्षित व्यक्तियों में निश्छल स्नेह, सेवापरायणता, कर्मठता, निष्काम कर्म-भावना, सहनशीलता आदि उदात्त विशेषताएँ जिस भाँति सहज प्राप्य हैं, अभिजात वर्ग के कृत्रिम तथा दम्भपूर्ण जीवन में उनकी उपलब्धि उस रूप में दुर्लभ है। इस वर्ग की नारियों को सामाजिक कुरीतियों तथा पुरुष जाति की हृदयहीनता के कारण कितना सहना पड़ता है, लेखिका ने इसके अनेक करुण-मार्मिक चित्र अंकित किए हैं। एक ओर पुरुष की स्वार्थपरता तथा उच्छृङ्खल वृत्ति ने नारी का शोषण किया है तो दूसरी ओर बाल-विवाह, अकाल वैधव्य के कठोर संयम नियम, वृद्ध-विवाह आदि ने उसे कहीं का न रखा है। इसी प्रकार की अनेक व्यक्तिगत एवं पारिवारिक यन्त्रणाओं से गुजर कर भी नारी ममता, सेवा तथा सहानुभूति का निष्काम दान करती आई है—उसका प्रतिपादन इन रेखाचित्रों का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है।

[1]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ११४

[2]—अतीत के चलचित्र; पृष्ठ १९३

महादेवी जी ने अपनी कृतियों में कल्पना के अतिरंजित चित्रों अथवा आदर्श की पूर्वाग्रहयुक्त स्थापना की अपेक्षा जीवन के यथातथ्य चित्रण पर बल दिया है। जीवन की विविध समस्याओं और उनसे सम्बद्ध पात्रों से पाठकों का साधारणीकरण उनका सहज लक्ष्य है। उदाहरणार्थ उनकी यह उक्ति देखिये—"उनसे पाठकों का सस्ता मनोरञ्जन हो सके, ऐसी कामना करके मैं इन क्षत-विक्षत जीवनों को खिलौनों की हाट में नहीं रखना चाहती। यदि इन अधूरी रेखाओं और धुँधले रंगों की समष्टि में किसी को अपनी छाया की एक रेखा भी मिल सके, तो यह सफल है।"[1] इस उद्देश्य के निर्वाह में उन्हें वांछित सफलता मिली है, यह असन्दिग्ध है।

(ऊ) भाषा-शैली

महादेवी जी ने अपने रेखाचित्रों में गम्भीर साहित्यिक शब्दावली का प्रयोग किया है। ग्राम्य वातावरण का चित्रण करने के कारण उनकी भाषा में अनेक देशज शब्दों को स्थान प्राप्त हुआ है। घुघरी, गोंदरा, बांमनी, पथरौठी, बरेठिन आदि शब्द[2] इसके उदाहरण हैं। गठियाना, धकियाना, बीनलाना आदि क्रिया-रूप भी भाषा की व्यावहारिक सहजता को प्रकट करते हैं[3]। इसी प्रकार लेखा-जोखा, लिपे-पुते, माँग-जाँच, भेंट-अंकवार टोने-टोटके[4] नहाने-धोने, बची-खुची, कल्याण-कामना, धूल-धूसरित[5] आदि शब्द-युग्मों ने भी भाषा को पर्याप्त मात्रा में सौष्ठव प्रदान किया है। इनके अतिरिक्त लेखिका ने अनेक स्थानों पर अंग्रेजी-शब्दों को देवनागरी लिपि में रूपान्तरित करके

[1]—अतीत के चलचित्र, अपनी बात, पृष्ठ २

[2]—देखिए 'स्मृति की रेखाएँ', पृष्ट ७, १६, ६३, ८३, ९८

[3]—देखिए, 'स्मृति की रेखाएँ' पृष्ठ ८, ३३, ५६

[4]—देखिए 'स्मृति की रेखाएँ' पृष्ठ ३१, ४८, ५२, १२३, १३१

[5]—देखिए 'अतीत के चलचित्र' पृष्ठ ४३, ४७, ५३, ९९

प्रयुक्त किया है। टाइफाइड, इन्लार्जमेंट,[१] सीजन, प्रोग्राम, हिप्नोटाइज[२] आदि शब्द इसके उदाहरण हैं। भाषा में सजीवता लाने के लिए उन्होंने लोकोक्तियों का भी प्रचुर प्रयोग किया है।[३] ग्रामीण पात्रों की उक्तियों में तद्भव शब्दों को विशेष रूप से स्थान प्राप्त हुआ है उदाहरणार्थ ठकुरी बाबा-सम्बन्धी रेखाचित्र में भक्तिन द्वारा 'उमिर' 'धरम', 'समापत', 'परतिग्या' आदि तद्भव शब्द-रूपों का प्रयोग देखिए—''कल्पवास की उमिर आई तब उहौ हुइ जाई। का एकै दिन सब नेम-धरम समापत करै की परतिग्या है।[४]
भाषागत शब्द-वैविध्य के अतिरिक्त महादेवी जी शैली—सम्बन्धी विविधता की ओर भी जागरूक रही हैं। वर्णनात्मक शैली में नूतनता एवं रोचकता लाने के लिए उन्होंने उसमें अनेकशः व्यंग्य तथा हास्य के चुटीलेपन, सूक्ति शैली के गाम्भीर्य और उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकरण-सामग्री का सुन्दर सम्मिश्रण किया है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित उद्धरण देखिये –

(अ) व्यंग्य शैली

''बूढ़े को अपनी बुद्धि पर भी कम गर्व नहीं। नालायक लड़के से लायक बहू का सम्बन्ध न कर उसने प्रमाणित कर दिया है कि वह बूढ़े विधाता के जोड़ का ही खिलाड़ी है, रत्ती-माशा भर भी बुद्धि में कम नहीं है।''[५]

(आ) सूक्ति शैली

''भाव यदि मनुष्य की क्षुद्रता, दुर्भावना और विकृतियाँ नहीं बहा पाता, तब वह उसकी दुर्बलता बन जाता है। इसी से स्नेह, करुणा आदि के भाव हृदय की शक्ति बन सकते हैं और द्वेष, क्रोध आदि के दुर्भाव उसे और अधिक दुर्बल स्थिति में छोड़ जाते हैं।''[६]

[१,२] देखिए (अ) 'अतीत के चलचित्र', पृष्ठ ७५,
(आ) देखिए 'स्मृति की रेखाएँ', पृष्ठ ४३, ५०, ७५

[३]—देखिए 'स्मृति की रेखाएँ', पृष्ठ ९, ४४, ४९, ५१, ५२, ५७

[४]—'स्मृति की रेखाएँ', पृष्ठ ६८

[५,६]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ५४, ९३-९४।

(इ) आलंकारिक शैली

''पृथ्वी के उच्छ्वास के समान उठते हुए धुंधलेपन में वे कच्चे घर आकण्ठ मग्न हो गए थे।''[१]

(ई) चित्र-शैली

''एक की आँखें माड़े से धुंधली, नाक ठुड्डी पर झुकी हुई और मुख के भाव में एक करुण उदासीनता थी। पर कानों को धोती से बाहर निकाले और ओठों को खोलती बन्द करती हुई दूसरी अपनी छोटी काली आँखों को घुमाकर तथा छोटी नाक के गोल नथनों को फुलाकर मानो चारों ओर बिखरे हुए रूप-रस-गन्ध की खोज-खबर ले रही थी।''[२]

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि महादेवी जी ने काव्य-क्षेत्र की भाँति कथा-क्षेत्र में भी उच्चकोटि की प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके रेखाचित्र लोक-दर्शन की सहजता, चिन्तन की प्रखरता, समस्याओं की विविधता, युग-धर्म की सजगता और कथा-विन्यास की स्वाभाविकता की दृष्टि से अप्रतिभ बन पड़े हैं। अपने परिचय में आने वाले पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं अथवा दुर्बलताओं का संस्मरणात्मक रूप में उल्लेख उनका मुख्य साध्य है। चरित्र-चित्रण में उन्हें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है, क्योंकि उन्होंने पात्रों के क्रियाकलाप और मनोभावों का मनोविश्लेषणात्मक निरूपण तो किया ही है, वर्णन-शैली में अभिनयात्मक संस्पर्श लाने के लिए उनकी आकृति वेशभूषा, चेष्टादि का भी सूक्ष्म चित्रण किया है। ग्राम-जीवन, नगर-जीवन और प्रकृति सौन्दर्य के वर्णन के प्रसंग में उन्होंने वातावरण के भी सूक्ष्म-सजीव चित्र अंकित किए हैं। जीवन के यथार्थ का संवेदनामूलक चित्रण उनका मूल अभीष्ट है, जिसमें उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। इसी प्रकार शब्द-सम्पदा, मुहावरे-लोकोक्तियों की सजीवता, मौलिक और रूढ़ उपमानों, व्यंग्य शैली की प्रखरता आदि गुणों की योजना कर उन्होंने अभिव्यंजना-शैली की प्रौढ़ता का भी सर्वत्र एक-जैसी सफलता के साथ परिचय दिया है। सत्य तो यह है कि हिन्दी में रेखाचित्र-लेखन-कला में जो सिद्धि उन्हें प्राप्त हुई है, वह अन्य लेखक-लेखिकाओं के लिए प्रायः दुर्लभ रही है।

---

[१]—अतीत के चलचित्र, पृष्ठ ७२।

[२]—स्मृति की रेखाएँ, पृष्ठ ७५।

महादेवी वर्मा की भाषा का स्वरूप

डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

सार्थक शब्द-समूह का अर्थवान् रूप ही 'भाषा' कहलाता है। स्फोट का मूल सत्य ही वैयाकरणों की पारिभाषिक शब्दावली में 'शब्द-तत्त्व' अथवा शब्द-ब्रह्म के नाम से पुकारा जाता है।

आधुनिक विज्ञान कहता है कि पृथ्वी के प्रत्येक पदार्थ में स्फोट (किरण-प्रवाह) होता रहता है। मनुष्य में भी वैसा ही स्फोट है अर्थात् मानव-मस्तिष्क प्रतिक्षण किरण-प्रवाह संचारित करता रहता है।[1]

वैयाकरण जिस मूल तत्त्व को शब्द ब्रह्म कहते हैं, उसे ही वेदों में 'मेधा' तत्त्व के नाम से अभिव्यक्त किया गया है। उस मेधा तत्त्व की उपासना समस्त देवगण तथा पितृगण करते रहते हैं। वैदिक ऋषि कहता है

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने! मेधाविन कुरु स्वाहा।

(यजु० ३२/१४)

वैयाकरणों का शब्द-ब्रह्म ही ऋग्वेद का शब्द-वृषभ है। इसे ही शब्द-महादेव भी कहा गया है। ऋग्वेद में उस शब्द-वृषभ के सम्बन्ध में निम्नाँकित विवरण दिया गया है—

"चत्वारि शृङ्गाँ, त्रयो अस्य पादाँ, द्वे शीर्षे, सप्त हस्ता सोऽस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो, रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश।"

—(ऋक्० ४/५८/३)

वैयाकरण पतञ्जलि ने उक्त मन्त्र का अर्थ इस प्रकार समझाया है—उस शब्द-वृषभ के चार सींग (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) और तीन पाँव (भूत, वर्तमान और भविष्य) हैं। वह दो शिर (नित्य और अनित्य) और सात हाथ (सात विभक्तियां) रखता है। वह शब्द-वृषभ तीन स्थानों (छाती, कण्ठ और शिर) पर बँधा हुआ है। ऐसा वह बृषभ आवाज करता है और वह महादेव रूप शब्द पुरुष मनुष्यों में प्रवेश करता है।

वस्तुतः वही शब्द-पुरुष तो वैयाकरणों की पारिभाषिक शब्दावली में 'परा' पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नाम से विख्यात है। वही प्रत्येक अणु अथवा प्रत्येक पद में व्याप्त रहता है; इसीलिए महावैयाकरण पाणिनि की भाषा में उसे 'प्रातिपदिक' कहा गया है।

जहाँ 'शब्द' है, वहाँ 'अर्थ' है। वास्तव में वे एक ही आत्मा के दो स्वरूप हैं—एक का नाम 'शब्द तत्त्व' और दूसरे का नाम 'अर्थ तत्त्व' है। ये दो पृथक्-पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं।

उपर्युक्त चारों वाणियों (परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी) में श्रवण का विषय वैखरी ही है। देह और इन्द्रिय-समूह को 'विखर' कहते हैं। 'विखर' से उत्पन्न होने के कारण ही वह वाणी 'वैखरी'[1] कहाती है। अतः हमारा प्रतिपाद्य सुश्री महादेवी वर्मा की लिपिबद्ध 'वैखरी' भाषा का स्वरूप-वर्णन ही है।

वैज्ञानिक दृष्टि से 'वाक्य' ही भाषा है। वैयाकरण पूर्ण वाक्य को ही शब्द कहते हैं। भाषा को सकारता तथा स्थिरता प्रदान करने की दृष्टि से उसे लिपि के कलेवर में प्रतिष्ठापित किया जाता है। देवनागरी लिपि के कलेवर में साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी भाषा का स्वरूप शुभश्री महा-

[1]—देखिए, डा० कपिलदेव, अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन, हि० एकेडेमी, इलाहाबाद।

[1]—"विखर इति देहेन्द्रिय संघात उच्यते, तत्र भवा वैखरी"
—जयन्त, न्यायमंजरी

देवी वर्मा की लेखनी से किस प्रकार चित्रित हुआ है, यही हमें इस लेख के अन्तर्गत स्पष्ट करना है।

भाषा वाक्यों से, वाक्य पदों से और पद शब्दों अर्थात् प्रतिपादकों से बना करते हैं। शब्दों से हमारा तात्पर्य सार्थक शब्दों से ही है। भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से शब्द-समूह मुख्य रूप से पाँच प्रकार के होते हैं—(१) तत्सम (२) तद्भव (३) देशी (४) विदेशी (५) देशज।

तत्सम से तात्पर्य है 'संस्कृत सम'। कहने का मंतव्य यह है कि 'तत्सम' वे शब्द हैं जो संस्कृत से सीधे अक्षुण्णावस्था में हिन्दी में आ गये हैं; जैसे **कृष्ण नासिका, कण्ठ**[1] आदि। शुभश्री महादेवी जी की कविताओं तथा गद्यों में तत्सम शब्दों का प्रयोग ही अधिकांश में मिलता है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि महादेवी जी अपनी भाषा में लक्षणा और व्यंजना का आश्रय लेकर ही चलती हैं; अभिधा का पल्ला तो वे बहुत कम पकड़ती हैं। उनकी कविता-पुस्तकों को रचनाकाल-क्रम की दृष्टि से शब्द-शक्तियों की कसौटी पर कसा जाए तो यही कहा जा सकता है कि उनकी लक्षणामूलक भाषा क्रमशः कठिन से कठिनतर होती चली गई है। 'नीहार' में वे जितनी सरल एवं सुस्पष्ट दिखाई देती हैं, उतनी 'रश्मि' और 'नीरजा' में नहीं। फिर 'सान्ध्य-गीत', 'दीपशिखा' और 'यामा' में तो उनकी भाषा पर्याप्त क्लिष्ट हो गई है। उस क्लिष्टता का कारण उनकी दार्शनिकता, चिन्तन एवं रहस्यवादी अभिव्यंजना भी है सौन्दर्य अथवा भाव की अभिव्यक्ति जहाँ सूक्ष्म एवं अशरीरी प्रतीकों अथवा उपमानों के माध्यम से हुई है, वहीं भाषा की अर्थरूपा आत्मा का दर्शन प्रायः दुर्लभ है। उन कविताओं का रस पाठकों के लिए नारियल के रस के समान बन जाता है। देखिये, कवयित्री की भाषा 'नीहार' से 'यामा में कितनी भिन्न है -

> **"जो तुम आ जाते एक बार।**
> **कितनी करुणा, कितने संदेश,**
> **पथ में बिछ जाते बन पराग।**
> **गाता प्राणों का तार तार,**
> **अनुराग भरा उन्माद राग॥**
> **आँसू लेते वे पद पखार,**
> **आँखें देतीं सर्वस्व वार॥१॥**
> **हँस उठते पल में आर्द्र नयन,**
> **धुल जाता अधरों से विषाद।**
> **छा जाता जीवन में वसन्त,**
> **लुटजाता चिर संचित विराग॥**
> **आँसू लेते वे पद पखार॥२॥"**
>
> —('नीहार' से)

● ● ●

> **"प्रिय पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं।**
> **ओढ़े मेरी छाँह रात देती उजियाला;**
> **रजकण मृदु पद चूम हुए मुकुलों की माला।**
> **मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं॥१॥**
> **आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा;**
> **विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।**
> **खोना पाना हुआ जीत वे हारे ही हैं।२॥**
>
> —('यामा' से)

संस्कृत के शब्दों से विकसित शब्द 'तद्भव' कहलाते हैं; जैसे **कान, गाँव**[1] आदि जो शब्द हिन्दी में भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं से आये हैं वे 'देशी' कहे जाते हैं 'गल्प' शब्द बँगला से हिन्दी में लिया गया है। अतः 'गल्प' हिन्दी में 'देशी' पुकारा जायगा। अरबी, फारसी, तुर्की, अंगरेजी, पुर्तगाली आदि विदेशी भाषाओं से हिन्दी में आये हुए शब्द 'विदेशी' पुकारे जाते हैं और जो आधुनिक समय की बोल-चाल में स्वतः विकसित हुए हैं, उन्हें 'देशज' कहा जाता है। 'किताब' शब्द विदेशी है और 'पेड़' देशज है।

यदि हम शुभश्री महादेवी जी की कविता-पुस्तकों तथा गद्यपुस्तकों का अवलोकन करते हैं तो उनकी रचनाओं में विदेशी और देशज शब्द बहुत ही कम पाये जाते हैं।

सुवर्णयोगी शब्द-संयोजना को यदि उनकी कविताओं में देखा जाए तो पाठकों को पता चलेगा कि वे माधुर्य गुण को सफलता पूर्वक अभिव्यक्त करने में कारयित्री प्रतिभा रखती हैं। उनकी वेदनामयी करुणा के लिये माधुर्य गुण परम उपयुक्त भी है। आचार्य मम्मट ने 'काव्य प्रकाश'

---

[1]—सं० कृष्ण, हिं० कृष्ण। सं० नासिका, हिं० नासिका। सं० कण्ठ, हिं० कण्ठ।

[1]—सं० कर्ण, प्रा० कण्ण, हिं० काम। सं० ग्राम, प्रा० ग्राम, हिं० गाँव।

(सूत्र ९०) में बताया है कि माधुर्य गुण करुण, विप्रलंभ शृंगार और शान्तरस के प्रकरण में चित्त विगलित कर देने के कारण उत्कर्ष को प्राप्त होता है। सारे स्पर्श वर्ण (क से म तक माधुर्य गुण के सूचक हैं। शब्द समास रहित हों तो वह शब्द रचना माधुर्य गुण-व्यंजिका समझी जाती है; जैसे—

"विकसते मुरझाने को फूल,
उदय होता छिपने को चन्द।
शून्य होने को बढ़ते मेघ,
दीप जलता होने को मन्द।"

महादेवी जी की गद्य-भाषा का स्वरूप 'अतीत के चलचित्र' और 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक पुस्तकों में देखा जा सकता है। इन पुस्तकों को लिखकर उन्होंने गद्य शैली के क्षेत्र में नवीन कला का प्रवर्तन किया है। उनका गद्य वस्तुतः शुद्ध एवं प्रवाह पूर्ण है। वे चित्रकर्त्री हैं; अतः उनका गद्य आलंकारिक होने के साथ-साथ चित्र बहुल भी है; किन्तु घनीभूत मानवीय संवेदना जहाँ वाक्य के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है, वहाँ अनुच्छेदों के वाक्य प्रायः संयुक्त और मिश्र ही बनते चले गये हैं। उस समय उनके गद्य में साधारण वाक्यों के दर्शन कम ही मिलते हैं।

जिस वाक्य में समापिका क्रिया केवल एक होती है, उसे साधारण वाक्य कहते हैं। जिस वाक्य में एक प्रधान उप वाक्य हो और उसके आश्रित उपवाक्य एक या एक से अधिक हों तो वह 'मिश्र वाक्य' कहलाता है। जब किसी वाक्य में दो या दो से अधिक प्रधान उपवाक्य हों और वे एक-दूसरे के समानपदी हों तो वह 'संयुक्त वाक्य' कहलाता है।

मिश्र वाक्य का उदाहरण—

"परन्तु भिखारी के सम्बन्ध में मेरे संस्कार कुछ ऐसी तर्कहीनता तक पहुंच चुके हैं जहाँ से अन्धविश्वास की सीमा-रेखा दूर नहीं रह जाती।"

—'अलोपी' शीर्षक से

● ● ●

संयुक्त वाक्य का उदाहरण—

"बिंदा के अपराध तो मेरे लिए अज्ञात थे, पर पंडिताइन चाची के न्यायालय से मिलने वाले दंड के सब रूपों से मैं परिचित हो चुकी थी।"

—'एक रेखाचित्र' शीर्षक से

अपने रेखाचित्रों में तथा संस्मरणों में महादेवी जी स्वाभाविकता लाने के लिए पात्र विशेष से उसकी जनपदीय बोली में भी बुलावती हैं। जैसे—

विश्वास भरे कण्ठ से उत्तर देती है—"तुम पचै का का बताई—यहै पचास बरिस से संग रहित है।"

—('भक्तिन' शीर्षक से)

● ● ●

इतना ही नहीं, महादेवी जी के गद्य में वाक्य कहीं-कहीं सीमातीत रूप से पर्याप्त लम्बे हो जाते हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित वाक्य प्रस्तुत किया जा सकता है—

"छोटे कद और दुबले शरीर वाली भक्तिन अपने पतले ओठों के कोनों में दृढ़ संकल्प और छोटी आँखों में एक विचित्र समझदारी लेकर जिस दिन पहले पहल मेरे पास आ उपस्थित हुई थी तब से आज तक एक युग का समय बीत चुका है, पर जब कोई जिज्ञासु उससे इस सम्बन्ध में प्रश्न कर बैठता है तब वह पलकों को आधी पुतलियों तक गिराकर और चिन्तन की मुद्रा में ठुड्ढी को कुछ ऊपर उठाकर विश्वास भरे कण्ठ से उत्तर देती है—तुम पचै का-का बताई—यहै पचास बरिस से संग रहित है।"

—('भक्तिन' शीर्षक से)

महादेवी जी को हम शुद्धिवादियों में स्थान दे सकते हैं, क्योंकि विदेशी शब्दों के लिखने में वे उनके वास्तविक उच्चारण की रक्षा करने से दृष्टिकोण से उनके नीचे बिन्दी अवश्य लगा देती हैं। जैसे 'क़द' 'नाराज़' इत्यादि। ये दोनों शब्द क्रमशः अरबी तथा फारसी के हैं और शुद्धोच्चारण सहित हैं।

अन्त में निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि शुभश्री महादेवी वर्मा का स्थान गद्यकारों में उच्च है। वे तत्समतामयी उत्कृष्ट एवं प्रांजल हिन्दी गद्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध शैलीकार हैं। संस्कृत शब्दमयी कविता में वे प्रतीकवादी शैली अपनाती हैं।

महादेवी की रचनाओं में प्रवाहित स्नेहसलिल की धारा

अन्नपूर्णा ताँगड़ी

"स्नेह ही मनुष्यता के मन्दिर
का एक मात्र देवता है।"

—महादेवी

महादेवी ने काव्य के विभिन्न क्षेत्रों, कहानियों, संस्मरणात्मक रेखाचित्रों और निबन्धों के द्वारा हिन्दी जगत् में जो लोकोत्तर प्रतिभा दिखाई है और अनुपम ख्याति पाई है वह हिन्दी संसार में छिपी नहीं है। उसकी विवेचना करना मेरा ध्येय भी नहीं है। कुछ ने उन्हें एक जटिल दार्शनिक के रूप में देखा, कुछ उन्हें करुणामयी के रूप में देखते हैं। कुछ के हृदयों को उनके गीतकाव्य झंकरित कर देते हैं और कुछ उनकी करुणा से इतने करुणाप्लावित हो जाते हैं कि संसार की सुध बुध भूल निश्चय से बैठ जाते हैं और निरंतर अश्रुपात या मूक मानस से दूसरों को भी करुणाप्लावित कर देते हैं। वज्र हृदय भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। पशु पक्षी भी मूक रुदन करते हैं। उस समय याद आ जाती हैं भवभूति की ये पंक्तियाँ:—

एते, रुदन्ति हरिणाः हरितं विमुच्य।
हंसाश्च शोक विधुरा करुणा वदन्ति।

और कहीं पर उनके छायावाद के जाल में पड़कर हम वाह्य जगत् के अस्तित्व को सहसा ही विस्मृत कर बैठते हैं किंतु यहाँ पर न मुझे उनके काव्य के विभिन्न अंगों की विवेचना करनी है न उनके सम्पूर्ण कार्य का विश्लेषण। मैं तो यहाँ पर केवल अपनी निजी भावनाओं को जो उनके व्यक्तित्व के विषय में बनी है, यहाँ पर थोड़े से शब्दों में लिखूँगी।

आज से लगभग अट्ठारह वर्ष पूर्व लखनऊ के नरही के छोटे से मुहल्ले में एक छोटे से मकान में मेरा उनका साक्षात्कार हुआ था। स्वयं भी उस समय मैं साहित्य क्षेत्र से इतना परिचित न थी और हिन्दी साहित्य से तो बिल्कुल नहीं। केवल उनका नाम और यश सुना था। साहित्य पढ़ने का भी उस समय तक अवसर न मिला था। वह आ रही हैं, सुनकर ही एक उत्कट लालसा से प्रेरित होकर उनके दर्शनार्थ गई और उस समय उन्हें देखकर जो छाप मेरे मानस पर पड़ी, वह अमिट है। न मैंने उस समय कवयित्री के रूप से देखा, न दार्शनिक अथवा लेखिका के। मां की नाई ममता से पूर्ण ही मुझे वह प्रतीत हुईं और ऐसा भास हुआ कि स्नेह के अजस्र स्रोत उनके चहुं ओर बह रहा है या यह कहिये कि स्नेह की साक्षात् मूर्ति थीं। आज भी वही भाव सर्वोपरि है और जब भी उनकी कृतियां पढ़ती हूँ, स्नेह को प्रकट करने वाली ही पंक्तियों पर रुक जाती हूं। उनके हृदय के स्नेह की परिधि इन पंक्तियों से आंकिए—

जिसको अनुराग सा दान दिया।
उसमें कण माँग लजाता नहीं॥
अपना पल भूल समाधि लगा।
यह पी का विहाग भुलाता नहीं॥
नभ देख पयोधर श्याम घिरा।
मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं।
वह कौन साथी है पपीहरा तेरा॥
जिसे बाँध हृदय में लगाता नहीं।

नभ देख पयोधर श्याम घिरा, मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं—स्नेह की पराकाष्ठा है। कवयित्री का हृदय स्वयं स्नेहासिक्त है और वह यह अनुभूति करती है कि स्नेही जन अपने प्रिय से भिन्न रह ही नहीं सकता। उसमें मिलकर

अपनी अलग सत्ता को मिटाकर ही चरम आनन्द की प्राप्ति होती है। इसीलिये ये शब्द निसृत हैं उनके मुख से, 'मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं।' और कौन सा अनोखा प्रिय तेरा है जो तेरे स्नेह-बन्धन से बँधकर हृदय में नहीं लगता। स्नेह-बन्धन तो ऐसे हैं जो दूरस्थ रहने वाले व्यक्ति को अवश्य तेरे पास खींचकर तेरे हृदय से लगा देंगे। अतः मिलन के लिए आवश्यकीय यह है कि अपनापन विस्मृत कर उसके स्नेह से विभोर हो समाधिष्ठ की नाईं अपने स्नेही से आत्मसात करो यही स्नेह और भक्ति की चरम सीमा है स्नेह से ओतप्रोत हृदय ही ये शब्द कह सकते हैं। यह है महादेवी जी की सार्वभौम शाश्वत स्नेहमयी भावना।

पुनः युग से थी प्रिय की मूक वीन,
थे तार शिथिल कम्पन विहीन,
मैंने हुत उनकी नींद छीन,
सूनापन कर डाला क्षण में,
नव झंकारों से करुणा मधुर,
जग करुण-करुण, मैं मधुर मधुर।

युगों से प्रिय की जो वीणा शब्द हीन, मूक और शिथिल थी मैंने क्षण भर में उसकी शिथिलता, मूकता हरण कर अपनी मधुरिमा, स्नेह और समता से मुखरित कर दी अपने प्रिय के सोये हुये सपने अपने स्नेह से जगाकर उसकी हृदवीना को झंकरित कर दिया।

पुनः स्नेहमयी कवयित्री के द्वारा ही यह पंक्तियाँ लिखी जा सकती हैं:—

जिसको पथ शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जर गह्वर।
प्रिय कैसे देशों के वाहक,
मैं सुख-दुख मेटूंगी भुज भर।
मेरी लघु पलकों से छलकी,
इस कण-कण में ममता बिखरी।

उनके हृदय के सुप्त स्नेह से ओत-प्रोत भावनाओं से इन पंक्तियों को आँकिये। संसार में अपने प्रियतम के द्वारा दिये हुए सुख-दुखों से वह भयभीत नहीं हैं। न सांसारिक यातनाओं से बचने के उद्देश्य से वह कहीं भागना चाहती हैं। स्नेह और ममता का हृदय लेकर वह इन दुखों का सामना करेंगी और अपने अमर स्नेह से उसे भोग कर अपने स्नेह की प्रचुर वर्षा कण-कण पर कर देंगी। इतना अथाह स्नेह का श्रोत छिपा है उनके हृदय में कि सम्पूर्ण वसुधा का दुख अपने में समेट कर सबको स्नेह दिल हृदय से स्नेहा-सिक्त कर देगी।

केवल उनके काव्य जगत में ही उनकी स्नेहातुरता नहीं झलकती अपितु उनके दैनिक व्यवहारों में भी स्नेहाधिक्य और ममता की झलक है। फागुन की एक गुलाबी संध्या को एक वृद्ध आगन्तुक का अपने घर में आगमन सुन क्रूर तथा मिलने की हठ और आग्रह जानकर अपनी कविता की एक पंक्ति ही लिखकर खोजते हुए वह मिलने बाहर जाती हैं। वृद्ध उनसे प्रार्थना करता है कि उसकी पोती उनसे मिलने को उत्सुक है। महादेवी जी विस्मय से उसे देखती हैं और मन में यह विचार कर कि सम्भवतः यह वृद्ध बाहर से आया है तभी यह नहीं जानता कि सरलता से मैं बाहर नहीं जाती, पूछती हैं, "क्या आपकी पोती यहाँ नहीं आ सकती? वृद्ध उनके शब्दों को सुनकर आँखों में अश्रु भर लाया और कुछ न बोला। महादेवी जी सोचती हैं सम्भवतः उसकी पोती गम्भीर रोग से पीड़ित और मरणासन्न है—किन्तु मैं तो कोई डाक्टर या वैद्य नहीं। किन्तु उसके अश्रु ने उनके स्नेहार्द्र हृदय को इतना आन्दो-लित और प्रभावित कर दिया कि समय और स्थिति का विचार किये बिना निकल गया उनके मुख से, "चलिये" और उस वृद्ध के साथ उसके घर जाकर अन्त में उन्हें मालूम हुआ कि उनकी गुण-गरिमा और सहृदयता को सुन कर एक अट्ठारह वर्ष की असहाय समाज से दलित बालिका ने बुलाया है, जो संसार के अभिशाप से माता बन गयी है, लेकिन अब पुत्र कह कर उसके हृदय के टुकड़े को कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उनको देखते ही क्रन्दन करती हुयी वह निरीह बालिका उनके चरणों पर गिर पड़ी और उनसे विनय करने लगी कि वह अपने बच्चे को अपने से विलग नहीं करना चाहती। माँ का अक्षय कवच धारण कर के वह उसे स्वीकार कर लें, पुत्री के रूप में, और भविष्य में जब तक वह कोई अन्य अपराध न करे अपनी शरण में रखें। उसकी करुण गाथा सुनकर क्षण भर उन्होंने कुछ सोचा और मनन किया और सत्ताइस वर्ष की अवस्था में ही समाज को चुनौती दे, युवती होते हुए भी,

समाज की दृष्टि से हेय, वासनासक्त उस अठारह वर्ष की बालिका को तथा बाइस दिन के नाती को स्वीकार कर लिया और करतीं भी कैसे नहीं। उनके हृदय में तो स्नेह का राज्य था, जो न संसार की कटूक्तियों से, न मानवीय अत्याचारों से और न मनुष्य कृत्त अपराधों से प्रभावित हो सकता है। उस स्नेह के राज्य में पतितों, असहायों, तथा पीड़ितों को ही तो शरण मिलती थी। क्या स्वार्थपरायण, भीरु, वात्सल्यहीन हृदय इस कोमल अवस्था में यह दृढ़ कदम उठा सकता था। स्नेहार्द्र हृदय ही दूसरों की पीड़ा को देख कर घोर अग्नि में कूद सकता है और बड़े बड़े झझावत कर हँसते २ सामना कर सकता है।

पुनश्च बिंदनी बहू, जिससे बचपन में उनका साक्षात्कार हुआ था, जो कि उनके मकान के पास ही रहने वाले एक वृद्ध सेठ की बहू थी, कभी उन्हें विस्मरण न हो सकेगी। वह बाल-विधवा थी। ससुर की निगरानी में रहते हुये, संसार से अबोध, अपनी बाल सखी महादेवी को बनाकर अपना समय हँस कर व्यतीत कर देती थी। युवावस्था में होने के कारण, रंगों के प्रति थी एक आसक्ति उसके हृदय में। एक तीज के दिवस खेल-खेल में ही ओढ़ा दी उसे एक ओढ़नी विविध रङ्ग की जिसे महादेवी ने स्वयं काढ़ा था। बूढ़ा श्वसुर और नन्द कैसे सहन कर सकते थे यह। तत्पश्चात् जो दुर्दशा हुई उस युवती की वह महादेवी जी के लिये अविस्मरणीय है। क्रूरता का वैसा प्रदर्शन उनके कोमल हृदय ने इससे पूर्व कभी न देखा था। उसके पश्चात् स्वयं युवती हो जाने पर भी उस करुणा की मूर्ति को विस्मृत न कर सकीं। आज भी रङ्गों के प्रति आसक्ति का प्रकरण जब भी उनके सम्मुख आता है, तब वह करुण और मुरझाया हुआ मुख उनके सामने आ जाता है। हम में से प्रत्येक के जीवन में बचपन में न मालूम कितनी ऐसी घटनायें होती रहती हैं लेकिन कहाँ है वह करुणासिक्त स्नेह रंजित हृदय हमारे पास कि मानस में उसकी पुनरावृत्ति हो। किन्तु स्नेहातुरा महादेवी जी उस दीन मुख को याद कर कहती हैं।

"कभी-कभी तो वह मुख मेरे सामने आकर करुण-क्लान्त मुखों में प्रतिबिम्बित होकर मुझे उसके साथ एक अटूट बन्धन में बांध देता है। पुनः उन्हीं के शब्दों में जब वृद्ध ने कभी न खोलने वाली आँख मूद ली होगी तब वह, जिसे उन्होंने संसार की ओर देखने का अधिकार ही नहीं दिया था कहां गयी होगी और तब न जाने किस अनिष्ठ सम्भावना से, न जाने किस अज्ञात, प्रश्न के उत्तर में उनके मन की सारी ममता आर्त्तक्रन्दन कर उठती है। क्यों न करे आर्त्तक्रन्दन? एक स्नेहिल हृदय की ममता जो दूसरों के अश्रुओं को देखकर, दूसरों की आहों को सुनकर चीत्कार कर उठता है। दूसरों पर अत्याचार देखकर क्रोध से फूत्कार कर उठता है और दूसरों को दीन तथा असहाय देखकर सब कुछ त्याग कर, सहायता के लिये सर्वप्रथम आगे बढ़ता है। इस प्रकार उनके जीवन के एक दो संस्मरण कहने के पश्चात् पुनः स्मृति पट पर आ जाती है उनकी वह अठारह वर्ष पूर्व की मूर्ति। एक छोटे से मकान में कविगोष्ठी। उनका निरन्तर बाहर देखना और लोगों का पूछना 'कहाँ है आप महादेवी जी?' कहने के साथ ही लोगों का बाहर की ओर दृष्टिपात, जहाँ कुएँ के पास खेल रहे थे दो चार नन्हें से बालक और वात्सल्यमयी देख रही थीं सतत उन्हें। प्रश्न सुनकर चिहुंक उठीं और बोलीं, "तिमिर में वे पदचिन्ह मिलें।" "यह पंक्ति कितने स्पष्टरूप से प्रकट कर रही है उनके गूढ़ हृदय में छिपी हुई माँ की ममता और स्नेह की भावना। निस्संदेह गुणगरिमा से पूर्ण उन वाक्देवी को लोगों ने अनेकों दृष्टि से देखा और जाना है। लेकिन जो उन्हें जिस भावना से देखेंगे, वैसा ही पायेंगे। मेरी दृष्टि में साक्षात् देहधारिणी स्नेह की मूर्ति ही हैं वह और उनका यह वाक्य "स्नेह ही मनुष्यता के मन्दिर का एक मात्र देवता है. जब वही प्रतिभा खण्ड-खण्ड होकर धूल में बिखर जाती है, तब उस मन्दिर का विध्वंस हुये बिना नहीं रहता।" शाश्वत सत्य और सार्थक हैं। स्नेह के बिना मनुष्य का जीवन, जीवन ही नहीं। वह पशु की श्रेणी में आ सकता है। उसका अस्तित्व व्यर्थ है। जैसे देवता के बिना मन्दिर का होना न होना नगण्य है। स्त्री तो स्वभाव से ही कोमलता और स्नेह की मूर्ति मानी जाती है। उसके अभाव में तो वह स्त्रीत्त्व से वंचित हो जाती है।

महादेवी के नारीत्व का अहम्

•

आशारानी बोहरा एम० ए०

"सजनि मधुर निजत्त्व ले,
कैसे मिलूं अभिमानिनी मैं।"

महादेवी और उनका निजत्व ! निजत्व और नारीत्व ! नारीत्व और उसकी महानता का सचेतन आभास ! नारीत्व और उसका स्वाभिमान ! नारीत्व और उसका अहम् !

आज जब मैं महादेवी के निजत्व को देखने चली हूँ तो दिशाभ्रम होना स्वाभाविक है। उनके साहित्य का, उनके जीवन का पद्य और गद्य का कौन सा कोना है जो इससे आच्छादित न हो ?

पद्य—निजत्व से आकंठ सराबोर।

गद्य—निजत्व की चेतना के परिवेश में मानो परत्व और सहानुभूति की अन्तः क्रिया।

निजत्व—नारीत्व की गरिमा व उसका आत्मसातीकरण।

महादेवी महान कवि, चित्रकार, गद्यकार, साधिका, अध्यापिका, समाजसेविका-चाहे कुछ भी क्यों न हों, सर्वप्रथम वे नारी हैं। नारी, जो देवी नहीं, मानवी हैं। अध्यात्म और लौकिकता, पीड़ा और सुख, पलायन और दृढ़ता, समर्पण और विद्रोह को मिलाने-जोड़ने वाली मानवी ! मानवी, जिसकी मानवीयता उसकी साधना के बहिरङ्ग, अंतरङ्ग-सर्वाङ्ग की प्रमुख नियन्त्रण शक्ति है। मानवीयता, जो नारीत्व में अधिक मुखर होकर भी अत्यधिक उपेक्षित-उत्पीड़ित है महादेवी में समा कर हठी हो उठी है। समर्पण में उसकी निजता डूबती नहीं है। द्रवीभूत पीड़ा में घुलती नहीं है। घुलनशील नहीं है वह, तभी तो अलग भासित है—गहन तम में जुगनू की चमक सी। दृष्टि की परिधि में, पकड़ से ओझल। पकड़ से ओझल और पकड़ने की यह सायास चेष्टा—

उनके शब्द-चित्रों व संस्मरणों को पढ़ते समय कई बार यह ध्यान आया कि महादेवी ने बचपन की घटनाओं माता-पिता, भाई-बहन, संपर्क में आए व्यक्तियों, जीवन की अनेक घटनाओं पर प्रकाश डालते समय अपने वैवाहिक जीवन की घटना को एकदम असम्पृक्त क्यों रखा है ? कदाचित् यह उनके नारीत्व का अहम् ही है जो अपनी हीनावस्था की कचोट को चुपचाप सह लेता है। न उसे उजागर करता है, न उसमें अपने अस्तित्व को मिटा देना ही चाहता है। वह तो उसे कसौटी बनाना चाहता है जिस पर घिस कर नारीत्व की परख की जा सके। उसके विश्लेषण में शक्ति अपव्यय करने की अपेक्षा आत्मोन्नति का मार्ग कहीं श्रेयस्कर है। आत्मोन्नति जिसके विस्तार का लक्ष्य तिमिर पथ अन्तिम सीमा तक है। उसके पार—निस्सीम पथ पर विचरण करने योग्य भी, जहां न किसी आदान-प्रदान की आवश्यकता है, न संरक्षण की। न कोई बन्धन, न सीमा। यदि कोई सीमा है तो केवल बौद्धिकता के घेरे की, जिससे मुक्ति की चाह न अपेक्षित है, न वांछनीय।

मीरा और महादेवी में यही अन्तर है। मीरा में मिलन की आतुरता है, महादेवी वियोग में ही रस भरती हैं। मीरा-भाव विभोर है—रस भीगी है, महादेवी भाव जगा कर रस वर्षण करती हैं, उनकी बौद्धिकता उसमें भीगती नहीं है। मीरा दर्द-दिवाणी है, लोक लाज की उसे कोई परवाह नहीं है, महादेवी संभ्रान्तता का अवगुन्ठन उतारने में नारीत्व का अपमान समझती हैं। नारी की किसी प्रकार

की भी हार या छोटापन उनके लिए असह्य है । यही कारण है, मीरा का आत्म उसके प्रिय में विलीन हो गया है, महादेवी में आत्म ही आत्म है प्रिय की चिर-प्रतीक्षा है, पूर्ण समर्पण स्वीकारने योग्य पुरुष कदाचित् हर बार उनके नारीत्व से छोटा पड़ जाता है । तभी तो वे 'नीरभरी दुःख की बदली', और 'एकाकिनी बरसात' बनकर रह जाती हैं ।

गाँधी युग के परिस्थिति-जन्य प्रभाव तथा नारी की युगीन-विवशताओं का महत्त्व कम न आँकते हुए भी मानना होगा कि उनके नारीत्त्व का अहं अपेक्षाकृत प्रबल तत्त्व है, जो उन्हें न अतीत से बांध कर रख सकता है, न संस्कारिता से हटकर – इतनी सारी बौद्धिकता के बावजूद—नई दिशा ही दे सकता है तब कौन सा मार्ग रह जाता है ? यही न, कि उनमें जो वर्तमान है, उसे ही वे विकसित करें । निःसन्देह यह मार्ग घोर साधना और पीड़ा का है । उसमें आँसू ही आँसू हैं । रुदन ही रुदन है । पर उनका अहम् उसे रुदन व आँसू के रूप में स्वीकारने में भी बाधक है । वह 'दुःख' को 'मधुर-भाव' बना देता है । पीड़ा में तरलता, सूक्ष्म-सौंदर्यानुभूति और कोमलता भर देता है । नीरस चिंतन को सरस बना देता है ।

उनके नारीत्व का अहम् केवल अहम् के लिए ही नहीं है, वह इस योग्य भी है, अथवा उसे इस योग्य बनाया भी गया है । उनमें जन्मजात प्रतिभा है, जिसका चहुँमुखी विकास उनकी अखिल साधना ने किया है ।

ललित कलाओं में काव्य, चित्रकला, संगीत तीनों का वरदान उन्हें प्राप्त है । गद्य लेखन उनका समुन्नत है । अध्यापन भाषण, बातचीत की कला, व्यवहार कुशलता में वे पटु हैं । गृह कलाओं–सीना, पिरोना, काढ़ना, बुनना, कातना, पकाना बागवानी आदि में भी वे सिद्धहस्त हैं । परिवार के अभाव को उन्होंने एक विशाल परिवार में बदल लिया है, जिसमें निराश्रित बालकों से लेकर पशु-पक्षियों तक को समान स्थान है । वेद, उपनिषद्, बौद्ध साहित्य का अध्ययन उन्होंने किया है । प्रकृति, संस्कृत, हिंदी, बँगला, गुजराती, उर्दू व अंग्रेजी भाषाओं की वे अच्छी ज्ञाता हैं । राष्ट्र सेवा और समाज-सेवा में वे किसी से पीछे नहीं हैं । साहित्य में, कविता में उनका शीर्ष स्थान है और इतना सब होने पर भी वे ममतामयी हैं । विनयशीला हैं । अन्यों के प्रति सहानुभूति पूर्ण हैं । उनके नारीत्व का अहम् उनके व्यक्तित्व का अहम् नहीं है, नारी मात्र का अहम् है—ऐसा अहम् जो उनकी दृष्टि में, प्रत्येक नारी में होना चाहिए ।

नारी जाति में उस स्वाभिमान को वे जागृत करना चाहती हैं, जिसे युग-युग से कुचला गया है व जिसे समय-समय पर चुनौती दी जाती रही है । हिन्दू समाज में नारी की दशा पर वे लिखती हैं, "भारतीय पुरुष जैसे रंग बिरंगे पक्षी या गाय, घोड़ा पाल लेता है, वैसे ही स्त्री को भी पालता है । उनके मन और शरीर पर पूर्ण अधिकार समझता है । हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब सी खिली स्वस्थ कलिका को पाँच वर्ष बाद देखिए । उस असमय प्रौढ़ हुई, दुर्बल संतानों की पीली, रोगिणी माता में कौन सी विवशता, कौन सी रुला देने वाली करुणा न होगी ।"

पुरुषों की विकृत वासनाओं की शिकार तथा अवैध संतानों वाली कुमारी माताओं की अभिशप्तावस्था पर उन्होंने लिखा है, यदि ये स्त्रियां अपने शिशुओं को गोद में लेकर साहस से कह सकें, 'बर्बरो ! तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब छीन लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जाएं ।"

पुरुष की वासना की वेदी पर बलिदान होकर पतित व घृणित कहलाने वाली वेश्याओं के प्रति उनके विचार चौंका देने वाले हैं । लिखती हैं, "पुरुष की बर्बरता, रक्त लोलुपता पर बलि होने वाले युद्ध-वीरों के स्मारक बनाए जावें, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रज्ज्वलित चिता पर क्षण भर में मर मिटने वाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल-तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो बूँद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा ।"

यह उनका दूसरा विद्रोहिणी रूप है, जो पद्य में नहीं, गद्य में निखरा है । इसका भी रहस्य संभवतः यही है कि उनका पद्य केवल उनका आत्म है—एकदम तटस्थतावादी । उसमें किसी अन्य तत्त्व का समावेश उन्हें सह्य नहीं । उसमें

'जो है' केवल उसी की विवश' मार्मिक, सूक्ष्म व कोमल अभिव्यक्ति है। 'वह ऐसा क्यों है' या 'उसे क्या होना चाहिए' यह, उनके अनुसार, दर्शाना पद्य का काम नहीं, उसे समझने वाली सूक्ष्म अन्त:दृष्टि का है। अन्त:दृष्टि के इस अभाव की पूर्ति के लिए ही संभवत: उन्हें गद्य लिखना पड़ा हो। यों भी आत्मकेन्द्रित रूप के लिए पद्य और समाज केन्द्रित रूप के लिए गद्य ही अभिव्यक्ति का माध्यम हो सकता है; ऐसा नाप-तौल या रेखा विभाजन उनकी भाषा, भाव, शैली, पद्धति, रहन-सहन, कार्य-व्यवहार सभी में व्याप्त है, जो इन्हें साधारण या सामान्य से अलग करता है।

महादेवी के काव्य की, कला की, उनकी पीड़ा व पलायन वाद की, यहाँ तक कि उनके उन्मुक्त व धवल हास्य की भी दमित-इच्छाओं या कुण्ठा वाली फ्रायडीय व्याख्या के आधार पर विवेचना की गई है। पर दमित इच्छाओं से जलित कलाओं की उत्पत्ति तथा दु:खवाद में सुखवाद का निरूपण आदि तो समझाए जा सकते हैं, हिमालय जैसी दृढ़ता व अडिगता नहीं। उसे तो मारीत्व की मूल प्रवृति के आधार पर ही समझा जा सकता है। महादेवी की कविता में विरक्ति या वैराग्य नहीं, जीवन और सौंदर्य की चाह है—नारीत्व की स्वाभाविक चाह। यह चाह दबी हुई चाह भी नहीं है। उभरी हुई है, व्यक्त है, मुखर है। दु:ख, पीड़ा पर ही नहीं, प्रत्येक वस्तु पर आरोपित है। उनके काव्य और जीवन का कण-कण उससे आलोकित है। क्या इससे दमित इच्छाओं को राह नहीं मिल जाती? कोमलता, मधुरता, दुर्बलता और विवशता के साथ, हठ, धीरता, गंभीरता, अस्पष्टता और दुराव, आकर्षण और अलगाव एक प्रतिभा सम्पन्न नारीत्व के सहज-स्वाभाविक गुण हैं, जिनसे चरम विकास की राह में किसी भी प्रकार के वाह्य आकर्षण, थकान, शिथिलता या उतराव को कोई स्थान नहीं। 'स्व' की चेतना में केवल चढ़ाव होता है, उतराव नहीं। तभी तो वे कह उठती हैं, "तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना। जाग तुझको दूर जाना।'

मैंने कहीं पढ़ा था, महादेवी से जब किसी ने पूछा कि वे कवि सम्मेलनों में स्वयं कविता पढ़ने क्यों नहीं जातीं तो उन्होंने उसे उत्तर दिया था, "भीड़ में व्यक्ति को समझा नहीं जाता।" यह समझे जाने की चाह ही उनके नारीत्व का 'अहं' है और उनकी सम्पूर्ण साधना की प्रमुख प्रेरक शक्ति। उनकी सारी अस्पष्टता और दुरूहता इसी को लेकर है, यदि ऐसा कहें, तो भी अत्युक्ति न होगी।

मुझे याद है, पिछले दिनों 'दिल्ली लेखिका संघ' द्वारा आयोजित राष्ट्रपति भवन में उनके अभिनन्दन समारोह के अवसर पर उन्होंने अपने भाषण में लेखिकाओं को सम्बोधित करते हुए कहा था, "आज की परिस्थितियां आपके लेखन के लिए जितनी अनुकूल हैं, हमारे समय में उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। आदि-आदि" मैं समझती हूं, हम सामान्य लेखिकाओं के लिए उनकी यह एक गूढ़ चुनौती है। उनके भीतर के निरन्तर विकसित नारीत्व की एक अपेक्षा है जो अपने बाद भी विकास-विस्तार चाहता है – सभी दिशाओं में, सभी रूपों में, पर उतार चढ़ाव की चक्रिय-गति से नहीं, निरन्तर विकास की सम-रेखिक गति से। नारीत्व के सम्मान की उनकी यह कामना सफल होगी, यह तो पता नहीं, अमर होगी, यह निर्विवाद है।

महादेवी और उनका नारीत्व

विद्यावती कोकिल

आकाश में टिमटिमाते नक्षत्र जैसे एक विशाल संसार है उसी प्रकार पृथ्वी पर यह नन्हा और अद्‌भुत जीव, मनुष्य चेतना का एक अलग संसार ही है। इसके इस नाशवान शरीर में एक चिर शाश्वत तत्त्व है जो दिन-दिन, सदियों-सदियों और युगों-युगों विकसित ही होने को विवश करता आ रहा है। यहाँ तक कि विकसित होते-होते व्यक्ति की सीमा इतनी विशाल बन जाती है कि उसकी चेतना में कई संसार समा सकते हैं, और संसार भी क्या सम्पूर्ण विश्व समा सकता है। फिर वह अपनी चेतना के प्रभाव से वैसे ही लोगों को प्रकाशित और प्रभावित भी करता है जैसे कोई एक विशेष तारा अपने संपूर्ण तारामण्डल को ही प्रभावित और प्रकाशित करता है।

बहन महादेवी का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही जादू भरा व्यक्तित्व है। न जाने कितने कवि और कलाकारों ने उनसे प्रेरणा पाई होगी। स्त्री लेखिकाएँ तो विशेष रूप से उनकी आभारी हैं। प्रेरणा और प्रोत्साहन ही क्या, न जाने कितनी लेखिकाओं को उन्होंने बनाया ही होगा। इनके अतिरिक्त शिष्यों और मित्रों के बहाने न जाने कितनों पर उन्होंने तत्परता से अपना स्नेह बरसाया होगा और उनके मार्ग की गुत्थियाँ सुलझायी होंगी। उनके अस्तित्व का विस्तार एक बहुत बड़ा क्षितिज बनाता है जितना बड़ा क्षितिज बिरले ही लोग बना पाते हैं। उनके गद्य, पद्य, चित्रों और भाषणों की अद्वितीय प्रतिभा से तो असंख्य जन मुग्ध और प्रभावित हुये ही हैं पर उनके सामाजिक और व्यावहारिक दैनिक जीवन-कार्यों से लोग कम प्रभावित नहीं हैं। मैं समझती हूँ इस आवश्यक दृष्टिकोण को छोड़कर उनकी प्रतिभा का ठीक आकलन सम्भव ही नहीं। क्योंकि जिस सामंजस्य, समग्रता और समवादिता का संगीत उन्होंने अपने गद्य, पद्य में बहाया है उसका कार्य क्षेत्र तो उनका जीवन ही है। मैं नहीं समझती कि नारी अपने आदर्शों की जीवन-चरितार्थता से बचकर एक दम निकल भी सकती है। पुरुष कवियों और कलाकारों में यह मान्यता भले चली आती हो कि कला के सत्यों को जीवन में जीने से कोई सम्बन्ध नहीं और ये दो भिन्न बातें हैं। पर मेरे विचार से नारी के लिए जीवन में उनका जीना ही अपेक्षणीय है तभी वह स्वयं आगे न आकर सदा कवि, कलाकारों और शिल्पियों की प्रेरणा बनकर ही अधिक संतुष्ट रही है। शायद वह स्वयं कवि और कलाकार होने का तब तक दम्भ नहीं भरती जब तक जीवन की ही कोई चरम आवश्यकता आकर उसे विवश न न कर दे और उसके अन्तर व मन पर छा न जाय। नारी जो जीवन की अधिष्ठात्री देवी है वह जीवन से एक मिनट भी तटस्थ होकर नहीं रह सकती। वह केवल मानसिक आनन्द और बुद्धिचातुर्य के लिए कुछ नहीं कर सकती। वह समस्याओं का निदान वादों और विचारों में नहीं बताती वह तो कैसी भी जटिल समस्या हो उसे प्राणों की लहरों पर छोड़कर जीवन के नियंत्रण में ढाल कर उसका निदान ला उपस्थित कर देती है। नारी जो सदा से शक्ति का प्रच्छन्न स्रोत बने रहने में ही आनन्द मनाती आई है, जो पुरुष के प्रति समर्पण करके उसके द्वारा ही अभिव्यक्तियों में महान् कला और विज्ञान के गौरव का अनुभव करती आई है वह कभी-कभी ही किन्हीं विशेष परिस्थितियों में अपने किसी नवीन और विशाल स्व को अलग से अभि-

व्यक्त करने के लिए ऊपर आती है। यद्यपि आज के बुद्धिवादी युग में होड़ाहोड़ी और स्पर्धा के बहाव से नारी में भी एक अपनेपन का अहं जाग उठा है। पर मैं समझती हूँ कि यह लहर केवल इसीलिए उठी है कि इतने दिनों से अन्धकार ग्रस्त, पशु मात्र रह गई नारी अपने भीतर मनुष्यत्व के प्रति जागरूक हो जाए और तब आधुनिक युग की आवश्यकताओं और माँगों की लय स्वतन्त्रता के संगीती वातावरण में फिर से पुरुष के साथ अपने सम्बन्ध को एक उन्नत स्तर पर खड़ी होकर जोड़े, जिसमें तुच्छ शारीरिक और आध्यात्मिक व्यवधान जिन्होंने उसके जीवन को जड़ बना रखा था वे अब न आएँ। असल में वे दोनों न भिन्न हैं न दो हैं। एक ही मूर्ति की दो भंगियाँ हैं। यहाँ तक कि वह शारीरिक बल में कम दीखते हुये भी श्रम के काम बिना थके अधिक देर तक कर सकती है। पुरुष की भाँति वह आकाश महलों में नहीं रह सकती। वह निर्णयात्मक होती है। बुद्धि जहाँ भूल भुलैयाँ में डालने को कोशिश करती है वहाँ उसकी प्राण शक्ति उसे किसी सामञ्जस्य में बाँधकर झट निर्णय की भूमि पर ला खड़ा करती है। आवश्यकता यह है कि यह भूमि इतनी ऊँची हो कि फिर उसके नीचे गिरने की सम्भावना ही समाप्त हो जाए। यह आध्यात्मिक भूमि ही हो सकती है। इसी सन्देह को लेकर इस युग में नारी को बराबर अभी ऊपर आना पड़े तो आश्चर्य नहीं। इस सन्देह से चिपटे रहने का मधुर शाश्वत मोह नारी छोड़ भी नहीं सकेगी। ऐसी ही किसी आवश्यकता ने बहन महादेवी को अपने ढंग से आकुल बनाया था। विश्व-निर्माण के हेतु नारी के अपने कई रूप हैं। यही नारी जो असल में करुणा, कोमलता सुकुमारता और लावण्य की मूर्ति है, यही नारी जो सर्वत्र-समर्पण, दान, सेवा और तपस्या की उन्नमित अग्नि-शिखा है, यही नारी जो श्रद्धा, पूजा उपासना और भक्ति का तुलसी-बिरवा है, यही नारी जो अनुकरण, अनुमोदन, अंगीकार और स्वीकार की लतावल्लरी है, यही नारी जो कला, सौंदर्य, शृंगार, निखार और मोहिनी का वसन्त-वैभव है, यही नारी जो श्रम, कार्य परायणता और कर्मठता की यज्ञवेदी है, यही नारी जो जीवन की हर गति को शक्ति देने वाली प्रेरणा है, यही लक्ष्मी स्वरूपा नारी कभी सरस्वती और कभी आवश्यकता पड़ने पर दुर्गा का स्वरूप भी धारण करने का सामर्थ्य रखती है। कहने का तात्पर्य यही है कि नारी सामर्थ्य से परिपूर्ण थीं। समय और वातावरण के अनुसार अपनी शक्ति को मोड़ देने के लिए भी उन्होंने अपनी प्रतिभा को बड़े श्रम से तैयार किया था। उनकी इस शक्ति ने ही अपने कार्य विशेष के लिए कवि कर्म का चुनाव किया होगा जो अंत तक ठीक उतरा। मैं मानती हूं कि वे नारी पहले हैं और कवि पीछे। जो लोग उन्हें पद्यकार, गद्यकार और चित्रकार के एकांगी दृष्टिकोण से देखते हैं उन्हीं को वे निगूढ़ और रहस्यमयी लगती हैं। मैंने उन्हें सदा समग्रता से ही देखा है और वे न मुझे रहस्यमयी लगीं हैं न निगूढ़। हाँ कहीं-कहीं अलंकारिकता और बौद्धिकता के मोह में उनसे नारी सारल्य का हाथ छूट गया है। अन्यथा मैं तो उन्हें उनकी सब प्रतिभाओं के साथ उनके विशाल परिवेश में एक स्वकर्म-प्रबुद्ध नारी ही पाती हूँ। पर उनके साथ न्याय करने के लिए उस समय की कठिनाइयों और नारी समाज की सीमाओं का भी स्मरण करना होगा। खड़ी बोली के साहित्यिक क्षेत्र में इतने व्यापक और प्रभावशाली परिवेश में आने वाली वे अकेली नारी हैं। हो सकता है उस समय अपने कार्य में आगे आने के लिए उन्हें अपनी मर्जी के खिलाफ भी कुछ काम करने पड़े हों।

निश्चय ही उनके प्यार दुलार से पले युवा मन ने जब अपनी कल्पनाशील, सुकुमार और स्वप्निल आँखें खोल-बाहर देखा होगा तो उसे अपने सब सपने और आदर्श टूटते से जान पड़े होंगे। उस समय की आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अज्ञानता का एक घोर तम चारों ओर छाया हुआ था। परवशता की मजबूरी ने मनुष्य की सबसे अमूल्य निधि उनके मन पर ताला डाल रखा था। भारत का यह धर्मवीर और आर्य पुरुष एक महान आर्थिक, व्यावहारिक और जी हुजूरी तथा झूठी कीर्ति की गुलामी में जकड़ा पड़ा था। यह भारतीय नारी अपने उसी अज्ञ-पुरुष देवता की अनुगामिनी बनी अंधकार के गर्त में ही अपनी सारी सुकुमार शक्तियाँ उडेल-उडेल कर मरु भूमि तैयार कर रही थी। पुरुष के पतन की यह अवस्था एक जाग्रत नारी के लिए जो ऐसे में अपनी सारी जीवनी शक्ति को ही कुण्ठित हुआ पाती है, असहनीय है। उन्होंने देखा

होगा भारत का शक्ति केन्द्र यह नारी दोहरे ताले में जकड़ी पड़ी है। राजनीतिक परवशता तो है ही उसे पुरुष की अज्ञानता का फल भी भोगना पड़ रहा है। अब उन्हें दोहरे मोर्चे का सामना करना था पर उनके अग्नि-संकल्प ने हार नहीं मानी और मन ही मन अपना एक कर्तव्य निश्चित कर लिया। इस जड़ता की दोहरी दीवार का विच्छेद करने के लिए एक वाणी के ही शर उन्हें उपलब्ध हो सकते थे। उनसे भले प्रकार सुसज्जित बनने के लिए उन्हें स्वयं की ही शिक्षा दीक्षा में पारंगत होना था। इसी केलिए पहला प्रण उन्होंने लिया और वह भी उस समय में जबकि कायस्थों के घर लड़कियों को न पढ़ाने का रिवाज था न उसकी सुविधा थी। फिर भी उन्होंने उसे पूरा किया और प्रतिभा के शृंगार-प्रसाधनों के लिए श्रम और तपस्या से अर्जित करके सुन्दर भाषा और शैली में ढालकर वाणी का लावण्यमय युवा शरीर भी गढ़ा। निश्चय ही साधना उन्होंने अपने किसी व्यक्तिगत सुख-भोग और मात्र कीर्ति के लिए नहीं की थी और न कोई पारिवारिक सुख और सामाजिक प्रशंसा व पद का लोभ ही इसके पीछे था। जो कुछ भी विचार इसके पीछे था वह भले ही कोई देव-दृष्टि या ऋषि-दृष्टि न रही हो फिर भी वह मात्र व्यष्टि कल्याण की भावना से तथा साधारण त्याग भूमि के बहुत ऊपर की वस्तु थी। बस फिर जिन लोगों ने उनसे साधारण पत्नी, भगिनी या परिवार-कल्याण की भावना से कुछ चाहा होगा उन्हें अवश्य ही निराशा हाथ लगी होगी और उनके हौसले पस्त हो गए होंगे। उसी प्रकार अन्य मित्रों और बन्धुओं के भी हल्के स्वार्थों में धक्का लगा हो तो आश्चर्य की बात नहीं। आज जब यह बात समय ने उनकी परीक्षा लेकर साफ करदी है तो उनके विशुद्ध भगिनी, जननी और मित्र के स्नेही और करुण हृदय जानने और समझने वालों की कमी नहीं रह गई है! उसमें भी स्त्रियों के लिए तो उन्होंने अपना सब कुछ न्योछावर किया है। महिला विद्यापीठ का संपूर्ण इतिहास इसकी गाथा सुनाएगा। एक सती साध्वी नारी जिस प्रकार एक बार वरी जा कर अंत तक पति का साथ निभाती है। चाहे वह गरीब हो या अमीर लायक हो या नालायक, उसके पथ में कितनी तरह की बाधाएँ आएँ, लोग उसे पथ-विचलित करें पर तन में प्राण रहते वह अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ़ रहती है। उसी प्रकार न जाने कितने ऊँचे-ऊँचे आकर्षणों को छोड़कर तथा अन्य आवश्यक कार्यों को चलाते हुए भी उसे उन्होंने नहीं छोड़ा है और आज भी उनका वरद कर उसके ऊपर है।

पर प्रारम्भ में उन्हें शायद ही किसी ने पहचाना हो। अतः उन्हें अपने पथ पर दृढ़ता से चुपचाप अकेले ही बढ़ना था। कितनी बाधाओं और व्यंगों का सामना उन्हें करना पड़ा इसे वे ही जान सकती हैं। पर जीवन तो बिना सहानुभूति के अपंग हो जाता है, विशेष रूप से कवि के लिए तो यह बहुत आवश्यक है। साधारण स्तर से उसे संतोष नहीं होता। तब ऐसे सूक्ष्मदर्शी प्राणी दूर से भी प्रकाश और सहानुभूति ग्रहण कर लेते हैं। ऐसी विवशता में सारे बन्धन, बाधाओं से परे एक सौम्य शांत मुखड़े के दर्शन उन्हें हुए होंगे और वे महात्मा बुद्ध से आकर्षित हुई होंगी। यद्यपि समस्याओं का आशिक-समाधान उन्हें वहाँ अवश्य मिला होगा पर भारतीय नारी जो आत्मा का ही प्रतीक है और परमात्मा की आराधना ही जिसके अंग-अंग के हावों भावों से टपकती है वह भला इस परंपरागत आस्था से अपने को कैसे अलग रख सकती थी। उसके लिए इन संस्कारों को त्यागने का अर्थ था अपने भीतर के रस को ही सुखा डालना मन की इस शाश्वत खोज में वह निराकार ही उनका जीवन संगी बना। पर नारी साथ ही जीवन से भी अलग नहीं रह सकती। यही कारण है कि राजनीतिक हों या सामाजिक, सभी सामयिक संकटों की छाप उनके हृदय पर गहरी पड़ती आई है। भले ही सीधे ढूँढने से वह उनको कविता में न मिले। गांधी जी के लिए उनका आकर्षण इसी बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनके शरीर की धवल, स्वच्छ, सुरुचिपूर्ण महीन खद्दर की सारी, श्रम और सौंदर्य तथा जीवन और दर्शन में ताल मेल बिठा लेने वाले उनके विचारों की दुहाई देती जा रही है। निश्चय ही किसी व्यक्ति-विभूति या दर्शन विशेष में उनके आदर्श अपना पूर्ण संतोष नहीं पा सके। इससे इतना तो साफ है कि किसी पुराने विचार के चौखटे में उनके आदर्श फिट नहीं बैठे। इसीलिए इन दो व्यक्तियों के विचारों से कुछ सार तत्व निकालकर एक अलग ही उपासना का विधान उन्होंने बना लिया। निराकार की साकारवत् उपासना में ही अपने ध्येय

को जैसे कविता के कुञ्ज में छिपा कर रख दिया। वही उनके सारे जीवन कार्यों का शक्ति स्रोत बन गया। जैसे उसी गुप्त कुञ्ज में बैठकर वे जीवन कार्यों को संचालित और नियंत्रित करने लगीं। अपने पहले चुनाव में ही कविता का विषय ऐसा चुन लिया कि जिसमें सारा विश्व समा जाय और आराधना ऐसी की कि जनम-जनम की सारी कालिख धुल जाय। समर्पण ऐसा किया कि संसार का कुछ भी देने को न बच रहे। पीड़ा ऐसी चुनी कि जिसके सामने संसार की सारी पीड़ा मिलकर भी फीकी लगे। फिर ऐसे को दुनिया की मौसम बे मौसम चलने वाली हवाओं, आँधियाँ और वर्षा की झड़ियों का क्या भय? ऐसे झोंकों में छोटी मोटी नौकाओं के पाल उनके रुख की ओर भले मुड़ जायँ पर उनका धीर पूर जहाज तेज हवा के झोंकों के आगे मानो तनिक अपना मस्तूल झुका देता था और झोंके निकल जाते थे पानी की बाढ़ के लिए मानो निम्न-द्वार खोल दिए जाते थे और वह बह जाता था। बादलों के साफ होते ही फिर वही वंशी-ध्वनि और उसके आगे की मलार सुनाई पड़ती थी। मैंने सदा उनके महान नारी व्यक्तित्व को आगे रख-कर ही उनके कवित्त्व को तोला है। जटिलता वहीं आई है जहाँ किसी कारण या परिस्थिति वश उन्हें अपना स्वभाव छोड़ना पड़ा है?

अच्छा होता कि उनका जीवन दर्शन उसी दृढ़ संकल्प से किसी आशावादी साहित्य को जन्म दे सकता परन्तु निराकार के विरह की अनुभूति तो अनजान में ही एक चिर-आशा का प्रथम चरण है। मनुष्य के स्तर से ऊँचे उठने उठाने की दिशा अपने में हो एक आशा की जड़ है। उनके मुख की खिलती हँसी शायद इसी तथ्य का प्रमाण है।

जो कुछ भी हो अज्ञान-अंधकार के गढ़ से एकाकी निकलकर शिक्षा और बुद्धि के क्षेत्र में पुरुष के साथ उसके परम्परागत ज्ञान और दर्शन से होड़ लेकर दृढ़ता से आगे आकर अपने स्वर से दुनिया को मुग्ध और चमत्कृत करना, ब्रजभाषा की कोमल-कान्त पदावली ने जिन श्रोताओं के कानों को मोह रक्खा था उन्हें एक नई भाषा के द्वारा मानने के लिए विवश कर देना कि खड़ी बोली में भी ललित गीतों की रचना संभव है, आदि असाधारण बातें थीं। उन्हें एक साथ कई मोर्चे संभालने पड़े। एक ओर नर पर एक बनावटी क्रोध या मन्यु प्रदर्शित करना पड़ा तो दूसरी ओर परवशता में रस लेने वाले नारी समाज को स्वतन्त्रता के आनन्द का स्वाद चखाना था। यदि चाहतीं तो नारी का कोई चंडी रूप भी धारण कर सकतीं थीं पर शायद वह एक मौन क्रान्ति का ही समय था और गांधीवाद तथा बुद्धवाद के लिए ही उपयुक्त था। तो फिर उसी का सहारा लेकर यदि उन्होंने एक नया मार्ग निकाल लिया तो भावी साहित्य के निर्माण के लिए यह भी एक प्रारंभिक सोपान बन गया।

मैं सोचती हूँ कि नारी को नारीत्व का असल स्वरूप मिल सके तो उसे और कुछ नहीं चाहिए। नारी को अपनी कीर्ति, विद्वता और बौद्धिकता पर संतोष नहीं होता। वह तो पुरुष के विचार जीना चाहती है। सारे निर्माण में उसी की प्रेरणा और हाथ है। वह तो प्रकृति का ही स्वरूप है। भले ही वह स्वरूप आज अंधकारग्रस्त हो। वह पुरुष के हर विचार दर्शन को जीवन दर्शन बनाने में अपने को मिटा-मिटा देती है। पुरुष की बनाई योजनाओं, आदर्शों और स्वप्नों को साकार करने में उसी को विशेष महत्व प्राप्त है। पर यह सब कुछ भी वह पुरुष के पीछे रहकर ही करने में अधिक आनन्द लेती है। उसी की कीर्ति और प्रशंसा में, सफलता अपने को एक कर देती है। इस एकता को सदा बनाए रखने का "आग्रह भी उसी की ओर से अधिक होता है। क्योंकि जहाँ एकता भंग हुई उसका जीवन का नशा टूट जाता है।

भारत के पतन का भी यही कारण रहा। नारी इस स्थिति को कभी सह नहीं सकती। बस नारी ने इस पशु-मानवत्व में ही देवत्व का आरोप करके जो भूल की थी और सारी कमजोरियों को न्योताकर अपना लिया था उस भूल को तो महादेवी जी ने बहुत जोर से झकझोरा है और कविता के द्वारा उस अदृष्ट से सम्बन्ध स्थापित किया है जो सब वस्तुओं में निहित चरम सत्य है परम पुरुष है। पर उनकी विरह की कविता ने जैसे अभी भी हमसे बहुत दूर ही रक्खा है, वह अदृष्ट-दृष्ट नहीं बन सका है। प्रत्येक वस्तु के प्रतीक का अर्थ नहीं खुल सका है। वह आज भी जैसे एक मानसिक प्रक्रिया

ही बन कर रह गया है। प्राण का इतना आसव उंडेलने पर भी सूक्ष्म और स्थूल का आत्मिक संबन्ध नहीं जुड़ सका है। पर हम यदि इसे विकास की परम्परा के साथ देखें तो हम उनकी कविता से चाहे जितना दुखवाद और विरह दुह-दुह कर निकालें वह मनुष्य-जीवन का स्थूल दुःख और विरह नहीं है और मनुष्य-कोटि से ऊपर है, विशाल है, तभी उनके जीवन में सर्वत्र स्नेह, प्यार, गृहस्थभाव, कर्तव्य-परायणता, सम्पन्नता, सादगी, कला सौंदर्य और कुल-नारीत्व के सभी गुण वर्तमान हैं। क्योंकि शाश्वत का विरह भी एक प्रकार की सम्पन्नता से भरा है। वह विरह भावात्मक और शून्य नहीं है। यह उन परिस्थितियों से और उनकी अपनी सीमाओं के भीतर से ही उत्पन्न परम-तादाम्य का एक प्रकार है एक भावभंगी है। सब कुछ निकाल डालने से भी उपासना की तन्मयता का एक नया भाव और काव्य कला की एक व्यंजना उनके काव्य को सदा सुरक्षित रखेगी।

परिस्थिति और वातावरण सभी कुछ बदल गया है। आज तो चारों ओर से ममता, सामंजस्य और एकता की ध्वनि गूञ्ज रही है। साहित्यकार क्या अब तो यह राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिक के मुख से भी बौखलाहट में फूट पड़ी है। जैसे हर क्षेत्र में प्रकृति को, जो न जाने कब से अपने पुरुष के विरह में तप्त, त्यक्त सी बनी नाना दिशाओं की भूल-भुलैयाँ में भटक रही थी उसे आज हर वस्तु के पीछे पुरुष के दर्शन प्राप्त हो गए हैं और जैसे वह अपने अंधकार के भारी घूंघट को एक दम उलट कर उसके पूर्ण दर्शन प्राप्त कर लेने को आकुल हो उठी है। हो सकता है बहन महादेवी की सशक्त और मार्मिक वाणी से हमें शीघ्र ही कोई दूसरी भावभंगी सुनने और देखने को मिल सके जो उससे भी अधिक आकर्षक हो। हम उनके चिरायु होने की सुखद कामना के साथ इसी आशा को पाल रहे हैं।



महादेवी के अतिरहस्यमय व्यक्तित्व का विश्लेषण

आनन्द शंकर माधवन

प्रत्येक पुरुष उस वृक्ष की किसी उत्कट चाह का अतिअल्प और बिलकुल ही स्थूल परिचय मात्र है। पुरुष की भी कीमत सिर्फ यह नहीं है कि वह सुन्दर है, सुगन्धिमय है, पराग और मधु से सुसम्पन्न है बल्कि यह है कि उसमें उस वृक्ष का बीज मौजूद है। और बीज ही ऋतु-प्रहारों को बर्दाश्त करते हुए जीवित रहकर वृक्ष की वंश-गंगा को अक्षुण्ण और प्रवहशील रख सकेगा। पुष्प का अध्ययन करने जो कोई जा रहे हों—उन्हें वृक्ष की भीतरी उन सूक्ष्म चाहों की यथेष्ट पकड़ जब तक प्राप्त न हो, तब तक वे असफल ही सिद्ध होंगे। महादेवी के सम्बन्ध में भी यही यथार्थ है। सुप्रसिद्ध अरबी कवि खलिल जिब्रान का कहना है—"हर बीज एक चाह है।" मानव की कीमत उसके भीतरी गति-तत्त्व एवं चाह के अलावा और क्या है? स्वयं राधिका के भी उस दिव्यव्यक्तित्व का रहस्य उनके उस अलौकिक चाह में ही निहित रही है। मीरा चैतन्य और रामकृष्ण की भी परख हम उनके उस अतुलनीय चाह का अध्ययन करके ही आँकना चाहते हैं। मीरा के आँसू को किसने समझा। किसको यह समझने की सामर्थ्य और चेतना है? उनकी रचनाएँ, उनके वह अविरल अश्रु प्रवाह भी उनकी भीतरी उस अविस्मरणीय चाह का एक आंशिक परिचय भी प्रस्तुत न कर सका था। भारतीय साहित्य में मीरा की जोड़ी में कौन है? अन्य सभी "खद्योत सम जहँ-तहँ करत प्रकाश" विद्वान् थे, दार्शनिक थे, योगी थे, समाज स्रष्टा थे, सभी कुछ थे। पर मीरा ही कवि कहने लायक थी और उनकी रचनाएँ पढ़ते या सुनते समय कलेजा काँपने लगता है तथा आँखें सजल होने लगती हैं। न जाने किस अज्ञात वेदना से घंटों दिल दुखने लगता है। वेदना में ही और वेदना के जरिये ही मानव परमार्थ-तत्त्व का सामीप्य-सुख प्राप्त कर सकेगा। बच्चे को जब खेलने का मन होता है तो माता-पिता को छोड़ मैदान में वे चले जाते हैं, मगर जब उन्हें दुःख होता है, तब वे रोने लगते हैं और अपनी माँ की गोद खोजते हैं। राधा, मीरा, चैतन्य, राम-कृष्ण आदि विभूतियों की जीवन-गाथा हमें इसी सत्य को समझाती है। मैं महादेवी को उसी परम्परा की, उसी पथ की अनुभव करता हूँ। यह स्थापना सुनकर कोई घबरावें नहीं। गजराज मस्त होकर जिस रास्ते से चलता है, उसी राह से पिपीलिकाओं को भी चलने का अधिकार है। आप भी चलें। सड़क तो सभी का स्वागत ही करती है। समझने लायक बात इतनी ही है कि आदि पुरोहित वे थे जिन्होंने सड़क का निर्माण किया था। यात्रियों के अभाव से या अन्य किसी कारण से भी जब वह सड़क उपेक्षित होकर जीर्ण होने लगी तो उसे मरम्मत करके दुरुस्त रखने के लिए उन आदि पुरोहितों के विश्वस्त प्रतिनिधि और सन्तान समय-समय पर इस संसार में आए हैं। महादेवी का भी जीवन रहस्य यही है।

स्थूल परिचय कभी पूर्ण परिचय नहीं कहा जा सकता। अमूर्त शक्तियों का परिचय प्रस्तुत करने के लिए ही मूर्त रूपों का प्रयास रहता है। पर मूर्तता इसमें सदा से ही असफल रही है। सारांश यह है कि महादेवी के भीतरी मंथन से उपजी वे साहित्यिक और कलात्मक कृतियाँ तथा उनके अन्य बहुमुखी अनुष्ठान उनके उस सूक्ष्म व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय देने को कभी सफल नहीं हो सकते। फिर भी

चूंकि हमें उस विभूति के अध्ययन करने के लिए अन्य कोई साधना एवं माध्यम ही उपलब्ध नहीं है, इसीलिए इन्हीं सब उपकरणों को ही पकड़ कर आगे बढ़ना है। समुद्र-मन्थन से निकले कौस्तुभ-रत्न, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, अमृत-कुम्भ, धन्वन्तरि, लक्ष्मी आदि, उस अनादि-अन्त विहीन क्षीर सागर का पूर्ण परिचय देने में समर्थ नहीं सिद्ध हुये। न हमारी इन स्थूल आँखों और सीमित मस्तिष्क को ही उतनी शक्ति है कि हम इन अगणित रश्मियों के सहारे उस विशाल जाज्वल्यमान सूर्य गोल के रहस्य का माप-तौलकर उसका लेखा-जोखा उपस्थित कर सकें। फिर भी जैसे कालिदास कहते हैं—"मन्दः कवियशः प्रार्थी" हम कभी हास्यास्पद प्रयास करने में भी शरमाते नहीं। यह इसलिए भी कि हमें इतना ज्ञान न जाने किसकी बदौलत अब तक प्राप्त हो गया है कि आकाश में सूरज-चाँद और नक्षत्र मंडल में न रहें तो हमारा जीवित रहना भी दुष्कर ही होगा। अतएव यह जानते हुये भी कि सूर्य-चन्द्र और तारे भी इससे धन्यवाद नहीं चाहते, प्रशंसा नहीं माँगते और प्रचार भी हमारे जरिए नहीं खोजते, हम उनके गुण-गान और स्तुति-पाठ करके अघाते नहीं क्योंकि हम यह समझ चुके हैं कि हमारे स्वयं उद्धार और दिशा ज्ञान के लिए भी यही एक मात्र सुगम और स्वस्थ उपाय है।

पतनोन्मुख पराधीन जनता में कभी पूज्य-पूजन की शक्ति नहीं रहती। जंगल में जब पुष्प खिला तो शृगाल-समाज की ओर से खुशियाँ नहीं मनाई गयीं। रास्ते में पड़े उस हीरे के टुकड़े को गाय-बैल सूँघे तक नहीं, कौवों को आश्चर्य यह है कि कोयल का स्वर इतना कर्कश क्यों? वृषभों के लिए भूसा ही अमृत है और श्वानों के लिए जूठन। बल्कि उन वृषभ-प्रभुओं और श्वान-वीरों को आश्चर्य है, ये मूर्ख मानव उन बहुमूल्य और दुर्लभ वस्तुओं की बारीकी और स्वाद क्यों नहीं चखना चाहते। संभव है वे ज्ञानी लोग हम स्वघोषित होशियारों को मूर्ख ही समझते हों। आत्म-जाग्रत जनसमूह का प्राथमिक परिचय यह है कि वे हर कार्य हर समय उचित-अनुचित और पूज्य-अपूज्य की स्वअर्जित विवेकशक्ति की कसौटी पर परख सकेंगे। महादेवी का पर्याप्त मूल्याँकन और सम्मान अब तक न करके हम अपने ही पशुत्व और जड़ता का ही परिचय देते रहे हैं।

यह भी न समझिए कि आज हम उनका सम्मान इस अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पण के जरिये करके या करने का प्रयास करके उन पर कोई मेहरबानी ही दर्शा रहे हैं। वे इसकी भूखीं नहीं हैं। क्योंकि कवित्व का उस प्रतिरूप व्यक्तित्व का दृष्टिकोण हम संसारियों के प्रति यों रहता होगा ऐसा मैं हिम्मत के साथ घोषित करूँ तो शायद वह असत्य या अत्युक्ति समझा जा सकता—"विविधरूपी पापाचारों और दुर्व्यसनों में ग्रस्त और व्यस्त हे हीन संस्कारी संसारियों, तुम लोगों को मैं अपनी जूतियों तले रेंगने वाले कीड़े मकोड़े से अधिक कुछ नहीं समझती। क्योंकि जब मैं अपनी अन्तःसत्ता की गूढ़ और सूक्ष्म वृत्तियों का अध्ययन करती हूँ और उन्हें तुम्हारी अन्तःसत्ता की गूढ़ और सूक्ष्म वृत्तियों के साथ तुलना करती हूँ तो अपने को सुमेरु शिखर पर पाती हूँ और तुम्हें सागर गर्त में।

इस प्रकार श्रेष्ठत्व-बोध के बल पर ही कोई कवि बन पाता और इस गरिमा-बोध के आधार पर ही कविताएँ लिखी जा सकेंगी। कवित्व-व्यक्तित्व का सच्चा यही परिचय भी तो है। यह कोई अहम् नहीं, जाग्रत आत्मचेतना का यह सक्रिय स्वरूप मात्र है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीतोपदेश देते हुए कहा था—हे अर्जुन, अपने सुयश को संसार में हमेशा के लिये अक्षय रखने के लिए एक अद्वितीय योद्धा के रूप में तू प्रकट हो जा। पुरुष के नाते तुम्हारा यही धर्म है। पौरुष का यही परिचय भी।" सुयश के लिए महत्त्वाकांक्षाएँ जगना धर्म चेतना का मामूली परिचय मात्र है। और उस महत्त्वकांक्षा को अत्यन्त उच्चस्तर पर तप्त और ज्वलन्त बनाये रखना ही वास्तविक आध्यात्मिक साधना है। जिनमें इस प्रकार की महत्वाकांक्षाएँ नहीं वे मृत हैं, बिलकुल पशु हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय युवकों को सम्बोधित करते हुए एक बार कहा था—'लड़को, उस अनन्त आकाश जैसे तुम लोग अपनी दीप्त महत्वकांक्षा को फैला दो और उस ज्योति से उपजी उष्ण आँधी से तुम बेचैनी अनुभव करो, बेदम होने लग जाओ क्योंकि तभी तुम कार्यक्षेत्र में उतर सकोगे और उसमें सफलता भी प्राप्तकर सकोगे।" वस्तुतः कार्य का महत्त्व ऐसा बड़ा नहीं है। उसमें ऐसी कोई युग प्रवर्तक शक्ति भी नहीं है। मगर कार्यसाध्य के लिए जो तड़प भीतर सक्रिय रहती है, जो वेदना कष्ट देती है,

जो आँसू छलक रहे हैं, जो आहें निकल रही हैं, उन्हीं सारी चीजों का ही इतिहास लिखना अपेक्षित है। तुलसीदास ने रामायण की रचना की, हम सभी उसे चाव से पढ़कर लाभान्वित होते हैं। पर उस ग्रन्थ में व्यक्त और वर्णित भावों और विचारों से कितने ही अनगिनत गुना बढ़कर भाव और दर्द उस महान ग्रन्थकार के हृदयान्तभाग में रहे होंगे। इसकी जरा कल्पना की जाय। गीतांजलि पढ़ने के बाद आंग्ल कवि यीट्स ने लंदन भर एक बंगाली की खोज करता फिरा था यह पूछने कि उस कवि के भीतरी मानसिक धरातल और बाहरी सामाजिक वातावरण कैसा रहा है जिसकी पृष्ठिभूमि से गीतांजलि जैसी अमृत भरी काव्य-धारा फूट निकली। महादेवी का मूल्यांकन हम करना चाहते हैं उनका अभिनन्दन-ग्रन्थ तैयार करने को हम लोग जुटे हैं उनकी रचनाएँ पढ़कर या उनके जीवन से सम्बन्धित समाचारों और किंवदन्तियों के आधार पर हम धारणाएँ तैयार कर लेते हैं। क्या यही सही तरीका है? आम्रफल का परिचय आँधी नहीं दे सकेगी, यद्यपि वह उस रास्ते से गुजरी है। कौन उस प्रातः स्मरणीय नारी-विभूति के भीतरी वेदना, तड़प, अरमान और आँसू का इतिहास जानना चाहा है, लक्ष्य ढूंढ़ना चाहा है? कौन इतनी तकलीफ उठाने को तैयार है? किसको जरूरत पड़ी यह जानने की? इसका अधिकारी भी आखिर कौन है? बात यह है कि हीरे ही क्यों न हो, वह सूरज का परिचय भला क्या बता सकेगा सत्य इतना ही है कि हीरे की भी चमक सूरज के साथ सम्पर्क के बाद ही बढ़ती है। महादेवी की साहित्य-साधना की एक अति गूढ़, अत्यन्त विस्तृत और अत्यधिक दीर्घ पृष्ठिभूमि रही है और वह शायद उनके कई जन्म पूर्व से ही चली है। यह पृष्ठिभूमि ही उनकी कवित्त्व शक्ति की भूमिका है रचनाकार के व्यक्तित्व और धरातल जब तक हम समझ न सकेंगे तब तक हम उनकी रचना का भी महत्त्व ग्रहण न कर सकेंगे। जब उनकी रचनाओं का मूल्यांकन करने हम बैठेंगे तो उन सारी आँधियों, थपेड़ों, बाढ़ों और का भी अध्ययन करना पड़ेगा जो कवि के सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, आध्यात्मिक; सांस्कृतिक और राजनैतिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में समय-समय पर उठी थी और गिरी थी। उस पुष्प का खिलना मुफ्त नहीं हुआ। पुष्प के उस तरह सर्वजन समक्ष दृष्टिगोचर होने के पहले ही तात्त्विक रूप में वह वृक्ष में मौजूद था। यह भीतरी पुरुष-तत्व ही महत्वपूर्ण बात है। अब यह सोचा जाय कि वह मानसिक धरातल और सामाजिक तथा पारिवारिक वातावरण कैसा रहा होगा जहां से "स्मृति की रेखायें" की उस अद्भुत भाषा सौष्ठव और शब्द चित्र संभव हो पाया? उस अनुपम कृति 'नीहार' का भाव गांभीर्य प्रकट हो सका? उस अद्वितीय रचना 'यामा' की मनोहारिता सम्भव हुई? और 'दीपशिखा' की जगमग ज्योति विकीर्ण कर सकी? हिन्दी के गद्य-पद्य दोनों क्षेत्रों में आज निःसन्देह ऐसा कोई भी साधक-साधिका नहीं है जो नतमस्तक हुये वगैर उस वीतरागिन महादेवी के सामने खड़े हो सके। इस चरमोत्कृष्ट सिंहासन पर वे किसी की सहायता से या समर्थन से या पैरवी तथा मेहरबानी के बल से आरूढ़ नहीं हुई। उनके भाव-भागीरथी और अश्रु-सलिल से द्रवित होकर स्वयं सरस्वती उनकी कलम पर आ विराजी, तभी तो उन्हें यह सर्वजन सम्मानित सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ। पढ़कर कोई भी कुछ लिखते नहीं भाई। साहित्य श्रमसाध्य नहीं है, न धन से प्राप्य ही। यह साधना से ही प्राप्य है, परमेश्वर कृपा से ही प्राप्य है और परमेश्वर-कृपा पाने के लिए भी अपनी गूढ़तम शर्त है। आज के कौन कवि या साहित्यिक ऐसे हैं जो इन शर्तों को जानना चाहते हैं? पृष्ठ-पोषकों और राजनीतिक गुट संचालकों की मेहरबानी के बल पर बन्दूक की गोली जैसे जो आगे की ओर कूद जाते हैं, वे थोड़ी दूर तक भले ही निकल जाय, पर निस्सन्देह बुरी तरह गिरे हैं - गिरेंगे भी पृष्ठ-पोषक और राजनीतिज्ञ किसी अपनी स्वार्थ नीतिवश आपके पीछे रहते हैं और आपका गुणगान करने लगते हैं। वे जब आपकी आलोचना या शिकायत करते हैं तो आप निश्चित रह सकते हैं पर जब वे आपकी तारीफ और गुणगान करने लगते हैं तो आपको घबराने की जरूरत है।

कवि गुरू रवीन्द्रनाथ का शब्द चित्र महादेवी ने एक जगह उपस्थित किया है और साथ ही उनका एक तूलिका-परिचय भी। मैं उन दोनों को देखते ही उछल पड़ा और मन में विचारा – हे प्रभु! मुझमें ऐसी विलक्षण प्रतिभा क्यों नहीं उदय होती? मैंने क्या गलती की? हिन्दी तो सभी लिखते

हैं। तूलिका तो कोई भी उठा सकते हैं। पर किसी-किसी की कलम और तूलिका पर माँ सरस्वती स्वयं आकर खेलने लगती है। क्या रहस्य यह भी? घर तो सभी को हैं। पर मेरे पाठक! आप जरा तकलीफ उठाकर इलाहाबाद तक जायें और महादेवी का घर जरा देख आवें आप दंग रह जाइयेगा। जैन-देवालय जैसे पवित्र और शुभ्र आपको उनका घर नजर आयेगा। (हिन्दू देवालय नहीं) और उसके भीतर उन्हें एक देव-विग्रह जैसे स्नेहमयी वह मातृरूप है! और हम अब अपने-अपने घर और व्यक्तित्व का भी बारीकी से अध्ययन करें। अपने-अपने भीतर हम सभी जानते हैं कि अच्छी और बुरी क्या चीज है और हम स्वयं कैसे हैं और किस स्तर के हैं। हम इतनी पतित और हीनावस्था में क्यों पड़े सड़ रहे हैं भाई? सोचा जाय। सोचा ही जाय। लाभ ही होगा। तो मेरा कहना यही है कि कवि का परिचय उनकी रचनायें नहीं, उनका जीवन है, उनकी आत्मा की आकाँक्षाएँ तत्सम्बन्धी उनकी तड़प और उससे उपजी उनकी वेदना और आँसू है। ऐसे कवि को लिखना कोई जरूरी नहीं है। असफल कवि ही लिखते हैं। रामकृष्ण और चैतन्य से बढ़कर कवि कौन? राधा से बढ़कर कवयित्री कौन रही है? पर उन लोगों ने कभी साहित्य प्रणयन नहीं किया है। विचार-सामीप्य और स्वभाव-सामीप्य ही अभिनन्दन अथवा समर्थन करने का अधिकार निर्णय करता है। विनोबा की उस अखण्ड पद-यात्रा का गुणगान वे ही कर सकते हैं जो उसी संस्कृति और लक्ष्य के हैं। भगवत् प्रेम से जो आहत नहीं वह राधा के आँसू को विरह-वेदना के मर्म कभी नहीं समझ सकेगा, साम्यवादियों और नास्तिकों की नजर में राधा पागल है, मीरा भी कवि नहीं। पर मीरा और राधा क्या रही हैं यह बात महादेवी समझती होंगी। महादेवी का हृदय राधा के नाम श्रवण से ही जोर-जोर से धड़कने लगता है और अपने अश्रु-सलिल को छिपाये वह एकान्त खोजती हैं। ऐसा क्यों? पाठक, किसी का भी आप उपहास न करें। आप स्वयं भी विरंचि नहीं हैं। महादेवी की इस अखंड वेदना और सनातन अश्रुप्रवाह का मूल्यांकन आपकी नजर में कुछ नहीं है तो आप चुप रहिए। क्योंकि उसका मूल्यांकन वे ही कर सकेंगे जो उसी प्रकार और स्तर की पीड़ा और यातना और लक्ष्य से आहत हैं। ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों को ही इस अभिनन्दन ग्रन्थ में लिखने का अधिकार है। हे भगवान्! क्या यह नारी मूर्ति चाहती थी? उस मर्माहत वेदना का क्या कारण था? क्या रहस्य था? एक बार सुप्रसिद्ध भारतीय मनीषी आचार्य गुरुदयाल मल्लिक रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में अश्रुमोचन करते हुए मुझसे बयान कर रहे थे—मायवन शायद ही कोई ऐसा दिन बीता हो जिस दिन गुरुदेव किसी एकान्त स्थान का आश्रय न ढूँढ़ रहा हो और वहाँ चुपचाप बैठा फूट-फूट कर रो न रहा हो। अब यह सोचा जाय; उनका क्या दुःख था। जरूर वह दुःख पैसे, पद या यश के अभाव में नहीं था! रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में लिखने वाले बहुत हुए हैं। पर उनके उन रहस्य भरे अश्रु बूँदों के सम्बन्ध में शोध करने वाले कोई हुए ही नहीं। महादेवी का अभिनन्दन करने हम तुले हुए हैं। किस बात का यह अभिनन्दन? और अभिनन्दन लेकर ही वह क्या करेगी? किस मूल्य का यह? क्या यह उनकी अन्तर्वेदना को कम करने में किसी भी प्रकार से सहायता पहुंचा सकेगा? नहीं! तब? बुद्ध की यह दिलचस्पी कभी नहीं रही थी कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी मूर्त्तियाँ बनें, उनकी पूजा हो और उनके लिए मन्दिर और बिहार बनें। महान् आत्माओं का अभिनन्दन उनको पूर्ण रूप से समझने और उनके बताये गये रास्ते से चलने का हमारे श्रद्धा, निष्ठापूर्ण श्रम को कहते हैं, अपनी साधना और तपश्चर्या में उनसे प्रेरणा और शक्ति ग्रहण करके स्वयं लाभान्वित होकर उन्हीं के जैसे बनने का हमारे बुद्धिमानी पूर्ण प्रयास को कहते हैं। मीराँ के बाद हिन्दी-साहित्य-संसार में महादेवी के समकक्ष का कोई ऐसा व्यक्तित्व प्रकट नहीं हुआ जो करुणा का इस प्रकार महासमुद्र हो उपस्थित किया है। रसों में करुणा को ही प्राधान्य मिलना चाहिए। स्वयं भगवान् बुद्ध ने भी इसी को महत्त्व दिया। प्रभु ईसा का भी एकमात्र कार्य करुणा-रस को पैदा करना रहा है। प्रत्येक धर्मगुरु और साधु-सन्त करुणा को ही महत्व प्रदान करते आये हैं। क्योंकि करुणारस में ही वह शक्ति और गरमी है जो जड़ और पाषाण वस्तुओं को भी द्रवित कर सकती है। द्रवित वस्तुओं को ही हम इच्छा और आवश्यकता के अनुकूल मोड़ दे सकते है। द्रवित हुए

बगैर कोई भी दिशा ग्रहण कर आगे न बढ़ सकेगा। जन हृदय आजकल क्रूर, जड़, स्वार्थ मैले और कहीं-कहीं पाषाण सदृश्य कठोर भी हो गया है। उन्हें करुणारस से द्रवित किये बगैर कोई भी उन्हें अभिवाँछित दिशा की ओर ले नहीं जा सकेगा। यह बुनियादी अनुष्ठान न राजनीतिज्ञों से संभव है, न वैज्ञानिकों या धर्म सुधारकों से ही। लेकिन हाँ यहीं पर कवि का महत्व दिखाई देता है। विज्ञान सभी को कल-पुर्जे घुमाने वाले ही बना देते हैं। राजनीतिज्ञ सभी को धूर्त, बेईमान और क्रूर ही बना देता है। धर्मोपदेशक सभी को अन्धविश्वासी, प्रमादी और पाखंडी ही बना रहे हैं। एक कवि ही ऐसा है जिस पर जनता भरोसा कर सकती है। वही एकमात्र परमेश्वर का विश्वासी प्रतिनिधि आज संसार में रह गया है। मैत्री और करुणा का झंडा लिए दर-दर भूखा-प्यासा, अपमानित अवहेलित आज संसार में सर्वत्र बिलकुल भिखमंगे जैसे कवि को ही मारा-मारा घूमते-फिरते आप पायेंगे। मीरा और महादेवी की वेदना और करुणारस प्रतिवादन का अर्थ हमें इसी धरातल पर खड़े होकर समझने का प्रयास करना चाहिए। महासमुद्र ही अनगिनत बादलों से आकाश को आच्छादित कर सकता है। आप भी बात-बात पर हँस सकते हैं; हँसना चाहते हैं पर रोना कोई नहीं चाहते। हमें कलाकार जबर्दस्ती रुलाते हैं। इसी को सामर्थ्य कहते हैं। आप उस हृदय की जरा कल्पना कीजिए जो अपनी रचनाओं द्वारा आपको रुला देते हैं। जिसके पास पानी है—वही दूसरे को पिला भी सकता है। जिसका दर्द और कष्ट से दम घुट रहा है वही दूसरे को भी दर्द पहुंचा सकता है। इस अनुष्ठान में यह निर्विवाद सत्य है कि महादेवी की कवयित्री मीरा के बहुत निकट तक पहुंच गयी है। ऐसा कहा जा सकता है कि महादेवी की भीतरी सत्ता बराबर मीरा को ही अपना गुरु और आश्रय मान कर चली है, उसी को आगे रखकर उन्होंने कवित्व साधना की है। रस प्रकाशन ही अगर कविता है, भाव नैवेद्य ही अगर कवित्व साधना है तो हिन्दी संसार में मीरा अद्वितीय है। राजघराने में जन्म लेकर और अटूट वैभव के रहते हुए भी वह नित्य वेदना से आक्रान्त रही और अन्त में सभी कुछ त्याग अकेली ही घर से निकल कर अपने इष्ट की खोज में मारी-मारी फिरी। किन-किन प्रकार की प्रतिकूल शक्तियों का उन्हें मुकाबिला करना पड़ा। अपमान, परिहास, व्यंग, आलोचना और निन्दा ही नहीं—जहर भी पीना पड़ा। यही अभिनन्दन मीरा को मिला था। जैसे गुलाब पौधे के कांटे अपने सिर पर गुलाब पुष्प को लिये खड़े रहते हैं उसी तरह इन विपरीत शक्तियों से आवृत मीरा अपने माथे पर कवित्व रूपी पुष्प लिये हमारे सामने हमेशा के लिए खड़ी है। इनसे बढ़कर महादेवी को कौन गुरु और साथी मिल सकना था? सम्भव है आप इस वेदनावाद को तथा इस अश्रुवाद को ज्ञान मार्ग न कहें, पर मैं कहूँगा कि ज्ञान हासिल करने का भी इससे बढ़कर कोई सुगम पथ नहीं है। रामकृष्ण को कहाँ से वह ज्ञान प्राप्त हुआ था?

कोई भी रचना संयोग से या एकाएक प्रकट नहीं होती है। नेपथ्य में प्रत्यक्ष मन के लिए ज्ञात या अज्ञात रूप से इसके लिए अनुष्ठान रहता है। कुरान के प्रकट होने में तेईस बरस लगे थे। बसन्त ऋतु में तरु-लताओं पर किसलय उग आता है। पर इसे बसन्त का प्रताप नहीं समझना चाहिए। तरु-लताएँ बसन्त के पहले की ऋतु काल में इसके लिए तपस्या करती रही हैं। गुलाब पौधे की जड़ ही उस पुष्प को उसी रूप में प्रकट करने के लिए श्रम की थी। बाद में अन्य शक्तियाँ भी जैसे—सूरज, जल, वायु इत्यादि। पर जब गुलाब पुष्प का मूल्यांकन होने लगता है तो इन चीजों की जिक्र तक नहीं होती। संसार के अब तक के इतिहास में हमें मात्र पुरुष-तत्व का ही विकसित रूप देखने को प्राप्त हुआ है। चाहे वह किसी भी युग में हो या किसी भी क्षेत्र में। उसी अनुपात में हमें नारी-तत्व का विकसित रूप क्यों नहीं प्राप्त होता? नारी-तत्व को हम सदा से शोषित और अविकसित ही देखते आ रहे हैं। नारी-प्रतिभा, नारी साहस और नारी-नेतृत्व का परिचय अब मानवता को देखना बाकी है और इसी के उपक्रम स्वरूप हमें महादेवी की ओर देखने और उसकी कृतियों को परखने की जरूरत है। क्योंकि महादेवी एक ऐसे युग का प्रभात-तारा के रूप में पूर्वक्षितिज में उदित है जिसका सूरज अब प्रकट होना बाकी है। इस प्रभात-तारा के रूप में महादेवी के सम्पूर्ण जीवन को ही आप एक महाकाव्य कह सकेंगे और उस महाकाव्य का ही सांगोपांग अध्ययन हमें आज

अपेक्षित है। कवि अपनी रचना वस्तुतः अन्तरिक्ष के ही चित्रपट पर अंकित करता है। आकाश ही वह ताम्र पत्र है, कवि का स्पन्दन ही वह प्रसून-तूलिका है और वह परमेश्वर प्रतिनिधि वेदव्यास का अमर पुत्र भारतीय कवि लिखता आ रहा है अनादिकाल से अनन्तकाल तक के लिए। 'नीरजा' और 'यामा' में प्रतिपादित प्रत्येक स्पन्दन प्रथम अत्यन्त स्पष्ट रूप से गगन मंडल में लिखे गये थे, नक्षत्र लोक में पढ़े गये थे और उस एक-एक स्पन्दन का इतिहास कवि के अनेकों जन्म पहले से प्रारंभ हुआ था। असल में कवि भी क्या है? वह शरीर थोड़े ही है! वह एक खास प्रकार का भाव रूपी भागीरथी है। वह विष्णु पाद से निकलकर निरन्तर तीनों लोक में बहती आती है। कभी उसका कुछ जल इधर प्रकट होता है तो कभी उसका कुछ प्रवाह उधर दिखाई देता है। महादेवी की कवयित्री नव-विकसित कमलिनी जैसे किसी अद्भुत और संभव मानवीय व्यवस्था का परिचय देने को जन्म ली थी। प्रत्येक पुष्प यही बताता है कि उसमें पारिजात बनने का सामर्थ्य है, सतत् विकासोन्मुख, सदा सुगन्धमय, अमर और अक्षय। जैसे मैंने अन्यत्र जिक्र किया पुष्प उस वृक्ष की किसी भीतरी रहस्यमय चाह का परिचय देने ही प्रकट हुआ वैसे ही महादेवी जी मानवता रूपी इस शाश्वत वृक्ष का किस गूढ़तम भीतरी चाह का परिचय देने के लिए ही प्रकट हुईं यही तो अध्ययन करने का विषय है। भले आदमी का परिचय भले रूप में ही मिला करता है। उत्तम चाह उत्तम रूप ही को अपना माध्यम बनाएगी। इसलिये पुष्प का उस अनुपम सौंदर्य, उसकी वह निःस्वार्थ सुगन्ध उसकी कोमलता और मधुकलश, सर्वोपरि उसका वह लक्ष्य, फल को प्रकट करना, बीज को पैदा करना ये ही सब पर्याप्त है, वृक्ष की उस भीतरी चाह का महानतम रूप का अध्ययन करने। चाह का भी अपना एक खास और विलक्षण दार्शनिक व्याख्या है। हम प्रत्येक की भीतरी एक-एक चाह का तात्पर्य यह है कि हम तत्कालीन व्यवस्था की अपूर्णता से परिचित हो चुके हैं, उस अपूर्णता से उत्पन्न नैराश्य और वैमनस्य और विद्रोह की भावना से हम आक्रान्त हैं। यानी प्रत्येक पुष्प उस वृक्ष की विद्रोह भावना का ही विस्फोटक है। यह विद्रोह-भावना ही संसार की सनातन गति तत्व है। दुनिया ठीक रहती तो नदियाँ बहना जरूरी नहीं समझती, वृक्ष फूलना-फलना आवश्यक नहीं समझते, सूर्य-चंद्रमा और तारे भी इस तरह प्रकाशित होना अनावश्यक समझते। किसी खास असंतोष के कारण ही किसी खास उम्मीद और लक्ष्य प्राप्ति के मोह में ही ये सारे प्रकृति तत्व इतने प्रवाहशील हैं। प्रत्येक प्रवाह-तत्व तत्कालीन व्यवस्था की अपूर्णता से उपजी विद्रोह-भावना है, बेहतर व्यवस्था के लिए किया गया प्रयत्न का परिचायक है। पुष्पों का अनादर व्यवस्था सौंदर्य की त्रुटियों को ही दर्शाता है। मानव युग-युग से पुष्पों का अनादर ही करते आ रहे हैं। फिर भी मानवता पुष्पों के पीछे पागल भी है। उसी के पीछे-पीछे चलने में ही अपना कल्याण अनुभव करता भी है। राजे-महाराजों का इतिहास लिखा जाता पर वेदव्यास, वाल्मीकि, कालिदास, बाणभट्ट आदि का इतिहास नहीं लिखा जाता। उनके भीतरी प्रवाह-तत्व और विद्रोही भावना का इति वृति लिखा नहीं जाता। राजनेताओं ने कहाँ-कहां शादी की, कहां कहां महल बनाया, कितने-कितने मानवरूपी भेड़-बकरों को मार-मार कर बहादुरों की सूची में नाम लिखाया—यही सब तो आजकल के विद्वानों के लिए इतिहास का विषय है। युग भी रुख बदलता है। अब राजा का या धर्म का युग नहीं रह गया। यह राजनीतिज्ञों और अखबारों का युग है। अब मनीषियों और पुरोहितों का जमाना नहीं, सम्पादकों और पण्डों का ही युग है। आज के मानव के लिए महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रामायण या महाभारत नहीं, दैनिक अखबार है और उसमें लिखने वाले से बढ़कर महादेवी और मीरा क्या, स्वयं वेदव्यास भी कुछ नहीं। इस अखबारी-प्रचार युग में राजनीतिज्ञ ही सर्वशक्ति सम्पन्न हैं या यों कहा जाय, राजनीति ही शक्ति और प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और दिग्विजय प्राप्त करने का एक मात्र माध्यम है। जन मानस राजनीतिक आँधियों में मृत पत्रियों जैसे कभी इस ओर कभी उस ओर उड़ा जा रहा है। मगर पते की बात यह है कि उस आँधी में भी हीरे जमीन पर पड़े चमकते ही रहते हैं। आकाश में नक्षत्र मण्डल अवरुद्ध गति से प्रकाशशील ही रहते हैं। दुःख यही है कि यह मूल बात मानवता भूल जाती है। आँधी में उड़ते हुये भी बीच बीच में अपने पैरों तले तिरस्कृत और अवहेलित पड़े उन हीरों की चमक की

ओर वह कभी-कभी आकृष्ट होने लगती है। उस अनन्त आकाश में निरन्तन चमकते हुए उन रहस्य भरे नक्षत्रों की ओर भी कभी वह देखने लगती हैं; और तब वह सोचने लगती है कि वे ऐसा वहां क्यों है; क्या कहने का प्रयास कर रहे हैं; कहीं हमें कुछ संकेत तो नहीं कर रहे हैं ?

महादेवी की कवित्त्व साधना समस्त भारतीय जनजीवन की जड़ता और विपरीत गति तत्त्व के विरुद्ध उस आजन्म पुजारिन की विद्रोह भावना है। अपमानित, शोषित और दीर्घ काल से तिरस्कृत और पीड़ित पड़ी नारी प्रतिमा की वह एक खुली ललकार है ! नारी प्रतिमा की संभावनाओं का वह एक ज्वलन्त परिचय है। स्त्री मात्र बेटी पत्नी और मां बनने के लिए इस भूतल पर नहीं प्रकट होती बल्कि सम्पूर्ण मानवता को परमेश्वर का परिचय देने, उसे परमेश्वर की ओर अग्रसर करने और इस कार्य में उसके सम्मुख आने वाली प्रत्येक विपरीत शक्ति को परान्मुख करने की भीतरी शक्ति, साहस और सामर्थ्य को प्रदान करने के लिए ही इस भूतल पर प्रकट होती है, इस सत्य का एक दिव्य दृष्टांत स्वरूप मैं महादेवी को पाठकों के समक्ष उपस्थित करता हूँ। प्रत्येक वस्तु की कीमत और संभाव्यता का पहले ही पता चलाये रखना बुद्धिमानी है। कोयले में आग है, इस बात का पता पहले किसने लगाया ? राम कृष्ण भगवान का अवतार था इसे पहले एक साहित्यकार ने ही घोषित किया। बाद सभी उसको मानने लगे। यहाँ भी यही बात है। इस अभिनन्दन समारोह का और इस सम्मान प्रदान का भी इतना ही तात्पर्य है कि दुनिया का ध्यान महादेवी के उस अद्भुत प्रकाश और गतितत्त्व की ओर आकृष्ट हो जाय कि दुनिया इससे लाभान्वित हो जाय, प्रेरणा, शक्ति और दिशाज्ञान प्राप्त कर ले। महादेवी का कवित्त्व-व्यक्तित्त्व इसी सत्य की घोषणा करता है कि—हे मनुष्यों, तुम्हारी बेटी, पत्नी और माँ, बहन में भी ऐसी ही विलक्षण और युग प्रवर्तक प्रतिभा सुषुप्त और नाकाम पड़ी हुई है; और उसे जाग्रत तथा पुष्पित होने न देकर तुम संसार और परमेश्वर के प्रति एक साथ ही घोर अन्याय और नुकसान कर रहे हो। महादेवी की जीवन-गाथा यह समझाती है कि हे मनुष्यो, तुम्हारी दुर्वृत्तियाँ मात्र तुम्हीं को खत्म नहीं कर रही, तुम्हारा परदोषान्वेषण-व्यसन-मात्र तुम्हारी ही आत्म-हनन नहीं बल्कि तुम अपने साथ इस निरीह जनता को भी डुबा रहे हो, इस पवित्र अन्तरिक्ष को भी दूषित कर रहे हो। इसलिए तुम अपने को और मानवता को भी उन हीन संस्कारों से मुक्ति दिलाने के लिये आज ही से युद्ध-घोषणा करो, उस विपरीत गति से विद्रोह करने के लिए आज ही तैयार हो जाओ। अखबारी हल्ला के कारण कर्णरन्ध्र जिसका फट गया है उन्हें ऐसा प्रतीत हो सकता है कि साधना में दरिद्र, क्रिया में शून्य, धूर्त्तता में प्रवीण राजनीतिक शब्द शूरों के इस युग में साधना सम्पन्न क्रिया के धनी वे निःस्वार्थ और त्यागी साहित्यिक राजहंस सभी निष्प्राण और बेकार हैं, बिलकुल मूर्ख और मृत हैं। क्योंकि वे यह देख रहे हैं कि प्रचार के इस जमाने में चालाकों को ही बड़प्पन और डाक्टरेट प्राप्त होता है, पैसे और ऐश्वर्य हस्तगत होते हैं। मगर भाई ! जरा ध्यान देकर सुना जाय— सूर्य के उदय होने में या पुष्प के सुगन्धित होने में आपने कोई मदद नहीं पहुंचाई, न वे आपसे किसी प्रकार का अभिनन्दन या धन्यवाद की ही आकांक्षा रखते हैं। भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, महादेवी, निराला, पंत प्रभृति हिन्दी के इन आदि पुरोहित, तपोधनी, त्यागी, ऋषिपुत्र ज्ञानी विभूतियों के समक्ष आज की हिन्दी के तथाकथित नये कवि, नये लेखक और नये कथाकार हमें दरिद्र भिखमंगे और खोटे चोर के रूप में ही दिखाई देते हैं। ऐसा कहने का साहस हम इसलिए भी कर रहे हैं कि हम चाहते यह हैं कि ये हमारी पथभ्रष्ट संतान जल्द से जल्द चेत जाय और विदेशी साहित्य चबाना छोड़ अपने ही पूर्वजों का रास्ता जल्द से जल्द अपनाने लग जाय। आज के हिन्दी साहित्यकार प्रकाश के रहते हुए भी अन्धकार में इस तरह बुरे आवृत्त हैं कि उन्हें आकाश का सूरज भी नजर नहीं आता। मगर तिमिर के पतंगों का आवाज अवश्य मधुर लग रही है। हम अंग्रेजी जानने वालों का ही सम्मान करना जानते हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी के भारतीय लेखकों, वक्ताओं और राजनीति के महाप्रभुओं को ही डाक्टरेट आदि विशिष्ट उपाधियों से विभूषित किये जायँगे। हमारे देश के राजनीतिक प्रभुओं और विश्वविद्यालय के ज्ञानी संचालकों की दृष्टि में निराला, प्रसाद आदि निकम्मे थे, महादेवी नाकाम और

मृत है, पंत भी व्यर्थ हैं। इसीलिए तो वे डाक्टरेट आदि उपाधियों से विभूषित होने लायक नहीं। पर पाठक, ये सारी तथाकथित निकम्मी और मृत विभूतियाँ अगर आज अमेरिका, जर्मनी, फ्राँस आदि किसी संभ्रान्त और स्वतंत्र मुल्क में रहती तो अबतक विश्वविख्यात बनी रहतीं और आप भी तब उनकी रचनाओं को कच्चा चबाने में और अपनी भाषा में अनूदित करने में माथा और पसीना एक साथ खर्च किये रहते। हम आपका परिहास नहीं कर रहे ही इतना कह रहे हैं कि निराला, महादेवी आदि का उदय आपकी इस निर्लज्ज मनोवृत्ति के खिलाफ खुला विद्रोह रहा है।

विद्रोह से लोगों में यह भास आने लगता है कि वह कोई क्रूर, खून-खराबी से सम्बन्धित खूँखार और जघन्य कार्य हो। यह सर्वथा एक भ्रान्त धारणा है। विद्रोह की भी वास्तविक प्रक्रिया अतिसूक्ष्म है, अत्यन्त कोमल है। कोमलता के जरिये ही, नरम बनाकर ही हम किसी वस्तु का रूप परिवर्त्तन कर सकते हैं। इसलिये क्रान्ति का प्रतीक शिशु है, पुष्प है, विद्रोह का माध्यम वेदना है, आँसू हैं। क्रोध, जोश, खूँखार हिंसा-प्रवृतियाँ आदि पशु संस्कार का ही परिचायक है। व्याघ्रवृत्ति को गायवृत्ति में परिणत करने के लिए तलवार या बन्दूक काम नहीं देतीं। क्रोध और हिंसा से बाघ को नहीं जीता जा सकेगा—मारा अवश्य जा सकता है। मगर हाँ, प्यार और करुणा से वह अवश्य जीता जा सकता है। इसलिए इन्हीं सारे गुणों को ही विद्रोह-वृत्ति का परिचायक तत्त्व समझना युक्तिसंगत है। इस धरातल पर खड़े होने से ही हमें महादेवी की वे ज्वलन्त और आजन्म विद्रोह-वृत्ति से साक्षात्कार प्राप्त हो सकेगा; और तभी महादेवी सुरम्य और सुदृढ़ लक्ष्य की ओर भारतीय जनता को आह्वान करती हमें दिखाई देगी, एक अति मृदुल और वेदनापूर्ण स्वरलहरी में भारतीय नारी को "उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वारान्निबोधित" का सन्देश और प्रभातफेरी करता हमें दिखाई देगी। कारुणिक आवाज ही मर्मभेदी होती है न कि आसुरी अट्टहास। अट्टहास कर्णरन्ध्र को मात्र फाड़ ही सकेगी। थोड़े ही हृदय को वह प्रभावित कर सकेगा। भय भले ही अट्टहास पैदा करे और इस कारण भेंड़ जैसे भले ही आज्ञाकारी हम हो जायँ मगर प्यार और आत्म चेतना की गुञ्जाइश उसमें तनिक भी संभव नहीं है। जो कार्य लाख प्रवचनों से, भाषणों से और मारपीट से भी सम्पादित नहीं होता, वह कार्य कभी-कभी दो अश्रु बूँदों के प्रभाव से सम्पादित होते देखने को मिलता है। यह बात सत्य है। महादेवी ने मीरा जसे सिर्फ अपनी वेदना और आँसू का ही परिचय दिया है। सूरज भी अपना प्रकाशतम तत्व का मात्र परिचय ही देता रहता है। महादेवी जी ने कभी नारा बुलन्द करने का, गरज-गरज कर किसी खास योजना या सिद्धान्त का प्रचार करने का या समर्थकों को सघटित करने का प्रयास नहीं किया। यह सारा अहंकारपूर्ण शब्द-कोलाहल सदा से पुरुषों का ही रहा है। महादेवी को स्वयं नारी होने का अभिमान है क्योंकि वह उसकी खूबी और श्रेष्ठत्त्व से परिचित है। भगवान रामकृष्ण को कृष्ण का प्यार प्राप्त करने के लिए नारी-रूप में रहकर महीनों साधना करने पड़े थे। गाँधी जी को भी नारी बनने का बड़ा शौक रहा था। स्वयं नेहरू जी भी कई अवसर पर एक लड़की बन जाने की इच्छा प्रकट की थी। संसार के कौन से ऐसे मनीषी हैं जो नारी की विशिष्टतम और सर्वोत्कृष्ट स्तर मर्यादा से परिचित नहीं रहे हैं। मानवता का श्रेष्ठतम उदाहरण गाँधी, बुद्ध आदि से ही लेना चाहिए न कि हम आप जैसे लम्पटों से। नारी चाहे वह किसी भी रूप में हो पुरुष पर सदा से शासन चलायी है। उसे सामने देखते ही पुरुष का दिल धड़कने लगता है, नारी के इस अद्भुत प्रभाव और शक्ति का रहस्य है उसकी अन्तर्सत्ता की करुणा-भावना। महादेवी इसी करुणा-भावना का साकार रूप है। उनकी रचनाओं में इसी का ही प्रवाह है। इसलिए वह असर भी करेगा, अमर भी रहेगा क्योंकि वही सनातन शक्ति है। अपने भीतर के इस शाश्वत भावना से उपजे श्रेष्ठत्त्व बोध और संबल ही महादेवी को जिन्दा रखे हुए है। वह अपनी सुख-शान्ति अपने ही भीतर की इस करुणा-भावना में ढूँढ़ती रही है। इसलिए महादेवी की कवयित्री दुनिया से उदासीन और अपने ही भीतर लीन रही है। लज्जा की बात यह है कि भारतीय जनता सदा से अपने नेता को ढूँढ़ने में यत्र-तत्र दौड़ती फिरी है, उनके जय-जयकार और अभिनन्दन करने में ही अपना अब तक का समय गंवाती आई है उसे अपने कवि को ढूँढ़ निकालने की फिक्र या सद्बुद्धि कभी नहीं रही है। यह कार्य आत्म-जगत जन समूह ही कर सकता है। भूगर्भ के हीरे को आप

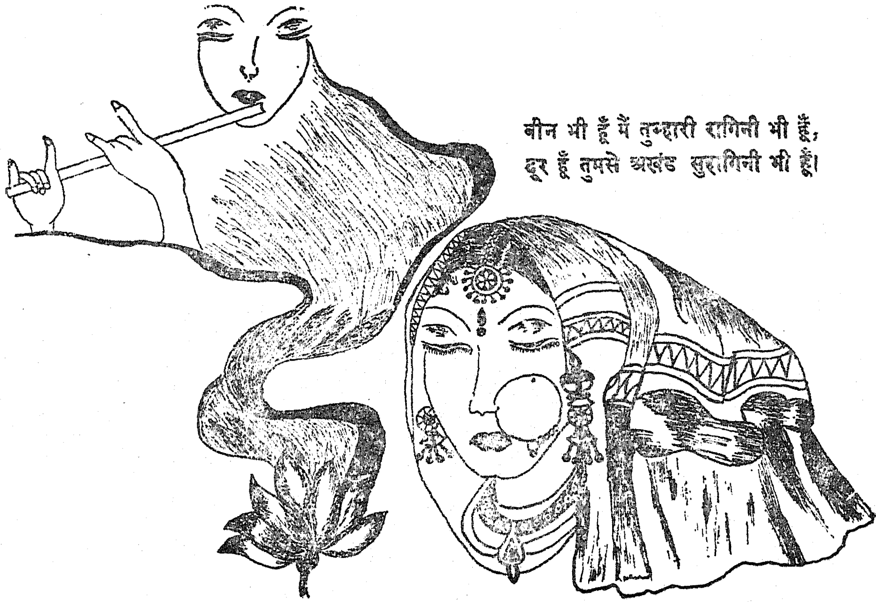
देख नहीं पाते, जान नहीं पाते, इसका यह अर्थ थोड़े ही है कि वे हीरे ही नहीं हैं।

जिस समाज और समग्र राष्ट्रीय चेतना के प्रतिनिधि अथवा अधीनस्थ हो महादेवी ने जन्म लिया था उन दोनों की सीमा का अतिक्रमण कर एक नया लोक का आलोक दर्शाती हुई हमें वह दिखाई देती रही हैं। ऐसे अलौकिक और अग्रगामी बनकर जो यज्ञानुष्ठान और पौरोहित्य कार्य निभा लेते हैं वे ही समाज के सब प्रकार के नेतृत्व करने और शासन सूत्र संभालने के अधिकारी हैं। यह दुर्भाग्य या विधि-वैपरीत्य है कि ऐसे व्यक्ति विशेषों की ओर भारतीय जनता हमेशा से उपेक्षा की दृष्टि ही रही है।

महादेवी की कवित्व-साधना उनकी भीतरी दैवी चेतना का ही परिचय रही है। इस अखंड ज्योतिर्मय दैवी चेतना का मधुरतम गतितत्व को निरंतर अपनी रचनाओं द्वारा अपने अन्य बहुमुखी कार्यों द्वारा भी प्रकाशित करते रहना ही कवयित्री की वास्तविक संस्कृति रही है। यह एक ऐसा अनुष्ठान है जिसे साधारण दर्जे का समालोचक या शिक्षित पकड़ नहीं पाते। मानव चित्त अक्सर प्रपंची रहता है। उनकी आँखें भी वही दर्पण मात्र हैं जिसके जरिये वह दूसरों में अपनी ही सूरत, और गुण-दोष देख लेते हैं। यानी हम अपने ही हित-लाभ, चाह, रुचि, लक्ष्य, साधना आदि को ही दूसरों में भी देखने का प्रयास करते हैं। यह पद्धति और स्वभाव गलत है। किसी भी व्यक्तित्त्व का अध्ययन जैसे शिशु शिक्षा प्रारम्भ करते हैं उसी प्रकार बिलकुल खुला और नग्न मस्तिष्क के साथ प्रारम्भ करना चाहिए। महादेवी की वह आकुल वेदना अपने पिया के लिए यह हमें बावरी मीराँ की याद दिलाती है। यह वेदना वस्तुतः प्राणिमात्र की वेदना है। प्रत्येक जड़ चेतन वस्तु का आज ज्ञात या अज्ञात रूप से यही करुण क्रन्दन है—"पिया प्रकट हो जा।" समूचे संसार का वायुमंडल इसी एक करुण पुकार से आज गूँज रहा है। इसी आर्त्त चाह के प्रतीक स्वरूप हमें महादेवी की ओर देखना चाहिए। उनके व्यक्तित्त्व के अध्ययन के लिए उनकी साहित्यिक रचनायें पर्याप्त साधन नहीं प्रस्तुत करती। अध्ययन भी मात्र बौद्धिक सामर्थ्य से नहीं किया जाता। इसके लिए तत्सम्बन्धी गुणों को भी सिद्ध करना पड़ता है। अध्यात्म वृत्ति के साधक पुरुष ही वेदों का मर्म समझ सकते हैं। एक समाज शास्त्री से जब मैंने एक बार कहा—वेद अपौरुषेय है तो उसने मुझे मूर्ख कहा था और आग्रह किया था कि धर्म का समाज शास्त्र पढ़ो तब समझ जाओगे कि सत्य क्या है? पर जब मैंने वेद को अपौरुषेय कहा था तो मेरा मतलब वैदिक भाषा से नहीं था, उसमें प्रतिपादित ज्ञान से था। ज्ञान सिद्ध मनीषी अपनी ज्ञान चेतना को किसी भी भाषा में बाँध सकते हैं। बाइबिल अंग्रेजी में हम पढ़ते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं हुआ कि ईसा अंग्रेजी के विद्वान थे। मीराँ के पथ के अनुयायी ही मीराँ के आँसू का मर्म समझ सकेंगे। सारांश यह कि महादेवी की भीतरी आध्यात्म-वृत्तियाँ अंश मात्र में ही सही, जिस आलोचक के भीतर सजीव और सक्रिय हैं वे ही महादेवी का मूल्यांकन उनके व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन थोड़ा-बहुत भी करने में सफल उतरेंगे। यों किसी पद का माने बोल देना उस पद के साथ कुश्ती लड़ने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कृष्ण के लिए जिसमें प्यार जगी, पीड़ा उपजी, तड़प उमड़ी वे ही मीराँ के पदों को पढ़ने के अधिकारी हैं। और यह चाह अलास्का के एस्क्रियों में तुरत सम्भव नहीं है। भाव ही कला है। भाव ही भगवती सर्वमंगला सरस्वती भी। भावयुक्त होना ही काव्यात्मक व्यंजकता का परिचायक है। संगीतकार ही संगीतकार का मूल्यांकन कर सकते हैं। भाव पक्ष का पथिक ही भाव सिद्ध कवियों को पहचान कर उनका उचित सम्मान और अभिनन्दन कर सकता है। अभिनन्दन से तात्पर्य मात्र इतना ही है कि गुणों को गुणों के रूप में स्वीकार करना, मान्यता प्रदान करना। आदमी को आदमी मान लेना ही उनका सबसे बड़ा अभिनन्दन है। देश और समाज, धर्म और परमेश्वर जिनके लिए अपने स्वार्थजन्य हितों से अधिक प्यारे रहे हैं वे ही गाँधी को समझ सके हैं। इसी तरह हिन्दी जिन्हें प्यारी है उसी में नवजात स्वाधीन भारत की प्रतिष्ठा और उद्धार जिन्हें नजर आ रही है और इसी-लिए जिन्हें उसमें रवीन्द्रनाथ, खलिल जिब्रान, रोमाँरोलाँ सदृश उत्कृष्ट साहित्यिक विभूतियों को प्रकट होते देखने की जिनमें आकांक्षा है वे ही महादेवी की कवित्व प्रतिभा का अभिनन्दन पूर्ण रूप से कर सकेंगे। वैदिक भारत का नव-जागृत माध्यम उस देव भाषा संस्कृत की प्रतिरूप पुत्री, उपनिषद्, रामायण, महाभारत प्रभृति आर्षग्रन्थों और उनके उन तपस्वी रचनाकारों की परम्परा को ढूँढ़ने निकली

भागीरथ पुत्री के रूप में आज हिन्दी विश्व के रंगमंच पर अवतीर्ण हुई है। यह राष्ट्रभाषा ही नहीं विश्वभाषा के पद पर आरूढ़ होने के लिए ही निकली है और इसे विश्व-भाषा के सिंहासन पर भारतीय जनमानस से पैदा होने वाले बाल्मीकि के वंशज, व्यासदेव के उतराधिकारी, कालिदास, तुलसीदास आदि के प्रतिनिधि; गार्गी, मीरा के विश्वास भाजन, मानवों में पारिजात पुष्प तुल्य तपस्वी लड़के-लड़कियां ही आरूढ़ करा सकेंगे। ऐसे पुण्डरीक तुल्य लड़कों और लड़कियों को भारतीय मिट्टी से खोज निकालने के लिए ही महादेवी का जन्म हुआ है। उनकी रचनायें उनकी उस पवित्र खोज के मात्र उपकरण रहे हैं। उनका समूचा जीवन, उनके जीवन भर की समूची साधना उन उदीयमान विभूतियों को आवाहन करने के लिए ही बीता है। महादेवी की भीतरी उस तड़प का, उस मर्मभेदी वेदना का मूल्य कौन आंक सकता है? अपने प्राण की प्रत्येक सांस में वे हिन्दी-हिन्दी जपती रहती हैं। आज के ये प्रोफेसर साहित्यिक, पेशेवर समालोचक और छंद, लय संयम से मुक्त स्वच्छन्द कवि और नये कथाकार इस आजन्म पुजारिन की अन्तर्पीड़ का क्या महत्त्व समझेंगे! हिन्दी सेवियों की वह परम्परा पंत, महादेवी तक आकर खड़ी है मानों पूर्ण-विराम ही वहां पड़ गया हो। अब नया वाक्य पैसे और अखबारी प्रचार से धन कुवेरों ने प्रारम्भ किया है। सभी देवता इस बाजार में बिकते जा रहे हैं। स्वयं ब्रह्मा के भी बिक जाने का भय दिखाई दे रहा है। अभिनन्दन समारोह करने हम निकले हैं। हम उनका अभिनन्दन तब करेंगे, उनके उर के उत्पीड़न का मर्म तब समझेंगे जब हम स्वयं अपने-अपने भीतर से एक-एक रवीन्द्रनाथ को और टाल्स्टाय को प्रकट करने में सफल होंगे। हम में यह महत्वाकांक्षा और उसके लिए आवश्यक पागल साधना को उपजाने के लिए ही महादेवी का सम्पूर्ण जीवन बीता है। महत्वकांक्षायें ही जीवन है। जिस व्यक्ति और जाति की जितनी ही अधिक महत्वाकांक्षायें हैं उनमें उतनी ही अधिक शक्ति का प्रादुर्भाव होने लगता है। जिनके सामने जाज्वल्यमान महत्वाकांक्षायें उदित और प्रकाशमान नहीं हैं वे जड़ हैं मृत हैं। पंत, निराला और महादेवी के टक्कर में आज हिन्दी में कोई साधक हैं? क्यों नहीं? तभी तो सभी राजनीतिज्ञ-ज्ञानी हिन्दी का परिहास रात-दिन कर रहे हैं। साहित्य-साधना इन विपरीत शक्तियों से एकदम युद्ध करना है। निराला हिन्दी का अपमान देखकर घायल थे और उसी दर्द से वे मरे। पंत को कितना सम्मान प्राप्त हुआ? महादेवी को ही आज कौन पूछ रहा है? यहाँ तो राज-नीतिज्ञों और कूटनीतिज्ञों की ही जय बोली जायगी। धूर्तों के राज्य में चोरों का ही गुणगान संभव है। सार्वजनिक क्षेत्रों में अनधिकारी व्यक्तियों का ही बोलबाला है। उनकी उन आसुरी वृत्तियों पर अग्नि वर्षा करने के लिए जन्मा वह युवक कवि आज हिन्दी में कहां है? देश अनगिनत जिन्दी लाशों से भरा पड़ा है। उन पर अमृत वर्षा करके उन्हें इन्द्रतुल्य पराक्रमी और यशस्वी बनाने के लिए जन्मा वह महान् तपस्वी युवक लेखक आज हिन्दी में कहां है? अपने इन आत्मज पुत्रों और पुत्रियों को पाने के लिए ही महादेवी जीवन भर तपस्या की है। महादेवी की साहित्य-साधना का गूढ़तम रहस्य यही रहा है। क्या हम अभिनन्दन करने वाले उनके जीवन भर भी इस भीतरी तपस्या के यज्ञ कुण्ड को चालू रखने लायक हैं? अभिनन्दन करना अनुगमन करना है। भगवान् बुद्ध ने महापरिनिर्वाण के अवसर पर अपने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा था—बुद्ध अपने विचारों, योजनाओं और कार्यों में ही सजीव हैं न कि उनकी मूर्त्तियों में। इसलिए मेरे इस परमहितकारी कार्य का ही अलख सर्वत्र जगाते फिरो। मगर बाद की घटनायें यह बताती हैं कि उस महाप्रयत्न के लिए किसी में हिम्मत नहीं आई। पर उनके नाम पर मन्दिर, बिहार, मूर्त्तियां सर्वत्र खड़ी हो गयीं। तो मेरा यही कहना है कि समर्पण से सम्पादित नहीं हो सकेगा। हममें भी वह वेदना आवे, वह उर-पीड़ा जगे, हमारी आंखों से भी वह अविरल अश्रुधारा बहे और हम भी हिन्दी की धवल पताका को हाथ में लिए सुमेरु शिखर पर चढ़ जाने के लिए तैयार हो जायँ, चढ़े। हमारा यही कार्य वस्तुतः महादेवी का अभिनन्दन है। महादेवी के लिए समूचा विश्व ही भारतवर्ष रहा है। उनके इस वृहत्तर भारत की सीमा रेखा चारों ओर के क्षितिज हैं। पृथ्वी का प्रत्येक मुल्क महादेवी के भारत का एक-एक अंग मात्र है, एक-एक प्रदेश मात्र है। इसलिए हमें भी उसी दिशा को लक्ष्य में रखकर भारतीय राष्ट्र की रचना करनी है। हिन्दी को ही उन्होंने इस वृहत्तर भारत की भाषा मानी है। अतः हिन्दी की श्रीवृद्धि तदनुकूल स्तर

पर उठा लेना है। ये सारे कार्य, ये सारे महान् अनुष्ठान ही वस्तुतः महादेवी का अभिनन्दन है। निर्जीवों से तथा जिन्दी लाशों से इस प्रकार का अभिनन्दन सम्भव नहीं है। क्यों हम उस विश्व विजयी साधना के लिए उपयुक्त पात्र नहीं हैं? निरन्तर अपने कार्यों में समूची शक्ति के साथ भिड़े रहने की क्रिया को ही साधना कहते हैं। साधना ही तपस्या भी। वह सर्वाङ्ग-त्याग मांगता है। तुलसीदास अपनी पत्नी का चेहरा देखते रात-दिन उन्हीं के पास बैठे अपने जीवन व्यतीत कर देते तो उनके भीतर से रामचरित्र मानस जैसा अद्भुत ग्रन्थ का प्रादुर्भाव नहीं होता। अपने भीतर के दैवी तत्वों से वेदव्यास के चमत्कार को अपनी कलम पर प्रकट करके विश्व को रोमांचित कर देना, अचम्भे में डाल देना और उसे एक नयी दिशा की ओर प्रविष्ट करा देना कोई असंभव कार्य नहीं? कठिन भी नहीं, सुगम ही है। पर चाहता ही कौन? प्रश्न यही है। डाक्टरेट के प्यासे, पैसे के भिखमंगे, अखबारी यश के लिए लालायित आज के ये निर्जीव ठेकेदार साहित्यकार इस पुण्य भूमि की वेद व्यास-परम्परा को अक्षुण्ण नहीं रख सकेगा, नहीं रख सकेगा। पुरातत्व विभागों के विद्वानों से यह अनुरोध करने की जरूरत है कि वे खोज और शोध करके बता दें कि वेदव्यासी-परम्परा कहाँ तक आकर पूर्ण विराम ली है ताकि वहाँ से हम फिर अपना जीवन आरम्भ कर सकें, जागरण के इस युग में हमें भी अपने साहित्य का श्रीगणेश उस पूर्ण विराम के सन्धि स्थान से ही करना है। जरा सोचा जाय; कठोपनिषद भी एक कहानी है। और आप भी कहानीकार हैं। "न में मृत्युशंका न जातिर्नभेदः दितानैवभेवम् न माता न जन्मः बन्धुर्नमित्रम् गुरुर्नैव शिष्य, चिदानन्दरूपम् शिवोहम् शिवोहम्" यह भी एक कविता है। जैसे कि बादल गरज रहा हो। क्या हिम्मत है इस कवि की? अपने को शिव ही घोषित किया? सुनते ही श्रोताओं की धमनियों में रक्त नहीं, अग्नि ही प्रवाहित होने लगती है और वह फौरन सिर उठाकर आकाश की ओर देखते हुये विचार करने के लिए मजबूर हो जाता है, हां ठीक ही तो, मेरी ही बात कही गई है—मैं ही शिव हूं, मैं ही चिदानन्दरूप हूं। ऐसी बिल्ली थोड़े ही हूँ कि म्याऊँ करते हुए विश्व के बाजार में रोटी के टुकड़े के लिए भीख माँगते हुए सर्वत्र मारा-मारा फिरा जाय। इस प्रकार की आत्मचेतना के बाद ही मनुष्य काम के लायक बन जाता है। यह आत्म-चेतना की आग इन जड़ तुल्य प्राणियों में लाना ही कवि कार्य है। और हे नये कवि, आप भी कविता ही कर रहे हैं। क्या लिख रहे हैं भाई साहब आप? रचनाओं द्वारा साहित्यकार अपने भीतरी मूल्य का ही परिचय दे सकेगा। भीतर का लम्पट और शृगाल क्या लिख सकेगा, सोचा जाय। बाहरी चालाकी, भीतरी शक्ति का नहीं, कमजोरी का ही द्योतक है। प्रच्छन्न गुण, गुप्त त्याग, मूक प्यार आदि ही कवित्व-साधना की पूंजी है। अब आप ही सोचें कि आप वेदव्यास पुत्र कहलाने लायक हैं। जो वाल्मीकि जैसे तपस्या कर सकते हैं, सूर, तुलसी और मीरा जैसी अखण्ड साधना में जीवन खपा देने की हिम्मत रखते हैं और आकांक्षा रखते हैं वे ही उस पूर्ण विराम से फिर नए सिरे से भारतीय साहित्य सृजन का सूत्रपात कर सकते हैं। अंग्रेजी साहित्य चलाने वाले इस कार्य के लिए समर्थ नहीं साबित होंगे। वाल्मीकि के झन्डे का स्पर्श करने की भी उनमें पवित्रता नहीं है और आपको मालूम होना चाहिए—हिन्दी का नींव वाल्मीकि ने ही प्रथम इस मिट्टी में डाली थी। आप में वह पवित्रता लाने के लिए ही महादेवी ने जन्म भर श्रम किया। ऐसे तेजोमय लड़के और लड़कियाँ ही महादेवी का अभिनन्दन करने, उस देव विग्रह के समक्ष आरती उतारने के अधिकारी हैं। राम-कृष्ण की तपस्या व्यर्थ नहीं गई थी। इसका ज्वलंत प्रमाण तो 'रामकृष्ण मिशन' है जो आज विश्व के कोने-कोने में भारतीय संस्कृति का श्वेत झण्डा फहराते हुए सक्रिय है। मेरा यही कहना है कि महादेवी की भी यह आजन्म तपस्या व्यर्थ नहीं जाएगी। निस्सन्देह हिन्दी में निकट भविष्य में ही युग प्रवर्तक चमत्कार दिखा देने वाले शुकदेव तुल्य युवक प्रकट होने वाले हैं जो अपनी ही दीप्त सिद्धियों के माध्यम से हिन्दी को विश्व व्याप्त करके दिखलायेंगे। भारतवर्ष तपस्या प्रधान देश रहा है। मानवता तपस्वियों पर ही टिकती है। उन महान विभूतियों के सहारे ही हम निर्जीव सब साँस ले रहे हैं। इसलिए हिन्दी की वे आने वाली विभूतियां ही मानवता का त्राण है!


बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ,
दूर हूँ तुमसे अखंड सुहागिनी भी हूँ।


महादेवी
अभिनन्दन
ग्रन्थ

अनुभूति

•

इस खण्ड में महादेवी जी की समस्त कृतियों पर विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं।

•

महादेवी वर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व

★

रामस्वरूप आर्य

महादेवी जी ने स्वयं को विभिन्न उपमानों द्वारा प्रस्तुत किया है यथा-विकल सरिता, तरल अश्रु, विरल उर्मि, दीप, सुमन, मधु दिन की लहर, अजान मुग्धारश्मि, कोमल गात मधु श्री, सुकुमार तारक, मधुमास, सांध्य गगन एवं नीर भरी बदली आदि। इनमें मुझे दीपक की उपमा उनके लिए सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। दीपक-स्नेह जिसका संबल है, जो स्वयं जल कर दूसरों को प्रकाश देता है—दूसरों को मार्ग सुझाता है। उसके प्रकाश-पुंज में उसके हृदय का उल्लास समाया रहता है। निज का जीवन-दान जैसे उसका स्वभाव बन गया है। इसी प्रकार महादेवी जी ने भी तो अपने हृदय की कोमल-भावनाएँ दूसरों के लिए बिखेर दी हैं। उनके विस्तीर्ण करुणांचल में जहाँ एक ओर विश्व का दुख दर्द समाया हुआ है, वहाँ संसार के छोटे से छोटे प्राणी के लिए भी उनके अन्तस् की ममता उमड़ पड़ी है।

अब तक महादेवी जी के पाँच कविता-संग्रह हमारे सम्मुख आ चुके हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं—नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत और दीपशिखा। इनमें से प्रथम चार का सम्मिलित रूप 'यामा' है। उनका एक और काव्य-संग्रह 'सप्तपर्णा' है, जिसमें उनकी संस्कृत से अनुवादित कविताएँ हैं।

महादेवी जी के काव्य में दुःख की प्रधानता है। उन्होंने जीवन में दुख को सर्वोपरि स्थान दिया है। उनके गीतों में आद्यन्त वेदना और करुणा का साम्राज्य छाया हुआ है। उनका अन्तस् पीड़ा से ओत-प्रोत है। यह पीड़ा उनके मानस में भीगे वस्त्र के समान लिपटी है :—

> पीड़ा मेरे मानस में—
> भीगे पट-सी लिपटी है।

'नीहार' और 'रश्मि' में इस दुखवाद की पूर्ण छाया विद्यमान हैं। 'नीहार' में पीड़ा का साम्राज्य बसाया गया है। मिटना यहाँ निर्वाण है और रोदन पहरेदार—

> पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
> उस दिन दूर क्षितिज के पार।
> मिटना था निर्वाण जहाँ,
> नीरव रोदन था पहरेदार॥

कवयित्री उपहार स्वरूप प्राप्त होने वाले उस अमरलोक को ठुकरा देती है जहाँ वेदना, अवसाद और जलन नहीं है क्योंकि इनके अभाव में मिटने का स्वाद जो प्राप्त नहीं हो सकेगा—

> ऐसा तेरा लोक, वेदना
> नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
> जलना जाना नहीं, नहीं
> जिसने जाना मिटने का स्वाद !

वह मीठी-मीठी पीड़ा में अपने जीवन के प्याले को डुबो देना चाहती है। जीवन का प्याला—जो आँसुओं से भरा हुआ है—

> इस मीठी-सी पीड़ा में
> डूबा जीवन का प्याला।
> लिपटी - सी उतराती है
> केवल आँसू की माला॥

'रश्मि' में इस दुखवाद के साथ चिन्तन का अंश भी मिल गया है। यहाँ कवयित्री दुख के अवगुण्ठन में छिपे प्रियतम को ढूँढ़ने के बहाने विश्व के कण-कण से परिचय प्राप्त करना चाहती है—

तुम मानस में बस जाओ
छिप दुःख की अवगुण्ठन से;
मैं तुम्हें ढूँढने के मिस
परिचित हो लूँ कण कण से।

वह कुमुद दल की वेदना के दागों को पोंछती हुई, अश्रु-रश्मियों के पीछे, दूर के संगीत-सा संकेत करती हुई किसी अज्ञात शक्ति का आभास पाती है—

कुमुद-दल से वेदना के दाग को,
पोंछतीं जब आँसुओं से रश्मियाँ,
चौंक उठतीं, अनिल के निश्वास से,
तारिकाएँ चकित-सी अनजान-सी,
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है?

'नीरजा' में वे दुख के साथ कभी-कभी सुख का भी अनुभव करती हैं। शनैः शनैः उनका विषाद मिटता-सा प्रतीत होता है। 'सान्ध्य गीत' में यही भावना और अधिक परिष्कृत रूप में व्यक्त हुई है। स्वयं कवयित्री के शब्दों में—"नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहलमिश्रित वेदना उमड़ आती थी—जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहरी उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था। परन्तु नीरजा और सान्ध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख दुःख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा।"[1]

'नीरजा' के गीतों में वेदना के अंधकार पर सुख स्वर्णिम विहान बन कर छा गया है और भीगे अधरों पर निश्वासें स्मित का इन्द्रधनुष रचने लगती हैं। अश्रुओं के कोष पर आज पहरा लग गया है। मनमोहक-वातावरण प्रिय के आगमन का संकेत कर रहा है—

[1]. यामा: अपनी बात पृ० ६।

सघन वेदना के तम में सुधि,
जाती सुख सोने के कण भर;
सुरधुन नव रचतीं निश्वासें,
स्मित का इन भीगे अधरों पर;
आज अश्रुओं के कोषों पर,
स्वप्न बने पहरे वाले हैं!
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?

कवयित्री ने उस निस्सीम प्रिय के लिए स्वयं को मिटा दिया है। अन्ततः वह उसके लघु हृदय के कोमल बंधन में बंध जाता है फिर तो विरह की काली रात में उसे मिलन का मधुर प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है—

मैं मिटी निस्सीम प्रिय में
वह गया बँध लघु हृदय में
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात कह रे!

'नीरजा' के संबंध में डा० विजयेन्द्र स्नातक के निम्नलिखित शब्द द्रष्टव्य हैं "'नीरजा' यदि अश्रुमुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है, तो साथ ही आत्मामन्द के मधु से मधुर भी है।"[1]

'सांध्य गीत' तक पहुँचते-पहुँचते कवयित्री को विरह की घड़ियाँ 'मधुर मधु की यामिनी सी' प्रतीत होने लगती है—

विरह की घड़ियाँ हुईं अलि-
मधुर मधु की यामिनी सी!

'दीपशिखा में साधना के विभिन्न सोपानों को पार करती हुई कवयित्री अपने लक्ष्य की ओर पहुँचती है। यहाँ सुख-दुःख को आच्छादित कर लेता है। "सांध्य गीत" में जहाँ दुःख और सुख का सामंजस्य पूर्ण हुआ था, वहाँ दीपशिखा में दुःख अपना दर्शन खोकर सुख को समर्पण कर बैठा है। पीड़ा की ज्वाला यहाँ दीपशिखा बन गई है, जो पृथ्वी के कण-कण को आलोक वितरित कर अपना घुल जाना ही वरदान मानती है।"[2] स्वयं कवयित्री के शब्दों में "दीपशिखा में अविश्वास का कोई कम्पन नहीं है।"[3]

[1]. 'महादेवी वर्मा: काव्य कला और जीवन दर्शन पृष्ठ १६५ सं० शची रानी गुर्टू।

[2]. विचार और अनुभूति पृष्ठ १२७—ले० डा० नगेन्द्र।

[3]. दीपशिखा-चिन्तन के कुछ क्षण पृष्ठ ६८

'दीपशिखा' के अश्रु अभिशापों को वर के रूप में परिणित करने करने वाले हैं। यहाँ सुरभित साँसें बाँटती हुई कवयित्री हँस-हँसकर किसी के पथ में बिछने के लिए तैयार हैं—

आँसू से धो आज इन्हीं अभिशापों को वर
कर जाऊँगी।
शूलों से हो गात दुकेला,
तुहिन-भार-नत प्राण अकेला,
कण भर मधु ले, जीवन ने
हो निशि का तम दिन आतप झेला,
सुरभित साँसें बाँट तुम्हारे पथ में हँस-हँस
बिछ जाऊँगी !

'सप्तपर्णा' में वेद, वाल्मीकि रामायण, थेर-गाथाओं (पालि) के कुछ चुने हुए प्रसंगों एवं अश्वघोष, कालिदास, भवभूति एवं जयदेव के काव्यों के कुछ अंशों का पद्यबद्ध अनुवाद प्रस्तुत किया गया है अनुवाद की भाषा कहीं-कहीं कुछ क्लिष्ट हो गई है। संस्कृत से अनुवादित होने के कारण यह कुछ स्वाभाविक भी था। प्राचीन भारतीय साहित्य के रत्नों को हिन्दी में प्रस्तुत करके कवयित्री ने 'समुद्र की अतल गहराई से निकाला हुआ मोती काष्ठ की छोटी मंजूषा में भी रखा जा सकता है।[1]' उक्ति को सत्य सिद्ध कर दिखाया है।

गद्य के क्षेत्र में भी महादेवी जी की देन अपूर्व है। स्मृति की रेखाएँ, अतीत के चलचित्र और पथ के साथी में उनके रेखाचित्र और संस्मरण है। 'चाँद' के मध्यम से उन्होंने नारी समस्या पर जो विचार व्यक्त किए थे—वे 'श्रृङ्खला की कड़ियों' में संकलित हैं। महादेवी जी ने अपनी कविता-पुस्तकों की भूमिका रूप में जो विचार व्यक्त किए हैं वे भी प्रौढ़ गद्य के आदर्श हैं। उनके स्फुट निबंधों का संग्रह 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' एवं 'क्षणदा' नामक पुस्तकों में हुआ है।

महादेवी जी के रेखाचित्र एवं संस्मरण हृदय की पूर्ण सरसता में डुबो कर लिखे गए हैं। उनमें उनके अंतस् की करुणा, प्रेम और सहृदयता पंक्ति-पंक्ति पर छलक रही है। कोमल कल्पना के सहज स्पर्श से उनमें अपूर्व माधुर्य एवं चमत्कार भर गया है।

'स्मृति की रेखाएँ' में भक्तिन, चीनी फेरी वाला, पहाड़ी कुली (देवी जी के शब्दों में पर्वत पुत्र), दुबरी की बहू, कल्पवास के ठकुरी बाबा, बिबिया बरेठिन और गुंगिया धनपतिया के रेखाचित्र हैं। ये सभी रेखाचित्र समाज के दीन-हीन उपेक्षित प्राणियों पर लिखे गए हैं। इनमें मातृत्व की ममता, बहन के स्नेह और नारीत्व की कोमल अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। लेखिका ने इनके चित्रांकन में पूर्ण सहृदयता दिखाई है। वृद्धा भक्तिन यदि अशिक्षा और अज्ञान का शिकार है तो उसमें स्वामिभक्ति का गुण भी है। चीनी फेरी वाले की मर्मव्यथा अत्यन्त करुण शब्दों में अंकित की गई है। पर्वतीय कुली धनिया और जंगिया के भ्रातृ-भाव और उदारता के अंकन में भी लेखिका को पूर्ण सफलता मिली है। इनके अतिरिक्त इनमें गाँव की निर्धनता, श्रमपूर्ण एवं अभावग्रस्त जीवन एवं धोबियों की पारिवारिक दुर्दशा के मर्मस्पर्शी चित्र दिए गए हैं।

'अतीत के चलचित्र' में ११ रेखाचित्र हैं। इसमें रामा, बिधवा बहू, मातृहीना बालिका, परित्यक्ता, बाल बिधवा, समाज की कुटिलताओं की शिकार एक युवती, माता गुरु भक्त ग्रामीण बालक घीसा, विवश वेश्या, कर्त्तव्यपरायण अन्धा अलोपी, बदलू कुम्हार और साहसी ग्राम्य युवती लछमा की दर्द भरी कहानी को लेखिका ने वाणी दी है। रामा एक परिश्रमी, ईमानदार ग्रामीण भृत्य है दोषों के साथ-साथ जिसके गुण हमारे सम्मुख विशेष रूप से उभर कर आते हैं। बाल-विधवा का चित्र अत्यधिक करुण है जो परिवार के अत्याचार और उपेक्षापूर्ण वातावरण में मूकवत् घुट-घुट कर जीवन बिताने पर विवश होती है। विमाता के दुर्व्यहार से पीड़ित बालिका का चित्र भी हृदयद्रावक है। सब्जी बेचने वाले अन्धे अलोपी की कर्त्तव्यपरायणता, बदलू कुम्हार की कला और उदारता तथा कर्मठ पर्वतीय ग्राम्य युवती लछमा के रेखाचित्रों में भारतीय जन-जीवन की अच्छी झाँकी मिलती है। इन पात्रों के प्रति लेखिका के हृदय की समस्त ममता उमड़ पड़ी है। वे जैसे उसके जीवन के अंग-से प्रतीत होते हैं। वह इन्हें प्रदर्शनी की वस्तु न

१. सप्तपर्णा : अपनी बात पृ० ६६

मानकर इन धुंधली रेखाओं में पाठकों को अपनी छाया ढूंढने के लिए कहती है ।[1]

'पथ के साथी' में सात साहित्यकारों के संस्मरण हैं—ये हैं सर्वश्री कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर, पूर्णकाम मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, असाधारण प्रतिभावान् सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, कोमल सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत और अपराजेय स्रष्टा सिया राम शरण गुप्त ।

कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति एक-एक पंक्ति से लेखिका का श्रद्धा-भाव टपकता है । गुप्त जी विषयक संस्मरण भी अच्छा बन पड़ा है । प्रसाद जी से प्रथम भेंट का वर्णन कवयित्री ने अत्यंत स्वाभाविक ढंग से किया है । इस पुस्तक का निराला विषयक संस्मरण मुझे सर्वाधिक आकर्षक लगता है । इन संस्मरणों में लेखिका ने पूर्ण सहृदयता का परिचय दिया है ।

'शृंखला की कड़ियाँ' में लेखिका ने 'जन्म से अभिशप्त जीवन से संतप्त किन्तु अक्षय अनन्त वात्सल्यमयी भारतीय नारी' का दयनीय चित्र अंकित किया है । इन निबंधों में लेखिका 'भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों की धुंधली रेखाएँ कुछ स्पष्ट' करना चाहती है । इन लेखों में समाज के क्रूर शिकंजों में फँसी हुई भारतीय नारी की मूक-अन्तर्व्यथा एक बार मुखरित हो उठी है । उसकी आत्मा जैसे विद्रोह कर उठी है । यहाँ विधवाओं, वेश्याओं तथा गृह-बन्धुओं के प्रति लेखिका ने बौद्धिक प्रगतिशील दृष्टि-कोण का परिचय दिया है । घर के अन्दर एवं समाज दोनों ही जगह हिन्दू नारी की स्थिति समान रूप से दयनीय है "अपने पितृगृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसा किसी दूकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है जिसके रखने और बेचने दोनों ही में दूकानदार को हानि की सम्भावना रहती है । ऐसी है उसकी वह अभागी जन्मभूमि, जो जीवित रहने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती !"[2]

मध्यवर्गीय हिन्दू नारी का निम्नलिखित करुण चित्र किस भावुक हृदय को द्रवीभूत न कर देगा :—

"इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है; उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है । हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चिह्न देखना हो तो विवाह के समय गुलाब-सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए । उस समय उस असमय प्रौढ़ा, कई दुर्बल सन्तानों की रोगिनी पीली माता में कौन-सी विवशता, कौन सी रुला देने वाली करुणा न मिलेगी ।[3]

'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' 'क्षणदा' और उनकी कविता-पुस्तकों की भूमिका रूप में जो निबंध हैं, उनमें उनकी विचारात्मक शैली के दर्शन होते हैं । इनमें उनके मनन एवं चिन्तन के साथ-साथ वैयक्तिकता की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है ।

संगीत की दृष्टि से भी महादेवी जी के गीतों का अपना महत्त्व है । उनके गीत संगीतज्ञों की भी निधि हैं । उन्हें विभिन्न राग-रागनियों में सहज ही बाँधा जा सकता है । महादेवी जी के साहित्यिक कृतित्व के साथ-साथ उनके चित्रों का भी विशेष महत्त्व है । 'दीपशिखा' के सभी गीत चित्रमय अथवा चित्र गीतमय हैं । 'यामा' में भी कुछ रंगीन चित्र एवं रेखाचित्र दिए गए हैं । स्मृति की रेखाएँ और 'पथ के साथी' में संबद्ध व्यक्तियों के रेखाचित्र मिलते हैं ।

वास्तव में, कवयित्री की जो कोमल कल्पनाएँ शब्दों में न समा सकीं, वे तूलिका के आश्रय से चित्रों के रूप में व्यक्त हुई हैं ।[4] यह स्वाभाविक भी था । स्वयं लेखिका के शब्दों में "अमूर्त्त भावों का जितना मूर्त्त वैभव-चित्रकला में सुरक्षित रह सकता है उतना किसी अन्य कला में

१. अतीत के चलचित्र : अपनी बात पृष्ठ ८
२. शृङ्खला की कड़ियाँ पृष्ठ ४६, ४७
३. शृंखला की कड़ियाँ पृष्ठ १०८
४, यामा : अपनी बात पृष्ठ ६

नहीं।"[1] महादेवी जी के चित्रों में उनके गीतों की भांति करुण मुद्राओं की प्रधानता है। विशेष रूप से नारी की भावभरी मुद्राओं के अंकन में उन्हें विशेष सफलता मिली है। इनमें अधिकाँशतः हल्के रंगों का उपयोग किया गया है जो कोमल भावनाओं के चित्रण में विशेष सहायक हुआ है। उनके चित्रों की पृष्ठभूमि विशेष महत्त्व रखती है उससे वातावरण के निर्माण में पूर्ण सहायता मिली है। उनके रेखाचित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें व्यक्ति का अन्तः वाह्य सभी कुछ सजीव हो उठा है।

महादेवी जी ने साहिहत्य-मन्दिर की देवी को अपूर्व पूजा-प्रसून भेंट किए हैं। प्रायः आलोचकों ने उनकी तुलना मीरा से की है। हम उन्हें वैदिक युगीन किसी भी उच्च से उच्च नारी के समकक्ष रख सकते हैं। उनकी कृतियाँ युगों-युगों तक भावुक हृदयों को रससिक्त करती रहेंगी। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वे इस वीणापाणि देवी को शतायु करें।

---

१. दीपशिखा : चिन्तन के कुछ क्षण पृष्ठ ६३

महादेवी जीवन और कृतित्व

★

इला पटेल

महादेवी जी को काव्य-प्रेरणा वंश की धरोहर के रूप में प्राप्त हुई है। उनके पूर्वज में से कोई कवि, कोई विद्वान, कोई पंडित थे। उनकी माँ श्रीमती हेमरानी हिन्दी भाषा की ज्ञाता थीं।

हिन्दी साहित्याकाश में अध्यात्म की छाया, और रहस्य-वादी गीत-लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म फरुखाबाद में सं० १९६४ में हुआ। शुरू की शिक्षा इंदौर में हुई। उनके पिता का नाम श्री गोविन्दप्रसाद वर्मा था। कहा जाता है कि उनकी शादी १९७३ में डॉ० स्वरूपनारायण के साथ निश्चित हुई। उनके लिए गर्व की बात यह है कि शादी के पश्चात् भी उनकी प्रवृत्तियों को वेग मिला, कोई बाधा न पहुँची। स्त्री का क्षेत्र केवल घर ही नहीं है, वह बाहर भी सफल हो सकती है। आर्य संस्कृति और वैदिक समय में भी हमने गार्गी आदि अनेक विदुषी स्त्रियों को पाया है। शादी के बाद उन्होंने मैट्रिक, एफ-ए०, बी०ए० तथा एम-ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की है।

ज्ञान प्राप्ति के बाद ज्ञान का सदुपयोग होना ही चाहिए। लोहे का उपयोग न होने पर उस पर जंग लग जाती है, वैसे ज्ञान पर भी। ये साधन जैसे उपयोग में रहते हैं, वैसे चमकते हैं। ज्ञान ने उन्हें साहित्य और शिक्षण के क्षेत्र में भेजा। 'चाँद' का सम्पादकत्व स्वीकार करके उन्होंने बहनों को बाहर आने के लिए प्रेरणा दी। इतना ही नहीं, उनकी शक्ति एवं कार्यदक्षता बहुत थोड़े समय में प्रकट हो गई। और, उनको 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' की आचार्या का पद प्राप्त हुआ। आजकल समस्त भारतवर्ष में जो कुछ चुने हुए स्त्री-विद्यालय हैं, उनमें प्रयाग महिला विद्यापीठ का पहला नंबर है, इसी विद्यापीठ में रहकर उन्होंने स्त्री-जगत—की जो सेवाएँ की हैं, वे चिरविस्मरणीय हैं। 'साहित्यकार-संसद' नामक एक और संस्था की स्थापना करके उन्होंने साहित्य के जीवों का भी हाथ बटाया है। उन्हें हम मीरा का दूसरा स्वरूप कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। मीरा भी अपने इष्टदेव के लिए पागल-सी घूमा करती थी; और हमारी महादेवी भी अपने प्रियतम को स्थान-स्थान पर ढूँढ रही हैं। महादेवी जी प्रकृति की उपासिका हैं। प्रकृति में ही वे अपने भगवान के दर्शनार्थ विह्वल हैं—

आली, सपना कहती है तू—
'इन फूलों पर मेरे आँसू, उनके हास।'

विरह और मिलन, उत्साह और निराशा, आँसू और हास्य उनके गीतों में होते हुए भी हृदय की पवित्रता है, जो प्रियतम की खोज में है।

महादेवी जी ने अपना स्थान, पद सम्हालते हुए हिन्दी संसार को मूल्यवान् कृतियाँ दी हैं, जो गद्य में, पद्य में, चित्र में है। उनकी सेवाओं को सारा भारत हमेशा याद करता रहेगा। उनकी पद्य रचनाएँ—

१. नीहार, २. रश्मि, ३. नीरजा, ४. सांध्यगीत, ५. दीपशिखा, ६. 'यामा'

निबन्ध संग्रह :

१. अतीत के चलचित्र, २. शृंखला की कड़ियाँ।

उनकी आलोचनात्मक पुस्तक हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य है। उनकी कृतियों को सर्वत्र स्वागत ही नहीं, सम्मान भी प्राप्त हुआ है। उन्हें 'यामा' पर १२००) का मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ है। और 'नीरजा' पर ५००) का सेक्सरिया पारितोषिक।

यद्यपि महादेवी जी का आंतरिक जीवन कंटकों से युक्त रहा है, फिर भी उन कंटकों को हँसते हुए उन्होंने फूलों में परिवर्तित कर दिया है। आज हिन्दी प्रेमी उनके गीतों पर खुश-खुश हैं। महादेवी जी के शब्दों में कहें तो दुःख उनके जीवन का काव्य है जो सारे जगत को एक सूत्र में बाँधने की शक्ति रखता है। उन्हें दुःख के सभी रूप पसन्द हैं।

उनका हृदय स्नेह और ममता सेसभर है। आज जीर्ण-शीर्ण समाज को ऊँचा उठाने के लिए वे प्रयत्नशील हैं। उनका क्रन्द न करता हुआ दिल हमें एक नई दुनिया में ले जाता है।

आश्चर्य की बात यह है कि सिद्धहस्त कवयित्री होने के उपरान्त आप कुशल चित्रकार भी हैं। ऐसी सिद्धि शायद कोई भी कवि को प्राप्त हुआ हो। जैसे उनकी कविता प्रभावशाली होती हैं, वैसे चित्र भी। उनकी आत्मानुभूति के दर्शन उनके काव्य एवं चित्रों में होते हैं। मनुष्य के जीवन में सर्वदा सुख-दुःख आते रहते हैं, अनतकाल तक यह धारा चलती रहेगी। महादेवी जी की कविता और चित्र भी सुख-दुःख युक्त है।

उनके गीतों में भाव, कल्पना, सूक्ष्म अनुभूति, संगीत, माधुर्य के दर्शन होते हैं। इतना ही नहीं, अलंकार और पिंगल दोष दिखाई नहीं देते। उनकी कल्पनाएँ सरस, सुन्दर, सजीव और समर्थ हैं। श्रृङ्गार और शांत रस के साथ-साथ करुणा की मूर्ति महादेवी सचमुच 'महादेवी' हैं। वे एक विशिष्ट प्रकार की काव्यधारा के द्वारा नेतृत्व कर रही हैं। महादेवी जी हिन्दी में स्वर्गीय गीतों की उत्तम गायिका हैं।

त्रिवेणी पर 'सरस्वती' अदृश्य हैं, पर हमारी सरस्वती (महादेवी) दृश्यमान हैं। अपनी कलम तोड़ के उन्होंने हिन्दी-जगत् में गंगा यमुना की अमृतधारा बहाई है जो निर्विवाद है।

महादेवी का कृतित्व

★

भगत सिंह वेदी

गद्य-पद्य की रास थाम कर उन्हें समान गति से चलाने का कार्य कोई विशेष और कुशल कलाकार ही कर सकता है। उसे इतना सजग सचेत और निपुण होना पड़ता है जितना कि एक मैकेनिक जो मशीन तैयार करते समय कल-पुर्जे की सेटिंग में रत्ती भर भी अन्तर नहीं आने देता। महादेवी वर्मा भी एक ऐसी ही कलाकार हैं। गद्य पर उनका विशेष अधिकार है ही, किन्तु उनका पद्य उस संगम के समान है जहाँ एक ओर से चित्रकला और दूसरी ओर से संगीत कला आकर मिलते हैं।

महादेवी घर के समूचे साहित्य काव्य-विषय किसी असीम और अनन्त समुद्र के समान नहीं बल्कि उस आभायुक्त मोती के समान है जो अमूल्य होने पर भी आकर्षित होता है। उसका साध्य अज्ञात प्रियतम है जो सत्, चित्त और आनन्द रूप है भले ही उस साध्य को प्राप्त करने के साधन छायावाद, करुणावाद आदि क्यों न हों। निस्सन्देह प्रसाद जी आधुनिक रहस्यवाद और छायावाद के प्रवर्तक हैं और पन्त जी प्रकृति चित्रण में बेजोड़, किन्तु उस रहस्यवाद को स्मरणीय चोला पहनाने का और छायावाद की अस्थिर गति को स्थिर करने का जो दुस्तर कार्य महादेवी ने किया है, उसे सहज ही भुलाया नहीं जा सकता। वेदों में जिस रहस्यमयी सत्ता का उल्लेख हुआ है या जिस परमशक्ति को लेकर उपनिषदों की रचना हुई है वह त्रियुणातीत और रूप रंग से परे है। वह ब्रह्मांड के कण-कण में समाई हुई है। इसी बात को लेकर शंकराचार्य ने जिस अद्वैत-वाद की स्थापना की उसका प्रभाव महादेवी पर स्पष्ट देखा जा सकता है। साधक को उस रहस्यमयी शक्ति के दर्शन हुए हैं या नहीं यह कहना भी कठिन है किन्तु उसकी प्रतीक्षा में उसे जिस असीम सुखद पीड़ा का अनुभव हुआ है उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हो सकता है इस पीड़ा के और भी कई कारण हों—जैसे करुणा प्रधान बुद्धवाद का प्रभाव या संसार की असारता से उत्पन्न स्वा-भाविक दुःख या जीवन में पीड़ा अथवा करुणा का अभाव किन्तु उनकी रचनाओं का अध्ययन करने से हृदय इतना तो अवश्य जान लेता है कि उनके उर में वेदना की एक दिव्य ज्योति है जो प्रज्ज्वलित हो कर ब्रह्म की तरह असीम और व्यापक बन चुकी है। यह वेदना बौद्धिक चिन्तन प्रधान अथवा मस्तिष्क की भूख मिटाने वाली नहीं, वरन् हृदय की वस्तु होने के कारण भावात्मक है। यही कारण है कि महादेवी जी विरहावस्था में संसार से मुख मोड़ ले किन्तुविश्व को रुला देने वाली स्थिति को देख कर वह सहानुभूति की प्रवृत्ति को छोड़ नहीं सकती।

जिस छायावाद की नींव प्रसाद जी ने रखी, उसका ढांचा पन्त और निराला जैसे कुशल शिल्पियों ने तैयार किया। परन्तु उसकी साज-सज्जा का कार्य महादेवी जी को ही मिला। प्रकृति के जिस सुन्दर-स्वाभाविक और विराट रूप को प्रसाद, पंत, निराला ने देखा, उसी प्रकृति से करुणा ग्रहण करने वाली केवल महादेवी वर्मा ही हैं। महाकवि भवभूति के बाद यदि किसी को करुणा इतनी प्रिय लगी है तो केवल वर्मा जी को ही। दिन-रात के चार यामों को वर्ण्य-विषय बना कर उच्च कोटि के ग्रंथों की रचना करना देवी जी जैसे कुशल कलाकार के लिए ही संभव हो सका है। और प्रकृति में विराट और कोमल रूपकों का आक्षेप करके

महादेवी जी ने जो सराहनीय कार्य किया है उसे भुलाया नहीं जा सकता। वास्तव में प्रकृति उनके विषय और भावों के अनुकूल ही वर्णित हुई है। उनका विषय रहस्यमय पारब्रह्म है। इसलिए प्रकृति का प्रत्येक अंग उस अज्ञात शक्ति की ओर संकेत करता दिखाई देता है। हृदय की बात कहने तथा प्रकृति के स्वतन्त्र रूप को चित्रित करने के लिए महादेवी जी ने गीतात्मक शैली को आश्रय दिया। हृदय को छू लेने वाले इन गीतों की तुलना अँग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि स्विन बॉर्न से की जा सकती है जिनके गीतों का प्रत्येक शब्द संगीत और लय के साथ कदम मिला कर चलता है। वस्तुतः गीतात्मक शैली को अपनाने के मुख्य रूप से दो कारण हैं १. संस्कार और शिक्षा २. संगीत-प्रियता। संस्कारों के सम्बन्ध में महादेवी जी का कथन विशेष रूप से अवलोकनीय है। वे लिखती हैं कि जिनके मधुर कण्ठ से निकले हुए मीरा के पद प्रभाती और लोरी के समान बचपन में मुझे जगाते सुलाते रहे हैं। इन्हीं जननी की गीतों की एक भेंट।"(नीरजा का समर्पण) संस्कार और नारी सुलभ स्वभाव के कारण वर्मा जी के गीत हिन्दी साहित्य के अनूठे नगीनों के समान हैं।

यह कहना तो केवल पुनरावृत्ति ही है एक गद्य साहित्य की कसौटी है। वास्तव में एक सी भी साहित्यकार की साहित्यिक प्रतिभा का अनुमान उसके गद्य को देखकर ही लगाया जा सकता है और जिस किसी सहृदय ने वर्मा जी के रेखाचित्रों का एक बार भी अध्ययन किया है वह इस तथ्य से मुख नहीं मोड़ेगा कि गद्य पर उनका ज़बर्दस्त अधिकार है। इन्होंने कोई उपन्यास या नाटक नहीं लिखे, किन्तु 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चल-चित्र' में इनके जिस गद्यात्मक साहित्य की झलक मिलती है उसे देखकर पाठक के हृदय में इनकी कुशल लेखनी का सिक्का बैठ जाता है। रूपात्मक शैली में लिखी स्वाभाविकता मनोवैज्ञानिकता और संवेदन शीलता से ओत-प्रोत इनके रेखाचित्रों ने जहाँ इनके आत्मचरित्र को अंकित किया है वहाँ इनके व्यक्तित्व को भी उभारा है। इनके पात्रों का चरित्र-चित्रण ऐसे कलात्मक ढंग से हुआ है जो सदैव के लिए एक अमिट छाप छोड़ जाता है। इनके काव्य-ग्रंथों में लिखी भूमिकाएँ उस सर्चलाइट के समान हैं जो इनके बौद्धिक चिन्तन और इनकी भावात्मकता पर प्रकाश डालती है।

वर्मा जी की कला निर्विवाद रूप से उच्चकोटि की है क्योंकि उसके लिए जिस सत्य-शिव-सुन्दर की अपेक्षा है वह इनकी कला में यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलता है। इनकी भाषा तत्सम बहुला है किन्तु संस्कृत-शब्दों से बोझिल नहीं, समासयुक्त है किन्तु कठोर-पद-युक्त नहीं और स्वाभाविक है किन्तु अलंकार विहीन नहीं। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से वह स्वतः ही चमत्कृत हो उठी है। इनका शब्द चयन सुन्दर और वाक्य-विन्यास सुगठित है। इन्होंने गद्य के लिए रूपात्मक शैली और पद्य के लिए गीतात्मक शैली को अपनाया है, और गीतों के उपयुक्त मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है।

●

दीपशिखा की भूमिका

★

डॉ० नगेन्द्र

दीपशिखा महादेवी जी की पाँचवीं काव्य-कृति है—इससे पूर्व उनकी चार रचनाएँ क्रमशः नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत नाम से प्रकाशित हो चुकी थीं। नीहार में महादेवी का किशोर कवि एक प्रकार से अपरिचित काव्य-लोक में प्रवेश करता है, अतः वहाँ परिचायक रूप में कवि-सम्राट् अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध की' अत्यन्त संक्षिप्त भूमिका है। रश्मि में दर्शन के अध्ययन के प्रभाव से कवि में थोड़ा आत्म-विश्वास आता है और 'अपनी बात' नाम से एक छोटी-सी भूमिका के दर्शन पहली बार होते हैं, नीरजा का परिचय फिर रायकृष्णदास जी के शब्दों में दिया गया है, किन्तु 'सान्ध्य गीत' के आरम्भ में कवि की अपनी भूमिका है जिसमें स्थिर रूप से काव्य से सम्बद्ध कतिपय मौलिक प्रश्नों का विवेचन किया गया है। दीपशिखा की भूमिका का कलेवर इन सबकी अपेक्षा कहीं व्यापक और उसका स्वर कहीं अधिक आश्वस्त है। यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि को उत्तेजित कर दिया गया है। इस उत्तेजना की पृष्ठभूमि भी स्पष्ट ही है। उन दिनों प्रगतिवाद का आन्दोलन जोर पकड़ रहा था....और यह जोर रचनात्मक कम, ध्वंसात्मक अधिक था। प्रगतिवाद के पक्षधर आलोचक पूर्ववर्ती काव्य-मूल्यों की भस्म पर नवीन सामाजिक मूल्यों का आरोपण करने में प्रयत्नशील थे और उनका सीधा प्रहार था छायावाद पर जिसकी प्रतिक्रिया में प्रगतिवाद का जन्म हो रहा था। कुछ कवि और आलोचक इस कोलाहल में कच्चे पड़ने लग गये थे—छायावाद के प्रबल समर्थक 'प्रगतिवादको कवि के चारित्र्य की कसौटी' मानने पर आमादा हो गये थे। उस वातावरण में दीपशिखा का और उससे भी अधिक दीपशिखा की भूमिका का प्रकाशन अत्यन्त महत्वपूर्ण और सामयिक घटना थी।

इस भूमिका में कवयित्री ने काव्य से सम्बद्ध अनेक मौलिक प्रश्न उठाये हैं: उदाहरण के लिए—सत्य का स्वरूप, काव्य और सत्य, सौन्दर्य का स्वरूप, काव्य और उपयोगिता, ललित और उपयोगी कलाओं का भेद और उसकी निरर्थकता, आदर्श एवं यथार्थ की परिभाषा और दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध, रहस्यानुभूति और आधुनिक काव्य में उसकी स्थिति, छायावाद और अन्त में प्रगतिवाद जिसके लिये इस नवीन और राजनीतिक नामकरण को छोड़ अपेक्षाकृत व्यापक शब्द यथार्थवाद का प्रयोग किया गया है। भूमिका का चतुर्थ एवं अन्तिम खंड दीपशिखा की कविता के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है—यहाँ कवि ने गीत की परिभाषा और स्वरूप, गीत के दो प्रमुख भेद रहस्य-गीत और सगुण-गीत, दीपशिखा में गीत और चित्रकला का योग, इन दोनों के लिये प्रयुक्त प्रकृति के उपकरण आदि पर संक्षिप्त किन्तु मार्मिक वक्तव्य दिये हैं। इस विवेचन के अन्त में यह भी संकेत किया गया है कि कवि का अपना जीवन एकान्त काव्य-साधना का जीवन नहीं है—उसके 'कर्मक्षेत्र की विविधता भी कम सारवती नहीं' है—उसने आज के 'उपेक्षित संसार में भी

बहुत कुछ भव्य पाया है अन्यथा सभ्य समाज से इतनी दूरी असह्य हो जाती।'

सत्य मूलतः अखण्ड अतः असीम है किन्तु जब वह व्यक्ति की चेतना का विषय बनता है तो उसके लिए एक विशेष सीमा में आना अनिवार्य हो जाता है—इस प्रकार सत्य की यह दोहरी स्थिति सहज स्वाभाविक है: वास्तव में इस दोहरी स्थिति में ही वह हमारे सामने आता है। भावक्षेत्र और ज्ञानक्षेत्र पृथ्वी के उन दो गोलार्धों के समान हैं जो मिलकर सत्य की इस चेतना को पूर्णता प्रदान करते हैं। व्यक्ति का सत्य राग और बुद्धि इन दो अर्धवृत्तों से अनिवार्यतः घिरा रहता है।...इनमें राग अथवा अनुभूति की प्रवृत्ति गहराई की ओर है और बुद्धि की विस्तार की ओर; जीवन का सत्य इन्हीं दोनों में परिवेष्ठित रहता है। असीम सत्य को व्यक्ति की सीमित चेतना में प्राप्त करना...अखण्ड को खण्ड में सिद्ध कर लेना मानव-चेतना के लिए जितना दुष्कर है उतना ही अनिवार्य भी। मानव-चेतना ने सत्य की इस सिद्धि के लिए जितने माध्यमों का अनुसन्धान किया है, काव्य या कला उनमें सबसे सफल माध्यम है। इसीलिए महादेवी का मत है कि सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। सौन्दर्य बाह्य-रेखाओं और रंगों का सामंजस्य मात्र नहीं है...."सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएँ जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है"। सौन्दर्य वस्तुतः विकास के लिए अपेक्षित जीवन के प्रत्येक स्पर्श का पर्याय हैं। उसकी परिधि से छोटा, बड़ा, लघु, गुरु, सुन्दर, विरूप, आकर्षक, भयानक, कुछ भी बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। उसके भीतर बहिर्जगत और अन्तर्जगत दोनों का वैविध्य समंजित है। इस प्रकार महादेवी के अनुसार उपर्युक्त संदर्भ में कला सौन्दर्य के माध्यम से सत्य की अभिव्यक्ति का नाम है।

उपयोगी और ललित कलाओं के रूप में कला का वर्गीकरण महादेवी जी को स्वीकार्य नहीं है—इस प्रकार का वर्गीकरण अत्यन्त स्थूल है क्योंकि तत्वदृष्टि से उपयोगिता और लालित्य अथवा सौन्दर्य में कोई मौलिक भेद नहीं रह जाता। स्थूल-द्रष्टा आलोचकों ने उपयोगिता का अर्थ जीवन की बहिरंग आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित कर सौन्दर्य से उसका भेद कर दिया है। किन्तु यह भेद मिथ्या है। उपयोगिता के स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक असंख्य रूप हो सकते हैं और ये सूक्ष्मतर रूप ही वास्तव में सौन्दर्य के पर्याय बन जाते हैं। इसी प्रकार सौन्दर्य की भी अपनी विशेष उपयोगिता है जो जीवन को आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। काव्य और ललित कलाओं का उपयोग उस उन्नत रागात्मक भूमिका पर स्थित होता है जो साधारणीकृत होने के कारण सहज रमणीय या सुन्दर होती है। इसी परिप्रेक्ष में कवि ने काव्यगत नैतिक मूल्यों की भी व्याख्या की है....काव्य में नैतिकता अर्थ विधि-निषेध नहीं है। "जीवन को गति देने के दो ही प्रकार हैं...एक तो बाह्यानुशासनों का सहारा दे कर उसे चलाना और दूसरे अन्तर्जगत में ऐसी स्फूर्ति पैदा कर देना जिससे सामंजस्यपूर्ण गतिशीलता अनिवार्य हो उठे।" काव्यगत नैतिक मूल्य दूसरे प्रकार के अन्तर्गत ही आते हैं...अर्थात् काव्य के क्षेत्र में नैतिकता उन मूल्यों का नाम है जो जीवन के सामंजस्यपूर्ण विकास में सहायक होते हैं और चूंकि सामंजस्य ही सौन्दर्य का भी आधारतत्व है इसलिए नीतिगत मूल्यों में और सौन्दर्यगत मूल्यों में कोई तात्विक भेद नहीं रह जाता।

इसी प्रकार पूर्वोक्त अन्य विषयों का भी महादेवी ने गम्भीर चिन्तन किया है। अनुभूत होने के कारण उनके विचारों में एक विशेष प्रकार की मार्मिकता और विश्वास की दीप्ति आ गई है। इसलिए हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में उनके अनेक वाक्य सूत्र बन कर प्रचलित हो गये हैं जैसे—"बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखंडता का भावन किया, हृदय की भावभूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्यसत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्राप्त की और दोनों को मिला कर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद आदि अनेक नामों का भार सँभाल सकी।"......"साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक

अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में महादेवी की इन सभी मान्यताओं की समीक्षा करने का अवकाश नहीं है। इसलिये मैं केवल एक ऐसे प्रश्न को ही लेता हूँ जो अधिक ज्वलन्त है और जिसका महादेवी के काव्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। वह है आधुनिक काव्य में रहस्यानुभूति का प्रश्न। बौद्धिकता के इस युग में छायावाद के कवि ने जब अपनी कविताओं में परोक्ष आलम्बन के प्रति प्रणय-निवेदन का आग्रह किया तो अनेक आलोचकों ने उनकी अनुभूति की सत्यता पर संदेह किया। महादेवी ने प्रस्तुत भूमिका में अपने पक्ष में अनेक तर्क दिये हैं :—१-प्रत्येक सामंजस्य अथवा सौन्दर्य की अनुभूति ही अपने मूल में रहस्यानुभूति होती है। २-अपनी अपूर्णताओं को किसी पूर्ण आदर्श की कल्पना में समर्पित करने की लालसा मानव में जन्मजात है। उन्हीं के शब्दों में "स्वभाव से मनुष्य अपूर्ण भी है और अपनी अपूर्णता के प्रति सजग भी। अतः किसी उच्चतम आदर्श भव्यतम सौन्दर्य या पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है।" ३-यह आत्मसमर्पण किसी न किसी प्रकार के रागात्मक सम्बन्ध की ओर इङ्गित करता है और रागात्मक सम्बन्धों में भी केवल माधुर्य-भाव के द्वारा ही पूर्ण के साथ अपूर्ण का एकान्त तादात्म्य संभव हो सकता है। इस प्रकार से परोक्ष या रहस्यमय आलम्बन के प्रति प्रणयनिवेदन मानव हृदय की एक सहज प्रवृत्ति और प्रायः एक सहज आवश्यकता भी हो जाती है। ४—प्राचीन काव्य का इतिहास भी इस प्रकार की रहस्यानुभूति को सिद्ध करता है। कवि के अपने शब्दों में ही..."अखंड और व्यापक चेतन के प्रति कवि का आत्मसमर्पण सम्भव है या नहीं"...इसका जो उत्तर अनेक युगों से रहस्यात्मक कृतियाँ देती आ रही हैं वही पर्याप्त होना चाहिए।"......"प्रकृति के अस्त-व्यस्त सौन्दर्य में रूपप्रतिष्ठा, बिखरे रूपों में गुण-प्रतिष्ठा, फिर इनकी समष्टि में एक व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा और अन्त में रहस्यानुभूति का जैसा क्रमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीनतम काव्य देता है वैसा अन्यत्र मिलना कठिन होगा।"

इसमें सन्देह नहीं कि ये तर्क अपने आपमें बड़े प्रबल हैं और वास्तव में आधुनिक बुद्धिजीवी कवि को रहस्यानुभूति के पक्ष में कल्पना और वैदग्ध जितने भी उपकरण एकत्र कर सकते थे वे सब यहाँ उपस्थित हैं। किन्तु हमारा विनम्र निवेदन है कि इन तर्कों में कल्पना की रमणीयता अधिक है। इनसे न प्रश्नकर्ता की बुद्धि ही निरुत्तर होती है और न उसका हृदय ही इन पर प्रत्यय कर पाता है। बुद्धि उत्तर देती है कि आपने जो कुछ कहा अर्थात् आदर्श, मध्यम सौन्दर्य या पूर्ण व्यक्तित्व और उसके प्रति माधुर्य-मूलक आत्म-समर्पण, यह सब तो कल्पना का चमत्कार है। इन सबकी कल्पना पर किसी को आपत्ति नहीं है। प्रश्न यह है कि इस प्रकार के काव्य का मूलाधार रहस्य-प्रणय की अनुभूति है या उसकी कल्पना? यदि कल्पना है तब तो वैमत्य का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु यदि रहस्य-प्रणय की अनुभूति का आग्रह है तो वह पूर्वोक्त तर्कों से सिद्ध नहीं होती। अतः छायावादी-काव्यमें अभिव्यक्ति रहस्यानुभूति की व्याख्या के दो मार्ग हैं...... एक पार्थिव से अपार्थिव की ओर जाता है अर्थात् पार्थिव प्रणय-भावना के उन्नयन की ओर इङ्गित करता है और दूसरा जैसा कि महादेवी जी मानती हैं अपार्थिव रहस्यानुभूति को लौकिक प्रणय-प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है अर्थात् अपार्थिव से पार्थिव की ओर जाता है। महादेवी की मान्यता को स्वीकार कर लेने से एक बड़ा अहित यह होता है कि छायावाद की, विशेषकर उनके काव्य की, प्रेरक-शक्ति 'अनुभूति' न होकर 'अनुभूति की कल्पना' मात्र रह जाती है और प्रकारान्तर से छायावाद का समर्थक उसके आलोचकों के आक्षेप के सामने सिर झुका देता है।

किन्तु, यह तो एक प्रसङ्ग-मात्र है और इसके विषय में भी अन्तिम निर्णय देना सम्भव नहीं। हिन्दी आलोचना के विकास में इस भूमिका का महत्व अक्षय है। इससे छायावादी काव्य-दृष्टि अनाविल हुई, उसके सम्बन्ध में प्रचारित अनेक भ्रान्तियों का निराकरण हुआ, शाश्वत काव्य-मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा हुई और हिन्दी में सौष्ठववादी आलोचना का पथ प्रशस्त हुआ।

महादेवी की अकम्पित दीपशिखा

★

शक्ति त्रिवेदी

'सब बुझे जीवन जला लूं' महादेवी जी की ये पंक्तियाँ मन के उदास और सोये हुये तारों को झंकृत कर देती हैं। जब कभी भीं इन पंक्तियों को पढ़ता हूँ तब मन में एक नया स्पन्दन उत्पन्न होता है और सुन कर बनाई गई यह धारणा कि महादेवी जी दुःखवाद की कवयित्री हैं, धुँधली होती जा रही है। जहाँ मन में सभी बुझे दीपों को जलाने की कामना हो वहाँ दुःखवाद कैसा ?

सब बुझे दीपक जला लूं
घिर रहा तम आज दीपक—रागिनी अपनीं जगालूं
⊙ ⊙ ⊙
लय बनी मृदुवर्तिका हर स्वर जला बन लौ सजीली
फैलती आलोक की झंकार मेरी स्नेह गीली
इस मरण के पर्व को मैं आज दीपाली बना लूं
आज दीपक राग गालूं
सब बुझे दीपक जलालूं

मरण पर्व को दीवाली बना कर चलना हमारे मन में उतना ही उत्साह भरता है जितना कि राजपूतनियों के जौहर के दृश्य की कल्पना। स्नेह का आलोक और दीपक रागिनी द्वारा तम का विनाश; कितनी प्रेरणाप्रद कल्पनाएँ हैं जो हममें गम्भीर उत्साह का धीरे धीरे संचार करने लगती हैं।

महादेवी जी की रचना दीपशिखा एक ऐसा अपूर्व और अनमोल ग्रन्थ है जिसकी एक एक पंक्ति उनके वास्तविक कविरूप की स्वतन्त्र दृष्टि को एक साथ स्पष्ट करती है। यद्यपि उन्होंने मरण को चिरंतन सत्य माना है किन्तु उसमें पीछे हटने वाली बात नहीं है निर्भीकता और साहस के साथ आगे बढ़ने के लिए ही उद्बोधन मिलता है :—

आंसुओं के देश में
मरण का उत्सव अजर है
गीत का जीवन अमर है
मुखर कण का संग मेला
पर चला पंछी अकेला
मिल गया गंतव्य पथ को कंटकों के वेश में—

वास्तव में जीवन में शूल या फूलों की महत्ता नहीं जीवन के गन्तव्य की है। गन्तव्य आदर्श और लक्ष्य हैं; चाहे वह शूल के रूप में मिले या फूल के रूप में। महादेवी जी की इस पंक्ति में संसार का अश्रुमय संघर्षपूर्ण वास्तविक चित्र खिच गया है, जिसका मरण के अजर उत्सव के साथ ही पटाक्षेप होता है।

महादेवी जी के मन प्राण ने वास्तव में आशा और उल्लास के दीप अपनी लेखनी से संजोये हैं। उनकी कविता के रोम-रोम से,स्नेह और हर्ष की फुहारें सी छूटती हैं। जीवन में नया उल्लास भरने के लिए कितना सुन्दर संकेत है :—

सपने जगाती आ
श्याम अंचल, स्नेह उर्मिल
तारकों के चित्र उज्ज्वल
घिर घटा सी चाप से

पुलकें उठाती आ
हर पल खिलाती आ

उपर्युक्त पंक्तियों में सम्मोहन मंत्र जैसा आह्वान है। जीवन की लय कभी कम नहीं होती। कवि का मन जीवन की शुभ भौर से धूमिल साँझ तक एक ऐसी तन्मयता में खोया रहता है कि उसे संझा-सकारे हर पल दीपशिखा के समान आनन्द और उन्माद की ज्योति जलती हुई सी दिखाई देती है। जीवन की गोधूलि में दीप जलाने से तो उसे और भी अधिक उन्माद और आवेश मिलने लगता है।

गोधूलि अब दीप जलाले
कण कण दीपक तृण तृण बाती
हंस चितवन का नेह पिलाती
पल पल को झिलमिल लौ में
सपनों के अंकुर आज उगाले
गोधूलि, अब दीप जलाले...

जब जीवन के अवसान समीप होते हुये भी दीप जलने लगते हैं तो समस्त कण कण दीपक और तृण—तृण वर्त्तिका बन जाते हैं और हर नये पल में एक नई ज्योति झिलमिलाने लगती है। कितना आशावादी और आनंद-वादी दर्शन है जिसे अनेक बार दुःख और उदासीनता के रूप में लोगों ने देखने की भूल कर डाली है।

क्या दीप भी सो सकता है जीवन की मृत्यु तक जगमगाता हुआ अखंड दीप कभी नहीं सोता, कभी नहीं बुझता। वह जलता है और चिरन्तन जलता ही रहता है। आत्मा और प्राणों का यह एक दीप है जो सदैव जलता रहा है और जलता ही रहेगा। इसे नींद कहाँ, इसे चैन कहाँ, यह कभी नहीं सोया, न सोयेगा।

पुजारी दीप कहीं सोता है ?
इस चितवन की अमिट निशानी
अंगारे का पारस-पानी
इसको छूकर लौह तिमिर
लिखने लगता है स्वर्ण-कहानी।

महादेवी जी के शब्दों में जीवन को गति देने के दो ही रास्ते हैं—एक तो बाहरी अनुशासनों का सहारा लेकर जीवन को चलाना और दूसरे अन्तर्जगत में ही ऐसी स्फूर्ति पैदा कर लेना जिससे स्वतः ही जीवन· गतिमान रहे। वास्तव में कलाकार तो जीवन का ऐसा संगी है जो अपनी आत्म कहानी में दिल दिल की कहानी कहता है और स्वयं चल कर पग-पग के लिए पथ प्रशस्त करता चलता है। वह अपनी अनुभूति सभी तक पहुंचाता है और वह भी एक विशेषता के साथ। कांटा चुभा कर पीड़ा का ज्ञान तो संसार में मिल ही जाता है किन्तु कलाकार बिना कांटे की चुभन और पीड़ा के ही कसक और टीस की मधुर अनुभूति को दूसरों तक पहुंचाने में समर्थ है। अपने अनुभवों की गहराई में, वह जिस जीवन सत्य से साक्षात् करता है वही दूसरे को सुनने पर संवेदनीय लगती है। कलाकार के जीवन को स्पर्श करने का एक ऐसा अनोखा ढङ्ग है कि हम उसके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, हार-जीत सब कुछ खुशी खुशी स्वीकार करते जाते हैं।

हमें कवि के एकाकीपन और शून्य साधना में भी उतना ही आनन्द आता है जितना कि उमंग और उत्साह भरे गीतों की गूँज में—

दीप मेरे जल अकंपित
घुल अचंचल
मोह क्या निशि के वरों का
शलभ के झुलसे परों का
साथ अक्षय ज्वाल का
तू ले चला अनमोल सम्बल...

जहाँ एक ओर आत्मत्याग लिप्साओं के प्रति विद्रोह और अक्षय ज्वाल में जल उठने की साध है वहाँ दूसरी ओर नीरव जलना भी उतना ही स्वाभाविक और प्रेरक लगता है—

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो

+ + +

पलके मनके फेर पुजारी शिव सो गया
प्रति ध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया।

और

मोम सा तन घुल चुका
अब दीप सा मन जल चुका
खोल कर जो दीप के दृग
कह गया तम में बढ़ा पग
देख श्रम धूमिल उसे
करते निशा की सांस जगमग
क्या न आ कहता वही सो,
याम अंतिम ढल चुका है
दीप सा मन जल चुका है...

दोनों में मूलतः अंतर नहीं है। एक ही वेदना की अभिव्यक्ति है। कवि का ज्ञान जब अनुभूतियों के रूप में कल्पना के रंग-विरंगे आवरण में लिपटा हुआ भावनाओं के सौंदर्य से छविमान हो उठता है तब उसकी लेखनी और सत्य में एक ऐसा उद्बोधन, स्पन्दन और व्यापकता होती है जो मन को छुए बिना नहीं रहती। एक विटप से लाखों फूल खिल उठते हैं—एक दीप से लाखों दीप जल उठते हैं और दीप शिखा की ज्योति कभी नहीं बुझने पाती वह अनवरत जलती ही रहती है।

प्रश्न है आस्था और अनास्था का। महादेवी जी की दृष्टि में जीवन से अधिक मूल्यवान मृत्यु और सुख से अधिक प्यारा दुःख तथा जय से अधिक शक्तिशाली पराजय है जो जीवन को नया दृष्टिकोण देती है। महादेवी जी की दीपशिखा की अमल ज्योति में कहीं भी अनास्था और अश्रद्धा का कम्पन नहीं मिलेगा। इसके स्थान पर एक अलमस्त फक्कड़पन, अमिट विश्वास और अडिग साधना का आत्मसात भाव ही मिलेगा।

मैं क्यों पूछूं यह विरह निशा
कितनी बीती क्या शेष रही,
उर का दीपक चिर, स्नेह अतल,
सुधि-लौ शत झंझा में निश्चल,
सुख से भीनी दुख से गीली
वर्ती सी सांस अशेष रही...

लीजिए एक और गीत में भी यही बात देखिए—

न पथ में रूंधती ये
गहनतम शिलाएं
न गति रोक पातीं
पिघल मिल दिशाएं
चली मुक्त में ज्यों मलय
की मधुर बात—

वैसे तो महादेवी जी की कोई भी कृति दर्शन, लालित्य, संगीत, भावना और काव्य के गुणों से ओतप्रोत हुए बिना नहीं रह सकी है किन्तु दीपशिखा की रचनाएं उद्बोधन और प्रेरणाप्रद होने के अतिरिक्त हमें कर्तव्य और जागरण का एक ऐसा सन्देश देती है जिसे हम कभी भूल नहीं सकते और युग युगों तक इसकी एक एक पंक्ति से एक नया और सफल मार्गदर्शन देती रहेगी, आने वाली पीढ़ियों के लिए महादेवी केवल छायावाद और दुःखवाद की "नीर भरी दुःख की बदली" न रह कर क्रांति और प्रगति की मशाल सिद्ध होंगी—दीपशिखा को पढ़ कर मेरे मन में कुछ ऐसा ही विश्वास जमता जा रहा है और मेरा मन कहता है कि महादेवी की दीपशिखा की अमल ज्योति हिन्दी साहित्य में ही नहीं विश्व के साहित्य में युग युगों तक जल जल कर प्रकाश देती ही रहेगी।

दीपशिखा की अमल ज्योति

★

शैलबाला

दीपशिखा रससिद्ध कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा की गूढ़तम रचनाओं का संग्रह है। इस संग्रह में कवयित्री के ५१ गीतों के रूप में भावों के ५१ दीपक जगमगा रहें हैं। जिनमें से प्रत्येक की ज्योति समुज्ज्वल है। इस दीपक-मालिका की समस्त दीप-ज्योतियाँ सत्यं-शिवम् की नीराजना में जल रही हैं।

दीपक महादेवी जी का एक परम प्रिय प्रतीक है। अन्धकारमयी रजनी में मृत्तिका का एक छोटा सा दीप तिल-तिल जल रहा है—दूसरों को प्रकाश प्रदान करने के लिए—आंधी, तूफान, निर्जनता और विश्वव्यापी निद्रा के बीच प्रकाश का यह लघु प्रहरी अन्तिम क्षण तक जागता रहता है, इसके प्रति त्याग और लोकहित को जीवन का आदर्श मानने वाली कवयित्री यदि विशेष आकर्षित हो तो यह स्वाभाविक ही है। इसीलिए दीपक को लेकर महादेवी जी ने बहुत चिन्तन किया है और इसके आस-पास जीवन दर्शन के उत्कृष्ट सिद्धान्तों का जाल सा बुन दिया दिया है। कुल मिलाकर न जाने कितने गीत इस पर लिखे हैं, इस संग्रह में ही ऐसे गीत हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी गीतों में किसी न किसी रूप में दीपक सम्मिलित ही है। इस संग्रह का 'दीपशिखा' नाम इस दृष्टि से भी सार्थक है।

दीपक को न जाने कितने दृष्टिकोणों से कवयित्री ने देखा है। कभी वह देखती है कि यामिनी का केवल एक याम शेष रह गया है और स्वर्ण की जलती हुई तुला पर आलोक की उज्ज्वल व्यवस्था करने वाला दीपक धूमलेखा से भरने लगा है और मृत्यु का वरदान लिये हुए आँधी उसे ढूँढ़ती चली आ रही है। कहीं वह देखती है अज्ञातदेशी शलभ न जाने किसके इंगित से राह खोजते हुए घने तिमिर में भी दीपक तक आ पहुँचा है शलभ की इस खोज से दीप स्नेह विगलित होकर सोचता है कि वह तो अग्नि-पंथी है, इस सुकुमार शलभ को वह कौन सा वरदान दे। कभी एक और चित्र उभरता है—मन्दिर का दीप जल रहा है—बहुत देर से जलता चला आ रहा है। इतनी देर से कि पूजा के प्रसून कुम्हला चले हैं, धूप समाप्त हो गयी है, चन्दन सूखकर धूल सा झर गया है; सब तरफ उदासी छा गई है परन्तु दीपक तब भी जले है और जिनने पल वह खोता जा रहा है वे सब मुस्काने बन कर लौट आ रहे है क्योंकि मन्दिर का दीप तो साँझ का दूत है जिसे प्रभात तक पहुँचना है। जब तक दिन की हलचल लौट कर नहीं आती, इसे पुजारी सा जागते रहना है—तिमिर का नाश करते रहना है, क्योंकि यदि तिमिर नष्ट नहीं हुआ तो मन्दिर के अलिन्द में चरणों के चिह्न, चन्दन की देहली पर प्रणत शिरों के अंक, झरे हुए सुमन और बिखरे हुए अक्षत, धूप, अर्घ्य और नैवेद्य सभी अन्तर्हित हो जायेंगे और अर्चना की कथा विस्मृत हो जायेगी।

दीपक के समान ही बादल-बिजली-वर्षा भी महादेवी जी की रुचि के प्रतीक हैं। ग्रीष्म के असह्य ताप से जब जल-स्थल, पशु-पक्षी, तरु-लताएँ विकल हो उठते हैं, प्यास का दुर्दमनीय विस्तार जब इस छोर से उस छोर तक फैल जाता है, तब किसी अज्ञात लोक के निवासी ये करुणा भरे

बादल क्षितिज की देहली को लाँघ कर जलते हुए आकाश को छा लेते हैं, क्योंकि कंटक शेष संसार, धूल भरा आकाश, झुलसी हुई निष्प्रभ दिशाएँ देखकर ये सागर में सो नहीं पाते—करुणा से विगलित होकर, आँसुओं भरा शरीर और वरदानों भरा मन लेकर ज्वाल-वेला को भेंटने बढ़ चलते हैं और तृण-तृण को तथा कण-कण को मुस्कानों से भर देते हैं। किसी डाली को ये हीरों से जड़ देते हैं, किसी बाली को मोतियों से भर देते हैं, और यद्यपि यह सब करने में वे स्वयं अस्तित्व शेष हो जाते हैं परन्तु उसकी इन्हें परवाह नहीं है, क्योंकि आकाश में यदि इनके पदचिह्न मिट भी गये तो क्या हुआ, पृथ्वी के प्राणों में तो इनकी कहानी हरी बनी हुई है जो अंकुरों में उग चुकी है और युग-युग तक बनी रहेगी।

रात के विषय में भी महादेवी जी की भावनाएँ बड़ी मधुर हैं। संघर्ष, कोलाहल और कठोर श्रम से भरा हुआ दिन, जिसकी गोद में सुख की नींद सो जाता है, जो सभी के दुःख अभावों पर करुणा भरी अँगुलियाँ फेर कर उन्हें स्वप्न और विस्मृति के स्वर्ग में पहुँचा देती है, रात का वही रूप कवयित्री को प्रभावित किये हुए है। कभी-कभी तो उसका इतना सुकुमार रूप उनकी कल्पना में आ जाता है कि वे बार-बार कह उठती हैं "अश्रुमय कोमल, कहाँ तू आ गई परदेशिनी री"। रात की प्रियता का एक कारण और भी है; वह सपने जगाती हुई जो आती है—ऐसे सपने, जो व्यथासिक्त मन को पुलक-स्पन्दनों से भर देते हैं, विवशता की सभी सीमाएँ तोड़ देते हैं और जिनमें मन विहगों की भाँति स्वच्छन्द उड़ चलता है दिशाहीन विस्तार में। रात के कितने बड़े वरदान हैं ये सपने।

अश्रु, सागर, झंझा, तरी, किरण, पथ, विहँग आदि और भी न जाने कितने प्रतीक हैं, जिनका उपभोग करके कवयित्री ने सुन्दर मालोपमाओं का निर्माण किया है और भावों को उनके माध्यम से अनिंद्य सुन्दर अभिव्यक्ति दे डाली है।

करुण रस प्रधान महादेवी जी के काव्य की आलोचना करते हुए कुछ लोग इस करुणा को निराशा से निःसृत मानते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य के भाव-व्यापार अत्यन्त गूढ़ हुआ करते हैं और निराशा का अनुभव भी प्रायः प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी करता ही है। महादेवी जी ने भी उसका अनुभव किया हो तो यह असंभव नहीं है। निराशा का अनुभव कभी किसी का अवगुण भी नहीं माना जा सकता—हाँ, स्थायी रूप में निराशा की स्थापना अवश्य ही ही मनुष्य को विघटन की ओर ले जाया करती है। महादेवी जी की पाठिका के रूप में, एक वाक्य जो मैं कहना चाहती हूँ, वह यह है—कि उनके काव्य में निराशा स्थायी-भाव कभी नहीं रही है। मनन करने पर हमें उनकी कृतियों में जो भाव प्रमुखरूप से दृष्टिगोचर होते हैं वे हैं अडिग विश्वास दुर्दम साहस, अनन्त धैर्य, उत्कट कर्मठता और महान् कर्तृत्व। इन्हीं से सम्बन्धित कुछ उदाहरण मैं दीप शिखा में से प्रस्तुत करना चाहती हूँ। देखिए :—

अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे,
दुखव्रती, निर्माण-उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक-संसृति से तिमिर में स्वर्ण-वेला
पंथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला।

अपने कर्तृत्व पर अडिग विश्वास का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है? पंथ चाहे अपरिचित, हो, प्राण चाहे अकेला हो परन्तु ये पैर हारने वाले पैर नहीं हैं—ये दुखव्रती अवश्य हैं परन्तु निर्माण के लिए उन्मत्त भी हैं—ये तो अमरता को नापने वाले पैर हैं, जो घने अंधकार में अपने पद-चिह्नों से स्वर्ण वेला का निर्माण कर देंगे।

दुर्दमनीय साहस का उदाहरण देखिए—

प्रणत लौ की आरती ले,
धूमलेखा, स्वर्ण अक्षत, नील कुमकुम वारती ले
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह उज्ज्वल भारती ले
मिल अरे बढ़ आ रहे यदि प्रलय झंझावात,
कौन भय की बात?
पूछता क्यों शेष कितनी रात?

दीपक को सम्बोन्धित करके कवयित्री कहती है कि अपनी प्रणत लौ की आरती लेकर, धूमलेखा रूपी नील कुमकुम

और मूक प्राणों में व्यथापूर्ण उज्ज्वल स्नेह लेकर तू प्रलय झंझावात का स्वागत करने के लिए आगे बढ़, इसमें भय की क्या बात है ? तू क्यों पूछता है कि रात कितनी शेष है। ऐसे महान् साहस की कल्पना हर कोई नहीं कर सकता है, यह निर्विवाद है।

कर्तव्य और कर्मठता को चित्रित करने वाली ये पंक्तियाँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं :—

पथ बना, उठे जिस ओर चरण
दिशि रचता जाता नूपुर-स्वन

और :—

फूल की रंगीन स्मित में, अश्रु कण से बाँध वेला,
बाँट अगणित अंकुरों में, धूलि का सपना अकेला,
पंथ के हर शूल का मुख, मोतियों से भर चली मैं
मेघ सी घिर झर चली मैं।

तथा—

भीति क्या यदि मिट चली, नभ से ज्वलित पग की निशानी?
प्राण में भू के हरी है, पर सजल मेरी कहानी,
प्रश्न जीवन के, स्वयं मिट, आज उत्तर कर चली मैं।
मेघ सी घिर झर चली मैं।

धूलि के सपने को अगणित रूपों में अगणित स्थानों पर अंकुरों के रूप में उगा देने वाला पथ के प्रत्येक शूल के मुँह को मोतियों से भर देने वाला और अपने अस्तित्व को खोकर भी पृथ्वी के प्राणों में हरियाली को बिखेर देने वाला जो कर्तृत्व है—उसकी कामना और कल्पना करने वाली भावना की ऊँचाई भी क्या नापी जा सकती है ?

और करुणा तो दीप शिखा की रचनाओं का ही नहीं, कवयित्री की समस्त रचनाओं का व्यापक सत्य है। प्रत्येक गीत मानों करुणा का एक निर्झर है, जो अपने कलगान से और शीतल स्पर्श से मन-प्राण को एक अकथनीय शान्ति और सहानुभूति से अनुप्राणित कर देता है तथा अनुभूति के स्तर को इतना ऊँचा उठा देता है कि मन सांसारिकता के निम्न धरातल को क्षण भर के लिए ही सही, भूल जाता है। देखिए :—

(१) पाथेय रहे तेरा दृग-जल, आवास मिले भू का अंचल
(२) अब न लौटाने के कहो, अभिशाप की वह पीर
बन चुकी स्पन्दन हृदय में, वह नयन में नीर
(३) देख कर कोमल व्यथा को, आँसुओं के सजल रथ में
मोम सी साधें बिछा दी थीं, इसी अंगार-पथ में
(४) लौट जाओ मलय मारुत के झकोरे,
अतिथि रे, अब रंगमय मिश्री घुला मधुपर्क कैसा ?
मोतियों का अर्घ्य कैसा ?
प्यालियाँ रीती कली की-शून्य पल्लव के कटोरे।
भ्रमर-नूपुर रव गया थम, मूर्छिता भू किन्नरी है
मूक पिक वंशरी है,
आज तो वानीर बन के भी गये निश्वास सो रे।

आँखों के बूंद भर आँसू का पाथेय और भू के अंचल में आवास पानी की कामना करने वाली अल्प तुष्टि क्या मन में एक टीस उत्पन्न नहीं करती ? इसी प्रकार अंगार-पथ में मोम सी पिघलने वाली साधों का विछाया जाना, वह भी इसलिए कि व्यथा के आँसुओं वाले रथ का मार्ग प्रशस्त हो जाये, क्या आँखों में बूंद भर आँसू नहीं उमड़ा लाता ? कलियों की रीती प्यालियाँ, पल्लवों के सूने कटोरे भू किन्नरी के मूर्छित होने से भ्रमरों वाले नूपुरों का थम जाना और इन सब से ऊपर वानीर-वन के निःश्वासों का भी सो जाना—क्या मन को एक प्रशान्त करुणा से आप्लावित नहीं कर जाता ?

इस व्यापक करुणा ने कवयित्री के मन को इतना कोमल कर दिया है कि दुख-सुख, फूल-शूल, रज और नभ सभी को प्यार करने लगती है। और तो और स्वयं मृत्यु भी कवयित्री को अनाकर्षक नहीं लगती। उसकी दृष्टि में मृत्यु मानो एक माता है, जो अपने नन्हें से जीवन-कल को सजा-सँवार कर इस पार्थिव संसार में खेलने भेज देती है। यह बालक पूरे समय अंगार खिलौने से खेलता रहता है और विषाद के पंक से अपने अंग पंकिल कर लेता है, इसके पैरों में काँटे चुभते हैं और यह अपने हृदय का स्वर्ग खो देता है इतने कष्टों को सहने के बाद जब स्वप्नों के साथी भी इनका साथ छोड़ बैठते हैं और खेल एक आख्यान भाग रह जाता है तब मृत्यु-माता का अंचल उसे अपने आश्रय में ले लेता हैं।

पलकों पर धर धर अगणित शीतल चुम्बन,
अपनी साँसों से पोंछ वेदना के कण
हिमस्निग्ध करों से बेसुध प्राण सुलाया।

इन विशिष्ट भावों और रसों के अतिरिक्त दीपशिखा के गीत अनन्त अनादि विश्वात्मा की अनुभूति भी करते रहते हैं। इस परोक्ष सत्ता के प्रति सदैव ही विचारकों में कौतूहल रहा है, उसे प्रिय के रूप में स्थापित करने की प्रणाली भी नई नहीं हैं, परन्तु महादेवी जी की कविता में जो नया है—वह है उसकी अत्यन्त ललित अभिव्यक्ति। इस काव्य में यह परोक्ष सत्ता कभी भी—मांसल सौंदर्य धारण नहीं करती, इसीलिए इसके प्रति आकर्षण की अभिव्यक्ति सदैव ही उदास और तपःपूत शान्त स्वरों में हुई। ये स्वर हठात् हमें व्यापकता और विशालता की अनुभूति में ओत-प्रोत कर देते हैं और हमारी प्रवृत्तियाँ ऊर्ध्वगामी हो उठती हैं। इस स्नेह की अभिव्यक्ति में सांसारिक बिल्कुल हीं न हीं है। यह तो देव-मन्दिरों की अर्चना है—ऐसी अर्चना—जिसमें सांसारिक कठिनाइयों के शूल-अक्षत बन जाते हैं और तुच्छता की धूलि चन्दन बन जाती है, जहाँ सुधि गंध युक्त साँसें अगरु धूम स्थान ले लेती है और नयन-नीर अभिषेक जल हो जाता हैं। परन्तु यह तो हुई एक ओर की बात—अर्चना करने वाली की बात। श्रद्धास्पद का रूप देखिए :—

परिधिहीन रंगों भरा व्योम मन्दिर,
चरण-पीठ भू का व्यथासिक्त मृदु उर,
ध्वनित सिन्धु में है रजत शंख का स्वन।

सुन्दर रंगों से भरे हुए परिधिहीन व्योम से अधिक विस्तीर्ण कौन सा मन्दिर हो सकता है? और पृथ्वी का सम्पूर्ण व्यथासिक्त आँचल जिसकी चरण-पीठ है तथा जिसकी स्तुति में सप्तसिंधु शंख घोष किया करते हैं—उसकी विराटता की कल्पना निश्चय ही विशालता की चरम सीमा है।

इसी प्रकार की व्यापकता की एक अनुभूति और देखिए—

आज तार मिला चुकी हूँ।
रंग-रस-संसृति समेटे, रात लौटी, प्रात लौटे,
लौटते युग, कल्प, पल, पतझार 'औ' मधुमास लौटे,
राग से अपने कहो किसको न पार बुला चुकी हूँ?
निष्करुण जो हँस रहे थे तारकों में दूर ऐंठे।
स्वप्न नभ के आज पानी हो तृणों के साथ बैठे।
पर न मैं अब तक व्यथा का छन्द अन्तिम गा चुकी हूँ।

इस राग के आकर्षण की व्यापकता की कोई सीमा है? वह तो रात को और प्रभात को, युगों को और कल्पों को पतझड़ों को और वसन्तों को सभी—को इस पार बुलाता रहता है। और उसकी करुणा की गहनता के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, जिसने आकाश के स्वप्नों तक को, जो बहुत दूर प्रकाशमान तारों में बैठे हुए गर्वपूर्वक हँस रहे थे, पानी बना दिया है, और केवल पानी ही नहीं बनाया है पृथ्वी पर उतार कर तृणों की पंक्ति में भी बिठा दिया है—और यह हुआ है, तब जब कि व्यथा का अन्तिम छंद गाया ही नहीं गया है।

इस प्रकार व्यथा की व्यापकता की अनुभूति भी प्रायः अधिकांश गीतों में होती है। संग्रह के प्रथम गीत में ही वर्णित है कि व्यथा सभी के प्राणों का सम्बल है। महान् सिंधु के दीर्घ उच्छ्वास हम बादलों के रूप में देखते हैं और दिशा-हीन तम का विकल मन भी तो बिजली के रूप में तड़पता रहता है। यह अनन्त आकाश भी तो व्यथा के आँसुओं से सिक्त किसी का अंचल ही है, इसलिए जब ये सभी महान् हस्तियाँ व्यथा से नहीं बची हैं तो एक सामान्य दीपक ही इससे कैसे बच सकता है। दीपक को सम्बोधित कर कवयित्री कहती है कि जब जलना ही है तो निष्कम्प जल और घुलना ही है तो मन को चंचल कर के क्यों घुलता है? अचंचल घुल। इस व्यथा को लेकर कवयित्री का तादात्म्य प्रकृति के अणु-अणु से हो जाता है। नभ से लेकर रज तक, रस से लेकर विष तक, मरु से लेकर उर्वर तक—सभी जाने। पहचाने आत्मीय बन जाते हैं—

अलि मैं कण-कण को जान चली,
सबका क्रन्दन पहचान चली।
जो जल में विद्युत प्यास भरा,
जो आतप में जल-जल निखरा,
जो झरते फूलों पर देता नित चन्दन सी ममता बिखरा,
जो आँसू में धुल-धुल उजला, जो निष्ठुर चरणों से कुचला
मैं मरू उर्वर के कसक भरे।
अणु-अणु का कम्पन जान चली।

यह तो हुई संक्षेप में दीपदिखा के भाव-पक्ष की बात। कला-पक्ष भी उसका कम उत्कृष्ट नहीं है। कवयित्री के

मशब्द चयन की तो प्रशंसा ही नहीं करते बनती। सावन की रिमझिम फुहारों का रस और संगीत, कोमलता और मधुरता, सभी का एकत्रीकरण भी शायद ही इस शब्द माधुर्य से तुल पाये। ये शब्द केवल मधुर ही नहीं हैं, व्याकरणसम्मत और सुनियोजित भी हैं—कहीं कोई अपवाद नहीं है। इतनी परिपक्व शब्द-योजना अद्यतन हिन्दी काव्य मेंनिश्चय ही अत्यन्त दुर्लभ है। रीतिकालीन महाकवि बिहारी के बारे में जो गागर में सागर भरने वाली उक्ति प्रसिद्ध थी, आधुनिक काल में वही उक्ति महादेवी जी की भाषा के विषय में चरितार्थ होती है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कह देने का लाघव इनकी अपनी विशेषता है। तथा मधुर अभिव्यञ्जना के विषय में क्या कहा जाये—केवल कुछ बानगी ही प्रस्तुत की जा सकती है—

(१) मेरी मृदु पलकें मूँद-मूँद. छलका आँसू की बूँद-बूँद
लघुतम कलियों में नाप प्राण, सौरभ पर मेरे तोल गान,
बिन माँगे तुमने दे डाला, करुणा का पारावार मुझे,
चिर सुख-दुख के दो पार मुझे।

(२) गूँजती क्यों प्राण वंशी?
मृण्मयी! तू रच रही यह तरल विद्युत् ज्वार सा क्या?
चाँदनी घनसार सा क्या? दीपकों के हार सा क्या?
स्वप्न क्यों अवरोह में, आरोह में दुखगान वंशी?

(३) प्रिय मैं जो चित्र बना पाती।
जिसके पाषाणी मानस से, करुणा के शत वाहक पलते,
आँसू भर ऊर्मिल रथ चलते,
मैं ढाल चाँदनी में मधुरस, गिरि का मृदु प्राण बता जाती

यह सुन्दर अभिव्यञ्जना केवल यदाकदा ही नहीं पायी जाती। प्रत्येक पंक्ति इस माधुर्य में मुखर है।

उत्कृष्ट गेयता भी महादेवी जी के काव्य की एक विशेषता है। जिन छन्दों का प्रयोग उन्होंने किया है वे बड़े सरस गायन—सुलभ हैं। तुकें इतनी असाधारण हैं कि उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। इन सजीली तुकों और छबीले छन्दों ने भाव और भाषा के सौंदर्य को चार चांद लगा दिये हैं।

नीरजा की उपासिका

★

विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक'

उपासना मनुष्य की आस्तिक प्रवृत्ति है, मनुष्य जब से अपनी मानवी विवशता में अथवा प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में अलक्षित शक्ति के प्रभाव की कल्पना करने लगा, तभी से उसमें आस्तिकता का भाव और भक्ति की भावना का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। मानवी विवशता में उपासना या भक्ति का जन्म होता है, अपनी विवशता में जब मनुष्य अपने को बहुत ही लघु अनुभव करने लगता है तो उसमें प्राकृतिक व्यापारों की विशालता के प्रति एक कौतूहल का भाव जागता है और उस विशालता में वह अलक्षित शक्ति के प्रभाव की कल्पना करने लगता है, अपने से विरक्ति, ईश्वर में परानुरक्ति या प्रकृष्ट अनुराग जाग्रत करती है, यही उपासना या भक्ति है, निराकार या अलक्षित को कला के सहारे साकार रूप दे कर समझना या समझाना भक्ति-मार्ग का विषय है।

भक्ति या उपासना में अनुराग की प्रबलता चाहिए, और उस प्रबल अनुराग का समर्पण, परमात्मा की ओर हो, देवो भूत्वा देवं यजेत्" के अनुसार यह आवश्यक है कि उपासक अपनी शरीर-शुद्धि और हृदय-शुद्धि कर के स्वयं देवतुल्य बन कर देवता की उपासना के लिए नित्य अर्चना आवश्यक है, और नित्य-अर्चना के लिए पाँच बातों का विधान है—**१—अभिगमन—मन, वाणी और कर्म से अविहित हो कर देवालय में गमन, २—उपादान—पूजा की सामग्रियों का संचयन, ३—इज्या—पूजा, ४—स्वाध्याय—मंत्र, जप एवं शास्त्रों का अभ्यास, और ५—योग—ध्यान।**

यह वैधानिकता उपासक को भक्त बनाती है। भक्ति का पूर्ण माधुर्य है—मुक्ति। भक्ति का पूर्ण माधुर्य प्राप्त करने के लिए ग्यारह प्रकार की आसक्तियाँ बताई गई हैं—**१—गुण-माहात्म्य, २—रूप, ३—पूजा, ४—स्मरण, ५—दास्य, ६—सख्य, ७—वात्सल्य, ८—कान्ताभाव, ९—आत्मनिवेदन, १०—तन्मयता, और ११—परम विरह,** इनमें से किसी भी एक आसक्ति के सहारे भक्ति का पूर्ण माधुर्य प्राप्त होता है, पूर्ण माधुर्य या मुक्ति के चार प्रकार हैं:—**१—सालोक्य भक्त को देवलोक की प्राप्ति हो, २—सामीप्य—देवलोक में पहुँच कर देवता के समीप पहुँचना, ३—सारूप्य—उपास्य के रूप को प्राप्त कर लेना और ४—सायुज्य—आराध्य या उपास्य की प्रभविष्णुता को पाना, ईश्वर से एक सा हो जाना, परमानन्द को पाना।**

उपासना या भक्ति "महारस" है, उपास्य ही आलम्बन विभाव है, उसके सम्बन्ध के सभी विचार और सामग्रियाँ उद्दीपन विभाव हैं, स्तंभ, स्वेद, रोमांच आदि अनुभाव हैं, ये अनुभाव भक्ति भाव के सूचक और प्रबंधक है, संचारी-भाव 'भक्ति रस' के सहायक अंग हैं, उनके सहारे साधक कभी ईश्वर से रूठता है, कभी उन्हें मनाता है, कभी उलाहना देता है, कभी अपना दैन्य प्रदर्शित करता है, कभी अधीर हो उठता है और स्थिर चित्त हो कर उपास्य की ओर तन्मय हो जाता है, भावातिरेक में 'रति' स्थायी भक्ति इसका पोषण करता है, भावातिरेक में उपास्य और उपासक का द्वैत मिट जाता है, यह सरस अद्वैत अवस्था प्रबल विरहासक्ति के बिना संभव नहीं है, इसीलिए भक्ति रस में विरह का विशेष गौरव है, संयोगावस्था की अपेक्षा वियोगावस्था

में भाव की बड़ी तीव्रता रहती है, उपासक के हृदय में एक उपास्य के लिए जो आकर्षण रहता है, वह अपने उत्तेजन के हेतु उसे विरह-असहिष्णु बना कर बाहर से रुलाता है, किन्तु परोक्षत: उपास्य के ध्यान को अधिकाधिक स्पष्ट और निकट लाता हुआ उपासक के हृदय को अधिकाधिक अनिर्वचनीय आनन्द देता जाता है, इस आनंद में जो प्रकृष्ट माधुर्य रहता है, वह केवल अनुभव का गम्य है, इसीलिए परमोपासक आत्यन्तिक संयोगावस्थायुक्त मुक्ति की कामना का परित्याग कर आकर्षण-प्रधान 'भेद-भक्ति' को अपनाये रखते हैं।

'नीरजा' की उपासिका महादेवी वर्मा इसी 'भेद-भक्ति, को अपना कर चली हैं, उनकी यह 'भेद-भक्ति' भावना ही उन्हें किसी प्रकार के साम्प्रदायिक भक्त की कोटि में नहीं रखती, वे तो अपनी कला के सहारे सगुण निराकार को साकार रूप में समझने का प्रयास भर करती हैं, वे भगवान् के भावनामय भजन की भक्त हैं, उनका स्वयं का कथन है—'एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला'; और यही है महादेवी जी की मानवी विवशता, जिसने उनमें आस्तिकता जगाई, यद्यपि उनकी आस्तिकता के लिए उनके संस्कार भी जिम्मेवार हैं—'परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन का जैसा विकास किया, उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थिर हो सकती थी, जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर मां से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।'

'नीरजा' की भूमिका में कृष्णदास जी लिखते हैं—'श्रीमती वर्मा हिन्दी-कविता के इस वर्तमान युग की वेदना-प्रधान कवयित्री हैं, उनकी काव्य-वेदना आध्यात्मिक है, उस में आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन है, कवि की आत्मा, मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है, उसकी दृष्टि से, विश्व की सम्पूर्ण 'प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अनन्त अलौकिक चिर सुन्दर की छाया मात्र है, बस प्रतिबिम्ब जगत् को देखकर कवि का हृदय, उसके सलोने बिम्ब के लिए ललक उठा है; इससे स्पष्ट है कि प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में अलक्षित शक्ति के प्रभाव की कल्पना ने भी महादेवी को उपासिका बनाया है।

'नीरजा' में मानवी विवशता भी है और प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में अलक्षित शक्ति के प्रभाव की कल्पना भी। जब महादेवी जग, उसमें रहने वाले जीवन और जीवन की 'चाह' का रूप इन शब्दों में अंकित करती है—

"जीवन जल-कण से निर्मित-सा
चाह इन्द्रधनु से चित्रित सा
सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा"

तो मानवी विवशता की ही अनुभूति अंकित करती हैं, इसी प्रकार पद संख्या १७ में जब वे 'आँसू लड़ियाँ देखो', "मुरझाई कलियाँ देखो" मिटने वालों की हे निष्ठुर बेसुध रँगरलियाँ देखो "दु:ख की घड़ियाँ देखो", आदि कहती हैं तो मानवी विवशता की ओर ही संकेत करती है, पद संख्या ३८ में 'क्या नई मेरी कहानी' कह कर जीवन की क्षण-भंगुरता का ज्ञान कराया गया है, और अन्तिम पद में 'केवल जीवन का क्षण मेरे' गा कर मानवी विवशता को ही दुहराया गया है, इसी विवशता ने महादेवी को विराट् प्रकृति की ओर, प्राकृतिक व्यापारों की विशालता की ओर, और उस विशालता में अलक्षित शक्ति के प्रभाव की कल्पना की ओर अग्रसर किया है। संभवत: इसीलिए महादेवी की कलाकृतियाँ प्रकृति-प्रतीक-परक हैं। नीहार, रश्मि, नीरजा में आकर 'नीहार' का उपासना-भाव और भी सुस्पष्टता और तन्मयता से जाग्रत हो उठा है।

सरिता की सिहरन, सुमन का विकास, थलों का परिवर्तन और पृथ्वी की पुलकन प्रकृति के नैसर्गिक व्यापार हैं, किन्तु

महादेवी को इस सब के पीछे अलक्षित शक्ति का प्रभाव ही दिखाई देता है—

'सिहर-सिहर उठता सरिता-उर,
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा-भर
मचल-मचल आते पल फिर-फिर
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी।

यह सब प्रिय की पदचाप का प्रभाव है, और शायद उसी 'प्रिय' के लिए—

'हिम स्नात कलियों पर जलाये
जुगुनुओं ने दीप से
ले मधु पराग समीर ने
बन पथ दिये हैं लीप से
गाती कमल के कक्ष में
मधुगीत मतवाली अलिनि,

प्रकृति के सभी व्यापार जैसे उसी प्रिय के लिए हो रहे हैं। प्रकृति में निहित उस परोक्ष-सत्ता या प्रिय की ओर संकेत करती हुई महादेवी लिखती है—

'रूपसि तेरा घन-केश-पाश,
श्यामल-श्यामल, कोमल-कोमल
लहराता सुरभित केश-पाश,
नभ गंगा की रजत-धार में धो आई थी इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अङ्ग सिहरा-सा तन हे सद्य स्नात,
भीगी अलकों के छोरों से चूतीं बूँदें कर विविध लास
रूपसि तेरा घन-केश-पाश।
सौरभ भीना झीना गीला लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल,
चल अंचल से झर-झर झरते पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल
दीपक से देता बार-बार तेरा उज्ज्वल चित वन बिलास
उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है, बक-पांतों का अरविन्द-हार
तेरी निश्वासें छू भू को बन-बन जातीं मलयज बयार
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन जगती-जगती की मूक-प्यास,

इस पद में वह अलक्षित शक्ति कबीरदास की 'मा' का रूप धारण कर लेती है, जैसे संसार की क्षणभंगुरता से आकुल कबीर कह उठे थे, "हरि जननी मैं बालक तोरा" उसी प्रकार महादेवी मानवी विवशता में उस अलक्षित शक्ति से कह उठती हैं—

'इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंगों में भर विशाल
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इस का मृदुल भाल,
दुलरा देना, बहला देना,
यह तेरा शिशु जग है उदास,

उसी अलक्ष्य शक्ति का रुपांकन करती हुई महादेवी अपने आलम्बन को और स्पष्ट करती हैं। हे अप्सरि तेरा! नर्तन सुन्दर है, आलोक और तिमिर तेरे सितअसित चीर हैं, सागर-गर्जन मंजीर की रुनझन है। झंझा तेरा अलकजाल है, मेघों का मंद-गर्जन किंकिणियों का मुखरित स्वर है, रवि-शशि तेरे अवतंस (कर्णाभरण) हैं। तारक तेरी माँग में जड़े मोती हैं, चपला तेरा कटाक्ष है, इन्द्रधनुष ही मुस्कान है, हिमकण पसीने के विन्दु हैं, बहरहाल उसी शक्ति के कौतुक के लिए यह जग बनता और मिटता है, इस प्रकार स्थान-स्थान पर उस निराकार को रुप देने का प्रयत्न 'नीरजा' में है।

उस अलक्षित शक्ति की उपासना के लिए महादेवी जी किसी मन्दिर में नहीं जाती हैं, बल्कि उन्होंने अपने जीवन को ही मन्दिर बनाया है, वहाँ कोई राजसी ठाठ-बाट नहीं हैं, बल्कि अकिंचन भक्त का दैन्य है :—

"पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे
स्नेह-भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन-रे
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे
धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे
प्रिय-प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे।"

इस दैन्य में ही वे उपासक की समस्त वैधानिकता को समेटे हुए हैं, और इसी में वे पूर्ण भक्त हैं, इसी से वे भक्ति का पूर्ण माधुर्य प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। अपने उपास्य के प्रति महादेवी जी में अनन्त आसक्ति का भाव है। अनन्त आसक्ति के तीन चरम विन्दु हैं---आत्म-निवेदन, तन्मयता और परम विरह ये तीनों ही प्रकार की आसक्तियाँ 'नीरजा' की उपासना का आधार हैं, इन का केन्द्र है परम विरह, यही 'नीरजा' का केन्द्र-विन्दु है, प्रबल अद्वैत के लिए परम बिरहासक्ति आवश्यक है, और 'नीरजा' में वह अपने चरम रूप में विद्यमान् है, उपासक अपने उपास्य से अनन्त युगों

से बिछुड़ा हुआ है, उसके वियोग में उसके अश्रु बह रहे हैं, 'नीरजा' का जन्म इसी विरह-जन्य अश्रु-जल से हुआ है—

प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर,
दुख से आविल, सुख से पंकिल,
बुद-बुद से स्वप्नों से फेनिल,
बहता है युग-युग से अधीर
इस में उपजा यह नीरज सित,
कोमल-कोमल लज्जित मीलित,
सौरभ सी ले कर मधुर पीर,

'नीरजा' की उपासिका के पास अपने उपास्य को उपहार में देने के लिए 'विरह' है, उसके पास तो अगणित युगों की प्यास है।

तू स्वप्न-सुमनों से सजा तन
विरह का उपहार ले,
अगणित युगों की प्यास का
अब नयन—अञ्जन सार ले,

आँसू हैं, जिन से उपासिका का जीवन 'विरह का जलजात' बन गया है, इसी जलजात को वह अपने आराध्य का 'लीला कमल' बनाना चाहती है। उसके श्वास उपास्य के लिए ही युग-युग से अपना इतिहास लिखते आये हैं, नयन में यह केवल पानी नहीं है, बल्कि उसी की याद ढुलक रही है—

इन श्वासों को इतिहास आँकते युग बीते
रोमों में भर-भर पुलक लौटते पल रीते
यह ढुलक रही है याद नयन से पानी नहीं

विरह की अनुभूति इतनी गहन है कि उपासिका को दुःख और पीड़ा से आसक्ति हो गई है, पीड़ा में उसने अपने प्रिय को खोज निकाला है, और प्रिय में पीड़ा को खोजना चाहती है पीड़ा को अपनाने वाला भी महादेवी की श्रद्धा का भाव बन गया है :—

जिन प्राणों से लिपटी हो,
पीड़ा सुरभित चन्दन सी,
तूफानों की छाया हो,
जिस को प्रिय-आलिंगन सी,
जिस को जीवन की हारें,
हों जय के अभिनन्दन सी,
वर दो यह मेरा आँसू, उसके उर की माला हो,
'प्रिय, जिसने दुःख पाला हो।'

पीड़ा के पथ से महादेवी दुःख रूप विश्वात्मा का स्वागत करती हैं।

'शूलों में मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिन्धवाना
तुम दुःख बन इस पथ से आना

उपासक जितना ही पीड़ा और विरह की अग्नि में जलता है, उतना ही वह छलनामय और समीप आता है।

तू जल-जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय,

विरह की तन्मयता में ही, 'नीरजा' की उपासिका ने अपने उपास्य को पाया है। भक्ति का पूर्ण माधुर्य प्राप्त किया है, मुक्ति प्राप्ति की है। अपने को प्रिय में मिटाना ही मुक्ति है। सायुज्य मुक्ति का स्वरूप 'नीरजा' में विद्यमान् है। चरमानन्द 'नीरजा' में विद्यमान् है। प्रेम की पराकोटि की प्रतिष्ठा 'नीरजा' में हुई है, जो मुक्ति की भूमिका है, जिस प्रकार ज्ञान की चरम सीमा ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है। उसी प्रकार प्रेम की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन अथवा साध्य और साधन की एकता है, प्रेम की पराकोटि में कार्य और कारण का अभेद हो जाता है। प्रेम की पराकोटि में पहुँच कर उपासक गा उठता है—

'बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं,
नाश भी हूं मैं अनन्त विकास का क्रम भी
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी
तार भी आघात भी झंकार की गति भी
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी
अधर भी हूं और स्मित की चाँदनी भी हूं।

कार्य-कारण की भिन्नता मिट जाने पर विरह-निशि का अन्त हो जाता है, आत्म-समर्पण की स्थिति में मिलन-मधुदिन का उदय हो जाता है—

"गूँजता उर में न जाने दूर के संगीत सा क्या?
आज खो निज को मुझे खोया मिला विपरीत सा क्या

क्या नहा आई विरह-निशि,
मिलन—मधु—दिन के उदय में ?'

उपासक और उपास्य की अनन्यता हो जाती है, बाहरी परिचय की, भेद की, द्वैत की दीवारें गिर जाती हैं :—

'तुम मुझ में प्रिय, फिर परिचय क्या ?
चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर-संगम;
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया-छाया में रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?'

भावतिरेक में उपासक और उपास्य का द्वैत मिट गया है। विरहासक्ति ने सरस अद्वैत की स्थिति उत्पन्न कर दी, 'भेद-भक्ति' के विरह ने ही यह अभेद उत्पन्न किया है। इस प्रकार 'नीरजा' में अपने उपास्य के लिए केवल आत्मा की करुण अधीरता ही नहीं, अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित है। कृष्णदास जी के शब्दों में, 'नीरजा' यदि अश्रुमुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है, 'और इसालिए उसमें साधकों की सी दुविधा नहीं है कि 'शूली ऊपर सेज पिया की किस विधि मिलना होय' ? वहाँ तो मिलन का मधुदिन उदय हो चुका है, साधक और उपासक में यही अन्तर होता है।

महादेवी की उपासना के सम्बन्ध में एक बड़ा भारी भ्रम साहित्य-जगत् में फैला है, वह यह कि महादेवी को प्रायः निर्गुण की उपासिका बताया गया है। क्षमा कीजिए, निर्गुण का उपासक नहीं होता, साधक होता है, उपासक तो सगुण का होता है, कृष्णदास जी का यह कथन—'मीरा ने जिस प्रकार उस परम पुरुष की उपासना सगुण रूप में की थी, उसी प्रकार महादेवी जी ने अपनी भावनाओं में उसकी आराधना निर्गुण, रूप में की है,'—ही भ्रम का प्रचारक रहा है, प्रत्येक उपासक का एक ही इष्टदेव होता है, और वह उपासक अपने उसी एक इष्टदेव या उपास्य का स्मरण, चिन्तन एवं उसके तादात्म्य होने की उत्कंठा करता है। महादेवी वर्मा का उपास्य भी एक ही है, उसी का स्मरण चिन्तन, आराधन और उसी में तादात्म्य की भावना 'नीरजा' का स्वर है।

'नीरजा' के कुछ पदों में, जो एक प्रश्न है, एक जिज्ञासा है और एक कौतूहल है उसी से यह भ्रम पैदा होता है कि 'नीरजा' की उपासिका निर्गुण की उपासिका है, कुछ पद प्रकृति में विराट् सत्ता की झाँकी आंकते हैं, इससे भी उक्त भ्रम की पुष्टि होती है, किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह भक्त का प्रकृष्ट अनुराग है, उसकी तन्मयासक्ति है जो प्रश्नचिन्हों का अथवा प्रकृति में विराट् के दर्शन का कारण बनता है, नीचे की पंक्तियों में तन्मयासक्ति है, न कि निर्गुण के प्रति कौतूहल या जिज्ञासा का भाव—

अनुसरण निःश्वास मेरे कर रहे किसका निरन्तर ?
चूमने पदचिह्न किसके लौटते ये श्वास फिर-फिर ?
कौन बन्दी कर मुझे अब बँध गया अपनी विजय में ?
गूँजता उर में न जाने दूर के संगीत सा क्या ?
आज खो निज को मुझे खोया मिला विपरीत सा क्या ?
क्या नहा आई विरह-निशि—
मिलन-मधुदिन के उदय में ?

और

'नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रहे कैसी उलझन
रोम-रोम में होती री सखि, एक नया उर का सा स्पन्दन
पुलकों में भर फूल बन गये जितने प्राणों के छाले हैं
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?'

'नीरजा' का उपास्य निर्गुण होता तो उसके आने की चर्चा सखी से न की जाती, निर्गुण के प्रति प्रकृष्ट अनुराग नहीं होता है, उसके प्रति ज्ञान का अनुसन्धान होता है, जिसे भक्त का, प्रेमी का प्रकृष्ट अनुराग मिलना है, वह तो रोम-रोम में रमा दिखाई देता है, श्वास-प्रश्वास में उसकी अनुभूति होती है, सृष्टि के कण-कण में उसका प्रतिबिम्ब भासता है, वह तो फिर जागृति हो चाहे सुषुप्ति, हर दशा में, हर क्षण में, हमें अपने वातावरण में रमा हुआ जान पड़ता है, निर्गुण अणु-अणु में रमा होता है, बात ऐसी

नहीं है, बल्कि प्रेमी को उसका प्रमास्पद, उपासक को उस का उपास्य हर कहीं दृष्टिगोचर होता अनुभव होता है। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि 'नीरजा' में भावों की व्यापकता अधिक है। इसमें भावों को सौन्दर्य मिला है। इसमें विविध रूपी तन्मयता है। 'नीरजा' में महादेवी जी के अन्तर्जगत का भावयोग है, मस्तिष्क का ज्ञानयोग नहीं, अनुभूति में महादेवी जी सगुणोपासिका हैं ही। निर्गुण की न तो चितवन होती है, न श्वास, न उसकी पदचाप होती है, न उसका कोई नाम-रूप, न उसकी मुरलिका होती, न वह शंख बजाता, और न ही वह दीपक बन कर शलभ को जलाता है। जबकि, 'नीरजा' में इसके विपरीत उपास्य की श्वास, चितवन, पदचाप, रूप, नाम, उसकी मुरली, शंख सभी कुछ तो विद्यमान् है।

महादेवी ने जिस काव्य-कला के माध्यम से सगुण का भाव-लोक अपने पाठकों को दिखाया है, उस काव्य-कला की सृष्टि 'नीरजा' की उत्पत्ति सगुण के विरह-जल के बीच से हुई है और यह 'नीरजा' उसी सगुण की चितवन से विकसित है, उसी के श्वासों के समीर को छू कर खिली है, यह अपनी जो पुलकित हो रही है, वह भी उसी प्रिय की पद-चाप को सुनकर ही तो! महादेवी वर्मा तो अपने आपको मुरली की मतवाली 'मीरा' का प्रतिरूप मान कर चली हैं, इसीलिए वे गा उठी हैं—"जग ओ मुरली की मतवाली," और इस पद में मानो मीरा की सगुण के प्रति समस्त श्रद्धा, समस्त आसक्ति और समर्पण मुखर हो उठा है, और निखर उठा है मीरा के समस्त जीवन के व्याज से किसी भी सगुणरोपासक का जीवन-दर्शन।

वस्तुतः 'नीरजा' में निर्गुण की उपासना नहीं, बल्कि सगुण की अनुपस्थिति का रुदन है, अभिमानी प्रियतम की प्रवास-कथा का उपालम्भ है। प्रियतम के लौट आने की आकुल प्रतीक्षा है। मिलनातुर हृदय शकुन-विचार है, और विरहिणी गोपिकाओं का-सा आकुल क्रन्दन है। सगुण की अनुपस्थिति में उसका यशोगान, उसकी आकुल प्रणय-चर्चा निर्गुण की उपासना सी आभासित हुआ करती है, वस्तुतः वह निर्गुण की उपासना न होकर सगुण की ही आराधना होती है, 'मुस्काता संकेत भरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं!" इस पद में प्रिय-मिलन की आशा को उत्पन्न करने वाले शकुनों का संकेत है, न कि निर्गुण की व्याख्या, 'सघन वेदना के तम में सुधि जाती सुख सोने के कण भर' में जो सुधि है वह किसी जाने-पहिचाने प्रिय की है, न कि अनजान, अपरिचित निर्गुण की जिसकी बिरहानुभूति में मीरा के भक्ति-पद रचे गये, उसी सगुण की उपासना में 'नीरजा' की रचना हुई। जिसके लिए मीरा प्रेमनदी के तीर पर खड़ी हो कर आधी रात दर्शनों की कामना करती रही उसी के लिए 'नीरजा' की उपासिका गाती है—

'सजल रोमों में बिछे हैं, पांवडे मधु स्नात से
आज जीवन के निमिष भी दूत है अज्ञात से,
क्या न अब प्रिय को बजे गी
मुरलिका मधुराग वाली।'

निर्गुण के साधकों में वेदना और करुणा नहीं होती, ज्ञान की निर्ममता और विरक्ति की नीरसता होती है निर्गुण के साधक संसार की नश्वरता का प्रतिपादन कर केवल स्वार्थबुद्धि से आत्मकल्याण चाहते हैं। सगुण का उपासक अपनी वेदना और करुणा की अनुभूति से विश्व भर के क्लेश-कष्टों का हरण करता है। 'नीरजा' के कवि की वेदना, उस के कवि की करुणा सगुणोपासकों की भांति अपने उपास्य के चरण स्पर्श से पूत हो कर आकाश-गंगा की भांति इस छायामय जगत को सींच देने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है, इसीलिए 'नीरजा' की उपासिका गाती है—

'प्रिय जिस ने दुःख पाला हो।
जिन प्राणों से लिपटी हो,
पीड़ा सुरभित चदन सी।
तूफ़ानों की छाया हो,
जिस को प्रिय-आलिंगन सी।
जिस को जीवन की हारें
हों जय के अभिनन्दन सी।
वर दो यह मेरा आंसू उसके उर की माला हो।

पीड़ित मानवता के कल्याण के लिए जिस प्रकार सगुणोपासक भक्त कवियों ने भगवान् के भिन्न-भिन्न रूपों की कल्पना कर उससे जगत-उद्धार की प्रार्थना की थी, उसी

प्रकार महादेवी करुणा के दुलारे को जगाती हुई कभी सिद्धार्थ का स्मरण करती हैं, कभी वृन्दाविपिन वाले का।

'अश्रु कण से उर सजाया त्याग हीरक-हार
भीख दुःख की मांगने फिर जो गया प्रतिद्वार
शूल जिसने फूल छू चन्दन किया सन्ताप
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद-चाप
करुणा के दुलारे जाग

शंख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छविमान
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार
गूंजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज के पार
बृन्दाबिपिन वाले जाग।'

निर्गुणवादियों का व्यक्तित्त्व आत्मकेन्द्रित होता है, यह स्वार्थ-बुद्धि है, यह स्वार्थ-बुद्धि अन्य मनुष्यों से उन्हें दूर करती है, सगुणोपासक व्यापक विश्व में समाये हुए आत्मा के कल्याण का चिन्तन करता है, महान् कलाकार का उद्देश्य भी यही रहता है कि हमारे दृष्टिकोण को व्यापक बनाये हमारे आत्मकेन्द्रित बन्धन को काटे, 'नीरजा' की उपासिका महादेवी की काव्य-कला में सगुणोपासकों की इसी महान् कला के प्रदर्शन होते हैं।



नीरजा-नीराजना

*

शिवावतार मिश्र, एम० ए०

इसमें थोड़ा भी सन्देह का अवसर नहीं है कि 'नीरजा' की नीराजना-विधि के सम्पादित करने के लिये उद्यत किसी भी सहृदय के हृदय में यह स्वाभाविक भावना अवश्य उदित होगी कि वह यह अपनी शाब्दिक पूजा पहिले शब्दात्मक नीरजा-पुस्तिका के समक्ष उपस्थित करे अथवा हाथ में गृहीत नीरजा सरस्वती की भांति नीरजा निर्मात्री कवयित्री श्री महादेवी वर्मा के सम्मुख समर्पित करे। परन्तु इस संदिग्धावस्था में जैसे चिकित्सक निदान को प्राथमिकता देता है उसी प्रकार कृति की अपेक्षा कर्ता में मुख्यत्व को मानते हुये मैं उस महादेवी का अभिवन्दन सर्वप्रथम करता हूँ जिसके गीत चतुर चूड़ामणियों के द्वारा प्रसाद पुष्पों की भाँति शिर से धारित होते हैं और जिसके मनोज्ञ गद्य साहित्यिक शिरोमणियों से हृदय में हारावली की भाँति अलंकृत किये जाते हैं। अथवा 'रश्मि' की निर्मात्री, नीहार की रचयित्री तथा 'नीरजा' की जन्मदात्री जिस महादेवी को देख सहसा यह पदपंक्ति निकल कर यह अनुभूति उत्पन्न होती है :—

(रश्मि' पुस्तिका, जिसकी रश्मि है तथा जिसे विहार 'नीहार' अपसृत हुआ। उस उद्भासित नीरजा महादेवी को मैं भानुद्युति की भाँति प्रणाम करता हूँ)

इसके पश्चात् जैसे आरती के पूर्व अर्चनीय मूर्ति का दर्शन पूजन आदि करणीय होता है वैसे ही मैं नीराजना के पूर्व नीरजा की मनोज्ञ मूर्ति पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ। 'नीरजा' कवि-कुल महामान्या महादेवी की तृतीय कृति है। इसमें अनुभूतिमय चिन्तन प्रधान ५८ गीत हैं, काव्यांगों की दृष्टि से इसे मुक्तक गीत काव्य की संज्ञा सर्वथा देने योग्य है। जिसके प्रत्येक स्थल में कवयित्री की काव्यानुभूति तथा अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति विलसित होती है। जो वेदना से अभिभूत करुणा से आक्रान्त किसी कान्ता के समान केवल वेदना से विनोद करती है, करुणा से खेलती है और प्रियतम को प्राप्ति की भावना से कहीं—

'तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या'

कहकर प्रियतम से तादात्म्य करती है तो कहीं 'बीन भी हूँ तुम्हारी रागिनी भी हूँ' कहकर उसी की बन जाने में सुख का अनुभव करती है।

मेरे विचार में 'नीरजा' महादेवी की हृदय कल्पिता कोई अपूर्व वर्णरूपा देवी है जो ५८ भुजगीतों वाली रसानुभूति से प्राणशक्ति वाली है और शिर से मस्तक तक करुणा से नहाई हुई, वेदना का अङ्गराग लगाये जनमानस में रागानुभूति उत्पन्न करती है। साथ ही परमात्मा के रहस्य का उद्घाटन करती है।

अथवा 'नीरजा' श्री महादेवी के नयन-नीर से उत्पन्न कोई एक सरिता है, जो प्रियतम का लक्ष्य लेकर मंद-मंद बह रही है और जिसमें सैंकड़ों गीतों की छोटी मोटी न दिया मिल रही हैं। आनन्दानुभूति जिसकी अमृतमयी धारा है और करुणा व वेदना ही दो अनुकूल कूल हैं। साथ ही जिसमें हजारों चिन्तन-लहरियाँ लहरा रही हैं।

अथवा 'नीरजा' साक्षात् नीरजा (कमलिनी) है, जिसमें ५८ पद्य पद्म की भाँति खिले हुए हैं और जिनके

इधर-उधर सैंकड़ों साहित्यिक भ्रमर मड़राते रहते हैं और जिनके थोड़े से सौरभ को पाकर निज को कृतार्थ मानते हैं। इस प्रकार से नीरजा वर्णात्मक महादेवी की भावना से नयन नीरजा नदी की कल्पना से अथवा स्वयं नीरजा (पद्मिनी) होने के नाते बुधजन बंदनीयता को पाने में समर्थ हैं, यह बात विशेषज्ञों से छिपी नहीं।

यदि 'नीरजा' के अन्तस्तत्व को जानने के लिये कोई मनीषी उसके भीतर पैठे तो निश्चित रूप से अनेक विशेषताएँ पायेगा। सचमुच श्री महादेवी की प्रतिभा 'नीरजा' पूर्णरूप से प्रतिभासित होती है। नीरजा के विषय में श्री कृष्णदास की यह भावना सर्वथा सत्य है और भावुकों से अभिवन्दनीय है :—

'नीरजा' में 'नीहार' का उपासना भाव और भी सुस्पष्टता और तन्मयता से जागृत हो उठा है। इसमें अपने उपास्य के लिये केवल आत्मा की करुण अधीरता ही नहीं अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित है। 'नीरजा' यदि अश्रुमुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है तो साथ ही काव्यानन्द के मधु से मधुर भी है। मानों कवि की वेदना, कवि की करुणा अपने उपास्य के चरण-स्पर्श से पूत होकर आकाश-गङ्गा की भाँति इस छायामय जग को सींच देने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है'।

कृष्णदास के उपर्युक्त कथन के अनुसार उपासना-भाव की पराकाष्ठा नीरजा में किस प्रकार दृष्टि गोचर हो रही है—

> तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या ?
> तारक में छवि प्राणों मे स्मृति
> पलकों में नीरव पद की गति
> लघु उर में पुलकों की संसृति
> भर लाई हूं तेरी चञ्चल—
> और करूँ जग में सञ्चय क्या ?
> तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या ?

इस पद्य में उपासिका की आत्मा प्रियतम का सान्निध्य पाकर केवल अहङ्कार से तृप्त ही नहीं बल्कि विह्वल होकर उसमें एकता का आनन्दानुभव कर रही है। वह प्रिय का परिचय नहीं चाहती और न उसे किसी सांसारिक वस्तु के संचय की अपेक्षा है।

उपासना की शोभा समर्पण है। नीरजा में आराधिका अपने आराध्य के सामने किस प्रकार अपने को अर्पित करती है, इसे आप निम्नलिखित नीरजा के गीत से निरूपित कीजिए : --

> बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
> नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ।
> शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ।
> फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ।
> एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ।
> दूर तुमसे हूं अखंड सुहागिनी भी हूँ॥
> नाश भी हूं, मैं अनन्त विकास का क्रम भी।
> त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी।
> तार भी, आघात, भी झंकार भी गति, भी।
> पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी।
> अधर भी हूं और स्मित की चाँदनी भी हूं॥

इस सुन्दर पद्य में कवयित्री अपने उपास्य के समक्ष अपने को पूर्णतया समर्पित कर रही है तथा उसी की बन जाने में परमानन्द का अनुभव करती है। अत्यन्त दूर होते हुए भी अखंड सुहागिनी रहने की भावना सचमुच सराहनीय है। इसमें थोड़ी भी बनावट नहीं है बल्कि इसमें अपूर्व सरल, सरस रूपकालङ्कार के छटा है। भावपक्ष एवं कलापक्ष का ऐसा अनूठा समन्वय अन्यत्र न मिल पायेगा।

'विना वियोग वर्णन के संयोग अधूरा है' इस उक्ति के अनुसार यदि कोई रसज्ञ साहित्यिक वियोग का मूर्तरूप देखना चाहता है तो वह एक बार अवश्य 'नीरजा' का अध्ययन करे। नीरजा में प्रियतम के विरह से ही जीवन की सार्थकता है अथवा विरहजन्य उपादानों से ही जीवन चलता है। जैसे—

> विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
> वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास

अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात
जीवन विरह का जलजात ।
आंसुओं का कोष उर दृग अश्रु की टकसाल
तरल जल-कण में बनें घन सा क्षणिक मृदुगात
जीवन विरह का जलजात ॥

नीरजा के गीतों की यह प्रमुख विशेषता है कि उनमें परमात्मा को लक्ष्य बनाकर आत्मा का प्रणय-निवेदन है। इसीलिये सभी गीत वेदनापूर्ण होते हुए भी आनन्दप्रद हैं। यह बड़ी विचित्र बात है कि गीतों में उद्गीत वेदना थोड़ा भी दुख नहीं देती।बल्कि अलौकिक होकर आत्मानन्द से परिपूर्ण होकर प्रियतम के पास भेजवाने में संलग्न है। जहां कहीं दुःखवाद दिखता है वह भी लौकिक सीमा को पारकर अलौकिक आनन्द के मार्ग को प्रदर्शित करता है। जैसे—

तुम दुख बन इस पथ से आना
शूलों में नित मृदु सा खिलने देना मेरा जीवन
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना
नित जलता रहने दो तिल तिल अपनी ज्वाला में उर मेरा
इसकी विभूति में फिर आकर अपने पद चिह्न बना
जाना ।
तुम दुख बन इस पथ से आना ॥

कवयित्री किस प्रकार स्वसुख-निरपेक्ष तथा दूसरों के दुःख से कातर है, इसे आप निम्नांङ्कित नीरजा—गीत से समझ सकते हैं—

मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू लड़ियां देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत मुरझाई कलियाँ देखो ॥

प्रियतम से तादात्म्य को पा जाने वाली साधिका की भाँति नीरजा की गायिका अपने जीवन को परमात्मा का सुन्दर मन्दिर मानती है और पूजा, अर्चा को बाह्याडम्बर के रूप में धिक्कारती है :—

क्या पूजा क्या अर्चन रे नीरजा का अध्ययन करके कोई भी बुधजन इसका निर्णय कर लेगा कि जो कवयित्री 'रश्मि' के गीतों में—

मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर ।
रहने दो प्यासी आँखे
भरती आँसू का सागर ॥

यह कहती हुई सर्वथा अतृप्त सी प्रतीत होती हैं। तथा—

खेलूँ परागमय मधुमय
तेरी वसन्त छाया में
या झुलसे संतापों से
प्राणों का पतझड़ देखूँ। कह दे मां क्या अब देखूँ ॥

यह पूछती हुई दुविधा में पड़ी हुई सी लगती है। नीरजा में वह अपने प्रिय के आगमन पर विश्वास करती है तथा वासवसज्जा नायिका की भाँति स्वयं बसन्त रजनी का आवाहन करती है—

तारकमय नव वेणी—बन्धन
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सितघन अवगुण्ठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी ।
पुलकित आ वसन्त-रजनी ॥

प्रसन्नता की बात है कि नीरजा की आरती उतारने वाले मुझ ऐसे व्यक्ति का यह परम सौभाग्य है जो कि इस नीराजना-विधि के विधानार्थ श्री महादेवी जी ने पहिले से 'नीरजा' में वह प्रदीप प्रदीपित कर रखा है जिसमें नीरजा की समस्त मूल भावना विद्यमान है तथा जिसके आलोक से प्रियतम का पथ आलोकित होता हैं; और संसार में जिसकी यह सुवर्णवर्णा दीपशिखायें सदैव भासमान रहेंगी :—

हन्त, नीरजाया नीराजना सम्पादयितुमिदं परमसौभाग्यं यदस्य विधेर्विधानाय प्रागेव नीरजायां कवयित्र्या प्रदीपितः स सुन्दरतमः प्रदीपो यस्मिन् विद्योतते नीरजायाः सकला मूलभावना एवं यदालोकेन सम्यग् अवलोक्यते प्रियतमस्य पन्थाः, जगति यदीया इमाश्शुभ्रशिखाः सुवर्णवर्णा भासमाना भविष्यन्ति :—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल ।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल सोम सा घुल रे मृदु तन
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल
मधुर-मधुर मेरे दीपक जल ।

नीरजनान्ते निवेद्यमानमिदं पद्यं पूरयतु नैवेद्यविधिमित्येव-निवेदये ।

नवदलिदरविन्दैर्गीतकैः शोभमाना
मधुपगण-गुञ्जैः सादरं गीयमाना ।
रस-सरसि च नित्यं बर्द्धमाना जनानां
हृदि विकिरतु मोदं 'नीरजा' नीरजेव ॥

नीरजा में अलौकिक प्रेम की उपासना

●

कान्ति भाई पु० पटेल

युग की छाया अन्य कवियों की तरह महादेवी पर भी है। जीवन के कष्टों को दृढ़तापूर्वक आनन्द के साथ सहन करना कवयित्री का एक विशेष गुण है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका में वह खुद लिख रही हैं—'जीवन के इतिहास में पशुता से पशुता, कठोरता से कठोरता की, और बुद्धि से बुद्धि की अभी पराजय नहीं हुई, इस चिर परीक्षित सिद्धान्त की जैसी नई कसौटी हम चाहते थे, वैसी ही लेकर हमारा ध्वंसयुग आया है। इसके ध्वंसावलेष में निर्माण का कार्य मनुष्यता, करुणा और भावनामूलक विश्वास ही से हो सकेगा, यह मैं नहीं भूलना चाहती। मेरी दृष्टि से शायद सामाजिक विच्छिन्नता और एकान्तिकता के कारण वह विस्तृत विश्व से एकात्मकता का अनुभव नहीं कर पाती। फलस्वरूप वह अपनी वेदना को प्रकट करती है—

> विस्तृत नभ सा कोई कोना
> मेरा कभी न अपना होना
> परिचय इतना, इतिहास यही,
> उमड़ी कल थी मिट आज चली

वह जग के सुख-दुःख का 'नीरजा' में अनुभव कर पायी है। इस सामंजस्य का प्रमाण है—

> जलना ही प्रकाश, उसमें सुख
> बुझना ही तम है, तम में दुःख
> तुझमें चिर दुःख, मुझमें चिर सुख

नीरजा की कवयित्री में स्थान-स्थान पर विरह का ताप अपनी प्रखरता खोने लगता है। उसकी रागिनी तीव्र होकर मचल पड़ती है—

> 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'

मानो वह खुद ही विराट जगत का रूप बन रही है। और ऐसी सौंदर्यात्मिक कल्पना में शायद उन्हें अधिक शान्ति प्राप्त होती है।

सद्यः स्नाता का—

> **'रूपसि तेरा घन केश पाश'**

कैसा सुन्दर चित्र है।

मुक्तक कविता होते हुए भी भावों का सर्जन उन्होंने ठीक प्रकार से किया है। 'नीरजा' भी इसी से युक्त है—

> चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम
> मधुर राग तू मैं स्वर संगम
> तू असीम मैं सीमा का भ्रम
> काया-छाया में रहस्यमय
> प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।

● ● ●

> मधुर-मधुर मेरे दीपक जल

● ● ●

> प्रियतम का पथ आलोकित कर

दार्शनिक तत्वों से मुक्त काव्य के बारे में उनके विचार स्पष्ट है। वह खुद कहती हैं—

'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है... व्यक्तिगत सुख विश्व वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुल कर जीवन को अमरत्व।'

'नीरजा' उनके गीति-काव्यों का संग्रह है। जिसमें उपासना-भाव और भी सुस्पष्ट और तन्मयता से जागृत हो उठा है। उपास्य का हृदय प्रियतम के लिए विह्वल है। इसी गीति-काव्य के एक-एक गीत में दर्द भरा हुआ है। जिसे सुनकर या पढ़कर आँखें भीग जाती हैं फिर भी वे गीत आत्मा को मधुर-मधुर आनन्द से भर देते हैं। कवि की वेदना कवि की करुणा, उपास्यदेव के लिए गंगा की पवित्र धारा की तरह बहती है। इनके गीतों में विरह की वेदना है, हृदय की करुणा है, नैनों का नीर है और मन की आकुल व्याकुलता। आत्मजा प्रेम पीर और निराकार प्रियतम। वह कौन है? कब उसके दर्शन या मिलन होंगे, इसका उन्हें कुछ भी पता नहीं।

मानव इसी धरातल पर अपना बसेरा करता है, वह ब्रह्म का एक अंश है। जीव ब्रह्म का एक उच्छ्वास है, जो विश्व ने चुरा लिया है। परिणाम स्वरूप विरह वेदना का श्री गणेश होता है। जन्म-समय वेदना और बाहरी वातावरण में भी कारुण्य। जीवन का जन्म विरह के जलविन्दुओं में हुआ है।

वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।
जीवन विरह का जलजात।'

उसकी आत्मा ब्रह्म के वियोग में कब से तड़प रही है! और जीवनदीप जल रहा है! अनादि काल से जलता हुआ दीप जब कभी मंदगतिमय हो जाता है, तब कवयित्री उसे साहस देती हुई कहती है—

'हे अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुममें भरती हूँ आँसू जल।'

● ● ●

तू जल-जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलना मय।

प्रियतम के निकट आने की कैसी अनूठी कल्पना है। वह उससे आग्रह करती है—

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रति दिन प्रति क्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।'

स्थान-स्थान पर नव-नव उपमाओं एवम् रूपकों द्वारा चित्र को सजीव बनाया गया है। कल्पना की उड़ान अनेरी है हर कल्पना में उनको उनके आगमन का संकेत प्राप्त होता है—

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि कथा प्रिय आनेवाले है?

कभी-कभी आगमन के संकेत से उनका अंग-अंग नाचने लग जाता है। अरे, वह स्वयं प्रियतम बन जाती है।

रोम रोम में होता री सखि,
एक नया उरका सा स्पंदन?
पुलकों से भर फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं।'

हर कोई प्रिया प्रियतम के लिए सुन्दर सजावट करेगी और शृंगार सजेगी। यहाँ भी इसकी न्यूनता नहीं है—

'करुणामय को भाता है, नभ के परदों में आना।'

इसीलिए तारों से अनुरोध है—

'हे नभ की दीपावलियों तुम पल भर को बुझ जाना।'

इतना होते हुए भी वह उसके आने पर दर्शन नहीं कर पाती। अ ये अवश्य, पर पदचिह्न छोड़ गए।

पथ के रज में है अङ्कित, तेरे पद चिह्न अपरिमित।
'मैं क्यों न इसे अंजन कर, आँखो में आज बसाऊँ।'

अज्ञात, अगोचर और अलौकिक प्रियतम के पास प्रिया संदेश भेजना चाहती हैं। स्थूल रूप में नहीं। इसीलिए वह अनन्त पथ को पार करना चाहती हैं; और अपनी दर्द-कथा सुनाना चाहती हैं—

कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती?
मिलता न दूत वह चिर परिचित
जिसको उसका धन दे आती।

अचानक सावन के बादल उमड़-घुमड़ कर पहुंचते है। वह समझती हैं कि प्रियतम ने अपने दूत भेजे हैं—वह पूछती हैं—

'लाये कौन संदेश नये घन?'

सपने उसी तरह आये और गायब हो गए। चिर तृषित नयनों को तृप्ति न मिली और न प्रेम-विह्वल हृदय को शान्ति।

काश—

तुम्हें बांध पाती सपनों में।
तो चिर जीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में।

अन्त में वियोगिनी ब्रह्मरूपी प्रियतम में लय हो जाती है। फिर विरह कैसा?

अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह।

जीवन से 'अहम्' दूर हुआ। माया रूपी दीवारें टूट गयीं और जीवन-ब्रह्म एक हो गए।

आज कहाँ मेरा अपनापन
तेरे छिपने का अवगुंठन।
मेरा बंधन तेरा साधन
तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुमसे अपना दुख प्रियतम

* * *

काया छाया में रहस्यमय
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या?

'नीरजा' की उपासिका की भाषा सुन्दर, कोमल, मधुर और सुस्निग्ध है। हर कोई गीत मार्मिक है। इनमें उसकी प्रतिमा भव्य रूप से प्रफुल्ल हुई है। 'नीरजा' उसके अपने विकास का पूर्ण रूप से खिला हुआ पुष्प है।

कवयित्री का भगवान बुद्ध के प्रति भक्तिमय अनुराग है जिसकी पूर्ण छाया उनके गीतों में दिखाई देती है।

सच कहें तो, 'नीरजा' में काव्य का स्पृहणीय उत्कर्ष है। कल्पना अपने विभिन्न भाव मन मोहक रूप में प्रसूत हुई है। जैसे, 'क्या पूजन अर्चन रे' में आत्मीय भाव, 'लय गीत मदिर, गतिताल अमर, अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर' में महीयसी कल्पना है। और 'तुम सो जाओ मैं गाऊँ' में जिस शृंगार की कल्पना है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'नीरजा' की उपासिका अपने प्रियतम में समाकर उच्च-शिखर पर पहुंच सकी है जहाँ मीरा भी पहुँची और प्रियतम के रूप में अन्तर्धान हो गई। मीरा के गीतों की तरह महादेवी के गीत रोम-रोम में वेदना जगाते हैं।

* * *

'नीरजा' का आकुल प्रणयनिवेदन

विद्या मिश्रा एम० ए०

'नीहार' एवं रश्मि के चिन्तन सोपानों पर अग्रसर होती हुई महादेवी 'नीरजा' में अनुभूतिमयी हो भावना की साकार प्रतिमा बन गई हैं। उनके प्रौढ़ चिन्तन की प्रेरणा ने उनकी भावना की पृष्ठभूमि को सुदृढ़ कर दिया है और वे 'नीरजा' की भावमयी रंगस्थली में हृदयस्पर्शी क्रीड़ा करती हुई दृष्टिगत होती हैं। इसमें उनकी अनुभूति की वीणा के स्वर झनझना उठे हैं और वे इस काव्यमयी नाटिका की आकर्षक नायिका स्वयं बन गई हैं।

श्री कृष्णदास जी का निम्नांकित कथन उनकी उपासना पर स्पष्टरूप से प्रकाश डालता है—

'उनकी काव्य-वेदना आध्यात्मिक है। उसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन है। कवि की आत्मा मानो विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती हैं।'

(नीरज वक्तव्य पृष्ठ ५)

'विरह में चिर' रहने वाली साधिका ने पिता को दार्शनिकता एवं माँ की भावुकता का उत्तराधिकार अपने विरह-गीतों में, मधुरतम रूप में स्पष्टतः परिलक्षित किया है। निर्गुण रहस्यमय चित्सत्ता के प्रति गाए गए गीतों की मृदुल झंकार ने उनके उपासना-मन्दिर को झंकृत कर दिया है।

साधना के विकास की तीन प्रमुख अवस्थाएँ कही गई हैं। 'जिज्ञासा', 'विरह', मिलन'। उपनिषद् के 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' की भांति आराध्य के प्रति जिज्ञासा महादेवी को भी प्रिय की खोज के लिए प्रेरित करती है।

'कौन तुम मेरे हृदय में ?'

'जिज्ञासु' साधना द्वारा उस चरम सत्ता की स्वसंवेद्य अनुभूति करता है और फिर जब जीव ब्रह्म के ऐक्य की अनुभूति साधक के व्यक्तित्व में समा जाती है तब वह इन्द्रियातीत आनन्दानुभूति करता है।

तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ?' का सन्तुष्टि-लाभकर अभिन्नता का आनन्दानुभव करती हुई उनकी आत्मा अलौकिक अनिवर्चनीय आनन्द देश की स्मृति में विरहाकुल होकर तड़पती है।

उनके उपास्यदेव मीरा की भाँति 'गिरिधरनगर' या कबीर के निर्गुण 'राम' नहीं हैं अपितु उनका 'चिरनूतन' विराट् सत्ता का स्वरूप है—

'जिसके काले तिल में बिम्बित
हो जाते लघु तृण औ अम्बर।'

[नी० पृष्ठ ५४]

उस आराध्य की सौरभ विश्व को सुरभित करती रहती है। उसकी छवि मेघों का चुम्बन करती है, उसकी ध्वनि अचलों को प्रतिध्वनित करती है। उनका प्रिय 'अलबेला' है। यद्यपि वह असीम है पर महादेवी ने अपने लघुतम जीवन के सुन्दर मन्दिर में सिंहासनासीन कर लिया है। उनकी प्रति श्वास उस प्रिय का अभिनन्दन करती है, उनके 'लोचन में जल कण उनकी पद रज प्रक्षालन को उमड़ते रहते हैं। पुलकित रोम के अक्षत एवं पीड़ा का चन्दन लगाकर उपासिका ने अपने स्नेह पूर्ण 'दीपक-मन' को प्रज्वलित कर दिया है स्पन्दन की धूप, अधरों द्वारा प्रिय का जाप, पलकों

के नृत्य की ताल ने आराधना की मधुरिमा का चार चाँद लगा दिए हैं। अर्चना का इससे अधिक भव्य रूप और क्या हो सकता है! उन्होंने सत्य ही कहा है—

'क्या पूजन क्या अर्चन रे?'

उनका उपास्य देव चिर-परिचित है। युगों से उसका मूक परिचय है वे अपने आराध्यदेव का आवाहन करती हैं और मन कह देता है—

'यह वे हैं -
आँखें कह देंगी पहचाना।'

उनकी साधना अन्तर्मुखी है। अभेदत्व में भेद और भेद में अभेदत्व की प्रतीति अनुभूतिगम्य होती है। ऐसी अनुभूतियाँ संकल्पात्मक भी होती हैं और साधनात्मक भी इसी के सहारे ससीम मे असीम समा जाता है और वह साधक मन असीम-ससीम, प्रियतम-प्रियतमा, आत्मा-परमात्मा का भेद मिटाकर कह उठता है—

'तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?'
(नी० पृ० ३०)

प्रतिपल प्रियतम का जन्म हो वहाँ स्वर्ग, मुक्ति भी कुछ नहीं होती। इस नवीन सत्य की अनुभूति ही उनकी महत्व-पूर्ण साधना है।

'रोम रोम में नन्दन पुलकित
साँस-साँस में जीवन शत-शत
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रियलय क्या।'
—नी० पृ० ३०

वे उसकी निःसीमता को दृगों से नापकर अमर बन जाती हैं—

'मृत्यु के उर में समा क्या
पायेंगे अब प्राण मेरे।
—नी० पृ० ७२

वे अभिन्नता की प्रतीति के क्षण में 'चिर जीवन प्यास' बुझा लेने की कामना करती हैं। साथ ही अपने 'लघुतम बन्धन' में मुक्ति बाँधने की भी महत्वकांक्षा करती हैं।

उनकी साधना में 'वेदना' का स्वर अपने प्रबल रूप में मुख-रित हो उठा है। आप 'प्रेयसी' की भाँति परोक्ष प्रिय के लिए अहर्निश आकुल रहती हैं। मुस्कराते हुए आकाश को देखकर उनके मन में संकेतात्मक प्रश्न हो उठता है—

'अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?'

उनकी आतुर उत्कण्ठा इस प्रतीक में कलक उठती है—

'भ्रान्त पथिक से फिर-फिर आते
विस्मित पल क्षण मतवाले हैं।'
—नी० पृ० ७९

उनके विस्मित लोचन मोती से उजले जल कण से छलछला उठते हैं तथा अपने प्रिय की साधना में उनका जीवन 'विरह का जलजात' बन जाता है जिसका जन्म वेदना में होता है और 'करुणा' में जिसका आवास होता है। वे अपने इस जीवन-कमल की सार्थकता भी इसी में मानती हैं—

'जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात।'
—नी० पृष्ठ २४

उनकी आध्यात्मिक विरह-साधना का रहस्य ही यह है कभी-कभी उनका मन खोया-खोया सा होकर अज्ञात पीड़ा से सिहर उठता है। वे आतुर हो पूछ बैठती हैं—

'पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यों भरभर?'
—नी० पृष्ठ १२

वे उस चिरन्तन से मिलने को आतुर हो उठती हैं। अपने पलक-पाँवड़े बिछाकर अपने 'पाहुन' का आह्वान करती हैं।

'तुम विद्युत् बन, आओ पाहुन।
मेरी पलकों में पग धर-धर।'
—नी० पृष्ठ १३

हृदय में 'पाहुन' के समा जाने पर उनका हृदय 'गूगे के गुड़' का सा अनिर्वचनीय सुख प्राप्त कर लेता

है और उनका भावुक हृदय 'जड़ता' की इस दशा को प्राप्त होकर पूछ बैठता है—

'आज क्यों तेरी वीणा मौन ?'

अलौकिक क्षणों में असीम सत्ता से अपना अटूट सम्बन्ध स्थापित करती हुई अनुरागिनी महादेवी प्रिय की महानता से अपने को महान् समझ गर्वान्वित हो उठती हैं—

'तेरे वैभव की भिक्षुक,
या कहलाऊँगी रानी ।'

उनकी विरह-साधना में अश्रु और ज्वाला प्रमुख उपादान हैं, जिनके द्वारा वे अपनी अमर वेदना का निरन्तर पालन करती हैं। उनकी पलकों में सुकुमार सपना तथा 'आँसू के मिस प्यार' सतत् ढलता रहता है। अंतर्हित प्रिय के माधुर्य से रस-स्नात हो उनकी पीड़ा कसक उठती है—

'तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना'

इसी भाँति उनकी अमर साधना का 'दीपक-मन' भी सतत् प्रज्वलित हो 'प्रियतम का पथ' भी आलोकित करता रहता है। यही 'दीप' उनके प्रेम का प्रतीक है—

'अपना जीवन-दीप मृदुलतर
वर्ती कर निज स्नेह सिक्त उर,
फिर जो जल पावे हँस हँसकर
हो आभा साकार।'

—नीहार पृष्ठ २३

वे 'जलने में ही अपने जीवन की निधि' पाती हैं। उनके नयनों में आँसू नहीं अपितु उनकी साधना के प्रतीक हैं, प्रिय की स्मृति के प्रति रूप हैं—

'यह ढुलक रही है याद,
नयन से पानी नहीं।'

—नीहार पृष्ठ ३८

अपने दृगों में 'निराली कालिन्दी' बहाकर वे स्वयं 'मधुमास' बन जाती हैं।

प्रकृति की चित्रपटी में उनकी साधना और भी निखर उठी है। प्राकृतिक उपकरणों द्वारा वे अपनी वेदना का अनुभव करती हैं। प्रकृति के विभिन्न चित्र उनके भाव को विकसित करते रहते हैं। प्रकृति की अनेक क्रीड़ाओं में ये अपने प्रियतम की आँख-मिचौनी के खेलों का आभास पाती हैं—

'सिहर सिहर उठता सरिता उर
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर
मचल मचल आते पल फिर फिर
सुन प्रिय की पद-चाप हो गयी,
पुलकित यह अवनी ।'

—नीहार पृष्ठ ११

प्रकृति में अनन्त प्रियतम की अभिव्यक्ति देखने वाली महादेवी प्रकृति को भी अपने ही प्रेम-रंग में अनुरंजित देखती हैं -

'प्रिय गया है लौट रात।
सजल धवल अलस चरण,
मूक मंदिर मधुर करुण,
चाँदनी है अश्रु स्नात।'

- नीहार पृष्ठ ५६

वे प्रियतम के आगमन की भावना से अनुप्राणित हो 'विभावरी' को चाँदनी का अंगराग लगा, माँग को पराग से सजाकर, 'प्रिय की पदचाप मंदिर' सुनकर मलार गाने का आदेश देती हैं।

उनके प्रिय चितेरे ने उनके हृदय को इन्द्रधनु की तूलिका से चित्रित किया है—

'बादलों की प्यालियाँ भर
चाँदनी के सार से,
तूलिका कर इन्द्रधनु
तुमने रँगा उर प्यार से।'

- नीहार पृष्ठ ७१

प्रिय के प्रेम से अनुरंजित हृदय विरही साधक बन जाता है। 'दुःख' ही उसका सबसे बड़ा साधन बन जाता है। उनका हठीला जब मिलन की कामना करने लगता है तो वे उसे सहलाती हुई मना करती है—'मिलन का मत नाम ले।' वेदना के कणों से सिक्त होकर वे फिर आत्मानन्द के मधुर मधु का रसास्वादन करने लगती हैं। आत्मा

की आकुलता के साथ-साथ हृदय की विह्वल प्रसन्नता का भी अनुभव करती हैं। एक ओर अनन्त सुषमा है तो दूसरी ओर वे अपार वेदना। दोनों की संगमस्थली ही उनकी उपासना है।

एक ओर वे

'आ मेरी चिर मिलन-यामिनी' में संयोग की उत्कण्ठा अभिव्यक्त करती हैं तो दूसरी ओर वे प्रिय को भी 'दुःख' के रूप में आह्वान करती हैं—

'तुम दुख बन इस पथ से आना'

यही प्रार्थना करती हैं—

'एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी
मधुर वेदना से भर अन्तर;
दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय,
उपल बनें पुलकित से निर्झर;

— नीहार पृष्ठ ४३

विरही साधक की साधना भी रहस्यमयी होती है। वह अपने प्रिय से वरदान रूप में—'मिटने में प्रिय मिलन' का आशीर्वाद चाहता है—

'वर देते हो तो कर दो ना,
चिर आँख मिचौनी यह अपनी;
जीवन में खोज तुम्हारी है
मिटना ही तुमको छू पाना।

— नीहार पृष्ठ ९३

वे अपने नयनों को प्रिय के 'स्नेहांकुर' मानती हैं साथ ही 'वरदान' भी क्योंकि वे नयन प्रिय की उपासना के प्रमुख उपकरण हैं—

'मैंने तो उनकी स्मित में
केवल आँखें धो डालीं।'

—नीहार पृष्ठ ५९

विरह-व्यथिता महादेवी भी 'मीरा' की भाँति अपने प्रिय को संदेश भेजने में असमर्थ पाती हैं। वे अपने प्रिय के प्रति नम्र निवेदन करती हुई विरह-निवेदन करती हैं—

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती?
दृग जल की सित मसि है अक्षय,
मसि प्याले झरते तारक द्वय,
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर,
सुधि से लिख श्वासों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुध पन पर
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती।

—नीहार पृष्ठ ४९

सावन के नए बादलों में भी उन्हें दुःख और पीड़ा का ही संदेश मिलता है जो कि उनकी उपासना का संबल भी है—

रोया चातक
सकुचाया पिक
मत्त मयूरों ने सूने में
झड़ियों का दुहराया नर्तन
लाए कौन संदेश नए घन।

—नीहार पृष्ठ ८४

चिरन्तन प्रिय की साधिका महादेवी का जीवन वेदना का जीवन है। वेदना की कवयित्री ने इसी लिए विरह-साधना द्वारा ही अपने चिर सुन्दर की अनुभूति जाग्रत की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—

'उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ घूट-घूट कर झलक मारती रहती हैं।'

—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ७२०

वे अपने जीवन-पटल को शूलों से भयभीत न होने का आदेश देती है।

साधक की वेदना में उसकी प्रणय साधना अंतर्निहित रहती है परन्तु वेदना में तप कर साधक के प्राण अकलुष और उज्ज्वल हो जाते हैं। तब उसी व्यक्तिगत वेदना से कल्याणमयी करुणा का जन्म होता है। उस करुणा में विश्व समाहित हो जाता है। इसीलिए साधक प्रार्थना करता है—

'मेरे सब सबमें प्रिय तुम,'
'मेरे दृग में अक्षय जल
रहने दो विश्व भरूँगी मैं।

महादेवी भी अपने प्रिय से 'घन' बनने का वरदान चाहती हैं जो नित्य घिर-घिर कर बरसता है। अपने लिए नहीं, अपने को मिटाकर विश्व को सरसित करने में अपने जीवन को धन्य मानता है—

'नित घिरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय।
घन बनूँ वर दो मुझको प्रिय।'

—नीहार पृष्ठ ४४

विश्व में करुणा का प्रसार करने वाले गौतमबुद्ध की विश्व-करुणा की प्रेरणा द्वारा वे जागरण कराती हैं—'करुणा के दुलारे जाग' और फिर दोनों के समन्वय में सौन्दर्य की प्रतीति कर कह उठती हैं—

'जग करुण-करुण, मैं मधुर-मधुर!
दोनों मिलकर देते रजकण,
चिर करुण-मधुर सुन्दर-सुन्दर।'

—नीहार पृष्ठ ८९

उपासना की क्रमिक प्रौढ़ता वेदना एवं करुणा की अनुभूति के सम्बन्ध में श्री 'कृष्णदास' जी का निम्नांकित निष्कर्ष अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है—

'कवि की वेदना, कवि की करुणा, अपने उपास्य के चरण-स्पर्श से पूत होकर आकाश गंगा की भाँति इस छायामय जग को सींचने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है।'

—नीहार वक्तव्य पृष्ठ ६

वे स्वयं भी 'करुणा' के संबंध में अपनी अनुभूति कहती हैं—

'दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एकसूत्र में बाँध रखने की क्षमता रहता है।'

इस प्रकार व्यक्तिगत वेदना की ज्वाला में जलती हुई, नेत्रों से अश्रु प्रवाहित करती हुई वे समष्टि-साधना की उत्कर्ष दशा 'करुणा' पहुंच जाती हैं क्योंकि वे जानती हैं कि उस करुणा की विश्व को आवश्यकता है—

'भिक्षुक सा यह विश्व खड़ा है
पाने करुणा का प्यार;
हँस उठ रे नादान
खोल दे पंखुरियों के द्वार;'
रीते कर ले कोष
नहीं कल सोना होगा धूल।
अरे तू जीवन-पाटल, फूल।

—नीहार पृष्ठ ७६

भाव-वैभव, ऐश्वर्य वेदना माधुर्य की त्रिवेणी प्रवाहित करती हुई महादेवी 'नीरजा' में 'चिर-सुन्दर' के प्रति अपनी आराधना समर्पित करती हुई अपनी तदाकार स्थिति का वर्णन करती हुई कहती हैं—

'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ'

'तृप्ति का कणभर' न चाहने वाली उपासिका अपने परम धन आँसुओं की माला को विश्व में लुटाकर विश्व तृप्ति का साधन बन कल्याण की रश्मियाँ बिखेर देती हैं—

'जिसको जीवन की हारें
हो जय के अभिनन्दन सी।
वर दो यह मेरा आँसू
उसके उर की माला हो।'

— नीहार पृष्ठ ६७

अपनी 'प्यासी आँखों' में 'आँसू' के सागर भरने वाली उपासिका महादेवी वर्मा 'नीरजा' में 'साधक' और साध्य की एक लघुता दर्शाकर मधुर साधना का पथ प्रशस्त किया है। चिरन्तन सत्य, अभिव्यक्ति सौन्दर्य तथा करुणा में साहित्य के सत्यं, सुन्दरं एवं शिवं की त्रिवेणी भी प्रवाहित की है।

यामा की गायिका

अमरनाथ चतुर्वेदी एम० ए०

कविता करते समय कल्पना की आवश्यकता होती है परन्तु आँशिक रूप से। कल्पना मस्तिष्क की वस्तु है और अनुभूति हृदय की। सच्ची कविता के लिए यह आवश्यक है कि कल्पना अनुभूति के साथ एकाकार हो जाय। जब दोनों एकाकार हो जाते हैं तब अभिव्यक्ति के लिए न कवि की ओर से प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती है न अभिव्यक्ति को कोई बाहरी रुकावट ही रोक पाती है। पाठक भी इन दोनों से मिश्रित कवि के हृदय की रसधारा के साथ बहना चाहता है मात्र कल्पना के सहारे व्यञ्जित शब्दजाल की आंधी के साथ नहीं।

मनुष्य के सुख-दुःख चिरन्तन हैं और उससे सम्बन्धित हर बात उसके अन्तर में प्रवेश कर जाती है इसीलिए उसे दुःख से नहीं, लेकिन दुःख की बातों से विशेष मोह होता है। महादेवी जी की कविताओं में यह भावना ही मुख्य है। नीहार, रश्मि, नीरजा से चलकर सान्ध्यगीत तक जीवन के चार पन, दिन के चार प्रहर और उम्र के चार पड़ावों का सफर तय किया गया है। यामा के ये चार पड़ाव जीवन के और उम्र के पड़ावों की भाँति प्रभात की रश्मियों से सुखदायी, दोपहर के सूर्य की किरणों से पैठने वाले, दिन के तीसरे प्रहर की भांति लहरदार और रोगी साँझ की भाँति भावों के भार से बोझिल होने के प्रतीक हैं।

यामा का प्रथम पड़ाव नीहार है जिसमें कवयित्री 'विश्व वीणा में अपनी अस्फुट झंकार' मिलाने का प्रयास करती हुई जीवन से 'मधु मदिरा का मोल' पूछती है। असीम में अपनी लघु सीमाओं को समा देना चाहती है। वह अमरत्व नहीं चाहती; तृप्ति नहीं चाहती—केवल अपनी लघुता को असीमता को सौंप देना चाहती है। क्योंकि तृप्ति और सुख में भला वह सुख कहाँ जो ससीम बन जाने में है। इसीलिए वह चाहती हैं—

> जब असीम से हो जाएगा मेरी लघु सीमा का मेल।
> देखोगे तुम देव! अमरता खेलेगी मिटने का खेल॥

महादेवी जी की वेदना उस गहराई तक पैठती, उस ऊँचाई को छूती है जो अपनी सीमा पर पहुंचकर स्वयमेव सुख बन जाती है। उन्हें अपने इस विश्वास पर पूर्ण आस्था भी है। इसीलिए उन्होंने स्वयं 'अपनी बात' में लिखा है—"मेरी दिशा एक है और मेरा पथ एक रहा है। केवल इतना ही नहीं, वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गए हैं—उस समय के अज्ञातनामा भाव और विश्वास, प्रयोग की अनेक कसौटियों पर कसे जाकर, अनुभव की सहस्र ज्वालाओं में तपाये जाकर केवल नाम पा गए हैं, उनकी आत्मा वही रही—इसमें मुझे सन्देह नहीं।" इसी विश्वास की पुष्टि निम्न पद में ध्वनित है—

> क्या अमरों का लोक मिलेगा
> तेरी करुणा का उपहार।
> रहने दो हे देव! अरे यह
> मेरा मिटने का अधिकार॥

वे उस साकार जगत् में प्रविष्ट होकर उसके दुःख-सुख में लिप्त हो जाना चाहती हैं जिसमें वैशम्य भरा है। गुलाबी प्रात की हँसी में भी आँखों से ओस-कण झरते हैं। कवयित्री को दोनों प्रिय लगते हैं—ओस-कण और हँसी दोनों ही। उसे अपना सूनापन भी चाहिए और समृद्ध जीवन भी।

सूनापन मनमें समेटे रखकर, जीवन को समृद्ध करने के भाव के कारण ही वे अपने अन्तर और वाह्य को एकाकार कर देना चाहती हैं। दोनों के बीच संतुलन स्थापित करना मध्यम मार्ग का अनुसरण करना है। इस विषय में महादेवी जी बौद्ध-दर्शन को मानती हैं बौद्ध-दर्शन के अनुसार— 'वीणा के तार को इतना न कस दिया जाय कि वो टूट जायँ और इतना ढीला भी न कर दिया जायकि वह बजे ही नहीं।' जीवन के लिए यह मध्यम मार्ग ही कल्याणकर भी कहा जायेगा। इसी भाव की पुष्टि में महादेवी जी लिखती हैं—

अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली।
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली।।

'सुख-दुःख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है' लेकिन भाव की अतिशयता कभी कला की सीमा लाँघ जाती है तो कभी सीमा तक पहुंच ही नहीं पाती। परिणाम होता है कि न तो वह अन्तर को छू पाती है न कला की कसौटी पर खरी उतरती है। महादेवी जी लिखती हैं— "दुःखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्तक्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है जिसमें संयम का नितान्त अभाव है। उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत सयत हो जाने की सम्भावना रहती है।" इसीलिए वे अपनी समस्त भावनाओं को संयमित करते हुये कुछ कहना चाहती हैं—

थिरकन अपनी पुतली की भारी पलकों में बाँधी।
निष्पन्द पड़ी हैं आँखें बरसाने वाली आँधी।।

महादेवी के मतानुसार साहित्य के आदर्श और यथार्थ की प्राणप्रतिष्ठा और शोभा इसी में है कि वे प्राण और शरीर के रूप में समन्वित होकर चलें—क्योंकि "वह यथार्थ जिसके पास आदर्श का स्पन्दन नहीं—केवल शव मात्र है और वह आदर्श जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं, प्रेतमात्र है। अपनी "कौन पहुँचा देगा उस पार" कविता में वे पहले लिखती हैं—

सुना था मैंने इसके पार
बसा है सोने का संसार।
जहाँ के हँसते विहङ्ग ललाम,
मृत्यु छाया का सुनकर नाम।।
धरा का है अनन्त शृङ्गार
कौन पहुँचा देगा उस पार।।

इसका समन्वय नीचे का पद करता है—

तरी को ले जाओ मझधार
डूबकर हो जाओगे पार
विसर्जन ही है कर्णाधार
वही पहुँचा देगा उस पार।।

नीहार के पड़ाव की ही बाटिका में कवयित्री फूलों के हार गूँथती सुनहले यौवन का स्वप्न देखती है। वह उस स्थान पर पहुंच जाती है जब यह लोक उसे स्वर्ग से भी सम्मोहक लगने लगता है—

स्निग्ध रजनी से लेकर हास
रूप से भर कर सारे अङ्ग
नए पल्लव का घूँघट डाल
अछूता ले अपना मकरन्द
ढूँढ़ पाया कैसे यह देश
स्वर्ग के हे मोहक संदेश।।

यामा के दूसरे पड़ाव पर यही उद्गार रस राग से पग जाते हैं। उसे इस जगत से मोह हो जाता है। प्रकृति के हर कण में एक नया ही रूप दिखाई पड़ता है। हर अंश गुनगुनाता-सा प्रतिभासित होता है—

नव कुन्द-कुसुम से मधु पुञ्ज
बन गए इन्द्रधनुषी वितान
दे मृदु कलियों की चटक ताल
हिम बिन्दु नचाती तरल प्राण
धो स्वर्ण प्रात में तिमिर गात
दुहराते अलि निशि मूक तान।

कवि शब्द को तौलता है। भावनाओं को संयमित करते हुये उसे अपने निर्दिष्ट मन्तव्य के प्रकटीकरण के लिए शब्दों को चुनना पड़ता है। विशेषकर गीत के लिए इसका ध्यान रखना अतीव आवश्यक है। छायावादी कवियों में निराला, पन्त, प्रसाद और महादेवी भावों के सागर के साथ-साथ

शब्दों का भण्डार भी रखते हैं। इनके गीतों में हर शब्द यों जड़ सा गया है जिसे बदलने पर उसका सौंदर्य बिगड़े भले ही न, लेकिन भाव अवश्य बिखर जायेंगे —

मंजरित नवल मृदु - देह - डाल
खिल-खिल उठता नव पुलक-जाल
मधु-कन-सा छलका नयन नीर।

महादेवी जी यामा की भूमिका में लिखती हैं—"रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था।" यह चिन्तन रश्मि के गीतों में पूर्ण रूप से उभर आया है। वे प्रायः हर गीत में जगत् की बात पूर्ण सूझ-बूझ के साथ मुखर करती-सी प्रतीत होती हैं—

लय में मेरा चिर करुणा-घन
कम्पन में स्वप्नों का स्पन्दन
गीतों में भर चिर सुख चिर दुःख
कण कण में बिखराते।
क्यों इन तारों को उलझाते॥

'विश्व जीवन के उपसंहार', 'प्राणों के अन्तिम पाहुन', 'चुका पायेगा कैसे बोल' अथवा रश्मि के अन्तिम गीत 'सजनि तेरे दृग बाल' में चिन्तन के ये भाव स्पष्ट से स्पष्टतर होते गए हैं।

तीसरे याम नीरजा में महादेवी जी अपने आराध्य के प्रति इतनी आस्थावान हो उठी हैं कि वह अपने सम्पूर्ण को उसमें खो देना चाहती हैं। अपनी सम्पूर्ण सत्ता को उसमें विलीन कर देना चाहती हैं। अपनी सम्पूर्ण भावनाओं को एकत्रित करती हैं तो उसे भिन्न-भिन्न सुरों, लयों के माध्यम से साकार बनाती हैं। उसमें इतनी तन्मय हो गई हैं कि कभी मिलन के क्षणों को याद कर 'बसन्त की रजनी' को आमंत्रित करतीं, कभी "वीणा को झंकारतीं" कभी 'स्वप्न में बाँध पाने' की असमर्थता व्यक्त करतीं, और कभी श्रृंगार करने के लिए मन को उकसाती हैं—'श्रृंगार कर ले री सजनि।'

वह कभी नायक बन जाती हैं तो अपनी प्रियतमा में उसके "घन-केश-पाश" को देखती हैं, दुलराने बहलाने की बात करती हैं तो कभी नायिका बनकर स्वयं को पहचानती हैं। प्रियतम की उपस्थिति का अनुव करती हुई सहती हैं—

'तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या?'

नीरजा के गीतों की तड़पन इतनी वास्तविक बन गई है कि हर गीत एक-एक सृष्टि-सा लगता है जो अपने में बेजोड़ है अतुलनीय है। इनके भावों को प्राण मिल गया है इनकी गेयता से। हर पद गेय है—हर पद में स्वर सामंजस्य है जो सफल गीतकार के लिए वांछनीय है। जिस प्रकार गायक भैरवी, बिहाग, मल्हार अथवा जिन भी रागों को गाते समय सुरों का ध्यान रखता है उसी प्रकार सफल गीतकार भी शब्दों का विशेष ध्यान रखता है। महादेवी जी के गीतों में 'प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली', 'लाये कौन संदेश नये घन', 'ओ विभावरी', 'मत अरुण घूंघट खोल री' अथवा इसी प्रकार के कितने ही गीत अपने में, अपने सुरों में इतने रम गये हैं कि भाव स्वयमेव ध्वनित हो उठते हैं।

सांध्यगीत के चौथे पड़ाव पर पहुंच कर महादेवी जी शायद अपने इहलोक और परलोक के प्रति विशेष सजग बन गई हैं। इस अवस्था में पहुँचकर स्वभावतया मनुष्य में ईश्वरीय आस्था बढ़ जाती है। इस जगत के साथ वह परलोक भी सुधारना चाहता है। उसके बचपन की किलकारियाँ, यौवन के रास रंग उपासना का रूप ले लेते हैं—

प्रिय! मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।

अथवा

चिर सजग आँखें उनींदी
आज कैसा व्यस्त बाना
जाग तुझको दूर जाना।

अथवा

शून्य मन्दिर में बनूंगी,
आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।

इसके अतिरिक्त अन्य कितने ही गीत उस अनन्त प्रियतम के मिलन, विरह, स्मृति के भावों से रंगे हैं—जो अदृश्य है अप्राप्य है। प्रायः सभी गीतों में करुणा से भींगी रेख एक-सी है। एक तड़पन, एक कसक हर गीत में है जो व्यक्तिगत नहीं समष्टिगत है। समष्टि को व्यक्ति जब

व्यक्तिगत बना लेता है तो उसके दुःख-सुख उसके स्वयं के हो जाते हैं। समष्टि के स्वर उसके अपने हो जाते हैं। यह समष्टिगत भावना भी सान्ध्यगीत के गीतों में स्पष्ट है।

गीत एक अनुभूति है और अनुभूति रहेगी भी लेकिन वह जो शब्दों का सुरों के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। इस विषय में महादेवी जी का मत है—"गीति का चिरन्तन विषय रागात्मिका वृत्ति से सम्बन्ध रखनेवाली सुख-दुःखात्मक अनुभूति ही रहेगी पर अनुभूतिमात्र गीत नहीं क्योंकि गेयता तो अभिव्यक्ति सापेक्ष है। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"

कभी-कभी रागात्मक भावना की प्रबलता के कारण कवि भाव सामंजस्य का निर्वाह नहीं कर पाता। महादेवी जी के गीतों में भी यह दोष कई स्थलों पर आ गया है। इसके लिए हम निम्नलिखित गीत को लें—

मैं नीर भरी दुःख की बदली।

रागात्मक दृष्टि से पंक्ति अपने में सफल बन पड़ी है लेकिन आगे चलकर इस भाव को महादेवी जी न निभा सकी हैं। विरोधाभास उत्पन्न करने वाली नीचे की पंक्तियाँ उपर्युक्त गीत की ही हैं —

मेरा पग-पग संगीत भरा,
श्वासों में स्वप्न पराग भरा।
नभ के नवरंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय बयार पली।

इन पंक्तियों में दुःखात्मक अनुभूति की अपेक्षा सुखात्मक भावना परिलक्षित होती है—जब कि गीत की स्थायी पंक्ति करुण भाव से उत्पन्न है। इसी प्रकार का विरोधाभास निम्न पंक्तियों में भी है—

रजकण पर जलकण हो बरसी,
नवजीवन अंकुर हो निकली।

इस प्रकार के अन्य भी उदाहरण गीतों में यत्र तत्र मिलते हैं। छायावादी कवि भावप्रधान रहे हैं। लेकिन शब्दों का मोह भी नहीं छोड़ सके हैं। पन्त जी के गीतों में यह मोह विशेष पाया जाता है। निरालाजी भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। महादेवी जी और प्रसाद जी के गीतों में शब्दों का मोह उतना तो नहीं फिर भी है। छायावादी कवियों ने गीत बहुतायत से लिखे हैं लेकिन महादेवी जी में गीतात्मकता अधिक है। गीतों में चित्रात्मकता अधिक है। हर गीत छन्द, लय, ताल, सुर के सामंजस्य से उद्भूत-सा लगता है। यही कारण है कि महादेवी जी के गीत अधिक सफल बन पड़े हैं। यामा के चित्रों में भी गीतों की भावना सर्वत्र दिखाई पड़ती है। ये गीत चित्रों से प्रभावित हैं अथवा चित्र गीतों से कहना सम्भव नहीं।

रश्मि का अन्तर्दर्शन

शम्भूनाथ चतुर्वेदी एम० ए०

किसी भी साहित्यिक-विधा और विशेष रूप से काव्य में जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, परन्तु जीवन की समग्रानुभूति की तह में पैठकर, संवेगात्मक धरातल पर अपने दृष्टिक्रम का प्रदर्शन, नयी भावभूमियों का अन्वेषण एवं अभिव्यक्ति तथा कोरी दार्शनिकता के मोह को न संवरण कर सकने की असमर्थताजन्य, दुरूहतापूर्ण विवेचना में पर्याप्त अन्तर है। साहित्यकार—वह कवि भी हो सकता है—के 'एप्रोच' तथा दार्शनिक के खण्डन-मण्डन को एकीकृत करने का प्रयास साहित्यिक शैथिल्य का द्योतक तो होगा ही, साथ ही साथ साहित्य और दर्शन की पद्धतियों में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट प्रभावान्वित एवं भाव-संगति में भी व्यवधान उपस्थित करेगा। काव्य और दर्शन के क्षेत्र एवं सम्प्रेषण-पद्धतियों में दो ध्रुवों का अन्तर है। दार्शनिक ग्रन्थों एवं चिन्तनात्मक साहित्यिक कृतित्व में पहला अन्तर है भाव-बोध के आयामों और बाह्य परिवेश के मूर्तन का—दार्शनिक सृष्टि के गत्यवरोधक स्वरूप, स्थिर बाह्य वास्तविकता एवं ऊपरी प्रत्याभासों तक ही अपनी दृष्टि को सीमित कर देता है, जबकि साहित्यकार जीवन की तह में पैठकर अनुभूतियों को संवेगात्मक और गत्यात्मक धरातल पर प्रस्थापित करने का प्रयास करता है। साथ ही साथ दार्शनिक तार्किक पद्धति का प्रयोग अधिक करता है और साहित्यकार अनुभूत सत्यों पर आधारित भावात्मक दृष्टिकोण का प्रसारक होता है। विश्व के सभी महान् साहित्यकारों का कृतित्व इसके प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। विदेशी काव्य में शेक्सपियर या दान्ते के कृतित्त्व की महानता केवल गृहीत दार्शनिकता—सेनेका, मोण्टेन या सेंट थॉमस के दर्शन को ज्यों का त्यों अभिव्यक्त करने के कारण न थी। तुलसीदास या प्रसाद भी केवल दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या तक सीमित रहकर प्रथम श्रेणी के कवि न हो सकते थे। चारों ही कवियों ने अपने युग की संवेगात्मक स्फूर्ति की सफल अभिव्यक्ति की और शायद इसी लिए उनका कृतित्त्व उच्चस्तर का है। काव्य में कवि-विशेष की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का अंकन जीवन के प्रति उसकी भावधारा की सांकेतिक अभिव्यक्ति तो अवांछनीय नहीं है, परन्तु दार्शनिक की-सी तर्क बुद्धि या विश्लेषण-सामर्थ्य की कोई गुञ्जाइश नहीं। सुप्रसिद्ध कवि और समीक्षक टी० एस० इलियट के शब्दों में 'काव्य, दर्शन धर्म या तत्व-चिंतन का स्थानापन्न नहीं हो सकता। उसकी अपनी अलग क्रिया है। वास्तव में हमें दर्शन को संकुचित अर्थ में न ग्रहण कर एक व्यापक अर्थ देना होगा। यदि हम यह कहें कि दर्शन से तात्पर्य है विश्व के पुनर्दर्शन या पुनरवलोकन की चेष्टा तो अनेक साहित्यिक कृतियाँ अधिकांश दर्शन-ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक सफल मानी जावेंगी। साहित्कार और विशेषरूप से कवि किसी भी विचारधारा का कल्पनाशील या संवेगशील संवाहक ही कहा जा सकता है। महादेवी जी के सम्पूर्ण कृतित्व और विशेषरूप से 'रश्मि के अन्तर्दर्शन' को हमें इसी परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। रश्मि में उन्होंने कहाँ तक अपनी संवेगात्मक दृष्टि के माध्यम से जीवन की किसी निश्चित दिशा या धारा का सफल निर्देशन किया है? क्या वे रश्मि में सोद्देश्य अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील रहने पर भी दर्शन की तर्क या विश्लेषण पद्धति

तक ही अपनी सीमा बाँध चुकी हैं या काव्य-प्रतिभा के माध्यम से जीवन को समग्रानुभूतियों पर आधारित, भावावेशमयी चिंतन-सामर्थ्य का परिचय दे सकी हैं।

रश्मि का कृतित्व उपनिषद्, वेदान्त तथा बौद्ध-दर्शन से प्रभावित होने पर भी पूर्णरूपेण इनका ही भावानुवाद नहीं कहा जा सकता। महादेवी जी ने व्यापक दार्शनिक पूर्व-पीठिका पर रश्मि के कृतित्व को आधारित करने पर भी अपने चिंतन का स्वतन्त्र अस्तित्व रखा है। रश्मि की कुछ कविताओं की भाव-भूमि बौद्ध-दर्शन से अनुप्रेरित प्रतीत होती है—बुद्ध के करुणावाद की सफल अभिव्यक्ति रश्मि के कृतित्व का एक अंग कही जा सकती है। परन्तु बौद्ध-दर्शन की अन्तर्प्रेरणाओं से प्रभावित होने पर भी महादेवी ने अपने ढंग से ही प्रत्येक समस्या पर विचार किया है हम कह शकते हैं कि बुद्धि की अन्तर्प्रेरणाएँ भी महादेवी के मौलिक चिंतन को शिथिल नही कर सकी हैं। बुद्ध ने व्यक्तित्व की समाप्ति को ही अन्तिम लक्ष्य या निर्वाण माना—व्यक्तित्वकी निर्विशेषता ही मानों उनके दर्शन का अभिन्न अंग बन गई। महादेवी जी ने बुद्ध के विपरीत व्यक्तित्व—वैशिष्ट्य को 'रश्मि' में मूर्धन्य स्थान दिया; और व्यक्तित्व भी अपनी सम्पूर्ण गरिमाओं से हीन, अत्यन्त लघु। इस दृष्टि से महादेवी का भाव-बोध या संवेदनशीलता बहुत कुछ इधर की नयी कविता से सम्बन्ध सूत्र जोड़ते से प्रतीत होते हैं—उनकी 'साधिका' भी अपनी उपलब्धियों के प्रति पूर्णरूपेण आश्वस्त है। इस प्रकार उपलब्धियों के संदर्भ में व्यक्तित्त्व की लघुता पर गर्वानुभूति उनकी 'रश्मि' की विशेषता कहीं जा सकती है। महादेवी में भी उस संकोच का बहिष्कार सा दृष्टिगोचर होता है, जो व्यक्ति को अपनी संभावनाओं के प्रति मनन के लिए बाध्य करने से रोकता है। नयी कविता में विशेषरूप से व्यक्तित्त्व की लघुता या बौनेपन पर गर्वानुभूति प्रकट करने का स्वर धर्मवीर भारती के काव्य में उपलब्ध होता है। इसे यों कहा जा सकता है कि व्यक्ति की अपनी सामर्थ्य के प्रति जागरूकता तथा साधना-बल पर संकुचित सीमाओं में भी उदात्त संभावनाओं के प्रति प्रतीति महादेवी जी को धर्मवीर भारती की काव्यानुभूति के अधिक निकट ला देती हैं, यद्यपि दोनों के क्षेत्र में ऊपरी भेद अवश्य है। महादेवी ने 'रश्मि' में अपनी लघुता की कथा को निस्संकोच प्रसारित किया है—वह इस बात से पूर्णरूपेण आश्वस्त हैं कि साधना में तथा उनका लघु व्यक्तित्त्व 'असीम' को अवश्य ही आकर्षित करेगा। व्यक्तित्त्व की लघुता उनकी दृष्टि में पराजय अथवा पश्चगामी प्रवृत्तियों की द्योतक नहीं हो सकती।

'पर न समझना देव हमारी,
लघुता है जीवन की हार'।

साधना के बल पर जो स्वर महादेवी में मुखर हुआ है वही धर्मवीर भारती के कवि को भी प्रतीकात्मक ढंग से अपने व्यक्तित्त्व के प्रति आश्वस्त रहने की प्रेरणा देता है। भारती की प्रबल प्रतीति है कि युग की सम्भावनाएँ कभी-कभी लघु या बौने व्यक्तित्त्व की अपेक्षा भी रख सकती हैं—सामाजिक उन्नयन में कभी लघु व्यक्तित्त्व ही मूल उपकरण बन सकता है।

बुद्ध ने दुःख को अत्यधिक महत्व दिया। इन्होंने अभद्रवादी के स्वर में स्वर मिलाकर स्वीकार किया कि वास्तव में जीवन की स्थिति दुःखमय ही है दुख की न्यूनता को ही हम सुख मान लेते हैं। दुःख और सुख के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी दुःख की अतिशयता ने उन्हें पलायनवाद एवं निराशावाद की ओर ही अग्रसर किया। मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-कृति 'यशोधरा' के बुद्ध स्यात् दुःख से ही आतंकित होकर तपस्वी बन जाते हैं।

महादेवी जी ने सुख और दुःख के सह अस्तित्व को मान्यता देते हुए भी निराशावादी स्वर को मुखर न होने दिया। शायद इसका प्रमुख कारण यह है कि बौद्ध-दर्शन के साथ ही साथ उन पर उपनिषद और गीता-दर्शन का भी पर्याप्त प्रभाव रहा है। महादेवी में दुःखवाद की अभिव्यक्ति तीन रूपों में सभव हो सकी है। एक तो दुख और सुख के सहअस्तित्व की व्याख्या में। दूसरे दुःख की भाव-प्रसारिणी सामर्थ्य के प्रकाशन में। तीसरे मृत्यु से भयभीत न होने की प्रवृत्ति के रूप में। पहले रूप के अन्तर्गत महादेवी ने सुख-दुख के समन्वित स्वरूप का विश्लेषण करते हुए, दोनों की समस्थिति स्वीकार की है। इस दृष्टि से महादेवी गीत-दर्शन एवं उपनिषदों की विचारधारा के अधिक निकट प्रतीत

होती है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस बात का उपदेश दिया कि सुख और दुःख को समान भाव से ग्रहण कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ—

'सुख-दुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवंपापमवाप्स्यसि ॥

ईशावास्य उपनिषद् में भी सुख और दुःख की समस्थिति का स्वर मुखर हुआ है—

'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनु पश्यतः ॥

महादेवी ने 'रश्मि' में सुख-दुख के समन्वय की ओर तो संकेत किया ही है, साथ ही साथ और निर्माण को भी एकसूत्र में अनुस्यूत करने की चेष्टा भी उनमें परिलक्षित होती है। इस प्रकार सुख-दुख का चिंतन उन्हें एक व्यापक धरातल पर मानव की विकास-प्रक्रिया का विश्लेषण करने के लिए भी प्रेरित करता है। सुख-दुःख का चंक्रमण उन्हें परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में सोचने के लिए प्रेस्ति करता है। महादेवी की मान्यता है कि सुख और दुख की असम्पृक्ति विचारातीत है। प्रकृति-प्रतीकों के माध्यम से सुख-दुःख की अन्विति का प्रयास उनका प्रमुख काव्य-स्वर कहा जा सकता है।

'छिपा कर उर में निकट प्रभात,
गहनतम होती पिछली रात;
सघन वारिद अम्बर से छूट,
सफल होते जल-कण में फूट !'

सामंजस्य के इस स्वर की दृष्टि से महादेवी, पंत और प्रसाद की काव्यानुभूतियों में समानता उपलब्ध होती है। प्रसाद ने प्रगीति-रचना आँसू तथा महाकाव्य कामायनी में सुख-दुःख की समरसता का स्वर मुखर किया। उनकी स्थापना है कि सुख-दुःख एक दूसरे से अविच्छिन्न हैं—दोनों की स्थिति सापेक्ष है। एक का अस्तित्व दूसरे के बिना संभव ही नहीं है—

'दुःख की पिछली रजनी बीच,
विकसता सुख का कमल प्रभात।'

कामायनी

मानव जीवन वेदी पर
परिणय हों विरह मिलन का
सुख दुख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का मन का।'

—आँसू

पंत ने भी प्रसाद की ही भाँति जीवन-सरिता के दो कूल माने हैं। एक दुख और दूसरे सुख। जिस प्रकार दो सीमाओं में बँधी हुई नदी सतत, अविराम गति से प्रवाहित होती रहती है, उसी प्रकार जीवन-धारा भी सुख और दुख के तटों के बीच ही अपनी अवस्थिति स्वीकार किए हुए है। जीवन-सरिता का सन्तुलन दोनों ही पुलिनों की अपेक्षा रखता है। जीवन की एकांगी परिणति केवल सुख-दुख के समन्वय द्वार ही रोकी जा सकती है—

'एक ही लोल लटूर के छोर
उभय सुख-दुख निशि भोर'।

जीवन में सुख-दुख का सापेक्ष महत्त्व संसृति की विकास-प्रक्रिया के सम्बन्ध में सोचने को विवश करता है। सुख-दुख का समन्वय ही मानों आगे चलकर महादेवी को सृजन और संहार की व्याख्या के लिए प्रेरित करता है यहाँ भी हम प्रसंगवश एक बात कह दें। महादेवी की भावान्विति इतनी बलवली है कि उसके माध्यम से वे प्रतीति के स्वर एक सहज ही पहुंच जाती हैं—विघटन या विनाश का स्वरूप उन्हें निराशावादी नहीं बना पाता। क्योंकि विनाश में ही सृजन के अमर तत्वों की खोज करने वाली गायिका इसे नैसर्गिक परिणति स्वीकार कर लेती है। महादेवी की नव-निर्माण के प्रति इतनी गहरी आस्था है कि संहार को वह परिवर्तन-प्रक्रिया से कुछ और अधिक नहीं मानतीं। हम इसे यों कह सकते हैं कि 'रश्मि' की महादेवी की चिंतन धारा सुख-दुख के सामंजस्य का प्रस्तुतीकरण करते हुए उन्हें निर्बाध रूप से जीवन के विकास-क्रम की ओर आकृष्ट कर लेती है, और यहीं पर सृष्टि के अस्तित्व की समस्या स्वयं ही सुलझ जाती है; महादेवी की अन्वेषण-शक्ति उन्हें निर्माण और विनाश की तह में पैठकर जीवन-प्रक्रिया के परिवर्तनशील स्वरूप का परिचय करा देती है। इस प्रकार दुःखवाद के माध्यम से ही उनको दृष्टि के नये

वातायन खुल जाते हैं। महादेवी की यह चिंतन परिणति बहुत कुछ सीमाओं तक उन्हें पंत, मैथिलीशरण गुप्त तथा पाश्चात्य कवि शेली की काव्यानुभूतियों के निकट खड़ा कर देती है। महादेवी ने उपर्युक्त तीनों ही कवियों के समान विनाश में नव-सृजन के तत्त्वों का अन्वेषण किया है। उनकी स्थापना है कि विनाश की एक प्रक्रिया अनेक सृजनशील संभावनाओं को अन्तर्निहित किए रहती है।

'सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ–वरदान।'

पंत और शेली भी नयी सृष्टि के लिए उत्सर्ग के पक्षधर कहे जा सकते हैं, और इसी से मिलता हुआ स्वर है गुप्त जी के 'द्वापर' के बलराम का, जो नव-विश्व का स्वप्न संहार के आधार पर ही सजा पाते हैं—

'नयी सृष्टि के लिए
प्रलय भी प्रेक्षणीय हो हमको।'

महादेवी जी ने दुःख और सुख के तुलनात्मक परीक्षण के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि दुःख भाव-प्रसारिणी वृत्ति है तथा सुख मानव की रागात्मिका वृत्तियों को सीमित करने की स्थिति। इसे यों कह सकते हैं कि महादेवी की यह स्थापना है कि सुख व्यक्ति या समाज को अहम् केन्द्रित बनाता है और दुःख भावावेशमयी स्थिति के माध्यम से संकुचित सीमाओं या परिधियों से ऊपर उठकर उसे समाज-निष्ठ बनने को प्रेरित करता है। दुख भाव-प्रसार है और सुख भाव अवरोध। इस प्रकार महादेवी जी दुख की भाव-भूमि पर वृत्तियों के समाजीकरण का प्रयास किया है। दुःख को उन्होंने ऐसी रागात्मिका वृत्ति के रूप में स्वीकार किया है जो व्यष्टि को समष्टि की ओर उन्मुख कर सकती है। इस प्रकार व्यक्तिवादी, अहम् केन्द्रित या निजनिष्ठ भावनाओं का उदात्तीकरण या उन्नयन महादेवी ने दुःख की भाव-प्रसारिणी स्थिति द्वारा ही स्वीकार किया है। सुख व्यक्ति के 'आत्म' का संकोचन है और दुख उसका प्रवाह। दूसरे शब्दों में दुःख, ससीम को असीम के धरातल पर प्रतिष्ठित करने का एकमात्र प्रयास है। क्योंकि ससीम, भावों की संकीर्णता का द्योतक है और असीम उसकी उन्मुक्त स्वच्छंद गति।

'दुख के पद छू बहते झर-झर
कण-कण से आँसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम,
जग को आमन्त्रित कर लाता।

यदि हम कहें तो असंगत न होगा कि महादेवी ने सुख और दुःख द्वारा उसी विचारधारा की पुष्टि की है, जो प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' में मनु और श्रद्धा द्वारा संपादित हुई है। मनु व्यक्ति की उसी सुखान्वेषिणी प्रवृत्ति के द्योतक हैं, जो उसे 'स्व' से ऊपर नहीं उठने देती। मनु की सम्पूर्ण चेष्टाएँ, आत्मसुख तक ही सीमित हैं, अपने सुख की उपलब्धि ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य है। प्रसाद ने नाटकीय प्रसंगों के माध्यम से जिस विचारधारा पर प्रकाश डाला है, उसी की अभिव्यक्ति महादेवी को रश्मि में अभीष्ट है—सुख की खोज के लिए लालायित मनु, समाज की तरफ से आँखें मूँद लेते हैं, उसके सुख-दुख के प्रति उनकी सम्पूर्ण संवेदनशीलता ध्वस्त हो जाती है। इसी भयंकर व्यक्तिवाद से उनकी मुक्ति हेतु श्रद्धा की अवतारणा की गई है। मनु के कथन से यदि हम रश्मि की भावाभिव्यक्ति की तुलना करें तो दोनों में अद्भुत विचार-साम्य मिलेगा। महादेवी के अनुसार भी सुखान्वेषी इस सीमा तक अहम्निष्ठ हो जाता है कि वाह्य जीवन से उसका तनिक भी लगाव नहीं रह जाता—

'गर्वित कहता मैं मधु हूँ
मुझसे क्या पतझर का नाता।'

और यही बात मनु के मुख से भी निकली है—

'तुच्छ नहीं है अपना सुख भी,
श्रद्धे ! वह भी कुछ है।'

महादेवी ने इस अहम्वादी मनोवृत्ति के विरोध में जिस भाव प्रसारिणी वृत्ति को रखा है, उसकी चर्चा हम कर चुके हैं। प्रसाद ने भी मनु की इस अतिवादी सुखान्वेषिणी वृत्ति की विरोध में श्रद्धा की उदात्त भावनाओं को रख दिया है।

'अपने में सब कुछ भर
कैसे व्यक्ति विकास करेगा।

यह एकांत स्वार्थ भीषण है
सबका नाश करेगा ।
औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ ।
अपने सुख को विस्तृत कर
लो सबको सुखी बनाओ ।'

रश्मि में महादेवी ने मृत्यु का आह्वान किया है । ऊपर से देखने पर स्वर व्यक्तिपरक गीतकारों, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, अंचल और नरेन्द्र शर्मा की काव्यानुभुति की भ्रांति उत्पन्न करता है । व्यक्तिपरक गीतकारों ने प्रणयजन्य असफलता से प्रेरित होकर मृत्यून्मुखी दृष्टि को स्वीकार किया था । इधर के प्रयोगवादी काव्य में भी धर्मवीर भारती और विजयदेवनारायण साही आदि ने जीवन की सर्वव्यापी असफलता से क्षुब्ध होकर; निराशा की चरम अभिव्यक्ति के लिए मृत्यु की कामना प्रकट की । इस प्रकार यह नितान्त स्पष्ट है कि व्यक्तिपरक गीतकारों एवं प्रयोगवादियों ने असफलता; निराशा और पराजय के कारण ही मृत्यु का आह्वान किया । महादेवी ने निराशावादी मनःस्थिति में मृत्यु को निमन्त्रण नहीं दिया उन्होंने एक तो मृत्यु की कामना प्रकट की । जहाँ तक पहले रूप का प्रश्न है, उनकी समानता रवीन्द्रनाथ टैगोर से स्थापित की जा सकती है । रवींद्र ने भी मृत्यु को आध्यात्मिक प्रिय का ही दूत माना—

'प्रेमेर दूत के पठाबे नाथ कबे ।'

जीवन-स्थैर्य स्वयं प्रशान्ति की आकांक्षा ने भी महादेवी को रश्मि में मृत्यु के आह्वान की प्रेरणा दी । परन्तु यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण जीवन की असफलता से उनका यह स्वर प्रेरित नहीं है ।

'ज्यों श्रांत पथिक पर रजनी
छाया सी आ मुस्काती,
भारी पलकों में धीरे
निद्रा का मधु ढुलकाती,
त्यों करना बेसुध जीवन ।'

वेदना और अतृप्ति से मोह रश्मि के कृतित्व की विशेषता है । महादेवी में जिस वेदना के प्रति मोह है, वह परिस्थितिजन्य विवशता या नियतिवाद की देन नहीं कही जा सकती । महादेवी का वेदनावाद रहस्यानुभूतियों पर आधारित हैं तथा सनातन विरह का परिचय देता है । महादेवी तृप्ति के लिए न तो उत्तरछायावादी व्यक्तिपरक गीतकारों की भाँति लालायित रहती हैं और न असंतृप्तिजन्य विद्रोह का स्वर ही उनमें मुखर हो सका है । बच्चन, भगवतीचरण या अञ्चल के समान उनके गीतकाव्य में न तो उद्दाम वासनाओं का आवेग है और न असंतृप्त तृषा । दूसरी ओर यदि हम महादेवी के अतृप्ति स्वर से प्रसाद के 'आँसू' की तुलना करें, तो भी दोनों की भावभूमियों में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होगा । पहला अन्तर तो यह है कि प्रसाद ने 'आँसू' में वेदना से मुक्ति हेतु अपनी छटपटाहट अभिव्यक्ति की है और दूसरे अपरोक्ष रूप से तृषा या पिपासा की सन्तुष्टि का स्वर भी मुखरित किया है । प्रसाद में संयोगाकाँक्षा की तीव्रतम अभिव्यक्ति है और महादेवी में मिलन से बचने का प्रयास । रश्मि में महादेवी ने जिस जीवन-दर्शन की ओर ध्यान आकर्षित किया है, वह है अनन्त प्रतीक्षा, शाश्वत विरह तथा अमिट असंतृप्ति । वह एक ऐसी गायिका के रूप में हमारे सम्मुख आती हैं, जो लक्ष्य-सिद्धि की अपेक्षा पथ की अनन्तता में ही अधिक प्रतीति रखती है । इस प्रकार सिद्धि की अपेक्षा साधना, लक्ष्य की अपेक्षा पथ, तृप्ति की अपेक्षा, अतृप्ति, मिलन की अपेक्षा विरह और अमर प्रतीक्षा की कामना ही महादेवी में अधिक बलवती है । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि शाश्वत तृषा या पिपासा ही 'रश्मि' का अभीष्ट है । प्रसाद नियतिवाद से विवश होकर, जीवन से समझौता करके ही वेदना को अनिच्छापूर्वक स्वीकार करने के लिए बाध्य हुए । आँसू के अधिकाँश प्रसङ्गों में उन्होंने अतृप्तिजन्य उपालम्भ का स्वर ही मुखर किया है । महादेवी का अतृप्ति के प्रति मोह और प्रसाद की सन्तृप्ति की बलवती आकाँक्षा का तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से रोचक है । महादेवी चिर अतृप्ति चाहती हैं, प्रियतम तक पहुंचने की लालसा को भी दमित करती हैं, और साथ ही साथ अमर प्रतीक्षा का मोह उन्हें अपनी असफलता निवेदन के लिये भी प्रेरित करता है ।

'मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें, भरतीं आँसू के सागर ।'

महादेवी की इन पंक्तियों से जब हम आँसू की तुलना करते हैं तो दोनों की भावधारा का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्रसाद तृप्त न होने पर क्षुब्ध होकर उपालंभ का स्वर मुखर करने के लिए बाध्य हो उठते हैं—

लहरों में प्यास भरी है,
है भँवर पात्र भी खाली।'
मानस का सब रस पीकर,
लुढ़का दी तुमने प्याली।

महादेवी प्रियतम के सान्निध्य की आकांक्षा का विरोध करती हैं और प्रसाद रूप-दर्शन या मिलन के अभाव में क्षुब्ध हो उठते हैं। महादेवी प्रियतम तक पहुंचने के सम्पूर्ण प्रयासों की विफलता चाहती हैं, क्योंकि उनमें लक्ष्य तक न पहुंचने की साध तीव्र है।

'पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हों फीके'।

प्रसाद, प्रिय के वास्तविक मिलन के अभाव से प्रपीड़ित हो उठते हैं—

'मादकता से आए तुम
संज्ञा से चले गए थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे उतरे हुए नशे से।'

प्रसाद और महादेवी की भावभूमियों का यह अन्तर शायद प्रणय-प्रसंगों के वैविध्य के कारण ही अधिक है। प्रसाद मिलन-सुख का उपभोग कर चुके हैं और महादेवी की 'रश्मि' में संयोग के क्षणों की अवतारणा ही नहीं की गई। यहाँ प्रसंगवश एक बात और कह दें महादेवी ने 'रश्मि' में जिस वेदना के प्रति मोह प्रकट किया है, वह निराशा-जन्य न होकर जीवन के विशाल कर्म क्षेत्र में, व्यक्तित्व की समस्त शक्ति के साथ, संघर्ष करने को प्रेरित करती है। इस दृष्टि से अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर' से उनका चिन्तन साम्य है। एक वेदना ऐसी होती है जो व्यक्ति को कुण्ठित कर देती है, दूसरी ऐसी जो उसे संघर्ष, विद्रोह या नव-सृजन के लिए प्रेरित करती है। एक वेदना व्यक्ति को ह्रासोन्मुख बना देती है और दूसरी संसार के दुःख का अवलोकन कर उसे सम्पूर्ण शक्ति के साथ हटाने को विवश करती है। महादेवी और अज्ञेय दोनों का कृतत्व वेदना के दूसरे स्वरूप को ही अधिक महत्त्व देता है। और शायद इसी कारण अध्यात्म लोक का आकर्षण भी महादेवी को 'रश्मि' में जन-जीवन के दुःख से नितान्त दूर नहीं कर सका है। संसृति की पीड़ा का स्वर निरन्तर उनके श्रवणों में पड़ता रहा है, और जिसकी उपेक्षा करने की सामर्थ्य 'रश्मि' की महादेवी में नहीं है—

'तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ।'

'रश्मि' की महादेवी पर उपनिषद और गीता के सर्ववादी दर्शन का भी प्रचुर प्रभाव पड़ा है। सर्ववादी सम्पूर्ण प्रकृति व्यापारों में एक ही अव्यक्त, अज्ञात सत्ता के सौन्दर्य का दर्शन करता है। उसे सम्पूर्ण विश्व में एक ही चेतन तत्त्व की दीप्ति विकीर्ण होती हुई दृष्टिगोचर होती है। सर्ववादी प्रायः दो रूपों में ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार करता है। एक तो अखिल संसृति में असीम की रूपराशि को बिखरा हुआ देखकर और दूसरे अपने अन्तस में उसकी स्थिति स्वीकार करके। ये दोनों ही रूप 'रश्मि' में उपलब्ध होते हैं, सम्पूर्ण प्रकृति में ब्रह्म की रूप माधुरी के ही दर्शन महादेवी को होते हैं, और इस दृष्टि से उनकी अनुभूति गीता या उपनिषद के अधिक निकट प्रतीत होती है।

'वे तारक बालाओं की
अपलक चितवन बन आते
जिसमें उनकी छाया भी
मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ।'

गीता और उपनिषद् से इन पंक्तियों का भाव-साम्य नितांत स्पष्ट है।

'सर्वभूतस्थभूत्मानां सर्वभूतानि चात्मनि।
वीद्यते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः॥'

(गीता)

'तमेव भान्तमनुभाति सर्व
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'

(उपनिषद्)

सर्ववाद का यह रूप महादेवी की भाँति प्रसाद की कामायनी में भी उपलब्ध होता है। प्रसाद भी एक ही सत्ता की व्याप्ति सम्पूर्ण विश्व में स्वीकार करते हैं—

'एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।'

सर्ववाद के दूसरे रूप के अन्तर्गत ब्रह्म का अस्तित्व ससीम में ही स्वीकार किया जाता है। ब्रह्म अपने विराट व्यक्तित्व के साथ ससीम में ही निवास करता है। इस प्रकार की सर्ववादी भावना अप्रत्यक्ष रूप से ससीम की महिमा को भी उद्घाटित करती-सी प्रतीत होती है। इस कोटि के सर्ववाद की अभिव्यक्ति कबीर की रहस्य-प्रतीतियों में भी सम्भव हो सकी है। कबीर ससीम में ही असीम की स्थिति स्वीकार करते हैं।

'काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी
तेरे ही नाल सरोवर पानी।'

महादेवी ने भी 'रश्मि' में ससीम में ही असीम का समावेश स्वीकार कर साधक के व्यक्तित्व की लघुता में भी गरिमा का आभास पा लिया है --

'विश्व में वह कौन सीमाहीन है?
हो न जिसका खोज सीमा में मिला
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं;
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान् हो?'

वेदान्त के अद्वैतवादी दर्शन, उपनिषदों की आत्मा और परमात्मा की एकता की भी रश्मि के कृतित्व से समानता है। वेदान्त-दर्शन के अनुसार आत्मा और परमात्मा में तादात्म्य है, एकरूपता है। उपनिषद् की स्थापना है कि नानात्व का अभाव ही आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रमाण है। छाँदोग्य और मुण्डकोपनिषद में आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य या सायुज्य को स्वीकार किया गया है। छाँदोग्य-उपनिषद् में तो सामान्य रूप से सिद्धान्त प्रतिपादन किया गया है, परन्तु मुण्डकोपनिषद् में काव्यात्मक धरातल पर आत्मा और ब्रह्म की तद्रूपता का उद्घोष है। जैसे नदियाँ समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही आत्मा भी परमात्मा से एकाकार हो जाती है।

'तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि।'
(छाँदोग्य उपनिषद्)

यथा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेऽ
स्तं उच्छन्ति नाम रूपे विहाय'।
(मुण्डकोपनिषद्)

अद्वैतवाद की काव्यात्मक व्याख्या कबीर, निराला और महादेवी तीनों के कृतित्व में देखी जा सकती है। कबीर आत्मा और परमात्मा में कोई पार्थक्य नहीं मानते! दोनों की एकीकृति उनके काव्य-स्वर की विशेषता कही जा सकती है।

मैं तैं त मैं ए द्वै नाहीं।
आपै अघट नकल घट माँही॥

निराला भी आत्मा और ब्रह्म की एकता को प्रमाणित करते हुए अद्वैतवाद के सिद्धान्त का ही काव्यात्मक प्रतिपादन करते हैं —

'तुम प्राण और मैं काया।'

रश्मि की महादेवी कबीर और निराला के स्वर में स्वर मिलाकर आत्मा और ब्रह्म के एकाकार को ही पुष्ट करती हैं। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता, एकत्व तथा असम्पृक्ति ही उन्हें अद्वैतवादी विचारधारा के निकट खड़ा कर देती है। आत्मा और ब्रह्म की अविच्छिन्नता 'रश्मि' का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है।

मैं तुमसे हूं एक, एक हैं जैसे रश्मि प्रकाश।'

रश्मि की महादेवी दार्शनिक परम्परा से सम्बन्ध-सूत्र जोड़ते हुए भी, कबीर की रहस्य-प्रतीतियों से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी, आधुनिक काव्य-बोध के आस्वादन की पूर्ति भी करती हैं इसीलिए कहीं-कहीं उनकी चिंतन धारा अज्ञेय के कृतित्व या नयी कविता की सीमाओं को भी संस्पर्श करती-सी प्रतीत होती है।

मैं नीर भरी दुख की बदली

•

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

महादेवी का यह गीत मुझे बेहद पसन्द है। जब कभी छायावाद की गीत सृष्टि से मैं कुछ थोड़ी सी सुन्दर रचनाओं का चयन करना चाहता हूँ तो मेरी स्मृतियों के एकान्त में इस गीत की सरस एवं करुणापूर्ण रागिनी अनायास झंकृत हो उठती है। व्यक्तिगत दृष्टि से मैं काव्य बोध के एक भिन्न धरातल पर हूँ। समसामयिक हिन्दी कविता की नयी रचना प्रक्रिया में मेरी जो आस्था और गति है, उसके परिप्रेक्ष्य में मुझ से यह आशा करना व्यर्थ है कि मैं छायावादी कविता के अस्पष्ट भावलोक और अतिअलंकृत शिल्प विधान से बहुत सहमत हो सकूँगा। किन्तु आधुनिक हिन्दी कविता के विकास की दृष्टि से मैं छायावाद के ऐतिहासिक योगदान को किसी भी मूल्य पर अस्वीकार नहीं कर सकता। विद्यापति से लेकर आज तक की हिन्दी गति सृष्टि के प्रति यथोचित रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेने की क्षमता मुझमें कहीं न कहीं है। और फिर कोई रचना जिस देश काल की हो उसे उसी ऐतिहासिक परिवेश में ग्रहण करना चाहिए अन्यथा उसका समुचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

तो मुझे महादेवी का यह गीत सचमुच बहुत प्रिय है। इस एक ही रचना में मुझे छायावादी काव्य की अनेक विशेषताएँ एक साथ उपलब्ध हो जाती हैं। कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान, भावुकता का अनाहृत आवेग, प्रेम-विरह की गहन अनुभूति, प्रस्तुत विषय को परोक्ष रूप से अप्रस्तुतों के माध्यम से—गोपनीय बनाकर कहने की कला, प्रकृति के साथ एक आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध और अनुभूतियों के अनुकूल उसे जीवन्त रूप में चित्रित करने की अनूठी भंगिमा आदि कुछ बातें छायावाद को अपना अलग का स्वरूप प्रदान करती हैं। काव्य रूप की दृष्टि से छायावाद गीत काव्य का पोषक रहा है। उसमें अतिशय वैयक्तिकता को प्रश्रय मिला है और ऐसी व्यक्तिनिष्ठ तथा एकान्त अनुभूतियों का अंकन करते समय गीत विद्या की प्रकृति के अनुसार भाषा की कारीगरी तथा छन्द एव शब्दगत संगीत की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। छायावाद की व्याख्या अनेक रूपों में की जाती है। मैं उसे उस अनुराग भाव की कविता मानता हूँ जिसकी अभिव्यक्ति मुख्यतः प्रकृति के माध्यम से की गई है और कल्पना, भावुकता तथा संवेदनशीलता के व्यक्तिनिष्ठ परिधान के कारण जो स्वतः गीतमय हो उठा है। महादेवी के प्रस्तुत गीत के माध्यम से इन विशिष्टताओं का उद्घाटन किया जा सकता है। यहाँ छायावाद के प्रसंग में एक और चर्चा करना चाहूँगा मैं रहस्यवाद को भी छायावाद के अन्तर्गत मानता हूँ। आधुनिक काव्य में रहस्यवाद छायावाद का ही एक अंश बनकर प्रतिष्ठित हुआ है। छायावादी कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ भारतीय अध्यात्म का आश्रय ग्रहण करते हुए जब अलौकिक संकेतों की ओर उन्मुख हुई हैं तो रहस्यवाद की सृष्टि हुई है।

महादेवी जी के प्रस्तुत गीत का अन्तिम छन्द निम्नांकित है—

> मैं नीर भरी दुख की बदली !
> विस्तृत नभ का कोई कोना
> मेरा न कभी अपना होना
> परिचय इतना इतिहास यही

उमड़ी कल थी मिट आज चली!
मैं नीर भरी दुख की बदली॥

जीवन आद्यन्त दुःख पूर्ण है। जीवन दुःख का ही पर्याय है क्योंकि जीवात्मा और संसार के बीच किसी स्थायी सम्बन्ध की कल्पना नहीं की जा सकती। जितना कुछ सम्बन्ध दिखाई पड़ता है वह क्षणिक अर्थात् मिथ्या है। जिसने कल जन्म लिया उसे आज मृत्यु का वरण करना पड़ेगा। संसार के सन्दर्भ में जीवात्मा का कुल इतना ही इतिहास है जो सचमुच बड़ा दुःखद है।

प्रस्तुत छन्द में बदली के प्रतीक द्वारा जीवन की नश्वरता और जीवात्मा के सन्दर्भ में संसार की असारता का काव्यात्मक चित्रण किया गया है। नन्हीं सी बदली क्षितिज के किसी कोने से उठकर कुछ क्षणों के लिये आकाश में तैर जाती है, किन्तु आकाश से उसका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। वर्षा के रूप में उसका अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है। कुछ ऐसी ही अवस्था संसार में जन्म लेने वाले प्राणी की होतो है। उसे जन्म लेकर मरना पड़ता है। संसार की रमणीयता से आकर्षित होकर उसे अपना बना लेने की आकांक्षाएँ व्यर्थ सिद्ध होती हैं। जीवात्मा उसके नश्वर शरीर को छोड़कर वापिस चला जाता है। इस रूप में यह सारा का सारा जीवन दुःखपूर्ण है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि कवयित्री को इस प्रकार की दार्शनिक अनुभूति क्यों हुई? जीवन जैसा है उसे उसी सहज रूप में क्यों नहीं लिया गया? उत्तर कई प्रकार के हो सकते हैं। सम्भव है कि कवयित्री ने उस आध्यात्मिक अवस्था का बोध प्राप्त किया हो जिसके अनुसार जींवात्मा संसार में आने के उपरान्त परमात्मा से विरह की अनुभूति करने लगता है। कहते हैं कि जीव और ब्रह्म तात्त्विक रूप से एक हैं। बीच में माया का व्यवधान होने के कारण जीवात्मा को संसार में दुःख की नाना अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। सुख की वास्तविक अवस्था तो तब आती है जब जीव संसार के माया मोह का परित्याग कर के पुनः परमात्मा से मिल जाता है। भारतीय मिट्टी में जनमी और पली हुई कवयित्री इस प्रकार के अध्यात्म दर्शन से प्रभावित हुई हो तो क्या आश्चर्य! कबीर से निराला तक ऐसे दार्शनिक दृष्टिकोण ने हिन्दी कवियों को प्रगाढ़ भाव से छुआ है। जीवन को दुःखपूर्ण और संसार को असार मान लेने के मूल में एक सम्भावना यह भी हो सकती है कि व्यक्तिमन को प्रणय, परिणय या लोक व्यवहारगत किसी असफलता से कोई गहरी चोट लगी हो कि निराशा और उदासी ने उसके समस्त व्यक्तित्त्व को आच्छादित कर लिया हो और वह अपने आपको दुःख का प्रतिरूप समझकर इस वेदनामय संसार से मुक्ति की कामना करने लगे। किन्तु यहाँ महादेवी जी और उनकी प्रस्तुत रचना के सन्दर्भ में प्रथम कारण ही अधिक तर्कसंगत जान पड़ता है। महादेवी हिन्दी के मध्ययुगीन सन्त काव्य की आधुनिक और शायद अन्तिम शृङ्खला समझी जाती हैं।

मेरी पसन्द के क्रम में विचार्य गीत का दूसरा, वस्तुतः चौथा छन्द इस प्रकार है—

पथ को न मलिन करता आना
पद चिह्न न दे जाता जाना
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अंत खिली।
मैं नीर भरी दुख की बदली॥

जीवात्मा के आवागमन का विधान विचित्र है। आने जाने की प्रक्रिया और गति के सम्बन्ध में किसी को कुछ नहीं मालूम! बस इतना होता है कि किसी नये जीव के आगमन के साथ उसकी सांसारिक परिधि में सुख की एक लहर व्याप उठती है। किन्तु, यह क्षणस्थायिनी ही होती है। अन्ततः जीवात्मा को वापिस लौट जाना पड़ता है और उसके चले जाने के उपरान्त संसार के लीलापथ पर उसकी कोई भी छाप, कोई भी स्मृति शेष नहीं रह पाती। मेघ खण्ड उठता है, घिरता है, बरसता है और फिर समाप्त हो जाता है। आकाश पथ पर उसकी कोई भी निशानी बाकी नहीं बचती आवागमन की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया से जीवन की दुखद स्थिति का बोध होता है। जन्म के समय संसार सुखी होता है, तो हो ले। जीव को तो दुःख ही भोगना पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि 'जनमत मरत दुसह दुख होई।' इन अनुभूतियों के मध्य जीवन सचमुच दुःख पूर्ण है, बरसने वाले मेघ खण्ड की तरह अश्रु जल सिंचित! वेदना विदग्ध!!

दुःख की अनुभूति महादेवी के काव्य का मूल विषय है। उनकी अनेक रचनाओं में इसकी बहुरंगी अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण के लिये—

(क) तब बुझते तारों के नीरव,
नयनों का यह हाहाकार।
आँसू से लिख-लिख जाता है,
कितना अस्थिर है संसार।

(ख) असम्भव है चिर सम्मेलन।
न भूलो क्षण भंगुर जीवन॥

(ग) वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात।
विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात॥

(घ) तुम दुख बन इस पथ से आना।
वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर
कलिका में लौट नहीं पाता,
पर कलिका के नाते ही प्रिय
जिसको जग ने सौरभ जाना!!

(ङ) प्रिय! सांध्य गगन मेरा जीवन!!

महादेवी की गीत सृष्टि की अधिकांश रचनाओं का यही प्रधान स्वर है। इनमें विरह, वेदना और संसार की क्षण-भंगुरता का बड़े प्रगाढ़ भाव से अंकन किया गया है। अस्तु, दुःख महादेवी के काव्य की मूलभूत चेतना है। इसे 'दुःखवाद' भी कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति में सम्भवतः पहली बार गौतम बुद्ध ने इसका सैद्धान्तिक उद्घोष किया था। संसार के प्रत्येक पदार्थ को अनित्य और नश्वर मानते हुए तथागत ने कहा था कि मानव जीवन में सर्वत्र दुःख ही दुःख है। 'सब्बं दुक्खं।' उन्होंने अपने ढंग से इस दुःख पूर्ण संसार से मुक्ति पाने का उपाय भी बताया था। बाद में सांख्य दर्शन भी बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित हुआ। मध्यकाल में दैविक, दैहिक और भौतिक तापों का उल्लेख करते हुए हमारे सन्तों ने दुःखवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की और भगवद्भक्ति द्वारा सांसारिक कष्टों से मोक्ष पाने का उपदेश दिया। एक सम्प्रदाय नित्य दुःखवादियों का निकला जिन्होंने कहा कि दुःख से मुक्ति मिलना असम्भव है। महादेवी के काव्य को इसी नित्य दुःखवाद के सन्दर्भ में देखना चाहिए। जीवात्मा निरन्तर दुःख की दारुण अवस्थाओं को भोगता रहता है। महादेवी ने इस सत्य का स्पष्ट साक्षात्कार किया है। उनका दुःख एक प्रकार का आध्यात्मिक प्रणयजन्य दुःख है। उन्होंने जिस प्रियतम की अनुभूति कल्पना के क्षितिज पर की है उसी प्रिय ने अपनी एक चितवन से उनके कवि जीवन में पीड़ा के असीम साम्राज्य की रचना कर दी है—

इन ललचाई पलकों पर
पहरा था जब व्रीड़ा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।
उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते।
आँखों के कोश हुए हैं,
मोती बरसाकर रीते॥

जैसा कि मैंने आरम्भ में संकेत किया है, यह कह सकना बड़ा कठिन है कि महादेवी के काव्य में मिलने वाली इस प्रगाढ़ प्रणयानुभूति और विरह वेदना का कोई आधार लौकिक प्रेम और विरह की प्रत्यक्ष अनुभूति के बिना अलौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रणयानुभूति का ऐसा सूक्ष्म एवं हृदयग्राही अंकन सम्भव नहीं प्रतीत होता।

विचार्य गीत के शेष (आरम्भ के, तीन छन्द इस प्रकार हैं—

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली।
मेरा पग पग संगीत भरा
श्वासों से स्वप्न पराग झरा
नभ के नवरँग बुनते दुकूल
छाया में मलय बयार पली।
मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल
रजकण पर जलकण हो बरसी
नव जीवन अंकुर बन निकली!
मैं नीर भरी दुख की बदली!!

एक पूरा रूपक है। चाहे बदली के अर्थ में लगा लिया जाय, चाहे छायावाद के अनुसार यह मान लिया जाय कि

प्रकृति के एक खण्ड रूप (बदली) का मानवीकरण किया गया है और चाहे तो रहस्यवाद का अवलम्ब ग्रहण करते हुए जीवात्मा, परमात्मा तथा संसार के सम्बन्धों की अवतारणा की जाय । प्रथम सन्दर्भ में बदली अपने स्वरूप, गति और अवसान का वर्णन करती है । दूसरे सन्दर्भ में बदली अपने सजल परिवेश में एक सुकुमार विरहिणी प्रतीत होती है । तीसरा सन्दर्भ उस जीवात्मा का है जिसने संसार में आने के उपरान्त दुःख की परम अनुभूति अर्जित की है । उसमें जो कुछ स्पन्दन और गति है उसके मूल में परमात्मा का निवास है । उसकी वेदना में संसार का विषादपूर्ण संगीत मुखरित हो रहा है । आँखों में विरह की दीप्ति है या बिजली की कौंध, किन्तु पलकों में अन्तर्व्यथा के कारण अश्रु निर्झर तरंगायित हैं । ऊपर-ऊपर से यह संसार कितना मादक है ! चारों ओर माया का कैसा मनोहर परिवेश है ! किन्तु, संसार के क्षितिज पर जीवात्मा के उगने औ अस्त हो जाने की कहानी अत्यन्त क्षणिक है । जीवन और मृत्यु का दुखद क्रम बराबर चल रहा है । न जाने कब समाप्त होगा ? शायद कभी न हो । पन्त जी के शब्दों में "चिर जन्ममरण के आरपार ! शाश्वत जीवन नौका विहार !!"

महादेवी की यह रचना उनके और उनके युग के काव्य का बड़ा अच्छा प्रतिनिधित्व करती है । सम्पूर्ण छायावाद युग मुख्यतः दुःख, निराशा और वेदना की अनुभूति का युग रहा है इसके आध्यात्मिक अथवा काव्यात्मक मूल्य से अलग हट कर एक प्रश्न इसकी सामाजिकता के सम्बन्ध में उठता है । अतिशय वैयक्तिकता और घोर निराशा को प्रश्रय देने के कारण छायावादी कवियों पर पलायनवादी होने का आरोप लगाया जाता है । स्वाधीनता आन्दोलन और देश के नवजागरण के प्रथम प्रहर में छायावाद ने प्रणय वेदना और दुःखवाद के जिस स्वर को मुखरित किया उसे किसी भी दृष्टि से बहुत दायित्वपूर्ण नहीं माना जा सकता । छायावादी काव्य चेतना सामयिक यथार्थ और युग सत्य से विमुख होकर एक अतिशय कल्पना प्रधान रोमानियत के कुहासे में पथभ्रष्ट हो गयी थी । इस धारा के कवि अधिकांश में क्षितिज के उस पार के किसी अयथार्थ और अज्ञात लोक से अपना सम्बन्ध जोड़ते रह गये । जब देश को उठाने और जगाने की जरूरत सबसे ज्यादा थी तब इन लोगों ने स्वयम् अपनी आँखें बन्द कर लीं और दुःख तथा निराशा के एकान्त गोपन कक्ष में आध्यात्मिक अथवा लौकिक प्रेम की पीड़ा का गान करते रहे । छायावाद के सामाजिक दायित्व पर विचार करते समय कुछ इसी प्रकार के तथ्य सामने आते हैं । लेकिन, इस स्थिति पर एक दूसरे कोण से भी कुछ विचार किया जा सकता है । क्या यह सम्भव नहीं है कि देश की पराधीनता, आर्थिक शोषण और शोचनीय अवस्था की प्रगाढ़ अनुभूति के कारण ही छायावादी कवियों का दुःखवाद पनपा और परिपुष्ट हुआ हो । महादेवी जी की प्रस्तुत रचना में भी इस प्रकार के संकेत उपलब्ध होते हैं । जान पड़ता है कि उनका दुःख कुरीतियों और जड़संस्कारों से जूझती हुई भारतीय नारी का दुःख है । आहत विश्व और उसकी सिहरन का ध्यान उन्हें इस गीत में भी हो आता है रजकण पर जलकण होकर बरसने और नव-जीवन का अंकुर बनकर फूट निकलने की कल्पना भी सामाजिक मंगल की भावना से प्रेरित जान पड़ती है ।

संक्षेप में 'नीर भरी दुख की बदली' का यह गीत छायावाद की विभिन्न प्रवृत्तियों को उद्घाटित करता है । कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान और पीड़ा की प्रगाढ़ अनुभूति के आधार पर इसकी रचना हुई है । लौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रणय की भावना इसके मूल में है । प्रकृति की एक अनूठी सृष्टि के मानवीकरण या अपनी संवेदना के अनुकूल उसे चित्रित करने की कला का यहाँ पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है । 'स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा' तथा 'विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना' जैसी पंक्तियाँ अध्यात्म और रहस्यवाद की प्रवृत्ति को स्पष्ट करती हैं । अनुभूति की अतिशय वैयक्तिकता और रोमानियत के कारण सम्पूर्ण रचना गीतिमय हो उठी है । रचना की भाषा तथा पद-योजना में भी एक प्रकार का संगीत है । कुल मिलाकर यह गीत महादेवी की काव्य चेतना और गीत सृष्टि का भी एक प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत करता है ।

अतीत के चल-चित्र में जीवन के सत्य

डॉ० आशा गुप्त

मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू लड़ियाँ देखो।
मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो॥
—महादेवी

महादेवी वर्मा आधुनिक युग की प्रमुख कवयित्री के रूप में अधिक ख्यात है। परन्तु जब साहित्य-अध्येता उनके गद्य-साहित्य से थोड़ा भी परिचय प्राप्त करता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कवयित्री का गद्यकार रूप कम महत्वशाली नहीं है। कतिपय आलोचक तो उन्हें अपेक्षाकृत सफल गद्य-कार मानते हैं। उनकी अल्पसंख्यक गद्य रचनाओं में से 'स्मृति की रेखाएँ' 'अतीत के चलचित्र' में सगृहीत हैं। महादेवी जी ने इन अतीत चित्रों को लिपिबद्ध करके प्रकाश में लाने के दो कारण स्पष्ट किए हैं। एक तो इस रूप में उन अतीत चित्रों की चमक समय के साथ धुँधली नहीं पड़ेगी, जिनके सम्पर्क ने लेखिका के चिन्तन की दिशा बदली और संवेदना को गति दी है। दूसरे उन्हें यह भी आशा है कि उन अधूरी रेखाओं और धुँधले रङ्गों की समष्टि में किसी सहृदय पाठक को अपनी छाया की एक रेखा मिल जाएगी। ये तथाकथित अकिंचन व्यक्ति अपने क्षत-विक्षत जीवन में सिमटे किसी खिलौनों की हाट या प्रदर्शिनी का उपकरण नहीं जो साहित्य जगत् उनसे अपना मनोरञ्जन करना चाहे। उस दशा में उन्हें अपनी स्मृति-निधि से इन रत्नों को प्रकाश में लाना खेदजनक ही प्रतीत होगा। एक बात और! इन संस्मरणों के धुँधले आलोक में जो लेखिका का व्यक्तिगत जीवन झाँक रहा है वह भी उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता जो बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है।

"अतीत के चलचित्र" में कुल मिलाकर ग्यारह संस्मरण कथाएँ हैं। इनके अतिरिक्त करुणा से भीगी और वेदना से सिक्त एक अधूरी कथा स्नेह में समृद्ध उस बूढ़े की है जिसे इन संस्मरणों की प्रेरणा का श्रेय मिला है। महादेवी जी ने उसका परिचय एवं सम्बद्ध घटनाएँ सर्वथा गोपन रखी हैं। फिर भी उस अपरिचित वृद्ध में कुछ ऐसा भीगापन है कि नेत्र सहसा आर्द्र हो जाते हैं और शेष संस्मरणों का दीन पीड़ा परक और विषाक्त जीवन मानस चक्षु के समक्ष उभर-उभर आता है। अतः अपूर्ण होकर भी उस कथा में पूर्णता का बल है। लेखिका ने इन अतीत चित्रों में अपनी सम्पूर्ण भावना और जीवन के साथ समाज के शोषित, दीन दुःखी, पीड़ित और दलित वर्ग का यथार्थवादी रूप प्रस्तुत किया है। ये पात्र न तो कोई पौराणिक या ऐतिहासिक महापुरुष हैं और न समाज के प्रतिष्ठित उच्चवर्ग के समृद्ध-अंग। वे तो जन-जीवन के ऐसे कुरूप चिन्ह हैं जो या तो अशिक्षा और शोषण के कारण दीन एवं सरल हैं और या निर्धारित नियमों के अपवाद बनकर समाज की घोर उपेक्षा के पात्र हुये हैं। महादेवी की कोमल करुण स्मृतियों का बितान एक ओर समाज के श्रमजीवी वर्ग रामाभृत्य, नेत्र-हीन अलोपीदीन कुञ्जड़े, बदलू कुम्हार और कर्मठ पहाड़िन-लछमा पर तना है और दूसरी ओर उनके हृद्गत आर्त्तनाद को बाल विधवा मारवाड़िन, मातृहीना बिन्दा, परित्यका भंगिन सबिया, बाल विधवा माँ और वेश्या पुत्री की सिस-कियाँ मुखर कर रही हैं। कदाचित् घीसा जैसे कर्त्तव्य-रत जिज्ञासु दीन शिष्यों को दृष्टि में रखकर ही महादेवी ने कहा है कि "कितने अच्छे अच्छे लोग हैं जो जीवन में आगे

बढ़ने का अवसर नहीं पाते और यों ही मर जाते हैं।" बेडौल घड़ों के निर्माता बदलू कुम्हार को समुचित प्रोत्साहन द्वारा प्रतिष्ठित कलाकारों की कोटि में लाकर महादेवी ने मानों गण्यमान्य कलाकारों को दिखा दिया कि 'कला उन्हीं का पैतृक अधिकार नहीं, कल्पना उन्हीं की क्रीतदासी नहीं।' नेत्रहीन अलोपीदीन का सफल कर्मठ जीवन उस युवक वर्ग के लिए चुनौती है जो निराशा और असमर्थता का मर्सिया गाकर अकर्मण्यजीवन को स्तुत्य मानते हैं। बुन्देलखण्ड के कुरूप रामाभृत्य ने वर्मा परिवार के बच्चों को मोहित करके जीवन के इस चिरन्तन सत्य पर पुनः प्रकाश डाला है कि "बालक केवल जीवन को पहिचानता है। जहाँ जीवन से स्नेह-सद्भाव की किरणें फूटती जान पड़ती हैं वहाँ तक व्यक्त विषय रेखाओं की उपेक्षा कर डालता है और जहाँ द्वेष घृणा आदि के धूम से जीवन ढका रहता है वहाँ वह बाह्य सामञ्जस्य को भी ग्रहण नहीं करता।"

इसी प्रकार महादेवी के आत्मरुद्ध कलाकार की छटपटाहट युग-युग से समाज द्वारा पीड़ित, तिरस्कृत और परम उपेक्षित नारी के लिए है, वह नारी जो उनके अनुसार "माता भगिनी पत्नी पुत्री आदि के उनके सम्बन्धों से वात्सल्य, ममता, स्नेह आदि असंख्य भावनाओं से तथा कोमल कठोर साधनाओं की विविधता से पुरुष को भूमिष्ठ होने से चितारोहण तक घेरे रहती है और मृत्यु के उपरान्त भी उसे स्मृति में जीवित रखने के लिए उग्रतम तपस्या से नहीं हिचकती," जो आदिम काल से आज तक विकास पथ पर वह पुरुष का साथ देकर उसकी यात्रा को सरल बनाकर उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरती रही है।"[1] पर पुरुष ने उसे कभी मदिरा से अधिक महत्त्व नहीं दिया। सबसे अधिक भारतीय नारी इस समाज वैषम्य में जैसी अपमानित, प्रताड़ित, अधिकारों से वञ्चित और व्यक्तित्वहीन प्राणी है वह आज स्वयंसिद्ध है। हिन्दू समाज के उसी अर्द्धाङ्ग की दयनीय दशा परित्यक्ता सबिया पुनर्विवाहिता बिट्टो, अविवाहिता माँ, वेश्या पुत्री, बाल बिधवा मारवाड़िन तथा पहाड़िन लछमा में प्रतिबिम्बित है।

काव्य जगत् की भावुक तथा सामयिक प्रणयिती महादेवी यहाँ धरती की बेटी, माँ, और बहिन के रूप में अवतरित हुई हैं। लेखिका के अन्तस का कोना-कोना मानों हिन्दू जाति की इस रूढ़िग्रस्त एवं अभिशप्त नारी के अछूते बचपन, असमय में ढलते यौवन और तिरस्कृत बुढ़ापे के साथ हाहाकार कर उठा है।

यथार्थ और आदर्श तथा सामयिक समस्या से बिधवा नारी के विषादमय जीवन का ज्वलन्त उदाहरण किशोरी बींदनी है जो समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान बिना संगी साथी और आमोद-प्रमोद के निरन्तर वृद्धा होने की साधना में लीन थी। चौथा संस्मरण भंगियों के पारिवारिक चित्रण के साथ रूप दलित समाज की नारी सबिया का है जो अशिक्षित होते हुये भी उत्सर्ग की महान भावना से अनुप्राणित है। सबिया की उस एकान्त स्थिति एवं अनोखे व्यक्तित्व में महादेवी जी ने पौराणिक नारी की झलक देखी है जिसने जीवन की सीमा-रेखा किसी अज्ञात लोक तक फैला दी थी। क्योंकि सबिया उन महिलाओं में नहीं है जो पति के हरेकपन को उसके बँगले, कार, वैभव आदि के पासङ्ग रखकर भारी कर सकती है। उसकी गणना न उनमें हो सकती है जिनके यातना मन्दिर के द्वार पर स्वयं धर्म के कठोर और सजग पहरेदार हैं, और न उनमें जिनके उद्भ्रान्त मस्तकों पर समाज की जंगी तलवार लटकी रहती है। वह तो सब प्रकार से स्वच्छन्द एवं स्वतन्त्रतनारी है। यदि उसे जीवन के लिए मृत्यु से लड़ना पड़ा तो वह न मरने के लिए जीवन से सङ्घर्ष करती रही, परन्तु समाज की नृशंसता देखिए कि अपनी पति भक्ति एवं कर्तव्यनिष्ठा के लिए न तो प्रतिष्ठित मध्यवर्ग में उसकी गणना हो सकी और न निम्नवर्ग के बन्धु बान्धुओं की सहानुभूति उपलब्ध हुई। ऐसे समाज पर विक्षुब्ध महादेवी अपने अन्तर में तीव्र आक्रोश संजोये मानों समस्त पुरुष जाति को अपनी क्रोधाग्नि में भस्मसात कर डालना चाहती हैं। आप कहती हैं "पुरुष भी विचित्र है. वह अपने छोटे से छोटे सुख के लिए बड़े से बड़ा दुःख दे डालता है और ऐसी निश्चिंतता से मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य दे रहा है। उसी कर्तव्यों को वह चीनी से ढकी कुनैन के समान मीठे मीठे रूप में चाहता है। "लेखिका को समाज के मनोविज्ञान का जैसा परिचय समतल में मिला वैसा ही पर्वत की विषय भूमि पर उपलब्ध

[1]—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य।

हुआ। पर्वत से घिरी हुई उन घाटियों में यही निष्कर्ष मानों सूक्ति रूप में गूंजता है कि "एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहतीं।" स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को लेकर महादेवी जी का वक्तव्य किसी किताबी ज्ञान पर आधारित नहीं है अपितु वे इस चिरन्तन सत्य तक मौलिक जीवन के तथ्यों के सहारे पहुंची हैं। यही कारण है कि उनके संस्मरण अधिकाँशतः नारी की अभिशाप्तावस्था और परवशता का चित्र उपस्थित करते हैं। और विधवा परित्यक्ता नारी का जीवन चित्रों की यह तलखी प्रकारान्तर से उनकी आत्मा का विद्रोही स्वर प्रतिध्वनित करती है।

इसके अतिरिक्त महादेवी जी ने वेश्या समस्या पर भी गम्भीर चिन्तन किया है जिसका प्रथम सोपान छठे संस्मरण की अभागिन बाल-विधवा माँ है। सम्भवतः समाज की ओर से सहानुभूति का अभाव ही वेश्यावृत्ति के प्रादुर्भाव का कारण रहा है। अपने अकाल वैधव्य के लिए जो दोषी नहीं ठहराई जा सकती उसी वेदना-विह्वल माँ की वकालत करते हुये वे पुरुष जाति से कह उठी हैं "बर्बरो! तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी।" यों तो वेश्यावृत्ति को जघन्य समझने वाले आदर्श पुरुष समुदाय की समाज में कमी नहीं है; परन्तु माता, पत्नी-पुत्री आदि त्रिगुणात्मक उपाधियों से रहित जीवन्मुक्त नारी के इस रूप से पुरुष समाज का कल्याण भी है। अतः स्वार्थवश पुरुष नारी वर्ग के इस उपेक्षित अंग को न पत्नी रूप में स्वीकार करना चाहता है और न माता या भगिनी रूप में। अन्तर के विक्षोभ को महादेवी जी प्रकट होने नहीं देना चाहतीं, किन्तु व्यंग्य और तीखापन उनकी उक्ति में आ ही गया है आप कहती हैं "वह पतित कही जाने वाली माँ की पुत्री है और बिना समाज के प्रवेशपत्र के ही साध्वी स्त्रियों के मन्दिर में प्रवेश करना चाहती है। उसे पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देता है केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है।

इन्हें जानना चाहिए कि यदि पाताल के सब जीव जन्तु स्वर्ग की ओर दौड़ पड़े तो सृष्टि एक दिन भी न चले यदि वह अपने गुरु कर्तव्य से च्युत होकर पत्नीत्व मातृत्व आदि सम्बन्धों को चुराती फिरें तो समाज चुराई हुई वस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार करके क्या अपना विधान ही मिथ्या कर दें?

बिट्टो के अभागे जीवन का स्मरण अनमेल विवाह जैसे ज्वलन्त प्रश्न पर चिन्तना करने को बाध्य करता है। व्यंग्य से बोझिल और करुणा से भीगा हुआ तर्क उपस्थित किया गया है कि समाज में ६४ वर्ष का विधुर पुरुष भी १६ वर्षीया पत्नी की आकाँक्षा करता है। अतः नियमानुसार ३२ वर्षीय बिट्टो को १५० वर्ष का पति मिलना चाहिए था। परोपकारी सम्बन्धियों ने यदि कम आयु का वर खोज दिया तो बिट्टो को कृतज्ञ होना चाहिए। नारी की इस दयनीय स्थिति के मूल में वस्तुतः उसकी आर्थिक परवशता है। वही उसे इतना अकिंचन एवं नगण्य बनाए है। इस सामाजिक संकीर्णता धार्मिक बन्धन और आर्थिक परवशता में समाज ने अपने सबल अर्द्धाङ्ग महीयसी नारी में उन गुणों को नहीं चीन्हा जो उसे इन विषमताओं में भी स्वतन्त्र एवं मुक्त बनाए हैं। उन गुणों को ओर संकेत करते हुए महादेवी जी कहती हैं—"स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है तब पुरुष उसके लिए न महत्व का विषय रह जाता है न भय का कारण"

संक्षेप में महादेवी वर्मा ने अपने व्यतीत जीवन की झाँकियों में अभावग्रस्त भर्त्सनाओं के शिकार कुम्हार, कुञ्जड़े, भृत्यवर्ग आदि तथा पुरुष की कामुकता की शिकार और सामाजिक बन्धनों में जकड़ी नारी की आशा निराशा एवं उसके अंतर वाह्य के ऊहापोह का भावपूर्ण चित्रण किया है। इसमें कहीं उनका हृदय करुणा से सिक्त, सहानुभूति से मसृण एवं वेदना से कराह रहा है तो कहीं आक्रोश क्षोभ एवं टीस से तड़प उठा है। हाँ, समाज की धमनियों में प्रवाहित इस विषैली एवं भयंकर विषमताओं का कहीं समाधान

प्रस्तुत नहीं किया गया है। क्योंकि ये संस्मरण मात्र है जहाँ "पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहिनाकर दूरी की सृष्टि" का प्रश्न उपस्थित नहीं होता था। दूसरे इस धरातल के जीव अपने कण्ठ और वाणी में ऐसा सत्य का बल लेकर आए हैं कि न हम उनकी उपेक्षा कर पाते हैं न उन्हें अनदेखा या अनसुना। इस आधार-भित्ति पर जीवन की कुत्सा देखकर हमारा हृदय काँपता तो है पर राह नहीं पाता। ऐसा प्रतीत होता है कि महादेवी का 'शृंखला की कड़ियाँ' का आक्रोश संस्मरण में संवेदना का रूप धारण कर गया है—आक्रोश समाज के प्रति और संवेदना उन करुणपूर्ण मानवमूर्तियों के प्रति है। इन पात्रों का व्यक्तित्त्व और अस्तित्त्व महादेवी के करुण कणों से अभिषिक्त हो मानों समाज के लिए एक चुनौती बन गया है। शब्द चित्रों में खचित ये व्यक्ति महादेवी की अनुपम कलाकृतियाँ हैं. जिनमें हमारी सामाजिक विषमता वीभत्स रूप में आ खड़ी हुई है। हाँ लेखिका के विचारों में किसी सामाजिक कुसंस्कार या जड़ता की छाया भी नहीं मिलेगी। उदाहरण के तौर पर अवैध सन्तान की समस्या पर उनका दृष्टिकोण निर्भीक सत्यपूर्ण एवं उदार है। संसार की पीड़ा से सर्वथा असम्पृक्त, आत्मशील एवं आत्मकेन्द्रित कवयित्री की गद्य में इस यथार्थवादी बौद्धिक एवं समानुभूति पूर्ण विचारधारा की अभिव्यक्ति देखकर बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि गद्य-पद्य दोनों क्षेत्रों में महादेवी दो भिन्न व्यक्तित्वों का परिचय देती हैं। किन्तु स्मरण रहे कि उनके इन विरोधी व्यक्तियों को एक सूत्र में आबद्ध करने वाला अमर भाव बिन्दु 'दुःख' है यह दुःख काव्य में अलौकिक प्रियतम को लेकर अभिव्यक्त हुआ है और यही लौकिक तत्त्व में यही समाज के इन शोषित एवं अभिशप्त वर्गों के प्रति समानुभूति तथा सहानुभूति का रूप धारण कर गया है। यह संवेदना ही उनके सम्पूर्ण साहित्य को सुशृंखला बद्ध किए हैं।

जैसा कि महादेवीजो ने भूमिका में स्पष्ट कर दिया है 'अतीत के चलचित्रों' का प्रत्येक संस्मरण स्मृति चित्र हैं। क्योंकि इनमें उनका अपना जीवन भी सन्निविष्ट है इसलिए चित्रों में कल्पना को कहीं अवकाश नहीं है। स्वयं उनका विचार भी है कि "जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकालता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की सृष्टि क्यों करती ?" "कहानी कला के आवश्यक अंग कल्पना तत्त्व के अभाव में डा० वासुदेव शरण तथा पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी प्रभृति आलोचकों ने इन्हें संस्मरण ही माना हैं हाँ रायकृष्णदास सभी स्मृति चित्रों को कहानी की संज्ञा देते हैं। यों पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी और डा० वासुदेवशरण भी महादेवी जी को कहानीकारों में परिगणित करते हैं इसका मूल कारण सम्भवतः यह है कि संस्मरण पाश्चात्य साहित्य सम्पर्क की देन है यह गद्य शैली का वह अभिनव रूप है जो जीवन के सत्य और वास्तविकताकी अनुभूतिमय अभिव्यक्ति करता है। संस्मरण में कल्पना का स्थान पात्र या घटना के प्रति अनुभूत प्रतिक्रिया पर लेखक की टिप्पणी के रूप में रहता है। यों तो कला की दृष्टि से कहानी संस्मरण की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है, परन्तु संस्मरण का जितना प्रत्यक्ष प्रभाव पाठक के मन पर पड़ता है, उतना कहानी का नहीं। इसका कारण मूलतः संस्मरण का तथ्यपरक आधार ही कल्पित किया जा सकता है। अतीत के धूमिल चित्रों की साकार अभिव्यक्ति ही संस्मरण है और इस कसौटी पर आलोच्य चित्र उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत हुए हैं। जैसा कि कह आए हैं, लेखिका की इस सफलता का सबसे बड़ा कारण उनकी हृदय की संवेदनशीलता है जो उनके पारिवारिक जीवन तथा वातावरण का सुपरिणाम है। माता से उन्होंने आस्तिकता और भावुकता तथा पिता से असाम्प्रदायिकता तथा कर्मनिष्ठा की भावना ली है। निर्धनों की सहायता की प्रवृत्ति भी उन्हें माँ से ही मिली थी जिसका परिचय हमें रामावाले संस्मरण में मिलता है उनकी माता ने ही रामा की कुरूपता का आवरण भेजकर उसके आन्तरिक अक्षय सौंदर्यको परखा था इस प्रकार साधना संकल्प और लोक-कल्याण की भावना से संयुक्त महादेवी ने ये संस्मरण रेखाचित्र रूप में सफलता से प्रस्तुत किए हैं।

रेखा-चित्र की यह शैली साहित्य क्षेत्र में चित्रकला से आई है। शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को आकार देने की विधि को रेखा-चित्र कहा जाता है। जिस प्रकार कैमरामैन व्यक्ति का फोटो लेते समय उसकी पृष्ठभूमि को भी दृष्टि में रखता है उसी प्रकार महादेवी के समस्त

रेखाचित्र समाज की सुदृढ़ पीठिका पर रचित है। ये शब्द-चित्र हिन्दी में अपने ढंग के सर्वप्रथम और सशक्त हैं। उदाहरणार्थ रामा का चित्र देखिए-—

"किसी थके झुंझलाए शिल्पी की अन्तिम भूल जैसी अनगढ़ मोटी नाक, सांस कंप प्रवाह से फैले हुए से नथने, मुक्त हंसी से भर कर फूले हुए ओंठ तथा काले पत्थर की प्याली में दही की याद दिलाने वाली सघन और सफेद दन्तपंक्ति के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। और देखिए, महादेवी की बाल्यसखी बिन्दा का आकार-प्रकार मानो तूलिका की मोटी-पतली रेखाओं में उभर आया हो" दो पैसों में आने वाली खंजड़ी के ऊपर मढ़ी झिल्ली के समान पतले चर्म से मढ़े और भीतर की हरी-हरी नसों की झलक देने वाले उसके दुबले हाथ पैर न जाने किस अज्ञात भय से अवसन्न रहते थे। इस प्रकार के संख्यातीत उदाहरण इन चलचित्रों से उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें बदलू, सबिया घीसा और अलोपीदीन की रेखाएँ स्पष्टतर और अधिक गहरी बन पड़ी है। बदलू का रेखाचित्र भी द्रष्टव्य है—उसकी मुखाकृति सांवली और सौम्य थी, पर पिचके गालों से विद्रोह करके नाक के दोनों ओर उभरी हुई हड्डियाँ उसे कंकाल सहोदर बनाये बिना नहीं रहतीं। लम्बा इकहरा शरीर भी कभी सुडौल रहा होगा; पर निश्चित आकाशवृत्ति के कारण असमय वृद्धावस्था के भार से झुक आया था। उजली छोटी आँखें स्त्री की आँखों के समान सलज्ज थीं, पर एकरस उत्साहहीनता से भरी होने के कारण चिकनी काली मिट्टी से गढ़ी मूर्ति में कौड़ियों से बनी आँखों का स्मरण दिलाती रहती थी। कांपते ओठों में से निकलती हुई गले की खरखराहट सुनने वाले को वैसे ही चौंका देती थी जैसे बांसुरी में से निकलता शंख का स्वर।" सिनेमा के चित्र के समान श्वेत और काले बिन्दुओं से निर्मित यह शब्द-चित्र तीव्र गति से नेत्रों के समक्ष बनता बिगड़ता चलता है। ममता और करुणा-पूर्ण सहानुभूति के क्रोड़ में बिठाकर लेखिका ने जो पात्र प्रस्तुत किये हैं वे स्वयं मूक रहते हैं। अतः संस्मरणों में संवाद कम हैं, स्वबं महादेवी उनके विषय में अधिक बोलती हैं। हाँ जितना वे कहती हैं और जो कुछ पात्र स्वयं कह पाता है उन्हीं से चरित्र बोल उठते हैं।

इन रेखा चित्रों को मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक बनाने केलिए महादेवी ने उपमानों का चयन इस प्रकार किया है कि रेखाएँ सहृदय के मन को विरोधी भावना से भर देती है और उस दशा में हँसना निष्ठुरता और मौन रहना सहानुभूति हीन जान पड़ता है। सबिया की बचिया को देखिए जिसके—"सूखे शरीर में नये पत्ते की चंचलता न होकर पाले से खिल न सकने वाले बंधे किशलय कोरक का अवश हिलना डुलना था।" कोने में दुबके हुए 'घीसा' पर दृष्टि जाती है 'जिसकी उभरी हड्डियों वाली गर्दन को संभाले हुए झुके कन्धों से रक्तहीन मटमैली हथेलियाँ टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नाखूनों से युक्त हाथों वाली पतली बांहें ऐसी झूलती थीं जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ।" रामा की कुरूपता और कालेपन को उपमानों को सहारे अभिव्यक्त करने में लेखिका ने अपनी कुशल लेखनी का परिचय दिया है 'साँप के पेट जैसी सफेद हथेली और पेड़ की टेढ़ी मेढ़ी गांठदार टहनी जैसी अंगुलियाँ।" कहीं-कहीं मुहावरेदार भाषा का उपयोग भी मिलता है, जिससे कथन में प्रभविष्णुता एवं संक्षिप्तता आ गई है रामा की कोठरी में महाभारत के अंकुर जमना, कान को सूखा द्वीप बनने से बचाना, खेल के संसार में सूखा पड़ने की सम्भावना, अंगारों से आंचल का भर जाना दूध से सफेद बाल और दूधफेनी सी सफेद दाढ़ी, काँच की गोलियाँ जैसी निष्प्रभ आंखें, सूखी आंखों में बाढ़ आना, खेत में लकड़ी पर औंधाई हुई मटकी जैसा सिर आदि बोलचाल की शब्दावली से संयुत छोटे-छोटे वाक्यों में गुंथी भाषा में प्रवाह और चुटीलापन दोनों हैं। अनेक स्थलों पर काव्यमय उपमाओं से अलंकृत वाक्य-योजना उसके कवि हृदय का परिचय भी देती चली है, यथा :—

१—रामा के कुम्हलाए मुख पर ओस के बिन्दु जैसे आनन्द के आंसू ढुलक पड़े।

२—सवेरे के पुलक पंखी वैतालिक एक लयवती उड़ान में अपने-अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। विरल बादलों के अन्तराल से उनपर चलाये हुए सूर्य के सोने के शब्द भेदी बाण उनकी उन्मद गति में ही उलझकर लक्ष्य भ्रष्ट हो रहे थे।

३—अपने दलों पर मोती सा जल भी न ठहरने देने वाली कमल की सीमातीत स्वच्छता ही उसे पंक में जमने की शक्ति देती है।

४—मलय के झोके के समान मुझे कण्टक बन में खींच लाकर उन्होंने जो दो फूलों की धरोहर सौंपी थी उससे मुझे स्नेह की सुरभि ही मिली है।

५—पृथ्वी के उच्छ्वास के समान उठते हुए धुँधलेपन में वे घर आकण्ठ मग्न हो गये थे।

६—वैशाख नये गायक के समान अपनी अग्निवीणा पर एक से एक लम्बा अलाप लेकर संसार को विस्मित कर देना चाहता था।

७—लछमी का पहाड़ के हृदय पर पड़े छाले जैसा छोटा घास फूस का घर है।

इनके अतिरिक्त इस वर्ग का जीवन "खुली पुस्तक जैसा" अथवा वृद्ध जीवन के कम के कम "५४ बसन्त और पतझड़" देख चुके होंगे जैसे वाक्य पाश्चात्य अभिव्यंजना के अलक्ष्य प्रभाव का संकेत करते हैं। इसी प्रकार विषय भेद के साथ भाषा का साहित्यिक रूप भी उन स्थलों पर उपलब्ध है जहाँ जीवन का गंभीर एवं दार्शनिक विवेचन हुआ है। यहाँ लम्बे-लम्बे वाक्य तत्सम शब्दों में गुंथे चले आते हैं। उदाहरणार्थ :—"शैशव की स्मृतियों में विचित्रता है। जब हमारी भाव प्रबलता गंभीर और प्रशान्त होती है तब अतीत की रेखाएं कुहरे में से स्पष्ट होती हुई वस्तुओं के समान अनायास ही स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगती हैं।" अथवा "वास्तव में जीवन सौन्दर्य की आत्मा है वह सामंजस्य की रेखाओं में जितनी मूर्तिमत्ता पाता है उतनी विषमता में नहीं।"

संक्षेप में, मानव और संसार की क्रिया—प्रतिक्रिया से उत्पन्न ज्ञानवृत्ति और अनुभूति संस्कारों का ताना-बाना सा बुनती चलती हैं और महादेवी जी के शब्दों में हमें प्रतीत होता है कि 'संसार यात्रा में हमने ऐसे अनेक विरूप खण्ड देखे हैं, जिसे निकट ठहरने की हमारे व्यस्त जीवन को इच्छा ही नहीं हुई परन्तु उस मूर्ति से साक्षात् होते ही हमारा जीवन अपने सम्पूर्ण वेग से उसे घेर कर उसी प्रकार आर्द्र करने लगता है जिस प्रकार तीव्र गति वाला जल प्रवाह अपने पथ में पड़े हुए शिलाखण्ड की प्रदक्षिणा कर करके उसे अपने सीकरों से अभिषिक्त करने लगता है। हमारा हृदय कहता है "यह मेरा है" हमारी सांस पूछती हैं—"इतना अन्तर किस लिए"। "हमारी बुद्धि प्रश्न करती है" ऐसा "दैन्य क्यों।" मनन चिन्तन के उपरान्त इस अन्तर का कारण स्पष्ट उभर आता है—कलाकार महादेवी ने अपनी प्रतिभा से उस खण्ड विशेष का जीवन को अखण्ड पीठिका पर प्रतिष्ठित और सामंजस्य की व्यापक आधार-भित्ति पर अंकित करके हमारे समक्ष उपस्थित किया है और उस रूप में हमारे जीवन का सत्य उसकी उपेक्षा नहीं कर सका।

अतीत के चलचित्र में—सौम्यतत्व

•

रामगोपाल कौंड़ा

परिणाम की दृष्टि से महादेवी जी की प्रतिभा पद्य में अधिक मुखरित हुई है और उनके कवयित्री रूप से ही हिन्दी जगत् अधिक आप्यायित हुआ है, पर उनके गद्य का महत्त्व भी गौण नहीं है। महादेवी का गद्य तीन कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। पहला, विवेचनात्मक जो उनके काव्य संग्रहों की भूमिकाओं के रूप में कवयित्री के काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण के प्रकटीकरण के हेतु प्रस्तुत हुआ है, दूसरा 'चाँद' की सम्पादकीय टिप्पणियों का गद्य जो "शृंखला की कड़ियाँ" में सम्पादित है, तीसरा संस्मरणात्मक जो "स्मृति की रेखाएँ" और "अतीत के चलचित्र" में वर्तमान है।

श्री विश्वम्भर मानव के अनुसार महादेवी की बुद्धि शृंखला की कड़ियों में, आत्मा, गीतों में और हृदय अतीत के चलचित्रों में निहित हैं।[1] बुद्धि, आत्मा और हृदय, व्यक्तित्त्व के इन तीन पहलुओं में उपर्युक्त पार्थक्यरेखा कदाचित् इसलिए खींची गई है कि महादेवी के पद्य और गद्य साहित्य में अन्विति का विवाद अभी शांत नहीं हुआ। स्तरीय दृष्टि से देखा जाये तो उनके गीत जहाँ आत्मा के उद्‌गीथ जान पड़ते हैं वहाँ गद्य संसार का अंकन दिखाई पड़ता है। महादेवी के गीतों के इसी गुण को आधार मानकर उनकी तुलना मीरा से भी की जाती है। परन्तु दृष्टव्य है कि महादेवी का उन्मेष मीरा की तरह आध्यात्मिक होकर भी आत्मस्थ नहीं है। कारण यह कि महादेवी और मीरा के अध्यात्म में शताब्दियों का व्यवधान है। अन्तर केवल समय का नहीं, युग चेतना का भी है। बीसवीं शताब्दी हमारे मध्ययुगीन धार्मिक-नैतिक मूल्यों और पौराणिक व्यक्तित्वों की एक नवीन बौद्धिक व्याख्या लेकर आई। श्रेय चाहे विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप, मानवीय शक्तियों को मिले विकास के कारण, परम्परागत मानस में जड़ीभूत ऐहिक वैराग्य और निष्क्रिय औदास्य को मिली चुनौती को दिया जाय या पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के प्रभाव पर एक नवीन दृष्टि मुक्ति और अपूर्व भाव मुक्ति बीसवीं शताब्दी की युग चेतना की विशेषता है। दृष्टि और भाव में इस नूतन बौद्धिक चेतना में संक्रमण से आज का आध्यात्म भी अछूता नहीं। इसीलिए विरक्ति-परक आध्यात्म आज के उपयुक्त नहीं। जन जीवन से निरपेक्ष समाज से विलग, विजय वन में मोक्ष की प्राप्ति आज बुद्धिगत नहीं हो सकती। विवेकानन्द के अनुसार "मानव में ईश्वर का दर्शन ही सच्चा दर्शन है।" रवीन्द्र के गीत 'नैवेद्य' में "वैराग्य साधना से मुक्ति? अरे वह मेरी नहीं, मैं तो संसार के अनेक बन्धनों में ही मुक्ति का आनन्द लूँगा",—का यही अभिप्राय है? गाँधी और विनोबा भी इसीलिए दरिद्रनारायण की सेवा को ईश्वर-सेवा की संज्ञा से अभिहित करते हैं, क्योंकि भावना के क्षेत्र में जो प्रेम है वही चिन्तन और विचार के क्षेत्र में अहिंसा; करुणा अथवा लोकसेवा है। यही तथ्य पंत की अधोलिखित पंक्तियों में लयमान हो गया है।

"वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार

• • •

[1]—महादेवी—विश्वम्भर मानव पृष्ठ १३

लोक सेवा में शिव अविकार।[1]

वास्तव में इसी आलोक में महादेवी के गद्य और पद्य का अवलोकन करने से अन्विति की बाधा नहीं रहती। दुःख और वेदना का जो रूप उनके गीतों में नितान्त निजी सा प्रतीत होता है, गद्य रचना के समय वह समाहित हो जाता है उस रूप में जो सहानुभूति और समता बढ़ाता है, आत्मा का विस्तार करता है "मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है।"[2] इसी कारण महादेवी के लिये समाज सेवा और ईश्वर सेवा अभिन्न हो गई है। इसीलिये उनके पद्य की विरह वेदना गद्य में लोक पीड़ा हो गई है। इसी अर्थ में उनका मन लोक सत्ता से विच्छिन्न नहीं। यही कारण है कि 'अतीत के चलचित्र' में जीवन का सम्मान है, जीवन का व्याख्यान है और है अंतर के औदार्य के बल पर लोक की पीड़ा को अपनी स्थिति और शक्ति के अनुसार कर्म करने का प्रयास।

महादेवी के द्वार से दीनता कभी निराश नहीं-लौटी क्योंकि स्वभाव से वह लोक हितैषिणी और जनोपकारिणी है इसी कारण रागात्मक द्रवणशीलता की अमित मात्रा उनके पास है। इस द्रवणशीलता का आधार उथला नहीं बहुत गहरा है क्योंकि यह उपार्जित कम है संस्कारगत अधिक। "माँ के कारण हमारा घर अच्छा खासा जू बना रहता था। 'बाबू जी लौटते तब प्रायः कभी कोई लंगड़ा भिखारी बाहर के दालान में भोजन करता रहता, कभी कोई सूरदास पिछवाड़े के द्वार पर खंजड़ी बजा कर भजन सुनाता होता, कभी पड़ोस का कोई दरिद्र बालक नया कुरता पहनकर आंगन में चौकड़ी भरता दिखाई देता और कभी कोई बृद्धा ब्राह्मणी भंडारघर की देहली पर सीधा गठियाते मिलती।"[3] "बचपन से बड़े होने तक माँ न जाने कितनी व्याख्या—उपव्याख्याओं के साथ इस व्यवहार-सूत्र को समझाती रही हैं कि हमारी शिष्टता की परीक्षा तब नहीं होती जब कोई बड़ा अतिथि हमें अपनी कृपा का दान देने घर में आता है वरन् उस समय होती है जब कोई भूला भटका भिखारी द्वार पर खड़ा होकर हमारी दया के कण के लिये हाथ फैला देता है।"[1] परम्परागत सारहीन रूढ़ियों से उद्भूत सीमाएं जो सामाजिक जीवन को जीने योग्य बनाने में बाधक हैं, महादेवी जी के गद्य का सामान्यतः और 'अतीत के चलचित्र' का विशेषतः वर्ण्य विषय है। इसी तत्त्व ने यशपाल को क्रान्तिकारी और निराला को विद्रोही बना दिया। परन्तु महादेवी की प्रकृतिगत सौम्यता उनके विद्रोह के लिये भारी पड़ी है। यशपाल और निराला का पौरुष जहाँ कुठाराघात के लिए उद्यत रहता है, महादेवी वहाँ उदार वात्सल्य प्रदान करती हैं। यशपाल और निराला जहाँ प्रायः विध्वंसात्मक हो उठते हैं, महादेवी वहाँ संवेदनशीला हैं। यशपाल और निराला की पकड़ जहाँ प्रायः निषेधात्मक बन जाती है, महादेवी वहाँ सृजनात्मक बनी रहती हैं। यशपाल और निराला जहाँ पाठक में विस्फोट-बुद्धि का संचार करते हैं, महादेवी वहाँ क्रियात्मकता की प्रेरणा देती है। यही 'अतीत के चलचित्र' की विशेषता है।

'अतीत के चलचित्र' की दूसरी विशेषता है विषय विस्तार। 'शृंखला की कड़ियाँ' की तरह यहाँ पर लेखिका की दृष्टि एक ही केन्द्र पर परिसीमित नहीं है। 'शृंखला की कड़ियाँ' की एक ही समस्या है वर्तमान पुरुष प्रधान सामाजिक विधान में नारी-जीवन की विडम्बना। एक ही प्रश्न है—पुरुष की समकक्षता में नारी को ला खड़ा करने का प्रश्न। परन्तु 'अतीत के चलचित्र' में महादेवी की करुणा का भंडार मुक्त हस्त से वितरित हुआ है, चाहे रामा जैसा कुरूप और अलोपी जैसा नेत्रहीन नौकर हो, चाहे मारवाड़िन बिन्दो और बिट्टो जैसी विधवाएँ, चाहे सबिया मेहतरानी, रधिया कुम्हारिन और लछमी पहाड़िन या थीसा जैसा दीन छात्र, सभी पर लेखिका की सजल ममता समान रूप से बरसी है।

'अतीत के चलचित्र' की तीसरी उल्लेखनीय विलक्षणता यह है कि यह ग्यारह संस्मरणात्मक लेखों का लघु संग्रह है पर ये रचनाएं विशुद्ध लेख मात्र ही नहीं है, पर्याप्त कथा-रस भी इनमें प्राप्य है, कारण केवल यही-नहीं कि इनमें कथा सूत्र

---

[1]—पल्लव—सुमित्रानन्दन पंत परिवर्तन।

[2]—यामा की भूमिका पृष्ठ १२

[3]—अतीत के चलचित्र पृष्ठ १२

[1] - वही ...पृष्ठ ८९

अथवा घटनाक्रम सुव्यवस्थित है वरन् यह भी कि वर्णित सभी समस्याएँ विशुद्ध बौद्धिक धरातल पर निरूपित नहीं की गई हैं, भाव की अप्रत्यक्ष धारा सब कुछ को निरन्तर आप्लावित करती चलती है। या यों कहें कि बौद्धिकता, भावुकता और चिन्तन परस्पर सहयोगी होकर इन रचनाओं में उतरे हैं।

रस्किन के अनुसार 'शुद्ध अविकृत मानव वहाँ है जहाँ जीवन अगुनात्मक साधनों से सम्पन्न नागर नहीं।' वहाँ तेल फुलेल से चुपड़े चेहरे भले न मिलें पर तन की रुक्षता के भीतर मन का स्निग्ध तारल्य प्रभूत मात्रा में है। 'अतीत के चल-चित्र' का वैशिष्ट्य यह भी है कि अंकन का विषय ऐसे ही निश्छल, निस्पृह शुद्ध अविकृत मानव मूर्तियों को बनाया गया है। उसके ऊपर यह कि प्रत्येक पात्र से महादेवी की व्यक्तिगत सहानुभूति प्रत्यक्ष लक्षित होती है।

'अतीत के चलचित्र' वस्तुतः करुणगाथा है। पात्रों के जीवन की दीनता दृश्य मन को अचानक टूम सा लेता है। "इस समाधि जैसे घर में लोहे की प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी-साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद प्रमोद के, मानो निरंतर वृद्धा बनने की साधना में लीन।" इन पात्रों की दशा की दारुणता की अभिव्यक्ति इसलिए और भी मर्मान्तिक है क्योंकि कवयित्री की अनुभूति इससे भी प्रखर है; कारण यह कि इन सभी पात्रों को महादेवी की आत्मीयता मिली है। ऐक्य कुछ इतना प्रगाढ़ है कि वे मानो लेखिका के जीवन में उतर आए हों। "आज भी जब कोई रंगीन कपड़ों के प्रति (मेरी) विरक्ति के सम्बन्ध में कौतुक भरा प्रश्न कर बैठता है तो वह अतीत फिर वर्तमान होने लगता है। कोई किस प्रकार समझे कि रंगीन कपड़ों में जो मुख धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगता है वह कितना करुण और कितना मुर्झाया हुआ है।" इन पात्रों से निजता का सा सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण ही, उनकी व्यथा की स्थिति जहाँ अधिक भीषण है, वहाँ लेखिका का क्षोभ भी तीव्र हो गया है जैसे उसके प्राण क्रन्दन कर उठे हों। इसीलिये अभिव्यक्ति सहज न रह कर व्यंग्य से आवृत हो उठी हैं और व्यंग्य भी बहुत सबल तथा तीक्ष्ण। "इसी सलज्ज कर्तव्यनिष्ट सबिया को लक्ष्य कर जब एक परिचित वकील पत्नी ने कहा, 'आप चोरों की औरतों को क्यों नौकर रख लेती है?' तब मेरा शीतल क्रोध उस जल के समान हो उठा जिसकी तरलता के साथ मिट्टी ही नहीं पत्थर तक काट देने वाली धार भी रहती है! मुँह से अचानक निकल पड़ा 'यदि दूसरे के धन को किसी-न-किसी प्रकार अपना लेने का नाम चोरी है तो मैं जानना चाहती हूं कि हम में से कौन सम्पन्न महिला चोर पत्नी नहीं कहीं जा सकती?" "जिसे समाज ने एक बार कुलबाधुओं की पंक्ति से बाहर खड़ा कर दिया उसे जन्म-जन्मान्तर तक अपनी सभी भावी पीढ़ियों के साथ बाहर गड़े रहने को ही जीवन का सबसे बड़ा बरदान समझना चाहिये। और फिर समाज ने उन्हें क्या छोटा-मोटा काम दिया है? भगवान् के विराट रूप के समान ही मनुष्य के विराट रूप की अर्चना का अधिकार इन्हीं को प्राप्त हैं; परन्तु जब यह अपनी दुर्बुद्धि से अनुशासन भंग कर देतीं हैं तब इनका अपराध अक्षम्य हो उठता है। इन्हें जानना ही चाहिये कि जिसने ऊँचे स्वर्ग की सृष्टि की है उसी ने नीचे पाताल की रचना भी की है। यदि पाताल के सभी जीव जन्तु स्वर्ग की ओर दौड़ पड़ें तो सृष्टि एक दिन भी न चले। अपने इच्छानुसार ही जीवन को बदल कर यह समाज में जो एक अव्यवस्था उत्पन्न का रही है, उसे रोकने के लिये दण्ड देना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो उठता है, नहीं तो समाज की इन पर कम ममता नहीं। भला किसे अपनी सृष्टि का मोह नहीं होता! समाज इन्हें न जाने कितने दीर्घ काल से, कितने ही उपायों से समझाता आ रहा है कि यह माता, पुत्री, पत्नी आदि त्रिगुणात्मक उपाधियों से रहित जीवन्मुक्त नारी मात्र हैं और इनकी इसी मुक्ति से समाज का कल्याण बंधा हुआ है फिर भी यदि यह अपने गुरु कर्तव्य से च्युत होकर पत्नीत्व, मातृत्व आदि सम्बन्धों को चुराती फिरें तो समाज चुराई हुई वस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार कर क्या अपना विधान ही मिथ्या करे?"

'अतीत के चलचित्र' में जाने अनजाने कवयित्री का निजी जीवन, मानस, प्रक्रियाओं की सरिणी आदि भी उभर आए हैं, जिनके प्रकाश में उसके व्यक्तित्व को अधिक समीप से से देखने और समझने में सहायता मिलती है। इन्हीं के आधार पर कहा जा सकता है कि महादेवी जी मानव मात्र की कल्याण-कामना से व्यग्र मनीषियों को उस लम्बी

परम्परा को वर्तमान युग में भी अपने सतत-साधना-लीन दीपशिखा जैसे व्यक्तित्व का शुभ्र-श्वेत आलोक देकर सजीव रखे हुए हैं, युगों-युगों से भारत ने जिसे अखण्ड रखा है। अपने लिये सांस लेने, खाने, जीने और मर जाने के लिये तो असंख्य ही, संसार के हर कोने में हर घड़ी पैदा होते रहते हैं, पर ऐसी विभूतियाँ विरले ही होती हैं।

'अतीत के चल-चित्र' को बसाने वालों की नगरी में हृदय हीन स्वार्थी समाज के अत्याचारों की भाड़ में सुलगते, तिल तिल कर के अपना सर्वस्व होम करते ऐसे निरीह प्राणी हैं जिन्होंने अपनी समस्त ममता अन्य के प्रति उड़ेल देना ही जीवन का ध्येय मान लिया है फिर भी उन्हें न आक्रोश है, न प्रतिकार का आग्रह और न आभार की आशा। इस भाड़ का फूटना श्रेयस्कर तो है पर अकेला चना क्या करे। महादेवी जी के अथक परिश्रम से जनमत तैयार हुआ है पर देरी है उसे सम्वेत रूप से सक्रिय (Mobilise) करने की।

गद्यशैली दृष्टि से भारतेन्दु युग राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह के सूत्रपात से जिन दो स्कूलों की स्थापना हुई, प्रायः सभी छायावादी लेखक, उनमें से द्वितीय के अन्तर्गत आते हैं। प्रसाद ने इस शैली को चरमसीमा पर पहुँचाया, पर महादेवी की भाषा प्रसाद के 'फील पांवी पन' से सर्वथा मुक्त है। विशेषतः 'अतीत के चल-चित्र' की भाषा, सहज, संयत, परिष्कृत, एवं प्रौढ़ है परन्तु जैनेन्द्र के लचीलेपन का उसमें अभाव है। कथन की वक्रता या बात को दरेरा देकर कहने की प्रवृति स्थान-स्थान पर उपलब्ध होती हैं। "वृद्ध जीवन के कम से कम ५४ बसंत और पतझड़ देख चुके होंगे—दो अर्धाङ्गिनियाँ मानो उनके जीवन की द्रुत गति से पग न मिला सकने के कारण उनका संग छोड़ गई हैं। उनसे मिले उपहार स्वरूप दो पुत्रों में से एक कलकत्ते में कोई व्यवसाय करता है और दूसरा ससुराल की धरोहर बन गया है। दो मकान और कुछ धन है, इसी लिगे वानप्रस्थ आश्रम को भी कुछ सरस बनाए रखने के लिए वृद्ध महोदय को एक संगिनी ढूँढ़ने की आवश्यकता जान पड़ी।" "पुरुष बेचारे की उग्र तपस्या और अखण्ड साधना, स्त्री के द्वारा प्रायः भंग होती रही है, इसी से इस मायाविनी जाति के स्वभाव की व्याख्या करने के लिये पोथे रच डाले हैं।" महादेवी के गद्य के साधारण वाक्य भी कहीं-कहीं सूक्ति अथवा सिद्धान्त वाक्य बनने का गौरव रखते हैं, "स्त्री में माँ का रूप ही सत्य है, वात्सल्य ही शिव है और ममता ही सुन्दर।" वृत्तियों और मुद्राओं के अंकन में उनकी लेखिनी बड़ी सजीव हो उठती है। ऐसे स्थल प्रायः अनूठी उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं के सहारे अद्भुत चमत्कार के स्थल बन पड़े हैं। "ओठों पर पड़ी सिकुड़न, ऐसी जान पड़ती थी, मानो किसी तिक्त दवा की प्याली से निरंतर स्पर्श का चिह्न हो।"[४] "इस लम्बी-चौड़ी सार-गर्भित भूमिका से अवाक् मैं जब कुछ प्रकृतिस्थ हुई तब वस्तुस्थिति मेरे सामने धीरे-धीरे वैसे ही स्पष्ट होने लगी जैसे पानी में कुछ देर रहने पर तल पर की वस्तुएँ।" कहीं प्रेमचन्द की तरह समानवर्ती अथवा विरोधी तुलना से उनकी भाषा की व्यंजकता निखर आई है। "बिन्दो को मेरा उपाय कुछ जंचा नहीं क्योंकि वह तो अपनी पुरानी अम्मा को खुली पालकी में लेट कर जाते और नयी को बन्द पालकी में बैठ कर आते देख चुकी थी। अतः किसी को भी पदच्युत करना उसके लिये कठिन था।" "मैं वेतन न दूँ तो भी वह जाने को राजी नहीं, खाना न दूँ तो भी वह गाँव से सत्तू गुड़ लाकर खाने को प्रस्तुत है; पर मुझे छोड़ कर वह केवल स्वर्ग जाएगी, और वह भी अपनी इच्छा से नहीं। ऐसे व्यक्ति को सुधारना क्या कभी सम्भव है? इसी-लिये वह निरंतर संजय की भूमिका निवाहती रहती है। अंतर केवल इतना ही है कि महाभारत का संजय अंधे धृतराष्ट्र के पूछने पर युद्ध का समाचार देख कर उन्हें आँखों का सुख देता था और इसकी अनपूछी संसार कथा के लिये मुझे प्रायः बहरा बनने का दुःख भोगना पड़ता है।" "जब घीसा नहा कर गीला अंगौछा लपेटे और आधा भीगा कुरता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खड़ा हुआ, तब आँखें ही नहीं मेरा रोम-रोम गीला हो गया।" "उसे एक ओर लिटा कर जब वह मजदूरी के काम में लग जाती थी तब पेट के बल घसिट-घसिट कर बालक घीसा संसार के प्रथम अनुभव के साथ-साथ इस नाम की योग्यता भी प्राप्त कर रहा था।"

हिन्दी गद्य साहित्य में भी महादेवी का स्थान, पद्य के समान ही सदैव सुरक्षित रहेगा और इस गौरव के वहन करने का श्रेय उनके 'अतीत के चल-चित्र' को है।

अतीत के चलचित्र—एक दृष्टि

●

प्रो० एस० पी० रणदेव

अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा द्वारा शैली विषय एवं शिल्प की दृष्टि से साहित्य के विविध अङ्गों का सृजन कर, भारत भर के शिक्षित लोगों तथा विचारकों को किसी न किसी रूप में प्रभावित करने वाली सुश्री महादेवी वर्मा ने अपना समस्त जीवन साहित्य-साधना में ही लगा दिया। आपका साहित्य केवल मात्र मनोरञ्जन के लिए नहीं लिखा गया, वरन् आपकी प्रत्येक रचना किसी न किसी उच्च भावना अथवा नैतिक आदर्श का समर्थन करती हुई कोई न कोई नया दृष्टिकोण हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। आप यह भली-भाँति जानती हैं कि साहित्य बच्चों के मन बहलाव के लिए कोई खिलौना नहीं है। साहित्य की बहुत बड़ी उपादेयता है और इसीलिए साहित्यकार पर भी एक बहुत बड़ा उत्तर-दायित्व आ जाता है कि वह केवल मात्र हल्के-फुल्के पदार्थों का निर्माण न करे अपितु एक ऐसे व्यापक एवं स्थायी प्रभाव युक्त काव्य का सृजन करे जो सदैव अपने गुणों के कारण लोगों के हृदयों में अपना स्थान बना सके तथा सदा जीवित रह सके। 'अतीत के चलचित्रों' की भूमिका में आपने अपनी इस विचारधारा का स्पष्ट उल्लेख भी किया है — "प्रस्तुत संग्रह में ग्यारह संस्मरण कथाएँ जा सकी हैं। उनसे पाठकों का सस्ता मनोरञ्जन हो सके, ऐसी कामना करके मैं इन क्षत-विक्षत जीवनों को खिलौनों की हाट में नहीं रखना चाहती। यदि इन अधूरी रेखाओं और धुँधले रङ्गों की समष्टि में किसी को अपनी छाया की एक भी रेखा मिल सके, तो यह सफल है अथवा अपनी स्मृति की सुरक्षित सीमा से इसे बाहर लाकर मैंने अन्याय ही किया है।"

इसके साथ ही आपकी समस्त रचनाएँ आपके व्यक्तित्व का भी प्रतिनिधित्व करती हैं। आपकी व्यक्तिगत विशेषताओं का आपकी भाषा एवं भावों में इस प्रकार से संमिश्रण हुआ है कि इस पर आपके निजी व्यक्तित्व की एक मुहर सी लग गई है और कोई भी व्यक्ति उनको पढ़कर सहज ही यह कह सकता है कि यह केवल मात्र महादेवी की ही रचना हो सकती है।

आप एक उच्चकोटि की गीतिकर्त्री, चित्रकर्त्री तथा गद्य लेखिका हैं। काव्य संसार में आपके 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत', और 'दीपशिखा' एवम् प्रथम चार कृतियों का संग्रह रूप—'यामा' का हिन्दी साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान है। गद्य जगत् में आपके विवेचनात्मक गद्य —'शृंखला की कड़ियाँ' क्षणदा', 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', एवं 'पथ के साथी' अपने में बेजोड़ रच-नाएँ हैं।

यद्यपि आपके गद्य और पद्य दोनों में करुणा का अपार सागर लहरें मारता है, आपकी लेखनी सर्वत्र दुःख और रुदन से ही प्रस्फुटित होकर चली है साथ ही एक विशेष दर्शन-पृष्टि लिये हुये हैं फिर भी आपके काव्य एवम् गद्य के क्षेत्र भिन्न-भिन्न दीख पड़ते हैं। डा॰ विमल कुमार जैन आपके काव्य को आत्म केन्द्रित मानते हैं और गद्य को समाज केन्द्रित।

इस प्रकार आपके काव्य में जहाँ आपकी व्यक्तिगत भावना रहस्य अनुभूति, स्त्री सुलभ भावों की कोमलता, पर-म्परागत सौंदर्य, गूढ़ दार्शनिक चिंतन, छायावाद का चम-

त्कृत पुट, निजी दुःख विरह-वेदना तथा प्रेम-पीर निहित है; वहाँ इसके विपरीत आपके गद्य में समाज का दुःख, उत्पीड़ित नारी का रुदन तथा साधारण प्राणियों की निराशा, विवशता एवम् दैन्य का ही विशेष रूप से वर्णन हुआ है।

रामचन्द्र गुप्त भी 'महादेवी वर्मा - जीवन और उनकी मान्यताएँ' में इस बात का स्पष्ट उल्लेख करते हैं कि "महादेवी जी के गद्य के क्षेत्र में स्वात्म को छोड़कर सर्वात्मभावना ही अधिक देखने को मिलती है। वे अपने व्यक्तित्व को छोटे से छोटे व्यक्तित्वों में लय कर अपने दिल और दूसरे के दिल की बात सुनने और सुनाने को तैयार हैं। उनका गद्य उनके काव्य की भाँति सौंदर्य के भुलावे में डालकर हमें जीवन से दूर नहीं ले जाता, वह तो हमारी शिराओं में चेतना भर कर हमें यथार्थ जीवन में झाँकने की प्रेरणा प्रदान करता है।" और फिर—"उनके जीवन का वास्तविक विस्तार हमें उनके गद्य में ही देखने को मिलता है। जो करुणा उनके काव्य में निजी ऐकान्तिक हो उठी है वह गद्य में पहुंचकर सम्पूर्ण विश्व को छूने लगी है।"

अतः आपके काव्य में जहाँ एकान्तिक रागात्मकता एवम् दार्शनिक वृत्ति की प्रधानता है वहाँ आपके गद्य में सामाजिक चरित्र चित्रण हुआ है और फिर जहाँ आपका काव्य कहीं-कहीं दार्शनिक चिंतन के फलस्वरूप भाव गाम्भीर्य में उलझ गया है वहाँ आपके गद्य की यह अद्वितीय विशेषता है कि वह सर्वत्र अपने विषय का स्पष्ट निर्वाह कर जाता है। और फिर यह तथ्य भी तो नहीं भुलाया जा सकता कि दासता एवम् विवशता की बेड़ियों में जकड़ी विवश नारी का अत्यंत मार्मिक चित्रण; निम्न वर्ग से प्रत्येक छोटे से छोटे पात्र के लिए अपनी सहृदयता; सौजन्यता; विपन्न मानव के प्रति अपनी संवेदना, करुणा, ममता, वात्सल्य, दया एवम् प्रेम प्रकट करने के लिए आपका पद्य सम्भवतः पूरा न उतर सकता। भाव गाम्भीर्य, यथार्थ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा सजीव चरित्र चित्रण के लिए तो केवल मात्र आपका गद्य ही सक्षम हो सकता था। और फिर संस्मरणात्मक साहित्य और विशेषकर आपकी अमर कृति रेखाचित्र —'अतीत के चलचित्र' के लिये तो आपका गद्य एक वरदान सिद्ध हुआ है।

आधुनिक युग में आकर हिन्दी साहित्य ने बहुत ही उन्नति की है। कविता, उपन्यास, नाटक, कहानी, आलोचना, निबन्ध, चित्रकला, आदि साहित्य के विविध अङ्गों में कई नये-नये प्रयोग हुये हैं। पिछले कुछ वर्षों से तो गद्य प्रबन्ध में कहानी के ही समरूप दो नवीन साहित्यिक विधियों—रेखाचित्र तथा रिपोर्ताज (जिनमें क्रम से चरित्र तथा वर्णन तत्त्वों का आधिक्य रहता है) का प्रचलन इधर देखने में आया है। हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र लिखने की कला अभी-अभी ही आरम्भ हुई है। पर, फिर भी प्रख्यात चित्र लेखक—श्री रामशर्मा, महादेवी वर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र, पद्मसिंह शर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, आदि के कई सुन्दर रेखाचित्र हमारे देखने में आए हैं। पत्र पत्रिकाओं में भी इनका प्रचलन आजकल बढ़ रहा है!

महादेवी वर्मा के दोनों प्रसिद्ध रेखाचित्रों—'स्मृति की रेखाएं' तथा 'अतीत के चलचित्रों' का हिन्दी के गद्य प्रबंध में अपना एक विशिष्ट स्थान है। आपने रेखाचित्र लेखन में किसी अन्य कलाकार का अनुसरण नहीं किया अपितु आपकी किसी बात को कहने की एक विचित्र शैली है, आपके अपने मौलिक विचार तथा अपनी उत्कृष्ट कल्पनाएँ हैं।

पूर्व इसके कि हम इनके सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्र—'अतीत के चलचित्र' की विशद् विवेचना करें, हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिये कि वास्तव में रेखाचित्र का मूल स्वरूप क्या है। ऊपर केवल संकेत रूप में ही यह कहा गया है कि रेखाचित्र वास्तव में कहानी के ही समरूप एक नवीन साहित्यिक विधि है। पर गोपाल कृष्ण कौल रेखाचित्र को एक स्वतन्त्र कला मानते हैं और जिसके लिखने की प्रेरणा लेखकों को सम्भवतः चित्रकला से प्राप्त हुई। रेखाचित्रकार तथा कैमरा मैन के काम को भी उन्होंने एक सा ही माना है। रेखाचित्रकार कैमरामैन की तरह ही एक पैनी दृष्टि रखता है जो कि वस्तु या व्यक्ति का यथार्थ नक्शा अपनी निजी विशेषताओं से सँवार कर हमारे सामने प्रस्तुत करता है। उनके शब्दों में रेखाचित्र—"टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से बने स्कैच, चित्रकार की जीवन के प्रति होने वाली सजीव अनुभूति की

साकार अभिव्यक्ति करते हैं। रेखाचित्र न कहानी है और न निबन्ध हैं और न संस्मरण। रेखाओं से जीवन के विविध रूपों का आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपना कर ही शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले चित्रों को 'रेखाचित्र' की संज्ञा प्रदान की गई।''

डा० भगीरथ मिश्र ने भी रेखाचित्र की कुछ इसी प्रकार की ही विवेचना की है। उनके अनुसार—''रेखाचित्र अथवा शब्द चित्रों में किसी व्यक्ति की यथार्थ या वास्तविक विशेषताओं के उभारने का प्रयत्न होता है और इसमें प्रायः हम पहचान जाते हैं कि अमुक शब्द चित्र हमारे अनुभव से टकराये हुये अमुक व्यक्ति का सा है, यही इसकी सजीवता तथा विशेषता होती है। शब्द चित्र का प्रेरक कोई वास्तविक व्यक्ति होता है जिसके व्यक्तित्व और चरित्र का विश्लेषण शब्द चित्रकार करता है।''

इस प्रकार साहित्यिक सुविधा के लिये हम यह चाहे मान लें कि रेखाचित्र वास्तव में संस्मरणात्मक गद्य होता है जैसा कि डा० शम्भूनाथ पाँडे ने महादेवी के दोनों रेखाचित्रों को संस्मरणात्मक गद्य के अन्तर्गत माना है. पर फिर भी देखा जाये तो संस्मरण तथा रेखाचित्र में बहुत अन्तर है। यह ठीक है कि दोनों में वास्तविकता तथा व्यक्तित्व वैशिष्ट्य की अभिव्यञ्जना होती है पर रेखाचित्र का दायरा बड़ा सीमित है क्योंकि अधिक विस्तार उसके सौंदर्य को नष्ट कर देता है। इस पर भी बड़ी बात तो यह है कि संस्मरण में प्रसिद्ध व्यक्तियों के शब्द चित्र रहते हैं और रेखाचित्र में केवल मात्र निम्न वर्गीय समाज के साधारण और अप्रसिद्ध व्यक्तियों के लिए ही स्थान होता है।

इस प्रकार रेखाचित्र को किसी के समरूप न मान कर एक स्वतन्त्र कला ही मानना चाहिए।

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है कि महादेवी वर्मा के रेखाचित्र हिन्दी साहित्य में सर्वथा नवीन प्रयोग हैं। परिमार्जित, सरस एवं प्रभावोत्पादक भावों की अभिव्यंजना के सारभूत आपकी दोनों कृतियाँ—'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' किसी भी उन्नत से उन्नत साहित्य के मुकाबले में खड़ी हो सकती हैं।

आपके रेखाचित्र व्यक्तिगत वैशिष्टय की अभिव्यंजना, विभिन्न परिस्थितियों में फंसे हुए व्यक्तियों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा विशेष दर्शन दृष्टि से युक्त बहुधा वास्तविकता को लिए हुए हैं और 'अतीत के चलचित्र' में तो यह भाव विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। गोपालकृष्ण कौल आपके रेखाचित्रों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि—''महादेवी के रेखाचित्र उनके जीवन से सम्बन्धित हैं। जिन पात्रों का चित्रण इनमें हुआ है वे कलाकार की जीवन कथा का हृदय छूने वाले अंग हैं।'' और फिर—''महादेवी के रेखाचित्रों में समाज के प्रति आकर्षण है। गीति काव्य में जो कला व्यक्ति प्रधान थी, रेखाचित्रों में वह समाज प्रधान हो गई है। जन जीवन में प्राप्त दुःख, दैन्य और उत्पीड़न के चित्रों को उन्होंने शब्द की रेखाओं से चित्रित किया है। इन रचनाओं में समाज के प्रति महादेवी जी के एक जागरूक दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं। कवि के रूप में जितनी वे पार्थिव समस्याओं से दूर हैं—इन रचनाओं में वे उतने ही समीप हैं।''

डा० शम्भूनाथ पाण्डेय आपके संस्मरणात्मक गद्य का विवरण देते हुए आपके रेखाचित्रों के विषय में लिखते हैं ''देवी जी को 'स्मृति की रेखाएँ' एवं 'अतीत के चलचित्र' में कुछ ऐसी ही रेखाएँ एवं चित्र हैं, जिन्हें पढ़कर कभी हम हँस लेते हैं, कभी रो लेते हैं और कभी विचार मग्न हो उठते हैं। उनके इन चित्रों में माँ की ममता भी है और बहन का स्नेह भी। इन चित्रों एवं रेखाओं में महादेवी जी ने केवल आकृतियाँ ही अंकित नहीं की हैं, उनके एक-एक सूक्ष्म भाव भी उतार दिए हैं।''

महादेवी ने सचमुच ही अपने इन रेखाचित्रों में भावना तथा कल्पना के रंग भरे हैं। इनमें आपके विराट मातृत्व, सहानुभूति एवं करुणा; स्वसा के स्नेह, सूक्ष्म पर्यावेक्षण शक्ति, मनोद्वन्द्व के यथार्थचित्रण, नारीत्व की विविध अनुभूतियों के सजीव चित्र एवं निर्भीक तथा सशक्त लेखनी के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

'अतीत के चलचित्र' तो मानों आपकी इन विशेषताओं का प्रतीक है। इसमें ऐसे ग्यारह स्मृति चित्रों को अंकित किया

गया है जिनका आपके विगत जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जाने में अथवा अनजाने में अधिकतर महादेवी जी ने अपने इर्दगिर्द ही इन स्मृति चित्रों को घुमाया है। इन चित्रों में आपका जीवन झलकता है और ऐसा हो जाना स्वाभाविक भी था क्योंकि इन कथाओं के प्रायः सब पात्र अधिकतर आपकी अक्षय ममता, सहानुभूति, दया एवं करुणा के भागी तथा आपको जीवन कथा का मर्मस्पर्श करने वाले अंग रहे हैं। पुस्तक की भूमिका में इस बात का स्पष्ट उल्लेख करती हुई आप कहती हैं -"इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अन्धेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं; उसके बाहर तो वे अनन्त अंधकार के अश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, बाहर रूपान्तरित हो जाएगा। फिर जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है. उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहना कर दूरी की सृष्टि क्यों करती! परन्तु मेरा निकटता जनित आत्म विज्ञापन उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है।" आगे चल कर महादेवी जी का यह कथन कि—"जो इसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के हृदय तक नहीं पहुँच सकता" तो विशेष महत्व रखता है। सचमुच ही इन चित्रों के विविध रंगों में वही व्यक्ति स्वयं को डूबा देख सकता है जिसका हृदय संवेदनशील तथा आत्मपरक हो। वरना सस्ता तथा साधारण मनोरंजन करना वर्मा जी का कभी भी अभिप्राय नहीं था।

'अतीत के चलचित्र' का यथार्थ की कसौटी पर नीर क्षीर विवेचन करना तो बहुत कठिन है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि चिन्ता एवं अनुभूति प्रवृत्ति के कारण स्वरूप—विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक तथा तर्क प्रधान—इन चारों मुख्य साहित्य शैलियों का इसमें अपूर्ण मिश्रण हुआ है और साथ ही इसमें कारुणिक भावनाओं के जो सरस चित्र महादेवी ने उपस्थित किए हैं वे अपने में एक विशिष्टता लिए हुए हैं। उन अतीत की सजीव घटनाओं को आपने कल्पना एवं विविध शैलियों के रंगीन वस्त्र पहना कर हमारे समक्ष वर्तमान में ऐसे लाकर खड़ा कर दिया है, मानों वे आपके विगत जीवन की समधुर स्मृतियों के मुँह बोलते चित्र हों।

शचीरानी गुर्टू के शब्दों में—'अतीत के चलचित्र' में महादेवी वर्मा ने "आन्तरिक रागातिरेक को अपने तक ही सीमित नहीं रखा, वरन् व्यक्तित्वों में और जीवन की अनन्त जटिल वास्तविकताओं में लय कर दिया है।" और फिर—"महादेवी ने अतीत की अनगढ़, सामंजस्य-हीन, बिखरी हुईं स्मृतियों को सरस विश्वास के सुकोमल धागे में पिरोया है। उन्होंने जीवन में जो कई मोड़, उथल-पुथल, आवर्त्तन प्रत्यावर्तन और उनसे प्राप्त स्थिर विवेक और स्थिति को परखने वाली आत्म-विश्वासमयी दृष्टि प्रसार की कला सीखी, उससे अपने सपनों के सरल किन्तु मार्मिक चित्र खींचने में उन्हें पर्याप्त सुविधा हो गई।" इसके अतिरिक्त—"इसमें सूक्ष्म अन्तर्भाव ऊपरी सतह पर उठने वाली लहरियों की भाँति नहीं, वरन् अन्तस् के गहन गम्भीर आलोड़न से उत्पन्न तीखे ठोस बिन्दु हैं जो मर्म पर चोट करते हुए अमिट रूप से अंकित हो जाते हैं, मानों भीतर की सारी शक्ति संचित होकर शब्दों में सजीव हो उठती है।

'अतीत के चलचित्रों' में आपकी ममता तथा स्नेह के पात्र हैं—दैनंदिन जीवन में आने वाले, तथा उपेक्षित वर्ग के वे प्रतिनिधि जिनमें हमारे समाज का विकृत तथा जर्जरित रूप दृष्टिगोचर होता है तथा जिन लोगों की हम केवल इसीलिए उपेक्षा कर जाते हैं कि वे दलित तथा पिछड़े हुए हैं। इन्हीं लोगों का जिनका कि आपके विगत तथा वर्तमान से साक्षात् सम्बन्ध रहा है, आपने अन्तरंग अध्ययन कर अपनी विराट सहानुभूति के साथ उनके रेखाचित्र इसमें प्रस्तुत किए हैं। समाज द्वारा सताए गए इन प्राणियों के प्रति आपका विशेष मोह है। इनके दुःख से आपका मन द्रवित हो उठता है। इनके प्रति आपकी सहानुभूति, आपकी करुणावृत्ति, आपका विनोदी व्यक्तित्व, आपका संयत व्यंग आपका वैशिष्टय लिए हुए हैं।

'अतीत के चलचित्र' में पहला चित्र उस ग्रामीण भृत्य कुरूप रामा के जीवन से सम्बद्ध है, जिसके विषय में आपने अपनी भूमिका में भी उल्लेख किया है। रामा बचपन से ही घर से भाग आया था और फिर महादेवी जी के घर पर ही प्रौढ़ावस्था तक उनके परिवार का ही एक अभिन्न अङ्ग बन कर काम करता रहा। उसके चरित्र के गुण-दोषों का बड़ा ही सजीव चित्र आपने उपस्थित किया है।

दूसरे रेखाचित्र में पारिवारिक अत्याचारों से पीड़ित और उपेक्षापूर्ण वातावरण में मूक रहकर घुट-घुटकर अपना जीवन बिताने वाली एक बाल विधवा का चित्रण है जिसकी करुण आँखें ही उसके जीवन की समस्त वेदना को स्वतः व्यक्त कर देती हैं।

तीसरा चित्र विमाता के दुर्व्यवहार तथा अत्याचारों से दुःखी एक निरीह तथा अबोध बालिका बिन्दा का है। जिसकी अवस्था पिंजड़े में बन्द चिड़िया से किसी भी दशा में अच्छी नहीं है।

चौथे चित्र में मेहतरानी सबिया का चित्रण है जो अशिक्षित और पीड़ित होते हुये भी उत्सर्ग तथा बलिदान की महान् भावना से अनुप्राणित है। कर्मठ सबिया उपेक्षित भारतीय नारीत्व के रूप में दलित समाज की नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

पाँचवें में बाल विधवा बिट्टो का मार्मिक चित्रण है जिस बेचारी को पुनः नई गृहस्थी चलाने के लिए ५४ वर्षीय वृद्ध बाबा के पल्ले बाँध दिया जाता है।

छठे में अकाल वैधव्य की प्रतिमूर्ति एक अठारह वर्षीय लड़की का ऐसा कारुणिक चित्र आपने खींचा है जिसे पढ़कर एक सिहरन सी हो उठती है।

सातवें रेखाचित्र में आपके कर्त्तव्यनिष्ठ विद्यार्थी घीसा की हृदयस्पर्शी गाथा है जो अपने गुरु जी से झूठ बोलना भगवान् से झूठ बोलना समझता है।

आठवें में समाज द्वारा पीड़ित पर आत्म-सम्मान के लिए जीने वाली एक ऐसी अभागी स्त्री का विवरण है जो सब मुसीबतों का सामना बड़े धैर्य से करती है।

नवें में सब्जी बेचने वाले उस अन्धे अलोपीदीन की हृदय विदारक कथा है जो सदा कर्त्तव्य-परायण रहा तथा अन्धा होने पर भी अकर्मण्यता जिससे सदा कोसों दूर रही।

दसवें में दीन हीन बदलू कुम्हार तथा कुम्हारी रधिया के चित्रण हैं जो अपने जीवन के प्रत्येक अच्छी बुरी परिस्थिति में सदा सन्तुष्ट हैं।

अन्तिम रेखाचित्र उस पहाड़ी कर्मठ महिला लछमा का है जिसकी स्वाभाविक हँसी में छिपे आँसुओं का तथा उन आँसुओं के नीचे छिपे कारणों का पता लगाने में महादेवी जी को भी सम्भवतः विशेष परिश्रम करना पड़ा है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की सूक्ष्मता के साथ इसमें भावों को जिस क्रम से रखा गया है वह केवल एक विचारवान् तथा सुलझा हुआ कलाकार ही कर सकता है। इसके अतिरिक्त अदम्य प्रेरणा, विराट् कल्पना एवं गम्भीर अनुभूतियों के बल पर निम्नवर्गीय प्राणियों के कारुणिक दृश्यों को प्रस्तुत करने वाली महादेवी वर्मा ने मानवता की लहराती हुई लता के प्रसूनों की कलित कामनाओं के समधुर तत्त्व—प्रेम; सहानुभूति, दया, सौहार्द्र, सौंदर्य एवं युवा भावना की अभिव्यञ्जना, बहुत ही अनूठे, सरल, सरस, तथा स्वाभाविक ढङ्ग से की है।

'अतीत के चलचित्र' में आपका समाज के प्रति एक जागरूक दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है। निरीह, साधनहीन प्राणियों के दुःख को देखकर आपका हृदय द्रवीभूत हो उठा है। शचीरानी गुर्टू भी इसी तथ्य पर जोर देती हुई कहती हैं—"महादेवी का सरल, तरल, सजीव-स्नेह; भूखे, नंगे, निराश्रय बालकों को देखकर उमड़ पड़ा उनका कोमल हृदय अभाव-ग्रस्त भर्त्सनाओं की शिकार पीड़िव, उपेक्षिता पुरुषों द्वारा रौंदी और सामाजिक बन्धनों में जकड़ी नारियों की आशा-निराशा; हास्य-रुदन, और अन्तर्वाह्य ऊहापोहों से द्रवित हो उठा। जहाँ कहीं उन्हें परवश, असहाय विधवाएँ अथवा कुसुम कली-सी अल्प-वयस्का, पतिविहीना किन्तु किसी युवक की विकृत वासनाओं की शिकार, अवैध सन्तति से विभूषित कोई किशोरी बाला दीख पड़ी, वहीं उनके भीतर का तकाजा और भी अधिक दुर्दम्य, कठोर और आत्म-वेदना से आलोड़ित होकर प्रकट हुआ है।"

'अतीत के चलचित्र' में महादेवी जी ने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और परम्परागत संस्कारों पर कहीं-कहीं इतना दारुण आघात किया है कि पाठक तिलमिला उठता है। पाँचवें रेखाचित्र में समाज पर करारी चोट करती हुई आप कहती हैं—"जिस समाज में ६४ वर्ष का व्यक्ति १४

वर्ष की पत्नी चाहता है, वहाँ ३२ वर्ष की बिट्टो के पुनर्विवाह की समस्या सुलझा लेना टेढ़ी खीर थी। उसके भाग्य से ही १५० वर्ष की पूर्ण आयु वाला पुरुष कोई भी न मिला और उसके जन्म-जन्मान्तर के अखण्ड पुण्य फल से हमारे ५४ वर्ष के बाबा ने उसके उद्धार का बीड़ा उठाया।'' —(पृष्ठ ५३)

नारी जीवन के वैषम्य तथा शोषण को तीखेपन से आँकने वाली आपकी जागरूक प्रतिभा के दर्शन आठवें रेखाचित्र में विशेष रूप से होते हैं। जब सद्यः विधवा स्त्री अञ्चल से आँखें पोंछकर और किवाड़ की ओट से अपने ससुर से प्रश्न करती है ''कै बजे चलना है?'' तो मानों ससुर देवता पर गाज गिरी। प्रथम आघात सहकर जब उनमें बोलने की शक्ति लौटी, तब उन्होंने भी क्रूरतम प्रहार किया। कहा—'जो लेकर अपने घर से निकली थी, वही लेकर भलमनसाहत से अपनी माँ के पास लौट जाओ, नहीं तो तुम्हारे साथ हमें बुरी तरह से पेश आना पड़ेगा। हमारे कुल में दाग लगाकर भी क्या तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ।' स्त्री ने क्रोध नहीं किया, मान-अपमान का विचार नहीं किया। जिस घर पर उसका न्यायोचित अधिकार था, उसी में पग भर भूमि की भीख माँगने के लिए अञ्चल फैलाकर दीनता से कहा—'घर में कई नौकर चाकर हैं, मेरे लिए दो मुट्ठी आटा भारी न होगा। मैं भी आप सब की सेवा करती हुई पड़ी रहूँगी।' किन्तु ससुर का उत्तर लज्जा को भी लज्जित कर देने वाला था।'' — पृष्ठ ८०)

हास्य-व्यङ्ग पूर्ण चुभते हुये विशेषणों से युक्त आपकी शब्दावली कभी-कभी आपकी शैली को मुखरित कर देती है। तीसरे रेखाचित्र में देखिए—''और बिन्दा के भी तो माँ थी जिन्हें हम पण्डिताइन, चाची और बिन्दा नई अम्मा कहती थी। वे अपनी गोरी-मोटी देह को रङ्गीन साड़ी से सजे कसे, चारपाई पर बैठकर, फूले गाल और चिपटी सी नाक के दोनों ओर नीले काँच के बटन सी चमकती हुई आँखों से युक्त मोहन को तेल मलती रहती थी। उनकी विशेष कारीगरी से सँवारी पाटियों के बीच में लाल-स्याही की मोटी लकीर सा सिंदूर, उनींदी सी आँखों में काले डोरे के समान लगने वाला काजल, चमकीले कर्णफूल, गले की माला, नगदार रंग बिरंगी चूड़ियाँ और घुंघरूदार बिछुए मुझे बहुत भाते थे, क्योंकि ये सब अलंकार उन्हें मेरी गुड़िया की समानता दे देते थे।'' —पृष्ठ ३४

करुणा के चित्र खींचने में महादेवी जी ने तो अपनी विशेष दक्षता प्रकट की हैं। छठे रेखाचित्र में वैधव्य की प्रतिमूर्ति १८ वर्षीय जिस लड़की का चित्र खींचा है, वह अपने में अद्वितीय है ''स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने कहीं और देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्रों सिकुड़न भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिए के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात् किया उसका ठीक चित्र दे सकना सम्भव नहीं है। वह अठारह वर्ष से अधिक की नहीं जान पड़ती थी—दुर्बल और असहाय जैसी। सूखे ओठ वाले साँवले पर रक्तहीनता से पीले मुख में आँखें ऐसे जल रही थीं जैसे तेलहीन दीपक की बत्ती।'' —पृष्ठ ६०

निर्धनों की दरिद्रता तथा विपन्नता का उल्लेख तो कहीं २ अपनी सीमा को भी लाँघ गया है। एक चित्र देखिये - ''एक ऊँचे टीले पर लछमा का पहाड़ के हृदय पर पड़े छाले जैसा छोटा घास-फूस का घर है। बाप की आँखें खराब हैं, माँ का हाथ टूट गया है और भतीजी-भतीजे की माता परलोकवासिनी और पिता विरक्त हो चुका है। सारांश यह है कि लछमा के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति इतना स्वस्थ नहीं जो इन प्राणियों की जीविका की चिन्ता कर सके। और इस निर्जन में लछमा कौन सा काम करके इतने व्यक्तियों को जीवित रखे, यह समस्या कभी हल नहीं हो पाती। अच्छे दिनों की स्मृति के समान एक भैंस है। लछमा उसके लिए घास और पत्तियाँ लाती है। दूध दुहती, दही जमाती और मट्ठा बिलोती है। गर्मियों में झोंपड़े के आस-पास कुछ आलू भी बो लेती है। पर इससे अन्न का अभाव तो दूर नहीं होता। वस्त्र की समस्या तो नहीं सुलझती।'' —पृष्ठ १०५-१०६

और फिर—''मार्ग में तीन दिन तक कुछ खाने को न मिल सका। लछमा हँसकर कहती है—जब बहुत भूखा हुआ, तब पीली मिट्टी का एक गोला बनाकर मुंह में रखा और आँख मूँदकर सोचा—'लड्डू खाया, लड्डू खाया।' बस फिर बहुत सा पानी पी लिया और सब ठीक हो गया।'' —पृष्ठ १०७

दसवें रेखाचित्र में रधिया के बच्चा होने पर जब आप सकुचाए बदलू से न पूछ कर बातूनी दुखिया से उसकी माँ के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो इसने कहा—"उसके नया भइया हुआ है। माई ने चमारिन काकी को नहीं बुलाने दिया—एक रुपया माँगती थी। दराती से अपने आप नार काट दिया—उसारे के कोने में गड़ा है। भइया टिटहरी की तरह पांव सिकोड़े आँखें मूंदे पड़ा है। बप्पा ने माई को बाजरे की रोटी दी है, इत्यादि महत्वपूर्ण समाचार मुझे कुछ क्षणों में ही मिल गए।" (पृष्ठ ६८)
और फिर जब अपने भावी कुम्भकार को निकट जाकर देखने का आमन्त्रण पाकर आपने भीतर पाँव रखा तो—"कोठरी में व्याप्त धुएं और तम्बाकू की गन्ध हर सांस को एक विचित्र रूप से बोझिल किए दे रही थी। पिंड़ोर से पुती, पर दीमकों से चेचक-रूप-दीवारें, खड़े खड़े भारी छप्पर सम्भालने में असमर्थ होकर मानों अब बैठकर थकावट दूर कर लेना चाहती थी। चूल्हे के निकटवर्ती कोने में नाज रखने की मटमैली और काली मटकियों के साथ चमकते हुए लोटा-थाली आदि, जेल की कठिन प्राचीर के भीतर एक बी० क्लास और ए० क्लास के बन्दी हो रहे थे। घर के बीच में गृह-स्वामी के लिए पड़ी हुई झूले जैसी खटिया की लम्बाई सोने वाले के पैरों को स्थान देना अस्वीकार कर रही थी। दीवार में बने गढ़े जैसे आले में न जाने कब से उपेक्षित पड़ा हुआ धूल धूसरित दिया मानों अपने नाम की लज्जा रखने के लिए ही एक इंच भर बत्ती और दो बून्द तेल बचाए हुए था।" (पृष्ठ ६६)
आपके इन चित्रों में कहीं-कहीं विद्रोही वाणी के भी दर्शन होते हैं जिनमें सामाजिक चेतना निहित रहती है। यथार्थ की ठोस भूमि पर जब आपकी लेखनी चलती है तो उसमें आत्मविश्वास की सजगता तथा अनुभव की गहराई रहती है। उसमें एक टीस, एक उत्पीड़न होता है और साथ में होती है हृदय हिलकोरने वाली प्रेरणाप्रदायिनी शक्ति। देखिए—"इसी सलज्ज और कर्त्तव्यनिष्ठ सबिया को लक्ष्य करके जब एक परिचित वकील पत्नी ने कहा—'आप चोरों की औरतों को क्यों नौकर रख लेती हैं?' तब मेरा शीतल क्रोध उस जल के समान हो उठा, जिसकी तरलता के साथ मिट्टी ही नहीं, पत्थर तक काट देने वाली धार भी रहती है। मुँह से अचानक निकल गया—'यदि दूसरे के धन को किसी न किसी प्रकार अपना बना लेने का नाम चोरी है तो मैं जानना चाहती हूँ कि हम में से कौन सम्पन्न महिला चोर-पत्नी नहीं कही जा सकती?' प्रश्न करने वाली के मुख पर कालिमा सी फैलती देख मुझे कम क्षोभ नहीं हुआ, पर तीर छूटा ही नहीं, लक्ष्य पर चुभ भी चुका था!" (पृष्ठ ४७ ४८)
आज के मनचले नवयुवकों पर भी आपने कहीं-कहीं करारी चोट की है। ऐसे अकर्मण्य नवयुवकों की अपेक्षा आपने अपनी बूढ़ी और बेबस माँ का बोझ हल्का करने वाले अन्धे अलोपीदीन को विशेष सराहा है। नवें रेखाचित्र में देखिए—"ऐसे आश्चर्य से मेरा कभी साक्षात्कार नहीं हुआ था। जीवन से अनजान किशोरों की संख्या कम नहीं, जो सुख के साधनों के लिए उस माँ से झगड़ते हैं, जिसकी उंगुलियों के पोर सिलाई करते-करते चलनी हो चुके हैं। कुलबधुओं के समान आँसू पीने वाले युवकों का अभाव नहीं जिनका पौरुष दरिद्र पिता का सब कुछ छीन लेने में न कुण्ठित होता है, और न भिक्षावृत्ति से मूर्च्छित। अपनी पराजय को विजय मानने वाले ऐसे पुरुषों से भी समाज शून्य नहीं, जो छोटे बच्चों को छोड़कर दिन-दिन भर परिश्रम करने वाली पत्नियों के उपार्जित पैसों से सिनेमा घरों की शोभा बढ़ा आते हैं।" (पृष्ठ ८५)
आपने घृणा से अधिक ममता तथा सहानुभूति में विश्वास किया है। यद्यपि कहीं-कहीं आप विद्रोहिणी भी बन गई हैं पर अधिकतर इसमें आपके माता के विराट् मातृत्व रूप के ही दर्शन होते हैं। छठे रेखाचित्र में देखिए—'पर जब तक वह कोई अपराध न करे तब तक मैं अपने ऊपर उसका वही अधिकार बना रहने दूँ जिसे वह मेरी लड़की के रूप में पा सकती थी। उसके माँ नहीं है इसी से उसकी इतनी दुर्दशा सम्भव हो सकी—अब यदि मैं उसे माँ की ममता भरी छाया दे सकूँ तो वह अपने बालक के साथ कहीं भी सुरक्षित रह सकेगी।" और फिर—"२७ वर्ष की अवस्था में मुझे १८ वर्षीय लड़की और २२ दिन के नाती का भार स्वीकार करना पड़ा।" (पृष्ठ ६१—६२)
महादेवी जी नारी के प्रति अत्याचार को सहन नहीं कर सकती। इसी रेखाचित्र में व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान की माँ की समाज जब अवहेलना कर जाता है तो आपकी

आत्मा को बहुत ठेस पहुँचती है । और युग-विद्रोहिणी की भांति आप बोल उठती हैं—"अपने अकाल वैधव्य के लिए वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती, उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता, पर उसकी आत्मा का जो अंश हृदय का जो खण्ड उसके सामने है, उसके जीवन-मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है । कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता, तो केवल इसी मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस-अत्य को, अपने बालक को अस्वीकार कर देगी ? संसार में चाहे इसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी ? इसी कर्त्तव्य को अस्वीकार करने का यह प्रबन्ध कर रही है । किस लिए ? केवल इसलिए कि या तो उस वञ्चक समाज में फिर लौटकर गंगा-स्नान कर, व्रत-उपवास, पूजापाठ आदि के द्वारा सती विधवा का स्वांग भरती हुई और भूलों की सुविधा पा सके या किसी विधवा आश्रम में पशु के समान नीलाम पर चढ़कर कभी नीची, कभी ऊँची बोली पर बिके, अन्यथा एक एक बूँद विष पीकर धीरे-धीरे प्राण दे ।" और फिर—"यदि ये स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि 'बर्बरो, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया; पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी,' तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें" पृष्ठ ६०–६१।

इस प्रकार महादेवी जी के चित्रों में कहीं-कहीं इनकी विद्रोही वाणी चाहे देखने में आई हो पर इस विद्रोह के पीछे प्रतिशोध अथवा प्रतिकार की भावना आपके मन में कभी नहीं उपजी । आपके विद्रोह में भी करुणा है, सहानुभूति है, सामाजिक चेतना तथा क्रियात्मक विचारधारा है। आप ऐसे पुरुष समाज की कटु आलोचना चाहे करती हों पर आपके मन में उसके प्रति कोई बुरे भाव नहीं । सच्ची बात कहने में आप कभी नहीं हिचकिचातीं । आपके प्रत्येक विचार भारतीय हैं और प्राचीनता की उस पर गहरी छाप है लोक हृदय के निर्माण तथा न्याय के प्रति जागरूकता के साथ ही साथ मानव हृदय के परिष्कार, धारणा परिवर्तन, मानव जीवन से नैराश्य को नष्ट करने में कहीं-कहीं आप की लेखनी बहुत सशक्त रही है ।

महादेवी मूलतः कवि हैं, इसलिए इन रेखाचित्रों में भी कई वर्णन आपकी उत्कृष्ट कल्पनाओं के रंगों से रंजित बन पाए हैं । पहाड़ी युवती लछमा का वर्णन करती हुई आप कहती हैं—'धूप से झुलसा हुआ मुख ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने कच्चे सेव को आग की आँच पर पका लिया हो । सूखी-सूखी पलकों में तरल-तरल आँखें ऐसी लगती हैं, मानों नीचे आँसुओं के अथाह जल में तैर रही हैं और ऊपर हँसी की धूप से सूख गई हैं ।" (पृष्ठ १०५)

आपकी भाषा, भाव एवं शैली में कहीं भी शिथिलता नहीं आई । गूढ़ भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में आपके लम्बे-लम्बे वाक्य भी पूर्ण समर्थ सिद्ध हुए हैं । आपने केवल शब्द रेखाओं में आकृति और मुद्रा को ही अंकित नहीं किया वरन् मन के सूक्ष्म भावों को भी उभारा है । दूसरे रेखाचित्र में देखिए—"घर के सब उजले-मैले सहज-कठिन कामों के कारण, मलिन रेखा जाल से गुँथी और अपनी शेष लाली को कहीं छिपा लेने का प्रयत्न-सी करती हुई कहीं कोमल, कहीं कठोर हथेलियाँ, काली रेखाओं में जड़े कान्तिहीन नखों से कुछ भारी जान पड़ने वाली पतली उंगुलियाँ, हाथों का बोझ सँभालने में भी असमर्थ सी दुर्बल, रूखी पर गौर बाहें और मारवाड़ी लहँगे के भारी घेर से थकित से एक सहज सुकुमारता का आभास देते हुए, कुछ लम्बी उँगुलियों वाले दो छोटे-छोटे पैर, जिनकी एड़ियों में आँगन की मिट्टी की रेखा मटमैले महावर सी लगती थी, भुलाए भी कैसे जा सकते हैं । उन हाथों ने बचपन में न जाने कितनी बार मेरे उलझे हुए बाल सुलझा कर बड़ी कोमलता से बाँध दिये थे। वे पैर न जाने कितनी बार, अपनी सीखी हुई गंभीरता भूल कर मेरे लिए द्वार खोलने, आँगन में एक ओर से दूसरी ओर दौड़े थे । किस तरह मेरी अबोध अष्टवर्षीय बुद्धि ने उससे भावी का सम्बन्ध जोड़ लिया था ।'

—(पृष्ठ २४)

महादेवी वर्मा एक कुशल चित्रकर्त्री हैं। इसीलिए तो कहीं-कहीं आपने अपने पात्रों का ऐसा सूक्ष्म और यथार्थ वर्णन किया है कि सहज ही वे हमारी आँखों के समक्ष साकार हो उठते हैं । घीसा का चित्रण देखिए - "दूसरे इतवार को मैंने उसे सबसे पीछे अकेले एक ओर दुबक कर बैठे हुए देखा । पक्का रंग, पर गठन में विशेष सुडौल, मलिन मुख, जिसमें दो पीली पर सचेत आँखें जड़ी सी जान

पड़ती थीं—कस कर बंद किए हुए पतले होंठों की दृढ़ता और सिर पर खड़े हुए छोटे-छोटे रूखे बालों की उग्रता उसके मुख की संकोचभरी कोमलता से विद्रोह कर रही थी। उभरी हड्डियों वाली गर्दन को संभाले हुए झुके कन्धों से रक्त हीन मटमैली हथेलियों और टेढे-मेढे कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बाहें ऐसी झूलती थीं, जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ। निरन्तर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर में दुबले पैर ही विशेष पुष्ट जान पड़ते थे। बस, ऐसा ही था वह, न नाम में कवित्व की गुञ्जाइश, न शरीर में।''

—पृष्ठ ६६

और फिर सातवें रेखाचित्र में तो ग्रामीण बधुओं की वेश भूषा और अलंकरण इत्यादि का जैसा चित्रण आपने किया है, वह अपनी यथार्थता के कारण मानों सम्पूर्ण रीति साहित्य के काल्पनिक नखशिख वर्णन का उपहास सा करता है। देखिए—"दूर पास बसे हुए, गुड़ियों के बड़े-बड़े घरौंदों के समान लगने वाले. कुछ लिपे पुते, कुछ जीर्ण शीर्ण घरों से स्त्रियों का झुण्ड पीतल तांबे के, चमचमाते मिट्टी के नए, लाल और पुराने बदरंग घड़े लेकर गंगा जल भरने आता है, उसे भी मैं पहचान गई हूँ। इनमें कोई बूटेदार लाल, कोई निरी काली, कोई कुछ सफेद और कोई मैल और सूत में अद्वैत स्थापित करने वाली, कोई कुछ नई और कोई छेदों से चलनी बनी हुई धोती पहने रहती है। किसी की मोम लगी पाटियों के बीच में एक अँगुल चौड़ी सिंदूर रेखा अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में चमकती रहती है और किसी की कड़वे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा बनी हुई छोटी-छोटी लटें मुख को घेर कर उसकी उदासी को और अधिक केन्द्रित कर देती है। किसी की साँवली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह-रह कर हीरे से चमक जाते हैं और किसी के दुर्बल काले पहुंचे पर लाख की पीली मैली चूड़ियाँ काले पत्थर पर चन्दन की मोटी लकीरें जान पड़ती हैं। कोई अपने गिलट के कड़े युक्त हाथ घड़े की ओट में छिपाने का प्रयत्न सा करती रहती है और कोई चाँदी के पछेली ककना की झंकार के साथ ही बात करती हैं, किसी के कान में लाख की पैसे:वाली तरकी धोती से कभी-कभी झांक भर लेती है और किसी की दारें लम्बी जंजीर से गला और गाल एक करती रहती है, किसी के गुदना गुदे गेहुंए पैरों में चांदी के कड़े सुडौलता की परिधि सी लगते हैं और किसी की फैली उंगुलियों और सफेद एड़ियों के साथ मिली हुई स्याही रांगे और कांसे के कड़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियाँ बना देती हैं।''

—पृष्ठ ६३-६४

चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी 'अतीत के चलचित्र' विशेष-यथार्थ गाम्भीर्य को लिए हुए हैं। इसमें आपने अपने पात्रों का चरित्र चित्रण, पाठकों की संवेदना तथा कारुणिक भावनाओं को जागृत करने के लिए केवल मात्र उनके जीवन की मार्मिक घटनाओं का कल्पना रंजित उल्लेख नहीं किया अपितु यह सब कुछ यथार्थ की पृष्ठभूमि पर ही हुआ है। उनके चारित्रिक उभार के लिए जिन-जिन घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक था, केवल उन्हीं की ओर आपका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। विभिन्न परिस्थितियों में ग्रस्त होने पर उनकी क्या मनोदशा होती है, वे किस प्रकार व्यवहार करते हैं, इसका आपने विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक स्तर पर विश्लेषण किया है। इसके साथ ही पाठकों के मन में चेतना, जागरूकता, उदारता, संवेदना, करुणा, प्रेम एवं हास्य आदि भावों के उभारने में आपका व्यक्तित्व चाहे तटस्थ रहा हो पर आपकी सशक्त लेखनी, शैली तथा सूक्ष्म दृष्टि ने तो सर्वत्र अपना कमाल दिखाया है।

अशिक्षित ग्रामीण रामा का चित्रण ऐसा बन पड़ा है कि उसका व्यक्तित्त्व हमारे लिए अनुकरणीय हो गया है। उसकी स्पष्टवादिता, उसकी ईमानदारी, उसके हृदय की सच्चाई किसी भी दिशा में कम नहीं। दूसरों के प्रति उसके उत्सर्ग की भावना विशेश सराहनीय है। रामा के अच्छे हो जाने पर जब आपकी माँ जो प्रायः उससे कहने लगी—'रामा।' अब तुम घर बसा लो जिससे बाल बच्चों का सुख देख सको' तो रामा का सदा एक ही उत्तर हुआ करता था—'बाई की बातें ! माये नासमिटे अपनन खौं का करने हैं, मोर राजा' हरे बने रहें—जेई अपने रामा की नैय्या पार लगा देहैं।' रामा सचमुच ही अपने में एक अद्वितीय चरित्र है।

किसी के दुःख से दुखित एवं द्रवित होकर आपके हृदय में एक टीस उठती है और उससे विकल होकर आपकी लेखनी किसी एक विशिष्ट कारुणिक विचारावाली को लेकर मुखरित होने लगती है। इसीलिए तो विमाता के अत्याचारों से

सताई बिन्दो का चरित्र चित्रण आपकी कारुणिक लेखनी का सहारा पा सजीव हो उठा है। विमाता के इस निरीह बालिका के प्रति दुर्व्यवहार का प्रदर्शन करती हुई तीसरे रेखाचित्र में आप कहती हैं—''यह तो सब ठीक था; पर उनका व्यवहार विचित्र सा जान पड़ता था। सर्दी के दिनों में जब हमें धूप निकलने पर जगाया जाता था, गर्म पानी से हाथ मुँह धुला कर मौजे जूते और ऊनी कपड़ों से सजाया जाता था और मना मना कर गुनगुना दूध पिलाया जाता था, तब पड़ोस के घर में पण्डिताइन चाची का स्वर उच्च से उच्चतर होता रहता था। यदि उस गर्जन तर्जन का कोई अर्थ समझ में न आता, तो मैं उसे श्यामा के रँभाने के समान स्नेह का प्रदर्शन ही समझ सकती थीं, परन्तु उसकी शब्दावली परिचित होने के कारण ही कुछ उलझन पैदा करने वाली थी। 'उठती है या आऊँ, 'बैल के से दीदे क्या निकाल रही है', 'मोहन का दूध कब गर्म होगा', 'अभागी मरती भी नहीं' आदि वाक्यों में जो कठोरता की धारा बहती रहती थी उसे मेरा अबोध मन भी जान लेता था।'' — पृष्ठ ३३-३४

इसके अतिरिक्त सबिया, लछमा, रधिया, आदि के चरित्र चित्रण भी अपने पूरे निखार में दिखाई देते हैं। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति से संघर्ष करने को कटिबद्ध तथा कर्त्तव्य-परायण इन भारतीय नारियों की त्याग-भावना, सेवा-वृत्ति तथा सहनशीलता अपनी चरम सीमा को छूने वाली है।

'अतीत के चलचित्र' में एक और बात विशेष रूप से देखने में आई है कि इसमें आप अपने पात्रों की अपेक्षा स्वयं ही अधिक बोली हैं। यदि आपने कहीं अपने पात्रों के मुख से कुछ कहलवाया भी है तो उनमें भी आपके व्यक्तित्व की ही स्पष्ट छाप लगी दिखाई देती है। इसमें संवाद इसीलिए बहुत कम हैं। जहाँ कहीं आपने संवाद रखे भी हैं वे किसी विशेष प्रयोजन वश ही रखे हैं और वे पात्रों के चरित्र विश्लेषण करने में विशेष सहायक बने हैं। गोपाल कृष्ण कौल की यह उक्ति—''लेखिका स्वयं उनके विषय में अधिक बोलती हैं किन्तु उसके बोलने में ही चरित्र बोल उठता है। वह चरित्र को अपनी ममता और करुणा सहानुभूति की गोद में बैठाकर उनकी रेखाएँ खींचती है।'' नितान्त सत्य है।

आपने अपने अनुभव के आधार रर अपने पात्रों के व्यक्तित्व की रूपरेखा, उनके चरित्र की विशेषताओं की अभिव्यक्ति, मानसिक स्थिति के मापदण्ड तथा उनको विभिन्न मुद्राओं तथा चेष्टाओं से होने वाला जो यथार्थ चित्रण किया है, वह अपने में अनुपमेयता लिए हुए हैं।

इस प्रकार गम्भीर भावों तथा यथार्थ चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'अतीत के चलचित्र' आपकी बहुत ही महत्वपूर्ण कृति है। आपकी इस अमर रचना का योगदान प्राप्त कर हिन्दी का रेखाचित्र-साहित्य आज किसी भी भाषा से पिछड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता। इसमें आपकी स्पष्टवादिता तथा मुखर स्वभाव सभी दिशाओं में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुआ है। आपने किसी भी बात को छिपाने का संकोच नहीं किया। कला, कल्पना तथा शैली में बेजोड़ आपकी यह रचना पूनम के चाँद की भाँति मनोहारी तथा मन और मस्तिष्क पर छा जाने वाली है।

'यामा' में जहाँ महादेवी के तुतले उपक्रम से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के जीवन का अडिग विश्वास व्यक्त हुआ है और 'दीपशिखा' की लौ में रात्रि की गहन सघनता को सह सकने की जिस निस्संदिग्ध क्षमता की व्यंजना हुई है, उसी के सदृश महादेवी के 'अतीत के चलचित्र' में भी रामू की कुरूपता, बिन्दा की निरीहता, उपेक्षिता सबिया की कर्मठता और उत्सर्ग-भावना, बिट्टो की विवशता, घीसा की कर्त्तव्य परायणता, अंधे अलोपीदीन की कर्मण्यता, बदलू कुम्हार तथा कुम्हारिन रधिया का दैन्य तथा पहाड़ी महिला लछमा का आत्म-सन्तोष अपनी सबलता में संप्रेषणीय और पाठकों के सहज साधारणीकरण के लिए समर्थ है—इसमें संदेह नहीं, और इसीलिए महादेवी ने अपनी स्मृति की सुरक्षित सीमा से इन्हें बाहर लाकर न्याय ही किया है! निश्चय ही अन्याय नहीं !!

शृङ्खला की कड़ियाँ

कृष्णा मजीठिया एम० ए०

भले ही महादेवी जी एक कवयित्री के रूप में अधिक प्रख्यात हों किन्तु उनके गद्य के पूर्ण अध्ययन के अभाव में उनकी प्रगतिशील सामाजिक चेतना को पूर्ण रूप से समझा नहीं जा सकता। उनकी सर्जक शक्ति का परिचय देने के लिए उनका गद्य उनके पद्य से किसी भी प्रकार कम नहीं, महत्त्वहीन नहीं। महादेवी जी का जो स्वरूप उनकी कविता में स्पष्ट नहीं हुआ है वह उनके गद्य में मूर्तरूप धारण कर मुखर हो उठा है उनका गद्य एवं पद्य एक दूसरे का पूरक है। महादेवी जी का पद्य जहाँ पर व्यष्टिमूलक तथा आत्मकेन्द्रित है वहाँ उनका गद्य समष्टिमूलक तथा समाज-केन्द्रित है। उनके गद्यकार में भी उनकी काव्यात्मक प्रतिभा ही सजग है। अपने विचारों को प्रकट करने के लिए महादेवी ने गद्य का ही सहारा लिया है। इस बात को उन्होंने शृंखला की कड़ियाँ की भूमिका में स्वीकार भी किया है।

महादेवी जी का गद्य साहित्य विवेचनात्मक, संस्मरणात्मक, यात्राविषयक तथा नारी समस्या विषयक है। महादेवी जी के गद्य तथा पद्य में काफी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। इनके काव्य में निजी वेदना ही प्रगट हुई है। मूर्धन्य आलोचकों ने उसे दुःखवाद, नैराश्यवाद, रुदनवाद तथा रहस्यवाद आदि संज्ञाओं से अभिहित किया है। और शायद इसी कारण उनकी कविता कई स्थानों पर अस्पष्ट तथा पलायनवादी भी है। इसके विपरीत उनका गद्य प्रवृत्ति-मूलक तथा स्पष्ट है। उसमें लेखिका की निजी वेदना नहीं बल्कि समाज के पीड़ित, उपेक्षित, प्रताड़ित एवं दलित सामाजिक प्राणियों को साकारता देने का प्रयास किया है, उनके दुखों को भाषा दी है। समाज के चित्र देते समय उनमें एक विद्रोही की आत्मा बोल रही है। गद्य में लेखिका का संवेदनशील अन्यायविरोधी, सामाजिक कुसंस्कारों का उच्छेदक, कर्मनिष्ठ संघर्षशील व्यक्तित्व उभर आया है।

महादेवी जी ने जिस प्रकार का गद्य सृजन किया है वैसे ही उसके भाव तथा भाषाशैली है। जीवन की कठोर वास्तविकताओं का चित्रण भी उन्होंने कल्पनाशील, आलोचनात्मक होते हुये भी अपनी भावात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। यह भावात्मकता केवल शैलीमात्र तक ही सीमित है। उनके विषय तो ठोस यथार्थवादी हैं। चाँद की सम्पादिका के रूप में उन्होंने जो संपादकीय लेख लिखे थे वे ही "शृंखला की कड़ियां" में सुरक्षित हैं। समस्त लेख भारतीय नारी की समस्याओं पर ही लिखे गए हैं। उन्होंने, अपमानित, प्रताड़ित, अधिकारहीन तथा व्यक्तित्वहीन नारी के कष्टों को भाषा देकर कई स्थलों पर नई जमीन तोड़ी है। इस भारतीय नारी को माँ, बहिन, पुत्री या पत्नी किसी भी रूप में पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त नहीं है। लेख तर्कमय तथा आलोचनात्मक हैं। नारी पर होने वाले अत्याचार, उसके दुःख, उसके बन्धन—ये ही शृङ्खलाएँ हैं और उन्हीं दुःखों और अत्याचारों की परम्परा - कड़ियाँ हैं, तो ये हुई "शृङ्खला की कड़ियां।" लेखिका का इन लेखों के माध्यम से यही उद्देश्य है कि भारतीय नारी को उसके कर्त्तव्य का ज्ञान कराया जाए ताकि उसकी ये "लौह शृङ्खलाएँ उसकी गरिमा से गलकर मोम बन जाएँ।"

शृङ्खला की कड़ियाँ में लेखिका ने नारी को हमारी शृङ्खला की कड़ियाँ, युद्ध और नारी, नारीत्व और अभिशाप, आधु-

निक नारी, घर और बाहर, हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व, जीवन का व्यवसाय, स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न, हमारी समस्याएँ, समाज और व्यक्ति तथा जीने की कला शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

महादेवी जी का साहित्याधार ही वेदना है । भले ही वह वेदना व्यष्टिगत रूप में आत्मकेन्द्रित होकर प्रकट हुई हो या समाज की करुणा लेकर उनके गद्य में प्रस्फुटित हुई हो । दुःख में ही मनुष्य को संसार का वास्तविक ज्ञान होता है । सुख में तो मनुष्य भूला हुआ रहता है । दुःखी मनुष्य की केवल एक ही जाति है, एक ही श्रेणी है और एक ही स्तर होता है । इसी वेदना के चश्मे से महादेवी ने संसार को देखा है । इसलिए समस्या के प्रति उनका एप्रोच सीधा है । पीड़ित नारी को जितने करीब से महादेवी ने देखकर उसकी करुणा को व्यक्त किया है उतना विरले लेखक ही कर पाए हैं । शृङ्खला की कड़ियाँ भी लेखिका ने उस नारी को समर्पित की है जो "जन्म से अभिशप्त, जीवन से संतप्त किन्तु अत्यन्त वात्सल्य मयी वरदानमयी है ।"

सदियों की दासता एवं जड़ताबद्ध हो कुसंस्कार आज की प्रगति में बाधक है उनमें स्त्रियों की हीनावस्था का भी बहुत बड़ा भाग है । स्त्री की स्थिति जहाँ आज इतनी पिछड़ी हुई है वहाँ दूसरी ओर उसका एक विलासमय रूप भी है । उसके इन दोनों रूपों में संतुलन की आवश्यकता है । यही सन्तुलन उसे स्वाभाविक बनाएगा जिससे न तो वह दबी ही रहेगी और न पुरुषों की होड़ में अपने नैसर्गिक नारीत्त्व को ही खोएगी । वास्तविकता तो यह है कि भारतीय नारी—सा पददलित प्राणी संसार में न होगा । उसका क्षेत्र घर की चहारदीवारी तक ही सीमित है । वह अशिक्षित अधिकारों से वंचित एक निसहाय प्राणी है । विधवा की स्थिति तो और भी निकृष्ट है । बाल-विवाहों का परिणाम बाल-विधवाओं को भोगना पड़ता है । जीवन के वसन्त से पहले ही विधवा होकर यह घोर नैराश्यमय जीवन व्यतीत करने पर बाध्य की जाती है । यह वैधव्य उसका आभूषण माना जाता है । उसमें लोग त्याग और तपस्या ढूँढ़ते हैं । एक पुरुष जीवन में चार-चार विवाह कर सकता है किन्तु विधवा के लिए यह न तो सम्भव ही है और न आसान । जड़ रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों और पुरुष प्रधान समाज द्वारा बनाए गए नियमों से वह त्रस्त है ।

देखिए समाज में विधवा की स्थिति—

> "यदि दुर्भाग्य से स्त्री के मस्तक का सिंदूर धुल गया तब तो उसके लिए संसार नष्ट ही हो गया । यह ऐसा अपराध है जिसके कारण उसे मृत्युदण्ड से भी भीषणतर दण्ड भोगते हुये तिल-तिल धुलकर जीवन के शेष, युग बन जाने वाले क्षण व्यतीत करने होते हैं । ऐसी परिस्थिति में दीर्घकाल तक गुड़िया बनी रहने वाली स्त्री मातृत्व के उत्तरदायित्व से मुक्त होती है तो उसे अपने अभिशापमय जीवन के साथ अनेक दुधमुँहे बालकों को लेकर ऐसे अन्धकार में मार्ग ढूढ़ना पड़ता है, जिसमें प्रत्येक यात्री दूसरे को भ्रान्ति में डाल देना अपराध ही नहीं समझता । यदि वह अबोध बालिका है तो भी समाज और परिवार, सनातन नियम के पालन में अपने आपको राजा हरिश्चन्द्र से अधिक दृढ़ प्रतिज्ञ प्रमाणित करने में पीछे न रहेंगे । ...... उनकी आज्ञा है, उनके शास्त्रों की आज्ञा है और कदाचित् उनके निर्मम ईश्वर की भी आज्ञा है । कि वे जमीन की प्रथम अँगड़ाई को अन्तिम प्राणायाम में परिवर्तित कर दे, आशा की पहली सुनहली किरण को विषाद के निविड़ अन्धकार में समाहित कर दे और सुख के मधुर पलकों को आँसुओं में बहा डालें ।"
>
> (शृं क० पृ० ३८ षष्ट संस्करण)

महादेवी ने अपनी लेखनी केवल नारी के दुखों से ही नहीं शुरू की । उन्होंने बताया है कि प्राचीन काल में नारी की क्या स्थिति थी गोपा और मैत्रेयी के उदाहरणों से...... यह प्रमाणित किया है कि प्राचीन भारत में नारी का एक समादृत रूप भी था । धीरे-धीरे स्थिति बदली और एक के बाद एक वह अपने अधिकारों से वञ्चित कर दी गई । सम्पत्ति पर भी उसका स्वामित्व नहीं रहा । देखिए लेखिका के शब्दों में उसकी दशा"—

> "सम्पत्ति के स्वामित्व से वञ्चित असंख्य स्त्रियों के सुनहले भविष्यमय जीवन, कीटाणुओं से भी तुच्छ माने जाते देख कौन सुहृदय न रो देगा । चरम दुरावस्था के

सजीव निदर्शन हमारे यहाँ के सम्पन्न पुरुषों की विधवाओं और पैतृक धन के रहते हुए दरिद्र पुत्रियों का जीवन है। (श्रृ० क० पृष्ठ १९ षष्ठ स०)

वेश्याओं को हेय समझने वाला समाज एक भारी संख्या में है। इन लोगों के पास समस्या का बस एक ही हल है और वह है इस संस्था का उन्मूलन और अब तो उसका उन्मूलन हो भी गया है। परन्तु वेश्याओं का अस्तित्व तो परिणाम मात्र है। समाज की किसी दानवी माँग की तो वे पूर्तिमात्र हैं। जब तक यह माँग बनी रहेगी तब तक तो वेश्यायें रहेंगी ही। वेश्याओं की अपेक्षा आवश्यकता उस माँग को समाप्त करने की है। वेश्यावृत्ति तो गैरकानूनी करार दे दी गई है। किन्तु उस माँग ने विकृत रूप धारण कर अपने अस्तित्व के लिए नए मार्ग खोज लिए है। पहले तो कुकर्म करने वाले को देखा जा सकता था किन्तु अब तो वह छिपे-छिपे अधिक बीभत्स रूप में होने लगा है। वेश्याओं के यहाँ जाने वाले तो पुनः समाज में लौटकर सभ्य, सम्पन्न और अधिकारयुक्त आदरणीय नागरिक कहलाते हैं। हिम्मत तो है इन वेश्याओं की जो खुले आम अपने अस्तित्व को स्वीकार करती हैं और जैसे ललकार कर कहती हों कि समाज के ठेकेदारों ! हमारा अस्तित्व ही तुम्हारी सबसे बड़ी अनैतिकता का प्रमाण है। जब तक हम हैं तब तक तुम क्या खाकर नैतिकता का दावा करते हो ? लेखिका ने वेश्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार प्रगट किए हैं, देखिए—

"इन स्त्रियों ने जिन्हें गर्वित समाज पतित के नाम से सम्बोधित करता आ रहा है, इस पर कभी किसी ने विचार भी नहीं किया। पुरुष की वासना की वेदी पर कैसा घोरतम बलिदान दिया है।

"इस पर कभी किसी ने विचार भी नहीं किया। पुरुष की बर्बरता, रक्त लोलुपता पर बलि होने वाले युद्ध-वीरों के चाहे स्मारक बनाए जाएँ, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रज्वलित चिता पर क्षण भर में जल मिटने वाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल-तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने दो बूँद आँसू पाने का भी अधिकारी नहीं समझा। न समझना ही स्वाभाविक था क्योंकि इन्हें सहानुभूति का पात्र समझना ही स्वाभाविक दयनीय स्थिति तथा इनके कठिन बलिदान का मूल्य आंकना पुरुष को उसकी दुर्बलता का स्मरण करा देता है। चाहे किसी स्वर्णयुग में बुद्ध से अम्बपाली को करुणा की भीख मिल गई हो, चाहे कभी ईसा से किसी पतिता ने अक्षय सहानुभूति माँग ली हो, परन्तु साधारणतः समाज में ऐसी स्त्रियों को असीम घृणा और घोर तिरस्कार ही प्राप्त हुआ है।" (श्रृ० क० पृ० ९२, षष्ठ स०)

आगे देखिए—

'आत्म समर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंटकर रूप का क्रय विक्रय करना पड़ता है। और परिणाम में उसके हाथ आया निराश एकाकी अंत···जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारी से मुग्ध करता रहता है। झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्मत्त करता रहता है। उसके सौन्दर्य के दीप पर शलभ मंडराता है। परन्तु उस मादकता के अन्त में, उस बाढ़ के उतर जाने पर, उसकी ओर कोई सहानुभूति भरे नेत्र भी नहीं उठाता।···और जिस समाज ने उसे इस प्रकार हाट लगाने के लिए विवश तथा उत्साहित किया, वे क्या कभी उसके एकाकी अंत का भार कम करने लौट सके ?" (श्रृ० क० पृ० ९०–९१, षष्ठ स०)

महादेवी जी की कलम से जो इतना क्षोभ, इतनी तेजी, तीखापन, तीव्र प्रहार आदि प्रकट हुए हैं उन्हें वे अपने, अनुभवों द्वारा व्यक्त किया है। नारी की समस्याओं के प्रति न तो उनकी बौद्धिक सहानुभूति ही है और न उन्हें तटस्थ भाव से देखा है, इन समस्याओं के प्रति लेखिका की हार्दिक सहानुभूति है। समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक या नारीशास्त्र के विद्वानों की तरह इन्होंने नारी सबंधी समस्याओं का केवल किताबी और ऊपरी ज्ञान नहीं बटोरा है। न केवल उसका उन्होंने डेटा या उसका सांख्यिकी ग्राफ ही उपस्थित किया है। नारी की घोर परवशता के चित्र खींचकर उन्होंने वास्तविकता को यथातथ्य रूप में

प्रकट किया है। जो लेखिका के इन चित्रों को या कथन को अतिशयोक्ति पूर्ण मानते हैं वे समाज की ओर देखें पर देखने के लिए है कलेजे की जरूरत। मध्यवर्गीय हिन्दू नारी को कहीं भी भी त्राण नहीं, यथा—

"हिन्दू नारी का घर और समाज इन्हीं दो से संपर्क रहता है। पर इन्हीं दोनों स्थानों में उसकी स्थिति कितनी करुण है, इसके विचारमात्र से ही किसी भी सहृदय का हृदय काँपे बिना नहीं रह सकता।... अपने पितृगृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसा किसी दूकान में उस वस्तु को रखने से प्राप्र होता है जिसके रखने और बेचने दोनों ही से दूकानदार को हानि की संभावना होती है।... उसी (पितृगृह) गृह में वह भिक्षुक के अतिरिक्त कुछ नही। दुख के समय अपने आहत हृदय और शिथिल शरीर को लेकर वह विश्राम नहीं पाती। भूल के समय वह लज्जित मुख उसके स्नेहांचल में नहीं छिपा सकती। और आपत्ति के समय एक मुट्ठी अन्न की भी उस घर से आशा नहीं रख सकती। ऐसी है उसकी वह अभागी जन्मभूमि जो जीवित रहने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती। पतिगृह जहाँ उस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है....यहाँ उसकी स्थिति आशंका रहित नहीं। यदि वह विद्वान पति के...अनुकूल विदुषी नहीं तो उसका स्थान दूसरी को दिया जा सकता है। यदि वह सौंदर्योपासक पति की कल्पना के अनुरूप अप्सरा नहीं है तो उसे अपना स्थान रिक्त कर देने का आदेश दिया जा सकता है। यदि वह पति की कामना का विचार करके संतान या पुत्रों की सेना नहीं दे सकती, यदि वह रुग्ण है या दोषों का अभाव होने पर "वह पति की अप्रसन्नना की दोषी है तो भी उसे घर में दासत्व मात्र स्वीकार करना पड़ेगा।" (का० क० पृ० ३९–४०, षष्ठ स०)

विधवाओं, वेश्याओं या अन्य स्त्रियों से जन्मी जारज संतान के विषय में भी लेखिका की संवेदना प्रवाहित हुई है। वह बालक जो संसार में आया और समाज ने अपने नैतिकता के चश्मे से उसे अवैध घोषित किया है उसके विषय में लेखिका का सजीव एवं सचोट चित्रण देखिए—

"छोटी लाल कली जैसा मुँह नींद में कुछ खुल गया था। और उस पर एक विचित्र सी मुस्कराहट थी। मानो कोई सुन्दर स्वप्न देख रहा हो। उसके आने से कितने भरे हृदय सूख गए कितनी सूखी आँखों में बाढ़ आ गई और कितनों को जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया। इसका उसे कोई ज्ञान नहीं। यह अनाहूत, अवांछित अतिथि अपने संबंध में भी क्या जानता है? इसके आगमन ने इसकी माता को किसी की दृष्टि में आदरणीय नहीं बनाया। इसके स्वागत में मेवे नहीं बंटे, बधाई नहीं गाई गई। दादा नाना ने अनेक नाम नहीं सोचे चाची ताई ने अपने नेग के लिए वाद-विवाद नहीं किया। और पिता ने अपनी आत्मा का प्रतिरूप नहीं देखा।"

"अवांछित अतिथि" का इससे सुन्दर और प्रभावोत्पादक चित्र भला क्या हो सकता है?

कन्या का जन्म होते ही सर्व प्रथम माता पिता का ध्यान विवाह की कठिनाइयों की ओर ही जाता है। यह समस्या दुहरी होती है। एक तो वर की दूसरी दहेज की स्त्रियों को अपने भाग्य का निपटारा करने का हक नहीं है। गुलामों और जानवरों की तरह उन्हें परख कर मोल तोल किया जाता है। देखिए लेखिका ने सचाई को किस तलखी से व्यक्त किया है—

प्राचीनता की दुहाई देने वाले कुलों में बिना देखे सुने जिस प्रकार उसका क्रय विक्रय हो जाता है वह तो लज्जा का विषय है ही, परन्तु नवीनता के पूजकों से भी योग्य कन्या को बिकने के लिए खड़े पशु की तरह देखना कुछ गर्व की वस्तु नहीं। जिस प्रकार भावी पति परिवार व्यक्त किया है। समस्याओं के चित्रण में लेखिका के प्रगतिशील और सुलझे हुए विचार ही प्रकट हुए हैं। लेखिका को जो कहना है उसे वह पूर्ण रूप से जानती है, उसे अपने उत्तरदायित्व का पूरा-पूरा ज्ञान है। महादेवी जी ने जहाँ एक ओर इन नारियों के कारुणिक और मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किए हैं वहाँ दूसरी ओर उन समस्त समस्याओं का हल

भी प्रस्तुत किया है। मार्मिक चित्रणों के माध्यय से उन्होंने पाठकों से करुणा की भीख नहीं माँगी है क्योंकि उन्हें मालूम है कि ये परंपरागत सड़े हुए समाज की समस्याएँ भीख माँगने से नहीं सुलझेगी। महादेवी जो का व्यक्तित्व अपने आपमें इतना पूर्ण है कि उन्होंने समस्याओं पर चतुर्दिक विचार कर उनके हल प्रस्तुत किए हैं।

महादेवी जी ने जिस करुणा और नारी की पीड़ाओं को व्यक्त किया है उसमें अमृतराय ने समाजवाद का आरोपण या प्रभाव देखा है। स्वयं ही अमृतराय के शब्दों में देखिए—

"नारी स्वाधीनता के प्रश्न पर महादेवी के विचार विज्ञान सम्मत रूप में समाजवाद से प्रभावित है···। नारी स्वाधीनता के प्रश्न पर वे समाजवाद के अधिक समीप हैं । इनके विचारों पर यदि किसी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है तो वह है वैज्ञानिक समाजवाद । उनके सामाजिक निष्कर्ष अनिवार्यतः क्रान्तिकारी समाजवाद की ओर झुकते हैं···। नारी समस्या पर महादेवी जी के विचार आद्यन्त समाजवाद की ओर उन्मुख है।"

नयी समीक्षा—अमृतराय, पृष्ठ सं० गद्यकार महादेवी और नारी समस्या

महादेवी जी ने पीड़ितों को जो वाणी दी है वह वाद विशेष के घेरों से कहीं ऊपर है। हो सकता है कि महादेवी जी के ये विचार समाजवाद के करीब हों किन्तु उनके ऊपर समाजवाद का आरोपण करना उनके प्रति अन्याय करना होगा। ये रचनाएँ और लेख तो शुद्ध मानववादी दृष्टिकोण से ही लिखे गए हैं। अमृतराय के मत के लिए तो रामविलास शर्मा का ही कथन समीचीन प्रतीत होगा।

"फिर भी इन सहानुभूति की सीमाओं का न पहिचानना और नारी समस्या के प्रति उनके महादेवी दृष्टिकोण को लेनिन के दृष्टिकोण से तुलना करना अपने को और दूसरों को धोखा देना है।"

—महादेवी वर्मा और आलोचना साहित्य की समस्याएँ—रामविलास शर्मा, महादेवी वर्मा, शचीरानी गुर्टु द्वारा सम्पादित पृ० २६३ (द्व० स० १९५७)

महादेवी जी को ये लेख लिखे २२ वर्ष से भी अधिक हो गए हैं। इस बीच कितने ही राष्ट्रीय एवं अन्तरर्राष्ट्रीय परिवर्तन हुए जिनसे कई राष्ट्रों में आमूल परिवर्तन हो गए हैं। महादेवी जी द्वारा उठाई गई कुछ समस्याएँ सुलझ सी गई है और कुछ सुलझ रही हैं। जो समस्याएँ सुलझ गई है उनका भविष्य में ऐतिहासिक महत्त्व ही रह जाएगा। जिन विषयों पर महादेवी जी ने इतने वर्षों पहले कलम चलाई थी, उन्हें वर्तमान युग की पृष्ठभूमि पर हम देख सकते हैं। हमें पता लग सकवा है कि हमारी इस ओर कितनी प्रगति हुई। इतने समय के पश्चात् भी ये लेख गतावधि के नहीं लगते। आज नारी जागरण के लिए अनेक प्रयास हो रहे हैं। प्रशासन की ओर से भी कई अवसर, हक या पद स्त्रियों के लिए समान रूप से खुले हैं। किन्तु नारी जागरण की यह लहर अभी भी सतही है। एक समुन्नत, सुसंस्कृत तथा सभ्य समाज में नारी को जो सम्मानीय स्थान मिलना चाहिए, उसकी हमारे यहाँ काफी गुँजाइश है।

यह बात नहीं है कि महादेवी ने शृंखला की कड़ियाँ में स्त्रियों के दुखों का रोना ही रोया है या पुरुषों के खिलाफ शिकायतें ही प्रस्तुत की हैं। जहाँ नारी अपनी सहज भावना या क्षेत्र से बाहर निकल गई है वहाँ लेखिका ने क्षोभ भी व्यक्त किया है। पश्चिमीय नारी का स्वतन्त्र किन्तु अराजकतापूर्ण और स्वार्थमय व्यक्तित्त्व उन्हें पसन्द नहीं है। वे तो चाहती हैं कि नारी अपना स्वतन्त्र विकास कर इस प्रकार अपने को दृढ़ बनाए कि पुरुष उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखे। उसे पुरुष अपने से किसी भी प्रकार कम न समझे।

सारतः शृंखला की कड़ियाँ महादेवी जी के नारी सम्बन्धी क्रान्तिकारी एवं प्रगतिशील विचारों की एक प्रौढ़ रचना है।

'नीहार' पर नीहारिका दृष्टि

डॉ० भालचन्द्र तैलङ्ग एम० ए०

आदिम नहीं प्रथम

'नीहार' की रचना को कवि सम्राट् अयोध्यासिंह उपाध्याय जी ने सुश्री महादेवी वर्मा का 'आदिम' ग्रन्थ कहा है; परन्तु इसे आदिम न कहकर प्रथम कहना ही उचित होगा। कारण यह कि नीहार की रचना छायायुगीन महादेवी वर्मा की प्रथम प्रकाशित रचना है और इसमें तत्कालीन ऐतिहासिक तथा साहित्यिक उन्नयन के संकेत और संदेश मिलते हैं। छायावाद की भावभूमि, चारिक भूमि नयी भास्वर चेतना और उसका सांस्कृतिक परिवेश स्पष्ट सूचित करता है कि 'नीहार' को सुश्री महादेवी वर्मा का 'आदिम' ग्रन्थ नहीं, उनकी प्रथम रचना मानना होगा।

प्रथम संकलन और प्रथम प्रकाशन

'नीहार' में सुश्री महादेवी वर्मा के उन गीतों का संकलन है, जिनकी रचना सन् १९२३ से १९२९ तक हुई थी और जिन्हें स्वयं कवयित्री ने हृदय की मुग्धता के साथ अपनी कलकंठ माधुरी दी थी और जिन गीतों को उन्होंने अपनी संगीतरीति तथा संगीति प्राप्ति का सौभाग्य प्रदान किया था। उन गीतों के मधुर भावों का वह मुखर रूप उनके निर्मल और आकुल अन्तर की वे अभिव्यंजनाएँ, उन मुक्तकों की वह नवीन लय, उन छन्दों का वह मधुरिम संगीत अब सर्वदा के लिए विगलित होकर मौन में आश्वस्त है। 'नीहार' उस छायावाद का प्रथम शुद्ध निष्पादन है। भारत के तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण के प्रभाती स्वर तथा उस आन्दोलन की नयी ऊर्जस्वित चेतना 'नीहार' के इस छन्द में है :—

"मैं कम्पन हूं, तू करुण राग
मैं आँसू हूं, तू है विषाद
मैं मदिरा हूं, तू उसका खुमार
मैं छाया, तू उसका अधार
मेरे भारत मेरे विशाल,
मुझको कह लेने दो उदार
फिर एक बार, बस एक बार।"

यौवन की उत्साह भरी उमंग, उद्वेलन की विवशता भरी कसक, भारत को स्वतन्त्र कर लेने की चेतन भावना इस सम्पूर्ण गीत में ओत प्रोत है। गीत के अन्तिम चरण 'फिर एक बार, बस एक बार' की लय में तथा 'मैं और तू' के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध में निराला की सी ध्वनि गूँजती है, एक अन्य गीत :—

विधु की चाँदी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी।
जिसमें उजियाली रातें
लुटतीं घुलतीं मिसरी सी॥

—अभिमान

इसमें प्रसाद की कल्पना खेलती सी नजर आती है; तथा—

जीवन का मधु बेच रही हो
मतवाली आँखों में घोल।
क्या लोगी ? क्या कहा सजनि
इसका दुखिया आँसू है मोल॥

—मोल

इसमें पन्त के व्यापार और विनिमय की प्रतिध्वनि-सी सुनाई पड़ती है। और तो और 'नीहार' की इन पंक्तियों—

विश्व में है फूल तू
सबके हृदय भाता रहा,
दान कर सर्वस्व फिर भी
हांय हर्षाता रहा।

—मुर्झाया फूल

—में द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता की पुरानी बातें भी याद आ जाती हैं! 'नीहार' के इन प्रकाशित कविताओं के संकलन में तत्कालीन ऐतिहासिक संकेतों के साथ ही साथ तत्कालीन साहित्यिक वातावरण एवं उस काव्यान्दोलन के अनुकूल और अनुरूप अनेकानेक उपस्थितियाँ अंकित है, जिन्हें देखकर तथैव सुनकर 'नीहार' को 'आदिम ग्रन्थ' न कहकर इसे सुश्री महादेवी वर्मा के गीतों का प्रथम प्रकाशन ही मानना चाहिये।

निर्माल्य का विसर्जन

'नीहार' की सर्जना महादेवी की आत्मानुभूति तथा आत्माभिव्यंजना का प्रथम निर्माल्य विसर्जन है—अपने प्रियतम के चरणों पर नीहार' की ये प्रथम पंक्तियाँ :—

"निशा को धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधुमदिरा का मोल"

— विसर्जन

निसर्ग के इन मनोहर व मनोरम रूपचित्रों के ये रंग, ये सरल और बंकिम रेखाएँ, उनके ये प्रणय—व्यापार और यह कामकेलि एक नया आरंभ प्रस्तुत करती है, जिसमें उन्मीलन है, उन्मेघ है, विस्मय है, जिज्ञासा है—यहीं से तो छायावाद की नयी भावभूमि के दर्शन होते हैं। महादेवी की सौन्दर्य चेतना व्यक्त के प्रेमपरक संयोग से उद्बुद्ध होती है। 'नीहार' का यह मंगलसूत्र ही इन छन्दों की अपनी भावसम्पत्ति है सीमा के बंधन जहाँ टूटते हैं, वहीं से असीम का सम्बन्ध जुड़ता सा नजर आता है। प्रणय की यह साधना 'नीहार' के गीतों की इन पंक्तियों से आरंभ होती हुई दृष्टिगोचर होती है :—

"आज आये हो हे करुणेश
इन्हें जो तुम देने वरदान,
गलाकर मेरे सारे अंग
करो दो आँखों का निर्माण।"

—वरदान

इन दो वरदान प्राप्त आँखों से कवयित्री ने देखा इस विश्वसुन्दरी के रूप को, मानसी चेतना को और उसके आध्यात्मिक आभास को। यह व्याप्ति 'नीहार' के इन चरणों में देखिये :—

"उदधि नभ को कर लेगा प्यार
मिलेंगे सीमा और अनन्त
उपासक ही होगा आराध्य
एक होंगे पतझार वसन्त।"

—तब

ज्योति की रंगीनी को अपनी कनीनिका में भर लेने पर तो विश्वव्याप्त रंगीनी को और कण-कण बिखरे हुए दीप्त सौन्दर्य को समेट कर अपनी झोली में सँजो लेना ही वह मन: व्यापार है, जिसे क्षणानुभूति की संज्ञा दी जा सकती है। प्रकृति में बिछली और बिखरी सौन्दर्य सत्ता ही तो वह नीहारिका-दीप्ति है, जिसे अपने पात्र में उड़ेलकर पी लेने की साध महादेवी की एक अपनी प्यास है 'नीहार' की इन पंक्तियों को जब मैंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कवि सम्मेलन में उनकी कलकंठ माधुरी से आज से लगभग ३७ वर्ष पहले सुना था - ऐसा ही अनुभव हुआ था। वे पंक्तियाँ थीं :—

"इन हीरक से तारों को
कर चूर बनाया प्याला,
पीड़ा का सार मिलाकर
प्राणों का आसव ढाला।"

—स्वप्न

सौन्दर्य की यह अन्तर्मुखता रहस्योन्मुखता का आरंभ अनुभूति जहाँ कल्पना को हृदयंगम किया है वहाँ कल्पना ने अनुभूति को सँवारा है, नीहार में वह कल्पना सूत्र मिलता

है जिसमें पिरोये गये मुक्तकों की स्फीत छाया मन को अपने सहज आकर्षण से स्फुरित करती है। ये पंक्तियाँ हैं :—

'घूंघट पट से झांक सुनाते
ऊषा के आरक्त कपोल,
जिसकी चाह तुम्हें है उसने
छिड़की मुझ पर लाली घोल।'

—खोज

'इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीडा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।'

—मेरा राज्य

प्रणय और मिलन के अभिमुखों की अनुभूति नीहार का वह उन्मुक्त द्वार है जहाँ से महादेवी की वेदना नहीं; वेदना की विवृति नहीं, प्रत्युत वेदना की विवृति की विशदता का निदर्शन होता है। मेरा तात्पर्य यहाँ यह है कि वेदना शब्द में शारीरिक पीड़ा का कोरा अर्थ आ धमकता है, वेदना की विवृति से अर्थ में ध्यापकता अवश्य आती है, परन्तु अन्तरात्मा की वह स्वीकृति तथा उपन्यास के प्रत्यर्पण की वह विशदता नहीं आती जिनमें महादेवी के प्राण बसते हैं। इस विशदता में उस कल्पना सुख का विभावन है, जिसमें भावनाओं का खिन्न अवसान नहीं होता, कर्मण्यता का ह्रास और अन्य नहीं हो जाता, मनः व्यापार को शैथिल्य समाप्त नहीं कर देता, वरन् मानसिक प्रक्रिया को एक अपूर्व प्रसादन मिलता है और मिलता है भावों के अन्तस्तल की आकुलता को आवेग। इसे यदि वेदना की विवृति विशदता न कहना चाहें तो इसे 'वेदना की विशद विवृति' अवश्य कहें :—

विकसते मुरझाने को फूल,
उदय होता छिपने को चन्द।
शून्य होने को बढ़ते मेघ,
दीप जलता होने को मन्द।
यहाँ किसका अनन्त यौवन
अरे अस्थिर छोटे जीवन।

—मेरा जीवन

वेदना की विशद विवृति की छलक हमें 'यौवन', 'जीवन' अथवा अन्यत्र 'राग' और 'प्राण' जैसे शब्दों में आकुञ्चित विकुञ्चित होती हुई दृष्टिगोचर होती है। वेदना की विशद विवृति का कल्पना सुख निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये :—

वेदना मधुमदिरा की धार
अनोखा एक नया संसार।

—चाह

और अन्त में इन पंक्तियों में देखें :—

जहाँ विष देता अमरत्व जहाँ पीड़ा है प्यारी मीत,
अश्रु हैं नयनों का शृङ्गार जहाँ ज्वाला बनती नवनीत
मृत्यु बन जाती नवजीवन
वहीं रहता नीरव भाषण।

—नीरव भाषण

यहीं तो भावों की रसात्मकता है और यहीं महादेवी की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति है 'वेदना की विशद विवृति' ही महादेवी के निर्माल्य का विसर्जन है 'नीहार' उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वस्तु, व्यापार, भाव और संकेतों की संश्लिष्ट योजना शैली :—

निश्वासों का नीड़ निशा का
बन जाता जब शयनागार
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बन्दनवार,
तब बुझते तारों के नीरव
नयनों का यह हाहाकार
आँसू से लिख लिख जाता है
कितना अस्थिर है संसार।

—संसार

इस संदर्भ में यहाँ दो व्याख्याएँ उन विद्वान् आलोचकों की उद्धृत करना उपयुक्त समझता हूँ जिन्होंने इस पर क्लिष्ट कल्पना तथा सरल और सरस कविता के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जी की व्याख्या है : आकाश में रात्रि के समय अचानक बादल

छा गये हैं और पानी भी बरसने लगा है। इसी अवस्था की कल्पना यह जान पड़ती है। अथवा यह रात्र्यन्त की कल्पना है। रात्रि के मुक्तावलियों के अभिराम बंदनवार तारिका पंक्ति छिन्न होकर लुट गये हैं। निश्वासों की नीड़ उसका शयनागार बन गया है इसका इतना ही अर्थ मेरी समझ में आ पाता है कि रात्रि दुःखपूर्ण निश्वास ले रही है, तारे बुझ रहे हैं, बूँदें गिरने लगी हैं, वही मानों बुझते तारों के नीरव नयनों का हाहाकार और उसके आंसू हैं जिनके द्वारा यह लिखा जा रहा है······संसार कितना अस्थिर है[1] पंडित जानकीवल्लभ शास्त्री इन्हीं पंक्तियों की व्याख्या इन शब्दों में करते हैं :—

निस्सन्देह यह वर्णन निशावसान का ही है। बादल के छा जाने से और पानी के बरसने लगने से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कवयित्री निशा के ऐश्वर्य की क्षण-भंगुरता से विश्व की नश्वरता का निष्कर्ष निकाल रही है। कहती हैं कि निशा सुन्दरी का वासरगृह जब निश्वासों का नीड़ घोंसला बन जाता है, चित्रसारी की सारी भव्यता जैसे एक घोंसले में सिमट जाती है, सबेरे-सबेरे का कुहरा यों छाता चला जाता है कि शयनागार की आकाश सी प्रशस्तता और चमक दमक का कहीं पता तक नहीं लगता। यह प्राकृतिक जगत का कुहासा भावजगत् का उच्छ्वास-निश्वास है। वासकसज्जा जैसी उमंग तरंगों भरी निशा-सुन्दरी ने जो ऐश्वर्य गर्वित स्वप्न संजोए थे वह क्रम-क्रम से उच्छ्वासों से उड़ते गये, निश्वासों में विलीन होते गये और अब उस छविवेश्म में उच्छ्वास निश्वास ही शेष रह गये हैं, कुहरा कुहरा भर दिखता है। यह तो हुई अन्तर्गृह की तसवीर और बाहर जो मोती की लड़ियों जैसी गुँथी-गुँथी तारावलियों के बन्दनवार तने हुए थे जिनसे वह विलय निवास वासरगृह की आभा से पंडित था, वह भी (जहाँ तहाँ से तारों के टूटते जाने के कारण) छिन्न-भिन्न होते लुट गये, खत्म हो गये। यहाँ बन्दनवार वाली नखत-पांती अपेक्षाकृत दूरतर प्रदेश से टिमटिमाने वाली समझी जानी चाहिये, क्योंकि आगे की पंक्ति में नयनतारों का स्पष्ट उल्लेख है। वे प्रकाशबिन्दु-सी तारिकाएँ तो जैसे लुट गईं और ये नयनतारे बुझते-बुझते से अब भी देखे जा सकते हैं। (वे जैसे मोती के पिरोये दानों सी थीं जो किसी रूप के स्वागत के निमित्त उत्सुक आँखों से, चिर प्रतीक्षा के पश्चात् भी उसके न दिखने पर, टूटे हुए बन्दन-वार की तरह विगलित अश्रुकण बनकर बिखर गईं, किन्तु ये तारे आँखों की पुतलियों जैसे हैं जो अपने सामने ही समस्त वैभव को उजड़ते देख मन्द मलिन पड़ गये हैं) फिर नयनों की शालीनता तो यह है कि सब कुछ देख सुनकर वे नीरव हैं, भीतर वेदना तरंगायित है मगर बाहर अजब सी खामोशी हैं। वे चीखते चिल्लाते नहीं, प्रकृति में क्रान्ति उत्पन्न करने वाले नारे नहीं लगाते, खामोश आँसुओं में फूट पड़ते हैं। इस प्रकार उस निशा सुन्दरी के बुझते हुए तारों रूपी नीरव नयनों का हाहाकार शबनम के आँसुओं से जैसे यही लिख जाता है कि हाय रे, यह संसार कैसा क्षणभंगुर है।[1]

नीहार के गीतों की इस संश्लिष्ट योजना शैली में काव्य का अन्तरंग सौन्दर्य निहित है। मेरी दृष्टि में तो नीहार के ये गीत क्लिष्ट न होकर संश्लिष्ट हो गये हैं, सरल न होकर तरल हो गये हैं। इन गीतों में अन्तर्मन के संवेगों की वीथियां खुलती हैं तथा भावों की वीथियाँ लहराती हैं।

[1]—बीसवीं शताब्दी : महादेवी वर्मा (१९६२) पृष्ठ १६४

[1]—प्राच्यसाहित्य : जानकी वल्लभ शास्त्री पृष्ठ ५४

महादेवी के 'पथ के साथी'—मेरी दृष्टि में

हरिमोहन मालवीय, एम० ए०

महादेवी ने 'पथ के साथी' के रेखाचित्रों में समकालीन कवियों के बिम्ब प्रतिबिम्ब प्रभावों को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। उनकी दृष्टि न केवल कवियों के कर्तृत्व पर ही टिकी है, अपितु चित्रवृत्ति, क्रिया-कलाप के साथ-साथ परिवेश और उपलब्धि पर भी पड़ी है। कवियों के व्यक्तित्व की गरिमा को महादेवी जनसाधारण के प्रति किए गए व्यवहार, चिंतन और संवेदना के अधिष्ठान पर देखती हैं। 'पथ के साथी' में संस्मरण भी हैं और लेखिका द्वारा पढ़े गए कवियों के जीवन पृष्ठ भी। यह अध्ययन महादेवी के व्यक्तित्व से अभिन्न है अतएव उनके जीवन के आयाम को ये रेखाएँ द्योतित करती हैं। उन्होंने एक ओर साहित्यकारों के आत्मीय नैकट्य और प्रभाव का काव्यात्मक उल्लेख इन 'रेखाओं' के माध्यम से किया है और दूसरी ओर उनकी देहयष्टि पर स्थूल-दृष्टि निक्षेप द्वारा समग्र जीवन-दर्शन को परखने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न महादेवी के चिन्तन, अनुभूति और दृष्टिकोण की विशद विशेषताओं को प्रकट करता है।

पथ के साथी की रेखाएँ

'प्रणाम' शीर्षक के अन्तर्गत महादेवी ने कवीन्द्र रवीन्द्र का स्मरण किया है। श्री मैथिलीशरण गुप्त, स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, स्व० पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', स्व० जयशंकर प्रसाद, श्री सुमित्रानन्दन पंत एवं स्व० श्री सियारामशरण जी गुप्त की 'रेखाएँ, शब्द-चित्र के रूप में इस कृति में आई हैं। महादेवी की यह कृति संवत् २०१३ में प्रकाशित हुई थी। उस समय तक जयशंकर प्रसाद और सुभद्रा कुमारी चौहान का देहावसान हो चुका था। आज उनके दो साथी निराला और सियाराम शरण गुप्त भी इस संसार में नहीं हैं।

महादेवी की दुरूह कविता के दर्शन से विरत-पाठक 'यामा' और विशेषरूप से 'दीपशिखा' के अलंकृत चित्रों को देखकर इस महिमाशालिनी कवयित्री के सुललित प्रयास की झाँकी पाता है, किन्तु वे चित्र भी काव्य की पृष्ठिभूमि में पाषाणवत् जड़ता एवं प्रतीकात्मक संयोजना की अभिव्यक्ति होने के कारण यद्यपि सुबोधता उत्पन्न नहीं करते किन्तु भाते तो हैं। महादेवी के रेखाचित्र संस्मरणात्मक आनन्द, विषाद पीड़ा और अभाव को दिग्दर्शित करने में असाधारण रूप से सफल हैं। उनमें भी चित्रों की ही भाँति अपनी लेखिनी और अक्षरों के संयोजन से महादेवी चित्र बना कर अपनी कवित्वशक्ति से भाव-मण्डित करती हैं। उनका गद्य हो या पद्य सभी कुछ कविता है, उनके पथ के साथी की 'रेखाएँ' संस्मरणात्मक गद्य गीत कहे जाँय अथवा स्वयं में पूर्ण चित्रों के सजीव संकलन' मेरे सामने यह प्रश्न है?

परिचय और प्रभाव

हिमालय के प्रांगण में त्रिशूली और नन्दादेवी की ढलान पर बसे रामगढ़ के बङ्गले में रुग्ण पुत्री की असफल चिकित्सा के लिए कवीन्द्र रवीन्द्र कभी टिके थे। वहीं शान्ति निकेतन उनके मानस में बन चुका था। उस स्थली पर कवीन्द्र के व्यक्तित्व की छाप प्रथमवार महादेवी पड़ी थी। महादेवी को अकस्मात वहाँ जो अनुभव हुआ उसे व्यक्त करते हुये लिखा है कि "सम्बलहीन मानव से लेकर खड्ड में गिरकर टाँग

तोड़ लेने वाले भूटिया कुत्ते तक के लिये उनकी चिन्ता स्वाभाविक और सहायता सुलभ रही। इस समाचार ने कल्पना बिहारी कवि में सहृदय पड़ोसी और वात्सल्य भरे पिता की प्रतिष्ठा कर दी। इसी कल्पना और अनुमानात्मक परिचय की पृष्ठभूमि में मैंने अपने विद्यार्थी जीवन में रवींद्र को देखा था।''

महादेवी का परिचय श्री मैथिलीशरण जी गुप्त से 'सरस्वती' के माध्यम से हुआ था। उस काल की समस्याओं की चर्चा के प्रसङ्ग में महादेवी खड़ी बोली और व्रजभाषा सम्बन्धी विवाद को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उस समय कविता की भाषा का अर्थ ही व्रजभाषा समझा जाता था। कोई यह कल्पना भी न कर पाते थे कि काव्य-भाषा का माधुर्य खड़ी बोली में भी सम्भव है किन्तु नव-युग के बौद्धिक विकास के कारण प्राप्त नव भाव-बोध एवं संचेतना का स्वर व्रजभाषा की बद्ध-सीमा में मुखरित न हो पाता था। महादेवी का बाल्य-प्रयास व्रजभाषा के माध्यम से चल रहा था, किन्तु उससे उन्हें सन्तुष्टि न थी, ऐसे समय में श्री मैथिलीशरण जी गुप्त की कविता का आदर्श मिला और उसी प्रभाव के फलस्वरूप महादेवी व्रजभाषा की अप्रौढ़ रचना विधा से मुक्त होकर खड़ी बोली कविता की छायावादी धारा की यशस्विनी कवयित्री बन सकीं। एक प्रकार से गुप्त जी का बिम्ब महादेवी के बाल मानस पर अग्रज अथवा गुरु के रूप का पड़ा था।

स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान ने कालेज जीवन में उद्धत बालिका के रूप में स्वतः महादेवी से परिचय किया था निराला को महादेवी ने भाई का स्थान दिया और उनका वह भाई जीवन्त-बवण्डर और उच्छल महानद के समान था। प्रसाद परिचय से पूर्व महादेवी के मन में स्थविर सदृश थे। जैसे अपरिचित जन-मानस में महादेवी विषाद की मुद्रा और डबडबाई आँखों के साथ आकाश की ओर दृष्टि किये हौले-हौले चलने वाली कवयित्री थीं, कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के प्रथम परिचय को भ्रांति का मधुर वर्णन 'पथ के साथी' में महादेवी ने किया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के द्वारा कवि पंत से परिचय होने के पूर्व वह उन्हें कवयित्री ही समझती थीं। सियाराम शरण जी के प्रथम परिचय का कोई वृत्तान्त इस कृति में प्राप्त नहीं है किन्तु उनके निरीह निश्छल एवं सादे जीवन की झाँकी का मोहक विवरण 'पथ के साथी' में है।

'पथ के साथी' और उनका विराट व्यक्तित्व

महादेवी ने प्रासङ्गिक संस्मरणों एवं जीवनी विषयक तथ्यों के माध्यम से सभी सहयात्रियों का मूल्याँकन प्रस्तुत किया है। कवीन्द्र रवीन्द्र की विशेषताओं पर विचार प्रकट करते हुये महादेवी ने लिखा है ''कवीन्द्र रवीन्द्र उन विरल साहित्यकारों में थे जिनके व्यक्तित्व और साहित्य में अद्भुत साम्य रहता है। जहाँ व्यक्ति को देखकर लगता है मानों काव्य की व्यापकता ही सिमटकर मूर्त हो गई है और काव्य से परिचित होकर जान पड़ता है मानो व्यक्ति ही तरल होकर फैल गया है।'' गुप्त जी ''नम्र हैं पर यह विनय उनकी वैष्णवता का ऐसा पानी है, जो बड़े-बड़े जहाजों को सम्भाल सकता, किन्तु छोटे से पत्थर का भार सहन नहीं कर सकता। इस प्रशान्त सतह वाले सागर के तल में किसी अव्यक्त ज्वालामुखी की चोटियाँ भी हैं, जो ठेस से विस्फोट बन सकती हैं।''

निराला ''जीवन की दृष्टि से दुर्लभ सीप में ढले मोती नहीं हैं जिसे अपनी महार्घता का साथ देने के लिए स्वर्ण और सौन्दर्य प्रतिष्ठा के लिए अलंकार का रूप चाहिये। वे तो अनगढ़ पारस के भारी शिलाखण्ड हैं। न मुकुट में जड़कर कोई उसकी गुरुता सम्भाल सकता है और न पदत्राण बनाकर कोई उसका भार उठा सकता है, वह जहाँ हैं वहीं उसका स्पर्श सुलभ है यदि स्पर्श करने वाले में मानवता के लौह परमाण्ड हैं तो किसी ओर से भी स्पर्श करने पर वह स्वर्ण बन गया। पारस की अमूल्यता दूसरों का मूल्य बढ़ाने में है। उसके मूल्य में न कोई कुछ जोड़ सकता है न घटा सकता है।''

प्रसाद ''हिमालय की ढलान पर खड़े गर्वीले देवदारु के समान थे जिन्हें क्षुद्र जल-धारा की गुद्गुदी ने धराशायी होने के लिए विवश किया था। पन्त जी उस प्रशान्त छोटी झील से समानता रखते हैं जो अपने चारों ओर खड़े शिखरों और देवदारुओं की गगनचुम्बी ऊँचाई को अपने हृदय में प्रतिबिम्बित कर उसे धरती के बराबर कर देती है। गहरे गर्तों

को अपने जल में समकर देती है और उच्छृङ्खल निर्झर के पैरों के नीचे तरल आँचल बिछाकर उसे गिरने, चोट खाने से बचा लेती है। और 'सियाराम शरण गुप्त ऐसे लगते हैं मानो ठेठ भारतीय मिट्टी की बनी पकी कोई मूर्ति हो जिसकी आँखों पर स्निग्धता का गाढ़ा रङ्ग फेरकर शिल्पी शेष अङ्गों पर फेरना भूल गया है।''

पथ के साथी और उनका जीवन दर्शन

महादेवी के अनुसार महाकवि रवीन्द्रनाथ के ''जीवन के विस्तार में बहुत कम ऐसा मिलेगा जिसे उन्होंने नया आलोक फेंककर नहीं देखा और देखकर जिसकी व्याख्या नहीं की। जीवन के व्यावहारिक धरातल पर अथवा सूक्ष्म मनो जगत में उन्हें कुछ भी इतना क्षुद्र नहीं जान पड़ा जिसकी उपेक्षा-कर बड़ा बना जा सके, कोई भी इतना अपवित्र नहीं मिला जिसके स्पर्श के बिना व्यापक पवित्रता की रक्षा हो सके और कुछ भी इतना विच्छिन्न नहीं दिखाई दिया जिसे पैरों से ठेलकर जीवन आगे बढ़ सके।''

''विशाल शिष, और सुन्दर के पक्ष का समर्थन सब कर सकते हैं क्योंकि वे स्वतः प्रमाणित हैं। परन्तु विशालता, शिवता और सुन्दरता पर क्षुद्र अशिव और विरूप का दावा प्रमाणित कर उन्हें विशाल शिव और सुन्दर में परिवर्तित कर देना किसी महान का ही सृजन हो सकता है।''

महादेवी का विचार है कि ''उन्होंने (कवीन्द्र रवीन्द्र , ऐसा कुछ नहीं कहा जो पहले नहीं कहा गया था, पर इस प्रकार सब कुछ कहा है, जिस प्रकार किसी अन्य युग में नहीं कहा गया।''

''मनुष्य की स्वाभावगत महानता की उन्होंने केवल कल्पना नहीं की थी, वरन् अथक अन्वेषण करके उसे अपने साहित्य से सिद्ध भी किया है। इसी से जन-साधारण की चर्चा में वे साहस पूर्वक घोषणा करते हैं कि मुझे जन तो बहुत मिले पर साधारण कोई नहीं मिला।''

श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ''कवि भी हैं और भक्त भी, अतः निर्माण भी उनके स्वभाव में है और निर्मित के प्रति आत्म समर्पण भी। साहित्य में उन्हें ऐसी ही कथा चाहिये जो लोक हृदय में प्रतिष्ठा पा चुकी हो, पर उस परिधि के भीतर हर चरित्र का कुछ नया निर्माण उनका अपना है। वे रामायण को नहीं भूलते, पर रामायणकार जिन्हें भूल गया उन चरित्रों का अपने ढङ्ग से स्मरण करते हैं। वे महाभारत के स्थान में कोई अन्य कथा नहीं खोजेंगे, पर महाभारत के भीतर खोये किसी साधारण पात्र को खोज लेंगे। ये कथायें अनेक युगों की लम्बी यात्राओं का आंधी, पानी, धूप, छाया सहते-सहते धूमिल हो गई है, पर जिन्हें वे वहन करके लाई हैं वे पात्र गुप्त जो के आँसुओं में धुल-धुल कर नये रङ्गों में उद्भासित आज के प्राणी बन चुके हैं। उनके साहित्य में जो नया है उसका मेरुदन्ड पुराना है, और जो पुराना है उस पर रङ्ग नया है।''

सुभद्राकुमारी चौहन का जीवन न किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर रस की घिसी-पिटी लीक पर चली उनके जीवन में जो एक निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अन्तरव्यापिनी निष्ठा से जुड़ा हुआ है जो क्षणिक उतेजना का दान नहीं मानी जा सकती, इसी से जहाँ दूसरों को यात्रा का अन्त दिखाई दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ।''

निराला जी विचार से क्रान्तिदर्शी और क्रान्तिकारी थे। उनके समझने के लिए महादेवी के अनुसार ''जिस मात्रा में बौद्धिकता चाहिए उसी मात्रा में हृदय की संवेदनशीलता अपेक्षित है। ऐसा संतुलन सुलभ न होने के कारण उन्हें पूर्णता में समझने वाले विरल मिलते हैं।''

निराला ने ''अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से कभी ऐसी हार नहीं मानी जिसे सह्य बनाने के लिए हम समझौता कहते हैं। स्वभाव से उन्हें वह निश्चल वीरता मिली थी जो अपने बचाव के प्रयत्न को भी कायरता की संज्ञा देती है। उनकी वीरता राजनीतिक सफलता नहीं, वह तो साहित्य को एकनिष्ठता का पर्याय है। छल के व्यूह में छिप कर लक्ष्य तक पहुँचने को साहित्य लक्ष्य प्राप्ति नहीं मानता। जो अपने पथ की सभी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष बाधाओं को चुनौती देता हुआ लक्ष्य तक पहुँचता है उसी को युग दृष्टा साहित्यकार कह सकते हैं। निराला जी के दंशन का विष साधारण मनुष्य की आत्मा को मूर्छित कर के उसके सारे जीवन को विषाक्त बना देता है, उसीसे उन्होंने सतत जाग सकता और मानवता का अमृत प्राप्त किया था।''

प्रसाद छायावादी काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में थे। महादेवी ने लिखा है "छायावाद युग में भाव के जिस ज्वार ने जीवन को सब ओर से प्लावित कर दिया था उसके तट और मन्तव्य के सम्बन्ध में जिज्ञासा स्वाभाविक थी और इस जिज्ञासा का उत्तर कामायनी ने दिया।"

"प्रसाद का जीवन, बौद्ध विचारधारा की ओर उनका झुकाव, चरम त्याग बलिदान वाले करुण कोमल पात्रों की सृष्टि, उनके साहित्य में बारम्बार अनुगुँजित करुणा का स्वर, आदि प्रामाणित करेंगे कि उनके जीवन के तार इतने सधे और खिचे हुए थे कि हल्की सी कम्पन भी उनमें प्रतिध्वनि पा लेती थी।"

"हमारे युग की समष्टि के हृदय और बुद्धि में जो भाव और विचार नीरव उमड़-घुमड़ रहे थे। उन्हें कवि ने जागरण के स्वर देकर मुखरित किया था।"

पंत जी के सम्बन्ध में महादेवी ने लिखा है "वेशभूषा, रहन-सहन से लेकर सूक्ष्म भाव और चिन्तन तक सब कुछ उनके स्पर्श मात्र से असाधारणता पाता रहा है।" जीवन में प्रत्यक्ष पार्थिव से अव्यक्त सूक्ष्म तक ऐसा कुछ नहीं है जिसकी उपेक्षा से मनुष्य को सारतत्व प्राप्त हो सके, इस सिद्धांत को जितनी पूर्ण कसौटी सुमित्रानन्दन जी के जीवन मे मिली है उतनी अन्यत्र नहीं।"

"बदलती हुई सम-विषम परिस्थितियों में उन्हें नूतन सृजन की सम्भावनाएँ इस प्रकार संचालित करती हैं कि वे संघर्ष को भूल जाते हैं।"

स्व० सियारामशरण जी के दर्शन पर विचार करते हुए महादेवी ने लिखा है "उनका साहित्य पढ़ कर ऐसा लगता है कि यदि उन्हें महात्मा गांधी का निकट सम्पर्क कुछ कम प्राप्त होता तो इससे अच्छे कवि होते और यदि उन्हें कवीन्द्र के साहित्य का परिचय कम मिला होता तो वे इससे बड़े साधक होते।"

"दो ध्रुवों पर स्थित महान साधक और महान् कवि दोनों ने अपने-अपने वरदान इस प्रकार भेजे हैं कि शिव और सुन्दर इनके जीवन से अपना दायभाग अलग-अलग माँगते रहते हैं। दोनों की सन्धि कराने में ही इनकी शक्ति का अधिकांश व्यय होता रहता है।"

"रेखा-चित्रों" की समग्रता

महादेवी के ये रेखा चित्र यद्यपि जीवनी परक संस्मरणों पर आधारित हैं किन्तु इनमें तिथि परक संख्याओं के सीधे, सधे, नपे, तुले अंक एवं अक्षर कृत रेखाओं से अंकित आकृतियों का अभाव है जिसमें जन्म, मरण एवं कृतियों का सम्पूर्ण लेखा जोखा 'आलोचक द्वारा आरोपित दर्शन और वाद के साथ-साथ रहता है। महादेवी के रेखाचित्र संस्मरण और कल्पना की धुरियों पर आधारित हैं, जिन्हें उनका संवेदनशील हृदय संयुक्त करता है। उनका निरीक्षण-पूर्णत्व को पकड़ता है, उनकी कल्पना व्यक्ति के अंग-प्रत्यंग के लिए उपमान एकत्र कर लेती है, उनकी अनुभूति मन के चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व के साथ तादात्म्य ग्रहण करती है और उनकी प्रज्ञा व्यक्तित्व के सहज उज्ज्वल पृष्ठों को धारण कर लेती है। आनुवंशिक संस्कार एवं समकालीन प्रभाव, परम्परा आदि के संदर्भ में पथ के साथियों के अध्ययन का प्रयास महादेवी की अप्रतिम उपलब्धि है। 'पथ के साथी' की भाषा के सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि ये 'रेखा-चित्र' गद्य गीतों के समान सशृंखलित सूत्र-बद्ध संस्मरण हैं, जिनमें चित्रों की स्पष्टता और काव्य की तरलता का आनन्द सन्निहित है।

महादेवी की सप्तपर्णा कसौटी पर

जयशङ्कर त्रिपाठी एम० ए०, साहित्याचार्य

महादेवी जी की सप्तपर्णा का प्रकाशन सन् १९६० में हुआ। यह संस्कृत कवियों की प्रतिनिधि कविताओं का अनुवाद है। वैदिक सूक्तों एवं बौद्ध भिक्षुओं के पालि गीतों के अतिरिक्त वाल्मीकि, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति और जयदेव के काव्यों से चुने हुये स्थलों का अनुवाद इसमें है। पर ये चुने स्थल महादेवी जी के पसन्द के हैं। अनुवाद गीत और काव्य दो प्रकारों में हुआ है।

काव्य का काव्य-विधा में अनुवाद करना कठिन कार्य है। फिर संस्कृत काव्यों का अनुवाद हिन्दी में काव्य रूप में प्रस्तुत करना अत्यन्त मनोयोग की साधना है। कारण बहुत स्पष्ट है, ऊपर संस्कृत के जिन कवियों का नाम लिया गया है वे प्रायः सभी केवल जयदेव को छोड़कर काव्य-शास्त्र की ध्वनि शैली में अभिनिवेश रखने वाले कवि हैं और आज का हिन्दी-काव्य छायावादी शैली में ढलकर अन्य जिन शैलियों में ढलता जा रहा है—प्रगतिवादी, प्रयोगवादी सभी शैलियाँ अमिधा और लक्षणा की सीमा में ही विकसित हो रही हैं। छायावाद को प्रसाद जी ने व्यञ्जना का ही विकसित या उत्कृष्ट रूप कहा है पर इसमें उनका दृष्टिकोण काव्य-अर्थ की बोध-शैली की दूरागत विचित्रता से है, व्यञ्जना का यह लक्षण नहीं है, यह लक्षण लक्षणाशक्ति का ही है। लक्षणा में शब्दों और अर्थों के बीच टेढ़ा-मेढ़ा कतर-ब्योंत का रास्ता होता है परन्तु व्यञ्जना में शब्द और अर्थ के बीच या तो बहुत ऊँचा ढाल होता है कि शब्द के बोध के साथ ही हृदय अर्थ पर ढुलक कर गिर पड़ता है या फिर शब्द अर्थ मेघ और बिजली के सम्बन्ध से व्यवस्थित होते हैं। आज की हिन्दी की छायावादी या अन्य काव्य शैलियाँ किसी न किसी रूप में लक्षणा से ही प्रभावित हैं इसीलिए ध्वनि शैली के उत्कृष्ट अभिनिवेशी कालिदास जैसे कवियों के काव्य का अनुवाद हिन्दी में काव्य शैली में प्रस्तुत करना दुष्कर काम है, वह सही अर्थ में अनुवाद या रूपान्तर न होकर हिन्दी में प्रस्तुतीकरण मात्र होगा।

महादेवी जी हिन्दी-छायावादी शैली के प्रवर्तकों में से हैं अतः गद्य की विधा में उनके प्रयोग चाहे जैसे हों पर काव्य-शैली में वे लक्षणा के दुरूह प्रयोगों में लटक कर अमिधा की ओर झाँकती हैं। प्रस्तुत 'सप्तपर्णा' के अनुवादों में उनको अपनी राह में चरम सफलता मिली है, उन्होंने संस्कृत कवियों की आत्मा तथा उनके काव्य-स्वरूप को पहचाना है पर आज की हिन्दी, जो अभिव्यंजनावाद, एवं छायावाद में ढलकर लाक्षणिकता की ओर लुढ़कती जा रही है जिसमें शब्दों के शिल्प के साथ-साथ, अर्थों की अभिव्यक्ति गिनती में कम पड़ रही है, उस हिन्दी में महादेवी जी के लिए कालिदास जैसे कवियों की कविता को काव्य-रूप में प्रस्तुत करना हास्यास्पद हो गया है। कालिदास की कविता के विषय में आचार्य राजानक ने चर्चा करते हुए उस कविता की विशिष्ट शैली की व्याख्या की है—

> सोऽर्थः तद्व्यक्ति सामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन
> यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः।

सचमुच कालिदास के ध्वनि काव्य का अर्थ और उसे व्यक्त करने वाला शब्द दोनों कवि की विरल उपलब्धि हैं, उन शब्दों और अर्थों के दुष्कर अभिज्ञान ने ही कालिदास को

महाकवि की संज्ञा दी है। महाकवि की वह संज्ञा बहुत सटीक थी क्योंकि डेढ़ हजारवर्ष के बाद भी कालिदास की कृतियों में अब भी जवानी के साथ वह सार्थक है।

हिन्दी में अनेक कवियों ने कालिदास को काव्य में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, उनसे महादेवी के प्रयत्न की तुलना करना उचित नहीं है। इन्होंने कालिदास को एक नये रूप में प्रस्तुत कर नया मापदंड रखा है। कालिदास तथा संस्कृत के अन्य उत्कृष्ट कवियों के इस हिन्दी काव्य-रूपान्तर से हिन्दी की छायावादी शैली को समझने में हमें सुविधा मिलेगी। दो भिन्न पदार्थों के मेल से उनके विरोधी गुणों की प्रतिक्रिया जैसे उनके गुणों का स्पष्ट निर्देश करती है वैसे ही छायावादी शैली के प्राण इन रूपान्तरों में बिखर गये हैं। एक ओर ध्वनि-गम्भीर विद्युत्-अभिव्यक्ति के, संस्कृत कवियों के काव्य-अर्थ और दूसरी ओर उन्हें अपनी अँकवार में भरनेवाली अष्टवक्रा छायावादी शैली, जिस बेचारी को ध्वनि गम्भीर सुपुष्ट और बिजली जैसे तेज अर्थ अपनी छाती से कभी लगाने को मिले ही नहीं। यह विचित्र संयोग इन रूपान्तरों में है और निश्चित रूप से इसका परिणाम छायावादी शैली अथवा कवयित्री—दो में से एक की दुर्बलता की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। इस दुर्बलता का यह भी नतीजा हुआ है कि काव्य रूपान्तर अनावश्यक रूप से अभिधा में बिखरता चला गया है। हाँ छायावादी शैली का गुण अलग-अलग बिखर कर सुस्पष्ट हो गया है, उसकी जाति पहिचानी जा सकती है।

पहले कालिदास के दो छन्दों का रूपान्तर लीजिए। 'कुमार सम्भव' का पहला छन्द है—

> अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
> हिमालयो नाम नगाधिराजः,
> पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य
> स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।

महादेवी ने इसका अनुवाद किया है—

> पूर्व और पश्चिम सागर तक
> भू के मानदण्ड-सा विस्तृत,
> उत्तर दिशि में दिव्य हिमालय
> गिरियों का अधिपति है शोभित।

—सप्तपर्णा पृष्ठ १५७

मूल छन्द में ध्वनि-अर्थ की आत्मा चार शब्दों में हठात् प्रस्फुटित हो रही है और इसी में कालिदास का कवित्व है। ये चार शब्द हैं—देवतात्मा, अवगाह्य, स्थितः, मानदण्डः। हिमालय 'देवतात्मा' है, आत्मा कहने से चेतन का बोध हो जाता है और तब देवतात्मा हिमालय अपने आप देश की उत्तर दिशा में स्थित होकर इस देश का कभी न डिगने वाला प्रहरी सिद्ध हो जाता है। महादेवी जी ने देवतात्मा के स्थान पर 'दिव्य' लिखा है, दिव्य का प्रयोग अधिकांश अचेतन पदार्थ के लिए होता है, अगर यह न भी हो तो 'देवतात्मा' की तुलना में नितान्त हल्का अर्थ-बोध 'दिव्य' शब्द से होता है। कालिदास के 'अवगाह्य' शब्द का अर्थ था, पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रों में घुसकर आलोडन करने वाला हिमालय, जिसकी अभिव्यक्ति यों होती थी कि दो ओर से समुद्र से घिरे हुए इस विशाल देश को, शेष दो ओर से यह ऊँचा पहाड़ घेर कर और भी सुरक्षा प्रदान कर रहा है, पर यह अवगाह्य' शब्द महादेवी जी के रूपान्तर में 'तक' शब्द में उतारने की चेष्टा की गई है। 'तक' पद में हिमालय का वह कर्तृत्व नहीं है जो 'अवगाह्य' शब्द में विद्यमान है। 'अवगाह्य' जहाँ क्रिया और व्यापार का बोधक है वहाँ 'तक' केवल सम्बन्ध मात्र का बोध कराता है। तीसरा शब्द है 'स्थितः'। यह शब्द भी दृढ़ चेतन आत्मा की सावधान स्थिति का ही संकेत है और महादेवी जी ने इसे कर दिया है—'विस्तृत' अर्थात् फैला हुआ, सही अर्थ में पत्थरों का हिमालय, जिसमें राष्ट्र की कोई आत्मा नहीं है, वह है—पत्थर का फैलाव और दृढ़ घनत्व मात्र, नितान्त अचेतन। चौथा शब्द है—मानदण्डः—पृथ्वी के विस्तार को एक बार में ही नाप देने वाला मापक। ऊपर जिस 'विस्तृत' पद की चर्चा की गई है, यह कृदन्त-पद हिमालय और मानदण्ड दोनों के साथ जुड़ा है, और इसने 'मानदण्ड' पद के ऊर्जस्वल अर्थ पर पानी फेर दिया है। अर्थात् दृढ़ मापक नहीं, लम्बाई गिनने वाली रस्सी, फीता। यह हुई एक छन्द के रूपान्तर की व्याख्या।

अब दूसरा छन्द लीजिए। 'सप्तपर्णा' में 'मेघदूत' की कुछ पंक्तियों के अनुवाद हैं, पर यह अनुवाद ऐसे ढंग से हुआ है कि अर्थ की संगति टूटती जाती है। वस्तुतः कवयित्री ने मेघदूत के कुछ अर्थ-बोधों को हलके-हाथ लेकर गीत-

गुम्फन किया है, जिसकी टेक है—"आषाढ़ मास का प्रथम दिवस आया,' और इस प्रकार यहाँ स्पष्ट हो गया है कि ध्वनि-गम्भीर कालिदास के काव्य-अर्थ को लाक्षणिक छाया-वादी शैली में फैलाकर रखने की चेष्टा की गयी है और इस प्रकार इन विस्तृत पंक्तियों में मूल अर्थ-बोध न आकर उनका विकृत अर्थ उपस्थित हो गया है, कहीं-कहीं विपरीत अर्थ भी। कालिदास का मूल छन्द है—

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्गय शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु,
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम्।

—पूर्व मेघ १२

इसकी ऊपर की ही दो पंक्तियों का अनुवाद सप्तपर्णा में किया गया है—

वन्द्य राम-पद से चिह्नित जो,
पर्वत तुमसे आलिङ्गित जो,
उस संगी से आज विदा
लेने का क्षण आया।
आषाढ़ मास का
प्रथम दिवस आया।

—सप्तपर्णा पृष्ठ १८६

इसी प्रकार मेघदूत के कुछ अन्य छन्दों की दो पंक्तियों तक के ही अनुवाद गीत में किये गये हैं। जिनसे कालिदास के पूर्ण अर्थ का बोध इन रूपान्तरों में नहीं हो पाता। और यह कालिदास का काव्य न रहकर उनका जूँठन मात्र रह जाता है। ऊपर के श्लोक की दो पंक्तियों में यक्ष मेघ से रामगिरि पर्वत को आलिङ्गन कर जाने की आज्ञा लेने की सलाह देता है और इसका कारण नीचे की पंक्तियों में स्पष्ट करता है—क्योंकि रामगिरि पर्वत तुम्हारा बहुत स्नेही है, वर्ष में एक ही समय तो तुम्हारी उससे भेंट होती है और तब वह प्रेम में विह्वल होकर चिर वियोग में तपे हुए आँसू बहाने लगता है; इस स्नेह-संकुल दशा में तुम्हें अधिक समय तक इस पर्वत के पास निवास करना चाहिए, लेकिन यदि तुम रुक गये तो मेरे कार्य में विलम्ब हो जायगा अतः इससे अच्छी तरह गले मिलकर जाने की आज्ञा माँगो।

यह तो हुआ श्लोक का अर्थ। अब रूपान्तर पर आइए। पहले तो इस प्रकार रूपान्तर करना कि दो पंक्तियों के अर्थ को बिलकुल छोड़ दिया जाय, जो कारण के रूप में निबद्ध हैं और कार्य-रूप पंक्तियों के अर्थको ले लिया जाय, काव्य अर्थ की मर्मस्पर्शिता को ही समाप्त करना है। जिन दो पंक्तियों का अनुवाद हुआ है वह भी अनर्गल प्रलाप बन गया है। कालिदास की पंक्तियों में मेघ को कहा जाता है कि वह पर्वत को आलिंगन करे, क्योंकि उससे आज्ञा लेकर जाना है; रूपान्तर में पर्वत ही मेघ से आलिंगित है। मानो पर्वत मेघ की प्रिया है कि उसे देखकर झट से आलिंगित हो उठी; रूपान्तर हास्यास्पद हो गया—इसमें कोई सन्देह नहीं। कालिदास ने यहाँ दो मित्रों—मेघ और रामगिरि पर्वत—के प्रेम का आदान-प्रदान दिखाया है, जिसमें से मेघ को कार्य-वश सन्देश लेकर दूर जाना है अतः इस वियोग में प्रथम आलिंगन का व्यवहार (प्रेम की अधीरता) मेघ के पक्ष में ही उचित है, जैसा कि कालिदास ने किया है, पर महादेवी जी उसे उलट गईं। मेघ मिले या न मिले, पर्वत औरत की भाँति विवश होकर पहले ही लिपट गया और रूपान्तर की पंक्ति बन गई—'पर्वत तुमसे आलिंगित जो।'

अर्थ के पूर्व पंक्ति में ही विकृत हो जाने से आगे की पंक्ति और भी बिगड़ गई—"उस संगी से आज विदा लेने का क्षण आया।" यहाँ 'आज' शब्द अत्यन्त व्यर्थ साबित होता है। पंक्ति का अर्थ यों ध्वनित हो रहा है—"जिसके साथ तुम वर्षों साथ रहे आज उससे विदा होने का क्षण आ गया।" परन्तु यहाँ इस ध्वनित अर्थ की क्या आवश्यकता थी? यहाँ तो मेघ आज ही पर्वत के पास आया है, फिर आज विदा होने का क्षण कैसा? इस 'आज' शब्द की क्या आवश्यकता है जो व्यर्थ ही 'विदा लेने का क्षण' के साथ मिलकर वर्षों साथ रहने का अर्थ ध्वनित करता है जब कि आज के पूर्व मेघ और पर्वत दोनों एक दूसरे से विमुक्त रहे हैं।

'विदा लेने का क्षण' यह रूपान्तर भी उचित नहीं प्रतीत होता। 'आपृच्छस्व' का अर्थ आज्ञा लेने की अभिव्यक्ति करता है। इसी प्रकार रूपान्तर में वन्दनीय रामपद से पर्वत को चिह्नित बताया गया है, पर मूल में पर्वत की मेखलाएँ वन्द्य राम-पद से अंकित हैं, मेखलाओं के अंकित होने में पर्वत के विहरण-योग्य जिन मनोरम स्थलों की ओर अर्थ ध्वनित होता है वह सब अभिव्यक्ति इस

साधारण सी तुकबन्दी में कहाँ है—'वन्द्य राम-पद से चिह्नित जो'।

मेघदूत के जिन स्थलों का अनुवाद कालिदास की विराट राष्ट्रीय भावना का द्योतक होता, उन स्थलों को तो चुना ही नहीं गया; उज्जैनी, देवगिरि, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, कैलाश आदि ऐसे स्थल थे। ठेठ प्राकृतिक वर्णनों को रूपान्तर में लिया गया है। लेकिन वन के गुरुकुल में स्वाध्याय करने वाले संस्कृत के इन कवियों को प्रकृति के मर्म की जो अनुभूति एवं विदग्धता प्राप्त थी वह रूपान्तर-कर्त्री छायावाद की प्रतिष्टात्री में थोड़े अंश में भी नहीं है और उनसे छोटी-छोटी भूलें भी ऐसे प्रसंगों में हो जाती हैं, जो नहीं होनी चाहिएँ थीं, महाकवि भवभूति का यह श्लोक लीजिए -

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि,
आमंजुवंजुललतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि।

इसका रूपान्तर किया गया है—

ये वे ही गिरि मुखर, मयूरों की केका से
वनस्थली है वही मत्त हरिणों से संकुल,
जहाँ निचुल पादप जल में गहरे डूबे हैं
वही नदी तट जहाँ मंजु लतिकाएँ वंजुल।

—सप्तपर्णा पृष्ठ २०२

इस रूपान्तर की अन्य बातें छोड़कर केवल एक साधारण बात की चर्चा कर देना ही पर्याप्त होगा। भवभूति ने जो वर्णन किया है उसके अनुसार राम ने पहले (यह वर्णन राम के मुख से हुआ है) नदी तटपर फैली हुई वंजुल लताओं का कुञ्ज देखा, फिर नदी के जल में डूबे हुए निचुल के पौदों को; हमारे ख्याल से प्रकृति-निरीक्षण का यही क्रम ठीक है परन्तु रूपान्तर में पहले जल में डूबे निचुल दिखाई पड़े, फिर तट पर वंजुल लताओं के कुञ्ज। मानों देखनेवाला नदी की धारा से बाहर निकला था, स्थल से नहीं आया था।

वाल्मीकि के दो साधारण श्लोकों के अनुवाद की बानगी भी देखिए -

स्नान हित पहुँचे तपोव्रत
तीर्थ तमसा - तीर,
शिष्य से बोले, अकर्दम
देख उज्ज्वल नीर!
वत्स! स्वच्छ प्रसन्न जल की
देख निर्मल कान्ति,
याद आती सन्त मन की
विगत - कल्मष शान्ति!

—सप्तपर्णा पृष्ठ ११५

इसका मूल है—

स तु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा
शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम्।
अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज! निशामय
रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा।

- बा० रा० बा० सर्ग २।४-५

मूल में स्पष्ट ही अकर्दम शब्द तीर्थ (घाट) का विशेषण है और रूपान्तर में जल का विशेषण हो गया है। मूल में मुनि तमसातीर पर पहुँचकर कीचड़-रहित घाट को देखकर शिष्य भरद्वाज से घाट और प्रसन्न जल की प्रशंसा करते हैं। अनुवाद में सीधे घाट पर ही मुनि को पहुंचाया जाता है और जल की प्रशंसा करायी जाती है, यह अक्रम वर्णन मूल के अर्थ को ही भ्रष्ट कर देता है। रूपान्तर को जितना ही ध्यान से पढ़िये, उतना ही अनुवाद अपने भ्रष्ट रूप को सामने खोलता जाता है। मुनि तमसा में स्नान करने गये थे, वे स्वच्छ जल को देखकर प्रसन्न हुए और उसी की प्रशंसा भी करते हैं। तथा उसी स्वच्छ जल की उपमा सन्त मनुष्य के प्रसन्न मन से देते हैं। परन्तु रूपान्तर में व्यर्थ ही वर्णन में पूँछ जोड़ दी गयी जल की निर्मल कान्ति तथा मन की विगत-कल्मष शान्ति। और इस पूँछ को जोड़ने के साथ इस वर्णन का कान जो मूल में था—'भरद्वाज' उसे निकाल दिया गया, जिससे हम प्रसंग का बोध करते।

इसी प्रकार वाल्मीकि के प्रकृति वर्णनों का अनुवाद और भी गलत हुआ है।

वेद के मंत्रों के अनुवाद में भी, जहाँ अत्यन्त सशक्त शब्द चाहिए थे, मूल अर्थ के साथ उनकी निकटतम अन्विति होनी चाहिए थी, यही चलवाऊ छायावादी हिन्दी प्रयुक्त की गई है। और हमें निराश होकर यही कहना पड़ता है कि अर्थ और शब्द की प्रकृति का ज्ञान महादेवी जी को नहीं है। अथर्व वेद का यह मंत्र लीजिए—

अन्ति सन्तं न जहाति
अन्ति सन्तं न पश्यति।

देवस्य पश्य काव्यम्
न ममार न जीर्यति॥
—अथर्व वेद १०।८

इसका अनुवाद है—

जिस समीपवर्ती से होते दूर न क्षणभर
जो समीप है किन्तु देखना जिसका दुष्कर,
देखो, तुम उस सृजनशील का काव्य मनोहर
अमर और नित नूतन जो रहता है निर्जर।
—सप्तपर्णा पृष्ठ १०४

इसमें केवल 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' के अनुवाद पर ध्यान दीजिए। इसका अर्थ है—जगत् के स्रष्टा उस देव के इस सृष्टि-रूप काव्य को देखिए, जो न कभी मरता है, न ही पुराना पड़ता है! अनुवाद में एक तरह से व्याख्या की गई है, पर आवश्यक पद की व्याख्या भी नहीं है जो पाठक को अर्थ-बोध में सहायता करती। वेद के मन्त्र-द्रष्टा का 'काव्य' पद से क्या अभिप्रेत था, इसे तो स्पष्ट नहीं किया गया लेकिन देव के स्थान पर सृजनशील शब्द रख दिया गया, जिसकी आवश्यकता नहीं थी यदि काव्य के साथ सृष्टि शब्द होता। मूल मंत्र में 'न ममार' तथा 'न जीर्यति' पद अर्थ की जिस तीव्रता की अभिव्यक्ति हमारे मानस में करते हैं वह 'अमर' और 'निर्जर' पदों में नहीं है, जो अनुवाद में आये हैं, इन पदों के साथ अनुवाद में 'नित नूतन' पद घुसेड़ने का प्रयत्न भी भोंड़ापन है। 'न मरता है' 'न पुराना पड़ता है' की अर्थ—व्यक्ति में यह बोध छुपा है कि उसे 'मारने' तथा 'वृद्ध करने' के तत्त्व निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं पर वह सदैव 'न मारा गया, न पुराना पड़ा।' बिजली-सा यह अर्थ 'न' पद पर चढ़कर कड़क रहा है, जिसे सनुवाद में 'अ' तथा 'निः' उपसर्ग रखकर उपेक्षित कर दिया गया, उसके साथ ही मूल मन्त्र का अर्थ भी दूर चला गया। यह है - शब्द तथा अर्थ की प्रकृति के सम्बन्ध में प्रयोग की अनभिज्ञता।

संस्कृत कवियों के काव्य के आधार पर यह काव्य-प्रणयन नहीं है, विशुद्ध अनुवाद है, यद्यपि दोनों दृष्टियों से यह आलोच्य ही है। अनुवाद होने के कारण इसकी व्यर्थता अधिक निर्लज्ज हो गई है। महादेवी जी ने पांडित्यपूर्ण भूमिका में इसे अनुवाद ही उद्घोषित किया है—

"अनुवाद के साथ मूल देने की औपचारिकता का निर्वाह नहीं किया गया; जिनका संस्कृत मूल से परिचय है, उनके निकट अनुवाद पढ़ने का आयास, चले हुए राजमार्ग की ओर पगडंडियों से लौटने के समान है। और जो संस्कृत से अपरिचित और उसकी दुरूहता सम्बन्धी किम्वदन्तियों से अति परिचित हैं, वे संस्कृत के साथ मुद्रित हिन्दी की पुस्तक से भी सभीत रहते हैं।"
—सप्तपर्णा पृष्ठ ६९

परन्तु हमारी समझ में तो अनुवाद के साथ मूल संस्कृत भी देने में महादेवी जी स्वयं भयभीत हुई हैं। मूल न रहने से विज्ञ पाठक उनके भ्रष्ट अनुवाद का अनुमान न कर पायेंगे, जब मूल खोज कर पढ़ेंगे तभी उन्हें उसका बोध होगा।

'सप्तपर्णा' में ६९ पृष्ठों की लम्बी भूमिका अवश्य कुछ अर्थों में अभिनव-साथ ही विश्लेषणपूर्ण है, अनुवाद तो नहीं किन्तु इस भूमिका के लिए सप्तपर्णा को पढ़ना चाहिए।

महादेवी जी हिन्दी-काव्य की एक विशिष्ट शैली की प्रवर्तिका एवं उसके स्वरूप की प्रतिष्ठात्री हैं, हम हिन्दी-प्रेमियों के लिए वे आदरणीय हैं, उनके कृतित्व के दोषों को उद्घाटित करना हमारा स्वयं अपने दोषों का प्रकटीकरण है और यह हमारी धृष्टता है। लेकिन हमारी यह धृष्टता क्षम्य हो जायगी उस तुलना में, जब पाठक संस्कृत के महाकवियों के कृतित्व के साथ अनुवाद का खिलवाड़ समझ सकेंगे। 'सप्तपर्णा' में केवल महादेवी जी की अब तक की अर्जित प्रतिष्ठा तथा उनके व्यक्तित्व एवं अधिकार की मुहर ही ऊपर लगी है, अन्दर कुछ नहीं है, और उसी मुहर के बल पर राजकमल-प्रकाशन ने इसे प्रकाशित कर मात्र २१२ पृष्ठ की पुस्तक का दाम ७ रुपये रख दिया है।

'सप्तपर्णा' से इतना लाभ तो अवश्य हुआ है कि संस्कृत न जानने वाले संस्कृत के विख्यात कवियों की वाणी की कुछ बानगी पा जायेंगे। कला और काव्य का मापदंड रखने वालों को इससे निराशा होगी, यदि वे संस्कृत के मूल से परिचित होंगे और कालिदास के कृतित्व की प्रकृति का उन्हें अन्दाज होगा। पर इन अलमस्तों की निराशा से उस अल्पलाभ को हम श्रेयस्कर समझते हैं।

महादेवी : स्मृति की रेखाएँ

डॉ० विश्वनाथ शुक्ल

'सत्य मिथ्या से कहीं अधिक विचित्र होता है' इस उक्ति को यथार्थ परिणति हमें महादेवी जी के संस्मरणों और रेखाचित्रों में मिलती है। महादेवी जी की काव्य कृतियाँ एवं निबन्ध जितने लोकप्रिय हैं, उनके सस्मरणात्मक रेखा-चित्र—'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र' एवं 'पथ के साथी' उनसे कुछ कम लोकप्रिय एवं चित्ताकर्षक नहीं। अपितु कहा जा सकता है कि साहित्य की काव्य, निबन्ध आदि विधाओं में अपनी कुछ विशिष्ट नियम बद्धताओं, क्लिष्टताओं एवं सहज दार्शनिकता के कारण जनसाधारण की वह अप्रतिहत गति नहीं रहती जो हास्य, व्यंग्य से आवेष्टित करुण जीवन-चित्रों के मानस-प्रत्यक्ष में होती है। इन संस्मरणों एवं रेखाचित्रों में प्रायः पाठक कहीं अपनी स्वानुभूत जीवन-यात्रा के कटु-तिक्त मधुर फल चखता है और कहीं अपनी या अपने किसी निकटतम व्यक्ति की झाँकी करता चलता है। इस प्रकार उसके आनन्दबोध की सान्द्रता द्विगुणित हो उठती है और फिर इन रेखाचित्रों और संस्मरणों के आकलन का उद्देश्य सस्ता मनोरंजन मात्र न होकर मानव-जीवन का गम्भीर अध्ययन हो तो समाज को न केवल आत्मचिन्तन और आत्मनिरीक्षण की प्रेरणा मिलती है, अपितु अपने चारों ओर विस्तृत उत्पीडन और अन्याय में उसे अपना व्यक्त और अव्यक्त भाग भी दृष्टिगत होने लगता है और तब वह मौन पश्चात्ताप और सच्चे प्रायश्चित की अग्नि से स्वयं को भी शुद्ध करने की दिशा में प्रयत्नशील होता है। महादेवी जी के संस्मरणात्मक रेखाचित्र इसी उच्च उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखे गये हैं। उनकी यात्राएँ, कल्पवास एवं भ्रमण मानवजीवन के अध्ययन का जीवित-जागृत साधन हैं—उन्होंने लिखा है—

"मुझे इस कल्पवास का मोह है, क्योंकि इस थोड़े समय में जीवन का जितना विस्तृत ज्ञान मुझे प्राप्त हो जाता है, उतना किसी अन्य उपाय से सम्भव नहीं। और जीवन के सम्बन्ध में निरन्तर जिज्ञासा मेरे स्वभाव का अंग बन गई है।"··· ऐसा सनकी व्यक्ति मनुष्य जीवन के प्रति निर्मोही हो, तो आश्चर्य की बात होगी, पर उसकी, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु आदि के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानने की इच्छा का सीमातीत हो जाना स्वाभाविक है।···गाँव के मेले से लेकर कल्पवास तक सब मेरे लिए पाठशाला हैं, पर इसमें मैं मोह बढ़ाना ही सीखती हूँ, विराग साधन नहीं।" (स्मृति की रेखाएँ, संस्मरण ५, पृ० ७०, ७१)। 'यामा', 'दीपशिखा' 'सान्ध्यगीत' और 'नीरजा' की दार्शनिक, रहस्य एवं छायावेष्टित, वीतराग कवयित्री महादेवी इन संस्मरणों में भौतिक मानव जीवन के प्रति जिन आस्थावान्, स्नेहार्द्र और सहानुभूतिमय हृदय से स्पष्टतया व्यक्त हुई हैं, वह आह्लादपूर्ण विस्मय का विषय है। इन संस्मरणों को महादेवी जी की आत्मकथा का मार्मिक प्रसंग कहना सर्वाधिक उपयुक्त है। भविष्य में जब उनकी व्यवस्थित जीवनी लिखी जायगी तो इन संस्मरणों का असाधारण महत्त्व होगा और इनमें इतस्ततः बिखरे उनके आत्मवृक्ष बहुमूल्य सामग्री के रूप में सग्राह्य होंगे। इन संस्मरणों में महादेवी जी की व्यक्तिगत रुचि-अरुचियों, स्वभाव, नित्यनैमित्तिक कार्यों और उद्देश्यों के साथ उनके जीवन-

दर्शन का विशाल परिवेश दिखाई देता है। व्यक्ति-जीवन की इतनी निकटता भी इन संस्मरणों और रेखाचित्रों की शुद्ध साहित्यिकता और सार्वभौमता का लेशमात्र भी अपकर्ष नहीं कर सकी, अपितु साधारणीकरण की वह अद्भुत शक्ति इनमें आत्मतत्त्व की भाँति सुप्रतिष्ठित है, जो श्रेष्ठ साहित्य का प्रधान लक्ष्य है।

"स्मृति की रेखाएँ" में महादेवी जी ने सात संस्मरणात्मक रेखाचित्र अंकित किये हैं। पहले में उनकी परम अनुगता परिचारिका भक्तिन का, दूसरे में एक फेरी वाले वस्त्र विक्रेता चीनी का, तीसरे में उनके बद्री-केदार-यात्रा के दो कुली बन्धुओं, जंगबहादुर और धनिया का, चौथे में एक निर्धन गृहबधू मुन्नू की माई का, पाँचवें में कल्पवास के समय परिचित एक भावुक मानव ठकुरीबाबा का, छठे में एक स्वाभिमानिनी और उत्पीड़िता रजक बाबू का और सातवें एवं अन्तिम में एक मूक किन्तु परम ममतामयी माता का चित्र है। इनमें से कौनसा चित्र अधिक करुणा विगलित, तेजस्वी एवं जीवन्त है, यह निर्णय करना कठिन है। सभी में अपनी-अपनी वक्रिय भंगिमा है, अपना-अपना रंग है और अपना-अपना प्रभाव है। आइए, इस चित्राधार (एलबम के चित्रों को कुछ निकट से देखें।

इन सभी चरित्रों के शब्द चित्रों के साथ ही महादेवी जी ने अपनी चित्रकला की सहज प्रतिभा का सुन्दरतम उपयोग करते हुए उन व्यक्ति विशेषों का एक-एक 'रेखाचित्र' भी प्रारम्भ में ही अंकित कर दिया है, जिससे ये संस्मरणात्मक रेखाचित्र अपने नाम की यथार्थता प्रमाणित करते हुए और अधिक सशक्त हो उठे हैं।

अंकनीय चरित्र के बाह्यरूप और पाँच भौतिक मानवदेह का जो शब्द चित्र महादेवी जी प्रारंभ में ही, अथवा प्रसंगानुसार मध्य में खींच देती हैं, वह स्थूल से कहीं अधिक सूक्ष्म होता है, वह न केवल पात्र के बाह्य रूप और व्यक्तित्व का सही-सही चाक्षुष प्रत्यक्ष-सा करा देता है, अपितु अंगों प्रत्यंगों एवं उनके वर्ण, विन्यास और आकार-प्रकार के अद्भुत वर्णन से पात्र के गुण, कर्म, स्वभाव जैसी अप्रत्यक्ष और अमूर्त विशेषताओं का ज्ञान करा देता है। अपनी परिचारिका भक्तिन को चित्रित करते हुए वे लिखती हैं—

"छोटे कद और दुबले शरीर वाली भक्तिन अपने ओठों के कोनों में दृढ़ संकल्प और छोटी आँखों में एक विचित्र समझदारी लेकर जिस दिन पहले-पहले मेरे पास आ उपस्थित हुई थी, तब से आज तक एक युग का समय बीत चुका है।" (स्मृ० रे० पृ० ५) इसी प्रकार फेरी लगाकर कपड़े बेचने वाले चीनी का चित्र देखिए—"कुछ समतल मुख एक ही साँचे में ढले से जान पड़ते हैं और उनकी एकरसता दूर करने वाली, वस्त्र पर पड़ी हुई सिकुड़न जैसी नाक की गठन में भी विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। कुछ तिरछी, अधखुली और विरल भूरी बरुनियों वाली आँखों की तरल रेखाकृति देखकर भ्रान्ति होती है कि वे सब एक नाप के अनुसार किसी तेज धार से चीर कर बनाई गई हैं...।" पर आज मुखों की एक रूप समष्टि में मुझे एक मुख आर्द्र नीलिमामयी आँखों के साथ स्मरण आता है, जिसकी मौन भंगिमा कहती है—हम कार्बन की कापियाँ नहीं हैं।"

(स्मृ० रे० पृ० २०, २१)

अपने चरित नायकों अथवा नायिकाओं के रूप एवं वेशभूषा के वर्णन में महादेवी जी हास्य-व्यंग्य और करुणा का जो पुट देती हैं वह इतना स्वाभाविक और यथार्थ होता है कि अनिवार्य जैसा लगता है। उनके साधन हैं, सटीक विशेषण, विचित्र किन्तु अत्यन्त उपयुक्त उपमान। अलंकार-शिरोरत्न उपमा उनकी शैली का एक अत्यन्त सशक्त और प्रमुख अंग है। वस्तु जगत् के अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण और गहन जीवन चिन्तन ने ही उनकी भाषा को वह शक्ति दी है जिससे वे अभिप्रेत अर्थ को अत्यन्त सरलता और सरसता के साथ व्यक्त कर देती हैं। शब्द शक्ति के उपयोग के सम्बन्ध में महादेवी जी की भाषा के लिये "एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गेलोके च कामधुग्भवति" वाली उक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। रूप वर्णन में ही नहीं, प्रकृति-चित्रण, मनोवैज्ञानिक सत्य अथवा किसी दार्शनिक अथवा सामाजिक सत्य के उद्‌घाटन के समय भी उनकी वाणी कामधेनु के समान उनका ईप्सित अर्थ पूर्ण करती चलती है। हाँ, तो बात रूप वर्णन की चल रही थी, नेपाली कुली जो भारतीय तीर्थ यात्रियों की बद्री-केदार-यात्रा का सम्बल वहन करते हैं, उनकी दारिद्रय, दैन्य और करुणाक्रान्त सृष्टि का व्यंग्यपूर्ण चित्र जहाँ हास्य का

आवाहन कहता है, वहां हमारे आभिजात्य सम्पन्न नागरिक समाज द्वारा अपने सजातियों के प्रति बरते गये उपेक्षा एवं अन्यायों पर रुलाई भी आती है—कुलियों के दैहिक रूप एवं वेषभूषा का यह वर्णन कितना सजीव, मार्मिक एवं मौलिक है—

"यह डोटियाल संज्ञाधारी जीव भी विचित्र हैं"......"रूप में यह सब शिव के बराती हैं—केवल वे कुरूप हैं, दीन नहीं, और यह दीन अधिक हैं कुरूप कम ।"

"कोई टाट का सिला विचित्र पैजामा और फटे हुए काले खुरदरे कम्बल का गिलाफ जैसा कुरता गले में लटकाये भालू के समान घूम रहा है। कोई कोपीनधारी तार-तार फटा सूती कोट पहने कमर से बोझ बाँधने की मोटी रस्सी लपेटे और रूखे खड़े बालों को खुजलाता हुआ सा ही जैसा काँटेदार जन्तु जान पड़ता है। किसी के, कठिन एड़ी और ऐंठी फली उँगलियों वाले पैर सड़क कूटने के दुमुंठ से स्पर्द्धा करते हैं और किसी के स्वरचित मूँज की खुरदरी चट्टी में सिकुड़ बँधकर पंजों की भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं ...... ।"

"कोई धूप में बैठ कर कपड़ों में से जुएं बीनता हुआ वानर का स्मरण दिलाता है और कोई दूकानदार से माँग जाँच कर मुख तथा हाथ पैर से मले हुए तेल के कारण जल से बाहर निकले हुए जल जन्तु की तरह चमकता है। ये भी मनुष्य हैं इसे हम अभ्यास-वश ही समझते हैं इनमें मनुष्य का रूप पाकर नहीं ।" (स्मृ० रे० पृ० ३२) अन्तिम वाक्य में महादेवी जी ने अपने जिस सुपरिचित साधन-कारुण्यबोध को ग्रहण किया है वह इन संस्मरणों का प्राण है। मनुष्य देह में उत्पन्न होकर भी उसके उपयुक्त जीवन यापन की साधारणतम सुविधाओं से वंचित रहने पर ये मजदूर मनुष्येतर जन्तुओं के रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। दारिद्रय इनके जन्म के साथ ही गठबन्धन करके आता है। शरीर धारण के लिए ही जब मोटा-झोंटा पर्याप्त अन्न इन्हें नहीं मिलता तो शरीर पोषण के उपयुक्त पौष्टिक खाद्य पदार्थों की प्राप्ति की कल्पना भी इनके लिए असम्भव है। अन्न के उपरान्त शरीर की रक्षा का दूसरा महत्त्वपूर्ण साधन वस्त्र है। इसकी उपलब्धि भी उतनी ही जटिल है। याचना द्वारा प्राप्त परिधान में जीर्णता, मलिनता और बेडोल आकार प्रकार, अनिवार्य रूप से विद्यमान रहते हैं, जिसकी ओर लेखिका ने संकेत किया है—

"पर्वतीय पथ और पत्थरों की चोट से टूटे हुए नाखून और चुटीली उंगलियों के बीच में ढाल बनी हुई मूँज की चप्पल मानो मनुष्य को पशु बनाकर भी खुर न देने वाले परमात्मा का उपहास कर रही थी। पाँव से दो बालिश्त ऊँचा और ऊनी सूती पैबन्दों से बना हुआ पैजामा मनुष्य की लज्जा-शीलता की विडम्बना जैसा लगता था। किसी से कभी मिले हुए पुराने कोट में, नीचे के मटमैले अस्तर की झाँकी देती हुई ऊपरी तह तार तार फटकर झालरदार हो उठी थी और अब अपने पहनने वाले को एक जन्तु की भूमिका में उपस्थित करती थी। अस्पष्ट रंग और अनिश्चित रूप वाली दो रुपलिया टोपी के छेदों से रूखे बाल जहाँ-तहाँ झाँक कर मैले पानी और उसके बीच-बीच में झाँकते हुए सेवार की स्मृति करा देते थे।" (स्मृ० रे० पृ० ३३)

'स्मृति की रेखाएँ' के सातों पात्रों के जीवन में कितनी करुण विवशता है, यह कहने की अपेक्षा अनुभूति का विषय अधिक है। इनमें से भक्तिन मुन्नू की माई, बिबिया और गुँगिया तो उत्पीड़ित स्त्री पात्र हैं और फेरीवाला चीनी, जङ्गबहादुर उर्फ जङ्गिया, और ठकुरी बाबा समाज शोषित और प्रवंचित पुरुष पात्र। किन्तु इन तीन पुरुष पात्रों के साथ भी नारी-जीवन की करुण कथा अटूट सम्बन्ध में ग्रथित है। फेरी वाले चीनी की माँ और बहिन का जो चित्र लेखिका ने अंकित किया है, वह समस्त मानवता को आत्मग्लानि से भर देने की शक्ति रखता है। चीनी बालक की विमाता किस प्रकार बालक की बहिन के सुकोमल कौमार्य से व्यापार करती है और उसे अपनी वासना पूर्ति एवं लौकिक भोग का उपादान बना डालती है, यह कर्म मनुष्य से स्वार्थान्ध दानव बने मानव के लिये जितना शाश्वत एवं स्वाभाविक है, करुणार्द्र मानव मन के लिये उतना ही तीक्ष्ण विदारक प्रसंग भी।

"अनेक बार उसने ठिठुरती हुई बहिन की कम्पित उँगलियों में अपना हाथ रख उसके मलिन वस्त्रों में अपना आँसुओं से घुला मुख छिपा और उसकी छोटी-सी गोद में सिमटकर

भूख भुलाई थी। कितनी ही बार सवेरे, आँख मूँद कर बन्द द्वार के बाहर दीवार से टिकी हुई बहिन के ओस से गीले बालों में, अपनी ठिठुरी हुई उँगलियों को गर्म करने का व्यर्थ प्रयास करते हुए उसने पिता के पास जाने का रास्ता पूछा था।... पर, एक रात उसने बिछौने पर लेटकर बहिन की प्रतिक्षा करते-करते आधी आँख खोली और विमाता को कुशल बाजीगर की तरह मैली कुचैली बहिन का कायापलट करते देखा। उसके सूखे ओठों पर विमाता की मोटी उँगली ने दौड़-दौड़ कर लाली फेर, उसके फीके गालों पर चौड़ी हथेली ने घूम-घूम कर सफेद गुलाबी रंग भरा, उसके रूखे बालों को कठोर हाथों ने घेर-घेर कर सँवारा और तब नए रंगीन वस्त्रों में सजी हुई उस मूर्ति को एक प्रकार से ठेलती हुई विमाता रात के अन्धकार में बाहर अन्तर्हित हो गई।

बालक का विस्मय भय में बदल गया और भय ने रोने में शरण पाई—कब वह रोते-रोते सो गया, इसका पता नहीं, पर जब वह किसी के स्पर्श से जागा, तो बहिन उस गठरी बने भाई के मस्तक पर मुख रखकर सिसकियाँ रोक रही थी। उस दिन उसे अच्छा भोजन मिला, दूसरे दिन कपड़े, तीसरे दिन खिलौने, पर बहिन के दिनों-दिन विवर्ण होने वाले होठों पर अधिक गहरे रंग की आवश्यकता पड़ने लगी, उसके उत्तरोत्तर फीके पड़ने वाले गालों पर देर तक पाउडर मला जाने लगा।

बहिन के छीजते हुए शरीर और घटती शक्ति का अनुभव बालक करता था, पर वह किससे कहे, क्या करे? (स्मृ० रे० पृ० २४, २५) एक ओर मानव की चरम दैन्यमयी करुण असहायता और दूसरी ओर उसकी पाताल-गामी अधोमुखी वृत्तियों के दो छोरों को देखकर किस सहृदय का हृदय टूक-टूक न हो जायगा और किस न्याय-प्रिय व्यक्ति की भृकुटियाँ क्रोध से कुंचित और नेत्र आग्नेय न हो जाँयगे।

"स्मृति की रेखाएँ" इस प्रकार के अनेक विरोधी दृश्यों से गुजरती है। एक ओर चरम दारिद्रय, निस्सीम करुणा, दारुण दुःख, प्राणघाती विवशता में पलनेवाली उज्वल मानवता है तो दूसरी ओर भौतिक ऐश्वर्य, असीम निर्दयता, लौकिक सुख और अविचारित अन्याय से अहर्निश परिपुष्ट दानवता। दोनों विरोधी दृश्यों के युगवत् चित्रण से ही साहित्यकार की वह प्रभविष्णु प्रतिभा प्रकाश में आयी है, जो मानव समाज को बलात् अपने द्रुतगति से पतन की ओर बढ़ते हुए चरणों को रोकने का प्रयत्न करती है—यही तो साहित्य का चरम लक्ष्य—"शिवेतरक्षति" और "सद्यः पर निवृति" है।

अपने संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में महादेवी जी ने तथाकथित निम्न वर्ग के पात्रों को ही अंकित किया है। इनके चयन से उनके लोक जीवन के प्रति अगाध स्नेह और आकर्षण का प्रमाण मिलता है। आज की भौतिक यन्त्र-चालित कृत्रिम नागरिकता के सामने इस देश की सहज मानवीय उन्मेष और शीतल संस्पर्श से युक्त ग्रामीणता कितनी स्पृहणीय है, इसके लिए तीव्र अकुलाहट लेखिका के मन में निरन्तर बनी रहती है। और अपने संकुल नागरिक जीवन के दुर्वह भार से समय-समय पर मुक्ति पाने के लिए कभी के अटल और झूँसी जैसे गाँवों के एकान्त कोने में चिन्तन करने जाती है और कभी बदरी-केदार की हिम मण्डित श्रेणियों से परिवृत्त उपत्यकाओं में प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करती है। वहाँ सहज उन्मेष के साथ प्रवाहित होने वाली स्वच्छन्द और अनाविल जीवन धारा में अवगाहन कर के उन्हें जिस हल्केपन की अनुभूति होती है उसका आनन्द अनिर्वचनीय है। किन्तु इन स्थलों में अभाव और अन्याय से प्रेषित जीवन उनके मन को असीम ग्लानि और करुणा से भी भर देता है। गाँवों में अज्ञान अन्धविश्वास, निरक्षरता एवं तज्जन्य दुर्व्यसन स्वार्थ और वैमनस्य किस संवेदनशील मानव को क्षुब्ध न करेंगे। दरिद्रता की चक्की में निरन्तर पिसते हुए विशाल गृही, गृह कार्य में दिन-दिन छीजती हुई गृह वधू न केवल शारीरिक दंड का पुरस्कार पाती है, अपितु सास, नन्द, जेठ, जिठानियों और जिठोतों से अनेक मर्मान्तिक व्यंग्यों, लांछनों और अपशब्दों से मानसिक यातना का प्रसाद भी पाती रहती हैं। समाज के पंच सरपंच कभी उसके जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि दृढ़ चरित्र को भी जब दाँव पर लगा देते हैं, तब तो वह दुखिया नारी गंगा-यमुना के अतल गम्भीर और शीतल क्रोड में ही चिर विश्राम पा सकती है। रजक वधू बिबिया के संस्मरण

में सहज करुणा की जो चरम विवृत्ति क्रमशः होती है, उसके जोड़ का दूसरा चित्र खोज पाना सम्भव नहीं है—

''इस प्रकार की सांकेतिक भाषा में छिपे व्यंग्य सुनते-सुनते एक दिन बिबिया गायब हो गई।

सबको उसके बुरे आचरण पर इतना अडिग विश्वास था कि उन्होंने उसके इस तरह अन्तर्धान हो जाने को भी कलंक मान लिया। बहुत दिनों के उपरान्त जब मैं एक वृद्ध और रोगी पासी को दवा देने गई तब बिबिया के यात्रा सम्बन्धी रहस्य पर कुछ प्रकाश पड़ा। उसने बताया कि भागने के दो दिन पहले बिबिया ने उससे ठर्रे का एक अद्धा मँगवाया था। धोबिनों में वही इस लत से अछूती थी, इसी से पासी आश्चर्य में पड़ गया। दूसरे दिन जब पासी ने छन्ने में लपेटा हुआ अद्धा देकर शेष रुपये लौटाए तब उसने रुपयों को उसी की मुट्ठी में दबाकर अनुनय से कहा कि अभी वहीं रखे रहे तो अच्छा हो। गाँव की सीमा पर खेलती हुई कई बालिकाओं को, उसका मैले कपड़ों की छोटी गठरी लेकर यमुना की ओर जाते-जाते ठिठकना स्मरण है एक गड़-रिये के लड़के ने सन्ध्या समय उसे चुल्लू से कुछ पी-पीकर यमुना के मटमैले पानी से बार-बार कुल्ला करते और पागलों के समान हँसते देखा था।

तब मेरे मन में एक अज्ञातनामा सन्देह उमड़ने लगा। यात्रा का प्रबन्ध करने के लिए तो कोई बेहोश करने वाले पेय को नहीं खरीदता। कगार तोड़कर हिलोरें लेने वाली मद पी यमुना में तो कोई धोबी कपड़े धोने नहीं जाता इस प्रकार तर्क की कड़ियाँ जोड़ तोड़कर मैं जिस निष्कर्ष पर पहुंची उसने मुझे कँपा दिया।

आत्मघात मनुष्य की जीवन से पराजित होने की स्वीकृति है। बिबिया जैसे व्यक्ति पराजित होने पर भी पराजय स्वीकार नहीं करते। कौन कह सकता है कि उसने सब ओर से निराश होकर अपनी अन्तिम पराजय को भूलने के लिये ही यह आयोजन नहीं किया? संसार ने उसे निर्वासित कर दिया, इसे स्वीकार करके और गरजती हुई तरङ्गों के सामने आँचल फैलाकर क्या वह अभिमानिनी स्थान की याचना कर सकती थी? उस एकाकिनी की वह जर्जर तरी किस अज्ञात तट पर जा लगी, यह कौन बता सकता है।''

—स्मृ. रे. पृष्ठ ११६

एक परम स्वाभिमानिनी, निष्कलंक एवं सेवापरायणा परि-श्रमी नारी का यह दुःखद अन्त हमारे समाज के सम्पूर्ण अस्तित्व पर चुनौती है. इस उद्धरण से चरित्र के चरम विकाश और उसकी करुण परिणति कितनी सशक्त है। इससे जहाँ महादेवी जी के उत्तप्त एवं क्षुब्ध मानस की झाँकी मिलती है, वहाँ अन्याय और उत्पीडन के प्रति उनके उग्र प्रतिशोध का भी संकेत मिलता है।

स्मृति की इन रेखाओं में जीवन और जगत् की बहुरंगी आकृतियाँ उभरी हैं। कहीं साहित्य और मनोविज्ञान, धर्म और दर्शन, शिक्षा और संस्कृति जैसे गम्भीर विषयों पर महादेवी जी के मौलिक विचार हैं और कहीं खेत खलिहान, चूल्हे चक्की, मेले दशहरे, तीर्थ, देश-दर्शन, पत्र लेखन जैसे सामान्य विषयों पर उनकी प्रसन्न शैली में इतिवृत्ति भी अत्यन्त मनोरञ्जक एवं ज्ञानवर्द्धक हो उठा है। कल्पवास के समय गङ्गातट पर भजन सत्सङ्ग के जिस सात्विक और सान्द्र आनन्द का उन्होंने अनुभव किया, उस पर इस सभ्यता-दर्पित शिष्ट समाज के असंख्य कवि सम्मेलन और कवि गोष्ठियाँ निछावर की जा सकती हैं। उस सात्विक अनुभव के उपरान्त तो उन्होंने साहित्यिक सभा सोसाइटियों और कवि-सम्मेलन, गोष्ठियों के अखाड़ों और दंगलों से सदा के लिये अवकाश ले लिया। एक तिक्त विरक्ति के साथ उन्होंने लिखा है—

'कितने ही विराट् कवि-सम्मेलन, कितनी ही अखिल भार-तीय कवि गोष्ठियाँ मेरी स्मृति की धरोहर हैं। मन ने कहा—खोजो तो उनमें कोई इससे मिलता हुआ चित्र— और बुद्धि प्रयास में थकने लगी।'' (स्मृ. रे. पृष्ठ ९२) और इसके साथ ही महादेवी जी ने आज हिन्दी जगत् में प्रचलित कवि-सम्मेलनों, गोष्ठियों और उनके आयोजकों, कवियों, और श्रोताओं का जो व्यंग्यपूर्ण, यथार्थ और सटीक चित्र खींचा है, वह देखते ही बनता है—

''सजे हाल, ऊँचे मञ्च, माला-विभूषित सभापति मेरी स्मृति में उदय हो आये। उनके इधर-उधर देवदूतों के समान विराजमान कविगण रूप और मूल्य दोनों में अपूर्व थे। कोई फर्स्ट क्लास का किराया लेकर थर्ड की शोभा बढ़ाता हुआ आया था। कोई अपने कार्यवश पहले ही से उस नगर में

उपस्थित था। पर थोड़े समय के लिये इतनी फीस चाहता था, जिससे आना जाना और आवश्यक कार्य सम्पन्न होने के उपरान्त भी कुछ बच सके। किसी ने अपने काव्य की महार्घता बढ़ाने के लिये ही अपनी गलेबाजी का चौगुना मूल्य निश्चित किया था। मूल्य से जो महत्ता नहीं हो सकी यह वेशभूषा में प्रयत्क्ष थी। किसी के नये सिले सूट की अंग्रेजियत, ताम्बूलराग की स्वदेशीयता रञ्जित होकर निखर उठती थी। किसी का चीनांशुक का लहराता हुआ भारतीय परिधान सिगरेट की धूमुरेखाओं में उलझकर रहस्यमय हो रहा था, किसी के सिर के बाल आसानी से सज्जभूषा. के चमकीले फर्श की भ्रान्ति उत्पन्न करते थे। किसी की सिल्की शम्पू से धुली सीधी लटों का कृत्रिम कुञ्चन विधाता पर मनुष्य की विजय की घोषणा करता था।

कुछ प्राचीनता वादियों की कभी निर्निमष खुली आँख और कभी मीलित पलकें प्रकट करती थीं कि काव्यरस में विश्वास न होने के कारण उन्हें विजया से सहायता माँगनी पड़ी है।' (स्मृ० रे० पृष्ठ ९२)

फिर इन तथाकथित साहित्य महारथियों की परस्पर रागद्वेष पूर्ण झड़पें, फूहड़ परिहास, प्रशंसा के लिये व्यायाम एवं आयास और अन्त में अर्थ के लिए अनर्थ पूर्ण वाग्युद्ध कुछ ऐसे अप्रिय प्रसंग हैं, जिनका उन साहित्य व्यवसायों की शब्दाडम्बर युक्त आदर्श पूर्ण रचनाओं से कोई मेल नहीं बैठता। इसी कारण ऐसे मञ्चों से वक्ता और श्रोता दोनों ही रिक्त हृदय से लौटते हैं।

"स्मृति की रेखाएँ" में महादेवी जी सभी पात्रों के चित्रण में जो तथ्य ध्वनित करती और कहीं-कहीं स्पष्ट करती हैं — वह है ग्राम्य जींवन में धुन के समान व्याप्त अन्धविश्वास, अशिक्षा और निरक्षरता, जिसने इन श्रद्धालु स्नेही, सेवा व्रती और त्यागी मानव प्राणियों को मूक और बधिर बना रखा है। आजीवन शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने और शिक्षा प्रसार की ओर सहज रुचि एवं उसकी समस्याओं का क्रियात्मक ज्ञान होने के कारण महादेवी जी ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी-छोटी पाठशालाओं का प्रारम्भ करने के लिये निरन्तर सक्रिय रूप से प्रयत्नशील रही हैं, ग्रामीण बालकों को स्वयं शिक्षा देती रही हैं, किन्तु एक बार किसी गांव में फूटे खण्डहर के रूप में भूत डेरा बने हुये किसी श्रीमान् के मकान को जब उन्होंने पाठशाला रूप में परिणित करने के लिये उनकी स्वीकृति चाही तो उन्हें निषेधात्मक उत्तर मिला, जिससे उन्हें विस्मय से अधिक ग्लानि हुई। इसके बाद जब किसी बालक ने उनसे पूछा—"हमार इस्कुलिया कब खुली भाई ?" "तब अपनी समस्त आक्रोश मिश्रित करुणा के साथ वे कहना चाहती हैं—" अरे अभागो ! तुम्हारा गाँव जरायम पेशा है, तुम्हारे बाप दादा ने अपना जीवन नष्ट करके इसके लिये यह ख्याति कमाई है। तुम खेलो, चोरी सीखो पर भले आदमियों के अधिकार में हस्त-क्षेप करने का दुस्साहस न करो।'' (स्मृ. रे. पृष्ठ ६७) और इसी प्रकार अपने अन्तिम रेखाचित्र गुंगिया के पत्र-लेखन के प्रसंग में अपने ग्रामीण बन्धुओं की निरक्षरता और तज्जन्य असहायावस्था के कारण उनकी ग्लानि और आक्रोश तीव्रतर हो उठे हैं—"अपने भावों और विचारों के विनिमय के लिये इतने आकुल व्यक्तियों को किसने इतना असमर्थ बना डाला ? इतने विशाल जनसमूह को वाणी-हीन बनाकर जिन्हें अपनी वाग्विदग्धता का अभिमान है, वे कितने निर्लज्ज हैं।" (स्मृ. रे. पृष्ठ १३०)

महादेवी जी की "स्मृति की रेखाएँ" इन्हीं कोटि २ वाणी हीनों को वाणी देने वाली संजीवनी है। उनकी अपनी ही 'अटपटी' किन्तु 'प्रेम लपेटी' वाणी को उन्होंने ज्यों का त्यों उद्धृत कर जिस सदाशयता का प्रमाण दिया है, उसी ने उनकी इन रेखाओं को काल की कठोर छाती पर वज्र की टाँकी से सदा के लिए अंकित कर दिया है।

महादेवी वर्मा—जैनेन्द्र की दृष्टि में

•

शचीरानी गुर्टू द्वारा प्रस्तुत

प्रश्न—सुना है महादेवीजी नब्बे प्रतिशत हँसती हैं, बातें कम करती हैं।

उत्तर—बात तो कम नहीं करतीं, पर प्रतिशत हँसी के पक्ष में अधिक हो सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि वह हँसी सर्वथा बात में से निकली हुई नहीं होती। कुछ असम्बद्ध भी होती है।

प्रश्न—क्या उनकी हँसी असम्बद्ध से अस्वाभाविक भी हो जाती है?

उत्तर—अस्वाभाविक महादेवी जी की ओर से नहीं कहा जा सकता। चर्चा के प्रसंग की ओर से भले ही अस्वाभाविक कह लिया जाए।

प्रश्न—महादेवी जी की हँसी में मनोवैज्ञानिक तथ्य क्या हैं?

उत्तर—मुझे लगता है, महादेवी जी अपने और दूसरे के बीच अन्तर बनाए रखना चाहती हैं, उसको सहज, फिर भी अनिवार्य बनाए रखने के लिए, बीच में यह हँसी डाल देने का उपाय है। इस तरह वह स्वयं किंचित् दुर्ज्ञेय बनती हैं।

प्रश्न—हँसी का तरीका उन्होंने क्यों अख्तियार किया? उन्हें दुर्ज्ञेय बनने की प्रेरणा कैसे और क्यों होती है?

उत्तर—आपके प्रश्नों का पूरा उत्तर मुझसे कैसे मिल सकता है। दुर्ज्ञेय बनने की आवश्यकता स्वयं दुर्ज्ञेय नहीं होनी चाहिए। अपने को न खोलने की इच्छा हम सभी में है। एक स्त्री में सहज भाव से वह अधिक हो सकती है, कवयित्री में और भी अधिक; किन्तु महादेवी जी व्यवहार में शिष्ट सहानुभूति से दूर नहीं जा सकतीं। दूसरा उनकी जगह होता तो अपने को गुम-सुम या गरिमामय बनाकर सुरक्षित कर लेता महादेवी जी का शिष्टाचार उन्हें ऐसा नहीं करने दे सकता, वह उन्हें हार्दिकता दिखलाना चाहता है। वह हार्दिकता उतनी सहज उनके लिए नहीं है। कारण, वह पारदर्शी सन्त प्रकृति की नहीं हैं। ऐसी हालत में खिलखिलाहट से भरी हँसी ही आवरण का एकमात्र उपाय रह जाता है। लगता है, इस हँसी में वह खुल रही हैं, पर वही उनको ढक रही होती है।

प्रश्न—महादेवी जी से आप सर्वप्रथम कब मिले थे?

उत्तर—ठीक तिथि याद नहीं है, लेकिन पहली बार जब मिलना हुआ उसको अब से बीस वर्ष होते होंगे।

प्रश्न—परस्पर में क्या-क्या बातें हुईं? यदि कुछ याद हो तो बताने की कृपा करें।

उत्तर—बातें पूरी तो याद नहीं हैं। वह इलाहाबाद शहर में तब किसी कन्याशाला में थीं, उनकी कविता ने नया-नया लोगों का ध्यान खींचा था। मुझे याद है कि पाठशाला के बाद दरवाजे पर मुझे कुछ देर रुकना पड़ा था। फिर कुछ देर अन्दर प्रतीक्षा में बैठना पड़ा। मालूम हुआ कि खबर दी गई है, नहा रही हैं, अभी आ रही हैं। वह 'अभी' मुझे कुछ समय अभी नहीं मालूम हुआ। काफी देर में वह आईं। जान पड़ता है वह देर मुझे रुचिकर न हुई थी। और आते ही इसी की झल्लाहट मैंने उन पर उतारी। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह भी झल्लाहट के रूप में नहीं उतरी। मैंने कहा था कि

देखिए, पहले आपने यह गलती की कि कविता लिखी, फिर यह कि छपने दी तिस पर सबसे बड़ी गलती यह कि वह कविता अच्छी लिखी। किसी ने आपसे यह नहीं कहा था कि आप एक पर एक ये गलतियाँ करती चली जाएँ। यह आपका अपना काम था। कोई भी आपके साथ इसके दोष को बँटा नहीं सकता। अब अपने कर्मफल से आप बच नहीं सकतीं। यानी अपनी कविता से आपने ध्यान खींचा है तो आप अपने को उस ध्यान से बचाने की अपात्र हो गईं। बात इसी ढंग से शुरू होकर न जाने कहाँ-कहाँ घूमती-फिरती रही। जान पड़ता है उनका असमंजस और मेरा क्षोभ अधिक देर हमारे बीच ठहरा नहीं। यही साहित्य-वाहित्य की कुछ गप-शप होती रही होगी।

जी, आप पूछना चाहती हैं कि वह हँसी थी और कितनी बार हँसी थीं। नहीं, उस समय एक बार भी उनके हँसने का स्मरण नहीं है। तब वह गुरु थीं भी तो नहीं। शायद विद्यार्थिनी थीं और एम० ए० आरम्भ नहीं तो बी० ए० अन्तिम की परीक्षा दे रही थीं।

प्रश्न— आप अभी हाल में भी महादेवी जी से मिले होंगे, तब के और अब के उनके व्यक्तित्व में क्या अन्तरी पड़ा है?

उत्तर—हाँ, मिला हूँ और मिलता ही रहता हूँ, अन्तर वह ठीक बीस वर्ष जितना पड़ा है। तब सलज्जा थीं, और कहाँ उनका स्थान है और होगा, इसके बारे में हर धारणा से रीती और हर आशा से भरी थीं। अब सब घटित घटना है। न धारणा के लिए और न आशा ही के लिए स्थान है। इसलिए व्यवहार में अबोधता नहीं रह गई है। सिद्धदक्षता आ गई है। इत्यादि इत्यादि कितना मुझसे कहलाइएगा, खिलती वय से आरम्भ होकर उसके अनन्तर बीस वर्ष का अन्तर अपने-आप में समझ लेने की बात है।

प्रश्न—महादेवी जी की कविता का धरातल क्या है?

उत्तर—देखिए, मैं अकवि हूँ, उनकी कविता का धरातल शायद बौद्धिक है या कहें बौद्धिक सहानुभूति है। शायद वह अनुभूति से किंचित् भिन्न वस्तु है।

प्रश्न—महादेवी जी को कविता की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई।

उत्तर—यह प्रश्न महादेवी से करने योग्य है।

प्रश्न—मेरे पूछने का तात्पर्य यह है कि महादेवी जी को कविता की प्रेरणा उनके जीवन की वाह्य परिस्थितियों के कारण है अथवा उनकी प्रेरणा भीतरी साधना में निहित हैं?

उत्तर—बाहर की परिस्थिति और भीतर की साधना मेरे लिए ये दो निरपेक्ष तत्त्व नहीं हैं। भीतर-बाहर में क्रिया-प्रतिक्रिया चलती ही रहती है। इस तरह मैं उनकी या किसी की कृतित्व-प्रेरणा को किसी खास खाने में बिठाकर नहीं देख सकता।

प्रश्न - महादेवी जी गृहिणी या माता होतीं तो क्या उनकी कविता का रूप यही होता?

उत्तर—नहीं, यह नहीं होता, तब वह कविता न इतनी सूक्ष्म होती, न जटिल, न गूढ़। तब वह अधिक प्रकृत होती।

प्रश्न - महादेवी जी में भ्रान्ति, जड़ता, मूक प्रणयानुभूति अधिक है। वेदना है, किन्तु उसमें वह घुलती नहीं हैं; वरन् वह सुख का अनुभव करती हैं, ऐसा क्यों है?

उत्तर—प्रश्न में शब्द बड़े हैं। उनमें से मुझे राह-बूझ नहीं मिलती। वेदना वाली बात समझ में आती है। वेदना में घुलना या न घुलना मेरे विचार में यह आदमी के अपने निर्णय की बात नहीं हैं। यदि कोई नहीं घुलता, तो कहना यह होगा कि वेदना की मात्रा पर्याप्त से कम है। महादेवी जी वेदना में घुल गई हैं ऐसा मैं भी नहीं मान पाता। इसीसे मुझे मानना होता है कि वेदना वह समग्र नहीं, किंचित् बौद्धिक है। आपके पहले प्रश्न के उत्तर में जो मैंने कहा था कि मेरी दृष्टि में उनके काव्य का धरातल बौद्धिक है या बौद्धिक सहानुभूति है तो इसका वही मतलब था। बुद्धि जानती है, इसी कारण घुलने नहीं देती यानी वह भक्ति से भिन्न है। भक्ति में विह्वलता है, महादेवी के काव्य में इतनी अधिक कविता है कि उसीके कारण हम जान लेते हैं कि विह्वलता नहीं है। विह्वलता में

भाषा के किनारे टूटे-फूटे बिना नहीं रह सकते, जबकि महादेवी जी की कविता सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण है। इसमें मैं वेदना की कुछ कमी ही को कारण देखता हूँ। वेदना वह जो बुद्धि को भिगो दे। बुद्धि अलग से जिसे थामे रह सकती है, वह पीड़ा शायद बुद्धिगत है, प्राणगत नहीं है, जब कि वेदना का मूल प्राण में है।

प्रश्न—'She is pathetic, not tragic.' क्या आप महादेवी जी के सम्बन्ध में इस धारणा से सहमत हैं?

उत्तर इन दो शब्दों में contrast तीव्र है। Tragic गुण तो महादेवी के काव्य में मुझे कम ही मिलता है, पर pathetic उसे कह देकर भी मुझे छुट्टी नहीं मिलती। Pathetic विशेषण के नीचे भाव की मानो बहुत ही कच्ची धरती माननी होगी। उस काव्य में भाव की उतनी कच्ची भूमिका नहीं है। उससे अधिक तल्लीनता है, पर जैसा कि मैंने माना है कविता में उनकी निजता डूबती नहीं है, बुद्धि की डोर से वह जैसे अलग थमी रहती है। इसी से ट्रेजिक (tragic) भाव उत्पन्न होने से वहाँ कुछ बच ही जाता है?

प्रश्न—महादेवी जी और मीरा की पीड़ा में क्या अन्तर है?

उत्तर—उत्तर मुझे अनुमान से ही देना होगा। अनुमान खतरनाक भी होता है। महादेवी जी मेरे लिए समकालीन हैं, मीरा ऐतिहासिक। पर जहां तक सम्भव है, मैं व्यक्तित्वों पर से अनुमान नहीं लगाता। अनुमान काव्य से लगता है। महादेवी जी की पीड़ा चाह कर अपनाई हुई है, मीरा की अनिवार्य। मीरा अपने में बेबस और अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए विकल हैं। वह प्यासी हैं इसलिए उनमें पानी की पुकार है। महादेवी प्यास को ही चाहती मालूम होती हैं, इससे अनुमान होता है कि प्यास को उन्होंने जाना नहीं है। घायल घाव नहीं चाहता। जो अभी घाव ही चाहता है, मालूम होता है उसकी गति घायल की है नहीं। महादेवी जी विरह और वियोग में रस अधिक ढूंढती हैं। इसका अर्थ है, विकलता उतनी अनुभव नहीं करतीं। मीरा तो अपने गिरिधर गोपाल के पीछे सारी लाज लुटा बठी है। महादेवी के लिए सामाजिक सम्भ्रान्तता उतनी नगण्य वस्तु नहीं है। कोई गिरिधारी उनके लिए इतना मूर्त्त और वास्तव नहीं बन सकता, जो उन्हें उधर से असावधान कर दे। यानी अपने इष्ट को वह विचार रूप में ही ग्रहण कर सकती हैं, प्रत्यक्ष रूप में नहीं चाह सकतीं। प्रत्यक्ष होकर उसे शरीर तक मिलने की दुःसम्भावना हो आती। महिला-जनोचित उनके स्वभाव के लिए वह सर्वथा असह्य है। इस तरह मीरा और महादेवी की पीड़ा में मैं किसी प्रकार भी समकक्षता नहीं देख पाता हूँ।

प्रश्न महादेवी के काव्य में प्रणयानुभूति के अतिरिक्त सत्य, सुन्दर कहाँ तक साध्य और साधन है?

उत्तर—मैं प्रश्न को ठीक तरह हृदयङ्गम नहीं कर पाया। मेरे लिए तो प्रत्येक सम्बन्ध सघन होकर प्रणय बन जाता है। मूर्त्त के लिए ही नहीं, अमूर्त्त के प्रति भी प्रणय होता है प्रणय अपनी प्रकृति से मूर्त्त को अमूर्त्त और अमूर्त्त को मूर्त्त बना देता है। अर्थात् प्रणयानुभूति से अतिरिक्त काव्य में कुछ और होने का अवकाश ही कहां है? पर हाँ, महादेवी के काव्य में वैसा अवकाश रहा है, क्योंकि बुद्धि वहाँ डूबी नहीं है, भीगी नहीं है। किंचित् स्वस्थ और सुरक्षित रह गई है। मीरा से पूछने चलो तो गिरधारी से अलग कोई सत्य और सुन्दर उसके लिए जँचता ही नहीं। जिसके प्रति प्रणयानुभूति एवं प्रणय निवेदन हो, उसके अतिरिक्त सत्यी और सुन्दर को होने के लिए अधिष्ठान ही कहाँ है? यदि है तो मानूँगा कि काव्य की त्रुटि है। इसी अर्थ में मैंने कहा कि आपके प्रश्न को मैं पूरी तरह हृदयङ्गम नहीं कर पाया।

प्रश्न महादेवी जी काव्य को किन अर्थों में लेती हैं, 'कला के लिए कला का सिद्धान्त' उनके काव्य पर कहाँ तक लागू होता है?

उत्तर—प्रश्न के पहले भाग का उत्तर महादेवी जी से लीजिए।

'कला कला के लिए' यह सूत्र महादेवी जी के काव्य से कितनी तृप्ति पाता है यह भी उस सूत्र के सूत्रधार से मालूम करने की बात है। मैं समझता हूँ माने जाने वाले लौकिक उद्देश्यों में से किसी के साथ उस कविता को जड़ित कठिनाई से ही देखा जा सकेगा। निरुद्देश्य तो उसे या किसी को कैसे कहा जा सकता है। पर क्योंकि हम किसी स्थूल और स्पष्ट लौकिक हेतु से उसे नहीं जोड़ सकते, इसलिए उस काव्य-कला को 'कला के लिए' ही स्पष्ट माना जाय तो कुछ अन्यथा न होगा।

प्रश्न—पद्य में वह अपने-आप में सिमटी हैं, किन्तु गद्य उनकी सहानुभूति को कहाँ तक बिखेरता है?

उत्तर—आपकी बात में कुछ ऐसा आशय तो है, जिससे मैं सहमत हो सकता हूँ। पद्य में जैसे उन्होंने अपने को टटोला है, और अन्त में अपने को निवेदित किया है, उसके प्रति जो उनके अपने आत्म से भिन्न नहीं है। इस तरह घूम-फिर कर उनका पद्य अधिकांश उन तक ही लौट आता है। उसमें जगत् नहीं है, मेरे विचार से जगत-पिता भी नहीं है। इसलिए वह काव्य कुछ इतना वायव्य और सूक्ष्म है कि अनुभूति तक में मुश्किल से आता है। यह सुविधा गद्य में तो हैं नहीं। गद्य इतना पर-निरपेक्ष हो ही नहीं सकता है। इसलिए उनके गद्य में सहज भाव से हम, तुम की चर्चा हुई है। उनमें मानव-पात्र हैं और वास्तव परिस्थितियाँ हैं। केवल आत्मा वहां नहीं है।

सहानुभूति की गति आवश्यक रूप से अपने से इतर के प्रति है। महादेवी जी के पद्य में वह इतर लगभग लुप्त है इससे यह कहना कुछ हद तक ठीक ही है कि गद्य में इनकी सहानुभूति अपेक्षाकृत अधिक खिली है।

प्रश्न—महादेवी के रेखा-चित्रों के सम्बन्ध में आपकी क्या धारणा है?

उत्तर—रेखाचित्र से मतलब शायद आपका उन शब्दचित्रों से है जो उनकी पुस्तक 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में मिलते हैं। मेरे ख्याल में वे शब्दचित्र सुन्दर बन पड़े हैं और हम में सहानुभूति-परक स्पन्दन जगाते हैं। यह कि वे महिम्न माने जाने वाले नायक-नायिकाओं के कल्पना-चित्र नहीं हैं, एक अच्छी ही बात है। साहित्य ने असाधारण को पर्याप्त से अधिक महत्त्व दिया है। असाधारण किंचित् अपसाधारण भी होता है। समय है हम साधारण के महत्त्व को पहिचानें। एक समय किसी साहित्य-चर्चा में अमुक साहित्य पंडित से 'साधारणीकरण' शब्द सुना था। उसका शास्त्रीय अर्थ मैं नहीं जानता, लेकिन इस अर्थ में 'साधारणीकरण' मुझे प्रिय और मान्य होता कि प्रत्येक निजता को हम इस रूप में लें और दें कि सार्वजनिक से विषम न रह जाए। महादेवी जी को इसके लिए यानी उनके रेखाचित्रों के लिए मैं बधाई दे सकता हूँ। इसका मतलब यह कि मैं उनके प्रति उस सृष्टि के लिए कृतज्ञ हूँ।

प्रश्न महादेवी की चित्रकला में विरहिणी नारियों के ही धुंधले चित्र मिलते हैं, ऐसा उनसे जान में हुआ है या अनजान में?

उत्तर—जान-अनजान दोनों में।

प्रश्न—महादेवी जी की चित्रकला के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—महादेवी की रचनाओं में मैंने उनके बनाए चित्र देखे थे। पर उन्होंने जो अपने कमरे की भीतों पर चित्र काढ़े हुए थे, उनका मुझ पर अधिक प्रभाव पड़ा। पहली बार वहाँ जाने पर मैं उन भीत-चित्रों को मुग्ध-सा देखता रह गया। काव्य-पुस्तकों में अंकित या स्वतन्त्रचित्र भावों को मूर्त्त करने के प्रयत्न में बने हैं। जीवन-प्रसंग से वे इतने जुड़े नहीं हैं। इससे वे पूरी तरह अनुभूति की पकड़ में नहीं बैठते। यों तो अज्ञेयता भी एक प्रकार का रस है। पर उसकी बात यहाँ नहीं करूँगा। हम गर्व में रहते हैं, इससे जब हमारी बुद्धि कहीं अकृतकार्य होती है तो किंचित् अच्छा भी लगता है। वैसी दुर्बोधता उन चित्रों में है, पर मुझ-जैसे को कुछ देते नहीं जान पड़े। कमरे की भीतों पर जो चित्र

थे, वे उस प्रकार भाव कैवल्य में से नहीं बने थे। उन्हें घटनात्मक भी कहा जा सकता है। जीवन-प्रसंग से उनका सीधा सम्बन्ध था। शायद इसीलिए रेखांकन आदि की अपनी सम्भव त्रुटियों के बावजूद मुझे विभोग कर सके। मानना होगा कि महादेवी जी की चित्रकला जीवन से अधिक चिन्तन की ओर उन्मुख है। जीवन तो मांसलता मांगता है। उसके बिना वह चलता नहीं। पर चिन्तन के लिए शरीर ही बाधा है, इसलिए अशरीरी चित्रण चिन्तनाभिमुखता के लिए अधिक अनुकूल पड़ सकता है। इसको फिर चाहे उसकी विशेषता कहा जाए चाहे मर्यादा।

प्रश्न—क्या आपके मन्तव्य से इस वस्तुस्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है कि उनके चित्रों में विरहिणी नारी का चित्रण विशेष है?

उत्तर—हाँ, अपने निज के भाव पर आश्रित रहने के कारण और बाहर के घटनाजगत् से विमुख होने के कारण उनके चित्रों में एकाकिनी नारी का स्थान पाना सहज सम्भव ही है। उस एकाकिनी को निश्चय ही अनेक भावों और रूपों में आना होगा। परस्परता के बीच उसकी एकान्तता एवं अभावात्मकता उस तरह निभ नहीं सकेगी। इसलिए उन चित्रों में उस प्रकार की सामाजिक परस्परता का अभाव स्वाभाविक मानना चाहिए।

प्रश्न—महादेवी के काव्य पर बुद्ध, रवीन्द्र, अरविन्द का प्रभाव कहाँ तक है?

उत्तर—उस 'तक' के अनुपात का मुझे कुछ पता नहीं है। प्रश्न में आए तीनों व्यक्ति रहस्यवादी या आध्यात्मिक माने जाते हैं। आध्यात्मिक पर-प्रभाव को उस रूप में ले सकता ही नहीं है। उसे नितान्त मौलिक होना होता है। मौलिक से मतलब हर प्रभाव उसकी आत्मता में घुलकर ही उसे अङ्गीकृत हो पाता है। इस तरह कह सकते हैं कि परत्व को स्वत्व भाव से ही वह ले पाता है। महादेवी जी के सम्बन्ध में अनुपात का यद्यपि मुझे पता नहीं है तो भी यह इनकार करते नहीं बनता कि रवीन्द्र, बुद्ध आदि का उन पर प्रभाव है। प्रभाव है यह कहते बनता है, इसी में आशय है कि वह प्रभाव कुछ अलग से भी झलक आता है। स्वत्व में वह एकदम खो नहीं गया है। क्या मैं कहूँ कि अपने को जो पूरी तरह स्वीकार करने का आभास उनकी रचनाओं में नहीं है, वह बहुत कुछ 'पर' को अपनाए रहने के कारण भी है।

प्रश्न महादेवी और जैनेन्द्र के साहित्य में किसकी कृतियाँ अधिक स्थायी रहेंगी?

उत्तर—जैनेन्द्र की तो चिर-चिरान्त स्थायी रहने वाली हैं। उसका अभिमान इससे कम मानने को क्यों तैयार हो? महादेवी जी की रचनाओं की जन्मपत्री को भृगु संहिता से मिलाकर देख लेना चाहिए, तब ठीक-ठीक उनकी आयु के वर्ष, पल, छिन का पता लग सकेगा।

प्रश्न आपके उत्तर में तो उपहास है। क्या प्रश्न को आप उपहास के ही योग्य समझते हैं?

उत्तर और नहीं तो क्या! आप ही कहिए प्रश्न में से विनोद के सिवा और क्या आशय लिया जा सकता है?

प्रश्न तो क्या आप कविता को इतना अस्थायी मानते हैं कि वह कुछ क्षणों या पलों में ही सीमित है?

उत्तर नहीं, लेकिन उसकी आयु का निर्धारण कैसे हो? हमसे जुड़ा हुआ सब कुछ 'अहं' से भी जुड़ा है। अहं तो नाशवान है। इससे आगे-पीछे हमारी रचनाओं को भी नाश को प्राप्त होना है। काल तो अनन्त है, जिसको हम चिरस्थायित्व कहें उसकी क्या उस अनन्तता में बूँद जितनी भी गिनती है। महादेवी की कविता मर्म को छूती है! मर्म सबका एक है! उसी को आत्मा कहें। अपने शुद्ध रूप में वही परमात्मा है। उस अवस्था में वह कालबाधित सत्य है। उसके नाश का प्रश्न ही नहीं। अतः यत्र-तत्र मार्मिक भी हो जाने के कारण केवल सामयिक भाव से जीकर समाप्त हो जाने वाली कविता वह नहीं है।

महादेवी वर्मा

•

विश्वम्भर मानव

महादेवी वर्मा का जन्म सन् १९०७ में फर्रुखाबाद में हुआ। इनके पिता का नाम बाबू गोविंद प्रसाद तथा माता का नाम हेमरानी देवी है। पिता इनके शिक्षा विभाग में रहे हैं और माँ हृदय से भक्त थीं। इनके दो भाई तथा एक बहन और हैं।

बचपन से ही इनके लिए हिन्दी, संगीत और चित्रकला की शिक्षा का प्रबन्ध घर पर किया गया। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। सन् १९१६ में जब ये केवल नौ वर्ष की थीं, इनका विवाह डाँ० स्वरूप नारायण वर्मा के साथ कर दिया गया। विवाह के उपरांत अध्ययन के लिए ये प्रयाग को चली आईं। यहीं क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज से बी० ए० करने के उपरान्त इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् १९३३ में संस्कृत से एम० ए० किया। शिक्षा समाप्त करते ही प्रयाग महिला-विद्यापीठ महाविद्यालय में प्रिंसिपल के पद पर इनकी नियुक्ति हो गयी। उस पद को ये अभी तक सँभाले हुए हैं।

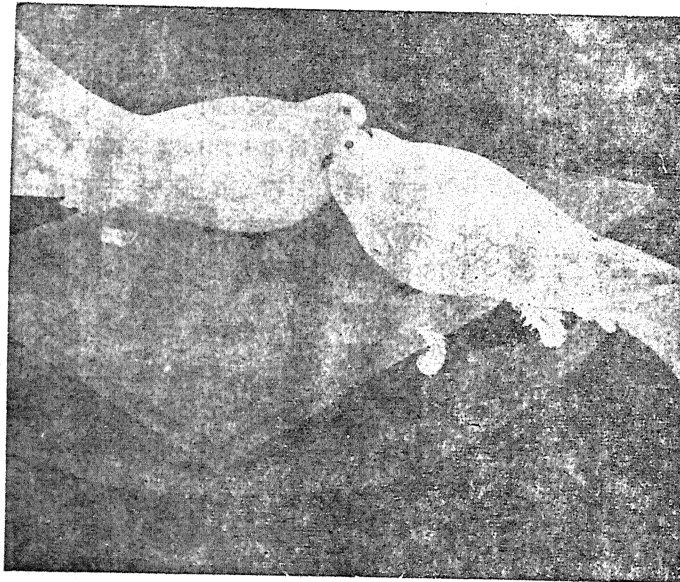
विद्यार्थी जीवन में ही इनकी रचनाएँ देश की प्रसिद्ध मासिक-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। आगे चलकर ये 'चाँद' की सम्पादिका नियुक्त हुईं। 'साहित्यकार-संसद्' की स्थापना के उपरान्त इन्होंने 'साहित्यकार' मासिक का भी कुछ वर्षों तक सम्पादन किया।

महादेवी की गणना इस युग के महानतम कवियों—प्रसाद, निराला, पंत के साथ होती हैं। वैसे भी साहित्यिक के रूप में इनका जीवन अत्यधिक सफल रहा है। 'नीरजा' पर इन्हें सन् १९३४ में 'सेक्सरिया पुरस्कार' मिला था। इनकी 'आधुनिक कवि' आदि रचनाओं पर सन् १९४४ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा 'मङ्गला प्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया। देश के स्वतन्त्र होने पर ये उत्तर प्रदेश विधान-परिषद् की सदस्या मानोनीत हुईं। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने इन्हें पद्म-भूषण की उपाधि से सम्मानित किया है।

महादेवी का व्यक्तित्व सौम्य और प्रभावशाली है। उनमें गम्भीर भावुकता और प्रखर बौद्धिकता का संयोग पाया जाता है। साहित्य-साधना के साथ ही वे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपनी जागरूकता का परिचय निरन्तर देती रही हैं। बंगाल के अकाल के समय 'बंगदर्शन' (१९४३) और भारत की उत्तरी सीमा पर चीन के आक्रमण-काल में 'हिमालय' (१९६३) का सम्पादन कर के इन्होंने अपने दृढ़ और तेजस्वी व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

महादेवी जी को बिल्ली, खरगोश, मोर और कुत्ते पालने का भी शौक है। कुलदेवी दुर्गा की बहुत मनौती के उपरान्त इनका जन्म होने के कारण इनके बाबा ने इनका नाम महादेवी रख दिया था। उस नाम को इन्होंने सार्थक करके दिखला दिया है।

●




महादेवी
अभिनन्दन ग्रन्थ

विभूति

•

इस खण्ड में हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, तमिल, कन्नड़, मराठी, बंगाली, उड़िया, उर्दू, पंजाबी आदि भारतीय भाषाओं की कवयित्रियों के जीवन और कृतित्व का परिचय दिया गया है ।

भारतीय कवयित्री परम्परा में महादेवी जी

डॉ० प्रभाकर माचवे

महादेवी जी की कविता भारतीय कवयित्री परम्परा में एक श्रेष्ठतम मणि है। वैदिक काल से ही भारतीय साहित्य को स्त्रियों की अनुपम देन मिलती रही है। यद्यपि मैत्रायिणी संहिता (४-७-४) के अनुसार स्त्रियाँ सभा-समाज में नहीं जाती थीं; केवल पुरुष ही राज-सभाओं में भाग लेते थे, फिर भी उपनिषद-काल में याज्ञवल्क्य को प्रश्नों से निरुत्तर करने वाली गार्गी जैसी विदुषियाँ मिलती हैं, जिनका स्थान दर्शन के इतिहास में बहुत बड़ा है। कात्यायन श्रौत सूत्र (१-१-७) में कहा गया है कि 'श्रुति स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं मानती'। घर में स्त्री की सत्ता प्रधान थी इसमें सन्देह नहीं, तैत्तरीय संहिता (७-२-१-१) और शतपथ ब्राह्मण (५-२-१-१०) का साक्ष्य यही है।

ऋग्वेद में अदिति, जुहू, इन्द्राणी, सरमा, उर्वशी, रात्रि और सूर्या दैवी अथवा अर्द्ध-दैवी या पौराणिक भी मान लें, तो भी सत्ताईस महान् स्त्रियों में श्री, मेधा, दक्षिणा श्रद्धा अमूर्त आदर्शों की मूर्त कल्पनाएँ छोड़कर नौ या दस ब्रह्मवादिनियाँ अवश्य काव्य रचती थीं। उनमें विश्ववारा, अपाला, घोषा, गोधा, वसुक्र की पत्नी, अगस्त्य की बहिन, लोपामुद्रा, शाश्वती और रोमशा प्रमुख थीं। अभृण ऋषि की पुत्री वाच की ऋचाएँ ऋग्वेद (१०-१२४) बाद में शाक्तों की देवी-सूक्त बनीं। वाच कहती है "जिसे मैं प्रेम करती हूं। उसी को शक्तिमान बना देती हूं।' वाक्-शक्ति स्वर्ग और पृथ्वी से परे तीनों भुवनों को अपने में समेटे हुए है। विश्ववारा का अग्नि-स्तोत्र उसकी भक्ति दिखलाता है। अपाला का (ऋ-८-९१) इन्द्रस्तोत्र नारी के मुक्त प्रणय-निवेदन का एक प्राचीनतम लेखा है : 'यह सोमवल्ली मैंने तुम्हारे लिए ही निचोड़ी है! आओ इसे पियो!' घोषा के रचे हुए ऋग्वेद ३९ वें और ४०वें दो पूरे स्तोत्र हैं। उनकी रचनाओं में वैवाहिक जीवन की आनन्दमय अपेक्षा का वर्णन है। उसमें कई काव्यमय अंश हैं, यथा :—

> "वर्षा के साथ-साथ ये लतायें
> उसी के लिए फैलरही हैं
> ये झरने जो ढलानों पर झर रहे हैं
> उसी के लिए हैं"

मान्धात्री और गोधा की सम्पूर्ण ऋचाएँ प्राप्त नहीं हैं। लोपामुद्रा की रची हुई दो ऋचाएँ (१-१७९-१-२) नारी-मन के उस हाहाकार को व्यक्त करती हैं, जिनमें पति के संयम-कठोर होने से व्यक्त हुआ है:

> "पूर्व कालमें कई लम्बे वर्षों तक बार-बार रात-दिन और सवेरे भी, तुम्हारी सेवा करने में मैंने अपने को श्रान्त कर दिया
> अब मेरे अंगों के सौन्दर्य पर जरा के चिह्न आने लगे हैं
> तो क्या हुआ?—पति लोग अपनी पत्नियों के पास जायें।"

शाश्वती नारी की प्रथम मंडल में १७९-९ ऋचा उत्तान 'श्रृंगारिक है। उसके पति असंग प्लायोगी को लुप्त यौवन मिल गया है और शाश्वती का आनंद उसके मन में समा नहीं रहा है। बृहद् देवता में रोमशा को भावभव्य की पत्नी कहा

गया है वह अपने यौवन-प्राप्ति पर हर्ष व्यक्त करती है। वैदिक कवयित्रियाँ अपने राग-विराग व्यक्त करने में काफी स्पष्ट भाषिता से काम लेती हैं।

उपनिषदों में मैत्रेयी और गार्गी का उल्लेख आता है। पर वे कवयित्रियों से अधिक दार्शनिक तर्कवादिनियाँ हैं। वे विदुषी हैं, जीवन और मरण के अमर अनायसनीय प्रश्न उठाती हैं; परन्तु उनमें काव्य इतना नहीं है।

रामायण और महाभारत में कई आदर्श नारियाँ हैं। कई काव्यमय प्रसंग, आख्यान और रम्य-स्थल हैं; परन्तु कोई कवयित्री नहीं है। कई नारियों के वचन सूत्र बन गये हैं, दमयन्ती, शकुन्तला और सावित्री के आख्यान हमारी परम्परा के अभिन्न अंग बन गये हैं, परन्तु किसी कवयित्री का कोई पद याद नहीं आता। पुराणों में मदालसा और देवहूती जैसी माताएँ, सती, शैव्या, उषा, सुनीति मनयिनी जैसी पत्नियाँ और शर्मिष्ठा जैसी कुमारियाँ वर्णित हैं, परन्तु वहाँ भी कोई नारी ऐसी नहीं, जिसके सामने कोई रचना (छन्दोबद्ध अथवा अन्य) मिलती हो।

संस्कृत काव्य काल में कई लेखिकाओं और रचनाशील प्रतिभाओं के दर्शन होते हैं। राजशेखर ने ईसा की नवीं शती में 'काव्य मीमांसा में कहा था—'स्त्रियाँ भी उत्तम काव्यकार हो सकती हैं। राज पुत्रियाँ, मंत्री पुत्रियाँ, भद्रवर्ग की महिलाएँ, नर्तिकायें भी ऐसी पाई जाती हैं जिन्हें विपुल शास्त्र-ज्ञान है और जिनमें काव्य-प्रतिभा भी हैं। इसका अर्थ यह है कि संस्कृत काव्य के उत्कर्ष के वसंत में कई कोकिलाओं ने अपना कूजन किया होगा, पर अब वह अज्ञात है। कलकत्ता विश्वविद्यालय से डा० चौधरी ने संस्कृत कवयित्रियों पर शोध-ग्रन्थ अँग्रेजी में लिखा है, जिसमें अनेक ऐसी स्त्रियों के उल्लेख हैं। गाथासप्तशती में अनुलक्ष्मी, अशुलद्धी, माधवी, प्रहता, रेवा, रोहा, शशिप्रभा और बद्धावही नामक कवयित्रियों की गाथाएँ हैं। यह ग्रन्थ सातवीं शतब्दि से पूर्व का है। राजशेखर की पत्नी अवन्तीसुन्दरी शायद सुन्दरा ही थी जिसके लिए उसके भाई धनपाल ने प्राकृत कोष 'प्राइअलच्छी' (९७२ ईस्वी में) रचा गया। 'कर्पूर मंजरी' नाटक अवन्ती सुन्दरी के अग्रह पर ही खेला गया था। उसके तीन प्राकृत छन्द हेमचन्द्र सूर्य (१०८८-११७२ ईस्वी) ने अपनी 'देशी-नाम माला' में उद्धृत किये हैं। शीलाभट्टारिका, विकटनितम्बा, कर्नाटकी विजयांका, लाट की प्रभुदेवी और सुभद्रा के उल्लेख जल्हण की 'सूक्ति-मुक्तावलि' (१२५८ ईस्वी) में हैं। विजयांका तो प्रत्यक्ष सरस्वती थी और वैदर्भी शैली में कालिदास की समकक्षिणी मानी जाती थी। वही विज्जा (विद्या, विद्यावती, विज्जका, बिज्जाका) भी कही जाती है। कुछ लोग उसे चालुक्य राजा चन्द्रादित्य की रानी विजय भट्टारिका मानते हैं (७ वीं शती का मध्य) शीलाभट्टरिका को राजशेखर ने बाण की सभवर्तिनी माना है, पांचाली शैली में काश्मीर में नवीं शताब्दी के मध्य में रचितअनन्दवर्द्धन के ध्वन्यालोक' में विकटनितम्बा का एक श्लोक मिलता है। लाटी कवयित्री प्रभुदेवी का कुछ पता नहीं मिलता, पर वल्लभदेवकी सुभाषितावली' में (शायद १५ वीं शदी में रचित) सुभद्रा के उद्धरण हैं। १२०६ ईस्वी में बंगाल में श्रीधरदेव के संकलित किये हुए 'सदूक्तिकर्णामृत' में त्रिभुवन सरस्वती रचित दो श्लोक हैं। सीता का भी एक श्लोक इसी महिताल-सरस्वती की बड़ी बहन के साथ-साथ राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' में मिलता है। ये दोनों कवयित्रियाँ शायद ईसा की दसवीं शती में रही होंगी। 'शार्ङ्धर-पद्धति' में (रचना काल १३६३ ईस्वी) धनद-देव का एक श्लोक है जिसमें शीला, विज्जा, मारुला, मोरिका आदि कई कवयित्रियों का उल्लेख है। मुकुल की अभिधा-वृत्ति-मातृका में विज्जा का एक श्लोक है:

नीलोत्पल-दल श्यामाम् विज्जकाम् मामजानता
वृथैव दण्डिना प्रोक्तम् सर्वशुक्ला सरस्वती

महादेवी (भावक देवी अथवा भावाक देवी) नामक एक कवयित्री का उल्लेख 'कवीन्द्र-वचन-समुच्चय' में है। 'सदूक्ति कर्णामृत' में भी उसका एक श्लोक है। वामन की 'काव्यालंकार सूत्र-वृत्ति' में भी उसके एक श्लोक का अंश है। 'सदुक्ति-कर्णामृत' में एक श्लोक ऐसा है जो चंडाल विद्या, विक्रमादित्य और कालिदास की संयुक्त-रचना कहा गया है। यानी कालिदास की समकालीन कोई चंडाल विद्या कवयित्री रही होगी। 'कवीन्द्र-वचन-समच्चय' में जघनचपला नाम्नी किसी कवयित्री का एक श्लोक है; शायद यह किसी कवयित्री का नाम नहीं है किन्तु छन्दोनाम मात्र है। 'शार्ङ्धर-पद्धति'

में बिल्हण और राजकन्या (शशिकला या चन्द्रकला) का एक छन्द है। ग्यारहवीं शती के आरम्भ में रचे गये 'राजशेखर-चरित' नामक ग्रन्थ मे निम्न कवयित्रियों का उल्लेख है: कामलीला, कनकवल्ली, सुनन्दा, ललितांगी, मधुरांगी और विमलांगी। इनमें से अंतिम तीन मालव देश की थीं।

बौद्ध और जैन साहित्य में बहुत सी प्रसिद्ध कवयित्रियां हुई हैं। 'थेरीगाथा' तो बहुत प्रसिद्ध संग्रह है ही। ५२२ छन्दों में कई भिक्षुणियों की कृतियाँ संगृहीत हैं। इस पुस्तक पर 'परमार्थ-दीपिनी' टीका में कई उपासिकाओं की जीवनी दी है। अम्बपाली, हरिदासी, सामावती, विशाखा अदि की कई उक्तियों में अद्भुत काव्य है। जैन महिलाओं में आर्या चन्दना, जयन्ती, स्थूलभद्रा, यक्षा, गुणसाध्वी आदि के उल्लेख मिलते हैं। परन्तु किसी काव्य रचना का हमें विशेष ज्ञान न हो सका, यद्यपि वि ुषियाँ इनमें कई हुई हैं।

अब हम मध्य युग की कवयित्रियों की ओर दृष्टिक्षेप करें। विशेषतः दक्षिण भारत में कई प्रसिद्ध कवयित्रियाँ हुईं। यहाँ विस्तार से उनके बारे में चर्चा सम्भव नहीं। आडिमंडी और वेक्किवीडि प्राचीनतम कवयित्रियाँ तमिष् के संगम साहित्य में मिलती हैं। करिकाल चोल की पुत्री आडिमंडी चेर राजपुत्र आट्टन अट्टी से ब्याही गई थी। एक दिन राज-पुत्र कावेरी में नहाने गया और कभी लौटा ही नहीं। आडि जो उसकी खोज में नदी किनारे उसे पुकारती हुई गई तो समुद्र के पास जा पहुंची। समुद्र में से उसे अपने पति की मूर्ति उठती हुई दिखाई दी, और वह समुद्र की लहरों म खो गई। उसकी कविता में विरह काव्य की बहुत सुन्दर अभि-व्यंजना मिलती है। वेक्किवीडि की रचनाओं में भी विप्र लम्भ जन्य करुणरस है। इन प्राचीन तमिष् कवयित्रियों में अव्वै का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वह पाणर जाति की थी (पाण = संगीत का एक प्रकार)। पुरम् काव्य संग्रह में अव्वै-यार की बड़ी रचनाएँ हैं, जो प्रति दिन के जीवन से ली गई हैं। वेण्णिकुयट्टि नाम की कुम्हारिन कवयित्री ने चोल और चेर राजाओं की लड़ाई अपने गाँव के पास देखी थी, उसका आँखों देखा हाल लिखा है। विजेता की प्रशंसा के साथ साथ विजित चेर राजा की अत्महत्या में उसने विपक्षी के प्रति भी सहानुभूति व्यक्त की है।

चोल राजा किल्लिन्वलव द्वारा करूर नामक नगर के विध्वंस का बहुत मर्मस्पर्शी वर्णन नप्पशलै नामक कवयित्री ने दिया है। उसने विजेता की प्रशंसा में एक स्थान पर व्याज-निन्दा की है: 'यदि उसका बस चलता तो वह राजा, ओ मृत्यु! तुझे भी अपने क्रोध का निशाना बनाता। पता नहीं तू कैसे उसके हाथों से छूट कर भाग सका?' (प्राचीन तमिष् काव्य-संग्रहों में एक शिकलीत के और एक कोरवा (घुमन्तू या जिप्सी) लड़की भी कविताएँ हैं।

कर्नाटक में विजया-भट्टारिका का उल्लेख आ ही चुका है। ११०० ईस्वी में कान्ती नामक प्रसिद्ध कवयित्री होएसाल वंश के बल्लाल प्रथम के राज्य में थी। नागचन्द्र नामक तत्कालीन दरबारी कवि और काञ्ची के बीच में वाग्युद्ध होता रहता है। उन कविताओं को 'काञ्ची हम्पण समस्यैगकु' कहा गया है। उसे अभिनव-वाग्देवी पदवी मिली थी। भक्त कवयित्रियों में काश्मीर की लल्लद्यैद् और हव्बा खातून, महाराष्ट्र की महदंबा और जनाबाई तथा मुक्ताबाई, राजस्थान की मीराँबाई, कबीर की समकालीना क्षेमा य क्षेमश्री ग्वालिन और कबीर की शिष्याएँ गंगाबाई और कमाली (शायद कबीर-पुत्री), रामानन्द के शिष्यों में पीपा की पत्नी सीता, दादू की दो लड़कियाँ गनीबाई, मानाबाई, आदि मध्ययुग की और प्रसिद्ध भक्ति नें हो गई हैं। मिथिला के राजा शिवसिंह की पत्नी लखिमा या लछिमा देवी का उल्लेख विद्यापति ने अनेक बार किया है। शायद वह संस्कृत में रचना करती थी। मालवे की रूपमती ने तो बाजबहादुर से अक-र्षित होकर मालवी में कई कविताएँ रची हैं।

मध्ययुग की अन्य दाक्षिणात्य कवयित्रियों में आन्ध्रप्रदेश से गंगादेवी ने 'मधुरा-विजयम्' काव्य लिखा। मोल्ला कुम्हारिन की रामायण तो आन्ध्र में घर-घर में गाई जाती है। ओडुवु तिरुमलाम्बा ने वरदाम्बिका-परिणय चम्पू' रचा, कर्नाटक की अछूत जाति की होन्नम्मा ने 'हदिबदेय धर्म' रचा। चेलुवाम्बा ने 'वरनन्दी-कल्याण' काव्य और कई लोरियाँ रची हैं, जिनमें तिरुपति के वेंकटाचल की लोरी प्रसिद्ध है। अन्य कवयित्रियों मे हलवणकट्टे गिरियम्मा, तरिगोण्डा वेंगभाम्बरा मधुर वाणी, रामभद्राम्बा, रंगजम्मा, मुद्दुचलनि आदि हैं। महाराष्ट्र की भक्त-कवयित्रियों में ज्ञानेश्वर की बहिन मुक्ताबाई का बड़ा

महत्वपूर्ण स्थान है। बाद में कान्होपात्रा, वेणाबाई, अक्का बाई की रचनाएँ भी विशेषत: अभंग (पद) उसी आराध्य के प्रति आत्म-समर्पण से ओत प्रोत हैं। गुजरात की संत-कवयित्रियों में कृष्णा बाई ('सीता जी नी कांचुकी' की लेखिका), गलरी बाई, पुरीबाई, दिवाली बाई, राधा बाई, जनी बाई आदि हैं।

बंगाल की कवयित्रियों में चन्द्रावती, आनन्दमयी और गंगामयी, गंगामणि, हरी विद्यालंकार आदि का उल्लेख मध्ययुग में मिलता है, पर कोई महत्वपूर्ण रचना नहीं पाई जाती। मध्ययुग की मुस्लिम कवयित्रियों में जेबुन्निसा की फारसी रचना 'मकफी' (छिपी हुई या 'गुप्ता' के अर्थ में) उपनाम से मिलती है। 'दीवान-इ-मकफी' में बहुत सुन्दर प्रेम-कविताएँ हैं। जेबुन्निसा की मृत्यु १७०१ ईस्वी में हुई। मुस्लिम काल में और कोई कवयित्री नहीं मिलती। उत्तर भारत में समाज पुरुष-प्रधान बना इसी युग में।

उन्नीसवीं शती में पश्चिम के साहित्य शिक्षा से संपर्क में आकर बंगाल, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत सब ओर एक नया पुनर्जागरण घटित हुआ स्त्री-स्वातंत्र्य और समानाधिकार का प्रश्न आगे आया। रानी लक्ष्मी बाई जैसी वीरांगनाएँ हुईं तो रमाबाई रानाडे और पंडिता रमाबाई जैसी विदुषियां और सुधारक सन्नारियाँ। इस समय श्रीमती स्वर्ण कुमारी देवी (१८५५-१८९३), जो रवीन्द्र नाथ ठाकुर की बड़ी बहन थी, बहुत से उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ, गीत आदि लिखे! १९११ में बंगीय साहित्य सम्मेलन के १९ वें अधिवेशन में सभापति पद पर जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर उपस्थित न हो सके तो सब ने एकमत होकर स्वर्ण कुमारी देवी का नाम प्रस्तावित किया। वह 'भारती' पत्रिका की सम्पादिका भी थीं। दूसरी बड़ी कवयित्री हुईं श्रीमती कामिनी राय (१८६४-१९६३)। वह गणित में लीलावती की भांति तेज थीं, उनका प्रथम काव्य संग्रह १८८९ में 'आलो ओ छाया' प्रकाशित हुआ। तब कवयित्री का नाम उस पर नहीं था। पर तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ बंगाली कवि हेमचन्द्र बनर्जी की उसमें भूमिका थी, और उस संग्रह का बड़ा स्वागत हुआ पर बेचारी अल्पायु में ही अन्धी हो गईं। बाद में लिखना छूट-सा गया। लोग पूछते आजकल आप की कविताएँ कहाँ हैं? वे अपने पुत्रों को बतातीं: 'यही तो मेरी जीवित चिन्ताएँ हैं!' 'निर्माल्य', पौराणिकी 'माल्य और निर्माल्य' उनके अन्य संग्रह हैं।

सारोजिनी नायुडू (१८७९-१९४९) की राष्ट्रीय ओजसे भरी वक्तृता, उनकी अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा पर प्रभुता, अंग्रेजी कविता में भारतीय लोक गीतों का रंग लाने की अद्‌भुत क्षमता को कौन नहीं जानता। परन्तु विदेशी भाषा में रचना करने से उन्हें अंग्रेजी साहित्य के इतिहासों में कहीं स्थान नहीं। उन पर हाल में डा० पी० ई० दस्तूर ने एक बहुत सुन्दर पुस्तक अंग्रेजी में लिखी है जो मैसूर से प्रकाशित हुई है। इसी प्रकार अल्पायु में जो अधखिली ही मुँद गई वे दो कलिकाएँ आरूदत्त और तोरूदत्त विशेषतः तोरू का 'सावित्री' काव्य यद्यपि अंग्रेजी में था फिर भी हमारे साहित्यिक पुनर्जागरण काल की वह एक अद्‌भुत निधि है।

इस कवयित्री परम्परा में महादेवी जी की कविता एक मेरु-मणि की भाँति है। उसमें भक्त कवि सी आर्ति, विह्वलता और आत्मार्पण की आतुरता है। यद्यपि मैं उन्हें मीराँ के समकक्ष नहीं मानता, फिर भी कवयित्रियों की विरह-कविता में जो एक अनूठा अनकहापन, अवस्थित रहता है। वह उनकी रचनाओं में भरपूर है। वही उनकी कविताओं में उस विशद और व्यापक 'अतृप्ति' (आंगस्ट) का आवेय है, जिसकी तुलना अन्यत्र नहीं मिलती।

महादेवी की कविता में विरह-व्यंजना को कुछ अधुनिक आलोचकों ने (यथा डा० नगेन्द्र ने) दमित इच्छाओं और कुंठाओं से उपजी कहा है। में उनसे बिल्कुल सहमत नहीं हूं। विश्लेषण के आधे कच्चे ज्ञान के सहारे उन्होंने महादेवी जी की कविता में जो एक अज्ञात, अगम्य, असीम के प्रति मिलनोत्सुकता और वियोग की व्याकुलता बार-बार उभारी हैं, उसे पूरी तरह समझा नहीं है! यह हमारे साहित्य की कवयित्री-परम्परा की एक विशेषता है जो कश्मीरी की आणिमालसे केरल की बालामणि आम्मा तक, उड़ीसा की तुलसीदास से गुजरात की गीता पारिख तक, पंजाब की अभृता प्रीतम और पथजाते और से महाराष्ट्र प्रभजोत कौर और पद्मा तक सर्वत्र व्याप्त है। इसका सम्बन्ध अर्द्ध-फ्रायडीय कारणों से जोड़ना रसप्रक्रिया सम्बन्धी अपना अज्ञान व्यक्त करना है।

महादेवी की कविता की एक दूसरी विशेषता जो उन्हें परम्परा से जोड़ती है वह है परिवेश की प्रकृतिर्स अन्तर की ओर पुनरा

वर्तन। वे वर्णन में नहीं खो जातीं। प्रकृति की हर छोटी से छोटी चीज को वह और सहानुभूति से संपृक्त बनाती जाती हैं। यह निजीकारण कवयित्रियों की एक अपनी विशेषता है, महादेवी जी की 'नीहार' 'रश्मि' 'नीरजा' में और 'यामा' में ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे जहाँ वह अभूर्त भावों को मूर्त-बिम्बों का जहाँ भी सहारा लेती हैं, प्रकृति के रंग उनके लिए बदल जाते हैं। प्रकृति उनकी काव्य-प्रकृति से घुल मिल जाती है।

महादेवी की कविता का सब से बड़ा गुण जो उन्हें भारतीय कवयित्री परम्परा में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करा देता है, वह है एक महत्तर ध्येय या आदर्श के लिए चिर-प्रस्तुति। चाहे 'वंग-दर्शन' हो या 'हिमालय' महादेवी जी ने राष्ट्र की पुकार को दृष्टि से ओझल नहीं किया। वह ऐसी आत्म-संपुटित नहीं रहीं कि आसपास की बड़ी-बड़ी उथल-पुथल से हट कर केवल अपनी ही दुनियाँ में डूबी रहतीं। उन्होंने आवश्यक तटस्थता—जो आज का हर ईमानदार साहित्यिक राजनैतिक स्वार्थान्धता और शक्ति-मद से बरतता है—बरती, परन्तु वे उसकी ओर एकदम में उदासीन नहीं हो गयीं! मीराँ में भी उस समय के झूठे साधुओं को फटकार मिलती है, जनाबाई ने कितना कहा है। सरोजिनी नायडू और कुन्तले कुमारी सावंत (उड़िया कवयित्री जो तीस साल पहले धर्म परिवर्तन कर ईसाई बनी थी!) आदि में समाज पर काफी कशाघात हैं। महादेवी जी ने उसके लिए गद्य का माध्यम चुना। 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ' आदि में उनका वह रूप मिलता है। वे कुशल रेखाचित्रकार और शब्द-चित्रकार हैं। वे बहुत कम शब्दों से बहुत बड़ा कामलेना जानती हैं। उत्कृष्ट अध्यापक और अजोड़ वक्ता के ये गुण एकाकार हुए हैं!

महादेवी की कविता का सबसे स्थायी प्रभाव उसकी सूक्ष्मता और तरलता का है। अक्सर यह होता है कि ख्यालों की बारीकी नक्कासी में खो जाती है। (जैसे उर्दू कविता में) या फिर भावुकता या अतिशय उच्छल प्रवाह सूक्ष्मता को बाहर नहीं करता (नजरूल इस्लाम की बँगला कविता में कितना 'पोस्टर' जैसा है!) यह दोनों गुण उदात्त प्रभावोत्पादकता और और महीन कारीगरी एक साथ बहुत कम मिलते हैं, ग्रीक कवयित्री सैफो में थे, या कुछ हद तक मध्ययुगीन ईसाई सन्त कवयित्रियों में!



संस्कृत साहित्य की श्री वृद्धि में—सरस्वती पुत्रियों का योगदान

डॉ० देवीदत्त शर्मा

पुरातन भारतीय परम्परा व सांस्कृतिक निधि से अपरिचित व्यक्ति को तो शायद यह बात कुछ विचित्र सी लगेगी कि भारत के गौरवमय साहित्यिक अतीत में नारी जाति ने भी साहित्यिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुष जाति के कन्धे से कन्धा मिला कर सरस्वती की पुनीत आराधना में समान रूप से योग दान किया था।

वस्तुतः यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय पराधीनता के दिनों में हमारे अतीत का जो चित्र खींचा गया था तथा अपनी प्राचीन परम्परा तथा इतिहास से मुँह मोड़ने की हमें जो आदत डलवाई गई थी, हम उसे आज भी बनाए हुए है, और इसीलिए शिक्षित होते हुए भी अनेक महत्वपूर्ण विषयों में अनभिज्ञ ही बने हुए हैं। संस्कृत की कवयित्रियों के बारे में भी हमारी स्थिति कुछ ऐसी ही है पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि जिस देश में सांस्कृतिक जागृति की प्रभात वेला में ही अर्द्ध नारीश्वर के रूप में विश्वव्यापिनी सच्चिदान्द शक्ति की उदात्त कल्पना की गई हो उस देश की नारी शक्ति जीवन के क्षेत्र में पुरुष से पीछे रह जाय यह कैसे हो सकता है ?

विश्व की साहित्यिक सृष्टि के आदि काल में ही भारतीय नारी ने अपनी साहित्यिक सर्जनात्मक प्रवृत्ति का परिचय देना आरम्भ कर दिया था। वैदिक साहित्य में ही घोषा, अपाला, लोपामुद्रा, रोमशा, विश्वबारा आदि मंत्रद्रष्टा ऋषियों की अलौकिक प्रतिभा के दर्शन होने लगते हैं, सच तो यह है कि विश्व में भारत ही वह देश है, तथा वैदिक धर्म ही वह धर्म है, जिसने कि अपने मौलिक धार्मिक ग्रन्थों में नारी की वाणी को ऐसा महत्वपूर्ण गौरव प्रदान किया है। वैदिक काल की इन नारी विभूतियों ने वेद मंत्रों की रचना तथा दर्शन का जो सूत्रपात किया था उसे उनकी पुत्रियों-पौत्रियों ने बराबर जारी रखा। जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान ही इन्होंने साहित्य के क्षेत्र को भी अपनी प्रखर प्रतिभा से चमकाया, सरस्वती की पुनीत आराधना में अपना पूरा पूरा योगदान किया। स्वयं काव्य रचना की और अनेक महाकवियों को काव्य रचना की अमर प्रेरणा दीं। कालिदास को महाकवि बनाने का श्रेय उनकी विदुषी पत्नी विद्योत्तमा को ही दिया जाता है। हम देख सकेंगे कि इन सरस्वती पुत्रियों की महान् देन से भारतीय साहित्य गगन आज जगमगा रहा है। आवश्यकता है केवल इस ओर आंख फिरा कर देखने की।

थोड़े से ही प्रयत्न से हम देख सकेंगे कि वैदिक काल के बाद के लौकिक सहित्य में भी इन सरस्वती की आराधिकाओं का योग दान कम नहीं रहा। पुरूषों के समान इन्होंने भी वेद के अतिरिक्त वेदांग, न्याय, ज्योतिष, गणित, काव्य रचना आदि सभी ज्ञान के क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। सरस काव्य रचना के क्षेत्र में इन्होंने जिस चमत्कृत कर देने वाली प्रतिभा का परिचय दिया है वह निश्चय ही मधुरता, कोमलता व चमत्कारिता में पुरूप कवियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर है। प्रेम के क्षेत्र में तो इन्होंने जिस मधुर एवं उदात्त काव्य माधुरी की सृष्टि की है वह अद्भुत है। इनकी रचनाओं में मानवीय प्रेम की विभिन्न स्थितियों तथा नायक नायिका की विभिन्न मनोदशाओं का बड़ा ही सुन्दर तथा बिम्बग्राही चित्रण देखने को मिलता है। सच तो यह है कि नारी जाति ने अधिकतर इस दृश्यमान जगत् को तथा इससे सम्बन्धित रूपों को ही अपनी वाणी का

विषय बनाया है। उपनिषदों में उपलब्ध कुछ दार्शनिक विचारों को छोड़ कर बाकी नारियों से सम्बन्धित वैदिक तथा लौकिक साहित्य का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने पारलौकिक विषयों की अपेक्षा मानवीय समस्याओं को ही अपनी काव्य रचना का मुख्य विषय बनाया है।

यद्यपि उपलब्ध संस्कृत साहित्य में हमें ऐसी कवयित्रियाँ कम ही मिलती हैं, जिन्होंने प्रबन्ध काव्यों की रचना की हो पर संस्कृत में गागर में सागर भरने की जो मुक्तक काव्य की परिपाटी चल पड़ी थी जिसने कि भर्तृहरि, अमरूक, हाल आदि कवियों को अमर कर दिया था उस काव्य क्षेत्र में इन कवयित्रियों ने कमाल करके दिखाया है। हम देखते हैं कि इनकी इन मुक्तामणियों ने ही सहृदयों तथा काव्य पारखियों को इतना मुग्ध कर दिया था कि उन्होंने न केवल इनकी मुक्तकण्ठ से प्रशस्ति की है अपितु अपने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों तथा सुभाषित संग्रहों में इनको स्थान देकर इन्हें काव्य जगत् में सदा के लिए अमर कर दिया है।

इस प्रकार इनकी अलौकिक काव्य माधुरी के रसास्वादन के साथ ही जब हम इनके जीवन वृत्त की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें उस दिशा में बहुत कुछ निराश ही होना पड़ता है। पर उनके जीवन के इस पक्ष को विशेष महत्व न देने में भारतीय समाज में नारी के प्रति किसी प्रकार की हीन भावना या उपेक्षावृत्ति का परिचय मिलता हो ऐसी बात नहीं, क्योंकि जिस देश में वाल्मीकि व्यास, कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति, दण्डि, सुबन्धु जैसे काव्य दिग्गजों के स्थान काल आदि का वृत्त भी अंधकार के पर्दे में छिपा पड़ा हो वहाँ जीवन और साहित्य के परिमित क्षेत्र में ही अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने वाली इन सरस्वती पुत्रियों का कालक्रम से परिचय मिल सकेगा यह सोचना दूरारोहिणी आशा ही होगी! आज तो हमारे लिए यह भी बहुत है कि इन आराधिकाओं ने साहित्य भण्डार की श्री वृद्धि के लिए जो मूल्यवान रत्न कण प्रस्तुत किये हैं—साहित्य पारखियों ने उन्हें परखा तथा पुरातन की थाती के रूप में उन्हें संजोकर रख छोड़ा है। यह तो निश्चित ही है कि पुरूष कवियों की असंख्यों रचनाओं के समान ही इन कवयित्रियों की अनगिनत रचनाएँ काल कवलित हो गई हैं। फिर भी हमारे संस्कृत सूक्ति ग्रन्थों व सुभाषित संग्रहों तथा काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में जो कुछ भी सुरक्षित रह सका है उसी के आधार पर हम अनुमान लगा सकते हैं कि इस देश की संस्कृत कवयित्रियों की प्रतिभा कितनी प्रखर तथा कितनी बहुमुखी थी। उन्होंने बाह्य तथा अन्तर्गत् के रूपों को कितनी सूक्ष्मता से देखा, परखा तथा अभिव्यक्त किया था। कभी-कभी तो संस्कृत भाषा तथा शैली पर उनके अद्भुत अधिकार को देख कर चकित रह जाना पड़ता है। संस्कृत ही नहीं, अपितु हम देख सकेंगे कि प्राकृत भाषा में भी उन्होंने इसी अधिकार तथा प्रवाह के साथ काव्य रचना की है।

यद्यपि, जैसा कि हम अभी ऊपर कह आये है, कि काल क्रम से इन उपलब्ध कवयित्रियों का परिचय प्रस्तुत करना बड़ा कठिन काम है पर फिर भी हमारे पास कुछ स्रोत ऐसे अवश्य हैं जिनके आधार पर हम मोटे तौर पर कुछ शताब्दियोंके हेर फेर में इनका काल क्रम मान सकते है। हमारी सूचना के ये स्रोत है काव्यशास्त्र पर लिखे गए ग्रन्थ, कवि प्रशस्तियां तथा सूक्ति संग्रह। मोटेतौर पर इन सबका समय विद्वानों के द्वारा निर्धारित किया जा चुका है अतः उनके साक्ष्य पर कम से कम उनकी सीमा का निर्धारण तो कर ही सकते हैं। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इन कवयित्रियों की रचनाओं को विभिन्न साहित्यिक रूपों के उदाहरण के रूप में उद्धृत करने वाले आचार्य हैं, क्रमशः दण्डी—काव्यादर्श [सप्तम शताब्दि], मुकुलभट्ट—अभिवृत्ति मात्रिका [अष्टम शताब्दि], वामन—काव्यालंकार सूत्र वृत्ति [अष्टम शताब्दि], आनन्द वर्धन—ध्वन्यालोक (नवम शताब्दि पूर्वार्ध), राजशेखर—काव्यमीमांसा (नवम शताब्दि उत्तरार्ध) भोज—सरस्वती कण्ठाभरण (दशम शताब्दि) मम्मट- काव्य प्रकाश (दशम शताब्दि), इसके बाद के आचार्यों विश्वनाथ—साहित्यदर्पण, पंडित राज जगन्नाथ-रसगंगाधर आदि ने भी अपने लक्षण ग्रन्थों में इनकी अनेक रचनाओं को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है पर उससे काल निर्धारण में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है क्योंकि ये प्रायः वही है जो कि ११ वीं शताब्दि के पूर्व के आचार्यों द्वारा उद्धृत की जा चुकी है अथवा ये वे हैं जो कि इससे पूर्ववर्ती सुभाषित अथवा सूक्ति संग्रहों में स्थान पा चुकी

हैं। इन संस्कृत संग्रहों में जो ग्रन्थ इन कवयित्रियों के काल निर्णय में हमारी कुछ सहायता कर सकते हैं वे हैं, कवीन्द्र वचन समुच्चय (११ वीं शताब्दि), सदुक्ति कर्णामृत (१३ वीं शताब्दि), सूक्तिमुक्तावली (१३ वीं शताब्ति), शार्गंधर पद्धति (१४ वीं शताब्दि) सुभाषितावली (१५ वीं शताब्दि) तथा सुभाषिताहारावली, सूक्ति सुन्दर, पद्यवेणी (१७ वीं शताब्दि) व पद्यामृत तरंगिणी (१८ वीं शताब्दि) आदि। इनके अतिरिक्त कुछ कवयित्रियाँ ऐसी भी भी हैं जिनके विषय में इन स्रोतों के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी प्राप्त हो जाते हैं।

इसी धुंधले से प्रकाश में ही अब हम अपने पाठकों को संस्कृत की इन कला विलासिनियों का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय देने का यत्न करेंगे। यद्यपि इस लेख की परिधि में उन सभी संस्कृत प्राकृत कवयित्रियों के जीवन तथा काव्य पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं होगा फिर भी संस्कृत साहित्य के इस अल्पज्ञात वर्ग से काव्यरसिकों को परिचित कराने तथा उसके प्रति उन्हें आकृष्ट करने के लिए हम कुछ प्रमुख कवयित्रियों तथा उनके काव्यों के स्वरूप का संक्षिप्त परिचय काल क्रम से ही प्रस्तुत करने का यत्न निम्नलिखित अनुच्छेदों में करेंगे।

काल क्रम से संस्कृत कवयित्रियों की दीर्घ परम्परा में जिसे सर्व प्रथम स्थान दिया जा सकता है वह है कालिदास की समकालीन और विक्रमादित्य की सभा पण्डिता चण्डाल विद्या यद्यपि चण्डाल विद्या का एक ही पद्य सदुक्ति-कर्णामृत में संग्रहीत है पर वही उसकी श्रेष्ठ काव्य प्रतिभा का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। इस पद्य के संग्रह कर्ता का समय यद्यपि १३ वीं शताब्दि है किन्तु संग्रह कर्ता ने इसके रचयिता के रूप में 'चण्डाल विद्या-विक्रमादित्य-कालिदासानाम्' लिख कर इस कवयित्री के कालिदास कालीन होने का संकेत किया है। उसके काव्य की श्रेष्ठता का अनुमान इसी बात से लगाया जाता है कि कालिदास और विक्रमादित्य का नाम उसके साथ सह-लेखकों के रूप में लिया गया है। इस पद्य में कवयित्री ने चन्द्रोदय का ऐसा सुन्दर शब्द चित्र खींचा है कि रचना में कालिदासाय कल्पना का सहज आभास होने लगता है, पद्य है—

क्षीरोदाम्भसि मज्जतीव दिवस-व्यापार-खिन्नं जग—
त्तत्क्षोभाज्जल-बुद्बुदा इव भवन्त्यालोहितास्तारकाः,
चन्द्रः क्षीरमिव क्षरत्यविरतं धारा-सहस्त्रोत्करै—
रुद्ग्रीवैस्तृषितैरिवाद्य कुमुदैर्ज्योत्स्ना-पयः पीयते ॥

इसके बाद स्थान आता है बहुचर्चित तथा बहुमुखी प्रतिभावती कवयित्री 'विज्जिका' का। इसका विज्जका, विज्जा, विद्या आदि नामों से भी उल्लेख पाया जाता है। सूक्ति संग्रहों में इसके लगभग ३० पद्य पाये जाते हैं जिनमें, मानव, सौन्दर्य, दैव, प्रेम, वियोग, विलास एवं मनोहारी चित्रण पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अभी हाल ही में 'कौमुदी महोत्सव' नाम का पाँच अंकों का एक सुन्दर नाटक भी उपलब्ध हुआ है जिसमें कि बड़े नाटकीय कौशल के साथ मृच्छकटिक के समान ही राजनीतिक घटनाओं को प्रणय-कथा के सम्बन्ध किया गया है। उसकी खण्डित प्रस्तावना से पता चलता है कि इसकी लेखिका कोई महिला थी। इसके अन्तिम वर्ण 'ज्जिका' तो सुरक्षित है पर आदि वर्ण कीटभ्रष्ट हो गया है! विद्वानों ने अनुमान और परीक्षण के आधार पर 'विज्जिका' को ही इसकी रचयित्री माना है।

काल निर्धारण की दृष्टि से भी इसका समय अधिक सुनिश्चित किया जा सकता है। इसका एक प्रसिद्धतम पद्य—'धन्यासि या कथयसि०', जो कि विश्वनाथ तक अनेक अलंकारिक लक्षण ग्रन्थों में मिलता है, मुकुलभट्ट की अभिधा-वृत्तिमातृका में मिलता है। मुकुलभट्ट काश्मीर नरेश अवन्ति-वर्मन् (८५५—८८३ ई०) के समकालीन मह कल्लट का पुत्र था। अतः उसकी निम्नतम सीमा इसके नीचे नहीं हो सकती और उच्चतम सीमा का निर्धारण भी कठिन नहीं, क्योंकि अपने एक पद्य में विज्जिका ने महाकवि दण्डी को उसकी सरस्वती विषयक एक उक्ति के लिए दोषी ठहराया है। उसका कथन है—

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्व शुक्ला सरस्वती ॥

इससे सिद्ध हो जाता है कि उसका समय दण्डी (७वीं शताब्दी) से पूर्व नहीं हो सकता। निदान वह ८वीं शताब्दि के लगभग रही होगी।

इसकी काव्य रचना की मधुरता से मुग्ध होकर अनेक लक्षण ग्रन्थकारों ने इसके कई पद्यों को विविध उदाहरणों के रूप में उद्धृत किया है। नमूने के तौर पर सूर्योदय का एक मधुर चित्रण देखिए—

> उन्निद्र-कोकनद-रेणु-पिशङ्गिताङ्गा
> गायन्ति मञ्जु मधुपा गृहदीर्घिकासु।
> एतच्चकास्ति च रवेर्नव-बन्धु-जीव—
> पुष्पच्छदाभमुदयाचल-चुम्बि बिम्बम् ॥

यद्यपि शृंगार विषयक इसकी उक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं पर यहां हम उसकी एक सुन्दर अन्योक्ति को प्रस्तुत करना ही अधिक उपयुक्त समझेंगे। अन्योक्ति का विषय है चम्पक। कवयित्री कहती है—

> केनापि चम्पक-तरो बत रोपितोऽसि
> कुग्राम-पामर-जनान्तिक-वाटिकायाम्।
> यत्र प्ररूढ-नव-शाक-विवृद्ध-लोभाद्
> भो भग्न-वाट-घटनोचित-पल्लवोऽसि

कवयित्री फल्गुहासिनी का समय भी विज्जिका के ही निकट होना चाहिए। क्योंकि ९वीं शताब्दि के प्रसिद्ध आलंकारिक आचार्य वामन ने इसकी रचना की पंक्तियों को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में उद्धृत किया है। उसके बाद के आचार्यों ने भी उसके पद्य को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। यद्यपि इसके केवल दो ही पद्य सूक्ति संग्रहों तथा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में पाये जाते हैं पर उसकी काव्य रचना की प्रौढ़ता को सिद्ध करने के लिए यही पर्याप्त है कि वामन जैसे प्रौढ़ आचार्य ने उसे उद्धृत किया है। दोनों ही पद्य उसकी प्रौढ़ प्रतिभा का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं। विधाता क्योंकर इतने श्रेष्ठ एवं सुन्दर मानवों का निर्माण कर फिर उन्हें नष्ट कर देता है, इसका सुन्दर दार्शनिक चिन्तन देखिए—

> सृजति तावदशेष-गुणाकरं
> पुरुष-रत्नमलंकरणं भुवः।
> तदनु तत् क्षण-भङ्गि करोति चे-
> दहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥

इसी काल की एक और प्रसिद्ध कवयित्री है विकट-नितम्बा। यह एक प्रतिभावती कवयित्री थी! इसके मार्मिक पद्य अनेक सूक्ति ग्रन्थों तथा आलंकारिक ग्रन्थों में संगृहीत हैं। विज्जिका की भाँति इसकी भी प्रतिभा बहुमुखी थी। यह मुख्यतः प्रेम और सौन्दर्य की कवयित्री है। प्रकृति, ऋतु, अन्योक्ति आदि पर भी इसकी मधुर एवं चमत्कारिणी उपमाएँ मिलती हैं। इसका समय नवम शताब्दि का पूर्वार्ध से भी पूर्व होना चाहिए। क्योंकि नवम शताब्दि के प्रसिद्ध आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में इसके निम्नलिखित पद्य को उद्धृत किया है—

> लावण्य सिन्धुरपरैव हि केयमत्र
> यत्रोत्पलानि शशिना सह संप्लवन्ते।
> उन्मज्जति द्विरद-कुम्भ तटी च यत्र
> यत्रापरे कदल-काण्ड-मृणाल-दण्डा

मधुलोलुप भ्रमर के प्रति इसकी एक प्रिय अन्योक्ति सुनिए—

> अन्यासु तावदुपमर्द-सहासुभृङ्ग
> लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु।
> मुग्धामजात-रजसं कलिकामकाले
> व्यर्थं कदर्थयसि किं नव मालिकायाः ॥

इसकी प्रथम पंक्तियों को पढ़कर तो महाकवि बिहारी की "नहि पराग नहि मधुरमधु नहि विकास एहि काल, अली कली ही सौं बंध्यौ आगे कौन हवाल" की स्मृति तरोताजा हो जाती है। इनकी शृंगारिक रचनाओं में तो कल्पना का ऐसा विलास व शब्दों का ऐसा माधुर्य है कि हम यहाँ पर इनके एक और पद्य को उद्धृत करने के लोभ का संवरण नहीं कर सकते। अभिसारिका-संचार से सम्बन्धित एक उक्ति प्रत्युक्ति है—

> क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे
> प्राणाधिपो वसति यत्र मनः प्रियो मे।
> एकाकिनी वद कथं न बिभेषि बाले
> नन्वस्ति पुंखितशरो मदनः सहायः ॥

इससे अगली शताब्दि में हमें संस्कृत की जिन मान्य कवयित्रियों की स्थिति का पता चलता है, वे हैं शीला-भट्टारिका, सीता, सुभद्रा, त्रिभुवन सरस्वती और प्रभुदेवी। इन सभी का स्थिति काल दशम शताब्दि से पूर्व ही रहा होगा

यह इस बात से सिद्ध हो जाता है कि दशम शताब्दि के प्रसिद्ध कवि और आचार्य राजशेखर ने या तो स्वयं इनकी प्रशंसा में काव्य रचना की है या इनकी रचनाओं को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' में उद्धृत किया है, शीला भट्टारिका के विषय में कही गई उसकी प्रशस्ति को कवि जल्हण ने उद्धृत किया है। प्रशस्ति में शब्दार्थ की सुन्दर योजना के लिए उसकी तुलना महाकवि बाण से की गई है—

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते ।
शीला भट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ।।

संस्कृत कवयित्रियों में शीला भट्टारिका का स्थान बहुत उच्च माना जाता है और वह सबसे अधिक प्रसिद्ध कवयित्री भी है। उसकी रचनाएँ प्रायः सभी श्रेष्ठ सूक्ति संग्रहों में पाई जाती हैं और सभी प्रसिद्ध आलंकारिकों ने उन्हें विविधरूपों में उद्धृत किया है। राजशेखर की प्रशस्ति के अतिरिक्त काव्यप्रकाश, कवीन्द्र वचनसमुच्चय (११वीं शताब्दि), राजानक रुय्यक का अलंकार सर्वस्व (११५० ई०) तथा शारंगधर पद्धति आदि में इसके पद्यों को पर्याप्त मात्रा में उद्धृत किया गया है। धनददेव ने विज्जा, मारुला, मोरिका के साथ इसकी विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा की है—

शीला-विज्जा-मारुला-मोरिकाद्याः
काव्यं कर्तुं सन्ति विज्ञा स्त्रियोऽपि ।
विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं
विश्वं वक्तुं यः प्रवीणः स वीरः ।।

शीला भट्टारिका के काव्य की विशेषता यह है कि उसकी प्रत्येक रचना में एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अवलोकन की झलक मिलती है। इनमें प्रेमियों की विभिन्न कालीन मनोदशाओं का वियोग, ईर्ष्या, सन्देह आदि का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक एवं बिम्बग्राही चित्रण देखने को मिलता है। नायिका से वियुक्त नायक को चिन्ता के कारण नींद नहीं आती, इसका एक भावपूर्ण चित्रण देखिए—

प्रिया-विरहितस्यास्य हृदि चिन्ता समागता ।
इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते ।।

कवयित्री सीता के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि उसके चन्द्र विषयक निम्नलिखित पद्य को राजशेखर ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्य मीमांसा में ऊद्धृत किया है—

मा भैः शशाङ्क मम सीधुनि नास्ति राहुः
खे रोहिणी वसति कातर किं बिभेषि ?
प्रायो विदग्ध-वनिता-नवसङ्गमेषु
पुंसां मनः प्रचलतीति किमत्र चित्रम् ।।

इस एक ही पद्य से पता चलता है कि इस कवयित्री में भाव, भाषा और कल्पना का कैसा सुन्दर सामञ्जस्य था।

कवयित्री सुभद्रा का यद्यपि केवल एक ही पद्य बल्लभदेव द्वारा संगृहीत सुभाषितावली में पाया जाता है और उसकी प्रशस्ति में राजशेखर ने जो कुछ कहा है उससे पता चलता है, कि सुभद्रा ने पर्याप्त काव्य रचना की थी और उसकी वाणी में काव्य चातुरी का विलास था जिससे कि उसने काव्य रसिकों के मनों को मुग्ध कर डाला था। सुभद्रा शब्द के श्लेष का लाभ उठाकर वह कहता है—

पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे खलु सुभद्रया ।
कवीनां च वचोवृत्तिश्चातुर्येण सुभद्रया ।।

इसने भी स्नेह के श्लिष्ट अर्थ (प्रेम और घृत) का लाभ उठा कर बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है कि स्नेह की उपलब्धि के लिए किस प्रकार अपने को संकटों में डालन पड़ता है—

दुग्धं च यत्तदनु यत् क्वथितं ततो नु
माधुर्यमस्य हृतमुन्मथितञ्च वेगात् ।
जातं पुनर्घृतकृते नवनीत-वृत्ति
स्नेहो निबन्धनमनर्थ-परम्पराणाम् ।।

राजशेखर के साक्ष्य पर हमें जिस एक और कवयित्री का पता चलता है वह है त्रिभुवन सरस्वती। राजशेखर ने अपनी नाट्य-रचना कर्पूर मंजरी में महीतल सरस्वती की बड़ी बहिन के रूप में त्रिभुवन सरस्वती का नामोल्लेख किया है, खयाल किया जाता है कि यह वही त्रिभुवन सरस्वती होनी चाहिए। सदुक्ति कर्णामृत में इस नाम से दो पद्य संगृहीत किये गये हैं। इनमें से एक में किसी राजा के लोकातीत सौन्दर्य का वर्णन है तथा दूसरे में समुद्रमंथन के समय समुद्र से उद्भूत लक्ष्मी को देखकर भगवान विष्णु के हर्षातिरेक का निम्नलिखित रूप में बिम्बग्राही चित्रण किया है—

पातु त्रिलोकीं हरिरम्बु-राशौ
प्रमथ्यमाने कमलां विलोक्य ।

अज्ञात-हस्त-च्युत-भोगि-नेत्रः
कुर्वन् वृथा बाहु-गता गतानि ॥

राजशेखर की प्रशस्ति की अन्यतम अधिकारिणी एक और कवयित्री है प्रभुदेवी। यह लाट देश (गुजरात) की निवासिनी थी। दुर्भाग्य से उसकी कोई भी रचना सुरक्षित नहीं रह सकी हैं। राजशेखर ने उसकी स्मृति में जो प्रशस्ति लिखी है उससे पता चलता है कि वह कोई उच्च कोटि की शृंगार की कवयित्री थी। वह कहता है—

सूक्तीनां स्मर-केलीनां कलानां च विलास भूः।
प्रभुदेवी कविर्लाटी गताऽपि हृदि तिष्ठति ॥

राजशेखर के बाद इन कवयित्रियों के विषय में कुछ जानने का जो स्रोत हमें उपलब्ध है वह है भोज का सरस्वती कण्ठाभरण (१० वीं शताब्दि)' इसमें हमें चिन्नम्मा, राजकन्या और सरस्वती इन तीन कवयित्रियों की रचनाओं के उद्धरण मिलते हैं जो कि उनके भोज से पूर्व कालीन होने का प्रमाण है। इसमें तथा इसके बाद शारंगधर पद्धति में भी चिन्नम्मा के नाम से केवल एक पद्य उद्धत किया गया है। इसमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द में भगवान् शंकर के भैरव रूप की स्तुति की की गई है। इससे पता चलता है कि इसको शब्दाडम्बर तथा समासपूर्ण शैली का विशेष मोह था। पद्यगत सन्दर्भों से यह भी पता चलता है कि इस कवयित्री को हिन्दू स्मृतियों और पुराणों का भी अच्छा ज्ञान था। इसके नाम से यह तो स्पष्ट ही है कि यह दाक्षिणात्य थी।

राजकन्या के बारे में विद्वानों का अनुमान है कि यह कश्मीर नरेश की राजकन्या है इसका असली नाम शशिलेखा या चन्द्रकला है, इसकी तथा कवि बिल्हण की प्रणय-कथा के बारे में एक जनश्रुति भी प्रचलित है। सरस्वती कण्ठाभरण, शारंगधर पद्धति, साहित्य दर्पण, रस गंगाधर आदि ग्रन्थों में उद्धृत इसके पद्यों में नायक नायिका के उत्तर प्रत्युत्तर रूप में इसके तथा कवि बिल्हण के मध्य होने वाली सरस उक्ति-प्रत्युक्तियों का आभास मिलता है। निम्नलिखित पद्य में पूर्वार्ध कवि बिल्हण का और उत्तरार्ध राजकन्या का है—

निरर्थकंजन्म गतं नलिन्या,
यया न दृष्टं तुहिनांशु बिम्बम्।
उत्पत्तिरिन्दोरपि निष्फलैव,
दृष्टा विनिद्रा नलिनी न येन ॥

कवयित्री सरस्वती का भी सर्वप्रथम उल्लेख हमें भोज के सरस्वती कण्ठाभरण में मिलता है, इसके बाद फिर कई अलंकार ग्रन्थों तथा शारंगधर पद्धति, सदुक्ति कर्णामृत आदि सूक्ति संग्रहों में भी इन्हें उद्धृत किया गया है। इसके व्यक्तिगत जीवन के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं। काव्य रचना में अवश्य ही यह एक सिद्धहस्त कवयित्री प्रतीत होती है। निम्नलिखित पद्य से ही उसकी सुन्दर भावाभिव्यक्ति, व्यञ्जनात्मक शैली तथा कोमल शब्द चयन का पता चल जाता है। किसी के किसी गुण पर मुग्ध व्यक्ति किस प्रकार अपने प्रिय के अवगुणों पर ध्यान नहीं दे पाता इसे मधुगन्ध लोभी भ्रमर तथा केतकी के दृष्टान्त द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से यों व्यंजित किया है—

पत्राणि कण्टक सहस्र-दुरासदानि
वार्ताऽपि नास्ति मधुनो रजसाऽन्धकारः।
आमोदमात्र रसिकेन मधुव्रतेन
नालोकितानि तव केतकि दूषणानि ॥

सरस्वती कण्ठाभरण के बाद अन्य प्रामाणिक ग्रन्थ जिससे हमें संस्कृत की कुछ अन्य कवयित्रियों की स्थिति का पता चलता है वह है कवीन्द्र वचन समुच्चय (११ वीं शताब्दि)। इसमें हमें विशेष रूप से प्रथम बार जघनचपला तथा भावदेवी के नाम से पद्यों का संग्रह मिलता है। जघनचपला के नाम से उद्धृत पद्य के छन्द का नाम भी जघन चपला ही है। अतः विद्वानों को इसके असली नाम होने का सन्देह है। इस नाम से असती नायिका का चित्रण करने वाला केवल एक ही पद्य मिलता है।

किन्तु इस ग्रन्थ में प्रथम बार उल्लिखित कवयित्री भावदेवी की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। इसे भावक देवी के नाम से भी उल्लिखित किया गया है। इसके नाम से दो पद्य कवीन्द्र वचन समुच्चय में तथा एक पद्य सदुक्ति कर्णामृत में पाया जाता है। इसकी रचनाओं में नारी हृदय की भावनाओं का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। मधुरता तथा सरलता इसकी काव्य शैली के प्रधान गुण हैं। शब्दाडम्बर, दीर्घ

समास अथवा अत्यधिक अलंकारों का बोझ उसे प्रिय नहीं, यद्यपि उसकी रचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसे अलंकार शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था और उचित ढंग से वह उनका सम्यक् प्रयोग भी कर सकती थी। मानिनी व्रज्या का एक चित्र है—

> तथाऽभूदस्माकं प्रथममविभिन्ना तनुरियं
> नतोऽनुत्वं प्रेयानहमपि हताशा प्रियतमा।
> इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं
> मयाप्तं प्राणानां कुलिश-कठिनानां फलमिदम्॥

इसके बाद मारुला और मोरिका नाम की दो अन्य कवयित्रियों का सर्व प्रथम उल्लेख करने वाला ग्रन्थ है, जल्हण कृत सूक्ति मुक्तावली (१३ वीं शताब्दि)। इन कवयित्रियों का उल्लेख इसके बाद १४ वीं शताब्दि की रचना शारंगधर पद्धति में भी मिलता है। धनददेव ने भी शीला और विज्जा के साथ ही इन दोनों के वैदुष्य की बड़ी प्रशंसा की है। मारुला के यद्यपि केवल दो ही पद्य प्राप्त हैं पर उनसे ही उसके प्रशंसनीय काव्य कौशल का परिचय मिल जाता है। उसमें वास्तविक भाव चित्रण की अद्भुत क्षमता दिखाई देती है। एक विरहणी परदेश से आये हुए प्रिय से किस प्रकार भाव व्यक्त करती है—

> कृशा केनासि त्वं प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे
> मलाधूम्रा कस्माद् गुरु-जन-गृहे पाचकतया।
> स्मरस्यस्मान् कच्चिन्नहि नहि नहीत्येवमगमत्
> स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता॥

मारुला के समान ही मोरिका भी अपने समय की प्रसिद्ध कवयित्री प्रतीत होती है। इसकी रचनाएँ सूक्ति-मुक्तावली, शारंगधर पद्धति, सुभाषितावली आदि सभी सूक्ति संग्रहों में संगृहीत पाई जाती हैं। इसीसे उसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। धनद देव (शा० प०) ने इसके वैदुष्य की भी बड़ी प्रशंसा की है। इसकी शैली बड़ी परिष्कृत तथा ललित है। भावों की अभिव्यक्ति, विशेषकर प्रेम विषयक भावों की कोमल एवं जीवन्त अभिव्यक्ति में इसे प्रशंसनीय सफलता मिली है, इसकी वर्णन शैली का एक नमूना देखिए, वियोगिनी का चित्र है—

> लिखतिनगणयति रेखां निर्झर-वाष्पाम्बु-धौत गण्ड-तटा।
> अवधि-दिवसावसानं मा भूदिति शङ्किता बाला॥
> (आर्या)

सूक्ति मुक्तावली के बाद जिस काव्य संग्रह में हमें सबसे अधिक संस्कृत कवयित्रियों की रचनाएँ संग्रहीत मिलती हैं वह है—शारंगधर पद्धति (१४ वीं शताब्दि)। इसमें अनेकों कवयित्रियाँ तो वे ही हैं जिनका उल्लेख इससे पूर्ववर्ती ग्रन्थों में भी आ चुका है पर कुछ ऐसी भी हैं जिनका कि प्रथम बार उल्लेख यहीं पर मिलता है। इनमें से उल्लेखनीय हैं—गन्धदीपिका, नागम्मा, सरस्वती, कुटुम्ब दुहिता, लक्ष्मी और मदालसा। इनकी प्रायः एक-एक या दो-दो उक्तियाँ ही इस संग्रह में मिलती हैं। गन्धदीपिका के पद्य से पता चलता है कि वह अपने युग की गीतिका लेखिका थी। नागम्मा में भी कल्पना का सुन्दर पुट देखने को मिलता है। इसके नाम से प्रतीत होता है कि यह दाक्षिणात्य थी। प्रातः कालीन सूर्य की तोते की चोंच से उपमा तथा पूर्व दिशा के कुण्डल से उत्प्रेक्षा दर्शनीय है।

> शुक-तुण्डच्छवि-सवितुश्चण्डरुचः पुण्डरीक-वन-बन्धोः।
> मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलमाखण्डलाशायाः॥

सरस्वती कुटुम्ब दुहिता का व्यक्तिगत नाम क्या था यह तो कहा नहीं जा सकता। यह तो केवल उसका पारिवारिक नाम प्रतीत होता है। उसने एक समस्यामूलक श्लिष्ट पद में राजा भोज को सम्बोधित किया है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वह राजा भोज के काल में रही हो। निम्नलिखित पद्य में सुरत (रति और ब्रह्म) पद श्लिष्ट है,

> सुरताय नमस्तस्मै जगदानन्द-हेतवे।
> अनुषङ्गिफलं यस्य भोज-राज भव दृशा॥

संस्कृत कवयित्रियों की दीर्घ शृंखला में हमें लक्ष्मी और मदालसा दो ऐसी कवयित्रियां मिलती हैं जिन्होंने मानवीय स्थूल प्रेम के चित्रण की अपेक्षा दार्शनिक और पार लौकिक चिन्तन की ओर अधिक ध्यान दिया है। यद्यपि इनकी उक्तियाँ अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं, पर उनकी एक-एक उक्ति ही उनकी मानसिक प्रवृत्ति तथा चिन्तन धारा का परिचय देने के लिए

पर्याप्त है। मानव का भाग्य ही सबसे अधिक बलवान् है इस भाव को बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति दी है लक्ष्मी ने—

भ्रमन् वनान्ते नव-मञ्जरीषु
न षट्पदो गन्ध फलीमजिघ्रन्।
सा किं न रम्या स च किं न रन्ता
बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा॥

इसी प्रकार मानव को अपने ही कर्मों का फल भोगना पड़ता है इस विचार सरणि को प्रश्रय दिया है कवयित्री मदालसा ने—

पर-लोक-हितं तात प्रातरुत्थाय चिन्तय।
इह ते कर्मणामेव विपाकश्चिन्तयिष्यति॥

इसके बाद हमें वल्लभदेवकृत सुभाषितावली (१५वीं शताब्दि) प्राचीन कवयित्रियों की लोक-प्रियता के साथ कुछ नवीन कवयित्रियों का भी परिचय कराती है। जिनमें प्रमुख नाम लिया जा सकता है इन्दुलेखा का। इसके नाम यद्यपि एक ही पद्य इस संग्रह में उपलब्ध होता है किन्तु उसी से कवयित्री की प्रखर काव्य प्रतिभा का परिचय प्राप्त हो जाता है। इसकी नवीन कल्पना व शब्द संगीत दर्शनीय है। सूर्यास्त के उपरान्त सूर्य की स्थिति विषयक विभिन्न लोक विश्वासों का निषेध करती हुई कवयित्री कहती है कि क्षितिज से अस्त होने के बाद सूर्य प्रेम-वियोगिनी नारी के हृदय में घुस जाता है और फिर सारी रात उसे तपाता रहता है।

एके वारि-निधौ प्रवेशमपरे लोकान्तरालोकनं
केचित् पावक-योगितां निजगदुः क्षीणेऽह्नि चण्डार्चिषः।
मिथ्या चैतदसाक्षिकं प्रिय-सखि प्रत्यक्ष तीव्रातपं
मन्येऽहं पुनरध्वनीन-रमणी-चेतोऽधिशेते रविः॥

इसी काल की एक ऐतिहासिक कवयित्री है लक्ष्मी देवी ठकुरानी। यह मिथिला नरेश शिवसिंह (१५वीं शताब्दि) की राजमहिषी थीं। इन्होंने एक पद्य में बड़े तीव्र रूप में मिथिला में प्रचलित कन्या विक्रय की सामाजिक कुप्रथा पर तीव्र आक्रोश तथा तीव्र व्यंग्य किया है। बहिन के विक्रय का धन पाकर अपने ऐश्वर्यपूर्ण जीवन का प्रदर्शन करने वाले भाई के प्रति व्यंग्यात्मक उक्ति है। सामाजिक विषयों पर इस प्रकार की उक्तियाँ बहुत कम पाई जाती हैं, पद्य है—

चपलं तुरगं परिणर्तयतः पथि पौर जनान् परिमर्दयतः।
नहि ते भुज-भाग्य-भवो-विभवो, भगिनी-भग-भाग्य-भवो-विभवः॥

ईसके बाद हमारे सामने (१७वीं शताब्दि) की रचनाएँ— पद्यमृत तरंगिणी, पद्यवेणी, सूक्तिसुन्दर, सुभाषित हारावली आदि आती हैं जिनसे कि हमें उस काल की उन प्रसिद्ध कवयित्रियों का परिचय पाप्त होता है जिनका कि उल्लेख इनसे पूर्व की रचनाओं में नहीं मिलता है। जिनमें से उल्लेखनीय हैं—पद्मावती, वेणीदत्त, गौरी, केरली, कुटला, मधुवर्णी आदि। इनमें से भी गौरी और पद्मावती का स्थान विशेष महत्त्व पूर्ण है। संख्या, वर्णनीय विषय तथा बहुमुखी प्रतिभा सभी दृष्टियों से इन दोनों की रचनाएँ संस्कृत की अन्यसभी कवयित्रियों की रचनाओं से उत्कृष्टतर हैं। गौरी के पद्यों को वेणीदत्त कृत पद्मवेणी (१६४४ ई०) तथा सुन्दर देव कृत सूक्तिसुन्दर में उद्धृत किया गया है। अतः इसका काल (१७वीं शताब्दि) का पूर्वार्ध ही हो सकता है। इसने देवता, राजा, युद्ध, मानव, प्रकृति, प्रेम, सौन्दर्य आदि अनेक विषयों पर रचना की है। इसकी रचनाओं में शब्द योजना, कल्पना, अभिव्यक्ति, छन्द, अलंकार संगीत, सभी कुछ अपूर्व है। शैली भी सर्वथा सरल एवं अकृत्रिम है। अनुप्रास का मोह होने पर भी अन्य अलंकारों का प्रयोग बड़े सोच समझ के साथ किया गया है! उसकी काव्यशैली का एक नमूना देखिए—

अपाङ्ग स्तव तन्वङ्गि विचित्रोऽयं भुजंगमः।
दृष्ट-मात्रः सुमनसामपि मूर्च्छा विधायकः॥

कवयित्री पद्मावती के दो पद्य हरिभास्करकृत पद्यात तरंगिणी (१७३० ई०) में पाये जाते हैं। वेणीदत्त की पद्मवेणी में भी इसके १९ पद्य उद्धृत है। गौरी के समान ही इसने भी विविध विषयों पर काव्य रचना की है। मानव, प्रकति, प्रेम, सौन्दर्य आदि के विविध रूपों का बड़ा ही कवित्वामय वर्णन इसने किया है। नारी सौन्दर्य के आधारभूत विभिन्न

अंगों का भी इसमें सुन्दर वर्णन किया है। नायिका के केशों का वर्णन देखिए—

किं चारु-चन्दन-लता-कलिता भुजङ्ग्य
किं पत्र-पद्म-मधु-संवलिता नु भङ्ग्य।
किं वाननेन्दु-जित-राकंदु-रुचोऽपिबाल्य:
किं भान्ति गुर्जर-वर प्रमदा-कचाल्यः॥

कृपण विषयक एक और उक्ति देखिए—

कोषे निषण्णस्य च बद्धमुष्टेर्मलिम्लुचाकार विभीषणस्य।
आकारत: केवलमस्ति भेद: कृपाणकस्यापि धनाणकस्य॥

प्रस्तुत निबन्ध के लघु कलेवर में यह सम्भव नहीं कि हम सभी ज्ञात और अज्ञात संस्कृत कवयित्रियों का आलोचनात्मक परिचय दे सकें। फिर भी उन कुछ स्वनामधन्य संस्कृत कवयित्रियों का परिचय दिए बिना शायद लेख के साथ न्याय न हो सकेगा जिन्होंने कि साहित्य रचना के क्षेत्र में मुक्तक रचनाओं के अतिरिक्त प्रबन्ध काव्य रचना के क्षेत्र में भी स्तुत्य प्रयास किया है। इनमें प्रमुख है—चित्तौड़ के राणा संग्राम सिंह की माता, देव कुमारिका, द्वारा लिखित पाँच प्रकरणों (सर्गों) में पूर्ण काव्य वैद्यनाथ प्रशस्ति। जिसे वैद्यनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय (१७१६ ई०) में लिखा गया है। इसमें चित्तौड़ के राजवंश की तथा एकलिंग भगवान् की सुन्दर प्रशस्ति है। इसके बाद काव्य रचना में लक्ष्मी राज्ञी कृत सन्तान गोपाल का नाम लिया जा सकता है। यह तीन सर्गों में पूर्ण एक धार्मिक कृति है। राज्ञी लक्ष्मी उत्तरी मलाबार के कटट्टनट्टु राजपरिवार की थी और अपने पुत्र कुमार रविवर्मन को कृष्ण और विष्णु विजषक गाथाओं से परिचित कराने के लिए ही उसने इस काव्य की रचना की थी। काव्य बड़ी सुन्दर एवं मधुर शैली में लिखा गया है। कथा भागवत पुराण के दशम स्कन्ध से ली गई है।

विजय नगर के राजा कम्पराय (१३४३–१३७९ ई०) की रानी गंगादेवी भी एक अच्छी कवयित्री थी। उसने अपने पति की मदुरा विजय के उपलक्ष्य में एक सुन्दर ऐतिहासिक काव्य 'मदुरा विजय' की रचना की। इसमें नायिका का स्थान स्वयं कवयित्री ने लिया है तथा बड़ी सबल भाषा में युद्ध तथा शिविर जीवन का वर्णन किया है। यह कई सर्गों में विभक्त है, पर पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं।

वंगीय नरेश कृष्णनाथ (१६५० के लगभग शासनकाल) की पत्नी जयन्ती भी संस्कृत की अच्छी कवयित्री थी। कहते हैं कि आनन्द लतिका चम्पू की रचना दोनों पति-पत्नियों ने सहलेखक के रूप में की थी। इसी काल की एक और प्रसिद्ध विदुषी और कवयित्री है—तंजौर के राजा रघुनाथ भूप की सभापंडिता मधुरवाणी। उसका असली नाम शायद कुछ और रहा होगा। कहा जाता है कि राजा रघुनाथ की प्रार्थना पर उसने उसकी रचना आन्ध्ररामायण का संस्कृत में रूपान्तर किया था। कुछ समय पूर्वतक यह ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि सुरक्षित थी पर अब इसकी प्राप्ति संदिग्ध हो गई है।

तञ्जौर के नायक वंशीय नरेश रघुनाथ की सभापण्डिता रामभद्राम्बा (१६५० के लगभग) भी एक प्रसिद्ध कवयित्री थी। राजा रघुनाथ की ओर से इसे 'साहित्य-साम्राज्य-भद्रपीठारूढ़' की महनीय पदवी से विभूषित किया गया था। इसके काव्य, रघुनाथाम्युदय (१२ सर्ग) में रघुनाथ के दरबार, राज्य, व्यक्तिगत जीवन तथा उसकी विजयों का अच्छा वर्णन है। तत्कालीन इतिहास की दृष्टि से यह ग्रन्थ बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

रघुनाथ के समान ही उसका पिता अच्युत राय (१५२९–१५४२) भी कवियों का आश्रयदाता था। उसके दरबार में भी तिरुमलाम्बा नामक एक प्रसिद्ध कवयित्री थी। इसकी रचना वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू में ऐतिहासिक वर्णन के साथ-साथ विशेष रूप से अच्युत राय तथा वरदाम्बिका के विवाह का चित्रण है। रचना ओज गुण प्रधान है।

सरस्वती पुत्रियों की यह परम्परा यहीं समाप्त हो गई हो ऐसा नहीं। यह अविरल प्रवहमान धारा इस शताब्दि में भी बह रही है। आज भी दक्षिण भारत अपनी इन कवयित्रियों पर मान कर सकता है। इस शताब्दि की प्रमुख परिगणनीय कवयित्रियाँ हैं—अनसूया कमला बाई बापट, बालाम्बिका, हनुमाम्बा वन्नेलकण्टी, ज्ञान सुन्दरी, कामाक्षी, राधाप्रिया,

रामाबाई, श्री देवी बालराज्ञी, सुनामणी देवी, त्रिवेणी (७ रचनाएँ) आदि। संस्कृत साहित्य को इनकी देन विविध रूपों में प्राप्त हुई है। गद्य-पद्य नाटक, चम्पू, गीति काव्य स्तोत्र, शास्त्रीय ग्रन्थ आदि सभी कुछ इन प्रतिभाशाली कवयित्रियों की लेखनी से प्रसूत है।

समय और भाषा के परिवर्तन के साथ भारतीय नारी प्रतिभा ने अपनी पूर्व परम्परा से अविच्छिन्न रहते हुए भारतीय भाषाओं के विविध क्षेत्रों को जिस प्रकार जगमगाया है और जगमगा रही हैं वह किसी से भी छिपा हुआ नहीं है। संस्कृत की कवयित्रियों की रचना का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि नारी ने सदा सृष्टि पदार्थीय विषयों में अधिक रुचि ली है। उसका ध्येय सदा निर्माण और निर्मिति की रक्षा तथा उसके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति रहा है। मातृ-शक्ति शायद विनाश की कल्पना नहीं कर सकती, इसी लिए हम देखते हैं कि युग और परिस्थितियों के साथ उसकी अभिव्यक्ति का रूप तो बदला पर स्वर वही लोक-रंजन और लोक कल्याण की भावना से अनुप्राणित रहा। उसने जीवन और काव्य सर्वत्र सरलता, सरसता तथा सहृदयता का संचार किया है। भारत को जितना मान अपने महाकवियों पर है उतना ही इन महाकवयित्रियों पर भी, यद्यपि क्रूर काल ने उनके द्वारा प्रदत्त समस्त साहित्यिक रिक्थ को हम तक अखंडित एवं सम्पूर्ण रूप में नहीं पहुंचने दिया है, फिर भी जो कुछ भी, और जितना भी है, वही उनके गौरव तथा हमारे मान के लिए पर्याप्त है।



संस्कृत की प्राचीन स्त्री कवयित्रियाँ

●

डॉ० हरिदत्त शास्त्री

सन् १९३२ में कार्यवश लाहौर जाना पड़ा। वहाँ डा० लक्ष्मणस्वरूप से मिलने पर विदित हुआ कि उन्होंने तञ्जौर के जीर्ण पुस्तकालय से एक संस्कृत चम्पू काव्य की "तेलगु" लिपि में लिखी हुई प्रति प्राप्त की है। वह अभीतक अप्रकाशित थी एवं दुरूह भी थी। इसलिये उसकी संस्कृत टीका करने के लिये उन्होंने मुझसे अनुरोध किया। इसके पूर्व वे इसकी हिन्दी करने का भार म० म० गिरधर शर्मा को दे चुके थे। जिसे उन्होंने किसी समाचार पत्र मे प्रकाशित भी कराया था। सन् १९३३ में यह पुस्तक मेरी संस्कृत-टीका सहित छपी, इसके प्रकाशक मोतीलाल—बनारसीदास थे। संस्कृत की कवयित्रियों में सीता, विजया, सुभद्रा, प्रभुदेवी, विकटनितम्बा, जघनचपला, इन्दुलेखा, मुरला, मोरिका, भवदेवी अभिरामकामाक्षी, मधुरवाणी, रामभद्राम्बा, शीलाभट्टारिका, विद्या, लोपामुद्रा, त्रिभुवन सरस्वती, राजकन्या, फल्गुहस्तिनी, आदि के नाम प्रसिद्ध हैं, और इनके फुटकर पद्य भी उपलब्ध होते हैं। किन्तु-"वरदाम्बिका परिणय चम्पू" की लेखिका "तिरुमलाम्बा" ने पूरा ही एक चम्पू-काव्य लिखा है। "रामभद्राम्बा" ने भी एक छोटा संस्कृत काव्य लिखा है जो अभी प्रकाश में आया है। "तिरुमलाम्बा" महाराजा अच्युतराय की पत्नी थी जो कि "विजयानगरम्" के उस समय अधिपति थे। इसका रचना काल १५४० से १५४२ तक है। इसमें वर्णनों का प्राचुर्य है। समासों की दीर्घता तो जैसी इस पुस्तक में पाई जाती है वैसी अन्यत्र नहीं। पृष्ठ ३१ और ३२ का गद्य द्रष्टव्य है—

निरन्तरान्धकारित, दिगन्तर, कन्दलदमन्द सुधारस विन्दु सान्द्रतर घनाघन वृन्द सन्देहकर, स्यन्दमान मकरन्दविन्दु बन्धुरतर, माकन्द तरु कुल तल्प, कल्प, मृदुल सिकता, जाल, जटिल, मूल, तल, मरुवक, मिलदलघु, लघु, लय, कलित, रमणीय, पानीय शालिका, वालिका, करारविन्द, गलन्तिका, गलदेला, लवङ्ग पाटल घनसार, कस्तूरिकातिसौरभ, मेदुर, लघुतर, मधुर, शीतलतर, सलिलधारा निराकरिष्णु तदीय विमल, त्रिलोचन मयूखरेखाप सारित पिपासायास, पथिक लोकान्, पाकापकारि लोकातिरिक्त धरित्री विचित्र, सौभाग्यगणना रेखा श्लाघनीय जानपद, रमा विलास, सञ्चरण पुरो विस्तारित धवल वस्त्रानुकारि, सारिणीशत विराजितान्, इत्यादि

राजनाथ संकलित "अच्युतरामाभ्युदय" काव्य में भी "तिरुलाम्बा" को अच्युतराय की पत्नी ही बतलाया गया है। वह महारानी होने के साथ साथ उच्चकोटि की कवयित्री भी थी यह आश्चर्य की बात है। इसके वर्णनों में कावेरी का वर्णन बड़ा ही सुन्दर है। सायंकाल के समय के वर्णन में "तिरुमलाम्बा" की कल्पना अभूतपूर्व है। वह अस्ताचल को व्याघ्र के रूप में सूर्यविम्ब को व्याघ्र मुख के रूप में, सूर्य किरणों को व्याघ्र-मुख-श्मश्रु के रूप में एवं दिन को धेनु के रूप में चित्रित करती है। पद्य है—

अपर गिरितरक्षो रातयच्छायलेशैः
हरित मलिन वर्णैरञ्जितस्यांशुमाली
कवलित दिनधेनोः कण्ठ रक्तेन रक्तम्
विसृमर निजादैः श्मश्रुलं प्रोथमासीत्

"भाव यह है कि पश्चिमाचल रूपी व्याघ्र ने दिन रूपी गाय को खा लिया। सूर्य रूपी पर्वत व्याघ्र का मुख जो मन्दातप होने से सन्ध्याकाल की नील रेखाओं और सूर्य की निज अरुणरेखाओं से अंकित था मानो नीली और लाल रेखाओं वाला व्याघ्र का मुख था किन्तु इस समय दिन रूपी गाय के खाने से सारा सूर्य रूपी मुख लाल हो रहा था। इस प्रकार यह एक ऐसी भयावह कल्पना "तिरुमलाम्बा" ने की हैं जैसी महाकवि केशव ने अपनी "रामचन्द्रिका" में सूर्य का वर्णन करते हुये उसे काली के खप्पर का खून बताया है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि "तिरुमलाम्बा" ने अपना परिचय स्वयं ग्रन्थ के अन्त मे दिया है। वह अपने आप को ब्रह्मा जी की पत्नी के हाथ में स्थित वीणा के झंकार के समान स्वर वाली कहती है—शब्द इस प्रकार—

"विरिञ्च चञ्चल नयना नखाञ्चलसमुदञ्चित विपञ्ची-प्रपञ्चित पञ्चम मधुरि मोदञ्चन विस्वर कण्ठ स्वरया—।"

"जब वेण्कटेश" की कृपा से "वरदाम्बिका" के गर्भ में पुत्र आया तब उसके स्तनों का अग्र भाग कालिमा को प्राप्त हो गया मानो कुमारागमन के स्वागत के लिये स्तन रूपी स्वर्ण कलशों पर तमाल पत्र रख दिये गये हों। उसके शब्द ये हैं—

"कुमारोदय कुशल सूचन तमाल दल शेखरित मुख शातकुम्भ कुम्भ सम्भावनां कुशेशयदृशः कुच-कलशौ मेचकचूचुकावपूपुरताम्।"

संस्कृत के स्फुट काव्य में विज्जिका और विज्जाका[1] नाम की दो कवयित्रियाँ मिलती हैं। जिनमें विज्जिका का यह पद्य प्रसिद्ध है—

नीलोत्पल दलश्यामां विज्जिकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती॥

किन्तु एक दूसरी विज्जाका नाम की भी कवयित्री है जिसका यह पद्य है—

गते प्रेमबान्धे हृदयबहुमानेऽपि गलिते
निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः
तथा चैवोत्प्रेक्ष्य प्रियसखि! गतांस्तांश्चदिव सान्
न जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम्।

यह श्लोक तो सुस्पष्ट ही है। निम्नलिखित दो श्लोक और मिलते हैं। जिनमें प्रथम श्लोक यह है—

कवेरभिप्रायमशब्द गोचरम्।
स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम्॥
वदद्भिरङ्गैः कृतरोमविक्रियैः,
र्जनस्य तूष्णीं भवतोऽयमञ्जलिः

भाव यह है कि कविता सुनने पर "वाह वाह" और "मर-हवा" की हवा बाँधने वाले बहुत से होते हैं किन्तु कवित्व की यथार्थता को समझकर अन्दर ही अन्दर प्रसन्न होने वाले गिने चुने कुछ ही व्यक्ति होते हैं जिनके कि भावों का पता उनके उदञ्चित रोमाञ्चों से ही चलता है। आज कल के हा हा हू हू करने वाले कवियों पर कैसी चोट की है। परन्तु साथ ही साथ जो कंजूस कविता की सराहना न करे, भावों को दबाये रहे वह भी दूर से नमस्कार के योग्य ही है यह भाव भी व्यक्त होता है।

दूसरे पद्य में भी श्लेष के द्वारा मुख के सौन्दर्य को पद्म का सौन्दर्य क्यों न जीत सका इस पर एक उत्कृष्ट उत्प्रेक्षा है—

कोषः स्फीततरः स्थितानि परितः पत्राणि दुर्गं जलम्,
मैत्रं मण्डल मुज्ज्वलं चिरमधो नीतास्तथा कण्टकाः।
इत्याकृष्टशिलीमुखेन रचनां कृत्वा तदप्यद्भुतम्,
यत्पद्मेन जिगीषुणापि न जितं मुग्धे! त्वदीयं मुखम्॥

यहाँ पर कोष (खजाना और मध्यभाग) पत्र (पत्ते और रथादि) दुर्ग (किला और दुर्गम) मैत्र (सूर्य का और मित्रगणों का) मण्डल (घेरा और समुदाय) कण्टक (शत्रु और काँटे) शिलीमुख (वाण और भ्रमर) आदि, इस प्रकार इन शब्दों का चमत्कार अदभुत है। और व्यतिरेकालंकार भी ध्वनित है।

केवल विज्जाका ही एक ऐसी कवयित्री है जिसमें शृंगार की

---

[1] विज्जिका, विज्जाका और विजयांका एक ही कवयित्री के नाम हैं। बिजिजका राजा पुलेकशिन द्वितीय की पुत्रवधू थी। इसका लिखा हुआ नाटक कौमुदी महोत्सव प्रसिद्ध है। सम्पादक

गन्ध नहीं के बराबर है। किन्तु अन्य स्त्री कवयित्रियों में आदिम रसका पुट अधिक पाया जाता है।

"विद्या" एक ग्रामीण क्षेत्र रक्षिका का वर्णन करती है—ककड़ी के खेत में मचान पर कान्तरत प्रसक्ता वह गीदड़ों को डराने के लिये रात्रि के समय शंख की माला को अपने पैर से हिला रही है—

मञ्चे रोमाञ्चिताङ्गी रति मृदिततनोः कर्कटी वाटिकायाम्,
कान्तस्याङ्के प्रमोदादुभयभुज परिष्वक्त कण्ठेनिलीना।
पादेन प्रेङ्खयन्ती मुखरयति मुहुः पामरी फेरवाणाम्,
रात्रावुत्रास हेतोर्वृतिशिखर लतालम्बिनीं कम्बु-मालाम्॥

इसी प्रकार "मारुला" का कथन है कि किसी प्रेमी ने अपनी रूठी प्रेमिका से पूछा कि तुम दुबली क्यों हो, उसने जवाब दिया-मेरे शरीर की रचना ही ऐसी है। फिर पूछा कि वस्त्रमलिन क्यों हैं? उसने जवाब दिया-दूसरों के घर रोटी पकाने से, फिर उसने पूछा क्या कभी परदेशी की याद कर लेती हो? तब उसने कहा कभी नहीं, किन्तु यह कहते-कहते वह पूछने वाले के गले से जा लगी और रोने लगी।

कृशा केनासि त्वं प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे
मलाधूम्रा कस्माद् गुरुजन गृहे पाचकतया।
स्मरस्यस्मान् कच्चिन्नहि नहि नहीत्येवमगमन्,
स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता॥

"विकट नितम्बा" का निम्नलिखित पद्य भी उच्छृङ्खल शृंगार का उदाहरण है :—

बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शङ्का,
दृष्टा काचिद् भ्रमरभरतो मञ्जरी भग्न पुष्पा।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया,
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसंनेक्षुयष्टिः कदाचित्॥

कहीं-कहीं यही पद्य "शीला भट्टारिका" के नाम से भी मिलता है। "इन्दुलेखा" ने सूर्य के अस्त होने पर जो उत्प्रेक्षा की है वह अत्यन्त रमणीय है। वह कहती है कि—कुछ लोग कहते हैं कि सूर्य छिपने पर समुद्र में डूब जाता है या लोकान्तर में जाता है या अग्नि में प्रवेश कर जाता है, लेकिन ये सब कथन गलत हैं क्यों कि सूर्य तो पथिक स्त्रियों के हृदय में जाकर आश्रय लेता है—

एके वारिनिधौ प्रवेशमपरे लोकान्तरालोकनम्,
केचित्पावक-योगिनां निजगदुः क्षीणेऽह्नि चण्डार्चिषः
मिथ्या चैतदसाक्षिकं प्रियसखि! प्रत्यक्ष तीव्रातपम्,
मन्येऽहं पुनरध्वनीन रमणी चेतोऽधिशेते रविः॥

कहा जाता है कि विल्हण कवि का गुजरात के महाराजा की कन्या से गुप्तप्रेम था, दोनों एक दूसरे को चाहते थे। एक बार मकान के नीचे से जाते हुये विल्हण ने राजकन्या को उकसाने के लिए कहा :—

निरर्थकं जन्म गतं नलिन्याः
यया न दृष्टं तुहिनांशु बिम्बम्।

इसके उत्तर में राजकन्या विद्या बोली (कहीं-कहीं इसका नाम शशिकला भी प्राप्त होता है।) कि :—

उत्पत्तिरिन्दोरपिनिष्फलैव
न येन दृष्टा नलिनी विबुद्धा।

कितना सुन्दर परस्पर कटाक्ष है।

"सुभद्रा" ने प्रेम की निन्दा बड़े अच्छे शब्दों में की है :— "एक स्नेह के कारण दूध को अनेक यातनायें भोगनी पड़ती है। अतः स्नेह ही एक ऐसी वस्तु है जिससे मनुष्य अनर्थ में फँसता है।" शब्द इस प्रकार है :—

दुग्धं च यत्तदनु यत् क्वथितं ततो नु,
माधुर्यमस्य हृतमुन्मथितं च वेगात्।
जातं पुनर्घृतकृते नवनीत वृत्ति,
स्नेहो निबन्धनमनर्थ परम्पराणाम्॥

साहित्यानुरागी जानते हैं कि यः कौमारहरः ० इत्यादि पद्य "शीला भट्टारिका" के नाम से प्रसिद्ध है। अतः उसका वर्णन

अनावश्यक है। उसका निम्न पद्य भी उसी जोड़-तोड़ का है। वह कहती है कि—(प्रश्नोत्तर रूप में) ये लम्बी साँसें क्यों चल रही हैं ? दौड़कर आई हूं। रोंगटे क्यों खड़े हैं ? इनाम मिला है। बाल क्यों बिखरे हैं ? मस्तक झुकाने से। नारा क्यों ढीला है ? कई चक्कर काटने से। पसीना क्यों आ रहा है ? धूप के कारण। मुख क्यों सूख रहा है ? अधिक बोलना पड़ा। अन्त में शीला कहती है कि हे दूति ! ये बहाने तो कुछ जँच भी जायेंगे किन्तु होठों के बदरंग होने का और म्लान होने का क्या कारण है इसका क्या उत्तर है ? पद्य यों है—

श्वासाः किं त्वरिता गतौ पुलकिता कस्मात् प्रसादः कृतः,
स्रस्ता वेण्यपि पादयोर्निपतनान्नीवी गमादागमात्।
स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गलितं क्षामा किमत्युक्तिभिः,
दूति ! म्लान सरोरुहद्युति धरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि ॥

"विद्या" की यह अन्योक्ति भी बड़ी अच्छी है—लोग आज कल अच्छे-अच्छे नाम रखते हैं पर काम वैसे नहीं होते। उन के लिये वह कहती है कि ये नाम वैसे ही हैं जैसे समुद्र के नाम—

थूथूकृत्य वमद्भिरध्वगजनैरप्राप्तकण्ठं पयः
शुष्यत्तालुगलैर्विरुत्य लवणोदन्वानुपालभ्यते।
केन क्षारखने। वृथैव भवतो नामानृतं निर्मितं,
पाथोधिर्जलधिः पयोधिरुदधिर्वारांनिधिर्वारिधिः ॥

"मोरिका ने नवयौवना का वर्णन करते हुए उसके पति को रोकने के लिये जो ढंग बाँधा है वह अदभुत है। वह कहती है कि—

"मैंने तुमसे कई वार कहा लेकिन तुम नहीं मानते तुम जाने से नहीं रुकते उसकी हालत ऐसी है कि जो भी तनी उसकी कञ्चुकी में वाँधी जाती है वह कुछ ही मिनट बाद टूट जाती है अब हमारे घर में वाँधने के लिए डोरे ही नहीं रहे। ऐसी अवस्था में भी उस उद्भिन्न यौवना को छोड़ कर यदि तुम जा सकते हो तो चले जाओ—

मा गच्छ प्रमदा ! प्रियशतैभूर्यस्त्वमुक्तो मया,
बाला प्राङ्गणमागतेन भवता प्राप्नोति निष्ठां पराम्।
किञ्चान्यत् कुचभार पीडन सहैर्यत्न प्रवद्धैरपि,
त्रुट्यत्कञ्चुक जातकैरनुदिनं निःसूत्रमस्मद् गृहम् ॥

"विकट नितम्बा" का यह निम्न पद्य "नहि पराग नहि मधुर मधु" इत्यादि विहारी के पद्य से साम्य रखता है—

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग,
लौलं विनोदय मनः सुमनोलतासु।
मुग्धामजातरजसं कलिकामकाले,
बालां कदर्थयसि किं नव मल्लिकायाः ॥

जहाँ इन स्त्री कवयित्रियों ने श्रृंगर प्रधान रचना की है वहाँ "वीर सरस्वती" व "अविलम्ब सरस्वती" नाम की ऐसी कवयित्रियाँ हुई हैं, जिन्होंने अध्यात्म क्षेत्र में बड़ी ही मनोरम रचनायें की हैं। जैसे वीर सरस्वती कहती है—

मथुरा पथिक ! मुरारेरुपगेयं द्वारि वल्लवी वचनम्
पुनरपि यमुना सलिले कालिय गरलानलो ज्वलति।

कृष्ण को बुलाने के लिये क्या उत्तम सूझ है। अगले श्लोक में वह कहती है हे सखि ! मैं तुम्हारे सद्व्यवहार से बहुत प्रभावित हूं, पर तुम्हें यह समझाना चाहती हूं कि तुम यमुना के तीर न जाना क्योंकि वहाँ जाने पर एक ऐसा काला अंजन आँख में लग जाता है जिससे पति का घर पुनः दिखाई नहीं देता ! पद्य यों है—

सौजन्यैक वशीकृता वयमतस्त्वां किञ्चिदाचक्ष्महे
कालिन्दीं यदि यासि सुन्दरि ! पुनर्मा गाः कदम्बाटवीम्।
कश्चित्तत्र नितान्त निर्मल तमःस्तोमोऽस्ति यस्मिन् मनाक्,
लग्ने लोचनसीम्नि नोत्पलदृशः पश्यन्ति पत्युर्गृहम्।

"अविलम्ब सरस्वती" भी इससे कम नहीं है। वह कहती है कि—हे भगवन् ! मैंने कोई पुण्य नहीं किया अब तो मुझे

संसार चक्र में घूमना पड़ेगा पर आप ऐसी कृपा कीजिये कि मैं आपके किनारे पर ही घूमा करूँ—

> कृतं न सुकृतं मया कृत महोमहा दुष्कृतम्,
> कृतान्त नगरे गतिर्भवतु मे तत्र कीदृशी।
> नभो न दिन भोग दिग् भ्रमण मस्मात्परं,
> पुनस्तथा कुरुयथा तटे तव घटेत वासोमम।।

इन सुन्दर पंक्तियों में जो परमात्म दर्शनौत्सुक्य का व्यञ्जन है वह श्रृंगार कविताओं से कम नहीं। फिर भी श्रृंगार की ओर जो प्रकृति होती है वह १६ अंशों में प्रकृति से एवं एक अंश में आत्मा के होने से ही होती है। और उसके कारण निम्नलिखित पद्य यथार्थ सा प्रतीत होता है।

> अलमति चपलत्वात्स्वप्नामायोपमत्वात्
> परिणति विरसत्वात्सङ्गमेनाङ्गनापाः
> इह यदि शत कृत्वस्तत्वमालोचयामः
> तदपि न हरिणाक्षी विस्मरत्यन्तरात्मा।

इस प्रकार संक्षेपतः कतिपय संस्कृत की प्राचीन स्त्री कवयित्रियों का थोड़ा सा निदर्शन कराया गया है। यह विषय अधिक विवेचन और अनुशीलन की अपेक्षा रखता है।



हिन्दी की प्रमुख कवयित्रियाँ

मधुकर भट्ट, एम० ए०

भारतीय सामाज में प्रारम्भ से ही नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नारी ने प्रत्येक युग में और प्रत्येक देश में क्रांति के समय (बौद्धिक क्रांति) पुरुषों के साथ-साथ अपनी गति शीलता का परिचय दिया है। भारत में नारी का स्वरुप परिवर्त्तित होता रहा है। जिस भारत में एक समय गार्गी ऐसी विदुषी ने जन्म लिया वहीं दूसरे काल में लक्ष्मी बाई, चाँदबीबी आदि वीरांगनाओं ने भी जन्म लिया। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में नारी समाज अपना महत्व रखता चला आ रहा है। समय-समय पर हिन्दी साहित्य में ऐसी-कवयित्रियों ने भी पदार्पण किया जिन्होंने अपने विचारों से भावों से और अपनी प्रतिभा से भारत में राष्ट्रीयता; बौद्धिकता एवं प्रेम सद्भावना आदि सद्गुणों का शंख फूँकती रहीं।

हिन्दी साहित्य का इतिहास करीब एक हजार वर्ष का है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का आदि काल संवत् १०५० विक्रमी से १३७५ वि० तक का माना जाता है। इस काल को कुछ विद्वानों ने वीर गाथा काल कहा है। इस काल के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आदि काल में एक भी स्त्री-कवयित्री नहीं हुई। इसका प्रमुख कारण यह है कि उस समय नारी के हृदय को प्रभावित करने वाला कोई तत्व नही था। नारी की दशा उस युग में बहुत खराब थी। समाज में वह केवल भोगविलास की वस्तु रह गई थीं, यही कारण है कि उस समय जितने भी युद्ध हुए उनका आधिकांश कारण नारी ही थी। इस भयंकर परिस्थिति में नारी के लिए कोई ऐसी वस्तु नहीं थी जिससे वह अपने को पुरुष के बराबर रख सके।

हिन्दी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल संवत् १३७५ से १७०० वि० तक माना गया है। इसे भक्ति काल के नाम से पुकारा जाता है, भक्ति काल के आगमन से स्त्रियों ने साहित्य में पदार्पण करना आरम्भ किया। वास्तव में भक्ति का यह युग धार्मिक आन्दोलन का युग था। देश में हिन्दू-धर्म की जड़ को मजबूत करने के लिए सन्त कवियों ने आवाज उठाई। नारी ने भी इसमें सहयोग दिया। राम-कृष्ण भक्तिकी लहर सारे देश में फैल गई, फलतः राम और कृष्ण के जीवन में बाल्यकाल और यौवनकाल की जो झलक देखने को मिलती थी वह नारी हृदय को प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त थी। भक्ति काल की कवयित्रियों में मीराँ बाई का नाम बड़े गौरव से लिया जाता है।

भक्ति काल के पश्चात् हिन्दी साहित्य में जब रीति-काल का आरम्भ हुआ तो स्त्रियाँ एक बार फिर तत्कालीन वातावरण के गन्दा होने के कारण साहित्य क्षेत्र से हट गयीं। रीति-काल के पश्चात् आधुनिक काल में इन्हें फिर स्वतंत्र वातावरण में साँस लेने का शुभ अवसर मिला। इसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्रियों ने अपना प्रमुख स्थान बना लिया महिला कवयित्रियों में प्रमुख निम्नांकित हैं।

मीराँ बाई:—मीरा बाई का जन्म जोधपुर राज्य के कुढ़की नामक ग्राम में संवत् १५६० के लगभग हुआ था। मीराँ राजा रतनसिंह की पुत्री थी। बचपन में ही माता का देहांत हो जाने के कारण वह अपने पितामह के यहाँ मेड़ते में रहने लगी। यहीं उनका पालन-पोषण हुआ। मीराँ के पितामह राव दूदा जी कृष्ण के बहुत भक्त थे। मीराँ के जीवन पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। वह भी अपने दादा के साथ पूजा करने जाने लगी। अभी वह करीब बारह वर्ष की थी, कि राव दूदा जी की मृत्यु हो गई। राव दूदा जी की मृत्यु के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र राव वीरम देव जी सिंहासन पर

बैठे। विक्रमी सं० १५८३ में भोज राज (चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र) के साथ मीरा का विवाह हुआ, किन्तु दुर्भाग्यवश सं० १५८० में भोज राज का देहांत हो गया। इस दुर्घटना का मीरा के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा।

मीरा तो बचपन से ही कृष्ण-भक्ति में लीन थी। पति की मृत्यु के बाद सारे सांसारिक नाते छोड़ कर वह कृष्ण-भक्ति में लीन हो गई। वह महल से निकल कर मन्दिरों में जाने लगी। साधुओं के सत्संग में कीर्त्तन-भजन करती, फलतः शीघ्र ही उसकी भक्ति दूर-दूर तक फैल गई। सं० १५८४ में बाबर और राणा सांगा का युद्ध हुआ और उस युद्ध में राणा सांगा मार डाले गये। राज-कुल की बधू का ऐसा स्वतंत्र चरित्र तत्कालीन राणा विक्रमाजीत सिंह को बहुत बुरा मालुम हुआ और उस युद्ध में हार का कारण भी उन्होंने मीरा को समझा। मीरा को विक्रमाजीत सिंह ने बहुत कष्ट दिया पर वह अपने पथ से विचलित न हुई। अन्त में वह ऊब कर वृन्दावन चली गई। वृन्दावन में मीरा का खूब स्वागत् हुआ। उनकी भक्ति से जनता आकर्षित हुई। मथुरा, वृन्दावन, द्वारका आदि का तीर्थाटन करती, कृष्ण-भक्ति गान करती मीरा ने संवत् १६०३ के लगभग अपना शरीर त्याग दिया।

मीरा की लिखी हुई कई कृतियाँ बताई जाती हैं। पर "नरसी जी माहेरो" और कुछ प्रकीर्णक पदों को छोड़ कर किसी का कुछ पता नहीं चलता। मीरा की पदावली बड़ी मार्मिक और भक्ति-रस पूर्ण है। इन पदों की मधुरता ने ही मीरा को भक्त कवियों के शीर्ष स्थान पर ला रखा। मीरा के महत्व का आधार उनकी पदावली ही है। मीरा के पद उत्तरी भारत में बहुत प्रचलित हैं। प्रेम दिवाणी मीरा का हृदय अथाह वेदना का सागर है। यह सागर उसके पदों में लहरें मार रहा है। मीरा के सभी पद गेय हैं।

हृदय का जो दर्द, प्रेम की जैसी टीस और जैसी तीव्र विरह अनुभूति मीरा के पदों में है वैसी विश्व साहित्य में अलभ्य है। महादेवी वर्मा जी ने मीरा को व्ययासिक्तपदावली-की सम्राज्ञी कहा है। महाकवि निराला ने मीरा को संगीत की देवी कहा है। श्री सुमित्रानन्दनपन्त ने मीरा को भक्ति के तपोवन की शकुन्तला और राजपूताने के मरुस्थल की मन्दाकिनी की संज्ञा दी है। मीरा के पद आँसुओं से गीले हैं। मीरा की पुकार में व्यथा है, कसक है और प्रेम है। मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की है, उसमें भक्त; भगवान को पति-रूप में भजता है। मीरा ने कृष्ण को अपना पति माना है।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

मीरा कृष्ण के प्रेम में इतनी डूबी हुई है, कि वह संसार में किसी से सम्बंध स्थापित ही नहीं करना चाहती। वह कृष्ण की है और कृष्ण उसके। मीरा का यही एकाकी भाव और उसकी यही भक्ति पूर्ण तन्मयता उसके काव्य की सच्ची कसौटी है। मीरा के लिये सारा विश्व ही कृष्णमय है। मीरा का प्रेम मर्यादित है। वह कृष्ण को ही अपने नैनों में बस जाने के लिए कहती है :—

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहिनि मूरत सांवरि सूरत नैना बने बिसाल॥

मीरा का प्रेम अलौकिक है। वह अपने आराध्य देव का स्थान-स्थान पर दर्शन करती है। इसीलिए कहती है—

"सखीरी मैं गिरधर की रँगराती।"

मीरा की रहस्यपूर्ण अलौकिक भक्ति का उद्घाटन वहाँ होता है जहाँ वह पंचरंग चोली पहन कर गिरधर के संग खेलने जाती है। पाँचों इन्द्रियाँ पूर्ण सजग हैं। तन भी, वह प्रेम दिवानी मीरा है। यही मीराके काव्य का रहस्य है। मीरा के काव्य का भाव पक्ष बड़ा सबल है।

मीरा के पास कला नहीं थी, सजावट नहीं थी, अलंकार के आवरण में भाव को छिपाने की आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि मीरा का भाव पक्ष इतना प्रौढ़ है कि कला के अभाव में भी पदों का नैसर्गिक सौंदर्य पाठक को अपनी ओर बरबस खींच लेता है। संगीत में इतनी मधुरता है कि भावों में तरलता आ गई है। मीरा के सभी पद अत्यंत भावपूर्ण एवं संगीत के लय-ताल से पिरोये हुए हैं। संभवतः इसीलिए महाकवि निराला ने उन्हें संगीत की देवी कहा है।

मीरा की भाषा राजस्थानी, व्रज भाषा मिश्रित है। वह मेवाड़ की रहने वाली थी, इसलिए पदों में राजस्थानी शब्द

आना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त उस समय ब्रज भाषा ही काव्य की भाषा थी, अतः मीरा की रचनाओं में इन्हीं दोनों भाषाओं की प्रधानता है। मीरा के कुछ पदों में भोजपुरी भाषा भी मिलती है। कुछ पद गुजराती में भी हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मीरा की रचनाओं में कई भाषा के शब्द मिलते हैं इसका कारण मीरा पर तीर्थाटन और सत्संग का प्रभाव है।

गीति काव्य की दृष्टि से मीरा का हिन्दी साहित्य में सर्वोत्तम स्थान है। इतना उन्माद, इतनी तीव्रता, इतनी सरसता और इतनी तन्मयता किसी कवि या कवयित्रियों में नहीं मिलती। गीति काव्य में वैयक्तिक उद्गार स्वतः स्फुट हो कर संगीत की स्वर लहरी में किसी के प्रति समर्पित होते हैं, इस कसौटी पर मीरा के पद खरे उतरते हैं। प्रेम दिवानी मीरा के दर्द को आज तक कौन समझ पाया है? जो उसने आज से कई सौ वर्ष पहले ही पूछा था।

"म्हारो दरद न जाने कोय"

दया बाई :—दया बाई राजस्थान की थीं। इनका जन्म मेवाड़ के डेहरा नामक गाँव में हुआ था। इनका जन्म समय संवत् १७५० तथा १७५५ वि० के बीच में माना जाता है। अभी इनके जीवन काल के सम्बंध में मतभेद है। सन्तवानी के सम्पादक के मतानुसार उपर्युक्त मत स्थिर किया गया है। दयाबाई महात्मा चरणदास की शिष्या थीं। हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री सहजो बाई इनकी गुरु बहन थीं। दया बाई निर्गुण ब्रह्म की उपासिका थीं, इनके गुरु के सम्बन्ध में भी कुछ लोगों ने आपत्ति उठाई पर यह निर्विवाद है कि आप महात्मा चरनदास की ही शिष्या थीं, क्योंकि स्वयं एक दोहे में उनकी वन्दना कवयित्री ने किया है।

ताप हरन, सुख-दुख करन, दया करत परनाम।
चरन दास गुरुदेव जू, ब्रह्म रूप सुख धाम॥

दयाबाई प्रेम की उपासिका है। इनकी कविता में प्रेम की व्याख्या बड़े सुन्दर ढंग से की गई है। इनके भजन में बड़ा माधुर्य है। इनके दोहे अधिक चुभते हुए, मार्मिक और भावोत्पादक हैं।

दया-दया करिके कह्यौ, सत गुरु को सों भाख।
नासा आगे दृष्टि करि, स्वाँसा में मन-राख॥

प्रेम पंथ है अटपटो, कोई न जानत वीर।
कै मन जानत आपनों, कै लागी जेंह पीर॥

इसी प्रकार प्रत्येक दोहों में दया बाई ने नीतिपरक, प्रेम परक बातें बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त की हैं। भगवद् भक्ति परायणा दया बाई के भजनों और दोहों में दार्शनिक भावना की प्रधानता है। कई स्थान पर संकेत दे कर रहस्यानुभूति का भाव पैदा किया है। दार्शनिक तत्व तो बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं।

त्रिभुवन की सम्पति दया, तृन सम जानत साध।
हरि रस माते जे रहैं, तिनकी मतो-अगाध॥
प्रथम पैठी पाताल में, धमकि चढ़े आकाश।
दया सुरति नटती भई, बाँधि परत नित स्वांस॥

इन उपर्युक्त दोहे में दार्शनिक तत्व स्पष्ट हैं। इसी प्रकार दार्शनिकता प्रधान कई दोहे इनके मिलते हैं।

दया बाई की भाषा सरल, सुबोध और प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। अपने दोहों और भजनों में साधारण बोल चाल की भाषा का प्रयोग आपने बड़े ही सुन्दर ढंग से उपयुक्त स्थान पर किया है। इनके दोहे में पैठि, धमक, परनाम, सकल, मनिका आदि व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक संख्या में हुआ है। दया बाई की शैली पर सहजो बाई की छाप है, पर भाव को व्यंजित करने में दया बाई, सहजो बाई से बहुत आगे बढ़ी हुई हैं। इनकी रचनाएँ भाव प्रधान हैं। दया बाई में अगाध गुरु भक्ति थी। इनकी रचनाएँ भक्ति, दर्शन और सौन्दर्य का समन्वय है। इसका एक मात्र कारण साधु और गुरु सेवा है क्योंकि आधु और गुरु सेवा इनके जीवन का लक्ष्य था।

सहजो बाई :—सहजो बाई का जन्म राजपूताने के एक प्रसिद्ध कुल में हुआ था। आप दया बाई के समकालीन थीं। दया बाई और सहजो बाई दोनों गुरु बहन थीं। इनके गुरु का नाम महात्मा चरनदास था। आपके जन्म संवत् का अभी ठीक-ठीक पता-नहीं लगा, किन्तु यह स्पष्ट है कि आप सं० १८८० में वर्त्तमान थीं। अनुमान से इनका जन्म संवत् १७५४–५६ के आसपास निश्चित है। सहजो बाई आजीवन क्वाँरी थीं, आपने अपना व्याह नहीं किया। गुरु भक्ति में

आपका अटूट विश्वास था। गुरु भक्ति संबंधित आपकी जितनी रचनाएँ मिलती हैं उससे सिद्ध है कि आप गुरु को ईश्वर से बढ़ कर मानती थीं।

एक स्थान पर सहजो बाई गुरु की महत्ता का गुणगान करती हुई लिखती हैं :—

सहजो गुरु दीपक दियो, नैना भये अनंत।
आदि अन्त मधि एकहि, सूझि परै भगवंत॥
चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों न ठहराय।
"सहजो" कूँवर देश में, सत गुरु दई बसाय॥

इस प्रकार उपर्युक्त दोहों को देख कर स्पष्ट होता है कि सहजो बाई की गुरु-भक्ति सर्वोत्कृष्ट है।

सहजो बाई ने अधिकतर रचनाएँ दोहों और पदों में की है। अधिकतर रचनाओं में गुरु-भक्ति का ही वर्णन है, शेष निर्गुण ब्रह्म और योग तथा दर्शन सम्बंधी है। सहजो बाई के पदों में दार्शनिक तत्वों की प्रधानता है। जैसे—

बाबा ! काया नगर बसावौ।
ज्ञान दृष्टि सूँ घट में देखौ, सुरति निरत लौ लाओ।
पंच मारि मन बस कर अपने तीनो ताय उसावौ॥
सील, छमा, धीरज कूँ धारौ अनहद नाद बजावै।
पाप बनियां रहन न दीजे धरम बजार लगावै॥
चरण दास गुरु अमल बतायौ, सहजो सँभलो सोई॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिना गुरू के सांसारिक जीव मुक्ति नहीं पा सकता। दार्शनिक तथ्यों के पूर्ण एवं तार्किक तारतम्य में पिरोया हुआ सहजो बाई का विचार गुरु-भक्ति में पगा हुआ है।

आप की कविता भक्ति-राम से ओत-प्रोत है। कबीर की तरह "सतगुरू समान को सगा" वाला सिद्धांत और "बलिहारी गुरू आपणी" का आत्म समर्पण इनमें भी मिलता है। सहजो बाई ने भी कबीर की तरह "जग में कहा कियो तुम आय..................लियो ना गुरू धर्म॥...... वाली बात दोहराई है। आपके पदों और दोहों में इतनी सरसता और माधुर्य है कि मानव हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। आपकी भाषा सरल और प्रसाद गुण युक्त है। सील, छमा, धीरज आदि व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग कर के भाषा का बोधगम्य बना दिया है। शैली की दृष्टि से सहजो बाई दया बाई से ऊपर हैं। इनकी भाव अभिव्यक्ति की शैली बड़ी ही सहज एवं तार्किक है। सहजो बाई का उस दृष्टि से हिन्दी कवयित्रियों में महत्वपूर्ण स्थान है।

सेख :—प्रमुख कवयित्री सेख का जन्म मुसलमान कुल में संवत् १७०८ के आस-पास माना जाता है। यह जाति की रंगरेजिन थी और व्रजभाषा में बड़ी-बड़ी सुन्दर कविता करती थी। हिन्दी के सुकवि आलम इसके पति थे। सेख की कवि प्रतिभा से मुग्ध हो कर आलम ने (सनाढ्य ब्राह्मण होते हुए भी) उससे शादी कर ली और दोनों ने साहित्य गंगा में स्नान कर के अपने को पुनीत किया। संवत् १७४० से इसने कविता करना शुरू किया और मृत्युपर्यन्त कविता करती रही। इसका मृत्यु समय संवत् १७७६ माना जाता है।

सेख मुसलमान थी, पर कृष्ण की परम भक्त थी। सेख की कविता में कृष्ण-लीला की अनूठी और दुर्लभ झांकी परिलक्षित होती हैं। वह प्रेम की गायिका है। उसके जीवन का उद्देश्य ही प्रेम है, सेख के जीवन का सार प्रेम है, परन्तु उसमें न तो मीरा के समान विद्वत्ता है न मीरा सी वह विरहिणी है और न मीरा की तरह उन्मादिनी ही है। जहां तक प्रेम के क्षेत्र का प्रश्न है, मीरा सेख से बहुत ऊंची उठी हुई है। मीरा के लिए कृष्ण ही सब कुछ हैं, मीरा के प्राणपति श्री कृष्ण ही हैं, इस प्रकार मीरा का प्रेम अलौकिक है, परन्तु सेख लौकिक प्राणी हैं। वह अपने को आलम की पत्नी कहती है यद्यपि वह राम और कृष्ण की उपासिका है पर सब कुछ आलम ही है। यही कारण है कि सेख में वह उन्माद, वह तन्मयता, वह व्यथा नहीं है जो मीरा में है। सेख की कोई भी पंक्ति मीरा की पंक्ति की तरह नहीं है, कहीं वह मीरा की तरह हरि का गुण गाते मगन नहीं होती। मीरा तो "मीरा मगन भई हरि के गुण गाय" वाली पंक्ति की रचयिता है; फलतः मीरा और सेख में अलौकिक और लौकिक का अन्तर है। मीरा कृष्ण में इतनी लीन है कि उसे अपने अस्तित्व का भी ज्ञान नही रहता, वह अपने को ही कृष्ण समझ बैठती है। कृष्ण की तन्मयता में वह एकाकार हो जाती है, सुध-बुध नहीं रह जाती ज्ञान का पूर्ण अभाव हो

जाता है जबकि सेख शुद्ध ज्ञान का ही आश्रय लेकर कविता करती है। इस दृष्टि से सेख में मीरा की अपेक्षा साहित्यिक ज्ञान अधिक है, व्रज भाषा पर तो उसका पूर्णअधिकार है और उसके पदों को देखकर स्पष्ट पता चलता है कि व्रज भाषा में वह बहुत सुन्दर रचना करती है। उसके कवित्त और सवैये शास्त्रीय नियमों से पूर्ण और मात्रा-लय विराम के उचित प्रयोग के दिखाई पड़ते हैं। सेख की शास्त्र सम्मत रचनाओं से सिद्ध होता है कि वह शास्त्रीय और साहित्यिक ज्ञान से परिपूर्ण थी। उसके कवित्त और सवैये बड़े मर्मस्पर्शी और हृदय ग्राही होते हैं।

एक पद में पवन का वर्णन करती हुई कहती हैं :—

> **सघन अखंड पूरि पंकज पराग पत्र,**
> **अच्छर मधुप, शब्द घण्टा झह्नातु है।**
> **विर्रामि चलत, फूल वेलिनि की वासिरस,**
> **मुख के संदेसे लेत सबनि सुहातु है॥**
> **आवत बसन्त-मन भावन घने जतक,**
> **पावन परेवा मानो पाती लीने जातु है॥**

इसी प्रकार के कितने ही पद "आलम-केलि" नामक काव्य संग्रह में सेख के संगृहीत हैं। सेख के पदों में श्रृंगार की प्रधानता है यद्यपि अधिकतर पद भक्ति रस प्रधान हैं।

'सेख' पंजाब प्रांत की रहने वाली थी। यह प्रशंसनीय गुण है कि 'सेख' एक पंजाबिन होते हुये भी व्रज भाषा की सुन्दर कविता करती थीं। पंजाब निवासिनी होने के कारण उसकी भाषा पर पंजाबी भाषा का भी प्रभाव पड़ता है जो स्वाभाविक है। भाव अभिव्यक्ति की शैली सर्वथा नवीन तथा प्रशंसनीय है उसका व्रजभाषा का प्रयोग।

साईं :—हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध सुकवि गिरधर कविराय की धर्मपत्नी का नाम साई था; गिरधर कविराय ने कुन्डलियां की जो रचना किया उसमें उनकी पत्नी साई का भी हाथ था। साई स्वयं एक चतुर, विदुषी महिला थी। हाजिर जवाबी का गुण इसकी बढ़ती हुई उन्नति में सहायक सिद्ध हुआ। कहा जाता है कि गिरधर कविराय की जिन कुण्डलियों के प्रारम्भ में साईं शब्द मिलता है वह इन्हीं की रची हुई हैं। साईं का जन्म अवध में हुआ था इनकी कुण्डलियों में अवधी भाषा का प्रचुर मात्रा के उपयोग हुआ है। अवध के आस-पास बोली जाने वाली भाषा के बोल-चाल के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं उर्दू फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जिससे स्पष्ट है कि इन्हें इन दोनों भाषाओं का भी ज्ञान था।

साईं ने केवल कुण्डलियां छंद में ही रचना की है। इनकी कुण्डलियाँ नीतिपरक है! इसकी कुण्डलियाँ बड़ी लोकप्रिय है। लोग इन्हें बड़े चाव से सुनते और याद करते हैं। इनमें हास्य विनोद और नीति व्यवहार कुशलता अधिक पाई जाती है। इनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि साईं बड़ी व्यवहार कुशल थी।

> **साईं समय न चूकिये, यथा शक्ति सम्मान।**
> **को जाने को आइ है, तेरी पौरि प्रभान॥**
> **तेरी पौरि प्रभान समय असमय तकि आवै।**
> **ताको तू मन खोलि, अंकभरि कण्ठ लगावै॥**
> **कह गिरधर कविराय, सबै यामे सधि जाई।**
> **शीतल जल, फल, फूल समय जनि चूकौ साईं॥**

इसी प्रकार के कितने ही नीति परक कुण्डलियों की रचना यत्र-तत्र साईं की मिलती है। इनकी सभी कुण्डलियों में कुछ न कुछ व्यवहार और नीति की बातें मिलती हैं!

श्री जुगुल प्रिया:— श्री जुगुल प्रिया का नाम श्रीमती कमल कुमारी देवी था, जुगुल प्रिया इनका उपनाम था। इनका जन्म टीकमगढ़ के राज-वंश में सं० १९२७ में हुआ था। उपनाम धारी जुगुल प्रिया के पिता का नाम श्रीमान् महेन्द्र महाराजा प्रताप सिंह जू देव और माता का नाम रानी वृषमान कुँवरि देवी था। आपकी माता श्री सीताराम के नाम और ध्यान में आठों पहर निमग्न रहा करती थीं। इन्होंने अपनी पुत्री को भी इसी राम सीता की भक्ति के रंग में ढाल दिया। माता के संस्कार का प्रभाव बचपन से ही पुत्री कमल कुमारी देवी पर पड़ गया। आपका विवाह छतर पुर के नरेश श्रीमान् विश्वनाथ सिंह जू देव के साथ सम्पन्न हुआ। विवाह के बाद भी आपकी भगवत् भक्ति में किसी प्रकार की कमी न पड़ी प्रत्युत और भी बढ़ने लगी।

जुगुल प्रिया जी का जीवन बहुत धार्मिक और साधारण था। आपने तीर्थ तात्राएँ भी बहुत अधिक की राम सीता के भजन

वयं बनाकर गाती थीं। आ जीवन परोपकार साधु सेवा, ग्गवद् भक्ति करती हुई टीकमगढ़ में सं० १९७८ वि० त्रैत शुकल ७ की रात्रि को स्वर्गवासिनी हुईं।

जुगुल प्रिया की कविता पर मीरा की छाप है। किन्तु भाव साम्य होते हुये मीरा के भजनों में हमें जो तन्मयता मिलती है वह जुगुल प्रिया के भजनों में नहीं मिलती इसका कारण मुख्य रूप से दोनों कवयित्रियों के जीवन क्षेत्र की परिस्थितियों की विभिन्नता है। मीरा का व्यक्तिगत जीवन जुगुल प्रिया से भिन्न था। मीरा पर एक ही रंग का प्रभाव पड़ा वह एक ही रंग में रंगी थी। जबकि जुगुल प्रिया पर तत्कालीन कई संप्रदायों का प्रभाव पड़ा फलतः—जुगुल प्रिया की रचनाओं में भक्ति की वह कसक, वह तन्मयता नहीं है जो मीरा में है। जुगुल प्रिया बड़े-बड़े पंडितों से वाद-विवाद भी करती थीं वह और साहित्यिक अभिरुचि के कारण शास्त्रीय ज्ञान भी उन्हें अधिक था जबकि मीरा एक मात्र कृष्ण की भक्त थी। जुगुल प्रिया की भाषा मीराकी भाषा से अधिक परिष्कृत और मंजी हुई है। व्यावहारिक शब्दों के प्रयोग के साथ साथ संस्कृत के तत्सम शब्दों का रूप भी दिखाई पड़ता है:—जुगुल प्रिया जी मूल रूप में एक भक्त ही हैं।

> नाथ अनाथन की सब जानै।
> ठाढ़ी द्वार पुकार करति है,
> स्रवन सुनत नहिं कहा रिसानै।
> की वहु खोट जान जिय मेरो,
> की कछु स्वरथ हित अरगान।
> दीनबन्धु मनसा के दाता,
> गुन औगुन कैधौ मल आनै।
> आप एक हम पतित अनेकन,
> यही देख कर मन सकुचाने।
> झूठो अपनो नाम धरायौ,
> समझ रहे हैं हमही सयाने।
> तजी टेक मनमोहन मेरे,
> जुगुल प्रिया दीजैरस दान।

इसी प्रकार के बहुत से भक्ति परक पदों की रचना जुगुल प्रिया ने की है जो दार्शनिक तत्वों से पूर्ण है।

तोरनदेवी शुक्ल "लली"—श्रीमती तोरन देवी शुक्ल का जन्म श्रावण सुदी १२ सं० १९५३ ई० को पिपरिया जिला जबल पुर (आपके ननिहाल) में हुआ था! आपके पिता पंडित कन्हैया लाल तिवारी, पहले प्रयाग में रहते थे किन्तु बदली हो जाने के कारण बड़ौदा स्टेट के मेहसाना नामक स्थान पर जा कर रहने लगे। मेहसाना में तोरन वाली माता देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है तिवारी जी को इन देवी पर बड़ी निष्ठा थी। नित्य इस मन्दिर में अपनी पत्नी श्रीमती भाग्यवती देवी के साथ दर्शन करने जाते थे साथ में "लली" जी भी जाया करती थीं। अतः आपके पिता ने आपका नाम तोरन देवी रखा।

ललीजी प्रारम्भ से ही बड़ी गम्भीर और चिंतनशील थीं। ललीजी की सम्पूर्ण शिक्षा घर पर ही हुई। तिवारी जी ने स्वयं बड़ी लगन से आपको हिन्दी का ज्ञान कराया और पं० वेनीप्रसाद अवस्थी बी० एस० सी० एल० एल० बी० ने आपको अंग्रेजी की शिक्षा दी। बेनी प्रसाद जी आपके मामा थे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह रायबरैली स्थित हमीर गाँव निवासी पं० कैलाशनाथ शुक्ल बी० ए० के साथ हुआ। आपके पुत्र पण्डित हरिहरनाथ "सरोज" हिन्दी सुकवि और सुलेखक हैं।

"ललीजी" लगभग ३५ वर्ष से कविता कर रही हैं। इनकी रचनायें अधिकतर देशप्रेम, राष्ट्रीयतापरक और भगवद् भक्ति प्रधान है। देश प्रेम की रचनाओं में बहुत महत्वपूर्ण सफलता इन्हें मिली हैं। आपकी कविता में देश भक्ति लबालब भरी है देश-प्रेम संबंधित रचनाओं में ओज की प्रधानता हैं, जबकि भगवद्भक्ति संबंधित रचनाओं में माधुर्य की प्रधानता है। देश-प्रेम के संबंध में अनुरोध करती हुई आप संबोधित करती हैं:—

> ओ देश प्रेम के मतवाले,
> मत प्रेम-प्रेम कह इतराना।
> उच्च हृदय दृढ़ हाथों से,
> निज कीर्ति ध्वजा को फहराना॥

इन की रचनायें अत्यंत सीधी-सादी बात में और स्वाभाविक ढंग के विचारों से ओत-प्रोत हैं। आपने शब्द विन्यास, दुरूह कल्पनाओं तथा अदृश्यजगत के परिभ्रमण आदि चक्कर से

अपने को बराबर दूर रखा। यही कारण है कि आपकी रचनायें सर्वधारण के लिये भी बोधगम्य हैं ! अर्थ दुरुहता 'या' क्लिष्ट शब्दोंका तो आपकी रचनाओं में पूर्ण अभाव है। यही कारण है कि पाठक आपकी रचनाओं को पढ़कर आनन्द विभोर हो जाते हैं।

"ललीजी" की रचना प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर समन्वय है। अतः स्पष्ट है कि ललीजी कविता काल के नवीन युग की अग्रदूती हैं। आपकी प्रत्येक रचना से आपकी भावुकता और मौलिकता एवं प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है। लेखन शैली आपकी मौलिक है। भावाभिव्यक्ति बड़े मौलिक एवं नवीन ढंग से अपनी रचनाओं में आपने किया है। आप कीकविता में अपनी शैली है। अपना व्यक्तित्व और अपनी व्यक्तिगत समस्यायें हैं। ललीजी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा वाला है। आपकी कविता के विषय नये और विभिन्न हैं। रचनाओं में भावपक्ष की प्रधानता है। कलापक्ष पर आपने उतना ध्यान नहीं दिया है। जितना भाव पक्ष की सरलता है। कविता के वाक्य विन्यास बड़े प्रभाव-पूर्ण सुन्दर और ठोस हैं।

आपकी रचनाओं में शुद्ध खड़ी बोली की प्रधानता है। कहीं कहीं भाव अभिव्यक्ति के लिये व्रज-भाषा के शब्दों का भी प्रयोग है। आपकी रचनाओं का एक संग्रह "जागृति" प्रकाशित हो चुका है। "जागृति" संग्रह में देश प्रेमपरक कविताओं की प्रधानता है। इस कविता संग्रह पर आपको ५००) का सेक्सरिया पुरस्कार मिल चुका है।

एक कलिका का वर्णन करते हुये कवयित्री कहती है :—

नव कलिका तुम कब विकसी थी,
इसका मुझको ज्ञान नहीं।
हुई समर्पित श्रीचरणों पर,
कब इसका कुछ ध्यान नहीं॥

आपने भाव-प्रधान कविता की रचना बड़े सुन्दर ढंग से की है।

श्री राम कुमारी देवी चौहान—श्री राम कुमारी देवी चौहान का जन्म संवत् १९५६ में मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को कानपुर के सीसामऊ मुहल्ले में हुआ था। आपके पिता भी कविता करते थे। इसलिये रामकुमारी जी पर भी पिता का संस्कार पड़ा और बाल्यावस्था ही से कविता करने की अभिरुचि उत्पन्न हो गई थी। आपका विवाह १५ वर्ष की अवस्था में झाँसी निवासी कुँवर रत्नसिंह चौहान के साथ हुआ। आपके एक सन्तान उत्पन्न हुई किन्तु दुर्दैव से यह न देखा गया। आपका जीवन बहुत संघर्षमय था। इनके जीवन में दुःख पर दुःख आये। पहले पिता की मृत्यु फिर एक मात्र सन्तान की मृत्यु हो गई। अभी पुत्र की मृत्यु का दुःख छाया ही था कि पति की मृत्यु ने आपकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। जीवन के इस संघर्ष का प्रभाव इनकी कविताओं पर बहुत गहरा पड़ा फलतः आपकी रचनाओं में दार्शनिक दुःखवाद की स्थान-स्थान पर झलक दिखाई देती है।

रामकुमारी जी की रचनाओं में नारी हृदय की टीस और पीड़ा है। आपकी कल्पनायें यथार्थ के मोड़ पर रुकी हुई संगीत कल्पनाओं से पूर्ण बड़ी धार्मिक हैं। आपकी कृतियों में एक विशेष प्रकार की तन्मयता, मार्मिकता और तल्लीनता है। आपकी कविता में रसात्मकता है, भावुकता है, संवेदन है और दाम्पत्य जीवन की एक अतृप्त प्यास है जिनके कारण पढ़ते समय जी भर आता है। और पाठक सहसा उनके हृदय से एकाकी तादात्म्यस्थापित कर लेता है इनकी कविता में एक आकर्षण है जो पाठक के हृदय और मस्तिष्क को सहज में ही आकर्षित कर लेता है। संसार की नश्वरता की आपके हृदय पर अमिट छाप है, और भावाभिव्यक्ति की शैली पर पूरा अधिकार है। आपके भाव गम्भीर मार्मिक होते हैं। आपकी कविता संग्रह "निश्वास" नाम से प्रकाशित हुई है जिस पर आपको ५००)का सेक्सरिया पुरस्कार मिला है।

आपकी कविता की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। भाव की अभिव्यक्ति बहुत मार्मिक है। "मेरी समाधि" शीर्षक कविता में आपने अपने भावोंकी अभिव्यक्ति बहुत सुन्दर ढंग से की है :—

नहीं लालसा नीरद बरसे,
मृदु फुहार की फुलझड़ियाँ।
या अन्तर से तुहिनविन्दु सी,
विखरें मोती की लड़ियाँ॥

नहीं कामना शशि की शीतल,
किरणों का हो कांति प्रवाह।
दग्ध हृदय की चिर अतृप्ति में,
मिटे मिलन की दारुन दाह ॥

इसी प्रकार सभी कविताओं में भाव और शैली का सुन्दर समन्वय है।

रामेश्वरी चकोरी—श्रीमती रामेश्वरी चकोरी का जन्म १९१३ ई० में उन्नाव जिले के विल्थरा ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० उमाचरण शुक्ल था। जब आप ढाई वर्ष की थीं तभी पिता की मृत्यु हो गई। पितृस्नेह से वंचित हो जाने के कारण आप अपनी माता के साथ अपने ननिहाल लखनऊ के नरही मुहल्ले में आकर रहने लगीं। आपकी आरम्भिक शिक्षा लखनऊ में ही हुई। सन् १९२९ में आपका विवाह लखनऊ निवासी पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र "अरुण" के साथ हुआ। "अरुण" जी के सहयोग से आप कविता करने लगीं। सन् १९४५ में आप की मृत्यु हो गई।

चकोरीजी ने अपेक्षाकृत कम कविताएँ की किन्तु आपने जो कुछ लिखा वह हिन्दी साहित्य की अमूल्यनिधि है। आपकी रचनाओं में बड़ा अद्भुत चमत्कार है। कविता में माधुर्य की प्रधानता है। चकोरी जी ने नारी हृदय की कोमलतम भावनाओं को बड़े ही मनोहर शब्दों में व्यक्त किया है। आपकी रचनाओं में सुख-दुख का सुन्दर समन्वय है। इन्होंने सुख-दुख को अन्योन्याश्रित रूप में देखा है। और अपनी रचनाओं में जीवन की विभिन्न परिस्थितियों और दुख-सुख का इस प्रकार उल्लेख किया है कि पाठक उनके वशीभूत हो जाता है। आपकी कृतियों में प्रणयजन्य विषाद के साथ साथ हर्ष की मात्रा भी है और दोनों का सम्मिश्रण ऐसे मनोहर ढंग से हुआ है कि अवर्णनीय है। आपका विषाद उतनाही सरस मार्मिक एवं मधुर है जितना हर्ष। चकोरीजी का कला पक्ष बहुत सबल है सुख-दुख का समान और निष्पक्ष मिश्रणवाली कला ने ही आपको थोड़ी कविता की रचना के साथ-साथ ऊँचा उठाने में समर्थ किया। आपके नारी सुलभ भाव सरल और शब्द माधुर्य गुण युक्त होते हैं।

चकोरीजी की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। आपने प्रकृति के समीप रहकर रचना की है। एक स्थान पर कहती हैं :—

निर्झरिणी के अन्तरत में,
किसका सौन्दर्य झलकता है ?
अलसाई-सी मृदु लहरों से,
किसका अनुराग छलकता है ?

होमवती देवी—श्रीमती होमवती देवी का जन्म मेरठ के सुप्रसिद्ध वंश पत्थरवाले के यहाँ सन् १९०६ में हुआ था। आप अपने पिता की एक मात्र सन्तान थीं। अल्पायु में ही आपके माता पिता का देहान्त हो गया फलतः आपकी शिक्षा सुचारू रूप से न चल सकी। आपका वैवाहिक जीवन बहुत करुणोत्पादक था। विवाह के कुछ ही वर्ष के बाद पति की मृत्यु हो गई। माता-पिता पति आदि की मृत्यु का आपके कोमल हृदय पर जो आघात पहुंचा वह कविता में प्रस्फुटित हो उठा। आपकी कविता में एक दर्द और टीस का प्रभाव हैं जो पाठक के हृदय को वेध देता है। आपके मनोगत विचार गम्भीर और आदर्श बहुत ऊँचे हैं। होमवती देवी जी बहुमुखी प्रतिभावाली कवयित्री हैं। आपने कहानियों की भी रचना की है जो बहुत सुन्दर और हृदयस्पर्शी हैं।

होमवती जी हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ कवयित्रियों में से हैं आपकी रचनाओं में मानव हृदय की पुकार और जीवन की सारगर्भित कड़ी है। आपने जीवन की दुर्घटनाओं द्वारा प्राप्त स्वानुभूति को अपने नूतनभावों के द्वारा ऐसा पिरोया है कि वह सहज में ही पाठक को आकर्षित कर लेती है। आपकी रचनाओं में ऐसी टीस है कि पाठक का हृदय कवि हृदय के साथ ही साथ व्याकुल हो जाता है। होमवती जी यथार्थ रूप में एक कलाकार हैं। क्योंकि इनका कलापक्ष भाव पक्ष की अपेक्षा सबल हैं। आपकी कल्पना में जहां एक ओर यथार्थता है वहीं दूसरी ओर वह बहुत मधुरसरल और सरस होती है। आप के तीन कविता संग्रह प्रमुख हैं जिनका नाम "निसर्ग" "उद्गार" और "अर्धनाम" हैं तीनों ही कविता संग्रह का हिन्दी साहित्य संसार में स्वागत हुआ है। पीड़ा से

व्याकुल कवयित्री जब अपने ऊपर नैसर्गिक आघातों को सहन नहीं कर पाती तो चिता से पूछती हैं :—

चिते ! अनल क्यों उगल रही हो ?
करो दया, हैं ये सुकुमार,
लज्जा तनिक धरोहे निठुरे,
करो न हा। यों प्रबल प्रहार।
अयि कोमल कमनीय कलेवर,
इन्हें न पीड़ा पहुँचाओ,
सोते रहे सुमन-शैय्या पर,
अरे इन्हें मत झुलसाओ।

आपकी कविता में बड़ी दर्दनाक पीड़ा है। भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। शैली आपकी मौलिक और भाव प्रधान है।

रामेश्वरीदेवी गोयलः—श्री रामेश्वरी देवी गोयल का जन्म सन् १९११ ई० फरवरी के महीने में झाँसी के एक सुशिक्षित परिवार में हुआ था। आपकी माता ने आपको उच्च कोटि की शिक्षा दी। बाबू लक्ष्मण प्रसाद जी प्रिन्सिपल डी० ए० वी० कालेज देहरादून आपके मातामह थे। इन्हीं की देख-रेख में आपकी शिक्षा हुई। आपने सन् १९३० में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास की और तत्पश्चात् आर्य कन्या पाठशाला प्रयाग की प्रधानाध्यापिका रहीं। अध्यापन कार्य में आपको विशेष रूचि थी। आपने नारी जागरण के लिये भारत में बहुत कार्य किया है। जब आप प्रधानाध्यापिका पद पर कार्य कर रही थीं उसी समय आपका विवाह हुआ। विवाह के कुछ ही दिनों बाद आपकी मृत्यु हो गई। आप अपने युग की अच्छी स्त्री-कवि थी।

रामेश्वरी देवी गोयल का हिन्दी साहित्य के काव्यलोक में प्रमुखस्थान है। आपने बहुत अधिक कविताओं की रचना नहीं की है पर अपने अल्प जीवन काल में ही जितनी भी कवितायें लिखी हैं वह हिन्दी साहित्य में आपको अमर बनाने के लिये पर्याप्त हैं। आप वेदना और पीड़ा की गायिका थीं और जीवन की ममस्पर्शी गीत गाती थीं। संगीत से आपको बहुत प्रेम था यही कारण है कि आपने ताल और लयवद्ध गीत लिखा है। आपकी स्वानुभूति और कल्पनायें बहुत यथार्थ और सुन्दर हैं आपकी बहुत सी रचनायें राष्ट्र-प्रेम और देश भक्ति पूर्ण है। आपकी भी भाषा परिमर्जित और खड़ी-बोली है और शैली आधुनिक एवं प्रौढ़ है। आपने जितनी भी रचनायें की हैं सब गेय हैं। वेदना के विकल हाथों से बनी हुई इनकी रचना बड़ी ही मार्मिक है। दीप की छोटी सी शिखासे पूछती हैं :—

दीप की छोटी शिखा,
क्यों घुलाती हो भला
निज गीत को।

विद्यावती कोकिल—श्री विद्यावती कोकिल का जन्म २३ जुलाई १९१४ को मुरादाबाद जिलान्तर्गत सहनपुर ग्राम में हुआ था आपके पिता का नाम बाबू शिवप्रसाद श्रीवास्तव है आठ ही वर्ष की अवस्था में आप मातृ स्नेह से वंचित हो गयीं। आपकी पढ़ाई ठीक से न हो सकी,क्योंकि आपके पिता बराबर नौकरी से बदली के कारण एक शहर से दूसरे शहर में घूमते रहे। १६ वर्ष की उम्र में कोकिल जी का विवाह स्वर्गीय बाबू मथुराप्रसाद जी सिविल जज के होनहार पुत्र श्री त्रिलोकीनाथ सिन्हा एम० ए० के साथ हुआ। श्री त्रिलोकीनाथ जी ने आपको प्रोत्साहन दिया जिससे आपने प्राइवेट ही एम० ए० की परीक्षा पास की। आपको संस्कृत उर्दू का भी थोड़ा ज्ञान है आप राष्ट्रीय कार्य में भाग लेती हैं।

श्री विद्यावती कोकिल हिन्दी साहित्य की प्रमुख कवयित्रियों में से हैं। आपकी पीड़ा अन्य कवियों की तरह निराशावादी नहीं होती आपकी पीड़ा में आशा की छिपी हुई आभा रहती है। अपने प्रेम लोक में आप जिस पीड़ा की अनुभव करती हैं वह चिरसत्य है। इसलिये आपको पीड़ा नहीं जान पड़ती। आप में अच्छी कवि प्रतिभा है। आपकी रचनाओंमें सरस दार्शनिकता है। सूखे-सूखे ठूठ पेड़ की तरह कोरा दार्शनिक तत्व ही नहीं है, प्रत्युत इसमें दर्शन और कल्पना का मनोहर समन्वय है। आपकी रचनाओं में मधुरता भावुकता और प्रसादगुण की प्रधानता है। आपकी कविताओं में भावुकता इतनी अधिक अवस्था में है कि कल्पनायें कहीं-कहीं दुःख के झाड़ी में उलझ सी जाती हैं। आपकी कविता की प्रेरणा मानव हृदय की पीड़ा है। आप मानव जीवन के

विभिन्न पहलुओं पर दार्शनिक दृष्टिकोंण से विचार करती हैं। आपकी भाषा खड़ी बोली है और शैली में प्रौढ़ता है। आप के विचार राष्ट्रियता और देश भक्ति से पूर्ण है। आपने साधारण भिखारिनी, घासवाली आदि निम्न श्रेणी के लोगों से भी प्रेरणा प्राप्त की है,इसका एक मात्र कारण इनकी भावुकता है। एक भिखारिन का चित्रण करते हुये आपने बड़ी मार्मिक पंक्ति लिखी है,जिससे पाठक का हृदय कवि हृदय के साथ एक हो जाता है।

मैं दरिद्रता की रानी।
तुम क्या जानो, अति सुकुमारी,
मैं किस कुलीन की बाला।
किन दुविधा और कल्पनाओं से,
कुलवारी ने पाला,
उस कंगले की उर्वर स्मिति,
पर उस दिन वे मोल बिकानी।

सूर्यदेवी दीक्षित "ऊषा"–श्री सूर्य देवी दीक्षित "ऊषा" प्राकृतिक छटा का चित्रण करने वाली कोमल हृदय वाली प्रमुख कवयित्री हैं। आप सुकवि "मातादीन" की सुपुत्री हैं। ऊषा जी श्री मन्ननद्विवेदी गजपुरी की छोटी बहन हैं। प्रयाग महिला विद्यापीठ से आपने विदुषी परीक्षा पास की। आपके पति पं० उमाशंकर दिक्षित एम० ए० कानपुर के प्रसिद्ध नागरिक और म्युनिसिपल बोर्ड के शिक्षा विभाग के प्रधान हैं। बाल्यावस्था से ही आपको हिन्दी साहित्य से बहुत प्रेम था।

श्री सूर्यदेवी दीक्षित "ऊषा" दाम्पत्य जीवन की गायिका हैं। आपकी समस्त रचनाओं पर प्रेम की छाप है। आपका सारा वातावरण बचपन से ही साहित्यिक था। कवि पुत्री, कवि की बहन और साहित्य-प्रेमी की सहधर्मिणी होने के कारण आपका सारा जीवन ही कवितामय हो गया है। आपकी कविता में यथार्थता की प्रधानता है। कोरी कल्पना का प्रभाव बिल्कुल नहीं है। दुःखवाद और निराशावाद का पूर्ण अभाव है। आपकी रचनाओं में सुख शान्ति और प्रेम ही का विराट रूप दिखाई पड़ता है। आपकी प्रेम के प्रति स्वानुभूति अत्यन्त सुन्दर सजीव और मनोहर है। अपने नारी हृदय के प्रेम की अनुभूति को अपनी पंक्तियों में बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है। "निर्झरिणी" आपकी प्रथम कविता पुस्तक है। हिन्दी संसार में निझोरिणी की अच्छी ख्याति है। ओस के विन्दु के प्रति कविता करते समय आपने अपने हृदय को खोलकर रख दिया है।

रजनी में क्रीडा करते,
आई थी सुर-बालाएँ।
क्या टूट पड़ी उनकी हो,
मंजुल मुक्ता मालाएँ॥
या शशि की विरह व्यथा में,
व्याकुल हो रजनी रोती।
प्रभु-लतिकाओं में विखरे,
वे आँसू बन कर मोती॥

तारा पाण्डेय :—श्रीमती तारापाण्डेय का जन्म दिसम्बर सन् १९१४ ई० को दिल्ली में हुआ था। आपके पिता पं० मनमोहन जी जोशी पब्लिक-वर्क्स डिपार्टमेण्ट में इंजीनियर थे। जब आप ढाई वर्ष की थी तब आपकी माता का देहावसान हो गया। इस दुर्घटना से आपके हृदय को बड़ी चोट लगी। १४ वर्ष की अवस्था में आपकी शादी डा० श्री पुरुषोत्तम के साथ नैनीताल में हुई। इस समय आप नैनीताल में ही रहती हैं। आपकी रचनाओं के अबतक तीन संग्रह "सीकर" "शुकपिक और वेणुकी" निकल चुके हैं।

श्री तारापाण्डेय की रचनाओं में प्रेम की पीड़ा और भावुकता की प्रधानता है। आपकी कविता भाव प्रधान है। आपकी रचनाओं में मानव हृदय की पीड़ा की रहस्यात्मक ज्योति है। आप दार्शनिक कवयित्री हैं। आपकी समस्त रचनाएं भावपूर्ण सुन्दर और श्रेष्ठ कोटि की हैं। आपने सीधे-सीधे ढंग में जीवन की बड़ी-बड़ी समस्याओं को दर्शन के आधार से सुलझाया है। आपकी कविता में भाव, कल्पना, सरस अनुभूति और दर्शन का समन्वय है। अपनी भाषा पर आपको पूरा अधिकार है। आपने गेय पदों की भी रचना की है। अपने एक गीत में दुःख से श्रृंगार करने का सम्बोधन करती हुई कहती हैं—

मैं दुख से शृङ्गार करूँगी ?
जीवन में जो थोड़ा सुख है,
मृग जल है उसमें भी दुख है,
छली गई बहुत बार जगत में,
फिर क्यों अपना हार करूँगी ?
मैं दुख से शृङ्गार करूँगी ?

आपकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार है और शैली परिमार्जित एवं प्रौढ़ है।

सुभद्रा कुमारी चौहान :—वीर रस की प्रमुख कवयित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म श्रावण शुक्ल ५ सं० १९६१ को प्रयाग के निहालपुर मुहल्ले में हुआ था। आपके पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह था। आपका विवाह १५ वर्ष की आयु में खंडवा निवासी ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान के साथ हुआ। आपने प्रयाग के क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में शिक्षा प्राप्त की विवाह के बाद भी अध्ययन बनाये रखा। असहयोग आन्दोलन में आपने पढ़ाई छोड़ दी उसी वर्ष आपके पति ने वकालत की परीक्षा पास की पर उनके आग्रह करने पर उन्होंने वकालत न करने का निश्चय किया। आप अपने पति के साथ बराबर कांग्रेस का कार्य लगन के साथ करती रहीं। बहुत दिनों तक आप मध्य प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा की सदस्या भी रहीं। आपको हिन्दी साहित्य और प्राचीन भारतीय सभ्यता से अगाध-प्रेम था। आपने भारतीय वीरांगनाओं का बड़ा सुन्दर और सजीव चित्रण किया है।

बाल्यावस्था से ही कविता करना आरम्भ कर दिया था। यह बड़े खेद और हिन्दी साहित्य के दुर्भाग्य का विषय है कि हिन्दी में वीर रस की एक मात्र कवयित्री अधिक दिन तक हमारे बीच रह सकी। अल्प काल में ही मोटर दुर्घटना के कारण कानपुर में इनकी मृत्यु हो गई।

हिन्दी साहित्य से आपका बड़ा प्रेम था। कांग्रेस आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपमें राष्ट्रीय भावनाओं का उदय हो गया। आपकी अधिकांश रचनायें राष्ट्रिय भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। "झांसी की रानी" शीर्षक कविता आपकी अमूल्य कृति है। कविता में ओज की प्रधानता है। सुभद्रा जी ने अपने छंदों में मानव हृदय की कोमलतम प्रवृतियों को चित्रित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। आपकी कविता हृदय में स्पन्दन और नसों में रक्त की धारा प्रवाहित कर देती है। आपकी लेखनी के प्रत्येक शब्द भावों के सच्चे प्रतिनिधि और हृदय पर चोट करने वाले होते हैं। आपकी रचनायें अत्यन्त सरस और सरल हैं। रचनायें आपकी और अर्थ दुरूहता शुल्क कल्पनाओं और भावों की जटिलता से सर्वथा मुक्त है। वास्तव में आप काव्यलोक की भाव धारा की रानी थीं। आप कवयित्री के साथ-साथ कहानी लेखिका भी थीं। आपकी कविताओं का एक संग्रह "मुकुल" नाम से प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त "बिखरे मोती" त्रिधारा "सभाका खेल" और "उन्मादिनी" भी आपके रचित ग्रन्थ हैं। आपकी रचनाओं का आधार अनुभूति ही है।

आपकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। शब्द तथा वाक्य विन्यास बड़े सरल-सरस और प्रसाद ओज गुणसम्पन्न हैं। भाषा में प्रवाह और शैली प्रौढ़ता लिये हुई अनूठी है। आपको मुकुल और बिखरे मोती पर दो बार पांच सौ रुपये का सेक्सरिया पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। "झांसी की रानी" शीर्षक कविता बड़ी महत्वपूर्ण और सुप्रसिद्ध है।

सुमित्रा कुमारी सिन्हा :—श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा का जन्म सं० १९७० में लखनऊ में हुआ था। आपके पिता डा० एस० एम० सी० सिन्हा लखनऊ में रहते थे। अपनी शिक्षा सुमित्रा कुमारी जी ने घर पर ही पूर्ण की और सन् १९२५ से आपने कहानी लिखना आरम्भ कर दिया। आपका विवाह डलाव के जमींदार श्री राजेन्द्र शंकर के साथ ६ मई सन् १९३० को सम्पन्न हुआ। एक अच्छी कहानी लेखिका तो आप पहले से ही थीं। सन् १९३५ से आपने कविता करना आरम्भ कर दिया तब से आप बराबर कविता कहानियाँ लिख रही हैं। आपकी कहानियों की संग्रह "चल सुहाग" शीर्षक से प्रकाशित हुआ और "विहाग" में आपकी कविताओं का संकलन है।

श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध

कवयित्री हैं। आपका अध्ययन बहुत गहन है और शैली भी परिमार्जित है। आपके ऊपर रहस्यवाद का गहरा प्रभाव पड़ा है। जिसका मूल कारण दर्शन तथा रवीन्द्र साहित्य का अध्ययन है। इसी रहस्यवाद के कारण आपकी कल्पनायें दुरूह और उलझी सी प्रतीत होती हैं। आपकी कविता में वेदना टीस और उद्‌भुत घुटन है। आपकी दार्शनिकता में मौलिकता है। अधिकांश कवितायें राष्ट्रीय है और कुछ मानव के जीवन दर्शन से संबंधित हैं। आपकी "अज्ञात" शीर्षक कविता में उनका दार्शनिक विचार स्पष्ट दृष्टगोचर होता है।

> ले किसकी सुधि की सांसें,
> जो फिर से उठा समीरण ?
> फिर कलियों में मुस्काई,
> यह किसकी पलकें उन्मन ?
> यह भ्रमर-भीर मंडराई,
> किसकी अलकावलिया बन ?
> वल्लरियों की बाहों में,
> यह किसका फूलों सा तन ?

शकुन्तला देवी खरे :- शकुन्तला देवी खरे का जन्म संम्वत् १९७४ में हुआ था। आपकी जन्म भूमि, जवलपुर जिले का विलहरी नामक ऐतिहासिक स्थान है। आपके पिता बाबूरामसहाय, इमलिया गाँव के माल-गुजार थे। लगभग दस वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो गया इसलिये विवश होकर आप अपने मौसा बाबू गणेशीलाल जी के पास मण्डला रहीं वहीं आपकी शिक्षा-दीक्षा हुई। आपका विवाह १० सितम्बर १९३४ को जबलपुर निवासी हिन्दी के सुविख्यात साहित्यकार नर्मदा प्रसाद खरे के साथ हुआ। विवाह के बाद अनुकूल वातावरण पाकर श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के अधिक सम्पर्क में आने के कारण आपने कविता लिखना आरम्भ किया। तब से आज तक बराबर आप लिख रही हैं।

शकुन्तला देवी खरे हिन्दी साहित्य की उदीयमान कवयित्री हैं। आपकी कल्पनायें सुन्दर संजीव, सरल एवं भाव-पूर्ण होती हैं। आपने काव्य जगत् में थोड़े समय से ही पदार्पण किया है, फिर भी आप जो कुछ लिखती हैं। उसमें प्रौढ़ता, हृदयस्पर्शिता और मार्मिकता रहती है। आपकी रचनाओं की सबसे प्रमुख विशेषता विश्वबन्धुत्व की भावना है। अधिकांश रचनायें राष्ट्र प्रेम और विश्व प्रेम से ओत-प्रोत है। आपकी कविताओं की प्रत्येक पंक्ति सरस सरल और माधुर्य तथा प्रसाद गुण सम्पन्न है।

रत्न कुमारी देवी :—हिन्दी कीं प्रमुख कवयित्री रत्न कुमारी देवी का जन्म सं० १९६९ के मार्गशीर्ष मास में कृष्ण पक्ष की सप्तमी को जवलपुर में हुआ। आप मध्यप्रांत के सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय नेता गोविन्ददास की सुपुत्री हैं। आप वाल्यावस्था से ही बहुत गम्भीर और मननशील हैं। आप बड़ी भावुक, मननशील, उदार और व्यवहार कुशल नारी हैं। आपने आरम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त की पश्चात् संस्कृत की काव्यतीर्थ-परीक्षा पास की है। आपके पिता हिन्दी साहित्य के सुलेखक और प्रतिभाशाली नाटककार हैं। अपने पिता की साहित्यिक प्रतिभा का प्रभाव रत्न कुमारी जी पर भी पड़ा हैं। साहित्यिक वातारण में रहने वाली लेखिका ने १२ वर्ष की ही आयु से कविता करना शुरू कर दिया। स्वयं डा० गोविन्ददास ने भी कहा है कि "जब मेरी पुत्री कविता करने लगी तो मैंने काव्य क्षेत्र को उसके लिए छोड़ दिया और स्वयं नाटककार ही रह गया। मेरे नाटकों में जितने भी गीत हैं सभी मेरी पुत्री द्वारा रचित हैं। दूसरे शब्दों में मेरे नाटकों में गीत लिखने का कार्य मेरी बेटी का है।" इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि रत्न कुमारी देवी ने कवि प्रतिभा अपने पिता से ही प्राप्त की है। आपका विवाह सहारनपुर निवासी बाबू लक्ष्मीचन्द्र जी से २८ जून १९२५ को हुआ आपके पति बड़े उदार और साहित्य प्रेमी हैं। आपके चारों ओर वातावरण साहि-त्यिक है।

श्रीमती रत्नकुमारी देवी हिन्दी साहित्य की नवोदित कव-यित्रियों में प्रमुख स्थान रखती है। आपकी रचनायें बड़ी सुन्दर सजीव और मर्मस्पर्शी होती हैं। एक राष्ट्रीय सेवक की पुत्री होने के कारण आपने राष्ट्रीयता, देश भक्ति और

पीड़ित जनता के प्रति अगाध प्रेम है। आपकी रचनाओं में राष्ट्रीयतापरक कविता की अधिक संख्यायें है। आपके काव्य-कल्पना का क्षेत्र असीम और अपार है। आपकी काव्य प्रेरणा प्रकृति है, क्योंकि प्रकृति का अवलोकन करना बचपन से ही इनकी आदत थी प्रकृति का जैसा सजीव चित्रण आपकी कविता में मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। आपकी भाषा अत्यन्त शुद्ध, शब्द भावानुकूल और शैली अपेक्षाकृत प्रौढ़ है। "अंकुर" नाम से आपका कविता संग्रह प्रमुख है। यह लोकप्रिय भी हुआ। आपने भारत की वीरांगनाओं के प्रति भी कवितायें करके राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना का प्रसार किया है। कविता में काव्य के प्रमुख गुण ओज की प्रधानता है। रानी दुर्गावती के प्रति कवयित्री का भाव अच्छा है :—

निर्झर के स्वच्छंद गान से तूने सीखा था गाना।
फूलों ने हँसना सिखलाया कलियों ने मृदु मुस्काना॥
तूने बन राजा से सीखा पराधीनता ठुकराना।
तुझे पतंग ने सिखलाया विमल प्रेम पर मर जाना॥

राजराजेश्वरी देवी "नलिनी"—राजराजेश्वरी देवी नलिनी का जन्म स्थान जिला उन्नाव में है। आपके पिता का नाम पं० उमाशंकर प्रसाद है। आपको कविता की रुचि बाल्यावस्था से ही है। आपने १२ वर्ष की अवस्था से ही कविता करना आरम्भ कर दिया। नलिनी जी की शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। व्यक्तिगत रूप से आपने गहन अध्ययन किया। आपका विवाह १९३६ में श्री देवीदीन जी त्रिवेदी के साथ हुआ।

नलिनी जी का हिन्दी साहित्य की प्रमुख कवयित्रियों में प्रमुख स्थान है। आपकी रचनाओं में विशेष प्रकार का चमत्कार है जिससे पाठक मंत्र मुग्ध हो जाता है। आपकी काव्य कल्पना का सारा क्षेत्र असीमित और व्यापक है। आपके दार्शनिक भाव अत्यन्त सुलझे हुये और हृदयस्पर्शी हैं। वास्तव में आप प्रेम की पीड़ा की गायिका हैं। आपकी कविताओं में वेदना है, कसक है, तड़प है और मानव हृदय को हिलाने की अद्भुत शक्ति है। नलिनी जी की वेदना-प्रधान रचनायें अपना विशेष महत्व हिन्दी साहित्य में रखती है। इनकी कविता में वैयक्तिकता है, मानवता है, मानव हृदय की झलक है, स्वाभाविकता और सरसता है। आपकी भाषा शुद्ध, शैली प्रौढ़ और अपनापन लिये हुये है, आपकी कविताओं का एक संग्रह 'कुमकुम' बहुत प्रसिद्ध है। 'बन्दी की आह' में इनकी शैली का सुन्दर उदाहरण मिलता है :—

धीरे से आओ प्रिय बसन्त।
सुख वैभव का हो गया अन्त॥
हम दीन हीन हैं पराधीन,
सुख बरबस जिसका लिया छीन।
याचक दाता बन गया आज,
सम्राट् बना भिक्षुक मलीन॥

नलिनी जी की अधिकांश कवितायें प्रेम की टीस और लोक की गरीबी की वर्णन छाया पर आधारित हैं।

महादेवी वर्मा—छायावादी कवियों में प्रमुख स्थान रखने वाली शाश्वत की गायिका श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म सं० १९६४ में फर्रुखाबाद में हुआ। इनकी आरंभिक शिक्षा इंदौर में हुई। चित्रकला तथा संगीत की शिक्षा घरपर ही हुई। अल्पायु में ही इनकी शादी संवत् १९७३ में डा० स्वरूप नारायण के सा हुई। कुछ वर्षों तक आपने 'चाँद' का सम्पादन किया। आज कल आप प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका हैं। इन्होंने प्रयाग में साहित्यकार संसद कीं स्थापना की, जिसका कार्य साहित्यकारों की सहायता करना है। इनकी रचनाओं में सर्वप्रथम रचना "नीहार" के नाम से सन् १९२० में प्रकाशित हुई। पश्चात् "रश्मि" १९३२ में "नीरजा" सन् १९३५ में, "सांध्य गीत" १९३६ हुई। इन चारों रचनाओं का एक संकलन "यामा" नाम से हुआ, जिसपर आपको १२००) मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ है। नीरजा पर भी आपको ५००) सेक्सरिया पुरस्कार मिला। इनकी अंतिम रचना "दीपशिखा" के नाम से प्रकाशित हुई। इनकी गद्य रचना "अतीत के चल चित्र" और "स्मृति की रेखायें" तथा "शृङ्खला की कड़ियां" के नाम से प्रकाशित है।

महादेवी जी की संस्कृत गर्भित भाषा अत्यन्त परिष्कृत मधुर और कोमल है। उनका अपनी भाषा पर पूर्ण अधिकार है भाषा उनकी भावों के पीछे-पीछे चलती है। हिन्दी का कोई भी छायावादी कवि इतनी भावचित्रमयी कोमल-कान्त पदावली प्रस्तुत नहीं कर सका। इनकी कविता में सुन्दरता मधुरता तथा सरसता तीनों समन्वित हो गई है। इतना होते हुए भी मात्रा की पूर्ति और तुक के आग्रह के लिये कुछ शब्दों का अंग भंग रूप परिवर्तन हो गया है। जैसे बतास, अधार, अभिलाषें कर्णाधार आदि ऐसे ही शब्द हैं। वह का प्रयोग एक वचन बहुवचन दोनों में समान रूप से करती हैं। महादेवी के गीतों में गीतकला का सर्वोच्च विकास मिलता है, उनके गीत काव्य संगीत और चित्रकला का सुन्दर समन्वय उपस्थित करते हैं। लोक छंदों की अनेक ध्वनियों का प्रयोग भी उन्होंने अपने गीतों में किया है। उन्होंने अपने मन के रंगीन स्वप्नों और प्रकृति की रंगमयी छटा को शब्दों में बाँधने का सफल प्रयास किया है। उनकी शैली में अमूर्त वस्तुओं के लिये योजनायें बहुत मिलती हैं; भावों एवं प्राकृतिक रूपों के भारतीयकरण में वे पटु हैं। महादेवी जी की अलंकार योजना अत्यन्त स्वाभाविक है। उनके व्यंग प्रधान काव्य में सामासोक्ति अलंकार के बड़े सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। समासोक्ति से अधिक रूपकों को इन्होंने अपनाया है। जैसे—"साँध्य गगन मेरा जीवन, रूपसि तेरा घनकेश पाश, आदि इनकी कविताओं में करुणा और श्रृङ्गार रस मुख्य रूप से पाये जाते हैं।



आधुनिक हिन्दी कवयित्रियाँ

डॉ० रामकुमारी मिश्र एम० ए०

भारतेन्दु काल के पश्चात् द्विवेदी काल में खड़ी बोली का गद्य तथा पद्य क्षेत्र में जो परिमार्जन हुआ वह सर्व विदित है। विकास क्रम की परम्परा का जीता जागता उदाहरण हिन्दी काव्य-क्षेत्र में पाया जाता है। जिस देशप्रेम को लेकर भारतेन्दु काल में अनेक पद्यात्मक रचनाएँ हुई, उसमें उत्तरोत्तर प्रबलता एवं व्यापकता ही आती गई। प्रारम्भ में जहाँ कवि लोग अंग्रेजी राज्य के प्रति निष्ठावान बने रहकर भगवान से उद्धार के लिए प्रार्थना करते, देशवासियों को ही आलस्य में पड़े रहने के लिए कोसते अथवा विदेशी माल का बहिष्कार करने के लिए देशवासियों को उपदेश देते पाये जाते हैं वहीं द्विवेदीकाल के पश्चात् उनमें नवीन राजनीतिक चेतना का उदय भी देखा जाता है। जब देश में आन्दोलनों की भरमार आ गई, कवियों ने जनता को स्वतन्त्रता के लिए बलिदान करने के लिए प्रेरित करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही द्विवेदीकाल की इतिवृत्तात्मक शैली के विरुद्ध भी प्रतिक्रिया होने लगी और हिन्दी काव्य में "छायावाद" का जन्म हुआ। इस काल में छन्दों को काव्य का बंधन मानते हुए, मुक्त छन्द की सृष्टि की गई। साथ-साथ गीतों की भी रचना चलती रही।

राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि में प्रकृति के प्रति प्रेम, रहस्यानुभूति तथा स्वतन्त्र चिन्तन भी अग्रसर होता रहा। फलतः छायावाद काल के कवियों में विषय एवं भावों की विविधता के दर्शन होते हैं। इस काल में अंग्रेजीसाहित्य एवं बंगला-साहित्य से हिन्दी कवियों ने बहुत कुछ सीखा; साथ ही काव्य शैली में भी अनेक नवीनताएँ आईं। लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोधी चमत्कार तथा कोमल पद-विन्यास आदि इस युग की विशेषताएँ हैं।

छायावाद के अन्तर्गत दो प्रकार की कविताएँ देखने को मिलती हैं। एक तो वे जिनका सम्बन्ध रहस्यवाद से है और दूसरी वे जो प्रतीकवाद के आधार पर विस्तृत क्षेत्र को स्पर्श करती चलती हैं। रहस्यवादी रचनाओं में कवि अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। इस अर्थ को लेकर चलने वाले कवि नहीं के बराबर हैं, जब कि प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा की शैली में चलने वालों में प्रसाद, पंत एवं निराला के नाम अग्रगण्य हैं।

छायावादी युग की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में स्त्री और पुरुषों में समानता की भावना जाग्रत हो चली थी, जिसके फलस्वरूप पुरुषों के साथ महिलायें भी राष्ट्रीय जागरण में योग दे रहीं थीं, उसी प्रकार हिन्दी कविता के क्षेत्र में महिलाओं ने भी योग दिया। इस काल में अनेक कवयित्रियों ने अपने परिवारों की मर्यादाओं को त्यागते हुए कविता करनी प्रारम्भ की और प्रशंसा की बात यह रही कि कवियों ने इन कवयित्रियों को सम्मान प्रदान किया। वस्तुतः उन्हीं के प्रोत्साहन का परिणाम है कि धीरे-धीरे हिन्दी में कविता करने वाली महिलाओं की संख्या बढ़ रही है।

किन्तु स्त्रियों द्वारा कविता की रचना इस युग की कोई चमत्कारपूर्ण या अद्वितीय घटना नहीं कही जा सकती। हिन्दी के मध्यकाल में अनेक भक्त कवयित्रियाँ हो गई हैं। मीराबाई, सहजोबाई आदि के नाम से कौन परिचित नहीं

तक न कर सकीं और स्वतन्त्र
दुर्घटना से दिवगत हो गईं।
किसी कवयित्री के स्वर से वैसा
चकोरी जी—आधुनिक हिन्दी
प्रवाह में जिन कवयित्रियों ने
उद्वेलित किया उनमें श्रीमती
का भी नाम आता है। वे
की कन्या थीं और अपने कौमा
लिखने लगी थीं, किन्तु रुग्ण
के कारण उनकी कविता पूर्ण
उनके सम्पूर्ण काव्य में भावों
है। कविता के स्वर में गाती
के रत्नों से पाठकों को परिचित
में अपने पति 'अरुण' को प्राण
व्यंजना करती हुई कहती हैं—

> प्राची में अरुण मु
> लहरों ने
> मेरा नाविक वह ग
> जीवन स्
> फिर बिखरा दी संचि
> ले गई

★

> अर्पण कर प्रेम पर
> नाविक ने

अन्य छायावादी कवयित्रियों
काव्य में भी अदृश्य प्रियता दे

> "छिपकर धीरे से
> चुपचाप
> मेरी वह भावुक
> सोती है

प्रिय के स्पर्श से ही कवयित्री
और तभी उत्तम संगीत काव्य

कविता रचने वाली

पलटें तो देखेंगे कि
अवसर निम्नांकित
जे कुछ दिवंगत हो
गा है, जब कि कुछ
गा रही हैं। इनके
ी', स्वर्गीया सुभद्रा
देवी, तारा पांडेय,
तथा विद्यावती

साहित्य में राष्ट्रीय
वयित्री हैं। आप
ाजदेवी, कुंवरदेवी
राष्ट्रीय कविताएँ
में लली जी की
सम्पादक ही कर

पर ही हुई, किन्तु
न्होंने अपने मौलिक
वा के प्रसिद्ध कवि
ऐसे वातावरण में
नकी सबसे पहली
। तब से १९३९
की कविताओं का
०) का सेक्सरिया

रही हैं। आपने
स तेरी जय हो"
म्बन्धी कविताएँ
उदाहरणार्थ—

> माता की एक पुकार हुई,
> बढ़ चले वीर मस्ताने से;
> सुख वैभव क्षण में त्याग चले,
> दर्शन करने मनमाने से।
> उठ चरण वन्दना कर ले,
> उस स्वप्न देश को त्याग री;
> जननी फिर आज पुकार उठी,
> तू जाग अरी अब जाग री।

आपकी भाषा अत्यन्त पुष्ट एवं प्रवाह युक्त है।

सुभद्रा कुमारी चौहान—राष्ट्रीय विचार धारा की दूसरी कवयित्री हैं। लली जी की ही भाँति इनकी भी साधना का क्षेत्र प्रयाग से ही प्रारम्भ हुआ किन्तु जब इनका परिणय बुन्देलखंड के जबलपुर में हुआ तो बुन्देलखंड का शौर्य इनकी कविता में साकार हो उठा। यह पहली नारी हैं जिन्होंने पराधीन और परतन्त्र भारत में वीरों की सी हुंकार भरी इनकी 'झाँसी की रानी' एक अमर कृति है। यद्यपि इसमें १८ छन्द ही हैं किन्तु केवल इसी एक वीर गीत के कारण उनकी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी। इसमें झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई के ज्वलन्त कर्तृत्व का उत्तेजमा पूर्ण वर्णन है। इसकी एक पंक्ति आज भी उतनी ही नवीन लगती है।

> **बुन्देले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी;**
> **खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।**

हिन्दी जगत् में इने गिने कवियों ने राजनीति और साहित्य दोनों में समान कर्तव्य दिखाया है। इनमें एक भारतीय आत्मा, नवीन जी, तथा सुभद्रा कुमारी चौहान के नाम उल्लेख्य हैं। सुभद्रा कुमारी जी ने असहयोग आन्दोलन के समय से ही गाँधी जी के नेतृत्व में अपने राष्ट्रीय जीवन का सूत्रपात किया। इनकी राष्ट्रीय भावना की विशेषता यह है कि वह काल्पनिक नहीं बल्कि अनुभूति के आधार पर ही कविता में अवतरित हुई। उनकी 'विदा' 'राखी', 'जलियाँ वाला बाग में, 'बसन्त', 'विजयादशमी', 'राखी की चुनौती' आदि कविताएँ इसके परिणाम स्वरूप हैं। जलियाँवाला बाग में बसन्त में, कोमल बालकों की; कलियों को धूल में

मिला हुआ बता कर उन्होंने करुणाधारा बहा दी है।

कोमल बालक मरे जहाँ गोली खा खा कर,
कलियाँ उनके लिए चढ़ाना थोड़ी लाकर।

★ ★ ★

आओ प्रिय ऋतुराज किन्तु धीरे से आना,
यह है शोक स्थान यहाँ मत शोर मचाना।
बहनें कई सिसकतीं हैं,
हा! सिसक न उनकी मिट पाती।
लाज गँवाई गाली पाई,
तिस पर भी हा! गोली खाई।

परतन्त्र राष्ट्र की समस्त वेदना श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के प्राणों की हूक बनकर कविता में उतरी थी।

राखी के पवित्र त्योहार के समय कोई बहन अपने भाई को राखी बाँधना चाहती है। इस पर्व की स्मृति उसके हृदय में प्रसन्नता ला देती है, किन्तु उसका भाई तो जेल में है इस पर भी उसे गर्व है—

बहन आज फूली समाती न मन में,
तड़ित आज फूली समाती न घन में।

★ ★ ★

मैं हूँ बहन किन्तु भाई नहीं है,
नहीं है खुशी पर रुलाई नहीं है।
मेरा बन्धु माँ की पुकारों को सुनकर,
कि तैयार हो जेल जाने गया है।
छीनी हुई माँ की स्वाधीनता को,
कि जालिम के घर में से लाने गया है।

★ ★ ★

यदि हाँ तो लो यह मेरी इस,
राखी को स्वीकार करो।
आकर भइया बहन सुभद्रा के कष्टों का भार हरो।

★ ★ ★

सदियों से सोई हुई वीरता जागी मैं भी वीर बनी।
जागो भइया, विदा तुम्हें करती हूं मैं गम्भीर बनी।

झाँसी की रानी में सुभद्रा जी ने झाँसी की रानी के माध्यम से भारतीय जनता के विद्रोह का अंकन किया है।

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी...
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहिचानी थी।

सुभद्रा कुमारी चौहान ने वात्सल्य भाव से पूर्ण "बालिका का परिचय" नामक कविता लिखी। जिसमें पंक्ति-पंक्ति से मातृहृदय झाँकता है।

यह मेरी गोदी की शोभा सुख सुहाग की है लाली,
शाही शान भिखारिन की है मनोकामना मतवाली।

"मेरा नया बचपन" भी अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक कविता है।

पाया मैंने बचपन फिर से,
बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर मुझमें नवजीवन आया।

सुभद्रा जी ने दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी प्रणय गीत भी लिखे हैं।

हुई प्रेम-विह्वल मैं उनके चरणों पर बलिहार गई।
बदले में प्रिय का चुम्बन पा जीत गई या हार गई।
उस शाबाशी से कृतज्ञता से तस्वीर खिंचाने से।
हुई खुशी से मैं पागल-सी प्रिय का चुम्बन पाने से।

'प्रियतम से' नामक संग्रह की कविताएँ इस पक्ष को समझने में अत्यन्त उपयोगी है—

बहुत दिनों तक हुई प्रतीक्षा,
अब रूखा व्यवहार न हो।
अजी, बोल तो लिया करो तुम,
चाहे मुझ पर प्यार न हो।
जरा-जरा सी बातों पर,
मत रूठो मेरे अभिमानी।
लो, प्रसन्न हो जाओ—
गलती मैंने अपनी ही मानी।

खेद है, कि ऐसी वीर क्षत्राणी हिन्दी की सेवा अधिक समय

तक न कर सकीं और स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही मोटर दुर्घटना से दिवगत हो गईं। आपकी मृत्यु के बाद अन्य किसी कवयित्री के स्वर से वैसा वीर स्वर नहीं गूँजा।

चकोरी जी—आधुनिक हिन्दी कविता की विकासोन्मुखी धारा-प्रवाह में जिन कवयित्रियों ने अपनी रचनाओं से दर्शकों को उद्वेलित किया उनमें श्रीमती रामेश्वरी देवी 'चकोरी' जी का भी नाम आता है। वे लखनऊ के एक प्रतिष्ठित कुल की कन्या थीं और अपने कौमार्य जीवन में ही अच्छी कविता लिखने लगी थीं, किन्तु रुग्ण रहने एवं शारीरिक व्याधियों के कारण उनकी कविता पूर्ण विकास न पा सकी। फिर भी उनके सम्पूर्ण काव्य में भावों की विविधता देखने को मिलती है। कविता के स्वर में गाती हुई कवयित्री विभिन्न प्रकार के रत्नों से पाठकों को परिचित कराती हैं। अपनी कविताओं में अपने पति 'अरुण' को प्राणाधार मानकर बड़ी ही सूक्ष्म व्यंजना करती हुई कहती हैं—

प्राची में अरुण मुस्कुराया,
लहरों ने प्रणय गान गाया।
मेरा नाविक बह गया कहीं,
जीवन सूना रह गया वहीं।
फिर बिखरा दी संचित उमंग,
ले गई उसे भी जल तरंग।

★ ★ ★

अर्पण कर प्रेम पराग मुझे,
नाविक ने दिया सुहाग मुझे।

अन्य छायावादी कवयित्रियों की भाँति 'चकोरी' जी के काव्य में भी अदृश्य प्रियता देखने को मिलती है।

"छिपकर धीरे से प्रियतम,
चुपचाप हृदय में आओ;
मेरी वह भावुक वीणा,
सोती है उसे जगाओ" ॥

प्रिय के स्पर्श से ही कवयित्री की हृद्तन्त्री झंकृत हो सकेगी और तभी उत्तम संगीत काव्य के रूप में निखर आयेगा।

"निर्झरिणी के अन्तरतल में
किसका सौन्दर्य झलकता है ?
अलसाई सी मृदु लहरों से,
किसका अनुराग छलकता है ?
उस अस्फुट-सी कल-कल-ध्वनि में
छिप कौन गान गाता अधीर,
जिसको सुन मचल-मचल पड़ता
चंचल विमुग्ध सुरभित समीर" ?

उपर्युक्त पंक्तियों में चकोरी जी की अरूप प्रियता दृष्टि-गोचर होती है।

चकोरी जी के काव्य में यद्यपि सभी रसों का पुट मिलता है किन्तु करुण-रस की मात्रा सर्वाधिक है। कहीं-कहीं वेदना के साथ ही श्रृङ्गार रस भी समाविष्ट हो गया है। गीत लिखने के साथ ही चकोरी जी ने छंद और सवैयों की भी सृष्टि की है। दो चार सुप्रसिद्ध कवियों को छोड़कर इतने चुस्त छन्द खड़ी बोली के किसी कवि ने नहीं लिखे। 'उजड़ी बाटिका' से प्रश्न करती हुई कवयित्री कहती हैं—

'वह बल्लरियाँ लिए पल्लवों को
निज अंक में नित्य झुलाती न क्यों ?
मदमत्त हो स्वागत में ऊषा के,
बिहगावली गान सुनाती न क्यों ?

★ ★ ★

पहिने हरे रंग की सारी नई
सजी फूलों से तू इतराती न क्यों
सब साज श्रृङ्गार कहाँ को गए
तू व्यथा की कथा हा सुनाती न क्यों ?

उपर्युक्त उदाहरण में कवयित्री के भाव बड़े ही मनोरम एवं स्वाभाविक चित्र उपस्थित करने वाले हैं। भाषा के व्यतिक्रम होने पर भी काव्य सुन्दर एवं सफल कहा जा सकता है।

चकोरी जी के काव्य में प्रकृति की रमणीय छटा भी देखने

को मिलती है। इसका सम्यक चित्रण उनके पावसऋतु के निम्न वर्णन में मिलता है।—

"कहीं श्याम चँदोवा तना नभ में,
हरी फर्श बिछा दी धरा ने अहा।
तरु-पल्लवों ने हरी शाल ली ओढ़,
हरे रंग से गया विश्व नहा।

★ ★ ★

तरु तन्मय होकर झूमते हैं,
पिक गान मनोहर गा रहे हैं,
बक पाँति कहीं उड़ी जा रही है,
हलके कहीं बादल छा रहे हैं।

इसी प्रकार सूर्योदय का वर्णन करती हुई कवयित्री ने जिन प्रतीकों को लिया है उसका निर्वाह सुचारु रूप से हुआ है।

"लाल लाल आँखें हुईं रवि की, उन्हें बिलोक,
कालिमा कुटिल का समस्त तेज धो गया;
छुटे तेज पुंज के कराल बाण, निशिराज,
सहित समाज समरांगण में सो गया;
छूटे अलि बंदि से, संयोगी बने चक्रवाक,
निशि का अँधेरा पल भर में ही खो गया;
स्वर्ण युग छा गया उषा का नभ मंडल में,
विश्व को चकोरी सुप्रभात प्राप्त हो गया"।।

उपर्युक्त वर्णन में चकोरी जी ने भावों के अनुकूल ही पुष्ट भाषा का प्रयोग किया है। यही नहीं इन्होंने देश प्रेम सम्बन्धी रचनाएँ भी की हैं जो अत्यन्त ही सुन्दर हैं।
इस प्रकार हम देखते हैं कि खड़ी बोली में लिखने वाली हिन्दी साहित्य की आधुनिक कवयित्रियों में चकोरी जी अपना प्रमुख स्थान रखती हैं!

तारा पाण्डेय—चकोरी जी की भाँति ही श्रीमती तारा पाण्डेय भी शारीरिक व्याधियों के कारण अल्पकाल में ही चल बसीं। इन्होंने अपने अल्पकालीन जीवन में जिस काव्य का सृजन किया वह हिन्दी साहित्य में उचित स्थान रखता है। अपनी समकालीन कवयित्रियों की भाँति आपकी प्रतिभा सम्पन्न थीं किन्तु स्वस्थ न रह सकने के कारण अधिक न लिख सकीं फिर भी इन्होंने जो कुछ भी लिखा है काव्य गुणों से युक्त है।

प्रभु! मैं कैसे तुमको पाऊँ!
तू महान मैं लघु रजकण हूँ, कैसे प्रेम दिखाऊँ?
कैसे करूँ प्रार्थना तेरी, नहीं रुचेगी बिनती मेरी,
जग में अंधकार छाया है, कहाँ खोजने जाऊँ?
कभी सोचती हूं मैं मन में, क्यों हूं बँधी बन्धन में!
मुझमें ही तो मुक्ति विहित है, चाहूँ तो खुल जाऊँ!
तेरे नियम वृथा करने को,
केवल क्षणिक स्वार्थ रखने को।
कर्म हीन बनकर, सुख के हित-क्यों तेरे गुण गाऊँ?
मुझे रुला, मैं हँसती जाऊँ औरों के हित जलती जाऊँ।
अंतिम दे वरदान मुझे, अपने में तुझको पाऊँ!

उपर्युक्त कविता में कवयित्री ने ईश्वर के प्रति जो आत्म निवेदन उपस्थित किया है वह बड़ा ही उच्च कोटि का है भाषा, भाव और शैली, सभी दृष्टि से कविता सुन्दर है।
होमवती देवी— दिवंगता होमवती देवी भी अपने समय की श्रेष्ठ कवयित्रियों में से हैं। इनकी कविताओं को देखने से यह ज्ञात होता है कि शारीरिक रुग्णता अथवा अन्य व्यवधानों के कारण इनकी कविता पूर्णरूपेण विकास न पा सकीं।

'उत्पीड़न' नामक कविता में कवियित्री ने बड़ा ही सुन्दर भाव व्यक्त किया है जो हम निम्न पंक्तियों में पायेंगे।

दो तिनकों का नीड़ हमारा।
दो दृग प्रहरी, दो नयनों से,
कर लेते चुप विनिमय सारा।
हम दोनों ने दो पग पढ़कर,
उठा लिए सहसा दो तिनके।
दो दिन को ही नीड़ बसाया,
साथी बनकर दो ही दिन के।
सपनों का आधार बना अब,

दो प्राणों का क्षीण सहारा।
दो तिनकों का नीड़ हमारा,

* * *

कभी विश्व की कलुषित कृति के,
आघातों से हिल जाता यह।
कभी किसी अज्ञात शक्ति से,
पुनः लक्ष्य पर मिल जाता यह।
नेह ग्लानि की दो डालों पर,
झूल रहा अब नीड़ हमारा।
दो तिनकों का नीड़ हमारा।

महादेवी वर्मा—छायावाद का मूल अर्थ (अर्थात् रहस्यवाद को) लेकर चलने का श्रेय महादेवी वर्मा को प्राप्त है। यों तो पंत, प्रसाद और निराला छायावादी युग के अग्रणी कवियों में हैं किन्तु स्त्री होने के नाते सच्ची रहस्यानुभूति महादेवी वर्मा (देवी जी) को ही मिल सकी है। अपने अज्ञात प्रियतम को पाने के लिए उन्होंने हृदय की भावनाओं का केन्द्रस्थल वेदना ही माना है और इसी के द्वारा अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है। वे गाती हैं :—

मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चूर हूँ।

करुणा, पीड़ा तथा अवसाद से युक्त उनका सम्पूर्ण काव्य अत्यन्त मार्मिक हो गया है। इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, **'संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं। जीवन में मुझको दुलार और बहुत आदर बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है। उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यही कारण है कि वेदना मुझे इतनी प्रिय है।"**

देवी जी के काव्य में रहस्यवाद के साथ साथ गीतितत्व भी दृष्टिगोचर होते हैं। वे जगत अथवा प्रकृति लोक को अपनी कल्पना का आधार बनाकर परोक्ष को ध्येय और आराध्य मानकर स्वयं की अभिव्यक्ति करती हैं। देवी जी ने पाँच काव्य संग्रह लिखे हैं—नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत तथा दीप शिखा। 'यामा' नाम से भी उनकी समस्त कविताओं का वृहत् संकलन प्रकाशित हुआ है।

'नीहार' देवी जी के हृदय के स्वाभाविक उछवासों से युक्त प्रथम काव्य संग्रह है। यह कवियित्री की वेदना और पीड़ा से युक्त रहस्य भावना का सहज उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रेम की पहली दृष्टि में पीड़ा की सृष्टि किस प्रकार होती है वह निम्न उदाहरण में मिलती है।

बिछाती थी सपनों के जाल,
तुम्हारी वह करुणा की कोर।
गई वह अधरों की मुसकान,
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर॥

अपने प्रियतम के राज्य में भी वे प्यार के बदले पीड़ा की ही खोज करती हैं—

'तुमको पीड़ा में ढूढ़ा, तुममें ढूढ़ूंगी पीड़ा'।

इनके काव्य में इस वेदना वाद का जो भी कारण हो किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह बौद्ध दर्शन का प्रभाव अवश्य है। इस दुःखात्मक संसार से पार जाने के लिए वे कहती हैं :—

'विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार'।

'रश्मि' देवी जी के चिन्तन की आलोक रश्मियों का प्रतीक स्वरूप है इसमें अनुभूतियों से अधिक चिन्तन को प्रधानता दी गई है जिससे इसमें भारतीय दर्शन मुखर हो उठा है। जीव, सृष्टि, जीवन तथा तात्विक चिन्तन का रहस्य इस काव्य संग्रह की देन है। 'तुम' और 'मैं' के सम्बन्ध में से प्रेम के सम्बन्ध को वे सबसे मधुर बताती हैं—

तुम अमर प्रतीक्षा हो मैं पग विरह पथिक का धीमा,
आते जाते मिट जाऊँ, पाऊँ न पंथ की सीमा।

दिव्य प्रियतम और लौकिक प्रियतम का सम्बन्ध वे निम्न प्रकार से करती हैं—

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान।

* * *

तुम असीम विस्तार ज्योति के मैं तारक सुकुमार।
वास्तविक गीतिधारा का आरम्भ **'नीरजा'** से होता हैं। प्रियतम तक पहुंचने के लिए 'रश्मि' में व्यक्त हृदय की जिज्ञासा, कौतूहल, तथा उत्कंठा 'नीरजा' में पहुंचते पहुंचते विह्वलता और अधीरता का रूप धारण कर लेती है और प्रियतमा के हृदय में 'कौन तुम मेरे हृदय में' की अनुभूति दिखाई पड़ने लगती है। इस प्रकार 'नीरजा' के गीतों में मिलन और विरह की विरोधी अनुभूतियों की आँख मिचौनी प्राप्त होती है—

कूल भी हूँ कूल हीन प्रवाहिनी भी हूँ।
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।।

'सांध्यगीत' के गीतों में प्रिय मिलन की स्थिति दिखाई पड़ती है। विरह पंथ अब मिलनोत्सव की सुधि करता हुआ अभिसारिका का पथ बन जाता है और कवयित्री पथ के शूलों से प्यार करती हुई स्वयं राधा बन जाती है—

आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य द्वैध क्या कैसी बाधा ?

"दीप शिखा" में अपनी साधना पथ पर प्राणों का दीप जलाकर रहस्यवादिनी कवयित्री 'जब यह दीप थके तब आना' कहती हुई 'पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला' कहकर आगे बढ़ती हैं। 'मरण पर्व' को भी दीपावली बना कर प्रलय के पारावार में कूद पड़ती हैं। साधना का पथ निर्वाण बन जाता है —

यह पथ ही निर्वाण बन गया,
प्रति पग शत वरदान बन गया।

देवी जी के सम्पूर्ण काव्य में प्रकृति चित्रण भी मिलता है। उनकी कविता में प्रकृति प्रणय के भिन्न मनोभावों एवं अनुभावों का सजीव स्पंदन लेकर आती है। देवी जी की कविता में छायावाद और रहस्यवाद को भिन्न कर पाना कठिन है। देवो जी की गीति शैली के साथ ही भाषा भी अत्यन्त कोमल और मधुर है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है :—

"गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगी"।

विद्यावती कोकिल—बचपन से ही कोकिल जी की रुचि कविता एवं संगीत के प्रति रही है। आपने स्वतन्त्रता संग्राम में भी आगे बढ़कर कार्य किया और जेल गईं। आपके प्रमुख काव्य संग्रह 'अंकुरिता, माँ, सुहागिन तथा पुनर्मिलन हैं। आपने अवधी लोक गीतों का एक संग्रह 'सुहाग गीत' के नाम से किया है। आपने 'अमर ज्योति' नाम का महा-काव्य भी लिखा है। आजकल पांडिचेरी में रहकर आप योगी अरविन्द के महाकाव्य 'सावित्री' का हिन्दी अनुवाद कर रही हैं।

आपकी कविता अधिकांश छायावादी कवयित्रियों से भिन्न है क्योंकि उसमें रहस्यात्मक अनुभूति का पुट अधिक है। एक ओर जहाँ आपके गीतों में संगीततत्त्व की प्रधानता है वहीं उनमें ऊँची उड़ान भी है। यह उड़ान मनुष्य को मुक्ति दिलाने में सहायक बनना चाहती है। यही कारण है कि आपकी कविताएँ मीराबाई की कोटि में रक्खी जाती हैं। सीधा सादा जीवन बिताने में आपकी अतीव आस्था रही है इसीलिए पांडिचेरी आश्रम में आत्मशुद्धि एवं ज्ञानार्जन के लिए प्रवास कर रही हैं। कवि सम्मेलनों में वे अपनी कविताएँ अत्यन्त तन्मयता से सुनाती रही हैं। प्रयाग को ही ऐसी कवयित्री के कार्य क्षेत्र होने का सौभाग्य प्राप्त है।

सुमित्रा कुमारी सिनहा—विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए एवं सामाजिक कार्य में व्यस्त रहकर भी आप हिन्दी की सेवा में दत्तचित्त रही हैं। कविता के अतिरिक्त आपने कहानियाँ, रूपक, तथा बाल साहित्य का भी प्रणयन किया है। आपकी प्रमुख काव्य रचनाएँ, विहाग, आशा पर्व, पंथिनी, प्रसारिणी, तथा बोलों के देवता हैं। आपने अवधी में भी कविताएँ लिखी हैं जो 'माटी का न्योता' नाम से संग्रहीत हैं। आजकल आप 'आकाशवाणी लखनऊ' में कार्य कर रही हैं।

आपके गीतों में आशा और आस्था मुखरित हुई है कहीं कहीं उनमें दुःख की अभिव्यंजना भी मिलती है जैसे—

आज रो रो कर सुनाऊँगी कथा की मैं कहानी।
तर्क की निष्ठुर हँसी हँस ले भले ही विश्व ज्ञानी।

★ ★ ★

कुसुम गान अब नहीं सुहाते,
कैसी नन्दन की पद लाली।
नक्षत्रों सी नख उजियाली,
कितने छाले फटे पाँव के।

फूट फूट कर भर भर आते,

आप 'निराला' जी के संसर्ग में भी आई हैं। आपके गीत सरस एवं उनकी भाषा छायावादी युग की सहज मिठास से ओत-प्रोत हैं। बाल्यकाल से ही काव्य का सृजन करती हुई अब भी आप सक्रिय हैं। आपका कंठ सुरीला है जिससे कवि सम्मेलनों में आपको सफलता मिलती रही है।

इन प्रमुख कवयित्रियों के अतिरिक्त हिन्दी के काव्य उपवन में और भी नयी नयी कलिकायें खिली और अपनी सुषमा एवं सुगन्ध फैलाती रही हैं। इनमें हीरा देवी चतुर्वेदी, चन्द्रमुखी ओझा सुधा, विद्यावती मिश्र, शान्ति मेहरोत्रा, शकुन्तला शर्मा, शकुन्तला सिरोठिया, पद्मा सुधि, रमा सिंह, कीर्ति चौधरी शकुन्तमाथुरआदिप्रमुख हैं। हीरा देवी चतुर्वेदी की प्रथम कविता सन् १९३१ में उत्कंठा नाम से प्रकाशित हुई थी। इनका प्रथम कविता संग्रह मंजरी है। इसके अतिरिक्ति नीलम, मधुवन, तथा मधुमास कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

राजस्थान में जन्म लेकर प्रयाग में वास करने वाली श्री सिरोठिया जी की प्रथम रचना सन् १९३३ की 'सुधा' में छपी थी। इसके बाद 'दीप' 'सुधि के स्वर' तथा 'चाँद इतना हँसा' कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं। ये चित्रकर्त्री भी हैं। शिशुओं का अध्यापन करने के कारण तथा उनके मनोविज्ञान से परिचित होने के कारण इन्होंने बच्चों के लिए लोरियाँ भी लिखीं है। इनके काव्य का प्रमुख गुण है स्वाभाविक प्रेम व्यंजना।

प्रयाग की एक अन्य कवयित्री जिन्हें गीत लिखने में सफलता मिली है श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' जी हैं। इनका कंठ अत्यन्त सुरीला है ये प्रायः कवि सम्मेलनों में भाग लेती रहती हैं। इनके गीतों का एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

विद्यावती मिश्र ने १९४८ से कविता करनी प्रारम्भ की। ज्योति, श्रद्धा और प्रतीक्षा आदि इनके कविता संग्रह हैं। वैधव्य जीवन बिताते हुए भी ये साहित्य की सेवा मनोयोग से कर रही हैं।

"पाप पुण्य के दृढ़ बन्धन में मुझे न बाँधो"
अथवा
"मिट्टी को भगवान बना करके मानूँगी"

आदि इनके गीत बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं।

शान्ति मेहरोत्रा भी सिरोठिया जी की भांति राजस्थान में जन्मीं किन्तु विवाहित होने पर प्रयाग मेंही रहने लगीं। ये कवि सम्मेलनों तथा रेडियो में भाग लेती रहती हैं। शान्ति मेहरोत्रा ने सन् १९४२ से कविता प्रारम्भ की। इन्हें 'रेखा' नामक काव्य ग्रंथ पर सेक्सरिया पुरस्कार भी मिल चुका है। शकुन्त माथुर—पद्मा 'सुधि', सुषमा मालवीय, वीणा त्रिवेदी, रमा सिंह, कीर्ति चौधरी आदि की कविताएँ पत्र पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। इनकी प्रवृत्ति नई कविता की ओर जान पड़ती है। इनके अतिरिक्त और न जाने कितनी कवयित्रियाँ अभी विकास पाने को उन्मुख हैं। इस प्रकार देखा जा सकता है कि अधिकांश कवयित्रियों का सम्बन्ध प्रयाग से रहा है। इन्होंने भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा की दिशा प्रदान की है और प्राचीन रूढ़ियों को भी तोड़ा है। इन्होंने काव्य क्षेत्र में ऐसे अंग की पूर्ति की है जो पुरुष कवियों के लिए कठिन था। नारी जातिगत मनोभावों का चित्रण आधुनिक युग का एक आवश्यक अंग है। इन कवयित्रियों की रचनाओं में नारी के विविध मनोभावों की झाँकी मिलेगी। इनमें से कुछ देश-प्रेम की अग्नि में जलती रहीं तो कुछ रहस्यात्मक अनुभूति में ही सन्तोष प्राप्त करती रही हैं। शेष कवयित्रियाँ सम्पूर्ण मानव की परिभाषा को मुखर करना चाहती है। इन सभी कवयित्रियों में महादेवी जी ही सर्वोपरि कही जा सकती हैं। क्या भाषा, क्या भाव, क्या शैली सबों में उन्होंने अभूत पूर्व मौलिकता दिखाई है।

हिन्दी काव्य क्षेत्र में कवयित्रियों का उदय अधिक प्राचीन नहीं। इसलिए भविष्य में इनसे बड़ी बड़ी आशायें की जा सकती हैं।



'बंग काव्य की कवयित्रियाँ'

गीता बनर्जी

बंग की महिला कवयित्रियों के विषय में पूर्ण विवरण लिपिबद्ध करते समय काल की व्यापकता एक प्रकांड बाधा के रूप में सामने आ उपस्थित होती है। फिर भी काव्य तथा कवयित्रियों की आलोचना करते समय बंग काव्य के विभिन्न युगों की एक झलक न देख लेने से भूमिका की सावलीलता नहीं रह सकती। साहित्य को समाज का जीवन दर्पण कहा जाता है। समय की छाया समकालीन लेखों में पड़े बिना नहीं रह सकती। इसलिए आलोचना करते समय इतिहास की पृष्ट भूमि का उल्लेख होना अनिवार्य है।

अष्टादश तथा ऊनविंश शताब्दी के प्रथमार्ध में आदर्श शून्य, मानवता बोधहीन, स्थूल तथा अश्लील ऐहिकता में डूबे बंगला काव्य की मानो शेषदशा आ उपस्थित हुई थी। तत्कालीन बंग काव्य मानो प्राचीन भारतीय साहित्य की महान तथा सुन्दरतम सृष्टि से परिचयहीन हो गया था। बंग संस्कृति तथा साहित्य से मानो उनका योग-सूत्र छिन्न हो गया था। एक अंधकार आवर्त में मानो वह डूब गया था।

नवाबी युग का अवसान हुआ। अपना ज्ञान-भंडार ले अंगरेज ने भारत की भूमि में पदार्पण किया। क्रमशः वणिक का तुला-दंडराज दंड में रूपान्तरित हुआ। पाश्चात्य ज्ञानालोक ने प्राच्य देश को चौंधिया दिया अपने ज्ञान के प्रकाश से। और इसी समय भारतीय सामाजिक, राजनीतिक तथा अर्थनैतिक युग का आमूल परिवर्तन साधित हुआ। पाश्चात्य ज्ञान तथा चिन्ता-धारा से लोग जितने प्रभावित होते गए, उतना ही अधिक वे मन ही मन बिगड़ते गए अंगरेजो कुशासन से, अंगरेजी सरकार के अत्याचार से, और इसी मनोभाव ने 'गदर' का जन्म दिया।

इसी 'गदर' ने बंग जीवन में एक नव शक्ति की सूचना दी, जातीय जीवन में एक आकांक्षा की सृष्टि की। विद्रोह अवसान होने पर रानी लक्ष्मीबाई, तातिया टोपे तथा वीर कुँवरसिंह की वीर गाथाओं ने नव बंग के स्वदेशाभिमानी चित्त को स्पर्श किया, जिसके फलस्वरूप १८५८ में रंगलाल बन्दोपाध्याय जी की 'पद्मनी उपाख्यान' प्रकाशित हुई। इसी काव्य को नवीन वंग काव्य का सूत्रपात माना जाता है। रंगलाल जी ने कहानी प्रधान काव्य का नूतन रूप दिया। माईकेल मधुसूदन के स्पर्श से इसका गोत्रान्तर हुआ। इन्होंने गीति कविता का भी जन्मान्तर साधित किया, और विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ने इसे अलोक सामन्य सौन्दर्य प्रदान किया।
'लिरिक' हर युग की प्रधान साहित्य वाहक नहीं बन सकती। जैसे कि 'एपिक' नहीं बन पायी। अन्यान्य काव्य वाहकों के साथ लिरिक एक परिवार भूक्त तो बेशक हुई, लेकिन उस परिवार का प्रधान नहीं बन पायी।

भारतचन्द्र जी ने अष्टादश शताब्दी में बग काव्य के अधः पतन को रोकने की भरसक चेष्टा की थी। उन्हें कई क्षेत्रों में तो अवश्य सफलता मिली, लेकिन कवियालों ने उनकी प्रचेष्टाएँ मिट्टी में मिला दीं। उनविंश शताब्दी में ईश्वर गुप्त जी ने इन काव्यों की तीव्र समालोचना कर समाज की चेतना पर कोड़ जमाया। इस प्रचेष्टा में उन्हें सहायता मिली रंग लाल वन्द्योपाध्याय, बिहारी लाल चक्रवर्त्ती, हेमचन्द्र बन्दो-

पाध्याय, नवीन चन्द्र सेन, माईकेल मधुसूदन दत्त, बंकिमचन्द्र आदि महाकवियों से।

बंग की महिला कवयित्रियों ने भी इन महाकवियों का पथ अपनाया। जिनमें से कवि मानकुमारी, गिरीन्द्र मोहिनी, कामिनी राय आदि कवयित्रियों का नाम बंग साहित्य में शीर्ष स्थानीय माना जाता है।

कवि ईश्वर गुप्त सम्पादित 'प्रभाकर' पत्रिका में ऊनविंश शताब्दी के द्वितीयार्ध में कतिपय महिला कवयित्रियों की रचनाएँ प्रकाशित हुईं। इसके सिवाय अन्य पत्रिकाओं में भी महिला कवयित्रियों की बहु रचनाएँ यथारीति प्रकाशित होती रहीं। जिनमें से निम्नलिखितों नाम उल्लेखनीय है :— ठाकुरानी दासी, जोगमाया देवी, राधारानी लाहिड़ी, निरोदा मित्र, रमा सुन्दरी घोष, लक्ष्मीमणि, स्वर्ण प्रभा बसु, मधुमति गंगोपाध्याय, उपेन्द्र मोहिनी, विन्ध्यवासिनी देवी, कामिनी देवी, जयकाली गुप्त, स्वर्णलता देवी, आ० म० बसू, रघुमणि देवी आदि। इनके सिवाय कई महिलाओं ने छद्म नाम से भी अपनी अपनी रचनाएँ प्रकाशित कीं जिनमें से उल्लेखनीय नाम ये हैं :—"बारासातास्थ कोन भद्र कुलबाला,' 'वर्धमानस्थ कोन भद्र कुलबाला', दत्त पुकुरस्थ कोन भद्र कुल बाला', 'जगद्दल वासिनी-चट्टोपाध्याय', 'दोयार उत्तरपल्ली निवासिनी कोन महिला', 'टाकास्थ कोन रमणी' इत्यादि।

कवि रंगलाल, मधुसूदन, बिहारी लाल की भाँति जो महिला कवयित्रियाँ वंग काव्य साहित्य में स्वकीय रचना शैली के लिए भास्वर हैं एवं आज भी जिनके ग्रन्थों के अनेक गुणग्राही पाठक हैं, उनमें से कामिनी सुन्दरी, स्वर्ण कुमारी देवी, प्रसन्नमयी देवी, गिरीन्द्र मोहनी दासी, कामिनी राय, विराज मोहिनी दासी, लज्जावती बसु आदि प्रमुख हैं। इनको छोड़ और भी सैकड़ों कवयित्रियों की रचनाएँ तथा काव्य ग्रन्थादि आज तक मिलते आ रहे हैं। किन्तु इन कवयित्रियों में से, स्थानाभाव हेतु, मैं केवल मुष्टिमेओं के बारे में ही आलोचना कर पाऊँगी।

ऊनविंश शताब्दी के मध्य भाग में प्रथम जिस महिला ने काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया उनका शुभनाम **कामनी सुन्दरी देव** है। सन १८६६ ई० में 'द्विजतनया' छद्म नाम से कामनी सुन्दरी का काव्य-ग्रन्थ 'ऊर्वशी नाटक' प्रकाशित हुआ था। आप ही प्रथम महिला नाट्यकार मानी जाती हैं। आपकी द्वितीय पुस्तक 'बाल बोधिका' १८६८ ई० में प्रकाशित हुई।

अंगरेजी शिक्षा विस्तार के प्रथम युग में जो महीयसी महिला बंग साहित्य की चर्चा करके यशस्विनी बनी एवं जिनकी प्रतिभा बंग के बाहर भी फैली वह विदुषी स्वर्ण कुमारी देवी स्वर्गीय महार्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की सुपुत्री थीं। आपका जन्म सन् १८५५ ई० में हुआ। स्वर्णकुमारी देवी का नाम गद्य साहित्य में ही अधिक प्रसिद्ध है। किन्तु आप कवयित्री भी थीं। उनकी रचित काव्य पुस्तकावली में 'वसन्त उत्सव' (गीति नाट्य) १८७९, गाथा' १८८० ई०, 'विवाह उत्सव' (गीति नाट्य) १८९२ ई०, 'कविता ओ गान' (कविता-संकलन) १८९५ में ई० में प्रकाशित हुए। इनको छोड़ आपने बहुत से गद्य ग्रन्थ की भी रचना की थी।

स्वर्ण कुमारी देवी का 'गाथा' वंग साहित्य का एक अनोखा काव्य-ग्रन्थ है। प्रेम की व्यर्थता तथा विषादमय चित्रांकन में कवि ने अपूर्व सिद्धहस्तता दिखाई है। आपने एक विशेष कौशल अपनाया है। इन रचनाओं में कवि विहारी लाल के आदर्श का प्रभाव मिलता है। बंग काव्य साहिव्य में आपने तूफान और घटा के जो सजीव चित्रण किए हैं वे वास्तविक ही सराहनीय हैं। सरल वाक्यों द्वारा भावों के सुन्दर प्रकाश स्वर्णकुमारी की खास विशेषता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 'जगत तारिणी स्वर्ण पदक' प्रदान कर आपको सम्मानित किया है। आपका देहान्त सन १९३२ ई० में हुआ।

समसामयिक कवयित्री प्रसन्नमयी देवी का नाम बंग साहित्य के पाठकों को भली भाँति मालूम है। जन्म सन् १८५७ ई०। आपकी 'आधो-आधो भाषिणी' (काव्य) १८७० ई० प्रकाशित हुई। आपकी रचना 'वनलता' (काव्य) ने विशेष प्रशंसा प्राप्त की। इनको काव्य जगत् में सुप्रतिष्ठित किया 'नीहारिका' (कविता-संकलन) ने। १८८४ ई० में यह संकलन प्रकाशित हुआ। इनके सिवाय प्रसन्नमयी देवी कई गद्य ग्रंथों की भी रचयिता हैं।

प्रतिभाशालिनी कवयित्री गिरीन्द्र मोहिनी देवी ने १८५८ ई० में जन्म ग्रहण किया। 'जनैक बंग महिला कर्तृक लिखित' इस छद्म नाम से गिरीन्द्र मोहिनी की दो कविता पुस्तकें 'भारतकुसुम' तथा 'कवितार हार, प्रकाशित हुई थीं। 'कवितार हार' पुस्तक को अधिक जन समादर मिला था। सुप्रसिद्ध दीनबन्धु मित्र महोदय ने 'कवितार हार' पुस्तक की उच्च प्रशंसा की थी। तत्कालीन अंगरेजी पत्रिका में उक्त पुस्तक की प्रशंसा देख नारी हितैषिनी 'मेरी कार पेन्टर' ने गिरीन्द्र मोहिनी से साक्षात्कार की इच्छा प्रकट की थी।

गिरीन्द्र मोहिनी के तृतीय ग्रन्थ 'अश्रुकण' ने उन्हें काव्य साहित्य में अमर बना दिया। पति के देहान्त के बाद गिरीन्द्र मोहिनी के हृदय में जो शोक-सिन्धु उद्वेलित हुआ था 'अश्रु-कण' में उसी को भाषा का रूप मिला। आपको कविताएँ विश्व साहित्य के अन्तर्भुक्त हैं। इनकी हर कविता में वेदना का सुर प्रकाशित है। अन्तर के अन्त: स्थल से स्वत: निसृत प्रवाह में जो प्राण रस का स्पर्श रहता, जो तेज तथा शक्ति निहित रहती है। वह मानव मन पर अधिक प्रभाव विस्तार करती है। 'अश्रुकण' के बारे में कवयित्री कहती हैं :—

'ए नय से अश्रु रेखा,
मानान्ते नयन कोणे,
भारिते चाहितना
देखा हले फूल बने।'
'ए शोकाश्रु !
हृदयेर उन्मत्त आह्वान।
ए शोकश्रु !
जीवनेर उन्मान्त आलिंगन।'

गिरीन्द्र मोहिनी देवी ने विभिन्न श्रेणियों की कविता रचना की हैं। प्रकृति के अपूर्व सौन्दर्य, आकाश, पर्वत, समुद्र तथा ग्राम्य रूप के चित्र उनकी कविताओं में जैसे मिलते हैं वैसे ही वात्सल्य-रस के मधुर चित्र भी बड़े सुन्दर ढंग से आपकी कविताओं में परिस्फुट हैं।

गिरिन्द्र मोहिनी देवी ने 'कविताहार' (काव्य), 'भारत कुसुम' (काव्य), 'अश्रुकण' (काव्य), 'आभाष' (काव्य), 'संन्यासिनी व मीराबाई' (ऐतिहासिक नाट्य काव्य), 'शिखा' सिन्धु गाथा' (काव्य) आदि कविता पुस्तकें तथा 'अनैक हिन्दू महिला की पत्रावली' आदि गद्य ग्रन्थ लिखे हैं।

ऊनविंश शताब्दी के श्रेष्ठ महिला कवयित्री का आसन कामिनी राय को प्राप्त है। आप सिर्फ महिला कवयित्रियों में ही नहीं बल्कि वंग साहित्य में भी विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी हैं।

सन् १८६४ ई० में १२ अक्टूबर को बाखर जंग जिले के वासंडा ग्राम के एक मध्यवित्त वैद्य परिवार में कामिनी राय का जन्म हुआ। आपके पिता स्वनामधन्य ग्रन्थकार चंडी चरण सेन हैं। सोलह वर्ष की अवस्था में आप प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण हुईं। प्रवेशिका परीक्षा में आपने बंग भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में ग्रहण किया था। इस परीक्षा में आपने विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा में द्वितीय स्थान अधिकृत किया। दो वर्ष बाद आप B. A. परीक्षा में उत्तीर्ण हुईं इस परीक्षा में आपको संस्कृत भाषा में द्वितीय श्रेणी का 'ऑनर' मिला।

सन् १८८६ ई० में कामिनी वेथुन विद्यालय में शिक्षिका के पद पर नियुक्त हुईं। आपकी रचित 'आलोछाया' सन् १८८९ ई० में प्रकाशित हुई।

सन् १८९४ ई० में स्टाटूटरी सिविलियन केदार नाथ राय से कामिनी का विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के बाद कामिनी राय ने सिर्फ 'गुंजन' नाम की एक कविता-पुस्तक प्रकाशित की। विवाहित जीवन में आपने पत्नीत्व तथा मातृत्व पूरा पूरा निभाया। लेकिन थोड़े ही दिनों के बाद उनके जीवन में दु:ख की काली बदरिया छा गई। सन् १९०० ई० में इनकी एक सन्तान की मृत्यु हुई। सन् १९०८ ई० में घोड़े की गाड़ी उलट कर घायल होने के कारण आपके पति का देहान्त हो गया। सन् १९२० ई० में कन्या लीला तथा पुत्र अशोक की मृत्यु हुई। इस शोक ने आपके हृदय को चूर्ण विचूर्ण कर डाला था। इसी समय आपका 'अशोक संगीत', जो एक पुत्र शोकातुरा जननी का अपूर्व शोकोद्गार है, प्रकाशित हुई। इस समय आप समाजिक तथा धर्म सम्पर्कित कार्यों में ही

अधिक समय व्यतीत करती थीं । काव्य रचना में भी आपने पुनः ध्यान लगाया निम्नलिखित रचनाएँ आपकी साहित्यिक देन हैं :—

'आलोछाया' (काव्य), इसके अष्टम संस्करण से ही इसकी लोकप्रियता का पता चलता है । निर्माल्य (काव्य), पौराणिकी (काव्य), माल्य ओ निर्माल्य (काव्य), अम्बा (नाट्य काव्य), अशोक संगीत (सनेट गुच्छ), ठाकुमार चिठि, सितिमा (गद्य नाटिका), श्राद्धिकी (जीवनी), दीप ओ धूप (काव्य), जीवन पथे (सनेट गुच्छ), गुंजन (शिशु कविता), धर्म पुत्र (गल्प) ।

कामिनी राय की कविताओं के प्रधान गुण यह हैं कि यह अस्पष्टता वर्जित, जटिलता शून्य, स्वाभाविक छन्द-सौन्दर्य पूर्ण तथा अप्रयोजनीय चिन्ताएँ रहित हैं । इनकी कविताएँ लघु, स्वच्छ और निर्मल हैं । तथा चटुलता और असंलग्नता दोष से मुक्त हैं । 'आलोछाया' की कविताएँ भाव सम्पदा से ओत-प्रोत हैं । इसमें विश्व साहित्य का अपूर्व विकास मिलता है । इनमें ऐसी अनेक कविताएँ हैं जो कवि गुरू रवीन्द्रनाथ की अनेक विख्यात कविताओं से पूर्व रचित तथा प्रकाशित हुई हैं ।

गीति कविता के सहज, सरल, करुण तथा मधुर सुर लहरी जैसे आपकी अनेक कविताओं के प्राण स्वरूप हैं, वैसे ही उनमें स्वदेश-प्रेम, समाज सेवा तथा प्रणय मुग्ध नारी-हृदय के रहस्य मय चित्र भी मिलते हैं । आपकी सभी रचनाएँ मानव हृदय-के चिरन्तन सत्यपर प्रतिष्ठित हैं । कवयित्री कहीं तो 'यौवन तपस्या' में विभोर हैं तो कहीं 'मुग्ध प्रणय' में विह्वल हैं । आप कहती हैं :—

'आमि यौवनेर लागि तपस्या करिब घोर,
काले ना करिबे जयजीवन बसन्त मोर;
जीवनेर अवसान होक् जेई दिन हबे;
यावत जीवन मम तावत यौवन रबे;
एई आमि करियाछि पन ।

समाज की निपीड़िता नारियों की वेदना से कवयित्री का हृदय विदीर्ण हैं । पतिता नारियों के लिये आपकी जो भावनाएँ हैं उसकी तुलना विश्व-साहित्य में दुर्लभ है । पतिता नारियों के प्रति आपने जो सहानुभूति प्रकट की है, जिस करुण सुर में, प्रीतिपूर्ण हृदय से उनका आह्वान किया है । उसमें बाई बेल की अमर उक्ति 'पाप को घृणा करो पापी को नहीं' की सम्पूर्ण झलक मिलती है ! 'आलो ओ छाया' में कवि ने लिखा है :—

'पतित मानवतेर नाहि किगो ए संसारे
एकटि व्यथित प्राण, दुई अश्रुधार ?
पन्थे पड़े' असहाय, पदे तारे दले जाय,
दुखानि स्नेहेर कर नाहि बाड़ाबार ?'

★ ★ ★

'तोमादेर बाति दिया, प्रदीप ज्वालिया निया,
तोमादेरई हाते धरि होक् अग्रसर
पंकमाझे अंधकारे फेले यदि जाओ तारे,
आँधार रजनी तार रबे निरन्तर ।'०००

अंगरेज कवि वार्णस को छोड़ ऐसी वेदनापूर्ण करुण ऊच्छ्वास और दूसरे किसी कवि की कविता में नहीं मिलती है ।

आलो ओ छाया' में कवि की वाणी त्याग, साहस त था मनुष्यत्व का ज्ञापक है । उन्होंने लिखा है :—

'परेर कारणे स्वार्थे दिया बलि
ए जीवन मन सकलि दाओ,
तार मत सुख कोथाओकि आछे ?
आपनार कथा भूलिया जाओ ।'

कवि का स्वदेश प्रेम वर्षा की उच्छ्वसित जल धारा की भाँति प्रवाहित थी । आपकी कविता 'मा आमार' बंग साहित्य की एक अमूल्य सम्पदा है । कामिनी राय जब विलायत में थीं तब वहाँ एक भद्र महोदय ने उनसे कहा था कि, आप की 'माँ आमार' कविता ही मेरे जीवन का आदर्श है । कविता की पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :—

'जेई दिन जा चरणे डालिदिनु ए जीवन,
हासि, अश्रु सेई दिन करियाछि विसर्जन ।
हासिबार काँदिवार अवसर नाहीं आर,
दुखिनी जनम भूमि,—माँ आमार, माँ आमार ।'

'अनल पूषिते चाहि आपनार हिया माझे
आपनारे अपरेरे नियोजिते तब काजे,
छोटो खोटो सुखदुख—के हिसाब राखेतार
तुमि जबे चाहो काज—माँ आनार, माँ आमार।'

'गुंजन' में आपके जननी हृदय का एक मधुर चित्र मिलता है। कामिनी राय के बारे में लिखने के लिए जो विस्तीर्ण स्थान की आवश्यकता है वह इस छोटे से निबन्ध में सम्भव नहीं है। सन् १९३० ई० में प्रकाशित 'जीवनरे पथे' (सनेट गुच्छ) कामिनी राय की अन्तिम रचना है। इस पुस्तक में उनके जीवन के सुख दुख की कहानियाँ मिलती हैं। कई वर्ष पहले कलकत्ता विश्व विद्यालय ने उन्हें 'जगतारिणी' पदक प्रदान किया है। सन १९३३ ई० के २७ सितम्बर को कामिनी राय इस मरलोक को छोड़ अमरलोक चली गईं।

कामिनी राय के साथ बंग काव्य साहित्य में मानकुमारी बसु का नाम भी बहु-परिचित है। आपकी कविताओं की विशेषता यह है कि आपके कवि मन ने संकोर्ण गृह तथा व्यक्तिगत भावनाओं से विमुक्त हो प्रकृति-जगत् में स्वच्छन्द विहार किया। संस्कारान्ध समाज के निर्मम शासन के अशुभ प्रभाव से युग के कुलीन वंश की कुमारी कन्याओं ने अपने जीवन में जो मृत्यु यातनाएँ अनुभव की उसका सजीव चित्रण आपकी रचनाओं में ही प्राप्त किया जाता है। हिन्दू बाल-विधवाओं की चिरन्तन मर्म वेदनाओं का हृदयग्राही रूप पतिहीना अंगरेजी प्रभाव से प्रभावित महिलाओं पर आपने अनेक व्यंगात्मक रचनाएँ की हैं। आपकी समाज चिन्तन की गहराई के लिए तत्कालीन बंग साहित्य के कवि समाज में आपका एक विशिष्ट आसन है।

मधुसूदन, हेमचन्द्र तथा नवीन चन्द्र की योग्यशिष्या मान कुमारी के काव्य में स्वदेश प्रेम के उद्दीप्त रूप उल्लेखनीय है। 'साधेर मरन', 'मायेर साध' आदि कविताओं में जिस आवेगमय स्वदेश-प्रीति का स्वच्छन्द प्रकाश मिलता है वह वास्तविक सराहनीय है। आपकी काव्य प्रतिभा मुख्यतः गीति कविताश्रयी थी। मानकुमारी बसु बंग साहित्य के महाकवि मधुसूदन की भ्रातृष्पुत्री थीं। आपका जन्म सन १८६३ ई० तथा करीब ८१ वर्ष की अवस्था में १९४३ ई० में आपका देहान्त हुआ।

केवल बंग भाषा में ही नहीं बल्कि विदेशी भाषा में भी जिन बंग कवयित्रियों ने कविता लिखकर सम्मान प्राप्त किया उनमें से सरोजिनी नायडू तथा तरुदत्त का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। बंग की प्रतिभाशालिनी कवयित्रियों में तरुदत्त का नाम चिरस्मरणीय है। आपने यद्यपि अंगरेजी भाषा में कविता रचना की थीं फिर भी भारतीय संस्कृति तथा काव्य के प्रति आपकी असाधारण श्रद्धा थी। सन १८६५ ई० में आपका जन्म कलकत्ते के दत्त परिवार में हुआ। सन १८६९ ई० में आप यूरोप भ्रमण को गई थीं। तरुदत्त अंगरेजी तथा फ्रांसीसी भाषा की विदुषी थीं। फ्रांस में रहते समय तरु तथा उनकी बहन अरु दत्त ने उत्कृष्ट फ्रांसीसी तथा अंगरेजी भाषा की शिक्षा प्राप्त की थी। तरुदत्त रचित कविताओं को फ्रांस में विशेष समादर मिला था। १८७३ ई० में स्वदेश प्रत्यावर्त्तन के बाद तरु संस्कृत भाषा तथा साहित्य के ज्ञान प्राप्त करने पर तुल गई। तरु की कविताएँ उन दिनों का प्रसिद्ध अंगरेजी मासिक पत्र 'बेंगल मेगजिन' में नियमित रूप से प्रकाशित होती थीं। आपकी पुस्तक 'A Sheaf Gheaued in French Fields है। फ्रांसीसी कवि और औपन्यासिक M. Andra Theuriot एवं विख्यात अंगरेज समालोचक Mr. Edmunel Gosse ने इस पुस्तक की उच्छ्वसित प्रशंसा की है। तरुदत्त के 'Ancient Ballads and Legeands of Hindusthan' नामक ग्रन्थ में ध्रुव, बट्टु (एकलव्य), प्रह्लाद, सीता, सावित्री आदि की गाथाएँ अतुलनीय काव्य सौन्दर्य मंडित हैं। 'जोगाद्या' कविता भी अति सुन्दर है। कवि सत्येन्द्र नाथ दत्त ने इनकी कविताओं का अनुवाद किया है। सन १८७७ ई० में ३० अगस्त को तरु दत्त इस दुनिया से हमेशा के लिए चल बसीं। सरोजिनी नायडू की कुछ कविताएँ स्वयं रवीन्द्र नाथ ने बंग भाषा में अनूदित किया है। सरोजिनी नायडू भी एक बंग महिला थीं। इनकी काव्य प्रतिभा से पाठक भली भाँति परिचित हैं।

राधारानी देवी बंग साहित्य की एक स्वनाम धन्य कव-

यित्री हैं। आपने 'अपराजिता देवी' छद्म नाम से भी बहुत रचनाएँ की हैं। राधारानी देवी नाम से आप जब लिखती थीं उसकी रचना शैली भिन्न थी तथा 'अपराजिता देवी' नाम की रचनाएँ भी भिन्न शैली की लिखी जाती थीं। तत्कालीन पाठक समाज से यह भेद छिपा नहीं कि राधारानी देवी तथा अपराजिता देवी एक ही कवयित्री हैं। अपराजिता देवी ने राधारानी देवी को अपना काव्य ग्रन्थ उत्सर्ग कर रहस्य को और भी घनीभूत बना दिया। सन् १९०५ ई० में आपने जन्म ग्रहण किया। सन् १९२३ ई० से आपकी रचनाएँ विभिन्न प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। इन दिनों आप राधारानी देवी नाम से ही रचनाएँ किया करती थीं। रवीन्द्रनाथ और शरत चन्द्र का साहचर्य तथा उनका अपार स्नेह लाभ इनके कवि जीवन की एक सार्थकता है। आप कवि नरेन्द्र नाथ देव की पत्नी हैं। राधारानी देवी की साहित्यिक कृतियाँ हैं :—'लीला कमल' 'वन विहगी', 'मिलनेर मन्त्रमाला'। आपकी रचनाओं में जो वैचित्र्य है, भाव, प्रणय, सौन्दर्य, दुख, वेदना, हर्ष आदि के जो कल-कल्लोल हैं, उनकी आलोचना के लिए सूक्ष्म पर्य-वेक्षण शक्ति की आवश्यकता है।

'अपराजिता देवी' इस छद्म नाम से आपने जो कविताएँ लिखीं हैं उसकी काव्य समालोचना इतने अल्प स्थान में सम्भव नहीं है। उनके बारे में सिर्फ इतना ही कहूंगी कि रवीन्द्रेर काव्य-साहित्य में स्वकीयता का गौरव यदि किसी कवयित्री को प्राप्त होना है तो वह नाम अपराजिता देवी का है। साहित्यिक और साहित्य रसिक समाज में अपराजिता देवी के अभ्युदय ने एक विपुल विस्मय, आनन्द तथा कौतूहल की सृष्टि की थी। अपराजिता देवी की रचना की स्वकीयता, सहज नैपुण्य तथा वैशिष्ट के बारे में प्रशंसाकर रवीन्द्र नाथ ने जो लिखा है उसका थोड़ा सा अंश अनूदित कर मैं पाठकों के सामने उपस्थित करती हूं।"तुम्हारी कविताएँ मुझे अच्छी लगीं। तुम्हारी रचना की भाषा तथा कौशल ने तुम्हारी स्वकीय शैली को सम्पूर्ण रूप से अपनाया है। तुम्हारे काव्य में तितली आई है, उसके पंख के रंगबिरंगी छटाएं देखीं।'

★ ★ ★

'तुम्हारे लेखन-शैली ने जो रंग, जो कटाक्ष, हसी की कल-कल्लोल, भाषा की जो विचित्र नाट्य लीला दर्शाई—वग साहित्य के किसी अन्य कवि के कलम से ऐसी चंचलता की झलक अब तक नहीं उभर पाई।"

★ ★ ★

'नारी जगत की दैनन्दिन जो घटनाएँ आलोक की चमक दमक फैलाती हैं; जिन सुखद स्मृति की छायाएँ मेघ सी उड़ती फिरती हैं, उसकी ध्वनि तथा छवि का आश्चर्यजनक सहज नैपुण्य को तुम्हारी रचना में लीलायित होते देखा। हमारे साहित्य में इसकी रंगिमा और भंगिमा अपूर्व है। तुम्हारी भाषा से तुम्हारी लेखनी का परिहास कुशल सखीत्व को देखकर विस्मय मानता हूं।'

राधारानी देवी ने 'अपराजिता देवी' छद्म नाम से चार काव्य ग्रन्थों की रचना की है :—'बूकेर बीना', 'आंगिनार फूल', 'पुरवासिनी' तथा 'विचित्र रूपिनी'।

'बूकेर बीना' पुस्तक में कवयित्री ने नारी के नव परिणित जीवन की नाना घटनाएँ, चित्र एवं अनुभूतियों को अत्यन्त सजीव रूप से छन्दों में चित्रित किया है। 'आंगिनार फूल' पुस्तक में नारी चरित्र और नारी समाज की विभिन्न घटनाएँ अति सुन्दरता से वर्णित हुई हैं। 'पुरवासिनी' काव्य ग्रन्थ में बंग नारी के भिन्न भिन्न आत्मीयता तथा विभिन्न वयः काल की विचित्र अनुभूतियाँ विशेष रूप से काव्य में सजीव हैं। 'पुरवासिनी' में नारी की प्यारी कन्या मूर्त्ति, स्नेहमयी अग्रजा मूर्ति, आनन्द चंचला अनुजा मूर्त्ति, परिहास निपुणा भातृजाया मूर्त्ति, स्नेहमयी जननी मूर्त्ति, सखि, प्रिया से लेकर कर्कश भाषिणी दासी तक को 'पुरवासिनी' में स्थान मिला है। अपराजिता की अन्तिम पुस्तक 'विचित्र रूपिनी'—यह ग्रन्थ बंग साहित्य में विशेष आलोचना योग्य है। इसमें कवयित्री ने नायिका के आठ भेदों का अपूर्व वर्णन किया है। इनके सिवाय इसमें पूर्व राग, मिलन, विरह आदि अवस्थाओं के वैष्णव काव्य में वर्णित सारे लक्षण सहित वर्त्तमान काल के वातावरण में अति सुन्दर रूप से प्रतिफलित किया है। कथा सम्राट् शरतचन्द्र का अधूरा उपन्यास 'शेष परिचय' को अत्यन्त कुशलता से आपने सम्पूर्ण किया है।

विंश शताब्दी के मध्य भाग के बंग काव्याकाश के एक उज्ज्वल ज्योतिष्क का नाम है वाणी राय । बलिष्ठ लेखनी की महिमा के लिए ही वाणीराय बंग साहित्य में अमर रहेंगी । इनकी रचना शैली तीर की भाँति, बरछे की नोक की भाँति, काँटे की भाँति तीखी है । इनकी लेखनी फूल सी नहीं बल्कि विद्युत की तेज रेखाओं सी हैं । 'जूपीटर' आपका काव्य संग्रह है । गद्य साहित्य में भी आपका दान सराहनीय है ।

सन १९६० ई० में दिल्ली विश्वविद्यालय ने आपको 'नरसिंह दास अगरवाला पुरस्कार' से सम्मानित किया तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इन्हें 'लीला पुरस्कार' से सम्मानित किया है।

साम्प्रतिक अत्याधुनिक प्रगतिशील कवयित्रियों में राजलक्ष्मी देवी, उमा राय, जयश्री दास, नवनीता देव, कविता सिंह, काजला घोष आदि महिलाएँ प्रसिद्ध हैं ।

बंग काव्य की सर्व कनिष्ठा कवयित्री का नाम है केतकी कुमारी । विराट सम्भावना सहित आपने सम्प्रति बंग काव्य क्षेत्र में प्रवेश किया है । प्रसिद्ध विद्वान वंश कुशारी परिवार के श्री अवनी कुमार कुशारी की आप सुपुत्री हैं । कलकत्ता विश्वविद्यालय की आप एक कृति छात्रा हैं । सम्प्रति विलायत में अंगरेजी साहित्य में आपने प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान अधिकृत किया है । आपकी रचना शैली सम्पूर्ण आधुनिक है तथा प्रगतिशील भावनाओं से ओत प्रोत है । हम इन कवयित्री का उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं ।

निबन्ध को समाप्त करने के पहले इतना कहना अनिवार्य है कि बंग काव्य साहित्य में विंश शताब्दी के प्रथमार्ध तक रवीन्द्र प्रभाव अत्यन्त प्रखर था । अत्याधुनिक युग के कवि रवीन्द्र प्रभाव मुक्त होने की प्रचेष्टा में व्रती हैं । इस प्रचेष्टा ने बंग काव्य में एक नूतन भाव धारा, नूतन परिवर्तन लाने का प्रयास किया है । सफलता की राय देने का समय अभी तक नहीं आया है । अत्याधुनिक कवियों की रचनाओं में अंगरेजी तथा फ्रांसीसी कविता की चिन्ताधाराओं ने अधिक प्रभाव विस्तार किया है । साम्यवादी कविताएँ भी रची जा रही हैं । आधुनिक पंथियों का मत है कि वर्त्तमान युग वस्तु-धर्मी तथा वास्तव धर्मी है। आधुनिक युग की लाखों समस्याएँ आज के लेख के विषय बने हैं । रचना की शैली ने भी करवट बदली है । काव्य तथा साहित्य ने नवकलेवर धारण किया है। आधुनिक रचनाएँ रसोत्तीर्ण है या नहीं इसका विचार करने का दायित्व उत्तर पुरुष पर समर्पित किया जाता है । इस छोटे से लेख में बंग कवयित्रियों की धारावाहिक तथा विस्तृत काव्यालोचना एक दुरूह काम है। इसलिए इसमें शायद बहुत सी त्रुटियाँ रह गईं, इसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूं ।



मराठी की प्रमुख कवयित्रियाँ

प्रो० कृ० गं० दिवाकर, एम० ए०

स्त्री और पुरुष दोनों के पारस्पारिक सहयोग से ही जीवन परिपूर्ण हो जाता है। काव्य जीवन की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता, वास्तविकता तभी आ सकती है जब उसमें जीवन के दोनों अंग स्त्री-पुरुष समाविष्ट हो जायँ। मराठी काव्य की आठ सौ वर्षों की परम्परा देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रारंभ काल ईसा की तेरहवीं शताब्दी से लेकर आज तक मराठी काव्य के विकास में यहाँ की महिलाओं ने सृजनात्मक सहयोग दिया है। चक्रधर से रामदास तक तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक के कालखंड में जो कवयित्रियाँ हो गई हैं उनके काव्य में भक्तिरस की ही प्रधानता थीं। ईसा की अठारहवीं शताब्दी में विशेष उल्लेखनीय कवयित्रियाँ नहीं मिलतीं। उन्नीसवीं शताब्दी से अवरुद्ध परम्परा का यह स्रोत पुनः प्रारंभ हो जाता है, जिसमें प्रीति को विशेष स्थान मिला है। इन परिमित पृष्ठों में मराठी की प्रत्येक कवयित्री के संबंध में विस्तृत विवेचना संभव न होने के कारण उनमें से कुछ प्रमुख कवयित्रियों का सामान्य परिचय मात्र दिया जा रहा है।

महदाईसा (महदंबा) मराठी की आदि कवयित्री मानी जाती हैं। महानुभाव संप्रदाय के प्रवर्तक चक्रधर स्वामी इनके गुरु थे। यह अपने काल में अत्यन्त विदुषी समझी जाती थीं। इनके उपलब्ध मराठी काव्य में 'धवले 'मातृ की रुक्मिणी-स्वयंवर' तथा 'गर्भकांड ओव्या' विशेष उल्लेखनीय हैं। महदाईसा एक सरलस्वभाव की भोली महिला थीं। सभवतः यही कारण होगा कि उनके काव्य में साधारण स्त्री की स्वभावगत विशेषता दृष्टिगोचर होती है। गतिशीलता एवम् प्रवाहमयता के कारण उनका समस्त काव्य विशेष लोकप्रिय हुआ है। भाषा सीधी सादी एवम् अत्यन्त सरल होते हुए भी चित्ताकर्षक प्रसंगों के वर्णन में स्वाभाविकता निर्माण करने की क्षमता रखती है। मराठी साहित्य में कथा-काव्य का सूत्रपात इन्हीं से माना जाता है। समय स्फूर्त काव्य होने से वृत्त शैथिल्य, रचना में असंगति, पुनरूक्ति, आदि कुछ दोष इनके काव्य में अवश्य मिलते हैं, परन्तु केवल इन्हीं के कारण इनकी महत्ता किसी प्रकार कम नहीं हो सकती। इन्होंने 'धवले' के द्वारा मराठी को एक नये छंद की भेंट की है। 'धवला' यह छंद कुछ सीमा में मराठी के अभंग की भाँति होता है। इसमें गण, मात्रा अथवा अक्षर संख्या का बन्धन नहीं रहता। संभव है कि महदाईसा के अन्य भी काव्यग्रन्थ होंगे जो अब तक अज्ञात ही हैं। इन्होंने मराठी के साथ हिन्दी में भी रचना की हैं। इनके द्वारा रचित निम्नांकित पद डा० विनयमोहन शर्मा ने प्रकाशित किया है :—

नगर द्वार हो भिच्छा करो हो,
बापुरे मेरी अवस्था लो।
जिहाँ जाबो तिहाँ आपसरिखा
कोउ न करी मोरी चिंता लो।
हाट चौहाटां पड रहूं हो
मांग पंच घर भिच्छा
बापुड लोग मेरी अवस्था कोउ
न करी मेरी चिंता लो।

महदाईसा की गुरुभक्ति विशेष प्रसिद्ध है । इनकी हिंदी भाषा में खड़ी बोली और व्रज का मिश्रण है। अभिव्यक्ति में सहजता, भाषा में प्रासादिकता एवम् करुण रस की छाया से इनकी रचना अधिक आकर्षक बनी है। यदि इनके और भी हिन्दी पद उपलब्ध होसकें तो अधिक अच्छा होगा ।

महदाईसा के पश्चात् विशेष उल्लेखनीय कवयित्री हैं—

मुक्त बाई—: ज्ञानेश्वरी के रचयिता तथा मराठी साहित्य मंदिर की बुनियाद डालने वाले सुप्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर की यह सबसे छोटी बहन थीं । उपलब्ध प्रमाणों से इनका जन्म शके १२०१ और मृत्यु का० शके १२१९ मिलता है । अपने भाइयों के समान यह भी असाधारण बुद्धिमती थीं । विरागी वृत्ति के कारण इन्होंने आजन्म कौमार्य व्रत का पालन किया था । अठारह वर्ष की अवस्था ही में इन्हें इस संसार से सदाके लिये बिदा होना पड़ा । परन्तु अलौकिक प्रतिभा एवं तेजस्वी बुद्धि चातुर्य के कारण इतनी सी उमर में भी इन्होंने अनेक अभंग, पद, कल्याण पत्रिका, हरिपाठ, ताटीचे आदि काव्यों की रचना की है। मुक्ताबाई की रचना में माधुर्य गुण विशेष द्रष्टव्य है। यद्यपि आत्मबोध यह इनके काव्य का प्रमुख विषय था फिर भी मानवी जीवन के अनेक अनुभवों तथा दया, क्षमा, शांति आदि सद्गुणों पर भी इन्होंने समय-समय पर स्पष्ट विचार व्यक्त किये हैं। उनकी आध्यात्मिक विचार धारा ज्ञानेश्वर के समान ही थी । स्त्री जीवन की मृदुता, अनुभवों की कठिनता, स्पष्टोक्ति एवम् भावना की उत्कृष्टता आदि बातें इनके काव्य में विशेष रूप से व्यक्त हैं । इनकी बहुत ही कम रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं । उपलब्ध रचना को देखकर अनुमान होता है कि इनकी और भी रचनाएँ अवश्य रही होगीं जो अकाल काल कवलित हुई होंगी । महदाईसा की भाँति इनकी भी हिन्दी रचनाएँ प्राप्त होती हैं—

वाह वाह साहब जी सद्गुरुलाल गुसाईं जी
लाल बीच मों उडला काला ओंठ पीठ सों काला।
पीत उन्मनी भ्रमर गँफा रस मूलन वाला।
सद्गुरु चेले दोनों बराबर एक दस्त यों भाई।
एक से एक दर्शन पाये महाराज मुक्ता बाई ।*

*नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० संवत् १९८६, पृ० ६४.

सुप्रसिद्ध संत नामदेव की दासी जनाबाई ने भी अपनी भावनाओं को काव्य के माध्यम से व्यक्त किया है । नामदेव जैसे संत के संपर्क से जनाबाई के मन में भी विठ्ठल के विषय में भक्ति आविर्भूत हुई । परमात्मा के नाम संकीर्तन में तल्लीन होने में इन्हें अतीव आनंद की अनुभूति होने लगी । इन्होंने नामदेव का कीर्तन कई बार सुना था इसलिये पौराणिक कथाओं का ज्ञान इन्हें अनायास ही प्राप्त हुआ था । परमात्मा का गुणगान करना मानो इनका स्वभाव बन चुका था । यह विठ्ठल को ही माता के रूप में देखती थीं । जनाबाई के अलब्ध स्फुट अभंगों से स्पष्ट दिखायी देता है कि ये पांडुरंग की निस्सीम सेविका थीं । हृदय में उत्पन्न प्रत्येक कल्पना अपने और परमात्मा की परस्पर श्रद्धा के माध्यम से अभिव्यक्त करने की नवीन कला का प्रारंभ जनाबाई ने ही किया ।

जनाबाई का समस्त काव्य भगवत्प्रेम से प्लावित है। अध्यात्म, भगवत्भक्ति, नाम महिमा, पौराणिक आख्यान आदि जनाबाई की कविता के प्रमुख विषय हैं । इनकी रचना में स्त्री सुलभ मृदुता, कारुण्य, हृदय की आर्द्रता आदि बातें सहज रूप में पायी जाती हैं । स्फुट अभंग के अतिरिक्त भक्तिरस पूर्ण कुछ कथा-काव्य भी इन्होंने रचे हैं, जिनमें 'थालिपाक'—दुर्वास—भोजन यह काव्य उत्कृष्ट कोटि का माना जाता है । मन का भोलापन, वाणी का स्नेह, तथा भाषा का सारल्य इनकी रचनाओं में सर्वत्र पाया जाता है । तुकाराम के पश्चात् महाराष्ट्र में जनाबाई के ही अभंग विशेष लोकप्रिय हैं । किम्वदन्ती है कि नामदेव के शत कोटि अभंगों मे साढ़े बारह कोटि अभंग जनाबाई के थे । परंतु जनाबाई के नाम पर मिलने वाले अभंगों की संख्या ३०० से अधिक नहीं है जिनमें से कई अभंग प्रक्षिप्त भी माने जाते हैं । सन् १३५० की आषाढ़ कृष्ण १३ को जनाबाई समाधिस्थ हुईं इनके एक अभंग से ज्ञात होता है कि ऐहिक जीवन की समस्त वासनाओं की पूर्ति का समाधान इन्हें अंतिम समय मिला था :—

माझे मनी जें जें होते। तें तें दिधले अनंते॥
देह नेऊनी देही केलें। शांति देऊनि मी पण नेलें।
मूल दिले हे क्रोधा चे। ठाणे केले विवेका चें।
निजपदीं दिला ठाव। जनी म्हणे दाता देव।

वारकरी संप्रदाय के श्रेष्ठ भक्त तुकाराम की शिष्या बहिणाबाई का नाम महाराष्ट्र की कवयित्रियों में विशेष उल्लेखनीय है। इनके पति का नाम रत्नाकर पाठक था। उनके वंश में शाक्तों की उपासना थी। इनके अभंगों से प्रतीत होता है कि इनका सौभाग्य अधिक समय तक न रहा होगा। वैधव्यावस्था में स्वभावतः इनकी वृत्ति अध्यात्म की ओर उन्मुख हुई। कहा जाता है कि स्वप्न में इन्हें सद्‌गुरु तुकाराम के दर्शन हुए और उन्हीं की कृपा से बहिणाबाई में कवित्व शक्ति अंकुरित हुई।

बहिणाबाई की अधिकांश रचना स्फुट रूप में ही प्राप्त होती है। इनकी गाथा में कुल मिलकर ७७ अभंग हैं जिनमें ४३ आत्म चरित्र पर और ३४ निर्याण विषयक हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, ब्रह्म, विठ्ठल, संत, सद्‌गुरु ब्राह्मणत्व, पतिव्रता धर्म, पुनर्जन्म, प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि विभिन्न विषयों पर इनके लगभग ४०० अभंग हैं। प्रासादिकला, निःस्पृहता, सरलता इनके काव्य के विशेष गुण माने जाते हैं। इन्होंने मराठी के अतिरिक्त हिंदी में भी काव्य रचना की है। कबीर की उलटबासी की भांति इनके अद्‌भुत रसपूर्ण छंद प्रसिद्ध हैं :—

अजब बात सुनाई भाई।
गरुड़ पंख हिरावे कागा लक्ष्मी चरन चुराई।
ये सूरज की थींव अंधारे सोवे चंद्रकू भाग जलावे
राहु के गिर हो भोगी ब्रह्मा रे अमृत लो भर जावे
कुबेर सोवे धनके आस हनुमान नीर मँगावे
वैसे सबहि झूठा है निंदाकी बात सुनावे।
समींदर तान्हो चीरत कैसो साधु मांगत दान
बहिणी कहे जन निंदक है रे वाको सांच न मान॥

बहिणाबाई ने अपने भावों को व्यक्त करते समय शब्द-चयन की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना देना आवश्यक था। इनकी हिंदी तथा मराठी दोनों रचनाओं में यह दोष पाया जाता है। इसके बावजूद भी इनका समस्त काव्य अपनी विशेषता रखता है और उसकी रसात्मकता में किसी प्रकार की हानि नहीं हुई है। इनकी मृत्यु शके १६२२ में मानी जाती है।

समर्थ संप्रदाय के प्रवर्तक समर्थ रामदास स्वामी की प्रमुख शिष्या थी वेणाबाई। इनकी भी बहुत-सी रचनाएं उपलब्ध होती हैं। इन्हें बाल्यावस्था ही में वैधव्य प्राप्त हुआ था। यह स्वभाव से शांत एवम् विरागी वृत्ति की थीं। रामदास का शिष्यत्व स्वीकार करते समय वेणाबाई का विरोध ससुराल तथा मैके के रिश्तेदारों ने किया था। परंतु इन्होंने अपनी मनोवृत्ति को निश्चल ही रखा। वेणाबाई के प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम है 'सीता स्वयंवर'। रामायण के इस प्रसंग पर यद्यपि पूर्ववर्ती कवियों ने रचना की थी तथापि सर्व प्रथम ओवीबद्ध रचना इन्हीं की मानी जाती है। इस ग्रंथ में १५६८ ओवियाँ पायी जाती हैं।

'सीता-स्वयंवर के अतिरिक्त 'कौल' राम-गुह संवाद नामक दो स्फुट काव्य भी इन्होंने रचे हैं। 'कौल' का अर्थ है राजा से प्रजा को मिलने वाला अभय पत्र। रावण का नाश करने के पश्चात् जब प्रभु रामचंद्र जी सिंहासनस्थ हुए तब प्रजा ने उनके पास जो माँग की उसका वर्णन 'कौल' काव्य में है। 'राम-गुह-संवाद' में ४४ श्लोक हैं। वेणाबाई के काव्य पर इनके गुरु रामदास के काव्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है। छंद शास्त्र तथा व्याकरण के नियमों के बंधन को यद्यपि इन्होंने नहीं माना फिर भी इनकी कविता में रचना-चातुर्य कल्पना विलास एवम् वर्णन शैली आदि का सौंदर्य निर्बाध ही रहा है। स्वानुभव और दृढ़ भक्ति इनके काव्य की आधार शिला है।

इस कालखंड में इनके अतिरिक्त, कान्होपात्रा, प्रेमाबाई बयाबाई आदि कवयित्रियों के नाम भी उल्लेखनीय हैं। सभी की कविता की विषय भक्ति प्रधान ही था। स्त्री सुलभ स्वभावानुसार नित्य जीवन के घातप्रतिघात, सुख-दुःख आशा-निराशा आदि के दर्शन भी इन्होंने बड़ी कुशलता से काव्य द्वारा कराया है।

ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के अंत में रुकी हुई कवयित्रियों की परंपरा उन्नीसवीं शताब्दी से पुनः प्रारम्भ हुई। आधुनिक काव्य की अभिव्यंजना शैली में युगानुसार परिवर्तन दिखाई देता है। अंग्रेजी शासन काल में आंग्ल साहित्य के अध्ययन का अवसर यहां की सुशिक्षित जनता को मिला। देश में सामाजिक, धार्मिक, तथा आर्थिक क्षेत्रों में वैचारिक आंदोलन शुरू हुआ था। इन सभी का प्रत्यक्षा प्रत्यक्ष परिणाम् स्वाभाविक रीति से मराठी काव्य पर भी हुआ। प्राचीन काव्य के अध्यात्म, भक्ति, नीति बोध आदि प्रमुख विषयों के स्थान पर लौकिक, ऐहिक, निसर्ग विषयक विषयों का समावेश भी होने लगा। प्रतिदिन के जीवन के निकटवर्ती विषयों का व्यक्तिकरण काव्य में दिखाई देने लगा। आत्मानुभूति, आत्माभिव्यक्ति की भावना कवियों में विशेष रूप से पाई जाने लगी। जाति भेद, विषमता, पारतंत्र्य के स्थान पर बंधुत्व, समता, स्वातंत्र्य की स्थापना करने की तीव्र भावना काव्य द्वारा भी व्यक्त होने लगी। महिलाओं के रुढ़िगत बंधनों एवम् शोषण के दुखों को भी वाणी मिलने लगी।

व्यक्ति स्वातंत्र्य के अनुसार प्रेम विषयक स्वातंत्र्य की माँग आधुनिक कविता में होने लगी। आत्म निवेदनपरक प्रेम काव्य की निर्मिति होने लगी। नयी कविता में प्रेम का चित्रण अत्यंत स्वाभाविक एवम् मुक्त रूप में किया जाने लगा। वासनात्मक प्रेम के स्थान पर उदात्त, शुद्ध मानसिक एवम् बौद्धिक प्रेम का चित्रण काव्य में होने लगा। मराठी काव्य के अंतरंग तथा बहिरंग दोनों में परिवर्तन होने लगा। आधुनिक काल में साहित्य के विविध अंगों के विकास में महिलाओं ने सृजनात्मक सहयोग दिया। काव्य के क्षेत्र में भी अनेक महिलाओं ने रचनात्मक एवम् प्रशंसनीय कार्य किया। इस काल की प्रमुख कवयित्रियों में **लक्ष्मीबाई टिलक, बहिणाबाई चौधरी, मनोरमाबाई रानडे, पद्मा गोले, संजीवनी मराठे, इंदिरा संत, शांता शेळके** आदि कवयित्रियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

लक्ष्मीबाई टिलक से अर्वाचीन मराठी कविता का वास्तविक प्रारंभ माना जाता है। इनका बाल्यकाल संस्कारशील ब्राह्मण परिवार में व्यतीत हुआ। ग्यारहवें वर्ष की अवस्था में कवि रे० टिलक के साथ इनका विवाह हुआ। टिलक के अस्थिर स्वभाव के कारण इन्हें अपने जीवन में 'स्थिरता एवम् शांति शायद ही मिली होगी। सन् १७९५ में टिलक का ईसाई धर्म को स्वीकार करना लक्ष्मीबाई जैसी हिंदू स्त्री को अशुभ तथा दुःखद लगता था। ऐसी स्थिति में भी इन्होंने बड़े धीरज के साथ काम किया। उस असहाय्य परिस्थिति में ही इनके काव्य का जन्म हुआ। राष्ट्रीय, अध्यात्मपरक, सामाजिक, सन्दर्भपरक, भक्तिपरक आदि विविध विषयों पर इन्होंने काव्य रचना की। वात्सल्यरसपूर्ण शिशु गीतों की रचना भी इन्होंने की है।

इनकी प्रथम कविता का जन्म सन् १८८४ ई० में हुआ इनकी स्फुट कविताओं का एक संग्रह सन् १९५१ में तैयार किया गया जिसका नाम 'भरली घागर' है। इनके पति रे टिलक के अपूर्ण काव्य 'ख्रिस्तायन' को इन्होंने पूर्ण किया। इनके काव्य में भक्ति, करुण और वात्सल्य इन रसों की त्रिवेणी अबाध गति से बहती है। इनके गीतों में गेयता का गुण भी है। यद्यपि इनके द्वारा लिखित शिशुगीतों में अथवा आध्यात्मिक गीतों में कलात्मकता एवं स्वाभाविकता का अभाव सा नजर आता है फिर भी समस्त काव्य में दृष्टिगोचर होने वाली प्रतिभा, प्रसादगुण, विनय एवं सूक्ष्म विनोद आदि के कारण इनका काव्य अपना महत्व रखता है। कुछ कविताओं में सामाजिक समस्याओं को रखकर इन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण भी व्यक्त किया हैं। लक्ष्मी बाई ने मराठी कविता को एक नया मार्ग दिखाया। उसी मार्ग के खुल जाने से **लक्ष्मी तनया, लक्ष्मीबाई बेहरे, शारदाबाई परांजपे, हिराबाई पेडणेकर, शान्ता बाई फणसे, मनोरमाबाई रानडे** आदि कवयित्रियों ने काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। इसीलिये लक्ष्मीबाई टिलक से आधुनिक मराठी कविता का सूत्रपात माना जाता है।

लक्ष्मीबाई टिलक के पश्चात् कालखंड की दृष्टि से **बहिणा बाई चौधरी** का नाम विचारणीय है। महाराष्ट्र में केशव सुत, कवि बी, विनायक तांबे, गडकरी जैसे प्रतिभा-संपन्न कवि जिस समय अपनी काव्य प्रतिभा से जनता को आकृष्ट कर रहे थे उसी समय बहिणाबाई चौधरी की कविता का

भी जन्म हुआ था, परंतु दुर्भाग्य से वह कविता बहुत दिनों तक अज्ञात रूप में ही रही। सन् १९५१ ई० में इनके पुत्र सोपान देव चौधरी ने आचार्य अत्रे द्वारा इसे मराठी जनता के सम्मुख रखा। इस कविता में बहिणाबाई की अपूर्ण प्रतिभा के दर्शन सहज हो जाते हैं। बहिणाबाई एक सीधी सादी कृषक महिला थी। जलगांव में रहकर अपने परिवार की जीवन वाटिका में रममाण हो चुकी थी। ग्रामीण वातावरण में रहकर बहिणाबाई जैसी एक अशिक्षित महिला के काव्य में प्राप्त काव्य गुण सुशिक्षितों को भी शरमा देते हैं। इनके काव्य में लोकगीतों की झलक दृष्टिगोचर होती है। दैनदिन जीवन के विषयों को ही इन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया। इनके काव्य में स्वाभाविकता सर्वत्र दिखाई देती है।

सुशिक्षित न होते हुए भी इन्होंने अपने काव्य की उत्पत्ति के संबंध में जो कथन किया है वह आंग्ल कवि वर्डसवर्थ की काव्य की परिभाषा Poetry is the Spontaneous cerfeow of powerful feelings से कितना साम्य रखता है—

अरे घरोटा घरोटा। तुझ्यातूंन पड़े पीठी।
तसं माझं गानं। पोटा तून येत व्होटीं।

प्रसंगोचित शब्दचयन, भावों की सुकुमारता, कल्पना की रमणीयता, आदि काव्यगुणों के अतिरिक्त इनका जीवन विषयक तत्त्व ज्ञान भी विशेष उल्लेखनीय है। संसार में रह कर भी विरक्त एवं अनासक्त वृत्ति से देखने का संतों का दृष्टिकोण इनके काव्य में भी पाया जाता है। इस दृष्टिकोण को इन्होंने नित्य जीवन में प्राप्त भले बुरे प्रसंगों में से ही पाया था, उसके लिये इन्होंने वेदशास्त्र आदि का अध्ययन नहीं किया था। स्वानुभव से ही इन्होंने जीवन का अर्थ लगाया। इसीलिये उनका जीवन विषयक तत्त्वज्ञान विशेष प्रभावशाली एवं सर्वसमावेशक हुआ है। इन्होंने गृहस्थी को सुख दुःख का व्यापार कहा है जो कभी नगद तो कभी उधार करना पड़ता हैं। धन और कीर्ति की मदिरासाक्ति से कृतज्ञता, सहिष्णुता, प्रामाणिकता आदि मानवोचित गुणों को भूलने वाले मनुष्य के प्रति कवयित्री का मन अत्यन्त विव्हल हो जाता है और वह स्पष्ट रूप से पूछती है—

मानसा, मानसा, कधी व्हशील मानूस ! [1]

इंदिराबाई संत ने सन् १९२९ से आज तक काव्य लेखन का कार्य अखंडित रूप से चालू रखा है। इनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह है—शेला, मृगजल, और मेंदी। अन्य आधुनिक कवयित्री की भाँति इनके काव्य का भी प्रधान विषय प्रेम ही है। परंतु यह प्रेम विविधता से सुसज्जित होकर मुग्ध एवं रसिक वृत्ति से व्यक्त हुआ है। रचना में सरलता, आडंबर हीनता के दर्शन होते हैं। स्वयं देखे हुए और अनुभव किये हुए स्त्री हृदय के मनोभावों को व्यक्त करने का प्रामाणिक प्रयत्न इनके काव्य में देखा जा सकता है। प्रसादगुण के कारण काव्य में सरलता, सुबोधता आ चुकी है। इनकी भाषा में कहीं भी कृत्रिमता की गंध तक नहीं आती।

विवाहोत्तर काल में प्रफुल्लित जीवनोद्यान में लिखित उल्लास युक्त प्रेमगीतों की भाँति ही पतिनिधनोत्तर काल में लिखित विरहजन्य गीत भी हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। उसका प्रमुख कारण है विषय की भावना के प्रति कवयित्री की एकरूपता, तन्मयता, चाहे वह विषय सुख का हो या दुःख का इन्होंने किसी कवि का हेतुपूर्वक अनुसरण न करते हुए स्वतंत्र विचारधारा का अनुसरण किया है। अन्य

कवियों के विचारों से कुछ विचार यदि साम्य रखते हैं तो वह संयोग मात्र है। इंदिराबाई की कविताओं ने संसार के यथार्थ चित्र उपस्थित किये हैं जो कविता की लोकप्रियता के अनेक कारणों में एक है। अनावश्यक कृत्रिम अलंकारों से श्रृंगारित करना संभवतः इंदिराबाई को पसन्द नहीं था। स्वभावतः रूपसंपन्न वनिता को कृत्रिम अलंकारों की आवश्यकता ही क्या है? किसी प्रसंग विशेष पर यदि कुछ अलंकार डाले जाते हैं तो सौंदर्य की शोभा द्विगुणित हो सकती है। इंदिराबाई की 'काव्यवधू' को देखने पर उसकी

[1] हे मनुष्य, तू मनुष्य कब होगा !

शालीन, संयमी वृत्ति एवं निरलंकृतता को देखकर आदर ही निर्माण होता है।

संजीवनी मराठे की कविताओं में गीति तत्व की प्रधानता है। उनकी कविता प्रथम भावरूप से मन में जन्म लेती है और बाद में अभिव्यक्ति के समय शब्दरूप हो पाई। एक उत्तम काव्य गायिका के रूप में इनकी प्रसिद्धि है। काव्य के वातावरण एवं रस के अनुकूल स्वरों का उपयोग कर ये कविता का गायन करती हैं इसलिये काव्य के भाव अधिक प्राणवान बन जाते हैं। संसार, राका, छाया, भावपुष्प, चित्रा आदि इनके विशेष प्रसिद्ध काव्यसंग्रह है। प्रेम और वात्सल्य इनकी कविताओं में विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त प्रार्थना, गीत, भजन, गौलन, प्राकृतिक गीत, राष्ट्रीय गान, तथा मंगल संस्कार विषयक कविताएँ भी इनकी रचनाओं में पायी जाती हैं। भाषा और रचना-कौशल्ल दोनों दृष्टियों से इनकी कविता अत्यंत कलात्मक है। संगीतात्मकता तथा नादमाधुर्य कविता का वैशिष्ट्य है।

इन्होंने भावगीतों के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत के रागों के अनुकूल भी कुछ रचनाएँ की हैं। काव्यानुकूल विषयों का चयन आवश्यकतानुसार भावना स्पर्श तथा रचना कौशल्ल की साक्षेपता इन तीन गुणों से आधुनिक कवयित्रियों में संजीवनी मराठे का नाम विशेष लिया जाता है। विषय तथा विचारों की मर्यादा कवयित्री ने अपने काव्य में रखी है। इनकी अधिकांश कविता आत्मनिष्ठस्वरूप की है। इनके लगभग समस्त काव्य में माधुर्य एवं प्रसाद गुणों का मधुर मिलन बन पड़ा है। ये हाल ही में मराठी और हिन्दी विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण हुई हैं। भविष्य में मराठी कविता को इनसे बहुत आशाएँ हैं।

संजीवनी मराठे की भाँति पद्मा गोले का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। नवयुग के स्त्री जीवन की विशेषता दिखाने वाली इनकी कविताओं के संग्रह 'प्रीतिपथावर' और नीहार चित्ताकर्षक एवं भावनाभिव्यक्ति के उत्तम उदाहरण हैं। इन संग्रहों की लगभग आधी कविता प्रेम विषयक है जिसका स्वरूप भावगीतों की भाँति है। विषयों का वैविध्य भावनाओं का वैचित्र्य, विचारों का प्रभावी सामर्थ्य आदि के कारण इनकी कविता के उज्ज्वल भविष्य की मानो सूचना ही प्राप्त होती है। प्रणयी जीवन के विविध चित्र इन्होंने उपस्थित किये हैं। यद्यपि इन्होंने प्रेम काव्य को ही प्राधान्य दिया है फिर भी विशेषता यह है कि इन्होंने अधिकांश रचनाओं में केवल सफल प्रेम ही का चित्रण नहीं दिया अपितु असफल प्रेम का चित्रण भी किया है।

इनकी प्रेम भावना में कुछ प्रतीकारात्मक एवं अधिकांश सहानुभूति की वृत्ति के दर्शन हो जाते हैं। प्रेम भावना के एक नवीन अंग का चित्रण इनकी कविता में किया गया है। इनके काव्य की स्त्री को पति की पूजा में अतीव संतोष, प्रसन्नता अवश्य है परन्तु साथ ही व्यक्ति स्वातंत्र्य भी वह चाहती है। पद्मा गोले के वात्सल्यरस युक्त गीत भी अप्रतिम हैं। 'अभिलाषा' और 'भी माजूस' शीर्षक कविताओं में अत्यंत स्पष्टोक्ति है। स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु मानने वाले पुरुषों की बड़ी कलात्मकता से इन्होंने 'अभिलाषा' में खबर ली है। 'भी माजूस' में कवयित्री ने जीवन की ओर बड़ी निर्भिकता से देखा है। संसार में दिखायी देने वाला दंभ, स्वार्थ एवं झूठापन का सुन्दर चित्रण इन्होंने किया है। इनकी समस्त कविता गतिशील एवं सहज सुन्दर भाषा से विभूषित है। नवकाव्य की ओर इनका झुकाव दिखायी दे रहा है फिर भी इनकी वर्णन शैली आकर्षक है। इनके काव्य में भी प्रसाद और माधुर्य गुण पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। 'युगंधरी' नामक कविता में इन्होंने अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए लिखा है :—

> युगंधरा भी नव्या युगाची
> मानवते चा ध्वज करिं धरूनी
> उंच स्वराने स्वतंत्रतेची,
> गाइन उज्ज्वल मंगल गाणी।

मराठी की आधुनिक प्रमुख कवयित्रियों में सबसे कनिष्ठ कवयित्री शांता शेळके का नाम लिया जाता है। ये बंबई के एक कालेज में प्राध्यापिका हैं। 'वर्षा' और 'रूपसी' ये

इनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं। इन्होंने अपने जीवन की सुख दुखमया अनुभूस्तियों को काव्य के माध्यम से व्यक्त किया है। एक स्थान पर स्वयं कवयित्री ने लिखा —"मेरी कविता मुझे इसलिये भाती है कि उसमें विशिष्ट अनुभूतियों तथा विशिष्ट आकांक्षाओं के चित्रों का अंकन किया गया है।" इनका काव्य शुद्ध, सरल एवं निरलस आत्माभिव्यक्ति है। इसी कारण से वह जनसाधारण के लिये भी बोधगम्य हो चुकी है। प्रासादिकता, काव्य-सौष्ठव, शब्द प्रभुत्व आदि गुण इनकी कविता की लोकप्रियता का रहस्य है। अपने मन की भावना को यथायोग्य रूप से शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने में शांताबाई सिद्ध हस्त है।

इनका जीवन विषयक तत्वज्ञान संमिश्र रूप में पाया जाता है। आशा निराशा की आँखमिचौनी इनके काव्य में पायी जाती है। किसी प्रकार मन की अनुदारता एवं संकुचितता इनके जीवन विषयक काव्य में नहीं मिलती। अपना मन व्यापक विशाल, 'मुक्त' बने, यही इनकी इच्छा है। इनकी कविताओं में रहस्यमयता अथवा गूढ़ता नहीं है। इनकी प्रेम विषयक कविताओं में निराशा तथा वैफल्य के स्वर ही अधिक दिखायी देते हैं। 'शरीर सुख के बिना वास्तविक प्रेम की तृप्ति नहीं हो सकती।' यह विचार अनेक बार इनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है। पुरुषों के प्रेम भावों के चित्र भी इन्होंने सफलता से चित्रित किये हैं। जीवन में निराशा आने पर भी शांताबाई ईश्वर श्रद्धा के आधार पर स्थिर रह पाती है। अन्य कवयित्री की भाँति वात्सल्य गीतों या शिशुगीतों में इन्हें इतनी सफलता नहीं मिली। इनका प्रकृति-वर्णन विशेष उल्लेखनीय है। प्रकृति के केवल सुकुमार चित्रों का अंकन करने के स्थान पर अपने सुख-दुःख से समरस होने वाले प्राकृतिक गीत लिखना इन्हें विशेष पसन्द है मराठी साहित्य को इनसे और भी आशाएँ हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कई कवयित्रियाँ हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा के अनुसार काव्य-सृजन कर मराठी सारस्वत के उद्यान को सजाया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मराठी काव्य के विकास में पुरुषों के अतिरिक्त महिलाओं ने भी रचनात्मक सहयोग दिया, जिससे जीवन के विभिन्न अंगों की अभिव्यक्तियाँ हो पायी। पहले ही स्त्री मन कविमन होता है, और जिन स्त्रियों में नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का साक्षात्कार होता है उनके काव्य के संबंध में कहना ही क्या? स्त्री जीवन के वास्तविक दर्शन मराठी कवयित्रियों के द्वारा अभिव्यक्त काव्य में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते। जीवन क्षेत्र की भाँति साहित्य क्षेत्र में भी महिलाओं का यह योगदान एक अपना विशेष महत्व रखता है।



आधुनिक मराठी कविता
महिला कवयित्रियों का योगदान

श्री दिनकर सोनवलकर

आधुनिक मराठी कविता के प्रवर्तन का श्रेय **केशवसुत** को दिया जाना चाहिए । उन्होंने सबसे पहले कविताओं में सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया । **"पुरातन को जलाने और नए के स्वागत का"** साहसपूर्ण आवाहन भी उन्होंने किया । उनकी रचनाओं के मुख्य विषय हैं; प्रेम, आत्माभिव्याक्ति तथा प्रकृति-वर्णन । धीरे धीरे उनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी होती गई ; फिर भी जीवन से उसका संबंध निरन्तर बना रहा ।

आधुनिक मराठी काव्य के दूसरे प्रमुख कवि हैं **गोविंदाग्रज** जो प्रेम के गायक हैं और जिनकी रचनाओं में प्रणय की असफलता तथा तज्जन्य निराशा के विविध चित्र मिलते हैं । प्रकृति के सच्चे कवि हैं : **बाल कवि** । उनकी रचनाओं में मानवी करण के प्रयोग खूब मिलते हैं, और मानव-मन प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव करने लगा है । **राज कवि ताम्बे** का काव्य अनुभूति की तीव्रता पर आश्रित है । वे व्यक्तिगत भावनाओं के कवि हैं ; उन्होंने ही सबसे पहले मराठी में आत्म-अभिव्यक्ति से पूर्ण प्रगीतों की सृष्टि की । उनके प्रेम-गीतों में निराशा नहीं, वरन् प्रेम की तृप्ति और दाम्पत्य की सुखद अनुभूतियाँ मिलती हैं ।

इसी पृष्ठभूमि पर मराठी की वह कविता धारा प्रवाहित तथा विकसित हुई जिसे **"रवि किरण-मंडल"** की कविता कहा गया , और आगे चलकर जिसकी परिणति **"नई कविता"** में हुई । कुछ तरुण लेखकों ने **सन् १९२३ में** 'रवि किरण मंडल' की स्थापना की । इसकी बैठक प्रति रविवार को होती थी इसलिए **"रवि"** और इनके प्रथम संग्रह का नाम था **"किरण"**; दोनों को मिलाकर 'रवि किरण मंडल' बना जिसे हम छायावादी आन्दोलन के समानांतर मान सकते हैं ।

इस मंडल के तीन प्रमुख कवि है : **माधव ज्युलियन, गिरीश और यशवन्त**। माधव ज्युलियन ने मराठी के फारसी गजल के सौन्दर्य को लाने का सफल प्रयास किया । गिरीश कवि ही नहीं, अच्छे गायक भी थे इसलिये उनकी रचनाएँ खूब लोकप्रिय हुईं । तभी से मराठी में भावगीत गायन की प्रथा चल निकली । काव्य गायन के माध्यम से लोक प्रियता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने वाले थे राजकवि यशवन्त, जिनकी कविताएँ अपनी मार्मिकता तथा माधुर्य के कारण प्रभावशाली होती थीं । उनकी रचनाओ में प्रेम संबंधी निराशा होते हुए भी, उत्साह तथा आशा का सन्देश है । **सन् १९४० के बाद** के महत्वपूर्ण कवियों-कवयित्रियों में उल्लेखनीय हैं : कुसुमाग्रज, अनिल, बोरकर, पु० शि० रेगे, संजीवनी मराठे, शान्ता शेडके, इन्दिरा सन्त ।

इन्दिरा

महिला लेखिकाओं में इन्दिरा की काव्य प्रतिभा सबसे महत्वपूर्ण है; इसलिए उनकी काव्य-साधना पर विस्तार से चर्चा

करना आवश्यक है, न केवल महत्व की दृष्टि से, बल्कि किंचित भाव-साम्य के कारण भी, वे मराठी काव्य की महादेवी हैं। इन्दिरा का पहला संग्रह था : "सहवास" जिसमें उनकी तथा उनके पति श्रीयुत ना० मा० सन्त की कविताएँ संगृहीत हैं। इस संग्रह का महत्व अब मात्र ऐतिहासिक ही रह गया है, क्योंकि उसके बाद इन्दिरा का काव्य-विकास सर्वथा स्वतंत्र दिशा में हुआ है। उनके बाद के संग्रह हैं : **शेला, मेंदी,** और **मृगजल**।

★ ★ ★

इन्दिरा की रचना प्रक्रिया तथा भाव जगत को समझने के लिए उस क्षण को समझना जरूरी है जिसे पकड़ने का प्रयास उन्होंने किया है। सम्प्रति काव्य-क्षेत्र में क्षण की चर्चा खूब हो रही है। सच पूछा जाए तो वर्ड्सवर्थ, प्रूस्त और मालार्मे ने भी काल के ऐसे ही क्षण (अथवा क्षण की अनुभूति) को चित्रित करने अथवा परिभाषित करने का प्रयास किया है।

एक तरफ हैं अतीत की स्मृतियाँ और दूसरी तरफ है हमारे प्रिय जीवन की समाप्ति का शाश्वत नियम; इनके बीच गुजरने वाला प्रत्येक क्षण एक नई प्रतीति लेकर आता है। इस तरह, **क्षण-क्षण बदलने वाले समय-प्रवाह की अनुभूति ही इंदिरा के काव्य का "स्थायीभाव"** है। वर्तमान का प्रत्येक क्षण उनके लिए संवेदना का प्रवाह Stream of sensation बनकर आता है और यही स्पर्श-रस-रूप-गंध की अनुभूति में विकसित होता है। हमारे वर्तमान पर हर समय ही छोरों से दबाव पड़ता है : अतीत तथा भविष्य का। इस दबाव को सहते हुए भी, स्वतः को सम्हाले रहना [याने तटस्थ रखना] और फिर अपने भाव जगत का विश्लेषण करना अपने आप में एक कठिन कार्य है। इन्दिरा ने यह कठिन दायित्व सँभाला है और सफलता से निबाहा है। अस्थिरता में स्थिरता की खोज ही मानों उनका लक्ष्य है।

इन्दिरा का व्यक्तित्व अत्यन्त **आत्म-निष्ठ तथा आत्म केन्द्रित** है। अनुभूति, कल्पना और विचार उनके व्यक्तित्व के दर्पण में प्रतिबिम्बित हो कर ही व्यक्त होते हैं। अर्थात् दुख या सुख उनके निकट सभी सार्थक बनते हैं। जब वे उनके व्यक्तित्व के अंश बनते है। इस व्यक्तित्व का क्षेत्र है : प्रकृति जिसका चित्रण इन्दिरा ने स्त्री-सुलभ-संवेदना से किया है, और यह सब इतनी सूक्ष्मता और गहराई से घटित होता है कि दुख के पहाड़ सहने की शक्ति भी कवयित्री को मिल गई है। पर उनके भाव जगत की परिधि उनका अपना जीवन ही है : संवेदना-क्षम वे ऐसी हैं कि पुस्तक में चिह्न बनाकर रखे गए मोर पंख के स्पर्श से भी उनका हृदय काँप-काँप उठता है।

उनकी अनुभूतियों का जो विश्व है उसमें हमें बिम्बों (Images) का प्रयोग ही अधिक मिलता है। प्रतीकों (Symbols) का नहीं [जब कि महादेवी के काव्य की आधार शिला ही उनका प्रतीत-विधान है।

इन्दिरा के संवेदन और उनकी अनुभूति एकात्म हो गई है इसलिए वे अपने कथ्य को तीव्रता के साथ पाठकों तक प्रेषित कर सकीं है। यही कारण है कि इन्दिरा की कविताएँ **आधुनिक भाव-बोध के निकट होती हुई भी, नव काव्य की अस्पष्टता से सर्वथा अछूती हैं।**

इन्दिरा ने अपने बिम्ब प्रकृति से ही उठाए हैं इसलिए उनकी रचनाएँ पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है जैसे कवयित्री और प्रकृति के बीच अखंडवार्ता चल रही हो। लेकिन यह प्रकृति स्थूल दृष्टि से दिखाई देने वाली प्रकृति नहीं, वरन् वह चेतना है जो इन दृश्यों के पीछे स्पन्दित होती रहती है और जिसके माध्यम से समय की अखंडता और उसका नैरन्तर्य प्रगट होता रहता है।

इन्दिरा की कविताओं का भावपक्ष इन्हीं तत्त्वों से बना है। उनके शब्द, छन्द, अलंकार आदि का विश्लेषण शायद और भी कठिन है क्योंकि भावात्मक कविता (Subjective) में ये सभी इकाइयाँ इस कदर संश्लिष्ट होती हैं कि उनका क्रमवार विश्लेषण संभव नहीं होता। इस सन्दर्भ में उल्लेनीय यही है कि उनकी कविताओं में **अर्थ की लय** का निर्वाह पूरी सफलता से हुआ है अर्थात् सूक्ष्म भावों की व्यजना बिम्बों द्वारा भी की गई है।

कवयित्री को कभी कभी ऐसा लगता है कि जीवन का अन्त

हुए बिना यह दुख छूटने वाला नहीं है, पर तभी यह बोध भी होता है कि शेष जीवन का जो अर्थ है वह इस स्मृति के कारण ही है : और यदि दुख का यह सूत्र हाथों से छूट गया तो भयंकर अनिष्ट हो जाएगा। इसी लिए वे स्मृति के सूत्रों को कस कर पकड़े हुए हैं; स्थित प्रज्ञ होना चाहती हैं और न हो सकने पर थकान से भर उठती हैं। फिर जैसे एकाकीपन घिर आता है और कवयित्री निस्संग भाव से स्वतः को अभिव्यक्त कर चलती है।

"जो तेरे ही लिए आए और बहे
तेरे स्पर्श से फूल बने, हँसे, विकसे,
वे अश्रु अब कहाँ छिपे अदृश्य होकर
जिन्हें बहाकर मन की जलन कर लेती शान्त।"

अथवा यह समर्पण :

"अपने अस्तित्व को अगुरु की तरह जलाकर
तुम्हारे आसपास फैलती हूँ
गन्ध बनकर।"

कभी कभी वे शब्दों को ही मन के अचेतन स्तर तक ले जाती हैं :—

"धूमिल अंधेरे में
कौन भरता है निःश्वास
थका हुआ मेरा मन
आहट लेता है बार बार"

इस तरह शब्दों में छिपी कविता बोलने लगती है और शब्द अर्थवा ही बनते हैं। कुछ प्रतिमाओं (I mages) का प्रयोग इंदिरा ने बार-बार किया है और ऐसा एक बिम्ब है : अँधेरे का। तथापि उनके ऐसे चित्र बड़े व्यापक हो गए हैं।

इसलिए प्रकृति के उपकरण भी हमें आत्मीय जान पड़ते हैं। तरल, सूक्ष्म अनुभूतियों को स्पर्श-रस, रूप, गंध की संवेदनाओं के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाने में इंदिरा को अद्भुत सफलता मिली है।

तिल-तिल गलती रही मैं
गल गए तलुए, क्षीण हुए चरण
गल गए पाँव भी,—
वैसी ही खड़ी रही मैं
रेत कणों पर, बावरी।
दिशाओं की अनुभूति स्पंदित हो उठी
क्षितिज ने आँज लिया नयनों में काजल
अन्तर में ताजे सपने
और अधरों पर सिकता-लहर।
कभी तो आओगे ही
तब देखोगे अपार फैली हुई रेत।
तेरे दो चरणों को छूने
धूप में भी
उग आएँगे दो हरे किसलय।"

इस प्रकार न केवल चित्र बल्कि चित्र की पृष्ठ भूमि, उसका एक-एक बिन्दु सचेतन होकर हमारी अनुभूति का अनिवार्य भाग बन जाता है।

"इस वक्त ये घर के पूरे खुले द्वार
उनमें से दौड़ती चलती है हवा;
और यह तांडव देखती मैं खड़ी द्वार पर
मन ही मन में छिपाए झंझावात।"

ऐसे झंझावतों के बीच कवयित्री का मन कितना "एकाकी" हो जाता है। ऐसे ही गतिमान बिम्बों के द्वारा इन्दिरा ने अपने को व्यक्त किया :—

"सिरहाने की खिड़की :
ऊँची सलाखों के पीछे
आड़ी तिरछी डालियाँ : नीम की।
उनके पीछे
ढलता हुआ चाँद : ताम्रवर्ण।
उसके पीछे
मुक्त आकाश : धूसर और नीला।
उसके भी पीछे
स्वप्न तेरा!"

दुख और एकाकी अस्तित्व का सारा दबाव उनके शब्दों में उतर आता है। उनका कथ्य प्रारम्भ में एक छोटी सी अनुभूति पर आधारित दीखता है, लेकिन रचना के आखीर तक पहुंचते-पहुंचते उसका विस्तार क्षितिज-व्यापी हो जाता है।

"निश्वास एक
डाली से ताजे बकुल झर गए,
निश्वास एक
भरे-भरे मेघों से
टप-टप-टप गिरी बूंदें बड़ी-बड़ी,
निश्वास एक
वृक्ष गदराया
उग आई श्वेत सेन्दुरी जड़ें लाख,
निश्वास एक
लहरों में ज्वार उठा
और क्षितिज झुक आया।"

प्रगीत काव्य के लिये अनिवार्य इस भावात्मक लय के प्रचुर उदाहरण इन्दिरा (तथा पु० शि० रेगे) की कविताओं में मिलते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि इंदिरा का काव्य नया होने के बावजूद नई कविता की अस्पष्टता से कोसों दूर है; और यही उनकी एतिहासिक उपलब्धि है। अनुभूति का उद्गम तो हर कवि में व्यक्तिगत ही होता है, पर **उसे प्रेषणीय बनाने के लिए इस वैयक्तिकता के परे जाना पड़ता है।** इंदिरा ने यह यात्रा सफलता पूर्वक की है जबकि उनके समकालीन तथा बाद की पीढ़ी के बहुत से कवि अपनी व्यक्तिगत सीमाओं में ही घिर कर रह गए हैं।

इंदिरा की कविताओं पर मर्ढेकर तथा पु० शि० रेगे की कविताओं का प्रभाव भी देखा जा सकता है, लेकिन कवयित्री का भाव-जगत् इन कवियों से सर्वथा भिन्न है। यही कारण है कि आधुनिक मराठी कविता में इंदिरा ने अपना विशिष्ट व्यक्तित्व बना लिया है।

इंदिरा के नवीनतम संग्रह "मृगजल" में उनकी प्रवृत्ति और भी अन्तर्मुखी हो गई है, परन्तु इस कारण से उनकी रचनाओं में रहस्यात्मक वायवीयता अथवा कृत्रिम बौद्धिकता नहीं आने पाई। उनकी ताजगी सुरक्षित है। विकास की इस अवस्था में उन्होंने जड़ वस्तुओं को भी जैसे वाणी प्रदान की है। एक कविता में, स्मृतियों के माध्यम से, कमरे का द्वार, कुर्सी, मेज सभी साकार होकर आते हैं और कवयित्री से पूछते हैं कि "क्या तुम्हें उन क्षणों की याद है जब तेरे प्रिय आए थे? हम उसके साक्षी हैं।"

और उसके पश्चात्—

"आसपास घर के
घिर आया अन्धकार
छप्पर पर तेजी से
बरसती है जलधार
दिशा दिशा से पाँव बढ़ाता और घेरता
आया यह एकाकीपन।"

कवयित्री जो कुछ खोज रही थी। वह उसे भले न मिला हो लेकिन खोज की इस विफलता को व्यक्त करने वाला शब्द माध्यम उसे जरूर मिल गया है।

अस्तित्त्व के अर्थ की खोज ही कलाकार की सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा होती है; लेकिन इस खोज में असफल होना ही कलाकार की नियति है: शायद! प्रत्येक युग का कलाकार यह खोज करता है अपने तरीके से। कुछ इस खोज से घबराकर अध्यात्म की ओर भागते हैं, कुछ मानव अस्तित्व को ही नकारने लगते हैं और कुछ हैं जो इस प्रक्रिया को शब्द-स्वर-रंग के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। "अस्ति" और "नास्ति" के बीच कहीं रचनाकार की स्थिति है।

दिक्-काल के आयामों का यह बोध इंदिरा में पूरी आत्मीयता से व्यक्त हुआ है; फिर भी उसकी मुद्रा एकाकीपन की उदासी से रंजित है।

२ संजीवनी मराठे

गीत काव्य की अन्य महिला लेखिकाओं में **संजीवनी मराठे** का नाम भी उल्लेखनीय है जो **श्रेष्ठ गायिका** भी हैं। इसीलिए उनकी रचनाओं में नाद सौन्दर्य की विशेष योजना हुई है। कवि गायक गिरीश तथा यशवन्त की तरह संजीवनी ने भी अनेक स्थानों पर अपना काव्य गायन प्रस्तुत किया। माधुर्य और मार्मिकता उनके साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उनके प्रणयगीत आत्मानुभूति से रस-सिक्त हैं। उनके संग्रह हैं **"संजीवनी" "राका" "संसार" "छाया"**। कवयित्री का मन तृप्ति और सन्तोष से भरपूर है। उसमें अभाव का दंश नहीं है, इसलिए उनकी रचनाएँ सरस और प्रांजल बन पड़ी हैं।

★ ★ ★

३. शान्ता शेलके

दूसरी उल्लेखनीय कवयित्री हैं: **शान्ता शेलके**। उनका काव्य सहज अनुभूति एवं सरस अभिव्यक्ति के कारण प्रभाव शाली हो गया है। प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रति कवयित्री का मन आत्मीय भाव से आसक्त है। जीवन के यथार्थ को उन्होंने सहज भाव से स्वीकारा है, इसलिए उनमें विषाद या पश्चात्ताप का स्वर नहीं है। शान्ता शेलके का मुख्य संग्रह है, **"वर्षा"**।

★ ★ ★

[मराठी कविता में पति-पत्नी की रचनाओं का इकट्ठा संग्रह प्रकाशित करने की विशेष प्रवृत्ति रही है और इस सन्दर्भ में रानडे-दम्पत्ति; देशपान्डे-दम्पत्ति तथा सन्त-दम्पत्ति के संग्रह स्मरणीय है।]

★ ★ ★

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् मराठी में **नई कविता** की प्रवृत्ति बलवती हो उठी। इसके प्रवर्तन का श्रेय मर्ढेकर को, तथा, इसे विकसित करने वालों में पाडगाँवकर,करन्दीकर,शरच्चंद्र मुक्तिबोध आदि प्रमुख हैं। इधर पिछले १०-१५ वर्षों में एक नई पीढ़ी उभर कर सामने आई है। नई पीढ़ी की महिला लेखिकाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण नाम सौ० **पद्मा गोले** का है जो पद्मा नाम से कविताएँ लिखती हैं।

४. पद्मा :

पद्मा के दो संग्रह अबतक प्रकाशित हो चुके है: **"नीहार"** और **"स्वप्नजा"**।

पद्मा की **सौन्दर्य-अभिरुचि** तथा रसात्मकता उनकी काव्य निष्ठा से उद्भूत है। उनका क्षेत्र है **शृङ्गार** और संयोग-वियोग। दोनों पक्षों का सफल चित्रण पद्मा ने किया है। उल्लेखनीय यह है कि दाम्पत्य जीवन की सुखद अनुभूतियों के बड़े रसभरे चित्र पद्मा ने खींचे हैं।

कहीं-कहीं मनोभावनाओं के सूक्ष्म विश्लेषण का प्रयास भी है :—

> **"और ऐसे ही किसी क्षण में**
> **तुम्हारे न होने का बोध होता है**
> **शायद तुम सचमुच नहीं होते मेरे पास**
> **या तुम भी शायद**
> **मेरे ही समान**
> **कहीं दूर भटकते रहते हो**
> **मेरी ही खोज में।**
> **मैं जो स्वयं भटकती रहती हूँ,**
> **अचीन्ही पगडंडियों पर**
> **अजानी दिशाओं में।"**

पद्मा ने स्त्री-सुलभ भावनाओं के विविध प्रसंग आँके हैं। कभी वे पुरुष के प्रति वात्सल्य एवं ममत्त्व से भर उठती हैं तो कभी पुरुष द्वारा नारी पर किए गए अन्याय की याद आते ही, उसे सजा देने के लिए प्रतिशोध से भर उठती हैं।

★ ★ ★

"स्वप्नजा" संग्रह में **रोमेन्टिक स्वप्न-चित्रों** का बाहुल्य है। इसलिए कवयित्री का मन रेशमी धागों, शहनाई के

स्वरों और फूलों की गन्ध के आसपास भटकता रहता है। प्रणय की अभिव्यक्ति के लिए ऐसा परिवेश आवश्यक भी है, प्रतीक्षा की उत्सुकता, मिलन की व्यग्रता और दिवा-सपनों की अलौकिकता इन कविताओं में सतरंगी अभिव्यक्ति लेकर आई है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मात्र स्वप्नों की चर्चा ही कवयित्री को अभिप्रेत है। **यथार्थ की कठोरता और दुख की कटुता से भी वह अच्छी तरह परिचित है।**

धीरे-धीरे पद्मा की कविताओं में विचारों की प्रौढ़ता आती जा रही है। **"दुख को वामन का चरण मान कर उसके आगमन का आनन्द उत्सव मानने की"** सूझ एकदम मौलिक है।

इसी तरह एक स्थान पर वे कहती हैं : "दुख चाहिये मुझे"; लेकिन यह दुख साधारण दुख नहीं, बल्कि ऐसा **'विराट दुख है जो जगत के बन्धनों को काटकर, जीवन में अमृत बरसाता है।"** इस तरह पद्मा की काव्य-यात्रा तीन आयामों में चल रही है; एक प्रणय; दूसरा वेदना और तीसरा, अज्ञात दिशा से मिलने वाले रहस्यमय संकेतों का।

उनके चित्र कलात्मक तथा अभिव्यक्ति सरस होती है। हलके हाथों खींची गई **रांगोली** का सौन्दर्य पद्मा की कविताओं में मिलता है।

★ ★ ★

मराठी नई कविता के क्षेत्र में कतिपय अन्य लेखिकाएँ भी निन्तर लिख रही हैं जिनमें से शंकर रामाणी, पद्मा लोकूर, सरितापदकी, वृन्दा लिमये, तथा मीना ताकाखाव की रचनाओं में विपुल संभावनाएँ दीख पड़ती हैं। [विस्तार-भय से प्रत्येक के उदाहरण देने का लोभ संवरण करना पड़ रहा है]

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि आधुनिक मराठी काव्य में कवयित्रियों की संख्या भले ही कम हो, पर व्यापकता एवं **विविधता** की दृष्टि से उनका कृतित्व एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।



गुजराती काव्य साहित्य की महिला कवयित्रियाँ

●

स्वदेशी, एम. ए.

आदि काल के काव्य-साहित्य से लेकर आधुनिक समय के काव्य-साहित्य का आंतरिक अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट मालूम होता है कि अन्य भाषाओं के साहित्य में जितनी महिला-कवयित्रियों के दर्शन होते हैं उनका दशमांश भाग गुजराती में शायद ही दिखाई दें। यों तो गुजराती-साहित्य में महिला लेखिकाएँ अच्छे प्रमाण में हैं परन्तु काव्य की हथौटी बहुत कम ने पायी है। मैं यहाँ श्रेष्ठ मानी जाने वाली कुछ स्त्री कवयित्रियों के बारे में लिखने का प्रयास कर रहा हूं।

सबसे पहले प्रेमदीवानी मीरां पर मेरी दृष्टि स्थिर होती है। राजस्थानी, गुजराती और व्रज तीनों भाषाओं की सेवा करने वाली इस कवयित्री का गुजराती भाषा पर पूर्ण प्रभुत्व है। तीनों भाषाओं के प्रदेश उसके अधिकार में रहे हैं। राजस्थान में जन्म, ब्रज में प्रियतम की खोज और गुजरात में द्वारकाधीश की छाया में जीवन लीला का विसर्जन। गुजराती में उसके बहुत से भजन आज भी लोककंठ पर सुनाई देते हैं।

जूनु तो थयुं रे देवले
जूनु तो थयुं
मारो हंसलो नानो ने देवल जूनूं तो थयुं
आ रे काया रे हंसा डोलवाने लागी रे
पड़ी गया दांत मांह्यली रेखुं तो रएयुं...मारो
तारे में मारे ऐसा प्रीत्यु बंधाणी रे
उड़ी गयो हंस पींजर पड़ी तो रएयुं....मारो
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
प्रेम नो प्यालो तमने पाऊं ने पीऊं....मारो

संक्षेप में वह वृन्दावन की गली-गली में घूमी; और नाची थी मन्दिरों में। उसका नाम गुजराती के आदि कवि नरसी मेहता के साथ जोड़ा जाता है क्यों कि उसके बिना युग की पूर्णता नहीं हो सकती है। भक्त कवयित्री मीराँ के पश्चात् बहुत समय तक एक भी कवयित्री गुजराती साहित्य में नहीं हो पायी है। आधुनिक युग में अंगरेजी के आगमन के पश्चात् नारियों ने नई शक्ति पायी। वे घर छोड़कर बाहरी शिक्षा एवं सेवा के क्षेत्र में आई और आजकल शिक्षा, समाज, और साहित्य के क्षेत्र में प्रमुख रूप से काम करने लगी हैं। जो स्त्रियाँ इन क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं वे किसी भी तरह योग्यता में न्यून नहीं हैं। जहाँ तक यह प्रश्न है, हमारे सामने सबसे पहले तारा बहन मोदक का नाम आता है। आपने उच्च उपाधियाँ पायी हैं, शैक्षणिक कार्य किया है, आपकी रचनाओं पर गाँधीवाद का असर है। आपने प्रमुख रूप से बाल साहित्य की रचनाएँ लिखी हैं। कुमारी मेरी सेम्युअलने 'मधुपा' नामक एक सुन्दर गीत पुस्तक लिखी है। श्रीमती दीपकबा देसाई ने गुजराती में सुन्दर कार्य किया है। उनकी गणना अच्छे कवयित्रियों में की

जाती है। 'रास बतीसी' सुन्दर रचना है। इनके उपरान्त **श्रीमती जयमन गौरी पाठक** जी का हिन्दी एवं गुजराती काव्य पर अच्छा प्रभुत्व है। आपने "सूरदास और उनकी कविता" 'गुण सुन्दरी के रास' 'रास विवेचन' आदि रचनाएँ की है। **श्रीमती ज्योत्स्ना शुक्ला आधुनिक गुजराती स्त्री कवयित्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं**। वह रूख की निवासिनी है, और कांग्रेस में कार्य करते हुए काव्य रचना करती हैं। **'आकाशना फूल'** (आकाश के फूल) उनकी सुन्दरतम कृति है।

आजकल गुजराती साहित्य में एक नई स्त्री कवयित्री के दर्शन हो रहे हैं जिनका शुभ नाम है **गीता परीख**। आप बहुधा फुटकर रूप से रचनाएँ करती हैं। कुमार नामक एक गुजराती मासिक में उनकी रचनाएँ प्रसिद्ध हुआ करती हैं। उनके गीतों में रस माधुर्य एवं लय-प्रवाह पायी जाती है। कई ऐसे गीत हैं जो लोकमुख से प्रसारित हुआ करते है।

गुजराती काव्य साहित्य पर किसी भी प्रकार के वादावाद का प्रभाव नहीं है। गांधी-साहित्य-दर्शन गुजराती कवयित्रियों का प्रेरक रहा है। महर्षि अरविंद का भी थोड़ा बहुत असर है। फिर भी संस्कृत, बंगला, अंगरेजी साहित्य की रस-धारा के साथ-साथ गुजराती काव्य में गुजरात की संस्कृति का अपनापन सर्वथा रहा है।



आन्ध्र की कवयित्रियाँ

भीमसेन 'निर्मल', एम०ए०

शाश्वत-सौरभ-सम्पन्न काव्य कुसुमों से माँ भारती की अर्चना कर, जीवन को सार्थक बनाने वाली आन्ध्र की कवयित्रियों की संख्या सैकड़ों में है। प्रख्यात् कविवर हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय के कथनानुसार आन्ध्र देश के प्रत्येक तीन व्यक्तियों में से एक व्यक्ति कवि है। उन कविकुमारों का लालन-पालन करने वाली माताओं का हृदय तो काव्य प्रतिभा से भरपूर होगा ही तथा अवसर और अवकाश मिलने पर, उन नारीमणियों ने अपनी लेखिनी से सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं और कर रही हैं। 'आन्ध्र कवयित्रुलु' नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में श्रीमती ऊटुकूरि लक्ष्मीकान्तम्माजी ने लगभग २०० कवयित्रियों की रचनाओं का परिचय कराया है एवं यह सिद्ध किया है "प्रेम से सिखाने पर ऐसी कोई विद्या नहीं है, जो स्त्रियाँ सीख न सकें।"

आन्ध्र साहित्य का प्रारम्भ नन्नयभट्ट (११वीं शती) से माना जाता है किन्तु यह निश्चित मत-सा है कि उनके पूर्व भी पर्याप्त मात्रा में अलिखित साहित्य लोकगीतात्मक साहित्य-अवस्थित था। इन लोक गीतों में स्त्री जीवन सम्बन्धी गीतों की संख्या भी अधिक है। 'लक्ष्मणजी की हँसी,' 'उर्मिला देवी की निद्रा,' 'सीता जी का दुख' आदि कथात्मकगीत, अनेक लोरियाँ आदि ऐसे गीत हैं जिनमें स्त्री हृदय के स्वाभाविक उद्गार भरे पड़े हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि इन गीतों की रूप-कल्पना करने वाली स्त्रियाँ ही हैं। महाकवितिक्कन्ना (१३-१४वीं शती के) के चचेरे भाई खड्गतिक्कन्ना की पत्नी चानम्मा और माता प्रोलम्मा के कहे पद्यों से स्त्रियों द्वारा किए गए छन्दोबद्ध साहित्य का श्रीगणेश माना गया है।

चानम्मा और प्रोलम्मा के बाद और आधुनिक युग से पहले (१९वीं शती तक) २५-३० कवयित्रियों की प्रसिद्ध रचनाएँ उपलब्ध हैं। प्राचीन युग की ये रचनाएँ प्रायः परम्पराबद्ध और काव्यरूढ़ियों से युक्त प्रबन्ध काव्य हैं। इन कवयित्रियों में से कुछ ने राजदरबारों में रहकर रचनाएँ प्रस्तुत कीं तो कुछ ने स्वान्तः सुखाय।

इस युग की कवयित्रियों की रचनाओं में वीर कंपराय की पत्नी गंगा देवी का 'मधुरा विजयमु' (संस्कृत काव्य), ताल्लपाकतिम्मक्क का 'सुभद्राकल्याणमु,' आतुकूरिमोल्लका 'रामायणमु,' तिरुमलांबा का 'वरदांबिका परिणयनु' (श्रीकृष्ण देवराय के सौतेले भाई अच्युतदेवराय और उनकी राजरानी के विवाह की कथा), तंजाऊर के प्रसिद्ध महाराज रघुनाथ के दरबार के रामभद्रांबा का 'रघुनाथाभ्युदयम्' (संस्कृत काव्य), मधुरवाणी का 'रामायण सार काव्य तिलक' (संस्कृत), रघुनाथ के सुपुत्र विजयराघव नायक के दरबार की रंगाजम्मा के 'उषापरिणय प्रबन्ध,' 'मन्नारुदास विलासमु' (प्रबन्ध और यक्षगान), इसी समय की मुद्दुपकनि का 'राधिका सान्त्वनमु,' तरिकुंडा वेंकमांबा के 'द्विपद भागवतमु,' 'राजयोग सारमु,' 'वेंकटाचल-माहात्म्यमु' उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'मधुराविजयमु,' 'रघुनाथाभ्युदयमु' काव्य होते हुए भी ऐतिहासिक महत्व के ग्रन्थ हैं। मोल्लकृत रामायण में स्त्री सुलभ सहानुभूति के कारण सुन्दर कांड अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ा है। मोल्ल का युद्ध वर्णन भी उत्कृष्ट है। युगीन परम्परा (रीतिकालीन) के अनुसार मुद्दुपकनि ने उत्कट श्रृंगार काव्य की रचना की

है। राधा द्वारा किए गए इला और श्रीकृष्ण के विवाह के इतिवृत्त को लेकर, पलनि ने स्त्री हृदय का मार्मिक चित्रण किया है। 'राजयोग सारमु' में कपिलमुनि और देव हूति के संवादों के रूप में वेंकमांबा ने गहन दार्शनिक विषयों का वर्णन सरस ढंग से किया है। इस प्रकार इस युग की कवयित्रियों ने संस्कृत और तेलुगु में श्रेष्ठ काव्यों की रचना की है।

आधुनिक काल के प्रारम्भ में श्री वीरेशलिंगम पन्तुलुजी के नवजागरण की शंखध्वनि से जागृत होकर, आन्ध्र प्रान्त की स्त्रियों ने काव्य रचना और गद्यरचना में अत्यधिक भाग लिया है। स्त्री समाज के उद्धार के लिए किए गए प्रयत्नों में स्त्री शिक्षा का प्रचार मुख्य है। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार कर, उन्हें रूढ़िमुक्त करने के लिए पन्तुलुजी ने अथक परिश्रम किया था। इस नवजागरण युग की रचनाओं में भक्तिपरक तथा प्रबोधात्मक काव्य ही अपेक्षाकृत अधिक संख्या में हैं। स्त्रियों के लिए स्त्रियों द्वारा चलाए गए पत्र पत्रिकाओं में 'अनसूया' (श्रीमती विजमूरि वेंकटरत्नम्मा) 'हिन्दू सुन्दरी' (बालांत्रपु शेषम्मा),' 'सावित्री' (पुलुगुर्त लक्ष्मीनरसमांबा) प्रसिद्ध हुए थे।

श्रीमती कोटिकलपूडि सीतम्माजी की रचनाओं से इस युग का प्रारम्भ माना जाता है। सन् १९१३ में बापट्ला में सम्पन्न प्रथम आन्ध्र महासभा में आयोजित महिला सभा की अध्यक्षा रहीं आप। 'साधुरक्षक शतक,' 'अहल्याबाई' (महाराष्ट्र की प्रसिद्ध वीरनारी),' पद्य भगवद्गीता,' 'भक्ति-मार्ग,' 'स्त्रीधर्म' आदि आपकी रचनाएँ हैं। भंडारू अच्चमांबा ने 'अबला सच्चरित्रमाला' के नाम से प्रथम ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की है जिसमें पुराणप्रसिद्ध नारियों के अतिरिक्त देश-विदेश की प्रसिद्ध नारियों की जीवन गाथाएँ दी गई हैं। बुरीरा सूरमांबाके 'भारतीस्तवस्तबकमु', 'हरिनाथ,' 'नदनार,' 'हरनाथ' नामक शतक, श्रीकृष्ण बोधामृत,' 'सावित्री-विजयमु,' वेमूरि शेषमांबा के 'नाग्नजिती परिणयु' और 'माधवरातकमु,' मोसलिकंटि रामायम्मा का 'मीराबाई' (काव्य), सीरमु सुभद्रांबा के वेंकटेश्वर और श्रीराम शतक,' 'उत्तररामचरित्र,' 'सुभद्रारामायणमु,' 'शुकजनक संवाद' आदि काव्य और 'उत्तराविलापमु,' 'रुक्मिणीसंदेशमु' आदि खंडकाव्य, कर्रा सुब्बलक्ष्मम्मा का 'चन्द्रकलाविलासमु,' पुलुगुर्त लक्ष्मीनरसमांबा का 'महिला कला बोधिनी' आदि इस समय की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त ज्ञानांबा, आचंट सत्यवतम्मा, जुलूरि तुलसम्मा, दोंति राजरत्नम्भा के नाम भी उल्लेखनीय हैं। वीरनेताओं के संस्मरण, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का उद्बोधन, अतीत का गौरव गान आदि इस समय के काव्यों के प्रमुख विषय बने हुए हैं।

'कविता विशारद' के नाम प्रख्यात् श्रीमती कांचनपल्ली कनकांबा जी ने 'श्री रंगशतक,' 'जीवयात्रा,' 'पद्यमुक्तावली,' 'तोमालिय' आदि काव्यों की रचना की है। गुडिपूडि इन्दुमती देवी के दस-बारह काव्य ग्रन्थों में 'लक्षण परिणयमु,' अंबरीय बिजयमु' श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य हैं। उन्होंने 'गांधी कीर्तन' नाम से गान्धी जी पर सुन्दर गीत भी रचे हैं। 'कविराणी' चिल्कपाटि सीतांबा के 'पद्मनी परिणयमु' और अनेक मुक्तक काव्य, कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा के 'द्रौपदी मानसंरक्षणमु,' 'सत्या द्रौपदी संवादमु', 'लक्ष्मी शतकमु,' 'कविकल हंसी' चेब्रोलु सरस्वती देवी का 'सरस्वती रामायणमु', कल्लूरि विशालक्षम्भा के 'चन्द्रमती चरित्रमु', 'दमयंती चरित्रमु', 'स्वराज्य लक्ष्मी परिणयमु', गंटि कृष्णवेणम्मा केह 'गिरिजा कल्याणमु' तथा सैरंध्री, निर्वेद, स्थैर्य, तेलगुजननी, पवनदूत आदि मुक्तक उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त कमलावती देवी, सत्यवती देवी, अन्नपूर्णम्मा, भारती देवी आदि अन्य प्रसिद्ध कवयित्रियों ने भी अनेक सुन्दर रचनाएँ की हैं। इस समय की एक उल्लेखनीय विशेषता 'कवयित्री-युग्म की है। (अर्थात् दो कवियों का मिलकर एक काव्य ग्रन्थ की रचना करना। एक कवि पहले चरण की रचना करता है तो दूसरा दूसरे चरण की। इसी क्रम से सम्पूर्ण काव्य लिखा जाता है। शायद ऐसी प्रथा आन्ध्र प्रदेश में ही है।) ऐसी कवयित्रियों में गिड्डुगु लक्ष्मी कान्तम्मा और जोन्नलगड्डा शारदा देवी, द्रोणंराजु लक्ष्मीबायम्मा और पोणका कनकम्मा प्रसिद्ध हैं।

इस युग में श्री के० एन० केसरी नामक महानुभाव ने मद्रास में 'गृह लक्ष्मी' नामक मासिक-पत्रिका की स्थापना की और

प्रतिवर्ष श्रेष्ठ लेखिका को 'स्वर्ण-कंकण' प्रदान कर, स्त्रियों में लेखन शक्ति को प्रोत्साहित किया।

श्रीमती स्थानापति रुक्मिणम्मा के काव्यों से कवयित्रियों की रचनाओं पर भी 'भाव कविता' (छायावाद) के प्रारम्भ के दर्शन होने लगते हैं। फूलों की माला, प्रार्थना, कादंबिनी आदि काव्यों में छायावदी युगीन प्रवृत्तियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

मदमंचि अनन्तम्मा के श्रृँगार-वीर रस पूर्ण 'मांचाला', केवल वीर रस युक्त 'नायकुरालु', सरस कथा समन्वित 'सीता का विवाह', प्रकृति वर्णनात्मक 'वर्षा ऋतु', 'ग्राम गीत' आदि काफी प्रसिद्ध हो चुके हैं।

पुट्टपर्ति कनकम्मा (प्रसिद्ध कवि नारायणाचार्य की गृह लक्ष्मी) के 'यशोधरा', 'दुखिता सीता' (वाल्मीकि के आश्रम की) आदि में काव्य की उपेक्षिताओं की, 'जीर्ण विजयनगरमु', 'हम्पी विरूपाक्ष के आँगन का उपल-रथ' आदि में अतीत के गौरव की तथा 'कस्तूर बा' में वर्तमान स्त्रियों के जीवन एवं कर्त्तव्यों की सुन्दर झाँकियाँ मिलती हैं।

बुर्रा कमला देवी ने देशभक्ति पूर्ण तथा करुण रसप्लावित कई मुक्तक काव्यों की रचना की है।

चुंडूरू रमा देवी के 'राघवेश्वर शतकमु', 'फूलों की माला', नाकमु सुशीलम्मा के गांधीवादी गीत भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।

'भाव कविता' रचना में प्रसिद्ध होने वाली कवयित्रियों में तल्लाप्रगडा विश्व सुन्दरम्मा, सौदामनी (बसवराजु राज्य-लक्ष्मम्मा), चावलि बंगारम्मा के नाम अत्यन्त आदर के साथ लिए जा सकते हैं। एक समय था, जब इनकी भाव कविताओं की धूम मची हुई थी। सभी प्रसिद्ध काव्य संग्रहों में इन कवयित्रियों की रचनाएँ संगृहीत हैं। सुन्दरम्मा के 'कीर', 'अंधकार', 'स्नेहरुचि', 'कुपित विधि', सौदामनी के 'दुर्भाग्य', 'स्वागत', बंगारम्मा के 'मेंढक की शादी', 'वह पहाड़', 'अंधकार', 'कार्तिक की पूनम', आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। सुप्रसिद्ध कविवर श्री रायप्रोलु सुब्बाराव जी की सुपुत्री ललिता जी ने कई सुन्दर काव्य खंडों की रचना की है।

इस युग की अन्य कवयित्रियों में चर्ल सुशीला देवी ('बालिका') राजेश्री ('लवणसागर मंथन' (नमक सत्याग्रह के बारे में), आदूरि लीलावती ('प्रतीक्षा'), नल्लूरि रत्नमांबा ('मेरी जन्म भूमि') कोलूरि गौरी देवी ('सौदामनी') चर्ल नगराज कुमारी ('बोब्बिलि का शेर'), वट्टिकोंडा विशालाक्षी ('जलद !', 'भृङ्ग !'), जयंति लक्ष्मी मंगतायी ('अभ्युदय' वेंपटि अन्नपूर्णम्मा ('विरहिणी'), पर्सा जानकी देवी ('रसांजली', 'मधुर श्री'), नेभानी भारती रत्नाकरांबा आदि के नाम उल्लेख्य हैं।

'भाव कविता' के क्षेत्र में कवयित्रियों ने सुन्दर काव्य खंडों की रचना की है किन्तु कोमल हृदय वालों कवयित्रियों ने 'अभ्युदयवादी' (प्रगतिवादी) रचनाएँ अभी तक नहीं की हैं। आशा है, भविष्य में भी वे पाठक समाज का कोमल एवं मनोज्ञ भावनाओं से पूर्ण रचनाओं से ही स्वागत करती रहेंगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्हें शिशुओं को पालने में झुलाने वाली, बालकों को थपथपाकर सुलाने वाली, प्राणप्रिय का तनमन से लालन-पालन कर स्वर्ग सुख चखाने वाली, उन कान्ताओं के कोमलकरों से निःसृत काव्यों के सौरभ से समग्र आन्ध्र साहित्य सुवासित है। माता के रूप में, सहोदरी के रूप में, प्राण प्रिया के रूप में, पुरुष को जीवन प्रदान करने वाली नारी काव्य क्षेत्र में भी अपना सिक्का जमाने में सफल रही है और आशा है भविष्य में भी इसी प्रकार साहित्य की सेवा करती रहेंगी।



काव्य जगत में तमिल महिलाएं

एम० एस० कल्याण "सुन्दरम्"

तमिल काव्य तमिल साहित्य की प्राचीनता भारत के लिये गौरव की बात है। कर्ण-परम्परा के अनुसार तमिल साहित्य की आयु हजारों वर्षों की हैं; यह निश्चित है कि वह ढाई हजार वर्ष से कम पुरानी नहीं है। उन दिनों साहित्य और "काव्य" पर्यायवाची शब्द थे।

तमिल का सर्वप्रथम ग्रन्थ जो उपलब्ध है, उसका नाम है **"तोल्काप्पियम्"**। इस शब्द का अर्थ है—प्राचीन तमिल ग्रन्थों की रक्षा करने वाला ग्रन्थ। इसके रचयिता का सही नाम ज्ञात नहीं है। उन्हें हम "तोल्काप्पियर्" नाम से जानते हैं। उनका जीवन काल लगभग ३५० ईसा पूर्व बताया जाता है। सम्भव है कि वे दो, तीन सदियों के बाद के भी हों। लेकिन विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनकी रचना में व्याकरण सम्बन्धी सूत्रों के उदाहरण के लिए ऐसे पुराने ग्रन्थों से उद्धरण दिये गये हैं जो अनुपलब्ध हैं—अर्थात्, कई ग्रन्थों और ग्रन्थ-कर्ताओं के नाम हमें "तोल्काप्पियम्" के द्वारा ही ज्ञात होते हैं।

तोल्काप्पियर् अगस्त्य ऋषि के बारह शिष्यों में प्रधान माने जाते हैं। लेकिन इन दिलचस्प बातों से हमें इस समय विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह जानना पर्याप्त है कि : (अ) तमिल साहित्य की आयु दोहजार वर्ष से अधिक है, और (आ) इस भाषा में निरंतरता या अविच्छिन्नता का गुण है—अर्थात्, प्राचीन ग्रीक (यूनानी) या लैटिन और आधुनिक ग्रीक या इटैलियन में क्रमशः जो अन्तर है, जिसके कारण प्राचीन ग्रीक या लैटिन मृत या अप्रचलित कहलाती है, वह अन्तर या अ-श्रृंखलता तमिल में दिखायी नहीं देती। हाँ, कई शब्दों के रूप में परिवर्तन अवश्य हुये हैं, साथ ही हजारों नये शब्दों का (कभी-कभी हल्के रूप-भेद लेकर-ड० "रामः" = "रामन्" या "इरामनं" "श्लोकों" = "शुलोकम्") प्रवेश हुआ है, वाक्य रचना प्रायः सरल हो गयी है; लेकिन इसका मतलब बिल्कुल यह नहीं है कि आधुनिक तमिल और ईस्वी पूर्व तमिल अलग-अलग चीजें हैं।

तमिल् लिपि के बारे में भी एक व्याख्या आवश्यक है। दक्षिण की (द्राविड) भाषाओं के स्वरों में "ए" और "ओ" के ह्रस्व रूप भी हैं। **तोलकाप्पियर** का पहला अक्षर ह्रस्व है। द्राविड भाषाओं के ऐसे शब्दों को नागरी में यथार्थ "अक्षरांतर" करने के लिये ऐसा एक चिन्ह आवश्यक है जिसके प्रयोग से हम ह्रस्व "ए" और ह्रस्व "ओ" (तथा ह्रस्व एकार-योग और ह्रस्व ओकार-योग) लिख सकें। साथ ही कम से कम दो और व्यंजनों की खास जरूरत है। हिन्दी में दन्त्य "ल" है; संस्कृत, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में मूर्धन्य "ल" है; तमिल में इसी परिवार का एक तालव्य अक्षर भी है, जिसके लिये नागरी में एक चिन्ह की आवश्यकता है। मैं इस लेख में ल् से काम चला रहा हूं; कुछ लेखक "ष" का इस्तेमाल करते हैं, जो अनुचित है; अंगरेजी (रोमन) लिपि में अक्षरांतर करते समय का प्रयोग होता है। इसी तरह, तमिल् में एक तालव्य "र" भी हैं।

इसी सिलसिले में एक और विषय भी ध्यान में रखने का है। संस्कृत और तमिल में "ऐ" और "औ" शुद्ध-स्वर हैं; परन्तु हिन्दी और उर्दू के उच्चारण के अनुसार वे मिश्रित-स्वर हैं। यही कारण है कि जिन अंगरेजी शब्दों को हम संस्कृत या द्राविड लिपियों में "है स्कूल" या "हौस" करके लिख सकते हैं, उन्हीं का रूप हिन्दी में "हाई स्कूल" या "हाउस" हो जाता है। तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में ऐ और औ का उच्चारण संस्कृत–जैसा है।

तमिल लक्ष्य तथा लक्षण ग्रंथों से भरपूर है। यह बताया जा चुका है कि सारे प्राचीन ग्रन्थ काव्य रूप में थे। (नर) लेखकों की अपेक्षा लेखिकाओं की संख्या कम थी। फिर भी कोई ४० कवयित्रियों के बारे में हमें कुछ जानकारी है। यह वाक्य जरा सम्भल कर लिखना पड़ता है, क्योंकि सच्चाई के साथ दिलचस्प दन्त-कथायें और ऊटपटांग बातें भी स्थान पा चुकी हैं। इन चालीस में सर्वोत्कृष्ट व सर्वतोमुखी थी **औवैयार्** (या अव्वैयार)।

उन चालीस लोगों में रानियाँ, राजकुमारियाँ, चारण-भाट-गायिकाएँ, तथा किसान-बढ़ई-जुलाहा-कुम्हार आदि की पुत्रियाँ थीं। इनमें बहुतों का असली नाम अब ज्ञात नहीं है; कई कारणों से प्राप्त उपनामों से ही वे प्रसिद्ध हैं।

इनकी कविताएँ दाम्पत्य प्रेम और जीवन, आदर्श गृहस्थी, युद्धों का अ कार-युक्त, विशेषतः अतिशयोक्ति-युक्त, वर्णन, दान वीरता, प्राकृतिक सौन्दर्य, ईश्वर भक्ति इत्यादि विविध विषयों पर थीं। धर्मार्थ-काम-मोक्ष का गम्भीर अनुभव इन कवयित्रियों को रहा है। यहाँ एक खास बात बतलानी है। बहुत प्राचीन काल में तमिल के काव्य-शास्त्र के अनुसार साहित्यिक विषयों के दो ही विभाग थे—"अहम्" और "पुरम्"। दाम्पत्य प्रेम और गृहस्थ धर्म अहम् के उपविभाग थे, और बाकी सब अनुभव पुरम् के। बाद को ये ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चार शीर्षकों में विभक्त किये गये। विषय-संपत्, शब्द-संपत्, स्पष्टता, सरलता, वाणि-शक्ति, माधुर्य, उपमाओं का औचित्य या साहसी अनोखापन, इत्यादि गुणों के कारण उन कविताओं को अमरत्व मिला है।

पेरुंकोप्पेण्डु ये राजा भूत पाण्डियन् की रानी थीं। जब राजा चल बसा, ये उनके साथ सती होना चाहती थीं। तब कई हितैषियों ने भाँति-भाँति के कारण बता कर उन्हें रोकना चाहा। रानी ने एक जोश भरी कविता से उन्हें जवाब दिया जो निन्दास्तुति अलंकार का एक उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। और यह कहकर कि प्रफुल्ल कमल और आग की लपटें मेरे लिये समान हैं–चिता पर बैठ गयीं– लाल कमल पर विराजमान लक्ष्मी देवी के सदृश।

पारि नामक एक छोटा पहाड़ी राजा शांतिमय जीवन बिता रहा था। वह नामी दानी था। चेर, चोल, पांड्य प्रदेशों के बड़े राजाओं ने किसी तुच्छ जलन के कारण धोखे से पारि को मरवा डाला। पारि की दो विदुषी बेटियाँ थीं—**अंगवै** और **संगवै**। उन्हें घर छोड़कर कहीं और दुःखमय जीवन बिताना पड़ा। कुछ दिनों बाद जब पूर्णचन्द्र के प्रकाश में उनके पूर्वजों के महल और किले सुदूर पहाड़ पर उन्हें दिखायी दिये, उन युवतियों ने एक आँसू भरे गीत का सृजन किया। जिसका भावार्थ है : हे चन्द्रमा, चार सप्ताह हुए, इसी तरह तुमने उन पहाड़ों पर बड़े प्रेम और बड़ी उदारता से ज्योतिवर्षा, अमृत वर्षा की। हमने समझा, हाँ, ठीक तो है, यहाँ के शांतिमय जीवन और धर्म राज्य पर ये आनन्द-दाता रीझ गये हैं। अब तो वहाँ अंधेर है, तीन सिंहों ने मिलकर एक हिरण को धोखे से हड़प लिया, हम बेचारियों पर घोर अन्याय किया गया है, पूर्वजों की प्यारी राजधानी पति-हीन है, हमारा सब से बड़ा दुःख देव-तुल्य पिता को खो बैठना है, फिर भी उस प्रदेश को तुम पहले जैसे उज्ज्वल कर रहे हो। कैसे भावहीन, कैसे कठोर, कैसे उदासीन हो तुम!" केवल बीस ही हृदय स्पर्शी शब्दों में ये विचार बड़ी खूबी से प्रकट किये गये हैं।

ओक्कूर मा सा त्तियार मरवर,—यानी दक्षिण के एक क्षत्रिय कौम की किसी माँ की वीरता का सफल चित्रण इस कवयित्री ने चित्रित किया है। शब्द और गति ऐसे उपयुक्त हैं कि पद्य सुनकर "कुबड़ा एक दम तन कर खड़ा हो जायगा और जो जन्म से कायर है वह भी शस्त्रशाला को दौड़कर बरछा-भाला उठा लायगा।"
किसी शत्रु राजा से घोर युद्ध हो रहा है। कहीं भी देखो,

अंगहीन शूरवीरों की चिल्लाहट; मिट्टी में मार्ग ढूंढ कर मंद गति से रेंगने वाले रक्त स्रोत; लाशों के ढेर ! लालची निगाह से घूरने वाले घृणित भूत-पिशाचों के भयंकर नाच ! नरक-से बदतर था वह रण-क्षेत्र। इस घमासान युद्ध के पहले दिन की लड़ाई में इस क्षत्राणी के बड़े भाई ने शत्रु के एक हाथी से भिड़ कर युद्ध देव की भूख जरा शांत की। दूसरे दिन उसके वीर पति यम लोक की पगडंडी को चौड़ा और स्पष्ट कराने के लिये सैकड़ों शत्रु सिपाहियों को तलवार के घाट उतार कर अंत में खुद उसी रास्ते पर चले। तीसरे दिन भी रण भेरी का तुमुल नाद गूँज उठा। तब उस स्त्री ने क्या किया ? क्या, अपने भाई और पति के हृदय-भेदक वियोग का प्रलाप करके घर के किसी अंधेरे कोने में गठरी सी पड़ी थी ? हरगिज नहीं। अपने इकलौते बालक को, जो उसके सारे प्रेम और सारी आशाओं का केन्द्र था। पास बुलाकर, उसने उसको रण-क्षेत्र की पोशाक पहनायी, अस्त्र-शस्त्र पकड़वाये, वीरोचित रोमांचकारी उपदेश दिए और अपने आँसूओं को जबरदस्ती रोक कर उससे-हमेशा के लिये विदा ली। तब **ओक्कूर मासात्तियार** निन्दा स्तुति में कहती हैं। "धिक्कार ऐसी अस्वाभाविक माता पर ! धिक्कार ऐसी अनुचित सूझ पर !" साथ ही उस "सर्वज्ञानी" ईश्वर की भी अवहेलना की है जिसे ऐसी पापिनी, पाषाण हृदय वाली की कोख न भरनी चाहिये थी।

काक्कै-पाडिनियार—इनका एक गीत भी इसी दरजे का है। उसी मरवर जाति की किसी बूढ़ी वीरांगना ने मैदान से लौटने वाले सिपाहियों से अपने बेटे के बारे में दरयाफ्त किया। जवाब मिला—"शर्म की बात है, बड़ी माँ ! मालूम होता है, वह लड़ाई से भाग रहा था, और शत्रु ने उस पर बरछी फेंकी। पीठ में सख्त चोट खाकर वह ठंडा पड़ा है।" वृद्धा भभक उठी। वह बोली—"झूठ ! सरासर झूठ ! इस वंश के लिये यह असंभव है। यदि यही सच निकले तो मैं अपने स्तनों को, जिन्होंने उसे दूध पिलाने का पाप किया था, काट डालूँगी।" ऐसी भीषण प्रतिज्ञा कर, वह तलवार सहित लड़ाई के मैदान गयी। हर एक लाश को उसने उलट-पलट कर देखा। उसके बेटे का शरीर मिला। पीठ पर एक छोटा घाव था। वह मूर्छित सी हुई, लेकिन जब उसने शरीर को उलट कर देखा तब मालूम हुआ कि बरछी छाती को फाड़ कर पीठ से जरा बाहर निकली है। माँ की आँखें आँसू बहा रही थीं। साथ ही, उसका हृदय हर्ष से नाचने लगा। **काक्कै-पाडिनियार** ने इस घटना को अमर रूप दिया है।

याद रहे कि ये सब दो हजार साल से पहले की बातें हैं। मरवर कुल की ये स्त्रियाँ बिलकुल अपढ़ थीं। उनकी वीरता और त्याग-शीलता उनके स्वाभाविक गुण थे। उन में से कुछ घटआओं को गुणग्राही कवियों ने काव्य रूप दिया है।

कारैक्कल अम्मैयार—ये शिवजी के प्रसिद्ध ६३ भक्तों में—"तिरसठ शिव-भक्तों" में—एक थीं। इनका जन्म एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ था। ईनका पहला नाम था, **"पुनितवती"** कारैक्काल अम्मैयार उपनाम है : उसका अर्थ है—"कारैक्काल नगरी की पूज्या माता जी"। यह दंत कथा प्रचलित है कि एक बार शिवजी ने इन्हें "मैया मेरी" कहकर पुकारा।

इन के बारे में और एक कहानी प्रसिद्ध है। गृहस्थी के आरंभ के दिनों में इनके पति परमदत्तर ने एक बार इन को दो बढ़िया आम दिये थे। उस दिन किसी शिव-भक्त ने दोपहर के भोजन के बहुत पहले ही आकर बड़े आग्रह से कहा बेटी, किसी न किसी तरह मेरी भूख मिटाओ। एक मिनट के बाद उस युवतीं ने दोनों में से एक आम उन्हें दे दिया। मेहमान सन्तुष्ट होकर चला गया। भोजन के बाद जब **पुनितवती** ने दूसरा आम काट कर अपने पति को समर्पित किया, उसने उसे बहुत ही बढ़िया पाया और कहा, थोड़ा और खाने को जी चाहता है दूसरा आम भी काटो, हम दोनों खायेंगे। स्त्री जरा घबरायी और भीतर जाकर उसने शिव जी से प्रार्थना की। भक्तवत्सल प्रभु ने उसी किस्म का एक आम उसके पास पहुंचा दिया। ईश्वर-सानिध्य के अनुभव से गद्गद् होकर वह लौटी और उसने पति को संतुष्ट किया। बाद को जब परमदत्तर को सच्ची बात मालूम हुई, उसे ज्ञात हुआ कि **पुनितवती** सामान्य स्त्री नहीं है, उसने दाम्पत्य जीवन बिताना अनुचित है, इस लिये वह घर-द्वार छोड़ कर पांड्य राज्य जा पहुंचा जहां उसकी दूसरी शादी हुई। **पुनितवती** कठोर तपस्या कर के कैलाश जा पहुंचीं।

वहाँ शिव जी की आज्ञा पाकर वे तमिल प्रांत में तिरुवालंगाडु के प्रसिद्ध शिव मंदिर आ पहुंची और देवपूजा तथा लोक सेवा में अपने दिन बिताने लगी। इनके ग्रन्थ स्वानुभव तथा ईश्वर प्रेरणा से उज्जवल और शक्ति-भरे हैं।

श्री आण्डाल्—ये इसी दर्जे की वैष्णव भक्त थीं। इनका असली नाम था 'को दै'। इनका जन्मईसा के बाद नवीं सदी में श्री वल्लिपुत्तूर में हुआ था। इनके पिता, प्रेरियाल्वार, मंदिर के पुजारी थे। कोदै नित्य पूजा के लिये सुन्दर माला तैयार करती और उसको आप पहन कर विष्णु भगवान से ऐक्य होने का अनुभव करती थीं। जब एक दिन पिता को यह मालूम हुआ कि प्यारी बेटी ने माला को दोषयुक्त कर दिया है, उन्हें असीम क्रोध व दुःख हुआ। मगर जब कोदै ने घबरा कर बताया कि वह तो नित्य की बात थी, उनकी हालत और भी शोचनीय हो गयी। जल्दी-जल्दी में और एक माला तैयार करके और थर-थर कांपते हुए वे मंदिर में उपस्थित हुए। तब भगवान् ने आज्ञा दी—कि यह निःसार माला दूर फेंको। को दै का निर्माल्य ही मुझे प्रिय है।" पुजारी ने आश्चर्यान्वित होकर आज्ञा का पालन किया। उस दिन से कोदै का नाम "चूडि कोडुत्तनाच्चियार्" (अर्थात्, "निर्माल्य-दा परम भक्त) पड़ा। भक्तों के मन की रानी हो जाने के कारण उनका नाम "आण्डाल" (शासिका) भी पड़ा। बाद को वे श्रीरंगम् गयीं और रंगनाथ स्वामी की मूर्ति में विलीन गयी हो।

इनकी "तिरुमोलि" और "तिरुप्पावै" प्रसिद्ध हैं। मार्ग-शीर्ष मास में प्रभात फेरियाँ विशेषतः "तिरुप्पावै" को भक्ति-भाव से गाकर भजन करती हैं। सरलता, माधुर्य्य और गोपिका-भाव की स्वाभाविकता इनके लोकप्रिय होने के मुख्य कारण हैं। इनका अनुवाद करना अनुचित और असाध्य सा है। किसी सामान्य कैमेरा से इन्द्र-धनुष की फोटो उतारनेके यत्न के समान है—तिरुप्पावै का भाषांतर करना। जो स्थान मीरा का उत्तर में है वही आण्डाल का तमिल प्रांत में है। शंकर-भाष्यम् का अनुवाद या गणित के पहाड़े का अनुवाद हम कर सकते है, लेकिन मीरा या आण्डाल के रहस्यमय उद्गार…?

अव्वैयार—अव्वै या औवै का अर्थ दादी, नानी या बुढ़िया है; और "यार" आदर-सूचक अंतिम-प्रत्यय पद है। जिस प्रसिद्ध कवयित्री कवि को हम अव्वैयार के नाम से जानते हैं। उनका वास्तविक नाम हमें ज्ञात नहीं है। वृद्धावस्था में जब वे परिव्राजिक उपदेशिका के रूप में प्रसिद्ध और लोक प्रिय हुईं, तब शायद लोगों ने उन्हें यह उपनाम दिया हो। सच बात तो यह है कि इनके बारे में हम निश्चित रूप से बहुत ही कम जानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि 'सच्ची' अव्वैयार तमिल साहित्य के "संघ-काल" में (ईसा पूर्व दो तीन सदियों) जीवित थीं, और दूसरी, नकली अव्वैयार इक्कीसवीं-बाईसवीं सदियों की थीं। कुछ लोगों का मत यह भी है कि नकली "अव्वैयार" कई थीं। जब कभी किसी कवयित्री ने (शायद नर-कवि ने भी) कुछ काम की चीज लिखी, उसने उसे अव्वैयार की बनी हुई बता दी—ताकि वह कृति जीवित रहे, और उसका खूब प्रचार हो। आधुनिक सभ्यता का अनुभव है कि धूर्त लेखक दूसरों के ग्रन्थ चुरा लेते हैं या अनुवाद करते हैं और लाभ उठाते हैं। लेकिन उस जमाने में फुटकर लेखक अपना नाम छिपा कर पूरा यश (या अपयश) किसी "व्यास" या "कबीर" या "अव्वैयार" को दे देते थे। यह हुई "प्लेजियरिस्म्" या ग्रन्थ-चोरी की उल्टी प्रथा।

"संघ काल" की अव्वैयार ज्ञानी, तेजस्वी, तपस्वी और विदुषी थीं। वे थीं राजाओं और आम लोगों की सफल और क्रियाशील शिक्षक, उपदेशक व सुधारक। उनकी रचनायें बाद के संकलनों के द्वारा हमें मिल रही हैं। उनकी संख्या कुल ५१ हैं। निःसन्देह इससे अधिक संख्या के पद लुप्त हो गये हैं। दो हजार से अधिक वर्ष गुजर जाने पर भी, उनकी निपुण व प्रवीण कवितायें पढ़कर उनकी व्यावहारिकता तथा ताजगी से लोग प्रभावित होते हैं। उनकी भाषा अर्थ भरी और ओजस्वी होते हुए अपेक्षाकृत सरल है। इनके बाद के कई कवि सरलता को एक दोष सा समझते थे। उदाहरणार्थ—ओट्टक्कूत्तर् (११, १२वीं सदी) नामक एक प्रथम श्रेणी के कवि के बारे में कहा जाता है कि वे एक बार किसी से मिलने गये थे जो किसी कारण से उनसे मिलना नहीं चाहता था। (शायद वह उनके परिचय की

एक गणिका थी।) दरवाजा अन्दर से बन्द था, और किसी ने उनकी परवाह न की। ओट्टक्कूत्तर ने एक नये गीत द्वारा उसको खुश करना चाहा। पत्थर-कंकड़ वाला गीत सुनकर उसने, यह कह कर कि "ओट्टक्कूत्तर के (कर्कश) गीत के लिये और एक कुण्डी!" द्वार को और जोर से बन्द कर दिया।

अव्वैयार की बात ऐसी न थी। उनके लिये सब द्वार खुले थे। उनके कहने पर एक छोटे राजा ने दो गरीब और अच्छी लड़कियों से शादी कर ली। कवयित्री के आह्वान पद्य (जो आज्ञा के बराबर थे) पाकर दक्षिण के प्रधान राजा लोग विवाहोत्सव में उपस्थित हुए।

अव्वैयार संघ-कालिक कवि बाणर की समकालीन मानी जाती हैं। चेर-चोल पांड्य तीनों राज सभाओं में उनका रोब जमता था। मगर उनका प्रधान संरक्षक एक नामी दानवीर सरदार थे जिनका नाम था अदियमान् नेडुमान् अञ्जि था। कहा जाता है कि अदियमान को शिव जी से एक आँवला मिला जिसको खाकर आदमी अमरत्व प्राप्त कर सकता था। और अदियमान ने उसे अव्वैयार को भेंट कर दिया। उसने सोचा होगा कि चिरंजीवी राजा की अपेक्षा चिरंजीवी ज्ञानी अधिक मूल्यवान है। कुछ लोगों का मत है कि अव्वैयार आज भी जीवित हैं—जिस कारण "बहु-अव्वैयार" वाली कल्पना अनावश्यक सिद्ध होती है। कुछ भी हो अव्वैयार सूक्ष्म रूप से अमर तो हैं ही। अव्वैयार ने दाता को कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिखा कि मैं चिर काल रहूंगी, मगर तुम स्वयं शिव बन जाओ।

अव्वैयार का व्यावहारिक ज्ञान भी उच्च श्रेणी का था। अदियमान का तोंडेमान नामक एक सरदार शत्रु था। एक बार कवयित्री राजदूत बनकर तोण्डेमान के पास गयीं। तोण्डे मान ने अपना आतंक जमाने के लिये मेहमान को अपनी शस्त्रशाला दिखलाया। सचमुच वह अति भयंकर था। लेकिन अव्वैयार डरी नहीं। उन्होंने कहा—"अच्छा तो है। अदियमान की शाला में तुम ऐसी चीजें देख नहीं पाओगे। क्योंकि उनके हथियार या तो लड़ाई के मैदान में अथवा शस्त्र शिक्षा के मैदान में अपना काम कर रहे हैं या लुहारों के यहाँ मरम्मत के लिये पड़े हैं। वे अजायब घर की सामग्री नहीं बनती। जो कभी-कभी शस्त्र शाला में जगह पाते हैं। उन पर जंग नहीं लगने पाता, जैसे कि यहाँ। यह सुनकर तोण्डेमान होश में आया।

अदियमान की शूर वीरता तथा दान वीरता पर अव्वैयार की कई कवितायें हैं। सरदार का वर्णन, जब वे सख्त घायल होकर युद्ध क्षेत्र में खड़े थे, उत्कृष्ठ है। उनकी मृत्यु पर गाये हुए शोक-गीत में कल्पना की प्रचुरता है। "अदियमान की छाती पर लगी हुई बरछी ने उनके लिये तो स्वर्ग का द्वार खोल दिया; लेकिन उस क्रूर हथियार ने चारण-भाट जनों के सिर भेद दिये, याचकों के हाथ काट डाले, आश्रितों को नेत्र-हीन कर दिया, विद्वान्-कवियों को अवाक् कर डाला, भाट परम्परा तथा गुणग्राही दाताओं की परंपरा दोनों एक साथ अब अस्त हो गयी हैं..." इत्यादि। अदियमान की दहन-क्रिया पर भी अव्वैयार ने हृदयस्पर्शी पंक्तियाँ लिखी थीं।

अव्वैयार ने (या अव्वैयारों ने) प्रेम, वीरता, राजनीति, व्यक्तिगत सुधार, सामाजिक सुधार, आदि भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखा है। राजाओं के कई ऐश्वर्यों में नेक आदमी को उच्च स्थान दिया गया है। पृथ्वी को सम्बोधित करके वे कहती हैं :—

"ऐ धरती माता, तुम विषम पर्वत हो या समतल भूमि, ऊँची हो या नीची, इनसे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। लेकिन जहाँ अच्छे लोग रहते हैं, वहीं तुम सुसंपन्न व सुखी रहोगी।"

उनका कहना है कि राजाओं का आदर (उनके देशों की सीमाओं से) सीमित है; परन्तु गुणशील विद्वान पुरुष संसार भर में आदर पाता है।

इनके गीतों में देश का उल्लेख बार बार आता है। वहाँ देश से मतलब तमिल प्रांत या भारत से नहीं, बल्कि सारी पृथ्वी

से यह पूरा पूरा स्पष्ट है—"**लोकाः समस्ताः सुखिनाः भवन्तु**" का प्रचार इन्होंने किया है।

अव्वैयार द्वितीय—ये सुप्रसिद्ध तमिल "रामायणम्" के रचयिता कम्बर् के समकालीन (१२-१३ वीं सदी) मानी जाती हैं। आजकल तमिल की स्कूली किताबों में जो नीति के श्लोक पाये जाते हैं वे इनके रचे हुए हैं। विषय लोक-सुधारक हैं, शैली अच्छी और सरल है और उपमायें ठीक बैठती हैं। उदाहरणार्थ :—"मोर को नाचते और प्रशंसा का पात्र बनते देखकर लोकप्रियता चाहने वाला पेरू पक्षी (Turkey) भी अपने हास्यजनक पंख फैला कर नाचने लगता है; अधकचरा कवि का भी यही हाल है, जब वह विद्वानों के सामने अपनी 'कविता' सुनाने लगता है।" [आधुनिक अछंदस व अपद्यगद्य रचनाओं के प्रति उनकी राय क्या होगी, कौन सी उपमा उन्हें सूझेगी, यह सोचने की बात है।]

और "जब सुनने वाले समझदार नहीं होते तब, अधकचरा होने पर भी, बोलने वाले की हिम्मत बढ़ती रहती है। वहाँ यकायक किसी समझदार आदमी के उपस्थित होने पर, वह एकदम चुप हो जाता है। तोता, अर्थ समझे बिना ही, लंबी चौड़ी हाँकता है; लेकिन बिल्ली वहाँ आ जाय तो वह भय से पीछे हटता है और चिल्लाता है।

और "एक विलक्षण वृक्ष देखना चाहते हो ? तब जंगल की ओर मत जाओ, किसी कविसम्मेलन को जाओ। वहाँ एक आदमी नजर आएगा—अच्छे घराने का, देखने में सुन्दर, बढ़िया पहनावे का; लेकिन निरक्षर; ताड़ के पत्ते पर कुछ लिखकर उसको दो, वह ताड़ के पेड़ के समान स्तंभित रहेगा। वही देखने लायक वृक्ष है।"

एक बार किसी ने (दंत कथाओं के अनुसार भगवान् कार्तिकेयने) उनसे पूछा "कि सबसे बुरी चीज कौन सी है ? उन्होंने एक गीत द्वारा जवाब दिया"—गरीबी बुरी है; युवावस्था में गरीबी उससे बुरी है, असाध्य रोग और भी खराब है; प्रेम-हीन पत्नी उससे भी बदतर; उसके हाथ का भोजन ग्रहण करना पड़े तब क्या पूछना, वह नरक-यंत्रणा है।" दूसरा प्रश्न था—सबसे अच्छी चीज कौन सी है ? जवाब मिला—"एकान्तवास मीठा होता है; भगवान् का ध्यान करना उससे हर्षदायक है; ज्ञानियों का सत्संग वांछनीय और मनोहर है; उन्हीं के साथ हमेशा—जाग्रत, स्वप्न दोनों अवस्थाओं में रहने का सौभाग्य मिले तो वही स्वर्ग-सुख है।"

तीसरा प्रश्न था—बड़ा किसे कह सकते हैं ? जवाब मिला—"यह प्रपंच सचमुच बड़ा है; परन्तु उसका सृजन किया ब्रह्मा ने; तब क्या, ब्रह्मदेव को सबसे बड़ा मानें ? नहीं, क्योंकि वह विष्णु के नाभि से निकला है; अब विष्णु से बड़ा है (क्षीर) सागर; लेकिन सातों समुद्र तो अगस्त्य मुनि के एक आचमन मात्र थे; और अगस्त्य जी कौन हैं ? कलशज। कलश, हम जानते ही हैं, एक मुट्ठी भर मिट्टी का रूपांतर है; और इस सारी पृथ्वी को शेषनाग अपने एक सिर पर थामता है; परन्तु इतना बड़ा शेषनाग खुद उमा की छोटी अंगूठी मात्र है; और उमा की हालत ? वह ईश्वर की अर्द्धाङ्गिनी हैं; तब, क्या, ईश्वर को सबसे बड़ा मान लें और छुट्टी पावें ? नहीं, क्योंकि वे भक्तों के हृदय के कैदी हैं। इससे साबित है कि ईश्वर-भक्त ही सबसे बड़ा है।"

बहुत ही दुर्लभ चीज कौन सी है—इसका उत्तर यों था :—मानव-जन्म मिलना दुर्लभ है; अंधा, बहरा, अंगहीन आदि न होना उससे कठिन है; हाथ पैर चंगे होने पर भी विद्या, विवेक और ज्ञान की प्राप्ति आसानी से होती नहीं; ये सब मिलने पर भी कई लोगों की चिंता दान धर्म की ओर झुकती ही नहीं। जो सुशील ज्ञानवान दान धर्म भी विधि-पूर्वक करते हैं उनके लिये स्वर्ग का द्वार सदा खुला रहता है।"

अव्वैयार के बारे में और भी कई दिलचस्प बातें हैं, लेकिन यह निबन्ध हद से ज्यादा लम्बा हो जाने का डर है।

आधुनिक साहित्य में :—चि० सुब्रह्मण्य भारती, रामलिंगम् पिल्लै, देशिकविनायकम् पिल्लै, भारति दासन्, सुब्रह्मण्य योगियार, शुद्धानन्द भारती आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय है। परन्तु अफसोस है, महिलाओं ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। उच्च श्रेणी की कहानी व उपन्यास लेखिकाएँ काफी हैं, पर कवयित्रियों का अभाव है।



मीरा एवं आण्डाल की विरह वेदना

एन० सुन्दरम्, एम० ए०

भागवत् धर्म पर प्रकाश डालते हुए राजा निमि के प्रश्न पर योगेश्वर 'कवि' कहने लगे[1]—"भगवान् के लीला-वर्णन, तथा नाम-संकीर्तन में कभी भी संकोच नहीं करना चाहिए। वास्तव में भगवान् के नाम संकीर्तन से भक्त के मन में अपने आराध्य के प्रति विशेष अनुराग उत्पन्न होता है। इस अवस्था में उसकी दशा लोकातीत जान पड़ती है। कभी भक्त भगवान् को प्राप्त समझकर प्रसन्न होता है, कभी आँसू बहाने लगता है कि भगवान् ने मुझे अपनाया नहीं, कभी उन्मादावस्था में नाचने लगता है तो कभी गाने लगता है।"

भगवद् भक्ति की चरम सीमा पर राजा निमि के सन्देह को दूर करते हुए योगेश्वर 'प्रबुद्ध' कहते हैं[2]—"भगवान् का ध्यान करते-करते भक्त कभी रो उठता है, कभी आनन्द के मारे नाचने लगता है, तो कभी बेसिर पैर की बातें करने लगता है, तो कभी भगवान् की लीलाओं का अनुकरण करने में आनन्द प्राप्त करता है। अन्त में आनन्दातिरेक से उत्पन्न मूकावस्था में अपने को भूल जाता है।"

उपर्युक्त भागवत् धर्म के अनुसार विरह विधुरा मीरा अपने आराध्यदेव प्रियतम गिरधरगोपाल के वियोग में आँसुओं की माला पिरोती हुई अपने मनोवेगों को रोकने में असमर्थ होकर नाचने गाने लगती हैं। अपनी इस वेदनात्मक अवस्था को ही मीरा चाहती है किन्तु उसे दूसरों के समक्ष प्रकट करने में असमर्थ रहती है। उसने केवल संकेत मात्र किया है—

> "हेरी मैं तो दरद दिवाणी,
> मेरा दरद न जाणै कोय।
> घाइल की गति घाइल जाणै,
> की जिण लाई होय।।"[3]

इसी प्रकार तमिल साहित्य की आल्वार भक्त कवयित्री आण्डाल भी चक्रधर श्री रंगनाथ को अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है। रोरोकर अपनी प्रपीड़ित स्थिति का सजीव

---

१ शृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके॥
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः
११-२-३९
एवं व्रतः स्वप्रिय नामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोक बाह्यः
११-२-४०

२ स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघ हरंहरिम्
भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्।
११-३-३२
क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धसंति नंदन्ति वदन्त्यलौकिकाः
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजम् भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः।
११-३-३२

३ मीरा माधुरी—२६

वर्णन करती हुई कामदेव से प्रार्थना करती है कि यदि मैं क्षीरशायी भगवान के चरणारविन्दों की निरस्वार्थ सेवा करके कृतार्थ न हो सकूंगी तो मेरा जीवन अति कष्टकर हो जायगा और आप भी उस पाप के भागी होंगे।

> पलुदिनिप्पार्क कडलवण्णनुक्के
> पणिसेटदु वालप्पेरविडिल् नान्
> अलुदलु लमन्दम्मावकङ्ग;
> आर्रवुमदुवुनक्कुङ्कएडाय्[1]

मीरा और आण्डाल हमारे भारतीय साहित्य की बहुमूल्य संपत्ति हैं। आण्डाल आठवीं शताब्दी की देन है तो मीरा सोलहवीं शताब्दी की। मीरा और आण्डाल दोनों का सुहाग उसी गिरधारी प्रियतम पर ही निर्भर है। "दोनों एक ही स्वर में अपने प्रियतम के साथ अमर सुहाग को चाहती हैं प्रियतम के साथ सुहाग सम्बन्ध स्थापित करते हुए मीरा कहती है—"

> ऐसे वर को क्या वरूँ
> जो जन्मे औ मर जाय।
> बर बरिये एक सांवरो
> री मेरो चुडलो अमर हो जाय॥[2]

आण्डाल तो दृढ़ संकल्प ही कर लेती है। साधारण कोटि के मानव के साथ उसके सम्बन्ध की चर्चा छेड़ने मात्र से ही वह जीवित नहीं रह सकती। अतः दृढ़ वाणी में अपने मनः संकल्प को कह देती है—

> "मानिडवरकक्केन्रु पेच्चुप्पडिल
> वालकिल्लेन कण्डाय मन्मदने"[3]

मीरा और आण्डाल का वियोग पक्ष अत्यधिक सुन्दर तथा स्पष्ट है। उन दोनों का प्रेम अपने आराध्य देव के उत्कृष्ट सौन्दर्य का अनुभव करके प्रारम्भ होता है। "प्रेमासक्ति के बढ़ते-बढ़ते मन में अभिलाषायें भी नये-नये रूप में उत्पन्न होती हैं। दोनों में यही रूप-राग पूर्व-राग में परिणत हो जाता है। प्रेमानुभव की यह पहली सीढ़ी है।" यह स्थिति गहरी होते-होते विरहानुभव में स्पष्टता को देखते हैं। इस विरहानुभूति में मानसिक वेदना को प्रमुखता देते हैं। भक्तों के लिये श्रीकृष्ण की यमुना, वृन्दावन, निकुंज आदि की लीलायें नित्य हैं। भक्त इन लीलाओं में निमज्जित होकर परमानन्द को पाता है। इसी भक्ति ने भक्तों का ऐसा समूह उत्पन्न किया है जिसने भगवान कृष्ण को ही पति मान कर उनकी भक्ति की साधना में ही अपना सब कुछ उसके लिये निछावर कर दिया। आण्डाल और मीरा भी कृष्ण भक्ति की इस परम्परा से प्रभावित होकर श्री कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति में आसक्त हुए। दोनों अपने-अपने आराध्यदेव के रूप माधुर्य एवं लावण्य में तन्मय होकर अपने इस 'सुन्दर वदन, कमल-दल लोचन, बाँकी चितवन' को विरह सन्देश प्रकृति के साधनों के द्वारा भेजती हैं।

मीरा अपने प्रियतम को कौवे के द्वारा संदेश भेजती है और उससे यह कहने के लिये विनीत प्रार्थना करती है कि तुम्हारी प्रियतमा बिना भोजन किये तुम्हारे ही ध्यान में निमग्न रहती है।

> प्रीतम कूं पतियाँ लिखूं,
> कौआ तू ले जाई।
> जाई प्रीतमजू सूं यूं कहै,
> बेचारी विरहिणी धान न खाई॥[4]

अपने प्रियतम के पास संदेश भेजने के लिये लेखनी हाथ में लेकर संदेश-पत्र लिखने बैठती है तो हाथ काँपते हैं। प्रियतम का स्मरण आते ही अश्रु प्रवाह रोकने में असमर्थ हो जाती है। वह अपनी मार्मिक वेदना भी यथार्थ रूप में प्रकट नहीं कर सकती। अतएव संदेशवाहक से मात्र इतना ही कहकर सन्तुष्ट हो जाती है कि तुम मेरी शारीरिक व्यथा

३ नाच्चियार तिरुमोलि
२ मीरा स्मृति ग्रन्थ
३ ना० ति०

४ मीरा की प्रेम साधना-४३

देख रहे हो। तुम ही प्रियतम गिरधर से जाकर अपने शब्दों में कह देना।

'पतियाँ मैं कैसे लिखूं, लिखयोरी न जाय
कलम धरत मेरो कर कंपत है नैन रहै झड जाय।
बात कहूँ तो कहत न आवै, जीव रह्यो डराय।
विपत हमारी देख तुम चाले, कहिया हरिजी रूं जाय।[1]

पत्र लिखने में असमर्थ होने पर अपने शरीरिक तथा मानसिक व्यथा को प्रकट करते हुए मीरा कहती है 'हे भुवनपति! मेरे शरीर में विरह-व्यथा इतनी तीव्र है कि संपूर्ण जीवन ही नष्ट हो चुका है। तुम्हारे दर्शन के अभाव में संपूर्ण रात्रि रोते रोते व्यतीत की है। मेरी भूख और नींद सदा के लिये नष्ट हो चुकी हैं। पर पापी जीव तुम्हारे दर्शन के बिना मरने भी नहीं देता।

'रोवत रोवत डोलतो सब रैण बिहावो जी।
भूख गयाँ निदरा गयाँ पापी जीव णा जावां जी॥'[2]

मीराँ कृष्ण के समक्ष अपने त्याग का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करती है। उसने इतना त्याग किया, घर-बार छोड़ दिया, आखिर किस लिये? क्या उसको सताने के लिये? अतः पूछती है, हे प्रियतम, क्यों मुझे सताते हो। तुम्हारे लिये ही मैंने सारे संसार का त्याग कर दिया है। मुझे पूर्ण आशा थी कि तुम मेरी विरह व्यथा को शान्त करोगे, क्योंकि तुम्हीं ने इस रोग को मेरे मन में पैदा किया था। मैं तुम्हारी जनम-जनम की दासी हूं, अब तुम मुझे कैसे छोड़ सकते हो? मैंने तुम्हारी ही शरण ली है।

'थारे कारण कुल जग छाड़्याँ, अब ये क्याँ बिसरायाँ
विरह व्यथा ल्याया उर अन्तर, ये आस्याँ णा बुझावाँ॥'[3]

प्रियतम को शीघ्रता पूर्वक आने के लिये बुलाती है। उसके बिना वह एक पल भी जीवित नहीं रह सकती। क्योंकि वह कृष्ण से अपने को अलग नहीं मानती। जिस प्रकार सूर्य और धूप को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार मीराँ का अस्तित्व अपने प्रियतम से अभिन्न है।

'तुम बिच हम बिच अन्तर नाहिं, जैसे सूरज घामा'[4]

यद्यपि मीराँ अपना सन्देश पत्र के रूप में, पूरी मानसिक स्थति को प्रकट करते हुए लिख नहीं पाती तथापि किसी न किसी प्रकार संदेश तो भेज ही देती है। किन्तु वहाँ से प्रत्युत्तर न पाकर उससे रहा नहीं जाता। वे रोते हुए कहती हैं 'हे प्रियतम तुम तो विदेश में जाकर शान्तचित्त हो गये, परन्तु यहाँ मेरा धैर्य घुट रहा है। मन अधिक उतावला हो रहा है। मैंने कितने संदेश तुम्हारे पास भेजे हैं। तुमने तो एक का भी उत्तर नहीं दिया।

"आप तो जाँय विदेशां छाये, जिवड़ो धरत न धीर।
लिख-लिख पतियाँ संदेशा भेजूं कब घर आवै म्हाँरो पीव"[5]

अतएव आसमान में उमड़े हुए बादलों को देखकर आनन्द से प्रियतम का सन्देश सुनने के लिये दौड़ती है परन्तु कोई सन्देश न पाकर निराश हो जाती है।

"मतवारो बादर आये रे।
हरि को सनेसा कबहूँ न लाये रे॥

इसी भाँति विरहिणी आण्डाल के आर्तनाद को उसके मेघ संदेश में देखते हैं। आसमान में उमड़ते हुए काले काले बादलों को देखकर आण्डाल अपने प्रियतम घनश्याम की स्मृति में तड़पती है! बादलों को देखकर उसे अपने प्रियतम के वचनों का स्मरण हो आता है। वह उन बादलों से पूछती है कि क्या मेरे आराध्य देव आ रहे हैं। प्रत्युत्तर न पाकर विरहिणी मेघों को ही दूत बनाकर अपना विरह संदेश भेजती है।

"हे बादलों! प्रियतम से कहियेगा, मुझे इस प्रकार सताकर

---

[1] मीरांबाई की पदावली [2] मीराबाई की पदावली
[3] मीरांबाई की पदावली
[4] मीराबाई की पदावली
[5] मीराबाई की पदावली १२२

नारीत्व के अस्तित्व को विनष्ट करने में उनकी महिमा क्या रहेगी।

"कण्णीरकल मुलैक्कुवट्टिल् तुलिसोरच्सोरवेनै
पेण्णीमैयीडलिक्कुम्टु तमवकोर् पेरुमैये ॥"[1]

वेंकटाद्रिनाथ से विरह के कारण अपनी अति शारीरिक पीड़ा का वर्णन करती हुई आण्डाल मेघों से कहती है 'वेंकटाद्रिनाथ का सन्देश न मिलने के कारण कामाग्नि शरीर के भीतर प्रवेश कर मुझे जला रही है। इस दयनीय स्थिति के कारण मैं नींद से वंचित हो गयी हूं। मन मेरे वश में नहीं है। मेरे शरीर की शोभा और रंग पूर्णतया बदल गये हैं। मैं इतनी क्षीणकाय हो चुकी हूं कि हाथों में चूड़ियाँ टिक नहीं पातीं। हे मेघों, मैं किस प्रकार मात्र वेंकटाद्रिनाथ के गुण गान करती जीवित रह सकूँगी।

"ओंकिवण्णम् वलैसिन्दै उरक्कोतोडिवैयेल्लाम्।
ऍलिमैयालिट्टेनै ईडलियप्पायिनवाल् ॥"[2]

आण्डाल प्रियतम से अभिन्नता दर्शाते हुए मेघों को देखकर कहती है कि जिस प्रकार तुम अपने शरीर में ही विद्युत धारण किये हो उसी प्रकार मैं भी अपने प्रियतम से अभिन्न हूं। कृपया उनसे कहियेगा कि मेरे बाल स्तन केवल वेंकटाद्रि नाथ से गाढालिंगन करने के लिये तड़प रहे हैं।

ऍन्नाइात्तिलङ्क्ङै विरुम्बत्तान्नाडोरुम्।
पन्नाइम्पुलहुवर्कु एन् पुरवुडैमै सेप्पुमिने ॥"[3]

अपनी इस स्थिति के लिये वेंकटाद्रिनाथ के ऊपर दोषारोपण करती हुई वह कहती है कि उनके कारण ही मेरे हाथ में चूड़ियाँ टिक नहीं पातीं। उनसे कहियेगा कि मेरे हाथों को चूड़ियाँ धारण करने योग्य बना दें। आण्डाल भली-भाँति जानती है कि प्रियतम से मिलने पर ही वह पूर्ववत् स्वस्थ हो सकती है और तभी उसके हाथ चूड़ियाँ धारण करने योग्य बनेंगे। कितना मार्मिक विरह वर्णन है। अपनी मानसिक वेदना को प्रियतम के समक्ष रखने के लिये आण्डाल मेघों से कहती है

"कपित्थ फल को, जैसे कीट अन्दर ही अन्दर खाकर निःसार कर देता है, वैसे ही नारायण मेरे शरीर में प्रवेश कर मुझे निर्जीव कर रहे हैं। उनसे मेरी विरह वेदना निवेदित करना।

"उलङ्कुण्डविलङ्कनिपोल् उक्मेलियप्पुगुन्दु।
ऍन्नै नलङ्कोण्ड नारणर्कु एन्नडलैनोय सेप्पुमिने ॥"[4]

अंततोगत्वा आण्डाल अपनी एक मात्र इच्छा को स्पष्ट प्रकट करती हुई मेघों से कहती है कि हे मेघों, मेरे प्रियतम वेंकटाद्रिनाथ से मेरी इस विनीत प्रार्थना को कह दो कि यदि प्रियतम आकर उसके स्तनों पर अलंकृत कुंकुम चिन्ह के सौन्दर्य को अपने गाढ़ालिगन से नहीं निकालेंगे तो उसको जीवित नही पा सकेंगे।

"कोङ्गैमेलक्कुङ्कमत्तिन् कुलरबालियप्पुगुन्दु।
ओरुनाक् तंगुमेल् ऍन्नावि तंगुमेंन्रुरैयिरे ॥"[5]

यदि प्रियतम आकर दर्शन नहीं भी दे सकते तो क्या वे अनुग्रह का संदेश भी नहीं भेज सकते। मेघों से दैन्य भाव पूर्वक वह पूछती हैं "जिस प्रकार वर्षाकाल में अर्कपत्र सूख कर गिरते हैं उसी प्रकार तुम्हारे ध्यान में शिथिल होने वाली का क्या अनुग्रह पूर्ण संदेश भी भेज नहीं सकते? निराश तथा व्यथित मन से कातर होकर अपने प्रियतम को चेतावनी देती हुई कह भेजती है कि हे मेघों यदि वे उनके ध्यान में ही सदा रहने वाली अपनी प्रेमिका की उपेक्षा कर उसका सत्यानाश कर डालेंगे तो क्या लोग भक्तवत्सल को हत्यारा नहीं मानेंगे? कोई भी उनकी भक्तवत्सलता का सम्मान नहीं करेंगे।"[6]

मीरां एवं आण्डाल के विरह में कहीं भी ऊहात्मक वर्णन नहीं है। अपने विरह वेदना की भावाभिव्यक्ति में गहनता और गंभीरता इन दो विरहिणियों में मिलती है। कितने संदेश भेजने पर भी, रो रोकर विनीत प्रार्थना करने पर भी प्रियतम नहीं आये तो मीरां तथा आण्डाल दोनों प्रियतम को कम से

१ नाच्चियार तिरुमोलि

२, ३, ना० ति०

५ ना० ति०

६ ना० ति०

कम स्वादिष्ट भोजन करने के लिये बुलाती हैं। वैष्णव भक्ति पद्धति में इस प्रकार स्वादिष्ट पदार्थों से भोग का विधान है। अपनी असह्य वेदना के मध्य प्रियतम की सेवा-सूश्रुषा करके उससे आनन्द पाने की आकांक्षा रखती हैं। मीरा अपने प्रियतम गिरधरलाल से कहती है कि हे लोक रक्षक प्रियतम, तुमको छप्पन प्रकार के भोग एवं छत्तीस ढंग के व्यंजन समर्पित करती हूं। तुम्हारे सामने ही राजभोग की थाली में रखती हूं। हे दयालु, गिरधरलाल शीघ्रता पूर्वक आकर मेरे इस भोग को स्वीकार कर अभी मेरा उद्धार करो।

ये जीम्या गिरधरलाल।
मीरां दासी अरज करयाँ छे, म्हारो लाल दयाल।
छप्पन भोग छत्तीसां बिंजन, पावां जन प्रतिपाल
राज भोग आरोग्याँ गिरधर सन्मुख राखां थाल
मीरां दासी सरणां ज्यासीं, कीज्यां वेग निहाल।

वैसे ही आण्डाल अपने प्रियतम को जो तिरुमालिरुमसोलै[1] में सुशोभित हैं, भोग प्रदान करने में एक हद और आगे चल जाती है। कहती है कि मैं तुमको सौ घड़े मक्खन तथा सौ घड़े क्षीरान्न समर्पित करती हूं। हे मेरे सुन्दर प्रियतम क्या यहाँ पधार कर मेरे इस भोग को स्वीकार करोगे। यदि आज आकर इसे स्वीकार, कर मेरे हृदय को प्रसन्न करोगे तो मैं तुम्हारी दासी समर्पित एक एक घड़े के लिये सौ सौ अथवा सहस्रों घड़ों को समर्पण कर तुम्हारी सेवा हर प्रकार से करती रहूंगी।

"नारुनरुम्पोंलिल मालिरुम्सोलै नम्बिक्कु नान्
नूरु तडाविल् वेण्णेय् वाय्नेर्दु परावि वैचेन्
नूरु तड़ा निरैन्द अक्कार वडिसल् सोन्नेन्
एरु तिरुवुडैयान् इन्रु वन्दिवै कोंक्कुङ्गलो।
इन्रु वन्दुत्तनैयुम् अमुदुसेय् दिडप् पेरिल् नान्
ओन्रु नूरायिरमाक कोडुत्तु प् पिन्नुमाकुम्
सेयवन्॥"[2]

विरह में प्रियतम से मिलने की तीव्र आकांक्षा अत्यधिक होती है। इस आकांक्षा में मीरा एवं आण्डाल का मन इतना दत्तचित हो जाता है कि वे उनके संबध का किंचित् आभास मात्र मिलने पर गद्गद् हो उठती हैं। दोनों प्रकृति में प्रफुल्लता को निरखकर, उसे ही प्रियतम के आगमन को सूचना समझकर आनंदित होती हैं। मीरा कहती है कि 'सखियों आज को कृष्ण के आने का समाचार मिला है। इसी कारण मेंढक मोर, पपीहा, चारों ओर आनंद से बोलने लगे हैं। कोयल मधुर शब्द सुनाने लगी हैं। बादल भी चारों ओर छा गये हैं। मेरे दामन ने भी अपनी लाज छोड़ दी है। चारों तरफ हरियाली इस तरह फैली हुई है कि इन्द्र से मिलने के लिये धरती ने नया रूप ही धारण कर लिया हो।

दादुर मोर पपीहा बोल्याँ, कोइल मधुरां साज।
उमग्यां इन्द्र चहुँ दिस बरसो दामण छं ड़यो लाज।
धरती रूप नवांनवां धर्‌या इन्द्र मिलन रे काज।[3]

इसी प्रकार आण्डाल भी प्रकृति के उद्दीपन का अनुभव करती हैं, वह कहती है प्रातःकाल गौरैये आदि पक्षिगण जाग कर तिरुमालिरुमसौलै के भगवान, द्वारकानाथ तथा वटपत्रशायी[1] का नामोच्चारण कर रहे हैं। वास्तव में क्या प्रियतम का आना सत्य सिद्ध होगा। क्या ये पक्षियाँ वास्तव में मेरे प्रियतम के लिये ही गा रही हैं। कैसी तीव्र उत्कंठा है।

"कालैयेलुन्दिरुन्दु करियकुरुविक्कणङ्गल्
मालिन् वखु सोल्लि मरुक्पाडुदल मेय्मैकोलो।
सोलै मलैटपेरुमानूं तुवरापदियेम्बेरुमान्
आलिनिलैप्पेरुमान् अवन् वतैं युरैक्किन्रनवे"[4]

"अवन वातैं उरैक्किन्रनवे" में कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति है। "उनका नाम स्मरण कर रहे हैं", यह मन की तीव्रता को प्रकट करता है। इन दोनों की वेदना में गम्भीर विश्वास

---

[1] यह स्थान दक्षिण में मदुरै से १० मील की दूरी पर स्थित एक पहाड़ी जगह है जहाँ आण्डाल के प्रियतम सुन्दरराज भगवान का मन्दिर है।

[2] ना० ति०

आण्डाल का जन्म 'श्रीविल्लिपुत्तूर' नामक स्थान में जो मदुरै से ५० मील की दूरी पर है हुआ था। उस स्थान में जो प्रसिद्ध वैष्णव मन्दिर है, वहाँ का वातावरण 'क्षीरशायी' के नाम से प्रसिद्ध है।

२. ना. ति.

समाहित है इसी विश्वास पर दोनों प्रियतम के साथ संयोग और मिलन की कल्पना कर आनन्द की अनुभूति कर लेती हैं। परन्तु विश्वास की भी एक सीमा होती है। मादक प्रकृति में अपने प्रियतम के दिव्य स्वरूप को देखकर अपना संयम खो बैठती हैं। प्रियतम से साक्षात्कार न हुआ और उनसे मिलन भी न हुआ तो प्रकृति का मस्त वातावरण दोनों को ऐसा प्रतीत होने लगा मानों वे उनको देखकर परिहास कर रहे हों। कभी-कभी प्रियतम के अंग लावण्य को प्रकृति में देखकर तिलमिला उठती हैं। आण्डाल तिरु-मालिरुमसोलै में सर्वत्र लाल सिन्दूर के सदृश इन्द्रगोप कीटों को फैले हुए देख चिल्लाकर कहती है कि इन उद्दीपकों से मैं कैसे अपने को बचा सकूं, ये लाल इन्द्रगोप कीट सुबाहु भगवान् के अधर की याद दिला रहे है। दूसरी तरफ मुड़ कर उस वन गिरि की ओर देखती है तो वहाँ यूथिका पुष्प विकसित दिखायी दे रहे हैं। इन पुष्पों को देखकर सखी से कहती है, 'हाय सखी, मैं अपने दुख का वर्णन किससे करूं। ये पुष्प मेरे प्रियतम के मन्द-मन्द मुस्कान की याद दिला रहे हैं।'

इन पुष्पों के कारण आण्डाल की विरह-व्यथा और भी अधिक बढ़ गयी। उन्हीं से अपने विरह-व्यथा को दूर करने का उपाय बतलाने के लिये प्रार्थना करती है। 'हे मनोहर काकरण पुष्पों, हे अतरी पुष्पों, तुम सब मेरे प्रियतम की शोभा के प्रतीक हो। तुम्हारे दर्शन से मैं अत्यधिक दुख का अनुभव कर रही हूं। मेरे इस दुख को दूर करने के लिये उपाय तो बता दो।' उन पुष्पों से शिकायत करती हैं कि 'मेरे प्रियतम स्वयमेव मेरे यहाँ पधारकर बलात् मेरी सुन्दर चूड़ियों का अपहरण कर ले गये हैं। क्या यह उचित है।' कितना मार्मिक उपालंभ है। अपनी कृशता का दोष प्रियतम पर आरोपित करती है।[२] जब उसकी विनीत प्रार्थना पर वे पुष्प मौन रहे और अपनी शोभा पहले से अधिक दिखाने लगे तो आण्डाल तड़प कर उन पुष्पों को अभिशाप देती हुई कहती है 'हे कोकिल, हे मयूर, हे रमणीय काकरण पुष्प हे नवीन कलाकल, हे सुगन्धित अतसिपुष्प, तुम सब के सब पंच महापातकी हो। क्योंकि तुम सभी प्रियतम के रंग के हो।

"पैम्पोलिल वाल कुयिलहाक् ओण् करुविलिकाल्
वम्नक्ककङ्गनिहाक वरणप् पूवै नरुमनरकाल्
ऐम्पेरुम् पातकर्कल् अणिमालिरुम् सोलै निन्र
एम्पेरुमानुडैयनिरम् उङ्कुक्केन्सेय्वदे ।"[३]

अपने मन के ताप को वहाँ तालाबों में विकसित पुष्पों को देखकर अपने सारे क्रोध को उन पर उतारती है। "तिरु-मालिरुम-सोलै के चारों ओर विकसित उद्यानों में मंडराने वाले भ्रमर समूह, हे सुन्दर तालाब, हे सुगन्धित पुष्प, तुम सब मुझे साक्षात् यम किंकर के सदृश प्रतीत होते हो। मेरी विरह-व्यथा को दूर करने का मार्ग तुम्हीं बता दो।[३]

मीरा भी इसी प्रकार प्रतीक स्वरूप में भगवान् श्री कृष्ण की मूर्ति को प्रकृति में देखती है। आकाश में उमड़ती हुई काली-काली घटाओं को देखकर डर जाती है। अतः श्याम से ही प्रार्थना करती है—

"बादल देखि डरी हो श्याम,
बादल देखि डरी ।"[४]

वैसे ही होली के समय हर कहीं झांझ, मृदंग, मुरलिया, इकतारा आदि को बजते सुन कर प्रियतम की याद में तड़पती है।

"बाज्यों झाँझ मृदंग मुरलिया
बाज्याँ कर इकतारी ।
आयाँ बसंत पिया घर णारी,
म्हारी पीड़ा भारी ।"[५]

जब इतनी प्रार्थना के उपरान्त भी प्रकृति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा तो मीरा एवं आण्डाल दोनों अपने प्रियतम को मधुर उपालंभ देती हैं। अगर दोनों को पहले ही मालूम होता कि उनका प्रियतम इस प्रकार धोखा देंगे तो कभी भी उन पर विश्वास न करती। मीरा कहती है 'हे प्रियतम, क्यों इस प्रकार प्रेम करके धोखा दे रहे हो। हम प्रेम और भक्ति

१, २, ३ ना. ति.
५ मीराबाई की पदावली

कम स्वादिष्ट भोजन करने के लिये बुलाती हैं। वैष्णव भक्ति पद्धति में इस प्रकार स्वादिष्ट पदार्थों से भोग का विधान है। अपनी असह्य वेदना के मध्य प्रियतम की सेवा-सूश्रुषा करके उससे आनन्द पाने की आकांक्षा रखती हैं। मीरा अपने प्रियतम गिरधरलाल से कहती है कि हे लोक रक्षक प्रियतम, तुमको छप्पन प्रकार के भोग एवं छत्तीस ढंग के व्यंजन समर्पित करती हूं। तुम्हारे सामने ही राजभोग की थाली में रखती हूं। हे दयालु, गिरधरलाल शीघ्रता पूर्वक आकर मेरे इस भोग को स्वीकार कर अभी मेरा उद्धार करो।

ये जीम्या गिरधरलाल।
मीरां दासी अरज करयाँ छे, म्हारो लाल दयाल।
छप्पन भोग छत्तीसां बिंजन, पावां जन प्रतिपाल
राज भोग आरोग्याँ गिरधर सन्मुख राखां थाल
मीरां दासी सरणां ज्यासीं, कीज्यां वेग निहाल।

वैसे ही आण्डाल अपने प्रियतम को जो तिरुमालिरुमसोलै[1] में सुशोभित हैं, भोग प्रदान करने में एक हद और आगे चल जाती है। कहती है कि मैं तुमको सौ घड़े मक्खन तथा सौ घड़े क्षीरान्न समर्पित करती हूं। हे मेरे सुन्दर प्रियतम क्या यहाँ पधार कर मेरे इस भोग को स्वीकार करोगे। यदि आज आकर इसे स्वीकार, कर मेरे हृदय को प्रसन्न करोगे तो मैं तुम्हारी दासी समर्पित एक एक घड़े के लिये सौ सौ अथवा सहस्रों घड़ों को समर्पण कर तुम्हारी सेवा हर प्रकार से करती रहूंगी।

"नारुनरुम्पोलिल मालिरुम्सोलै नम्बिक्कु नान्
नूरु तडाविल् वेण्णेय् वायूनेर्दु परावि वैचेन्
नूरु तडा निरैन्द अक्कार वडिसल् सोन्नेन्
एरु तिरुवुडैयान् इन्रु वन्दुवै कोंक्कुङ्गलो।
इन्रु वन्दित्तनैयुम् अमुदुसेय् दिडप् पेरिल् नान्
ओन्रु नूरायिरमाक कोडुत्तु प् पिन्नुमाकुम्
सेयवन्॥"[2]

[1] यह स्थान दक्षिण में मदुरै से १० मील की दूरी पर स्थित एक पहाड़ी जगह है जहाँ आण्डाल के प्रियतम सुन्दरराज भगवान का मन्दिर है।

[2] ना० ति०

विरह में प्रियतम से मिलने की तीव्र आकांक्षा अत्यधिक होती है। इस आकांक्षा में मीरा एवं आण्डाल का मन इतना दत्तचित हो जाता है कि वे उनके संबध का किंचित् आभास मात्र मिलने पर गद्‌गद् हो उठती हैं। दोनों प्रकृति में प्रफुल्लता को निरखकर, उसे ही प्रियतम के आगमन को सूचना समझकर आनंदित होती हैं। मीरा कहती है कि 'सखियों आज को कृष्ण के आने का समाचार मिला है। इसी कारण मेंढक मोर, पपीहा, चारों ओर आनंद से बोलने लगे हैं। कोयल मधुर शब्द सुनाने लगी हैं। बादल भी चारों ओर छा गये हैं। मेरे दामन ने भी अपनी लाज छोड़ दी है। चारों तरफ हरियाली इस तरह फैली हुई है कि इन्द्र से मिलने के लिये धरती ने नया रूप ही धारण कर लिया हो।

दादुर मोर पपीहा बोल्याँ, कोइल मधुरां साज।
उमग्यां इन्द्र चहुँ दिस बरसां दामण छं ड्यो लाज।
धरती रूप नवांनवां धर्‌या इन्द्र मिलन रे काज।[3]

इसी प्रकार आण्डाल भी प्रकृति के उद्दीपन का अनुभव करती हैं, वह कहती है प्रातःकाल गौरैये आदि पक्षिगण जाग कर तिरुमालिरुमसौलै के भगवान, द्वारकानाथ तथा वटपत्रशायी[1] का नामोच्चारण कर रहे हैं। वास्तव में क्या प्रियतम का आना सत्य सिद्ध होगा। क्या ये पक्षियाँ वास्तव में मेरे प्रियतम के लिये ही गा रही हैं। कैसी तीव्र उत्कंठा है।

"कालैयेलुन्दिरुन्दु करियकुरुविक्कणङ्गल्
मालिन् वखु सोल्लि मरुकपाडुदल मेयमैकोलो।
सोलै मलैटपेरुमानू तुवरापदियेम्बेरुमान्
आलिनिलैप्पेरुमान् अवन् वतैयुरैक्किन्रनवे"[4]

"अवन वार्तै उरैक्किन्रनवे" में कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति है। "उनका नाम स्मरण कर रहे हैं", यह मन की तीव्रता को प्रकट करता है। इन दोनों की वेदना में गम्भीर विश्वास

आण्डाल का जन्म 'श्रीविल्लिपुत्तूर' नामक स्थान में जो मदुरै से ५० मील की दूरी पर है हुआ था। उस स्थान में जो प्रसिद्ध वैष्णव मन्दिर है, वहाँ का वातावरण 'क्षीरशायी' के नाम से प्रसिद्ध है।

२. ना. ति.

समाहित है इसी विश्वास पर दोनों प्रियतम के साथ संयोग और मिलन की कल्पना कर आनन्द की अनुभूति कर लेती हैं। परन्तु विश्वास की भी एक सीमा होती है। मादक प्रकृति में अपने प्रियतम के दिव्य स्वरूप को देखकर अपना संयम खो बैठती हैं। प्रियतम से साक्षात्कार न हुआ और उनसे मिलन भी न हुआ तो प्रकृति का मस्त वातावरण दोनों को ऐसा प्रतीत होने लगा मानों वे उनको देखकर परिहास कर रहे हों। कभी-कभी प्रियतम के अंग लावण्य को प्रकृति में देखकर तिलमिला उठती हैं। आण्डाल तिरु-मालिरुमसोलै में सर्वत्र लाल सिन्दूर के सदृश इन्द्रगोप कीटों को फैले हुए देख चिल्लाकर कहती है कि इन उद्दीपकों से मैं कैसे अपने को बचा सकूं, ये लाल इन्द्रगोप कीट सुबाहु भगवान् के अधर की याद दिला रहे है। दूसरी तरफ मुड़ कर उस वन गिरि की ओर देखती है तो वहाँ यूथिका पुष्प विकसित दिखायी दे रहे हैं। इन पुष्पों को देखकर सखी से कहती है, 'हाय सखी, मैं अपने दुख का वर्णन किससे करूं। ये पुष्प मेरे प्रियतम के मन्द-मन्द मुस्कान की याद दिला रहे हैं।'

इन पुष्पों के कारण आण्डाल की विरह-व्यथा और भी अधिक बढ़ गयी। उन्हीं से अपने विरह-व्यथा को दूर करने का उपाय बतलाने के लिये प्रार्थना करती है। 'हे मनोहर काकण पुष्पों, हे अतरी पुष्पों, तुम सब मेरे प्रियतम की शोभा के प्रतीक हो। तुम्हारे दर्शन से मैं अत्यधिक दुख का अनुभव कर रही हूं। मेरे इस दुख को दूर करने के लिये उपाय तो बता दो।' उन पुष्पों से शिकायत करती हैं कि 'मेरे प्रियतम स्वयमेव मेरे यहाँ पधारकर बलात् मेरी सुन्दर चूड़ियों का अपहरण कर ले गये हैं। क्या यह उचित है।' कितना मार्मिक उपालंभ है। अपनी कृशता का दोष प्रियतम पर आरोपित करती है।[२] जब उसकी विनीत प्रार्थना पर वे पुष्प मौन रहे और अपनी शोभा पहले से अधिक दिखाने लगे तो आण्डाल तड़प कर उन पुष्पों को अभिशाप देती हुई कहती है 'हे कोकिल, हे मयूर, हे रमणीय काकण पुष्प हे नवीन कलाकल, हे सुगन्धित अतसिपुष्प, तुम सब के सब पंच महापातकी हो। क्योंकि तुम सभी प्रिय-तम के रंग के हो।

"पैम्पोलिल वाल कुयिलहाक् ओण् करुविलिकाल्
वम्मक्ककङ्गनिहाक वएणप् पूवै नरुम नरकाल्
ऐम्पेरुम् पातकर्कल् अणिमालिरुम् सोलै निन्र
एम्पेरुमानुडैयनिरम् नङ्कुक्केन्सेय्वदे ।"[३]

अपने मन के ताप को वहाँ तालाबों में विकसित पुष्पों को देखकर अपने सारे क्रोध को उन पर उतारती है। "तिरु-मालिरुम-सोलै के चारों ओर विकसित उद्यानों में मंडराने वाले भ्रमर समूह, हे सुन्दर तालाब, हे सुगन्धित पुष्प, तुम सब मुझे साक्षात् यम किंकर के सदृश प्रतीत होते हो। मेरी विरह-व्यथा को दूर करने का मार्ग तुम्हीं बता दो।[३]

मीरा भी इसी प्रकार प्रतीक स्वरूप में भगवान् श्री कृष्ण की मूर्ति को प्रकृति में देखती है। आकाश में उमड़ती हुई काली-काली घटाओं को देखकर डर जाती है। अतः श्याम से ही प्रार्थना करती है—

"बादल देखि डरी हो स्याम,
बादल देखि डरो ।"[४]

वैसे ही होली के समय हर कहीं झांझ, मृदंग, मुरलिया, इकतारा आदि को बजते सुन कर प्रियतम की याद में तड़पती है।

"बाज्यों झाँझ मृदंग मुरलिया
बाज्याँ कर इकतारी ।
आयाँ बसंत पिया घर णारी,
म्हारी पीड़ा भारी ।"[५]

जब इतनी प्रार्थना के उपरान्त भी प्रकृति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा तो मीरा एवं आण्डाल दोनों अपने प्रियतम को मधुर उपालंभ देती हैं। अगर दोनों को पहले ही मालूम होता कि उनका प्रियतम इस प्रकार धोखा देंगे तो कभी भी उन पर विश्वास न करती। मीरा कहती है 'हे प्रियतम, क्यों इस प्रकार प्रेम करके धोखा दे रहे हो। हम प्रेम और भक्ति

१, २, ३ ना. ति.
५ मीराबाई की पदावली

के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग ही नहीं जानती। पहले प्रेम रूपी अमृत देकर अब विष रूपी विरह क्यों दे रहे हो ? यह कहाँ की रीति है। कैसी भावपूर्ण उक्ति है।

"जाणां रे मोहण, जाणां थारी प्रीत,
प्रेम भगति रो पैडा म्हारा,
अवरु ण जाणां रीत।
इमरत पाई विषा क्यूं
दीज्याँ कूंण गाँव की रीत।"[४]

अपनी प्रीति पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए मीरा कहती है 'हे प्रियतम यदि मुझे इसका आभास पहले ही होता कि प्रेम करने पर अधिक कष्ट झेलना पड़ेगा तो ढिंढोरा पीटकर यह घोषणा करती कि आगे कोई मोहन से प्रेम न करे। मूर्खों से मित्रता नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनका प्रेम क्षणिक होता है। जैसे दूध क्षण भर उफन कर फिर शान्त हो जाता है वैसे ही ये प्रेमी प्रारम्भ में अधिक प्रीति दिखा कर क्षण भर में उसे भूल जाते है।

"जै हूँ ऐसी जानती रे बाला,
प्रीत कीयाँ दुष होय।
नगर ढंढोरा फेरती रे,
प्रीत करो मत कोय।
पीर न षाजे आरी रे,
मूरष न कीजै मित।
षिण ताता षिण सीतला रे,
षिण बैरी षिण मित।"[१]

इसी प्रकार आण्डाल विरह व्यथिता होकर अपनी वेदना को उद्दीप्त करने वाली बिंब लताओं से कहती है 'हे देवि बिंब-लते, क्यों तुम अपने सुन्दर पुष्पों से प्रियतम कान्ह के मधुर अधर ओष्ठ का स्मरण दिला कर मुझे सता रही हो। मैं बिंब फल के सदृश प्रियतम के ओंठ से अधिक भयभीत हूं। मेरे प्रियतम भी मेरे जन्म के उपरान्त शेष नाग के समान दो जीभ वाले हो गये।' (धोखा देने वालों को दो जीभ वाले कहना लोकोक्ति है।)[२]

आण्डाल तो भक्तशिरोमणि विष्णुचित्त (पेरियालवार) की सुपुत्री है। भगवान् उसके पवित्र प्रेम को ठुकरा दे तो वह उसके मिथ्या वचनत्व का प्रसार करेगी। परन्तु अपने पिता की अटल भक्ति के सदृश उसकी प्रीति कभी भी असत्य नहीं हो सकती। भगवान की मन्द मुस्कान की स्मरण दिलाने वाली यूथिका लता को सम्बोधित करती हुई आण्डाल कहती है, मैं तुम्हारी शरण में पहुंचूंगी, मुझे प्रियतम की मधुर स्मृति द्वारा अधिक कष्ट न दो। प्रियतम तो मिथ्या-वादी हैं। भले ही शरणागत की रक्षा करने वाले तथा मर्यादा का उल्लंघन करने वाली शूर्पनखा का नखछेदन करने वाले का वचन मिथ्या प्रमाणित हो, परन्तु पेरियाल्वार की पुत्री की हैसियत से मेरा जन्म कभी भी असत्य नहीं हो सकेगा। अर्थात् जैसे मेरा जन्म होना असत्य नहीं हो सकता है वैसे मेरी प्रीति भी असत्य नहीं हो सकती।

"कोल्लैयरक्कियै मूक्करिन्दिट्ट कुमरनार
सोल्लुम्पाय्यानाल् नानुम् पिरन्दमै पोय्यन्रे।"[३]

विरह से चिन्तामग्न दोनों को कोयल का गाना अति कठोर और असह्य प्रतीत होता है। पहले विनीत प्रार्थना करती है कि "पी पी" चिल्लाकर प्रियतम की याद न दिलावें। उन की प्रार्थना का असर न होते देख उनको भगाने का तथा डराने का प्रयत्न करती हैं। मीरा कहती है 'हे पपीहा,' कितने दिनों का वैर-भाव स्मरण कर आज इस तरह 'पी पी' चिल्लाकर मुझे सता रहे हो।

"पपइया म्हारो कब रो वैर चितार्यो
म्हा सोवूँ छी अपने भवन मां पियु-पियु करतां
पुकार्यां।"[१]

प्रार्थना करती है कि प्रियतम का शब्द न कहो—
"पपइया रे पिव बाणी न बोल"[२]

पर वे सुनने को तैयार नहीं। अतः मीराँ उसे चेतावनी देती है कि अगर इतने पर भी चिल्लायगी तो उसकी चोंच काट कर, उसके ऊपर काला नमक छिड़क देगी ताकि आगे से वह और किसी विरहणी को न सता सके।

---

१. मीराबाई की पदावली २, ३, ना. ति.
१, २, ३, ४ मीराबाई की पदावली

"चोंच कटाऊं पपइया रे ऊपरि कालर लूण"
पर उसको सांत्वना देती हुई कहती है कि यदि उससे प्रियतम का संयोग हो जायगा तो उसकी मधुर वाणी सुनने के लिये तैयार रहेगी और वह गीत उस समय सुहावना ही लगेगा। इतना ही नहीं वह उसकी चोंच को सोने से अलंकृत करवा देने का वादा भी करती है—

"थारा सब्द सुहावणा रे, जो पिव मेला आज
चोंच मढ़ाऊं थारी सोवनी रे, तू मेरे सिरताज"

उसी प्रकार आण्डाल कोयल को संबोधित कर कहती है 'हे गानेवाली कोयल' क्या कर्ण कठोर गीत गा रही हो। यदि वेंकटाद्रिनाथ हमें दर्शन देकर, मेरी विरह व्यथा को दूर करेंगे तो तुम आकर गाओ। गरुडवाहन पर आरूढ़ होकर मेरे प्रियतम यहां आकर मुझसे मिलेंगे तो मैं ही तुमको बुला कर तुम्हारा गान सुनूंगी।

पाडुङ्कुयिलकाक् ईदेन्न ाडल् नल् वेङ्कड नाडर्
नमक्कोरु वाल्वु तन्दाल् वन्दु पाडुमिन्।
आडुङ्करुकर्कंडियुडैयार बन्दरुल् सेय्दु
कूडुवरायिल् कूवि नुम्पाहुक्कल् केहुमे ॥ [१]

इसी भाँति सुन्दर नाचनेवाले मयूर को देखकर कहती है कि 'मेरी व्यथा को अधिक करने का प्रयत्न न करो। तुम इस नृत्य को बन्द करो। मेरे पास तुम्हारे नाच को देखने के लिये समय नहीं है। पहले ही घटनर्तन करने वाले प्रियतम ने अपनी लीला से मेरा सर्वस्व अपहरण कर लिया। इस दयनीय स्थिति में मेरे प्राणों का भी अपहरण करने से तुमको बड़ा पाप लगेगा।' [२]

आण्डाल कोयल को सदा के लिये गाने से रोकती नहीं। उस के रूप लावण्य तथा मधुर नाद की नाना प्रकार से प्रसंशा करती है। केवल इतनी प्रार्थना करती है कि मेरे प्रियतम को मुझसे नित्य संश्लेश करने के लिये बुलाते हुए गाओ। "पुन्नाग, माधवी, प्रियंकु, सुरपुन्नागादि विविध पेड़ों में आनंद के साथ रहनेवाली हे कोयल, प्रवाल सदृश होंठवाले मेरे प्रियतम को आकर मुझसे मिलने के लिये उनके नाम को रट-रट कर बुलाओ।" [३]

आण्डाल कोयल के सामने अपने शारीरिक स्थिति का सच्चा स्वरूप रखते हुए कहती है 'मधुभरे चंपक पुष्प का सार ग्रहण कर, मद मस्त होकर गानेवाली हे कोयल, प्रियतम मेरे हृदय में घुसकर, मन को वेदना से प्रपीडित कर, मेरी वेदना से आनंदित हो रहे हैं।' शंख चक्रधारी भगवान स्वयं दर्शन नहीं देते। अस्पष्ट स्वर में मत गाओ। केवल मेरे वेंकटनाथ को आने के लिये बुलाओ।

"उल्लुम् पुहुन्दु नैवित्तु नालुमुयिर्पेय्दु कूत्ताट्टकाणुम्" [४]
अर्थात् "हृदय में घुसकर वेदना पहुंचाकर आनंदित होनेवाले" में आण्डाल की वेदना का अभिव्यंजन हृदय को रस-विभोर कर देता है।

वेदना से पीडित हृदय ही दूसरे की वेदना का सही मूल्यांकन कर सकता है। अतएव आण्डाल कोयल से कहती है 'हे कोयल मैं अत्यधिक क्षीण काय हो चुकी हूं। वेल सदृश मेरी विशाल आँखें तो सदा के लिये निद्रा से वंचित रह गयीं। विरह रूपी महासमुद्र में वैकुंठनाथ रूपी नौका के अभाव से भटक रही हूं। विरह वेदना को केवल तुम ही जानती हो। अतः स्वर्णकीर्तिवाले, गरुड ध्वजवाले, साक्षात् मंगलमय भगवान को आने के लिये गाओ।' [५]

यहाँ मीरा की यही स्थिति दृष्टव्य है। नींद के बिना अपने तड़पन को अभिव्यक्त करते हुए 'री म्हाँ बैठ्यां जागो, जगत सब सोवां' और 'सखी म्हारी नींद नसानी हो, पियरो पंथ निहारत सब रैण बिहानी हो' तथा 'हरि बिन क्यूं जिवां री माय, स्याम बिना बौरां भयां काठ ज्यूं घुण खाय' [६] में अपनी मनः स्थिति को स्पष्ट किया है।

मीरा के सदृश आण्डाल भी लालच देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहती है। वह भी साधारण कोटि का लालच नहीं। उस कोकिल को सुन्दर प्रियतम ला देने का वचन देती है एक शर्त पर। 'भगवान के चरणारविंदो के दर्शन करने की लालसा से मेरे नेत्र सदा उनकी राह देखते रहते हैं। अतः हे कोयल तुम मेरे प्रियतम को यहाँ आने के लिये

१, २, ३, ४ ना ति।
५ ना० ति० ६ मीराबाई की पदावली

बुलाओ। मैं क्षीरान्न से पोषित एक सुन्दर तोते को तुम्हारा मित्र बनाऊँगी।'

अपने प्रियतम को प्राप्त करने के लिये लालच दिखाने में भी मीरा एवं आण्डाल दोनों में कैसी भाव समानता प्रस्फुटित है। 'चोंच मढाऊँ थारी सोवनी रे' है वहाँ 'तोते को मित्र बनाने की चर्चा।'

अपनी तीव्र अभिलाषा प्रकट करती हुई आण्डाल कोयल से कहती है कि 'हे कोयल क्षीरशायी भगवान से गाढालिंगन करने हेतु मेरे उरोज उन्नत हुए हैं। अगर उनको बुलाओगे तो तुमको बड़ा लभा होगा।'[1]

जब इतनी प्रार्थना करने पर भी वह कोयल प्रियतम को आने के लिये नहीं बुलाती तो वह उसे चेतावनी भी देती है। 'हे कोयल तुम भ्रमरों के आनन्द गीत से मस्त होकर यहाँ वाटिका में विहार कर रहे हो। एक बात गौर से सुन लो। मैं तो यहाँ श्रीधर नामक एक जाल में फंसी हूं। अगर तुम इस वाटिका में रहना चाहते हो, मेरे प्रियतम को आने के लिये बुलाना पड़ेगा और रिक्त हाथों को चूड़ियों के धारण करने लायक बनाना होगा। आज निश्चित समझ लीजिये कि या तो इन कथित कामों को करो अन्ययथा तुमको यहाँ से भगा दूँगी।

"शङ्खोडुसक्करचान् वरक्कूवुदल् पोन्वकै कोण्डु तरुदल् इङ्कु काविनिल् वालक् करुदिल् इरन्डेत्तोरेल तिण्णम वेण्डुम्"

"इन्रु नारायणनै वरक् कूवायेल इंगुत्तु निन्रुम् तुरप्पन"[2]

दोनों अपने प्रियतम के रंग में रंगकर मस्त और पागल भी हो गयी हैं। अतः दोनों को किसी लौकिक दुख की चिन्ता लवलेश नहीं रहती। दोनों अपने आराध्य की प्रीति में इतनी तल्लीन हैं कि उसके लिये हर प्रकार के यातना को वहन करके के लिये सदैव तैयार हैं। अतः मीरा घोषणा करती हुई कहती है—

ताल पखावज मिरदंग बाजा साधां आगे नाची रे।
कोई कहे मीरां बई बावरी, कोई कहे मदमाती रे।
विष का प्याला राजां भेज्यां अमृत कर आरोगी रे।[3]

आण्डाल में भी यही भावना अभिव्यक्त होती है।

आण्डाल अपने पिता तथा बंधुओं से कहती है 'अब लज्जित होने से कोई प्रयोजन नहीं है। कारण मेरी इस दशा को अगल बगल के सबने जान लिया है। अगर आप लोग मुझे मृत्यु से बचाना चाहते हैं तो मुझको ब्रज में जाकर छोड़ दीजिये। वहाँ त्रिविक्रम भगवान के दर्शन से मेरा दुःख शांत होगा।

नाणियिनियोर करुममिल्लै नालायलारुमृरिन्दोलन्दार् आणैयाल् नीरेन्नैक्काक्कावेण्डिल् आयप्पाडिक्के येन्नै युय्त्तिडिमिन्।[1]

यहाँ मीरा के इसी भाव का एक पद दृष्टव्य हैं।

"गोविन्द सूँ प्रीत करत तबहीं क्यूँ न हटकी
अब सो बात फैल परी जैसे बीज बटकी
बीच को विचार नाहिं, छांय परी तटकी
अब चूको तो ठौर नाहि जैसे कला नटकी
जल के बुरी गांठ परी रसना गुन रटकी
अब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी
घर घर में घोल मठोल, बानी घट घटकी
सब ही कर सीस धारी, लोक लाज पटकी
मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी।
दास मीरा भक्ति बूँद, हिरदय बिच गटकी॥[2]

आगे आण्डाल अपनी विवशता को प्रकट करती हुई कहती है कि मैं विवश हूं, इसलिये कि श्रीकृष्ण मेरे सामने आकर छेड़छाड़ के स्वरूप को दिखा रहे हैं। अगर मैं माता पिता तथा अन्य बन्धुवर्गों को छोड़कर स्वतः कृष्ण के पास भाग जाऊँगी तो अपयश लगेगा। अतः आप ही उस अपयश के आने के पूर्व ही मुझे रात के अंधकार में ले जाकर उस नन्दगोप सुत के पास जो अपने छेड़छाड़ तथा धूर्त कार्य-कलापों के लिये प्रसिद्ध है, छोड़ दीजिये।' आंकाक्षा में कितनी तीव्रता है।

---

१ २ ना० ति० ३ मीराबाई की पदावली

१ नाच्चियार तिरुमोलि

२ मीराबाई की पदावली

तन्दैयुन्तायुमुरोरुम् निरूकत् तनिवलि पोयिनाकेन्नुम् सोल्लु बन्दपिन्नैप् पलिकाप्परिदु मायवन वन्दुरूक्-काट्टु किन्रान् कोन्दलमाक्किप् परक्कालित्तुक् कुरुम्बु सेंय् वानोर् मकनैप् पेर् नन्दगोपालन् कडैतलैक्के नक्किरुट्कोन्नैयुय् चिडुमिन्[1]

जब आण्डाल के इस कृष्ण प्रेम पर दूसरे लोग परिहास करने लगे तो गुस्से में कटुवचन कहती हैं। कि 'सर्वगुण सम्पन्न तथा स्तोत्र करने लायक भगवान की निन्दा कर क्यों पापी बन जाते हो। अरे पापियों उनकी सभी लीलायें, ऊलूखल में बांधे जाना, नवनीत चुराना आदि सब सत्य हैं। अतः मुझे गोवर्धनधारी तथा गोरक्षक के पास पहुंचा दो।'[2]
मीरा और आण्डाल के विरह के विविध रूपों में भगवद् धर्म का प्रभाव देखते हैं। प्रो० शशिभूषण गुप्त मीरा को बंगाल के वैष्णव कवियों के साथ तुलना करते हुए कहते हैं "मीराबाई के काव्य में और बंगला वैष्णव काव्य में जो पूर्ण साम्य है उसका कारण है कि इनका उद्भव भारतीय धर्म एवं साहित्य के एक ही भंडार से हुआ है और कवियों ने जाने या अनजाने उसमें प्रस्तुत भाव भंगियों को ग्रहण कर लिया है।[3]

अंत में मैं यह कहना चाहता हूं कि मीरा एवं आण्डाल की विरह वेदना में सूक्ष्म रागात्मिकता को ही सर्वत्र उनके अभिव्यंजन में देखते हैं। डा० उदयनारायण तिवारी मीरा की भक्ति साधना पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं "भक्ति का स्वयम्प्रयोजनत्व भक्त की उच्च भावधारा का अभिव्यंजन है। जब उपासक उपासना के रस में इतना आप्लशर्म हो जाता है कि उसे उसकी साधना फीकी जंचने लगती है और उसी रस में उन्मत्त होकर घूमने लगता है तब उसे वही साध्य एवं समग्र संसार का सार प्रतीत होने लगता है।"

---

१ २ ना ति

३ मीरा स्मृत ग्रन्थ



मलयालम काव्य की कवयित्रियाँ

आर० जनार्दन पिल्लै, 'एम०' ए०

यह तो मानी हुई बात है कि संसार की सभी भाषाओं के साहित्य में कवयित्रियों का स्थान उतना समुन्नत नहीं है। प्राचीन काल के साहित्य में तो उनका नामो निशान तक नहीं मिलता है। मध्यकाल और आधुनिककाल में भी वे पुरुषों के बराबर महत्वपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त कर सकती हैं। मलयालम साहित्य का इतिहास भी इससे भिन्न नहीं है। इस तथ्य पर विचार करने वाले व्यक्तियों को आश्चर्य हो सकता है कि आदिकाल से आजतक साहित्यादि कलाओं में कोई पथ-प्रदर्शक प्रमुख स्त्री क्यों नहीं दिखाई देती। जबकि प्रकृति ने पुरुष को कठोर, बलवान तथा साहसी बनाया किन्तु स्त्रियों को कोमलता, सुन्दरता, सरसता एवं सरलता प्रदान की हैं। जब बात ऐसी है तब सुन्दर और रस प्रधान ललित कलाओं में स्त्रियों को ही आगे रहना चाहिये था मगर बात तो उलटी ही दिखाई पड़ रही है।

मलयालम साहित्य के किसी भी काल में, किसी भी धारा में कोई भी पथ-प्रदर्शक प्रथम श्रेणी की स्त्री नजर नहीं आती। छोटे से परिचयात्मक लेख में 'कवयित्री' शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में किया गया है। अर्थात् 'कवयित्री' में वे सभी स्त्रियाँ सम्मिलित हैं जिन्होंने गद्य-पद्य या चंपू में कुछ न कुछ मनोरंजक बातें लिखी हैं। मलयालम साहित्य का इतिहास यद्यपि करीब हजार वर्ष पुराना है तो भी उसके प्राचीन और मध्यकाल के अन्त तक भी किसी नारी के नाम का उल्लेख तक नहीं मिलता। नवीनकाल में भी ऐसी नारियाँ बहुत कम हुई हैं जिनके नाम कवयित्रियों की सूची में परिगणित हों। वे इनी-गिनी कवयित्रियाँ कौन-कौन हैं और मलयालम साहित्य के लिये उनकी क्या देन हैं, यही इस लेख का अभिप्राय है।

उमादेवी तंपुराट्टी (१७६७–१८३६)—"रावण विजयम् कथकलि" के रचयिता की हैसियत से सुप्रसिद्ध और "स्वाति तिरुनाल महाराज" के संतत सहचारी विद्वान कोयि तपुरान की माँ थीं उमादेवी कंपुराट्टी। इनकी 'विद्वत्ता' मानकर तत्कालीन महाराज स्वाति तिरुनाल ने इन्हें अनेक पुरस्कार प्रदान किये हैं। बड़ी 'विदुषी' रहीं होंगी, मगर कवित्व शक्ति भी उतनी ही थी, इस पर मतभेद है। इनकी प्रमुख रचना है "विष्णु माया चरितम् तुल्लल"

अंबादेवी तंपुराट्टी (१८३२–१८८७)—ये विश्व विख्यात चित्रकार रवि वर्मा कोयितंपुरान की जननी हैं। संगीत, साहित्य और चित्रकला के अतिरिक्त आयुर्वेद में भी इनकी विशेष रुचि थी। इनकी मुख्य कृति "पार्वती स्वयंबरम् तुल्लल" है। इनकी कविता का एक नमूना—

"अकालम् गिरि सुतयाँ पार्वती
मुकएएान् तिरु नयनाग्नि यतिल
चोल् कोल्लुम् स्मर देहम् कण्टि
ट्टुल् काँपि कल् विचारि च्चेवम्।"

कुट्टि कुँजु तंकच्ची (१८२०–१८६८)—दिवंगत मलयालम कवयित्रियों में कुट्टि कुँजु टंकच्ची का सर्वोपरि समुन्नत स्थान है। ये इरयिम्मन तंपी की सुपुत्री थीं।

'श्रीमती स्वयंबरम' आदि तीन कथकलि ग्रंथ, 'एकादशी माहात्म्य' आदि तीन किलिप्पाट्टु, 'शिवरात्रि माहात्म्य' आदि तीन तिरुवात्तिर पाट्टु', 'गंगास्नान तुल्लल', 'सेतुस्नान पाना', 'अज्ञात वास नाटक' आदि इनकी प्रमुख रचनायें हैं। इनकी शैली का नमूना :—

'अरुम पनिमति चीरुम पाँपोट्ट
नीरुम वेरमथि लेरु मेलिपुम्
वेरु पेटातिह मानुम मलुवुम्
मारिल ब्रह्म कपालवु मिंगने।'

'किशातम कुरत्ति प्पाट्ट' इनकी सुप्रसिद्ध रचना है। उदाहरण के लिये—

'कलयुम् पुलियुम् कुलयुम् पेटमान्
कुन्लवुम् पेटि पूँएडोटी
तलयुम् मुलयुम् मुलये नटन्न
म्मुल मकल् मुखम् वाटी।'

ऐसे पद इनकी कवित्व शक्ति के प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्त्रियों में सर्व प्रथम एक स्वतंत्र नाटक की रचना का श्रेय भी इन्होंने प्राप्त किया था।

तोट्टटच्काट्ट इक्कावम्मा (१८६४-१९१६) 'सन्मार्गोपदेशम् तुल्लल', 'गासक्रडा कुरत्तिप्पाट्ट', पुराण श्रवण माहात्म्य किलिप्पाट्ट', 'आर्या शतक' आदि इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। फिर भी इनकी कीर्ति का मुख्य कारण 'सुभद्रार्जुनम् नाटक है। स्त्रियों में सर्व प्रथम नाटक की रचना यद्यपि कुट्टि कुंज तंकच्ची ने की थी तो भी कवित्व शक्ति की दृष्टि से इन्हीं का सुभद्रार्जुनम नाटक श्रेष्ठ है।

बी. कल्याणि अम्मा—ये स्वदेशाभिमानी के. राम कृष्ण पिल्लै जी की धर्मपत्नी और 'व्याघ्र वट्ट स्मरण' की रचयित्री और नायिका हैं। 'घर में और बाहर', (हिन्दी) 'तामरश्शेरी', 'महतियाँ', कर्मफल' आदि इनकी अन्य प्रसिद्ध हिन्दी रचनायें हैं।

उपर्युक्त कवयित्रियों के अतिरिक्त दिवंगत कवयित्रियों में तृक्केट्ट निरुनाल तंपुराट्टी, इलमना मटतिल 'कल्याणी अम्मा, नागर कोविल कल्याणि कुट्टी अम्मची, कोची इक्कुक्कम्म तंपुरान, राणी लक्ष्मी माई, मंगलशेरिल कीच्चु कुंजी अम्मा, तरवत् अम्मालु अम्मा आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनकी अनेक कृतियाँ प्राप्त हैं। 'सन्तान गोपालम् चंपू' की रचयित्री करुवेलि गौरि कुट्टि अम्मा, 'गोग्रहणम्' मणिप्रवालम्' की रचयित्री परुव क्काट्ट अम्मु कुट्टि अम्मा, 'कालिय मदनम् तुल्लल' की कवयित्री 'आर्या-देवी अन्तर्जनम् और 'विष वृक्ष' आदि उपन्यासों की अनुवादिका साहित्य सखी टी. सी कल्याणि अम्मा आदि के अतिरिक्त जीवित कवयित्रियों में बालामणी अम्मा, मुतुकुलम पार्वती अम्मा, मेरी जोण तोट्टम (अब सिस्टर मेरी बनींज) मेरी जोण कूत्ताट्टु कुलम्, सुगत कुमारी, नलिन कुमारी, ललितांबिका अन्तर्जनम्, सरस्वती अम्मा, माधवि कुट्टी, सरला राम वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भावगीत धारा में नालप्पाट्ट बालामणी अम्मा का नाम साहित्य में अमर रहेगा। इनकी प्रथम रचना 'कूप्पु कै' ने सहृदयों को खूब आकर्षित किया। लेकिन इनकी 'अम्मा' नामक कृति कवित्व शक्ति का परमोत्कृष्ट प्रमाण है। मातृ-शिशु संबन्ध के मनोहर एव मनोज्ञ भावों का प्रस्फुरण प्रस्तुत कृति में हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में कुडुंबिनी' 'धर्म मार्गत्तिल', 'स्त्री हृदय', 'भावनयिल' 'प्रेमा-कुरम' आदि प्रसिद्ध हैं।

मुतुकुलम पार्वती अम्मा का नाम जीवित मलयालम कवयित्रियों में प्रमुख माना जाता है। गद्य, पद्य दोनों विधाओं में इनकी देन अमूल्य हैं। इनकी साठवीं वर्षगाँठ अभी २६ जनवरी १९६४ कों धूमधाम से मनायी गयी हैं। महाकवि कुमारन आशान ने एडविन अरनोलड के 'लाइट आफ एशिया' के पाँच सर्गों का अनुवाद 'किलिप्पाट्ट' शैली में किया था। शेष तीन सर्गों का अनुवाद भी उसी शैली में मुतुकुलम पार्वती अम्मा ने पूरा कर लिया है। इनकी शैली का एक उदाहरण लीजिये :—

'चेल्ल क्किटाविने वाम हस्तत्तिनाल
नल्लिल पाल चुरन्निट्टु स्तनंगलो
टुल्लास पूर्वमणच्चु विलंगने
मारत्तटक्कि प्पिटि च्चतिन पूमेनि
चारुवाँ सारियाल पाराते मूडियुम।'

सर्वोपनिषद् सार संग्रह 'भगवद्गीता' का अनुवाद भी मुतुकुलम पार्वती अम्मा ने 'किलिप्पाट्ट' शैली में किया है। खंड कृतियों के संग्रह, खंडकाव्य, छोटे छोटे उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, जीवनियाँ आदि गद्य, पद्य की विविध विधाओं में विहार करने वाली आप मलयालम काव्य कोकिल हैं। भाषण कला में भी आप सिद्धहस्त हैं। इस तरह किसी भी दृष्टि से मलयालम साहित्य के महिला मंडल में श्रीमती पार्वती अम्मा का सम्मान्य एवं समुन्नत स्थान है।



कन्नड कवयित्रियाँ

'कुसुम' एम० ए०

कन्नड की आदि कवयित्री कौन है, इस प्रश्न का समाधान देना अवश्य कठिन है। इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त कुछ प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि **विजये** अथवा **विडिभका** संभवतः पहली कवयित्री हैं;[1] कहा जाता है कि वे कन्नड़ भाषी गण्यमान कवयित्री थी। खेद है कि उनके बारे में और अधिक विवरण नहीं मिलता।

स्वर्गीय आर नरसिंहाचार्य कृत "कर्णाटक कविचरिते" ग्रंथ से पता चलता है कि सन् ११०० के आसपास कंति (अथवा कंतिके) नामक कवयित्री हुई थीं। उन्होंने कौन-सा ग्रन्थ लिखा है, यह ज्ञान नहीं हो सका है। कहा जाता है कि वे 'अभिनव पंप' नाम से प्रसिद्ध नागचन्द्र (पंप रामायण के कवि) की समकालीन थीं। वे दोरसमुद्र के होयसल राजा बल्लाल प्रथम (सन् ११००-११०६) के दरबार में गयी थी। कंति और नागचन्द्र के बीच में विवाद हुआ था, नागचन्द्र को कविता समस्याएँ देकर उनको कंति ने हराया था। इससे विद्वत् समाज में उन 'कवीश्वरी' का अधिक सम्मान हुआ था।

देवचन्द्र कवि (सन् १७७०-१८४१) ने अपनी रचना "राजावलिकथे" में उक्त घटना का उल्लेख किया है।[2] इसके प्रमाण स्वरूप "कंति-हंपन समस्येगलु" (कंति-हंप-समस्याएँ—यहाँ 'हंप' से तात्पर्य 'अभिनव पंप' से है।) शीर्षक के कुछ पद्य मिले हैं। १७वीं शताब्दी के कवि बाहुबलि ने अपनी रचना 'नागकुमार चरित' में कंति की स्तुति की है और उनको "अभिनव वाग्देवी" कहा है।

१२वीं शताब्दी में कन्नड-स्वातंत्र का अरुणोदय हुआ। महात्मा बसवेश्वर के प्रयत्न से कर्नाटक में ही नहीं उसके बगल के अन्य प्रान्तों में भी वीर शैवधर्म का प्रचार हुआ। वह युग कन्नड-साहित्य का वसंत-काल है जब कि अनेक संत कवि (जिन्हें कन्नड में वचनकार कहते हैं) ही नहीं कवयित्रियाँ (वचनकार्ति) भी हुईं। उन कवयित्रियों में सर्व प्रथम **अक्कमहादेवी** अथवा **महादेवियक्का** का नाम लिया जाता है।

महादेवियक्का के काल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। वे बसवेश्वर की समकालीन थीं। अतः कहा जा सकता है कि सन् ११५०-७० के आसपास जीवित थीं। उनका जन्म उडुतडि नगर में हुआ था। उस नगर के राजा कौशिक के साथ उनका विवाह हुआ था। परन्तु उन्होंने चेन्नमल्लिकार्जुन (शिव) को अपना पति स्वीकार कर लिया था। कहते हैं कि राजा कौशिक ने उनको सांसारिकता में अनुरक्त करने के अनेक असफल प्रयत्न किये। अन्त में, कौशिक से तंग आकर, विरक्त हो 'अक्का' कल्याण चली गयी।

जहाँ वे बसवेश्वर आदि संत भक्तों के साथ रहने लगीं। **'महादेवियक्कन पुराण'** नामक पुस्तक में अक्का का जीवन परिचय मिलता है।

१ देखिए डी० चंपाबाई (संपादिका) : 'हरिहरदेय धर्म', भूमिका, पृ० २६ (मैसूर विश्वविद्यालय प्रकाशन, सन् १९५७)

२ दे० कर्णाटक कविचरिते, भाग १ पृ० १२३ (सन् १९६१)

अक्का की रचनाएँ है वचन अथवा बानी, योगांग, त्रिविधि, सृष्टिय वचन और अक्कगल पीठिके। इनमें उनके वचन अत्यन्त लोकप्रिय हैं। उनके वचनों में 'चेन्नमल्लिकार्जुन' की छाप मिलती है। वे एक भावुक कवयित्री हैं, उच्च कोटि की भक्तिन हैं। उनके वचन गीतिकाव्य के सुन्दर उदाहरण हैं, उनमें हम उनके प्रेम विह्वल भक्त हृदय का अवलोकन करते हैं। ऊपर हमने कंति का उल्लेख किया है। जहाँ तक हमें ज्ञात है, कंति एक चतुर कवयित्री है, उनकी कविता 'चतुर कविता' है। पर अक्का हृदय गीत की गायिका हैं। गीति काव्यकार कन्नड कवयित्रियों में उनका ही नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। उनके वचनों में आत्मानुभूति के मार्मिक चित्र मिलते हैं। रहस्यवादी कवियों की भाँति अक्का भी कहती हैं—

"हर ! तुम मेरे पति होओ, इसके लिए मैंने अनंत काल से तप किया था..."

"स्वामी ! तुम सुनो या न सुनो, मैं तुम्हारा गान किये बिना नहीं रह सकती..."

"जल के मंटप पर आग की छत लगाकर पत्थर के मंगल आसन पर पदहीन पत्नी को शिरहीन पति ने वर लिया। चेन्नमल्लिकार्जुन नामक पति से मेरा विवाह रच कर मुझे अखण्ड सुहागिनी बना लिया।"

अक्का के वचनों में प्रभु से बिछुड़ने के कारण उत्पन्न विरहानुभूति का भी चित्रण मिलता है। उस चित्रण में अत्यन्त स्वाभाविकता है—

"हे अलियों ! हे आम्रवृक्षों ! हे चाँदनी ! हे कोकिल मैं तुम सब लोगों से एक बात की याचना करती हूँ। मेरे पति चेन्नमल्लिकार्जुन को देखो तो मुझे दिखा देना।"

न जाने अक्का को जीवन से कितना संघर्ष करना पड़ा हो। प्रेम के मार्ग पर चलने वाली उन भक्तिन को समाज के कठोर नियमों के कितने आघात सहने पड़े हो। किन्तु उन्होंने सबका साहसपूर्वक सामना किया, वे स्थित प्रज्ञा रहीं। एक वचन में वे कहती हैं—

"पहाड़ पर घर बनावें और पशुओं से डरे ? समुद्र के भीतर घर बनावें और फेन-लहरों से डरे ? हाट में घर बनावें और आहट से डरे ? सुनो चेन्नमल्लिकार्जुन संसार में जन्म लेने के बाद स्तुति निंदा से क्रुद्ध न होना चाहिए, शान्त रहना चाहिए।"

नीचे उद्धृत वचना उनकी अनन्य भक्ति का परिचायक है—

'चन्दन को काट छेद कर घिसाने से वह क्या अपनी सुगन्ध छोड़ देता है ? सोने को आग में तपाने से वह क्या अपना गुण छोड़ देता है ? ईख को बार-बार कोल्हू में रखकर और उसको उबाल कर शक्कर बनावे तो वह क्या 'हाय-हाय' कहकर विलाप करता है ! यदि मैं अपने पुराने नीच कृत्यों के सम्बन्ध में आपके सामने कहूं तो इससे आपकी क्या हानि है ? अपने प्रभु चेन्नमल्लिकार्जुन दे को देखूँगी तो मैं 'तुम्हारी शरण' कहे बिना नहीं रह सकती।''

अंत में यह कहा जा सकता है कि महादेवियक्का और हिन्दी कवयित्री मीरा की साधना में कई समानताएँ हैं। दोनों कवयित्रियों की तुलना की जा सकती है।

महादेवी नाम की और एक कवयित्री बसवेश्वर के काल में हुई थीं। वे संत कवि मोलवो मारय्या की पत्नीं थीं उनके वचनों में इम्मड़ि निःकलंक मल्लिकार्जुन की छाप है। मोलिगे मारय्या मांडव्यपुर के शासक थे। एक दिन जब वे वसवेश्वर के यहाँ शिव भक्तों के साथ बैठे थे, तक बसवेश्वर की महिमा से भक्तों के गले में वर्तमान बैंगन शिव लिंग हो गये। इसे देखकर मारय्या को वैराग्य हुआ। राज्य छोड़कर वे कल्याण गये और वहाँ जंगम (साधु) हो गये। उनकी पत्नी महादेवी भी भक्तिन थीं। उनके केवल (४१) वचन प्राप्त हुए हैं। एक वचन उदाहरण स्वरूप देखिए—

"संसार-सगार में प्राप्त सुख को दुःख न जानकर उस सुख पर मुग्ध हो भव दु.ख रूपी क्रूर-जन्म, चक्र में पड़कर आत्म विस्मृति से भ्रमित हो जा

अज्ञानी जीव घोर संकट में निमग्न हो गये हैं, वे तुमको क्या पहचानते हैं। हे मेरे प्रिय इम्मडि निःकलंक मल्लिकार्जुन !"

ऐसा ज्ञात होता है कि सन् ११६० के आस-पास बिज्जल देवी नाम की एक भक्त कवयित्री हुई थीं। उनके वचन प्राप्त नहीं हुए हैं। उनकी भक्ति वात्सल्य भाव की कही जा सकती है। वीरशैव-धार्मिक ग्रंथों से विदित होता है कि उनके हृदय में शिवजी की माँ बनने की तीव्र अभिलाषा थी। वे सोचती थीं, शिवजी मातृहीन होने के कारण अनाथ बालक की भांति रहते हैं। उनके काल न संवारने के कारण जटा रूप हो गये हैं। उनके शरीर भर में राख गली हुई है। उनकी इस अवस्था से बिज्जलदेवी का हृदय पिघल गया। जब वे स्वयं मातृ-भाव से शिवलिंग की सेवा करने गयीं शिवलिंग ने शिशु का रूप धारण कर लिया। उस शिशु को पालती हुई उसकी बाल-लीलाओं से आनन्द मग्न बिज्जलदेवी ने अपना जीवन बिताया। इस कथा से इतना तो स्पष्ट है कि बिज्जलदेवी मातृभाव से भगवद्भक्ति करती थीं।

बिज्जलदेवी के पश्चात् उन्हीं की समकालीन शिवभक्तिन कालव्वे का नाम उल्लेखनीय है। वे बाचिकाय बसवप्पा की पत्नी थीं। उनके वचनों में 'कर्महर कालेश्वर' की छाप है। उनकी उच्च भक्ति के संबंध में यह कहा जाता है कि उन्होंने पत्थर से दूध निकालकर भगवान् शिव को पिलाया था।

नीलम्मा एक प्रसिद्ध शिव भक्तिन थीं। उनका समय भी सन् ११६० के आसपास माना जाता है। उनकी दो रचनाएँ हैं—प्रसाद-संपादन और कालज्ञान। वे कल्याण के मंत्री बलदेव के छोटे भाई सिद्दण्ण मंत्री की पुत्री और बसव की पत्नी थीं। उनके वचनों में 'बसवप्रिय कूडलसंगमदेव' छाप मिलती है। उनके चरित से संबंधित तीन ग्रन्थ मिलते हैं—नीलम्मा-स्तोत्र, नीलाँबिका पंचविंशति और नीलम्मा-त्रिविधि।

हडपद अप्पण्णा की पत्नी लिंगम्मा नाम की शिवभक्तिन भी इसी समय हुई थीं। उनके ८७ वचन उपलब्ध हुए हैं। उनके वचनों में 'अप्पण्ण प्रिय चेन्नबसवण्णा' की छाप है। ऐसा मालूम पड़ता है, कुछ वचनों में 'चेन्नबसवेश्वर' की छाप भी है।

बारहवीं शताब्दी की शिव-भक्त-कवयत्रियों में सत्यक्क गोग्गव्वे, वीरम्मा, कालव्वे, बोंतलदेवी, कादिरकायद रेम्मव्वे, रेचव्वे, रेम्मव्वे, कोट्टणद सोमव्वे और उरुलिंगपेद्दि की पत्नी, कालव्वे के नाम भी प्रसिद्ध हैं। ये सब कवयित्रियाँ ११६०-११८० ई० के आसपास थीं। इनके संबंध में जो अल्प विवरण मिलता है, वह इस प्रकार है—सत्यक्का के वचनों में 'शंभुजक्केश्वर' की छाप है। उनके वचनों में शक्ति का स्वभाविक वर्णन है। गोग्गव्वे से वचनों में 'नास्तिनाय' की छाप है। उनके वचनों में सरल सुबोध उपमाओं का प्रयोग हुआ है। वीरम्मा दसरय्या की पत्नी थीं जो एक भक्त थे। वीरम्मा के वचनों में 'गुहाँ-तरेश्वर' की छाप है। उनके कुछ वचन प्राप्त हुए हैं। सिद्धबुद्धय्य की पत्नी कालव्वे के वचनों में 'भीमेश्वर' की छाप है। बोंतलदेवी और कादिरकायकद रोमव्वे के वचनों में क्रमशः 'बिडाडि' और 'गुहेश्वर' की छाप है। रेचव्वे कालकूटय्या की पत्नी थीं। 'कुंभेश्वर' छाप से वे वचन कहतीं थीं। स्व० आर० नरसिंहाचार्य जी ने रेम्मव्वे के दो वचन उद्धृत किये हैं जिनमें 'आचारवे प्राणवाद रामेश्वर लिंग' की छाप है। वर्तमान युग के अनुसंधान से पता चलता है कि संभवतः उन कवयित्री का सही नाम रेब्बव्वे था। उकोट्टणद सोमव्वे और उरिलिंगपेद्दि की पत्नी कालव्वे के वचनों में क्रमशः 'निर्लज्जेश्वर' और उरिलिंगपेद्दगलरस' की छाप है।

इनके अतिरिक्त, वीर-शैव-धर्म प्रचार के उस युग में और भी कई शिव भक्तिन कवयित्रियाँ हो गयी हैं जिनका उल्लेख कुछ ग्रन्थों में मिलता है। उदाहरणार्थ बारहवीं शक्ति में वर्तमान पाल्कुरिके सोमनाथ कवि ने अपनी रचना 'सहस्रगणशम' में ये नाम बतलाये हैं—सूरसानि, सूले नंबियक्का, सूले बोम्मलदेवी, सूले पद्मलदेवी, सूले कामलदेवी, सूले संकलदेवी, नीललोचने और हेरूर हेण्णु। इनमें हेरूर हेण्णु पर महादेव (सन् १६५०)

नेमक कवि ने एक गेय-काव्य (हेरूरहेण्णु सांगत्य) की रचना की है। पालकुरिके सोमनाथ ने सत्यक्का और बोंतलदेवी के नामों का भी उल्लेख किया है जिनके संबंध में हम ऊपर कह चुके हैं। नरसिंहाचार्य जी ने कविचरते में ऐसी कुछ कवयित्रियों के नाम दिये हैं जिनके वचन उपलब्ध नहीं हुए हैं, पर वचनों की छाप ज्ञात है। अक्कनागम्मा, कन्नडि कामदु रेम्मम्मा, गंगम्मा, गंगाबिके, नीललोचने, महादेवी, लक्ष्मम्मा (कोंडिय मंचण्णा की पत्नी) और सुवर्णदेवी ऐसी कवयित्रियों के नाम हैं जिनके वचनों की छाप क्रमशः इस प्रकार है—बसवण्णप्रिय चेन्नसंग' 'सद्गुरु संग निरंग लिंग' 'गंगेश्वर लिंग' 'गंगा प्रिय कूडलसंगमदेव' 'संगय्या' 'महादेव ज्योति-लिंग' 'अगजेश्वर लिंग' और 'सुवर्णलिंग'।

ऊपर जिन कवयित्रियों के विषय में कहा गया है, उनको कन्नड़-साहित्य में 'वचनकर्तियरु' कहते हैं। उनमें, जैसी कि इसके पूर्व ही कहा गया है, महादेवियक्का का व्यक्तित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण और महान् है। अब हम, और एक ऐसा ही प्रभावशालिनी कवयित्री की जानकारी प्राप्त करेंगे जो मैसूर के राजा चिक्कदेवराज ओडेयर (१६७२-१७०४ ई०) के समय में हुई थीं। वे कवयित्री हैं संचियहोन्नम्मा। स्वर्गीय बी० एम० श्रीकंठय्या जी ने महादेवियक्का और होन्नम्मा के संबंध में ठीक ही लिखा है—'दोनों कन्नड़ प्रेमी हैं, उज्ज्वल भक्तिनें हैं, समाज-सेविकाएँ हैं। अक्कन्महादेवी रुद्र-कन्यका है; उन्होंने सर्वान्तिर्यामी भगवान के दर्शन सर्वत्र किये, शिवजी को पति मानकर अपनी आत्मा और जीवन का समर्पण किया, बड़े धार्मिक आंदोलन के हेतु देश में घूमती हुई अपने वचनों के द्वारा सेवा-पुष्प चढ़ा कर (समाज में) आवेश उत्पन्न किया। उनकी दृष्टि में घर से देश बड़ा था। होन्नम्मा सौम्य मूर्ति थीं, उन्होंने घर-बार, बाल बच्चे; पति-पत्नी और गृहस्थाश्रम-धर्म के जीवन-सौंदर्य का गीत रूप में गान कर यह घोषित किया कि घर-गृहस्थी का निष्काम-कर्म ही भगवान् के चरण कमलों को प्राप्त करने का मार्ग है। उन्होंने घर में रहकर अपनी सेवा के द्वारा आश्रयदाता राजा को संतुष्ट करती हुई देश की सेवा की। सांसारिक जीवन के दो पहलुओं को प्रदर्शित करनेवाली ये दोनों 'कन्नडतियाँ' पूजनीय हैं।[१]

मैसूर के राजा चिक्कदेवराज ओडेयर विद्याप्रेमी राजा थे। उन्होंने अनेक कवियों को आश्रय दिया था। वे स्वयं भी अच्छे कवि थे। 'चिक्कदेवराजबिन्नप' और 'गीतगोपाल' उनकी दो रचनाएँ हैं। उन्हीं के आश्रय में रहकर कवयित्री होन्नम्मा ने 'हदिबदेय धर्म' नामक नीति-काव्य की रचना की। उस काव्य से ज्ञात होता है कि बाल्य से ही वे महारानी एकंदूर देवराजम्मण्णि की सेवा करती हुई अंतः पुर में रहती थीं। मालूम पड़ता है कि उनका जन्म धनी परिवार में नहीं हुआ था। शिक्षा-दीक्षा भी नहीं हुई थी। बाद में महारानी और चिक्कदेवराज की कृपा से अंतःपुर में ही उन्होंने शिक्षा पायी। उनके विद्यागुरु सिंगरार्य थे जिन्होंने कन्नड़ में 'मित्रविंदागोविंद' नाटक लिखा है। होन्नम्मा के ही कथनानुसार 'राजा की कृपा से मिट्टी सोना हुई,' होन्नम्मा शिक्षिता हुई। उनके अनुभव भी परिपक्व हुए। नारी-जीवन के लक्षण और रहस्य से परिचित होकर वे 'सरस साहित्य की वरदेवी' बनी है। जिस प्रकार पुष्प के विकसित होते ही उसकी सुगन्धि चारों ओर फैलती है, उसी प्रकार होन्नम्मा की प्रतिभा और विद्वता की सुगन्धि राजसभा में व्याप्त हुई। राजा के आदेशानुसार होन्नम्मा ने 'हदिबदेय धर्म' (पतिव्रता-धर्म) की रचना की। उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा के प्रति अत्यंत नम्र शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की है। काव्य के प्रत्येक सर्ग (सन्धि) के अंत में उन्होंने चिक्कदेवराज का नामोल्लेख किया है।

'हदिबदेय धर्म' सांगत्य (गेय) छंद में है। कवयित्री ने अपने काव्य के लिए सर्वथा नूतन विषय चुना है। पतिव्रता धर्म विषय पर काव्य-रचना करने वाले कवि शायद ही दिखाई पड़े। अपने काव्य के प्रारम्भ में कवयित्री ने यह स्पष्ट कर दिया है कि उनके काव्य में महाकाव्य के अष्टदश वर्णन नहीं है। उसमें छोटी कथाएँ आती हैं। कवयित्री का उद्देश्य रामायण, महाभारत और मनु-धर्मशास्त्र आदि में

१. देखिए 'हदिबदेय धर्म'—भूमिका, !
(मैसूर विश्वविद्यालय प्रकाशन)

...ा सती-धर्म का वर्णन करना ही है। भारतीय स्त्रियों .. महत्ता, समाज में स्त्रियों का स्थान और पतिव्रता स्त्रियों के कर्तव्य का वर्णन कवयित्री ने किया है। आधुनिक काल में स्त्रियों का जीवन पूर्ववत नहीं है, अतः इस दृष्टि से होन्नम्मा के काव्य की आलोचना करना अनुचित है। यहां यह बात अवश्य कही जा सकती है कि आधुनिक स्त्रियाँ भी होन्नम्मा का काव्य पढ़कर कई बातें जान सकती हैं।

हमारे समाज में स्त्रियों का क्या स्थान है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। प्रायः यह देखा जाता है, कि बालक के जन्म के अवसर पर जितना सन्तोष मनाया जाता है, कन्या के जन्म के अवसर पर उतना नहीं। स्त्रियों को निम्न दृष्टि से देखने की समाज की परम्परागत नीति का होन्नम्मा ने धैर्य के साथ खंडन किया है। वे कहती हैं—

जन्मदात्री माँ क्या स्त्री नहीं है?
पालनकर्त्रि माँ क्या स्त्री नहीं है?
हेय दृष्टि से 'स्त्री, स्त्री' क्यों कहते है?
आँखों से अन्धे, वे मूढ़ जन हैं॥

यहाँ उनका स्त्रीत्व का गौरव-भाव जागृत हुआ है। उनके विचार में पुत्र, पुत्री दोनों बराबर हैं—

पुत्र हुआ तो गुण भी क्या हैं?
पुत्री हुई तो दोष भी क्या हैं?
वास्तव में दोनों की बुद्धि?
हेतु है इह-पर सौख्य-समृद्धि॥

होन्नम्मा की आडंबर विहीन भाषा-शैली आकर्षक तथा हृदय पर प्रभाव डालनेवाली है। उनके काव्य में भावों के अनुकूल अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। सुन्दर मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग करने में भी वे सिद्धहस्त है। निःसंदेह कन्नड़ कवयित्रियों में उनका नाम अमर रहेगा।

ऊपर कहा गया है कि मैसूर के चिक्कदेवराज के आश्रय में रहकर कई कवियों ने साहित्य की वृद्धि की।

शृङ्गारम्मा नाम की वैष्णव-कवयित्री भी संभवतः चिक्कदेवराज का प्रोत्साहन प्राप्त कर चुकी थीं। उन्होंने 'पद्मनी-कल्याण' काव्य की रचना की है। उनके पिता का नाम चितामणि देशिकेंद्र और गुरु का नाम श्री निवाउ देशिक अथवा श्रीनिवासाचार्य है। 'पद्मिनी-कल्याण' सांगत्य-छंद में है। उसमें १८९ पद्यों में पद्मिनी और तिरुपति के भगवान श्रीनिवास के विवाह का वर्णन है। पद्मिनी के बाल्य का कवयित्री ने मनोमुग्धकार वर्णन किया है।

मैसूर के राजा दोड्ड कृष्णराज ओडेयर (१७१३-१७३५ ई०) की महारानी चेलुवांबा भी एक अच्छी कवयित्री थीं उन्होंने 'वरनंदि-कल्याण' की रचना सांगत्य छंद में की है। उसमें सात संधियाँ हैं; मोलुकोटे के भगवान् चेलुवरायस्वामी और दिल्ली के बादशाह (?) की बेटी के विवाह की कथा उसमें वर्णित है। बेटी की बिदाई के समय आँसू बहानेवाली माता के और दुखी भाइयों के चित्र बहुत सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किये गये हैं। चेलुवांबा ने होन्नम्मा के काव्य से प्रेरणा ग्रहण की।

चेलुवांबा के बाद भक्त कवयित्री हेलवनकट्टे गिरियम्मा का नाम उल्लेखनीय है। अठारवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में वे जीवित थीं। हेलवनकट्टे रंगनाथ उनके इष्टदेव थे उन भावुक कवयित्रियों ने अपने को इष्टदेव के चरणों में समर्पित कर दिया था। उनके काव्य गीतिकाव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। जिनमें एक भक्तिन का अंतरंग स्पष्ट रूप से अंकित है। उनके तीन काव्य—चंद्रहास-कथा, सीता-कल्याण, उद्दालक-कथा तथा फुटकर पद प्राप्त हुए हैं 'ब्रह्मकोरवंजि' भी संभवतः उन्हीं ही की रचना है। उनकी कविता में स्वाभाविक सौंदर्य है, भाषा-शैली में आकर्षण है। १९वीं शताब्दी से कन्नड़ साहित्य में 'नयी कविता' का युगारंभ होता है। इस युग में कन्नड़ कविता ने कई नवीन सज्जाएँ ग्रहण कीं। इस युग में अनेक महिलाओं ने कन्नड़-भारती की सेवा की है और आज भी कर रहीं हैं। कुछ प्रसिद्ध कवयित्रियों के नाम इस प्रकार हैं, कोष्टक में उनके काव्य के नाम दिये गये हैं—गौरम्मा अच्युतराव (सती-वृन्द), गलगलि अवनम्मा (मुग्यद पदगल), तुलसीबाई (रंगसेट्टि, कालगौड और गीत), बेळगेरे जानकम्मा (कल्याण) जैन महिला (लक्ष्मीबाई), शारदम्मा (नटराज-भक्त नंद होलेय और तिरुमले राजम्मा—उपनाम भारती (तपस्विनी-गीतनाट्य) इन कवयित्रियों की सेवा अवश्य प्रशंसनीय है, पर यह सेवा पर्याप्त और प्रत्यशित नहीं है। हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य में स्त्रियाँ कन्नड़-काव्य-देवी की और भी अधिक सेवा करेंगी।



कन्नड साहित्य को महिलाओं की देन

के० गणपति भट्ट

द्राविड़ी भाषाओं में कन्नड एक मधुर भाषा मानी गयी है। यह भाषा एक समृद्धशाली साहित्य को अपने में लिये हुई है।

'हल्मिडी शिला-लेख' के आधार पर कहा जा सकता है कि ई० की तीसरी शती के पूर्व से ही कन्नड भाषा में एक उच्चतम स्तर का साहित्य-सृजन हो गया था। राष्ट्रकूट वंशी राजा नृपतुंग विरचित 'कविराज मार्ग' नामक महान ग्रन्थ उपरोक्त कथन का प्रमाण है। श्री श्रीशिवकोट्याचार्य विरचित 'वड्डाराधना' (जैन धार्मिक कथा संग्रह; समय नवीं शती) कन्नड भाषा में उपलब्ध प्रौढ़तम् ग्रंथ है।

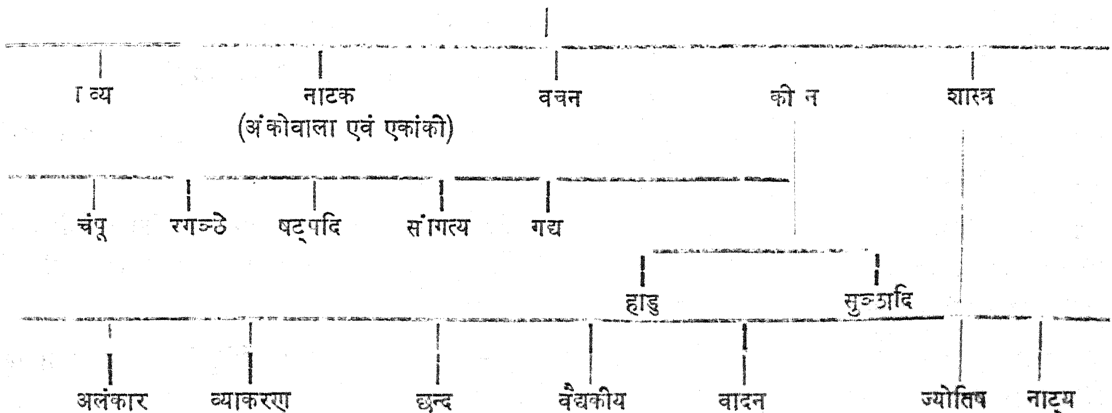
कन्नड के ख्यातनामा व्याकरणकार महापंडित भट्टाकलंक ने अपने 'शब्दानुशासन' में कन्नड साहित्य की विपुलता का उल्लेख इस तरह किया है —

'शब्दागम युक्त्यागम परमागम विषयाणां तथा काव्यनाटकालंकारकलाशास्त्रविषयाणां च बहूनां ग्रन्थानामपि भाषा कृताना— मुपलभ्य मानत्वात्"

कन्नड भाषा पर वैज्ञानिक ढंग से पांडित्यपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करने वाले 'रैस' तथा 'किटल' नामक विदेशी विद्वानों ने अपना मत ऐसा प्रकट किया है--

"कन्नड कुल, आर्यों के पूर्व का है; कन्नड भाषा वेदोपनिषद् समय से ही प्रचलित है; कन्नड नाडु (देश) रामायण-महाभारत काल से ही प्रख्यात है।"

कन्नड साहित्य की गति-विधि



सार स्वरूप इतना कहा जा सकता है कि कन्नड भाषा-साहित्य निर्झरिणी—

(क) गंग-साम्राज्य में जन्मी;

(ख) राष्ट्रकूटों के समय में गोदावरी तीरस्थ प्रदेश में परिपुष्ट हुई;

(ग) आगे चलकर चाट्टलुक्यों के राज्यकाल में विविध रूपों में व्यक्त हुई;

(घ) होयसलों के आश्रय में एक नवीनतम शोभा पा गयी;

(ङ) आगे बढ़कर विविध शाखाओं में बहती हुई पंपाधीश के श्री चरणों को धोया;

(च) पुनः मैसूर के महाराजाओं के सन्निकट पधारी;

(छ) अब मैसूर राज्य की व्यावहारिक (सरकारी) भाषा के आदरणीय आसन पर बिराज रही है।

स्वनाम धन्य कवयित्रियाँ—

प्राचीन कन्नड साहित्य में महिला लेखिकाएँ बहुत थोड़ी संख्या में दृष्टि आयी हैं। पूरे प्राचीन साहित्य में केवल तीनही प्रमुख नाम पाये गये हैं।

कन्ति, अक्कमहादेवी तथा संचिय होन्नम्मा।

कवयित्री कन्ति– (अभिनव वाग्देवी)—

इनका जीवन-काल ई० सन् ११०६ है। यह जाति से जैना (संप्रदाय की) थीं। होयसल राजा प्रथम बल्लाळ का राजाश्रय इनको प्राप्त हुआ था। 'कन्ति-पंपन समस्ये गळु' (कन्ति-पंप की समस्याएँ)—इनकी प्रसिद्ध रचना है। स्वरूप—'कंद पद्य' (छंद का नाम) है।

कन्ति और पंप (कन्नड के युग-प्रवर्तक कवि माने गये हैं) बीच बहुत समय तक वाद-विवाद (साहित्य चर्चा) चला। वे एक दूसरे को अपनी पंडिताई द्वारा हराना चाहते थे और अपने समय के प्रकांड-कवि (कवियों का सिरमौर) माने जाने की आकांक्षा रखते थे। कविवर बाहुबलिने (समय ई० सन् १५६०) अपने 'नागकुमार चरित' में कन्ति की प्रशंसा इस तरह की है—

[* कृपया कन्नड-कविता को पढ़ते समय लेख के अंत में दी हुई सूचनाओं पर ध्यान दें ले०]

मूल—"विबुधजनस्तुत श्रीवीरदोरनसभेगेमंगळलक्ष्मि येनिप। शुभगुण चरित कन्ति केयर पोगळवें आं अभिनव वाग्दे वियर।।"

टीका—[पंडितों से प्रशंसित महाराजा श्री वीरदोर की राज सभा की शोभा बढ़ाने वाली शुभगुणों से युक्त (संपन्न) वाग्देवी कन्ति की प्रशंसा मैं करता हूं।]

[विशेष–पुराने समय में राज दरबारों में 'समस्या-पूर्ति की स्पर्धा चलती थी।]

महाकवि पंप ने समस्या उठायी—

मूल—"ननिगे, नमस्कार माडे कैवल्य सुखम्।।"

अर्थ–['मुझे' (ननिगे) प्रणाम करने से स्वर्ग सुख (मोक्ष) प्राप्त होगा।]

कवयित्री कन्ति ने सोचा कि पंप का यह कहना अनुचित है। एक सामान्य मानव को प्रणाम करने से स्वर्ग सौख्य (मोक्ष) कैसे प्राप्त हो सकता है! बुद्धिमती कन्ति ने समस्या को इस तरह पूर्ण किया—

मूल–"धनमतियिनतुदयदोलं।
विनयदि फलपुष्पवेरसि भकुतिय भरदिं।।
मनशुद्धिवडेदु परमजि ननिगे नमस्कार माडे कैवल्य सुखम्।।"

टीका–[सुप्रभात की शुभशुभ्रवेला में फल पुष्पों को समर्पित करके परमजिनदेव (चौबीस तीर्थंकारों में प्रधान) को प्रणाम करने से स्वर्गसुख (मोक्षप्राप्ति) अवश्य प्राप्त होगा।]

पंप ने दूसरी समस्या सुनायी।

मूल–"कट्यं, कुडिवुदनु कंडे जैनरमनेयोल।"

अर्थ–[जैनियों के घर पर सुरा (मद्य) पान करते देखा।]

कन्ति ने सोचा कि जैनी कभी सुरा नहीं पीते। जैनी अपनी चरित्र-शुद्धि के लिये प्रख्यात हैं। ऐसा सोचकर कन्ति ने कहा—

मूल–"………कत्तियिं कोरेदु नेलुविन मोसरं।। बेलि बट्टलोलक्कुत।

कलं कुडिवुदनु कंडे । जैनर मनेयोल ।। '

टीका:-[मैंने, किसी जैनी के यहाँ सींके की रस्सी को काट चाँदी के कटोरे में दही भरकर पीते हुए चोर (कळं) को देखा ।]

पंपने तीसरी समस्या सुनायी ।

मूल- गजमं, बट्टेयलि कट्टि पोत्तरु पेगलोह् ।।"

अर्थ-[हाथी को कपड़े में बाँधकर अपने कंधों पर उठाये चले ।]

कन्ति ने विचारा कि हाथी को कपड़े में बांधे ढोये चलना असंभव है । बात कुछ और रही होगी, ऐसा सोचकर कन्ति ने अपना मत इस तरह प्रकट किया--

मूल- 'निजराज्यदोह्र प्रत्तिय ।

निजमं काणल्के भूप मनमं माडल् ।।

प्रजवदे लेखकजन का गजमं बट्टेयलि कट्टि पोत्तर पेगलोह् ।।''

टीका-['गजमं' (हाथी) को कपड़े में बांधे कंधों पर ढोये नहीं चले अपितु चले कागज' (कागज बड़ी-बड़ी बहियों) को कपड़ों में बांधे कंधों पर ढोये चले—राजा के पास । क्योंकि राजा ने अपने राज्य के आय-व्यय को देखने की इच्छा प्रकट की थी ।]

इस प्रकार पंपने असंख्य समस्याएँ पूछीं । कन्तिने समस्याओं की पूर्ति समुचित रूप से की ।

पंप चाहते थे कि कन्ति उन्हें बड़ा मानें और मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा करें । किन्तु कन्ति यह कभी नहीं करती थीं । कारण वह पंप से किसी भी बात में रत्ती भर भी न्यून (कम) नहीं थी ।

पंप ने अपनी प्रशंसा कन्ति के श्रीमुख से सुनने के लिये एक उपाय किया । एक झूठा समाचार फैलाया कि पंप की मृत्यु हो गयी । राजा से लेकर रंक तक पंप के मृतक शरीर के दर्शन करने आये । अपार दुःख प्रकट किया—सब ने । कन्ति भी आयीं और प्रशंसा इन शब्दों से की ।

मूल- 'कविराय कविपितामह ।

कवि कंठाभरण कविशिखामणि भापुरे ।।

इन्नेके बल्विचारं ।

चन्निगकवि पंपराज वळिद बल्लिक्कम् ।।''

टीका [पंप महाकवि हैं; कविपितामह हैं; कविकंठाभरण हैं और हैं—कविशिखामणि । ऐसे की मृत्यु हो जाने पर पुनः कहना ही क्या रह गया है ! वाणी-विलास ही लुप्त हो गया]

पंप तुरंत उठ बैठे और कन्ति की हँसी उड़ाते हुए कहा—

मूल—'एले कन्ति, गेद्दपरारीगरिदपेया ? एनितादोडं नी स्त्री ! नान् पुरुषन् ! पुरुषर्गिं स्त्रीयर्कळ्ठ् साहसषड्गुणरेंब नीति निन्नोह् सोल्तुदल्ते ।''

अर्थ—[कन्ति, सुनो ! स्त्री आखिर स्त्री ही है । तुम्हीं बताओ कि जीत किसकी हुई—मेरी या तुम्हारी ! 'स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक प्रगाढ़ प्रतिभा रखने वाली होती हैं'—यह कथन आज व्यर्थ हो गया ।] पंप के मुँह से इस तरह की व्यंग्य भरी वाणी सुनकर कन्ति ने मुँह तोड़ जवाब इस तरह दिया—

मूल--''पुरुषर्कळ्र गेंपेमेंपंपा ! तत्पुरुषपुरुषरंपेत्तु, मतिगलिसिदब्बे स्त्रीयल्ते !''

अर्थ—[पुरुषों को क्या बड़ाई हो सकती है, पंप ! पुरुष को जन्म देकर, उन्हें पाल पोसकर और ज्ञान की बात सिखाकर बड़ा बनाया—किसने ? यह सब करने वाली स्त्री ही तो थी ! इस में पुरुषों की विशेषता तो नहीं है । विशेषता व महानता है तो स्त्री की, यह खूब जान लो, पंप !]

परंतु अतीव खेद की बात यह है कि आगे चलकर कन्नड-साहित्य में वाग्देवी कन्ति की सी काव्य-प्रतिभा-संपन्न कोई अन्य कवयित्री उत्पन्न नहीं हुई । हाँ, होन्नम्मा एक निश्चित सीमा तक कन्ति के निकट आ सकती हैं ।

अक्कमहादेवी—(वचन-साहित्य-सरस्वती)—

इनका समय ई० सन् ११५० है । जाति से ये वीरशैव (लिंगायत) थीं । इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ ये हैं—

(१) वचन ।

(२) योगाङ्ग त्रिविधि ।

(३) सृष्टिय वचन ।

(४) अक्कागट्ठ पीठिके ।

अपने इष्टदेव 'चन्नमल्लिकार्जुन' के प्रति अक्कमहादेवी की निष्ठा महती थी; तन्मयता संपूर्ण थी; भक्ति अगाध थी। कुछ उदाहरण देखिये—

भक्तिन मीरा ने कहा था—

"सन्तन ढिग बैठि बैठि लोकलाज खोई।"

मीरा लोक-निंदा की परवाह नहीं करती थी और नंदनंदन की भक्ति में आनंद विभोर हो जाती थी। अक्कमहादेवी की भी यही स्थिति थी। इसीलिये अक्का ने उपदेश दिया—

'निंदा-भय पर विचारो मत।'

मूल—"बेट्टद मेलोंदु-मनयमाडि मृगंगळिगंजि-दडेतंय्या। समुद्रद तडियोळगोंदु मनयमाडि नोरेतेरेगलिगंजिदडेतंय्या ! संतयोळगोंदु मनयमाडि शब्दक्के नाचिदडेतंय्य !

चन्नमल्लिकार्जुन देव केळय्या ! लोकदोलगे हुट्टिर्दबलिक स्तुतिनिंदेगलु बंदोडे मनदलि कोपव तान्ळदे समाधानियानिर-बेकु।।"

टीका—[पर्वत पर बसेरा बनाकर हिंस्र पशुओं से भयभीत होना क्या ?

समुन्दर के बाजू (निकट) में घर बसाकर तरंगों से भय खाना क्या ?

हाट-बाजार में रहते हुए शोरगुल से हिचकिचाना क्या ! ऐ मेरे चन्नमल्लिकार्जुन देव, सुनो ! संसार में जन्म लेकर प्रशंसा ! हर्षित होना क्या ! निंदा सुनकर दुखी होना क्या ? मन में कोप न करते हुए सब को सहते रहना चाहिये।]

अक्का ने, अपने इष्टदेव के प्रति अपनी अचल अटल निष्ठा व श्रद्धा दर्शायी है—इस वचन में, जो इस प्रकार है—

मूल—"गिरियल्लदे हुलुमोरडियल्लाडुवुदे नविलु ! कोळ-नल्लदे किरुवळक्येळे सुवुदे हँसे ! मामर तलितल्लदे स्वर-गैदुवुते कोगिले ! परिमलविल्लद पुष्पक्केळे सुवुदे भ्रमर ! एन्न देन चन्नमल्मिकार्जुननल्लदे अन्यक्केलेसुवुदे एन्नमन केलिरे केलदियरिरा ?"

टीका—[मोर पर्वत की चोटी को छोड़ साधारण से साधारण टीले पर कभी नाचेगा ?

हँस सरोवर छोड़ ताल-तलैया पर आकर डोलेगा ?

तभी कोयल कूकने लगेगी जबकि आम की बारी फटे और कोंपलें छूटें !

सुगंधि से परे पुष्प के पास भौंरा पहुंचेगा ?

सखियों, सुनो ! प्यारे चन्नमलिकार्जुन को छोड़ मेरा मन किसी और ठौर पर जा बिराजेगा ? कदापि नहीं।]

'अक्का' अपने इष्टदेव की खोज में मारी-मारी फिरी घूमी हैं। वन्य पशुपक्षियों से भी पूछा कि 'प्यारे का ठौरठिकाना मालूम हो तो कृपया बतावें।' देखिये, क्या बिनती की है—

मूल—'चिलिमिलि एंदोदुव गिळिगळिरा ! नीवुकाणिरे, नीवु काणिरे !
सरोवरदोळगे पाडुव कोगिलेगळिरा ! नीवु काणिरे, नीवु काणिरे !
एरगि बंदाडुव तुंबिगळिरा ! नीवु काणिरे, नीवु काणिरे !
कोळद तडियोळाडुव हंसेगळिरा ! नीवु काणिरे, नीवु काणिरे !
गिरिगह्वर दोळगाडुव नविलुगळिरा ! नीवु काणिरे, नीवु काणिरे !
चन्नमल्लिकार्जुननेल्लिहनेंदु नीवु हेळिरे, नीवु हेळिरे !"

टीका—[बोलनेवाले तोतो बताओगे ! मेरे प्रिय हैं कहाँ ? कूकनेवाली कोयलों, बोलोगी मेरे प्यारे का ठिकाना है कहाँ ? गुगगुनाते भौंरो, जानते हो-मेरे प्रियवर रहते कहाँ हैं ? झीलों पर झूमनेवाले हंसो, मेरे देव को देखा है ? गिरिकंदराओं में नाचनेवाले मोरो, मालूम है कि मेरे हृदयेश्वर कहाँ बिराजे हैं ?

तुम सभी से मेरी सविनय प्रार्थना है, ढूँढकर बताओ—मेरे चन्नमल्लिकार्जुन कहाँ हैं।]

संचिय होन्नम्मा—(कवि कोकिला)—

इनका समय ई० सन् १७०० है। ये जाति से शूद्र थीं। ये, मैसूर के महाराजा चिक्कदेवराज ओडेयर की तांबूल

करंडबाहिका थीं । महाराजा की बड़ी कृपा इनको प्राप्त थी । महाराजा ने इनकी साहित्यिक-रुचि को विशेष प्रोत्साहन दिया था । इनकी प्रसिद्ध रचना 'हृदिबदयर धर्म' है । स्व-रूप हैं—सांगत्य (विशेष कन्नड छंद) ।

कवयित्री, इस रचना के द्वारा भारतीय ललनाओं का आदर बढाया है और भारतीय समाज की अंधपरंपराओं (विश्वासों) का खंडन किया है ।

आधुनिक कन्नड के सारस्वत लोक में अपनी सुलेखनी को सफल बनानेवाली महिलाएँ-बहुत कम दीख रही हैं । लेखन वृत्ति को ही अपनी जीविका चलाने का साधन मानकर चलनेवाली लेखिकाएँ तो नहीं के बराबर हैं । (इस दिशा में पुरुष-लेखकों की मात्रा अधिक है ।) तथापिनिस्संकोच कहा जा सकता है कि अपनी विश्राम-वेला में आधुनिक कन्नड सरस्वती के भंडार की श्रीवृद्धि करने में कुछ महिलाएँ अवश्यमेव सफल हुई हैं एवं हो रही हैं ।

जीवन की जटिल समस्याओं का जीता-जागता चित्र एक महिला लेखिका जितनी सफलता के साथ अपनी रचना में अंकित कर सकती हैं उतनी मात्रा में एक पुरुष लेखक उप-स्थित नहीं कर सकता है । यह तो मैं लेखिकाओं की स्तुतिहेतु नहीं लिख रहा हूं । एक लेखक के नाते मैं खुले हृदय से कह रहा हूं ।

यह तो मानी हुई बात है कि महिला का बाहरी कार्य क्षेत्र सर्वथा संकीर्ण रहा करता है । अपने संकीर्ण घेरे में रह कर भी सांसारिक जीवन की कठिन से कठिन, भारी से भारी व वृहत् समस्याओं का समाधान उपस्थित करने की क्षमता वह अपने में लिये हुई है ।

अनेक रचनाओं से यह स्पष्ट विदित हो गया है कि पुरुष लेखकों की अपेक्षा महिला लेखिकाएँ ही स्त्रियों की समस्याओं को सुलझाने में अधिक सफल हो गयी हैं । महिलाओं से संबंधित समस्याओं के चित्रण में कितनों ही पुरुष लेखक असफल रह गये हैं । कुछ लेखक इसके अपवाद भी हैं ।

श्री वि० एम० इनामदार जी कन्नड के ख्याति प्राप्त कथाकार हैं । आपने अपनी दो प्रसिद्ध कहानियों—'कनसिन मने' सपने का घर) तथा 'कट्टिद मने' (बना बनाया घर)—में एक मोहिनी (एक अतृप्तवासना वाली मृतक स्त्री) का चित्र अंकित किया है । यदि इस मोहिनी को एक महिला लेखिका चित्रित करती तो मैं कहूंगा उसका एक दूसरा ही रूप चित्रित हो जाता । इसी तरह त्रिवेणी (स्वर्गीय श्रीमती अनसूया) लिखित 'तावरे कोठ्ठ' (कमलों का सर) कहानी की नायिका रत्ना का चित्रण किसी एक पुरुष लेखक उप-स्थित करते तो वह सचमुच असुन्दर हो जाता ऐसा मेरा मत है ।

कन्नड-भाषा के इतिहासकारों ने, कन्नड-भाषा की चार अवस्थाएँ मानी हैं, जो इस प्रकार से हैं—

(क) मूलगन्नड (आदि भाषा —

यह अवस्था, ई० पूर्व से लेकर ईसवी सन् सात सौ पचहत्तर तक चली है ।

(ख) हळगन्नड (प्राचीन कन्नड)—

यह अवस्था, नवीं शती से तेरहवीं शती तक चली है ।

(ग) नडुगन्नड (मध्यकाल की भाषा)—

यह अवस्था, तेरहवीं से पंद्रहवीं तक चली है ।

(घ) हॆसगन्नड (आज की भाषा)—

यह अवस्था, पंद्रहवीं सदी से आज तकचली आ रही है ।

हिन्दी की तरह, कन्नड भाषा में प्रथम तीन अवस्थाएँ अधि-कतर पद्यों में ही नहीं गुजरी हैं । अपितु-इनमें प्रौढ़ गद्य भी देखने को मिलता है, यह ध्यान देने की बात है । (हिन्दी प्रथम के तीन युगों में गद्य के प्रौढ़ रूप बहुत नहीं पाये जाते हैं, यह केवल भाषा का विषय है । कन्नड में प्रौढ़ गद्य ही अधिक पाये गये हैं ।)

अब, मैं आधुनिककन्नड साहित्य की महिला लेखिकाओं का परिचय दूँगा—

श्रीमती तिरुमलांबा—इस बीसवी सदी की महिला लेखि-काओं में आप सर्वप्रथम स्मरण करने योग्य हैं । आप, मैसूर के निकटस्थ ऐतिहासिक प्रसिद्ध गाँव 'नंजनगूड' की रहनेवाली थीं । आपने महिला-जीवन तथा तत्संबंधी

समस्याओं को लेकर करीब पच्चीस से भी अधिक उपन्यास तथा नाटकों की रचना की है। आप 'सती हितैषिणी' ग्रंथमाला की संपादिका थीं।'कर्णाटक नंदिनी' एवं 'सन्मार्ग दर्शिनी' नामक दो मासिक पत्रों को भी चलाती थीं। आप सर्वप्रथम महिला पत्र-संपादिका थीं। महिलाओं की व्यथा-वेदनाओं को समाज के सम्मुख रखना और उनको दूर करने के उपाय उपस्थित करना आपकी समस्त रचनाओं का एक मात्र लक्ष्यध्येय था।

श्रीमती कल्याणम्मा—आप महोदया 'सरस्वती' नामक पत्रिका की सफल संपादिका हैं। 'इंदिरा', 'सती पद्मिनी', 'ब्यारिष्टर रामचंद्रन' आदि आपकी ख्याति प्राप्त रचनाएँ हैं। समाज में सुधार लाना आपकी रचनाओं का मुख्य ध्येय रहा है। 'अखिल कर्णाटक मक्कल कूट' की संस्थापिका और अध्यक्षा हैं। गत पैंतीस सालों से आप साहित्य के सृजन, समाज की सेवा, बच्चों की उन्नति के महान कार्यों में अपना समय व्यतीत कर रही हैं।

श्रीमती डी० चंपाबाई—आप आज की कई लेखिकाओं की जन्मदात्री हैं। माहिलाओं को साहित्यिक संसार में लेखिकाओं के रूप में खड़ा करने का पूरा श्रेय आपके सिर धरा है। आपके नेतृत्व में अनेकों काव्य-संग्रह निकल चुके हैं। 'साहित्य परिषत्मंदिर, बेंगलोर' का महिला विभाग आपका ऋणी है।

श्रीमती तिरुमले राजम्मा—कन्नड पत्रिका-जगत के पितामह श्री तिरुमले ताताचार्य शर्मा जी की प्रेरणा ने आपको साहित्याचार्या बनाया। आपका काव्य नाम है—'भारती'। 'तपस्विनी' तथा 'महासती' आपकी सफल रचनाएँ हैं। पहली रचना की नायिका है—काव्योपेक्षिता ऊर्मिला है और दूसरी की एक दरिद्र ब्राह्मण कन्या। आपने इन रचनाओं के द्वारा कन्नड जनता को जगाने का प्रयत्न किया है, जो सर्वथा प्रशंसनीय है।

श्रीमती बेळ्गेरे जानकम्मा—आप कन्नड की उच्चकोटि की कवयित्री थीं। 'षट्पदी छंद' में सुन्दर व भावपूर्ण फुटकर रचनाएँ लिखी हैं। आप सचमुच कन्नड भारती की कंठहार थीं।

श्रीमती गौरम्मा—आप, प्रकृति की सुखद गोदी में बसी हुई 'कोडगुभूमि' की रहने वाली थीं। आप विख्यात कथा लेखिका थीं। कन्नड की कथा-कहानियों को एक नयी मोड़ देने वाली थीं। 'चिगुरु' (कोंपलें) तथा 'कम्बनी' (आँसू) नामक संग्रहों में आपकी पूरी कथाएँ संग्रहीत हैं। 'कौसल्या नंदन' आपकी मास्टरपीस है।

श्रीमती जयलक्ष्मी श्रीनिवासन—आप अपनी सरस सुंदर कथाओं के कारण विख्यात हैं। आपने तमिल-साहित्य से बहुत सी कहानियों का कन्नड में अनुवाद किया है। इसके अलावा स्वतंत्र रचनाएँ भी की हैं।

श्रीमती सावित्रम्मा और अंबुजम्मा—दक्षिण भारत की तेलुगू-तामिल भाषाओं की कथा-कहानियों को कन्नड रूप देने का प्रशंसनीय कार्य इन दोनों महिलाओं ने किया है। कवींद्र रवींद्र की रचनाओं का स्वाद इन्हीं लेखिकाओं के जरिये कन्नड जनता को मिला है। 'निराश्रिते' (निराश्रिता) श्रीमती सावित्रम्मा की स्वतंत्र रचना है।

श्रीमती जयलक्ष्मी गणपति भट्ट—आपने कन्नड की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में कई चलचित्रों की आलोचना की है। आपने हास्य-व्यंग्य, चुटकुलों को बड़ी संख्या में लिखा है। आपने कई स्वतत्र रूप से अनेक फुटकर विषयों पर लेख लिखे हैं। आप हिंदी के प्रचार-प्रसार में भी योग दे रही है। आप 'साहित्य सेवा कुटीर' (प्रकाशन गृह) की संचालिका हैं। 'श्री रवींद्र बाल विहार' की व्यवस्थापिका भी हैं। आपका वर्तमान पता मैसूर है।

आज की ख्याति प्राप्त लेखिकाओं में ये नाम भी आदर के साथ लिये जा सकते हैं। ये लेखिकाएँ नवनिर्मित मैसूर राज्य की हैं। वे हैं—सुश्री राजलक्ष्मी, राजेश्वरी, उषा देवी, गीता कुलकर्णी, शारदा जेड, पार्वती बाई और डाक्टर अनुपमा निरंजन।

'मौन संधान' एवं 'तेलिहोद मोड' (भागते बादल)—श्रीमती गीता कुलकर्णी की अमर रचनाएँ हैं। आपने इन गल्पसंग्रहों में नारी जीवन के भव्य चित्रण प्रस्तुत किये हैं।

उपन्यासों का संसार—'जीवन के झंझटों में व्यस्त व्यक्ति

की थकावट को दूर करने की प्रवृत्ति ने छोटी-छोटी कथा कहानियों को जन्म दिया'—कन्नड के लब्धप्रतिष्ठ ल्पलपकार श्री गोपालकृष्ण राव ने कहा था। परंतु आज यह बात कन्नड साहित्य में नहीं दीख रही है। आज कन्नड जनता की रुचि उपन्यासों को पढ़ने की ओर अधिक बढ़ रही है। कन्नड के उपन्यासों की रचना करने वालों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के नाम ही अधिक दीख रहे हैं।

श्रीमती त्रिवेणी (अनसूया)—बीसवीं सदी की महिला-उपन्यासकारों में श्रीमती त्रिवेणी का नाम सर्व प्रथम आता है। अभी हाल में आप का देहांत हो गया। आपका असली नाम अनसूया था। काव्य-नाम था 'त्रिवेणी'। 'त्रिवेणी' में त्रिवेणी-संगम वर्तमान है—सुपुष्ट प्रतिभा, प्रगाढ़ पांडित्य तथा सहज-साहित्यकता। आपकी भावधारा वही है—सुंदर सरस शैली में। उसमें कृत्रिमता का नाम नहीं है।

आपने एक अविवाहिता नारी की समस्या का उद्घाटन किया है—'कंकण' एवं 'मुक्ति' में। समाज के असहज व अमान्य प्रेम की मीमांसा की है—'हृदय गीते' (हार्दिक संगीत) एवं 'तावरे कोल' (कमल-सरोवर) में।

आपके उपन्यासों के पात्र सर्वथा हमारे जीवन के निकट के प्रतीत होते हैं। 'तावरे कोल' की रत्ना, 'काशी यात्रा' की नानी, 'बेळ्ळिय मोड' (रजत मेघ) की इन्दिरा, 'अपस्वर' (बेसुरा राग) की मीरा—उक्त कथन के प्रमाण हैं। 'बेक्किन कण्णु (बिल्ली की आँखें), 'दूरद बेट्ट' (दूर का पहाड़), 'मुच्चिद बागिलु' (बंद किवाड़), 'शरपंजर' (बाणों का पिंजड़ा)—आदि रचनाओं में आपने एक नवीन उपन्यास कथातंत्र का नूतन प्रयोग किया है। आपको राज्य सरकार की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

श्रीमती ऊषादेवी—आपने मनोवैज्ञानिकता का आधार लेकर रचनाएँ की हैं। 'धूमकेतु' और 'मोग्गिन जड़े' (कलियों का जूड़ा) नाम की दो और रचनाएँ हैं। आप आजकल एकांकियों के प्रणयन में लगी हुई हैं।

डा० अनुपमा निरंजन—अपनी वैद्यकीय वृत्ति से समय निकालकर आप कन्नड सारस्वत लोक में कभी-कभी दिखाई देती हैं। यद्यपि आपकी रचनाएँ प्रभूत मात्रा में नहीं हैं तो भी एक-आध रचनाएँ ही आपको विशेष आदर दे चुकी हैं। 'संकोलय ओलगिनिंद (सांकलों के अन्दर से) नामक उपन्यास में आपने स्त्री-स्वतंत्रता का विश्लेषण किया है। 'स्वेताम्बरी' में समाज की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पण करने वाली एक आदर्श महिला का जीवन-वृत्त अंकित किया है।

श्रीमती सुनन्दम्मा—आपके हास्य-व्यंग्य कन्नड-साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं। आप कभी-कभी लिखने वाली हैं। कन्नड जनता आपकी रचनाओं की भूखी है।

श्रीमती जयदेवी लिगाड़े—आप कन्नड की ख्याति प्राप्त कवयित्री हैं। आपकी फुटकर रचनाओं ने आपको पर्याप्त सुनाम दिया है।

कन्नड के विज्ञान, तत्त्व ज्ञान, समालोचना आदि सारस्वत क्षेत्र महिला लेखिकाओं से सर्वथा अछूता सा रह गया है। इन क्षेत्रों में महिला लेखिकाओं की लेखनियाँ चुप्पी साध बैठी हैं। श्रीमती शान्ता देवी मालवाडा ने 'महिलेयर अलंकार' (महिला-श्रृङ्गार-साहित्य) नामक रचना की है।

कर्णाटक, विशाल भारत का अंश मात्र है। कर्णाटक की महिलाएँ गत कुछ ही वर्षों की 'शिक्षिता नारी' कहलाने लगी हैं। जितनी मात्रा में एक हिन्दी लेखिका अपनी सुषुप्त विचार धारा के बल पर एक विश्व समस्या का हल बता सकती है, उतनी मात्रा में एक कन्नड-लेखिका नहीं कर सकती है, कहूं तो अनुचित नहीं होगा। कारण वे अभी-अभी राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंगरेजी के झरोखे से विश्व को देखने लगी हैं। परन्तु उनसे यह आशा अवश्यमेव की जा सकती है कि निकट भविष्य में वे भी अपने कर्तव्यों को निभाने की क्षमता अवश्य प्राप्त कर लेंगी।



पंजाबी कवयित्रियों की पंजाबी काव्य-साधना

एस० एस० अमोल, एम० ए०

ललित कलाओं के क्षेत्र में स्त्री जाति की रुचि एवं सक्रिय योग मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संगत एवं स्वाभाविक ही है, क्योंकि इसका संबंध उद्वेग जन्य मनोभावों और कोमल-चित से जन्मता है, परन्तु हमारे देश की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी विषम रही हैं कि जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में भी महिलाएँ आनुपातिक दृष्टि से पूरा भाग नहीं ले पाई हैं; फिर उनमें भी यश एवं ख्याति सभी को नहीं मिली है।

यहाँ महिलाओं में सृजन-रुचि होते हुए भी उन्हें अनेक सीमाओं में रहकर अभिव्यक्ति एवं प्रकाशन की समस्या सुलझानी पड़ती है। समाज एवं परिवार की मर्यादाएँ—माता पिता की आज्ञा, स्वभावगत सहज संकोच अंततोगत्वा जीवन की परनिर्भरता—यह कुछ ऐसी परिधियाँ हैं जिनमें यहाँ की महिला लेखिका घिरी रहती है। कुछ एक कवयित्रियाँ सहमे-सहमे, छुप-छुपा कर लिखती हैं तो उन्हें छिपा नहीं पाती, बस अपनी सहेलियों के एक सीमित दायरे में सुन सुनाकर रह जाती हैं, अधिक हुआ तो कालिज की पत्र-पत्रिकाओं, गोष्ठियों एवं प्रतियोगिताओं में भाग ले लेती हैं, अतः इस पंचवटी से वे बाहर नहीं जा पाती हैं। सृजन की अनेक प्रतिभाएँ ऐसे ही मंद हो गईं।

कल्पना की रंगीनी जीवन की एक सहजस्वाभाविकता है। यह रोमांस का माया जाल फैलाती है। आरंभ में प्रत्येक कवि की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में इसका आग्रह रहता है। समाज की नैतिक एवं कट्टर कसौटियाँ इस आग्रह को निंद्य मानती हैं; फिर साधारणतया कोई महिला कविता लिखने की अंतः प्रेरणा के होते हुए भी कविता लिखने का दुस्साहस कैसे करे? सृजन लभ्य ऐसे यश की वे इच्छा भी नहीं करतीं। समाज एवं परिवार के परिवेश में सृजन-लालसा, सृजन-जन्य यश विशेष विडंबनाकारी रहता है। यही कारण है कि नृत्य, संगीत, चित्र एवं काव्य कला में सहज रुचि होते हुए भी महिलाएँ इस ओर कम ही अग्रसर हो पाई हैं।

पंजाबी साहित्य की काव्य परंपरा में स्त्रियों के योगदान की कोई एतिहासिक कड़ियाँ नहीं हैं। मीरा की सी महत् प्रेरणा यहाँ की किसी महिला कवयित्री को अनुप्राणित नहीं कर पाई हैं। पंजाब में ग्राम्य गीतों, लोक गीतों का कुबेर कोष है। इस मानसरोवर से नारी कंठ की मंदाकिनी प्रस्रवित हुई है। पंजाब की कवयित्रियों की काव्य-प्रतिभा इसी परम्परा के अनुरूप पड़ती है। लगभग तीन दशक पूर्व सृजन की दिशा में पंजाब की नारी अग्रसर हुई।

इस संदर्भ में अमृता प्रीतम सर्वोपरि है। इस व्यौरे की वह महत्वपूर्ण इकाई है। जो स्वयं अर्थवान है और दूसरों को अर्थ देती है। जो श्रेय एवं अविवशा स्वीकृति उसे मिली है वह अभी तक किसी और को नहीं मिल पाई है। "अमृत कौर" इसका वास्तविक नाम है। एक आस्थावान सिख परिवार में इसका जन्म हुआ। पिता ज्ञानी करतारसिंह "पीयूष" से उसे आस्था एवं आस्तिकता के संस्कार मिले। साहित्य जगत में यह "अमृता प्रीतम" के नाम से प्रसिद्ध हुई है। इसके प्रथम दो काव्य संग्रहों में उसका सुधारवादी दृष्टिकोण उभरा है, परंतु सन् १९३५ से अब तक यह जीवन की प्रयोगशाला में तप चुकी है। उसी आंच का संस्पर्श इसकी नई रचनाओं में मिलता है। इसके गीतों में कल्पना की डोरी में गुंथे यथार्थ के फूल हैं जिनमें अनुभूतियों की सहजत, संगीत का तारल्य, तथा अभिभूत करने

की क्षमता है। इनकी रचनाओं में, "ठंडियां किरनां", "अमृत लहिरां", "जीअंदा-जीवन (सन् १९३९) "गेलधोते फुल्ल" (१९४१) "ओगीतां वालिया" (१९४२) "बद्दला" देपल्ले, "रावपऊ," संझदीलाली-"(१९४३) बद्दलांदे पल्ले (१९४३). संझदी लाली (१९४३)"लोकपीड़" (१९४४) "पत्थरगीटे"-(१९४६) "लम्मिआंवाट्टां" (१९४९) "मैं तवारीखदां हिन्द दी" (१९५१) "सरधी वेला" (१९५२) "सुने दड़े" (१९५५) "अशोकांचिती",विशेष उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त अमृता ने उपन्यास एवं कहानियां भी लिखी हैं। परंतु इसे अनन्य स्वीकृति इसके काव्य सृजन के आधार पर ही मिली है यह मानव मूल्यों के प्रति जिज्ञासा, श्रद्धा और किसी सीमा तक भक्तिभाव भी रखती है। सन् १९४७ के अमानुषिक विप्लव से द्रवित हो इसने यह कविता लिखी :—

'मैं आखाँ वारस शाह नूँ किते कबरां विच्चों बोल"

यह पंक्ति पंजाबी साहित्य में "क्लासिक" बन चुकी है साथ ही अमृता की आक्षय कीर्ति की पताका भी। इस कविता में स्त्रियों पर हुई अमानवीय क्रूरताओं का वर्णन है। वस्तुतः अमृता के मन में मानवमात्र के लिए दयामयी ममता भरी है और स्त्री जाति के लिए धनीभूत संवेदना। दलितों, दूषितों शोषितों के प्रति करुणा इसके भविष्य की चिन्ता, रूढ़ियों परंपराओं से अरुचि और इन सब पर असफल प्रणय की मूक वेदना एक घनघोरघटा बन कर छाई हुई है—जिसमें अतृप्ति एवं अप्राप्ति की विकलता है, विवशता की लाचारी है। इन सब की अभिव्यक्ति तरल एवं मूर्तरूप में इसके गीतों में हुई है। अमृता के व्यक्तित्व की यह विशिष्टता उसकी शैली में ढल आई है। वह भी उसी तरह विशिष्ट बन गई है। इसके प्राणों की पीड़ा शैली में मुखर हो उठी है। फलतः इसकी पीड़ा-व्यक्ति की परिधि से निकल कर समष्टि के व्यापक प्रांगण में फैल गई है। इस विशाल परिधि का बिन्दु यह स्वयं है, इसका व्यक्तित्व है। इसकी यही कातर वेदना अभिव्यंजना की संगीतमयता, संवेद्यता भाषा की लय ताल और नाद तथा चित्र सौन्दर्य के माध्यम से आकारवान होती हैं। ग्राम्य गीतों की सहज छलछल तरलता, उन्माद जन्य आवेग, तथा सरल भाषा की आडंबर हीनता, सोने पर सुहागे का काम करती है :—

वे! की केहंदीआं ने ओह,रुत्तां फिरिआं ने जो,
मेरे अग्गे ने हाढ़, मेरे सखणे ने पोह,
सानूं मिली जाणा हो!
आई मज्हबां दी कांग, कच्चे घड़ियां दे वांग,
टुट्टा सोहणी दा देश, अक्खां पइयां ने रो,
सानूं मिली जाणा हो!

अमृता की कल्पना में स्पुतनिक की उड़ान है। वह अंतरिक्ष की नीलिमा में ग्रहों उपग्रहों की परिक्रमा लेती है सौर मंडल में विहार करती है। दिन का प्रकाश रात का गहन अंधकार सागर की अतलता संसार की अनेकरूपता इन सब की वह मौन अध्येता है। यह सब उस के लिए खिलौने हैं या दैनिक उपयोग के साधारण पदार्थ मात्र हैं :—

"अल्हड़ धुप्पां खेडण पईयां खेडण रंग कुसंभ वे!
लगरां जेहियां सिखर दुपहिरां होइयां चिट्टियां खुंबवे!

अमृता के काव्य का अध्ययन सुरुचिसंपन्न एवं कलानिष्ठ क्षेत्रों में उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। उसके वेदना विकल अश्रु छल छल गीत संगति-सिंकी भाषा देशविदेश में पंजाब की लोक संस्कृति का प्रसार कर रहे हैं। अमृता भावों की प्रणयनी है। वह मूलतः गीतकार है। उसके कवि के संस्पर्श से विचारों की शिलाएँ पिघल कर भावधाराएँ बन जाती हैं, उसके कृतित्व में बौद्धिक पक्ष का अभाव नहीं, परंतु वह किसी विशेष दर्शन को प्रतिपादित नहीं करती है। यह उसकी आस्थाओं के विरुद्ध पड़ता है। उसके चिंतन में प्रगतिशीलता है, वह श्रमिकों कृषकों की हिमायत करती है। अंधमान्यताओं एवं परंपराओं का उसने विरोध किया है। इन सभी मान्यताओं पर जैसे ही उसके हृदय के संगीत की मधुर फुहार पड़ती है, कल्पना के गरुड़पंख की शीतल हवा उन्हें दुलराती है वे सब द्रवित होकर भावों का लहलहाता पारावार बन जाते हैं। यह सब उसके व्यक्तित्व का रोना है :—

"नैणां दे नीले सागरों आउंदियां, हंझु सिप्पियां वग्ग वग्ग के। गीतां दे मोती आउंदे, हंझुआं दे गल लग्ग लग्ग के।" अथवा :—"मैं गीत लिख दी हां। मेरी मुहब्बत सुपनिआं देलक्ख पल्ले ओढ़दी सत्ते आकाश कोल के, तेरी दहलीज ढूंडदीं"

इस प्रकार अमृता ने साधारण जन जीवन से नए उपमान

बटोरे हैं, उनमें भाव वाहन एवं अर्थ द्योतन की नवीन अभिव्यंजना के प्राण फूंके हैं। पंजाबी काव्य क्षेत्र में उसने नवीन दिशाएँ खोली हैं, नई सीमाओं को बनाया है अभिव्यक्ति के नए माध्यम ढूंढ निकाले हैं। प्राचीनता में नवीनता खोजी है। परंपराओं में आधुनिकता के दर्शन किए हैं। पिंगल के बंधनों को उसने स्वीकारा है, परंतु उसने कहीं-कहीं साधिकार एवं सकारण छूट भी ली है। उसे हम निरंकुशता नहीं कह सकते। संगीत के मधु बहाव में लपकीं तरंगों में बेसुध हो वह कभी-कभी छंद के बंधन को ढीला कर देती है। आज अमृता स्वयं एक संस्था बन चुकी है। उसके समकालियों में उसकी कला शिल्प एवं शैली के अनुकरण का रिवाज सा चल पड़ा है। अमृता के गीतों में उसके प्रणय की स्वीकारोक्तियाँ है। प्रणयजन्य विरह एवं मांसल तड़प को उसने साहस से निसंकोच ही मुखरित किया है। व्यक्तिगत दु:ख सुख से ऊपर उठ उसने अमन का आवाहन किया है पूंजीपतियों और शोषकों की कटु भर्त्सना की है। नारी होने के नाते नारी समाज पर हो रही बर्बरताओं को उसने स्वयं महसूस किया है और उनके विरुद्ध आवाज भी उठायी है। उसके काव्य के इन सभी गुणों का अनुकरण उसके समकालिकों ने किया है। अमृता ने जनजीवन का अध्ययन अपने "निज" के माध्यम से किया है, परिणामतः वह किसी अन्य भाषा एवं उसके साहित्य के प्रभाव से असंपृक्त रही है। अतः उसकी अभिव्यक्ति एवं अभिव्यंजना शिल्प पर "पंजाबीयत" का ही प्रभाव है। उसके विचारों में भारत की संस्कृति की गूँज है; उसकी आत्मा में इसी देश की मिट्टी का संगीत है। उसका छंद एवं अलंकार विधान भी पूर्णतया भारतीय ही है।

प्रस्तुत विश्लेषण से जाहिर है कि अमृता ने किसी दर्शन विशेष की प्रवर्त्तिका न होते हुए भी महती काव्य साधना की है। उसका साहित्य मात्रा में तो प्रचुर है ही परन्तु गुणात्मक उपलब्धियों की दृष्टि से भी वह विशद एवं उदात्त है। भारत और पंजाब सरकार ने इन्हीं महत्वपूर्णदायों के लिए उसे एक हजार तथा पाँच सौ रुपये की राशियों से क्रमशः पुरस्कृत भी किया है।

अमृता की रचनाओं का हिन्दी उर्दू के अतिरिक्त और अनेक भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है और उसे वृहत क्षेत्रों में व्यापक स्वीकृति मिल रही है।

इस ऐतिहासिक क्रम की दूसरी कड़ी है "प्रभंजोत कौर" जिनकी साहित्य-सेवाओं को सम्मानित करते हुए पंजाब सरकार ने उन्हें इस वर्ष राज्य-कवि नियुक्त किया है। प्रभंजोत की गणना अमृता की परम्परा में होती है। इसने अमृता से अधिक बाद में सृजन आरम्भ किया और स्वीकृति की दिशा में यह उतना ही उससे पीछे रही। आज जब कि अमृता शिखर स्वीकृति के शुरू में एक प्रकार विश्राम कर रही है, प्रभंजोत की निष्कंप ज्योति स्वीकृति के उसी शिखर को आलोकित करने की उमङ्ग में है। प्रभंजोत को परिणाम जन्य सुख सुविधाओं ने सृजन की दिशा में गम्भीरता दी है। पति कर्नल नरेन्द्र पाल जो पंजाबी के प्रसिद्ध गल्पकार हैं— साथ प्रभंजोत को देश देशान्तर के पर्यटन के जन्य व्यापक अनुभव मिले है, जिन्होंने उसके दृष्टिकोण को व्यापक क्षितिज एवं दिशाएँ दिखाई हैं। फलस्वरूप उसके चिंतन की विशदता एवं उदातत्ता उसके कृतित्व में एक दर्शन को जन्म देती है। उसकी अनुभूतियों में एक सङ्गीत मयता एवं द्रवणता आ गई है। प्रभंजोत ने भी अमृता की तरह अपनी अभिव्यक्तियों में मांसल प्रणय और संयोग-सुख का रङ्ग छिड़का है, परन्तु अमृता की सी मर्म-स्पर्शता नहीं आ पाई है, क्योंकि बहुधा उसने बैद्धिक आलोक में जीवन का अध्ययन किया है। उसमें एक चिरंतन सत्य को प्रतिष्ठित किया है :—

"अनेक दर्द हंझुआं दे लंघणे पैंदे ने।
मुसकाण लई।
ते मुसकाणा कदों है सौखा,
मुसकाणा ही पैंदा है,
हंझुआँनूं छुपाण लई॥"

अथवा

"सड़दे ने पतंगे तां दीवेदा की दोष?
दीपक तां जगदा है हन्हेरे नूं मिटावण लई॥"

ऐसी भावात्मक अभिव्यक्तियाँ शाश्वत सत्यों के रूप में ही हुई हैं। भावनाओं में मस्तिष्क के लिए भी खाद्य रहता हैं।

अभिव्यक्ति की सङ्गीतमयता, माधुर्य और लय तथा शृंगार की तीक्ष्णता जो अमृता में है वह पर्याप्त रूप में प्रभंजोत में भी मिलती है। परन्तु दर्शन की गम्भीरता, चिंतन और भवना की जो बौद्धिक अभिव्यक्तियाँ प्रभंजोत में हैं, उनका अमृता के साहित्य में प्रायः अभाव सा ही है। अमृता की मेंहदी परिणय काल में भी प्रणय के आँसुओं से गीली रहती हैं। उसी का अछूटा रङ्ग उसके जीवन एवं कृतित्व में है। परन्तु प्रभंजोत की मेंहदी सदा-हरित होते हुए भी शृङ्गार जन्म अभिव्यक्तियों को व्यापक प्रांगण प्रदान करती है। जैसे :—

तांघां लै यादां दे जांदे
पल छिन दी मस्ती दे बदले
जीवन दाने तोल तुलांदे
लट बोउरी सूरत दे ओहले
पीडां दे अंबर लै आए,
आए काफले वाले आए।

अमृता और प्रभंजोत के दृष्टिकोणों में एक मौलिक अन्तर है। काव्य में जीवन का उपचार दोनों ने भिन्न भिन्न रूप में किया है। अमृता एक में अनेक का समाहार करती है, व्यष्टि में समष्टि को बटोरती है परन्तु प्रभंजोत की प्रक्रिया इससे उल्टा है। वह अनेक एवं समष्टि के माध्यम से एक और व्यष्टि को अभिव्यक्त करती है। ऊपर दिए गए उदाहरण से यह धारणा पुष्ट होती है।

दोनों कवयित्रियों के विषयों में समान रूपता भी मिलती है। कारण यह कि दोनों की कलात्मक चेतना की भूमिका प्रणय एवं नारी जीवन है। आधुनिकता के संदर्भ में नारी जीवन का प्रसंग लेकर समाज पर दोनों ने व्यंग्य कसा है। अमृता की तरह प्रभंजोत भी यही कहती है :—

"सौं गिआ इन्सान, जाग पिआ है वान।
सौं गई प्रीत ममता मह्दर्दी।
जाग पई नफरत, खुद गर्जी।"

प्रणय जन्य विरह वेदना का अमृता जैसा प्रखर एवं संवेद्य रूप प्रभजोत में नहीं। प्रभजोत के जीवन में तोष, तृप्ति और एक सुख जन्य सहजता है जब कि अमृता के जीवन में अतोष अतृप्ति, असुख ही अधिक है। फलतः अमृता जैसी विवशता, विकलता, वेदना का प्रभजोत के साहित्य में प्रायः अभाव ही है। प्रभजोत में इन सब का एक परम्परागत वर्णन ही अधिक है। जैसे :—

"समझ ओह्दा भेद
मेरी पीड़ सच्ची सौं गई
जाग के विस्माद
मुसकाया ते मुसकांदा रिहा,
धुपली मुसकाणां दी आभा
पसर दी इंज देख
रात दा अंधकार है जांदा रिहा।।"

स्पष्ट है कि प्रभंजोत की अभिव्यक्तियों में एक रहस्य दर्शन भी झलकता है। वह समाज संसार तथा अन्य बहिर्मुखी स्थूल पदार्थों पर किसी अंतर्मुखी सूक्ष्म चेतना को अभिनंदित करती है। दर्शन के ऐसे स्वरूप को कबीर या सूर एवं मीरा की कोटि में रखना भूल होगा परन्तु यह स्पष्ट है कि उसके चिंतन का झुकाव उस ओर अवश्य ही है। इसके साथ ही उसमें सामाजिक सजगता भी मिलती है। जैसे :—

"जिऊं जिऊं धरती अन्न उगले,
जंग, सागर, ते अग्ग खा जाए।
लूसलूसपरा मुक्खे मरदे,
धरती मां दे ढिड्डों जाए।"

इसमें उसका चिंतक कवि ऐसे सामाजिक यथार्थ से दुःखी है। इसमें शरीर का दुःख और जीवन दृष्टि एकाकार हो गए हैं। "होर जन्म दा चाव" नाम की कविता में प्रभजोत ने शरीर की सुख सुविधाओं के एवं प्रेम को आत्मा के प्रेम से ऊँचा माना है। फिर भी कहीं-कहीं उसकी रहस्य चेतना बड़े मधुर भाव से उस अनन्त की अनुकंपा में आस्था प्रकट करती है :—

"किऊंना उस दी आसते छड्डां
बेड़ी बिच्च तूफान,
मैं राही अनजान।"

अथवा

"देखिआ तां दूरना,
उह तां सी ऐवें खेडदा
अजलां तो बण बणगीत,
मेरा होठ छोह आंदा रिहा ।।"

यहाँ वह अमृता से भिन्न है। अन्यथा उन दोनों में ग्राम्य गीतों की धुन, गद्य गीति-शैली, सामाजिक आधार भूमि एक प्रकार की ही है। दोनों ने आधुनिकता के आडंबर पर आक्षेप किए हैं। विभिन्न भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाओं को अनूदित भी किया है। छन्दबंधन एवं मुक्त छन्द को दोनों ने अपनाया है। प्रभजोत को गीति रचना में अधिक सफलता मिली है। जिनमें जीवन के चिरतन सत्य संग्रथित हुए हैं जो एक आलोक भी प्रदान करते हैं। प्रभंजोत के कृतित्व का भविष्य है, क्योंकि वह मानव के भविष्य से अनुगुंजित है; इसकी प्रसिद्ध रचनाओं में "पब्बी" "लटलट जोत जगे" "सुपने सधरां" "अजल तों" "पलकां ओहले" आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। देवनागरी एवं लिपि एवं फारसी भाषा में भी प्रेम की "कुझहोर" नामकी-रचना का लिप्यांतर एवं अनुवाद हुआ है।

इन दोनों का ऐतिहासिक महत्व रोमांटिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में है, परन्तु "बलजीत कौर तुलसी" का क्षेत्र "रहस्य एवं अध्यात्म" में है। बलजीत शिक्षा विभाग के एक ऊँचे पद पर नियुक्त है। उसकी प्रसिद्ध रचनाओं में "नीलकंठ", "नीलांबर" "नील कमल" और "तीन वारां" प्रमुख हैं। रहस्य दर्शन का जो चिंतन सिख गुरुओं की वाणी तथा भाई वीरसिंह की रचनाओं में आकारवान हुआ है। उसी को तुलसी ने अपने कृतत्व में प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया हैं। इनमें ब्रह्म और जीव को लेकर अनेक जिज्ञासाएँ एवं प्रश्न नवीन भाषा एवं नवीन उपमानों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। जैसे :—

"जाणिया तूं केहडे हाल नी सखिये !
जाणिया तूं केहडे हाल ?
मेल सजन दा चन्न दी चानणी,
छमछम होई अपार नी सखिए ?
जाणिया मैं ऐसे हाल।"

ऐसी अध्यात्मपरक अभिव्यक्तियों से कहीं-कहीं मांसलता की गंध भी आने लगती है। तुलसी ने अधिकांश गद्य-काव्य की ही रचना की है, अतः उसने गीतकार के रूप में इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं की है। इस दृष्टि से वह प्रो० पूर्ण सिंह अध्यापक की परम्परा में पड़ती है। तुलसी के कृतित्व में अरूप और अद्वैत का आभास भी है। इसके गद्य गीतों में एक लय एवं सङ्गीत रहता है परन्तु कहीं-कहीं निपट गद्यमयता ही हाथ लगती है। जैसे :—

"जिऊँही
नदी
पिआर सागर नूं मिली
तां
अनन्त उच्चे शुद्द सूरजने
अपणिआँ सुनहरी किरणां पलमाइयां"

तुकांत कविता में उसे अधिक सफलता मिली है। अपने सूक्ष्म एवं विषय भावों को वह तुकांत रचनाओं में ही स्पष्ट कर सकी है।

"अरूप देश नूं जांदिआ राहिआ
रूप राह ना जाह
इह राह अति विखम गाखड़ा
कई होरा गुमराह ।।"

तुलसी के काव्य शिल्प की अप्रतिम विशेषता यह है कि वह दोहे चौपाई जैसी छन्द की लघुविधाओं के माध्यम से, विशद अभिव्यंजनाएँ प्रस्तुत करती है। उसकी कई कविताएँ एक एक पंक्ति की हैं :—

"वाह !
तूंहीं भुलानै आपे मैनूं
कीतूं
आ जमाना चाहनै मैनूं !"

अथवा:—

"ना कोई परचा पावे अड़िआ
ना कोई परचा पा"

अमृत प्रभंजोत, तुलसी तीनों समकालीन हैं, उनके परिवेशों

एवं भूमिकाओं में समानता एवं समसामयिकता है। इसीलिए उनकी रचनाओं में भावों, उपमानों, की ही नहीं बल्कि वाक्यांशों की समानता मिलती है।

'हरनाम कौर' और 'अमर कौर' दोनों का एक संग्रह सन् १९३८ के आसपास प्रकाशित हुआ था। उसमें रुबाईयाँ और कुछ अन्य छोटी छोटी कविताएँ हैं। दोनों की रचनाओं में प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। 'फुलवाड़ी' में समय समय प्रकाशित हुई उनकी रचनाओं ने पंजाबी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया था और उनकी पर्याप्त प्रशंसा भी हुई थी। उनके भावों में नवीनता कम है परन्तु कोमलता की एक तरलता उनमें अवश्य है। जैसे :—

'खिड़े चमन विच्च नाला वहिंदा,
ना जाणा मुड़ वहे किना।
हे दिल! आओ! सधर लाह लओ,
ना जाणा मुड़ वहे किना॥

दोनों में अध्यात्म एवं नैतिकता का आग्रह सा है। भले ही इन्होंने थोड़ा लिखा है, परंतु उनकी गुणात्मक देन अवश्य है। उसमें संगीत लय और स्वर के प्राण हैं।

'जसवंत कौर आहलूवालिया' का एक संग्रह 'रेत थल' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके गीतों के विषय, भाव, वेदना भाषा में ग्राम्य गीतों की सहज सरलता एवं सुखद-स्पर्शता हैं। वह एक अध्यापिका है अभी उसने पूरे तीस वसंत भी नहीं देखे हैं। पांच वर्ष पूर्व उसके 'रेत थल' नाम के काव्य संग्रह को पंजाब सरकार ने प्रथम पुरस्कार दिया था। जसवंत दार्शनिक नहीं। वह शुद्ध गीतकार है, जिसमें संगीत की मधुरता एवं शैली की सरलता है। जन भाषा में, जन मानस की उमंगों को उसने लोक धुनों की परंपरागत शैलियों में बांधा है। पंजाब के प्रसिद्ध नृत्य गीत—'गिद्धा', 'झूमर', 'टप्पे', 'बोलियाँ', आदि रूप विधाओं में उसके कवि की अभिव्यक्ति हुई है। उसके शिल्प विधान में नवीनता और प्रतिपादन में मौलिकता के दर्शन होते हैं। इस संबंध में यह कहना उचित होगा कि वे पुरानी बोतल में नई शराब है, परन्तु स्वाद पुराना और सिक्के बंद हैं। 'वग दी रावी माही वे'—पंजाब लोक गीतों में 'ढोला' के गीतों की 'क्लासिक' धुन है। जसवंत ने इसी विद्या को अपना माध्यम बनाया है :—

'वगदी रावी माही वे! जल चाँदी वन्ना ढोला
लिरके बद्दल माही वे! नूं छिपिओं चन्ना ढोल

अथवा;

'तुसी अज्जन वस्सो बद्दलो
साडे वसदे नैण पए।'

प्रणय के गीत गाते गाते वह समाज की उन कट्टर शिलाओं पर भी प्रहार करती हैं जो निर्द्वन्द प्रणय के मार्ग में रुकावट हैं :—

जा आखिओ! 'पैरीं बेड़ियाँ,
आगे धरम दे ठेकेदार।
दस्स कीकण चीरां दूरियां,
कां थां ते पहरेदार।
गल्ल गल्ल दे उत्ते बंदशां,
आशक दे सिर तलवार
कोई कीकण चुक्के अक्खियां,
ऐथे लोकीं करन खुआर।'

जसवंत में प्रणय की स्वीकृति एवं निश्छल अभिव्यक्ति है। किसी अध्यात्म एवं समाज एवं समाज दर्शन को इसने सहज आत्म प्रकाशन का आधार नहीं बनाया है। इसी सहज स्पष्टता के कारण उसमें हृदय की अतल गहराइयों को छूने की क्षमता है। :—

'मेरे घर विच्च दीवान बले
अरशांते चमकण तारे नी क्या करूँ?'

★ ★ ★

'मंझधारीं कोई बेली ना बणे,
दूरजे विलकण किनारे, की करां?
जिंदगी दा साज होइया तार तार,
खिड गए ने गीत सारे की करां?'

इस निराशा में भी उसे आशा की एक किरण दीखती है :—
'फुल्लो वे रत भिन्निओ!
अज्ज रराणी पूर्व कुक्ख

इस कुक्ख चों सरधियाँ जम्मणा,
ते सूरज वन्ने मुक्ख।'

हमें विश्वास है ऐसी काव्य साधना के बल पर वह भी अमृता प्रभंजोत तथा तुलसी की तरह व्यापक स्वीकृति प्राप्त कर लेगी।

इनके अतिरिक्तराज बेदी (जालंधर) जसवीर कौर ('लायब्रेरियन) हरीन्द्र कौर (मच्छेवाल) और निरंजन कौर संपादक 'त्रिञ्जण'भी काव्य सृजन में रुचि रखती हैं। अभी तक उनकी कोई रचना स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित नहीं हुई है। हरि नाम कौर ने सिख गुरुओं संबंधी कुछ गीत फिल्मी धुनों पर लिखे हैं। 'नूरी किरणाँ' के नाम से वे प्रकाशित भी हुए हैं। पंजाबी के विभिन्न कवियों का एक संग्रह कानपुर से सन् १९६१ में 'बूंद बूंद सागर' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उसके आरंभ में ही मनजीत कौर के दो गीत हैं :–

'मिट्टी च रुलदे दिसण टुकड़े वंगां दे।
याद करावण मल्लो मल्ली, किस्से कई उमंगां दे।'

अथवा

'मनज़िल तां नेड़े दिस्से पुज्जण दी इच्छा मुक्क गई'

इसी प्रकार बंगाल से प्रकाशित एक काव्य संकलन 'कावि साँझ' में सुखबीर की एक कविता 'तेरी नगरी' है। :–

'हैंझू अखिआं च भर आए वे
अज्ज तेरी नगरी दा
फिर दरशन कर आए वे!'

जम्मू काश्मीर में सुपनमाला ने पंजाबी में काव्य सृजन किया है। वह जसवंत आहलूवालिया से प्रौढ़ है। अमृता की तरह उसे भी अपने पिता श्री अमरनाथ एसिस्टैंट गवर्नर काश्मीर स्टेट से सृजन संस्कार मिले हैं। प्रभजोत की तरह इसको भी प्रतिभावान सुयोग्य पति श्री विजय सुमन मिले हैं। जो एक सफल नाटककार गीतकार एवं संपादक हैं ('गुलाब' 'चट्टान' 'पत्रिकाओं के)। प्रभजोत की तरह ही इसने भी बंबई कलकत्ता तथा बलोचिस्तान का भ्रमण किया है। काश्मीर स्टेट ने उसकी रचना 'सुपनिओ दी माला' को सात सौ रुपये से पुरस्कृत भी किया है। इसके अतिरिक्त वह काश्मीर कौंसिल की सदस्या भी हैं, अमृता की तरह आकाशवाणी से भी उसका संबन्ध रहा है। पंजाबी के अतिरिक्त उसने हिन्दी, उर्दू और डोगरी में भी रचनाएँ की हैं। इस प्रकार पंजाबी महिलाओं ने पंजाब से बाहर रह कर भी पंजाबी भाषा में काव्य सृजन किया है।

उपसंहार के रूप में इतना ही कहा जा सकता है, कि भले ही पंजाबी कवयित्रियाँ संख्या की दृष्टि से कम हों उनका साहित्य भी अप्रचुर हो परंतु उनके साहित्य की गुणात्मक देन एवं उपलबिधयाँ निश्चित ही महत्त्व पूर्ण एवं कलात्मक हैं। उनके विषयों में व्यापकता विविधता एवं विशदता है। उनके शिल्प में रूप विधान कीं विविध विधाएँ हैं। जो समग्रतः एक अपूर्व आनंद का संप्रेषण करती हैं।



उड़िया भाषा की प्रमुख कवयित्रियाँ और उनका काव्य

●

सुरेशचन्द्र कौशिक

उड़ीसा प्रदेश कलिंग, उत्कल व ओड्र आदि तीन प्रमुख प्राचीन राज्यों से मिलकर बना है। इस प्रदेश की भाषा उड़िया है। अन्य प्रान्तीय भाषाओं की भांति उड़िया भाषा का भी अपना साहित्य है।

११वीं शताब्दी के पूर्व से बहकर आनेवाली इस निर्मल साहित्य-सरिता के समुचित प्रवाह की व्यवस्था करने में आदि युग से लेकर आधुनिक युग तक अनेक प्रतिभावान कवियों के साथ साथ अनेक प्रतिभाशालिनी कवयित्रियों का भी सक्रिय सहयोग रहा है। आदि युग (११वीं शताब्दी के प्रथमार्ध से १६वीं शताब्दी के प्रथमार्ध तक) में रानी निशंकराय तथा तिगरिया निवासिनी सुलक्षणा देई ने साहित्य सृजन कर इस पावन काव्य धारा की अबाध गति में अपना अमूल्य योग दिया। इस काल के अन्यानेक कवियों की भाँति इन दो प्रमुख कवयित्रियों के विषय में भी इतिहास स्पष्ट नहीं है।

माधवी दासी मध्य युग (१६वीं शताब्दी के प्रथमार्ध से १९वीं शताब्दी के प्रथमार्ध तक) की प्रमुख कवयित्री हैं। इन्होंने ब्रज बोली की रचनाएँ बंगला भाषा में लिखीं। ये वैष्णव विचारधारा से प्रभावित चैतन्य महाप्रभु की प्रधान शिष्या थीं।

माधवी दासी के बाद १७वीं शताब्दी में प्रमुख कवयित्री वृन्दावती दासी ने श्रेष्ठसाहित्य का सृजन किया। ये सांसारिक माया मोह से उदासीन वैष्णवी थीं, तथा श्री कृष्ण की अनन्त विभूति का वर्णन ही इनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय था।

वृन्दावती का जन्म पुरी जिले के मल्लिपाड़ा ग्राम में हुआ था। इनके पति, पुत्र, नाती आदि सभी कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय के प्रमुख कवि थे, इसकी पुष्टि कवयित्री के निम्नलिखित पद से होती हैं:

> ऐ भावे पति पुत्र नाती
> समस्ते कृष्ण पादे भक्ति
> हेतुरे कृष्ण कथा गीते
> रचना करन्ति समस्ते
> रचना कलइ ऐ गीत
> कृष्ण चरणे देइ चित्त।

वृन्दावती दासी संस्कृत की विदुषी थीं। इन्होंने अथर्ववेद, नारद पुराण, नारद पंचरङ्ग, श्रीमद्भागवत आदि २२ ग्रन्थों का मूल भाषा संस्कृत में गहन अध्ययन किया तथा इनका सार अपनी महत्वपूर्ण धार्मिक रचनाओं में व्यक्त किया। ये उड़िया साहित्य के प्रसिद्ध कवि उपेन्द्र भंज की समसामयिक कवयित्री थीं।

वृन्दावती दासी को उड़िया साहित्य की मीरा कहा जाता है। कवयित्री का निरासक्त गृहस्थ जीवन व कवि-प्रतिभा उड़िया साहित्य में मीरा से कम महत्व की नहीं है। इस अंधकार युग में भी ये शास्त्रज्ञ थीं।
प्रसिद्ध लेखिका श्री मती सरला देवी ने मीरा और वृन्दावती

के साहित्य का अन्तर स्पष्ट करते हुए अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं 'मीराबाई की रचनाओं में रागात्मक तत्व है जब कि वृन्दावती की रचनाओं में श्रीकृष्ण का वर्णन दास्य भाव से हुआ है।'

आधुनिक काल (१९वीं शताब्दी के द्वितीयार्ध से प्रारम्भ) में शिक्षा के प्रसार तथा प्रकाशन की सुविधा के कारण काव्य जगत में अनेक कवयित्रियों का आविर्भाव हुआ। इनमें स्वर्गीय कुन्तल कुमारी साबत का स्थान प्रमुख है।

कुन्तल कुमारी का जन्म ईसाई परिवार में, प्रारम्भिक शिक्षा बर्मा में तथा मेडिकल की व्यवसायिक शिक्षा कटक में हुई। विद्यार्थी जीवन में इन्होंने सदैव प्रथम स्थान प्राप्त कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। कवयित्री कुन्तल कुमारी की हिन्दू धर्म में अत्यधिक रुचि थी, इसलिये इन्होंने ईसाई धर्म त्यागकर हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया तथा आर्य समाज विधि से विवाह कर स्थायी रूप से दिल्ली में बस गईं। इन्हें साहित्यिक तथा व्यावसायिक दोनों हीं क्षेत्रों में पर्याप्त सफलता मिली।

कवयित्री के चार कविता संग्रह, एक गीत-नाट्य पाँतथा च उपन्यास उड़िया साहित्य में उपलब्ध हैं। कुन्तल कुमारी का गीत-नाट्य, प्रेम-चिन्तामणि उड़िया साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसे राधा-कृष्ण के प्रेम पर आधारित उड़िया साहित्य का आधुनिक काव्य कहा जा सकता है।

कवयित्री कुन्तल का जीवन अतृप्त आत्मा की चिरन्तन खोज, अच्छाई के प्रति अत्यधिक मोह तथा विभिन्न माध्यमों से अपने को व्यक्त करने की आकुलता की कहानी है। एक रओ कवयित्री ने कविताएँ लिखीं तो दूसरी ओर उपन्यास और नाटक भी। एक ओर ईश्वरीय प्रेम पर आधारित 'अर्चना, जैसी श्रेष्ठ रचनाओं का सृजन किया तो दूसरी ओर 'माँ' जैसी देशभक्ति पूर्ण रचनाएँ लिखकर देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन भी किया। कवयित्री की माँ कविता का एक उदाहरण देखिये—

माँ परा आमर ज्ञान-विज्ञानर आदर्श लीला-भूम
पवित्र ओंकार झंकारि उठिला जहिं नभ चूमि।
बुढ़ि थिला जेबे बिराट अबनि अज्ञान तिमिरे
उज्ज्वल थिला के विद्याधरम हेम दधितिरे
आजि हेरि तार हीन अधोगति
छाती कि तुमर तुहेंइ करति ?

स्वर्गीय कुन्तल कुमारी का अधिकांश जीवन उड़ीसा से दूर बर्मा व दिल्ली में व्यतीत हुआ फिर भी इन्होंने उड़िया भाषा में साहित्य सृजन कर मातृभाषा के प्रति जिस अपार स्नेह का परिचय दिया वह अनुकरणीय है।

डा० कुन्तलकुमारी के बाद की कवयित्रियों में श्रमती विद्युतप्रभा देवी तथा श्रीमती अपर्णा देवी का उड़िया साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। विद्युतप्रभा देवी के गीतों में अनुभूति की गहराई देखते ही बनती है। कवयित्री की धूलि कविता का एक अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

जगते मोर,
कि जाएआसे,
दुःखे अवा सूखे,
ऐति कि जाणे,
विश्व जीव,
मिसाई मोर बूके।

अपर्णा देवी के कविता संग्रह 'कविता कल्पलता' को उड़िया साहित्य जगत् में पर्याप्त मान मिला है। कविता-कल्पलता संग्रह की प्रसिद्ध कविता तुहि-टिकि जन्म भूमि के प्रति कवयित्री के अपार प्रेम की सफल अभिव्यक्ति है। एक उदाहरण देखिये :—

उत्कल राणी, उत्कल वाणी,
गौरव मणि-हीरा समाने,
अमराद्गेर नाम रखि ले,
काल वक्षगे यार सन्ताने
साहित्य रम्य सुमन दामे,
भरि भारती भाषा भण्डार !
तुहि टिकि सेहि महीयसी मही
उत्कल जननी अटू आमर।

उपर्युक्त प्रमुख कवयित्रियों के अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों

में कई नई कवयित्रियाँ प्रकाश में आई हैं। इनमें श्रीमती मनोरमा महापात्र, कुमारी तुलसीदास, श्रीमती ब्रह्मोत्री महान्ती, सुजाता प्रियंवदा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, कुमारी तुलसीदास की 'प्रलयर स्वप्न पाट' रचना का एक उदाहरण देखिये—

वन्दित निखिलरे, आसिचि मूं प्रलय
विना शिवि भेदाभेद दुःख ओ यातना
रचिवि मूं अनामय शान्तरे निलय
तुटाइवि मं कंसर गृधर कामना
कुमारी तुलसीदास
(प्रलयर स्वप्न पाठ कविता से)

कुमारी तुलसीदास की अधिकांश रचनाओं में बौद्धिक तत्व की अधिकता है फिर भी कवयित्री की रचनाओं में सहज, स्वाभाविक गति व प्रवाह होने के कारण बौद्धिक तत्व की अधिकता खलती नहीं है।

श्रीमती ब्रह्मोत्री महान्ती की रचनाओं की सफलता उनकी भावनात्मक कोमल अभिव्यक्ति में निहित हैं। कवयित्री की अक्षय कविता का एक अंश उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिये पर्याप्त होगा—

विवाहर परठारू आमे दूहे हेउछुपुरुणा
पुरुणा हेउछि क्रमे श्रद्धासिक्त योतुक सकल
नूतनर श्यामालिया धीरे-धीरे पड़ि आसे फिका
पुरातन स्पर्शे रुते क्लान्त हुए प्रीति नूतनर



उर्दू की कवयित्रियाँ

नसीरुद्दीन हाशमी

उर्दू[1] कविता का प्रारम्भ अमीर खुसरो से माना जाता है। अमीर खुसरो के पश्चात् बहुत समय तक किसी कवि का पता नहीं चलता। गोलकुण्डा का मुहम्मद कुली कुतुबशाह पहला कवि है, जिसकी कविताओं का संकलन उपलब्ध है। यह संकलन उर्दू तथा हिन्दी दोनों में प्रकाशित हो चुका है। उत्तर भारत में अमीर खुसरो के पश्चात् अठारहवीं शती के प्रारम्भ तक उर्दू ने विशेष प्रगति नहीं की, किन्तु दक्षिण भारत की स्थिति सर्वथा भिन्न थी। यहाँ १६वीं शती में ही उर्दू के अनेक कवि हुए। गोलकुण्डा, बीजापुर, अहमदनगर तथा अन्य स्थलों के बीस से अधिकांश यशस्वी कवि स्थायी साहित्य की रचना कर गये हैं।

उर्दू की महिला कवियों पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि दीर्घकाल तक किसी नारी ने साहित्यिक क्षेत्र में यश अर्जित नहीं किया। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि उर्दू बोलने वाली महिलाएँ पर्दे में रही हैं अतः उनकी रचनाएँ भी सम्भवतः पर्दे के पीछे ही छिपी रह गई हों। अब तक जो जानकारी प्राप्त हुई है, लुत्फुन्निसा बेगम 'इम्तियाज' उर्दू की प्रथम कवयित्री थीं। उनके पति असदली 'तमन्ना' अपने समय में दक्खिन के उर्दू कवियों में अच्छा स्थान रखते थे। 'इम्तियाज' का काव्य संकलन 'सालारजंग पुस्तकालय' में सुरक्षित है। 'गुलशने शोअरा' नामक एक बड़ा प्रेमाख्यानक काव्य भी इन्हीं का रचा हुआ माना जाता है। उर्दू की यह प्रथम कवयित्री हैदराबाद में रहती थी। बीजापुर के शाह अताउल्ला से इसने दीक्षा ली थी। युवावस्था में ही विधवा हो गई थी। इम्तियाज की कविता में सूफी सन्तों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आध्यात्मिक

[1] 'उर्दू' यह नामकरण शाहजहाँ के शासन काल में किया गया था। प्रारम्भ में इस भाषा को 'जबाने उर्दू' कहा गया था, जिसका तात्पर्य था सैनिकों की बोली। उर्दू तुर्की भाषा का शब्द है। तुर्की में सेना को 'उर्दू' कहते हैं। मुसलमान सैनिक जब हिन्दू दुकानदारों से सौदा खरीदने जाते थे तब उन्होंने कुछ भारतीय शब्द हिन्दू दुकानदारों से सीखे और हिन्दू दुकानदारों ने कुछ शब्द उन सैनिकों से सीखे। इस तरह एक मिली जुली बोली ने जन्म लिया, जिसका नाम पड़ा उर्दू। सैनिक छावनी या उर्दू में प्रयुक्त होने के कारण इस बोली को लश्करी भी कहा जाता था। कुछ लोगों का मत है कि जब मुहम्मद तुगलक ने सनक में आकर दिल्ली से राजधनी उठाकर दौलताबाद में कायम किया तो वहां उर्दू भाषा का जन्म हुआ। गोलकुण्डा, बीजापुर के सुलतानों ने जो मर्सिये लिखे हैं, वही उर्दू की आदिम कविताएँ मानी जाती हैं। उर्दू का जन्म दक्षिण में मानने वाले लोग उर्दू को दक्खिनी कहा करते थे।

उर्दू के लिए एक शब्द रेख्ता भी प्रचलित था। रेख्ता शब्द फारसी है जिसका अर्थ है हीन या पतित। अरबी फारसी के जमाने में उर्दू को हीन या गिरी हुई भाषा समझा जाता था, आलिम फाजिल और कुलीन लोग उर्दू में लिखने बोलने में हिचकिचाया करते थे। गालिब की उर्दू कविता जब

प्रेम को इस कवयित्री ने अच्छी तरह से व्यक्त किया है। इसने होली के सम्बन्ध में भी कविता लिखी है, जिसमें हिन्दू मुसलमान स्त्रियों के होली खेलने का चित्र अच्छे ढंग से खींचा गया है। एक शेर यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

मेरे जिगर में आहो नालों की क्या कमी
फिर जुस्तजू में उसके खयालों की क्या कमी

इस युग की दूसरी कवयित्री महलका बाई 'चन्दा' है। इसका पालन-पोषण भी हैदराबाद में हुआ था। चन्दा के कविता संकलन की हस्तलिखित प्रति हैदराबाद के पुस्तकालयों में ही नहीं लन्दन के इंडिया आफिस के पुस्तकालय में भी है। उर्दू लिपि में यह संकलन छप चुका है। चन्दा स्वयं नर्तकी थी। नृत्य, सङ्गीत कविता और चित्रकारी में इसकी रुचि थी। इसने गजलें लिखी हैं। प्रत्येक गजल में पाँच शेर हैं। कविता में शृङ्गार रस के दोनों पक्ष उपस्थित किये गये है। उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

नाशाद कई दिल हैं न मिलने से तुम्हारे
ऐसा कभी होगा जो उन्हें शाद करोगे

★ ★ ★

किया है जब्त उस पर्दानशीं के इश्क़ में मैंने
सदा ए आह नामुमकिन है दिल से ताबगोश आये

इम्तियाज तथा चन्दा सत्रहवीं शती में विद्यमान थीं।

सम्मानित होने लगी तो उन्होंने कहा था कि—

वह जो कहे कि रेख्ता कैसे हो रश्के फारसी,
गुफ्तये गालिब एक बार पढ़ के उसे सुना कियों।

उर्दू के रेख्ता और दक्खिनी नाम आदरास्पद नहीं थे, शायर मीर ने एक शेर में कहा है कि ऐ मीर मैंने ही उर्दू को उर्दू बनाया। नहीं तो यह एक हीन भाषा दक्खिनी थी—

ऐ मीर मैं ही इसको किया रेख्ता वरना,
एक चीज लचर-सी बजबाने दकिनी थी।

अमीर खुसरो को उर्दू भाषा का जन्म दाता कहा जाता है। इनका जन्म तेरहवीं शती में परिमाली जिला एटा (उ० प्र०) में हुआ था। इनकी माता हिन्दू थी। खुसरो पर माता के हिन्दू संस्कारों का प्रभाव होने के साथ ही सूफी सिद्धान्तों का भी प्रभाव पड़ा था। इसलिए मिली जुली संस्कृति और मिली भाषा का जन्म देना उनके लिए स्वाभाविक था। उनकी फारसी और हिन्दी की मिली-जुली कविताएँ बहुत प्रसिद्ध है—

जिहाले मिस्कीं मकुन तगाफुल
दुराये नैना बनाये बतियाँ
कि ताबे हिजराँ न दारम् एजा,
न लेहु कारे लगाए छतियाँ।

उर्दू भाषा की प्रारम्भिक अवस्था का अध्ययन करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उर्दू ने उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में सर्वप्रथम साहित्यिक रूप ग्रहण किया था। मीर के कथन से भी यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि दिल्ली के प्रमुख शायरों ने उर्दू कविता की शैली दक्षिण से ही प्राप्त की थी।

उर्दू में शायरी लिखने वाले शायर भारतीय काव्य साहित्य में उच्च स्थान रखते हैं किन्तु महिलाओं का योगदान नगण्य ही रहा है। वस्तुतः उर्दू भाषा और उसका साहित्य अधिकतर मुसलमानों के कलम से गढ़ा गया, उन्हीं के द्वारा पाला पोसा गया है। हो सकता है कि स्त्रियाँ भी उर्दू में शायरी लिखती रही हों किन्तु इस्लाम की शरीअत के अनुसार वे उन्हें अपने नाम से साया नहीं करा सकती थीं, इसलिए महिला कवयित्रियों की नामावली नहीं मिल पाती। हाँ अधिकतर जो नाम मिलते हैं वे प्रायः वेश्याओं के हैं और उनकी कविताएँ भी साहित्यिक मूल्य नहीं रखती हैं।

इस लेख में मनीषी लेखक ने बड़े श्रम और अनुसन्धान से उर्दू की महिला कवयित्रियों का परिचय प्रस्तुत किया है।

—संपादक

१८ वीं शती में कवयित्रियों की संख्या बढ़ जाती है। उत्तर भारत के दिल्ली, लखनऊ तथा दक्षिण भारत के हैदराबाद आदि नगरों की कई महिलाओं ने कविता लिखी है। इनमें बेगम समरू, बेगम मख्फी, शोख, बिस्मिल्ला बेगम, हया, जाफरी बेगम और जानी मुख्य हैं। यहाँ कुछ कवयित्रियों के शेर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

मख़्फी

अब ख्वाब ही में वस्ल तेरा होवे तो होवे
ज़ाहिर में तो मिलने की हमें आस नहीं है

बिस्मिल्ला बेगम

न कीजे नाज़ हुस्ने आरज़ी पर
न समझो ये बहारे बेख़िज़ाँ है

हया

है मोतियों के हार में परतो निगार है
आबे गुहर में अक्स सुहाना है यार का

अवध के बादशाह आसफुद्दौला की पत्नी 'दुल्हन' नाम से कविता लिखती थी। उर्दू साहित्य में यह अपना नाम छोड़ गयी है। दुल्हन का शेर है—

जहाँ के बाग़ में हम भी बहार रखते हैं
मिसाले लाला के दिल दाग़दार रखते हैं

उर्दू के प्रसिद्ध कवि मीर तकी मीर की पुत्री 'बेगम' नाम से काव्य लिखती थीं। युवावस्था में ही मर गई, विवाह के पश्चात् ही जब 'बेगम' का देहान्त हुआ तो मीर तकी मीर को हार्दिक वेदना हुई थी। पुत्री कावियोग इस शेर में प्रकट हुआ—

अब आया ध्यान ऐ आरामे जान इस नामुरादी में
कफ़न देना तुम्हें भूले थे हम असबाबे शादी में

सन् १८५७ के पश्चात् उर्दू भाषी महिलाओं में शिक्षा का बहुत प्रसार हुआ। उनमें नई चेतना उत्पन्न हुई। अन्य क्षेत्रों की भाँति काव्य रचना में भी इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। यहाँ कुछ महिलाओं के शेर पेश किये जाते हैं—

तैमूर वंश की राजकुमारी अख्तर उर्दू में बहुत शेर छोड़ गई है। १८७६ ई० में इसका देहान्त हुआ। इसका एक शेर दिया जा रहा है—

तक्सीर यार की न कुसूरे अदू है कुछ
'अख्तर' हमारे दिल ही ने हमको जला दिया

'खानम' दिल्ली की अच्छी कवयित्री थी। उसका शेर है—

मुझको क्यों मुद्दतों से मिलाते हो ख़ाक में
कह दीजिये जो आपके दिल में गुबार में

दिल्ली की हुसेनी बेगम 'उमराव' नाम से कविता लिखती थी—

गरचे मंजूर न थी खाना नशीनी मेरी
तो मुझे साकीने वीराना बनाया होता

आगरा की बड़ी बेगम 'सुरैया' नाम से कविता लिखती थीं—

तबा है हम तुम्हारे काकुले शबगूँ को क्या समझें
स्याह बख्ती अपनी या उसे काली बला समझें

'गौहर' काबुल से भारत आई थी। उसने तीन-चार भाषाओं में कविता लिखी है—

सितमगर गो अगर ज़ुल्मो जफ़ा कर
पर ऐ ज़ालिम कभी मुझसे मिलाकर

मेजर आर० जस्टिन की अंग्रेज पत्नी जमीअत नाम से कविता लिखती थी। उसका एक शेर है—

खुदा के रूबरू जाना नदामत मुझको भारी है
कोई नेकी न बन आई इसी की शर्मसारी है

'मलका' नाम से कविता लिखने वाली महिला भी यूरोप की रहने वाली थी। कलकत्ता में बस गई थी—

हिज्र में दिल को बेक़रारी है
जोशे फ़रियाद आहो ज़ारी है

मोमीन खाँ 'मोमीन' की प्रेमिका 'साहेब' ने पर्याप्त मात्रा में कविताएँ लिखी है। उसका शेर है—

'साहेब' जो बनाया है तो मानिन्द ज़ुलेखा
यूसुफ़-सा ग़ुलाम इक मुझे दे अल इलाही

साहेब की कविता पर मोमीन का बहुत प्रभाव पड़ा है, वाजिदअलीशाह की पत्नी 'सदर' नाम से कविता लिखती थी—

जोशे जुनूँ में रात दिन सब से रहा अलग अलग
मैं हूँ जुदा अलग अलग लोग जुदा अलग अलग

लखनऊ के मौतमादुद्दौला की पुत्री 'सुलतान' का शेर है—

हम तो आशिक उसके हो बैठे
दिल से सब्रो करार खो बैठे

लखनऊ की एक अन्य महिला हैदरुन्निसा 'कमर' नाम से कविता लिखती थी —

दिले नाशाद को तुमने कभी शाद किया
भूल कर बैठे हमें फिर न कभी याद किया

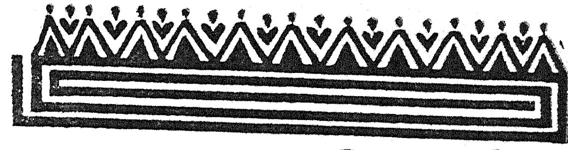
उन्नीसवीं शती में उर्दू कविता एक विशेष ढाँचे में ढल रही थी। अधिकांश कवियों का ध्यान गजल पर केन्द्रित था। महिलाओं ने भी पुरुषों का अनुसरण किया, सामान्यतया श्रृंगार रस ही उस समय की कविता का अधिष्ठाता था। मौलाना हाली की पुस्तक 'मुकद्दमा शेरो शाइरी' के प्रकाशन के पश्चात् उर्दू कविता में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। गजल के स्थान पर नज्म लिखी जानी लगी, घटनाओं के वर्णन, कथानकों का चित्रण और प्राकृत दृश्यों के अंकन काव्य में स्थान प्राप्त करने लगे। अनेक महिलाओं ने नयेनये विषयों पर कविताएँ लिखी। कई महिलाओंके काव्य संकलन प्रकाशित हुए, यहाँ कुछ संकलनों का उल्लेख किया जा रहा है—

नवा ए हरम	हे० बे० महजूर
मता ए हरम	जेब उस्मानिया
बागे दिलकुशा	आफाक जुमानी बेगम
आइनए जमाल	बिलकीस जमाल
शम ए खामोश	मझू बेगम
दीवाने हया	हाजी बेगम 'हया'
नग्म ए सोज	सकीना महमूद
अश्के खूनी	राबिया बेगम 'पिन्हा'
फिरदौसे तकख्युल	जाहिदा खातून
गजल	हुस्न आरा
नाल ए बेकस	'बेकस' बिलकीस फातिमा
फुगा ए अशरफ	अशरफ हयात बेगम
नुकूशे कामिल	बशीरुन्निसा बेगम 'बशीर
दीवाने मरूफी	बदरुन्निसा बेगम
दीवाने कमाल	कमालुन्निसा बेगम
नग्म ए तौहीद	श्रीमती बरकत राय
पयामे कर्बला	रूही

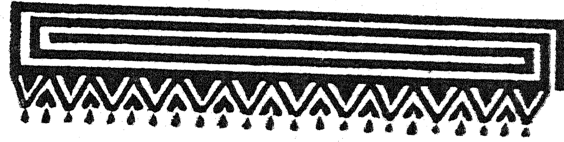




(٤٤٧)



महादेवी
अभिनन्दन ग्रन्थ



सम्भूति

●

इस खण्ड में भारतीय भाषाओं के काव्य का इतिवृत्त दिया गया है।

●

संस्कृत काव्य का इतिवृत्त

डॉ० केशवराव मुसलगाँवकर एम० ए०, डी० फिल०

आधुनिक भाषाओं के काव्य साहित्य की एक पुरानी कहानी है। आधुनिक काव्य साहित्य पर विचार विमर्श करते समय उसे विस्मृत करना एक प्रकार से आलोचक के दायित्व से मुख मोड़ना है। अर्वाचीन भाषाओं के काव्य साहित्य का साक्षात् पूर्वज संस्कृत का लौकिक साहित्य न केवल आदि कवि तथ्य समास के अमर काव्य से सम्बद्ध है, अपितु वह आर्य संस्कृति के उषः काल में उद्भुत तथा अपने जीवनरस से विविध लोकभाषाओं के साहित्य-सम्पदा को अनुप्राणित करने वाली वैदिक काव्य धारा से शृंखलित है।

उन्मुक्त प्रकृति के प्राङ्गण में नीवारकणों से तृप्त मृगशावकों तथा चहचहाते हुए शकुन्तों से संकुल सिंधु सरस्वती के तट पर स्थित हवनीय द्रव्यों के धुएँ से धूसरित एवं सुवासित उटजों में जीवन यापन करने वाले मन्त्र द्रष्टाओं की अमर भारती की स्वरलहरी भारतीय संस्कृति के उषः-काल में वेदत्रयी के रस स्रोत में उद्वेलित हो उठी। वे मन्त्रदृष्टा कविगण अवश्यमेव वन्दनीय हैं, जिनकी अनल्प-गुणगणशालिनी भारती का रसस्रोत षट्सहस्राब्द से भी अधिक काल से अक्षुण्ण रूप से शाखा प्रशाखाओं में प्रवह-मान रहकर युग-युग के जनभाषा साहित्य को अपने जीवन से अनुप्राणित करती हुई आज भी उस रस स्रोत में अव-गाहन करने वाले भारतीयों को अन्य किसी भी देशीय साहित्य-संपदा से होड़ करने का अदम्य साहस प्रदान कर साहित्यविदों का रञ्जन कर रही है। अपनी प्रचण्ड तेजस्विता से समस्त भूलोक को आलोकित कर, स्वनिहित अगणित रत्नतत्त्वों को प्रदीप्त करने वाले भारतीय साहित्य का यही उषः काल है। आर्यों की सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक सम्पदा से सुपरिचित होने का यही एकमात्र, किन्तु सुरक्षित मार्ग है।

वैदिक साहित्य

ऋग्वेद के दशम मण्डलान्तर्गत कुछ सूक्तों को छोड़कर उसका अधिकांश भाग भावमय है। ऋग्वेद सूक्त प्रधान रूप से देवाराधनात्मक होने से देवता ही उनका मुख्य विषय है। सृष्टि-चमत्कार से अभिभूत होकर भाव सृष्टि की सचेतन मूर्तरूप में कल्पना करने की यह देव कथा प्राक्कालीन है। उनकी स्तुति में कहीं औदार्य का चमत्कार है, तो कहीं उनकी गम्भीर कृति में भय एवं विषादजन्य अवाक् गोचरता भी है। वस्तुतः वेद एक काव्यमय ग्रन्थ है। उसका निर्माण याज्ञिक वर्ग ने विचार और भाव के अनूठे मेल से किया है। "किसी कवि ने अपने काव्य को कुशलता से बुने हुये सुन्दर वस्त्र की उपमा दी है, तो अन्य कवि ने अपने काव्य को नववधू की उपमा दी है।" प्रकृति की नीरवता और रम-णीयताजन्य हर्षोद्रेक ने हृदयस्थ अनुराग एवं सौंदर्य भावना के संगीतात्मक रूप को जन्म दिया जो सजीव होने से अत्यंत अनुपम है।

प्रायः सभी वैदिक सूक्तों का प्रणयन संगीतात्मक है, फिर भी 'समावेदसूक्त' 'उद्गातृ' पुरोहितों द्वारा विशेष रूप से यज्ञ समय पर गाने के लिए प्रणीत होने से उनमें गेयता अधिक है। यहाँ तक की 'सामगान' के पश्चात् अन्यवेद का गायन-पठन नहीं होता। उदात्त अनुदात्त एवं स्वरित स्वरों का औचित्य रखकर ही वैदिक सूक्तों का प्रणयन किया गया है। जिनमें ईषद् परिवर्तन होने पर सारे सूक्त का अर्थ बदल जाता है और साथ ही स्वर परिवर्तन से लय

जन्य-संगीतात्मकता स्वयमेव नष्ट हो जाती है। संगीत एवं काव्य का यह मधुर संयोग अन्यत्र दुर्लभ है।

वैदिक सूक्तों में जहाँ इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य आदि देवों की तथा कोमल, रौद्र आदि शक्तियों की अपने योग क्षेमार्थ विविध स्तुतियाँ हैं, वहाँ प्रकृति के विविध, शान्त-गम्भीर, भयानक, दृश्यों के दर्शनोपरांत हृदयस्थ भावोद्रेकों की सुन्दर अभिव्यक्ति भी है। जहाँ एक ओर कवि दृष्टि ने उषा के रमणीय और अम्लान सौंदर्य को देखा है—"द्यौस कन्या उषा का जन्म आकाश में हुआ। कृष्णवर्णा रात्रि की वह दिव्यवर्णा भगिनी है। सूर्य उसका प्रणयी है वह दिव्य-वर्णा तरुणी है। जैसे कोई युवक किसी तरुणी का अनुगमन करता है, वैसे ही सूर्य उषा का। कभी वह तरुणी रमणीय वस्त्र परिधान करने वाली एक नर्तकी के समान अपना वक्षःस्थल प्रदर्शित करती हुई प्रगट होती है कभी वह सद्यःस्नाता के रूप में आती है।" इस प्रकार उसने (कवि ने) 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपंम रमणीयतायाः" (इस सौंदर्य को) को एवं उसकी सर्जनशक्ति को देखकर अपने हृदय को आनन्द से आप्लवित किया है, वहीं दूसरी ओर वह उषा के विषाक्त स्वरूप को देखकर निराशाजन्य विक्षुब्धावस्था को भी प्राप्त हुआ है। प्रभातकालीन शान्ति-निश्चलता एवं उषा का अखण्ड पुनरागमन और मानवी जीवन के क्षणिकत्व को देखकर कवि के हृदय से ये उद्गार निकलते हैं—कि "गतयुग में जिन मानवों ने प्रभातकालीन दीप्ति, आनन्द तथा उल्लास को देखा वे मृत हो गये, संप्रति विद्यमान मानव उषा को उदितावस्था में देख रहे हैं और जो भविष्य में उसे देखेंगे वे शीघ्र ही संसार में आवेंगे।" दूसरा कवि कहता है कि "यद्यपि अनादि फिर भी चिर-नवीन, नित्य एक ही रङ्ग से विभूषित होने वाली उषा देवी द्रव्य व्यय करने वाले द्यूत क्रीडक के समान आयुमान का व्यय-क्षय करती है।" (१-१२-११, १, ९२, १०)

तात्पर्यतः प्रकृति के दृश्यों की विविधता देखकर कवि के हृदयस्थ भाव स्वयमेव ही आत्माभिव्यञ्जन के रूप में फूट पड़े. इन्हीं भावों की यत्र तत्र अभिव्यञ्जना है। हृदयस्थ भावों की अतिशयता के अनुपात की मात्रा श्वास की आरोह-अवरोह स्थिति को जन्म देती है और यह लयात्मक आरोह—अवरोह छन्द का प्रकट रूप है यही लय शब्द के संयोग से छन्द का रूप धारण करती है। इस प्रकार इन सूक्तों में लय, छन्द, अर्थ और ध्वनि तत्त्व शुद्ध रूप में परिलक्षित होते हैं।

यह विवेचन इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि वैदिक सूक्तों के साहित्यिक मूल्यों का जहाँ तक प्रश्न है, चाहे अलंकृत शैली यहाँ न मिले, किन्तु अविरल रूप में प्राप्त होने वाले गीत काव्य के तत्त्वों के साथ-साथ कुछ सूक्तों में तो वीर, रौद्र, करुण और शृंगार रसों की सुन्दर अभिव्यञ्जना पाई जाती है।

इन्द्र की स्तुतियों में उसके वीरत्व की भव्य कल्पना परिलक्षित होती है। युद्ध प्रिय वज्रपाणि इन्द्र वीरत्व का प्रतीक है। 'वृत्र' राक्षस के वध (अर्थात् वर्षाभाव तथा अन्धकार को दूर करने) में ही उसकी यशोगाथा निहित है। उसके करालाघात से पृथ्वी और स्वर्ग सकंपित होते हैं। (१-१५१-६ इसके अतिरिक्त 'दाशराज्ञ' सूक्त में युद्ध का प्रभावोत्पादक वर्णन अंकित किया है।

ऋग्वेद के कई स्थलों में शृंगार रस की अभिव्यञ्जना है। प्रकृति की गोद में रहने वाले मनीषियों ने प्रकृति-उषा को शृंगाररस से ही चित्रित किया है। प्रातः पूर्व दिशा में उदित होने वाली उषा को वैदिक कवि ने एक तरुणी नायिका के परिवेश में देखते हुये कहा—"यह उषा अलंकृत एवं सद्यःस्नाता युवती की तरह अपने अङ्गों को प्रगट करती उदित हो रही है। यह स्वर्ग की पुत्री अन्धकार को दूर करती तेजी से आ रही है।" (५-८०-५)

पुरुरवा एवं उर्वशी के सूक्त में उर्वशी के वियोग से व्यथित पुरुरवा के उद्विग्न हृदयका सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। वियोगजन्य हृदय की वेदना, म्लानतावश इन्द्रियों का असामर्थ्य एवं प्रभावहीनता का तथा हृदयशून्यता से संसार के अन्य विषयों के प्रति उदासीनता के चित्र से मानवीय हृदय की अभिलाषा एवं विषाद की प्रकृतावस्था में अभिव्यक्ति हुई है।

'यम-यमी' के प्रसंग में संभोग शृंगार का आभास है जिसमे यमी अपने भाई यम के प्रति अपनी प्रणय एवं संभोगाभिलाषा व्यक्त करती है (२-१०-१०-७) किन्तु यम ने

इसके उत्तर में "वृक्ष के दृढ़ालिंगन में रहने वाली लता के समान हे यमी ! तुझे भी अन्य कोई पुरुष अपनी बाहुओं में आलिंगित करेगा" (ऋग्वेद१०-१० कहते हुये प्रणयाभिलाषी के प्रति औदासिन्य व्यक्त किया है। इस सूक्त में हृदयस्थ भावों का द्वन्द्व, स्त्री हृदय की निर्बलता, संभोगलिप्सा की तीव्रता एवं मनोद्वेगावस्था में विवेकशून्यता का सजीव चित्रांकन किया गया है।

द्यूतसूक्त

ऋग्वेद के दशममण्डलान्तर्गत द्यूतसूक्त में एक वैदिक कवि ने द्यूत क्रीडक की हृदयावस्था का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किया है। इस सूक्त में करुण रस का सजीव अंकन परिलक्षित होता है। द्यूत क्रीड़ाजन्य संसार के विनाश को प्रत्यक्ष देखते हुये भी भावी विजयाभिलाषा के सूक्ष्म तन्तु से परिचालित हृदय की आतुरता पर करुण विलाप है। द्यूत में सर्वस्व हार चुकने पर हृदय व्यथा से प्रताड़ित मानव के ये अत्यन्त स्वाभाविक उद्गार हैं। (ऋग्वेद १०-३४, २, ३, ४, ५, ६)

अलंकार

वैदिक कवि ने अपने भावों को अव्याज मनोहर रूप में व्यक्त किया है। उनमें परवर्ती साहित्यिक संस्कृत कवियों की तरह श्रमजन्य अलंकारों का विधान नहीं है। वहाँ तो हृदयगत भाव स्वयमेव ही आरोहावरोह स्वरों में स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुए हैं। प्राकृतिक दृश्यों के वैचित्र्य से उद्भूत भावना और मनोहर कल्पना का संश्लिष्ट रूप ही यहाँ अवतरित हुआ है। इस भावना और कल्पना के अव्याज मनोहर मिलन में विविध प्रकार की उपमाएँ, रूपक, अतिशयोक्ति और व्यतिरेक आदि अलंकारों का दर्शन होता है।

"अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची-
गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा
उषा हस्रेव निरीणीते अप्सः।"

ऋग् १।१२४।७

यहाँ चार उपमाएँ ग्रथित हैं।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्यन
श्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।।"

पं० जगन्नाथ ने रसगङ्गाधर में इस मन्त्र को वैदिक अतिशयोक्ति के उदाहरण में उद्धृत किया है। इनके अतिरिक्त अलंकारों का भी नियोजन है। वैदिक कवि ने प्रायः अपने निकट के वातावरणों एवं प्राकृतिक दृश्यों से ही उपमाओं का ग्रहण किया है। इसका सुन्दर निदर्शन मण्डूक सूक्त में देखने को मिलता है।

छन्दस्

वेदाङ्ग के रूप में परिगणित 'छन्द' वेद का पाँचवाँ अङ्ग है। छन्द वेद के पाद हैं[1] मन्त्रों के उच्चारण के लिए छन्दों का ज्ञान आवश्यक बतलाया गया है। यहाँ तक कि मन्त्र के देवता, ऋषि तथा छन्द के ज्ञानाभाव में मन्त्र का अध्ययन अध्यापन, यजन तथा याजन निष्फल होता है। कृष्ण यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के कतिपय भाग को छोड़कर वेद का अधिकाँश भाग छन्दोबद्ध है।

'दान स्तुति' और 'संवाद सूक्त'

इनमें और परवर्ती साहित्यिक संस्कृति काव्य विभाग में जन्य-जनक सम्बन्ध है। इनका परवर्ती संस्कृत साहित्य में 'नाटक' 'प्रबन्ध काव्य के रूप में विकास हुआ है। इन सूक्तों में पुरुरवा उर्वशी संवाद (ऋ-१०-८५) का ही विकसित एवं पल्लवित रूप अम्लान प्रतिभाशाली कवि कालिदास कृत 'विक्रमोर्वशीय' सुप्रसिद्ध त्रोटक में पुष्पित मिलता है। ये संवादात्मक सूक्त काव्य-दृष्ट्या सुन्दर एवं भावोत्पादक होने से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वैदिक कवि के हृदयस्थ भाव उषः काल के ऋजु और अव्याजमनोहर रूप में ही सर्वत्र अभिव्यक्त हुये हैं। उससे परवर्ती काव्य के विविध रूपों का बीज सहजगतया प्राप्त हो जाता है। साथ ही उनमें

---

[1]—'छन्द पादौ तु वेदस्य' पाणिनीय शिक्षा ४

संस्कृत साहित्य की विदग्धता का शोध करना, उषः काल में मध्यान्ह की प्रखरता को देखना है।

वैदिक और लौकिक साहित्य

वैदिक साहित्य के पश्चात् लौकिक साहित्य का उदय होता है जो अपने पूर्वज वैदिक साहित्य से विरासत में प्राप्त साहित्यिक संपदा को आत्मसात् करते हुए भी, नई चेतना तथा विदग्धता को सूचित करने के कारण, वैदिक साहित्य से अनेक बातों में (१) आकृति (२) भाषा (३) विषय (४) तथा अन्तस्तत्त्व, पार्थक्य रखता हैं।

आकृति

वैदिक साहित्य में गद्य का ही प्राधान्य है, यहाँ तक कि ब्राह्मणों में गद्य ही उपलब्ध होता है। किन्तु लौकिक साहित्य में गद्य के स्थान पर पद्य का प्राधान्य हो जाता है। अब वैद्यक, ज्यौतिष जैसे शास्त्र भी छन्दोमय वाणी में ही सामने आते हैं। वैदिक छन्द लौकिक छन्द से भिन्न है।

भाषा

वैदिक साहित्य की भाषा पाणिनि के नियामक दण्ड से दूर है जब कि लौकिक साहित्य में पाणिनि के नियमों को स्वीकार किया गया है।

विषय

जैसा कि इसके पूर्व लिखा है वैदिक साहित्य प्रधानतः (१) धर्म प्रधान (२) देवाराधनात्मक (३) और अपौरुषेय साहित्य है।

अन्तस्तत्त्व

वैदिक साहित्य में रूपक का प्राधान्य है, जब कि लौकिक साहित्य में अतिशयोक्ति का।

रामायण महाभारत और पुराण उपजीव्य-काव्य

"दृष्ट पूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इव भान्ति मधुमास इव द्रुमाः॥

प्रत्येक साहित्य में अम्लान प्रतिभाशाली कवियों द्वारा अंकित कतिपय ऐसे हृदयाह्लादक एवं मर्मस्पर्शी काव्य-स्थल हुआ करते हैं। जिनसे जीवन रस प्राप्त कर अवान्तरकालीन कविगण अपने काव्यों को अलंकृत किया करते हैं, क्योंकि रस भाव आदि के आश्रय से काव्यार्थ अनन्त हो जाते हैं। बसन्त ऋतु में वृक्षों के समान काव्य में रस को प्राप्त कर पूर्व दृष्टसार पदार्थ भी नये प्रतीत होते हैं। ऐसे व्यापक प्रभावशाली काव्यों को 'उपजीव्य' नाम से अभिहित किया जा सकता है। संस्कृत साहित्य में भी ऐसे कुछ उपजीव्य हैं जिनकी रस धारा ने साहित्य की शाखा प्रशाखाओं को अपने जीवन से अनुप्राणित किया है। तात्पर्यतः संस्कृत तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के कवियों ने इन्हीं उपजीव्य काव्य सामग्री से अपने काव्य का निर्माण किया है और कर रहे हैं। ऐसे उपजीव्य काव्य तीन हैं। [१] रामायण [२] महाभारत [३] श्रीमद्भागवत। इन उपजीव्य काव्यों का उत्तरकालीन भारतीय काव्य साहित्य पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। भक्तिकालीन सगुणधारा के राम तथा कृष्ण कवियों की मधुर पदावली में—श्रीमद्भागवत की मधुरिमा प्रतिबिंबित है। भागवत की सरसता से पूर्ण जयदेव के 'गीतगोविन्द' की कोमलकान्त— पदावली को हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि पन्त ने अपनाकर अपने काव्य को कोमलता और सरसता का प्रतीक बनाया है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य के चारों युगों की (वीर, भक्ति, रीति, और आधुनिक) काव्य धारा को अपने पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य से जो दाय प्राप्त हुआ है, उसे एकाएक विस्मृत नहीं किया जा सकता। प्रकृति के अन्तस् में झिलमिलाने वाली— 'लालिमा' 'उषा'—प्राण चेतना की भावना करने वाले वैदिक कवियों की तरह छायावादी कवि भी सर्वात्मवादी होकर प्रकृति में चेतना को पहचानते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं।

भाषा की दृष्टि से इन तीनों काव्यों की भाषा वैदिक भाषा से दूर (भिन्न) और लौकिक साहित्य की भाषा के निकट है। फिर भी इनमें बहुत से अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं जिन्हें 'आर्ष' प्रयोग कहकर टाल दिया जाता है। वस्तुतः रामायण आदि आर्ष काव्य बीच की कड़ी है जो वैदिक साहित्य से लौकिक विदग्ध साहित्य को जोड़ती है। लौकिक संस्कृत में श्लोक रचना का प्रारम्भ रामायण के "मा निषाद प्रतिष्ठां ......" श्लोक से ही होता है। इसलिए यह आदि काव्य है। इसके अतिरिक्त भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' का

प्रयोग वाल्मीकि रामायण में ही मिलता है ।[1] रामायण की कथा सात काँडों में विभक्त है। काव्योपयुक्त आकर्षक, सूत्रबद्ध दीर्घ एवं भव्यादि गुणों से युक्त ही सर्व प्रथम रामायण कथा है। संप्रति प्राप्त रामायण में करुण रस प्रधान है। रामायण का कवि यद्यपि भावपक्ष का प्रेमी है तथापि वह कलापक्ष का भी समर्थक है। रामायण में अर्थालंकारों एवं शब्दालंकारों की भी कमी नहीं है। उसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनन्वय, काव्यलिंग जैसे अलंकारों की छटा दर्शनीय है। सुन्दर कांड में तो चन्द्रवर्णनमें शब्दालंकार का प्रयोग ही किया गया है। संप्रति प्राप्त रामायण में १४ विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। इतिवृत्त को काव्य का आकर्षकरूप देने के लिए विविध वर्णन की योजना अव्याज मनोहर शैली में की गई है। रामायण में उत्तरकालीन महाकाव्य के पैटर्न बीज सन्निहित हैं। उसमें कालिदास की स्त्री रूप में उपस्थित होने वाली अयोध्या की पूर्व कल्पना, सुन्दरकाण्ड में वर्णित स्त्री रूपिणी लंका में मिलती है। परवर्ती महाकाव्य में वर्णित, काल के समुद्रों, नदियों, पर्वतों, आश्रमों, ऋतुओं और युद्धों के आदर्श चित्र हैं। इसके अतिरिक्त मनोभावों, मत्सर, द्वेष, विलाप के भी सुन्दर चित्र मिलते हैं। रामायण में प्रकृति चित्रण कई प्रकार से हुआ है जिनमें संश्लिष्ट प्रकृति के चित्रों का प्राधान्य है। देखें।[2]

संस्कृत से विदग्ध काव्य का उदय और विकास की ऐतिहासिक पीठिका

रामायण काल के पश्चात् आर्थिक व्यवस्था, सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के फलस्वरूप युग परिवर्तन हुआ। छोटे-छोटे गणराज्यों के स्थान पर साम्राज्यों की स्थापना हुई। ग्राम, नगरों एवं उपवनों में परिवर्तित हुए। समाज में स्थिरता, शान्ति और व्यवस्था दिखाई देने लगी परिणाम स्वरूप शास्त्रों एवं कलाओं का विकास हुआ। अभिनव संस्कृति व सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। शास्त्रों के सूत्र काल की समाप्ति के साथ साथ भाष्यकाल के चिह्न दृगगोचर होने लगे। पांडित्य का प्रभाव बढ़ा। अभिधा के स्थान पर ध्वनि का एवं श्लेष तथा पाण्डित्य प्रचुर-भाषा का प्रयोग होने लगा। इस नवीन शिष्टयुग के प्रभाव से प्रभावित कवियों ने प्राचीन और नवीन में समन्वय स्थापित किया। तात्पर्यतः प्राचीन चित्रों की रूपरेखा को नवीन चमकीले रङ्ग से भरकर वर्तमान कालीन-भौतिक युग की चौखट में सजाया। इस नवीन युग की प्रेरणा से निर्मित प्राचीन तत्त्वों का कालोचित पुनर्नव निर्माण ही विदग्ध काव्य है।

विदग्ध का अर्थ

विदग्ध का यौगिक अर्थ विशिष्ट प्रकार से भुँजा हुआ, वि + दह् + भू, है। विदग्ध काव्य से तात्पर्य उत्तरकालीन संस्कृति व सभ्यता की परिवर्तित धारा में प्राचीन काव्यों के आधार पर ही विशिष्ट हेतु, चातुर्य, विद्वत्ता एवं कलामण्डित काव्य या महाकाव्य से है। जैसे अपक्व मूल खाद्य वस्तु को प्रथम सुखाकर बाद में पकाकर उपयोग में लाया जाता है, अर्थात् प्राकृतिक खाद्य वस्तु को सुसंस्कृत नागरक मनुष्य के द्वारा विशिष्ट संस्कारों से संस्कृत कर उपयोग में लाया जाता है। इस विदग्ध शब्द में चातुर्य, कलात्मकता, पांडित्य, नागरिकता एवं सांस्कृतिक विकासादि प्रमुख अर्थ छटा निहित है।

संस्कृत काव्य साहित्य के प्रेरक तत्त्व

साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध सांख्य के सत्कार्यवाद का समर्थक है अर्थात् कारण सामग्री के द्वारा कार्य अव्यक्तावस्था से व्यक्तावस्था में आता है। कारण के अभाव में कार्य की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः संस्कृत काव्य का अध्ययन करते समय हमें निम्न बातों को पृष्ठभूमि के रूप में स्मरण रखना होगा—[१] संस्कृत काव्य साहित्य स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रम धर्म की संस्कृति से अनुप्राणित है। [२] दार्शनिक चिन्तन से आक्रांत है। [३] वह राजाश्रित काव्य है। [४] वह वात्सायन—कामसूत्रोक्त नागरिक जीवन का काव्य है।

संस्कृत काव्य की व्यापकता

संस्कृत साहित्य में कवि और काव्य व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। आचार्यों ने गद्य को भी पद्य के तुल्य ही महत्व देते हुए, काव्य का एक रूप माना है। अतः काव्य के अन्तर्गत पद्य के साथ-साथ गद्य के सभी रूप समाविष्ट हो जाते हैं। काव्य की परिभाषा समय-समय पर विभिन्न

[1]—सुन्दर ५/१४, [2]—रामा अरण्य सर्ग १६-२०-१६

साहित्याचार्यों द्वारा परिवर्तित व परिवर्धित होती रही है। यह तो निर्विवाद है कि दोष रहित और गुणयुक्त चमत्कारी शब्द और अर्थ काव्य का शरीर है। उसमें भी शब्द उसका स्थूल शरीर है और अर्थ लिंग शरीर। उसकी आत्मा रस है। [यद्यपि आत्मा के विषय में आचार्यों का मतभेद रहा और अन्त में रस ही 'आत्मा' है, सिद्ध हुआ] और प्रयोजनों में मौलिभूत प्रयोजन आनन्द है।

काव्य के दो प्रधान भेद हैं [१] दृश्य [२] श्रव्य।

दृश्य के अन्तर्गत रूपक [नाटक] और श्रव्य के अन्तर्गत पद्य, गद्य और मिश्र रूप आते हैं। अब हम काव्य के प्रधान रूपों पर विहंगम दृष्टि डालेंगे—

महाकाव्य

आर्ष कवि बाल्मीकि और व्यास के पश्चात् संस्कृत के महाकाव्यों का सर्वप्रथम कवि अश्वघोष[1] ही मिलता है। वस्तुत: वैदिक काल से आज तक काव्य शैली का निरन्तर विकास दिखाई देता है। विदग्ध काव्य का स्वतन्त्र रूप हमें ईसवी सन् से अर्थात् अश्वघोष की कृतियों में ही देखने मिलता है। ईसवी सन् के प्रारम्भ तक संस्कृत की विदग्ध काव्य शैली निखर चुकी थी। भारत का नाट्य-शास्त्र और अश्वघोष की कृतियाँ इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। आदि कवि की महत्वपूर्ण आदर्शभूत रचना के पश्चात् जिन कवियों की प्रतिभा ने इस शैली को अधिकाधिक निखारने का सफल प्रयत्न किया, उनका और उनकी रचनाओं का पूर्ण रूप से आज पता नहीं है। संक्षेप में पाणिनि के 'जाम्बवतीविजय' और 'पातालविजय' समुद्रगुप्त के 'कृष्ण चरित' में 'व्याडि' आदि के नाम से उद्धृत महाकाव्यों के नाम, पतञ्जलि के महाभाष्य में उल्लिखित 'वररुचि का महाकाव्य' तथा महाकाव्य की शैली पर प्राप्त होने वाले श्लोक या श्लोक खंड या आख्यायिकाओं के नाम अलंकृत शैली में लिखे गए शिलालेख और पिंगल में आये विभिन्न छन्दों के नाम, कालिदास के पूर्व संस्कृत काव्य साहित्य की समृद्धि और उसकी निरन्तरता अवश्य सिद्ध करते हैं।

अश्वघोष

अश्वघोष ने दो महाकाव्यों की [१] 'बुद्धचरित्र' [२] 'सौंदरनन्द' रचना की है। बुद्धचरित आज खण्डित प्रति के रूप में उपलब्ध है। जिसमें मूल २८ सर्गों में १७ सर्ग ही प्राप्त होते हैं। इसमें बुद्ध के जीवन, उपदेश तथा सिद्धान्तों का काव्य के व्याज से वर्णन है। काव्य की दृष्टि से बुद्ध चरित्र के कतिपय सर्ग ही अर्थात् प्रथम पाँच, अष्टम् तथा त्रयोदश सर्ग के मारविजय का कुछ अंश सुन्दर है और शेष सर्ग धार्मिक और दार्शनिक विचारों से आक्रांत होने से बुद्ध चरित्र धार्मिक नीतिवादी बन गया है। [२] सौन्दरनन्द—यह अश्वघोष का दूसरा महाकाव्य है। इसमें १८ सर्ग हैं। इस महाकाव्य में बुद्ध के विमातृज भाई नन्द और उसकी स्त्री सुन्दरी की ही कथा प्रधान है। नन्द की प्रवज्या का वर्णन कवि को अभीष्ट है। इस काव्य में बुद्ध चरित्र की दार्शनिक विचारजन्य रूक्षता काव्य की स्निग्धता में परिणत हो गई है।

कालिदास

महाकवि कालिदास के दो महाकाव्य हैं [१] कुमारसम्भव [२] रघुवंश। कुमारसंभव में कवि ने १७ सर्गों में शिव-पार्वती विवाह कार्तिकेय का जन्म और तारकासुर का वध वर्णित है। इनमें से प्रथम ८ सर्ग ही कवि कालिदास के माने जाते हैं। कवि ने इस काव्य में शिव पार्वती को मानवी रूप में देखा है।

रघुवंश –

यह कालिदास की प्रौढ़ एवं श्रेष्ठ रचना है। इसमें १९ सर्ग हैं। इसमें १९ सर्ग के दीर्घकाल फलक पर दिलीप से अग्नि वर्ण तक के जीवन के प्रमुख भाव पूर्ण घटनाओं के चित्र एक के पश्चात् एक आते जाते हैं और सहृदय पाठक उनमें आनन्द ग्रहण करता है। इनमें दिलीप और सुदक्षिणा की तपस्या, रघुवंशीय राजाओं की वीरता, अज का करुण विलाप, रामचन्द्र की उदात्तता तथा त्याग व अग्नि वर्ण की दयनीयदशा व करुण अन्त के चित्र प्रमुख हैं।

महाकाव्य की दृष्टि से दोनों ही महाकाव्य भव्योदात्त हैं। किन्तु एक ही भव्योदात्तता दूसरे की भव्योदात्तता से कुछ भिन्न प्रकार की है। शिव-पार्वती का विवाह शंकर संस्कृति तथा आर्य संस्कृति के ऐक्य का द्योतक है। कवि ने इस ऐक्य का समर्थन अनेक स्थानों पर किया है। कुमार संभव की घटना

[1]—मनीषी लेखक का यह मत प्रामाण्य नहीं है। संपादक

दैवी और आसुरी व्यक्तियों के संघर्षजन्य है। उसमें प्रायः अति मानुष शक्ति का व्यवहार अधिक होने से अद्भुतता का सर्जन अनायास ही हुआ है। इसके विपरीत रघुवंश की भव्योदात्तता मानवीय अंश में दैवी अंश के मिश्रण से उत्पन्न हुई है। एक में स्वर्ग पृथ्वी की ओर आया है तो दूसरे में पृथ्वी ही अपने आदर्शों से स्वर्गीय वातावरण उत्पन्न करने में सफल हुई है।

संस्कृत विदग्ध महाकाव्य का विकास

अश्वघोष और कालिदास के पश्चात् महाकवियों की परंपरा में एक परिवर्तन आया। कालिदास के पश्चात् उसकी रस परंपरा को उत्तरकालीन कवियों ने स्वीकार नहीं किया। उसके उत्तराधिकारियों ने काव्य के प्रथम पक्ष (अभिव्यंग्य-कथा वस्तु का निर्वाह) की अपेक्षा द्वितीय पक्ष (अभिव्यंजना) को ही महत्व दिया। यह कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं था। प्रथम तो कालिदास से भारवि तक हमें कोई संस्कृत का महाकाव्य उपलब्ध नहीं होता। दोनों कवियों को जोड़ने वाला शृंखला स्वरूप वातास भट्टिवाला मन्दसोर का शिला लेख ही एक बीच में है। साहित्य पर युग चेतना का पर्याप्त प्रभाव रहता है और इस चेतना के फलस्वरूप साहित्य की शैली में, उसकी कलात्मक मान्यता में परिवर्तन दृग्गोचर होता है। गुप्त और वाकाटक साम्राज्यों की सर्वांगीण उन्नति ने साहित्यिक वातावरण में आमूल परिवर्तन कर दिया। फलतः अश्वघोष और कालिदास की सरसता, सरलता और अव्याज मनोहारिता के स्थान पर विदग्धता और आयास-सिद्ध आलंकारिता ने स्थान ग्रहण किया। अतः पूर्वागत रसमयी शैली के स्थान पर एक नवीन 'विचित्र मार्ग' चल पड़ा, जिसमें विषय की अपेक्षा उसकी अभिव्यंजना या वर्णन प्रकार पर, सारल्य के स्थान पर पाण्डित्य तथा वैदग्ध्य पर अधिक लक्ष्य रहा और काव्य की सजावट के लिये वात्सायन के कामसूत्र तथा अन्य शास्त्रों का उपयोग होने लगा। इधर लक्षण ग्रंथों का प्रभाव भी काव्य के लिये पथ्यकर सिद्ध नहीं हुआ। भरत, भामह और दण्डी जैसे आचार्यों ने कवियों के लिये काव्य-रूढ़ियाँ—महाकाव्य की परिभाषा, उसका विस्तार, वर्ण्य विषय छन्द, नायक, रस आदि—निर्धारित कर दी। परिणामतः काव्य शैली में गतिरोध उत्पन्न हो गया। इसे हम अँग्रेजी में 'रेजिमेण्टेशन' कह सकते हैं। अब महाकाव्यों के वर्ण्य विषय समान रूप से सामने आने लगे। संक्षेप में इस विचित्र मार्ग की दो विशेषताएँ हैं—[१] विषय [२] भाषा-शैली सम्बन्धी। विषय—कहाँ तो कालिदास के रघुवंश में दिलीप से अग्नि वर्ण तक १९ सर्गों में कथा विस्तार और कहाँ किराताजुर्नीय के १८ सर्गों में केवल इन्द्र तथा शिव की प्रसन्नता के लिये अर्जुन की तपस्या और शिव को युद्ध से प्रसन्न कर अस्त्र प्राप्त करने की स्वल्प कथा। अब उत्तरोत्तर कथा-वस्तु का संकोच होता गया और इस कमी की पूर्ति करते हुए प्रकृति वर्णन, विभिन्न शास्त्रों से पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना, वाग्वैदग्ध्य और कल्पना चातुर्य से काव्य को आक्रान्त सा कर दिया जाने लगा। इस 'विचित्र मार्ग' की दूसरी विशेषता भाषा तथा शैली सम्बन्धी है। आदि कवि बाल्मीकि, अश्वघोष और कालिदास की भाषा में कुछ अन्तर होते हुए भी वह सीधी सरल, और प्रवाहपूर्ण है। उसमें प्रासादिकता सर्वत्र विद्यमान है। दूरारूढ़ कल्पना और आयास सिद्ध अलंकारों [चित्र काव्य, गोमूत्र, कमल बन्ध] का सर्वत्र अभाव है। किन्तु भारवि ने विचित्र शैली को जन्म दिया जिसमें चित्र काव्य का प्रदर्शन होने से वह स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिम और अलंकृत हो गई।

किरातार्जुनीय में विषय वस्तु और रूप शिल्प वर्णन शैली का सन्तुलन बिगड़ा और वह उत्तरोत्तर बिगड़ता ही गया। माघ ने 'शिशुपाल वध' महाकाव्य में भारवि का अनुकरण करते हुए उससे भी आगे जाने का प्रयत्न किया है। इस असन्तुलन का उत्कृष्ट निदर्शन 'रत्नाकर' के 'हर विजय' में मिलता है। इस महाकाव्य में ५० सर्ग हैं जिनमें कठिनाई से मूल कथा १५ सर्ग से आगे नहीं जाती। इसी आदर्श पर 'कफ्फिणाभ्युदय' श्री कण्ठचरित, धर्मशर्माभ्युदय और नैषध आदि महाकाव्यों में असन्तुलित और अप्रासंगिक वर्णन की प्रवृत्ति मिलती है।

इस प्रकार उत्तरकालीन कवियों के सामने दो प्रकार की काव्य शैलियाँ थीं। [१] अश्व घोष-कालिदास की रस प्रधान शैली [२] भारवि-माघ की अलंकृत शैली। उत्तर-कालीन कवियों ने इनमें से दूसरी काव्य-शैली को स्वीकार

किया। ''जानकी हरण' 'नवसाहसांक चरित' 'विक्रमांक-देव चरित' व 'नैषध' आदि प्रथम शैली के महाकाव्य हैं, यद्यपि इनमें अलंकृत करने की प्रवृत्ति है। इस अलंकृत शैली का एक और रूप श्लिष्ट काव्य-शैली में दिखाई देता है और वह है एक ही प्रबन्ध में दो तीन, व अधिक कथाओं का सन्निवेश। इस शैली का विकास पर्याप्त हुआ है। इस शैली से 'राघवपाण्डवीय' व राघवपाण्डव यादवीय' अच्छे निदर्शन हैं।

अश्वघोष और कालिदास ने अनेक काव्य-रूढ़ियों को जन्म दिया, जिनमें अश्वघोष ने काव्य के मिष से धर्म की शिक्षा देने और कालिदास ने 'द्रुतविलम्बित' छन्द में यमकमय ऋतु वर्णन करने की रूढ़ि प्रारम्भ की। उत्तरकालीन कवियों ने इन दोनों रूढ़ियों को अपनाया। भट्टिकाव्य प्रथम विधा का उत्तम निदर्शन है। उसमें काव्य के व्याज से व्याकरण-शास्त्र की शिक्षा दी गई है और दूसरी विधा का वासुदेव कृत 'युधिष्ठिर विजय' उदाहरण है।

उपर्युक्त संस्कृत से महाकाव्यों का सूक्ष्म विहंगावलोकन उनके स्वरूप विकास को प्रस्तुत कर देता है। संस्कृत के विदग्ध-महाकाव्य की दीर्घ परंपरा [अश्वघोष से श्री हर्ष तक] द्वादश शतक की दीर्घ समयावधि के कला-कौशल, संस्कृति और सभ्यता को जहाँ एक ओर प्रकाशित करती है, वहीं दूसरी ओर उत्तरकालीन संस्कृत महाकाव्य की ह्रास-स्थिति को भी इंगित करती है। महाकाव्यों की इस परंपरा का विकास १७वीं शताब्दी तक बना रहा और आज भी उसका क्षीण ही क्यों न हो, सिलसिला चालू है।

गीत काव्य

श्रव्य काव्य के भेदों में, महाकाव्य के पश्चात् खण्डकाव्य और मुक्तक काव्य आते हैं महाकाव्य की तुलना में खण्ड काव्य का क्षेत्र, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, सीमित होता है। उसमें प्रबन्ध काव्य की तारतम्यता तो रहती है किन्तु महाकाव्य की अनेकरूपता नहीं रहती। इसके विपरीत मुक्तक काव्य में खण्डकाव्य का महत्वपूर्ण लक्षण 'तारतम्य' का अभाव रहता है और इसीलिये वह मुक्तक कहलाता है। वह स्वतः पूर्ण रसोशल होता है। संक्षेप में ये दोनों रूप [१] खण्डकाव्य [२] मुक्तक—कवि की निजी अनुभूति तथा प्रसाद एवं माधुर्यगुण से युक्त होने से, गीत काव्य के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते हैं।

गीति काव्य का उद्भव वेदों से ही हो जाता है सामवेद स्वयं गीति काव्य है। वैदिक कवि ने स्वयं वेद को गीत ही कहा है। ''गीर्भिर्वरुण सीमहि।'' संस्कृत में गीति काव्य की कमी नहीं है। इनका विस्तार कवि ने हृदय की गूढ़ भावनाओं के सूत्रों को श्रृङ्गार व शान्त रस में सिक्त कर, किया है। संक्षेप में गीति काव्य के दो रूप सामने आते हैं [१] लौकिक [२] धार्मिक। प्रथम वर्ग में 'मेघदूत' 'शतक त्रय, अमरूशतक, 'आर्यासप्तशती' व जयदेव आदि और द्वितीय वर्ग में स्तोत्र काव्य आते हैं, जिसमें 'सौन्दर्य लहरी' 'चर्पटपञ्जरी' शिवमहिम्न स्तोत्र 'गंगालहरी' आदि प्रसिद्ध हैं।

गद्य काव्य

संस्कृत गद्य का प्रारम्भिक रूप हमें वेदों में ही उपलब्ध हो जाता है। तैत्तिरीय संहिता तथा अथर्वसंहिता इसके प्रमाण हैं। इनके पश्चात् ब्राह्मण साहित्य में गद्य की पुष्कलता है। इसके अतिरिक्त प्राचीनतम उपनिषद् गद्य में ही निबद्ध हैं। किन्तु वैदिक काल के अनन्तर गद्य के विस्तार में कमी दिखाई देती है। लौकिक संस्कृत साहित्य में पद्य का महत्व अनेक कारणों से बढ़ता ही गया और यहाँ तक कि गद्य कवियों की कसौटी बन गया। गद्य के दो रूप हैं। [१] शास्त्रीय रूप जो दर्शन ग्रन्थों या शास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध होता है [२] साहित्यिक रूप जिसके सुन्दर निदर्शन रुद्रदामन के शिलालेख व साहित्यिक ग्रन्थों में मिलते हैं।

वस्तुतः संस्कृत के गद्य का आरम्भ पाँचवीं शती से माना जा सकता है। संस्कृत के गद्य लेखकों में तीन लेखक सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। 'वासवदत्ता' के लेखक सुबन्धु' 'कादम्बरी' के बाणभट्ट और 'दशकुमार चरित' के दण्डी हैं।

चम्पू काव्य

गद्य और पद्य के मिश्रण से बनने वाले काव्य का नाम चम्पू है। ''गद्य-पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।'' संस्कृत साहित्य में इस मिश्र काव्य की उपलब्धि प्रयाग

प्रशस्ति में होती है किन्तु यह चम्पू काव्य का पूर्ण रूप माना जा जकता है। संप्रति उपलब्ध व चम्पू काव्य के आवश्यक लक्षणों से युक्त चम्पू काव्य के प्रथम दर्शन दशवीं शती के त्रिविक्रम कृत 'नलचम्पू' में होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध चम्पू ये हैं: –'रामायण चम्पू' 'विश्वगुणादर्श चम्पू' और 'भारत चम्पू'।

कथा-काव्य

काव्य के अन्य रूपों की तरह कथा-काव्य का उद्भव भी वैदिक साहित्य में दीख पड़ता है। उसके रूप-शिल्प व उद्देश्य में एक परिवर्तन व गतिशीलता दिखाई पड़ती है, और यह विकास विभिन्नस्थिति व युगजन्य है। उसका रूप शिल्प व उद्देश्य जो वैदिक संहिताओं में परिलक्षित होवा है, वह उपनिषद् साहित्य में नहीं और जो उपनिषदों में है, वह पौराणिक साहित्य में व उत्तरकालीन साहित्य में नहीं रहा है। 'शुनः शेप'' आख्यान[1] काही विकसित रूप ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है और महाभारत तथा पुराणों में वैदिक आख्यानों का ही परिवर्धितरूप है। संक्षेप में कथा काव्य के दो रूप हैं १ मनोरंजनात्मक २ उपदेशात्मक।

राजा शालिवाहन के सभा पण्डित गुणाढ्य ने ईसवो की प्रथम शताब्दी में वृहत्कथा की रचना पैशाची भाषा में की थी। इसके संस्कृत में तीन अनुवाद हुए हैं जिनमें बुध स्वामी कृत 'वृहत्-श्लोक समुच्चय' सबसे प्राचीन है।

दूसरा अनुवाद क्षेमेन्द्र ने 'बृहत् कथा मञ्जरी' के नाम से तथा तीसरा अनुवाद सोमदेव ने 'कथा सरित् सागर' के नाम से किया है। इनमें 'वृहत् कथा मञ्जरी' काव्यत्त्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उत्तरकालीन काव्य साहित्य के लिये रामायण-महाभारत की तरह 'बृहत् कथा' भी उपजीव्य रही है। महाकवि भास, श्री हर्ष तथा भट्ट नारायण ने अपने नाटकों की कथा वस्तु सामग्री इसी से ग्रहण की है।

इनके अतिरिक्त अन्य कहानियाँ भी प्रसिद्ध हैं, जिनमें 'वेतालपञ्चविंशतिका' व 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' मनोरंजन की दृष्टि के महत्वपूर्ण हैं। बौद्ध पंडितों ने भी संस्कृत साहित्य में 'दिव्यावदान' तथा 'अवदान शतक' नाम से भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म से संबद्ध मनोरम कहानियों का प्रणयन किया है।

[1]—१/२४/३० सू०

उपदेशात्मक कथा-काव्य

इनमें पशु-पक्षियों के जीवन चरित्र से मानव जीवनोपयोगी उपदेश ध्वनित किया गया है। इन उपदेशात्मक कहानियों का उद्भव भी वैदिक सूक्तों[1] व उपनिषदों में[2] दीखता है। महाभारत में इनकी कमी नहीं। इनके द्वारा राजनीति के दुरूह सिद्धान्त सहजगत्या स्पष्ट कर दिये गये हैं।

पञ्चतन्त्र

यह भारत के प्राचीन कथाओं का संग्रह है। इसके अनेक संस्करण हुए हैं जो लोकप्रियता के परिचायक हैं। इसकी प्रसिद्धि अरब से चीन तक यहाँ तक कि निखिल पाश्चात्य जगत में अनुवादों द्वारा हुई है।

नाटक साहित्य

नाटक संस्कृत काव्य साहित्य का एक महत्वपूर्ण सरस अंग है, श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य में रसानुभूति के लिये आवश्यक संपूर्ण सामग्री सहृदय के सम्मुख उपस्थित होने से, नाटक अधिक आकर्षक व प्रभावशाली होता है और इसलिये वह 'नाटकान्तं कवित्वम्' कवित्त्व की एक सीमा है। श्रव्य काव्य की अपेक्षा, नाटक में विषय की व्यापकता निहित रहती है। उसमें तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन होता है। त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्'
नाट्य शा० १/१०४

कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो इस नाट्य में दिखाई पड़ता। [नाट्य शा० १/११४]
इसी व्यापक विषय को ध्यान में रखकर कालिदास ने नाटक को भिन्न रुचि वाले लोगों के लिये एक सामान्य मनोरंजन का साधन माना है। ''नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।''

वैदिक साहित्य में संस्कृत नाटक के बीज सन्निहित हैं। ऋग्वेद मे संवाद सूक्तों की कमी नहीं है। 'सामवेद' सङ्गीत प्रधान है। यजुर्वेद में अभिनयतत्त्व की प्रचुरता है। अथर्ववेद में वीर और श्रृङ्गार रस है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के प्रारम्भ में संस्कृत नाट्य के उदय का रोचक वर्णन किया है। ब्रह्मा ने देवों के आग्रह पर चारों वेदों से नाट्य तत्वों को ग्रहण कर, शूद्र आदि सर्व साधारण-आबाल-वृद्ध नर-नारियों के मनोरंजनार्थ नाट्य नामक पंचमवेद की

[1]—मण्डूक सूक्त ७/६१
[2] – छान्दोग्य उपनिषद-शौव उद्गीथ

उत्पत्ति की। भारतीय नाटक के उदय के विषय में विद्वानों का एकमत नहीं है। किन्तु रामायण-महाभारत में आये अभिनयों के वर्णन तथा पाणिनि द्वारा उल्लिखित, 'शिलालि-कृशाश्व के द्वारा रचित, नटसूत्रों के उल्लेख से यह निर्विवाद है कि भारतीय नाट्य व नाट्यशास्त्र-भारत की निजि संपत्ति है और वह प्राचीन है।

दृश्य काव्य का ही दूसरा नाम 'रूपक' है। इसके दस प्रकार हैं [१] नाटक [२] प्रकरण [३] प्रहसन [४] भाण [५] डिम [६] व्यायोग [७] समवकार [८] वीथी [९] अंक [१०] ईहामृग।

भास

कालिदास ने अपने पूर्ववर्ती नाटककारों का उल्लेख किया है। उनमें भास के १३ नाटक आज उपलब्ध हुए हैं किन्तु अन्य दो – सोमिल्ल व कविपुत्र कवियों के ग्रन्थ कराल काल-कवलित हो गये। कविभास के १३ नाटकों में 'स्वप्न-वासवदत्ता' नाटक संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है। इन नाटकों का आधार रामायण-महाभारत की कथाएँ हैं। उनकी भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और मधुर है। इतने बहुसंख्यक नाटकों की रचना करने का श्रेय केवल भास को ही है। शूद्रक—संप्रति उपलब्ध 'मृच्छ कटिक' का कर्ता शूद्रक माना जाता है। यह दस अंकों का प्रकरण है। इसमें प्रकरण की विशेषता के अनुसार समाज के निम्नवर्गों का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसमें अन्य रसों के साथ शुद्ध हास्य रस का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

कालिदास

संस्कृत नाटककारों में कालिदास का स्थान शीर्षस्थानीय है। आपके तीन नाटक हैं—[१] मालविकाग्निमित्र [२] विक्रमोर्वशीय [३] अभिज्ञान शाकुन्तल। इनमें अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक सर्वोत्कृष्ट नाटक है। कालिदास की अनुपम नाट्य-कला प्रवीणता ने पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों को मन्त्र मुग्ध किया है। संक्षेप में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में यह कहा जा सकता है—"शकुन्तला के आरंभ के सौंदर्य ने मङ्गलमय परिणति से सफलवा प्राप्त करके मर्त्य को अमृत के साथ सम्मिलित कर दिया है।" जर्मन कवि गेटे इस अव्याजमनोहर नाटक में पृथ्वी और स्वर्ग के सम्मिलित तत्वों का मधुर समन्वय देखकर नाच उठा था।

इनके अतिरिक्त विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' हर्ष के तीन नाटक 'रत्नावली' 'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द' भवभूति के तीन नाटक 'महावीर चरित' 'मालतीमाधव' और 'उत्तररामचरित' और महानारायण का 'वेणीसंहार' नाटक संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है।

संस्कृत नाट्य साहित्य में 'प्रतीक' नाटक भी उपलब्ध हैं इनमें कृष्णमिश्र का 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक प्रसिद्ध हैं। इसमें अमूर्त-भावों का संघर्ष चित्रित है। इसके अनुकरण पर अन्य कई नाटक लिखे गए हैं।

उपर्युक्त संस्कृत काव्य के इतिवृत्त पर सूक्ष्म अवलोकन करने से यह ज्ञान हो जाता है कि संस्कृत के कवियों ने दीर्घकालीन काव्य के अंगोपांग [रूप] में बहुसंख्यक कृत्तिया हमें दीं। यहाँ तक कि संस्कृत के उपलब्ध महाकाव्याँ की संख्या ३५० व नाटकों की संख्या ६५० तक गई है। इनके अतिरिक्त आज भी निर्धनता के वशीभूत पण्डितों के ग्रन्थ अप्रकाशित अवस्था में कराल-काल के चपेट की प्रतीक्षा कर रहे हैं डा० एम० कृष्णमाचार्य ने 'हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' में संस्कृत भारती की अभिनय कृतियों के द्वारा सेवा करने वाले सैकड़ों प्रसिद्ध अनतिप्रसिद्ध विद्वानों का उल्लेख किया है।

वर्तमान काल में जीवित पंडितों में ऐसे कई विद्वान् हैं जिन्होंने काव्य के अंगोंपाँगों की सेवा की है और उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इनमें एक दो का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा [१] भूत पूर्व प्राचार्य संस्कृत कालेज, ग्वालियर के पं० सदाशिवशास्त्री, प्रो० गजानन शास्त्री, हिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी, स्व० रघुपति शास्त्री आदि।

जैसा कि पूर्व कहा है संस्कृत काव्य का विषय बहुत व्यापक है इसमें काव्य के सभी रूप समाविष्ट हो जाते हैं। इन सभी रूपों की अलग-अलग समीक्षा करना लेख-गौरव के भय से कठिन है अतः उनके नामोल्लेख से ही सन्तुष्ट होना पड़ता है।

संस्कृत के अलंकृत एवं गीति काव्य—एक विवेचनात्मक अध्ययन

•

डॉ० दुर्गादत्त मेनन

काव्य मानव के अन्तःकरण की छन्दोबद्ध वाणी है। वह उसके अन्तरात्मा की अनुभूतियों की मुखर अभिव्यक्ति है। वह मानव के अन्तस्तल के घात-प्रत्याघात, हर्ष-विषाद-उपरति, निरंकुशता, अनुशासन एवं अनेक दिशाओं में किए गए परस्पर विरोधी परीक्षणों और मान्यताओं की स्पन्दनामयी अनुरणन है। काव्य को चाहे मानव की रागात्मक अनुभूति कहें, चाहे उसे उसके हृत्ताल को कल्लोलित करने वाली अभिषङ्ग कहें चाहे उसे कल्पना की ऊँची उड़ान मानें या उसे मानव की नैसर्गिक प्रतिभा का व्यक्त रेखाचित्र कहें परन्तु इतना तो अवश्य ही मानना होगा कि कवि की विलक्षण मनः स्थिति और उसका अन्तर्बोध एवं उसका स्वप्निल व्यक्तित्व ये तीनों मिलकर ही उसमें कवित्व को उद्बुद्ध करते हैं।

कवि के प्रेरणा तन्तु कहीं वाह्य जगत से नहीं आते वे उसके अन्तराल में ही निहित होते हैं। उन तन्तुओं को प्रबुद्ध करना, उन्हें जीवन दान देना उसकी प्रतिभा उसका विशाल अध्ययन और उसकी सतत जागरूक व्युत्पत्ति का ही वास्तव में परिणाम होते हैं।

कवि के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह किसी विश्वविद्यालय का मेधावी छात्र हो, परन्तु उसके लिए जो वस्तु अत्यन्त आवश्यक है, वह उसका संवेदनशील हृदय है। जब उसका हृदय उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ, विश्व के विषाद को अपना समझने लगता है तब उसमें कवित्व स्वयं स्फुरित हो उठता है। यही उसके अन्तरात्मा की विशालता है, यही उसका विस्तृत अध्ययन और यही उसका वास्तव में सतत अध्यवसाय है। हमारे अर्ध चेतन मन में न जाने कितने जन्मों या युगों का अनुभव गुप्त रूप से संचित होकर प्रसुप्त अवस्था में पड़ा हुआ है। उसका प्रबुद्ध होना उसका विश्व के संगीत के साथ अनुरणित होना उसका मानव की असहायतावस्था पर करुणा की तंत्री को झकझोर करना किसी आकस्मिक घटना के कारण ही होता है। यही घटना ही मानव को क्षण में, ही कवि बना देने का सामर्थ्य रखती है।

क्रौञ्च की दर्द भरी चीख ने एक दस्यु से वाल्मीकि को आदि कवि बना दिया।

द्रुपदात्मजा की विलुलित अलकावलि ने श्रीकृष्ण को संग्राम का गीत गाने पर विवश किया। नारी की आँसू भरी कहानी को चित्रित करने के लिए ही तो कालिदास ने शकुन्तला नाटक लिखा।

मानव के उद्दाम यौवन और विवशताओं की चीत्कार सुनकर ही तो उसने मेघदूत की रचना की।

इसी कारण भारत में काव्यों का आरम्भ दैवी प्रेरणा से माना गया है। 'पश्य देवस्य काव्यं, न ममार न जीर्यति।' 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' इत्यादि वाक्य कवि को परमात्मा का प्रतिनिधि घोषित करते हुए नहीं थकते।

कवि की जन साधारण से विलक्षणता ही उसे देवत्व के पद पर स्थापित कर देती है। कवि जब अपने गीत न गाकर विश्व के गीत गाता है जब वह अपना रोना न रोकर विश्व के क्रन्दन में अपना स्वर मिला देता है तभी वह विश्व कवि बन जाता है। वह विश्वात्मा बन जाता है। वह एक देशीय न होकर विश्वजनीय हो जाता है।

इन अमर भावनाओं की पृष्ठिभूमि में संस्कृत काव्य साहित्य का अंकुर फूटा, पनपा पुष्पित एवं फलित हुआ।

संस्कृत काव्य का विवेचन वास्तव में विश्व की आत्मा का विभिन्न स्तरों पर क्रमिक विकास के समान है। हमारे महाकाव्य रामायण और महाभारत, हमारे काव्य रघुवंश, कुमार सम्भव, किरातार्जुनीयम्, शिशुपाल वध, रावण वध आदि केवल भारत की ही गौरवमयी गाथा का ही वर्णन नहीं करते, अपितु उनके अन्तराल में हम एक प्रकार की विश्व संगीत की लहरें उठती हुई अनुभव करते हैं।

काव्यों का उद्गम और विकास

सुदूर प्राचीन काल में मानव अपने हर्ष-विवाद के भावों को नृत्य और गीतों के द्वारा अभिव्यक्त करता था। ये नृत्य और गीत उसे न किसी ने सिखाए थे और नहीं उसे उनके सीखने की आवश्यकता थी। वे तो प्रकृति की क्रोड में पलते हुए उसने स्वयं ही सीख लिए। अत्यंत भावावेश में आकर उसके पैर अपने आप उठने लगे उसकी कटि लचकने लगी, उसके हाथ एक विशिष्ट मुद्रा में आकाश की ओर चल पड़े, उसके मुख पर एक विचित्र आभा सी चमकने लगी। आनन्द विभोर हो उसने प्रकृति को माँ कहकर पुकारा। अब अनायास ही उसकी वाणी से संगीत और शरीर से नृत्य आरम्भ हो गया। यही नृत्य और गीत आगे जाकर उसकी धार्मिक क्रिया कलापों के अङ्ग बने।

धर्म के साथ वीरता और प्रणय का जब सम्बन्ध हुआ, तो वे वेदों के आख्यान सूक्त अथवा संवाद सूक्तों के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हुए।

यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी, अगस्त्य, लोपा मुद्रा, इन्द्र-इन्द्राणी, सरमापणि, इंद्रमरुत् इत्यादि ऋग्वेद के संवाद सूक्तों ने मानव के नृत्य को नाटक और संगीत को काव्य बना दिया।

यह है संक्षेप से नाटक और काव्य के उद्गम की कहानी। कालांतर में इन सम्वादों का नाम ही आख्यान, उपाख्यान, कथा, गाथा, पुराण, इतिहास, नाराशंसी आदि पड़े। मानव का भाव क्षेत्र ज्यों-ज्यों विकसित और परिमार्जित होता गया, त्यों-त्यों उसने इनको और अधिक सुसंस्कृत किया। अलंकारों यमकों और भाव भंगियों की सृष्टि होने लगी। ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् इसी काव्यमयी शृंखला की कड़ियाँ बन गईं।

मानव ने प्रकृति की क्रोड़ में खेलते हुए अपने आपको सीमित समझना आरंभ कर दिया। सरितायें, पर्वत् , घने बन एवं दस्युगण उसे घर में न बाँध सके। उसने इन सारी संकीर्ण परिधियों को तोड़ कर अपने प्रतिवेशियों को जानने का प्रयास किया। इस प्रयास के साथ ही उसके जीवन का नया अध्याय आरंभ हुआ। पड़ोसी ने उसके आधिपत्य को चुनौती दी। संघर्ष का इस प्रकार सूत्रपात हुआ। पड़ोसी ने उसके आनन्दमय गृहस्थ को देख कर ईर्ष्या से लम्बे-लम्बे सांस भरे। उसने उसके सुख को उससे छीनने की योजना बनाई। आदि मानव ने अपने बल पौरुष के साथ कुछ और लोगों को भी मिलाया और प्रतिकार की भावना से पड़ोसी और उसके साथियों को ललकारा। नारी का रूप इस प्रकार दोनों दलों के लिये अभिशाप सिद्ध हुआ। उसने दोनों दलों को नष्ट कर दिया।

इन तन्तुओं के आधार पर हमारे दोनों महाकाव्य रामायण और महाभारत की रचना हुई। भारत में ही नहीं ग्रीस और रोम में भी नारी के हाड़ और मांस को नोचने के लिये होमर ने इलियड और आदेसी की रचना की। वर्जिल और दान्ते ने नारी के ही विभिन्न स्वरूपों का चित्रण किया।

हमारे महाकाव्यों से यदि देश-विशेष और नामों को पृथक् कर दिया जाये तो वे सारे विश्व के मानवों की ही प्रत्यक्ष रूप में भावनाओं को ही अंकित करते हैं।

दोनों महाकाव्यों में नारी के विषय को लेकर ही विभिन्न दृष्टिकोण पाये जाते हैं।

रामायण की नारी एक आदर्श भावना का प्रतीक है। सीता के माध्यम से कवि ने एक ऐसे समाज की रचना की है जिसमें नारी को विश्व की सबसे पवित्र वस्तु माना है। कोई कलंक उसे छू नहीं सकता। वह उषा काल की प्रभा के समान निर्मल और ज्योत्स्ना के समान अवदात है।

परन्तु इसके विपरीत महाभारत की नारी पतित समाज के चारित्रिक पतन को चुनौती देने वाली है। नारी इस काल में देवी न रह कर दासी बन जाती है। वह समाज की लांछना को अपने सीने से लगाये करुण क्रन्दन करती फिरती है। द्रौपदी इस युग की नारी की विडम्ना का चलता फिरता निदर्शन है।

काव्यों का सुवर्ण युग

कवि कुल गुरु कालिदास का युग भारत में काव्यों का सुवर्ण युग कहाता है। उसे चाहे विक्रमादित्य का आश्रित कवि मानकर हम ईसा से पूर्व प्रथम शतक में मानें या गुप्त शासकों का समकालीन मान कर उसे चतुर्थ या पंचम शती में मानें। हमारे विचार में कालिदास के समय के सम्बन्ध में जो भी विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं उन्हें सर्वथा मान्यता प्राप्त नहीं हैं। हम तो इस सम्बन्ध में भारतीय परंपरा द्वारा समर्थित और परिपुष्ट विक्रमादित्य वाले मत को ही अधिक प्रामाणिक मानने के ही समर्थक हैं।

कालिदास ने अपने से पूर्ववर्ती कुछ कवियों का उल्लेख किया है जैसे भास, सौमिल्ल कवि पुत्र आदि। इनमें से भास के सम्बन्ध में तो अब पूर्णतया निश्चित मत यही है कि भास १३-१४ नाटकों का रचयिता है जो अब भास नाटक चक्र के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। सौमिल्ल और कवि पुत्रों के सम्बन्ध में अभी अनुसंधान हो रहे हैं। निश्चय से उनके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता।

आधुनिक खोजों से कालिदास के पूर्ववर्ती इन अन्य कवियों का कुछ ज्ञान उपलब्ध हुआ है।

गार्ग्य द्वारा रचित 'देवर्षि चरित'। यह महाभारत से भी पूर्व की रचना है।

पाणिनि द्वारा रचित 'जाम्बवती परिणय'। ये पाणिनि कौन थे? इस संबन्ध में लगभग संस्कृत के ३३ ग्रन्थों से जो सूचना प्राप्त हुई है उसके अनुसार ये अष्ठाध्यायी के रचयिता महावैयाकर पाणिनि ही हैं। इस काव्य में १८ सर्ग थे।

व्याडि द्वारा रचित—'बाल चरित' नामक महाकाव्य। यह व्याडि प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन ही थे। आपने 'स्वर्गारोहण' नामक एक और काव्य की भी रचना की थी। जैसा सम्राट समुद्र गुप्त के एक ग्रन्थ कृष्ण चरित के इस श्लोक में विदित होता है।

"यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान भुवि!
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वर रुचिः कविः।"

महाभाष्य में 'भ्राज श्लोकों का उल्लेख पाया जाता है, जिनके रचयिता भी कात्यायन ही माने जाते हैं।

महाभाष्य तथा उसके टीकाकार कैय्यट के अनुसार तित्तिरि, उरव और चरक नामक विद्वानों ने भी कुछ काव्य ग्रन्थों की रचना की थी जिनके कुछ पद्य अब केवल अवतरणों रूपों में ही पाये जाते हैं।

महानन्द महाकाव्य महाभाष्यकार पतंजलि द्वारा रचित उल्लेख भी सम्राट समुद्र गुप्त के कृष्ण चरित में पाया जाता है, इनके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में भी पूर्वाचार्यों का उल्लेख बार-बार पाया जाता है और उनके श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। उनसे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसा से पूर्व चौथी शती में महाकाव्यों की रचना की पद्धति का पूर्ण विकास हो चुका था। संस्कृत के महाकाव्यों का विभाजन काल इस प्रकार है।

कालिदास से पूर्ववर्ती काल

इस काल को साधारणतया महाकाव्यों का उद्भव काल कहा जाता है। इसका संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया जा चुका है।

कालिदास युग

इसे महाकाव्यों का स्वर्ण युग माना जाता है। यह युग कालिदास से आरंभ होकर 'नैषध चरित' के रचयिता श्री हर्ष तक माना जाता है। इस युग का आरंभ ईसा से पूर्व प्रथम शती से लेकर १२वीं तक माना जाता है।

कालिदासोत्तर कालीन युग

यह युग १३वीं शती से आरंभ हो आधुनिक युग तक समझा जा सकता है।

महाकवि कालिदास

कालिदास की रचनाओं का मौलिक तथा अनुवाद रूप में ज्यों-ज्यों अध्ययन अधिक होता जा रहा है, त्यों-त्यों विषय में उनकी कला की गौरवमयी गाथा विस्तृत होती जा रही है। अब कालिदास की ख्याति भारत की परिधियों को लाँघ कर समस्त भूमण्डल में गूँज रही है। हम यहाँ इस विश्व-कवि के समय संबन्धी झगड़े में न पड़कर उनके काव्यों का ही विवेचन करते हैं। उनके दो गीति काव्य ऋतु संहार और मेघदूत की समीक्षा गीति काव्यों के साथ की जायगी।

'कुमार संभव' और 'रघुवंश' इन दो महाकाव्यों को संक्षेप में एक को भारत की सांस्कृतिक-परंपरा का संस्थापक और दूसरे को भारत के राजनैतिक उत्थान का अग्रदूत कहा जाना सर्वथा उचित है। 'कुमार संभव' हिमालय से भारतीय परंपरा का आरंभ करता है और उसकी परिणति कार्तिकेय द्वारा दुर्दान्त दस्युयों के संहार से करता है। भारत का कण-कण हमारा है। उसके उत्तुंग शिखर और विशाल सागर हमारे प्रहरी हैं। जो दस्यु उनके मार्गों से इस पवित्र धरणी पर आक्रमण करेगा उसका वही अन्त होगा जो तारकासुर का भारत के सेनानी के हाथों हुआ। भारत की संस्कृति को सदा अक्षुण्ण बनाने के लिये हमें नवीन वीरों को उत्पन्न करना होगा। नवीन उपकरणों को जुटाना होगा। नवीन भावनाओं से देश के युवकों को प्रोत्साहित करना होगा। यह नवीनता देश की रक्षा के लिए नवीन रक्त की सरितायें बहाने के लिये सदा उद्यत रहे, यही 'कुमार संभव' का सदा नवीन रहने वाला संदेश है।

'रघुवंश' निराश, त्रस्त, कुण्ठाग्रस्त भारत को उसके अतीत की गौरवमयी गाथा सुनाकर अर्जुन के समान दीनता हीनता और क्लीबता के कश्मल से बचाने वाला है। जो कवि 'स्ववीर्यगुप्ताहिमनोप्रसूतिः' का सिंहनाद करके भारत के सम्राट को एक साधारण गौ की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहुति देने के लिये विवश करता है क्या उसे अब भी कुछ लोग शासकों की विरुदावलि गाने वाला भाट कहने का दुस्साहस करेंगे।

जो कवि राजा को प्रजा का रक्षक और सेवक कहता नहीं अघाता उसे अभिजात्यवर्गचटुलचाटुकार कहना कहाँ तक सत्य होगा? हमारे पुरखा जो कुछ भी थे, उनकी जो उपलब्धियां थीं, उनके जीवन के जो मानदण्ड थे उनका चित्रण रघुवंश के द्वारा किया गया है। कुमार संभव में आदर्श समाज का चित्रण है और 'रघुवंश' में इतिहास की पार्श्वभूमि पर यथार्थता का चित्रण किया गया है।

यदि हिमालय और सागरों को भारत की सीमायें न मानकर विश्व की सीमाओं का प्रतीक मान लिया जाय तो कालिदास का संदेश एकदेशीय न होकर विश्वजनीय हो जाता है। राष्ट्रीयता के स्थान में उसमें अन्तर्राष्ट्रीयता की उदार भावना जागृत करने की प्रेरणा पनप उठती है।

इस प्रकार कालिदास मानवता का, विश्व का एवं संपूर्ण प्राणिमात्र का कवि बन जाता है।

अश्वघोष

संस्कृत साहित्य के पश्चिमीय इतिहासकारों ने अश्वघोष को कालिदास से पूर्ववर्ती प्रमाणित करके उसे साहित्यिक पथ्यतोहर बनाने का जो अशुभ प्रयास किया उससे न तो बौद्ध कवि का सम्मान हुआ और नहीं वे कालिदास को ही नीचे गिरा सके। वास्तव में अश्वघोष ने अपने दो महा-काव्य 'सौन्दरा नन्द' और 'बुद्ध चरित' से अपनी प्रतिभा को व्युत्पन्न करने का ही प्रयत्न किया। परन्तु कालिदास की समता वह न कर सका। ये दोनों काव्य साधारण कोटि के हैं जिनकी भाषा अत्यन्त सरल है। संभवतः बौद्धों के द्वारा अपने धर्म का प्रचार करने के लिये सरल संस्कृत में उनकी रचना की गई थी।

दार्शनिक के रूप में हमें अश्वघोष की कृतियों का सदा भान होता रहेगा, परन्तु कवि के रूपमें हम इनकी कृतियों को बहुत महत्त्व नहीं दे सकते।

अश्वघोष की परंपरा में बुद्धघोष नामक कवि ने 'पद्य चूड़ामणि' नामक १० सर्गों का काव्य रचा। परन्तु संस्कृत साहित्य के क्षितिज में उसे बहुत मान न प्राप्त हो सका।

भीम या भीमका

भीम नामक एक कवि ने रावणार्जुनीय नामक २७ सर्गों का महाकाव्य लिखकर 'रावण वध' 'किरातार्जुनीयम्' "शिशुपाल वध" आदि काव्यों के रचने के शैली का आविर्भाव किया। काव्य के एक नवीन शैलीकार के रूप में भीम का स्थान प्रशंसनीय है।

भर्तृमेण्ठ

संस्कृत साहित्य में 'हयग्रीव वध' के रचयिता कवि 'भर्तृ मेण्ठ' का उल्लेख पाया जाता है। कह्लण और राजशेखर ने इस कवि की बड़ी प्रशंसा की है। कवि धनपाल ने इन्हें 'मेण्ठ राज' भी लिखा है।

मातृगुप्त

कश्मीर के शासक हिरण्य के सन्तान रहित दिवंगत होने पर विक्रमादित्य हर्ष ने अपने आश्रित कवि मातृगुप्त को कश्मीर का नरेश नियुक्त किया था।

कई विद्वान् जिनमें डा० भाऊराजी प्रमुख हैं, इनको कवि कालिदास मानते हैं, जो विक्रमादित्य के राज कवि थे। कह्लण ने मातृगुप्त, प्रवरसेन और विक्रमादित्य इन तीनों को त्रिपथगा गंगा के समान पवित्र माना है।

कवि भारवि

कालिदास के अनन्तर संस्कृत साहित्य के क्षितिज में सबसे अधिक भास्वर नक्षत्र कवि भारवि के नाम से छठी शती में उदित हुआ। इसके एक ही काव्य 'किरातार्जुनीयम्' ने सिंहनी के एक पुत्र के समान ही साहित्य में अपना एक गौरवमय स्थान प्राप्त कर लिया।

'भारवेरर्थ गौरवम्' इस आपकी प्रख्याति की कीर्ति पताका को निरभ्र प्राची में किसने उड़ते नहीं देखा। पुलकेशि द्वितीय के अनुज विष्णु धर्मन् (६१५) के आप यशस्वी सचिव थे।

कालिदास की आत्मा ने मानो भारवि के रूप में फिर भारत को राजनीति का विस्मृत पाठ पढ़ाया। 'भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः' 'निर्वाण मपि मन्ये ऽह मन्तरायं जयश्रियः 'परैस्त्वदन्यः क इवायहारयेत, मनोरमा मात्म वधूमिवश्रियम्' 'व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवम् भवन्तिमाया विषुयेन मायिनः' इन प्रेरणादायक वचनों का निर्माता कवि भारवि आधुनिक युग के लिए भारत को क्या नवीन संदेश देता है— "प्रकर्ष तन्त्राहिरणेजय श्रीः" शत्रु के दाँत खट्टे करने की केवल एक मात्र दवा अपनी सैनिक शक्ति की वृद्धि है।

भट्टि कवि

आपकी भी एक ही रचना 'रावण वध' महाकाव्य है। इसमें संस्कृत व्याकरण के अध्यापन के साथ ही साथ राम की पवित्र गाथा भी चलती है। गुजरात-काठियावाड़ की राजधानी वलभी के नरेश श्रीधरसेन द्वितीय के आप राज कवि थे। अलंकृत महाकाव्यों का आरम्भ भारवि ने किया और आपने उस शैली का परिष्कार किया

कवि कुमारदास

इन्हें सिंहल द्वीप का शासक माना जाता हैं। आपका सम्बन्ध अनुश्रुतियों के आधार पर कालिदास से भी माना जाता है। कहते हैं कि आपके निमन्त्रण पर कालिदास सिंहल गये और वहाँ एक वीरांगना के हाथ से उनकी मृत्यु की घटना सुनकर आपने भी आत्म हत्या की।

राजशेखर का लिखा हुआ यह श्लोक इनकी रचना 'जानकी हरण' के सम्बन्ध में यह कहता है—

> 'जानकी हरणं कर्तुं रघुवंशेस्थिते सति।
> कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ ॥'

'जानकी हरण' में कालिदास को गुरू मानकर उनके रघुवंश का अनुकरण किया गया है। धन्य है वह भारत जिसके एक कवि ने लंका के राजा को काव्यकला की शिक्षा दी।

माघ

वैयाकरण जब कवि बन जाते हैं तो उनकी शब्दावलि कैसी क्लिष हो जाती है, इसका ज्ञान माघ के 'शिशुपाल वध' का अध्ययन करने पर ही होता है। 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' यह कथन तो कई विद्वानों के मत में व्याज स्तुति ही प्रतीत होती है। माघ और भोज राजा को लेकर जो अतिरंजकतापूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया गया है वे सर्वथा अप्रामाणिक हैं।

माघ का सम्बन्ध एक सम्पन्न परिवार से था। उनके पिता-मह सुप्रभदेव, श्री वर्मलात राजा के मंत्री थे। उनके पिता दत्तक भी उसी वंश के अनुग्रह पात्र थे। माघ सर्व विद्या विशारद थे। अलंकृत महाकाव्य में भारवि

के अनन्तर उनकी ही चर्चा होती है। भारवि और माघ को लेकर कुछ वाद-विवाद संस्कृत के कुछ अवतरणों में पाया जाता है। परन्तु वह भी सर्वथा असंगत है।

राजस्थान और गुजरात की सीमा पर स्थित भिन्नमाल ग्राम के वे निवासी थे।

रत्नाकर

ये कश्मीरी कवि थे। आपके पिता का नाम अमृतभानु था। आप कश्मीर के नरेश जयापीड़ के राज कवि थे। आपको बाल वृहस्पति का पद प्राप्त था।

आपका विख्यात महाकाव्य 'हरविजय' महाकाव्य ५० सर्गों का एक वृहत् कलेवर युक्त ग्रन्थ है जिसके सम्बंध में कवि ने यह स्वयं कहा है—

'महाकावे प्रतिज्ञां श्रृणुत क्ृत प्रणयो मम प्रबन्धे।
अपि शिशुरकविः कवि प्रभावात् भवति कविश्च
महाकवि क्रमेण॥

इनके अतिरिक्त कश्मीर पीठ के अन्य कवियों में ये नाम उल्लेखनीय हैं।

कपिफणाम्युदय शैवधर्म के महाकाव्य के प्रणेता शैव शिव स्वामी, ३६ सर्गों वाले महाकाव्य 'रामचरित' के रचयिता श्री आर्यनन्द, 'भुवनाम्युदय' के रचयिता श्री शंकुक, 'श्री कंठ चरित' के प्रणेता श्री मंखक इत्यादि।

क्षेमेन्द्र

कश्मीर में जिन कवियों को 'बाल वृहस्पति' के विरुद से अलंकृत किया उनमें रत्नाकर के अनन्तर आपका ही नाम आता है। कश्मीर क्षेत्र के विख्यात आचार्य श्री अभिनव गुप्त आप के गुरू थे। आपकी प्रतिभा इतनी प्रखर थी कि लोग इन्हें व्यासदास भी कहते थे। आपका प्रसिद्ध काव्य 'दशावतार चरित' है। अन्त में हम इस युग के अन्य कवियों के केवल नाम तथा कृतियों का उल्लेख मात्र करके तृतीय युग के कवियों की चर्चा करते हैं।

जैन कवियों में 'धर्म शर्माम्युदय महाकाव्य' के प्रणेता श्री हरिश्चन्द्र, प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र रचयिता 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित' श्री वाग्भट्ट-निर्माता 'नेमिनिर्माण महा-काव्य' इत्यादि।

इस युग के अन्तिम कवि श्री हर्ष हैं, जिनकी प्रसिद्ध-रचना 'नैषध चरित' नामक महाकाव्य है। आप प्रत्येक सर्ग के अंत में अपने पिता, माता का नाम निर्देश कर अपने आपको कान्यकुब्ज नरेश जयचंद्र का राज कवि कहते हैं। आपके पिता का नाम श्रीहरि था और माता का नाम मामल्ल देवी था।

श्री हर्ष में कालिदास की सुललित पदावलि, भारवि का अर्थ गौरव और माघ का नवीन शब्द विन्यास इन सभी का समन्वय पाया जाता है।

इसी काल में चरित काव्यों के साथ-साथ चित्र काव्यों तथा ऐतिहासिक काव्यों के लिखने की पद्धति का भी आविर्भाव हुआ जिनमें क्रमशः ये प्रसिद्ध हैं—'राघव पाण्डवीय' 'राघव यादवीय' इत्यादि, तथा कल्हण—रचित 'राज तरङ्गिणी' बिल्हण रचित 'विक्रमांक देव चरित' श्री पद्मगुप्त कृत 'नव-साहसांक चरित' इत्यादि।

ह्रास काल

संस्कृत साहित्य के इस तृतीय युग को ह्रास काल कहा जाता है। वास्तव में इस काल में कालिदास, भारवि, माव के स्तर का कोई कवि नहीं हुआ। साधारण व्याकरण और सिद्धांतों के अनेक ग्रंथ लिखे गए। परंतु उच्चकोटि के कवियों का सर्वथा अभाव ही रहा।

श्री पण्डित राजजगन्नाथ, अप्पय दीक्षित आदि इस युग के महान् साहित्यकारों में विख्यात हुए। कविराज मम्मट श्री विश्वनाथ आदि ने काव्य सम्बंधी लाक्षणिक ग्रंथों की रचना की।

गीति काव्य और परम्परा

संस्कृत साहित्य में गीति काव्यों की द्वि धारा इस प्रकार मानी गई है।

१—स्तोत्र या भक्ति काव्य
२—श्रृंगार या संदेश काव्य

इनमें हम केवल दूसरे प्रकार के ही काव्यों का उल्लेख करते हैं।

संस्कृत में गीति काव्य की कोई विशेष व्याख्या नहीं की गई। परंतु आधुनिक युग के अनुसार हम गीति काव्य उन रचनाओं को मानते हैं, जिनमें कवि या पात्र विशेष की रागात्मकता उसके व्यक्तित्व के साथ मिलकर आत्म निवेदन के रूप में प्रकट हो। जिसमें घटना को प्रधानता न देकर भाषा विशेष को ही प्रमुख रूप से चित्रित किया जाता है।

कवि कुल गुरु कालिदास को ही इस गेय रूपी शैली का अग्रदूत समझना चाहिए। 'ऋतु संहार' इस गेयता का प्रथम परीक्षण है इसमें वाह्य आलंबनों का सहारा लेकर प्रत्येक ऋतु का पृथक् २ संदेश दिया गया है यह संदेश काव्य कवि की आत्मा नहीं अपितु उसका केवल शरीर मात्र है यह उसके आत्मा का चित्र मात्र है जिसमें कृत्रिम शब्दाडम्बर मात्र है। इसमें कवि की

आत्मा नहीं बोलती, अपितु उसकी लेखनी बोलती है आपका दूसरा संदेश काव्य मेघदूत है जो विश्व के साहित्य में एक अनुपम गीति काव्य माना जाता है। यह कवि की आप बीती है जग बीती नहीं। यहाँ कवि की आत्मा अपनी कहानी आप कहती है। यहाँ कालिदास एक कवि नहीं मानव बनकर अपने दुःख का आपको साथी समझकर अपने दुःख का सहयोगी बनाना चाहता है।

सारे काव्य में एक ही स्वर है, एक ही तंत्री है और एक ही निनाद है। यह प्रणय निवेदन, यह आत्म समर्पण, यह मुखर मनुहार व्यक्तिगत होकर भी समष्टिगत है। यह एक देशीय होकर भी समस्त मानवता की करुणामय पुकार है।

इस अकेले काव्य ने कालिदास को भारत का नहीं समस्त विश्व का कवि बना दिया इसके एक-एक वाक्य, एक-एक पंक्ति पर काव्य लिखे गए। संस्कृत साहित्य में इस रचना ने जो क्रांति उत्पन्न की वह तो विदित ही है, परंतु पश्चिमीय जगत् तो इसे पढ़कर इतना पागल हो गया कि उसे अपने समस्त कवि और उनकी रचनायें भूल गईं।

आज कालिदास का मेघदूत विश्व की विभूति बन गया है।

अमरू-कवि

अमरू अथवा अमरूक नामक एक अज्ञातनामा कवि ने 'अमरूशतक' लिखकर कालिदास की परम्परा को आगे बढ़ाया। इसमें वह विलास का चित्र है जिसमें मादकता है पर अचेतनता नहीं, इसमें लालित्य है पर यह क्षणिक नहीं, स्थायी है, इसमें प्रणय का नग्न चित्रण है, परन्तु यह प्रणय स्वस्थ और सबल है इसमें वासना की दुर्गन्ध नहीं अपितु वह दिगन्तव्यापी सौरभ है जो विश्व को सुरक्षित कर सकता है।

भर्तृहरि के तीन शतक

कवि भर्तृहरि ने शृंगार की शैली को कुछ बदल दिया। उसने शृंगार के साथ ही साथ नीति और वैराग्य को मिला कर जीवन के दोनों पक्षों को उज्ज्वल कर दिया। समन्वय की शिक्षा देकर भर्तृहरि ने जीवन को पुष्ट और सबल बना दिया।

इन गीति काव्यों की परंपरा आगे जाकर कई धाराओं में बहने लगी। श्री कृष्ण के भक्तों ने उन्हें 'उद्धव सन्देश' लिखने पर विवश किया। यह रूपगोस्वामी की रचना कालान्तर में एक नवीन सन्देश को लेकर आई। भक्तों और सन्तों ने इसे आगे बढ़ाया, और अब यह सन्देश कवि विशेष के न रहकर जनता जनार्दन की अखंड सम्पत्ति बने।

जयदेव कवि और गीत गोविन्द

इन सन्देश काव्यों में अब तक केवल आत्म निवेदन था, परन्तु जब ये जनसाधारण की सम्पत्ति बने, तो इनमें भगवान का रूप दीखने लगा।

जयदेव का गीत गोविंद जो गीति काव्यों की शृंखला की अन्तिम कड़ी है, भगवान् को इस धरातल पर लाकर उसे मानव के समान प्रणय की रहस्यमयी झाँकियों के मध्य से गुजारता है। राधा और कृष्ण नारी और नर का रूप धारण कर उसे उस दिव्य अमर प्रणय का सन्देश देते हैं जो उनकी आत्मा से भिन्न नहीं।

यह सरल भाव, यह सहचर की भावना ही तो मानव को भगवान् बना देती है। जब राधा और कृष्ण का प्रणय शारीरिक धरातल से ऊँचा उठकर आध्यात्मिक हो जाता है तब उसमें विलास की कल्मशता नहीं रहती।

यह हैं जयदेव का सन्देश, जिसने न केवल अपनी कविता के द्वारा अपितु अपने जीवन के उत्सर्ग से भी इसी अमर प्रणय का सन्देश दे दिया।

संस्कृत काव्य साहित्य वास्तव में इतना महान है कि उसका संक्षेप से ही वर्णन करना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है।

हमने यहाँ जो कुछ भी लिखा उसके लिए हम स्वयं उत्तरदायी हैं, हमारे विचारों में क्राँति के कण हैं। उनमें नवीनता है अनुकरण नहीं, उनमें प्रवाह है शिथिलता नहीं, इनमें जीवन है, अवसान नहीं। हमने प्राचीन साहित्य का नवीन रूपान्तर कर उससे इस युग के लिए सन्देश पाने का प्रयास किया है। यही अमर साहित्य का चिन्ह है। वह विशेष अवसर पर लिखा होने पर भी सभी आने वाले समयों के लिए सन्देशवाहक होता है।

संस्कृत साहित्य सदा अमर रहेगा। उसके प्रणेता सदा विश्व में वन्दनीय बने रहेंगे।

अपभ्रंश के चरित-काव्य

डॉ० रामसिंह तोमर

ईस्वी सन् १९०२ में अपभ्रंश भाषा के अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करते हुये डा० रिचर्ड पीशेल ने अपभ्रंश के कुछ उद्धरण देकर ही सन्तोष किया। हेमचन्द्र के व्याकरण में प्रयुक्त हुए कुछ अपभ्रंश पद्य, विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक तथा सरस्वतीकण्ठाभरण के कुछ पद्यों का ही उस समय उनको पता था। बहुत समय पश्चात् डा० याकोवी ने 'भविसयत्तकहा' का संस्करण निकाला। इन विद्वानों की अपेक्षा अपभ्रंश साहित्य की जानकारी की दृष्टि से हम आज अच्छी दशा में हैं। अभी तक जो कुछ अपभ्रंश साहित्य प्रकाश में आया है उससे एक विशाल साहित्य की झलक मिलती है। अधिकाँश अपभ्रंश साहित्य जैनों द्वारा ही लिखा हुआ मिलता है। बड़े-बड़े पुराणों को छोड़कर चरित-काव्य पर्याप्त संख्या में अपभ्रंश भाषा में लिखे मिले हैं। हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन प्रबन्धात्मक चरित काव्यों को दृष्टि में रखकर अपभ्रंश के इन चरित काव्यों का अध्ययन मनोरञ्जक होगा।

अभी तक निम्नलिखित अपभ्रंश चरित-काव्य प्रकाश में आ चुके हैं—

१—भविसयत्तकहा— १० वीं शती विक्रम।
२—जसहर चरिउ— ११ वीं शती विक्रम।
३—णाय कुमार चरिउ— ११ वीं शती विक्रम।
४—करकंडु चरिउ— १२ वीं शती विक्रम।

इन प्रकाशित कृतियों के अतिरिक्त अन्य इस प्रकार के ग्रन्थों का पता लगा है। कुछ यह हैं—

१ सुदर्शन चरिउ— १२ वीं शती विक्रम
२—पज्जुण्ण कहा— १३ वीं शती विक्रम
३—सुकुमाल चरिउ— १३ वीं शती विक्रम
४—नेमिनाह चरिउ— १५ वीं शती विक्रम
५—सुकौशल चरिउ— १५ वीं शती विक्रम
६—सन्मतिजिन चरिउ— १६ वीं शती विक्रम
७—चंदप्पह चरिउ— १६ वीं शती विक्रम इत्यादि

अप्रकाशित ग्रन्थ प्रायः पीछे के हैं। वे सभी बातें जो प्रकाशित चरित-काव्यों में पाई जाती हैं, न्यूनाधिक रूप से अप्रकाशित ग्रन्थों में भी मिलती हैं। अतः हम अपने अध्ययन को प्रायः प्रकाशित ग्रन्थों तक ही सीमित रक्खेंगे। संक्षेप में प्रत्येक की कथा इस प्रकार है।

भविष्यदत्तकथा ज्ञानपञ्चमी व्रत के दृष्टांत के रूप में कहा गया काव्य है। यदि कृति में से कुछ धार्मिक उपदेश प्रधान अध्यायों (सन्धियों) को निकाल दिया जाय तो शेष कृति एक सुन्दर प्रेम-काव्य रह जाएगी। कथा संक्षेप में इस प्रकार है।

जिन वंदना करने के अनन्तर कवि 'सुयपञ्चमी' व्रत के फल को वर्णन करने की घोषणा करता है। विनम्रता पूर्वक कवि अपनी प्रतिभा को काव्य रचना के अयोग्य कहता है। चंद्र के प्रकाश करने पर भी तारे चमकते ही हैं अतः वह भी काव्य रचना का साहस करता है। दुर्जनों का भी कवि ने वर्णन किया है। अपभ्रंश की रचनाओं की कदाचित् दुर्जन हँसी उड़ाते होंगे। भरतखंड में स्थित कुरुजङ्गल प्रदेश में गजपुर नगर था—देश तथा नगर का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। उस नगर में भूपाल राजा थे। उनके राज्य में एक अत्यंत धनसंपन्न श्रेष्ठि था – जिसका नाम था

धनपाल। धनपाल का विवाह हरिवल नामक एक अन्य सेठ की पुत्री कमला से होता है। धनपाल के ही पुत्र का नाम था भविष्यदत्त। कवि ने विवाहादि के वर्णन बड़े उत्साह से किए हैं।

कुछ काल पश्चात् धनपाल किसी कारणवश कमलसिरी के प्रति उदासीन रहने लगता है। धनपाल एक अन्य वणिक पुत्री सरूपा से विवाह करता है। सरूपा से उत्पन्न पुत्र का नाम था वंधुदत्त। यह बड़ी दुष्प्रवृत्ति का था। भविष्यदत्त बड़ा होता है। बंधुदत्त अन्य वणिक युवकों को लेकर अपने पिता की आज्ञा लेकर व्यापारार्थ कंचनदेश को जाता है। भविष्दत्त भी माता की आज्ञा लेकर उसके साथ चलने को प्रस्तुत होता है। बंधुदत्तकी माता बंधुदत्त को अवसर पाकर भविष्यदत्त को समुद्र में ढकेल देने की कुटिल सलाह देती है। भविष्यदत्त की माता इसके—विपरीत सदआचरण करने का उपदेश देती है। वे सब समुद्र तट पर पहुंचकर नौकारूढ़ होते हैं। कुछ दूर ठीक दिशा में चलने के पश्चात् समुद्र में एक तूफान आता है और नौकाएँ मैनाकद्वीप में पहुँचती हैं। जब भविष्यदत्त में फूल आदि लेने गया था कि बंधुदत्त उसे छोड़कर सबको लेकर चला जाता है। भाई द्वारा परियत्क्त भविष्यदत्त द्वीप में अकेला भ्रमण करते-करते एक नगर देखता है। वह नगर जनशून्य था। राजप्रासाद-खाली पड़े थे। एक जिन-मंदिर उसे मिलता है। उसके समीप ही स्थिति कमल पुष्करिणी में वह स्नान करके जिन प्रतिमा की पूजा करता है। वह उसी मंदिर में सोते समय एक स्वप्न देखता है। स्वप्नाकूल जागने पर उसे एक अकेली युवती मिलती है जिसके द्वारा उसे नगर के एक दानव द्वारा विध्वंस किए जाने का वर्णन ज्ञात होता है। इतने में एक राक्षस प्रकट होता है जो भविष्यदत्त पर प्रसन्न होकर उसका उस युवती का विवाह करा देता है। बारह वर्ष सुख पूर्वक निवास करने के पश्चात् वह वहाँ से अपार धनराशि लेकर चलने को प्रस्तुत होता है। किनारे पर पहुंचते ही बंधुदत्त भी आकर मिल जाता है। बंधुदत्त पश्चाताप प्रकट करता है। जब तक भविष्यदत्त जिन मंदिर में प्रणाम करने गया था कि बंधुदत्त उसकी पत्नी, धनराशि को लेकर अपने साथियों सहित चल देता है। मार्ग में बंधुदत्त भविष्यानुरूपा (भविष्यदत्त की पत्नी) को प्रसन्न करना चाहता है। वह गजपुर में आकर अपने घर आकर उसे अपनी पत्नी बताता है, विवाह की तिथि निश्चित हो जाती है।

भविष्यदत्त की माँ पुत्र वियोग में बड़ी व्यथित है तथा व्रत (सुयपञ्चमी व्रत) करती है। भविष्यदत्त भी अकेला फिर जिन मंदिर में पूजा करता है। पूर्व जन्म के सम्बन्धानुकुल एक देव प्रगट होकर अपार धन देकर उसे गजपुर पहुंचा देता है। सब बात प्रकट होने पर वहाँ का राजा उससे प्रसन्न होकर अनुचित न्याय कर देता है। बंधुदत्त को दण्ड मिलता है। भविष्यदत्त की पत्नी उसे मिल जाती है। उसकी माँ, पिता सब फिर मिलकर रहने लगते हैं। भविष्यदत्त पर राजा भूपाल बड़ा प्रसन्न था।

अकस्मात् कुरुजङ्गल नरेश के पास पोयणपुर का राजा एक दूत भेजता है। दूत यह सन्देश लाता है कि या तो गजपुर नरेश अपनी रूपवती पुत्री सुमित्रा तथा तिलकद्वीप से भविष्य दत्त द्वारा लाई हुई सुन्दरी को दे और न देने पर युद्ध के लिए तैयार हो जावे। युद्ध ही होता है। भविष्यदत्त युद्ध में बड़ा पराक्रम दिखाता है। और उसी के पराक्रम के कारण विजय होती है। राजा प्रसन्न होकर भविष्यदत्त को युवराज बना देता है। कुछ काल पश्चात् राजा भविष्यदत्त राज्य देकर संन्यास ले लेता है। राजा की पुत्री सुमित्रा से भविष्यदत्त का विवाह हो जाता है। एक समय समाधिगुप्त मुनि आते हैं। भविष्यदत्त को उसके पूर्वजन्म की कथा सुनाते हैं। भविष्यदत्त राज्य अपने पुत्र सुप्रभ को देकर तपस्या के लिए चला जाता है। उसकी माँ तथा पत्नी भविष्यानुरूपा भी उसके साथ जाती हैं। तपस्या करके वे सब सद्गति प्राप्त करते हैं। कुछ समय पश्चात् वे पृथ्वी पर अपने सुहज्जनों का समाचार लेने आते हैं, किन्तु वे सब कालकवलित हो चुके थे। सुयपञ्चमी' व्रत के फल का निर्देश करके कवि कृति को समाप्त करता है।

प्रस्तुत कृति की कथा बड़ी मनोरञ्जक है। यत्र तत्र धार्मिक प्रसंग अवश्य कुछ नीरस से हैं। समय-समय पर दैवी शक्तियाँ भी धर्मप्रवण नायक की सहायतार्थ साकार होकर आती हैं। इनको छोड़कर कृति में प्रेम, शृंगार, करुणा, युद्ध, वात्सल्य, स्त्री प्रकृति का अध्ययन, प्रकृति, वर्णन, देश और नगरों के वर्णन कवि ने सरल काव्यमय शैली में प्रस्तुत

किए हैं। कृति छोटी-छोटी २२ सन्धियों (अध्यायों) में विभक्त है। प्रत्येक सन्धि में कई कडवक रहते हैं। छन्द का क्रम कृति में प्रायः एक समान है। कुछ पंक्तियों के पश्चात् घत्ता रखकर कडवक पूरा होता है। प्रायः पज्झटिका का ही कडवकों में समान रूप से व्यवहार हुआ है कहीं-कहीं भुजङ्गप्रयातादि अन्य छन्द भी मिलते हैं। यह छन्द चतुष्पदी वर्ग के हैं किन्तु भविष्यदत्तकथा में यह द्विपदी के समान प्रयुक्त हुए हैं। प्रत्येक कडवक में सम पंक्ति संख्या होनी चाहिए थी किन्तु प्रायः विषम संख्या ही मिलती हैं।

जसहर चरिउ (यशोधर चरित) की कथा जैन कवियों को अधिक प्रिय रही है। प्रस्तुत ग्रन्थ की कथा संक्षेप में यह है:

जिन वन्दना के अनन्तर कवि धर्म-कथा कहने की प्रतिज्ञा करता है। धन और नारी की कथा कहने का उसका विचार नहीं है। शिव और सौख्य देने वाली वह धर्म-कथा कहना चाहता है। वंदना के पश्चात् यशोधरनृप-चरित्र कवि प्रारंभ करता है। जम्बूद्वीपस्थ यौधेय देश को कवि ने कथा-केन्द्र बनाया है। उस प्रदेश का वर्णन कवि ने बड़ी सरल और काव्यमय शैली में, ग्राम्य जीवन की सरलता तथा वन्य जीवन के दृश्यों से मिलाकर, आकर्षक ढंग से किया है। कम काव्यों में ऐसे सरस चित्र मिल सकेंगे। उस देश में राजपुर नगर था। यहाँ मारिदत्त राजा थे। नगर में एक समय एक कौलाचार्य भैरवानन्द पधारे। कवि के शब्दों में ही भैरवानन्द के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है :—

> तहि जगह भयाउलु अलियरासि
> भइरउ अहिहाणिं सव्वगासि।
> तहि भमइ भिक्खअरु देइ सिक्ख
> अणुगयहं जणहं कुलमग्गदिक्ख।
> वहु सिक्ख हिंसहियउ डंभधारि।
> घरि-घरि हिंडइ हुँकार कारि।
> सिर टोप्पी दिण्णरवण्ण वण्ण।
> सा झंपयि संठिय दोण्णि कण्ण।
> अंगुलदुतोष परिमाणु दंडु
> हत्थें उप्फालिवि गहइ चंडु।
> गलि जोगवट्टु सज्जिउविचित्तु
> पाउडिय जम्मु पइदिण्णु दित्तु।
> तड तड तड तड तडिय सिंगु
> सिंगग्गु छेवि किउतेण चंगु। इत्यादि १, ६,

(अर्थात् उस जगह भैरव नामधारी भयाकुल अलीक राशि आया, कौलमार्ग की दीक्षा देता था और भिक्षा माँगता था। अनेक शिक्षाओं सहित, दम्भ धारण किए घर-घर हुँकार करके भ्रमण करता था। सिर पर अनेक रंगों की टोपी थी जो दोनों कानों को ढँके हुई थी। बत्तीस अंगुल लम्बा दंड हाथों से उछालता था। गले में विचित्र रूप से सजा हुआ योग पट्ट था; पैरों में भी कुछ पहिने था। सींग को तड-तड करके बजा रहा था…।)

राजा के यहाँ इस कौलाचार्य का स्वागत होता है। योगी अपनी सिद्धियों की प्रशंसा करता है। राजा आकाश में उड़ने की सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करता है। इस सिद्धि के प्राप्त्यर्थ योगी राजा को देवी की पूजा करने का आदेश करता है। प्रत्येक प्रकार के प्राणियुग्मों की बलि इसके लिए आवश्यक विधान बताया। नर-युग्म को छोड़कर राज-सेवक अन्य-प्राणियों के युग्म ले आए। नर-मिथुन की खोज में राजा पुनः दूतों को भेजता है। श्मशान में सुदत्त नामक तपस्वी अपने दो क्षुल्लक सेवकों (बालक तथा बालिका सेवक) सहित ठहरे थे। क्षुल्लक, गुरु की आज्ञा से नगर में भिक्षावृत्ति के लिए आए थे। राजसेवक इनको बलि के उपयुक्त नर-मिथुन समझकर राजा के पास ले आते हैं। राजा बस क्षुल्लक-युग्म के मुखों पर कुछ सामुद्रिक महत्वपूर्ण चिह्न तथा इनकी प्रभावोत्पादक आकृति देखकर इनसे परिचय पूछता है। मुनि कथित पूर्वजन्मों का समस्त वृत्तांत इन क्षुल्लकों में से बालक क्षुल्लक ने कह सुनाया; अपनी वर्तमान अवस्था का भी वर्णन किया। कई जन्म पहिले यह क्षुल्लक बालक ही यशोधर था और क्षुल्लक बालिका उसकी माँ थी। कर्मानुकूल जन्म जन्मान्तरों में भ्रमण करते हुए वे (माता-पुत्र) बहिन भाई के रूप में उत्पन्न हुए थे। इस जन्म में सुदत्त मुनि के दर्शन से उन्हें अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो आया और वे इस वेष में मुनि के साथ रहने लगे हैं। इस वृत्तांत को सुनकर देवी चंडमारी तथा मारिदत्त को अपने

कृत्यों पर बड़ा पश्चाताप हुआ। वे भी जैन धर्म में दीक्षित हुए। आचार्य भैरवानन्द भी जैन धर्म में दीक्षित हो गए। यह दोनों क्षुल्लक मरने के पश्चात् ईशान् स्वर्ग को गए। यशोधर की/कथा बीच में विस्तार पूर्वक कही गई है। प्रेम, घृणा, स्त्रीचरित्र की कुटिलता और उसके दुष्परिणामों का उसमें अच्छा वर्णन है।

ग्रन्थ में चार संधियाँ हैं। देश, नगर, राजा, रानी, आखेट, प्रेम, स्त्रीप्रकृति आदि के सुन्दर काव्यमय वर्णन हैं। छन्द का क्रम प्रायः एक ही प्रकार का सम्पूर्ण कृति में पाया जाता है। भविष्यदत्तकथा की ही भाँति छंद का प्रयोग हुआ है। कृति धर्म-कथा का काव्यमय सुन्दर उदाहरण है। धार्मिक चमत्कार की नीरसता होते हुए भी काव्य के सुन्दर स्थल पर्याप्त हैं।

पुष्पदत्त का दूसरा इसी पद्धति का चरित काव्य है—नागकुमार चरित। इसमें कामदेव के अवतार नागकुमार के चरित्र का वर्णन है।

सरस्वती-वन्दना, अपना परिचय तथा अपने आश्रयदाता नण्ण की प्रशंसा आदि के अनन्तर दुर्जनों की तथा सज्जनों की मनोवृत्ति पर कुछ कहकर कवि कथा प्रारम्भ करता है। मगध देश और उसमें स्थित नगर राजगृह का अलंकृत शैली में वर्णन करके कवि श्रेणिक महाराज का वर्णन करता है। श्रेणिक, महाराज के सेवक गौतम जिनके आगमन की सूचना देते हैं। राजा दर्शनार्थ जाते हैं। अन्य नगरवासी भी दर्शन के लिए चलते हैं। धार्मिक उत्साह के वर्णन का यह सुन्दर उदाहरण है। राजा जिनका उपदेश सुनता है। श्री पंचमी व्रत के सम्बन्ध में जानने की राजा जिज्ञासा प्रकट करता है। गौतम मुनि, व्रत से सम्बन्धित कथा कहते हैं।

मगध देश में स्थित कनकपुर नगर में जयन्धर राजा थे। रानी विशालनेत्रा थी और पुत्र श्रीधर। कनकपुर में एक व्यापारी आया। अन्य अनेक बहुमूल्य वस्तुओं में राजा को एक युवती का चित्र पसन्द आया। कवि हमें बताता है कि वह वणिक्-वेष में स्वयं वासव थे राजा की ऋद्धि सिद्धि से परास्त होकर वणिक्-वेष में आए थे। चित्र का परिचय पूछने पर मालूम हुआ कि वह गिरिनागर के राजा की राजकुमारी पृथ्वीदेवी का चित्र था। राजा अपने सचिव को उस वणिक् के साथ भेजते हैं और वे गिरि नगर जाकर पृथ्वीदेवी को ले आते हैं। जयन्धर और पृथ्वीदेवी का विवाह हो जाता है। रानियों को लेकर राजा उद्यान में क्रीड़ार्थ जाता है। विशालनेत्रा के वैभव को देखकर ईर्ष्या के कारण पृथ्वीदेवी उद्यान में न जाकर जिन मन्दिर में जाती है।

मन्दिर में मुनि पिहिताश्रव उसे धार्मिक उपदेश देते हैं तथा उसके एक पुत्र होने की भविष्यवाणी करते हैं। कुछ वर्षों बाद ऋषि की वाणी सत्य सिद्ध होती है। पुत्र सहित राजा और रानी फिर मुनि के दर्शन को जाते हैं। जब वे मन्दिर में गए हुए थे, बालक कुएँ में गिर जाता है। उसे नाग उठा ले जाता है और उसी के द्वारा वह पाला पोसा जाता है। उसका नाम नागकुमार रखा जाता है। नागकुमार बड़ा रूपवान और वीर था। नाग कन्याएँ उससे प्रेम करने लगती हैं। पृथ्वी पर आकर नागकुमार अनेक राजकुमारियों से विवाह करता है और अनेक राजाओं को युद्ध में हराता है। उसकी अनेक रानियों में सर्वोप्रिय रानी लक्ष्मीमती थी। मुनि पिहिताश्रव से नागकुमार लक्ष्मीमती पर इस प्रेमाधिक्य का कारण पूछता है। पिहिताश्रव कहते हैं कि पूर्व जन्म में उन दोनों ने 'श्रुतपञ्चमी' व्रत किया था, परस्पर प्रेमाधिक्य का यही कारण था। मुनि श्रुतपञ्चमी व्रत का विधान वर्णन करते हैं। नागकुमार अनेक वर्षों तक सुख पूर्वक रहकर तपस्या करने चले जाते हैं और कालान्तर में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

ग्रन्थ में नौ संधियाँ हैं। छन्दों का क्रम उसी प्रकार का है जैसा ऊपर वर्णित कृतियों में है। देश, नगर, राजा, विवाह, क्रीड़ा, युद्ध आदि के वर्णन काव्यमय है। श्रृंगार, वीर, शांत रसों का प्रस्तुत कृति में अच्छा निरूपण मिलता है। धार्मिक रूप देने के लिए कृति को श्रुतपञ्चमी के दृष्टान्त के रूप में रखा है।

इसी प्रकार की शैली पर लिखा गया करकण्डु-चरित काव्य है। जिन वन्दना तथा अपनी ओर से विनम्रता प्रकट करने के पश्चात् कवि ने चम्पा नगरी का वर्णन किया है।

वहाँ राजा दधिवाहन राज्य करते थे। जब वे एक बार कुसुमपुर जा रहे थे तो उन्होंने एक माली द्वारा पोषित सुन्दरी युवती को देखा। राजकुल में उत्पन्न हुई उस युवती से उन्होंने विवाह कर लिया। राजा गर्भवती रानी की इच्छानुसार हाथी पर विहार के लिये जा रहे थे कि हाथी मदोन्मत्त होकर भागने लगा। रानी के कहने से राजा तो हाथी से कूद पड़ा किन्तु रानी बहुत दूर जाकर एक बन में प्राण बचा सकी। एक भूत स्थान में पुत्र प्रसव करती है। एक मातङ्ग अपने पूर्वजन्म के सम्बन्धानुसार इस बालक को उसकी माँ के पास से ले जाता है। उस बालक के हाथ में कण्डु होने के कारण उसका नाम करकण्डु रखा जाता है। एक हाथी द्वारा परीक्षण के परिणाम स्वरूप करकण्डु को दन्तिपुर का राजा बनाया जाता है। नगर में भ्रमण करते समय राजा ने एक व्यापारी के यहाँ एक रूपवती युवती का चित्र देखा यह चित्र सौराष्ट्र देश की राजकुमारी मदनावली का चित्र था। करकण्डु के गुण वर्णन सुनकर वह उस पर पहिले से ही आसक्त थी। दोनों का विवाह हो जाता है।

चंपाधिपति करकण्डु के पास अपने चर उसका आधिपत्य स्वीकार कर लेने को भेजता है। करकण्डु इसे अस्वीकार करके युद्ध करने को तैयार होता है। युद्ध के बीच में करकण्डु की माँ पद्मावती प्रकट हो जाती है, सब एक दूसरे का परिचय प्राप्त करते हैं। चंपा नरेश पुत्र को पहिचानकर उसे राज्यभार सौंपकर तपस्या करके मर कर स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

करकण्डु दक्षिण के पांड्य, चोड और चेर राज्यों पर आधिपत्य स्थापित करने सेना लेकर जाता है। मार्ग में तेरापुर के मंदिरों तथा लयनों में पूजा करता है, तथा उनका उद्धार भी करता है। पूजा करते समय उसकी पत्नी मदनावली को कोई अपहरण करके ले जाता है। एक सुर द्वारा यह जानकर संतोष होता है कि वह मिल जायेगी। करकण्डु सिंहल पहुँचता है। उसके पराक्रम से प्रसन्न होकर वहाँ का राजा उससे अपनी पुत्री रतिवेगा का विवाह कर देता है। अपार धनराशि लेकर अपनी नववधू सहित वह वहाँ से समुद्र-यात्रा के लिए चल देता है। मार्ग में एक विशाल मत्स्य बाधा डालता है। करकण्डु मत्स्य को तो मार डालता है किन्तु एक विद्याधर उसे पकड़कर ले जाता है। रतिवेगा पतिवियोग में विलाप करती है। पद्मावती नामक एक देवी आकर उसे आश्वासन देती है। रतिवेगा अपना समय व्रतादि में व्यतीत करती है। कुछ समय पश्चात् करकण्डु उसे मिल जाता है। कुछ दिन वहाँ रहकर दक्षिण के राजाओं पर आधिपत्य स्थापित करता हुआ वह लौटता है। तेरापुर में खोई हुई मदनावली भी उसे मिल जाती है। वह राजधानी में आता है।

अपनी राजधानी में राजा एक दिन मंत्रियों सहित बैठा था। एक परिचारक द्वारा उसे मुनि शीलगुप्त के आने का समाचार मिलता है। नगरवासियों सहित राजा मुनि के दर्शन को चलता है। राजा अपने पूर्व भावों का वृतान्त पूछता है। विस्तार पूर्वक मुनि सब सुनाते हैं। उसकी माँ पद्मावती तथा पत्नी मदनावली के संबंधों पर भी मुनि प्रकाश डालते हैं। सब सुनकर करकण्डु को संसार से विरति हो जाती है। अपने पुत्र को राज्य देकर विरक्त होकर वह घर से निकल पड़ता है। उसकी माँ तथा उसकी कई रानियाँ भी उसके साथ चलती हैं। तपस्या के अनन्तर वे सब चिरस्थायिनी शान्ति प्राप्त करते हैं।

ग्रन्थ दस सन्धियों में विभक्त है और सन्धियाँ ऊपर कथित कडवक की इकाइयों में विभक्त हैं। छंदक्रम ऊपर वर्णित ग्रंथों के ही समान है। कृति में वर्णन भी अच्छे और अपेक्षाकृत सरल हैं। शृंगार, वीर, वियोग आदि रसों के अच्छे स्थल मिलते हैं। आश्चर्य तत्त्व ग्रन्थ में बहुत हैं। विद्याधर देव बार-बार प्रकट होकर पात्रों की सहायता कर जाते हैं।

अनेक अप्रकाशित ग्रन्थ भी इस शैली के मिलते हैं। नयनंदि के सुदर्शन चरित का परिचय हम पहले दे चुके हैं। चरित काव्यों के अतिरिक्त इसी प्रकार की छंद-परंपरा का अनुसरण करने वाले अमरकीर्ति गणि कृत छक्कमोवएस तथा लक्खण कृति अणुवयरण पईउ हैं। इन ग्रंथों में भी अच्छे दृष्टान्त मिलते हैं जो व्रतादि को स्पष्ट करने के लिए कहे गए हैं।

उपर्युक्त चरित काव्यों को दृष्टि में रखकर हिन्दी साहित्य का अध्ययन करते समय हमारा ध्यान हिन्दी के प्रारंभिक काल में लिखे गए इस प्रकार के चरित काव्यों की ओर जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस प्रकार की कृतियाँ कुतबन की 'मृगावती,' मंझन की 'मधुमालती,' और जायसी की 'पद्मावती' हैं। उसमान की 'चित्रावली' तथा अन्य पीछे की कृतियाँ प्रायः जायसी की पद्मावती से पर्याप्त है। उसमान की चित्रावली तथा अन्य पीछे की कृतियाँ प्रायः जायसी की पद्मावती से पर्याप्त प्रभावित हुई हैं—तथा उसी प्रकार की हैं; कोई विशेष अंतर नहीं मिलता है। हमारे निष्कर्षों में उनके कारण कोई विशेष अंतर नहीं आवेगा। इनकी कथा साहित्य के इतिहासों में मिलती है अतः हम यहाँ उद्धृत नहीं करेंगे। प्रेम, चमत्कारपूर्ण वर्णन, सरल और सरस काव्यमय वर्णन तथा कहीं-कहीं आध्यात्मिक संकेत इन रचनाओं की विशेषता है। वाह्य-वरण (अर्थात् छंदक्रम) इनमें समान है। तीनों के विषयों में बहुत समानता है।

अपभ्रंश और हिन्दी के इन काव्यों में दो प्रकार की समानता हमें स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है। पहिली विषय की समानता तथा दूसरी काव्य के परिधान छन्दों की, तथा शैली की समानता।

इन सब काव्यों में नायक तथा नायिका के प्रेम का प्रारम्भ, परिपाक आदि प्रसङ्गों की ही प्रधानता रहती है। नायकों को उद्देश्य प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने पड़ते हैं उनसे कथा विस्तार पाती है और जब वे विवाह द्वारा मिल जाते हैं तो अन्य बाधाएँ आती हैं उनसे कथा बढ़ती है। प्रायः सभी काव्यों का अन्त शान्तरस पर्यवसायी है। तनिक विस्तार के साथ हम इन निष्कर्षों का विश्लेषण करेंगे।

अपभ्रंश के चरित-काव्य प्रेमाख्यानक ढङ्ग के ही काव्य हैं। बहुत सम्भव तो यही प्रतीत होता है कि इस प्रकार की कहानियाँ प्रचलित थीं या प्रचलित कथाओं के ढङ्ग पर रचयिताओं ने स्वयं कल्पित कीं। इन प्रेम की मधुर कथाओं को उपदेश और धर्म-तत्त्वों से मिलाकर इनके रचयिताओं ने इन्हें धर्मकथा बना दिया है। धर्मकथा के उत्तम आदर्श ग्रन्थ जैनाचार्यों द्वारा लिखे गए समराइच्चकहा' तथा 'वसुदेवहिण्डि' हैं और भविष्यदत्त कथा आदि विषय ढूढ़ने से उन ग्रन्थों में मिल सकते हैं। जसहर चरित, भविष्यदत्त-कथा, सुदर्शन चरित, करकण्डु चरित, नागकुमार चरित सब में एक-एक प्रेम कथा अवश्य है और उसका स्थान गौण नहीं है प्रधान है। इस प्रेम का प्रारम्भ प्रायः कुछ समान रूप से ही होता है। गुण वर्णन सुनकर, चित्र देखकर या परस्पर दर्शन से ही इसका प्रारम्भ हुआ है। भविष्यदत्त कथा में तथा सुदर्शन चरित में परस्पर दर्शन से ही इसका प्रारम्भ हुआ है। भविष्यदत्त कथा में तथा सुदर्शन चरित में परस्पर दर्शन से, करकण्डु चरित में चित्र दर्शन से प्रेम प्रारम्भ पाते हैं। इसके अनुकूल ही हिन्दी के काव्यों में हमें यह प्रवृत्ति मिलती है।

प्रेम के प्रारम्भ के बाद सभी काव्यों में नायक नायिका का विवाह करा दिया गया है और इस सम्बन्ध में थोड़ा बहुत प्रयत्न तो नायकों को करना ही पड़ा है। पद्मावती तथा करकण्डु चरित के नायकों को सिंहल की यात्राएँ करनी पड़ी हैं। इन सब काव्यों में प्रायः एक-एक प्रतिनायक को लाकर अवश्य उपस्थित किया है। अपभ्रंश काव्यों में उसको भिन्न प्रकार से उपस्थित किया है। भविष्यदत्त कथा में भविष्यदत्त की पत्नी को बन्धुदत्त लेकर चल देता है; धर्म की विजय दिखाने के लिए कवि ने आश्चर्य तत्त्व की सहायता से काव्य-न्याय का निर्वाह किया है और समय रहते उसे अपनी पत्नी मिल जाती है। तत्पश्चात् पोयणपुर नरेश उसकी पत्नी को प्राप्त करने के लिये युद्ध करता है किन्तु वह पराजित होता है; कवि ने धार्मिक पुरुष की सफलता व्यञ्जित की है। करकण्डु चरित में उसकी पत्नी को यक्ष ले जाता है लेकिन वह फिर मिल जाती है।

हिन्दी प्रेम-काव्यों में मृगावती स्वयं धोखादेकर चली जाती है उसको प्राप्त करने के लिए राजकुमार योगी होकर निकल पड़ता है। वह क्यों भागती है इसका पूरा विवरण हमारे सामने नहीं है। जसहर चरित में जसहर की स्त्री कुटिल है, उसका अपने पति को छोड़ने तथा विष देने का यत्न भी कुछ ऐसा ही लगता है किन्तु जसहर को उसके चरित्र के प्रति विरति हो जाती है और वह तपस्या के लिए छोड़कर चल देता है। मधुमालती और राजकुमार के बीच में

मधुमालती की माँ आ जाती है। वह इस प्रेम से अप्रसन्न होकर मधुमालती को पक्षी बना देती है और कुछ दिनों बाद वे फिर मिल जाते हैं। प्रेमा और ताराचन्द तथा अप्सराएं अपभ्रंश काव्यों के यक्ष; गन्धर्व आदि से लगते हैं। इनकी सहायता सहृदयता के कारण हैं, किन्तु यक्ष गन्धर्व पूर्व जन्मों के क्रमानुसार ही सहायता करते हैं। जायसी की कृति में तो प्रतिनायक स्पष्ट है।

इन दोनों वर्ग के काव्यों में आध्यात्मिक संकेत मिलते हैं। अपभ्रंश ग्रन्थों में यह अधिक स्पष्ट है क्योंकि उनके लेखकों का स्पष्ट रूप से दृष्टिकोण धार्मिकता की ओर झुका हुआ था। भारतीय मस्तिष्क को लौकिक कहानियाँ, बिना आध्यात्मिक मिश्रण के ग्राह्य नहीं हो सकतीं, आज की बात अलग है। मधुमालती में मनोहर मधुमालती के प्रति अनुराग को जन्म जन्मान्तरों का बताता है। अपभ्रंश कृतियों में तो यह सब पूर्व जन्मों की कथा मुनि आकर बताते हैं—भविष्यदत्तकथा में यह कार्य विमलबुद्धि करते हैं, करकण्डु चरित में शीलगुप्र आदि; अतः यहाँ हम इस प्रेम सम्बन्ध को जन्म जन्मान्तरों के फलस्वरूप ही पाते हैं।

सिंहल या समुद्र यात्रा से सम्बन्धित वृत्तान्त बहुत लोकप्रिय रहे होंगे। रचयिताओं को भी अपनी कल्पना के लिये एक अच्छा क्षेत्र मिल जाता था। पद्मावती में रत्नसेन सिंहल जाते हैं, और वहाँ से लौटते समय बड़े कष्टों का सामना करना पड़ता है। भविष्यदत्त तिलक द्वीप जाता है करकण्डु सिंहल जाता है। करकण्डु को तो रत्नसेन के समान समुद्र में विद्याधर मत्स्य का सामना करना पड़ता है। उसकी वियुक्ता पत्नी को पद्मावती देवी आश्वासन देती हैं जिस प्रकार पद्मावती को एक समुद्र-देवी आश्वासन देती है। यह सब सिंहल से अपार धन राशि लेकर लौटते हैं।

आश्चर्य-तत्त्व का इन ग्रन्थों में खूब प्रयोग किया गया है। अपभ्रंश ग्रन्थों में यक्ष, गन्धर्व, मुनि, स्वप्न आदि सहायक होकर आते हैं और धर्मप्रवण चरितनायक की बराबर समयानुकूल सहायता करके चले जाते हैं। सुदर्शन चरित में 'वितर' आता है भविष्यदत्त कथा तथा करकण्डु चरित में यक्ष, गन्धर्व आते हैं लेकिन अपने पूर्व जन्म के उपकारों को चुकाने के लिये आते हैं। दूसरी ओर मृगावती में आश्चर्य तत्त्व है लेकिन सहायक की कल्पना नहीं है। मृगावती उड़ने की विद्या जानती है। मधुमालती में तो राजकुमार को अप्सराएँ उठाकर मधुमालती की चित्रसारी में रख आती हैं। आगे चलकर माता के क्रोध के कारण मधुमालती को भी पक्षी बनना पड़ता है। पद्मावती में योगादि के अतिरिक्त शिवादि देवता प्रकट होकर रत्नसेन की युद्ध में सहायता करते हैं, पद्मावती की भी समुद्र के किनारे एक देवी परीक्षा लेने आती है। राघव चेतन का भी चमत्कार आश्चर्य की बात है। जैन ग्रन्थों में इसको कर्मों से सम्बन्धित करके कुछ स्वाभाविक बनाने की चेष्टा की गई है।

यह सब विशेषताएँ लोक में प्रिय रहे किसी एक सामान्य श्रोत से ली हुई कही जा सकती हैं किन्तु काव्य में उनका प्रयोग प्रथम बार अपभ्रंश कवियों ने ही किया और अवश्य ही पीछे के प्रेमकाव्य रचयिता इनसे उत्साहित हुए होंगे। जायसी ने 'श्रीपञ्चमी' व्रत का उल्लेख किया है, जैन कृतियाँ प्रायः किसी न किसी व्रत के महात्म्य के दृष्टांत के रूप में लिखी कही गई हैं। भविष्यदत्त कथा 'श्रुतपञ्चमी' व्रत का दृष्टांत है। सुदर्शन चरित भी पञ्चमी व्रत का दृष्टांत है और भी रचनाएँ इस प्रकार की अनेक हैं।

इन समानताओं के अतिरिक्त कुछ वाह्य समानताएँ भी रोचक हैं। अपभ्रंश काव्यों में मङ्गलाचरण, देश, नगर तथा राजा-रानी के वर्णन बड़े सरस रूप में मिलते हैं। देश, नगर के वर्णन ग्राम्य सरलता को लिए हुए बहुत ही मौलिक कल्पनाओं से युक्त होते हैं। जसहर चरित और पद्मावती के इस प्रकार के वर्णन एक समान ही सुन्दर हैं। दुर्जन तथा भाषा के सम्बन्ध में अपभ्रंश कवियों ने कृतियों के आदि में लिखा है और यह हमें तुलसी के 'मानस' में भी मिलता है। अपने समय की परिस्थितियों के कारण ही ऐसा हुआ है। इनके अतिरिक्त सबसे बड़ा प्रभाव जो अपभ्रंश चरित काव्यों का हिन्दी के चरित-काव्यों पर पड़ा है वह है काव्य के परिधान-छन्दों के प्रयोग में।

अपभ्रंश चरित काव्यों में पज्झटिक अडिल्ला, रड्डा तथा अन्य कई छन्दों का प्रयोग हुआ है, प्रधानता पज्झटिका की

है। इन छन्दों की कुछ पंक्तियाँ रखकर एक घत्ता जोड़कर एक कडवक पूरा होता है। कभी कभी कडवक के प्रारम्भ में हेला, दुवई वस्तु आदि छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे कडवक एक सन्धि में कई होते हैं। प्रायः 'चतुष्पदी' वर्गों के छन्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन अपभ्रंश कवियों ने द्विपदी के समान उनका प्रयोग किया है। ज्यों का त्यों इस पद्धति को हिन्दी के चरित-काव्य रचयिताओं ने अपना लिया है। घत्ता के स्थान पर दोहा रखा है, लय तथा लोकप्रियता के कारण तथा सिद्ध-अपभ्रंश-साहित्य के प्रभाव स्वरूप भी।

अन्य छोटी-छोटी समानताएँ भी मिलती हैं जैसे सुभाषितादि के प्रयोग।

ऊपर के संकेतात्मक विवरण से प्रतीत ऐसा होता है कि इन चरित काव्यों की धारा बराबर अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित होती रही। समयानुकूल भाषा का रूप बदल गया। कितनी प्राचीन यह धारा है सो तो पूर्ण रूप से अभी निश्चित नहीं है। स्वयंभू के पुराणों के रूप में इसका सबसे पुराना रूप हमें मिलता है। लोक प्रचलित प्रिय कथाओं को काव्य के रूप में अपभ्रंश कवियों ने प्रयुक्त किया और वह परम्परा हिन्दी के कवियों ने भी चालू रखी। अपने-अपने विश्वासों के अनुकूल इन कथाओं में रचयिताओं ने परिवर्तन किए हैं। आश्चर्य तथा धार्मिकतत्त्व द्वारा समाज के एक वर्ग को आनन्दित करने का तथा काव्य द्वारा काव्य रसिकों को आनन्दित करने का सफल प्रयत्न इन चरितकारों ने किया है। जैनाचार्यों ने एक प्रकार की एकता का प्रयत्न किया है और हिन्दी के सूफी कवियों ने दूसरी प्रकार की एकता का। तुलसी के 'मानस' का वाह्य रूप तथा कुछ विचारधारा भी अपभ्रंश काव्यों की परम्परा में आती है लेकिन उनके सुसंस्कृत शास्त्रीय मस्तिष्क ने उसको एक दूसरा ही रूप दे दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह काव्य-धारा अविच्छिन्न रूप में चलती रही। धीरे धीरे अपभ्रंश मृत (classical) भाषा हो गई, लोग भूलने लगे। हिन्दी के प्रारम्भिक कवि इससे भली भाँति परिचित थे यह उनके काव्यों के रूपों तथा विषयों से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है।

अपभ्रंश के कवियों की काव्य-शास्त्र विषयक मान्यताएँ

डॉ० रामसिंह तोमर

अपभ्रंश के कवियों ने अपनी कृतियों में प्रायः काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का और कहीं-कहीं भाषा विषयक मान्यताओं का विस्तार से उल्लेख किया है और अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार अपनी काव्य रचना के विषय में यह बताने का प्रयत्न किया है कि कवि सभी प्रसिद्ध काव्य समीक्षा सिद्धांतों से परिचित है और अपनी कृति में उन सिद्धांतों के अनुसार काव्य रचना की है। अपभ्रंश के कवियों को यह परम्परा प्राकृत से मिली। संस्कृत की कृतियों में इस प्रकार के उल्लेख कम मिलते हैं। प्राकृत में लिखी कथा कृतियों में रचयिताओं ने अपनी कृतियों के काव्य रूपों को ध्यान में रखते हुए कथा का विस्तार से विवेचन किया है। वसुदेव-हिण्डि, कुवलयमाला कथा, समराइच्चकथा तथा अन्य कथा ग्रन्थों में कथा के सम्बन्ध में मूल्यवान सूचनाएँ मिलती हैं। कथा रूपों के उल्लेखों की यह परम्परा सम्भवतः पैशाची में लिखित वृहत्कथा से प्रारम्भ हुई होगी। वृहत्कथा के सोमदेव कृत रूपांतर में इसका संकेतमात्र मिलता है। काव्य समीक्षकों के उत्तरदायित्व की इन कथाकारों ने क्यों निर्वाह करना चाहा है? कथा के सम्बन्ध में दण्डी, भामह आदि ने जो उल्लेख किए हैं वे अपर्याप्त हैं और अन्य समीक्षकों ने इस काव्य रूप पर अपेक्षाकृत कम प्रकाश डाला है, इसी कारण कदाचित् प्राकृत लेखकों ने अपनी कृतियों के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए प्रारम्भ में ही आलोचनाएँ प्रस्तुत करना उपयुक्त समझा होगा। उद्योतनसूरि ने अपनी अत्यंत मनोरम कथाकृति कुवलयमाला में पूर्ववर्ती प्रसिद्ध-कथा कृतियों का स्मरण करते हुए धर्म-कथा का उल्लेख किया है और कथा साहित्य के पांच भेदों—सकल कथा, खंड कथा, उल्लापकथा, परिहासकथा तथा अन्य का उल्लेख किया है। धर्म कथा का स्वरूप बताते हुए कहा है। नाना प्रकार के जीवों के परिणाम, जन्मादि के अर्थों को व्यक्त करने वाले प्रसंगों से युक्त धर्म कथा चार प्रकार की है - अक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेग जननी, निर्वेद जननी। अक्षेपणी मनके अनुकूल होती है विक्षेपणी मनके प्रतिकूल, संवेग जननी ज्ञान की उत्पत्ति का कारण होते हैं और निर्वेद जननी वैराग्य को उत्पन्न करने वाली। धर्म कथा में इन चारों प्रकार के प्रसंगों का विषय के अनुसार समावेश रहता है। 'कामशास्त्र' विषयक प्रसङ्ग भी धर्मकथा में आवश्यक हैं 'तेण किंचि काम-सत्थ-सम्बन्द्धं पि भण्णिहिइ। तं च मा णिरत्थयं ति गणेज्जा। किंतु धम्म-पडिवत्ति-कारणं···' (अतः कुछ कामशास्त्र सम्बद्ध भी कहा जावेगा, उन्हें निरर्थक नहीं मानना चाहिए—धर्म प्रतिपत्ति कारण है)। अपभ्रंश के कवियों विशेषकर जैन कवियों के सामने भी विषय विवेचन की दृष्टि से यह दृष्टिकोण रहा है। सभी प्रसिद्ध कवियों ने अपनी कृतियों में विनम्रता प्रकट करते हुए काव्य के सिद्धाँतों की जानकारी का अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख किया है। इन उल्लेखों को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

१ - काव्य सिद्धांतों और श्रेष्ठ कवियों की साहित्यिक रचनाओं के प्रशंसात्मक उल्लेख और उनकी उत्कृष्टता की

तुलना में अपनी प्रतिभा की हीनता का संकेत करते हुए प्रकारांतर से उनकी शैली से अवगत होने तथा उसके समान रचना करने का संकेत करना ।

२—व्याकरण विषयक उल्लेख व्याकरण क समस्त प्रकरण का उल्लेख करते हुए कवि कहता है कि वह किसी भी अङ्ग को नहीं जानता और इससे जो ध्वनि निकलती है वह है कि भाषा और व्याकरण का ऐसा कोई अङ्ग नहीं है जिससे कवि परिचित नहीं है ।

३—छंद विषयक उल्लेख भी कवियों ने यथा सम्भव किए हैं । यह उल्लेख दो प्रकार के हैं । कुछ कवियों ने छन्द की अंतिम पंक्ति में छंद के नाम का इस प्रकार निर्देश किया है कि वह छंद के एक चरण में अंतर्युक्त होगया है । अन्य कवियों ने छंद का नामोल्लेख स्वतंत्र रूप में किया है छंदों का प्रसंग से अपभ्रंश के कवियों ने कहीं-कहीं संगीत विषयक उल्लेख भी किए हैं प्रायः अपभ्रंश के छंद मात्रिक हैं और उनमें संगीत और लय का विशेष ध्यान रखा गया है ।

४—काव्य समीक्षा विषयक जो एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य हमारा ध्यान आकर्षित करता है वह अप्रस्तुत विधान के रूप में काव्य सिद्धाँतों का प्रयोग तथा कुछ काव्य परम्पराओं का अनावश्यक विस्तार के साथ प्रदर्शन जैसे नायिका भेद का या शब्दालंकार के प्रयोगों का प्रदर्शन ।

काव्य-ग्रन्थों से कुछ प्रसंग लेकर ऊपर के कथन को स्पष्ट करेंगे—

स्वयम्भूदेव ने अपनी कृतियों के प्रारम्भ में इस विषय में कहा हैं वह इस प्रकार है :—

मंगलाचरण के रूप में वे कहते हैं—स्वयंभू-काव्योत्पल की जय हो—जिसकी दीर्घ समास रूपी नाल है, शब्द रूपी दल है, अर्थ रूपी केशर है, जिसको बुध रूपी मधुकर रसपान करते हैं ।

दीर्घ समास, शब्द, अर्थ रस अर्थात् वृत्ति, अभिधा, ध्वनि रस सभी को वे काव्य के आवश्यक अंग मानते हैं—आगे कथा को नदी का रूपक देकर फिर इन्हीं सिद्धान्तों का स्मरण इस प्रकार किया है—'अक्षरों का विस्तार मनोहर जल समूह है, सुन्दर अलंकार और छन्द जलजन्तु हैं, दीर्घ समास वक्र प्रवाह है, संस्कृत और प्राकृत सुन्दर पुलिन हैं, देशी भाषा उज्ज्वल तट हैं, दुष्कर सघन शब्द शिलाएँ हैं, अर्थ गांभीर्य लहरें हैं·····। प्राचीन राम कथा सरिता में दीर्घ समासों का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता। वाल्मीकि रामायण जैसी सरल और मधुर भाषा अन्यत्र दुर्लभ है। समासप्रियता स्वयंभू का अत्यन्त गुण है । पउमचरिउ में ही आगे चलकर वे भाषा के विषय में कहते हैं—

'बुधजन ! स्वयंभू तुम्हारी विनती करता है; मेरे समान और कोई कुकवि नहीं है, व्याकरण बिल्कुल नहीं जानता। वृत्ति, सूत्र का कभी पाठ नहीं किया । प्रत्याहार को कभी समझा नहीं, न संधि के ऊपर बुद्धि स्थिर हुई । सात विभक्तियों को कभी सुना नहीं, छःविध समास प्रयुक्त नहीं किया । छःकारक और दस लकार नहीं सुने, बीस उपसर्ग और अनेक प्रत्यय, बलावल धातु, निपातगण, लिंग, उणादि, वक्रवचन नहीं जानता ।' और इसी प्रसंग में कवि आगे कहता है, 'पंच महाकाव्यों को नहीं सुना, भरत गेय लक्षण आदि को भी नहीं सुना, पिंगल प्रस्तार, भामह दण्डि के अलंकार को नहीं जानता ।'

कवि द्वारा काव्य और व्याकरण के उपर्युक्त अंगों की जानकारी अस्वीकार करने का अर्थ है कि वह उन सब विषयों का बहुत अच्छा ज्ञाता है । अपभ्रंश भाषा में रचना करने वाले कवि के लिए संस्कृत व्याकरण का ज्ञान बहुत आवश्यक था । स्वयंभू स्वयं भी व्याकरण के अच्छे पंडित थे, संस्कृत काव्यों की भाषा और शैली से उनका बहुत अच्छा परिचय था और इसकी झलक उनकी रचनाओं में मिलती है । भाषा पर उनके असाधारण अधिकार की ख्याति की सूचना किसी कवि की इस उक्ति में मिलती है :—

तावच्चिय सच्छन्दो भमइ अवब्भंस मत्त मायंगो ।
जाव ण सयम्भु - वायरण - अङ्कुसो पडइ ॥
सच्छन्द-पियउ-दाढो छन्दलङ्कार-णहर-दुप्पिच्छो ।
वायरण-केसरड्ढो सयम्भुपञ्चाणणो जयउ ॥

'अपभ्रंश मत्त मातंग तभी तक स्वच्छंद रूप से घूमता है जब तक स्वयंभू का व्याकरण-अंकुश उस पर नहीं पड़ता। उस स्वयंभू-पंचानन की जय हो—सच्छंद (स्वच्छन्द) विकट दाढ़ें हैं, छन्द अलंकार दुष्प्रेक्ष्य नख हैं, व्याकरण केशर है।'

स्वयंभू ने अपभ्रंश में ऐसी रचनाएँ देखी होंगी जिनमें भाषा विषयक मनमाने प्रयोग रहे होंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वयंभू की दो महान कृतियों—पउमचरिउ और हरिवंश—में अपभ्रंश का अत्यन्त निखरा हुआ रूप मिलता है। पउमचरिउ से जो उद्धरण-ऊपर दिए गए हैं उसके समान ही हरिवंश पुराण में भी स्वयंभू के काव्य विषयक कथन मिलते हैं: इंदेण समघिउ वायरणु पिंगलेण छन्द-पय-पत्थारु। वाणेन समप्पिउ घणघणउ तं अक्खरु डंबरु अप्पणउं।

सिरि हरिसेंणिय णिश्रोणत्तणउ,
अवरेहिमि कइहिं कइत्तणउ।

—हरि १–२

'इन्द्र ने व्याकरण समर्पित किया, पिंगल ने छन्द पद प्रस्तार, वाण ने सघन पद रचना, श्री हर्ष ने अपना निपुणत्व, अन्य कवियों ने कवित्त्व-भामह दंडी ने अलंकार समर्पित किए।'

स्वयंभू और चतुर्मुख जैसे कुछ समर्थ अपभ्रंश कवियों का पीछे के कवियों ने बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। उनके द्वारा मान्य काव्य सिद्धान्तों से उनके बाद के कवि बहुत प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं। पुष्पदन्त ने संस्कृत के काव्य-शैलीकारों के साथ अपभ्रंश और भाषा कवियों का भी नामोल्लेख किया है: –

भावाहिउ भारवि भासु वासु
कोहलु कोमलगिरु कालिदासु
चउमुहु सयंभु सिरिहरिसु दोणु
णालोइउ कइ ईसाणु वाणु।

'अर्थ गौरववान् भारवि, भास, व्यास, कोहल और कोमल शब्दावली प्रयुक्त करने वाले कालिदास, चतुर्मुख, स्वयंभू, श्री हर्ष, द्रोण, ईशान और वाण को नहीं देखा'। पुष्पदन्त की उक्तियों में से कुछ इस प्रकार हैं जो काव्य के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करने में सहायक होंगी:—

सालंकारी छंदेण जंत बहुसत्थअत्थगारव वहंति।

—महा० १–२

'अलंकार से युक्त छंद युक्त गति से बहुशास्त्र अर्थ गौरव को धारण करती हुई जाती है।'

अनेक स्थलों पर पुष्पदन्त ने श्रेष्ठ काव्य को अतिललित, गंभीर और अलंकार' कहा है, कवि को विचक्षण होना चाहिए, लक्षण, छंद, देशी का ज्ञान होना चाहिए -

अतिललियए, गंभीरए सालंकारए वायए...

- १–६

णउ हउं होमि वियक्खणु ण
मुणमि लक्खणु छंदु देसि वियाणमि,

—१–८

सुकवि की कृति में रस होता है—

जहिं उच्छुवणाइं रसगब्भिणाइं।
णावइ कव्वइं सुकइहिं तणाइं।

१–१२

'जहाँ रस से पूर्ण ईख वन है मानों सुकवियों की कृतियाँ हों!'

महापुराण को अनेक संधियों के प्रारंभ में पुष्पदंत के काव्य की प्रशंसा की गई है जिसमें उनकी प्राकृतलक्ष्यों के ज्ञान, छंद, अर्थालंकार, रस, गंभीर भाव चित्रण, आदि विशेषताओं का उल्लेख हुआ है। संस्कृत के कवियों के सम्बन्ध में जिस प्रकार की प्रशंसापूर्ण सूक्तियाँ यत्रतत्र बिखरी मिलती हैं वैसी ही अपभ्रंश के कवियों के सम्बन्ध में रची गई। कालिदास की उपमा, भारवि के अर्थ गौरव की प्रशंसा में प्रचलित उक्ति के समान एक पद्य है—

चउमुह-मुहम्मि सद्दो दन्तभद्दं च मणहरो अत्थो!
विण्णि वि सयम्भु कव्वे किं कीरइ कइयणो सेसो॥

'चतुर्मुख के मुख में शब्द हैं और दन्तिभद्र के मनोहर अर्थ, स्वयंभू के काव्य में दोनों है—अन्य कवि जन क्या करें।'

पुष्पदन्त के सम्बन्ध में एक उक्ति भी संस्कृत कवियों के लिए कही गई उक्ति के समान है—

लोके दुर्जन संकुले हतकुले तृष्णाकुले नीरसे।
सालंकारवचोविचारचतुरे लालित्यलीलावरे॥
भद्रे देवि सरस्वति प्रियतमे काले कलौ सांप्रतं।
कं यास्यस्यभिमानरत्ननिलयं श्री पुष्पदन्तं बिना॥

स्वयंभू के समान व्याकरण के अंगों का पुष्पदन्त ने एकाधिक बार अपनी कृतियों में उल्लेख किया है प्रसंग से संवद्ध अंश इस प्रकार हैं—

णउ धाउ ण लिंगु ण गण समासु।
णउ कम्मु करणु किरियाणिवेसु।
णउ संधि ण कारउ पयसमत्ति।
णउ जाणिय मइं एक्कवि विहत्ति।
णउ बुज्झउ आयमु सद्दधामु।

महापुराण, १, १५

'धातु, लिंग, गण, समास, कर्म, करण, क्रियानिवेश, संधि, कारक, पद समस्त, विभक्ति, शब्दधाम आगम में कुछ नहीं समझता,' तथा—

णउ मुणमि विसेसणु णउ विसेसु
णउ छंदु गणु णिघणउ देसिलेसु।
अहिकरणु करणु णउ सत्यमाणु
णायाणणउ आगमु णउ पुराणु।

—इत्यादि।

केवल काव्यरूढि का पालन करने के लिए इस प्रकार के उल्लेख नहीं जान पड़ते। भाषा के विषय में ये कवि बहुत सतर्क जान पड़ते हैं। काव्य के सभी सिद्धान्तों के महत्त्व को वे स्वीकार करते हैं किन्तु प्रधान रूप से वे अलंकारवादी प्रतीत होते हैं। शब्दालंकारों का जैसा प्रदर्शन स्वयंभू और पुष्पदन्त की कृतियों में मिलता है वैसा भारतीय साहित्य में कम मिलेगा। अलंकार और पिंगल का बारबार इन कवियों ने उल्लेख भी किया है। महाकाव्यों में छंद प्रयोग के सम्बन्ध में जिन विधान का जहाँ तहाँ काव्य समीक्षा-कृतियों में संकेत मिलता है उसकी अपभ्रंश कवि चिंता नहीं करता। विविध प्रकार के छंदों का प्रयोग इन कवियों ने किया है। कहीं स्वतन्त्र रूप से छंद का नाम बताया है, कहीं छंद की पंक्ति में—

एरिस्ते छन्दओ भणए सग्गिणी।

—महा० १, १०

काव्य सिद्धांतों के कथन के अतिरिक्त वर्ण्य विषयों के विस्तार से भी काव्य की प्रवृत्तियों की सूचना मिलती है। यद्यपि कृति की कथा धार्मिक है फिर भी कहीं-कहीं वर्णनों को आवश्यकता से अधिक विस्तृत कर दिया है, कदाचित् ऐसे वर्णनों का विस्तार करना एक कवि परिपाटी हो गई थी। जैसे कहीं उद्यान के वर्णन का प्रसंग आता है तो कवि वृक्षों के नाम गिनता है—यथा एक प्रसंग है—ऋषभ देव ने उद्यान वन में प्रवेश किया—कवि ने उद्यान के वृक्षों की नामावली इस प्रकार प्रारम्भ की है :—

रम्मं महा जं च पुण्णाय—णाएहिं
कुसुमित-लया-वेल्लि-पल्लव - णिहाएहिं
कप्पूर - कक्कोल - एला लवङ्गेहिं
महुमाहवी - माहुलिङ्गी - विडङ्गेहिं।
मरियल्ल - जीरुच्छ - कुङ्कुम - कुडङ्गेहि
णव-तिलय वउलेहि चंपक-पियङ्गेहिं।
णारङ्ग - णग्गोह - आसत्थ - रुक्खेहिं
कङ्कोल-पउमक्ख-रुद्दक्ख - दक्खेहि।

पउम चरिउ ३. १

भविसयत्त कहा, संदेशारासक इत्यादि कृतियों में भी इस प्रकार की नामावलियां मिलती हैं। काव्य परम्परा का पालन अपभ्रंश कृतियों में बहुत मिलता है। ऋतु वर्णन, राजसभा के वर्णन, सङ्गीत और वाद्ययंत्रों के वर्णनों के जैसे विस्तार इन कृतियों में मिलते हैं उनमें अध्ययन के लिए बहुत सामग्री है।

नाट्यशास्त्र, कामसूत्र, बृहत्संहिता आदि कृतियों में अनेक प्रकार से नायिकाओं के स्वभावादि का चित्रण किया गया है। कवियों ने इन सभी स्रोतों से सूचनाएँ लेकर नायिका भेद का विस्तार किया है। अपभ्रंश कृतियों में कहीं-कहीं नायिका भेद का अनावश्यक विस्तार मिलता है। सुदर्शन चरित में एक सुन्दरी का नखशिख सौंदर्य वर्णन किया है

फिर उस प्रसंग को बढ़ाकर नायिका की जाति, संतति, देश, काल, भाव, इंगित आदि के आधार पर भेदों का वर्णन किया है। भद्रा, मंदा, लता, हँसी नायिका की चार जातियाँ हैं। ऋषि, विद्याधर, यज्ञ, राक्षस कुलों के अनुसार भेद हैं। संतति के आठ भेद हैं—सारसी, मृगी, कागुली, खरगोश, हँसी, महिषी, खरि, मकरी। देश के अनुसार सिंध, कोशल, सिंहली, द्राविणी, लाटी, गौड़ी, कलिंग देशी, गुर्जरी, महाराष्ट्री, गोल्ली, कर्नाटकी, पाटली पुत्र, पारियार्त, हिमवंती, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों की नायिकाओं के वर्णन हैं, वात, पित्त, कफ प्रकृति की प्रधानता के आधार पर भी विवेचन किया है विभाजन के और भी आधार सुदर्शन चरित में मिलते हैं। कविशिक्षा के ग्रन्थों में नायिका भेद का ऐसा विस्तार नहीं प्राप्त होता। हिंदी का भक्ति और रीतिकालीन साहित्य इस साहित्य का ऋणी है।

अपभ्रंश का कवि अपने पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य परम्परा का बहुत गम्भीर ज्ञान प्राप्त करके काव्य रचना करता है। मात्रिक छंदों का जैसा सहज सुन्दर प्रयोग शब्दावली की जैसी योजना स्वयंभू और पुष्पदन्त की कृतियों में मिलती है वह हमारे साहित्य की गौरवपूर्ण निधि है। व्याकरण शास्त्र के ज्ञान के विषय में जो इतना आग्रह स्वयंभू पुष्पदन्त प्रकट करते हैं उसका पूरा परिचय इनकी कृतियों में मिलता है। व्रजभाषा के साथ जो स्वतन्त्रता हमारे कवियों ने बरती है वैसी अपभ्रंश के कवि को सह्य नहीं। कला और कवि प्रतिभा का मणि काँचन योग अपभ्रंश काव्य में मिलता है और इस अपूर्व प्रतिभा के होते हुए भी कवि विनम्रतापूर्वक कहता है :—

> मज्झु कइत्तणु जिणपयभत्तिहि पसरइ
> णउ णियजीवियवित्तिहि।

— महा० ३८, ६

जिन-पद भक्ति मेरा कवित्व है, अपनी जीविकावृत्ति के लिए वह प्रसारित नहीं होता।'

तुलसीदास ने भी 'आखर अरथ अलंकृतिन्तना छंद प्रबंध अनेक विधाना' का उल्लेख करके कहा है—मति अनुरूप रामगुन गावउँ।

काव्य के स्थायी सत्य

●

सत्यकाम विद्यालंकार

प्रत्येक काव्य की रसात्मक अनुभूति के आधार कुछ स्थायी सत्य अवश्य होते हैं। वह सत्य ही काव्य का दर्शन होता है। यह दर्शन ही भावनात्मक रूप में अभिव्यक्त होकर काव्य बन जाता है। जो काव्य केवल क्षणिक भावनाओं या आवेशों पर आधारित होता है, वह क्षणजीवी होगा। इसलिए किसी भी स्थायी साहित्य में स्थायी सत्य, स्थायी भावना अथवा दर्शन का आधार अनिवार्य है।

ये सत्य कवि के चिन्तन की अभिव्यक्ति होते हैं। प्रत्येक कवि अपने व्यक्तिगत चिन्तन के आधार पर नयी दृष्टि पाता है और अपने काव्य में नयी दृष्टि देता है। इसी नयी दृष्टि को दर्शन कह सकते हैं। उदाहरण के रूप में आप एक ऐसी चिरन्तन भावना को लीजिए जो आदि-काव्य वेद से आज तक के काव्य रूपों में पायी जाती है। महादेवी वर्मा के कविता संग्रह 'नीरजा' की एक कविता है, 'तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या।' प्रेयसि प्रियतम के एक दूसरे में विलय होने की यह भावना प्रत्येक भाषा की कविता में मिलती है। रवीन्द्र ने लिखा है कि 'सीमार माझे असीम तुमि।' वेद की ऋचा है 'यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा स्यामहम्।' अर्थ वही है कि तू मैं हो जाऊँ और मैं तू हो जाऊँ। फारसी की एक कविता—

> मन तू शुदम, तू मन शुदी,
> मन तन शुदम, तू जा शुदी।
> ता कस न गोयद बाद अज़ी,
> मन दीगरम, तू दी गरी॥

अर्थ है, मैं तू बन जाऊँ, तुम मैं बनो। मैं देह बनूँ तुम प्राण बनो। जिससे कोई यह न कह सके कि मैं और तुम जुदाँ-जुदाँ हूं। तू खुदा हो और मैं आदमी। रवीन्द्र ने एक और जगह लिखा है—'देहे आर मने प्राणे हये एकाकार।' अंग्रेजी में भी इस तरह की अनेक कविता मिलती है—

> All that began with God must end :
> All lines are garnered in his final bliss
> Good thought made consicous through man's moratal lifes,
> Resumes through death eternal unity.

प्राचीन कवियों से लेकर आज तक के सब कवि अपनी अन्तर आत्मा, में विश्वात्मा में एक में विलय हो जाने की व्याकुलता अनुभव करते रहे हैं। कहीं यह भाव दो युक्त प्रेमियों के विरह का भाव रहा है और कहीं दोनों सखा भाव से एकात्मत्ता अनुभव करते रहे हैं। आत्यन्तिक मिलन की अभिव्यक्ति अपने काव्य में करते रहे हैं।

यह प्रेम केवल क्षणिक आवेश का परिणाम नहीं हो सकता। इस भावना के पीछे गहन दर्शन छिपा है। यह दर्शन सृष्टि के आदि काव्य में भी अभिव्यक्त हुआ है और आज भी केवल भाषा शिल्प शैली भेद से उसी प्रकार अभिव्यक्ति पा रहा है।

संसार की प्रथम साहित्यिक अभिव्यक्ति वेदों में हुई थी। वैदिक ऋचाओं में भी हृदय स्थल आत्मा का विरह भाव

अनेक स्थलों पर आया है। वेद के एक मन्त्र में आत्मा को हंस मानकर उसके अनन्त मिलन यात्रा का बहुत मार्मिक वर्णन हैं। ऋचा के शब्द हैं—

सहस्राण्यं वियुतावस्य पक्षौ
हरे हँसस्य पततः स्वर्गम्
स देवान्सर्वान् रस्यु पदस्य
संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा

काव्य शैली में वेद के कवि ने कहा है कि विश्वात्मा से वियुक्त बिछड़ा हुआ हंस अपने परम सखा विश्वात्मा से मिलने के लिए अनन्त काल से उड़ रहा है। भारतीय दर्शन में यह आधारभूत स्थापना है कि हमारा हृदयस्थल आत्मा और विश्वपुरुष की विश्वात्मा परम सखा हैं। उपनिषदों में कहा गया है :—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।

अर्थात् दो सुनहरे सहोदर सखा एक ही वृक्ष पर बैठे हैं, उनमें से एक भोग्य पदार्थों को चखता है तथा दूसरा बिना चखे ही उसका आनन्द ले लेता है। यही सख्य भाव भारत के सभी कवियों के कविता में अनेक रूपों में प्रगट हुआ है। विश्वात्मा का प्रतीक कभी चाँद बना है, कभी समुद्र, कभी नक्षत्र। विश्व जगत में विश्वपुरुष की आत्मा के साथ रमण करने की इच्छा कवि की आत्मा में सदा रही है। कविता छायावादी हो या प्रयोगवादी दोनों के विषय वस्तु में इस आत्मिक साहचर्य की आतुरता जगह-जगह प्रस्फुटित होती है। उदयशंकर भट्ट के कविता संग्रह 'इत्यादि' में 'यह मेरा मन' की यह पंक्तियाँ -

बाँध लो न एक बार फिर ?
ताकि मैं बँधी हुई दृष्टि के प्रकाश से तुम्हारे
नक्षत्रों की ज्योति को चूम लूँ,
आकाश गङ्गा की लहरों में सत्य के घाट की
साँकल पकड़कर अमृत की अनन्त उन्मादिनी
आनन्द धारा में एक गोता लगा लूँ ?

और शमशेर बहादुर सिंह की यह पंक्तियाँ—

लौट आ ओ धार
टूट मत ओ साँझ के पत्थर
हृदय पर
(मैं समय की एक लम्बी आह
मौन लम्बी आह
लौट आ, फूल की पंखड़ी
फिर
फूलों में लग जा
चूमता है धूल का फूल
कोई, हाय !

भी उसी स्थायी भावना की अलंकारिक अभिव्यक्ति हैं जिसे वेद में कहा गया :—'यदग्नेस्यामहं त्वं त्वं वा स्यामहम्।' शमशेर बहादुरसिंह की निम्न पंक्तियाँ भी उसी 'आत्मविलय' सूचक दर्शन की अलंकारिक अभिव्यक्तियाँ हैं :—

यह सावन
क्यों छाया ?
—यह सावन
मेरी उमीदों की साँझ पर
आज क्यों छाया ?
यह एक सन्देश
झलका जो—
कहाँ से ?
तुम वह हो।
आज मेरे लिये तुम
उसकी हद हो
उस बात की हद हो
जो मेरे लिए हो—तुम
वह मेरी
हद हो
तुम,
तुम मेरे लिये
मेरी हद हो मेरी हद हो
तुम
मेरे
लिये…

इन पंक्तियों में शैली भेद से उसी दर्शन की काव्यात्मक छाया मिलती हैं जो हजारों वर्ष पूर्व वेदों और उपनिषदों के मनीषि ऋषियों ने परिकल्पित की थी। उस कल्पना का रूप यह था कि प्रकृति के व्यक्त आकाश आदि रूप एक अव्यक्त आदि सत्ता से प्रगट होते हैं और पुनः उसमें विलीन हो जाते हैं। वेद की यह ऋचा बहुत प्रसिद्ध है—

उपस्थाप्य प्रथमज्या अमृतस्य
आत्मानात्मानमभिसंविवेश ।

दिव्य अनुभूति से वैदिक काव्य के अन्तर्दृष्टा ऋषियों ने यह प्रतिपादित किया था कि प्रकृति के अचेतन तत्वों को जब अमृत की प्रथम किरण का स्पर्श होता है तो वह पुनः अपने आत्म रूप में संविष्ट हो जाते हैं। उपनिषद् के रचयिता प्रकृति को आत्मप्रसूत मानते हैं। उनका आत्मतत्व ही स्थायी तत्व है, प्रकृति तत्व केवल माया की उपाधि से प्रभावित होकर अस्थायी रूप से रहता है। शमशेर बहादुर जी जब टूटी हुई फूल की पंखुरी को फिर से फूल में लगाने की कल्पना करते हैं तो वह उसी अमृत तत्त्व से अचेतन के स्पर्श के प्रभाव का परिणाम देखते हैं।

संतकाल के शिरोमणि कवि कबीर ने भी आत्मा में विश्वात्मा के सामीप्य की भावना का चित्रण अपने बहुत से पदों में किया है, उनका प्रसिद्ध पद है—

लाली अपने लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

कबीर की तरह गुरुनानक, रैदास, पल्टूदास के पदों भी विश्वात्मा के प्रति आत्मा के उसी सख्य भाव का चित्रण मिलता है, जिसका आदि स्रोत सबसे प्रथम काव्य वेद है। सूर, तुलसी, केशव आदि सभी महाकवियों के रस का परिपाक भी उसी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति में ही हुआ है। केवल पृष्ठभूमि बदली है या उपमान बदले हैं। नये कवियों ने शैली में नये प्रयोग अवश्य किए हैं, किन्तु मूल भावना वही रही है, जो हजारों वर्ष पहले थी। कहने की शैली में कुछ अस्पष्टता आ गई तो छायावाद बन गया और शैली में अटपटे और बेतुके प्रतीक होने वाले उपमानों का सहारा ले लिया गया तो प्रयोगवादी कविता बन गई। मुख्यतः कविता का विषय वस्तु वही हैं जो हमारे आद्यः कवियों का था।

हिन्दी काव्य में विहंगावलोकन

•

कन्हैयालाल, एम० ए०

अन्तः और वाह्य दोनों साक्ष्यों के आधार पर अब तक सिद्ध हो चुका है कि हिन्दी काव्य की परम्परा सातवीं शताब्दी से चली आ रही है—यह अवश्य है कि कहीं पर उसकी गति मन्द और कहीं तीव्र रही पर उसका विकास अविरल और अबाध्य रहा है।

साहित्यैतिहासकारों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभक्त किया है—

१—आदि काल (वीरगाथाकाल) लगभग संवत् १००० से १३७५ तक।

२—पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल) सं० १३७५-१७०० तक

३—उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) सं० १७०० से १९०० तक।

४—आधुनिक काल सं० १९०० से वर्तमान काल तक।

हिन्दी—आदि काल की पीठिका के रूप में इतिहासकारों ने 'जैन' 'सिद्ध' और नाथ साहित्य को लिया है जो विशेष रूप से धार्मिक साहित्य है। सिद्ध साहित्य का विस्तार ७वीं शताब्दी विक्रमीय के उत्तरार्द्ध से लेकर १२ वीं शताब्दी वि० पर्यन्त हैं। हिन्दी कविता का आदि रूप नालन्दा और विक्रमशिला के सिद्धों द्वारा बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्व के प्रचार की भाषा में मिलता है। इन सिद्धों की संख्या ८४ थी और वे जनता में अपने धर्म प्रचार के लिए किसी सुसंस्कृत भाषा का प्रयोग न कर जनता की भाषा का ही प्रयोग करते थे। यह भाषा मागधी अपभ्रंश से निकली हुई मगही है; जो कि आदि हिन्दी की एक जन बोली है। इसके प्रथम कवि सरहपाद या सरहा है—इनका समय डा० विनयतोष भट्टाचार्य के मतानुसार सं० ६९० है।

हिन्दी की कविता जनता की भाषा से सम्बन्ध रखती थी अतएव साहित्य क्षेत्र में वह उपेक्षा की दृष्टि से देखी गई इसीलिए उसके अवतरणों का मिल पाना एक दुर्दय समस्या बन गयी है। भोटिया में अनुवादित ग्रन्थावली जो कि भोटिया ग्रंथ संग्रह तनजूर में सुरक्षित हैं—से सरहयाद की कविता का एक उद्धरण इस प्रकार है—

> जह मन पवन न सञ्चरइ रवि शशि नाह पवेश।
> तहि वट चित्त विसाय करु सरहे कहि अउवेश
> पण्डिअ सअल सत्थ वक्खाणइ
> देहहि बुद्ध वसन्त न जाणइ।"

श्री काशी प्रसाद जयसवाल के अनुसार सं० ६५७ के लगभग यह भाषा मिथिला के आस-पास 'संध्या' भाषा के नाम से प्रचलित थी। सिद्धों के इस कवि परम्परा में लुइया, विरूया कराहया, कुक्कुरिया आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जैन साहित्य (सं० १०००-१२०० तक) विशेष रूप से धार्मिक साहित्य है जो कि अपभ्रंश से निकली प्राचीन हिंदी में है। प्रारम्भिक जैन साहित्य में दोहा चौपाई पद्धति पर चरित्र काव्य या आख्यानक काव्य का निर्माण हुआ। जैन धर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के कवियों में पुष्पदन्त, चन्द्रमुनि, योगचन्द्र मुनि, हेमचन्द्र, सोमप्रभ सूरि मेरुतुङ्ग और शार्ङ्गधर आदि का नाम लिया जा सकता है, पर हिन्दी साहित्य के परवर्ती कवि सूर और तुलसी की भाँति इनमें कोई बड़ा कवि नहीं हुआ। कारण इन

सबका उद्देश्य आदर्श धर्म की व्याख्या करना था; काव्य का श्रृंगार नहीं।

यद्यपि इस काल में कहीं-कहीं गद्य के भी दर्शन हो जाते हैं, पर जैन साहित्य प्रधानतः काव्यात्मक और व्याकरण के नियमों में बँधा हुआ है। संस्कृत शब्दों का प्रारम्भ में प्रयोग नहीं होता था, किन्तु कालान्तर में संस्कृत शब्द रखने का संकोच उठ गया। जैन काव्य में विशेषरूप से शान्त रस की धारा प्रवाहित होती हैं। श्रृंगार अथवा अन्य रसों का प्रायः अभाव सा है। छन्दों का प्रयोग विविध रूपों में हुआ है। चरित्र, रास, चतुष्पदी, चौढ़ालिया, ढाल सिज्झाय, कवित्त, दोहा आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

सिद्ध और जैन साहित्य के बाद आदि काल का धार्मिक साहित्य नाथ साहित्य है। नाथ पन्थ का सम्बन्ध बौद्धों की वज्रयान शाखा से है। नाथों की संख्या प्रधानतः ९ मानी जाती है, जिनमें गोरखनाथ, चर्पट, जड़भरत, सत्यनाथ, भीमनाथ और मलयार्जुन प्रमुख हैं। नाथ पंथियों के ८४ सिद्ध भी कहे जाते हैं, जिनमें से अनेक वज्रयानी परम्परा में हैं। इस संप्रदाय के कवि रूप में विशेष रूप से गोरखनाथ का नाम लिया जा सकता है, पर काव्य सौंदर्य की कसौटी पर उनकी कविता को कसा नहीं जा सकता क्योंकि नाथ पंथियों में साम्प्रदायिक प्रवृत्ति, तन्त्र विधान, योग साधना आत्मनिग्रह सम्बन्धी बातों की प्रधानता है, मानव हृदय की अनुभूतियों और उनके विविध पन्थों से उनका कोई सम्बंध नहीं है।

इस सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य से पुरानी हिन्दी को विकास का अवसर मिला अर्थात् वैदिक-पाली-प्राकृत जैसी श्लिष्ट भाषाओं से उत्पन्न अश्लिष्ट भाषा अपभ्रंश का जन्म हुआ और उससे हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ।

आदिकाल में लौकिक साहित्य के रूप में डिंगल और पिंगल नाम की दो साहित्य धारायें मिलती हैं। अपभ्रंश के अंतिम काल (ईसा की दशवीं शताब्दी के लगभग) के बाद काव्य परम्परा के आधार पर इनका विभाजन हुआ है। राजस्थान में नागर अपभ्रंश से प्रभावित हिन्दी के साहित्य रूप का नाम 'डिंगल' है जो अनियमित और 'पिंगल' से प्राचीन मानी जाती है। 'पिंगल' मध्यदेश की साहित्यिक ब्रजभाषा का नाम था, जिसमें डिंगल की अपेक्षा शास्त्रीय नियमों का पालन अधिक हुआ है। डिंगल काव्य पिंगल काव्य से अधिक प्राचीन है इसमें स्फुट, स्तुतिपरक, भक्ति और श्रृंगार से पूर्ण रचनाएँ मिलती हैं। डिंगल साहित्य की दो कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

१—श्रीधर कृत 'रणमल्ल छंद' (१४०० ई० के लगभग)

२—ढोलामारूरा दोहा (१४७३ ई० के लगभग)

ये दोनों कृतियाँ वीरगाथा काल की न होने के कारण आदि कालीन हिन्दी साहित्य में अपना कोई स्थान नहीं रखतीं।

'मिश्र बन्धु विनोद' के प्रारम्भ में आदिकालीन सात डिंगल कवियों का नामोल्लेख किया गया है जिनमें पुन्ड या पुष्य का नाम शीर्षस्थ है। डिंगल साहित्य का आदि कवि इन्हें ही कहा गया है; पर इन कवियों की कोई भी रचना अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाई है। यदि हुई भी है तो उसके पर्याप्त प्रमाण नहीं मिल सके हैं।

लौकिक साहित्य के अन्तर्गत कुछ ऐसी रचनाओं की गणना भी की जाती है, जो उपलब्ध हैं, उनके रचयिताओं के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ ज्ञात है, किन्तु पाठ, काल और तिथियों आदि की दृष्टि से अनेक संदिग्ध स्थल मिलते हैं। उस प्रकार के साहित्य को संदिग्ध साहित्य कहा जा सकता है। आदि काल से सम्बन्धित जो वीर गाथात्मक रचनाएँ मिलती हैं, उन्हें 'रासो' कहा जाता है। रासो ग्रंथ मुख्य रूप से इस काल के तीन हैं [१] बीसलदेव रास [२] खुमानरासो ३ पृथ्वीराज रासो। क्रमशः तीनों ग्रन्थों के रचयिता कवियों का नाम इस प्रकार हैं [१] नरपति नाल्ह [२] ब्रह्मभट्ट (?) अथवा दलपति विजय मोतीलाल मेनाटिया ने दलपति विजय का समय विक्रम संवत् की १८ वीं शती सिद्ध करके खुमान रासो का रचयिता ब्रह्म भट्ट को मानते हैं।

३—चन्द वरदाई (अन्तिम दस सर्गों के रचयिता चन्दवरदाई के सुपुत्र जल्हण कहे जाते हैं)

'पृथ्वीराज रासो' और 'बीसलदेव रासो' इस काल की अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाएँ मानी जाती हैं। 'पृथ्वीराज रासो' ढाई हजार पृष्टों का हिन्दी (डिंगल साहित्य) का प्रथम

महाकाव्य माना जाता है। यह ६९ समयों अथवा सर्गों में समाप्त हुआ है। अपने वर्तमान रूप में यह एक व्यक्ति प्रधान महाकाव्य है। रस की घटनाएँ सम्राट पृथ्वीराज के चारों ओर उनके जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त घूमती रहती हैं। पृथ्वीराज इस काव्य चक्र के धुरी हैं। मोहम्मदगोरी उनका प्रमुख शत्रु है। अनेक प्रेमिकाओं के होते हुये संयोगिता' उनकी प्रमुख प्रेमिका है। अनेक बार विजयी होने पर भी शब्द-वेधी बाण से गोरी की हत्या करना उसकी सबसे बड़ी विजय है। अपने जीवन मे जिस क्षत्रियोचित वीरता, उदारता, शरणागत वत्सलता और प्रेम भावना का परिचय पृथ्वीराज ने दिया, अपनी मृत्यु से भी वह उस राजपूती शान की झलक दिखा गया। इस प्रकार रासो के इस नायक में राजपूतों की समस्त चित्त-वृत्तियाँ प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसी स्थिति रासो चाहे कितनी ही बार अप्रामाणिक क्यों न सिद्ध हो जाय, पर हिन्दी में जब कभी महाकवियों का नाम लिया जाएगा तो चन्द वरदाई का नाम सर्व प्रथम जिह्वाग्र पर नाच उठेगा।

'बीसलदेव रास का' में यद्यपि अनेक संदेहात्मक स्थल हैं फिर भी रासो परम्परा में यह पहला प्रामाणिक ग्रन्थ' है। यद्यपि रस की रचना तिथि के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं हैं फिर भी १२७२ (सं०) की ओर विद्वानों का झुकाव अधिक था, किन्तु डा० माता प्रसाद गुप्त ने इधर ऐतिहासिक तथ्यों, भाषा, ग्रन्थ से उल्लिखित स्थानों आदि पर विचारकर ग्रन्थ की रचना तिथि सं० १३६९ वि० माना है।

बीसलदेव रास के कुल मिलाकर ५०० से अधिक छन्द मिलते हैं किन्तु डा माता प्रसाद गुप्त १२८ छन्द ही प्रमाणित माने हैं। बीसलदेव रास की कथा चार खंडों में विभाजित है। पहले खंड न मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती और बीसलदेव का विवाह दूसरे खंड में बीसलदेव का राजमती से रूठकर उड़ीसा की ओर प्रस्थान, तीसरे खंड म राजमती के विरह विलाप, उसके पास संदेशा भेजना तथा बीसलदेव के घर वापस आने एवं अन्तिम चौथे खण्ड में भोज परमार का अपनी पुत्री को अपने घर ले जाना और बीसलदेव ससुराल जाकर राजमती को पुनः चित्तौड़ वापस लाने का वर्णन है। रचना शृंगार रस प्रधान है बिप्रलम्भ का परिपाक अच्छा हुआ है। बीसलदेव रास प्रेम और शृंगार प्रधान काव्य होने पर भी अपनी कतिपय मौलिक घटनाओं के कारण वीर काव्यों की कोटि में रक्खा जाता है।

इस काल के चौथे और प्रमुख कवि जगनिक या जननायक (११७३) हैं इनका ग्रन्थ आल्ह खण्ड कहा जाता है पर इस ग्रन्थ के ठीक-ठीक रूप का पता नहीं चलता—क्योंकि इसकी प्रामाणिक प्रति उपलब्ध नहीं है। मौखिक रूप मे यह गाया जाता रहा है। १९वीं शताब्दी ई के सातवें दशक में चार्ल्स इलियट ने इसका संकलन कर संपादन किया ग्रन्थ न देश के दो प्रसिद्ध वीरों—आल्हा और ऊदल (उदय सिंह) के वीर कृत्यों का वर्णन है। इस ५२ युद्धों की गाथा बड़ी ही ओजपूर्ण शैली में गाई गई है। पुनरुक्तियों, वस्तुओं की लम्बी सूचियों और अतिशयोक्तियों के कारण कथा-विकास में असम्बद्धता और शैथिल्य आ गया है।

वीर-गीतों और वीर गाथाओं की प्रधानता के कारण इस युग को वीर गाथा-काल अवश्य कहते हैं, पर इसमें शृंगारी और अन्य भावों को अभिव्यक्ति देने वाले कवि भी हुए। विद्यापति और अमीर खुशरो ऐसे ही कवि हैं।

विद्यापति का जन्म चौदहवीं शताब्दी में हुआ। उनकी १२ रचनाओं में 'कीर्तिलता' और 'कीर्त्तिपताका' प्रमुख हैं। विद्यापति की पदावलियाँ तीन प्रकार की हैं--

(१) राधा कृष्ण की प्रणय लीला सम्बन्धी
(२) वन्दना और नचारी संबंधी
(३) विविध विषयों से सम्बन्धित।

सामान्य दृष्टि से विद्यापति एक शृंगारी कवि ही प्रतीत होते हैं, परन्तु इनकी शिवभक्ति भी अत्यन्त प्रसिद्ध है।

वीरगाथा काल की संध्या में अमीर खुसरो ने साहित्य को विविध रंगों से रंजित किया। खड़ी बोली हिन्दी काव्य के विकास की चर्चा के समय अमीर खुशरो का नाम श्रद्धा से हमेशा लिया जायगा। अमीर खुशरो ही वह पहले कवि हैं जिन्होंने डिंगल और अपभ्रंश से निकली हुई हिन्दी म काव्य रचना न करक जनभाषा खड़ी बोली हिन्दी में की। यह एक क्रांति थी।

चारण कालीन रक्त रञ्जित इतिहास जब परिचय के चारणों की डिंगल कविता उद्धव स्वरों न गूंज गई थी और उसकी

प्रति ध्वनि अभी भी शेष थी, पूर्व में गोरखनाथ की गम्भीर धार्मिक प्र त्ति, आत्मशासन की शिक्षा दे रही थी, उस काल मे अमीर-खुशरो की विनोदपूर्ण कविता हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक विशेष िवि है । उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ ढकोसले, दो स ुने आदि लिखने वाला मनोरञ्जन और रसिकता का अवतार यह कवि अमीर खुशरो अपनी मौलिकता के लिए सदैव स्मरण रहेगा ।

अमीर खुशरो के समय न प्रेम कथाकार मुल्लादाऊद का नाम भी आता है। इन्होंने 'नूरक और चंदा की प्रेमकथा' लिखकर हिन्दी साहित्य न अमरत्व ले लिया है ।

वीरगाथा काल से सम्बंधित सम्पूर्ण साहित्य उपलब्ध न होने के कारण उसका पूरा चित्र आँखों के सामने उतार पाना कठिन ही नहीं असम्भव है ।

पूर्व मध्य काल या भक्ति काल

(सं० १३७५, सं० १७०० तक)

भक्तिकाल हिन्दी काव्य का स्वर्ण युग है। संवत् १३७५ से सं० १७०० वि० इस ४२५ वर्षों के इस लम्बे युग ने कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसी प्रतिभाओं को देकर हिन्दी साहित्य को विश्व-साहित्य में खड़े होने का अवसर दिया है ।

भक्ति भावना की दृष्टि से इस युग का साहित्य दो धाराओं मे विभक्त किया जा सकता है ।

(१) निर्गुणोपासना धारा
(२) सगुणोपासना धारा

निर्गुणोपानना धारा के अन्तर्गत दो प्रकार के भक्त पाए जाते हैं ।

(अ) रामाश्रयी भक्त
(ब प्रेमाश्रयी भक्त

ज्ञानाश्रयी में कबीर, नानक, दादू और पलटू आदि का नाम उल्लेखनीय हैं ।

प्रेमाश्रयी भक्तों में मलिक मोहम्मद जायसी, कुतबन, मंझन शेखनबी और शेखतकी उस्मान का नाम प्रमुख है ।

काव्य में निर्गुण के उपासक रहस्यवादी कवि कहलाए और सगुण के भक्त । इसीलिए कबीर और जायसी रहस्यवादी हैं, सूर और तुलसी भक्त ।

प्रेमाश्रयी और कवियों की भक्ति में अंतर यह है कि प्रेमाश्रयी कवियों ने सूफियों की उपासना पद्धति को अपना कर उन्होंने आत्मा को और परमात्मा का नायिका के रूप में माना । ज्ञानाश्रयी भक्त कवियों की उपासना पद्धति भारतीय रही उन्होंने आत्मा को नायिका और परमात्मा को नायक के रूप में ग्रहण किया है । ज्ञानाश्रयी भक्त कवि कबीर ने अपने भावा का विवेचन सी। (Dire t किया है। जायसी ने पात्रों के माध्यम से । कबार अद्वैतवादी हैं और जायसी प्रतिबिम्बवादी । कबीर संसार को माया का प्र ार मानते हैं और जायसी उसे परम सुन्दर की छाया । इसी से कबीर संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न करते हैं और जायसी अनुरक्ति । कबीर की सम्पूर्ण वाणी बीजक में संगृहीत है 'सबद रमैनी' साखियों के रूप में । जायसी की कृतियां हैं-- 'पद्मावत' 'आखरावट' और 'आखरी कलाम ।' 'अखरावट' मे वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सूफी सिद्धान्तों का चौपाइयों में वर्णन है 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन किया है। ये दोनों ही ग्रन्थ अत्यंत लघुकाय हैं । 'पद्मावत' एक महाकाव्य है पद्मावत की रचना ९२७ हिजरी (१५२० के लगभग) मे प्रारम्भ हुई थी और सम्भवतः १९ या २० वर्ष पश्चात् शेरशाह के शासनकाल (९४७ हिजरी या १५४० के लगभग) में वह पूर्ण हुआ ।

पद्मावत की रचना संस्कृत की सर्गबद्ध शैली में न होकर फारसी की मसनवी शैली के आधार पर हुई है। इसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती के प्रेम का वर्णन है । पद्मावती का संपूर्ण कथानक दो भागों में विभक्त किया जा सकता है -[१] पूर्वार्द्ध, [२] उत्तरार्द्ध । विवाह तक की कथा (पूर्वार्द्ध) पूर्ण रूप से काल्पनिक है। उत्तरार्द्ध (अलाउद्दीन के साथ संघर्ष) इतिहास पर आधारित है। कथा के लोक और अध्यात्म दोनों पक्ष हैं। लोक पक्ष में वह एक सुन्दर प्रेम कथा है । अध्यात्म पक्ष की दृष्टि से राजा रत्नसेन भक्त हैं, रानी पद्मावती ईश्वर हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए वह घरबार छोड़कर और अनेक कष्ट सहन करता हुआ निकल पड़ता है । हीरामन तोता गुरु हैं और अलाउद्दीन राक्षस । इस प्रकार जायसी ठेठ अवधी में लिखे गए इस महाकाव्य में भारतीय कथा के माध्यम द्वारा आध्यात्मिक अभिव्यञ्जना की

है और साथ ही सूफी सिद्धांतों की एक रूपरेखा भी प्रस्तुत की है।

इसके बाद प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा में कुतुबन ने 'मृगावती' मंझन ने 'मधुमालिती', उसमान ने 'चित्रावली', शेखनबी ने ज्ञानदीप आदि काव्य लिखे।

निर्गुण की भाँति ही सगुणोपासक काव्य की दो धारायें बनी। १-कृष्ण भक्ति उपासनाधारा २-राम भक्ति उपासना धारा।

कृष्णभक्ति धारा के प्रमुख कवि—सूरदास, मीराबाई, नन्ददास और रसखान हुए। विद्यापति कृष्ण भक्ति धारा के आदि कवि थे। इनका समय सं० १३६८ से सं० १४७५ है। 'शैव सर्वस्वसार', 'पुरुष परीक्षा', 'लीखनावली' 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी', आदि ११ ग्रन्थ संस्कृत में तथा 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' अवहट्ठ में है।

विद्यापति के पद या तो राधाकृष्ण के प्रेमपूर्ण मिलन के श्रृंगार सम्बन्धी पद हैं या शिव प्रार्थना के रूप में भक्ति सम्बन्धी। कुछ पद तत्कालीन परिस्थितियों के चित्रण में काल सम्बन्धी भी हैं। विद्यापति शैव थे। जहाँ तक उनके कृष्ण सम्बन्धी पदों का रूप है, उनमें श्रृंगार, विलास और भौतिक प्रेम है। उन्होंने वयः सन्धि, नखशिख अभिसार, मान, विरह और संयोग आदि के वर्णन में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है। उनके पदों में व्यक्तिगत अनुभूति, भावोन्माद, सूक्ष्मता आदि के रूप में गीतिकाव्य के लक्षणों और संगीतात्मकता का सुन्दर समन्वय मिलता है। उनकी भाषा मैथिली है। पदों के अतिरिक्त विद्यापति की नचारियाँ भी प्रसिद्ध हैं जो शिव की भक्ति में नृत्य के साथ पाई जाती हैं।

विद्यापति के कोकिल कण्ठ से मिथिला की अमराइयों में कूकी जाने वाली कृष्ण लीला का व्रज के निकुञ्जों में गाने करने वाले इस धारा के दूसरे कवि व्रज भाषा शिरोमणि सूरदास थे। सूरदास की भक्ति सख्य भक्ति थी। ये 'अष्टछाप' के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि थे। जिस समय महाप्रभु वल्लभाचार्य से उनकी भेंट हुई उस समय वे विनय के पद गाते थे, अत्यन्त दीन भाव प्रकट कर संसार की निस्सारता का अनुभव करते थे—

'झूठ ही लगि जनम गायो'

किन्तु महाप्रभु ने 'घिघियाना' छुड़वाकर उन्हें गोपाल कृष्ण की भक्ति की ओर उन्हें उन्मुख किया और उन्होंने वात्सल्य भाव का गायन किया। बाद में महाप्रभु के पुत्र स्वामी विट्ठलनाथ से प्रभावित हो कांतरा भाव या माधुर्य भाव से प्रेरित होकर श्री कृष्ण की लीला में राधा को भी सम्मिलित कर लिया। उनकी रचनाओं में शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य (श्रृंगार-भक्ति) पाँचों प्रकार के भक्ति भाव समाविष्ट हैं, किन्तु माधुर्य सम्बन्धी अंश सबसे अधिक है। उससे कम वात्सल्य सम्बन्धी अंश है। बालकृष्ण को उन्होंने प्रेम और माधुर्य की मूर्ति के साथ-साथ शक्ति का प्रतीक भी माना है। उन्होंने भगवान को विषय रूप आलंबन के रूप में देखा है। बालकृष्ण के प्रति सूर ने आत्मसमर्पण कर दिया है। उनका बाल वर्णन मन को मुग्ध कर लेता। बालक कृष्ण के विविध रूपों द्वारा उन्होंने अनेक मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। वात्सल्य रस का ऐसा अनूठा चित्रण विश्व साहित्य में शायद ही किसी दूसरे की लेखनी से हुआ हो, अन्यथा सूरदास की इस रस-क्षेत्र पर बपौती सी है।

भाषा और भाव की दृष्टि से सूर अत्यन्त उच्चकोटि के कवि हैं। इन्होंने व्रज भाषा के मुक्तक काव्य और गीति तत्त्व के सहारे कृष्ण काव्य की एक विशेष परम्परा को जन्म दिया। उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टांत, लोकोक्ति, अतिशयोक्ति, और रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग सूरदास ने रूप माला, गीतिका, विष्णुपद, सरसीसार, वीर, लावनी, चन्द्र, हरिप्रिया, हंसाल, मत्त सवैया आदि छंदों में बड़ी ही विदग्धता से किया है। 'सूर सागर', 'साहित्य लहरी' और 'सूर-सारावली' उनकी अन्यतम कृतियों का संग्रह है। 'सूर सागर' उनका अन्यतम प्रबन्ध काव्य है।

नन्द दास का स्थान अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद दूसरा है। नन्ददास का प्रमाणिक जीवन अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। खोजों के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि ये तुलसी के चचेरे भाई और सूर के समकालीन थे। नन्ददास के लगभग १६ ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें से 'अनेकार्थ मंजरी' 'नाम माला या नाम मञ्जरी' 'रास

पंचाध्यायी' और 'भँवर गीत' अत्यंत प्रसिद्ध हैं।' पहले दो कोष हैं। 'रास पञ्चाध्यायी' में भागवत के आधार पर रास का वर्णन है और 'भँवर गीत' में सगुण और निर्गुण पर उद्धव-गोपी-संवाद हैं। काव्य सौंदर्य की दृष्टि से ये दो रचनाएँ ही मुख्य हैं।

मीरा का कृष्ण भक्ति परम्परा में अद्वितीय स्थान है। हिन्दी काव्य की कोकिला मीरा ने माधुर्य भाव (दाम्पत्य भाव) से भक्ति भावना ग्रहण कर, स्वयं विरहिणी बनकर अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण से विरह की भिक्षा माँगी। उनके पदों में वे पद मुख्य हैं, जिनका सम्बन्ध प्रेम से है और जिनमें उनके वास्तविक उद्‌गार पाए जाते हैं। उन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की लौ जलाई और अपने अंतरतम की पीड़ा को सरसतम शब्दों में व्यक्त किया। उनके पदों में गेय तत्त्व 'तीव्रानुभूति की प्रधानता, अंतर्मुखीपन, स्वच्छन्दता, सरलता और संक्षिप्ति एक साथ मिलते हैं। गीति काव्य की दृष्टि से मीरा की रचनाएँ आदर्श हैं।

सुजान रसखान इस बात के प्रमाण हैं कि कृष्ण भक्ति के अंतर्गत मधुर भाव ने सब प्रकार के बंधन तोड़कर अन्य धर्मावलंबियों को भी आकृष्ट किया। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ 'प्रेम बाटिका' और 'सुजान रसखान' हैं। अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भाँति उन्होंने 'गीति काव्य' का सहारा न लेकर कवित्त सवैयों में सच्चे प्रेम की अभिव्यंजना की है। 'प्रेम बाटिका' में दोहे और 'सुजान रसखान' में कवित्त सवैये हैं। उनकी रचनाओं में व्रजभाषा का सहज और स्वाभाविक रूप मिलता है।

कृष्ण काव्य काल में चाचा हित वृन्दावन नरोत्तमदास, गंग, बलभद्र मिश्र, रहीम और सेनापति आदि और कवि हुए जिन्होंने सामान्य भक्तिपरक अथवा कृष्ण सम्बंधी या अन्य प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इन कवियों की रचनाओं का समय अकबर का राजत्त्व काल है।

राम भक्ति धारा

उस धारा के गोस्वामी तुलसीदास, केशवदास, प्राणचंद अग्रदास, नाभादास और लालदास आदि अनेक कवि हुए, पर इनमें शीर्षस्थ स्थान तुलसीदास और केशवदास को ही प्राप्त है। गोस्वामी तुलसीदास मात्र राम भक्ति के कवियों में ही नहीं समूचे हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। विश्व-साहित्य में भी उनका एक नियत स्थान है।

तुलसीदास के प्रमुख ग्रंथ 'रामचरित मानस', 'विनय पत्रिका', 'कवितावली', 'दोहावली' और 'गीतावली' हैं। इन सबका शिरमौर काव्य 'राम चरित मानस' महाकाव्य है। 'रामचरित मानस में कवि ने भारतीय संस्कृति, मर्यादा की प्रतिष्ठा की है जिसमें उपनिषद्, वेद-पुराण आदि समस्त भारतीय दर्शन का समन्वय है। तुलसी का यह सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।

साहित्य की दृष्टि से तुलसीदास ने अपने समय तक की प्रचलित सभी काव्य शैलियों में साधिकार अपनी लेखनी दौड़ाई थी। वे मानवता के सजग प्रहरी और हिन्दू संस्कृति के प्राण थे। राम, भरत, सीता, कौशल्या और दशरथ आदि आदर्श चरित्रों की स्थापना द्वारा उन्होंने जनभाषा अवधी के माध्यम से घर-घर में, ज्ञान-संस्कृति और दर्शन का दीप जलाना चाहा था।

इस धारा के दूसरे प्रमुख कवि केशवदास हैं। इन्होंने साहित्य की मीमांसा शास्त्रीय पद्धति पर कर काव्य-रचना का पांडित्य पूर्ण आदर्श रक्खा। इन्होंने जहाँ एक ओर राम काव्य के अंतर्गत 'रामचंद्रिका' की रचना की, वहाँ रीति काव्य के अंतर्गत कविप्रिया और 'रसिकप्रिया' की भी रचना की। साथ ही इन्होंने चरण काल के आदर्शों को ध्यान में रखकर 'जहाँगीर-जस चंद्रिका' और 'वीरसिंह देव चरित' भी लिखे।

'राम चंद्रिका' का इनकी सम्पूर्ण रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। 'रामचंद्रिका', 'रामचरितमानस' की भाँति न तो धार्मिक ग्रन्थ है न दार्शनिक ग्रन्थ। उसमें लोक-शिक्षा का रूप भी नहीं है। उसमें राम कथा को सांगोपांग दृष्टि से महत्त्व नहीं मिला, वरन् उन्हीं अंशों को महत्त्व मिला है जिनमें अलंकार कौशल का वाग्विलास प्रदर्शित किया जा सकता था।

भक्ति काल इस प्रकार राम और कृष्ण सम्बंधी काव्य कृतियों का एक समृद्ध भंडार है। जिसमें भारतीय दर्शन, साहित्य और संस्कृति का दर्शन किया जा सकता है।

उत्तर मध्य काल

(रीति काल संवत् १७००—१९०० तक)

हिन्दी साहित्य का 'रीतिकाल' भक्तिकाल का ह्रास-युग है। धार्मिक आंदोलन की पवित्रता तो सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही नष्ट हो चली थी। प्रेम और ऐहिकता परक शृंगार के प्राधान्य से वासना को प्रश्रय मिला। राधा और कृष्ण का लीला रूप अब कवित्त और सवैयों में रस अलंकार और नायक-नायिका के रूप में आने लगा।

भक्ति काल के अंत तक हिन्दी काव्य समृद्ध हो चला था; अतः कवियों की दृष्टि अब काव्याङ्गों के विश्लेषण की ओर गई। काव्य में रस, अलंकार, छंद, नायिका-भेद, शब्द शक्ति, नख-शिख और ऋतु वर्णन आदि के निरूपण करने वाले काव्य-ग्रन्थ निर्मित होने लगे। रस, अलंकार और काव्य-शास्त्र संबंधी ग्रन्थों का प्राधान्य होने से इस काल को 'रीतिकाल' की संज्ञा दी गई। (क्योंकि इस अलंकार और काव्याँगों का निरूपण करने वाले ग्रन्थ 'रीति ग्रन्थ' कहे जाते हैं) हिंदी रीति-साहित्य अधिकांशतः संस्कृत काव्य शास्त्र पर आधारित है।

रीतिकाल की कविता के वर्ण्य विषय को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वह साहित्य जिसे 'रीतिकाव्य' कहा जा सकता है और द्वितीय वह साहित्य जिसे रीति मुक्त काव्य कहा जाता है। इन दोनों प्रकारों के साहित्य में कवियों ने शृंगारी भावना को प्रधानता दी। पूरा रीतिकालीन साहित्य नायक-नायिकाओं की प्रेम-कथा है। भूषण, लाल और सूदन साहित्यमहारथियों के काव्य साहित्य को अपवाद स्वरूप छोड़कर।

रीति-काल एक प्रकार से भक्तिकाल की तीव्र प्रतिक्रिया मे उत्पन्न हुआ था। इसी से इसमे अध्यात्म के स्थान पर लौकिक भावनाओं को प्र ुखता मिली, कवियों की दृष्टि मोक्ष की अपेक्षा धरती के सुखोपभोग की ओर झुकी। यही कारण है इस काल के काव्य म न शैशव है न वृद्धावस्था। वयः सन्धि से लेकर प्रौढ़ावस्था तक सौन्दर्य और आनन्द (वासनापूर्ण) की अभिव्यक्ति इस साहित्य में हुई है। सांसारिक वभवो के बीच की कामिनी की कमनीयता ही उनके नयनों का अमृत है। रीतिकालीन काव्य-जीवन अपने समस्त पार्थिव सौन्दर्य को नारी के साहचर्य में केन्द्रित किये हुये है। पूरा साहित्य ऐन्द्रिय मूलक शृंगार से ओत-प्रोत है।

शृंगार, रीति युगीन काव्य का प्रधान रस है। वीर और हास्य की झलक भी मिलती है पर अपवाद स्वरूप ही। कवित्त, सवैया और दोहा इन तीन छन्दों में ही विशेष रूप से इस युग का समूचा काव्य-साहित्य पिरोया हुआ है। कला की दृष्टि से व्रजभाषा इस युग में अपने पूर्ण विकास को पहुंच गई।

चिन्तामणि त्रिपाठी, महाराज जसवन्त सिंह, बिहारी, मतिराम, भूषण, देव, भिखारी दास, पद्माकर, कुलपति मिश्र, आलम, घनानन्द, ठाकुर और बोधा आदि रीति काल के प्रमुख कवि हैं।

विद्वानों ने चिन्तामणि त्रिपाठी से हिन्दी रीति परम्परा का श्री गणेश माना है। लगभग १६४३ में इन्होंने 'काव्य-विवेक' 'कवि कुल कल्पतरु' और 'काव्य प्रकाश' रीति ग्रन्थों के निर्माण के साथ-साथ पिंगल या छन्द शास्त्र पर भी एक ग्रन्थ लिखा। इनकी गणना व्रज भाषा के आचार्यों में की जाती है।

महाराज जशवन्त सिंह आचार्य पहले थे और कवि बाद में। 'भाषा भूषण' ब्रज भाषा में उनका प्रसिद्ध अलंकार ग्रन्थ है, जिसमें जयदेव कृत 'चन्द्रालोक' के अनुकरण पर एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनों दिये गये हैं।

बिहारी रीति काल के रस सिद्ध मुक्तककार हैं। सतसई परम्परा में बिहारी की सतसई का स्थान प्रमुख है। मानवी-प्रकृति के सुकुमार चितेरे के रूप बिहारी ने 'गागर में सागर' भर दिया है। भाव-व्यंजना और शब्द विन्यास की दृष्टि से इनका यह ग्रन्थ अपूर्व है; कल्पना शक्ति के साथ-साथ बिहारी की रचना में समास-शक्ति की भी प्रधानता है। यद्यपि बिहारी के दोहे 'आर्या सप्तशती' और 'गाथा सप्तशती' की परम्परा में लिखे गये पर इनकी अपनी एक निजी कृष्टि है। बिहारी की रचना म यद्यपि शृंगार रस की प्रधानता है, पर भक्ति, वैराग्य और नीति सम्बन्धी दोहे भी उन्होंने लिखे हैं।

'ललित ललाम', 'छन्दसार' 'साहित्यसार' 'रसराज' 'लक्षण शृंगार' और 'अलंकार पंचाशिका' मतिराम की कृतियाँ हैं। 'ललित ललाम' और 'रसराज' को बड़ी ख्याति मिली है। इन दोनों ग्रन्थों में क्रमशः और रस का निरूपण हुआ है। इन दोनों ग्रन्थों में मतिराम के आचार्यत्त्व की अपेक्षा उनका कवित्त्व ही प्रधान है।

भूषण रीति काल के एक क्रान्तिदर्शी कवि थे। उन्होंने नारीत्त्व प्रधान युग में वीर रस की धारा प्रवाहित कर तत्कालीन हिन्दी साहित्य को एक पुरुषोचित नया मोड़ दिया है उनकी वीर भावना अत्यन्त व्यापक थी। उनका वीर-काव्य केवल किसी एक आश्रय दाता को प्रसन्न करने वाला नहीं था। उन्होंने उन वीरों (छत्रपति शिवाजी और महाराज छत्रसाल) का यशोगान कि जिनके साथ सारी हिन्दू जाति की भावनाएँ सम्बद्ध थीं। वे हिन्दू जाति के तत्कालीन प्रतिनिधि कवि थे। 'शिवराज भूषण', 'शिवा-बावनी' और 'छत्रसाल दशक' उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। 'शिवराज भूषण' उनका सुख्यात रीति ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में अलंकारों के उदाहरण स्वरूप कविताओं और सवैयों में शिवाजी के ओजपूर्ण व्यक्तित्त्व का उन्होंने वर्णन किया है।

देव शृंगार काव्य के एक उत्कृष्ट कवि थे। प्रेम की सुकुमार अवस्थाएँ मार्मिक अनुभूतियों, रसजनित आनन्द एवं मधुरता का अत्यन्त मनोरम चित्रण देव की कविता में मिलता है। कवि काव्यशास्त्र के साथ-साथ संगीत शास्त्र का भी अच्छा ज्ञाता था। इस कारण उसकी कविता में शब्दों की योजना अत्यन्त सुथरी एवं कोमल संगीतमय है। भाव-विलास, अष्टयाम, भवानी विलास, शब्द रसायन आदि इनकी उच्चकोटि की प्रमुख रचनाएँ हैं।

रीति के अन्तिम और प्रसिद्ध कवि पद्माकर हैं। 'हिम्मत-बहादुर विरदावली', 'जगद्विनोद और 'पद्माभरण' उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उत्तर कालीन कवियों में पद्माकर का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। शृंगार को रसराज मानकर उन्होंने रस, भाव और नायिका भेद का वर्णन किया है। कवि रूप में पद्माकर की ख्याति का मुख्य स्तम्भ 'जगद्विनोद' है। 'जगद्विनोद' में शृंगार रस का अत्यन्त सुन्दर निरूपण हुआ है। मधुर कल्पना, सजीव मूर्ति-विधान, प्रवाह, शब्द विन्यास, अनुप्रास; शब्द मैत्री, ध्वनि साम्य उत्पन्न करने वाले शब्दों आदि का प्रयोग उनकी साहित्यिक ब्रजभाषा की अपनी विशेषता है। उनकी कविता में लाक्षणिकता एक बड़ा भारी गुण है।

उपरिवर्णित प्रमुख कवियों के अतिरिक्त इस काल के और अनेक कवि हैं—यथा—मंडन, सुखदेव मिश्र, रामनेवाज, श्रीधर, सूरति मिश्र, कवीन्द्र, वीर, कृष्ण, रसिक गंजन, भूपति, तोषनिधि, सोमना कुमारमणि, रुपसाहि, नाथ, मनीराम, चन्दन, भान रामसिंह, गुरुदीन और ब्रह्मदत्त आदि।

आधुनिक काल

(सं० १९०० से अब तक)

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी कविता का एक नया युग प्रारम्भ होता है। भारतेन्दु का आविर्भाव हिन्दी जगत् के लिए उस नये युग की दुन्दुभी है। वे हिन्दी के आधुनिक युग के जनक हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से राजनीति, धर्म, विज्ञान, शिक्षा, समाज—सभी क्षेत्रों में एक क्रान्ति से उपस्थित होने लगती है। सिपाही-विद्रोह, इण्डियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना, आर्य समाज का जन्म, रेल, तार, डाक और सड़कों का जाल बिछना, विधवा-विवाह, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और स्त्री-शिक्षा की समस्याओं पर इसी समय विचार-विमर्श होना—यह सब एक साथ ही थोड़े से अन्तर के साथ आरम्भ हो जाता है। इन परिस्थितियों का प्रभाव उस युग के कवियों भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायणमिश्र आदि की रचनाओं पर पड़ा। भारतेन्दु, 'द्विजदेव', सरदार, हनुमान, द्विज कवि, मन्नालाल, नकछेदी तिवारी, भुवनेश, 'ललित किशोरी' दत्त कवि, कविराजा मुरारिदान, रघुराज सिंह, रघुनाथ दास और राम सनेही तथा अन्य अनेक कवि प्राचीन ब्रजभाषा काव्य की विरासत स्वरूप शृंगार रस, अलंकार पिंगल, नायक-नायिका भेद, राम भक्ति, कृष्ण भक्ति आदि पूर्ण कविता-रचना में संलग्न थे। उनमें भी युग की लहर की प्रतिक्रिया हुई और प्राचीन आदर्श कुछ खटकने से लगे और एक प्रकार यथार्थवाद से आन्दोलित हुई। इसने अपने

दोनों कूलों में अपने समकालीन इतिहास को समेटा। तत्कालीन कवि देश के अधःपतन, रूढ़िप्रियता के पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण पुलिस और अदालती लोगों की नोच खसोट, देश के पूँजीवादियों की स्वार्थ परता, धार्मिक मिथ्याचार, अनाचार, छल-कपट, देश की निर्धनता, पारस्पफूट से निराश से दीखने लगे—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र देश की दुर्दशा देखकर रो पड़े—

"आवहु सब मिलि रोवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥"

फिर विचार स्वातंत्र्य के जन्म के साथ वे लोक कल्याण की बात सोचने लगे। उन्होंने देश भक्ति, लोक हित, समाज-सुधार धार्मिक पुनर्निर्माण, मातृ भाषोद्धार, और स्वतन्त्रता की भावनाओं से प्रेरित होकर राष्ट्रीयता परक कविताएँ लिखीं। वस्तुतः भारतेन्दु नवयुग के अवतार थे। उनका युग नवीनता का संदेश वाहक और नई क्रान्ति का उत्प्रेरक था।

भाषा के रूप में, इस युग में ब्रज भाषा का प्राधान्य रहा, यद्यपि भारतेन्दु की मृत्यु के पूर्व ही खड़ी बोली ने भी काव्य क्षेत्र में पदार्पण करना आरम्भ कर दिया था। हिन्दी-कविता में जनशैली का प्रादुर्भाव भी इसी समय दृष्टिगोचर होता है। ज्ञान-संचय की प्रबल आकाँक्षा लेकर और नीर-क्षीरि-विवेक ग्रहण कर भारतेन्दु, श्री निवासदास, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, बालमुकुन्द गुप्त और श्रीधर पाठक ने देश की मानसिक प्रगति और उसके भावी प्रशस्त जीवन की आधार शिला का निर्माण किया।

हिन्दी कविता बीसवीं शताब्दी

(आधुनिक काल)

बीसवीं शताब्दी के हिन्दी-काव्य साहित्य का विकास बड़ी स्वच्छन्द गति से होता है। भारतेन्दु युग के अन्तिम चरण की परिणति इसमें देखने को मिलती है। स्थूल रूप से इस शती के हिन्दी काव्य साहित्य को इस दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।

१—१९०० ई० से प्रथम महायुद्ध के अन्त तक का काव्य साहित्य।

२— प्रथम महायुद्ध का परवर्ती काव्य साहित्य।

पहले को यदि हम कहना चाहें तो द्विवेदी युग (१९०० ई० १९१८ ई० तक) कह सकते हैं। दूसरे ढंग के साहित्य को प्रवृत्तियों के अनुसार, क्रमशः छायावाद युग (१९१८-१९३६ ई० तक), प्रगतिवाद युग (१९३६ से १९४३ ई० तक) और प्रयोगवाद युग (१९४३—) के काल स्तम्भों में बाँट सकते हैं।

द्विवेदी-युग

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्य सेवी थे जिन्होंने अपने युग के काव्य को गहराई से प्रभावित किया। इसी से इस युग को विद्वान् समालोचकों ने 'द्विवेदी युग' की संज्ञा दी। सन् १९०३ में इण्डियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली मासिक पत्रिका के सपादक रूप में उनका आना हिन्दी-साहित्य के नव-जागरण का संदेश था। इस युग (द्विवेदी युग) की सबसे बड़ी विशेषता काव्य में खड़ी बोली का ग्रहण है। राजनीति के क्षेत्र में, इसी युग में वंग-भंग के कारण स्वदेशी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। इसी युग में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। धर्म क्षेत्र में, आर्य समाज के अतिरिक्त थियोसोफिकल सोसाइटी और राम कृष्ण मिशन आदि क्रियाशील हुए। काँग्रेस के सुधारवादी आन्दोलन बढ़े। राज-भक्ति के स्थान पर राष्ट्र-भक्ति की भावना बढ़ी, कुछ तीव्र हुई! अछूतों और किसानों की दीन-दशा की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। इन परिस्थितियों से प्रभावित होकर श्रीधर पाठक, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', सत्यनारायण 'कविरत्न', मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, गोपाल शरण सिंह और नाथू राम शंकर शर्मा आदि ने खड़ी बोली काव्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।

बीसवीं शताब्दी के प्रथभ बीस वर्षों के कवियों में श्रीधर पाठक का नाम शीर्ष स्थानीय है। वे अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित और प्राकृतिक सौन्दर्य के उपासक थे। किन्तु

स्वदेश प्रेम भी इनकी रचनाओं का एक अंग है। 'सनेही' जी की रचनाओं में देश-प्रेम और जातीयता कूट-कूट कर भरी हुई है। 'कविरत्न' जी की कविताएँ देश-भक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत है। अपनी कविताओं में 'पूर्ण' जी स्वदेशी आन्दोलन के समर्थक थे। वस्तुतः राष्ट्रीयता की दृष्टि से युग के सर्वश्रेष्ठ कवि मैथिलीशरण गुप्त हैं। १९१२ ई० में उनकी 'भारत-भारती' देश में एक क्रान्ति उपस्थित कर दी थी।

काव्य रूपों और शैलियों की दृष्टि से इस युग का काव्य साहित्य इतिवृत्तात्मक रहा। भाषा की दृष्टि से, हिन्दी कविता का माध्यम खड़ी बोली को बनाकर द्विवेदी जी ने भाषा को व्याकरण सम्मत बनाया। शब्दों के तोड़-मरोड़ वाली कवियों की कवि प्रकृति को दूर कर भाषा का संस्कार किया। भारतेन्दु और उनके अनुयायियों ने कविता में एक नूतन प्रकाशभङ्गी लाने की चेष्टा की पर प्राचीनता ऐतिह्य का अतिक्रमण कर सकना उनकी सामर्थ्य के बाहर था। द्विवेदी जी ने हिन्दी-काव्य साहित्य नवजागरण का सूत्रपात किया। कविता की वस्तु और रीति की गतानुगतिकता को तोड़कर एक नये पथ पर अग्रसर होने के लिए हिन्दी कवियों को उन्होंने अग्रसर किया।

इस युग की सबसे महान् काव्य कृति अयोध्या सिंह उपाध्याय का महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' (१९१४ ई०) यह खड़ी बोली हिन्दी में रचित होने पर भी संस्कृत काव्य-शिल्प और शब्दावली से आच्छन्न है। इस काव्य का कथानक यद्यपि पौराणिक कथा 'श्रीकृष्ण का बृज से मथुरा का प्रवास' है। किन्तु श्रीकृष्ण माध्यम कवि ने किसी अलौकिक वस्तु को प्रश्रय न देकर एक देशनायक की चरित्र-प्रतिष्ठा। राधा उनकी लोक सेविका हैं।

छायावाद युग

(१९१८ ई० से १९३६ ई० तक

प्रथम विश्व-युद्ध का अवसान, भारतीय राजनीति का द्रुत-पट परिवर्तन, गान्धी-आन्दोलन, अंग्रेजी शिक्षा का बढ़ता हुआ प्रचार-प्रसार, यन्त्रयुग की जटिलता की वृद्धि और प्रथम विश्व-युद्धोत्तर पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से प्रत्येक भारतीय साहित्य पर एक संकट सा छा गया। पुराने मूल्यबोध का अवसान दिखाई तो पड़ने लगा पर नये मूल्य बोध का अभी कोई निश्चित रूप तैयार नहीं हो सका था। ऐसी स्थिति में तत्कालीन हिन्दी कवि एकदम अन्तर्मुखी हो उठे। यथार्थ को छोड़कर उन्होंने एक कल्प स्वर्ग का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार हिन्दी काव्य में छायावाद का जन्म हुआ।

छायावाद बीसवीं शताब्दी का सबसे विवादग्रस्त 'वाद' है। प्रारंभ में इसकी जो व्याख्याएँ की गयीं, वे अत्यन्त अनिश्चित ढंग की थीं। छायावाद वस्तुतः किसी अज्ञात सत्ता के प्रति कौतूहल भरी जिज्ञासा से परिचालित और उससे रागात्मक संबन्ध स्थापित करने की सहज काव्याभिव्यक्ति है। 'छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के रोमांटिक उत्थान की वह काव्य धारा है, जो लगभग १९१८ ई० से १९३६ ई० तक की प्रमुख युग वाणी रही, जिसमें 'प्रसाद', पंत, 'निराला' और महादेवी वर्मा प्रभृति मुख्य कवि हुए।

छायावाद को 'स्वच्छन्दतावाद', 'रहस्यवाद' और 'मिस्टीसिज्म' के नाम से भी अभिहित किया गया है। स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद पुराने शब्द हैं। वर्तमान समय में छायावादी काव्य की ऐसी अनेक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, जिनका विवेचन अन्य देशों में स्वच्छन्दतावाद या रहस्यवाद के अन्तर्गत किया गया है। 'स्वच्छन्दतावाद' अंग्रेजी 'रोमांटिसिज्म' का पर्याय है। इस रूप में इसका प्रथम प्रयोग आचार्य शुक्ल ने किया था और उन्होंने छायावाद एवं स्वच्छन्दता में अन्तर स्थापित किया था। स्वच्छन्दतावादी काव्य को वे नैसर्गिक काव्य मानते हैं, परन्तु छायावादी काव्य में उन्हें साम्प्रायिकता का मान होता है। यूरोपीय धार्मिक काव्य में भी 'फैंटेसमारा' की भांति छायावादी काव्य में भी वे प्रत्यय पाते हैं। पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में—"हिन्दी के छायावादी काव्य को 'फैंटेसमाटा' की परिधि में ही रख देना न्याय संगत नहीं है। वास्तव में हिन्दी का छायावादी काव्य स्वच्छन्दतावाद की भूमिका पर ही लिखा गया है।"

हिन्दी छायावादी कवियों के प्रेरणा स्रोत एक ओर अंग्रेजी के रोमान्टिक कवि वर्ड्सवर्थ, शेली और कीट्स तथा

विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर रहे हैं। दूसरी ओर उनकी काव्य-वृत्ति की पीठिका के रूप विद्यापति, कबीर और सूरदास आदि प्राचीन हिन्दी कवि रहे हैं।

छायावाद व्यक्तिवाद की कविता है। प्रेम और प्रकृति छायावादी कवियों का प्रधान उपजीव्य है। यह अवश्य है कि पुराने हिन्दी कवियों से दृष्टिभंगी में छायावादी कवियों का मौलिक पार्थक्य है। ये प्रेम और प्रकृति का अन्य निरपेक्ष अस्तित्व नहीं स्वीकार करते। इनकी मानस-प्रक्रिया, मानव मन की प्रतिक्रिया और प्रति फलन के बीच सीमा-बद्ध रहती है। इनके काव्य की सार्थकता प्रेम और प्रकृति को केन्द्र बनाकर रहस्य निविड़ एक अतीन्द्रिय परिमण्डल निर्माण करना है। छायावादी कविता में विषय नहीं, स्वयं कवि और उसका राग-विराग प्रधान हो जाता है। उसमें कवि का अन्तरंग जीवन होता है। व्यक्तिगत आशा-निराशा, सुख-दुःख, व्यथा-वेदना आदि से उसकी कविता ओतप्रोत रहती है।

छायावाद में आत्म निष्ठा, स्वानुभूति प्रकाशन और सौन्दर्योपभोग की आकांक्षा या रूमानी प्रवृत्ति प्रधान रहती है। उसके ऊपर की सभी विशेषताएँ आपस में संयुक्त रहती हैं। वास्तव में छायावाद की चेतना में कवि की सौन्दर्य वृत्ति रही है।

आधुनिक काल में छायावाद और रहस्यवाद दोनों एक दूसरे के अत्यन्त निकट हैं। छायावाद ही जब अपने ऊपर अध्यात्म का पर्दा डाल लेता है, तो वह रहस्यवाद का रूप धारण कर लेता है। वस्तुतः रहस्यवाद में किसी अज्ञात सत्ता का आभास न होकर अनुभूति होती है, तथा उसके प्रति कौतूहल सजग जिज्ञासा न होकर लय हो जाने की भावना प्रधान रहती है। इसीलिए रहस्यवाद में अनन्त के साथ संबन्ध की भावना प्रधान रहती है। प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत रामकुमार वर्मा और माखन लाल चतुर्वेदी, भगवती चरण वर्मा आदि की रचनाओं में छायावाद और रहस्यवाद दोनों का भिन्न-भिन्न रूपों में पुट मिलता है।

छायावाद-रहन्यवाद का जन्म किन्हीं भी कारणों से हिन्दी-साहित्य में हुआ हो, किन्तु यह सर्वमान्य है कि आधुनिक काव्य-साहित्य में उनके द्वारा अनुपम सौन्दर्य और कलात्मकता की सृष्टि हुई है—भाव और भाषा दोनों क्षेत्र में। इस युग में प्रबन्ध, खण्ड, मुक्तक गीत-प्रगीतों की सृष्टि हुई है, साकेत, कामायनी जैसे महाकाव्य इसी युग की देन है। हाँ स्वानुभूति की प्रधानता के छायावाद और रहस्यवाद दोनों मुक्तक विधान (गीति तत्त्व) की ही प्रधानता है। संक्षिप्ति, गेयत्व और आत्मानुभूति की तीव्रता उनकी विशेषताएँ हैं। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में भी मुक्तक लिखे गये थे। किन्तु कवियों का उस समय ध्यान शास्त्रीय सीमाओं के भीतर रस परिपाक की ओर अधिक रहता था। आधुनिक गीतों में व्यक्तिगत सहज अनुभूति की तीव्रता रहती है। उनकी भाषा में लाक्षणिकता पाई जाती है।

छायावाद युग में प्रगीतों का अधिक प्रचार हुआ। गीति काव्य के लेखकों में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार, दिनकर, बच्चन और नरेन्द्र शर्मा तथा जानकी वल्लभ शास्त्री को बड़ी ख्याति मिली। वीर-काव्यकार के रूप में श्याम नारायण पाण्डेय का नाम पूरे आधुनिक हिन्दी-काव्य साहित्य में अमर रहेगा।

प्रगतिवाद

सन् १९३५-३६ ई० के बाद लगभग बीस वर्षों में कविता अधिकाधिक समाजोन्मुख होती गई। छायावादी-रहस्यवादी काव्य धारा का प्रधान आधार व्यक्तिवाद था। किन्तु एक तो 'प्रसाद', पन्त, 'निराला' महादेवी और रामकुमार वर्मा आदि की कविताओं में इस व्यक्तिवाद के अपने में ही विरोध के संकेत मिलते थे। दूसरे, छायावादोत्तर कालीन कवियों में भी घोर व्यक्तिवाद के प्रति प्रतिक्रिया मिलती है। इन कवियों में सामाजिक विषमताओं के प्रति असंतोष, अराजकतावादी विप्लव और मानव-जीवन की ओर दृष्टिपात प्रमुख हो उठा। 'नवीन' दिनकर' और भगवती चरण वर्मा आदि ऐसे ही कवि थे। वास्तव में छायावादी रोमांटिक युग के बाद यह यथार्थवादी युग का सूत्रपात था। उसके बाद हिन्दी कविता का वस्तु-रूपगत परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के समानान्तर रहा। मध्यवर्गीय मान्यताओं में

संकटकाल उपस्थित हुआ और आर्थिक समस्यायें और जटिल हो गईं और कवियों को मार्क्सवादी देश में आस्था होने लगी। पन्त जी 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में नवीन हिन्दी कविता का स्वर घोषित हुआ।

आर्थिक क्षेत्र में वस्तुतः जो साम्यवाद है वही कविता के क्षेत्र में प्रगतिवाद है। हिन्दी काव्य-साहित्य में छायावाद रहस्यवाद ने द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता और स्थूलता के प्रति विद्रोह किया, तो प्रगतिवाद छायावाद-रहस्यवाद की सूक्ष्मता और स्वान्तः सुखाय में प्रगतिवाद की कोई आस्था नहीं है। अपने विशिष्ट अर्थ में प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक रूपान्तर है। प्रगतिवादी विचारधारा मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग संघर्ष में विश्वास रखती है। प्रगतिवाद की सहानुभूति शोषित या सर्वहारा वर्ग के साथ रहती है। उसके पीछे राजनीतिक सिद्धान्त प्रमुख है। हृदय पक्ष की अपेक्षा बुद्धिपक्ष की उसमें प्रधानता है। डा० वार्ष्णेय के शब्दों में—यही कारण है—रोटी और सेक्स के आगे प्रगतिवादी कवि जीवन के अन्य महत्त्वपूर्ण पक्षों का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करता –

> मैं अर्थ बताता द्रोह भरे यौवन का
> मैं वासना नग्न को गाता उच्छृङ्खल।

प्रगतिवादी कवि के लिए सामाजिक व्यवस्था अपरिवर्तनीय और शाश्वत नहीं है। वह मनुष्य के शरीर और मन, पृथ्वी और समाज के अतिरिक्त जो कुछ शेष रह जाता है, उसकी सत्ता स्वीकार नहीं करता। प्रगतिवादी साहित्य का मुख्य उद्देश्य साहित्य को जीवन के समीप खींच लाने का है। वह प्रत्येक वस्तु को तर्क विज्ञान और बुद्धि की दृष्टि से देखता और यथार्थवाद का समर्थन करता है। प्रगतिवादी कवियों में पन्त, 'निराला', 'दिनकर', 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा, भगवती चरण वर्मा, रांगेय राघव, रामविलास शर्मा, शैलेन्द्र, केदारनाथ अग्रवाल आदि प्रमुख हैं।

प्रयोगवाद

(१९४३-से······)

हिन्दी का प्रयोगवादी काव्य साहित्य द्वितीय महायुद्धोत्तर कालीन काव्य साहित्य है। द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप उत्पन्न आर्थिक व्यवस्था और राजनीतिक हलचलों से एक तो वैसे ही कवियों की परम्परागत मान्यताएँ हिल उठी थीं दूसरी ओर भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद देशव्यापी व्यक्तिगत स्वार्थ और देश के व्यापक हित के बीच उत्पन्न हुए संघर्ष-भयंकर विषमताओं और देश,-निर्माण की अनिश्चित योजना-राष्ट्रीय जीवन में उत्पन्न अलसता, क्लान्ति और ग्लानि के वातावरण ने परिस्थिति और भी विषम बना दी। मध्यमवर्गीय लेखक और कवि दोनों ही विचलित हो उठे। इस विचलन और जीवन की ऐसी परिस्थिति ने वर्तमान समय में हिन्दी की जिस काव्य प्रवृत्ति को जन्म दिया वह मूलतः एक होते हुए भी 'प्रयोगवाद', 'रूपवाद' 'नकेनवाद' (प्रपद्यवाद) तथा नई कविता' आदि विभिन्न नामों से अभिहित की जाती है। इन नामों के पीछे दलगत प्रवृत्तियों का हाथ रहा है। इस दलबन्दी के दलदल में हिंदी का पाठक फँसे बिना नहीं रहता, इसलिए इनमें से यदि कोई एक ही नाम निश्चित कर लिया जाय तो अच्छा हो।

प्रयोगवाद का सूत्रपात प्रथम और दूसरे 'तार सप्तक' (क्रमशः १९४३ ई० और १९५१ ई० में प्रकाशित) कविता संग्रहों से माना जाता है। पटना के कुछ साहित्यिकों और 'प्रतीक' पत्रिका के माध्यम से उसे सहारा मिला। तार सप्तकों के प्रकाशन और संपादन 'अज्ञेय' का प्रमुख हाथ रहा। प्रथम तार सप्तक में सात कवि—गजानन मुक्तिबोध नेमिचंद्र, भारत भूषण, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और 'अज्ञेय' थे। दूसरे तार सप्तक में भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती की कविताएँ संग्रहीत हैं। इधर १९५९ ई० में तीसरा 'तार सप्तक' प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रयाग नारायण, त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन-वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताएँ संग्रहीत हैं। तार सप्तकों के अतिरिक्त प्रतीक, कल्पना, और नई कविता, भारती, गंधदीप आधार तथा ज्ञानोदय पत्रिकाओं में स्फुट रूप से प्रकाशित होने वाले श्री बालकृष्ण राव, डा० जगदीश गुप्त, नित्यानन्द, गोविन्द जी, श्रीकांत

वर्मा. रामावतार चेतन महेन्द्र कार्तिकेय, रमा सिंह, कांता आदि प्रयोगवादी काव्य-साहित्य की अन्य प्रतिभाएँ हैं।

काव्य शिल्प की दृष्टि से इस युग के जिन कविताओं में नए प्रतीकों, नए बिम्बों नई शब्दावली का प्रयोग हुआ, उन सभी नई कविताओं की प्रवृत्ति को 'प्रयोगवाद' की संज्ञा दी गई है। अन्यथा 'प्रयोगवादी शब्द अपने आप में कोई अर्थ नहीं रखता है। क्योंकि 'प्रयोग' कभी 'वाद' नहीं बन सकता और प्रत्येक काव्य प्रवृत्ति के पतन पर नए प्रयोग होते ही हैं।

अभी प्रयोगवादी कविता या नई कविता का कोई निश्चित साँचा नहीं बन पाया है। अभी तो प्रयोगवादी कवि 'राह की खोज' कर रहा है। 'अन्वेषी' है। 'अज्ञेय' के अनुसार इन प्रयोगवादी कवियों में मतैक्य नहीं है। जीवन, समाज, धर्म, राजनीति, काव्य के वस्तु, शिल्प और शैली, छन्द, तक दायित्व – सभी विषयों में उनका मतभेद है। इन्होंने परम्परागत भाषा, शैली और विषय के स्थान पर, नई भाषा, शैली और नये विषयों को अपनी कविता में स्थान दिया है।

डा० नामवर सिंह के शब्दों में—''कुल मिलाकर प्रयोगवादी कविताएँ ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ चित्र हैं। इनमें मध्यवर्गीय हीनता, दीनता, अनास्था, कटुता अन्तर्मुखता पलायन आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है।

प्रयोगवादी काव्य के इस युग में कवियों का झुकाव मात्र नई कविता की ओर हो, ऐसा नहीं है। इस युग में महा-काव्य, खण्ड काव्य और गीत-प्रगीत भी खूब लिखे गए हैं। डा० रामकुमार वर्मा का 'एकलव्य' गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश का 'तारकवध', रामानन्द का पार्वती आदि महाकाव्य डा० भारती का 'कनुप्रिया' खण्ड काव्य आदि इसी युग की देन हैं। 'नीरज', कैलाश वाजपेयी, जगदीश 'अतृप्त' जैसे गीतकार अपने गीतों से हिन्दी-काव्य-साहित्य भण्डार को आज भी समृद्ध करते चल रहे हैं।



आधुनिक हिंदी-काव्य में वैज्ञानिक-चिंताधारा का स्वरूप

●

डॉ० वीरेन्द्र सिंह

प्रवेश

आज के वैज्ञानिक युग में किसी भी ज्ञान या मानवीय क्रिया का निरपेक्ष महत्त्व नहीं है, उसका सापेक्ष महत्त्व ही मान्य है। इस सापेक्ष महत्त्व की दृष्टि से साहित्य तथा विज्ञान का सम्बंध भी प्रतिष्ठित किया जा सकता है। आज के युग की माँग भी यही है, क्योंकि वैज्ञानिक चिंतन तथा पद्धति ने करीब-करीब सभी मानवीय क्रियाओं को प्रभावित किया है। इसीसे सी० लिविस का मत है कि आधुनिक कवि, वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को ग्रहण करने में बहुत ही प्रयत्नशील है।[१] परंतु यहाँ पर प्रश्न है कि कवि या कृतिकार इन वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को किस रूप में ग्रहण कर सकता है? यहाँ पर मेरा यह निश्चित मत है कि किसी भी वैज्ञानिक प्रस्थापना या सिद्धांत को नितांत उसी रूप में, किसी भी कला क्षेत्र में व्यक्त करना सम्भव नहीं है। यह उसी समय संभव हो सकता है जब वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को काव्य की भावभूमि में इस प्रकार से अभिव्यक्ति किया जाय कि उनकी जटिलता काव्य की रसात्मकता में एक रस हो जाय। चिंता धारा से मेरा यही तात्पर्य है। दूसरा तत्त्व जो चिंता धारा के अंतर्गत आवश्यक है, वह यह है कि वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के आधार पर कवि एक नए प्रकार से मानव जीवन, जगत् तथा ब्रह्मांड के प्रति चिंतन कर सकता है। इस कार्य में कवि की अनुभूति तथा विज्ञान की तर्क-शक्ति एक नवीन मर्यादा को जन्म दे सकती है। यहाँ पर अनेकों को यह आपत्ति होगी कि वैज्ञानिक सत्य को काव्य का विषय बनाया ही नहीं जा सकता है क्योंकि दोनों की पद्धतियों में तथा दोनों के कार्य क्षेत्र में एक बहुत बड़ा अंतर है। यहाँ पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि यदि एक कवि धार्मिक-दार्शनिक सिद्धान्तों को काव्य की भावभूमि में प्रस्तुत कर सकता है जो वह युगों से करता आ रहा है तो क्या वह इस नवीन मानवीय क्रिया [वैज्ञानिक को काव्यात्मक परिणति नहीं दे सकता है? इसके लिए आवश्यक है कि वह विज्ञान की गहराई को, उसकी अन्तर्प्रेरणा को हृदयंगम कर उसे काव्यात्मक रूप प्रदान करें। कार्य अवश्य कठिन है, पर आज के युग की प्रथम माँग है।

कल्पना तथा भावना रूप

प्रश्न है कि विज्ञान की कल्पना तथा भावना काव्य को कोई भी प्रेरणा दे सकते हैं? हम युगों से मानते आये हैं, कि कल्पना और भावना काव्य या साहित्य के ही अंग हैं, एक प्रकार से उनकी ही बपौती है। पर मेरी यह मान्यता है कि विज्ञान के क्षेत्र में ये दोनों तत्त्व उदात्त रूप में प्राप्त होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि वैज्ञानिक अपनी कल्पना को अबाध रूप नहीं दे सकता क्योंकि उसके सामने प्रयोग तथा तर्क की सीमाएँ हैं और अन्त में, इन्हीं सीमाओं के आधार पर वह किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है। दूसरी ओर,

---

१— ए बुक आफ साइंस वर्स, सं० डब्लू० ३ स्टवुड, पृ० २६६

कलाकार की कल्पना इतनी सीमित नहीं होती है, पर हाँ, उसे विज्ञान के चिंतन को व्यञ्जित करते समय, संयम से अवश्य काम लेना पड़ेगा। कदाचित् इसी सत्य को ध्यान में रखकर हर्बट स्पेन्सर ने कहा था "कि विज्ञान स्वयं ही काव्यात्मक है। यह सच नहीं है कि विज्ञान के यथार्थ नितांत अकाव्यात्मक हैं। सत्य तो यह है कि जो वैज्ञानिक अनुशीलन से अछूते रहे हैं, वे उस असीम कविता से वंचित रहे हैं जिससे वे चतुर्दिक आवृत्त है।"[1] आधुनिक काव्य के परिवेश में, स्पेन्सर का यह कथन एक नवीन सृजन-शक्ति के उद्घोष का वाहक माना जा सकता है। आधुनिक हिंदी कविता के अनुशीलन से मेरी भी यही मान्यता है कि आज के अनेक बुद्धिवादी कवि इस नवीन चिन्तन की मर्यादा तथा मूल्य के प्रति सचेत हैं।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वैज्ञानिक की कल्पना तथा भावना प्रकृति की रचना के प्रति सजग रहती है। जिस प्रकार कलाकार की कल्पना तथा भावना प्रयत्नशील होती है। दोनों ही प्रकृति तथा मानव-रहस्य को अनुभूति करना चाहते हैं। वैज्ञानिकों ने इसी कल्पना का सहारा लेकर जो स्वप्न देखे थे, हम आज उनकी सीमा पर पहुँच गए हैं। प्रोफेसर डिंगले ने इसी कल्पनात्मक स्वप्न के बारे में कहा है—"स्वप्न यह है कि हम एक सहृदय संसार में रह रहे हैं और उसे अपने हृदय में ही जाना जा सकता है।"[2] यह मत एक ऐसे वैज्ञानिक चिन्तक का है जिसने विज्ञान की 'आत्मा' को पहचान कर, उसके तात्त्विक रूप की ओर संकेत किया है। एक वैज्ञानिक भी वही सुख प्राप्त करता है जो एक कलाकार अपनी कल्पना में करता है। इस प्रकार १६००-१९५० ई० तक विज्ञान की जो उन्नति हुई है, उसे मानवीय सृजन शक्ति की विजय मानना ही उचित है।

सौंदर्य भावना का स्वरूप

कल्पना के साथ ही साथ जो दूसरा प्रमुख तत्त्व काव्य में अपेक्षित है वह है सौन्दर्यानुभूति। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो सौंदर्य बोध की स्थिति भी विज्ञान में संभव है, पर इसके लिए भी एक बौद्धिक अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। वैज्ञानिक का सौंदर्य-बोध विश्व और प्रकृति की नियमबद्धता या समरसता पर आश्रित है। वह, आइन्स्टीन के शब्दों में विश्व के अंतराल में एक "पूर्व स्थापित सामरस्य' (Pre-Established harmony) के सौन्दर्य को कार्यान्वित देखता है।[1] वह अपने सिद्धान्तों के द्वारा इसी "सामरस्य" को प्रकट करता है। इस दृष्टि से महाकवि प्रसाद का 'समरसता-सिद्धान्त' एक वैज्ञानिक सत्य भी माना जा सकता है। कवि भी इस सौंदर्य को ग्रहण कर सकता है, जो कवि के लिए एक नवीन मूल्य ही है। वह सौंदर्य-बोध वैज्ञानिक नियमों की एकरूपता एवं समरसता पर भी आधारित है। सर आर्थर एडिंगटन के मतानुसार "इसी समरसता पर हमारी सौन्दर्यानुभूति विकसित होती है। भौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में एक प्रकार की एक सूत्रता है जिसकी आधारशिला प्राकृतिक नियमों (Natural Laws) पर ही केवल आश्रित नहीं है।"[2]

सौंदर्य की यह अनुभूति व्यक्तिगत है या पदार्थगत, यह प्रश्न कम से कम विज्ञान के क्षेत्र में उठाया ही नहीं जा सकता है। एक वैज्ञानिक की मानसिक प्रक्रिया में सौंदर्य बोध विषय, तथा विषयीगत इन दोनों क्षेत्रों को एक साथ लेकर चलता है। परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि विज्ञान का सौंदर्य बोध व्यक्तिगत होता ही नहीं है। अनेक ऐसी वैज्ञानिक प्रस्थापनाए तथा सिद्धान्त हैं जिनमें वैज्ञानिकों का व्यक्तित्व झलकता हुआ प्रतीत होता है। ऐसे कुछ सिद्धान्त हैं—डारविन का विकासवाद, प्रो० आइंस्टीन का सापेक्षवादी सिद्धान्त, मैक्सवेल का विद्युत चुम्बकीय सिद्धांत तथा ज्योतिष की विश्व रचना के सिद्धांत जहाँ एक ओर वैज्ञानिकों के व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ जाते हैं, वहीं उनके द्वारा जो सौंदर्य बोध होता है, उसमें आश्चर्य भावना के साथ-साथ, मेरे विचार से, कवि की सृजनात्मकता को एक नई दिशा भी मिल सकती है।

[1]—एजुकेशन–इन्टलैक्चुअल, मारल एण्ड फिजीकल, पृ० २९

[2]—आधुनिक विज्ञान और आधुनिक मानव द्वारा जेम्स० बी० कानेन्ट, पृ० ४१ से उद्धृत

[1]—एसे इन साइंस द्वारा एलबर्ट आइंस्टीन, पृष्ठ ४

[2]—साइंस एण्ड दि अनसीन वर्ल्ड द्वारा सर आर्थर एस० एडिंगटन, पृष्ठ ३३

इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में, आधुनिक हिन्दी काव्य का अनुशीलन अपेक्षित है। मैंने अपनी विवेचना का आधार उपर्युक्त तथ्यों के संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। वैसे तो आधुनिक काव्य में हमें वैज्ञानिक चिंतन के प्रभाव का अनेक आयामों में दर्शन प्राप्त होता है, जिसका सम्पूर्ण विवेचन एक पुस्तक के द्वारा ही क्रमबद्ध रूप में रखा जा सकता है। फिर भी, विषय की विशालता को ध्यान में रखकर, मैं अपने अध्ययन को निम्न शीर्षकों में प्रस्तुत कर रहा हूँ, जो अध्ययन की बहुत ही प्रमुख विशेषताएँ हैं--

१—परमाणु रहस्य
२—विकासवादी सिद्धान्त और चिन्तन (जीव तथा वनस्पति जगत)
३—सृष्टि रहस्य (ग्रह, नीहारिकायें, नक्षत्रादि)
४—मूल्यगत चिंतन

परमाणु-रहस्य

विज्ञान ने भौतिक पदार्थ की सूक्ष्मतम् इकाई को 'परमाणु' की संज्ञा प्रदान की है। परमाणु के भी अंदर उसकी विद्युत शक्ति की व्याख्या करने के लिए एलक्ट्रान, प्रोटान, पाजिट्रान आदि की कल्पना की गई। एलक्ट्रान ऋणात्मक विद्युत्-शक्ति का और प्रोटान धनात्मक विद्युत-शक्ति का केन्द्र या प्रतीक माना गया है। दोनों ही शक्तियाँ निष्क्रियावस्था में रहती हैं। इसी भाव की सुन्दर काव्यात्मक अभिव्यक्ति कविवर प्रसाद ने इस प्रकार प्रस्तुत की है।

आकर्षणहीन विद्युतकण बने भारवाही थे भृत्य।[1]

पूरे महाकाव्य में प्रसाद जी परमाणु की रचना तथा प्रकृति के प्रति पूर्ण रूप से सचेत हैं। बीसवीं शताब्दी के पहले चरण तक परमाणु के रहस्य का उद्घाटन डाल्टन, बोहर आदि वैज्ञानिकों ने किया था। परमाणु की प्रकृति अत्यन्त चलायमान होती है। प्रत्येक परमाणु दूसरे के प्रति आकर्षित ही नहीं होता है, वरन् उस आकर्षण में सृष्टि-क्रम की न जाने कितनी सम्भावनाएँ समाई रहती है। इसीलिए परमाणु जो स्वयं में एक-एक ब्रह्मांड है, स्वयं अनादि 'ब्रह्मरूप' है और सौर-मण्डल की रचना का प्रतिरूप है, ऐसे परमाणु के प्रति कवि क्यों न संवेदनशील हो उठे। गिरिजाकुमार माथुर ने परमाणु को इसी रूप में देखा है—

हो गया है फिशन अणु का,
परमब्रह्म अनादि मनु का
ब्रह्म ने भी खूब बदला नाम
लोक हित में पर न आया काम।[1]

अणु के ब्रह्मांड रूप के प्रति डा० रामकुमार ने अपने "एकलव्य" महाकाव्य में कहा है—

भरता है व्योम का विशाल मुख निःस्वत
एक एक विश्व मौन एक-एक कण में।[2]

सत्य में, परमाणु की यह गुप्त शक्ति ही जब प्रकट होती है, तभी संहार तथा निर्माण दोनों की समान सम्भावनाएँ दृष्टिगत होती है। परमाणु का निष्क्रिय रहना या विश्राम करना मानों प्रकृति की गतिशील विकासशीलता में व्यवधान उपस्थित करता है। अतः प्रो० आईस्टीन के अनुसार परमाणुओं में वेग (Velocity), कंपन (Viberation) और उल्लास (Veracity) तीनों की अन्विति प्राप्त होती है। तीनों के सम्यक् समन्वय या समरसता में ही सृष्टि का रहस्य छिपा हुआ है। प्रसाद ने इसी तथ्य को सुन्दर काव्यात्मक रूप प्रदान किया है जिसमें वैज्ञानिक चिन्तन का रसात्मक बोध प्रकट होता है —

अणुओं को है विश्राम कहाँ,
यह कृतिमय वेग भरा कितना।
अविराम नाचता कंपन है,
उल्लास सजीव हुआ कितना॥[3]

इसी भाव को पंत ने इस प्रकार रखा है—

महिमा के विशद् जलधि में
हैं छोटे - छोटे से कण।

[1]—कामायनी द्वारा प्रसाद, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ २०

[1]—धूप के धान द्वारा श्री गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ ७९
[2]—एकलव्य द्वारा डा० राजकुमार वर्मा, पृष्ठ ५
[3]—कामायनी काम सर्ग, पृष्ठ ६५

अणु से विकसित जग जीवन
लघु-लघु का गुरुतम साधन।[1]

अणु हैं तो लघु, पर इन्हीं लघु तत्त्वों के संयोग से गुरुतम सृष्टि-कार्य भी सम्पन्न होता है। इसी कारण से प्रसाद ने परमाणुओं को चेतनयुक्त भी कहा है जिनके अन्योन्य संबंधों में, उनके बिखरने तथा विलीन होने में सृष्टि का विकास एवं निलय निहित रहता है --

चेतन परमाणु अनन्त निखर
बनते विलीन होते क्षण भर।[2]

परमाणु का यह विकास तथा निलय, उसके चिरन्तन रूप का द्योतक है। यही कारण है कि वैज्ञानिक परमाणु को विकास का केन्द्र मानते हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो एक वैज्ञानिक के लिए परमाणु की सत्ता "असीम" के रूप में मानी जा सकती है और यहाँ पर आकर वह एक रहस्यवाद की ओर प्रेरित होता है जो वैज्ञानिक-रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है। इसी भाव की काव्यात्मक पुनरावृत्ति 'अज्ञेय' ने निम्न रूप में प्रस्तुत की है—

एक असीम अणु,
उस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करती है;
अपने भीतर समा लेना चाहता है।
उसकी रहस्यमयता का परदा खोलकर
उसमें मिल जाना चाहता है
यही मेरा रहस्वाद है।[3]

बटरंड रसल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मिस्टिसिज्म एन्ड लाजिक" (Mysticism and Logic) में वैज्ञानिक रहस्यवाद का विश्लेषण उपस्थित करते हुए इस सत्य की ओर संकेत किया है कि जब व्यक्ति समय तथा दिक् की सीमाओं को लाँघकर या उन्हें आत्मसात् कर एक अन्तर्दृष्टि की अनुभूति प्राप्त करता है, तब वहाँ वैज्ञानिक रहस्यवाद की सृष्टि होती है।[1] अज्ञेय का उपर्युक्त कथन इसी अन्तर्दृष्टि को समक्ष रखता है।

विकासवादी सिद्धांत और चिंतन

परमाणु की गतिशीलता के विवेचन के पश्चात् आधुनिक काव्य में डारविन के विकासवादी चिन्तन का एक स्वस्थ रूप प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त को पुष्टि तथा परिमार्जित करने में लामार्क मैंडिल, हक्सले तथा लूकाँमटे डू नू आदि वैज्ञानिकों, दार्शनिकों का काफी योग है। आज के काव्य में इन चिन्तकों के विचारों का यदा-कदा संकेत प्राप्त हो जाता है जिसकी ओर प्रसङ्गवश इंगित किया जायगा।

डारविन का विकासवादी सिद्धान्त सारी दार्शनिक समस्याओं की सुलझा नहीं पाता है। फिर भी वह एक ऐसी क्रांतिकारी धारणा है जिसने आदिम मान्यताओं की नींव हिला दी है। डारविन के विकासवाद की तीन प्रमुख मान्यताएँ हैं। प्रथम अस्तित्व के लिए संघर्ष, द्वितीय उस संघर्ष में समर्थ का विजयी होना और तृतीय विकास-क्रम का रूप प्राकृतिक निर्वाचन के द्वारा सम्पन्न होना। यह अस्तित्व का संघर्ष जड़ तथा चेतन दोनों में समान रूप से दृष्टिगत होता है। इसी कारण डारविन ने इस मान्यता को सामने रखा कि जीवन का विकास जड़ तथा चेतन पदार्थों का एक क्रमागत रूप है या दूसरे शब्दों में जैव [organic चेतन] तथा अजैव [inorganic जड़] जगत में एक सम्बन्ध है, उनके विकास में दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध है। कविवर पंत के शब्दों में :—

जड़ चेतन हैं एक नियम के वश परिचालित।
मात्रा का है भेद, उभय है अन्योन्याश्रित।[2]

जैसा कि ऊपर कहा गया कि विकासवादी सिद्धांत में संघर्ष एक शाश्वत नियम है जो विकास की गति को आगे बढ़ाता है। संघर्ष के प्रति प्रसाद जी पूर्ण रूप से सजग हैं जब वे कहते हैं--

[1]—गुञ्जन द्वारा सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ २८
[2]—कामायनी द्वारा प्रसाद, पृष्ठ ८२
[3]—इत्यलम् द्वारा अज्ञेय कविता 'रहस्यवाद' पृ० ९३

[1] - मिस्टिसिज्म एंड लाजिक द्वारा बटरंड रसल—देखिए इसी नाम पर उनका लेख।
[2]—युगवाणी द्वारा सुमित्रानन्दन पंत, 'भूत-जगत', पृ० ५४

द्वन्द्वों का उद्गम तो सदैव,
शाश्वत रहता यह एक मन्त्र।[1]

यद्यपि प्रसाद दार्शनिक क्षेत्र में इस संघर्षमूलक विकास को मान्यता देते हैं, परन्तु फिर भी उनकी यह मान्यता 'विकासवाद' के एक तत्व को प्रमुखता किसी न किसी रूप में अवश्य देती है। यह स्पर्द्धा वैज्ञानिक-दर्शन को एक नई दृष्टि देती है और वह दृष्टि है लोक-कल्याण की भावना। डारविन ने जीवन के लिए अन्धसंघर्ष का प्रतिपादन किया था जो आगे चलकर अन्य विकासवादियों [हक्सले, लामार्क] को मान्य नहीं हुआ। प्रसाद की भी दृष्टि केवल जड़-संघर्ष तक ही सीमित नहीं रही, पर उन्होंने समर्थ के विजयी होने का [Survival ot the Fittest] एक मूल्य भी माना है और वह मूल्य है कि ऐसे समर्थवान् व्यक्ति संसृति का कल्याण करें —

स्पर्धा में जो उत्तम ठहरें वे रह जावें।
संसृति का कल्याण करें शुभ मार्ग बनावें।[2]

इस कथन में प्रसाद का चिन्तन मुखर होता है। पर एक अंग्रेजी कवि ग्रैन्ट एलन ने अपनी कविता "बैले आफ इवोल्यूशन" में इस तथ्य को नितांत उसी रूप में रख दिया है जो विकासवादी सिद्धान्त में है—

For the Fifiest till always survive
While the weakest go to the wall[3]

अस्तु, विकासवादी सिद्धान्त में "समय" का समावेश एक तथ्य है जिसे डारविन ने अपने विकासवाद का केन्द्र माना है। उसके अनुसार यह समस्त मानवीय इतिहास "परिवर्तन" और "प्राकृतिक निर्वाचन" के द्वारा विकासशील रहा है। 'परिवर्तन' जहाँ एक ओर प्रकृति का शाश्वत नियम हैं, वहीं वह विकास का आधार भी माना गया है। अतः परिवर्तन और प्रकृति में सापेक्षिक सम्बन्ध है और इसी से विकासवाद भी वैज्ञानिक चिंतन के लिए सापेक्षिक

[1]—कामायनी द्वारा प्रसाद, इड़ा सर्ग पृ० १६३
[2] – कामायनी द्वारा प्रसाद, पृ० १९५ संघर्ष सर्ग
[3] — ए बुक आफ साइंस वर्स से उद्धृत, पृ० १५८

दृष्टि की मान्यता प्रदान करता है।[1] परिवर्तन और प्रकृति के इसी सापेक्षिक महत्व को प्रसाद ने अपने महाकाव्य कामायनी में यदा कदा संकेत किया है —

पुरातनता का यह निर्मोक,
सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता का आनन्द,
किये हैं परिवर्तन में टेक॥[2]

यह तो हुआ विकास-क्रम का मानवीय धरातल तक विकास। यहाँ पर आकर अनेक विकासवादी-चिंतन रुकते नहीं हैं, पर वे आशावादी दृष्टि से विकास की गति को आगे की ओर भी देखने में प्रयत्नशील हैं। हक्सले और लीकामटे डूँ नू का विचार है कि 'मानव' ही एक ऐसा प्राणी है जो अपना विकास आगे कर सकता है। जहाँ तक भौतिक या शरीरी विकास का प्रश्न है, मानव नामधारी प्राणी में वह विकास उच्चतम् दशा में प्राप्त होता है।[3] इसी विकास की चरम परिणति की ओर श्री गिरिजाकुमार माथुर ने एक पंक्ति में सम्पूर्ण स्थिति को मानो केन्द्रित कर दिया है—

"तन रचना में मानव तन सबसे सुन्दर।"[4]

परन्तु प्रश्न है कि अब मानव किस ओर विकास की गति को मोड़ सकता है या मोड़ रहा है। मस्तिष्क-संगठन (Brain Orgaizqation) में वह अन्य जीवधारियों से कहीं श्रेष्ठ है, अतः इस दिशा में वह कदाचित् अपना भावी विकास न कर सकेगा। वह अपना भावी विकास मानसिक तथा आध्यात्मिक चेतना की ओर ही कर सकेगा। यही मानसिक चेतना उसके भावी विकास का विहान कहा जा सकता है।[5] इसी दशा का संकेत हमें पंत की अनेक काव्य-पुस्तकों में प्राप्त होता है जिस पर अरविन्द-दर्शन का प्रभाव दृष्टिगत होता है जो एक अखंड चेतना का विकास

[1] – मैन इन द माडर्न वर्ल्ड द्वारा जूलियन हक्सले, पृ० २०३
[2]—कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५५
[3]—द ह्यूमन डेस्टनी द्वारा लीकॉमटे डूँ नू, पृ० ७९
[4]—धूप के धान, द्वारा गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १०७
[5]—द ह्यूमन डेस्टनी, पृ० ८८

द्रव्य से लेकर अतिचेतना क्षेत्र (Super conesient) तक मानते हैं। पंत की निम्न दो पंक्तियाँ उपर्युक्त दशा को सुन्दर रूप में प्रस्तुत करती हैं—

बदल रहा अब स्थूल धरातल
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल।[1]

अथवा

यह मनुष्य आकार चेतना का है विकसित।
एक विश्व अपने आवरणों में है निर्मित॥[2]

यह "एक विश्व" क्या है? यह है मानव मस्तिष्क की प्रक्रिया पर उसकी गतिशील मानसिक चेतना। मन तथा आत्मा की अतल गहराइयों में ही मानव नाम सदा के लिये चिरन्तन रहेगा। प्रसाद ने, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो करोड़ों वर्षों के जैव-विकास (Organic Evolution) से उद्भूत चेतना के शिखरस्थ मानव के सारे मूल्यों को एक जगह पर समेट लिया है। इसी भावी-विकास की रूप-रेखा की ओर हमें अंग्रेजी कवि एलक्जेन्डर पोप का यह कथन याद आ जाता है कि "जैसे-जैसे सृष्टि का दूरगामी क्षेत्र बढ़ता जाता है, उसी अनुपात से ऐन्द्रिय, मानसिक शक्तियाँ भी अर्ध्वगामी होती हैं" :—

For as Creation's ample range extends
The scale of sensual mental pow'rs ascend."[3]

सृष्टि-रहस्य

अभी तक जीवशास्त्रीय विकास की वैज्ञानिक रूप रेखा का काव्यात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है। यदि व्यापक रूप में देखा जाय, तो सम्पूर्ण सृष्टि रहस्य में जीवशास्त्रीय-विकास केवल एक चरणमात्र है या केवल उसका एक अंश है। परन्तु यहाँ पर जिस सृष्टि-रहस्य की चर्चा की जायगी,

[1]—उत्तरा द्वारा पंत, कविता "युग पथ पर मानवता का रथ", पृ० १

[2]—कामायनी, संघर्ष सर्ग पृ० १९२

[3]—ए बुक आफ साइंस वर्स, "द क्रियेटिव चेन आफ बीइंग" पृष्ठ ७४

वह ग्रहों, नीहारिकाओं, नक्षत्रों तथा इस सम्पूर्ण ब्रह्मांड की रचना-प्रक्रिया से सम्बन्धित होगी।

ग्रहों Planets) की उत्पत्ति के बारे में सबसे प्रसिद्ध मत अधिकतर उन ज्योतिष-वेत्ताओं (Astronners) का है जो यह मानते हैं कि ग्रहों की उत्पत्ति एक ऐसे वाष्प-पिंड से हुई है। जो निरन्तर तेजी से गतिशील पारिक्रम-निरत था। यह वाष्प-पिंड हाइड्रोजन था जिसके क्रमशः शीतल होने पर, उस पिंड के अनेक भाग क्रमशः विच्छिन्न होने का कारण सघनन-क्रिया को माना जाता है जिसे अंग्रेजी में Condensation कहते हैं। इस प्रकार केन्द्र का भाग सूर्य और गतिशील आवर्त्तन (Rotational Momentum) के कारण एक के बाद एक ग्रह सूर्य से दूर ही नहीं होते गए, पर स्वयं ग्रहों के मध्य में दूरी बढ़ती ही गई।[1] इस सिद्धान्त के प्रति आज का कवि अवश्य सचेत है और जाने अनजाने वह इस सिद्धांत को, अप्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने रख भी देता है। उदाहरण स्वरूप प्रसाद ने वाष्प के उजड़ने, तथा सौर-मंडल में आवर्तन पड़ने का जो संकेत कामायनी में प्रस्तुत किया है, वह उपर्युक्त प्रस्थापना को अप्रत्यक्ष काव्यात्मक रूप इस प्रकार देता है—

वाष्प बना, उजड़ा जाता था,
था वह भीषण जल-संघात।
सौर चक्र में आवर्त्तन था
प्रलय निशा का होता प्रात॥[2]

यह जल संघात, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो हाइड्रोजन तथा अन्य ज्वलनशील गैसों का मिश्रण है, जिसे अनेक वैज्ञानिकों ने "आधार भूत पदार्थ (Background material) कहा है जिससे ग्रहों तथा नक्षत्रों का उद्भव तथा विकास सम्पन्न हुआ है। यही नहीं, इसी "आधारभूत पदार्थ" से नीहारिकाएँ (Galaxies) भी उद्भूत हुई है। अतः यह रहस्यमय ब्रह्मांड का विस्तार दिक् और समय (Space and Time) की प्राचीरों के अंदर

[1]—द नेचर आफ द यूनीवर्स द्वारा फ्रेड हल (Hoyle) पृष्ठ ५५—५६

[2] -- कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ २०

ही हुआ है। अपरोक्ष रूप से, इसी विस्तार का एक सफल संकेत हमें निराला की निम्न पंक्तियों में मिलता है—

> धूमायमान वह धूम्य प्रसर
> धूसर समुद्र शशि ताराहर,
> सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर, क्षर रेखा ॥[1]

समय और दिक् की सीमाओं में ही समस्त सृष्टि का विकास हुआ है। इसका बहुत ही स्पष्ट संकेत हमें नरेन्द्र शर्मा की इन पंक्तियों में प्राप्त होता है—

> तिनके से बनती सृष्टि,
> सृष्टि सीमाओं में पलती रहती।
> वह जिस विराट का अंश,
> उसी के झोंकों को फिर-फिर सहती ॥[2]

इन उदाहरणों से एक अन्य प्रसिद्धतम-वैज्ञानिक सिद्धान्त की ओर भी स्वतः ध्यान जाता है, और वह है अनिश्चितता या आकस्मिकता का सिद्धान्त (Principle of Improbablity or Uncertainity)। आज के वैज्ञानिक चिंतन में और मुख्यतः सृष्टि रचना के संदर्भ में इस सिद्धान्त के प्रति काफी आस्था है वैसे तो यह सिद्धान्त गणित तथा भौतिक-शास्त्र से सम्बन्ध रखता है, पर उसकी विशालता का जयघोष आज के समस्त दार्शनिक-चिंतन पर प्रभाव डाल रहा है। सृष्टि के संदर्भ में इसी आकस्मिकता का एक सुन्दर संकेत हमें श्री रामधारी सिंह "दिनकर" की इस रचना में प्राप्त होता है—

> देख रहे हम जिसे,
> सृष्टि वह आकस्मिक घटना है।
> यों हीं बिखर पड़े ?
> हम सब आकस्मिकता के कारण हैं।[3]

यहाँ पर जान डोन का वह कथन याद आ जाता है जो उसने १७ शताब्दि के प्रथम चरण में कहा था कि 'नया दर्शन प्रत्येक वस्तु को शंका की दृष्टि से देखता है'[4]

[1]—तुलसीदास द्वारा निराला, पृष्ठ ५१

[2]—हंसमाला द्वारा नरेन्द्र शर्मा, पृष्ठ २४

[3]— नीलकुसुम द्वारा दिनकर, पृष्ठ ४६

[4]—साइंस एंड इमाजिनेशन द्वारा मारजोरी निकाल्सन से उद्धृत, पृष्ठ ५३

और मेरा यह विचार है कि इस चिंतन में कवि ने एक ऐसे तथ्य की ओर संकेत किया है जो आगे चलकर वैज्ञानिक चिन्तन का आधारबिन्दु ही बन गयी।

अब मैं सृष्टि के ऐसे रहस्यमय लोक में जाना चाहता हूँ जो आज के वैज्ञानिक अनुसंधानों का एक आश्चर्यमय लोक है। सृष्टि रचना सम्भावनाओं तथा प्रक्रियाओं का रंगस्थल है। वैज्ञानिकों ने इन प्रक्रियाओं को "विस्तारित-विश्व" (Expanding Universe) के रहस्यमय सिद्धान्त के रूप में सामने रखा है। यहाँ पर सृष्टि रहस्य का जो विशाल सागर लहराता हुआ दृष्टिगत होता है, वह आज के कवियों के लिये एक नवीन सृजन-शक्ति का सिंहावलोकन करता है। यह विश्व निरन्तर विकास प्राप्त हो रहा है जो नीहारिकाओं के सृजन तथा विनाश की क्रमिक क्रिया है। न जाने कितने सौर मंडल और है जो हमारी दृष्टि से परे हैं कितने बनते जाते हैं और कितने 'आधारभूत-पदार्थ' में तिरोहित होते जाते हैं। यह चक्र निरन्तर चला करता है।[1] गिरिजाकुमार माथुर ने इसी सत्य को इस प्रकार रखा—

> अंतरिक्ष सा अंतर, जिसमें अगणित
> ज्योति ब्रह्मांड समाये
> सूरज के बड़े बड़े साथी
> बनते मिटते हैं आये ॥[2]

आकाशगंगा (Milks way) तो केवल एक ही नीहारिका है और न जाने ऐसी कितनी अन्य नीहारिकायें और हैं, जो दृष्टि से परे ही शक्तिशाली टेलीस्कोप भी उनको भेदने में असमर्थ हैं। परन्तु फिर भी वैज्ञानिकों ने इन अदृष्ट ब्रह्मांडों को जानने का भरसक प्रयत्न किया है और उनका यह प्रयत्न उनके प्राप्त निष्कर्षों से सम्बन्ध रखता है शून्य या दिक् (Space) के अथाह समुद्र में न जाने कितनी नीहारिकायें, कितने सौर मंडल, और कितने नक्षत्र गतिशील हैं और प्रवाहमान हैं। इस स्थिति को डा०

[1]—दे० नेचर आफ यूनीवर्स द्वारा हाइल और द लिमीटेशन्स आफ साइंस द्वारा जे० सूलीवैन, पृष्ठ १९-२५

[2]—धूप के धान, द्वारा गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ ११४

धर्मवीर भारती ने बहुत ही सुन्दर रूप में हमारे सामने रखा है —

> अक्सर आकाशगंगा के,
> सूनसान किनारों पर खड़े होकर
> जब मैंने अथाह शून्य में
> अनन्त प्रदीप्त सूर्यों को
> कोहरों की गुफाओं में पंख टूटे,
> जुगनुओं की तरह रेंगते देखा है ।[1]

इस कल्पना में वैज्ञानिक तथ्य है जो कवि की सृजन शक्ति को एक नवीन संदर्भ में अवतीर्ण करती है। महाकवि मिल्टन भी सृष्टि के इस अबाध रहस्य सागर को देखकर ही, शायद कह उठा था—

> Thus far extend, thus far thy bounds;
> Thus be thy just Circumference, O World [2]

अर्थात् "हे विश्व ! इतनी दूर तक विस्तृत और इतनी दूर तक तेरी सीमायें सत्य में, ये तेरा यथार्थ परिधि है ।"

इन सभी उदाहरणों में हमें सृष्टि की अनुपम एवं रहस्यमय रचना का संकेत प्राप्त होता है। यह समस्त रचना दिक् तथा काल की सीमाओं में बँधी हुई है। न्यूटन ने समय तथा दिक् को असीम माना था, पर डा० आइंस्टीन तथा इटिंगटन आदि ने समय तथा दिक् को असीम न मानकर ससीम माना है, पर साथ ही उन्हें अपरमित भी। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन की यह धारा 'दर्शन' की ओर उन्मुख है। प्रो० आइंस्टीन का उपर्युक्त कथन एक तात्विक-सत्य (Metaphysical Truth) भी माना जा सकता है जो विज्ञान को भी तात्विक चिंतन का माध्यम बनाता है। दिक् तथा समय की यह धारणा इस सत्य को हमारे सामने रखती है कि दृश्य तथा अदृश्य सृष्टि "दिक्" के अन्तर्गत विकास प्राप्त करती रही है और करती रहेगी। यही कारण है कि आज के वैज्ञानिक चिन्तन में चतुर्आयामिक दिक्-काल की धारणा (Four Dimensional space Time) एक विशेष महत्त्व रखती है। आधुनिक काव्य में इस विराट दिक् को 'शून्य' की संज्ञा दी गई है। इसी शून्य की विराटता के अन्दर कोटि-कोटि नक्षत्र तथा ग्रह और न जाने कितनी नीहारिकाएँ आविभूत तथा तिरोभूत होती रहती हैं। इन्हीं कोटि-कोटि नक्षत्रों का "लास रास" ही उनकी विराटता का द्योतक है —

> कोटि-कोटि नक्षत्र शून्य के महाविवर में,
> लास रास कर रहे लटकते हुये अधर में ।[1]

तथा इसी भाव को दिनकर ने पुरुरवा के द्वारा इस प्रकार व्यंजित किया है

> महाशून्य के अन्तरगृह में, उस अद्वैत-भवन में
> जहाँ पहुँच दिक्काल एक हैं, कोई भेद नहीं है।
> इस निरभ्र नीलान्तरिक्ष की निर्जर मंजूषा में
> सर्ग-प्रलय के पुरावृत्त जिसमें समग्र संचित हैं ॥[2]

इसी महाशून्य रूपी मंजूषा में प्रलय-सृजन की क्रमागत लीला निरन्तर चला करती है इस प्रकार के अनेक वर्णन हमें आज की कविता में प्राप्त होते हैं जिनका यहाँ पर व्यर्थ ही विस्तार करना उचित नहीं है।

मूल्यगत चिन्तन

अंत में, मैं मूल्यों (Values) की बात उठाना चाहता हूं। उपर्युक्त संपूर्ण विवेचन के संदर्भ में मैंने यदा कदा मूल्यों के प्रति संकेत दिया है। अनेक विचारकों का यह मत है कि मूल्यगत चिन्तन, जो दार्शनिक चिन्तन का विषय है, विज्ञान के बाहर की वस्तु है। परन्तु उपर्युक्त विवेचन के आधार पर मैं इस भ्रमपूर्ण धारणा का पक्षपाती नहीं हूँ। मैंने अपने सीमित अध्ययन के द्वारा जिस प्रस्थापना को समक्ष रखने का प्रयत्न किया है, उसमें 'मूल्यों' का एक विशिष्ट स्थान है। यहाँ पर मैं कुछ मूल्यों की विवेचना आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन के आधार पर करने का प्रयत्न करूँगा।

सबसे प्रथम जो "मूल्य" विज्ञान ने हमारे सामने रखा है, वह है "अस्तित्व" के प्रति। आज का कवि दो दिशाओं

[1]—कनुप्रिया द्वारा डा० भारती, पृष्ठ ५०

[2]—पैराडाइज लास्ट द्वारा मिल्टन, पृष्ठ २३० से उद्धृत

[1]—कामायनी, संघर्ष सर्ग, पृष्ठ १९०

[2]—उर्वशी द्वारा दिनकर, पृष्ठ ७०

की ओर अपनी सृजन-शक्ति को गतिशील कर सकता है, एक विकासवाद की ओर जो इस ग्रह से सम्बन्धित है और दूसरा ब्रह्मांड की ओर, जो हमारी कल्पना को दिक् और समय के सापेक्षिक रहस्यलोक में ले जा सकती है। आधुनिक विज्ञान हमारे ही नहीं, पर समस्त ब्रह्मांड के अस्तित्व के प्रति सचेत है। जब वह इस विराट रचना को देखता है जिसमें असंख्य ग्रह, नक्षत्र, नीहारिकाएं और सौर-मंडल है, तब वह अपने अस्तित्त्व के प्रति सचेत हो जाता है। "उसका" तथा इस विराट रचना का क्या अनुपात है, वह यह जानने को उत्सुक हो जाता है और आज का कवि भी इस अनुपात की स्थिति के प्रति पूर्ण से सजग है, तभी तो वह इस स्थिति को अत्यंत सुलझे हुये रूप में रखने में समर्थ है —

अनगिन नक्षत्रों में
पृथ्वी एक छोटी
करोड़ों में एक ही
सबको समेटे है।
परिधि नभगंगा की
लाखों ब्रह्मांडों में
अपना एक ब्रह्मांड
हर ब्रह्मांड में—
कितनी ही पृथ्वियाँ
कितनी ही भूमियाँ
कितनी ही सृष्टियाँ

● ● ●

यह है अनुपात
आदमी का विराट से।[1]

यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस दशा के द्वारा, विज्ञान में पलायन [Escapism] तथा निराशा की प्रवृत्ति नहीं है। जब वह नीहारिकाओं तथा अपने ही सौर-मण्डल के प्रति अनिश्चित है, तो वह उसके एक अंश — हमारे ग्रह के प्रति केवल सम्भावना ही दे सकता है जो विगत घटनाओं तथा परिस्थितियों पर आश्रित है। इसी तथ्य की प्रतिध्वनि गिरिजाकुमार माथुर की निम्न पंक्तियों में व्यञ्जित होती है: —

शर्त—सम्भावना की जमीन
बीज का विकास
परिस्थिति की खाद
और आस पास······ ।[1]

उसके अनुसार हमारी पृथ्वी, मंगल और बुद्ध करोड़ों, अरबों वर्ष बाद सूर्य में समाहित हो जायेंगे और इसके स्थान पर कोई दूसरा सौर-मण्डल स्थान ले लेगा। यही बात नीहारिकाओं के प्रति भी सत्य है।[2] यह क्रम समय तथा दिक् की सीमाओं में आबद्ध है। इसी से "अनन्त-सृष्टि" विज्ञान का सत्य है। अतः, यहाँ पर "मृत्यु" या 'विलय' ही सत्य है जो रूपांतर क्रिया का फल है। इस दृष्टि से हमारा अस्तित्व भी महत्त्वहीन है। जब हम अपने अस्तित्व का कहीं पर्यवसान चाहते हैं, तब हम उस दशा को एक "अन्तिम-धारणा" का रूप दे देते हैं। यह अन्तिम-धारणा ही सत्य या ईश्वर है जिस पर मैं आगे विचार करूँगा। यहाँ पर हमें सुरक्षा का एक माध्यम मिल जाता है।[3] परन्तु मैं यह कहूँगा कि यह 'सुरक्षा' भी एक छायामात्र है, पर आवश्यक भी है। आज का काव्य, जीवन के इस सत्य पर एक नए रूप से विचार करने की ओर उन्मुख है। अस्तु, हमारा अस्तित्व एक आभासमात्र है, जिस प्रकार बिन्दु केन्द्र का आभास है—स्थिति कुछ इस प्रकार है —

बिन्दु हूँ मैं —
मात्र केन्द्राभास; वह जो
हर असीम ससीम
हर रूप, हर आकार का विस्तार।

[1]—शिला पंख चमकीले द्वारा गिरिजा कुमार माथुर, पृष्ठ ६५

[1]—शिलापंख चमकीले, पृष्ठ ४८
[2]—द नेचर आफ द यूनीवर्स द्वारा फ्रेड हाइल पृ० ५२-५३
[3]—वही, पृ० १०३
[4]— तीसरा सप्तक, "मैं बिन्दु" कविता, द्वारा प्रयागनारायण त्रिपाठी, पृ० ५९

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इस कथन में अस्तित्त्व के अर्थ की सुन्दर लय है और यहाँ पर "नई कविता" में जो अर्थ लय की बात कही गई है,[1] उसका एक सुन्दर संकेत भी प्राप्त होता है।

दूसरा प्रमुख मूल्यगत चिन्तन है सत्य अथवा ईश्वर के प्रति। सबसे प्रथम बात जो हमें 'ईश्वर' की धारणा में ध्यान रखनी चाहिये, वह यह है कि 'ईश्वर' केवल धर्म का या दर्शन का विषय नहीं है, वह अन्य ज्ञान क्षेत्रों का भी विषय है। आज का वैज्ञानिक-दर्शन हमें इस तथ्य की ओर उन्मुख करता है। सर आर्थर वाइटहेड, लीकाँमटे डूँ नू, फ्रेड होइल, न्यूटन, सर जेम्स जीन्स, प्रो० आइंस्टीन आदि वैज्ञानिक-चिन्तकों ने विज्ञान के विशाल क्षेत्र में भी 'ईश्वर' को किसी न किसी रूप में ग्रहण किया है। मगर उनकी ईश्वर की धारणा तर्कमय तथा सापेक्षिक सत्य को लिए हुए हैं। वह उस दृष्टि से निरपेक्ष नहीं है, जिस दृष्टि से वह धर्म तथा दर्शन में मान्य है। यही कारण है कि डूँ नूँ ने ईश्वर को एक ऐसी सत्ता के रूप में ग्रहण किया है जो विकास की गति के साथ है और उनसे अलग नहीं है।[2] इसी प्रकार का चिन्तन हमें आज के काव्य में भी प्राप्त होता है। दिनकर की निम्न पंक्तियाँ मेरे कथन की पुष्टि करती हैं —

ईश्वरीय जग भिन्न नहीं है, इस गोचर धरती से
इसी अपावन में अदृश्य, वह पावन सना हुआ है।[3]

इस दृष्टि से प्रो० वाइटहेड का यह निष्कर्ष कि ईश्वर की धारणा में असीम तथा ससीम, सापेक्ष तथा निरपेक्ष आदि भावनाओं का सन्निवेश रहता है,[4] तभी वह विज्ञान के क्षेत्र में चिन्तन का माध्यम बन जाता है। अस्तित्त्व मूल्य के प्रकाश में मैं प्रथम ही संकेत कर चुका हूँ कि अस्तित्त्व की

[1]—नई कविता [५-६] डा० जगदीश गुप्त का लेख "कविता और अकविता" पृ० २१

[2]—ह्यू मन डैस्टनी, पृ० १२५ यही मत वाइटहेड का भी है जो विकासवादी दृष्टिकोण है।

[3]—उर्वशी द्वारा दिनकर, पृ० ७७

[4]—प्रोसेस एंड रियाल्टी द्वारा वाइटहेड, पृ० १५५

दृष्टि से भी विराट या ईश्वर की धारणा हमारे लिए एक सुरक्षा का माध्यम है। यह आभास ही सत्य है। इन विविध दृष्टिकोणों के अन्तराल में एक सत्य यह है कि जिसे प्रो० आइंस्टीन तथा सर-जेम्स जीन्स ने भी स्वीकार किया है कि एक ऐसी शक्ति या "मैथामैटिकल माइंड" [Mathematical Mind] अवश्य है जो इस वृहद् रचना का केन्द्र है। यह वृहद् रचना का केन्द्र नियम तथा आकस्मिकता है जो कोई साकार रूप नहीं है, पर है उसकी सत्ता अवश्य !! यदि पन्त की शब्दावली में कहें तो यह महाशून्य जिसमें यह दिक् निरन्तर विस्तार को प्राप्त कर रहा है, और यही महाशून्य जो नित्य है, कैसे और कहाँ से इसका उद्भव हुआ, यह ज्ञात नहीं; यह ही महाशून्य, वह सत्य है जिसे हम 'ईश्वर' कहते हैं —

> कौन सत्य वह ? महाशून्य तुम
> जिससे गर्भित होकर
> महाविश्व में बदल गये
> धारण कर निखिल चराचर।[1]

इसी स्थिति को अज्ञेय ने भी एक नितांत दूसरे रूप में ग्रहण किया है जो वैज्ञानिक चिन्तन के नितांत अनुकूल है। विज्ञान में 'सत्य' एक है, पर वह अनेक रूपों में, अनेक सूत्रों में खो सा गया है, मगर है वह अवश्य गुप्त तथा अव्यक्त रूप में। तभी तो कवि के लिए सत्य एक ग्रन्थि है और वैज्ञानिक इसी ग्रन्थि को उसके सूत्रों को खोजने में तत्पर है एक तर्क तथा अनुभव सम्मत रूप में —

> सत्य एक है—
> क्योंकि वह एक ग्रन्थि है
> जिसके सब सूत्र खो गये हैं।[2]

इसमें भी स्पष्ट वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित 'ईश्वर' की धारणा का जो रूप निम्न पंक्तियों में प्राप्त होता है वह भी आज के वैज्ञानिक दर्शन का प्रतिरूप माना जा सकता है—

[1]—युगपथ द्वारा पंत, पृ० १३७

[2]—इत्यलम् द्वारा अज्ञेय, पृ० १९७

एक शून्य है
मेरे और अज्ञात के बीच
जो ईश्वर से भर जाता है।[1]

इन उदाहरणों से एक अन्य तथ्य भी ज्ञात होता है कि जहाँ पर हमारी विचार श्रृंखला एक ऐसे बिन्दु पर आकर आगे सोचने में असमर्थ हो जाय, तो इस अन्तिम-धारणा को हम ईश्वर या किसी अन्य नाम से पुकारते हैं। मैं अपने इस विवेचन को प्रो० वाइटहेड के इस कथन से समाप्त करता हूँ जो वैज्ञानिक चिंतन का मधु है —"हम सीमाओं (Limitations) के लिये कोई न कोई आधार अवश्य अपनाएँ जो आधारभूत प्रक्रिया के अवयवों के मध्य प्रतिष्ठित हो सके। यह लक्ष्य एक ऐसी सीमा की ओर संकेत करता है जिसके अस्तित्व के लिए कोई कारण नहीं दिया जा सकता है। ईश्वर अंतिम सीमा है और उसका अस्तित्व अंतिम तर्कहीनता है। ईश्वर व्यक्त नहीं है, पर "वह" व्यक्त सम्भावनाओं की आधारशिला है।[2]

तीसरा मूल्य, जिस पर मैं प्रथम ही विचार कर चुका हूँ, वह है सौंदर्यबोध। इस मूल्यगत चिन्तन के अन्तर्गत तथ्य की प्रस्थापना की गई है, वह विषय तथा विषयीगत—दोनों स्तरों पर घटित हो सकती है। यही कारण है वैज्ञानिक के लिये ज्ञान बोध सौंदर्य बोध का पर्याय हो जाता है। वह समरसता तथा ज्ञान को जीवन में सापेक्षिक महत्व देते हुये भी, ज्ञान को ही सर्वोपरि मानता है। यहाँ पर कुछ उसी प्रकार की स्थिति दृष्टिगत होती है जो दार्शनिक ज्ञान के बारे में भी कही जा सकती है। यही कारण है कि प्रत्येक मानवीय ज्ञान का पर्यवसान दर्शन के विशाल ज्ञान में माना जाता है। मेरे मतानुसार वैज्ञानिक का सौंदर्यबोध इसी ज्ञान की अर्थवत्ता (Significance) में समाहित है क्योंकि—

अनुभूति कहती है कि जो
नंगा है वह सुन्दर नहीं है
यद्यपि सौन्दर्य - बोध
ज्ञान का क्षेत्र है।[1]

चौथा मूल्य नैतिकता से सम्बन्धित है। विज्ञान के क्षेत्र में नैतिकता भी सापेक्षिक मानी जाती है। उसके अन्तर्गत प्रयोगकर्ता की ईमानदारी, अपने कार्य के प्रति निष्काम भावना जो विज्ञान के विकास की प्रथम आवश्यकताएं हैं — जिनका पालन करना वैज्ञानिक की नैतिक जागरूकता ही कही जायगी। साहित्य-सृजन में भी लेखक या कृतिकार इसी नैतिक-मूल्य को चरितार्थ कर सकता है और वह उसी समय कर सकता है, जब वह व्यक्तिगत विरोध के वात्या-चक्र से ऊपर उठकर, एक निष्पक्ष तथा निष्काम 'साधना' को अपना सकेगा। सत्य तो यह है कि आधुनिक काव्य तथा साहित्य में दलबन्दी तथा व्यक्तिवादी विरोधी वृत्तियाँ ही अधिक नजर आती हैं, जो वैज्ञानिक ज्ञान-साधना हमें विज्ञान के क्षेत्र में प्राप्त होती है, उसी प्रकार की ज्ञान-साधसा आज के काव्य तथा साहित्य के लिए भी अपेक्षित है। वैज्ञानिक चिन्तन कर आधारित काव्य; ज्ञान-काव्य का प्रतिरूप होता है और उसमें अर्थ की लय ही प्राप्त होगी। इस काव्य में कल्पना तथा भावना, ज्ञान को मनोरम बनाने के लिये माध्यम ही हो सकती है, साध्य नहीं। इस प्रकार दर्शन और विज्ञान एक साथ मिलकर, 'ज्ञान' या 'सत्य' का नव्य निरूपण कर सकते हैं। कवि पन्त के शब्दों में—

दर्शन युग का अंत, अंत विज्ञानों का संघर्षण
अब दर्शन-विज्ञान, सत्य का करता नव्य-निरूपण।[2]

---

[1]—चक्रव्यूह द्वारा कुँवर नारायण, पृ० ७९ "शून्य और अशून्य" कविता से

[2]—साइंस एन्ड द माडर्न वर्ल्ड द्वारा वाइटहेड, पृ० १७९

[1]—इत्यलम्, पृष्ठ ९४

[2]—युगवाणी द्वारा पन्त, पृष्ठ ३९

आधुनिक हिन्दी काव्य के नये मूल्य

डॉ० रामकुमार वर्मा

जहाँ तक साहित्य की दृष्टि जाती है, मानव जीवन के उन्हीं मनोवेगों के चित्र अंकित किये जाते हैं, जो मानवता के इतिहास में विशेष महत्व रखते हैं। इस इतिहास के दो रूप हो सकते हैं। पहिला रूप तो वह जो शताब्दियों से मानवता का मेरुदण्ड है अर्थात् जो मानव मन के राग-विराग से सम्बन्धित है तथा जिनके प्रकारों में कोई भेद नहीं है। मानव में जो प्रेम की भावना शताब्दी पूर्व थी, वही आज भी है। जिस प्रकार आदि जननी अपने शिशु के लिये वात्सल्य की सम्पत्ति सुरक्षित किये हुए है। उस अपार सम्पत्ति में से वह एक कण भी नहीं खो सकती है।

स्वरक्षा, सुविधा, राग, सहानुभूति आदि की जो प्रवृत्तियाँ मानवता के क्रोड़ में पोषित होती रही हैं, वे शताब्दियों के इतिहास से विकसित ही होती रही है, किसी प्रकार भी नष्ट नहीं हुई। इस विकास में उन प्रवृत्तियों की कोटियाँ बनी हुई हैं, वे अन्य क्षेत्रों में भी मुखरित हुई हैं। और मनुष्य को उसके भाव जगत में अत्यन्त सुसम्पन्न बनाया है इन्होंने।

इन प्रवृत्तियों से सम्बन्धित साहित्य ही चिरन्तन साहित्य है और यह मानवता के साथ ही विकसित होता चला है। यही चिरनवीन साहित्य है।

इस इतिहास का दूसरा रूप वह है जो युग विशेष में मानवता की आवश्यकता की पूर्ति कर सका है।

इस प्रकार के साहित्य ने अधिकतर मनुष्य की सभ्यता का साथ दिया है तथा वह मनुष्य के आचार और व्यवहार से सम्बन्धित रहा है। सभ्यता के अनुसार प्रत्येक युग के आचार और व्यवहार बदल जाया करते हैं और साथ-ही साथ साहित्य भी नया रूप ग्रहण करता चलता है। प्रथम युग का साहित्य जिस दृष्टिकोण से लिखा गया था वह दूसरे युग में बदल गया और उसके द्वारा दूसरे युग की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती, फलस्वरूप साहित्य की दृष्टि भी परिवर्तित हो जाती है। यदि हम यहाँ काव्य का ही उदाहरण लें तो यह स्पष्ट होगा कि चारणकालीन काव्य भक्तिकालीन मनोभावों को पूरा नहीं कर सकता। भक्तिकाल के लिए दूसरी ही दृष्टि की आवश्यकता हुई। भक्तिकालीन काव्य रीतिकालीन विलासिता में अपनी सम्पूर्ण स्वानुभूति खो बैठा। रीतिकालीन में नये-नये प्रतीकों की आवश्यकता हुई और जिन उपकरणों से भौतिक अथवा शृङ्गारिकता पूर्ण मनोभावों की सृष्टि हो सकती थी उन्हें ही साहित्य में प्रचुर राशि में एकत्र किया गया।

काव्य का यह रीतिकालीन दृष्टिकोण प्रबुद्ध काल अथवा आधुनिक काल में व्यवहारिक नहीं समझा गया तथा जीवन के वस्तुवाद के प्रति अधिक जागरूक बना। समाज में नैतिक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा हुई और काव्य समाज की अपेक्षा व्यक्ति के अनुराग-विराग में विशेष रूप से प्रवेश प्राप्त करने लगा।

इस प्रसंग में यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस युग सम्भूत काव्य के साथ ऐसे काव्य की सृष्टि भी हुई जो मानव की अन्तरंग और आधारभूत प्रवृत्तियों से सम्बन्धित

रहा और जो युग की सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम बना।

प्रत्येक युग में ऐसी रचनाएं देखी जा सकती हैं जो अपने दृष्टिकोण में उतनी ही नवीन है जितनी नवीन वे अपने युग में थीं।

इस भाँति दोनों प्रकार की कृतियाँ समानान्तर चलती हुई भी अपने दृष्टिकोण में भिन्न हैं। युग सम्भूत काव्य केवल युग की दृष्टि का प्रतीक है और उसी से अनुशासित भी है, स्थायी काव्य मानव की चिरन्तन दृष्टि का प्रतीक है जो युग से प्रभावित न होकर युग को प्रभावित करने की शक्ति रखता है। ऐसा काव्य युग और परिस्थिति के आतंक से मुक्त है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि चिरन्तन काव्य की मूल्यों की अपेक्षा नहीं। वह जो मानव जीवन के अन्तर्गत से सम्बद्ध है और उसके अस्तित्व में रंग भरता हुआ चिर-नवीन है। उषा की भाँति वह मानव जीवन को प्रभात का सन्देश देता है और जिस प्रकार शताब्दियों से आज तक होने वाली उषा आकर्षण रहित नहीं हुई है उसी प्रकार यह काव्य भी कभी आकर्षणहीन नहीं होगा। वह सप्तरंगों के इन्द्रधनु की भाँति, भावनाओं की वर्षा के बीच सदैव ही साहित्याकाश में सुसज्जित रहेगा।

वस्तुतः मूल्यों की आवश्यकता युग सम्भूत काव्य के लिये ही है। युगों की दृष्टि अलग-अलग है, उनके प्रतीक भिन्न-भिन्न हैं और उसके माध्यम भी।

जिस क्षेत्र तक काव्य की सृष्टि जा सकी है वहाँ तक उसके मूल्यों के निर्धारण का भी प्रश्न उठेगा।

आधुनिक हिन्दी काव्य में ऐसी रचनाएं भी हैं जो मानवता को बल देती हुई अमरता प्राप्त करने की क्षमता रखती हैं।

श्री जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' महाकाव्य मनोवृत्तियों के आधार पर सम्पूर्ण मानव जीवन का अनुशीलन है। प्रत्येक पद्धति को दृष्टि में रखते हुए कथा के रूप में भी जीवन के संघर्ष का यथेष्ट चित्र हमारे मानस पटल पर अंकित हो जाता है। मनोविज्ञान, उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया ही इसके मूल्यांकन का प्रतीक है जो जीवन के साथ-ही-साथ प्रखरतर बनती जायगी और हमारे समक्ष जीवन का रहस्य नये-नये रूपों में उद्घाटित करने में समर्थ हो पायेगी। किन्तु आधुनिक हिन्दी साहित्य में ऐसा भी रूप है जो युग सम्भूत होने के कारण विवेचना पद्धति के अन्तर्गत मूल्यांकनों की अपेक्षा रखता है।

यह तो स्पष्ट ही है कि काव्य का सम्बन्ध अन्तर्जगत से है और वह कल्पना और भावों की ऐसी सहज अभिव्यक्ति है जो मानव जीवन के अनेक भावों के आरोहावरोहों का सौन्दर्य-अनुभूति के धरातल पर स्पष्ट कर देती है। इस काव्य के लिये चिन्तन और तर्क असंगत है। वैसे ही जैसे पुष्पराशि के मध्य सज्जित त्रिपुडांकित शिव की मूर्ति को उठाकर उससे तरकारी के लिये मसाला पीस लिया जाय।

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रमुखतः तीन वाद पाये जाते हैं—छायावाद प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद। वादों के विवादों से तो काव्य सदैव ही युक्त है किन्तु हिन्दी में वाद शब्द इतनी आसानी से मिलते हैं कि उससे कवियों को भी छुटकारा नहीं और प्रत्येक कवि अपने काव्य की दृष्टि से वाद को स्वीकार करते देखा जाता है। पहिले छायावाद ही लीजिये। छायावाद के सम्बन्ध में अनेक वर्षों तक भ्रान्ति रही, अन्त में काव्य के समालोचकों द्वारा यह स्वीकार किया गया।

छायावाद कवि के व्यक्तिगत सौन्दर्य दर्शन की अनुभूति है। यह अनुभूति अनुराग, विराग, मिलन और वियोग दोनों में ही है। कुछ तो प्राचीन परम्परा में और कुछ जीवन के अस्तुवाद की प्रतिक्रिया के उत्पन्न निराशा ने छायावाद को हास्य की अपेक्षा आँसुओं से अधिक द्रवीभूत बनाया।

कबीर का विरह और सूर का 'भ्रमरगीत' इस परम्परा का प्रथम और पूर्ण रूप है। छायावाद में इतनी गहरी स्वानुभूति नहीं आ सकी क्योंकि वैसी साधना आज के युग में किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। फिर भी छायावाद की अनेक रचनाएँ विशुद्ध अन्तर्गत की प्रेरणा से प्रसूत हैं,

उनमें परिस्थिति विशेष की स्वाभाविक और गहरी अनुभूतियाँ हैं। प्रसाद का 'झरना' पन्त का 'पल्लव' और महादेवी की 'दीपशखा' में इस प्रकार के अनेक उदाहरण देखे जाते हैं। इस कविता के मूल्य का निर्धारण उनकी अकृत्रिमता ही है। इस अकृत्रिमता में अलंकारों का स्थान प्रतीकों ने ग्रहण किया है। यह प्रतीक जीवन की स्वाभाविकता से ही निर्मित हैं। प्रसाद का 'वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे' और महादेवी का 'पीड़ा भरे मानस में भीगे पट-सी लिपटी है', वास्तविक अनुभूति के चित्र है। छायावाद का वास्तविक मूल्यांकन प्रतीक पद्धति द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

प्रगतिवाद छायावाद की प्रतिक्रिया का ही आवेश है। प्रगतिवाद ने छायावाद की पलायनवाद को संज्ञा दी और उसकी हत्या करने की घोषणा भी की।

प्रगतिवाद ने सिद्धान्तों का आश्रय ग्रहण किया और जीवन के प्रभावों में, भूख-प्यास में, निर्धनता में एक हिंसक क्रान्ति की ज्वाला जलायी। पूँजीपतियों और मिल-मालिकों को जी भर कर कोसा और उनके विनाश के लिए हिंसा के अगणित बीज काव्य की भूमि पर बोये। काव्य की परिपाटियाँ भी तोड़ीं और छन्दों की श्रृंखलाएँ भी। पर यह स्पष्ट है कि हिंसा विष पानकर कोई भी काव्य जीवित नहीं रह सकता। यही कारण है कि प्रगतिवाद बहुत दिनों तक अपनी शक्ति स्थिर नहीं रख सका। रूसी सिद्धान्तों से बोझिल कवितानौकाएँ काव्य सागर में डूबने लगीं। सिद्धान्तों का प्रचार काव्य का प्रेरक नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि इन सिद्धान्तों को जीवन में इस प्रकार घुला मिला लिया जाय कि वे जीवन के अवयव बन जाँय, तभी उस जीवन का चित्रण काव्य का विषय बन सकता है।

सूर ने जब पुष्टि मार्ग के दृष्टिकोण की दृष्टि से 'सूरसागर' की रचना की, तो उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों को नहीं, आसक्तियों को ग्रहण किया और उन्हें नन्द, यशोदा, राधा और गोपियों के जीवन में इस प्रकार रूपान्तरित किया कि सारा काव्य ही अनुभूति पा उठा।

प्रगतिवाद ने यही भूल की कि उसने सिद्धान्तों के आधार पर जीवन चलाया, जीवन में सिद्धान्तों को रस का रूप देकर नहीं घुलाया। फलस्वरूप समस्त काव्य में सिद्धान्तों की नदियाँ नक्शे में बनी नदियों के रूप में अंकित हो गयीं, किन्तु उनमें जल का, रस का प्रवाह नहीं हो सका और यह नक्शा बार-बार खुलने और बन्द होने से जल्दी ही फट गया।

प्रयोगवाद ने प्रगतिवाद की भूल समझी। उसने युग की चेतना का नये ढंग से काव्य में प्रयोग किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रहस्यवाद ने काव्य क्षेत्र में बड़ी सावधानी से पैर रखा। उसने प्रगतिवाद के मुक्त वृक्ष का प्रयोग भी सम्हल कर किया। नवयुवक कवियों ने भाषा की अपेक्षा भावनाओं का संतुलन अधिक अच्छा किया। उन्होंने सिद्धान्तों की नीरसता में संवेदना के मूर्त रूप अंकित किये और काव्य की श्रृङ्गारशाला प्रकृति को नये ढंग से संवारने की चेष्टा की। यह सही है कि प्रयोगशीलता सत्य को पहिचानने की साधना हैं, इसमें प्रायः असफलता ही हाथ आती है। किन्तु यही तो सत्य और सौन्दर्य की अनुभूति का मार्ग है। इस भाँति प्रयोगवाद ने दो प्रकार की नीतियों का अवलम्बन किया।

पहली से उन्होंने काव्य की रूढ़ियों को हटाने की चेष्टा की और दूसरी से उन्होंने नवचेतना को सिद्धान्तों का रूप न देकर रूपक और उसमें निहित सौन्दर्य का आकर्षण प्रदान किया। यह मार्ग छायावाद और प्रगतिवाद के चरण विन्दुओं के मध्य का है। किन्तु यह प्रयोगवाद अभी तक समर्थ हाथों में नहीं आ सका। इसमें जीवन की कली है किन्तु अभी तक वह मुकुलित नहीं हो सकी। उसमें सुगन्धि की सम्भावना है पर अभी तक उसमें सुगन्धि का प्रसार नहीं हो सका। इन वादों के अतिरिक्त काव्य की एक दिशा और बन गई।

देश के स्वतन्त्र होने पर हमारी दृष्टि अपने देश के व्यक्तित्व और उनके प्राचीन गौरव की ओर चली गई।

फलस्वरूप अनेक रचनाएं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी होने लगीं। इस दृष्टिकोण में काव्य के प्राचीन रूप पुनः प्रकाश

में आने लगे हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक इतिवृत्तियों में फिर हमारी रुचि प्रवृत्त हुई है। हिन्दी में अनेक खंड-काव्यों की सृष्टि बड़े उत्साह से होने लगी है—'आर्यावर्त', 'कुरुक्षेत्र', रश्मिरथी द्रोण', 'कैकेयी', 'कर्ण' आदि अनेक खंडकाव्य और महाकाव्य फिर प्रकाश में आने लगे हैं। इन काव्य रचनाओं में विशेषता इस बात की है कि प्राचीन पुरुषों का चरित्र मनोविज्ञान की कसौटी पर कसा गया है। परिस्थितियों में नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत मानदण्डों की व्यवस्था की गई है। इनके अतिरिक्त हिमालय, तथागत और "बापू" पर भी अनेक रचनाएं हुई हैं जो विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत हैं।

काव्य के इतिहास पर एक व्यापक दृष्टि डालने से यह रूप स्पष्ट ज्ञात होता है कि काव्य की प्रेरणाएं समाप्त नहीं हो जातीं। वे परिस्थिति विशेष से अन्तः सलिला सरस्वती की भाँति दृष्टि से ओझल भले ही हो जाएं, नष्ट नहीं होतीं। इसी भाँति के क्षेत्र में अब भी वर्तमान हैं उन्हें भले ही समान अभिव्यक्ति न प्राप्त हो। आज भी छायावाद होगा, किन्तु उसका नया मूल्य है—जीवन की पवित्र अनुभूति और उस अनुभूति का प्रकृति निर्मित प्रतीक। प्रगतिवाद का नया मूल्य होगा जीवन के अभावों की प्राकृतिक प्रतिक्रिया और जीवन की मूर्छित चेतना। प्रयोगवाद का नया मूल्य होगा जीवन की स्वस्थ और पौरुषमय विविधता और सौन्दर्य से जीवन प्रशस्त करने की क्षमता तथा सांस्कृतिक रचनाओं का नया मूल्य होगा—मानवता की उदार एवं कल्याणमयी बन्धुत्व की पुकार।

इन नये मूल्यों से आधुनिक हिन्दी काव्य चिरन्तन साहित्य का अंग बन सकेगा, ऐसा मेरा अटल विश्वास है।

हिन्दी काव्य में रहस्यवाद और छायावाद

•

डॉ० केदारनाथ द्विवेदी

रहस्यवाद और छायावाद क्या हैं? साहित्य का प्रत्येक अध्येता इस प्रश्न का उत्तर जानना चाहता है। यह प्रश्न कोई नया नहीं है। आज से कुछ वर्ष पूर्व ही सन् १९२७ में प्रकाशित होने वाली सरस्वती मासिक पत्रिका के मई वाले अंक में ही सुकविकिंकर नामधारी आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने रहस्यवाद शब्द के प्रयोग का प्रश्न छेड़ा था और उसी वर्ष के सितम्बर तथा अक्टूबर में प्रकाशित होने वाली 'सुधा' नामक पत्रिका में पं० अवध उपाध्याय ने रहस्यवाद और छायावाद शब्दों का भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग करने के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया था। अपनी बात को अधिक स्पष्ट करते हुये उन्होंने कहा था—'मिस्टिक की दो प्रधान रचनाएँ हैं। एक के लिये मैंने रहस्यवाद और दूसरी के लिए छायावाद का प्रयोग किया है—ब्रह्म या ईश्वर का संयोगिक साक्षात्कार तथा स्पष्ट और तात्कालिक अनुभव ही रहस्यवाद और ब्रह्म या ईश्वर के साथ आत्मा का सम्भवतः संयोगसाक्षात्कार और तात्कालिक अनुभव का सिद्धान्त छायावाद है। यह स्पष्ट है कि इन दोनों शब्दों के प्रयोग को भिन्नर्थक स्वीकार करते हुये भी उनकी प्रवृत्ति छायावाद को रहस्यवाद की एक दूसरी दिशा मानने की रही है क्योंकि दोनों में ही ब्रह्म व ईश्वर का साक्षात्कार अपेक्षित माना गया है। यद्यपि 'रहस्य' शब्द भारतीय मनीषियों और रसाचार्यों का बहुत प्राचीन काल से ही विवेच्य बना हुआ है किन्तु बीसवीं शताब्दी में जब उस पर 'वाद' की खोल चढ़ा दी गई तो उसकी रहस्यमयता अत्यधिक बढ़ गई और छायावाद के उद्भव के साथ ही अनेक साहित्य साधकों की लेखनी रहस्यवाद और छायावाद का विश्लेषण करने की ओर प्रवृत्त हो उठीं। जिन विद्वानों ने "इस दिशा में कदम उठाया, उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य का गम्भीर मनन और अनुशीलन करने के अनन्तर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने की चेष्टा भी की किन्तु दृष्टि-भेद के कारण उनके विचारों में एकरूपता की प्रतिष्ठा न हो सकी। ऐसी परिस्थिति में साहित्य के सामान्य पाठकों के लिए रहस्यवाद और छायावाद का सही स्वरूप समझना, उनके पारस्परिक साम्य और वैषम्य को हृदयंगम कर लेना तथा उनके उद्भव स्रोत का पता पा जाना कठिन हो गया है और इसीलिए रहस्यवाद और छायावाद दोनों ही के विश्लेषण की अभी भी कम आवश्यकता नहीं है।

'रहस्य' का शाब्दिक अर्थ है गुप्त व प्रच्छन्न। अतः रहस्य रूप में किसी गोपनीयता की झलक मिल जाती है किन्तु इस अर्थ को स्वीकार कर लेने पर सहज ही यह प्रश्न उठ सकता है कि जो स्वतः गुह्य है उसके सम्बन्ध में किसी वाद विशेष की चर्चा करना कहाँ तक न्याय संगत है? यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि हिन्दी का 'रहस्यवाद' शब्द आँग्ल भाषा के 'मिस्टिसिज्म' का पर्याय है तो भी रहस्यवाद की रहस्ययता कम नहीं हो जाती क्योंकि मिस्टिसिज्म का अर्थ भी कोई 'गुप्त विद्या' वा 'गुप्त साधना' स्वीकृत है। यदि रहस्यवाद को हम 'गुप्त विद्या' वा 'गुप्त साधना' ही मान लें, तो भी हमारी समस्या का समाधान नहीं हो पाता, क्योंकि रहस्यवाद में साधक सर्वतोभावेन साध्य के प्रति प्रेम भाव से अभिभूत होकर आत्म समर्पण कर देता है और उसका व्यक्तित्त्व विश्वात्मक चेतना में अनुप्रेणित हो जाता है तथा उसके लिए सभी प्रकार के वाह्य अनुष्ठान

निरर्थक हो जाते हैं जब कि गुह्य विद्या का साधक विविध वाह्य अनुष्ठानों के आधार पर अपने साध्य को प्रसन्नकर शक्तिशाली बन जाने की अभिलाषा रखता है। 'रहस्य' शब्द की गोपनीयता के संदर्भ में यह भी सोचा जा सकता है कि ब्रह्म आवरण से आच्छादित है। अज्ञान के आवरण के भीतर से ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेना और साक्षात्कार के परिणाम स्वरूप प्राप्त अनुभूतियों का प्रकाशन करना भी कम महत्व का नहीं है। इस आधार पर 'सावरण को निरावरण करने और उसके रहस्य का उद्घाटन करने' की प्रवृत्ति को भी रहस्यवाद कहने की एक दीर्घ परम्परा सी चली आ रही है। रहस्यवाद पर विचार करते समय हमारा ध्यान सहज ही उन विद्वानों की एतद्विषयक धारणा पर चला जाता है जिन्होंने रहस्यवाद को ज्ञान Rnowlege) संवेदन Feeling और क्रिया Acton में से कोई एक मान लिया है। यह स्पष्ट है कि रहस्यवाद को 'ज्ञान' मान लेने पर अनेक समस्याएँ हमारे सामने उपस्थित हो जायेंगी। ज्ञान के लिए ज्ञाता और ज्ञेय दोनों ही अपेक्षित हैं क्योंकि साध्य और साधक के अभाव में साधन का कोई महत्त्व नहीं होता। रहस्यवाद में जिस ज्ञेय के प्रति साधकों का ध्यान केन्द्रित रहता है वह सदा ही अज्ञेय है। उस साध्य का अनुभव भी नहीं हो सकता क्योंकि अनुभव भी इन्द्रिय सापेक्ष होता है और रहस्यवाद का अनिवर्चनीय ज्ञेय इन्द्रिय ज्ञान से परे है। अतः रहस्यवाद को ज्ञान की संज्ञा देना असंगत सा प्रतीत होता है। इसी प्रकार इसे संवेदन और क्रिया में से कोई एक मान लेने पर यह निवेदन किया जा सकता है कि इन्हें मनोवैज्ञानिक तत्व के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है और साथ ही यह प्रश्न भी उठ सकता है कि संवेदना तथा क्रिया का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने के कारण उन्हें अलग-अलग करना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है, इसी प्रकार रहस्यवाद को अनुभूति और मनोवृत्ति के रूप में भी नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योंकि रहस्यात्मक अनुभूति को लौकिक शब्द-शक्ति के माध्यम से स्पष्ट करना असंभव है और रहस्यवाद को अनुभूति मात्र मान लेने पर इसका केवल एक मनोवैज्ञानिक परिचय मात्र हमें मिल सकता है और मनोवृत्ति शब्द भी किसी साधारण मनोदशा का बोधक माना जा सकता है ये सभी परिभाषाएँ दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक ही कहीं कहा जा सकती है। रहस्यवाद की व्यावहारिक परिभाषा को स्पष्ट करने के लिए यह अनिवार्य है कि उक्त सभी परिभाषाओं का समन्वय करके उनमें एक संतुलन लाने की चेष्टा की जाय। इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि रहस्यवाद जीवन-दर्शन का एक सिद्धान्त है। किसी एक सत्ता को स्वीकार कर, उसी को सब कुछ मानते हुए तथा उसकी अनिर्वचनीयता की अनुभूति करते हुए सहज रूप में काम की जो प्रवृत्ति है, उसे रहस्यवाद कह सकते हैं। जो साध्य-साधना और सिद्धि तीनों ही रूप में अपने को रंग लेता है, वही रहस्यदर्शी कहला सकता है। वैसी स्थिति में निष्काम आनन्दोपलब्धि भी साधक का लक्ष्य नहीं रह जाता। उसका जीवन व्यापार ही परिवर्तित हो जाता है। जैसे सूर्य और चन्द्रमा किसी नियम से बाधित होकर उदय और अस्त होते रहते हैं और इस क्रिया में उनकी इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं रहता उसी प्रकार रहस्यवादी का जीवन-व्यापार इस प्रकार परिवर्तित और यंत्रवत् चालित हो जाता है कि वह सोच ही नहीं पाता कि उसके विभिन्न कार्यों के मूल में कौन सी प्रेरणा काम कर रही है। वह तो 'राम का बउरा' हो जाता है और 'जँह-जँह जाँऊ सो परिकरमा' की स्थिति में पहुँचकर 'अब मन जाहु जहाँ तोहि भावे' के स्वर में मन को चुनौती देते हुए उसके प्रति पूर्णतः निश्चेष्ट हो जाता है किन्तु इतना होने पर भी अज्ञात रूप से ही उसकी समस्त क्रियाएँ लोकोपयोगी होती है। रहस्यवादी की मनोवृत्तियों में ही नहीं, उसकी वृत्तियों और प्रवृत्तियों तक में आमूल परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार के सामयिक परिवर्तन का प्रभाव हमारे सामान्य लोक जीवन में भी सरलता पूर्वक दीख पड़ता है। किसी प्रिय व्यक्ति के आकस्मिक निधन की सूचना पाकर हम इतने शोकमग्न हो जाते हैं, हमारी मनोवृत्तियाँ थोड़े समय के लिए इतनी बदल जाती हैं कि उस स्थिति में संसार की सुन्दर से सुन्दर वस्तु भी हमें भाव-विह्वल नहीं कर पाती। हम अल्पकाल के लिए दुःख के महासागर में डूब सा जाते हैं। यह सोचने की बात है कि जिसकी जीवन व्यापार को संचालित करने वाली समस्त प्रवृत्तियाँ ही बदल गई हों, उसकी क्या स्थिति होती

होगी। रहस्यवाद की अनिर्वचनीय स्थिति में पहुँचने के लिए अभ्यास को उत्तरदायी ठहराया गया है किन्तु बहुधा यह भी देखने में आया है कि एक थोड़ा सा आघात पाकर ही मनोवृत्तियाँ झंकृत हो उठी हैं और साधकों के जीवन का कार्य व्यापार ही बदल गया है। दादू की मनोवृत्तियाँ वृद्ध पुरुष की वाणी का हल्का सा स्पर्श पाकर ही झंकृत हो उठी थीं। भगवान बुद्ध ने भी सन्यास के पूर्व कभी अभ्यास किया था, इस बात का प्रमाण अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सामान्य जीवन की कतिपय कारुणिक घटनाओं ने उनकी चित्त-वृत्तियों को झकझोर दिया था। गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली के वाक्य ही उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में सहायक सिद्ध हुए। सचमुच जब क्षेत्र तैयार रहता है तब थोड़ी सी प्रेरणा भी आमूल परिवर्तन का कारण होती है।

जब हम रहस्यवाद को जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार करते हैं तो उसे हम धर्म के उस मौलिक रूप में स्वीकार करते हैं जो प्रचलित धर्माडम्बरों से दूर केवल मानव के नैतिक मूल्यों पर आधारित रहता है। यहाँ धर्म को हम एक ऐसी धारणा के रूप में स्वीकार करते हैं जिस पर विश्व स्थित है और जिसे प्राप्त कर लेने पर मनुष्य आत्म-स्वरूप का दर्शन करके उस चिर शान्ति का सर्जन करता है जिसे उपलब्ध कर लेने पर किसी प्रकार की कामना ही नहीं रह जाती। इस स्थिति में संसार के सभी प्राणियों का एक ही धर्म हो जाता है और उसी व्यापक धर्म से अनुप्राणित होकर साधक उस सत्य के साक्षात्कार का भी प्रयास करने लग जाता है जो विश्व का कारण है किन्तु उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाने के अनन्तर भी उसके स्वरूप का वर्णन करना साधक के लिए असम्भव हो जाता है और 'ऐसा लौं नहि तैसा लौं केहि विधि कहौं अनूठा लौं' कहकर उसे मौन धारण कर लेना पड़ता है। यही कारण है कि विभिन्न साधकों के साध्य के स्वरूप में अन्तर हो जाता है। आत्मा, नूर वा प्रेम इत्यादि के रूप में साध्य का स्वरूप निर्धारित करना विभिन्न साधकों के संस्कारगत् भिन्नता का परिणाम है किन्तु साध्य को भावात्मक रूप देने के अनन्तर भी सबने एक स्वर से साध्य की अनिर्वचनीयता स्वीकार की है। यदि यह सत्य है कि रहस्यवादी का साध्य निराकार है और उसके वास्तविक स्वरूप का उचित रेखांकन नहीं किया जा सकता है तो यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि अव्यक्त और अगोचर के मिलन का तात्पर्य क्या है? यहाँ यह लक्ष्य में रखने की आवश्यकता है कि रहस्यवादियों का निर्गुण ब्रह्म अभाव का सूचक नहीं है, वह द्वन्द्वातीत है। भक्ति की अन्तिम वास्तविक अवस्था निर्गुण ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित कर लेने पर ही संभव है। सगुणोपासना भक्ति का अन्तिम निदर्शन नहीं है। वह तो भक्ति को जागृत करने का एक साधन मात्र है। सगुणोपासक भक्तों ने भी परमात्मा को निराकार और अव्यक्त ही कहा है। मिलन की दशा में उस अव्यक्त और अरूप को मानसिक रूप और कल्पित नाम प्रदान कर दिया जाता है। जो हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि मिलन की उस अनिवर्चनीय स्थिति को भी विभिन्न साधकों ने विभिन्न नामों से अभिहित किया है। मिलन की दशा बौद्धों के यहाँ निर्वाण, यूरोपीय साधकों के यहाँ Annibilation वा उच्छेद, सूफियों के यहाँ फना और औपनिषदिक साहित्य में मुक्ति के माम से अभिहित हुई है यदि मिलन की दशा सूचित करने वाले इन शब्दों पर विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि साधकों ने अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए एक ही स्थिति को विभिन्न शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया है। निर्वाण, उच्छेद् फना अथवा मुक्ति में से कोई भी निषेधात्मक नहीं है बल्कि इन शब्दों से भावात्मक और अभावात्मक दोनों स्थितियों से ऊपर किसी ऐसी चरमावस्था का अनुमान लगाया जा सकता है जो वर्णनातीत है।

अनिर्वचनीय रहस्यात्मक अनुभूति के लिए विविध मार्गों की भी चर्चा की जाती है जिनमें योग को भी गिना गया है। यौगिक साधना की तीन कोटियाँ मानी जा सकती हैं— कायिक साधना, मानसिक साधना और सहज साधना। कायिक साधना में हठयोग की गणना की जाती है। इस प्रकार की साधना का सम्बन्ध प्रधानतः शरीर से रहता है। राजयोग हठयोग के बाद की साधना है। अतः राजयोग का मूल कायिक यौगिक साधना के अन्तर्गत रहते हुए भी उसकी अन्तिम स्थिति मानसिक साधना के अन्दर मानी

जा सकती है क्योंकि राजयोग में हठयोग एक साधन के रूप में ही व्यवहृत होता है। ध्यान योग और लययोग को भी मानसिक साधना की श्रेणी में ही रखा जा सकता है। कबीर का 'सुरतिशब्द योग' भी एक प्रकार से लय योग ही है और ध्यान योग भी अपनी चरमावस्था में लययोग में परिणत हो जाता है। सबसे अन्तिम अवस्था सहजयोग की है जिसे सहज साधना कह सकते हैं। इन विविध योगों में सहजयोग और मानसिक योगों के साथ रहस्यवादात्मक साधना का बहुत साम्य है क्योंकि राजयोग में मन को वाह्य विषयासक्तियों से हटाकर उसे अन्तर्जगत की ओर उन्मुख करना पड़ता है और मन को एक स्थान पर केन्द्रित करने से एक विशेष प्रकार का वृत्ति प्रवाह जागृत होता है और दूसरे प्रकार के वृत्ति प्रवाह समाप्त हो जाते हैं। अन्त में एक ही वृत्ति शेष रह जाती है जिसे ध्यान कहते हैं। ध्यान के अनन्तर समाधि की अवस्था आती है और समाधि की अवस्था में मन एक रूप हो जाता है। इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए मन पर विजय पाना अनिवार्य है ही। इसी प्रकार सहज साधना की स्थिति में साधक को आत्म स्वरूप का परिचय हो जाता है और सांसारिक प्रलोभनों के प्रति स्वयमेव अनासक्ति का भाव आ जाता है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग और प्रेमयोग जो व्यावहारिक योग के नाम से अभिहित किये जा सकते हैं, रहस्यवादात्मक साधना की कोटि में आ जाते हैं। इसी प्रकार ईसाई रहस्यवादियों ने भी कतिपय क्रमिक दशाओं की ओर इंगित किया है जिसका उल्लेख करते हुए कुमारी अन्डरहिल ने क्रमशः परिवर्तन (Conversion), आत्मज्ञान (Self Knowledge), उद्भासन (Illumination), आत्म-समर्पण (Surrender) तथा संयोग (Union) जैसे नाम दिये हैं। सूफी संतों ने इस प्रकार की जाने वाली साधना को यात्रा के रूप में बतलाया है और उसके मार्ग में पड़ने वाले विभिन्न पड़ावों की भी कल्पना की है। यद्यपि इन विविध पड़ाओं की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है किन्तु अधिकतर उन्हें उबूदिय्यत (अनुताप, इश्क (प्रेम) जुहद (त्याग की दशा, मारिफत (ज्ञान की दशा), वज्द (भावावेश की दशा), हकीकत (वास्तविकता की दशा), वस्ल (मिलन की दशा) कहते हैं। बाहर से भिन्नत्व की प्रतीति होते हुए भी इन विविध साधना-मार्गों में एकता की एक अन्तर्धारा सी प्रवाहित, होती हुई जान पड़ती है। किसी भी साधन से रहस्यवादात्मक स्थिति में पहुँच जाने पर प्राप्त अनुभूति अनिर्वचनीय हो हो जाती है जिसकी अभिव्यक्ति के लिए उचित साधनों का अभाव साधकों के भाव-प्रकाशन के मार्ग में महान व्याघात उपस्थित करता रहता है और सतत् प्रयास के बावजूद भी साधक इस दिशा में असफल होकर मौन धारण कर लेता है।

काव्य में रहस्यवादात्मक अनुभूतियों के प्रकाशन का क्या महत्व है और वहाँ इसका प्रकाशन कहाँ तक संभव है, इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण विचार आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का है और जो उनके महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'चिन्तामणि भाग २' के काव्य में रहस्यवाद शीर्षक निबन्ध में व्यक्त हुआ है। आचार्य जी ने काव्य की आधारभूमि की चर्चा करते हुए कहा है कि "कविता का सम्बन्ध ब्रह्म की व्यक्त सत्ता से है, चारों ओर फैले हुए गोचर जगत से है, अव्यक्त सत्ता से नहीं। जगत भी अभिव्यक्ति है और काव्य भी अभिव्यक्ति है जगत अव्यक्त की अभिव्यक्ति है और काव्य इस अभिव्यक्ति की भी अभिव्यक्ति है।" आचार्य शुक्ल जी की काव्य सम्बन्धी इस विवेचना में दो बातें स्पष्ट हैं। पहली तो यह कि कविता का सम्बन्ध केवल व्यक्त सत्ता से है। दूसरी यह कि काव्य का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अनुभूतियों तक ही सीमित है। कविता का सम्बन्ध केवल व्यक्त सत्ता से स्वीकार कर लेने पर उसका विस्तार अत्यन्त संकुचित हो जाता है और काव्य का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अनुभूतियों तक ही सीमित कर देने पर हमारी वे अनुभूतियाँ काव्य में स्थान पाने से वंचित रह जाती हैं जो हमारी प्रतिभा ज्ञान-शक्ति पर आधारित हैं। रहस्यवाद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी आचार्य जी ने आगे कहा है कि "रहस्यवाद की उत्पत्ति पैगम्बरी (Semitic) मतों के भीतर हुई है। प्राचीन आर्य काव्य में — क्या भारत के क्या यूरोप के— रहस्यवाद का नाम तक नहीं, सीधा देववाद है इसके विरुद्ध कविवर जयशंकर प्रसाद ने रहस्यवाद के उद्गम की कहानी कहते हुए इस भाव की अभिव्यक्ति की है कि शैवों के अद्वैतवाद और उनके सामरस्य वाले रहस्य सम्प्रदाय का, वैष्णवों के माधुर्यभाव और उनके प्रेम रहस्य का तथा

काम कला की सौन्दर्य उपासना का उद्गम वेदों और उपनिषदों के ऋषियों की साधन प्रणालियाँ हैं (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ ४९) इन दोनों साहित्य साधकों द्वारा प्रतिपादित विचारों में किसका विचार सत्य के अधिक निकट है ? यह कहा नहीं जा सकता किन्तु जहाँ तक भारतीय रहस्यवाद और पैंगम्बरी मत के साम्य का प्रश्न हैं, यह अवश्य कहा जा सकता है कि रहस्यवाद में अनेक उत्स ऐसे हैं जिनके आधार पर भारतीय रहस्यवाद को पैगम्बरी मत से अलग सिद्ध किया जा सकता है । भारतीय रहस्यवाद में निश्चेष्टता, अनुग्रता समर्पण तथा चिन्तन का प्राधान्य है जबकि पैगम्बरी मत में हमें उपयोगिता, अभिमान, अभिलाषा और नैतिकता के दर्शन होते हैं । यही कारण है कि रहस्यवादी स्वयं को अबला नारी की भूमिका में रखकर पुरुषरूप परमात्मा की भक्ति करता है और पैगम्बरी मत में साधक को पुरुष और साध्य को स्त्री रूप में स्वीकार किया गया है । वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अनेक स्थलों पर रहस्यात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है और जिन्हें हम सहर्ष काव्य की कोटि में रख सकते हैं किन्तु दुःख है कि उन काव्यात्मक स्थलों पर काव्य की रमणीयता की दृष्टि से विचार नहीं हो सका है और हमारे वैदिक साहित्य पर व्यक्त विचार केवल वेदांगों की निश्चित अध्ययन पद्धतियों का ही अनुसरण करते आये हैं और संभवतः इसीलिए रहस्यवाद का उद्गम स्रोत ढूँढ़ने के लिए आचार्य शुक्ल जी जैसे उद्भट विद्वान् को भी पैगम्बरी मतों की शरण लेनी पड़ी है । तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार वह न तो हमारी आँखों द्वारा देखा जा सकता है और न उसे हम अपने कर्णेन्द्रियों द्वारा श्रवण कर सकते हैं । उसके निकट हमारे मन और वाणी तक की कोई गति नहीं है (४।१) । इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि यह आत्मा न तो वाणी द्वारा गम्य है और न बुद्धि वहाँ तक पहुँच पाती है और न उसे विस्तृत श्रवण वा अध्ययन द्वारा ही उपलब्ध किया जा सकता है । वह जिसे स्वयं अपना लेता है वही उसे प्राप्त कर पाता है तथा उसी के प्रति वह अपने शरीर को पूर्ण रूप में अनावृत भी किया करता है ३।२।३) । इसी उपनिषद् में अन्यत्र कहा गया है कि उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि "वह अमृतमय कुछ हमारे सामने प्रत्यक्ष है, ब्रह्म हमारे पीछे है, ब्रह्म हमारी बाईं ओर है ब्रह्म ही हमारी दाहिनी ओर भी है और वही हमारे ऊपर एवं नीचे की ओर है तथा वह श्रेष्ठातिश्रेष्ठ तत्त्व सम्पूर्ण विश्व के रूप में प्रसृत है (२।२।११ । इस प्रकार की अनुभूति को औपनिषदिक् युग में 'परा विद्या' के नाम से अभिहित किया जाता था । रहस्यवाद नाम नया है और इसीलिए हम इसका मूल स्रोत अन्य देशों के साहित्य में ढूँढ़ने का भी प्रयत्न करते हैं ।

जैसा कि पहले ही निवेदन किया जा चुका है छायावाद के उदभव के साथ ही साहित्य मर्मज्ञों के मस्तिष्क को इस प्रश्न ने झकझोर दिया था कि छायावाद और रहस्यवाद में मौलिक भेद क्या है । सन् १९२१ के दिसम्बर में प्रकाशित होने वाली 'सरस्वती पत्रिका' में श्री मुकुटधर पांडे ने 'कविता' शीर्षक पर एक महत्वपूर्ण निबन्ध लिखा था जिसमें उन्होंने छायावाद की काव्यगत अस्पष्टता अथवा 'छाया' शब्द की तात्विक व्याख्या करने का प्रयास किया था और उन्होंने ही सर्वप्रथम छायावाद शब्द के लिए 'मिस्टिसिज्म' शब्द के व्यवहार की परम्परा चलाई जिसने साहित्य मर्मज्ञों के कान खड़े कर दिये थे । उस समय व्यक्त किये गये छायावाद और रहस्यवाद सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन दिनों इन वादों की सर्वाङ्गीण दृष्टि से परीक्षा नहीं हो रही थी और इसलिए वैचारिक मतभेद उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया । श्री मुकुटधर पांडे को छायावाद में अध्यात्मवाद की गन्ध मिली किन्तु आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे अन्योक्ति पद्धति से अधिक महत्व नहीं दिया । इसी बीच सन् १९३० के लगभग छायावाद का एक नया नामकरण भी कर दिया गया और शुक्ल जी ने अंग्रेजी के रोमान्टिसिज्म के लिए हिन्दी में स्वछन्दतावाद शब्द की सृष्टि की । साथ ही उन्होंने उसे पूर्णतः विदेशी काव्यधारा के रूप में ग्रहण किया । शुक्ल जी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में छायावाद के उद्भव पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट लिखा है कि ईसाई सन्तों के छायाभास और यूरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर बँगला भाषा में कविताओं का सृजन

आरम्भ हुआ था। हिन्दी में यह प्रभाव रवीन्द्रनाथ की कविताओं के माध्यम से आया।' कतिपय ऐसे भी समीक्षक हैं जो छायावाद को अभिव्यक्ति की एक शैली मात्र मानते हैं जिसमें प्रस्तुत के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को अपनाने का विधान है। इसके सिवाय छायावाद पर अनेकानेक आरोप भी लगाये गये किन्तु यहाँ उन विविध आरोपों को उदधृत करना एवं उन पर नये से विचार करना मेरा लक्ष्य नहीं है। मुझे प्रस्तुत संदर्भ में केवल यही देखना है कि छायावाद का मूल स्रोत क्या है और उसे कहाँ तक रहस्यवाद की संज्ञा दी जा सकती है।

छायावाद के उद्भव के संदर्भ में दो प्रकार के प्रेरणास्रोत हो सकते हैं—भारतीय और अभारतीय। भारतीय प्रेरणा के संभवतः तीन रूप हो सकते हैं—साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक। जब साहित्य जगत में रूढ़िवादिता प्रश्रय पाने लगती है तो वह कुछ नये कलाकारों के लिए असह्य सी हो उठती है और इस प्रकार की रूढ़िवादी मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया में नवागत कलाकारों द्वारा क्रान्ति का शंखनाद होने लगता है नवागत कलाकर समयानुसार नवीन छन्द नूतन विचार, नई शैली इत्यादि के द्वारा साहित्य में नवीन चेतना फूँकते हैं। इस प्रकार की क्रान्ति छायावादी कवियों की कोई नवीन देन नहीं है। सदा से ही इस प्रकार का आन्दोलन होता आया है। छायावाद के पूर्व हिन्दी साहित्य क्षेत्र में द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक रूखी कविताएँ परिवर्तन की अपेक्षा रखती थीं। इसी बीच सन् १९१४ के प्रथम विश्व महायुद्ध ने छायावादी कलाकारों का चित्त झकझोर दिया था। भारतीय जनता ने उस विश्व-युद्ध में गौरांग महाप्रभुओं की सब प्रकार से सहायता की थी क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इसके बदले में उन्हें कुछ आंशिक स्वतंत्रता भी प्राप्र हो सकती है किन्तु युद्ध की चिनगारियों के शान्त होते ही उनकी आशा की कली तुषार प्रतिहत हो गई। उपहार स्वरूप उन्हें रौवलेट ऐक्ट मिला और भारतीय आत्मा अत्याचार के इस भीषण अग्निकाण्ड से आक्रान्त हो उठी। उन नवीन कलाकारों ने अपना सामाजिक दायित्व समझकर सामाजिक रूढ़ियों में जकड़ी हुई जनता को अमृत की एक मादक घूँट देने के लिए क्रान्ति का सूत्रपात किया। किन्तु उन्हें इस प्रयास में जनता का सहयोग न प्राप्त हो सका। फलतः उन्हें पद-पद पर निराश होना पड़ा। छायावादी कवियों का यह विद्रोह वैयक्तिक था। यदि यह सामूहिक विद्रोह होता तो सम्भवतः उन्हें उस मात्रा में निराश न होना पड़ता जितना उन्हें होना पड़ा। फलस्वरूप छायावाद का तरुण कवि अपने नाविक से भुलावा देकर किसी ऐसे एकान्त स्थान पर ले चलने की प्रार्थना करने लगा जहाँ लहरी अम्बर के कानों में निश्छल रूप से प्रेम कथा कहती हो और जहाँ इस तप्त धारिणी के भयंकर कोलाहल का नाम भी न हो। यही नहीं वह एक ऐसे नए संसार को बसाने की कल्पना करने लगा। जहाँ सपने पहरेदार का काम करते हों। छायावादी कवि अधिक संवेदनशील हो उठा। दुःख उसका सहचर हो गया। काश, वह समझ पाता कि उन्हें आज का सजग समालोचक उस सूने स्वप्न लोक में भी चैन से न रहने देगा।

जो विद्वान यह सोचते हैं कि छायावादी कवियों ने अंग्रेजी साहित्य के रोमान्टिक काव्य से प्रेरणा ग्रहण की है उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि छायावादी कवियों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाश्चात्य कवियों से नहीं है बल्कि वे बंगाल के रवीन्द्रनाथ टैगोर की नई काव्य धारा से प्रभावित हुए थे। रवीन्द्रनाथ की कविता पाश्चात्य आध्यात्मिक रहस्य-वाद के रङ्ग में रँगी हुई थी। उस पर यूरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक में प्रतीकवाद का प्रभाव भी था। यह ध्यान देने की बात है कि अंग्रेजी साहित्य में रोमाँटिक कवियों के लिए तत्कालीन परिस्थितियाँ ही प्रेरणा स्रोत का काम कर रही थीं। रूसो की क्रांतिकारी विचार धारा समस्त यूरोप के जनमानस में छा गई थी। शैली सामाजिक रूढ़ियों और कुत्साओं को समूल उखाड़ फेंकने के लिए क्यों व्यग्र हो उठा था? निश्चय ही शैली, बायरन इत्यादि रोमांटिक कवि सामाजिक दबाव से मुक्ति पाने के लिए लालायित हो उठे थे। अपने प्रयास में वांछित सफलता नहीं मिल पाने के कारण उनकी रचनाओं में वेदना का करुण स्वर भी सुनाई पड़ता है। इसी निराशा के परिणाम स्वरूप ब्लेक और वर्ड्सवर्थ इत्यादि रोमांटिक कवियों में अलौकिक के प्रति प्रेम की एक विशिष्ट प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। पोप के समय में काव्य और कविताओं का आधिक्य था किन्तु रोमांटिक युग में अधिकतर गीतियाँ

(Lyrics) लिखी गई। निःसंदेह ये सभी विशेषताएँ छायावादी काव्य में यों लक्षित होती हैं किन्तु एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि द्वितीय विश्व महायुद्ध के पश्चात् उद्भूत छायावादी काव्य १९वीं शताब्दी के पश्चिमी रोमांटिक काव्य से क्यों प्रभावित हुआ। टी० एस० इलियट, बोदलेयर इत्यादि की रचनाओं से छायावादी कवि क्यों नहीं प्रभावित हुए। कारण स्पष्ट है। जिस परिस्थिति में अंग्रेजी साहित्य में रोमांटिक युग का आविर्भाव हुआ, लगभग उन्हीं परिस्थितियों में छायावाद का भी जन्म हुआ। दोनों प्रकार के कवियों की विवषताएँ लगभग समान थीं। अतः युगीन आवश्यकताओं के अनुसार छायावादी कवियों के लिए रोमांटिक कवियों का काव्य ही प्रेरणादायक बन सका। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी में छायावाद के लिए भूमि पहले से ही तैयार थी। रोमांटिक युग के कवियों की रचनाओं ने प्रेरणा का काम किया। रोमांटिक कवियों में केवल ब्लेक की रचनाओं में ही शुद्ध रहस्यवाद का दर्शन होता है। वर्डसवर्थ, शैली और कट्सि में रोमांटिसिज्म का आधिक्य है। हिन्दी के छायावादी कवियों में प्रसाद रहस्यानुभूति की गहराई है किन्तु पंत में रोमांटिक प्रवृत्ति लक्षित होती है। 'निराला' और महादेवी वर्मा की रचनाओं में प्राप्त रहस्यवाद को सरलता पूर्वक उनकी अन्य प्रकार की रचनाओं से अलग करके देखा जा सकता है।

रहस्यवाद के अन्तर्गत आत्मा और परमात्मा से अभिन्न सम्बन्ध की स्थापना ही नहीं होती, बहुधा यह भी देखने में आता है कि कतिपय रहस्यवादी कवि अपने पृथक् अस्तित्व की कल्पना करते हुए भी रहस्यवादी कवि कहे जा सकते हैं। लौकिक भूमि पर साधारणतः संयोग उस स्थिति विशेष को कहते हैं जिसमें प्रियतमा वा नायिका का प्रियतम वा नायक के साथ मिलन होता है। अध्यात्म जगत में भी साधक का उसके आराध्यदेव के मिलन की अनुभूति प्रकट करने वाली स्थिति को संयोग दशा कह सकते हैं। यह संयोग दो प्रकार से सम्भव है। पहले प्रकार के संयोग की स्थिति में तिल' तंडुल न्यायानुसार पदकत्त्व की दशा बनी रहती है और दूसरे प्रकार के संयोग में साध्य और साधक में अभेद की स्थिति हो जाती है जैसे पानी पानी में मिलकर एक हो जाता है। इस स्थिति में साधक मिलन सुख वा संयोग दशा की ठीक-ठीक अभिव्यक्ति असम्भव है। अतः अनुभूत वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए साधक को साध्य से भिन्न अपने पृथक् अस्तित्व की कल्पना कर लेनी पड़ती है किन्तु यह कल्पित द्वैतभाव भी साधक के लिए आनन्ददायी ही होता है। कबीर में संयोग का यह दूसरा प्रकार ही दीख पड़ता है जब कि महादेवी वर्मा अपने निजत्व खोना नहीं चाहतीं। रहस्यवादी में सर्व प्रथम साध्य के प्रति उत्कट जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होता है। सृष्टि के विविध उपादानों के निर्माण के मूल में किस विश्वात्मक सत्ता की प्रेरणा है? यही प्रश्न रहस्यवादी के मस्तिष्क को झकझोर देता है। जिज्ञासा ही रहस्यवाद का प्रथम सोपान है। कबीर की रचनाओं में इस प्रकार की अनेक जिज्ञासा मूलक प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। 'सुनहरी साँझ' और 'गुलाबी प्रात' को बार-बार मिटाने और रँगने वाले उस अमूर्त्त चित्रकार के प्रति एक जिज्ञासाभाव महादेवी वर्मा के भी अन्तस में उत्पन्न होता है। प्रसाद के समक्ष भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि 'ग्रह-नक्षत्र' जिसका संधान करते रहते हैं, तथा चंद्रमा नत मस्तक होकर जिस शक्ति की सत्ता स्वीकार करते हैं, वस्तुतः वह सत्ता है क्या? सच तो यह है कि जब तक यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता तब तक उत्तर ढूँढ़ने का प्रयत्न ही नहीं हो सकता। रहस्यवादी कवि इसी एक प्रश्न के आधार फलक पर अपने समूचे रहस्यवाद का निर्माण कर लेता है। उसे परम सत्ता की व्यापकता की अनुभूति होने लगती है। साधक को यह पूर्णतः विश्वास हो जाता है कि समस्त सृष्टि परमात्मा के रङ्ग से ही रञ्जित है। पंत के समान प्रत्येक रहस्यवादी निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि वही सर्वान्तिर्यामी विभू 'तरल जलनिधि' में 'हरित विलास' और 'शांत अम्बर' के 'नील विकास' के रूप में प्रतिभासित हो रहा है। परम सत्ता की व्यापकता का अनुभव होते ही साधक अपने साध्य से मिलन-सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता है किन्तु दैवी प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति मानवी भाषा में असम्भव है। अतः इसकी अभिव्यक्ति के लिए साधक प्रतीकों का आधार ग्रहण करता है। दैवी विषयों के सम्बन्ध में मानवी ढङ्ग से सोचना साधक के लिए अपेक्षाकृत अधिक सम्भव है, इसीलिए साधक साध्य के प्रति नाना लौकिक सम्बन्धों की कल्पना कर लेता है।

इसी भूमि पर कबीर ने अपने को 'राम' का गुलाम तक कह डाला है। उन्हें अपने को 'राम की कुतिया' तक कह डालने में तनिक भी संकोच नहीं होता और हरि जननी मैं बालक तोरा का सम्बन्ध 'तुम्ह सतगुर में नौतम चेला से होता हुआ आदर्श दाम्पत्य-प्रेम का रूप ग्रहण कर लेता है। 'मतवाली' महादेवी का प्रियतम भी कम 'अलबेला' नहीं है। उसी 'अलबेले पाहुन' को वह अपने 'पलकों' में उतार लेना चाहती है क्योंकि उसे विश्वास है कि वह ऐसा करने से 'दूर रहते हुये भी अखंड सुहागिनी बन सकती हैं। कारण स्पष्ट है। उनका प्रिय 'चिरन्तन' है और ऐसे 'चिरन्तन' साजन को पाकर भी कोई 'क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी' न हो सके, यह कैसे संभव है। नाना संबन्धों की स्थापना के बावजूद भी साधक को साध्य का मिलन-सुख की अनुभूति करने में अनेकानेक कंटकाकीर्ण पथों को पार करना पड़ता है। उसे विरह की ज्वाला में दग्ध होना पड़ता है। स्वर्ण भस्म का मूल्य स्वर्ण से अधिक होता ही है। उनका यह विरह भी एक प्रकार की जिज्ञासा ही है। आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र में गुरु, साधक के हृदय में परम तत्व के प्रति जिज्ञासा जागृत कर देता है और साधक नाना भाँति उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। कबीर ने कहा है कि मेरे सता उसने मुझे एक विचित्र प्रकार के शब्द-बाण से मुझे घायल कर दिया और उनकी चोट जब मर्मस्थल पर लगी, तब मुझे गूढ़ तत्व सूझ गया। कबीर ने विरह को ही बाण कहा है। सचमुच ही प्रियतम के 'कमाण' से छूटा हुआ बाण भक्त के अन्तरतम को वेध देता है किन्तु इसकी मर्मान्तिक पीड़ा भी बड़ी मधुर होती है। तभी तो भक्त पुनः-पुनः विरह-बाण से घायल होकर भी उसका शिकार होना चाहता है। वह बारबार प्रार्थना करता है कि हे प्रिय उसी बाण से फिर एक बार हृदय पर प्रहार कर दो—

जिसि सरि मारी काल्हि,
सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि,
सर बिनु सचु पाऊँ नहीं॥

—क० ग्र० साखी १७ पृष्ठ ९

सचमुच इस रहस्यमयी पीड़ा में घायल को अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती होगी। उसके आनन्द की अनिर्वचनीयता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विरह की स्थिति में साधक मरता इसलिए नहीं कि उस स्थिति में 'विरह' ही समाप्त हो जायेगा। महादेवी वर्मा का सारा 'जीवन-काव्य' उस प्रभु के बिना 'असार' हो गया है। उसके अभाव में महादेवी का सारा 'दुख' 'सूना' हो गया है। रह रहकर उसमें मिलनोत्कण्ठा जागृत होती है। जब उनके 'नयन श्रवणमय' और 'श्रवण नयनमय' हो जाते हैं तो उन्हें एक विचित्र प्रकार की 'उलझन' सी होती है। वह सोचने लगती है—क्या सचमुच ही 'प्रियतम' आने वाले हैं? जब किसी 'सुधि बसंत' के 'सुमनतीर' से उनका 'मुग्ध मानस अधीर उठता है तो वह उन्हें 'सपने में' ही 'बांध' लेने और उस लघु क्षण में ही अपनी 'चिर जीवन प्यास' बुझा लेना चाहती है। पत्र भी लिखना चाहती है किन्तु संदेश भेजें भी तो कहाँ? फिर भी वह 'पल-पल के उड़ते हुए पृष्ठों पर 'श्वासों के अक्षर' से 'अपने ही बेसुधपन में, पत्र लिखने लगती हैं किन्तु 'उस अचेतावस्था का पत्र भी कैसा होता होगा—'वह लिखना चाहती हैं कुछ और लिख जाती है कुछ'।

विरह की व्याकुलता के अनन्तर एक ऐसा भी अवसर आता है जब साधक को साध्य की प्राप्ति हो जाती जाती है और साधक असीम आनंद अनुभूति करने लगता है। की कबीर को उस संयोग-सुख की अनुभूति हुई थी। उन्होंने उस असीम को अपनी सीमा के बाहर जाकर पाया था। उन्होंने उसे 'पुष्प' न होते हुए भी पुष्पित कमल के रूप में पाया था। वह ऐसा कमल था जो जलाशय के अभाव में पुष्पित हो रहा था और कबीर का मन एक भ्रमर की भाँति उसमें अनुरक्त हो उठा था।

हदे छाड़ि बेहदि गया, हुवा निरंतर बास।
कवल ज फूल्या फूल बिन-को निरषै निजदास ॥५॥
कबीर मन मधकर भया, रह्या निरंतर बास।
कवल ज फूल्या जलह बिन, को देखे निजदास ॥६॥

—क० ग्र० पृष्ठ १२-१३

कबीर मिलन-सुख का आनन्द प्राप्त करने के लिए 'नयनों की कोठरी' में पुतली का पलंग बिछाकर' और पलकों के चिक' से उस स्थान को गुह्य बनाकर अपने प्रियतम का मिलन-सुख प्राप्त करना चाहते हैं। सुश्री महादेवी वर्मा भी मिलन की स्थिति में पूजा और अर्चन इत्यादि वाह्याचारों की उपादेयता में अविश्वास करती हैं। उनका लघुतम जीवन ही उस असीम का सुन्दर मन्दिर है, उनकी श्वास की प्रत्येक लहरी प्रियतम का अभिनन्दन करती रहती है। ।उस परम विभु का पद-रज धोने के लिए कहीं बाहर से जल लाने की आवश्यकता ही क्या है जबकि उनके लोचनों से निरन्तर वारिधारा प्रवाहित होती रहती है। कवयित्री का पुलकित रोम अक्षत और उनकी मधुर पीड़ा क्या चंदन का स्थान नहीं ले सकती ? क्या स्नेह (तेल) से भरा हुआ उनका मन जो पीड़ा से निरन्नर जल रहा है, दीपक का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता ? उनके जीवन का प्रत्येक स्पन्दन ही धूप के रूप में अपनी सुगन्ध बिखेर रहा है। धन्य है वह प्रेम, धन्य है वह निर्मल ज्योति जिसके विमल प्रकाश में प्रेरणा का अपूर्व स्रोत लहरा रहा है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे।
उस असीम का सुन्दर मंदिर
मेरा लघुतम जीवन रे!
मेरी श्वासें करती रहती
नित प्रिय का अभिनन्दन रे।
पद रज को धोने उमड़े
आते लोचन में जलकण रे।
अक्षत पुलकित रोम मधुर
मेरी पीड़ा का चंदन रे।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल
मेरा यह दीपक मन रे।
मेरे दृग के तारक में नव
उत्पन्न का उन्मीलन रे।
धूप बने उड़ते रहते हैं
प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे।
प्रिय-प्रिय जपते अधर ताल
देता पलकों का नर्तन रे।

महादेवी को वाह्य प्रकृति में भी प्रियतम का दर्शन होता है। वही सुरभि बनकर थपकियाँ दे जाता है। वह पूछती हैं—

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छवास सा वह कौन है ?

मिलन की दशाओं की विविधता स्पष्ट करने के लिए इस बात की ओर संकेत कर देना आवश्यक है कि महादेवी में मिलन की आकांक्षा अवश्य है किन्तु उनमें आत्म-समर्पण की भावना का अभाव है। वह 'जो तुम आ जाते एक बार' कहकर मिलन-सुख की आकाँक्षा अवश्य करती है और यह भी स्वीकार करती हैं कि उस स्थिति में उनके 'चिर-संचित विराग का पर्यवसान हो जायेगा किन्तु मानिनी अपने मधुर निजत्व की रक्षा कैसे करे।

मिलन मन्दिर में उठा दूं
जो सुमुख से सजल गुण्ठन।
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों
तप्त सिकता में सलिल कण।
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ—अभिमानिनी मैं।

किन्तु जब हम कबीर इत्यादि रहस्यवादियों की रचनाओं पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि वे सर्वतोभावेन आत्म समर्पण को ही अटूट प्रेम का अक्षय शृङ्गार समझते हैं। कबीर उसी को सच्ची सुहागिनि मानते हैं जो तन और मन के साथ अपने सम्पूर्ण जीवन को ही प्रियतम के प्रति समर्पित कर दे। अपने तन और मन के साथ अपने संपूर्ण जीवन को ही समर्पित कर देने पर वही प्रियतम की प्यारी हो सकती है। कबीर ने इसी भाव से कहा है—

मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपिता क्या लागत है मोर॥

प्रश्न यह है कि इस प्रकार की भिन्नता का रहस्य क्या है ? यह स्पष्ट है कि अपने जीवन-काल में छायावादी कविता हिन्दी काव्य की एक व्यक्तिवादी धारा रही है। महादेवी का चेतन व्यक्तिवादी व्यक्तित्व विश्व सेवा के महान धर्म का पालन करता है। आन्तरिक द्वन्द्व के निराकरण के लिए

यह आवश्यक भी था। इसी सेवा-भाव से अभिभूत होकर वह उस समय तक जलती रहना चाहती हैं जब तक उनके अन्दर जलने की शक्ति है। बुझा हुआ दीपक भ्रान्त पथिकों को प्रकाश कैसे दे सकता है और मिलन सुख की भाव-विह्वलता में आत्मसमर्पण कर देने पर तो सेवा का यह सौभाग्य सदा के लिए समाप्त हो जायेगा। वह कुछ अजीब भाव से कहती हैं—

> क्या अमरों का लोक मिलेगा
> तेरी करुणा का उपहार,
> रहने दो हे देव! अरे
> यह मेरे मिटने का अधिकार।

हिन्दी रहस्यवादियों की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है रहस्य और छायावाद परस्पर इतने एक दूसरे के निकट आ गये हैं कि दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं रह गया है। रहस्यवादी कविता में छायावादी शैली और छायावादी कविता में रहस्यवादी भावनाएँ घुलमिल गई हैं। फिर भी रहस्यानुभूति की कमी के कारण छायावादी कवियों की रहस्यवाद सम्बन्धी कविताएँ कुछ कम महत्त्व की कही जा सकती है। रहस्यवादी कवि जहाँ रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति करते हैं वहाँ छायावादी उस अनुभूति की कल्पना करके उसे व्यक्त करना चाहते हैं। फलस्वरूप इनकी रचनाओं के भाव बहुत कुछ अस्पष्ट रह जाते हैं। यह लक्ष्य में रखने की बात है काल्पनिक मिलन और विरह का भाव सहृदय को उतना प्रभावित नहीं किया करता और न इस प्रक र के भाव-प्रकाशन में उस जीवन्तशक्ति का ही समावेश किया जा सकता है जो अनुभूति पर आधारित रचनाओं में स्वयमेव आ जाता है। कल्पित भावानुभूति के अतिरिक्त छायावादी कवियों की रचनाओं में यत्र-तत्र वासनात्मक प्रणयोद्गार भी देखा जा सकता है। प्रसाद के 'परिरम्भ कुम्भ की मदिरा निश्वास मलय के झोके' वाली कविता में उद्दाम यौवन की वासना-परक अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार छायावाद में जिज्ञासा-भाव की प्रधानता है जबकि शुद्ध रहस्यवादी कवि निश्छल रूप से प्रभु के चरणों में आत्म समर्पण कर देता है छाया-वादी कवि प्रकृति के बिखरे सौंदर्य में किसी पारलौकिक सौंदर्य की झलक पाता है और यही उसके संतोष का कारण भी बन जा सकता है किन्तु शुद्ध रहस्यवादी उस अनिर्वचनीय का साक्षात्कार कर उसका मिलन-सुख प्राप्त करना चाहता है क्योंकि वह जानता है कि प्रेम तब तक सार्थक नहीं हो सकता जब तक प्रियतम का संयोग-सुख नहीं उठा लिया जाता—'एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लगि कैसा नेह रे।'

विषयगत विशेषताओं के अतिरिक्त अभिव्यंजना प्रणाली की दृष्टि से भी छायावाद, शुद्ध रहस्यवाद से भिन्न है। भाषा की लाक्षणिकता प्रतीकों का निर्भय प्रयोग अमूर्त के लिए मूर्त्त और मूर्त्त के लिए अमूर्त्त उपमानों को प्रश्रय देना, उपमाओं में प्रभावसाम्य पर अधिक बल देना और विशेषण विपर्य्यय इत्यादि पाश्चात्य साहित्य में अपनाये जाने वाले अलंकारों के प्रति व्यामोह प्रगट करना भी छायावादी कवियों की अपनी विशेषताएँ हैं। अपनी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए कतिपय उदाहरण भी दे देना आवश्यक प्रतीत होता है—

(क) लाक्षणिक प्रयोग

> क्यों छलक रहा दुख मेरा,
> ऊषा की मृदु पलकों में।
> हाँ उलझ रहा सुख मेरा,
> संध्या की घन पलकों में।
>
> —प्रसाद जी

ऊषा की घन पलकों = ओस की बूंदों। संध्या की घन पलकों = रात्रि के सघन अन्धकार।

> चाँदनी में स्वभाव का बास,
> विचारों में बच्चों की सांस।
>
> —पंत जी

चाँदनी = मृदुलता। बच्चों की सांस = भोलापन।

> धूल की ढेरी में अनजान,
> छिपे हैं मेरे मधुमय गान।
>
> —पंत जी

धूल की ढेरी – असंतुष्ट जीवन। मधुमय गान = सुन्दर वस्तुएँ।

(ख) मूर्त्त के लिए अमूर्त्त उपमान

धीरे - धीरे संशय से उठ,
बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर।
नभ के उर में उमड़ मोह से,
फैल लालसा से निशि भोर।

—पंत जी

इसमें संशय, अपयश, मोह तथा लालसा इत्यादि अमूर्त्त उपमानों का प्रयोग किया गया है।

(ग) चित्रमयता और मानवीकरण

अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्त व्यथा का जगना।
सुख का सपना हो जाना,
भीगी पलकों का लगना।

— प्रसाद जी

अभिषाषा और व्यथा के मानवीकरण का चित्र।

जिस दिन नीरव तारों से,
बोली किरणों की अलकें।
सो जाओ अलसाई हैं,
सुकुमार तुम्हारी पलकें।

—महादेवी जी

इसमें नीरव तारों और किरणों में मानवीकरण किया गया है।

रहस्यवाद की भारतीय परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी होते हुए भी छायावाद में जो एक विचित्र नयापन आ गया है उसका प्रमुख कारण यह है कि छायावादी कवियों ने अंग्रेजी साहित्य में प्रयुक्त ऐसे बहुत से शब्द अपना लिए जिनका प्रयोग भारतीय लोक जीवन मे उन शब्दों के विरोधी भावों का बोधक हो सकता है। नैराश्य पूर्ण भावनाओं के चित्रण और वासनात्मक प्रणयोद्गार की दिशा में भी छायावादी कवियों ने अपने प्रयोग किये। इसके सिवाय जैसा कि निवेदन किया जा चुका है छायावादियों की भावानुभूति कल्पित है। अतः उसमें साधारणीकरण की क्षमता का एकान्त अभाव है। कल्पित अनुभूतियाँ मस्तिष्क से गठबन्धन कर लेती हैं। फलतः वे काव्य के वास्तविक आदर्श से नीचे गिर जाती हैं।

नयी कविता ! विकास के चरण

•

सुरेश भटनागर

पूँजीवाद के पतनकाल में यूरोप तथा अमेरिका में सामाजिक प्रेरणा में नवीनता समाप्त हो गयी और तत्कालीन कलाकारों ने रूप तथा कौशल के प्रयोगों से अभावों की तुष्टि की। टी० एस० इलियट ने फ्रांस की प्रतीकवादी शैली और सत्रहवीं सदी की धार्मिक परम्पराओं को जोड़कर एक दुरूह पद्धति का निर्माण किया। आई० एस० रिचर्ड्स जैसे आलोचकों ने उसे प्रश्रय दिया। इस संदर्भ में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि विदेशी साहित्य में प्रयोगवादी कलाकार सामाजिक उत्तरदायित्व की अवहेलना करते हुए संस्कृति की प्रशस्त धारा से अलग हो जाते हैं। नये छन्द, रूप तथा भावों को नई शैली में पिरोकर आकर्षक बनाना ही उनका प्रमुख कार्य था। मानसिक कुण्ठाओं, निराशा और हताशपन का चित्रण कर वे अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते थे। हाँ ! फ्रायड ऐसे समय में उनकी सहायता करने के लिए आ जाते हैं और 'आडीयस कॉम्पलेक्स' के माध्यम से दमित कामेषणाओं को वे साहित्य का सृजन स्रोत मान लेते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियायें सोचने विचारने के तौर तरीकों पर भी अपना प्रभाव डालती हैं। हिन्दी में भी यह परिवर्तन आया १९३६-३७ के लगभग जब छायावादी गीतकार मात्र छाया के पीछे जीवन का पाथेय खोज रहा था। उस समय प्रगतिवाद युग चेतना को साथ लेकर आगे बढ़ा, इसके प्रभाव से तत्कालीन मूर्धन्य कवि पंत भी अछूते न रह सके।

विभिन्न युगों को जुदा करने वाली एक प्रधान वस्तु है—परिवेश या वातावरण की भिन्नता। यह परिवेश केवल भौतिक दृष्टि से भी बदलता रहता है। १९४३ में प्रकाशित 'तार सप्तक' से हिन्दी कविता को इस नई धारा का परिवेश मानदण्ड तथा मान्यताएँ सभी कुछ बदली सी प्रतीत होती है। इन्हीं बदलती मान्यताओं की स्थापना करते हुए "तार सप्तक" के सम्पादक अज्ञेय का कहना है—'प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है, किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुये हैं; उनसे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी तक छुआ नहीं गया है या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।

(तार सप्तक पृष्ठ ७५)

अतः यह तो स्पष्ट ही है कि पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने का निर्णय कर लेने के पश्चात् ही प्रयोगवाद का आरम्भ हुआ। इसे यों भी कहा जा सकता है—आधुनिक कविता हमारे नए जीवन की उपज है। इस नई कविता की लहर भी पश्चिमी प्रभाव से हमारे साहित्य में आयी। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि अदृष्ट प्रेम की छायावादी प्रतीकात्मकता की दुरूहता के प्रति विविध का इससे अधिक अच्छा अवसर हो भी क्या सकता था? फलतः वैचारिकता का आश्रय लेकर प्रगति और प्रयोग का जो मार्ग खुला, वह आज की हिन्दी में नई कविता तथा आधुनिक कविता के नाम से ज्ञेय हो चला है। विकास क्रम की इस शृंखला के विषय में डाक्टर देवराज कहते हैं—हिन्दी प्रयोग केवल युग से प्रभावित नहीं है, वह बहुत हद तक इलियट तथा एजरा पाउन्ड की शैली के अनुकरण से उपस्थित हुआ है।

राही नहीं राह के अन्वेषी

हिन्दी की प्रयोगवादी कविता को नई योरोपीय कविता से प्रेरणा मिली है। १९वीं सदी के फ्राँसीसी कवियों में बोदलियर, म्लार्म्य, बर्लेन, प्रस्त आदि की रचनाओं से कुछ प्रवृत्तियाँ सामने आयीं, जिन्होंने नई हिन्दी कविता को प्रभावित किया। यह हम कह चुके हैं कि प्रयोगवाद नाम का चलन तार सप्तक के सम्पादकीय तथा प्रतीक के कुछ वक्तव्यों के माध्यम से हुआ। यद्यपि उसमें प्रयोगवाद की घोषणा तो नहीं की गई, फिर भी प्रयोग तथा प्रयोगशीलता को तो स्पष्ट ही कहा गया है। प्रयोग शब्द अंग्रेजी के एक्सपेरिमेंट के मुकाबले में हिन्दी में आया फिर भी अंग्रेजी कविता में 'एक्सपेरिमेंटलीज्म' नामक कोई वाद नहीं चला केवल प्रयोग वाद हिन्दी में एक विशेषता को लेकर चला।

'तारसप्तक' के कवियों में ऐसे भी कवि रहे जिनके स्वर गूँजे अवश्य पर वे प्रयोग की सीमा में न बाँध पाये। रामविलास शर्मा, भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं को किसी ने प्रयोगवादी नहीं माना। इसके विपरीत गजानन मुक्तिबोध और शमशेर बार-बार अपने को प्रगतिवादी घोषित करते रहे, पर लोग उन्हें प्रयोगवादी कहने से बाज न आए। डाक्टर नगेन्द्र ने प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं के मूल्यांकन पर संदेह प्रकट करते हुए कहा कि नई कविताएँ तो मूल्यांकन के मापदण्ड में फिट नहीं बैठतीं। फिर प्रयोगवादी कवि जीवन और काव्य के घोर विरोधी हैं यथा—

> सुबह यह मन गमगीन था
> दोपहर में भी यूँ ही गमगीन रहा
> शाम हुई—
> पर इसकी गमगीनी में फर्क न आया
> गोया गम का हिमालय
> अपने भारी घुटनों की मोड़
> इस मन की छाती पर जम कर बैठ गया हो।
>
> —शरद देवड़ा

इस भ्रामक धारणा का स्पष्टीकरण करते हुए अज्ञेय ने फिर कहा—'प्रयोगवादी कवि किसी एक स्कूल के नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं; राह के अन्वेषी।

धारणाएँ प्रयोग की, भ्रम जन-साधारण का

डाक्टर रांगेय राघव ने प्रयोग का विश्लेषण करते हुए कहा है—'वह पुरानी कला' को नये छन्दों में प्रकट करता है। प्रकृतिवाद के रूप में वह नग्नता मात्र का प्रचार है। ध्वनिवाद के रूप में वह शैली मात्र का अभ्यास है। प्रतीकवाद के रूप में वह साधारणीकरण की सामान्य भाव भूमि का त्याग है। अन्तश्चेतना के रूप में वह केवल यौनवाद का अध्ययन है। (प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड पृष्ठ ३२८)।

उपर्युक्त कथन से प्रयोगवाद पर लगने वाले लगभग सभी लाञ्छनों का परिचय मिल जाता है। यथा—

प्रयोगवाद ह्रासशील भावना की कविता है।
वह प्रगतिवाद या प्रगतिशील भावना से अलग है।
प्रयोगवाद की कुछ कवितायें काव्य शैली तथा शिल्प की दृष्टि से काफी अनगढ़ और दीक्षा-गम्य हैं।
इसमें कविताएँ प्रयोग के लिये प्रयोग हैं।

प्रयोगवाद कविता के क्षेत्र में ही नहीं साहित्य के अन्य रूपों में भी किसी न किसी रूप में मौजूद है।

इस प्रयोग और प्रयोगशीलता को लेकर जो भ्रम उस समय के कवियों में हुआ, उससे बचने का उपक्रम तो सभी ने किया, किन्तु शैली तथा भावना में अतिवैयक्तिक होने के कारण वे इसमें अछूते न रह सके। इस अतिवैयक्तिता का विश्लेषण करने के लिये कविता को ही कवि वक्तव्य का दिया गया। परिणाम यह हुआ कि साधन को भी साध्य मान लेने पर जिस अनिष्ट की कल्पना की जा सकती उसकी झाकी यहाँ भी देखने को मिली। कारण यह कि कवि ने प्रयोग को इष्ट मान लिया। यथा—

> अगर कहीं मैं तोता होता
> तो क्या होता ?
> तो क्या होता ?
> तोता होता
> (आह्लाद से झूमकर)
> तो तो तो तो ता ता ता ता
> होता होता होता होता
>
> —अ

यह तो है प्रयोग को इष्ट मानने का परिणाम। डा० नगेन्द्र इसे शैली में विद्रोह मानते हैं। छायावाद ने भी तो शैली, शिल्प और वस्तु के क्षेत्र में नये प्रयोग किये थे। पर प्रयोगवाद के ब्रह्मा अज्ञेय तो अपने रूप में ज्ञेय हो चुके हैं। अब उनके सामने अनेक समस्याएँ हैं। काव्य विषय के सामाजिक उत्तरदायित्व की समवेदना के पुनः संस्कार आदि की। वास्तविकता यह है कि प्रयोगवादी कवियों की फौज शैली और शिल्प की समस्या में उलझी हुई है। जीवन से पलायन का विचार उनके मन में आता है और वही तुके बेतुके रूप में मन की कुण्ठाओं का प्रदर्शन करता है। डा० नगेन्द्र ठीक ही कहते हैं—"एक गहन बौद्धिकता इन कवियों पर शीशे की पर्त की तरह जमती चली जाती है। छायावाद के रङ्गीन कल्पना वैभव और सूक्ष्म तरल भावना चिन्तन के स्थान पर यहाँ ठोस बौद्धिक चिन्तन का बोझीला पन है।

कविताएँ अनिवार्य रूप से ही सिद्धान्त रूप में भी दुरूह हैं 'प्रतीक' पत्रिका के माध्यम से जो स्थापनायें प्रकाश में आई हैं तथा 'इसके सप्तक में जो रङ्ग प्रयोगवाद का आया वह 'तार सप्तक' से भिन्न था' 'निकष' अर्द्धवार्षिक, 'नयी कविता' द्विमासिकी में भी प्रयोगवाद का कुछ निखरा हुआ रूप सामने आता है। डा० धर्मबीर भारती ने प्रयोगवाद की दुरूहता के आक्षेप का उत्तर देते हुए कहा है — 'प्रयोगवादी कविता में भावना है किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है इसी प्रश्न चिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न चिन्ह उसी की ध्वनि मात्र है। डा० भारती ने नये युग के नये प्रतिमानों की स्थापना पर बल देकर रुढ़ियों को तोड़ने को संकेत किया है। इसके विपरीत नन्ददुलारे बाजपेयी का कथन है कि प्रयोगवादी साहित्यिक से साधारणतः इस व्यक्ति का बोध होता है, जिसकी रचना में कोई तात्विक अनुभूति, कोई स्वाभाविक क्रम विकास या कोई निश्चित व्यक्तित्व न हो, जैसे-—

आ
मा
आ
ओ
मेरे पास आ री
घड़ी भर के लिये सही
मुझे पी
जी
मेरी कल्पना, मेरी कल्पना, मेरी कल्पना
पी
जी

प्रयोगवादी शैली में गद्यात्मकता अधिक रहती है उदाहरणार्थ—

मुछुए का
एक जाल
नदी से निकल कर
धरा हुआ
मेरे इन चिर आदिम कंधों पर
यह मेरा नगर है।
हँसी की एक झालर
टंगी हुई तारों पर
हवा के धक्के से
जिधर झुक जाती है
उधर
मेरा घर है

—केदार नाथ सिंह

प्रयोगवाद में संकीर्णता भी जन्मी है। नये बिम्बों तथा प्रतिमानों में उसने अपने पात्रों को गढ़ा है एक उदाहरण—

लहू के फेके थूक
भरे शुद्र शम्बूक
खेले क्रिकेट राम योजना बिहारी

—नागार्जुन

नये बिम्ब तथा इमैजिज की खोज में तो नये कवियों में दौड़ लग गयी। प्रतीक व्यंजना अपूर्ण थी उनकी, एक प्रतीक के माध्यम से चमत्कार उत्पन्न करना उन्होंने सरल कार्य समझ लिया था। कुछ हल्कापन उनकी कविताओं में आया। यथा—

कैसे विश्व प्रेम फिर
ध्यावे कोई
कैसे आसीर्वच
मुदन्तु सर्वे प्रशीदन्तु सर्वे
गावे कोई ?
क्या करें, कहाँ जाये ?
मुँह से यही हाय
निकलता है मेरे
"धत्त रे। नास जाये"

निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र में इस प्रकार की पीड़ा के दर्शन होते हैं, जबकि इसके विपरीत गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे मन-मौजी प्रतीक होते हैं।

नवीन विकास बोध और नया आयाम

"इसमें संदेह नहीं कि अपनी भाव परिधि, अपनी शिल्प सज्जा अपनी भाव और अपनी भाव व्यंजना में 'नयी कविता' पुरानी कविता से बहुत भिन्न है। विचार करना है कि इस कविता ने अपने समकालीन युग की वास्तविकता को उसकी पूरी जटिलता से ग्रहण करने की चेष्टा की है और कितनी तेजी से संसरण करने वाला है यह युग। धर्म दर्शन, नीति, ज्ञान, सभी सही क्षेत्रों में पुरानी मान्यता और भावभूमियाँ कितनी तेजी से ध्वस्त होती गयी है। व्यस्ततायें कितनी बदलती हैं। उसकी अनिवार्य छाप काव्य की भावभूमि पर पड़ना स्वभा-है डाक्टर धर्मवीर भारती ने आधुनिक युग और नयी कविता के विकास बोध का नया आयाम स्थापित करने की जो सीमायें निर्धारित की, उससे एच० वी० रूथ के इस कथन का समर्थन मिलता है—"एक अद्वितीय साहित्य का उदय हुआ, जिसका आकलन करना असाधारण रूप से कठिन है। किन्तु जिसको जाँचने परखने की अदम्य इच्छा होती है। क्या यह सब अनेक अनियोजित असम्बद्ध प्रयासों का वाङ्मय मात्र सिद्ध होकर रह जायेगा" यदि हम चाहें कि परम्परागत स्कूली आलोचना के अनुसार उनको वादों, वर्गों में बांधे तो वह शायद हमें अनियोजित लगेगा लेकिन इस प्रकार की सम्मति के बजाय हमें इसमें मिलेंगे अनुमान, संकेत, प्रयोग साहसिक अभियान जो पहले चाहे अनुत्तरदायी लगे लेकिन धीरे-धीरे अन्वेषण की प्रकृति उनमें पहिचानी जा सकती है जो इस युग की व्यापक प्रकृति रही है।

प्रयोग की राह को लांघ कर अब कविता में कुछ प्रांजलता, स्पष्टता आ गयी है। 'नयी कविता' पुरानी धारा की प्रतिक्रिया स्वरूप काव्य क्षितिज पर उदित हुई है। मानवीय मूल्यों और उनकी कसौटी 'मानवता' के विभिन्न रूप-धर्म व्यक्ति वैयक्तिकता, अस्तित्व, ऊर्ध्वमानवता, सामूहिक मानवता तक के सभी पहलुओं को नई कविता के नये आयाम ने अपने में समेटा है। अपने पहले जैसा विकृत, व्यर्थ और बुद्धवादी रूप नहीं मिलता। वैचित्र्य प्रियता उसमें अवश्य है और उनमें अनुभूति के प्रति ईमानदारी भी मिलती है। भाव तत्त्वों और काव्यानुभूति के मध्य रागात्मक तत्त्वों का अस्तित्व भी उनमें मिलता है। प्रयोगवाद के प्रथम चरणों में साधारणीकरण का अभाव, अवचेतन मन के खण्डों का यथावत् चित्रण का आग्रह, काव्य के उपकरण एवं भाषा का एकान्त वैयक्तिक और अनर्गल प्रयोग मिलता था पर नयी कविता सुधरे रूप में नयी कविता के दो रूप प्रकट होने लगे—समाजवादी यथार्थवाद और मनोवैज्ञानिक यथार्थ-वाद कुछ कवियों में दोनों का समन्वय भी मिलता है फिर प्रयोगों की यह परम्परा जब आगे बढ़ जाती है तो अज्ञेय को कहना पड़ता है—"तो प्रयोग अपने आपमें इष्ट नहीं है, वह साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है। दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया का और दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य का जानते का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है। दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग लाभप्रद है।"

गिरिजा कुमार माथुर ने नयी कविता की हिमायत करते हुये कहा है—"लेकिन नयी कविता हम उसे मानते हैं जिसमें शैली, शिल्प और माध्यमों के प्रयासों द्वारा समाजो-न्मुखता पर बल दिया जाता रहा है। जीवन की संघर्ष-जन्य कटुता के बीच भारतीय आदर्शानुसार उसकी आशा की लौ निष्कंप है, क्योंकि उसे विश्वास है कि आज चाहे

जो स्थिति हो, मानवता का भविष्य कल्याणमय है और वह हर अमंगल शक्ति पर निश्चित रूप से विजय प्राप्त करेगी। इसलिये नयी कविता पलायन, पस्ती और पराजय की कविता नहीं हो सकती, यथा—

राह है
सो गयी दुनिया थकन से चूर
नींद में भर पूर
कुछ चरणों को
जिन्दगी की विषमता
कटुता हुई है दूर
एक सी हैं आँख सब की
एक सी है रैन
जागती आँखें उसी की
है न जिसको चैन
मैं नहीं यह चाहता
सोता रहे जग
हो सदा ही रैन
चाहता हूँ किन्तु कर्मठ दिवस में भी
नींद सा हो चैन!

—गिरिजा कुमार माथुर

नये आयाम में 'सिम्बोलिज्म' और इमेजिज का जन्म हुआ और चित्रकला में इसे 'इम्प्रेशेनिज्म' कहा गया, प्रतीक तथा प्रतिमाओं का संयोग आज की हिन्दी कविता की एक बहुत बड़ी विशेषता है—

कोई आये
हृदय द्वार खटखटायें
स्नेह बोल दो
सुना जाये
जानकी जनक भार्या भगिनी
चाहे जिस रूप में आये
पर
यदि बन्धु भाव से गले लग जाये
तो कसम मुझे
जो ख्याल तक मुझे किसी और का आये

—बलवन्त मराल

कवि पर जो यह आक्षेप लगाया जाता है कि वह भौतिकवाद की चारदिवारी से परे प्रकृति की कल्पना नहीं करता, पर ईमानदारी की बात यह है कि कवि प्रकृति के प्रति अधिक ईमानदार रहा है—

सतपुड़ा के घने जङ्गल
नींद में डूबे हुये से
ऊँघते अनमने जङ्गल
झाड़ ऊँचे और नीचे
चुप खड़े हैं काल चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है
तो धँसों इनमें
धँस न पाती हवा इनमें
सतपुड़ा के जङ्गल
ऊँघते अनमने जङ्गल

अब यों कहना उचित होगा कि स्वाधीनता के बाद काव्य का संधि-युग आया और उसमें प्रयोग की दिशा भी निश्चित हो गयी। यद्यपि जनता और आलोचक दोनों ही उस पर विश्वास नहीं कर पाये, फिर भी वैज्ञानिक प्रगति से प्रभावित होकर कवि साहित्य में प्रकृति का अभाव अनुभव कर भौतिक प्रतीकों से प्रकृति के अभाव को पूरने लगे। प्रयोगवादी कवियों ने प्रगति और प्रयोग के चौराहे पर संघ की घोषणा कर दी और डाक्टर जगदीश गुप्त ने युग पथ संधि के मार्ग पर निरन्तर चलते रहने को कहा—

सुनी बात
रात
झिल्ली तारों से
जो प्राणी
प्राणों की अवधि पर
चरै वेति
च रै वे ति
च रै वे ति

नई कविता में विश्व विधान के साथ प्रतीकों को मानवीकरण के रूप में प्रस्तुत करने का भी प्रयत्न रहने लगा है। जीवन का लक्ष्य समय के साथ चलना है उसी की एक झलक—

हम समय हैं
स्वर यही कल जागरण के
शंख होंगे
हमीं तो मध्याह्न के मार्तण्ड
सपनों के कृषक हैं
हवा देगी प्यार हमको
गगन देगा बादलों की छाँव
युग के हम नियन्ता
हम समय हैं
हम समय के सारथी हैं — चन्द्रदेव सिंह

नई कविता में जीवन की प्रेरणा के दर्शन भी होने लगे हैं —

रात
पर मैं जी रहा हूं निडर
जैसे कमल
जैसे पंथ
जैसे सूर्य
क्योंकि कल हम भी खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उगेंगे
और वे सब साथ होंगे
आज जिनको रात ने भटका दिया है
— डाक्टर धर्मवीर 'भारती'

अभी हाल ही में सनातन सूर्योदयी कविता की घोषणा 'भारती' के सम्पादक वीरेन्द्रकुमार जैन द्वारा हुई और इस आशय का एक विस्तृत विवरण उन्होंने मार्च '६२ के "भारती" में प्रकाशित भी किया है। अरविन्द दर्शन से प्रभावित यह घोषणा पत्र वास्तव में अपने में महत्त्वपूर्ण तो है ही पर उसमें जहाँ पुरानी मान्यताओं को नये क्षितिज में फिट करने का यत्न किया है, वहाँ उसमें लफ्फाजी भी अधिक है फिर भी नयी कविता का चिन्तन एक कदम और खिसका है।

वास्तविकता यह है कि काव्य का अभिनवीकरण नयी कविता का चोला पहन कर आया है। उसका रूप पहले प्रयोग में था और अब जब कि उसके मूल्य स्थापित हो गये हैं, उसका कुछ कुछ रूप उभर चुका है, तब वह नयी कविता के रूप में जल जाने लगा है। प्रगति की इस दौड़ में नई कविता को अभी अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये दौड़ते रहना है। दौड़ने में उसे दो बातों का ध्यान रखना है, जन विरोधी तथ्यों का परित्याग और सर्वाङ्गीण चित्र उपस्थित करने वाला मानववाद। अभी तो दौड़ जारी है, प्रगति की यह दौड़ कहाँ तमाम होगी इसका उत्तर आने वाली घड़ियाँ देंगी, जिनकी प्रत्येक टिक-टिक रागात्मक ध्वनि, गति, लय और विचार का स्फुरण छोड़ेगी।

बँगला का काव्य साहित्य

विमल बोस, एम० ए०

बँगला का काव्य साहित्य एक दीर्घ प्राचीन परम्परा से जुड़ा हुआ है। यही प्राचीन परम्परा नई काव्य धारा में पर्यवसित हुई। इन दोनों युगों की संधि पर काव्य की दृष्टि से हम ईश्वरचन्द्र गुप्त (१८१२-१८५६) को पाते हैं ईश्वरचन्द्र गुप्त से पूर्व भारतचन्द्र (१७१२-६०) नामक एक कवि बंगला में अवश्य हुये परन्तु काव्य की दृष्टि से वह विशेष उल्लेखनीय प्रतीत नहीं होते।

ईश्वरचन्द्र जिस समय हुये थे उस समय साहित्य के क्षेत्र में एक ओर जहाँ प्राचीन लौकिक देवी-देवता, काली, चंडी मनसा आदि अपना-अपना आधिपत्य जमाये हुये थे वहाँ दूसरी ओर राधाकृष्ण सम्बन्धी कीर्तनों की रचना और उनका गायन भी हुआ करता था। प्राचीन वैष्णवों की पद प्रणाली निधु बाबू के ख्यालटप्पे आदि का बोल बाला था। दाशरथी राय के पांचाली शैली के गीतों की लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी। आधुनिक युग के आरंभिक चरण में (१८००-१८५०) जिस तीन कवियों का कुछ विशिष्ट स्थान था वे तीन हैं—रघुनन्दन गोस्वामी, मदनमोहन, तर्कालंकार और ईश्वरचन्द्र गुप्त। इनमें महत्त्वपूर्ण कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त हैं जिनको हमने ऊपर संधिकाल का कवि कहा है।

ईश्वर गुप्त के काव्य की आलोचना करते समय जिन दो विषयों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये वे हैं—उनके काव्य का स्थायी मूल्य और उनकी बंगाली प्रियता। कवि की जो निजी विशिष्टता है वही उनके काव्य को स्थायित्व का भी कारण है। बँगला प्रियता ही उनके काव्य की विशिष्टता है। इस प्रसंग में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के यह शब्द उल्लेखनीय हैं। ईश्वरचन्द्र की कविताओं का संग्रह करते समय बंकिम ने कहा कि मधुसूदन, हेमचन्द्र, नवीन-चन्द्र, रवीन्द्रनाथ आदि शिक्षित बंगालियों के कवि हैं—परन्तु ईश्वरचन्द्र गुप्त बंगाल के कवि हैं। 'बंगालप्रियता' शब्द इसी अर्थ में यहाँ प्रयुक्त हुआ है।

ईश्वरचन्द्र के काव्य की गुरुता ठीक उनकी कविता के रसोत्कर्ष पर निर्भरशील नहीं हैं। दूसरे कवियों की तुलना में हो सकता है वे द्वितीय अथवा तृतीय कोटि के कवि हों परन्तु जिस कारण से वे बंगला काव्य साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय हैं वह है उनकी ऐतिहासिकता। ईश्वरचन्द्र को बंगला काव्य साहित्य का 'जेनस' कहा जा सकता है। जेनस मिश्र देश का वह देवता है जिसका एक मुँह 'भूत-काल' की ओर और दूसरा भविष्य की ओर खुला हुआ है। इसी कारण ईश्वरचन्द्र की कविता में एक ओर जहाँ प्राचीन परिपाटी के भक्तिपरक और शृंगार-प्रधान विषयों का प्राधान्य है तो दूसरी ओर सामयिक बातों को भी इन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया है। एक ओर यदि समाज पर पाश्चात्य प्रभाव के रूप को देखकर उन्होंने उसका परिहास किया है तो दूसरी ओर अपने काव्य के बौद्धिक तत्त्वों को लोक-भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया है। इस लोकभूमि के कारण साधारण जन भी इन्हें अपना समझते हैं। इन बातों से स्वयमेव प्रतीत होता है कि ईश्वरचन्द्र को अपने देश के गौरव का ध्यान था। देश प्रेम की यह नयी प्रेरणाप्रद भाव-धारा पहले पहल ईश्वर गुप्त की कविताओं में ही झलकी। इस प्रकार ईश्वरचन्द्र गुप्त को आधुनिक बंगला साहित्य के गुरु स्थानीय माने जाते हैं।

इस पीढ़ी में (१८५८-१८-९६) जो बँगला काव्य का 'वीरगाथा' काल (Heroic age) कहा जाता है—रंगलाल बन्दोपाध्याय का नाम आता है। इन्होंने चार कथा-काव्य लिखे—पद्मिनी उपाख्यान, कर्म देवी, सुर-सुन्दरी तथा कांची-कावेरी। इनके कथा काव्यों के अधिकांश विषय राजपूताने के वीरों के इतिहास से लिये गये हैं।

भारतचन्द्र से ईश्वरचन्द्र गुप्त और फिर रंगलाल तक अर्थात् इस एक शताब्दी में बंगला काव्य साहित्य में जो एकरूपता चली आ रही थी वह बंगाल के 'मिल्टन' माइकेल मधुसूदन (१८२४-१८७३) के आविर्भाव होते ही समाप्त हो गई। माइकेल के युगान्तरकारी प्रतिभा के सम्बन्ध में बंकिमचन्द्र ने कहा कि, दो सौ वर्ष के लम्बे समय में केवल जयदेव गोस्वामी हुये। और जयदेव के पश्चात् श्री मधुसूदन।'

मधुसूदन बँगला काव्य के एक प्रथम महान कवि थे। यह महत्वकांक्षी व्यक्ति थे। पाश्चात्य से इन्हें बहुत प्रेम था। इस कारण प्रारम्भिक जीवन में इन्होंने अंग्रेजी को ही यथासर्वस्व मान लिया था और बंगला को गँवारों और अशिक्षितों की भाषा समझते थे। प्रारंभ में इन्होंने अंग्रेजी में ही रचनाएँ कीं, इंग्लैण्ड भी गये। अंग्रेज स्त्रियों से एक के बाद एक-दो विवाह भी किये। पहले रेंबेका मेक्टाविस से और फिर हेनरियेटा सोफिया से। परन्तु सरस्वती तो इनसे बंगला की हीं सेवा कराना चाहती थी इस कारण अन्त में अंग्रेजी को छोड़कर अपनी मातृभाषा में ही इनको काव्य रचना करना पड़ा।

१८४६ में मधुसूदन का प्रथम काव्य संकलन 'Captive Lady' प्रकाशित हुआ इसके पश्चात् 'Visions of the Past' यह दोनों रचनायें 'Madras Cirulator' नामक अंग्रेजी पत्रिका में प्रकाशित हुईं। 'Captive Lady' नामक नाटक शिक्षित वर्ग में अधिक लोकप्रिय हुई। और यहीं से मधुसूदन का जीवन एक मोड़ लेने लगा। इसकी एक 'भेंट प्रति' को काउन्सिल आफ एज्युकेशन के सभापति मिस्टर बेथुन ने जब पढ़ा तो उन्होंने मधुसूदन के मित्र श्री गौरदास बसाक लिखा :—

'...He Could rendcr for greater service to his country and have a better chance of achieving a lasting reputation for himself, if he will employ the taste and talents which he has cultivated by the spudy or English, in improving the standard and adding to the stock of the poems of his own language, if poetry at all events he miuest write. श्री गौरदास बसाक ने पहले कई एक बार मधुसूदन को बंगला भाषा में लिखने को कहा था परन्तु उन्होंने अनसुनी कर दी थी। अब मिस्टर बेथुन की चिट्ठी के साथ उन्होंने मधुसूदन को अपनी तरफ से यह दो पंक्तियाँ और लिख दी :—

We do not want another Byron or another Shtelley in English, what we lack is a Byron or Shelley in Bengali Literature. मिस्टर बेथुन और बसाक की बातों से प्रेरित होकर मधुसूदन ने अब बंगला में लिखने का दृढ़ संकल्प किया। फलतः दो चार दिनों में ही इन्होंने 'शर्मिष्टा नामक नाटक लिखा। शर्मिष्ठा के प्रकाशित होते-होते (१८५६) में बँगला के हो गये।

इनको 'तिलोत्तमा' १८५६ में प्रकाशित बँगला काव्य साहित्य को सर्वप्रथम काव्य था जिसमें अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग हुआ। यह इनकी प्रथम बँगला कविता है। 'तिलोत्तमा' का सम्बन्ध प्रसिद्ध देवी-उपाख्यान से है। यह भारतीय शाक्त कथा है। इस भारतीय उपाख्यान में मधुसूदन ने अपने पाश्चात्य पुराण-गाथा-ज्ञान का भी पूरा उपयोग किया।

छन्दों के बंधन से भावों को मुक्ति देने की जो सुचेष्टा 'तिलोत्तमा' में की गई थी वह 'मेघनादवध' काव्य में और परिपूर्ण हो उठी। मेघनादवध काव्य उनका वह महाकाव्य था जो पाश्चात्य पुराण गाथा के आधार पर लिखा गया था। न केवल मधुसूदन की कृतियों में वरन् बँगला साहित्य के इतिहास में मेघनाद वध एक युगान्तरकारी रचना है। इस महाकाव्य के सम्बन्ध में माइकेल के स्वयं का कहना है :—

"I think, I have Constructed the poem on the most rigid principles and even a French Coitic would no find fault with me."

स्पष्ट है 'मेघनादवध' कवि का एक नया प्रयोग था। शैली और भाव में सचमुच यह एक क्रान्तिकारी रचना सिद्ध हुई। भाव-दृष्टि से भारतीय काव्य-परम्परा जिन चरित्रों के प्रति सहानुभूति रखती आयी थी, और जिन चरित्रों को वह निन्दनीय मानती आई थी, मधुसूदन ने उसमें परिवर्तन कर दिया। सभी पात्रों को उन्होंने मानवीय भूमि पर खड़ा किया और उनके कर्मों से उनके चरित्र को विकसित किया।

वीर रसात्मक मेघनादवध काव्य के 'करुणरस' के सम्बन्ध में माइकेल पूर्णतः सजग थे। उन्होंने एक पत्र में लिखा है :—

'I Can tell you that you have to shed many a tear for the glorious Raksha as, for poor Lakshmana, for Promila.'

मेघनादवध के उपरान्त मधुसूदन का 'ब्रजांगना' काव्य प्रकाश में आया 'ब्रजांगना' शृंगार-रसपूर्ण राधा-कृष्ण विषयक एक गीति काव्य है। इसी के साथ 'वीरांगना' नामक काव्य ग्रन्थ भी प्रकाश में आया। 'वीरांगना' भी गीति-काव्य है। प्रसिद्ध रोमन कवि ओविद रचित Heroic Epistles को आदर्श मानकर मधुसूदन ने यह काव्य लिखा है। इसमें ११ सर्ग हैं जो प्रसिद्ध पौराणिक महिलाओं के पत्र हैं। यह पुस्तक वास्तव में मधुसूदन की पत्राकार काव्य रचना है। कुछ विद्वानों की राय में काव्यकला की दृष्टि से यह इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है।

सन् १८६० से १८६२ के दो वर्ष माइकेल मधुसूदन दत्त की काव्य प्रतिभा के चरम उत्कर्ष के वर्ष थे। इस काल के चार ग्रन्थों, मेघनादवध, ब्रजांगना, कृष्ण कुमारी नाटक तथा वीरांगना में मधुसूदन की प्रतिभा का उच्चतम उत्कर्ष समाया हुआ है।

माइकेल मधुसूदन दत्त बङ्गाल के ही नहीं अपितु भारत भर के एक महान कवि हैं, प्राच्य और पाश्चात्य के संयोग से भारतीय प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट रूप माइकेल के काव्य में प्रतिफलित होता है।

माइकेल मधुसूदन के अतिरिक्त आधुनिक युग के एक चरण में कृष्णचन्द्र मजुमदार, विहारीलाल चक्रवर्ती, सुरेन्द्रनाथ मजुमदार, हेमचन्द्र बन्दोपाध्याय, नवीनचन्द्र सेन आदि उल्लेखनीय हैं।

इनमें से बिहारीलाल चक्रवर्ती 'गीतकाव्य' लिखने में सिद्ध-हस्त थे। इनको आधुनिक बङ्गला गीत-काव्य का प्रवर्तक माना जाता है। Wordsworth के Lyrical Ballads से जिस प्रकार आंग्ल साहित्य में एक नये युग का आरम्भ हुआ था उसी प्रकार कविवर बिहारी लाल के काव्य ने बङ्गला साहित्य के कृत्रिम क्लासिक युग का पटाक्षेप कर रोमान्टिक युग का द्वार खोल दिया था। अपने गीतों के नये प्रयोग में इन्होंने कितने ही काव्यग्रन्थ लिखे—जैसे, बंगसुन्दरी, साधेर आसन, शारदा-मंगल आदि।

हेमचन्द्र बन्दोपाध्याय इन सब में श्रेष्ठ हैं। इनका महाकाव्य 'वृत्रसंहार' मेघनादवध के उपरान्त बङ्गला काव्य साहित्य का दूसरा श्रेष्ठ महाकाव्य है। इन्होंने गीति-काव्य भी बहुत से लिखे। हास-परिहास लिखने में भी यह निपुण थे। 'चिन्तातरंगिणी' तथा 'वीरवाहु' इनके अन्य दो काव्य-ग्रन्थ हैं।

आधुनिक बङ्गला काव्य के प्रथम चरण के अन्तिम कवि हैं—नवीनचन्द्र सेन। 'पलासीर युद्ध' इनकी कृतियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्होंने भगवान बुद्ध पर 'अमृताभ', कृष्णाख्यान पर 'रैवतक', 'कुरुक्षेत्र' तथा प्रभास और ईसा मसीह पर 'ख्रिस्ट' काव्य लिखे थे।

इस युग के सामान्य परिक्रमा से यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि प्राच्य-पाश्चात्य की पुराण-कथाओं के समन्वय से काव्य-रचना का प्रयत्न माइकेल के उपरान्त और कोई कवि सुन्दर ढङ्ग से न कर सका। वैसे माइकेल को भी भारतीय रस में सिद्ध कर इन पाश्चात्य कथाओं को रखना पड़ा था। इस समय अमित्ताकार छन्दों (अतुकान्त काव्य) को प्रोत्साहन मिला। केवल प्रोत्साहन ही नहीं माइकेल की लेखनी ने इसे पूर्ण विकास पर पहुँचा दिया। माइकेल के

प्रयत्नों से भारतीय केन्द्र में सीमित दृष्टि, विश्व परिधि तक फैलने लगा। अंग्रेजी कवि शैली, बायरन, कीट्स तथा शेक्सपियर से यह युग प्रभावित हो चला था। जहाँ एक ओर इस काव्य दृष्टि ने विश्व के स्थूल तत्त्वों को ग्रहण किया वहीं सूक्ष्म तत्त्वों को भी। कहने का तात्पर्य यह कि इस समय वहाँ एक ओर मानवीय भावनाओं को प्रतिष्ठा मिली, वहीं देवता को मानवी विचार भूमि पर लाने का प्रयत्न भी हुआ। यहीं विश्व कवि रवीन्द्रनाथ अवतीर्ण हुये।

रवीन्द्रनाथ जिस युग में पैदा हुये वह युग महर्षि देवेन्द्रनाथ, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, केशवचन्द्र सेन, माइकेल मधुसूदन दत्त, गिरीश चन्द्र घोष, रमेशचंद्र दत्त आदि का युग था जिस प्रकार इस युग में एक ओर भारतीय सामाजिक विधान के प्रति श्रद्धा दी उसी तरह इसके प्रति अश्रद्धा प्रेरित विद्रोह की भावना भी थी। जिस प्रकार इस युग में एक ओर अंग्रेजी शासन के प्रति घोर विद्रोह था, उसी प्रकार इनके प्रति अंध श्रद्धा भी थी। जिस प्रकार भारतीय साहित्य की परम्परा के प्रति इस युग में एक श्रद्धा थी उसी समय पाश्चात्य साहित्य के प्रति भी प्रीति थी। इस युग में जहाँ एक ओर युद्ध का उभार था वहीं दूसरी ओर अहिंसा और करुणा का प्रसार भी। एक ओर इस युग में जिस प्रकार जयदेव और कबीर साथ-साथ चल रहे थे वहाँ दूसरी ओर शंकराचार्य और वात्सायन भी। पूर्व और पश्चिम के कथा तत्त्वों का मानवीय और मनोसामाजिक व्याख्या तथा विचारवादी प्रवृत्ति का विकास इस युग में अपने चरम उत्कर्ष पर था। ऐसे ही समय रवीन्द्रनाथ ठाकुर अवतीर्ण हुए।

सन् १९२३ में साहित्य पर रवीन्द्रनाथ को नोबुल पुरस्कार मिलते ही विश्व साहित्य के इतिहास में भारतवर्ष का नाम भी अन्तर्मुक्त हो गया और तभी से रवीन्द्रनाथ विश्व मानव के रूप में देखे जाने लगे। इन्होंने पूर्व और पश्चिम को मिलाने की चेष्टाओं के साथ ही साथ मानवता की भूमि पर भारतीय और विदेशी साहित्य व काव्य का समन्वय किया। इस समन्वय से भारतीय अध्यात्मवाद व दर्शन को एक नई प्रेरणा ही नहीं मिली बस यह रवीन्द्रदर्शन लोक ग्राह्य भी हुई।

रवीन्द्र में प्राचीन ऋषियों जैसी मुमुक्षता थी; ज्ञात से अज्ञात सत्ता को जानने की प्रबल हूक। 'बलाका' के युग की कवितायें इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं। जैसे—

देखितेछि आमि आजि,
एई गिरिराजी
एई बन चलियाछे उन्मुक्त ज्ञानाय
द्वीप हीते द्वीपान्तरे, अजाना होइते अजानाय।

आगे—

एई बासा-छाड़ा पाखी धाय आलो अन्धकारे
कोन पार होते कोन पारे।
ध्वनिया उठिछे शून्य निखिलेर पाखार ए गाने।
हेथा नय, ओन्नों कोथा, ओन्नों कोनखाने॥

'बलाका' का मूल स्वर यही है। शून्य आकाश के निरुद्देश्यगामी बलाका श्रेणिओं की नईं यह सम्पूर्ण विश्व एक अनादि अनन्त प्रवाह के श्रोत में दौड़ रहा है—कहाँ जा रहा है यह किसी को ज्ञात नहीं। परन्तु यह अनजानी राह पर चलना ही राविन्द्रिक-दर्शन का एक अग है। कवि स्वयं कहते हैं—

बाहिर होलेभ कबे से नाई मने,
यात्रा आमार चलार पाके।
एई पथेरई बाँके बाँके,
नूतन होलो प्रति क्षणे क्षणे।
जतो आशा पथेर आशा,
पथे जेते भालोबाशा।

दार्शनिक अनुभूति अवश्य ही विश्व कवि के काव्य में हैं परन्तु इसके विपरीत ऋतु सम्बन्धी कवितायें, प्रेम विषयक कविताएँ, देश प्रेम की कवितायें, बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी कवितायें भी इन्होंने बहुत लिखी हैं। सामाजिक व्यंग्य काव्यों में 'तुरन्त आशा' 'नववंग वीर' हिं टिं छट, जूतार आविष्कार उल्लेखनीय है।

महाकवि रवीन्द्र की प्रत्येक कविता यह चाहे सामाजिक हो चाहे राष्ट्रीय, चाहे दार्शदिक, चाहे रोमान्टिक रहस्यवादी सभी में दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और व्यापक है।

मानव इतिहास में कभी-कभी ऐसे-ऐसे लोकोत्तर कवि का जन्म होता है जो केवल साहित्य को एक नवीन दिशा ही नहीं देते वरन् मानव-इतिहास की दिशा को भी बदलने में

समर्थ होते हैं। ये ही वास्तविक अर्थ में महाकवि हैं। ग्रीस के होमर, रोम के वर्जिल, इटली के दान्ते, इंग्लैण्ड के शेक्सपियर, जर्मनी के गेटे—इन्होंने ही देश के रथचक्र को सारथी बनकर नई दिशाओं में ले गये। यदि इन कवियों में से किसी एक का नाम उसके देश के इतिहास से निकाल दिया जाय तो अवश्य ही वह इतिहास खंडित और असत्य होगा। इस अर्थ में नवीन भारत के महाकवि हुये—रवीन्द्रनाथ।

रवीन्द्र युग में द्विजेन्द्र लाल ने भी गीत लिखे।

इसी युग के कवि रजनीकान्त सेन ने भी गीत लिखे। स्वदेशी आन्दोलन के समय इनके राष्ट्रीय गीत बड़े लोकप्रिय हुये। इनका—'मायेर देओया मोटा कापोड़ माथाय तुले ने रे भाई' गीत उस समय जनगण के कंठ पर विराज कर रहा था।

इसी समय के एक और गीतकार अतुलप्रसाद सेन हैं। रवीन्द्र संगीत से यह अत्यधिक प्रभावित हुये और तदनुसार राष्ट्रीय गीतों का सृजन किया।

रवीन्द्र युग के कुछ और कवियों के नाम हैं—बलेन्द्रनाथ ठाकुर, प्रियंवदा देवी, सतीशचन्द्र राय, रमणी मोहन घोष भुजंगधर चौधरी, प्रमथनाथ चौधरी, गिरिजानाथ मुखोपाध्याय, विजय कृष्ण घोष तथा रसमय लाहा।

रवीन्द्र-परिकर में रवीन्द्र के अनुयायी और एक भक्त सत्येन्द्रनाथ दत्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रवीन्द्र-प्रभाव की परम्परा बहुधा इनके प्रभाव के कारण ही परिपुष्ट हुई। इन्होंने कितने ही काव्य-ग्रन्थ लिखे। जिनमें सविता (१६००) संधिक्षण (१६०५) वेणु ओ वीना (१६०६) होमशिखा (१६०७) फूलेर फसल (१६११) कुहू ओ केका (१६१२) आदि उल्लेखनीय हैं।

इनकी आरम्भिक कविताओं पर माइकेल, अक्षयकुमार, सतीशचन्द्र आदि का प्रभाव पड़ा। पर धीरे-धीरे रवीन्द्र का प्रभाव गहरा और व्यापक होता गया।

सत्येन्द्रनाथ की कविताओं में कई प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक प्रवृत्ति तो रूपक-काव्य (Allegory) विषयक है। जैसे—'वेणु ओ वीणा' व 'कुहू ओ केका' दूसरी भावधारा वैदिक प्रकृति देवी-देवताओं को लक्ष्य कर उन्हें आधुनिकता प्रदान करने की मिलती है। कुछ रचनाओं में इन्होंने तत्कालीन समाज के त्याज्य व पीड़ित वर्ग की चीत्कार समाविष्ट है। गावों की ओर भी कभी-कभी कवि की दृष्टि गई है। इन्होंने 'व्यंग्य-काव्य' भी रचे हैं जो एक प्रकार से रवीन्द्र का प्रचार मात्र है।

बगला काव्य में सत्येन्द्रनाथ की जो विशेष देन है वह है उनका अनुवाद कार्य। इन्होंने देश-विदेश के नवीन व प्राचीन कवियों की कविताओं का अनुवाद करके बंगला भाषा को समृद्ध किया। उनके ही द्वारा कई विदेशी छंद-शैलियाँ भी बंगला की अपनी हो गई।

बीसवीं शताब्दि के प्रथम चरण में आविर्भूत रवीन्द्रानुगामी कवियों में यतीन्द्र मोहन बागची, करुणानिधान बन्दोपाध्याय, कुमुदरंजन मल्लिक व कालिदास राय का नाम एक साथ आता है। 'लैटिन जीनियस' अथवा 'प्रीरफेलाइट ब्रदरहुड' गोष्ठियों की भांति इस कवि चतुष्टय का रवीन्द्रोत्तर काव्य में एक विशेष स्थान है। रवीन्द्रनाथ के प्रतापी व्यक्तित्व एवं प्रभाव से जब चारों ओर के कवि आक्रान्त हो उठे, तो ऐसे समय इस कवि चतुष्टय गोष्ठी ने बंगला काव्य क्षेत्र में आकर एक मौलिकता का परिचय दिया। रवीन्द्रनाथ के पश्चात् काव्य में सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक व सांस्कृतिक जो नवीन तत्त्व उभरे उन्होंने अपने काव्य में एक ओर जहाँ उन सबका आत्मसात किया वहीं पुरातन काव्य के प्रगतिशील तत्वों को भी नहीं छोड़ा। प्राचीन व नवीन बंगला काव्य के बीच इन्होंने एक सेतु का कार्य किया और इस प्रकार बंगला काव्य के विकास को अक्षुण्ण रखा।

करुणानिधान बन्दोपाध्याय का प्रथम काव्य संग्रह 'बङ्गमङ्गल' १६०१ में प्रकाशित हुआ। इनमें देश प्रेम के भाव थे। इनके निम्नलिखित काव्य संग्रह प्रकाश में आए—प्रसादी झराफूल, शान्ति जल, धाम दूबा और रवीन्द्र आरती। इनके काव्य की पृष्ठभूमि वैष्णव भक्ति के हल्के रंग से रंगी हुई है।

यतीन्द्रमोहन बागची का प्रथम काव्य 'लेखा' १६०३ में प्रकाशित हुआ। इसके बाद रेखा, अपराजिता, नागकेशर, बंधुरदान नीहारिका, जागरिनि आदि संग्रह प्रकाश में आए। चूँकि यह गाँवों में रहते थे। इसलिए ग्राम प्रेम और वहाँ की अवहेलित नारी के प्रति करुणा इनके काव्य में है।

श्री कुमुदरञ्जन मल्लिक में ग्राम श्री मुखर हो उठी है। इनके काव्य हैं—उजानी (१६११), बन तुलसी (१६११) शतदल (१६११) एकतारा (१६१४) वीथी (१६१५) बन मल्लिका [१६१८] नूपुर [१६२०] रजनी गंधा [१६२१] स्वर्ण संध्या [१६४८] आदि। प्रकृति की शोभा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण आपके काव्य में मिलता है।

श्री कालिदास राय का प्रथम काव्य-संग्रह 'कुन्द' सन् १६०८ में प्रकाशित हुआ। इनकी कविता में ग्राम्य श्री रोमान्टिक रङ्गों से रँगी हुई मिलती है। इनके भी लगभग ११ काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

यहाँ तक बँगला का काव्य प्रायः तीन मोड़ ले चुकी थी। एक मोड़ भारतचन्द्र और ईश्वरचन्द्र गुप्त द्वारा मिला था। जो सर्वथा प्राचीन धारा की ही परम्परा थी। दूसरा मोड़ तभी माइकेल ने दिया। इन्होंने पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होकर भारतीय पुराण गाथाओं को यूनानी पुराण गाथाओं की परम्परा में ढालना चाहा, जिसने बँगला महाकाव्यत्व को एक उच्च भूमि मिल गई। और वह अपनी देवभूमि छोड़कर लोक-भूमि पर आ गई। तभी तीसरा मोड़ रवीन्द्रनाथ ने दिया। उन्होंने 'वसुधैव कुटुम्बकम' से विश्वसूत्र को ग्रहण किया और इसी जगत् में अपने 'जीवन देवता, की स्थापना की। काव्य का सौन्दर्य-दर्शन से गठबंधन करा दिया। संगीत और काव्य का समन्वय करा दिया। इसी बीच प्रथम महायुद्ध छिड़ गया और समाप्त भी हो गया। समस्त विश्व में एक नई विचार-क्रान्ति फैल गई। इस स्थूल पर बँगला काव्य को एक चौथा मोड़ मिला। और 'आधुनिक-अतिआधुनिक' के विवाद का रूप आरम्भ हो गया। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के अन्तिम वर्षों से ही इस 'आधुनिकता' का प्रारम्भ मानना चाहिए।

बँगला काव्य में आधुनिकता का प्रारम्भ हम यतीन्द्रनाथ सेन गुप्त से मानते हैं। रूप की दृष्टि से तो नहीं परन्तु प्रेरणा और अन्तर्दृष्टि की दृष्टि से इनके काव्य में आधुनिकता स्पष्ट है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ति कवियों का आदर्शवाद, भाव प्रवणता, स्वप्नमयता और रोमान्टिक भावुकता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और 'वस्तुवाद' को सर्व प्रथम अपने काव्य का विषय बनाया।

मोहितलाल मजुमदार के काव्य में भी यही आधुनिकता दृष्टिगोचर हुई। इनके काव्य में आधुनिक वाद का विलासी रूप अभिव्यक्ति हुआ। इन्होंने ही सर्व प्रथम रवीन्द्र के विरोधी बनकर उनकी रहस्योन्मुख ऊर्ध्वगामिनी प्रकृति का विरोध किया। इनके रचित ग्रन्थ हैं—मरीचिका (१६२३) मरुशिखा (१६२७) मरुमाया (१६३०) सायम् (१६४०) त्रियामा (१६४८) निशान्तिका (१६५७) आदि। यह 'सुन्दरम्' के कवि थे।

इसी समय शिवराम चक्रवर्ती के दो काव्य-ग्रन्थ, प्रकाश में आये—मानुष और 'चुम्बन'। मानुष में श्रमिकों और दरिद्रों की वेदना मुखर हो उठी है। और 'चुम्बन' में काम और रति के मिलान का वर्णन है।

प्रेम विषयक कविता के अनोखेपन में अचिंत्यकुमारसेन गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। इनकी श्रेष्ठ कविता 'अमावस्या' मानी जाती है।

अति आधुनिक बङ्गला काव्य का प्रारम्भ 'कल्लोल' गोष्ठी के कवियों द्वारा हुआ। 'कल्लोल' और 'कालि-कलम' कवि-गोष्ठी का आरम्भ सन् १६२६ से होता है। बङ्गला-काव्य में प्रगतिशील आन्दोलन सर्व प्रथम इसी कल्लोल और कालि-कलम कवि गोष्ठी द्वारा आरम्भ हुआ। इन कवियों पर डी० एच० लारेन्स, फ्रायड ईलियट, मालार्मे, प्रूस्ट, एजरा पाउन्ड एवं मार्क्स और लेनिन का गहरा प्रभाव पाया जाता है। इन कवियों में प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव वसु, जीवनानन्द दास, विष्णु दे, सुधींद्रनाथ दत्त, सुभाष मुखोपाध्याय, सुकान्त भट्टाचार्य, अमिय चक्रवर्ती आदि मुख्य हैं।

बुद्धदेव वसु की प्रथम कृति 'मर्मवाणी' १६२५ में प्रकाशित हुई। और 'बन्दीर बन्दना' जिस पर इनको पर्याप्त ख्याति मिली १६३० में। इनमें यौवनावेग और यौन-आकाँक्षा की तीव्रता अभिव्यक्त हुई है। यदि बुद्धदेव को बँगला का 'प्रयोगवादी' कवि कहें तो अत्युक्ति न होगी। वैसे इस पार्थिव जीवन के जो गुरु गम्भीर प्रश्न हैं—अर्थात् सामाजिक, आर्थिक राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक इन विषयों पर ही इन्होंने अधिक लिखा है। 'यौन आकाँक्षा' सम्बन्धित इनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रायः उद्धृत की जाती हैं—

वासनार वक्षमाझे केन्दे मरे क्षुधित यौवन,
दुर्दम वेदना तार स्फुटनेर आग्रहे अधीर।

सुकान्त भट्टाचार्य ने लिखा कम है परन्तु जो कुछ भी लिखा है विद्रोहात्मक स्वर से लिखा है। वैज्ञानिक युग में काव्य (कल्पना प्रधान) का कोई प्रयोजन नहीं है। केवल इतना कहने के लिए यह पंक्तियाँ किस प्रकार कही गई हैं, देखें—

प्रयोजन नेई कवितार स्निग्धता—
कविता, तोमाय दिलाभ आजके छुटि
क्षुधार मध्ये पृथ्वी गद्यमयः
पूर्णिमा चाँद जेनो झलसानो रुटि।

प्रयोगवादी चेतना का स्वर सबसे प्रबल रूप में बङ्गला अति आधुनिक काव्य में हमें जीवनानन्द दास में मिलता है। यह इस युग के विशिष्ट कवि हैं। 'वनलता सेन' इनकी एक बहु प्रशंसित कविता है! कुछ पंक्तियाँ :—

चुल तार कवेकार अंधकार विदिशार निशा
मुख तार शावस्तीर कारुकार्य अति दूर
समुद्रे र पर
हाल भेंगे जो नाविक हारायेछे दिशा
सबुज घासेर देश जखन से चोखे देखे
दारुचिनि द्वीयेर भितर
तेमनी देखेछि तारे अन्धकारे
वोलेछे से 'एतोदिन को थाय छिलेन ?'
पाखिर नीडेर मतो चोख तुले नाटोरेर
वनलता सेन।

विष्णु दे ने पहले तो जीवनानन्द दास के चरणों पर चलने का प्रयत्न किया परन्तु बाद में १९४१ तक यह मार्क्स और लेनिन वादी हो गए। मार्क्स व लेनिन पंथी चाहे वह भले ही हों परन्तु उनके अधिकाँश काव्य पर इलियटर (टी० एस०) का प्रभाव स्पष्ट है। उदाहरण स्वरूप 'टप्पा ठूमरी' नामक कविता की यह पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

पाँच मिनिट, पाँच मिनिट मोटे
कालेर यात्रार ध्वनि शुनिते कि पावो
उद्दाम उधावो
ट्रेन एलो बोले हावड़ाय।
ओपारे स्टाक एक्सचेंजेर एपारे रेलवेर हावड़ा,
तारि मोध्ये बोसे आछेन शिवसदागर
टैक्सीर हृदस्पन्दे, ट्रैफिकेर एटेकसियाय।
एलो ट्रेन
मन्थित कोरे रक्तेर जोआर
अमारि एकान्त मग्नचैतन्य मन्थित कोरे,
देखलुम तोमार क्लोज-अप मुख जानलाय,
एकटा कुलि—
शुनलुमे जेनो भोरबेलाकार भैरवी ते

सुधीन्द्रनाथ दत्त लगते तो हैं मालार्मे के अनुयायी परन्तु वास्तव में हैं वह प्रूस्तवादी। अनात्मवादिता बुद्धि में अनास्था, प्रेम की अवास्तव-वादिता और केवल इन्द्रियग्राह्य अनुभूतियों का ही इनके काव्य में प्राधान्य है। 'यन्त्रनाई जीवने सत्य' यही इनके काव्य का मूल स्वर है।

इस प्रकार बङ्गला काव्य की दिशा व विकास स्पष्ट हो जाता है। ईश्वरचन्द्र गुप्त से रवीन्द्रनाथ तक बङ्गला काव्य पाश्चात्य से प्रभावित तो होता है पर वह 'भारतीयता' फिर भी नहीं छोड़ता। किन्तु 'आधुनिकवाद' से समस्त 'भारतीयता को त्याग कर बङ्गला-काव्य में पाश्चात्य काव्य की 'आत्मा' को आत्मसात करने में लगा हुआ है।

जिन पुस्तकों की सामग्री का उपयोग किया है, ये हैं :—

१—आधुनिक बङ्गला काव्य।
—तारापद बसु

२—कविता की बात।
—जीवनानन्द दास

३—बङ्गला साहित्य का नवयुग।
—शशिभूषण दास गुप्त

४—बङ्गला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।
—डा० सत्येन्द्र

५—'देश' (साहित्य अंक)—१९५८

बँगला काव्य का एक क्रान्तिकारी काल

•

महिमारञ्जन भट्टाचार्य

साहित्य का विकास काव्य से हुआ था, साहित्य की प्रथम रचना बाल्मीकि की श्लोक थी, "मा निषाद प्रतिष्ठांत्वम गमः" इत्यादि, मानसिक आवेग से साहित्य-रचना की प्रेरणा मिलती है और साहित्यिक रचना स्वतः छन्दमय रूप ले लेती है, हर्ष, दुःख, शोक भय आदि का सार्थक प्रकाशन कविता में जैसा होता है वैसा साहित्य के और किसी अंग से नहीं हो पाता।

काव्य प्रेम बङ्गाल वासियों का एक सहज गुण है। यह कहना कि एक बङ्गाली बालक इस धरती पर पदार्पण करते ही काव्य-रचना की क्षमता व योग्यता रखता है, कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण तो हो सकता है किन्तु असत्य नहीं, बङ्गाल सदा से कवियों की भूमि रही है। यदि मैं उनके नाम गिनाना चाहूं तो एक लम्बी सूची बन जायगी, इस लेख में मैं केवल एक त्रांतिकारी काल के कवियों के काव्य का विश्लेषण करने तक ही अपने को सीमित रख रहा हूँ।

उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल साहित्य में नव-जागरण हुआ, इसी समय बङ्गाल में सामाजिक विप्लव व राष्ट्रीय चेतना का उद्‌बोधन भी हुआ, साथ ही अंग्रेजी शिक्षा तथा साहित्य का प्रभाव बङ्गाल के साहित्य व जीवन पर पड़ा, इन सब के कारण वहाँ एक ऐसी प्रचंड शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने बङ्गला साहित्य के पुराने परिवेश को बदलकर उसे नया रूप तथा नयी ज्योति दी।

ईश्वरचन्द्र गुप्त आधुनिक बङ्गला-काव्य के जनक कहे जाते हैं। गुप्त जी अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त किये हुये व्यक्ति नहीं थे किन्तु वे आशु कवि थे, कविता रचना उनके स्वभाव का एक अंग था। जब वे केवल आठ वर्ष के बालक थे तभी से उन्होंने कविता रचना शुरू कर दी थी, उनकी कविता में अनुप्रास एवं यमक अलंकारों का प्राचुर्य है। हास्य तथा व्यंग भी उनकी कविता की विशेषतायें हैं,—यथा—

"प्रभाकर-कर करे प्रभाकर-कर करे,
प्रभाकर करेह कि भाव।"

इस पंक्ति में प्रत्येक शब्द के दो-दो अर्थ हैं, जैसे प्रभाकर का अर्थ सूर्य से भी है और प्रभाकर पत्रिका के सम्पादक ईश्वरचन्द्र गुप्त) से भी है। इसी प्रकार कर शब्द भी द्वि-अर्थी है, कर का अर्थ हाथ भी है और किरण भी।

किन्तु अंग्रेजी शिक्षा धीरे-धीरे जनता के हृदयों में परिवर्तन ले आई और इस परिवर्तन के परिणाम स्वरूप ईश्वरचन्द्र गुप्त की कविता नव-जागृत विद्वत्‌जन को संतुष्ट न कर सकी। अंग्रेजी शिक्षा ने एक विस्तृत क्षेत्र उनके सामने ला रखा। वे पाश्चात्य कविता से परिचित हो गये थे और अपने काव्य में भी वे वही गुण देखना चाहते थे। रंगलाल वनर्जी ऐसे कवियों में प्रथम हैं जो अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त लोगों की इच्छा की पूर्ति कर सके।

रंगलाल बाबू का जन्म १८२६ में हुआ, उनकी शिक्षा हुगली कालेज में हुई, वे अंग्रेज सरकार के अधीन डिप्टी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुये, उन दिनों डिप्टी मैजिस्ट्रेट का पद बहुत बड़ा माना जाता था, वे अंग्रेजी व बङ्गला दोनों भाषाओं में रचना कर सकते थे। उस समय टॉड (Todd) लिखित

पुस्तक Annals of Rajasthan बङ्गाल में बहुत लोकप्रिय थी। उसमें जो वीरत्व तथा देश प्रेम की कहानी भरी पड़ी है उससे बङ्गाल की कल्पना को बहुत प्रेरणा मिली, रंगलाल बाबू लिखित 'पद्मनीर उपाख्यान', ''कर्म-देवी' 'शूरसुन्दरी' और 'कञ्ची कावेरी' बङ्गला काव्य की एक सम्पत्ति है। इनका स्रोत टॉड की पुस्तक ही है, अंग्रेज सरकार की नौकरी में रहते हुये भी इन्होंने देश प्रेम की अद्‌भुत कवितायें लिखीं, ये रंगलाल बाबू ही थे, जिन्होंने देशवासियों का आह्वान किया और पुकारा—

स्वाधीनता हीनताय के बॉचिते चाय हे
के बॉचिते चाय।
दासत्व शृङ्खल बल के परिबे पाय हे
के परिबे पाय।
कोटिकल्प दास थाका नरकेर प्राय हे
नरकेर प्राय।
दिनेकेर स्वाधीनता स्वर्गसुख ताय हे
स्वर्गसुख ताय।

कि स्वाधीनता के बिना कोई जीना नहीं चाहता, दासत्व की जंजीर कोई भी पांवों में नहीं पहिनना चाहता, कोटिकल्प तक दासत्व स्वीकार करना नरक के समान है और एक दिन की स्वाधीनता स्वर्गिक सुख देती है।

इस समय के सबसे महान कवि थे, माइकेल मधुसूदन दत्त। इनका जीवन अत्यन्त दुःखपूर्ण था, ये रंगलाल बाबू से दो साल आयु में बड़े थे और केवल पचास वर्ष की आयु तक ही जीवित रहे, ऐश्वर्यशाली घर में इनका जन्म हुआ था। वे असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। कलकत्ता के हिन्दू स्कूल में पढ़ते समय ही वे अंग्रेजी में उत्कृष्ट कवितायें लिखा करते थे, उन्नीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और उनका नाम माइकेल मधुसूदन हो गया। यहीं से उनके जीवन का दुःख पूर्ण नाटक शुरू हुआ। उनका अपने घर परिवार व समाज से सम्बन्ध टूट गया। उन्होंने कुछ समय के लिये कलकत्ता छोड़ा और मद्रास में रहने लगे, उन्होंने एक योरोपीय महिला से विवाह किया जिसने बाद में इन्हें छोड़ दिया, मद्रास में रहते हुये उन्होंने Captive Lady केप्टिव लेडी नाम से एक पुस्तक लिखी जो बहुत प्रशंसित हुई किन्तु उनके किसी हितैषी मित्र ने उन्हें परामर्श दिया कि ख्याति प्राप्ति करने के लिये उन्हें अंग्रेजी के बदले अपनी मातृ-भाषा में रचनायें करनी चाहिये क्योंकि विदेशी भाषा में कभी ख्याति नहीं मिल सकती।

आठ साल बाद जब वे कलकत्ता लौट कर आये तो बङ्गला भाषा को लगभग भूल से गये थे किन्तु यह उनकी असाधारण प्रतिभा का प्रमाण है कि उन्होंने एक ही साल के भीतर एक उत्कृष्ट नाटक बङ्गला भाषा में लिखा। उनके द्वारा रचित नाटकों में ''धर्मिष्ठा'', ''पद्मावती'' और ''कृष्ण कुमारी'' प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कुछ प्रहसन भी लिखे।

परन्तु वे प्रमुखतः मेघनादवध' महाकाव्य के लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा उन्होंने ३ और काव्य भी लिखे है—'तिलोत्तमा संभव' 'व्रजांगना' और 'वीरांगना', लेकिन इनकी मेघनाद-वध से कोई तुलना नहीं हो सकती। माइकेल कधुसूदन दत्त की कल्पना मुक्त एवं उदार थी और भावधारा वैचित्र्य थी।

साथ ही उन्होंने एक नव-आविष्कार भी किया जिसे कहते हैं अमित्राक्षर छन्द (Blank Verse)। इस महाकाव्य का विषय गम्भीर था और उसको व्यक्त करने के लिये यह छन्द बहुत उपयुक्त रहा, इस नये छन्द से बङ्गला-काव्य का गौरव व भाषा की शक्ति बहुत बढ़ गई। इस काव्य की रचना में ये मिल्टन के Paradise Lost से बहुत प्रभावित हुये थे, वस्तुतः माइकेल को बङ्गला का मिल्टन कहा जाता है।

विदेशी साहित्य से माइकेल ने एक और दूसरी चीज का अपहरण किया—चतुर्दशपदी कविता (Sonnet), इस चतुर्दशपदी कविता की विशेषता यह है कि चौदह चरणों में एक भाव का सम्पूर्ण प्रकाशन हो जाता है।

माइकेल मधुसूदनदत्त इङ्गलैंड गये और बैरिस्ट्री की; जिसके द्वारा प्रचुर मात्रा में धन अर्जित किया किन्तु मृत्यु के समय कपर्दकहीन रहे, उनकी साध्वी पत्नी हेनरी एटा को भी उनके साथ दुःख वरण करना पड़ा।

देश माता के प्रति माइकेल मधुसूदन का अत्यन्त अनुराग था विदेश यात्रा के समय उनका देशमाता के प्रति कातर अनुरोध यह था—'रेखो माँ दासे रे मने ए मिनती करी पदे', (मेरी यह मिनती है कि माँ हमें भूलो मत)। देश-माता के प्रति यह अनुराग, भाषा की गम्भीरता, शैली की तेजस्विता आदि ऐसी विशेषतायें हैं जिन्होंने उन्हें अमर बना दिया।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने भी अपना साहित्यिक जीवन कविता से प्रारम्भ किया किन्तु यह अच्छा ही रहा कि (Lamb) की तरह उन्होंने कविता लिखना छोड़कर उपन्यास लिखना अपनाया, अन्यथा वे एक साधारण कोटि के कवि होते किन्तु उच्चकोटि के उपन्यासकार नहीं। ऐसा होते हुये भी हमें उनका आभारी रहना पड़ता है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'बन्दे मातरम्' के लिये, कोई भी ऐसा भारतवासी न होगा जिसका हृदय 'बन्देमातरम्' गीत सुनकर या गाकर तरंगित न हो, और रोमहर्षित न होता हो।

बंकिम बाबू के समकालीन हेमचन्द्र बनर्जी थे। ये हाईकोर्ट के वकील थे। इन्होंने बहुत अधिक पैसे का उपार्जन किया किन्तु वे बहुत ही दानी तथा अमितव्ययी भी थे, वृद्धावस्था में उन्हें निर्धनता एवं अन्य कष्टों से पीड़ित होना पड़ा, अपने जीवन की अन्तिम अवस्था में वे अन्धे भी हो गये थे।

इनका प्रधान काव्य 'वृत्र-संहार' था, वृत्रासुर के वध के लिये दधीचि का अस्थि-दान इस काव्य का विषय है, यह काव्य भी मुख्यतः अमित्राक्षर छन्द में रचित है और मधुसूदनदत्त का प्रभाव इस रूप में इन पर लक्षित होता है। परन्तु तुलना में मधुसूदनदत्त का काव्य 'मेघनादवध' इनके 'वृत्रासुर-संहार' से कहीं अधिक उत्कृष्ट है।

हेमबाबू इसलिये स्मरणीय हैं कि उन्होंने छोटी-छोटी कविताओं (Lyrics and Odes) में अपना काव्य लिखा, उनकी देशभावना मूलक कविताओं की और दूसरी कविताओं से तुलना ही नहीं की जा सकती, उनकी गाई हुई देश की पूर्व गौरव-गाथा को पढ़कर कौन मुग्ध न होगा।

उन्हें अतीत-गौरव गाथा गाते समय यही दुःख होता था कि शायद पुनः वे दिन न आ पायें क्योंकि भारत सो गया है—'भारत शुधुइ घुमाये रय।' भारतवासियों की दुर्दशा, जड़ता, उनका आलस्य और उनकी निष्चेष्टता उन्हें बहुत दुःख देती रही। इसलिए उन्होंने भैरव कंठ से चेतावनी दी—'बारेक एखनओ फिरे देखि बिना चाहिया?' क्यों एक बार आँख खोलकर अपना हाल अब भी नहीं देख सकते हो?

हेम बाबू की छोटी-छोटी कविताओं का छन्द एवं शब्द-चयन बहुत ही सुन्दर व मधुर है, उनकी कविता शैली साबलील है। वाराणसी के वर्णन में ये कहते हैं—'दुधारे बरुणा असि, वोइ काशी वाराणसी बिराजे गंगार कूले ध्वजा तूले अम्बरे।' जमनातीर पर एकान्त में बैठकर वे अपने हृदय का भार हल्का करते हुये जमुना-जल पर चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देखते हैं—'हेन काले एका आसि जमुनार तीरे बसि हेरी शशि दूले-दूले जले भासि जाय' उनके छन्द का हिलोल हृदय में भी उत्पन्न कर देता है। अंधे होते हुये भी भगवान के ऊपर उनका विश्वास दृढ़ व अटूट रहा, उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि वे दुखसुख को समान समझकर अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ते ही रहें—

> "एस भगवान कर धैर्य दान,
> कर शान्तिमय अशान्त प्रान,
> सौभाग्य अभाग्य भाविया समान
> निज कर्म जेन साधिते पारी।"

नवीनचन्द्र सेन हेम बाबू से अवस्था में नौ वर्ष छोटे थे, ये चट्टगाँव के निवासी थे, ये बी० ए० पास करके डिप्टी मजिस्ट्रेट बन गये थे और इसी समय से काव्य-रचना में संलग्न हो गये थे। उनका प्रसिद्ध काव्य है 'पलासीर युद्ध', इसमें क्लाइव और सिराजुद्दौला का युद्ध वर्णित है। उनकी भावना इस प्रकार देश-प्रेम मूलक थी कि उन्हें अंग्रेज सरकार के द्वारा कुछ तंग भी किया गया। इनका एक काव्य 'रंगमती' है जिसके अन्दर शिवाजी की बीर-भाव दृप्त उक्ति है—'बीरेन्द्र! दासत्व हुते दस्युत्व उत्तम।' यह काव्य देश प्रेम मूलक भाव से परिपूर्ण है।

उनका तीन अन्य प्रसिद्ध काव्य हैं, 'रैवतक', 'कुरुक्षेत्र' और 'प्रभास', रैवतक में कृष्ण-चरित्र का प्रथम भाग, कुरुक्षेत्र में महाभारत का महासमर और प्रभात में कृष्ण-चरित्र के शेन पहलू वर्णित है। इन तीनों में नवीन बाबू ने हिन्दू धर्म का एक नया रूप दिखाने का प्रयास किया। उन्होंने यह स्वप्न देखा था कि भारतवर्ष में एक धर्म, एक जाति एक राज्य, और एक नीति हो जिसका आधार सर्व-भूत हित हो, भारतवर्ष की साधना है निष्काम कर्म और महायज्ञ है स्वधर्म-साधना और यज्ञेश्वर हैं नारायण। इसलिये इन्होंने अपने-अपने कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने का उपदेश दिया है।

नवीन बाबू ने बुद्ध और ईसा की जीवन कथाओं को लेकर भी काव्य-रचना की।

इस समय एक और महान कवि का उदय हुआ जिनका नाम बिहारीलाल चक्रवर्ती था, रंगलाल से नवीन बाबू जो कवि हुये हैं उन सब ने देशवासियों के सामने एक महान आदर्श रखने के लिये काव्य-रचना की थी किन्तु बिहारी लाल की काव्य-रचना का लक्ष्य कुछ दूसरा ही था, इन्होंने मानव-मन को उपादान बनाकर अन्तर्लोक पर कवितायें लिखीं। इनको काव्य-प्रेरणा प्रकृति से प्राप्त हुई, इनके काव्य में प्रधान गुण सहानुभूति और गहन अन्तर्दृष्टि है। इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने सरल शब्दों द्वारा शब्द-चित्र प्रस्तुत कर दिये हैं। इनका प्रधान काव्य 'शारदा मंगल' है। इन्होंने हिमालय का अत्यन्त मनोरञ्जक वर्णन किया है—

> "असीम नीरद नय
> ओइ गिरि हिमालय
> उथुले उठेछे जेन अनन्त जलधि"

वह असीम मेघमाला नहीं है, वह हिमालय पर्वत जो देखने में प्रतीत होता है कि समुद्र उबलते-उबलते ठोस होकर खड़ा हो गया है।

बिहारी बाबू की शैली कान्त तथा भाव कोमल सुषुमा मंडित है, इनको बङ्गाल का शेली (Shelley) कहा जाता है। रंगलाल बाबू से बिहारी बाबू तक, ये पाँच कवि नव-जागरण (Renaissance के कवि कहे जाते हैं लेकिन केवल बिहारी बाबू का प्रभाव महाकवि रवीन्द्रनाथ पर पड़ा, रवीन्द्रनाथ को किशोरावस्था में बिहारी बाबू की कवितायें बहुत प्रिय थीं। प्रसंगतः यह भी कहा जा सकता है कि बिहारी बाबू के साथ महाकाव्य का युग ही बीत गया।

मराठी काव्य

•

डॉ० न० चि० जोगलेकर

प्राचीन मराठी काव्य प्रवृत्तियाँ

मराठी साहित्य का समग्र इतिहास इस लेख में प्रस्तुत करने का विचार नहीं है, मैं तो मराठी काव्य की पुरानी प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुये मराठी की प्राचीन काव्यधाराओं की विशेषताओं का अंकन करने का विचार इस लेख में करना चाहता हूं। अन्यत्र मैंने केशवसुत से लेकर अद्युनातन मराठी के काव्य साहित्य में मिलने वाली विविध प्रवृत्तियों का विवेचन प्रस्तुत किया है। उसी की कड़ी को जोड़ने वाला यह लेख होगा। प्राचीन मराठी काव्य संतों के साहित्य से, पंडितों के रसविदग्ध साहित्य से, तथा लोक साहित्य के रचयिताओं के वीर रसात्मक और शृंगार रसात्मक साहित्य से सम्पन्न है।

मध्ययुग के पूर्वकाल से ही मराठी भाषा का और महाराष्ट्र का उल्लेख कई संदर्भों में, ग्रन्थों में, शिला-लेखों में और ताम्र-पत्रों में होता रहा है। यहाँ पर उसकी चर्चा और छानबीन करने का उद्योग हमें नहीं करना है। करीब २ दसवीं से ग्यारहवीं शती पूर्व से ही मराठी भाषा के तौर पर महाराष्ट्र में लोक-भाषा बनकर प्रचलित होती रही है। यों मराठी का जन्यकाल नवीं शताब्दी माना जाता है।

मराठी की प्राचीन कविता ग्रांथिक रूप लेने से पहले भिन्न-भिन्न जानपद गीतों, स्त्री गीतों, कहानियों और अन्य सांस्कृतिक लोक गीतों के स्वरूप में मौखिक परम्परा से प्रसृत होती रही है। तेरहवीं शती से ग्रन्थ निष्पत्ति होने लगी। काव्य के छन्द ओपी और अभंग के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। इन्हें हम लोक साहित्य अर्थात् संत-साहित्य के 'लोक-छन्द' कह सकते हैं। बहुजन समाज के व्यावहारिक जीवन से सम्बद्ध और उनकी अनुभूतियों से सम्पन्न, शृंगार, करुण, वीर और हास्य रस के युक्त काव्य-साहित्य निर्माण होता रहा, ऐसा अनुमान किया जाता है।

प्राचीन साहित्य प्रायः काव्यमय है और आध्यात्मिक विचारों से सम्पन्न भी। ये विचार नाथ-सम्प्रदाय, महानुभाव-संप्रदाय, वारकरी-संप्रदाय, दत्त-संप्रदाय और समर्थ-संप्रदाय के द्वारा अनुप्राणित हुए। अध्यात्म के क्षेत्र में समता-बंधुत्व और परस्पर मैत्री भाव को मानवता के धरातल पर प्रतिष्ठित करने का कार्य मराठी प्राचीन कवियों के द्वारा हुआ, जो विशेष महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। तेरहवीं शती के पूर्व ही ग्रन्थ रचनाएँ होने लगी थीं। मुकुन्दराज कृत "विवेक सिंधु" मराठी का आदि ग्रन्थ मानने को कई विद्वानों की धारणा है। यह वेदान्त शास्त्र का ग्रन्थ है और अवैदिक मत प्रणाली का खण्डन करने की ओर नाथ संप्रदायी मुकुन्द राज की प्रवृत्ति दिखाई देती है। योगानुभवों के अधिकारी विद्वानों के लिए इसमें सामग्री विद्यमान है। यों सर्व साधारण लोगों के लिए सगुण भक्ति का साधन अच्छा है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं। 'विवेक सिंधु' को हम काव्य-ग्रंथ नहीं मान सकते। पर इससे उसकी लोकाभिमुखता में कोई कमी नहीं आती है। दर्शन-ग्रन्थ होते हुये उसकी यह विशेषता स्मरणीय है।

प्रथम उत्थानः—यादवकाल और महानुभाव पंथ के चक्रधर, नागदेवाचार्य – महदाईसा—नगेन्द्र आदि कवि।

यादव राजाओं का शासनकाल ऐश्वर्य सम्पन्न तथा समृद्धि का काल माना जाता रहा है। विद्या, कला और साँस्कृतिक

ऐश्वर्य की उन्नति इन राजाओं के युग में विशेष रूप से हुई है। महानुभाव पंथ के प्रवर्तक चक्रधर स्वयं महानुभाव के आदि ग्रन्थकार हैं। पर वे तो अपने अनुभवों पर आधारित नीति, तत्व और आचार धर्म का निरूपण करते थे। विशेषतः इनका वाङ्मय सूत्रमय है। सृष्टि जीव, देवता, और परमेश्वर से बिलकुल भिन्न है। सृष्टि-प्रपञ्च अनादि और अनन्त है। जीव, देवता, प्रपञ्च और परमेश्वर का ऐक्य कदापि संभव नहीं है। यही द्वैतवाद के द्वारा प्रतिपादित है। जीव को माया का बन्धन रहता है 'परित्यजोनि परमेश्वराशरण रिगावे'[1] इस सूत्र के अनुसार प्रपञ्चत्याग और सन्यास आचार धर्म में आवश्यक है। अहिंसा और सन्यास को ये प्रश्रय देते हैं। इनके मत से संन्यास स्त्री व पुरुषों को और चारों वर्णों को समान रूप से दिया जा सकता है। चक्रधर बतलाते हैं : - देवताओं की उपासना करने के बदले सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए। चक्रधर ने समता की भूमि पर शक्ति योग की स्थापना की।

नागदेवाचार्य ने जनभाषा के अभिमान और प्रेम से 'चक्रधर चरित्र', 'चक्रधर वचन-संग्रह' आदि ग्रन्थों का संकलन किया। महानुभावीय वाङ्मय में पूजनीय देवता चरित्र, सूत्र वाङ्मय तथा व्यक्ति माहात्म्य वर्णन संबंधी काव्य मिलते हैं। लोक भाषा में—मराठी में रचना करने का प्रोत्साहन नागदेवाचार्य ने महानुभाव सन्तों को दिया था। 'ओवी' छन्द में दामोदर पण्डित कृत वत्सहरण [वच्छहरण] नरेन्द्रकृत रुक्मिणी स्वयंवर, भास्कर भट्ट बोरीकर कृत 'शिशुपाल वध' तथा उद्धव गीता एकादश स्कंध भागवत टीका, खलोव्यासकृत 'सैंह्याद्री वर्णन तथा वाबा पूरकर कृत ज्ञान-प्रबोध तथा नारो पण्डित का महद्धिपुर वर्णन महानुभावीय भक्ति और ज्ञान के परिचायक ग्रन्थ हैं। इनमें वच्छहरण को छोड़कर सारे ग्रन्थ ज्ञानेश्वरोत्तर हैं। उपमा, रूपक दृष्टांत और युक्तियुक्त तर्क की शैली ज्ञानेश्वर का अनुकरण जैसी प्रतीत होती है। शिशुपालवध और रुकमिणी स्वयंवर में जलक्रीड़ा और विरह वर्णन के प्रसङ्गों में श्रृंगाररस अपने परिपूर्ण रूप में आ गया है। लीला चरित्र और श्री गोविंद प्रभू चरित्र महानुभावों के चरित्र ग्रन्थ हैं। महदंबा का 'धवले' नामक भाव कविता का ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। धवले—वरविषयक गीत जो धवला नामक मुक्त ओवी छन्द में रुक्मिणी कृष्ण के विवाहावसर पर गाने के लिए लिखे गए हैं। इसकी लेखिका मराठी की आद्य कवयित्री महदाइसा उर्फ महदंबा है। अत्यंत हृदयंगम और सहज भाव माधुर्यता से भरे हुए ये गीत कृष्ण रुक्मिणी विवाहोत्सव का सरस वर्णन साकार कर देते हैं।

नरेन्द्र कृत रुक्मिणी स्वयंवर सन् १२९२ में ओवियों में लिखा गया खण्ड-काव्य है। इसमें भक्ति भावना की अपेक्षा कला विलास ही अधिक देखने को मिलता है। नरेन्द्र ने यह कृष्ण-कथा इसलिए लिखी थी जिससे कि पाठकों को पढ़कर समाधान के साथ आनन्द प्राप्ति भी हो जाय। अपनी शैली में तथ्य प्रतिभा संपन्न प्रत्युत्पन्न मति से नरेन्द्र ने संगीत कला, स्थापत्य शास्त्र, प्रकृति वर्णन, श्रोताओं के साथ अनुनय कल्पना और भाव चित्रों का अपार वैभव इस काव्य में देखने के लिए मिलता है। एक वर्णन देखिए –[1]

कविता कामिनीचाधरुविहातु भावो दोन्ही आंगीं मलपतु।
चाले साहित्य सावरेया आंतु। रसु खेड कुलिये।

"नरेन्द्र के कथनानुसार यह कवि अपना काव्याशय और भाव लेकर कविता-कामिनी का हाथ पकड़कर रस रूपी नहर पर स्थिति साहित्य कुञ्ज में विहार करने निकला है।"

भास्कर भट्ट बोरीकर में प्रतिभा और प्रज्ञा का सामंजस्य दिखाई देता है। उनके काव्य में पाण्डित्य, रसिकता, वेदान्त, व्याकरण, साहित्य और श्रृंगार का अजीब मेल दिखाई पड़ता है। उद्धवगीता तात्विक अधिक है तो शिशुपाल वध में काव्यत्व की पराकाष्ठा है। कृष्ण रुक्मिणी का प्रेम-कलह, विरह व्यथा वर्णन तथा संयोगवर्णन कहीं-कहीं अश्लीलता की मर्यादा तक छू लेता है। परन्तु डा० कोलते के मतानुसार यह विरह-वर्णन भक्त और भगवान के मिलन की छटपटाहट को व्यक्त करने वाला श्रृंगार का विषय नहीं मान सकते। जो भी हो काव्य में सरसता है यह तो मानना ही पड़ेगा।

[1]—महानुभाव पंथ आचार सूत्र १६

[1] –नरेन्द्रकृत रुक्मिणी स्वयम्बर ओवी सं० ॥२६॥

कुल महानुभव वाङ्मय में अन्तःकरण की आर्द्रता, बुद्धि का विलास, कल्पना की उड़ानें, पाडित्य का उत्कर्ष, भावना की उत्कटता और भाषा की प्रौढ़ता और प्रसन्नता के दर्शन हो जाते हैं। पर एक बात निश्चित थी यह काव्य संपदा जन साधारण तक नहीं पहुंच सकी। यह गौरव तो हम वारकरी सम्प्रदाय के सन्त कवियों को ही प्रदान कर सकेंगे।

वारकरी संप्रदाय का काव्य और उसके कवि

ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और निकोबा ये वारकरी सम्प्रदाय के अल्पयु कवि और प्रतिभा संपन्न प्रभु सन्त साहित्यकार माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त जनाबाई, मुक्ताबाई, वेणाबाई, कान्होपात्रा, सोपानदेव, निवृतिनाथ, चोरवामेठा आदि संत कवि भी हैं। समर्थ संप्रदाय के संत रामदास भी प्रसिद्ध संत कवियों में सिरमौर हैं। ज्ञानेश्वर के ज्ञानेश्वरी, भावार्थ दीपिका, अमृतानुभव और अभंग मराठी काव्य साहित्य की चोखी और अनोखी चीजें हैं। नाथ पंथी अद्वैत शैवमत, शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्तमत तथा काश्मीर शैवमत का प्रभाव ज्ञानेश्वर पर पड़ा था परन्तु उनका स्वतन्त्र चित्स्फूर्तिवाद और हरिहरात्मैं-कथानुभव वारकरी सम्प्रदाय के साहित्य की अपनी विशेषताएँ भी हैं। देशी भाषा का अलंकार ही जिसे मान सकते हैं, ऐसी भावार्थ दीपिका नामक ग्रंथ ज्ञानेश्वर ने लिखा। सन् १२९० में कुल नौ हजार ओवियों में गीता के ७०० श्लोकों का आशय काव्यरसयुक्त अमृतोपम वाणी में सुरस शैली में अभिव्यक्त कर दिया है। आबाल वृद्ध नरनारियों के लिए उन्होंने इसके द्वारा ब्रह्मज्ञान की आध्यात्मिक विद्या का भाण्डार ही मानों युक्त कर दिया है। इस युग की अन्य सब भाषाओं के साहित्य में अद्वितीय और लोकोत्तर कोटि का यह ग्रंथ माना जावेगा। इसमें तत्वचर्चा की दृष्टि से मौलिकता है और प्रतिभा की दृष्टि से अपूर्वता है। अध्यात्म, काव्य और भक्ति का त्रिवेणी संगम ज्ञानेश्वरी में होने से इसे तीर्थराज प्रयाग की उपमा ही देना सार्थक होगा। वे कहते हैं :—जरी एकले अवधान दीजे। तरी सर्व सुखा सी पात्र होई जे। हे प्रतिज्ञोत्तर माझे। उघड आई का॥ गीता की केवल टीका या व्याख्या या अनुवाद यही मात्र उनका लक्ष्य नहीं था। इतनी कम उ में इतनी प्रखर और भास्वर प्रतिभा का उन्मेष ज्ञानेश्व में जगा था कि भाव को दीपित करने वाली इनकी उपमा दृष्टान्त, व्यास की स्तुति, गुरु कृपा की महिमा, मरा भाषा की श्रेष्ठता, श्रोताओं का अनुनय, कृष्णार्जुन प्रेम, भक्ति जैसे विषयों का बखान तथा गीता का गौ करते हुए वे तल्लीन हो जाते हैं—अघाते नहीं है। उन यह दावा है कि अवधानपूर्वक ज्ञानेश्वरी का पठन रस ग्रह करने वाला अलौकिक सुख को अर्थात् ब्रह्मानुभूति को सि कर लेगा। इस कथन में कहीं भी दर्प वा अहं भावना न है। पूरे विश्वास और आत्मीयता से लेखक कहता है कि- माझा मराठाचि बोलु कवनिले। परी अमृतातें ही पै जिले।......

लोकु वाक्यातुर्ये। सुखिया होई। मेरी यह मराठी भाषा बोली पैज पूर्वक अमृत की मिठास मात करने वाली है। कथन में कहीं भी अतिशयोक्ति नहीं है इतना जबर आकर्षण और मिठास 'ज्ञानेश्वरी' की मराठी भाषा पाई जाती है। इसके पढ़ने से जन-जन में वाक्यातुर्य जावेगा और वह सुख का अधिकार संपन्न पात्र बन जावेग सुख का अभिप्राय इन्द्रियातीत सुख अर्थात् ब्रह्मानुभूति है। श्रोताओं का मानसशास्त्र जानने वाले उनके मानस पकड़ अपनी प्रतिभा से आकृष्ट कर अपनी रसीली वाणी पूरी भावार्थ दीपिका जब वे सुनाने लगते हैं तो वे श्र और वक्ता दोनों धन्य हो जाते हैं। ऐसी अद्भुत भव्य दिव्य कोटि की शैली ज्ञानेश्वर की है। स्वतन्त्र ग्रन्थ का अदम्य और अटूट विश्वास ज्ञानेश्वर में विद्यमान ज्ञानेश्वरी में शांत, भक्ति और वात्सल्य रस की त्रि है। उनका शांत रस शृंगार के मस्तक पर पैर रख उसे नीचे ढकेलने वाला है। केवल श्रवण से मोक्ष प्र करा देने वाला अद्भुत ग्रन्थ ज्ञानेश्वर ने निर्माण कर दि है। आकाश सूर्य और सागर जैसे भव्य और उदात्त वस् की उपमाएँ और दृष्टान्तों की भरमार यह सिद्ध कर देती कि ग्रंथकर्त्ता में उदात्तता ओत प्रोत भरी हुई है। अत सुकोमल, धीरोदात्र और कारुण्य पूर्ण व्यक्तित्व ज्ञाने का होने से इन्ही महत् गुणों से युक्त भगवान श्रीकृष्ण हृदयस्थ भावों से समरस होकर ज्ञानेश्वर अपनी भाव

दीपिका सुसंपन्न और रस भीनी शैली में अभिव्यंजित करते हैं। इसमें उनका लक्ष्य श्रोताओं के प्रति अन्तःकरण का सद्भाव और सदाशय ही है जो उनके उद्धार की चिन्ता में अभिव्यक्त होते हैं। काव्य और भावाविष्कार करने वाला यह रस सिद्ध कवीश्वर ज्ञानेश्वर अनुपम है—बेजोड़ है।

यच्चपावन चराचर सृष्टि, लौकिक आचार, सामाजिक संकेत और प्रचलित विश्वासों का ज्ञानश्वरी में दृष्टान्तों के रूप में ज्ञानेश्वर ने ऐसा बढ़िया प्रयोग किया है कि देखते ही बनता है। कहना न होगा कि ज्ञानेश्वर ने यादव कालीन सामाजिक परिस्थिति को इनके द्वारा प्रतिबिम्बित कर दिया है। 'अमृतानुभा' तो उच्चकोटि के पारमार्थिक अनुभवों का तथा चिद्विलासवाद तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन करने वाला सद् ग्रंथ है। जीव जगत् और परमात्मा सब कुछ एक वस्तु हैं और वह ज्ञानरूप है। स्वयंसिद्ध और प्रकट आत्म वस्तु का दर्शन ज्ञानेश्वर संसार को प्रदान करते हैं।

चांगदेवपासष्टी में योग विद्या और आत्म विद्या में आत्म विद्या श्रेष्ठ है—यही प्रतिपादन है। चांगदेव जैसे हठ योगी को एक ज्ञान योगी—ज्ञानेश्वर ने आध्यात्म बोधन करवाया है। इसके अतिरिक्त ज्ञानेश्वर के ७६४ स्फुट अभंग प्रसिद्ध हैं। बालकृष्ण लीला विषयक तथा ईश्वर निष्ठा, नाम भक्ति और अद्वैत बोध एवं सदाचार के विषयों पर लिखे गये अभंग है। सारे महाराष्ट्र में ब्रह्मविद्या का सुकाल ज्ञानेश्वर ने उत्पन्न किया। यहाँ पर समग्र ज्ञानेश्वर वाङ्मय का मूल्यांकन करने का स्थल और अवसर नहीं है।

नामदेव तो भक्तराज थे। अतः हरिनाम का उत्कट स्वरूप कथन करने वाले और सामान्य एवं जन साधारण के लिए एक सामान्य असामान्य कैसे बन जाता है इसका एक अत्युत्तम ज्वलन्त उदाहरण वे अपने निजी चरित्र से प्रस्तुत कर देते हैं। नामदेव की भक्ति को अद्वैत ज्ञान का अधिष्ठान प्रथम नहीं था वह उनके गुरु विसोबा खेचर से उन्हें प्राप्त हुआ। इससे उनकी भक्ति को ज्ञान का संयोग प्राप्त हो गया। नामदेव ने इसी अद्वैत परक भक्ति का प्रचार किया और पंढरपूर से पंजाब तक नाम भक्ति का और निर्गुण मत का हिन्दी में अर्थात व्रज भाषा में रचनाकर प्रतिपादन किया। इसीसे कबीर और मीरा ने नामदेव का नाम श्रद्धा के साथ स्मरण किया।

नामदेव की काव्य रचना सारी की सारी अभंग और पदों में संकीर्तन पद्धति और नाम स्मरण के लिए रची गयी है। यह सारा आत्मनिष्ठ, आत्मलक्षी और भगवद प्रेम तथा नाम भक्ति का श्रेष्ठत्व प्रति पादन करने वाला काव्य है। उन्होंने एक स्थान पर कहा है—

"नाचू कीर्तनाचे रंगी।
ज्ञान दीप लावूँ जगीं॥"

— नामदेव अभंग माथा

संकीर्तन करते हुए नाम-स्मरण के साथ भक्ति की गरिमा प्राप्त करना और ज्ञान के दीपक प्रज्वलित कर अज्ञान खण्डन और ब्रह्मानुभूति कर लेना ही संत नामदेव का चरम लक्ष्य था और अंत तक वे इसका पालन भी करते रहे। ज्ञानोत्तर भक्ति का भक्तिमार्ग सबको उन्होंने उपलब्ध करा दिया। ज्ञानेश्वर उनके बड़े भाई गुरु निवृत्तिनाथ अनुज सोपान और बहन मुक्ताबाई के चरित्र अभंगों में रचने वाले नामदेव मराठी के आद्य चरित्रकार ठहरते हैं। इसमें प्रत्यक्षावलोकन था अतः उसका ऐतिहासिक महत्व भी है। नामदेव ने अपना आत्म-चरित्र भी स्वयं दिया है। उनके अभंगों में आर्तभक्त की गुहार, आत्म-निवेदन, प्रेम-कलह भक्त-भगवान प्रेम सम्बन्ध और प्रीति की उत्कटता विद्यमान है। आत्म-समर्पण करने की अतीव अभिलाषा असीम रूप में व्यक्त होती है। करुणा, वात्सल्य, औदास्य, औत्सुक्य आदि भावनाएँ अपने उपास्य विट्ठल के साथ अनुभव की हैं। कल्पना की उच्चता नामदेव के काव्य में नहीं है, परन्तु भावजीवन के उतार-चढ़ाव और हृदय पक्ष की प्रांजलता, प्रेम भक्ति की मधुरता, भावों की आर्द्रता और गहराई विद्यमान है। अपने आत्मलक्षी भावपूर्ण काव्य में अर्थात् अभंगों में आत्मसमर्पण की अनुताप की आत्मोन्नति की चिंता लगी हुई है ऐसे साधक की स्थितियाँ सामने आती हैं। विट्ठल के साथ जो संवाद इत्यादि किये हैं उनकी भावानुभूतियों की अभिव्यंजना तथा भक्ति मार्ग की विविध अवस्थाओं की घटाएँ इनके काव्य की परिसीमाएँ हैं।

नाम संकीर्तन का नाद माधुर्य, भाव विभोरता सगुण भक्ति और निर्गुणी ज्ञानोत्तर भक्ति का अपूर्व संगम हमें नामदेव की भक्तिरसोत्पुट कविता में मिल जाता है ।

नामदेव के साथ एक परंपरा मराठी संतों की है जिनमें सभी जाति के, वर्ण के और स्त्री, शूद्र आदि सभी हैं : इनमें नामदेव की दासी जना बाई, गोरा कुम्भकार, सांवना माली नरहरि स्वर्णकार आदि ने एक ही भक्ति भावना से सराबोर होकर अभंग बानियाँ लिखी हैं । आत्म काम बने हुए इन सन्तों की वाणियों का स्तर एक अपूर्व प्रेम-भक्ति के उन्माद से श्रेष्ठ कोटि का बन गया है । इनकी ये काव्यानुभूतियाँ आध्यात्मिकता से सम्पन्न होकर भी अपने अपने सामाजिक योग्यता के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं । निवृत्तिनाथ के अभंग योगानुभव, बालकृष्ण भक्ति, अद्वैत बोध आदि को लेकर है । सोपान देव के अभंगों में भी नाम-भक्ति का उद्घोष होता है । सगुण भक्ति और अद्वैत बोध इन दोनों में निपुणता प्राप्त कर योग साधना में भी तत्परता रखने वाली मुक्ताबाई के अभंग भी सरस और सुरस बन पड़े हैं । एक स्त्री होने के नाते अन्तःकरण की मृदुता मुक्ताबाई के काव्य में पाई जाती है । कूट रचना करने में भी मुक्ताबाई किसी से कम नहीं है । ज्ञानेश्वर को भी कार्य तत्पर बनाने वाली मुक्ताबाई की योग्यता बहुत ही श्रेष्ठ दर्जे की है ।

तापी तीर निवासी चांगदेव बटेश्वर बहुत दीर्घायुषी और महान् योगी थे । अपने योगानुभव का इन्हें बड़ा घमंड था । पर ज्ञानेश्वर ने अपनी 'चांग देव पासष्टी' में इनके अहंकार का भंजन किया । 'तत्यसार' नाम का ग्रंथ चांगदेव ने लिखा है । इनके अभंगों में अद्वैतानुभूति की सुन्दर अभिव्यंजना मिलती है । निगुरे नामदेव का गर्व एवम् अहंकार हरण करने वाले गोरोबा कुम्हार का काव्य भी आध्यात्मिक भाव-प्रवणता से सुसंपन्न है । उनकी काव्य संपत्ति ज्ञानाश्रयी भक्ति का प्रतिपादन करने वाली है । वे कहते हैं :— 'न लिपेची कर्मी न लिंपेची धर्मी ।' मैं धर्म-कर्म आदि किसी में भी लिप्त नहीं होता हूँ । रस सिन्द्रता की कमी होने पर भी गोरोबा की काव्य-कल्पना आध्यात्मिक अनुभूति का श्रेष्ठत्व लिये हुए है ।

नामदेव के गुरु विसोबा खेचर की योग्यता संत मंडली में बहुत ऊंचे स्तर की है । ज्ञानमय भक्ति परक अभंग रचनाएँ विसोबा ने की हैं । पर इनकी काव्य रचना कूटों से भरी हुई है । ज्ञानेश्वरी का प्रभाव भी इनकी काव्य वाणी में परिलक्षित हो जाता है । हरिसेवा-रत, गृहस्थी का उत्तर-दायित्व निभाते हुए ज्ञानी और भक्त की कोटि में साँवता माली को रखा जाता है । शान्ति, समाधान और प्रेम सांवता के अभंगों के गुण विशेष बतलाये जाते हैं । यों तो शत कोटि अभंग रचने की प्रतिज्ञा करने वाले नामदेव-परिवार के लोग अर्थात् नामदेव के पिता दामाशेट, माता गोणाई, पत्नी रानाई आदि सभी अभंग रचे हैं । दासी जनाबाई के अभंग सख्य भक्ति का प्रतिपादन करने वाले उत्कृष्ट अभंग हैं । मीरा के साथ इनका काव्य तुलनीय हो सकता है । हिन्दी में निर्गुण भक्ति का ज्ञानाश्रयी रूप में प्रतिपादन करने वाले नामदेव ही प्रथम कवि माने जाने चाहिए । जनाबाई के काव्य पर ज्ञानेश्वर और नामदेव इन दोनों का व्यापक प्रभाव पड़ा है । सगुण-प्रीति, योगानुभूति और अद्वैत बोध भक्ति की माधुरी से युक्त होने के कारण मराठी स्त्री कवयित्रियों में संत जनाबाई का स्थान अन्यतम है । भावों की गहराई इनके काव्य में अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है । एक उदाहरण दृष्टव्य है—[1]

जोडी जोडिली शिवाची ।
भ्रांति फिटली मनाची ॥
आनंदासी आनंद झाला ।
बोधें बोधचि भेटला ॥

● ● ●

ऐसी विश्रांति साधली ।
आनंद कद्दा संचरली ॥
त्या ऐक्यीं एक होतां ।
दासी जनी कैची आतां ॥

आत्मा और परमात्मा की जोड़ी जम गई है । अतः परस्पर उन्होंने एक दूसरे को पहिचान लिया है । अतः भ्रान्ति का निर्मूलन हो गया और दोनों को आनन्द ही आनन्द

[1]— जनाबाई अभंग सकल संतगाथा)

उपलब्ध हो गया। तात्पर्य यह है कि भगवान का बोध ही बोध से मिल गया है। ज्ञाता और ज्ञेय ज्ञानमय-अद्वैतसंपन्न बन गए। अतः अब चिर रूप से ऐसी शान्ति और सहज स्थिति संप्राप्त हो गई कि सर्वत्र आनन्द की कला संचार करने लगी। इस प्रकार की अद्वैतमय एकान्तिक एकात्मता की अनुभूति हो जाने पर जनी दासी का अपना निजी स्वतंत्र व्यक्तित्व कहाँ शेष रह गया है? अर्थात् वह स्थिति तो अब बची ही नहीं है। विट्ठल उसकी पुकार पर दौड़ आते हैं। वह विट्ठल के साथ झगड़ती है उसको खरा खोटा भी सुनाती है। सख्य भक्ति का इतना भावोत्कट काव्य मिलना अन्यत्र दुष्कर है। स्वानुभव और स्वात्मानुभव से संपन्न काव्य चोखोबा का है समता का व्यवहार भक्ति के क्षेत्र में पाकर नाम भक्ति का सुन्दर प्रतिपादन चोखोबा ने अपने अभंगों में किया है। निर्गुण में सगुण और सगुण में निर्गुण हैं। वास्तव में दोनों एक ही स्थान पर हैं ऐसा चोखोबा का आत्मानुभव है। भेद-भेदातीत द्वंद्वातीत अवस्था में निकली हुई चोखोबा की अभंग बानी सरस है। भक्त-हृदय की करुणा और आर्तता रसोद्रेकता के साथ चोखोबा के काव्य में अभिव्यक्त हो उठी है। महाराष्ट्र में लोक जागृति का और आध्यात्मिक प्रबोधन का कार्य इन संत कवियों ने किया है। मराठी काव्य प्रवृत्तियों का यह आदि काल माना जावेगा। यह वाङ्मय लोक-छंद, लोक भाषा और लोक-धर्म को लेकर प्रकट हुआ है प्रसन्नता, ताजगी, अभिनवता, कोमलता और माधुर्य ये गुण अब तक के विवेचित कवियों के काव्य में विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। आत्मिक और मानसिक उन्नति अवश्य इसके द्वारा हुई है ऐसा विद्वानों का अभिमत है हम भी उससे सहमत हैं। महानुभाव की अपेक्षा वारकरी संप्रदाय का कार्य जनमन के कोने-कोने तक पहुंचा और उसने जन-मानस मंथन कर भक्ति का नवनीत सामने लाकर रखा। यह कम गौरव की बात नहीं है। गृहस्थी को सम्हालकर पारमार्थिक उन्नति की जा सकती है इसे स्वानुभूत सत्य और तथ्य के आधार पर इन बारबरी संतों ने अपने अभंगों में सिद्ध कर दिया है। इसका परिणाम आत्मिक उन्नति के साथ सामाजिक उन्नपन में फलीभूत हुआ।

कुछ फुटकर कवि

सत्यामलनाथ ने 'सिद्धान्त रहस्य' ग्रन्थ में नाथपंथीय तत्वज्ञान और ज्ञानेश्वर चरित्र लिखा है। बहिरा पिसा जातवेद ने दशम स्कंध पर भागवत टीका लिखी। चोंभा नाम के कवि ने सन् १३७८ में 'दुखा-हरण' नामक आख्यानक काव्य लिखा। नाभा पाठक का अश्वमेध, त्रिमलदास का पंचोपाख्यान प्रसिद्ध है। सेना बाई की अभंग रचना भाषा और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य लिये हुए है। कान्होपात्रा के २३ अभंग ही मिलते है पर वे भी प्रसिद्ध हैं। सन् १४४५-१५७३ तक संत भानुदास थे इन्होंने भी अभंग रचनाएँ की हैं। ये संत एकनाथ के प्रपितामह थे। सन् १४९१ से १६१४ तक दासोपंत का काल माना जाता है। इनके लिखे तीन प्रचण्ड ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। 'गीतार्णव' सवालाख ओवियों का ग्रंथ है। गीतार्थ बोध चंद्रिका ८८८९ ओवियों में रचागया है। और ग्रंथ राज १२०० ओवियों का ग्रंथ है। गीतार्णव से बड़ा कोई ग्रंथ मराठी में नहीं मिलता। ये प्रगाढ़ विद्वान और भाषा प्रभु थे। अनुभूति की प्रामाणिकता और सूक्ष्म निरीक्षण दासोपंत के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। गीतार्णव जैसा प्रचण्ड ग्रंथ लिखने के बाद पुनः गीतार्थबोध चंद्रिका लिखी है। इन दोनों में निष्काम कर्म योग का प्रतिपादन है। ग्रंथराज रामदास के दास बोध के साथ तुलनीय है। वेदान्त शास्त्र की सामान्य बातों का इसमें विवेचन है। पदार्णव में अभंग और पद रचे हुए मिलते हैं। दजभक्ति का प्रेम इन अभंगों में प्रतिपादित है। इसके बाद सर्वश्रेष्ठ संत एकनाथ महाराज की काव्य कृतियों ने मराठी काव्य क्षेत्र को विभूषित किया है। एकनाथ ने अभंग कई विषयों पर स्फुट रूप में लिखे, जिनकी संख्या करीब-करीब ७५०० है। साठ हजार से अधिक ओवियाँ उनके ग्रंथों में मिलती हैं। स्वात्मसुख, आनन्द लहरी शुकाष्टक, चतुःश्लोकी भागवत एकादशस्कंध की टीका अर्थात् एकनाथी भागवत रुक्मिणी स्वयंबर, भावार्थ रामायण, हस्तामलक आदि रचनाएँ हैं। काशी नगरी में २० हजार ओवियों में रचित एकनाथी भागवत का निर्माण हुआ। एकनाथ के गुरु जनार्दन स्वामी दत्त संप्रदायके थे। किन्तु उन्हों ने एकनाथ को ज्ञानेश्वर के बराबर संप्रदाय

और प्रतिष्ठान की वैदिक परंपरा का समन्वय करने वाले भागवत धर्म की दीक्षा दी। प्रेम, सौजन्य और शान्ति की सम्मीलित मूर्ति रूप में संत एकनाथ हमारे सामने आते हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति कर्मठता और शब्द पाण्डित्य, आत्मानुभव और व्यक्ति विकास आदि बातों के द्वंद्व को नष्ट करने में एकनाथ ने अपूर्व यश संपादन किया। वारकरी संप्रदाय के तत्वज्ञान के सिद्धान्तों की ज्वलंत प्रतिमा एकनाथ के चरित्र और व्यक्तित्व में साकार हो गई है। एकनाथी भागवत एक तरह से ज्ञानेश्वरी के सत्वज्ञान पर लिखा गया भाष्या ही समझा जायगा। कर्माकर्म, योग, ज्ञान और भक्ति इन सब बातों का मर्म भक्ति सुख का प्रतिपादन करते हुए एकनाथ ने उसे सिद्ध कर दिया है। विश्व को भक्ति के लिए उन्मुख करने की दृष्टि से उद्धव गीता का कथानक एकनाथ ने चुनकर भागवत धर्म को सुदृढ़ बनाने का कार्य ही मानों सिद्ध कर लिया था। रुक्मिणी स्वयंवर नामक आख्यानक काव्य में अध्यात्मा, काव्य, भक्ति भाव और विनोद इन सब का सम्यक समन्वय कर दिया है। परमात्मा का विच्छक्ति के साथ संयोग और जीवात्मा परमात्मा की एकता अर्थात् कृष्ण-रुक्मिणी विवाह ही इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। कहीं-कहीं वह अधिक बुद्धि प्रधान भी बन गया है। 'भावार्थ-रामायण में साधक को राम प्राप्ति हो जाय इसलिए उसे गुण रहित निःस्त्रैगुण्य वृत्ति को अपनाना चाहिए, तथा गुरु सेवा, सत्संग, हरि कीर्तन नाम स्मरण आदि भागवत धर्म के साधन भी अपनाने चाहिए, आदि बातों का प्रतिपादन है। रामचरित्र का रहस्य देवताओं के बंध मोचन में है। त्याग, तपस्या, प्रभुत्व, पराक्रम, स्वामिनिष्ठा और धर्म निष्ठा आदि अलौकिक गुणों की पहचान महाराष्ट्र को एकनाथ ने इस पुस्तक से करा दी। भारुडों में एकनाथ ने भिन्न भिन्न प्रचलित लोक रीतियों और सांस्कृतिक बातों को लेकर गेय लोक साहित्य का सर्जन किया है। पद, अभंग और गवकरण नाम की रचनाओं में उपास्य के प्रति एकनिष्ट प्रेम और सबके प्रति भगवद् भाव एकनाथ ने अभिव्यक्त कर दिया है। शांत, भक्ति और वात्सल्य के साथ साथ श्रृंगार, वीर, करुण रहस्य आदि लौकिक रसों का भी समावेश एकनाथ ने अपने साहित्य में कर दिया है।

विष्णुदास नाभा ने महाभारत लिखा तथा अभंग भी लिखे 'बुध बावणी' नामक एक और अलग ग्रंथ भी उसने लिखा इसके बाद कई फुटकर कवि हुए हैं जो अनुल्लेख्य हैं केवल कृष्णदास मुदरालका रामायण युद्ध काण्ड प्रसि है। फादर स्टीफेन्स का ख्रीस्ट पुराण, मुक्तेश्वर का मह भारत, वृजबद्ध संक्षेप रामायण आदि के कारण विशे प्रसिद्ध हैं। प्रकृति सौन्दर्य वर्णन मुक्तेश्वर की अप विशेषता है। रस सिद्धता पूर्ण अभिव्यक्ति, विशाल औ उच्च कल्पना, उत्कट भावना, उदात्त विचार धारा, सुसंब चित्रण बोलते हुए शब्द चित्र के कारण एक श्रेष्ठ साहि कार के नाते मुक्तेश्वर अमर हैं।

तुकाराम ने तो भागवती भक्ति के मन्दिर को शिखर त पहुंचा दिया है। तुकाराम की कविता सामाजिक अधिष्ठ पर आधारित है। ऊँचनीच भाव, परम्परागत नीतिमूल शील, सदाचार आदि पर तुकाराम ने अपनी प्रखर टी टिप्पणी की है तथा अपना अभिप्राय भी व्यक्त किया है विधायक और विध्वंसक दोनों प्रकार की विशेषताएँ तु राम में मिलती हैं। असत्पक्ष का भंजन और सत्पक्ष स्थापन वे करते हैं। नैतिकता का—सदाचार का मह तुकाराम जानते थे, इसलिए वे अपनी अभंगवाणी में उस प्रतिपादन करते हैं। नामदेव से कवित्व स्फूर्ति लेकर तु राम अभंग रचना करते रहे, अन्तर्मुख बनकर अपने जी की टोह लेते रहे और अन्त में पूर्ण रूप से साधक से सि भक्त बन गए। उनकी आत्मनिष्ठ और स्वयं स्फूर्त अ रचना ऐसी है जिसमें साधक के अन्तर्जीवन का प्रतिबि अलंकार है। उनकी कवित्व आर्तता, सगुण भक्ति, उत्कण कारुण्य इन भावों के साथ विनम्रता, प्रसाद और मा आदि गुणों से भरी हुई है। आत्मोद्धार और जगतोद्धार चिन्ता उन्हें बराबर लगी सी प्रतीत होती है। भावना गहराई और सुकुमारता, काल्पनिता व वास्तविकता से सं तुकाराम की वाणी है।

शिवकालीन प्रवृतियों से और आशा आकांक्षाओं से और समरस बने हुए रामदास एक मात्र प्रसिद्ध कवि संत हैं। प्रथम और द्वितीय उत्थान में अर्थात् सन्तो काव्य में काव्य के सारे गुण धर्म सामने आए तो इस तृ

काल खण्ड में काव्य साहित्य पाण्डित्य पूर्ण और गद्य साहित्य के गुण धर्मों को प्रकट करने वाला है। उसमें ओज, बल और उर्जस्वलता है। इसलिए रचनाओं के विषयों के साथ वैविध्य भी प्रकट होता गया है। अध्यात्म प्रधान और भक्ति परक रचनाओं के विषय के साथ-साथ लौकिक रस और लौकिक भाषा तथा लोक साहित्य को भी प्रश्रय मिलने लगा। आत्मप्रधान काव्य शैली से युगानुकूल तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक वातावरण, उस समय की परिस्थिति, प्रणय-प्रसंग आदि कई वर्ण्य विषय काव्यान्तर्गत आगए हैं। इस तृतीय उत्थान में वीर रस को भी प्रश्रय मिला है। मार्मिकता के साथ मौलिकता, सामर्थ्य, के साथ सौंदर्य उद्बोधन के साथ आनन्द तथा भावना के प्रकटीकरण में दृढ़ता-कल्पना विलास का बाहुल्य शब्द-पांडित्य की प्रकर्ष रूपवाली ओजस्विता और ममत्व उसमें प्रतीत होता है। रामदास, वामन पण्डित तथा शाहीर वाङ्मय निर्माण करने वाले कवि और आख्यानक कवियों का युग ही हम इसे मान सकते हैं। रामदास की कविता में वर्णित "अस्मानी सुलतानी" और पर चक्र निरूपण जैसे युगीन देश स्थितों की परिपूर्ण जानकारी प्राप्त थी। "आनन्दवनभुवन", नामक प्रकरण में प्रकट की गई स्वराज्याकाँक्षा, 'रामवरदायिनी' माता का आशीर्वाद शिवाजी के उत्कर्ष के लिए उन्होंने माँगा है। सावधानता, दक्षता, जागरूकता और भगवान् में अटूट विश्वास रामदास की कविता के उल्लेखनीय अंग हैं। १२ वर्षों तक अध्ययन, पुरश्चरण और तपश्चरण कर यह साधक सिद्ध बने। तब १२ वर्षों तक देश का पर्यटन करते रहे तब समूचे देश की परिस्थिति का सम्पूर्ण निरीक्षण कर अपने स्वधर्म और स्वकर्तव्य के प्रति विशेष सजग हुये। धनुर्धारी रामचन्द्र और बलोपास्य हनुमान जी की उपासना बड़े जोर शोर से उन्होंने प्रसारित की, अपनी रामोपासना और हनुमानजी की बलोपासना से व्यष्टि और समष्टि को उन्होंने जागृत किया। उनके काव्य का लक्ष्य और सन्देश आस्तिकता, सदाचरण, स्वाध्याय स्वधर्मपरायणता और दीनोद्धार है। प्रयत्न को ही परमेश्वर मानने वाले तथा मन को "सज्जन" कहकर सम्बोधन करने वाले अपूर्व सिद्ध समर्थ रामदास के काव्य में समर्थत्व है। सामर्थ्य, चतुरस्रता विवेक, चातुर्य, लोक संग्रह अन्याय का प्रतिकार आदि समाजोपयोगी गुणों का सन्देश उनके काव्य में सर्वत्र मिलता है। उनकी भक्ति आत्मकल्याण और लोककल्याण साधने वाली सेव्य सेवक भाव की विनय से परिपूर्ण भक्ति है। करुणाष्टकों में तथा अपने पदों और अभंगों में समर्थ रामदास ने प्रसाद, ओज, माधुर्य, शब्द लालित्य तथा ध्वन्यात्मकता के कई चित्र प्रस्तुत किए हैं। संगीत शास्त्र के तो समर्थ रामदास प्रभु हैं। भावना का प्रकटीकरण आर्द्रता से परिपूर्ण है केवल भाषा पथरीली और उर्जस्वल है। व्याकरण की शुद्धता पर समर्थ का ध्यान नहीं है, मार्मिकता पर अधिक है। मनोबोध, दासबोध युद्धकाण्ड और सुन्दर काण्ड रामायण, समर्थ-गाथा ही उनके ग्रंथ हैं। इस छोटे से लेख में समर्थ वाङ्मय की समर्थ शैली का पूरा निरूपण प्रायः असंभव सा ही है। समर्थ-साहित्य गम्भीर वाणी का उद्घोष है। भावनोद्रेक के साथ विचार और अर्थ का गांभीर्य प्रमुख रूप से है। कबीर की अटपटी भाषा की तरह रामदास की भाषा भी अटपटी पर ओजस्वी है। रामदास शिष्य परम्परा में भी कुछ कवयित्रियाँ और सन्त लेखक हुये हैं जिनमें वेणाबाई, गिरिधर और आत्माराम महाराज एकेहालीकर प्रसिद्ध हैं! समर्थ प्रताप, दासविश्राम-धाम और स्वानुभव दिनकर शिष्यों की ये रचनाएँ तथा वेणाबाई की "सीता स्वयंवर" ये रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। वामन पंडित का निगमसार और यथार्थ दीपिका प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। ये शास्त्रीय और पाण्डित्यपूर्ण रचनाएँ हैं। यमक और श्लोक के लिए वामन प्रसिद्ध हैं। वेदान्तसार 'निगमसार में वर्णित है तो यथार्थ दीपिका में तर्क शास्त्र और पाण्डित्य का अपूर्व सङ्गम है। इसमें वामन की स्वतंत्र प्रज्ञा, निस्पृहता, भाषा प्रभुत्व के दर्शन हो जाते हैं। मराठी के पंडित कवियों के सामने आदर्श वामन पंडित का ही आदर्श था जिसका अनुकरण मोरो पंत, नागेश, रघुनाथ पं० कृष्णदयार्णव और श्रीधर तथा मध्वमुनि आदि ने किया है। मोरों पंत का आर्या, भारत रघुनाथ पंडित का नल दमयंती स्वयंवर, अमृतराय के नीत्याोपदेशपूर्ण कटाव ये महत्वपूर्ण कृतियां सामने आती हैं। शाहीर बाङ्मय में श्रृंगार रस-पूर्ण लवणियाँ नायिका और नायक के श्रृंगार के संयोग और विरह वर्णन तथा वीररसोत्कट पोवाड़े और प्रशस्तियाँ, युद्ध वर्णन जैसी काव्य कृतियाँ विशेष रूप से सामने

आई हैं। शैली भाषा और छन्द योजना में भिन्नता है। संत वाङ्मय में अभंग, ओवी और पद थे। तो पण्डिती वाङ्मय में श्लोक, कटाव, आर्या, पोवाडा और लावणी के छन्दों के माध्यम से कविताएँ रची गई हैं। शाहीर वाङ्मय वीर श्रृंगार और आध्यात्मिक संकेतों से भरा पड़ा है।
सगन भाऊ, होना जी बाल, रामजोशी, परशुराम, अनन्तफंदी आदि शाहीरों का वाङ्मय उल्लेखनीय है।

पोवाडे का वैशिष्ट्य

महाराष्ट्र के वीरों के पराक्रम की यशोगाथाएँ और विलासों का वर्णन पोवाड़ों में मिलता है। पराक्रम प्रशस्ति या पराक्रम वर्णन एवं युद्ध वर्णन को एक विशेष वाद्य के साथ गाया करते थे। इसे हम वीरगाथा काव्य ही कहेंगे। सत्रहवीं शती में स्वराज्य की आकाँक्षा से प्रेरित होकर शिवाजी तथा उनके वीर मावली साथियों ने जो भी पराक्रम किए उनको डफ और तुणतुणे नामक चर्म और तांड वाद्य की सहायता से वीर रस का सञ्चार वीर काव्य प्रशस्ति से निर्माण करना ही शाहीरों का कार्य था। पुरुषार्थ को प्रेरित करने वाला काव्य ही पोवाड़ा है ऐसा तुलसीदास शाहीर का अभिप्राय है यथा:—

"पोवाडा गालपाला उद्धरण
ऐकलपाला घडो पुण्य।"

जो वीर प्रशस्ति गाता है उस शाहीर का उद्धार हो जाता है और जो उसे सुनता है उसे पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। ये रचनाएँ कभी स्वयं स्फूर्त और कभी प्रोत्साहन, पुरस्कार, राजाश्रय पाने की इच्छा, आदेश व प्रेरणा से निर्माण होता था। अगिनदास, तुलसींदास और यमाजी ये शिवकालीन शाहीर मराठी साहित्य में प्रसिद्ध हैं। अनन्त फंदी पेशवे कालीन भाट थे। गंगू हैबती, होनाजी, प्रभाकर आदि शाहीर पर प्रेरित होकर पोवाडा वाङ्मय की सर्जना में लगे रहे। इनके इन प्रशस्ति काव्यों में यथातथ्य और अतिशयोक्ति इन दोनों प्रकार के वर्णन संमिश्र रूप से विद्यमान हैं। मराठी सत्ता के उत्कर्षापकर्ष की भावनाएँ इन शाहीरों की कृतियों में अभिव्यञ्जित हैं। इसे मराठों के भाव जीवन का चित्र हम कह सकते हैं। वीर और श्रृंगार का परिपोष इसकी विशेषता है।

लावणी

यह काव्य प्रकार नाट्यमय अधिक है। गायिका के द्वारा इसे सुनने में विशेष रस आता है। अतः दृश्य और श्रव्य ये दो विशेषताएँ इस श्रृंगार रस पूर्ण काव्य में मिलती हैं जो शाहीरों के द्वारा रचित इन कृतियों की अपनी विशेषताएँ मानी जा सकती हैं। कृष्ण गोपी प्रेम विषय को मुख्य गेय विषय और वर्ण्य विषय बनाकर श्रृंगार रस के धीर श्रृंगारी वर्णन, नखशिख वर्णन, प्रेम वर्णन विलास वर्णन आदि इसकी विशेषताएँ हैं। लोकाभिमुख काव्य होने से तथा गेय होने से भी यह काव्य जनसामान्य की सामान्य अभिरुचि का अंग बन गया। पर इसकी शैली अवश्य पाण्डित्यपूर्ण रही। श्रृंगार, वीर और करुण रस का अवलंबन लावणी-वाङ्मय में प्रमुखता से किया गया। ढोलक पर तथा मंजीरे की ओर पखवाज एवं मृदंग की सहायता से तालबद्ध नृत्य की गति और यति के साथ गेय लावणी यमक और प्रासानुयुक्त भी बनती गई। लावणी के वर्ण्य विषयों में युद्ध पर जाने वाले पति का विरह, बिदाई, मदन बाधा, पुनर्मिलन व्यभिचारी प्रणय, जारिणी की व्यथा, गर्भवती की दोहद इच्छाएँ, पुत्रजन्म, विलास आदि प्रमुख थे। इसमें अतिशय अवास्तविक चित्र भी सामने आए हैं। कहीं-कहीं अश्लीलता भी आगई है। इसके साथ केवल इश्कबाजी को ही प्राधान्य नहीं दिया गया अपितु वैराग्यपरक आध्यात्मिक सुख की ओर अग्रसर होने के लिए श्रृंगार और भोग के प्रति जुगुप्सा निर्माण करने वाली लावणियाँ भी लिखी गयी मिलती हैं। इसके साथ व्यावहारिक नीत्योपदेश भी सामने प्रदर्शित किया गया है। परशराम, सगन भाऊ, रामजोशी, प्रभाकर आदि शाहीर इसके लिए प्रसिद्ध हैं। इसमें कई सामाजिक कथाएँ भी गुंफित हैं। कलगी-तुर्रा जैसे काव्य प्रकार में सवाल और जवाब काव्य में किये गये हैं, जो कूट-काव्य की शैली से भरे हैं और बौद्धिक तथा रसिक प्रवणता एवं पाण्डित्य को चुनौती भी देने वाले हैं।

इस प्रकार पुराने मराठी काव्य की प्रवृत्तियों का एक संक्षिप्त विहंगमावलोकन करने का यहाँ एक लघु प्रयास मात्र किया गया है। समग्र इतिवृत्त और उसका समालोचन ऐसे संकीर्ण

लेख में अपने आप में एक जटिलता प्रस्तुत कर देता है। केशव सुत युग के पूर्व का और इसमें लेख में वर्णित काल खण्ड के बीच का मराठी काव्य इतिवृत्तात्मक, पौराणिक आख्यानपरक और पाण्डित्य पूर्ण मात्र है। श्लोक, पद आदि छन्दों में आख्यानक काव्यों की या स्फुट काव्यों की सृष्टि हुई है। आत्म भावाभिव्यंजकता या स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति तो केशवसुत-युग की ही देन मानी जाएगी।

आधुनिक मराठी काव्यकी प्रवृत्तियों का अंकन

अंग्रेजी काव्य से प्रेरणा लेकर मराठी का आधुनिक काव्य सर्जन प्रारम्भ होता है प्रायः कृष्णाजी केशव दामले अर्थात् केशवसुत को आधुनिक मराठी काव्य का स्फूर्ति दाता उद्धर्त्ता एवन् नया युग निर्माता माना जाता है। मराठी इतिवृत्तात्मक काव्य और रामायण महाभारत तथा पुराणों पर आधारित कथानकों को लेकर लिखा जाने वाला काव्य तथा मराठी सन्तों की धारा वाला काव्य इस युग के पूर्व तक लिखा जाता रहा। शाहीरी वाङ्मय की वीर रस प्रधान तथा शृंगारपरक पोवाडे और लावनियों का युग अब बीत चला था। केशव सुत ने मराठी काव्य को स्वच्छन्दतावादी स्वरूप प्रदान किया, यह उनकी सबसे बड़ी देन मानी जाएगी। भावगीतों की परंपरा केशव सुत से ही प्रारंभ होती है। पारलौकिक चिंतन के बदले इहलोक विषयक भावना आत्मानुभूति के माध्यम से अभिव्यक्त करने की शैली मराठी काव्य क्षितिज पर इसी समय से प्रादुर्भूत हुई। उच्चकोटि की कल्पना प्रवणता भी विषयगत और शैली गत दोनों रूपों में केशव सुत ने हमारे सामने रखी। भावनिष्ठ कविता का युग ही केशव सुत ने निर्माण किया। इस तरह कहा जा सकता है कि आशय और अभिव्यक्ति, रचना प्रक्रिया और विवेचन पद्धति में काव्य के क्षेत्र में केशव सुत ने नये मोड़ उपस्थित किये।

गूढ गुञ्जन या रहस्यात्मक प्रवृत्ति वाली कविताएँ सामाजिक सुधार, प्रेम आदि विषयों को लेकर उन्होंने लिखीं। मराठी भक्ति काव्य लोकाभिमुख था। पारमार्थिकता और प्रदीर्घता कविता का स्वभाव था, केशवसुत ने इसे समाप्त किया। वैयक्तिक प्रेम वैफल्य, साफल्य, आशा निराशा, सुख-दुख आदि का प्रकटीकरण कविता की स्वाभाविक प्रवृत्ति मानी जाने लगी। केशवसुत का जन्म सन् १८६६ में तथा मृत्यु १९०५ में हुई। प्रकृति की उदात्तता का साक्षात्कार तथा उसके प्रति अपार और अगाध श्रद्धा इनकी कविताओं में देखने को मिलती है। मराठी में सुनीत (सानेट) नाम की कविताएँ अंग्रेजी की धरती की यमकों के साथ तथा निर्यमक रूप में कविताएँ भी केशवसुत ने लिखी। ब्लेक वर्स जैसी कविता के प्रयोग भी इसी युग में किए गए। इनकी सर्वस्पर्शिता ने इनका अनुगमन आगे के कई कवियों ने किया है। कवि का बड़प्पन उसकी प्रतिभा में ही स्थित है। आशा, प्रेम और पराक्रम के गीत कवि ही गा सकते हैं। सृष्टि उसके अध्ययन का विषय है। प्रेम केवल हृदय में रहता है। वह बाजार में नहीं बिकता। प्रेम से की गई कोई सीधी सादी बात का अपना महत्व है। आपत्ति और संकटों में प्रीति की परीक्षा होती है तथा उसकी भाषा मौन हुआ करती है। इस प्रकार के विचार केशवसुत ने अपनी प्रेमविषयक कविताओं में अभिव्यक्त किए हैं। रेव्हरंड तिलक ने प्रेम विषयक कविता भी लिखी है, जिसमें स्त्रीदाक्षिण्य विशेष रूप से मिलता है। मेरी पत्नी (माझीभार्या) शीर्षक वाली कविता इसका प्रमाण उपलब्ध कर देती है। शिशु गीत भी तिलक ने लिखे। वैसे कवि और संत ये दोनों विशेषताएँ महाराष्ट्र की पुरानी काव्य परम्परा में मिलती हैं और तिलक में ईसाई होने पर भी वे आ गई हैं। इनकी कविताएँ माधुर्य और सहज संवेदना से युक्त हैं। केशवसुत ने स्फूर्त जगाने वाली 'तुतारी' नवाशियाई, झपूर्झा जैसी कविताएँ लिखीं। आगे चलकर इनका अनुगमन करने वालों को केशवसुत संप्रदाय के कवि कहा जाने लगा।

इसी युग में विनायक जनार्दन करंदीकर नाम के एक और कवि हुए। इनकी कविताएँ उत्कट देश प्रीति भावना से भरी हुई, पारतन्त्र्यता के प्रतिद्वेष और हिन्दू धर्म के जाज्वल्य अभिमान से ओतप्रोत हैं। 'महाराष्ट्र-लक्ष्मी', शिव सन्देश, शिवराज दर्शन, 'पूर्व दिव्य ज्यांचेत्याना रम्य भाविकाल' आदि कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। अनुभूति

के बिना जीवन्त काव्य निर्माण ही नहीं हो सकता। विनायक की कविताएँ इस तथ्य को सार्थक करती हैं। सुमित्रानन्दन पंत की तरह प्रकृति के प्रेमी, पुजारी और केवल प्रकृति को ही काव्य का वर्ण्य विषय बनाने वाले बाल कवि ठोंबरे चिरस्मरणीय रहेंगे। प्रकृति से प्रेम निर्माण करने वाली शक्ति बाल कवि की मूर्धन्य विशेषता है। प्रकृति में इस कवि को सभी सुन्दर और आनन्दप्रद नजर आया। वह कहता है :—

सुन्दर सगले मोहक सगले
खिन्नपणा परि मनिचा न गले
नुसती हुर हुर होय जिवाला
—कां न कले काहीं ?

बाल कवि की भावना कामुकता से रहित, प्रकृति को चेतन शक्ति मानने वाली उनकी दृष्टि थी। वे उसके साथ हँसते खेलते और बोलते थे। उसके दिव्य सौंदर्य से वे कह उठे 'आनन्दी आनन्द गडे इकडे तिकडे चोहिकडे।' नेत्रेन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय के द्वारा आकलित होकर अपनी संवेदनाएं तीव्र रूपों में कवियों द्वारा अभिव्यक्त की गई हैं। इस कविने कुछ शिशु गीत तथा लोरियाँ गीत भी लिखी हैं इनकी फुलराणी (फूल रानी) नामकी कविता मराठी में विशेष प्रसिद्ध है। केवल ४९ कविताएँ लिख कर मराठी कविता के क्षेत्र में कवि और दार्शनिक के नाते 'बी' नाम के कवि बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रेम विषयक कविताएँ प्रकृति के प्रतीकों का माध्यम अपना कर इस कवि ने लिखी हैं। कुछ कविताओं के ये शीर्षक दर्शनीय हैं—बकुल, बुलबुल और चाँफा (चंपक)। आत्मनिरपेक्षता और अध्यात्म प्रवणता से भरी हुई इनकी कविताएँ प्रेम विषयक होने पर भी वैयक्तिकता और वासना से मुक्त हैं। ये काव्य निर्मिती की शक्ति भगवान् की देन मानते हैं। काव्य में कल्पना का सामर्थ्य बहुत बड़ा सामर्थ्य है ऐसा इनका विश्वास था और उसका साक्षात्कार इनकी कविताओं में अवश्य देखने के लिए मिलता है। आध्यात्मिकता और ऐहिकता में अभेद-तत्व बड़े आत्मविश्वास के साथ अपनी कविता में अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सके हैं। वे एक स्थान पर कहते हैं—

काव्य अगोदर झाले,
नंतर झाले जग सुन्दर,
रामायण आधी,
मग झाला जानकी वर॥

इस कवि की जीवन दृष्टि कर्तव्यतत्पर बनाने वाली, आशावाद की जन्मदात्री, प्रगतिशील तथा आध्यात्मिक अधिष्ठान पर आधारित है। दत्त नाम के एक कवि इसी युग में ऐसे भी हैं जो कविता को प्रेयसी मानते हैं। वे कहते हैं—'प्रिये कविते-सुन्दरी ! बघसी अंत किती राजसे।' केशवसुत युग का प्रभाव इन पर भी पड़ा है। माधवानुज में इस युग का कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। इनकी काव्य शैली में बोधपरायणता के साथ सहयुगीन दार्शनिकता भी परिलक्षित होती है। रेंदालकर की काव्य विषयक दृष्टि पूर्णतः प्रगतिशील है पर ये सुधारवादी हैं अतः ये विचार इनके काव्य में देखे जा सकते हैं। भोगलालसा के प्रति कवि के मन में एक जुगुप्सा है। समाज में सुधार हो जाय इस भावना से सामाजिक कुरीतियों के प्रति ऐसे शब्दों के अग्नि स्फुलिंग झरते हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के नाते एक दर्प या अहंकार उनमें आत्म केन्द्रित सा हो गया है। प्रचुर मात्रा में प्रेम विषय परक कविताएँ लिखने पर भी माधव ज्युलिमन गोविंदाग्रज जैसे प्रेम-काव्य लिखने वालों की तरह लोकप्रिय नहीं हो सके। केशवसुत युग की सारी विशेषताओं में से कुछ लेकर इसके बाद कुछ फुटकर कवि हुए जिनका केवल ऐतिहासिक महत्व है।

'राधारमण' राष्ट्रवाद का यथार्थ गायन करने वाले कवि हैं। इनमें पुरानी काव्य-परंपरा के साथ नये युग-सापेक्ष प्रवृत्तियों एवम् आशयों को अपनाने की शक्ति थी। 'तिलक विजय', 'जहाल आणिमवाक' तथा 'नाना फडणीस' जैसे काव्य ग्रंथ इन्होंने लिखे हैं। लेंभे, मोगरे, लोंढे आदि कवियों ने अपनी साधारण प्रतिभा से कविताएँ लिखीं। चंद्रशेखर, सावरकर, गोविंद दरेकर आदि कवि स्वतन्त्र प्रज्ञा वाले कवि माने जाएँगे। इन्होंने क्रान्ति का मन्त्र फूँकने वाली उर्जस्वल कविताएँ लिखीं। दरेकर की सुन्दर भी होगा[illegible] तथा सायरकर की सागरा प्राण तलमलता और ते जयोस्तु श्री महेन्मंगले शिवारपदेशुभदे यह स्वतन्त्रता देवी प[illegible]

लिखी गई कविताएँ लोग सदा याद रखेंगे। सावरकर का रानफुले यह काव्य संग्रह तथा 'गोमान्तक' नामक काव्य प्रसिद्ध हैं। सावरकर के पास महाकवि की प्रतिभा होने से गोमान्तक महाकाव्य की शैली में लिखा गया। भव्योदात्तता ओज, तत्वज्ञता, तथा उज्वंस्वल राष्ट्रवाद और ऐहिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस आदि तत्व प्रतिपादन उनके वर्ण्य विषय रहे हैं। दुर्गादास आसाराम तिवारी 'मराठ्याची संग्राम गीतें' अपने इस राष्ट्रीय गीत के नाते विशेष प्रसिद्ध हैं। राष्ट्रीय कविता को आधुनिक जनमानस में प्रचारित करने का कार्य तिवारी की कविताओं ने किया है।

पुरानी सन्त परम्परा को अपनाकर उसी शैली में अपनी काव्यधारा का स्रोत बहाने वाले साधुदास अर्थात् गोपाल गोविन्द जोशी विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके वन विहार, गृह-विहार और रणविहार ये तीन महाकाव्य प्रसिद्ध हैं। कवि-भूषण वलवंत गणेश शापर्डे ने रहस्यवादी प्रवृत्तियों भरी तथा रवीन्द्रनाथ की शैली में कविताएँ लिखी हैं। आधुनिक मराठी गद्य काव्य के लेखक भी उन्हें ही माना जावेगा। इनकी कवितायें धार्मिकता और भक्ति भावना से भरी हुई है।

हम कह सकते हैं कि सामाजिक समता और मानवतावाद की स्थापना करने के लिए प्रचलित रूढ़ियों के विरुद्ध सामाजिक प्रक्षोभ निर्माण हो जाय इस परिणाम को सामने रखकर इस काल के कवियों ने उसे अपनी अभिव्यक्तियों में प्रकट किया है। यह विचार सर्वस्पर्शी बनकर काव्य में निश्चित रूप फिर भी न हो सका। मराठी कवि के सामने केवल स्त्री जीवन विषयक प्रश्न ही थे। उसी में इस काल का कवि उलझा रहा। नई कविता अज्ञेयवादी नास्तिकों ने लिखी है, ऐसा हम नहीं कह सकते। आज भी ईश्वर भक्ति और आध्यात्मिक भावों से भरे अभंग और गीत मराठी में लिखे जाते रहे हैं।

अपना सुख-दुख अपना प्रेम वैफल्य—अपना प्रेम—साफल्य, आशा-निराशा, अपनी लघुता और अन्य व्यावहारिक विषयों को लेकर मराठी काव्य प्रवृत्तियाँ सामने आती रहीं। इसमें आत्माभिव्यंजकता और आत्मकथनात्मकता ही अधिक दिखाई पड़ती है। मराठी नव कविता के सामने मोरोपन्त जैसे पंडित कवियों की आर्यावृत्ति में लिखी जाने वाली पौराणिक विषयों को अभिव्यक्त करने वाली धार्मिक दृष्टि-कोण वाली एक परम्परा थी। दूसरी शास्त्री पंडितों की बोधवादी विचार प्रकट करने वाली परम्परा थी। इसके अतिरिक्त शृंगारपरक लावणी और श्रीरसात्मक पोवाडों की भी एक तृतीय परम्परा चलती रही है। अंग्रेजी से अनुवाद भी होने लगे थे। भावगीतों में आत्मलेखन मुखरित हो उठा। अभिरुचि के परिवर्तन के साथ मराठी कविता की लम्बाई अपेक्षाकृत कम होकर छोटी हो गई। नए काव्य में मिलने वाला प्रणयोद्गार अंग्रेजी कविता का प्रभाव ही माना जावेगा। काव्य की ओर देखने का दृष्टिकोण बदल जाने के कारण कविता भी अपना अपने असली अर्थ में नवीन बन गई। केशव सुत ने अक्षरगणवृत्त से मात्रागण वृत्त की ओर मराठी काव्य की प्रवृत्ति मोड़ दी। केशवसुत के युग की मात्रा वृत्ती कविता छोटी समीकृत भावना को अभिव्यक्त कर सकने में सक्षम थी। इस युग के बाद मराठी कविता में गेयता ग्वालियर के कवि भास्कर तांबे ने प्रदर्शित की। काव्यगायन लोकप्रिय बना। कविता के प्रथम दो चरणों में मध्यवर्ती कल्पना और अगले पदों में उस कल्पना का परिपोष और विस्तार किया जाने लगा। माधव ज्युलीयन ने गझल और सुनीत लिखे। हिन्दी कवि बच्चन की तरह प्रेम को काव्य विषय बनाकर उमर खैयाम का हालावाद गझल के माध्यम से मराठी में लाने का श्रेय माधव ज्यूलीयन का ही है। छंदों से मुक्त छन्दों की ओर तथा यमकों से निर्यमकों की ओर मराठी कविता की प्रगति होती रही। स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता से सम्पन्न काव्य भी निर्माण होता रहा। शिशुओं, जानपदों तथा स्त्रियों की भावनायें काव्य में झंकृत हो उठीं। पराधीनता के प्रति खिन्नता पुरातन वैभव के प्रति पुनर्जागरण की प्रेरणा के स्रोत में देखने की प्रवृत्ति और स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए प्रोत्साहन इनका भी मराठी काव्य में स्वागत होता रहा। नई मराठी कविता का अंतरंग इस दृष्टि से पूर्ण महत्व का है। वर्ग संघर्ष तो सामाजिक क्रांति के अंतर्गत आने वाली बात है। स्त्री भी काव्य का वर्ण्य विषय बनी है परन्तु वह भी अशरीरी प्रेम के भाव को प्रधानता और प्रश्रय देकर। इसमें उसे निराशा और वैफल्य के साथ जो

कुछ भी प्राप्त होता गया है वह एक मानव होने के नाते ही था। अतः जो प्राप्त नहीं हो सका उस पर शोक करने की प्रवृत्ति के साथ-साथ जो कुछ प्राप्त हो गया है उसके लिए शोक न करने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ी है। अर्थात् जब कुछ नहीं कर सकते तो जो मिला है उसी में सन्तोष कर सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति का भी यत्र तत्र काव्य में समावेश है। आधुनिक मराठी काव्य में 'प्रेम' यह भावना उसके अनेक साँगों पाँगों सहित उसकी अनेक विध अन्तर्दशाओं और भिन्न-भिन्न परिस्थिति जन्य अवस्थाओं में चित्रित हुई है। प्रेम का उदय स्त्री और पुरुष के बीच में कैसा होता है और इसका अन्तिम पर्यवसान किस प्रकार हो जाता है, इसे इन दोनों की दृष्टि से अभिव्यक्त करने वाले अनेक प्रसंग और अनेक अंग मराठी काव्य में अभिव्यञ्जित हो गए हैं। भा० रा० ताँबे ने युवावस्था से लेकर वृद्धावस्था के स्त्री और पुरुषों के विवाह पूर्व, विवाहोत्तर प्रणय के, कुमारी, विधवा और पत्नी के पुराने, नए और और अत्याधुनिक प्रेम के कई नमूने अपने काव्य में चित्रित किए हैं। इनमें मुग्ध और मुखर भावनायें प्रकट हो गई हैं। राग अनुराग, ईर्ष्या, मान, शरणागति, छेड़छाड़ आदि की सारी स्थितियाँ कम अधिक मात्रा में प्रकट होकर गेय रूप में सामने आ गई हैं। इसी तरह निस्वार्थ, उत्कट और विशुद्ध प्रेम भावना भी कहीं-कहीं मराठी काव्य में अभिव्यंजित होती रही है।

स्वधर्म, स्वभाषा और स्वदेश के प्रति भक्ति भावना भी काव्य का ज्वलन्त विषय बनी। मराठी कवियों ने अपनी लेखनी इन विषयों पर भी उत्स्फूर्त होकर चलाई। महाराष्ट्र काव्य संपदा में भावना की अपेक्षा वैचारिकता को अधिक महत्त्व है। इसलिए 'हतभगिनी' कोठला शिवाजी गोमांतक जैसी उदात्त और स्वदेश प्रीति युक्त तथा स्वधर्म तत्पर भावों से भरी रचनाएँ भी सामने आईं अज्ञातवादी कवि गोविन्द और सावरकर की कविता वीर रसात्मक तथा आग के धधकते अंगारों की तरह उर्जस्वल एवं ओज पूर्ण है। वीररस के साथ ही साथ रौद्ररस परिपोषक कविताएँ भी लिखी गईं। भा० रा० तांबे की 'रुद्रास आवाहन' यह कविता इस नाते विशेष उल्लेखनीय है।

सामाजिक सुधार, रूढ़ि भंजन और व्यक्ति स्वातंत्र्य इन तत्‍[illegible] की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली प्रवृत्ति भी नये काव्य में स्थापि[illegible] हुई। सन् १९२३ के लगभग 'रवि किरण मंडल' [illegible] स्थापना हुई। दस बारह वर्षों के काल खण्ड में इस मण्ड[illegible] के कवियों ने २४ के करीब काव्य संग्रह प्रस्तुत किये[illegible] इनमें खण्ड काव्य, स्फुट कविताएँ, अनुवादित कविता[illegible] एवम् काव्य ग्रन्थ, सुनीत संग्रह और गज़लों का संग्रह आ[illegible] विविध काव्य वृत्तियाँ हैं। इस मण्डल के सदस्यों में मा० [illegible] पटवर्धन अर्थात् माधव ज्युलियन, कवि गिरीश अर्थात् [illegible] के कानिटकर, यशवंत दिनकरे पेंडरकर, श्री० बा० रान[illegible] सौ० मनोरमाबाई रानडे, श्री० ग० त्र्यं माडखोलकर, श्री[illegible] द० ल० गोखले और वि० द० घाटे आदि कवि थे। चन्[illegible] शेखर से प्रेरणा लेकर माधव राव पटवर्धन ने मराठी [illegible] कविताएँ लिखना शुरू किया। फारसी का भी प्रभाव उ[illegible] पर पड़ा। समाज के दंभ का स्फोट करने के लिए 'सुधारक[illegible] काव्य का निर्माण उन्होंने किया। कई गजलें लिख क[illegible] 'द्राक्षाकन्या, और रुबाइयों की काव्य निर्मिति ज्युलियन [illegible] की। इन्होंने करीब-करीब एक सौ एक सुनीत लिखे हैं[illegible] 'तेथे चलराणी' यह उनकी एक प्रसिद्ध कविता है। उ[illegible] 'प्रणय पंढरी का बारबरी' यह उपाधि भी मिली। इनक[illegible] प्रेम कविता की गहराई तथा अभिव्यक्ति की सरल[illegible] सराहनीय है। 'स्वप्न रंजन' में कई स्फुट कविताएँ है[illegible] शिशु गीत, ईश्वर विषयक कविताएँ, संगमोत्सुक डोह[illegible] अभिसारिका, आदि कई विषयों पर ये लिखी गयी हैं[illegible] माधव ज्युलियन सच्चे रसिक कवि हैं। गूथगुंजन, भाव[illegible] की तीव्रता, विदग्ध रसिकता, आशावादिता आदि कई विशे[illegible] ताएँ ऐसी हैं जो इस कवि को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रद[illegible] कर देते हैं।

गिरीश ने 'अभागी कमल' नाम का खण्ड काव्य लिखा है[illegible] कला, आंबराई, कांचन गंगा, फलभार और मानस बोध[illegible] संग्रह इस कवि के प्रसिद्ध हैं। सामाजिक अन्याय के प्र[illegible] दुख, जानपद प्रदेशों के प्रकृति वर्णन, कृषक जीवन, संगी[illegible] कला आदि कई विषय गिरीश ने अपनी कविताओं के लि[illegible] चुने हैं। दलित जनता के प्रति व्यक्तिगत रूप में सहानुभू[illegible] गिरीश की कविताओं में अभिव्यक्त हो सकी है। संगी[illegible] का माधुर्य और उसके प्रति अपनापन भी इनकी कविता[illegible]

में दृष्टिगत होता है। शिशुगीत लिखने वाले मायदेव भी एक प्रसिद्ध कवि हैं। राजकवि यशवंत की कविता भावनोत्कटत्ता तथा भावों की गहराई से युक्त है। यशवन्त महाराष्ट्र के लोकप्रिय कवि हैं। यशवंत की 'यशवन्ती', यशोधन, जयमंगला, यशोनिधि, यशोगन्ध, यशोगिरि, काव्य कीरीट और कमण्डलू आदि कृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। भाषा को कृत्रिमता से दूर रखकर भावात्मक जीवन की अभिव्यक्ति सौन्दर्य के साथ करने में यशवन्त सिद्ध हस्त हैं। सहज सुन्दर और योग्य कल्पनाओं का विलास यशवन्त की कविताओं का प्रमुख गुण है। आजकल भावमयता से बोधपरता यशवन्त की कविताओं में आने लगी है। रविकिरण मण्डल के सारे कवि मुख्यत सौन्दर्यान्वेषक और सौन्दर्योपासक कवि थे। सौन्दर्य पूजन का यह अभिनिवेश आगे चलकर कुसुमाग्रज अर्थात् शिरवाडकर जैसे क्रान्तिकारी कवि में भी प्रभावित रूप से परिलक्षित हो जाता है। बोरकर तो सौन्दर्य पूजक ही रहे हैं। अपने लक्ष्य की निष्ठा, सामर्थ निष्ठा और उसके साथ साथ सौन्दर्य रक्षण भी इन दोनों कवियों की प्रमुख विशेषताएँ मानी जावेंगी। यशवन्त ने राष्ट्रीय कविता से आरंभ कर महाराष्ट्रीय प्रदेश की अस्मिता को पूर्ण रूप से प्रकट किया है। स्त्रियों पर किये जाने वाले अत्याचारों का निषेध भी वे अपनी कविताओं में अभिव्यक्त कर सके हैं। अपनी कविताओं को भावगीतों की सुन्दर शैलियों में गाकर सुनाने में इन्हें विशेष सफलता मिली है। रसिकता कथानकों की आकर्षकता भावनाओं का उत्कृष्ट विकास, कल्पनारम्यता ये सारी विशेषताएँ यशवन्त के काव्य में पायी जाती हैं।

केशव कुमार नाम से प्रह्लाद केशव अत्रे ने कविताएँ लिखी हैं। स्फुट कविताओं का संग्रह 'गीत-गङ्गा' नाम से प्रसिद्ध है। कुछ परैडी की धरती पर और उपहास तथा विनोद प्रधान और व्यंग्य प्रधान शैली में 'झेंडूची फुले' यह कविता संग्रह लिखा है। अर्थ चमत्कृति की ओर अत्रे का विशेष ध्यान रहा है। रविकिरण मण्डल की प्रणय भावना का विडंबन अत्रे ने किया है। ग० ह० पाटिल की रानजाई, वा० भा० पाठक की प्रवासी, आशागीत तथा गोपीनाथ तलवलकर की दुर्वांकुर ये कृतियां विशेष प्रसिद्ध हैं। इन कवियों ने शैलीगत नये प्रयोग किये हैं। कणिका नामक एक काव्य रचना पद्धति बँगीय रचनाओं में प्रचलित है। तलवलकर ने इस पद्धति का अनुगमन मराठी में कर एक नई रचना शैली मराठी को प्रदान की है। निशि गंध व ज्योत्स्नागीत के लेखक रा० श्री० जोग, 'चंद्रप्रभा' के लेखक करंदीकर तथा विदर्भ के खापर्डे स्फुट कवियों में प्रसिद्ध हैं।

आत्माराम रावजी देश पाण्डे अर्थात् अनिल की कविताओं में 'भग्नमूर्ति' विशेष प्रसिद्ध है यह एक दीर्घ मुक्तछन्द काव्य है। गूढ़गुंजन, प्रेम भावना का मानसिक वर्णन, अमूर्त और सूक्ष्मता को व्यक्त करने वाले प्रतीकों का प्रयोग बुद्धिगम्य दार्शनिकता के साथ अनिल ने किया है। दूसरे कवि वा० ना० देशपांडे हैं जिनकी 'आराधना' नाम की कृति उल्लेखनीय है। इसमें विषयों की विविधता, वैचित्र्य और रचना नाविन्य ये तीन गुण विशेष प्रकट हुए हैं। कल्पना, भावना और वातावरण इन सभी दृष्टियों से असाधारणत्व इनमें प्रकट हो गया है। एक और देश पाण्डे दम्पति कवि और कवयित्री के नाते प्रसिद्ध है। गुणवन्त हणमन्त देश पाण्डे और उनकी श्रीमती के क्रमशः 'निवेदन' और निर्माल्य-माला' ये काव्य संग्रह प्रसिद्ध हैं। इनके काव्य के विषय राधाकृष्ण-प्रेम, मुरली-माधुरी, प्रेम, कर्तव्य और वैफल्य आदि हैं।

बम्बई के अनंत काणेकर की 'चांदरात' यह कृति एक नया मोड मराठी काव्य प्रवृत्तियों के क्षेत्र में प्रस्तुत करती है। प्रथम प्रेम विषय से आरंभ कर इस कवि के द्वारा यथार्थवाद के आश्रय से विचार प्रधान कविताएँ अब रची जाने लगीं। प्रकृति तथा प्रेम इन दोनों विषयों पर काणेकर जी ने कविताएँ लिखी हैं। प्रकृतिपरक कविताओं में एक प्रकार का औदासीन्य और गूढ़ता सामने प्रकट होकर आ गई है। कल्पना की नवीनता और प्रतिभा की चमक अब मराठी काव्य में बुद्धिवादिता का आश्रय लेकर प्रकट होने लगी। अंग्रेजी आधुनिकता की प्रेरणा से बा० सी० मर्ढेकर ने कई कविताएँ लिखीं। 'शिशिरागम' नामक काव्य संग्रह भी इन्होंने प्रकाशित करवाया। पु० शि० रेगे भी अंग्रेजी के आधुनिक प्रभाव से कविता लिखने लगे जिसमें गूढ़ता और दुर्बोधता ये दो विशेषताएँ प्रमुख हैं। 'फुलोरा' नामक काव्य संग्रह रेगे ने तैयार किया। रेगे ने चमत्कृती पूर्ण कविताएँ कई लिखी हैं। वे सबकी सब मुक्त छन्द में हैं।

इनकी कविता मराठी परंपरा की नहीं है। अंग्रेजी परंपरा को लेकर ये चले हैं और उसीमें उनका विश्वास है। वैचारिकता संपन्न तथा प्रेम विषय को लेकर ही लिखी गयी यह कविता गूढ और दुर्बोध ही अधिक प्रतीत होती है। पर हम कह सकते हैं उसने शृंगारिकता ही प्रधान है। विचार गांभीर्य और प्रेम के बाहर जा कर अन्य जीवन से सम्बन्धित विषयों पर भी पु० शि० रेगे ने कई कविताएँ लिखी हैं। मुक्त छन्द की दीर्घ कविताएँ लिखकर उनमें अपनी नई उद्भावनाएँ वे प्रकट करते हैं।

कुसुमाग्रज की आधुनिक मराठी कविता क्रान्ति का मंत्र लेकर जनमी थी। 'गर्जा जय जयकार क्रान्ति चा' यह कविता विशेष प्रसिद्ध है। रवि किरण मंडल और तांबे की कविताएँ लोकप्रिय होती जा रही थीं तभी कुसुमाग्रज काव्य क्षेत्र में उतरे। एक स्वतन्त्र प्रज्ञावान कवि के नाते इनका महत्त्व अनन्य साधारण है। 'जीवन लहरी' में वे अपने मन की आर्त भावना प्रकट करते हैं। पहले प्रणय प्रधान प्रवृत्ति उनकी कविताओं में झलकी। इसके बाद 'विशाखा' में प्रौढ़ विचार गांभीर्य, सुन्दर और सम्यक शब्द योजना आदि से उत्तम काव्य व्यंजित करने में यह कवि पूर्ण सफल हो गया है। कविता का प्रारंभ और अन्त दोनों ही वे भली भाँति करते हैं। प्रेम भी दुर्बल बनकर न किया जाय ऐसी इनकी भावना है। माधुर्य के स्थान पर ओज और अनुप्रास की मनोरम छटा इनके काव्य में प्रतीत होती है। 'पृथ्वी चे प्रेम गीत' यह कविता उत्कृष्ट रूप में व्यक्त हुई है। पृथ्वी सूर्य से निस्वार्थ होकर प्रेम करती है। सूर्य से उसका मिलन कभी भी नहीं होने वाला है यह ज्ञात रहने पर भी इस प्रेम का स्वरूप दिव्य और उदात्त है।

दलितों के प्रति अपार सहानुभूति कुसुमाग्रज की कविताओं में प्रकट होती रही है। अन्याय का प्रतिकार सामर्थ्ययुक्त शब्दों में करने की क्षमता इनमें होने से मूर्तिभंजन का कार्य वे सफलता से कर सके हैं। स्थंडिल सूर्य प्रकाश, अग्नि, रण-चण्डी जैसे शब्द उनके त्वेष और क्रान्ति से प्रज्वलित प्रतिभा की भाषा साकार कर देते हैं। जीवन केवल भीषण और भयंकर ही नहीं है वह सौम्य और सुकुमार भी है इसको यह कवि शायद भूल गया है। पर यह व्यापकता उसमें आ रही है।

बोरकर प्रादेशिक अर्थात् गोमांतक के आंचलिक कवि इसलिए इस क्षेत्र की प्रकृत भूमि का वातावरण तथा प्र[illegible] सौंदर्य उनके गीतों के भाव व्यंजित करने में उन्हें प[illegible] सफलता मिली है। प्रकृति सौंदर्य इनके काव्य का [illegible] वर्ण्य विषय है। गेयता उनकी कविता में विशेष [illegible] से प्रकट हुई है। प्रणयगीत, प्रेम, निराशा, प्रेम साफल्य अ[illegible] विषय व्यर्थ बनकर इनकी कविताओं में दीखते हैं। [illegible] लियन और तांबे का आभास इस कवि की कविताओ[illegible] प्रकट हो जाता है। अमृत घट तेथे कर माइने जुल[illegible] 'आकाशाचे मनोगत' आदि कविताएँ इसकी द्योतक हैं।

इन्दोर के राजकवि रा० अ० काकेले ने भी कई काव्य [illegible] अपनी कविताओं के प्रकाशित किये हैं। कविता की र[illegible] प्रक्रिया उन्हें पूर्ण रूप से ज्ञात न होने के कारण रविकि[illegible] मण्डल, तांबे, आदि की विशेषताएँ आत्मसात् कर कवित[illegible] विपुल और विविध स्वरूपों में उन्होंने लिखीं। वाग्व[illegible] ओलखीचे सूर. भावपूर्ण इन संग्रहों में सुनीत मुक्त छ[illegible] दलितोद्धार, क्रान्ति का जयजयकार प्रकाश-पूजन आदि [illegible] विषय गेय और भाव पूर्ण शैली में काकेले प्रकट [illegible] सके हैं।

मा० गो काटकर सौंदर्य दृष्टि को लेकर कविता के क्षेत्र[illegible] उतरे थे। दैनन्दिनी जीवन के सुख-दुख, प्रणय की वि[illegible] छटाएँ, प्रकृति के सानिध्य में लिये हुए अनुभव सौंदर्यवादी द[illegible] कोण के अपनी कविताओं में चुन-चुनकर भरे हैं। म[illegible] कविता में कहीं-कहीं आत्मतृप्ति भी दिखाई देती हैं। वि[illegible] षतः मराठी कवयित्रियों ने स्त्री मन को यथार्थ रू[illegible] भावाभिव्यंजित किया है।

सौ० संजीवनी मराठे तांबे की गीत पद्धति से अपने आ[illegible] विभूषित कर काव्य क्षेत्र में प्रसिद्ध हुईं। इनके 'संजीव[illegible] राधा, संसार आदि संग्रह प्रसिद्ध हैं। अपनी कविताओं [illegible] गाकर सुनाते हुए ये लोकप्रिय हुईं। प्रणय तथा अपने [illegible] भवों को सारगर्भित कवि कल्पना से गेय बनाकर अ[illegible] कविताओं में इन्होंने मुखरित किया है। काव्यानुकूल वि[illegible] का चुनाव, आवश्यक भावनास्पर्श और अपनी रचना [illegible]

साक्षेप इन तीन गुणों के मराठी कवयित्रियों में इनका स्थान ऊँचा है। इन्दिरा संत भी इसी तरह की कवयित्री हैं। अपना निजी प्रेमानुभव ही इनके काव्य का विषय है। इनके पति भी कवि हैं। पुरानी, ओछी शब्द को ये अपनाती हैं। अत्यन्त मधुर, गंभीर, भावना की गहराई आदि विशेषताएँ इनकी कविता मे अपनी विशिष्टता से प्रकट हुई हैं। एक प्रकार की मधुर मदिर वेदना इनको काव्य में पाई जाती है। योगिनी जोगलेकर भी गेय और संगीतमय कविताएँ लिखने में सिद्ध हस्त है। लेखिका स्वयं क्लासिकल और भावगीत गाने वाली गायिका है। शास्त्रीय गायन की सूक्ष्मता इसकी कविताओं का वैशिष्टय है। भावुकता, तन्मयता में भी एक प्रकार का संयम है। लोकगीतों का सारल्य, निजी व्यथा, कौटुम्बिक संबंध आदि व्यक्त करने में पटुता प्रकट हो गई है। 'तोडा पाडाची पोयरी' 'शोधा चिंचा गाभुकल्पा', धन्यकुसवा निछावा संत्यगिरीतूनी पेटे असलघनो ज्योती। कन्या कुमारी पासोनी 'गौरी शंकरा आरती।' जैसी प्रसिद्ध यह काव्य संग्रह भी कौटुम्बिक जीवन को प्रदर्शित करता है। गृहिणी जीवन के नये चित्र इसमें चित्रित हुए।

प्रयोगशीलन की दृष्टि से आधुनिक मराठी काव्य में कई प्रयोग विपुलता से किए गए हैं। नवकाव्य अपनी दुर्बोधता के लिए तो प्रसिद्ध ही है परन्तु कहीं-कहीं जीवन की अभद्रता बीभत्स रूप में चित्रित करने की होड सी लगी प्रतीत होती है जो अपनी प्रवृत्ति नहीं कही जावेगी। जीवन के अमंगल पक्ष को भी मंगल की ओर ले जाने का कवि लक्ष्य होना चाहिए। अश्लीलता और बीभत्स का आश्रय जितना नगण्य हो उतना ही अच्छा होगा। मर्ढेकर में यह अति पाई गई है जिसका अनुकरण चलने लगा है। अंग्रेजी शब्द प्रयोगों का मोह भी हमें छोड़ना चाहिये यह कवियों का दौर्बल्यका सबूत पेश करता है। नव कवि कविता के बह्यांग (Formalism) की ओर अधिक ध्यान देते हैं। इसमें छन्द और भाषा तथा रचना-प्रक्रिया आदि सारी बातें आती हैं। भाषा की ओर इन कवियों का जितना चाहिये, उतना ध्यान नहीं गया है। प्रयोग अवश्य किये जांय पर बहिरंग को भी औचित्य पूर्ण रूप से समझने की भी आवश्यकता है क्योंकि काव्य के सौन्दर्य तत्व को उपेक्षा करने से उसका काव्यत्व ही मृत हो जावेगा। अंग्रेजी प्रवृत्तियों का तारतम्य के साथ अनुकरण केवल फैशन की तौर पर हिन्दी की तरह मराठी नव कविता में भी आ गया है।

उदयोन्मुख कवियों में शांता शेलके, श्रीकृष्ण पोवके, अशोक शाहणे, शरचन्द्र मुक्तिबोध, माडगूलकर, बसन्त बापट, मंगेश पाडगांवकर, विंदा करंदीकर, सरिता पदकी, अनुराधा पोतदार, दिलीप चित्रे, राजा महाजन, आदि कई कवि आते हैं। इनके द्वारा मराठी नव कविता समृद्ध हुई है। नवीनता, क्रान्तिध्येयवादिता, बहिर्मुखता, गूढ़वादिता और बौद्धिकता आदि से युक्त यह सारा काव्य हमारी दृष्टिपथ में आता है। नवीन काव्य के लिए विषयों का क्षेत्र व्यापक हो गया है। मनुष्य जीवन में प्रणय को विशेष महत्त्व दिया जाता रहा है। अतः काव्य में यदि बहुत प्रश्रय मिला तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। स्त्री, प्रकृति और स्वदेश ये विषय प्रमुखता से काव्य विषय बने हैं। आधुनिक मराठी कविता व्यापक स्वातंत्र्य की कल्पना से प्रेरणा लेकर चली थी। मराठी कविता कैसी हो और कैसी न हो आदि सारे नियम-बन्धों से उसे मुक्त कर उसे पूर्ण स्वच्छन्द बनाने के लिए, केशव सुत ने सर्व प्रथम विद्रोह का ध्वज फहराया। पुराने नियमों से उसे मुक्त किया। उन्होंने कहा "ब्राह्मण नाही, हिंदुहि नाही, न मी एक पंथाचा।' समता और बन्धुता के नाते मैं केवल एक मानव हूँ और जन्मभूमि-सेवा धर्मी हूँ यह वे कहते थे। अपनी निजी प्रेम भावना, अपने मन अनुसार मन चाहे व्यक्ति से स्नेह करने का स्वातंत्र्य व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाते बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। प्रेम स्वातंत्र्य का अर्थ स्वैर प्रणय अथवा अनैतिक प्रणय कदापि नही है। कविता अन्तर्मुख बनकर कवि के आत्म लेखन परक भावनाओं को व्यक्त करने लगी। दूसरों की भावनाओं को भाव गीतों के माध्यम में तांबे आदि ने व्यक्त कर दिखाय। अपनी उत्कट भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य का माध्यम ही अधिक उपयुक्त होता है। नव मराठी कविता बहिर्मुख भी होने लगी है। रसिक वाचक अपने मनोनुकूल काव्य विषय और काव्य पद्धतियाँ अवश्य पा सकता है इतनी समृद्धता मराठी के आधुनिक काव्य मे विद्यमान है। उसका भवितव्य उज्वल है। मुक्तिबोध के मत से समाजवादी और मानवतावादी विचारों का प्रकटीकरण और यथार्थवादी चित्रण करने वाली नई प्रतिमाएँ

नये अर्थ नवीन मराठी कविता को प्रदान करते हैं। मर्ढेकर Immotional Eguivalance भावनानिष्ठ समतानता को नव्य काव्य का व्यवच्छेदक लक्षण मानते हैं। मंगेश पाडगांवकर की यह कविता दृष्टव्य है—(हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत है)।

रात्रः
तीव्र जलण्याची
रात्रः
तृप्त विझण्याची
हलवी
आभालाची
आर्जवी
भुई कमलाची
आणि मुकपा कलशीतून
रपलरपल जल भरण्याची
रात्रः
सर्व घेणारी
रात्र
सर्व देणारी

● ● ●

रातः
तीव्र जलने की
रात
तृप्त बुझने की
नाजुक
आकाशकी
मनाने वाले
भू-कमलों की
और मौन कलश से
कलकल निनादित जल भरने की
रात
सब कुछ ले लेने वाली
रातः
सब कुछ दे देने वाली

● ● ●

मुक्तिबोध और मर्ढेकर की काव्य विषयक दृष्टि बसत बापट अपना कर चले हैं। बापट कुसुमाग्रज का भी अनुसरण करते दिखाई देते हैं। अपने साधारण अनुभ[illegible] को असाधारणत और असामान्यत्व को सामान्यत्व प्रद[illegible] कर बापट कविताएँ लिखते हैं। उनके बिजली, सेतु ये सं[illegible] प्रसिद्ध हैं। 'अकरावी दिशा' उनका नया काव्य संग्रह है[illegible] भाव काव्य और प्रचार काव्य दोनों शैलियों में ये लि[illegible] हैं। सुनीत, नाट्य काव्य लावणी, भाव काव्य यही उन[illegible] शैली का विकास है। बापट समाज के अनुभव को वस्तुनि[illegible] आकार देकर अप्रत्यक्ष आत्माविष्कार करना अच्छी त[illegible] जानते है।

राजा महाजन की कविता नव काव्य की सारी विशेषत[illegible] को लेकर सामने आई है। ये भाव कवि है। अपनी [illegible] प्रतिमाएँ बड़ी सरसता से व्यक्त करते हैं। 'उहाकी' ना[illegible] काव्य-संग्रह प्रसिद्ध है। दिलीप चित्रे भी मर्ढेकर से प्रे[illegible] लेकर काव्य क्षेत्र में आये। इनकी रचनाएँ गूढ़वादी, दुर्बो[illegible] से युक्त और दार्शनिकता से भरी हुई हैं। विंदा करंदी[illegible] का भी प्रभाव इन पर परिलक्षित हो जाता है।

मराठवाडा के कवि श्री० वा० रा० कान्त की 'रुद्रवी[illegible] यह कृति विशेष प्रसिद्ध है। नये और पुराने का [illegible] कान्त की कविताओं में दिखाई देता है। 'रुद्रवीण[illegible] सौन्दर्यवादी और वास्तववादी दोनों विशेषताएँ विद्य[illegible] हैं। आजकल की उनकी कविताएँ भावमयता के साथ-[illegible] बौद्धिक और विचार गाँभीर्य से भरी हुई प्रतीत होती [illegible] यक्ष, 'भिजुनीहि पावसांत' माझ्या मनांत उभी तूं [illegible] कविताएँ उनका मूल स्थायी भाव अर्थात् सौन्दर्य [illegible] बतलाती हैं। यह कवि अपने सौन्दर्यासक्त मन के उ[illegible] को नयी-नयी कल्पनाओं के सामंजस्य के साथ प्रकट [illegible] हैं। पंत की तरह कल्पनाएँ और उहात्यकता कांत की कवि[illegible] रमणीय बनकर आई हैं। देखिए—

रुकत हलत
एक कवडसा चन्द्र होऊपाहे तुझ्या मानेवर
देठी रुसे दली हासे
प्राजक्ताची न्यारी रीत
हास्य रुक्मिणी चे फुले
सत्य भामेच्या रोषांत

छाया चाफ्याची अंगणी
झोंपेपरी चालवते

हिन्दी में उसका आशय इस प्रकार है—

डोलती हिलती सी
एक परछाँई तुम्हारी ग्रीवा पर चंद्र बनना
चाहती है

डंठल में रूठे पत्रों पर हँसे
हर सिंगार की न्यारी रीति
हास्य रुक्मिणी का फूटे
सत्य भामा के रोष में
चंपक के आँगन में छाया
निद्रा को जगाती है।

भाषा पक्ष भी संयत् और सौन्दर्य सम्पन्न भावानुभूति को व्यक्त करने वाला है। पाडगांवकर की कविताएं संवेदनशील और भाव प्रवणता युक्त हैं। रसिकों को प्रसन्न करने वाली शैली उसमें विद्यमान है। सुन्दर और तरल काव्य प्रतिमाओं को मूर्त करने में मंगेश पाडगांवकर को सफलता मिली है। श्री ग० दि० माडगूलकर अपने गीत रामायण से तथा अपनी उत्कृष्ट भावमयी और प्रतिभा संपन्न कविताओं के कारण मराठी रसिकों का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। हिमालय पर विदेशी आक्रमण हुआ तब राष्ट्र-निष्ठा और वीर रस जगाने वाली सुन्दर कविताएँ उन्होंने काव्योन्मेष से लिखी हैं। मराठी जनता का यह सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय कवि है। मनमोहन; ओकरकर, पद्मागोले आदि कई कवि ऐसे हैं जिनका काव्य नवीन शैली तथा नवीन प्रयोगों से संपन्न होकर सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में सामने आता रहा है।

दार्शनिकता और पूर्णवादी विचार परंपरा को उत्कृष्टता से प्रकट करने वाले भाषा प्रभु और सिद्ध कवि डा० रामचंद्र प्रह्लाद पारनेरकर भी विशेष उल्लेखनीय हैं। 'अभिनव अभंग' नाम की उनकी कृति तुकाराम के टक्कर की अभंग शैली प्रकट करने वाली है। भाव प्रवणता के साथ शास्त्रीय संगीत की गेयता और विचारों का गांभीर्य उसमें विद्यमान है।

इस छोटे से लेख में मराठी आधुनिक कविताओं में पायी जाने वाली कई प्रवृत्तियों का अंकन करने का प्रयत्न और प्रयास किया गया है। हिन्दी और मराठी काव्य में कई समानताएँ और असमानताएँ विद्यमान हैं। महादेवी की वेदना और व्यथा का साम्य मराठी में पद्मा गोले और इन्दिरा सन्त की कविताओं में मिलेगा। पर फिर भी दार्शनिकता में महादेवी ही सरस ठहरती हैं। समूची मराठी काव्य प्रवृत्तियों का अंकन अपने आप में एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है। अनुभूति, बौद्धिकता, प्रयोग वादिता, दुर्बोधता, प्रतीकात्यकता, सौन्दर्य पूजन प्रेम, बन्धन मुक्तता आदि कई विशेषताएँ और प्रायः सभी अंग्रेजी प्रवृत्तियाँ मराठी नव कविताओं में पाई जाती है। संक्षेप में मराठी का आधुनिक काव्योमेष उज्वल और आशापूर्ण है।

'गुजराती काव्य-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास'

●

बालकृष्ण ज० राकल-'बकुल'

मध्य कालीन युग

गुजराती साहित्य का जन्म काल गुजराती भाषा के प्रारंभ काल से ही माना जाता है। ११वीं शताब्दी से अपभ्रंश का गुजराती परिवर्तन शुरू हो चुका था। यही युग गुजराती भाषा और साहित्य का प्रथम युग भी रहा।

विश्व के हरेक साहित्य में कवि का जन्म सर्व प्रथम हुआ है। गुजराती काव्य साहित्य के इस प्रथम पद्य युग ने भी धर्म प्रधान काव्य साहित्य का सर्जन करके 'रास युग' कहलाने की क्षमता प्राप्त की। विरक्त जैन साधुओं का इस सर्जन में प्रधान योग रहा। जिन धर्म का महत्त्व प्रतिपादित करके, राग से विराग की ओर जाने का—'सिद्धि रमणि परिणेवा' का आदेश देना इस युग के सर्जन का ध्येय रहा था और वह स्वाभाविक था। जैनाचार्य तथा जिन धर्म के सेवकों कीं यशोगाथा को कथा वस्तु बनाकर, जैन साधुओं ने कला की अपेक्षा धर्म को अधिकतर स्थान दिया है। रास, फाग, प्रबन्ध, पद्यवार्ता, स्तवन आदि काव्य प्रकार इसी युग की देन है। नेमिनाथ, बाहुबलि, भरतेश्वर, स्थूलिभद्र, विमल मन्त्री आदि की कथाओं को, उक्त काव्य स्वरूपों के द्वारा व्यक्त करके, उसने अपना एक महत्त्व स्थापित कर दिया है। अज्ञात कवि कृत प्राचीन गुजराती का श्रेष्ठ ऋतु काव्य तथा श्रृंगार काव्य 'वसन्त विलास' भी इसी युग में प्राप्त हुआ। लगभग ढाई सौ साल तक की यह काव्य-सर्जन-प्रवृत्ति अत्यन्त मूल्यवान है। प्रधानतया जैन और कश्चित् जैनेतर कवियों के इस सर्जन के अध्ययन से तत्कालीन भाषीय स्वरूप, साहित्य प्रकार, समाज जीवन, कविता का कलापक्ष और भावपक्ष आदि की जानका[री] प्राप्त होती है।

ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी से गुर्जरीवीणा ने कविता में [...] भक्ति और वैराग्य के तार झंकृत किए। साहित्याकाश [में] 'भक्ति युग' या 'मध्यकालीन युग' का उदय हुआ। [...] सारस्वत धारा का प्रवाह यदि लुप्त नहीं हुआ तो वैष्[...] वीणा की झंकार में मन्द अवश्य हो गया।

सन् बारह से लेकर सन् चौदह तक समग्र भारत के जन[...] में वैष्णवी भक्ति मार्ग को जो विराट एवं सर्वव्यापी धा[रा] फैली, उसी के फलस्वरूप, गुजराती साहित्य में भी [...] लक्षणा भक्ति का जन्म हुआ जिसके आराध्य देव रहे [...] ही अमर पात्र राधा और कृष्ण। कृष्णलीला की मन[...] हकता तथा बन्शी की मधुर ध्वनि ने 'भक्ति युग' की कवि[ता] के क्षेत्र पर अपना प्रधान अधिकार जमा लिया था। अ[...] भारतीय भक्ति-कविता के समान स्तर पर ही गुजराती भ[क्ति] कविता को रखने में औचित्य है।

'भक्ति युग' का जन्म भी सकारण था। विदेशी शासन [...] प्रजा की आत्मा ने परमात्मा की शरण ली। यद्यपि पाँच[वीं] सदी से ही भागवत धर्म के चिह्न तो गुजरात में पाये ज[ाते] हैं पर वह प्रवाह था पौराणिक पुराणगत। उसमें साम्[प्र]दायिक भक्ति प्रवाह मिला। रामनुज और रामानन्द [...] प्रभाव के उपरान्त पुष्टि संप्रदाय का अधिक प्रभाव पड़ा [...] फलतः भगवान कृष्ण की प्रेमोपासना या प्रेमलक्षणा भ[क्ति] का प्रादुर्भाव हुआ।

ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का पवित्र त्रिवेणी संगम भ[क्ति] युग की कविता प्रधान सुर रहा है। यद्यपि परम्परा[...]

काव्य रचना करने वालों ने स्थूल शृंगार दिया है तथापि भक्ति कविता में शृंगार प्रधानतया साधन रहा, साध्य नहीं। भक्त, भगवान और भक्ति का समन्वय हुआ। वैष्णवी धारा के समानान्तर शैव और शाक्त प्रवाह भी चला, ज्ञान मार्ग की धारा भी अविच्छिन्न रूप में चलती रही और शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रतिपादन भी होता रहा। तथापि तत्कालीन प्रजा ने विशेषतया स्नान किया कृष्ण भक्ति की कालिंदी में ही।

गुजराती काव्य साहित्य के भक्ति कालीन कविता के प्रमुख कवि हैं—नरसिंह मेहता, भालण, मीरा, अखो (अक्षयदास) प्रेमानन्द, शामल (शामल) और दयाराम।

'प्रेमरस पाने तु मोरना पिच्छधर' की भावना व्यक्त करने वाला नरसिंह इस युग का प्रमुख भक्त कवि हैं। पद नामक काव्य प्रकार को वाहन बनाकर 'नरसैयाँ' ने भगवान कृष्ण के 'विविध विलासों' को गाया है। भक्त हृदय की कृष्णानुरागी अनुभूति ने कृष्ण-गोपी की विविध दशाओं की, रासमण्डल की तथा वेद-उपनिषद के तत्त्व ज्ञान की भी अभिव्यक्ति की है। 'सखी रूपे नरसैयो निरखे ते कृष्ण जी नो विहार रे' गाने वाला भक्त, सहसा चिंतक बनकर 'एको ऽ हं बहुस्याम' के रहस्य के 'सरल वानी' में गाता हुआ कह उठता है 'अखिल ब्रह्मांड माँ एक तुं श्री हरि झूजवे रूपे अनन्त भासे।' कभी २ 'तत्पनु दूपणुं तुच्छ लागे' कहलाने वाले भक्त कवि 'नीरखने गगनमाँ कारणे घुमी रह्यो तेज हुँ तेज हुँ शब्द बोले' की चिंतनधारा में 'सोऽहम्' सोऽहम्' की याद दिलाता है। इस प्रकार नरसिंह में जहाँ भक्ति शृंगार की रसिकता है वहीं वेदान्तलक्षी चिंतन भी। कल्पना, कविता, रसिकता, चिन्तन, भाषा शक्ति, पदों के रागों का ज्ञान, विविधता आदि नरसिंह की कविता के प्रधान गुण हैं। नरसिंह की 'प्रभातियाँ'—प्रभात में गाई जाने वाली भक्ति-रचना गुजरात के घर-घर में लोकप्रिय है और इसी लोकप्रियता के कारण ही तो नरसिंह की भाषा, अर्वाचीन गुजराती में परिवर्तित हुई पर उसी के अनुगामी, बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का पद्य में भाववादी ही रसानुवाद देने वाले, संस्कृत के महापंडित भालण की भाषा भिन्न सी प्रतीत होती है। 'निशालीथ आवियुं पाटी खडियुं हाथि' के साथ 'जे गमे जगत गुरु देव जगदीश ने' को रखने से यह बात तुरन्त प्रतीत हो जाएगी। 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' महात्मा गाँधी के प्रिय भजन के सर्जक-गायक ही नहीं अपितु वस्तुतः सच्चे वैष्णवजन नरसिंह मेहता का काव्य-साहित्य गुजरात की मूल्यवान संपत्ति है। इसीलिए तो कई इस युग को 'नरसिंह युग' भी कहते हैं।

इसी पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तर्गत 'काव्यउदे प्रबन्ध' नामक ऐतिहासिक प्रबन्ध के रचयिता कवि पद्मनाभ अपने वीर काव्य के लिये प्रसिद्ध हैं। प्रधानतया वीर तथा अन्य रसों से समन्वित यह रचना, 'रणमल्ल छंद' के बाद की दूसरी ऐतिहासिक वीर काव्य कृति है। राजपूत राजा की युद्ध-गाथा, प्रशंसा तथा वीरता का यह काव्य है। भालण के अनुवाद ने तो गुजरात को एक गौरवशालिनी कृति दी। 'कादम्बरी' का पद्यानुवाद, भालण की अनुवाद कला, रस-दृष्टि, विद्वत्ता, कवि प्रतिभा आदि का परिचय देता है। इनके उपरान्त वीरसिंह, कर्मण, भीम, जनार्दन, माँडण, अब्दूर आदि कवियों तथा जैन धारा की रचनाएँ भी मिलती हैं फिर भी पन्द्रहवीं सदी उज्ज्वल है नरसिंह से ही।

सोलहवीं शताब्दी को ही नहीं किन्तु समग्र भारतीय साहित्य को गौरवान्वित करने वाली कवयित्री 'मीराबाई' की कविता हिन्दी और गुजराती दोनों की संयुक्त सम्पत्ति है। अनेक चमत्कारों और किंवदन्तियों से युक्त जिसकी जीवनी है ऐसी मेवाड़ की महारानी मीरा ने तो संसार भर को बड़ी खुमारी से, जाहिर कर दिया था 'मोरो तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई'—या 'मने मारो रामजी भावेजी जो मारी नजरे नावे'। संसार के लिए मीरां विधवा थीं, मीरा के मन में तो 'परणुं तो प्रीतम प्यारो अखंड सौभाग्य भारो' की लगन था।

अपने पदों में मीरा ने शृंगार अधिक गाया है सो भी संभोग की अपेक्षा विप्रलम्भ ज्यादा। मीरा की कविता की मुरली केवल एक ही तान छेड़ती थी—'बाले मा, बाले मा, बाले मा रे;

राधा कृष्ण बिना बीजुं बाले मा।' तो 'प्रेमदीवानी' मीरां 'मारो हंसलो ना नो ने देवल जूनुं तो थयुं' तथा 'मन्दिरियामां दीवडा बिनानुं अंधारू' आदि पदों में शरीर और

आत्मा की फिलसूफी भी लाती है। मीरा का कृष्ण प्रेम स्वार्थमूलक या स्थूल नहीं। वह तो चाहती है 'प्रेमनो पियालो तमने पाउं ने पीयुं।'

मीरा की कविता ब्रज, राजस्थानी और गुजराती भाषा का आभूषण है। भक्त-हृदय की 'पीर' को, स्त्री सहज लज्जा के साथ, ललित कोमल मधुर पदावलि में मीरा ने व्यक्त किया है। मीरा के पदों ने भी लोकप्रियता के कारण सविशेष, पूर्ण गुजराती स्वरूप धारण किया है। 'मुरडानी माया लागी रे भाहेन तारा' गानदासी मीरा की भक्ति-कविता की 'माया' गुजरात के जीवन और संस्कार में अविच्छिन्न रूप से मिल गई है। और मीरा भी कहाँ नहीं मिली थी—'डाबो मेल्यो मेवाडरे मीरा गई पश्चिम मांस'। मीरा भारतीय साहित्य की अनोखी प्रतिभा है।

इस शताब्दी के अन्तर्गत अन्य गौण कवियों में आख्यान कवि नाकर, श्रीधर, उद्धव, चतुर्भुज, सूरदास, वस्तो आदि उल्लेखनीय हैं। इसी शतक ने मीरा की उर्मि कविता के उपरान्त आख्यान का विकसित रूप, पद्य वार्ता, रास, प्रबन्ध आदि प्रकार भी दिए।

संक्षुब्ध राजकीय परिस्थितियाँ तथा जन जीवन में अशान्ति होते हुए भी पन्द्रहवीं सदी ने जहाँ नरसिंह के 'करताल' की धूम मचायी थी —वहीं सोलहवीं सदी ने मीरा के उत्कट ऊर्मि गीतों की हृदयंगम सरिता में स्नान करवाया था।

सन् १७५२ के पश्चात् गुजरात के जन-जीवन में सुख शांति का जन्म हुआ। इस्लामी हुकूमत ने प्रजा की संक्षुब्धता स्वस्थ कर दी। फलतः गुजराती कविता के क्षेत्र में सत्रहवीं शताब्दी अत्यन्त तेजस्विनी रही। वेदान्ती कवि या ज्ञानी कवि अखो (अक्षयदास) तथा मध्यकालीन युग का महाकवि प्रेमानन्द इसी युग के यशस्वी तथा श्रेष्ठ कवि हैं।

भक्ति कविता में तत्त्वज्ञान सरल रीति से व्यक्त तो हुआ था—नरसिंह युग से। अखा के पुरोगामी कवियों ने इस परम्परा का बीज तो बोया ही था किन्तु वह वृक्ष बना-अखा की ज्ञान-काव्य धारा में।

यदि समग्र भारतीय साहित्य में ज्ञानी कवि शिरोमणि कबीर हैं तो गुजरात का कबीर है अखो। सर्वश्रेष्ठ वेदान्ती कवि 'अखा' की कविता की तुलना कबीर की कविता साथ करना अभ्यासी के लिए उचित होगा।

अहमदावाद के जेतलपुर परगना के 'सोनी' अखा को बाल वस्था से ही साधुसंग तथा वैराग्य की बातें अधिक प्रिय थ अपने व्यवसाय में नीति तथा जीवन प्रामाणिकता रखते भी अखा ने विश्वासघात के कटु अनुभव किये। परिण स्वरूप वैराग्य की भावना तीव्र हो उठी और ज्ञान प्र के लिये वह गुरु की खोज में निकल पड़ा किन्तु स उसने दंभी, पाखन्डी और लम्पट गुरु ही देखे। अंत उसने भगवान को ही गुरु मानकर—'गुरु कीधा में गो नाथ', अपनी मानसिक अशांति को दूर करने के वेदान्ती विचार धारा का आश्रय लिया। भगवान शंक चार्य के केवला द्वैत में अखा की श्रद्धा दृढ़ हुई। सं भाषा के इस पंडित कवि ने तत्पश्चात् 'ब्रह्म सत्यं जगन्मि का 'ब्रह्मरस' ही, अपनी 'अखेगीता', 'पंचीकरण', 'अ बिन्दु' आदि कृतियों तथा 'छप्पों' (काव्य प्रकार) में व्य किया। कविता अखा के लिये साधन थी, साध्य तो ब्रह्मानुभूति। पिंड ब्रह्मांड विवेक, द्वैताद्वैत विवेक, आ जगत और ईश्वर की एकता, मायारूपी नटी का स्व मनोनिग्रह का आग्रह, धर्म के पाखंडों और लम्पट गु पर तीव्र कटाक्ष, जीवन्मुक्त के लक्षण, साकार निराकार की प्राप्ति पर बल, सद्गुरु महिमा, ब्रह्मानु का आनन्द ('अगोचर गोचर हवुं'), अविधाधीन की अवदशा, जीव-शिव की एकता इत्यादि अखा काव्य-सृष्टि के चिंतनात्मक मौक्तिक हैं। चिंतन होते भी तेजस्विता अखा में कम नहीं है। वेदान्त के अ सिद्धांतों का अखा ने गुजरात की घरेलू और लोक भाषा को वाहन बनाकर व्यक्त किया है। उसका 'अ बिन्दु' तो 'प्राकृत उपनिषद्' कहा जाता है। श्री उमाश जोशी जी के शब्दों में कहें तो 'अखा की कविता तत्त्व ज्ञान स्वयं ही काव्य बना है और काव्य ने स्वय तत्त्वज्ञान का रूप धारण किया है।'

संस्कृत भाषा या संस्कृत प्रचुर गुजराती भाषा ही अभिव्य के लिये अनुकूल है, इस मत का अखा विरोध हुए कहता है कि 'भाषा ने शुं वळगे भूर, जे रणमां

ने शूर।' और अखा वास्तव में इस रण में जीतता है—वह ज्ञानाश्रयी कविता को रणजीत है। घरेलू भाषा, मुहावरों और कहावतों का मानो अखा ने अपनी कृतियों में - सविशेष छप्पों में बाजार लगा दिया है। फलतः प्रमाण विवेक नहीं रहा और कहीं-कहीं तो औचित्य का अभाव भी खटकता है। अखो 'उपमा कवि' है। 'एक मूरखने रूपी तवे पत्थर एटला पूजे देव' अथवा 'कह्यु कांई ने समज्या कशुं, आँखनुं काजल गाले घस्युं' आदि छप्पों द्वारा धार्मिक पाखंडों की घोर विडंबना की है।

अखो ज्ञान मार्ग का अंध उपासक नहीं है। वह तीनों की—ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की आवश्यकता को स्वीकार करता है। वह कहता है—

'भाई भक्ति रूपी पंखिणी,
जेने ज्ञान, वैराग्य बे पांख छे।
चित्तका मशां तेज ऊड़े,
जेने सद्गुरु रूपी आँख छे।'

अखो के अनुगामी ज्ञानी कवियों में भायादास, राम भक्त, देवीदास आदि गिने जाते हैं, तथापि अखा की कविता 'तत्त्व विचार कविता' है। भालण और मीरां से लेकर अनेक गुजराती कवियों ने—दलपत राम तक, हिन्दी में भी रचनायें की थी। अखा की भी हिन्दी रचनाएँ प्राप्त है।

ज्ञानी कवि अखा का समकालीन तथा मध्यकालीन युग का महाकवि, समर्थ प्रतिभाशील सर्जक तथा आख्यान कला का श्रेष्ठ कलाधर है 'बाणभट्ट' विप्र प्रेमानन्द। आख्यान नामक काव्य प्रकार का बीज तो नरसिंह मेहता के 'गोविंद गमन' में ही मिलता है जिसे जाफर, विष्णुदास, शिवदास, विश्वनाथ ज्ञानी, मुकुन्द आदि कवियों ने समय-समय पर आख्यान लिखकर पोषित किया। वही बीज प्रेमानन्द की कवि प्रतिभा प्राप्त कर के फूला फला और जनप्रिय बना। गुजरात की संस्कृति का स्वरूप आख्यानों में व्यक्त हुआ।

'गुजराती भाषा ने नहीं शणगारुं त्यां सुधी पाघडी नहीं पहेरूं' की कठिन प्रतिज्ञा लेने वाले इस महाकवि ने गुर्जरी वाणी को समृद्ध ही नहीं किया लेकिन उसमें समर्थ एवं अमूल्य रचनाएँ भी दी। रस स्वामी प्रेमानन्द के आख्यानों ने श्रमजीवी वर्ग को मनोरंजन देते हुये भी धर्मपरायण बनाया। गुजरात की प्रजा के सामाजिक जीवन तथा संस्कार को उसने अपनी असंख्य कृतियों द्वारा व्यक्त करके गुजराती कविता की अविस्मरणीय तथा अमर सेवा की है।

रामायण, महाभारत, भागवत, पुराण, भक्त नरसिंह के जीवन आदि से सामग्री लेकर प्रेमानन्द अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर, गुजराती में आख्यान का जनक बना। 'आख्यान पूर्व वृत्तोक्तिः' ही केवल न रहकर वह 'अनेकोक्तिः' बन गया।

श्रोतागण को रसलीन करता हुआ कथाकार प्रेमानन्द, विभिन्न शब्द चित्रों, नाट्य पूर्ण कथन तथा वातावरण, वार्ता के अटूट प्रवाह, भिन्न-भिन्न रसों की अनुभूति और अंत में फल श्रुति आदि के आलेखन द्वारा चित्रात्मक परिस्थिति को जन्म देता है। 'माण' की आवाज में, जनता अपने जीवन की कहानी को सुनती थी और धर्माभिमुख होती थी। प्रेमानन्द ने पौराणिक पात्रों और प्रसंगों को प्राकृत रूप दिया है, जिसे उसकी मर्यादा भी कही जाती है और सफलता भी, संक्षेप में, प्रेमानन्द के सर्जन में तत्कालीन गुजराती समाज साँस ले रहा है और कविवर न्हानालाल ने इसी लिये तो कहा है कि प्रेमानन्द सर्वश्रेष्ठ 'गुजराती कवि' हैं। पात्रों का गुजरातीकरण प्रेमानन्द की शक्ति और सीमा भी है। रस-संक्रान्ति की स्वाभाविकता प्रेमानन्द की अनूठी सिद्धि है।

प्रेमानन्द से कृष्ण, सुदामा, कुँवरबाई, दमयंती, अभिमन्यु, ओखा, अनिरुद्ध, महादेव आदि पुराण या महाकाव्य के पात्र होते हुए भी, उनकी देह में खून या अस्थिमाँस गुजराती है और इसीलिये श्री मुनशी जी ने कहा है कि गुजराती रंगभूमि के इस लघु व्यास ने गुजराती जनता को वार्ता रस या काव्यानन्द देकर उसके धर्म संस्कार का उद्बोधन, पोषण और संवर्धन किया है।

प्रेमानन्द में रससिद्धि, वर्णन, गीत, वर्ण संगीत, अलंकार रसिक कल्पना, भाषा समृद्धि, 'ढाल' आदि महाकवि की खूबियाँ है परन्तु कथाकार होने के नाते पात्रों का प्राकृतीकरण, हास्यरस की स्थूलता, जनमन रंजन का आभास, वर्णनों की एकरूपता आदि खामियाँ उनमें भी मिलती हैं

भिर भी समस्त गुजराती साहित्य प्रेमानन्द की काव्य-प्रसादी से धन्यता का अनुभव करता है।

पद्य-वार्ता का प्रकार भी इसी शतक में विकसित हो रहा था। जैन वार्ता-साहित्य का भी इसमें योग था। देवी भक्त कवियों के माता जी के 'गरबा' ओं ने देवी भक्ति का प्रचार किया था। गुजरात में आश्रय प्राप्त करने के बाद, गुजराती को मातृभाषा स्वीकृत करने वाले पारसियों ने भी अपने धर्मग्रन्थों को गुजराती में अनूदित करने की प्रवृत्ति पैदा हुई। इस तरह सत्रहवीं सदी की काव्य-प्रवृत्ति विभिन्न रूपों में बहती रही और कविता को विकसित करती रही। अठारहवीं शताब्दी के अन्तर्गत दो प्रमुख कवि-शाभल और दयाराम, ने गुजराती कविता को पद्यवार्ता तथा गरबी के काव्य प्रकारों से विभूषित किया।

मध्यकालीन साहित्य का श्रेष्ठ आख्यानकार यदि प्रेमानन्द हैं तो श्रेष्ठ पद्य वार्ताकार है शाभल। भट्टाचरात्तर के रखीदास पटेल का वह आश्रित कवि था।

'सिंहासन क्षात्रिंशिका', 'वसोल पंच विंशति', 'शुकसतिति' तथा 'भोज प्रबन्ध' आदि संस्कृत वार्ता ग्रन्थ, लोक कथाओं तथा जैन, जैनेतर वार्ता की कच्ची सामग्री (Raw-Materials) को लेकर उस पर अपनी कल्पना और वार्ताकला की मुहर लगाकर उपकथा का सर्जन करके जनमनरंजरार्थ शाभल ने अद्‌भुत रसिक पद्यवार्ताओं की सृष्टि की। मानव पात्रों के साथ-साथ पशु-पक्षी, भूत, प्रेत, सिद्ध , जन्म जन्मांतर का ज्ञान, अष्ट सिद्धि, पाताल गमन, गगन विहार, उड़नखटोला आदि चमत्कार हस्त चीजें लाकर शाभल ने, अपनी 'सिंहासन बत्तीसी', 'पंचदण्ड', 'मदन महिधा' 'बेताल पच्चीसी', 'पद्मावती' आदि में रसिकता एवं आश्चर्य के द्वारा परीलोक की रंग बिरंगी दुनिया की सैर करायी है। राजपुत्र, राजकन्या, वणिक, वणिक कन्या आदि के प्रणय और साहस के किस्से तथा स्नेह लग्न, अपहरण आदि का आलेखन करके शाभल ने अपने स्त्री पात्रों को अत्यधिक तेजस्वी चित्रित किया है। वार्ताओं में पहेलियाँ, सुभाषित, दोहे आदि कला-दृष्टि से चाहे मर्यादा मानी जाय पर तत्कालीन जनता के लिये वह अनिवार्य था। उस समय की वह परम्परा थी।

पद्यवार्ताकार शाभल में संसार निरीक्षण, लौकिक व्यव ज्ञान-आदि उपलब्ध होता है। शाभल के बाद यह प्र शुष्क हो गया। शाभल ही श्रेष्ठ रहा।

इसी शताब्दी के दूसरे प्रमुख कवि दयाराम की प्रेम भ की धारा के लिये उसके पूरोगामी कवियों द्वारा भू तैयार कर दी गयी थी। गौरीबाई, कृष्णा बाई, राधा आदि स्त्री कवियों का इसमें योग था। इस युग का अं तथापि तेजस्वी कवि रत्न है भक्त कवि दयाराम। गुण संख्या की दृष्टि से दयाराम का काव्य-सर्जन विपुल समृद्ध है।

चाँदोद के इस नागर ब्राह्मण ने पुष्टि संप्रदाय की 'क बाँधी थी। रूप, कण्ठ की मधुरता और प्रेम लक्षणा भ की उत्कटता का सुन्दर समन्वय दयाराम में था। स ऊपर कृतियों और हजारों पदों की रचना दयाराम ने और गुजराती दोनों भाषाओं में की है।

दयाराम ने पुष्टि संप्रदाय के वेदांत मत तथा भक्ति सि का निरूपण किया है। 'एक वर्यो गोपीजन वल्लभ, स्वामी जन बीजो' की खुमारी में हमें मीरा का स्म होता है। साकार भक्ति के उपासक दयाराम ने, उ सन्देश की कथा 'प्रेमरस गीता' और 'प्रेम परीक्षा' में ग है। 'रसिक वल्लभ' का सर्जक दयाराम खुद भी र वल्लभ ही था। गोपी-भाव को व्यक्त करते हुए दया कहता है—'तमारो तो हरि सधले रे, अमारो तो स्थले' क्योंकि दयाराम के भक्त हृदय की लालसा बै की नहीं व्रज की है 'व्रज वहालुं रे, बैकुण्ठ नहीं अ लां मारो नन्द कुँवर कयांक्ष लावुं।'

दयाराम ऊर्मि गीतों के गायक हैं। उनकी गरबियों गुजरात के हृदय को मोहित कर दिया था। विभिन्न र रागनियों में दयाराम ने राधा, गोपी और कृष्ण की लीला की संवेदना प्रकट की है। 'ऊभा रहा तो कहुं की बिहारीलाल' तथा 'श्याम रंग समीचे न जावुं' अ लोकप्रिय गरवी हैं।

विलासी कल्पना युक्त श्रृंगारी चित्त दयाराम की गर में प्राप्त होते हैं। मध्यकालीन पद-कविता की पराका दयाराम की ऊर्मि गीतों में हैं। सन् १७५२ में इस तेज

कवि का जीवन दीप अस्त हुआ और इसके साथ ही मध्य-कालीन गुजराती-साहित्य युग भी अस्त हो गया।

अर्वाचीन युग

अर्वाचीन युग का अरुणोदय उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। गुजराती प्रजा जीवन का यह अभ्युदय काल था। अंग्रेजी सल्तनत ने देश की बागडोर अपने हाथ में ली और प्रजा ने शान्ति तथा व्यवस्था का अनुभव किया। रानी विक्टोरिया तथा अंग्रेजी राज्य का स्वागत किया गया।

इस युग के दो प्रतिनिधि कवि दलपतराम और नर्मदाशंकर थे। दलपतराम ने अंग्रेजी राज्य की शान्ति की प्रशंसा करते हुए गाया 'हरख हवे तूं हिन्दुस्तान।'

गुजरात में सुधारवादी आंदोलन का श्री गणेश हुआ इसी कालावधि में। फलतः इस युग को साहित्य में 'सुधारक युग' कहते हैं और इस सुधारवादी आन्दोलन के अगुआ थे नर्मद-दलपत, इसलिए इसे 'नर्मद-दलपत युग' या 'नर्मद युग' भी कहते हैं। 'पुस्तक प्रसारक मण्डली' द्वारा ज्ञान की और 'मानव-धर्म सभा' के द्वारा सुधार की प्रवृत्ति का आरम्भ दुर्गाराम मेहता जी ने किया। अन्ध श्रद्धा, स्त्री शिक्षा, छुआछूत, जातिभेद, मूर्तिपूजा, विधवा, विवाह बाल विवाह आदि क्षेत्रों में सुधारवादी क्रान्ति शुरू हुई और इन्हीं प्रवृत्तियों को विषय बनाकर दलपत-नर्मद की काव्यधारा भी बही। समग्र भारत में एक नया युग आकार ले रहा था, नूतन दिशा के द्वार खुलते जा रहे थे और जन समाज एक दुविधा का अनुभव कर रहा था। इसी का परिचय देते हुए दलपतरामजी कहते हैं—

'दीसे आ दुनिया नवी, नवुं दीसे आ धाम।'

सन् सत्तावन की क्रांति को क्रूरता से दबाकर अंग्रेजों ने राजकीय शान्ति स्थापित की। परिणाम स्वरूप प्रजा का पश्चिमी संस्कृति और साहित्य में परिणित हुआ। प्रजा भौतिकता की ओर मुड़ी। १८५७ में की गई बम्बई युनि-वर्सिटी की स्थापना, अंग्रेजी शिक्षा, सुधारवादी प्रवृत्ति धर्म और विज्ञान का संघर्ष, मिशनरियों की धर्म परिवर्तन प्रवृत्ति आदि ने देश में नूतन युग का संचार किया। सामाजिक अनिष्टों को रोकने के लिए 'ब्राह्म समाज', 'प्रार्थना समाज' 'आर्य समाज' आदि के प्रयत्नों ने तथा १८८५ में की गई कांग्रेस की स्थापना ने समाज-सुधार तथा स्वतन्त्रता की भावना को उचित दिशा में मोड़ा।

दलपतराम और नर्मदा शंकर दोनों थे तो सुधारक पर दल-पत की कविता 'धीरे-धीरे सुधारानो सार' की सीख देती है तो नर्मद की कविता 'या होम करीने पडो फत्तेह छे आगे' की उत्साह और 'जामे' की भावना व्यक्त करती है। 'जय जय गरवी गुजरात' के गायक नर्मद ने कविता को आत्म-लक्षी बनाया, जीवनाभिमुख किया। प्रकृति, प्रणय, पर-मात्मा, स्वदेश भक्ति, समाज सुधार आदि विषयों की इस युग की कविता उद्बोधनात्मक अधिक और कलात्मक कम रही है। भारतेन्दु युग के साथ इस युग की उचित तुलना की जा सकती है। अंग्रेजी साहित्य के अभ्यास से कविता में आन्तरिक संवेदना की आवश्यकता स्वीकार की गई न कि केवल राग छन्द, तुकबन्दी या आलंकारिक भाषा की ही।

वीर नर्मद ने महाकाव्य लिखा नहीं पर वह महाकाव्य सा जीवन जी सका है। वह महाकवि नहीं पर महापुरुष अवश्य हैं। श्री मुन्शी जी उसे इसी कारण तो 'अर्वाचीन मन-वन्तरोंका मनु' कहते हैं। 'वहेम यवन' के सामने वह 'सुधारादित्य' बनकर लड़ा है और सबको उद्बोधन करता है—'सहु चालो जीतवा जंग ब्यगुलो वागे।' नर्मद की कविता में स्वस्थता और रसिकता नहीं है पर Dancing egotism of yorth (यौवन का उन्माद) है। उसकी कविता कलाकृति की अपेक्षा मुख्यतः वीर हृदय के सरल, स्पष्ट और साहसिक उद्गार हैं। नर्मद ने अर्वाचीन गुज-राती कविता को आत्मलक्षी ऊर्मि काव्य और नवतर प्रकृति काव्य अवश्य दिए।

दलपतराम की कविता की भूमिका थी संस्कृत और ब्रजभाषा का काव्य सर्जन। नर्मद में जोम था तो दलपत में पुरानी परिपाटी की पांडित्यपूर्ण स्थिरता थी। वीर श्रृंगार की अपेक्षा 'दलपत काव्य' हास्य और शान्त रस को व्यक्त करती है। मस्त नर्मद की 'रोमांटिक' शैली की तुलना में दलपतराम में 'क्लासी कल' शैली पाई जाती है।

इस युग की कविता ने 'आडे', 'बेलडे' तथा 'एपिक' के प्रयोग किए, वीरवृत्त तथा ललित छन्द का उपयोग किया,

कलात्मकता का अपेक्षा विपुलता को अधिक स्थान दिया। फलतः उत्तम कवि प्रतिभा के दर्शन इस युग में नहीं हुए। हाँ, आधुनिक कविता ने इसी युग के काव्य सोपानों पर आरोहण अवश्य किया है।

अन्य उल्लेखनीय कवियों में सुधारवादी कवि नवलराम, 'प्रार्थना समाज' के एकेश्वरवाद की भक्ति भावना तथा बुद्धिनिष्ठ धर्म भावना को कविता में व्यक्त करने वाले भोलानाथ दीवेटिया आदि हैं।

सुधारक युग का अस्त होते हो, युनिवर्सिटी के अभ्यास के फलस्वरूप गुजराती साहित्य में ई० १८८७ से 'पंडित युग' या 'गोवर्धनयुग' का उदय होता है। जब केवल पश्चिमी संस्कृति का उपासक पूर्व नर्मद अपनी उत्तरावस्था में आर्य संस्कृति का पुरस्कर्ता बना था तब यह युग शुभ चिह्नों को लेकर उदीयमान हो रहा था।

प्राचीन पूर्व, अर्वाचीन पूर्व और अर्वाचीन पश्चिम की सस्कृतियों का समन्वय इसी युग ने किया और भारतीय संस्कृति ने नयारूप धारण किया। क्रान्तदर्शी गोवर्धनराम की प्रतिभा ने गद्य में 'सरस्वती चन्द्र' देकर, इस समन्वय कारिणी संस्कृति का आविर्भाव किया। गुजराती कविता भी कलापक्ष और भावपक्ष दोनों की दृष्टि से समृद्ध बनी। विभिन्न प्रतिभा के कवियों में उत्कट साहित्य भक्ति, पूर्ण अभ्यास निष्ठा, ज्ञान-पिपासा, जीवन के उच्च और सनातन मूल्यों के प्रति आदर आदि गुण पाए गए। चिन्तन और परिशीलन उनके सर्जन में व्यक्त हुआ। आपा ने भी संस्कृत का गाँभीर्य धारण किया और इसीलिए इसे पण्डित युग कहा गया जिसके प्रधान कवि हैं नरसिंहराव, बालशंकर, मणिलाल, कलापी, कान्त, न्हानालाल, बलवन्तराय, सबरदार और बोहादकर।

ई० १८८७ में, इस युग के समय कवि नरसिंह राव का प्रथम काव्य संग्रह 'कुसुम माला' प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी ऊर्मिकाव्यों के अनुकरण पर प्रेम तथा प्रकृति के कलात्मक काव्य सर्वप्रथम इसी में मिले। 'ऊठी जे स्वच्छन्दा हृदय-गिरिथी काव्य सरिता, का काव्य-प्रवाह विपुल भी है और सुन्दर भी। श्री मनसुखलाल झवेरी ने ठीक ही तो कहा है कि अर्वाचीन काव्य शकुन्तला का यदि विश्वामित्र बना नर्मद तो कण्व बने नरसिंहराव। नरसिंहराव से ही गुजराती कविता की गति शुद्ध कवित्व की ओर अ[illegible] हुई। 'हृदय वीणा' 'नूपुरझंकार' तथा 'बुद्ध-चरित' [illegible] काव्य-संग्रहों में कवि ने खण्ड काव्य, चिंतन काव्य [illegible] भी दिये तथा 'स्मरण संहिता' में 'एलेजी' (करुण प्र[illegible] का प्रकार दिया। दलपतराम की 'फार्बस विरह' के [illegible] की यह दूसरी तथा श्रेष्ठ करुण प्रशस्ति काव्य कृ[illegible] 'कुसुम माला' के पश्चात् के संग्रहों में शैथिल्य, [illegible] पुनरावृत्ति तथा एकपक्षीय कवित्व रीति ही प्रकट [illegible] आपकी कविता चन्द्र, शुक्र, तारा, सरिता, सागर, [illegible] आदि से आगे न बढ़ी। नरसिंहराव कविता में छ[illegible] अनिवार्यता तथा काव्य रीति में रूप, भावालेखन में [illegible] और विषय में भव्यता का आग्रह रखते थे और इस[illegible] नरसिंहराव को कविता देवी के मन्दिर में साधक का [illegible] दिया गया है, सिद्ध का नहीं।

बालाशंकर, मणिलाल और कलापी की कविता पर [illegible] का प्रभाव दिखायी पड़ता है। आत्मलक्षी ऊर्मिकवि[illegible] इन सर्जकों में से शाक्त सप्रदाय का बालाशंकर पर वेद[illegible] अभेद मार्ग का, मणिलाल पर और स्वीडोनबोर्ग का [illegible] पर असर रहा है। इन तीनों को यदि काव्य साध[illegible] कसौटी पर कसा जाय तो कलापी सर्वश्रेष्ठ ठहरेंगे। [illegible] की 'ककों' ने गुजराती कविता के उपवन में प्रकृति[illegible] प्रणय की रमणीय कविता दी है। संस्कृत वृत्तों का [illegible] ढङ्ग से उन्होंने उपयोग किया है। रमा और शोभ[illegible] प्रणयवेदना के अनुभावक, लाठी के इस राजकुमा[illegible] कविता युवानों में अत्यंत प्रिय है, इतना ही नहीं वह [illegible] भी है। प्रकृति, पशुपक्षी और 'विश्व समस्त' उनके [illegible] 'सन्त का आश्रम' है।

'पूर्वालाप' के कवि कान्त ने 'थोड़े पर अतीत्व मू[illegible] रत्नों की भेंट वागीश्वरी के चरणों में रखी है।' [illegible] काव्य' के जनक ही नहीं अपितु सिद्ध हस्त सर्जक [illegible] कान्त की 'काव्यत्रयी', 'वसन्त विजय', 'देवयानी' [illegible] 'चक्रवाक मिथुन' – (तीन खण्ड काव्य) गुजराती [illegible] की ही नहीं विश्व साहित्य की सर्वोत्तम कृतियाँ हैं। [illegible] विचार अभिव्यक्ति, भावानुकूल वृत्तवैविध्य, भा[illegible] मधुरता तथा ललित कोमल कान्त पदावली आदि का [illegible] समन्वय लेकर काव्य की कविता ने जन्म लिया है।

की क्रूरता के सामने कान्त हृदय की आर्त्तवाणी व्यक्त करते हैं कि इस संसार में ऐसा क्यों है कि— 'प्रेम छे अटेला माटे प्रेम मागी शकुं नहीं।'

धर्म, प्रकृति, मित्र प्रेम आदि भी कान्त की कवनवत्तला थी पर कान्त अमर हैं केवल अपने खंड काव्यों से ही। हाँ, 'सागर अनेशशी' जैसा प्रकृति-काव्य गुजराती साहित्य की मूल्यवान सम्पत्ति जरूर बन सकता है। हिन्दू धर्म के प्रति अश्रद्धा का अनुभव करते हुए कान्त की श्रद्धा खिस्ती धर्म पर दृढ़ हुई थी, जिसके कारण गुजराती को कान्त की कविता का उत्तरालाप न मिल सका। इस प्रकार नरसिंह राव द्वारा पोषित काव्य बसन्त ने कान्त में वसन्त विजय पाया और उसी ने न्हानालाल में वसन्तोत्सव का पर्व मनाया। गुजराती कविता ने समृद्धि का शिखर सर कर लिया महाकवि न्हानालाल दलपतराम में। पिता दलपतराम अपने युग के कवीश्वर, तो पुत्र अपने युग का महाकवि। 'विश्व के इतिहास में पिता पुत्र की ऐसी काव्य साधना दुर्लभ है।'

ई० १९०५ में न्हानालाल का 'वसन्तोत्सव' प्रकाशित हुआ और कान्त ने 'ऊग्यो प्रफुल्ल अभीवर्षण चन्द्रराज' कहके न्हानालाल का स्वागत किया। ई० १९०१ में गुजरात कालेज से 'फिलोसोफी' के साथ एम० ए० तथा उसी बीच में संस्कृत, फारसी तथा इतिहास का अभ्यास उन्होंने किया था, जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास से तथा कल्पना से वस्तु लेकर न्हानालाल ने डोलन-शैली, अपघा गद्य, में नाटक लिखे और उस पर चिंतनात्मक आरोपण किया। काव्य की अभिव्यक्ति के लिये न्हानालाल गेयता को या वृत्त को नहीं किन्तु 'डोलन' या 'लय' को स्वीकार करते हैं। कविता और संगीत में अनिवार्य सम्बन्ध नहीं, इसी मान्यता के आधार पर 'ब्लैंक वर्स' के अनुकरण में न्हानालाल ने डोलन शैली का उपयोग किया। काव्य रहे का विधान Mere नहीं पर Rhythm है और ऐसी लय युक्त शैली ही डोलन शैली है, जो न पद्य है, न गद्य अपद्यागद्य।

कविवर न्हानालाल का साहित्य सर्जन गुण और संख्या उभय दृष्टि से विपुल एवं समृद्ध है। उन्होंने वृत्तबध्य, अछांदस तथा गेय कविताएँ—रास, भजन, गजल, चित्रकाव्य, कथा काव्य, 'कुरुक्षेत्र' सा 'महाकाव्य', 'हरिसंहिता' सा पुराण काव्य; 'इन्दु कुमार' से 'अमबेल' तक के चौदह नाटक के उपरान्त उपन्यास, लघुकथाएँ, अनुवाद, व्याख्यान चरित्रग्रन्थ, साहित्य-विवेचन आदि असंख्य कृतियाँ गुजराती साहित्य को प्रदान की फिर भी न्हानालाल की प्रतिभा षोडस कलाओं से तो प्रकट हुई है कविता में। 'रोमान्टिक' प्रकृति के इस कवि ने कल्पना के गगनगामी उड्डयनों के द्वारा काव्य का माधुर्य गुण अभिव्यक्त किया है। वसन्त वैतालिक कवि न्हानालाल की कविता अश्रद्धा या निराशा को नहीं परन्तु उल्लास तथा आनन्द को व्यक्त करती है। जीवन को दिव्य आदर्श की ओर अग्रसर कराना, पवित्रता, संस्कार और सौंदर्य से स्वार्पण की भावना को प्रकट कराना और आदर्श दाम्पत्य भावना या आत्मलग्न भावना को चरितार्थ कराना ही न्हानालाल की कविता का ध्येय रहा है। शब्दों की रमणीय सृष्टि द्वारा उनकी कविता भावना की उन्नत रसभूमि में ले जाने का कार्य करते हुए आशा, गांभीर्य उन्नत भावना, ललित भाषा, मनोहर लय, कल्पना तथा धार्मिकता को प्रकट करती है।

गुजराती काव्य साहित्य में न्हानालाल की प्रतिभा विशेषतः तो ऊर्मि गीत के कवि की रही है। गुजराती साहित्य का अद्वितीय वस्तुलक्षी कवि यदि प्रेमानन्द हैं तो अद्वितीय आत्मलक्षी कवि न्हानालाल हैं।

'भणकार' काव्य संग्रह के कवि बलवन्तराय ने 'सौनेट' काव्य स्वरूप तथा 'पृथ्वी' छन्द की महान देन गुजराती कविता को दी और सिद्ध भी की। कविता के क्षेत्र में वे 'प्रयोग वीर' थे। छन्द, भाषा, विपद, शैली आदि वे इन्होंने क्रान्ति की शब्दों की, रंगोली की ओर उनका पुण्य प्रकोप भड़का और ऐसी कविता को उन्होंने पोचट कविता कहा। यतिविहीन रचना, अयर्थनता, अर्थमाधुर्य, प्रास की अनावश्यकता और संयमित कल्पना का आग्रह आपने कविता में किया। न्हानालाल की कल्पना लीला के सामने बलवन्तराय की संयमित कल्पना ने अग्रस्थान लिया और कविता के क्षेत्र में एक नूतन प्रयोग हुआ।

पण्डित युग के अन्य प्रधान कवियों में हैं गुजरात के आदर्श कुटुम्ब जीवन के गायक, 'स्त्री भक्त' कवि दामोदर बाटोदकर। पुरुषों के प्रति हमेशा कवि का तीसरा नेत्र ही खुलता रहा है। पुनरुक्ति, दीर्घसूत्रता और गद्यात्मकता से युक्त होते

हुए भी उनकी कविता ने गृहजीवन और ग्राम-जीवन की रसिकता गाई है और जन सामान्य में आदर भी पाया है। 'मढूली' तथा 'विजोग वांसलडी' के गायक कवि ललियजी ने जहाँ मङ्गल गृह-भावों का गान किया है तो वहीं गजेन्द्र बूच की 'गिरनारनी यात्रा' सी श्रेष्ठ कृति भी इसी युग में मिली है। गुजराती काव्य-साहित्य के पण्डित युग की यात्रा भी यहीं पूर्ण करके अब हम गाँधी युग में प्रवेश करते हैं — सन् १९२० के आस पास।

गाँधी युग

ई० १९२० तक की कविता में देश भक्ति और राजभक्ति अभिव्यक्त होती रही। राजकीय आन्दोलनों ने राजभक्ति लुप्त कर दी और स्वातन्त्र्य-संग्राम के आदेश ने देशभक्ति को प्रधान स्थान दिया। ई० १९३० से १९४० तक की कविता का समय, गुजराती साहित्य में अभ्युदय का समय रहा। महात्मा गाँधी की प्रवृत्ति ने सर्वदेशीय व्यापकता, विविधता तथा जीवनाभिमुखता को जन्म दिया। साहित्य, समाज, धर्म, राज्य आदि को व्यापक विश्व की दृष्टि के समक्ष रखकर नई रीति से समझा जाने लगा। गाँधी जी की व्यापकता, धर्म भावना, नूतन जीवन दृष्टि, अछूतोद्धार की प्रवृत्ति, सत्य, अहिंसा के सिद्धान्त, दीन जनवात्सल्य, भाषा की सरलता, समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा, मानव प्रेम, बन्धुत्व, गुरुदेव टैगोर तथा महर्षि अरविन्द का प्रभाव, यन्त्र-संस्कृति तथा विज्ञान की दौड़, स्वातन्त्र्य-भावना आदि नूतन एवम् क्रान्तिकारक विचारधाराओं ने प्रगतिवादी भावना को जन्म दिया और साहित्य ने आमजनता के विराट फलक पर अपने कदम उठाए।

कविता ने वास्तविकता धारण की। उन्नत भाव तथा असामान्य पात्रों के साथ समाज के उपेक्षित भाव तथा पात्र भी कविता के विषय बने। 'ऊकरडो' तथा 'जाजरूनी मारवी' से लेकर 'अन्नब्रह्म' तक के विषयों का आलेखन किया गया। क्षुद्रतम विषयों से लेकर भव्यतम विषयों की यात्रा गाँधी युगीन कविता करने लगी। लोक बोली से लेकर वेद तथा उपनिषद की आर्यवाणी भी व्यक्त हुई। काव्य स्वरूपों के क्षेत्र में देशी, लोक गीत, गीत, रास, भजन, ऊर्मिकाव्य, खण्डकाव्य, सोनेट, मुक्तक, गज़ल, बंगाली लय, फारसी रंग आदि का प्रचलन हुआ।

इस युग के प्रधान कवियों में सर्व श्री 'सुन्दरम्', उमाशं[illegible] जोशी, रामनारायण पाठक (शेष), 'स्नेहरश्मि', झवेरच[illegible] मेघाणी, कृष्णलाल श्रीधराणी, मनसुखलाल झवेरी, [illegible] जी बटोई, पूजालाल, मगन भाई पटेल (पतील), करसन[illegible] माणेक, इन्दुलाल गांधी, 'स्वप्नस्थ', 'उपवासी', चन्द्रव[illegible] इत्यादि का स्थान हैं।

श्री उमाशंकर तथा श्री सुन्दरम् की कविताओं ने गांधी[illegible] को ही प्रधानतः प्रकट किया। 'काव्य मंगला' तथा 'क[illegible] भगतनी कडवी वाणी' में श्री सुन्दरम् ने तथा 'विश्वशा[illegible] और 'निशीथ' में श्री उमाशंकर जी ने नवीन कविता [illegible] स्वरूप और भाव दोनों की दृष्टि से व्यक्त किया [illegible] गांधी युग की लक्षण धारा का पूर्ण आविर्भाव उन [illegible] में हुआ। 'विश्वशांति' से 'बसंत वर्षा' तक के अपने क[illegible] संग्रहों में श्री उमाशंकर जी काव्य वर्षा ने काव्य और जी[illegible] दोनों को उच्चता प्रदान की है। व्यक्ति से समष्टि [illegible] उनके प्रेम भाव ने विस्तार किया है। आज कल की उ[illegible] कविता में आत्मान्वेषण वृत्ति अधिक पायी जाती है [illegible] छिन्न-भिन्न छुँ' में विषाद तथा विश्वव्यवस्था के प्रति नि[illegible] का भाव दिखायी पड़ता है। 'कोथा भगतनी कडवी व[illegible] से लेकर 'यात्रा' तक के काव्य-संग्रहों के कवि श्री सु[illegible] की काव्य यात्रा ने काव्य-कला के विविध क्षेत्रों को [illegible] समृद्ध किया है। बालोपभोग्य काव्य, 'लोकलीला' [illegible] आख्यानात्मक कृति, दलपत शैली में 'एक कविता प्र[illegible] आदि के उपरान्त श्री सुन्दरम् की कविता ने गांधी यु[illegible] विचारधारा को पूर्णतः अभिव्यक्त किया है। 'यात्रा-[illegible] की कविता में अर्वाचीन गुजराती चिंतन कविता का [illegible] शिखर सर किया है। महर्षि अरविन्द की फिलसूफी [illegible] पूर्ण प्रभाव सुन्दरम् पर पड़ा है फिर भी तत्त्वज्ञान [illegible] कविता ने कवि की प्रतिभा को मंदतेजस नहीं किया [illegible] अनुभूति ने उनकी कविता को अधिकतर तेजस्वी ब[illegible] है। जीवन की समीक्षा इन दोनों कवियों की कवित[illegible] मुख्य सुर रहा है।

इस युग के अन्य कवियों में, 'शेषनां काव्यों' के [illegible] प्रधान कवि रामनारायण पाठक; राष्ट्रीय अभ्युदय [illegible] प्रवृत्तिको, अज्ञात के आकर्षण को और प्रणय के भाव[illegible] प्रकट करने वाली कविता के सर्जक, 'पनघट' और '[illegible]

के कवि श्री स्नेहरश्मि गांधी युग की भावना, साहित्य के रङ्ग तथा रवीन्द्रनाथ की कविता प्रवाह से प्रभावित कवि—'युगवन्दना' के सर्जक स्व० मेघाणी जी; ईलाकाव्यों के कवि श्री चन्द्रवदन महेतो; मुक्ति भावना को प्रधान स्वर बनाकर काव्य-सर्जन करने वाले 'कोडियाँ' के कवि स्व० कृष्णलाल श्रीधराणी; प्रसाद गुण युक्त तथा ऊर्मि और चिंतन का समन्वय करने वाली कविता के कवि, 'आराधना', 'अनुभूति' और 'अभिसार' के सर्जक श्री मनसुखलाल झवेरी; पाँच खण्ड-काव्यों की काव्य सम्पत्ति से गुजराती कविता को समृद्ध करने वाले 'ज्योति रेखा' के सर्जक, गम्भीर दृष्टि वाले कवि तथा 'सद्गत चन्द्रशीला ने' में मृत्यु का मङ्गल दर्शन कराने वाले श्री सुन्दर जी बटोई, 'पारिजात' के कवि, अरविन्द आश्रम के साधक, सांप्रदायिक मर्यादाओं से मुक्त भक्ति भाव को प्रकाशित करने वाले तथा कलोपासक और भक्त को भी परितोष देने वाली रचनाओं के कवि पूजालाल; गांधी युग के परिबलों से मुक्त आत्मपरस्त और मस्तरङ्गी कवि, उमर खय्याम की मस्त प्रकृति के साथ-साथ स्वातन्त्र्य संग्राम की भावना वाले, सत्याग्रह के सैनिक, पत्रकार, कवि, 'अर्वाचीन प्रेमानन्द', तथा 'आलबेल', 'मध्याह्न' 'गोरसी', 'शतदल' आदि के प्रतिभा सम्पन्न सर्जक श्री करसनदास माणेक; साम्यवादी विचार धारा से प्रभावित कवि 'स्वप्नस्थ' और 'उपवासी'— इत्यादि कवियों के साथ-साथ, 'केडी' के 'कविरूँबादरायण', श्री मुरली ठाकुर, श्री रमणिक अरालवाला, श्री पाराशर्य, श्री नाथालाल दवे, श्री कोरसक, स्व० हरिश्चन्द्र भट्ट, प्रजाराम रावल, ज्योत्स्ना बहन शुक्ल, हीराबहन पाठक, जयमनगौरी पाठक जी, प्रेमशंकर ह० भट्ट, देव जी मोठा वगैरह कवि भी उल्लेखनीय हैं।

इसी युग में 'गज़ल' नामक काव्य प्रकार ने भी काफी तरक्की की। बालाशंकर ने जिसका आरंभ किया था और जिस काव्य प्रकार को कलापी, मणिलाल, सागर आदि ने विकसित किया था, उसको स्वतन्त्र रूप मिला शयदा, बेकार, पतिल, अनिल आदि गजलकारों की कलम से। इस प्रकार सन् १९३० से १९४० तक के अल्प काल में गुजराती कविता ने जहाँ समृद्धि काल देखा वहाँ १९४७ की आजादी तक मंद प्रवाह का भी अनुभव किया है। राजकीय अशांति के इस काल ने सर्जन की धारा स्थगित कर दी और उसे कोई प्रमुख कवि प्राप्त नहीं हुआ। हाँ 'प्राचीना' की उत्तम काव्य प्रसादी श्री उमाशंकर से अवश्य प्राप्त हुई है।

सन् १९४७ में स्वातन्त्र्य का सूर्योदय हुआ। प्रजा जीवन ने सुख के सूरज की आशा बाँधी, परन्तु यह आशा क्षण-भंगुर रही। देश का बँटवारा हुआ, धर्म के नाम पर खून की होली खेली गयी, नैतिक मूल्यों का उपहास किया गया, मानवता की दिल्लगी उड़ायी गयी, गांधीवाद मानों कल की बात हो गयी और प्रजा ने अपनी आशा की इमारत टूटते हुए देखी। कविता ने पूर्णतः स्वातंत्र्योत्तर आनन्द नहीं गाया और गा भी कैसे सकती? फलतः १९४७ के बाद की गुजराती ही नहीं किन्तु समग्र भारतीय कविता वास्तव लक्षी बनी। वास्तविक परिस्थितियों के अनुभव कविता के विषय बने। इन्सानियत ने जो नग्नता का तांडव खेला था उससे संक्षुब्ध होकर और निराशा तथा दुविधा का अनुभव करके कवि ने उसी नग्नता का दर्शन या 'प्रदर्शन', कविता में जैसे-थे' की अवस्था में ही किया। रङ्गलीला, कल्पना की उड़ान, भविष्य की आशा की मधुर ध्वनि आदि कविता से हटाये गये और इस 'नवीनतर कविता' ने, विश्व की समस्याओं को 'अपनी' दृष्टि से देखा। सामाजिक विसंवादिता तथा विश्व की विषमता की ओर नवीनतर कविता का प्रकोप तो है ही परन्तु वह गांधी युग की कविता के समान क्रांतिकारक नहीं, वास्तवदर्शी है। आजका कवि जानता है कि यन्त्र संस्कृति तथा वैज्ञानिक उन्नति ने व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को लुप्त कर देने की चेष्टा की है और उसके सामने वह जागरूक होकर, उस भय की ओर संकेत भी करता है—

'स्वत्व नहीं व्यक्तित्व नहीं,
नहीं नाम अने नहीं रूप।'

कवि की दृष्टि में ऐसे लोग तो 'जीवता होय जाणे मृत्युना ओला' के समान हैं। उनकी जिन्दगी केवल मौत की परछाई है।

नवीनतर कविता ने गाया है लोकशाही तथा गांधीवाद की विडम्बना को, कलुषित सत्ता-लालसा, नीति की उपेक्षा और योजनाओं की निस्सारता को। क्षुब्ध होकर कवि कहता है 'योजना अवयोजना।' तथा 'आलोकशाही?""

ना, जनतन्त्रनी ए पाके शाही।' आज का कवि परिस्थिति का यथातथ्य आलेखन करके ही शांत हो जाता है। उसे कोई उपाय सूझता नहीं। गांधी युग में वैषम्य निवारण का उपाय था आजादी, आज ऐसी कोई आशा का बसंत नहीं है पर निराशा की पतझड़ ही दिखायी पड़ती है। 'भूख्यां जनोनो जठराग्नि जागशे, खंडेरनी भस्मकणी न लाधशे' का गांधी युग का आशावाद चरितार्थ नहीं हुआ है। इसीलिये नवीनतर कविता सहानुभूति के स्थान पर समभाव ही व्यक्त करती है जोकि वास्तविक जीवन का अनुभव है।

नवीनतर कविता ने अभिव्यक्ति के क्षेत्र में प्रयोग भी किये हैं। काव्य की भाषा, छंद, अलंकार, भाव प्रतीक, वस्तु, आदि की बाह्य और आंतरिक सृष्टि में कविता ने नवीनता धारण की है।

भाषा सरल, घरेलू तथा निराडम्बरी बनी है। काव्य-वाणी को लोक-वाणी से भिन्न नवीनतर कवि नहीं मानता है। विषय तथा पात्र के योग्य भाषा, विदेशी शब्द तथा गद्य के निकट की बोली का प्रयोग नवतर कविता में हो रहा है। संस्कृत वृत्त, देशी 'ढाल', अभ्यस्त या परम्परित छन्द तथा वृत्तों की अर्थानुकूल योजना, अछांदस तथा वृत्तबद्धता का एक ही काव्य में प्रयोग करना, आदि छन्द योजना में नवीनतर कविता ने प्रयोग किये हैं। अलंकारों में भी यथार्थ दर्शन ने स्थान लिया है। '१३-७ नी लोकल' में श्री सुन्दरम् लिखते हैं—

> 'ने नवीन शिखाड को,
> आ खुदाबक्ष संधनो।
> लपातो क्यांक बेठो छे,
> छूपा को गूमडा सभो।'

आज का कवि सौंदर्य की अपेक्षा सत्य के दर्शन का आग्रही है।

भाव प्रतीक का प्रश्न आजकी कविता में महत्त्व का प्रश्न है। 'ये प्रतीक अनुभूति मूलक या कवि की संवेदना के अंश के रूप में जो आविर्भूत पाते हैं तो प्रतीतिकर लगते हैं, नहीं तो जान बूझकर, यथार्थप्रियता के अंधमोह में आकर ये जब लाये जाते हैं तो कृत्रिम बन जाते हैं और बहुधा नवीनतर कविता में यही मोह आजकल प्रतीत होता है। कोष्ठकों में कविता का भाव व्यक्त करने की प्रवृत्ति भौमितिक आकृतियों की चेष्टा भी पायी जाती है।

ऊर्मि की निरंकुश अभिव्यक्ति के लिए गीत रचना का विपुल सर्जन होता जा रहा है! मध्यकालीन युग के मीराबाई, दयाराम आदि का अनुसरण आज की गीत नाओं में मिलता है। प्रणयालेखन में वही मस्त, लापरव विरहण्य था, शृंगार चेष्टा आदि है, हाँ भक्ति की अनु नहीं है। राधा कृष्ण को निमित्त बनाकर कवि प्रेम निर्बन्ध सृष्टि का आलेखन करता है। प्रकृति, मानव तथा परम तत्त्व प्राप्ति की उत्कट भावना गीत के बने हैं। भूदान आन्दोलन—'मबलखनो दातार, भी घर घर टहले पुकारे' में व्यक्त हुआ तो 'तमे छंछेदयो शेषनाग' में चीनी आक्रमण की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती 'घणाणा बूँगियो बाज्यो', में सुन्दरम् और 'एक कर छे सुन्दर सवारी' में पूजालाल, तत्त्वज्ञान को करते हैं।

प्रो० ठाकोर की सफल सौनेट रचना का इतना आव आज के कवि को नहीं रहा है जितना गाँधी-युग के को था। कारण स्पष्ट है। नवीनतर कविता चिंतन प्र की अपेक्षा सम्वेदनशील अधिक है।' संस्कृति वृत्त बन्धन उसे खटकता है और नवीनता लाने की उ लालसा है। ऐसा होने पर भी राजेन्द्रशाह, निरन्जन भ बालमुकुन्द दुबे, उशनस् आदि ने कई उत्तम सौनेट लि जो कि भाव और चिन्तन की तुलना में समृद्ध हैं।

मुक्तक रचना की ओर नवीनतर कविता का आकर्षण शेष रहा है। शब्द और अर्थ की चमत्कृति ऐसे मुक्तकों पाई जाती है। अन्योक्ति, कटाक्ष, श्लेष आदि की व्यक्ति के लिए ऐसी रचनाएँ सफल हुई हैं। दलपत का दर्शन भी मुक्तकों में मिलता है। ऐसे मुक्तकों में काव्यत्व प्राप्त नहीं हो सकता है।

नवीनतर गुजराती कविता ने गीत, सौनेट या मुक्तक तुलना में खण्ड काव्य कम दिये हैं क्योंकि नवीनतर क ने कविता के विषय का दृष्टि बिन्दु ही बदल दिया आजका हमारा कवि बहुधा अंतर्मुख बना है, वह निरीक्षण करता है और प्रतिनिधि के रूप में नहीं व्यक्ति के रूप में अपने आपको अभिव्यक्त करना

हैं। फलतः खण्ड काव्य या प्रसङ्ग काव्य को वह जन्म नहीं दे सका है, यद्यपि उसके पास ऐसी शक्ति है। कवि उशनस् ने 'नेपथ्ये', श्री राजेन्द्र शाहने 'श्रुति', बालमुकुन्द देव ने 'अंतिम घड़ी' आदि में ऐसी दीर्घ चिन्तन समर रचनायें दी हैं। प्रजाराम रावल ने 'चन्द्रोदय', 'विश्वामित्र' और 'पाशुपतास्त्रनी प्राप्ति' में भी वर्णन चिन्तन की कविता दी है। श्री हसित बूच ने 'सूरमंगल' तथा श्री प्रेम शंकर ह० भट्ट ने 'श्री मङ्गल' में गीत-संगीत प्रधान नाट्यात्मक कृतियाँ भी दी हैं।

नवीनतर कविता का आविर्भाव हुआ है द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर परिस्थितियों से। फलस्वरूप पश्चिमी कविता का प्रभाव अत्यधिक रहा है। उसका अभ्यास भी पर्याप्त् मात्रा में हो रहा हैं। विषयालेखन में गुजराती कविता ने नवीनता धारण की और पश्चिमाभिमुख हुई। यथार्थप्रियता के मोह ने उसे अश्लीलता का रूप भी दिया है तथा अभ्यासनिष्ठा की उपेक्षा भी उससे करवाई है। अछांदस रचनाओं ने मामूली छोकरों को भी कविता करने का अवकाश दिया है जो कि गुजराती कविता की सीमा ही मानी जाय। 'आपु कविता' को नर्मद 'झट-झट जणती भूँडण' कहता था, क्या हम आज की अछांदस प्रयोगात्मक नवीनतर कविता के लिये यह विधान लागू नहीं कर सकते।

नवीनतर गुजराती कविता अगेय से गेय तथा चिंतन से ऊर्मि की ओर गति कर रही है। उसका अपना एक व्यक्तित्त्व आकार ले रहा है। इसके प्रधान उल्लेखनीय कवि सर्वश्री राजेन्द्र शाह, निरंजन भगत, प्रजाराम रावल, 'उशनस्', बालमुकुन्द देव, वेणी भाई पुरोहित, प्रियकान्त मणियार, सुरेश जोशी, हसित बूच, जयंत पाठक, उपेन्द्र पंड्या, गीता परीख, पिनाकिन ठाकोर, हसमुख पाठक शेखादम आबूवाला, हरीन्द्र देव आदि हैं। अन्य कवि हैं सर्वश्री सुरेश दलाल, जयंत पारेख, सीतांशु यशश्चन्द्र, दिलीप झवेरी, प्रद्युम्न तन्ना, योसेफ मेकवान, रतिलाल छाया, रमेश जानी, गुलाम मुहम्मद शेख, प्रासन्नेय आदि।

नवीनतर कविता में डोलनशैली का सूक्ष्म प्रभाव दिखायी पड़ता है। वृत्त की आवश्यकता स्वीकार न करने के कारण छंद स्वातंत्र्यता के साथ-साथ छंदस्वच्छंदता ने भी प्रवेश किया है। यह भी विचारणीय है। नवीनतर कविताओं में मर्यादाएँ होते हुए भी गुजराती कविता ने विषय और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में बहुमूल्य सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। गुजराती काव्य सर्जन की सीमा विस्तृत होती जा रही है। काव्य सिद्धि में भाषा और वृत्त की जो मर्यादाएँ बाधा बन कर आती थीं वे भी दूर हो रही हैं और प्रयोगों की परंपरा ने यद्यपि अनिष्ट तथा निरूपयोगी काव्य-सर्जन किया है फिर भी उससे काव्य का तो विकास ही हुआ है। यहाँ गुजराती कविता का भविष्य दर्शन कराना कठिन बात है क्योंकि नवीनतर गुजराती कविता प्रयोगावस्था में है। नयी दिशा के उदय होने की सम्भावना कवि-प्रतिभा पर निर्भर रहती है। इसलिये भविष्य की गुजराती कविता अधिकतर गौरवशाली बनेगी ऐसा हम अपने गुर्जरी काव्य-सर्जन के लिये निस्सन्देह कह सकते हैं। गुजराती कविता काव्यधारा केवल 'गुजराती' ही नहीं रही है किन्तु विश्व-व्यापी बन गयी है। उसका स्पष्ट या अस्पष्ट एक चित्र अवश्य उपस्थित होता जा रहा है। कुछ भी हो, श्री 'सुन्दरम्' के शब्दों में समापन करते हुए हम इतना ही कहेंगे—'किसी भी स्वरूप में काव्य का निर्माण होता जाय, किसी भी आकार में ढले, कवि और काव्यकला के भक्त को तो केवल इतना ही देखना चाहिए कि काव्य यदि जीवन सत्त्व और रस सौंदर्य है तो उसके लिये वह अपनी रसवृत्ति और सर्जन शक्ति को सज्ज करे।'

अंत में गुजराती कविता के उज्ज्वल भविष्य की श्रद्धापूर्वक कामना करते हुए, उसके अर्वाचीन युग के अरुण नर्मद के शब्दों में इतना ही कह देना पर्याप्त है—

'शुभ शकुन दीसे, मध्याह्न शोभशे,
बीती गई छे रात,
जय-जय गरवी गुजरात।'

गुजराती काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

मनसुखलाल झवेरी

सन् १९४७ के पहले गुजराती कवि को केवल स्वातंत्र्य की ही धुन लगी थी ऐसा कहा जा सकता है। उसके गीत, गीति-काव्य, कथा-काव्य, वर्णनात्मक या चिंतन-प्रधान काव्यों में से भी वह ऐसे ही प्रसंगों या कथाओं का चयन करता था जो उसकी स्वतन्त्रता की आकांक्षा के अनुकूल होतीं तथा जिनमें उसके स्वप्न प्रतिबिम्बित होते। उसके जीवन की मंजिल सुस्पष्ट थी। उसकी शक्ति की सम्पूर्ण धारा उसी मंजिल की ओर प्रवाहित हो रही थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के आज स्वातंत्र्य की आकांक्षा का प्रेरक बल नहीं रहा है तथा कवि की दृष्टि को आकर्षित कर सके ऐसा कोई स्पष्ट एवं निश्चित ध्येय भी उसके पास नहीं है। देश में राष्ट्र के नव निर्माण के लिए भव्य तथा भगीरथ प्रयत्न हो रहे हैं यह ठीक है पर न जाने क्यों राष्ट्रनिर्माण का यह कार्य अब तक कवि-हृदय की प्रेरणा नहीं बन सका है, इस सर्वसामान्य उदासीनता के कारणों की चर्चा करना यहाँ सम्भव नहीं है तथापि इतना तो स्पष्ट ही है कि विदेशी शासन के जूए से मुक्त होने की घोषणा का जैसा बुलन्द उत्तर २५ वर्ष पहले के कवि ने दिया था वैसा उत्तर वर्तमान गुजराती कवि राष्ट्र के नव-निर्माण की घोषणा का नहीं दे सका है।

गुजराती कविता समूचे जीवन तथा जगत् को अपने हृदय में समाने के लिए उद्यत हो रही है। जीवन और जगत् के उत्तमोत्तम तथा उच्चतम तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए एवं सौन्दर्य की सूक्ष्मतम आत्मा को अपनाने के लिए गुजराती कविता प्रयास कर रही है। गांधी युग के कवि के समान ही आज का कवि भी जीवन के सभी व्यक्त रूपों को स[...] भाव से पवित्र एवं स्वीकार्य मानता है।

गांधी युग के आरम्भ में, अर्वाचीन कविता में छन्[...] प्रयोग इतने हो रहे थे कि छन्दों के सौन्दर्य की अवहे[...] होने लगी थी। छन्दों का जोड़-तोड़, छन्दो मिश्रण [...] सांकर्य सिद्ध करने में बहुत से कवि खो गए। अत: कवि[...] और गेयता का सम्बन्ध क्षीण हो चला। इतना ही [...] दोनों एक दूसरे से विमुख भी होने लगे। इस अत्या[...] का प्रतिरोध होना भी स्वाभाविक ही था। सौभाग्य[...] गुजराती के उत्तम कवि ऐसी मात्र अर्थवहता सिद्ध क[...] के व्यामोह से मुक्त हो गए। श्री उमाशंकर, श्री 'सुन्दर[...] श्री बेटाई आदि ने मनोहर एवं सुमधुर गीत लिखे हैं [...] वर्णिक छन्दों में भी यति शुद्धि, भाषा सौन्दर्य, अन्त्यानु[...] तथा शब्द माधुर्य की सिद्धि प्राप्त की है। अद्यतन युग[...] कवि सर्व श्री राजेन्द्रशाह, निरंजन भगत, बालमुकुन्द [...] प्रह्लाद पारेख, वेणी भाई पुरोहित आदि गीत की [...] में ही विशेष रूप से सफल हुए हैं। आज की कविता [...] प्रवाह छन्द की अपेक्षा गेयता की दिशा में आगे [...] रहा है।

आजकी परिस्थिति में सुदीर्घ, वर्णन प्रधान या चिन्तन प्र[...] काव्य लिखने की सुविधा कवि के लिए कम ही है। लेकि[...] गीत कितना भी उत्तम क्यों न हो उसमें केवल एक [...] भाव या एक ही ऊर्मि का आलेखन हो, सकता है। सू[...] एवं अमूर्त विचार का वहन गीत के माध्यम से करना क[...] आसान काम नहीं है। ऐसा लगता है कि गुजराती के कवि[...]

फिलहाल महाकाव्य लिखने का प्रयास छोड़ दिया है। मुक्त-पद्य (blank verse)[1] जैसा कोई छन्द गुजराती में न होने के कारण गुजराती में महाकाव्य लिखना सम्भव नहीं हुआ है ऐसा मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। मेरे अनुसार यही मानना ठीक होगा कि महाकवि की शक्ति ही किसी में नहीं है। गाँधी युग के कवियों में से सर्वश्री उमाशंकर जोशी, 'सुन्दरम्', तथा सुन्दर जी बेटाई ने अब तक काव्य लिखना जारी रखा है। श्री उमाशंकर जोशी वर्तमान युग के सर्वाधिक प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। कुछ वर्ष पूर्व ही आपका ५वाँ काव्य-संग्रह 'वसन्त वर्षा' प्रकट हुआ है। 'वसन्त वर्षा' के कई गीतों में आपने प्रकृति के विविध मनोभाव सुचारु रूप से प्रतिबिंबित किये हैं तथा हर्ष-शोकादि भाव कवित्वमय रूप से व्यक्त किये हैं। कुछ समय पहले 'सुन्दरम्' का 'यात्रा' नामक काव्य-संग्रह भी प्रकट हो चुका है। यात्रा की कविताओं में 'सुन्दरम्' की आध्यात्मिक यात्रा का कलापूर्ण निरूपण हमें मिलता है। श्री 'सुन्दरम्' अब 'वसुधा' के यात्री हो चुके हैं। वाह्य सौन्दर्य का दर्शन होते हुए भी श्री उमाशंकर का कवि हृदय विविध उर्मिस्पंदन का अनुभव करता है। भीतरी सौन्दर्य की झाँकी मिलने पर 'सुन्दरम्' तत्त्वज्ञान के प्रदेश में उड़ने लगते हैं। उमाशंकर और 'सुन्दरम्' दोनों की खोज सत्य की ही है, लेकिन उमाशंकर उसे सुन्दर के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं जब कि 'सुन्दरम्' योग के माध्यम से। श्री सुन्दर जी बेटाई के काव्य-संग्रह विशेषांजलि में स्वस्थता एवं गौरव तथा संयम के जो दर्शन होते हैं वह कवि के निजी गौरव को ही प्रतिबिंबित करता है। इसी काल के अन्य कवियों में से सर्वश्री 'स्नेह रश्मि', पूजालाल, करसनदास माणेक तथा स्वर्गीय कृष्णलाल श्रीधराणी विशेष उल्लेखनीय हैं।

नये दौर के कवियों में से उल्लेखनीय हैं सर्वश्री राजेन्द्रशाह, निरंजन भगत, बालमुकुन्द दवे, वेणी भाई पुरोहित, 'उशनस्।' अपनी कल्पना की लीलामयता तथा दर्शन की उच्चता के कारण श्री राजेन्द्रशाह, लय की असामान्य सूझ तथा वर्ण्य वस्तु एवं रीति दोनों के प्रति विशिष्ट और प्रगल्भ अभ्युपगम के कारण श्री निरंजन भगत, सच्ची कविता की मधुरता तथा प्रसाद के कारण श्री बालमुकुन्द दवे, सुमधुर गेयत्व के कारण श्री वेणी भाई एवं श्री 'उशनस्' गुजराती कविता के प्रतिनिधि माने जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त आजकल श्री मकरन्द दवे, श्री प्रजाराम, श्री जयन्त पाठक, श्री प्रियाकान्त मणियार तथा श्री पिनाकिन ठाकोर आदि की देन भी कविताओं में उल्लेखनीय है।

वर्तमान गुजराती कवि अपने को उत्साहपूर्ण रीति से जिसमें तल्लीन कर सके ऐसी कोई विशिष्ट भावना उसके पास नहीं है। अतः आज का गुजराती कवि पुनः प्रेम तथा प्रकृति के सनातन विषयों की ओर ही झुका है। आज के गुजराती कवि का यौवन का प्रेम होने के कारण आवेशमय, ताजा तथा मधुर है। किन्तु अभी तक उसकी अनुभूति में प्रेम की पीर की वह गहराई नहीं आ पाई है जिसका प्रेम से सहज सम्बन्ध है तथा जो विरह एवं मिलन दोनों अवस्थाओं में सदैव उसके साथ रहती है। मानव मन के अतल में पैठना अब भी उसके लिए शेष है।

आज के कवि का छन्द पर पूर्ण अधिकार, उसका शब्द भण्डार समृद्ध है और लय की लीला भी उसकी कविता में दिखाई देती है। किन्तु कभी-कभी संस्कृत छन्दों के प्रयोग के समय वह चक्कर में पड़ जाता है तो कभी-कभी अपूर्ण अर्थ वाचक शब्दों का प्रयोग भी उससे हो जाता है। कभी वह केवल चातुरी दर्शन के मोह में फँस जाता है तो कभी उसका काव्य शब्द क्रीड़ा बन जाता है। कभी उसकी कविता में लय के सिवा कुछ होता ही नहीं। कभी भाव-संवेदन व्यक्त होते-होते एकाएक बीच में ही रुक जाता है तो कभी उसकी रचना सूक्ति या सामान्य मुक्तक से आगे नहीं बढ़ पाती। हाँ, विचार, कल्पना तथा दर्शन की दृष्टि से समृद्ध, सुदीर्घ तथा सुश्लिष्ट काव्य किसी भी भाषा और साहित्य में रोज-रोज नहीं लिखे जाते। अतः गुजराती में ऐसे काव्यों की कमी पर चिन्ताकुल हो उठने का कोई कारण नहीं। पर यह बात तो स्वीकार करनी ही होगी कि आज की गुजराती कविता संक्षिप्त, मधुर-मधुर, सुगेय तथा प्रवाहमय बन रही है। गहराई, विशालता तथा दीर्घता इन तीन परिमाणों को सिद्ध करना आज की गुजराती कविता के

[1]—यद्यपि हिन्दी में blank verge के लिए अतुकान्त छन्द शब्द प्रचलित है किन्तु मुक्त-पद्य में अतुकान्त छन्द से थोड़ा अन्तर है।

लिए अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। दर्शन के क्षेत्र में भी आज के कवि ने कोई विशेष विकास नहीं किया है।

आज की कविता में जो नये-नये प्रकारों का विकास हो रहा है उनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं पद्य-रूपक का प्रकार। पद्य-रूपक न तो पूर्ण विकसित नाटक है और न दीर्घ कथा काव्य। पद्य-रूपक में केवल एक ही नाट्योचित परिस्थिति निरूपित की जाती है ऐसी परिस्थिति जो अपने आप में व्यंजक एवं रहस्यपूर्ण हो और जिसमें छन्दोबद्ध संवादों के रूप में प्रस्तुत होने की क्षमता हो। पद्य-रूपक के कुछ उत्तम दृष्टान्त श्री उमाशंकर जोशी के 'प्राचीना' संग्रह में मिलते हैं। श्री 'उशनस्' ने भी 'नेपथ्ये' संग्रह में इसी प्रकार के कुछ काव्य दिये हैं।

आजकल जिसे गुजरात में सामान्यतः नृत्य रूपक के नाम से पुकारा जाता है वह स्वरूप पर्याप्त लोकप्रिय होता जा रहा है। नृत्य रूपक का आरम्भ पिछले कुछ वर्षों में ही हुआ है। नृत्य-रूपक में कुछ गीत होते हैं और इन गीतों को गद्यात्मक या अनुष्टुप् जैसे किसी वृत्त में लिखी हुई 'कमेण्टरी' से जोड़ दिया जाता है। ऐसे नृत्य-रूपकों की कथा बहुधा पौराणिक, ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध होती है और गीतों के द्वारा उनमें या तो मुख्य पात्रों के नाना प्रकार के मनोभाव व्यक्त होते हैं या कथा विकास के कुछ प्रमुख प्रसङ्गों पर प्रकाश डाला जाता है। किन्तु नृत्य-रूपक में प्रायः जितना ध्यान मानवाकृति की लयबद्ध सुन्दरता से भरे नृत्य एवं संगीत पर दिया जाता है उतना शायद रूपक के आंतरिक काव्यत्व पर नहीं दिया जाता। आजकल की सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं के वार्षिकोत्सव कार्यक्रमों में नृत्य-रूपक को भी प्रस्तुत करने का फैशन चल रहा नृत्य-रूपकों का तात्कालिक उद्देश्य प्रेक्षकों का मनो करने का होने से ऐसे नृत्य-रूपकों की संख्या बहुत जिनमें संगीत एवं नृत्य को शास्त्रीय रूप में प्रस्तुत गया हो।

कवि सम्मेलन तथा मुशायरे भी पर्याप्त लोकप्रिय हैं। मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों में लिखे काव्यों को सम्मेलनों में प्रस्तुत किया जाता है और मुशायरों में तथा उर्दू गजलों की शैली में लिखे काव्यों को पढ़ा है। इन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप सामान्य जनस के चित्त में कविता के लिए एक प्रकार की रुचि सकी है यह बात सत्य है। पर साथ ही इस प्रश्न नहीं भुलाया जा सकता क्योंकि कवि सम्मेलनों मुशायरों द्वारा अत्यन्त उच्च प्रकार की कविता सुनने-स की और उसका मन-भर आस्वाद लेने की शक्ति बढ़ है? ऐसे सम्मेलनों में प्रस्तुत होने वाले काव्यों का तात्कालिक आनंद के उद्देश्य से ही होता है। विचारों एवं ऊर्मियों की विविध भंगिमाओं, जिनका स्वादन अत्यन्त एकाग्रता द्वारा ही सम्भव है, को करने के लिए वाणी की जिन सूक्ष्म अर्थच्छाया आवश्यकता है वे इस प्रकार की कृतियों में नहीं मि ऐसे सम्मेलनों में प्रस्तुत होने वाले काव्यों की का आधार विशेषतया कवि काव्य पाठ की शैली शब्दों की श्रुति मधुर रचना है। अतः कवि सम्मेलन मुशायरे में श्रोताओं को अत्यन्त मुग्ध करने वाला अपने मुद्रित रूप में अपने विनम्र एवं विवेकपूर्ण को इतना आकर्षक न लगे तो आश्चर्य नहीं।

गुजराती काव्य साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास

डॉ० नटवरलाल अम्बालाल व्यास

नरसिंह मेहता गुजराती भाषा के आदि कवि माने जाते हैं। नरसिंह मेहता से पूर्व भी कई काव्य ग्रन्थ पाये गये हैं पर वे इतने प्रसिद्ध नहीं हैं। नरसिंह मेहता (ई० स० १४१५-१४८१) का जीवन भगवद्भक्ति के कई चमत्कारों से समलंकृत है। 'हारमाला', 'सुदामाचरित्र' 'चातुरी षोडशी', 'चातुरी छत्रीशी', 'सामलदास नो विवाह', 'दानलीला', 'गोविन्दगमन', भक्ति एवं शृंगार के दो सहस्र पद एवं 'सुरतसंग्राम' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इनके ग्रन्थ सामान्यतः दो प्रकार के हैं। शृंगार एवं भक्ति।[1] इनका शृंगार अंततोगत्वा भक्ति में ही परिवर्तित हो जाता है। नरसिंह के पद भारत के धार्मिक तत्त्वज्ञान की ध्वनि से समलंकृत हैं। इनके पदों की भाषा सरल एवं मधुर है। इनकी 'प्रभातियाँ' (सुबह में गाने के भक्ति के पद) आज भी गुजरात में बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

तदनंतर पंद्रहवीं शती के प्रमुख कवि पद्मनाभ है। वह वीसलनगरा नागर था और जालोर के अखेराज का आश्रित था। उसने अखेराज के पराक्रमी पूर्वज कान्हड़दे चौहाण की यशोगाथा का वर्णन करते हुए 'कान्हड़दे प्रबन्ध' नामक ग्रन्थ की रचना ई० स० १४५६ में जालोर में की थी। ऐतिहासिक प्रबन्ध की दृष्टि से यह प्रबन्ध बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

गुजराती में 'रणमल्ल छन्द' के बाद यही दूसरा ऐतिहासिक वीर काव्य है।[2] राजा करण वाघेला से क्रुद्ध इसके मन्त्री माधव के बहकाने से दिल्ली का अलाउद्दीन खिलजी गुजरात पर आक्रमण करता है। उस समय जालोर की हद में से खिलजी को मार्ग न देने वाले कान्हीड़दे (कृष्ण देव) के पराक्रम का वर्णन इस कृति में किया गया है। कवि को वीररस के वर्णन में बहुत ही सफलता मिली। तदनंतर वीरसिंह एवं कर्मठ मन्त्री के पश्चात् भालण महत्वपूर्ण कवि है। भालण के समय के विषय में भी विद्वानों में विभिन्न मत हैं। इन्हें नरसिंह मेहता का समकालीन नहीं पर अनुगामी ही मानना पड़ेगा। कवि की हैसियत से की गई इनकी साहित्य सेवा भाषांतरकार एवं आख्यानकार के रूप में है। उन्होंने 'मार्कण्डेय पुराण' से 'सप्तशती', 'शिवपुराण' से 'मृगी आख्यान', 'महाभारत' से 'नलाख्यान', दुर्वासाख्यान तथा 'कृष्णविष्टि', 'रामायण' से 'राम विवाह' एवं 'राम बालचरित', 'भागवत' से 'ध्रुवाख्यान' और 'दशमस्कंध' तथा 'पद्मपुराण' के आधार पर जालंधर-आख्यान की रचना की है। बाण-भट्ट के अमर गद्य ग्रन्थ 'कादंबरी' का उन्होंने कविता में सारानुवाद किया है। संस्कृत से अनभिज्ञ जनसमुदाय के लिये किया गया भालण का यह प्रयत्न बहुत ही सफल रहा। इस तरह भालण मध्यकालीन गुजराती साहित्य के एक बहुत ही लोकप्रिय साहित्य प्रकार आख्यान का स्वरूप विधायक बने।[1]

इनकी लगभग १६ कृतियाँ बहुत ही उच्चकोटि की हैं। इनके दशमस्कंध का उत्तम अंश कृष्ण के बालचरित के पदों में है। इनके पदों में सूरदास जैसे ब्रजभाषा के कवि के

[1]—गुजराती साहित्यना मार्ग सूचक स्तम्भो पृष्ठ ४६ — कृ० मो० झवेरी।

[2]—गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) पृ० ११—अनंतराय रावल।

[1]—वही पृ० १०३।

पदों से भावसाम्य दिखाई देता है। भालण ने ब्रजभाषा में कई पद लिखे हैं। यदि वे नरसिंह के समकालीन ही निश्चित होते हैं तो उन्हें ही 'ब्रजभाषा का आदि कवि' मानना पड़ेगा।[1] तदनंतर भीम ने 'हरिलीला षोडश कला (ई० स० १४८५) तथा प्रबोध प्रकाश (ई० स० १४९०) लिख कर पंद्रहवीं शती के वैष्णव भक्ति साहित्य को पुष्ट किया है। इनके अतिरिक्त उषाहरण (ई० स० १४९२) के रचयिता मांडण इस शताब्दि के मुख्य कवि हैं। श्रावक कवि देपाल ने ई० स० १४४५ से १४७८ तक फागु, कथा, रास एवं सांप्रदायिक साहित्य विपुल प्रमाण में लिखा है। हेमहंस, मेरु सुन्दर, आदि ने विपुल संख्या में बालावबोधों की रचना की है। स्थूलियद, नेमिनाथ एवं जंबुस्वामी पर फागु एवं रास लिखे गये हैं।[2] इनके अतिरिक्त भी कई जैन कवियों ने सुन्दर लोक कथाओं की रचना पद्य में की है।

सोलहवीं शताब्दि के कवियों में मीराबाई मूर्धन्य हैं। जन्म से मेवाड़ी (राजस्थानी) पर जीवन के अंतिम वर्षों में द्वारका (गुजरात) में रह कर भगवद्भक्ति करने वाली मीराबाई का जीवन काल कर्नल टॉडके आधार से (ई० स० १४०३-१४७०) माना जाता था और इसलिए गोबर्धन राम एवं कृष्णलाल झवेरी जैसे विद्वान् भी मीरां को पन्द्रहवी शती की कवयित्री मानते हैं। पर आधुनिक खोज के आधार पर मीराबाई सोलहवीं शताब्दि की कवयित्री हैं।[3] मीरांबाई हिन्दी भाषा की प्रसिद्ध कवयित्री मानी जाती हैं। पर गुजरात में कई वर्षों से रहने से इन्होंने गुजराती में कृष्ण भक्ति के कई पद लिखे हैं। नरसिंह मेहता की तरह मीराँबाई के बहुत से पद आत्मचरित्रात्मक हैं। 'गोविन्दो प्राण अमारो रे', 'प्रीति पूरवनी रे शुं करुं राणाजी', 'मारुं मनडुं वींधाणुं राणा', 'राणा जी हुँ तो गिरधर ने मन भावी', अब नहीं मानुं राणा थोंरी मैं वर पायो गिरधारी'—इन पंक्तियों से आरम्भ होने वाले पद आत्म-चरित्रात्मक हैं। 'तेरा कोई नहीं रोकनहार, मगन होई मीराँ चली रे', 'मैं तो हरिगुण गावत नाचूँगी', 'मेरे गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई', 'अखंड वरने वरी साहे हूँ तो अखंड वर ने वरी', 'मुंने लहे लागी रे हरिना ना रे', 'रामरमकडुं जाडेयुं रे राणा जी मने रामरम जाडेयु'' जैसे पदों में भक्ति की मस्ती एवं जगनिन्द प्रति उदासीनता के भाव हैं। इनके प्रभुविरह एवं प्रभुमि के पदों में मीराबाई के भक्त एवं कवयित्री दोनों स्व के दर्शन होते हैं।[1] मीरा के पदों ने ब्रज, राजस्थानी गुजराती भाषा को उत्तम गीति काव्य दिये हैं। शुद्ध भ में नरसिंह के समकक्ष मानी जाने वाली मीरा के प सामान्य समुदाय में शुद्ध भक्ति का जितना प्रचार कि उतना नरसिंह के पदों ने भी नहीं किया है।[2] मीराबा बाद इस शती का मुख्य कवि नाकर है। इन्होंने भी सं के आधार पर भालण की तरह कई सुन्दर आख्यानो गुजराती में रचना की। महाभारत की तरह रामायण पद्यानुवाद करने का उन्होंने प्रयास किया था। नाकर कृतियों में रसवैविध्य एवं पद्य रचना की दृष्टि से 'वि पूर्व' उल्लेखनीय है। कवि की हैसियत से उच्च प्र प्राप्त न करने वाले नाकर भालण एवं प्रेमानन्द के बी उल्लेखनीय कवि हैं। इनका कवन काल ई० स० १५ से १५६८ तक माना जाता है।[3]

नाकर के अन्य समकालीन कवियों ने भी आख्यान लि गुजराती काव्य साहित्य की सौंदर्य-श्री को बढ़ाया है।

ई० स० १५७२ के पश्चात् मोगलों के साम्राज्य के अ बने गुजरात में शांति, स्वस्थता एवं आबादी होने से स सर्जन में भी प्रगति एवं वृद्धि हुई। अखो एवं प्रेमानन्द नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा-प्राप्त कवि सत्रहवीं शती में हु अखो वेदान्ती कवि है और प्रेमानन्द आख्यान शिरोमणि है। इन दोनों के पूर्ववर्त्ती कवियों में धन एवं नरहरि मुख्य थे। अखा के जीवन एवं साहित्य

[1]—गुजराती साहित्य (मध्यकालीन पृष्ठ १०४—अनंतराय रावल।

[2]—वही पृष्ठ १०३।

[3]—वही पृष्ठ ११०।

[1]—गुजराती साहित्य (मध्यकालीन पृ० ११४—अनंत रावल।

[2]—मध्यकाल नो साहित्य प्रवाह पृष्ठ ३४७ कन्हैया मुन्शी।

[3]—गुजराती साहित्य पृष्ठ ११७—अनंतराय रावल।

सम्यक् एवं गहन अध्ययन करने के पश्चात् श्री उमाशंकर जोशी जी ने इनका जीवन काल (ई० स० १५३१-१६५६) माना है। वह सुनार था और व्यवसाय के लिए जेनलपुर से अहमदाबाद आ गया था। अपने जीवन के कई कटु अनुभवों से वह वैरागी हो गया था। कहते हैं कि ज्ञान की प्राप्ति के लिए वह गोकुल एवं काशी भी गया था। इनके काव्य ग्रन्थों में 'पंचीकरण', गुरु-शिष्य संवाद (ई० स० १६४५) 'चित्त विचार संवाद', 'अनुभव बिन्दु', 'अखे गीता', 'कैवल्यगीता', 'कक्को', 'वार', 'मरीना', 'कुंडलियां', 'छप्पे', 'साखियाँ', 'दूहे' एवं कृष्ण-उद्धव संवाद मुख्य है। इसके अतिरिक्त नरसिंह, भालण एवं अन्य प्रसिद्ध गुजराती कवियों की तरह हिन्दी में भी कई पद, 'साखियाँ', 'संतप्रिया' एवं ब्रह्मलीला की रचना की है। इन सबका प्रधान रस एक ही है—'ब्रह्मरस' 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' इसी पंक्ति के केवलाद्वैत वेदान्त सिद्धान्त का अनुसरण करके लोगों को ताने के साथ उपदेश देना ही अखा को कवित्व प्रवृत्ति का लक्ष्य हो एवं कविता इसके लिए केवल एक साधन ही हो ऐसा अभिमत इनकी बहुत सी कृतियाँ पढ़ने से दृढ़ होता है।[1] फिर भी गुजराती के प्रमुख आलोचक एवं कवि श्री नरसिंह राव द्विवेदिया ने ठीक ही कहा है, 'Whue Akho is Dimple, he is Dubline.' अखा के बाद के उल्लेखनीय कवियों में भाणदास, विश्वनाथ जानी, मुकुन्द एवं रतनजी मुख्य हैं। सत्रहवीं शती के ही नहीं, पर सभी मध्यकालीन कवियों में एवं आख्यानकारों में प्रेमानन्द सर्वोत्तम माना जाता है। इनके जीवन में भी कई चमत्कारिक घटनाएँ घटीं थीं ऐसा माना जाता है। 'अभिमन्यु आख्यान' (ई० स० १६७१) 'चन्द्रहासाख्यान' (ई० स० १६७१) 'ओखाहरण', 'सुदामा-चरित्र' (ई० स० १६८२), मामेरु (ई० स० १६८३), 'सुधन्वाख्यान' (ई० स० १६८४), रणयज्ञ, (ई० स १६८५), 'नलाख्यान' (ई० स० १६८५), हरिश्चन्द्राख्यान (ई० स० १६९२), 'मदालसाख्यान' (ई० स० १७०९), 'रुक्मिणजी हरण' एवं हुंडी, श्राद्ध, मामेरु तथा शामलशा नो विवाह जैसे नरसिंह मेहता विषयक आख्यान इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इनका 'दशमस्कंध' भागवत के 'दशमस्कंध' का अनुवाद है। इन कृतियों के अतिरिक्त भी कई शंकास्पद कृतियाँ उनके नाम पर चढ़ी हुई हैं। आख्यानकार प्रेमानन्द वस्तु के विषय में तो मौलिक नहीं है। शेक्सपियर की तरह इन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों की वस्तु का समुचित प्रयोग कुशलता से किया है। सभी आलोचकों के अभिमत से प्रेमानन्द मध्यकालीन कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। गुजराती के प्रसिद्ध आलोचक नवलराम पंड्या ठीक ही कहते हैं कि रससंक्रान्ति में प्रेमानन्द अद्वितीय है। सभी रसों के वर्णन में प्रेमानन्द को सफलता मिली है। पर विशेषतः शृंगार एवं हास्य रस में इनकी सफलता अद्वितीय है। इनके बाद वल्लभ, रत्नेश्वर, वीर जी, हरिदास, द्वारकादास, सुन्दर मेवाड़ो एवं सुन्दर इस शतक के उल्लेखनीय कवि हुए हैं।

अठारहवीं शती के कवियों में शामल भट्ट मुख्य है। सर्वप्रथम ई० स० १७१८ में उन्होंने 'पद्मावतीनी वार्ता' लिखी थी। शामल भट्ट ने अपनी कविता में सुन्दर लोक कथाओं का समुचित उपयोग किया है। शेक्सपियर एवं शरद बाबू की तरह इनके पुरुष-पात्रों की तुलना में स्त्रीपात्र अधिक तेजस्वी लगते हैं। (१) बत्तीस पूतलीनी वार्ता (२) सूडाबहोतेरी (३) शिवपुराण ब्रह्मोत्तर खंड (४) रेवाखंड (५) रणछोड़ जी ना शलोका अथवा बोडाणाख्यान (६) अंगद विष्टि (७) पद्मावती (८) नंदबत्तीसी (९) रावण मंदोदरी संवाद (१०) उद्यम कर्म संवाद (११) शामलरत्नमाला (१२) विनेचटनी वार्ता (१३) अभराम कुलीना शलोको अथवा रूस्तम बहादूर नो पवाडो (१४) बरामकस्तुरी (१५) चन्द्रचन्द्रावती (१६) काली माहात्म्य (१७) शुकदेव आख्यान (१८) सुन्दर कामदार (१९) द्रौपदी वस्त्राहरण (२०) भोज कथा (२१) पंदरमी विद्या (२२) रखीदास चरित्र (३२) बिरबेश्वराख्यान एवं (२४) मदन मोहना शामल भट्ट के ग्रन्थ हैं।[1] शामल के ग्रन्थों के दो विभाग कर सकते हैं—(१) वर्णनात्मक कथात्मक) एवं (२) उपदेशात्मक। इसके बृहत्काय एवं

[1]—गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) पृष्ठ १३१—अनंतराय रावल।

[1]—गुजराती साहित्यना मार्ग सूचक स्तंभो (द्वितीय आवृत्ति) पृष्ठ ११७ कृ० मो० झवेरी।

उत्तम ग्रन्थ वार्ता के रूप में वर्णनात्मक हैं। इनमें उपदेश तो रहता ही है। इनके कथात्मक ग्रन्थों में 'मदनमोहना' एवं उपदेशात्मक ग्रन्थों में 'शामलरत्नमाला' उच्च कक्षा की रचनाएँ हैं।

शामल के बाद रणछोड़, रामकृष्ण, थोभण एवं रघुनाथ उल्लेखनीय कवि हुए हैं जिन्होंने सामान्यतः कृष्णभक्ति के ही पद लिखे हैं। प्रीतमदास, धारो, भोजो, निरांत एवं बापू गायकवाड़ ने भी उपदेश प्रधान पद, भजन, महीने इत्यादि लिखकर गुजराती कविता के विकास एवं प्रगति में महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्वामीनारायण संप्रदाय के मुक्तानंद, निष्कुलानंद, ब्रह्मानंद स्वामी, 'प्रेमसखी' एवं कबीर पंथ लोकसंत भाणदास, खीमदास, रविदास, मोरार साहब, त्रिकम साहब, रोथ एवं जीवणदास इत्यादि ने भक्ति प्रधान तथा उपदेश प्रधान पदों, भजनों एवं कविता का सर्जन किया है। गौरी बाई, दीवाली बाई, कृष्णा बाई वणारसी बाई एवं जनी बाई इत्यादि भक्त स्त्री-कवियों ने भी अपने पद, भजन, महीने इत्यादि से भक्ति एवं साहित्य की ज्योति को अमर रखने की सफल चेष्टा की है। दयाराम (ई० स० १७७७-१८५२) इन सभी कवियों में नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा के कारण सर्वोपरि हो गया है। गुजराती के अतिरिक्त ब्रज, मारवाड़ी, मराठी, पंजाबी, बिहारी, सिन्धी एवं उर्दू में भी इनकी रचनाएँ मिलती हैं।[1] वे पुष्टि संप्रदाय के मानने वाले थे और अपने संप्रदाय को पुष्ट करने के लिए उन्होंने रसिकरंजन तथा भक्ति विधान हिन्दी में एवं रसिक वल्लभ तथा भक्ति पोषण गुजराती में लिखा है। सभी कृतियों में भक्ति की महिमा स्वरूप, प्रकार इत्यादि को दृष्टांत उपमा आदि से समझाया गया है। उन्होंने नीति एवम् शृंगार विषयक कई पद लिखे हैं। इनकी 'रुक्मिणी विवाह', 'रुक्मिणी सीमंत', 'सत्यभामा विवाह', 'नग्नजिती विवाह', 'अजामिलाख्यान' इत्यादि आख्यानात्मक कृतियों में इन्हें अपने पुरोगामी प्रेमानन्द जितनी सफलता नहीं मिली है। 'सारावलि', 'बाललीला', 'पत्रलीला', 'कमललीला', 'रासलीला', 'रूप लीला', 'मुरली लीला',

[1] – गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) पृष्ठ २१७—अनंतराय रावल।

'दाणचातुरी' जैसे श्री कृष्णलीला विषयक काव्यो
दयाराम की कविता कला खिल उठती है। इनके
भक्ति विषयक साहित्य में 'गरबी' अभिधान से लिखे
पद ही बहुत ही आकर्षक हैं। राधा एवम् गोपियों के
के प्रति के उत्कट प्रेम की लीला का वर्णन इन गर
में किया गया है। 'षड्ऋतु वर्णन' में वर्षा, शरद, शि
वसन्त एवम् ग्रीष्म ऋतुओं का सुन्दर एवम् मनोहारि
प्रस्तुत किया गया है। नरसिंह मेहता के समय से प्र
होने वाली वैष्णव भक्ति कविता का सर्वोच्च शिखर
वाली कविता के सर्जक इस वैष्णव नागर कवि की मृ
साथ गुजराती साहित्य का मध्यकाल समाप्त होता है
अर्वाचीन युगका प्रारम्भ होता है। अर्वाचीन युग का प्र
तो उनके जीते जी हो ही गया था पर इसका थोड़
भी प्रभाव इस कवि पर नहीं पड़ा है और इसीलि
मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अंतिम तेजस्वी प्रति
हैं।[1]

दलपतराम (१८२०-१८५८) एवं नर्मदाशंकर (१
१८८६) अर्वाचीन गुजराती साहित्य के अग्रणी है।
जिक सुधार को बल देने के लिए दोनों ने बहुत से
लिखे। विदेश गमन के प्रतिबन्ध, बाल्यावस्था में
स्त्री शिक्षा का विरोध, विधवा की शादी का विरो
इत्यादि के विरोध पर लिखे गये काव्यों ने लोगों को
ही आकृष्ट किया। दलपतराम की शैली सभारंज
तो नर्मद की शैली 'मस्त' थी। सर्वप्रथम नर्मद
गुजराती साहित्य में मानवीय प्रणय काव्यों का
किया। दलपतराम आंग्ल भाषा से बिलकुल अनभि
ब्रजभाषा की कविता के परिशीलन से उन्होंने का
आदर्श बनाया था। पिंगल एवं अलंकार शास्त्र
हस्तालमकवत् थे। 'दलपत पिंगल' ई० स० १८
'बुद्धि प्रकाश' में सर्वप्रथम प्रकट हुआ तभी से आ
काव्य लेखन एवं काव्य शास्त्र का अध्ययन करने
का यह आधार ग्रन्थ है। गुजराती कविता अब दल
के युग से बहुत आगे बढ़ गई है। फिर भी किसी
में कवि को दलपतराम की कथनपद्धति का थोड़

[1] – वही पृष्ठ २३९।

प्रयोग करना ही पड़ता है और यही दलपतराम की शैली का महत्व सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

मध्यकालीन कवि सामान्यतः ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, ईश्वर, परलोक, देव, देवी एवं भक्त जीवन के विषय पर काव्य लिखते रहे। नर्मद ने भी इसी तरह प्रारम्भ में काव्य लेखन का प्रारम्भ किया था। इस तरह के ज्ञान एवं वैराग्य का उपदेश देने वाले लगभग २०० फुटकर पद उन्होंने लिखे हैं। पर कवि की हैसियत से उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने गुजराती कविता को मध्यकाल के इस तरह के विषय बन्धन से स्वतन्त्र किया। दलपतराम की तरह इन्होंने सुधार (Reform) पर कविता की। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता, देशाभिमान, प्रकृति एवं प्रणय जैसे आधुनिक विषयों पर काव्य लिखने वाले ये सर्वप्रथम हैं। कविता को व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) बनाकर उन्होंने गुजराती कविता को नया मोड़ दिया। कवि के निजी सुख-दुख आशा निराशा आदि भावों एवं विचारों को कविता में अभिव्यक्त करने का श्री गणेश नर्मद ने किया वस्तुनिष्ठ (Objective) काव्यों में भी वह अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करता। अतः नर्मद की कविता में इनका व्यक्तित्व एवं निजी जीवन प्रतिबिम्बित हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है।[1] गुजराती में महाकाव्य रचने की महेच्छा नर्मद को थी। 'वीरसिंह' एवं 'रुदनरसिक' महाकाव्य लिखने के उनके अपूर्ण प्रयोग हैं। महाकाव्य के लिए महान् छन्द की आवश्यकता भी उसे सर्वप्रथम प्रतीत हुई और अपनी बुद्धि एवन् शक्ति के अनुसार उन्होंने 'वीरवृत्त' का प्रयोग भी किया है। इस तरह गुजराती कविता को नया स्वरूप, नये विषय, भाव एवन् नई शैली नर्मद की कविता से ही मिले हैं।[2] फिर भी इस तथ्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इनकी शक्ति बहुत ही मर्यादित थी। इनमें उच्चकोटि का कला निर्माण करने का सामर्थ्य नहीं है।[3]

कवि नर्मद के पश्चात् पंडित युग के मणिलाल, नभुभाई गोवर्धन राम त्रिपाठी, नरसिंहराव द्विवेदी एवं अन्यान्य कवियों ने

[1]—गुजराती साहित्यनी विकास रेखा भाग २ पृष्ठ ५१ डा० धीरुभाई ठाकुर

[2]—वही

[3]—वही पृष्ठ ५२

गुजराती काव्य साहित्य की सौन्दर्यश्री को बढ़ाया है। पण्डित युग के प्रायः सभी कवि विश्वविद्यालय के स्नातक होने से अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषा के काव्य साहित्य से सुपरिचित थे। अतः इन सभी की कविता लिखने की रुचि उत्कृष्ठ प्रकार की थी। अर्वाचीन गुजराती कवियों की काव्य भावना का विस्तार करने का प्रत्यक्ष श्रेय अंग्रेजी कविता को है, तो परोक्ष श्रेय अंग्रेजी आलोचना एवम् काव्य सिद्धांत को है। नरसिंहराव (१८५९-१९३७) की कविता नर्मद की कविता से आगे है। इनके काव्य गुरु वर्ड्स्वर्थ थे और इनकी काव्य भावना एवं इनके काव्य सर्जन का प्रेरणास्थान पाल्ग्रेव सम्पादित अंग्रेजी काव्यों एवं गीति काव्यों का संग्रह है।

'कविता संगीतमय विचार हैं' (कार्लाइल) एवं कविता का धर्म तो जीवन की समीक्षा करना (मैथ्यु आर्नोल्ड)—जैसे विचारों ने भी हमारे [गुजरात के] अर्वाचीन कवियों को कुछ-न-कुछ सिखाया है। कविता में विचारों की प्रधानता के लिए प्रो० ठाकोर के आग्रह का मूल भी ऐसे विचारों में है।[1]

जिस अर्वाचन गुजराती कविता का लालित्यपूर्ण विकास देख कर आज हम प्रसन्न होते हैं उसका गङ्गोत्री-शिखर है नरसिंहराव की कविता। गुजराती साहित्य की भूमि पर अंग्रेजी काव्य गङ्गा को अवतीर्ण करने की हैसियत से भगीरथ का स्थान नरसिंहराव को ही देना पड़ेगा।[2] ई० स० १८८७ में इनका प्रथम काव्य संग्रह 'कुसुममाला' नाम से प्रकट हुआ था। गुजराती के प्रसिद्ध आलोचक श्री अनन्तराय रावल के अभिमतानुसार श्री नरसिंहराव को अर्वाचीन गुजराती कविता के पिता कह सकते हैं।[3] व्यक्तिलक्षित्व, प्रणयगान, प्रकृति दर्शन, चिंतन गौरव इत्यादि तत्व ये गुजराती कविता में लाए, उतना ही नहीं, पर नर्मद में जिनका अभाव था वह भाषा गौरव भावों की शिष्ठता एवम् कविता का बाह्य स्वरूप हमारे यहाँ सर्व प्रथम लाने वाले भी नरसिंहराव ही थे।[4] नरसिंहराव के काव्य ग्रन्थों में 'कुसुममाला', 'हृदयवीणा', 'नूपुरझंकार', 'स्मरणसरिता'

[1]—गन्धाक्षत पृष्ठ २६७ अनन्तराय रावल

[2]—वही पृष्ठ १६

[3]—वही पृष्ठ ११७

[4]—वही

बहुत ही प्रसिद्ध है। कान्त, ब० क० ठाकोर, नानालाल, कलापी, खबरदार, बालाशंकर, हरिलाल ध्रुव, ललित, त्रिभुवन, प्रेमशंकर, बोहादकर इत्यादि इसी युग के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं।

ई. स. १९२२-२७ में पंडित युग समाप्त हुआ। तदनन्तर ठाकोर शैली एवम् गाँधी जी की विचारधारा की दो पंख लेकर 'नवीन' कविता ने अपने उड्डयन का प्रारम्भ किया। श्री उमाशंकर जोशी जी के अभिमतानुसार यह नवीन कविता बलवन्तराय ठाकोर एवं गाँधी जी के कंधों पर चढ़कर आगे बढ़ी। नवीन कविता के सामर्थ्यवान् एवं गौरवशील प्रतिनिधि कवि श्री सुन्दरम् [जन्म ई० स० १९०८] हैं। 'कोचा भगतनी कड़वी वाणी', 'काव्य मङ्गला', 'वसुधा' एवं 'यात्रा' जैसे प्रसिद्ध काव्य संग्रहों के रचयिता इस कवि ने प्रत्येक संग्रह में अपनी निजी विशेषता प्रकट की है। 'कड़वी वाणी' में भजन के स्वरूप में गरीबों के गीत एवं समाजवादी विचारधारा अभिव्यक्त हुई है। 'काव्यमंगला' में 'पाखाने की मक्खी' से लेकर 'गाँधी जी' तक के सभी विषयों पर काव्य लिखे गए हैं। 'वसुधा' से सुन्दरम् की गीति काव्य लिखने की शक्ति का परिचय मिलता है तो 'यात्रा' में इनकी वाणी एवं भावना दोनों का सर्वोच्च शिखर हम देख सकते हैं।

नवीनों के दूसरे समर्थ प्रतिनिधि कवि उमाशंकर जोशी (जन्म ई० स० १९११) के 'विश्वशान्ति', 'गंगोत्री', 'निशीथ', 'गुले पोलांड', 'प्राचीना', 'आतिथ्य' एवं 'वसन्त वर्षा' का काव्य संग्रह बहुत ही प्रसिद्ध हैं। कवि कालिदास के संस्कृति नाटकों के अनुवादों में भी श्री उमाशंकर जोशी की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के हमें दर्शन होते हैं। सुन्दरम् एवम् उमाशंकर से अब भी गुजराती कविता को बहुत ही आशा है और गुजराती के सुप्रसिद्ध आलोचक श्री विष्णु प्रसाद त्रिवेदी ने उचित ही कहा है कि सुन्दरम् या उमाशंकर जैसे प्रतिभा सम्पन्न कवि ही गुजराती काव्य साहित्य में अमर एवम् निर्व्याज मनोहर महाकाव्य का सर्जन कर सकेंगे। उमाशंकर में वाग्वैभव एवं बुद्धि प्रभाव अधिक प्रतीत होता है तो सुन्दरम् में प्रेरणाजनित अंतः स्फूर्ति अधिक मात्रा में पाई जाती है।

पूजालाल, शेष, बेटाई, मनसुखलाल, स्नेहरश्मि, बादरायण, पतील, कोलक, मेघाणी, अमीदास काणकिया इत्यादि इसी युग के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं' इन सभी ने नवीन कविता को समृद्ध करने में अपनी विशिष्ट देन दी है।

ई० स० १९४२ के पश्चात् लिखी गई कविता में विशेष सुसंवादिता एवं मधुरता तथा अनुभूति की घनता या तरलता प्रतीत होती है। प्रह्लाद पारेख, रमणीक अरालवाला, स्वप्नस्थ, तनसुख भट्ट, मुकुन्द परारशर्य, प्रजाराम रावल, गोविन्द स्वामी, अशोक हर्ष, बालमुकुन्द दवे, निरंजन भगत, राजेन्द्र शाह, प्रियकान्त मणियार, सालिक पोपटिया एवं गीता कापड़िया इस समय के मुख्य कवि हैं।

अर्वाचीन कविओं ने गीति काव्य, गज़ल, सोनेट, खंड काव्य, रास, भजन, करुण प्रशस्ति (Elegy) एवं मुक्तकों का प्रयोग किया है। आधुनिक कविता ने रुक्षता, संकुलता, अगेयता एवं अर्थघनता में से सरलता, विशदता, लालित्य एवं वाग्मिता के प्रति सफल प्रयाण किया है। पर उसमें जितनी रंजन लक्षिता है उतनी अंतर्मुखता या चिंतनात्मकता नहीं है, जितना माधुर्य है उतना गांभीर्य नहीं है। आधुनिक कविता में कल्पना के सफल उड्डयन हैं पर सहृदय के चित्त को प्रसन्न करने वाली सघन कल्पना एवं भाव की समृद्धि नहीं है। अध्यात्म की सीमाओं से वास्तव जीवन की समतल भूमि तक रममाण करने वाली आज की कविता की प्रगति एवं नवीनता के मर्मों को आत्मसात् कर सके एवं उसे उर्ध्वमथन की प्रेरणा दे ऐसी स्थिर धृति धारण कर सके ऐसी आशा अवश्य होती है।[1]

इस तरह नरसिंह, मीरां; अखो, प्रेमानन्द, शामल, जैसे मध्यकालीन कवियों से पुनीत, नानालाल, नरसिंहराव, कान्त, डाकोर, मणिलाल जैसे पंडित युग के कवियों से समलंकृत, सुन्दरम्, उमाशंकर, मनसुखलाल, बादरायण, स्नेहरश्मि जैसे नवीन कवियों से प्रेम तथा आदर से सेवित, गुजराती काव्य सरिता की पुनीत जाह्नवी धीरता एवं गम्भीरता से प्रगति के पथ पर है।

[1]—गुजराती साहित्यनी विकास रेखा—पृष्ठ ३१७ – डा० धीरुभाई ठाकर।

गुजराती काव्य-साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा

कान्ति भाई पा० पटेल

गुजराती भाषा के साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आदि काल से लेकर अर्वाचीन समय तक का सारा साहित्य सरसरी दृष्टि से देख लेना चाहिए।

१७वीं शताब्दी तक गुजराती को 'गुजराती भाषा' का नाम अप्राप्य रहा। नामकरण प्रेमानन्द ने किया। तब तक आम जनता की भाषा 'प्राकृत' रही। प्राकृत का जन्म संस्कृत से हुआ था। संस्कृत से परिवर्तित गुर्जर में बोली जाने वाली भाषा गुर्जर अपभ्रंश कहलाने लगी। गुर्जर अपभ्रंश भी पलट गई और दो-तीन सौ साल बाद उसका स्पष्ट नाम 'गुजराती भाषा' कहा जाने लगा। करीब १३वीं से १७वीं तक की भाषा अर्वाचीन गुजराती' भाषा से भिन्न है, फिर भी वही भाषा 'अर्वाचीन गुजराती' की जन्मदाता ही है। साहित्य का सम्बन्ध जनता के साथ ही रहा है। अपभ्रंश साहित्य में 'स्वयं भू' तथा पुष्पंदत' जैसे महाकवि हो गए। अपभ्रंश का प्रचार कम होने पर तत्कालीन आम भाषा में जैन एवं जैनेतर कवियों ने साहित्य सर्जन किया। १२५० से १६५० तक पुरानी गुजराती का प्रवाह बहता ही रहा। इसका यश जैन मुनियों को है। 'हेमचंद्राचार्य' उनमें प्रमुख हैं। वे लोग कथा, चरित्र काव्य आम भोज्य भाषा में लिखते रहे। पुरानी गुजराती का प्रचार अपभ्रंश से ज्यादा हुआ। 'शालिभद्र', 'तरुणप्रभ', 'सोमसुन्दर', 'जयशेखर', 'माणिक्यचन्द्र', 'लावण्यप्रभ' आदि अनेक जैन कवि 'नरसिंह', 'मीरा', 'नाकर', 'भालण', 'पद्मनाभ' जैसे गौरववान सर्जक हैं। जैनों का सर्जन धर्म लक्षी रहा है फिर भी उन्होंने तत्कालीन समाज का दर्शन कराया है। 'शालिभद्र' कृत 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' वीररस का प्रबन्ध काव्य है जो सबसे पुराना है। 'जम्बुसामि चरित और 'नेमिनाथ चतुष्पादिका' उस समय की विशेष उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। गुजराती भाषा में 'विनयचन्द्र' का 'नेमिनाथ चतुष्पादिका' सबसे पहला ऋतु काव्य है। 'स्थूलिभद्र फाग' भी एक सुन्दर ऋतु काव्य है। परन्तु वसंत विलास' सर्वोत्तम ऋतु काव्य माना जाता है। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में धर्मयुक्त सांसारिक चित्र, शृंगारिक वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है। अनेकों ने 'रासो' लिखे हैं और कई ने ज्ञान एवं नीति वैराग्य के गान रचे हैं। जैन मुनियों ने गुजराती के साहित्य प्रवाह की धारा अखंड रूप से बहायी। इस समय की खास विशिष्टताएँ—कडवाबद्ध शैली, दोहा, चौपाई, छन्द है। 'वैताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' ढोला मारुना दोहा' 'रूपचन्द कुंवर रास' 'माधवानल कामकंदला' आदि जैन समय के सुन्दर सर्जन हैं।

धर्मलक्षी साहित्य सर्जन होते हुए भी सांसारिक दर्शन कराने वाला उनका साहित्य इतिहास की पृष्ठभूमि में पोषित हुआ। इसी मुल्क का स्वर्ण युग बीत गया। मुसलमानों ने स्थान-स्थान पर प्रचंड अत्याचार मचाया, संस्कृति को खंडित किया। इसी स्थिति में हिन्दू धर्म को आधार मिला पुनरुत्थान का। बल्लभ संप्रदाय की प्रेम लक्षणा भक्ति ने लोगों पर जादू किया। भक्त लोग भगवान् को प्रियतम समझकर भजन करने लगे। सारे भारत में यह युग 'भक्ति युग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भारत की प्रमुख भाषाओं की तरह गुजराती में भी भक्ति का प्रवाह बहा। 'मीरा' और 'नरसिंह' इसी युग के उत्तम कवि हैं। नरसिंह मेहता को

आदि कवि माना गया। वह गांधी जी के प्रिय गीत का जन्मदाता है—'वैष्णव जन तो तेने कहीए जे पीड पराई जाणे रे' 'परदुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे।' उसकी रचनाओं में समर्थ शक्ति, माधुर्य, अनुपम सौंदर्य, अतलभाव और उच्च तत्वज्ञान के दर्शन होते हैं। हरेक गीत में लय और छन्द के साथ तन्मयता और मौलिकता भी है। आज भी गुजरात की जनता 'जाग ने जादपा' कह कर प्रातःकाल में 'परोढ़िया' '(प्रभातियाँ)' गाती हैं। वह जनता का कवि था, फिर भी हरिजनों का उद्धारक भी था, उसकी दृष्टि में अमीर और गरीब समान ही हैं।

इसी समयान्तर में 'भाण भट्ट' स्थान-स्थान पर काव्यमयी रामायण, महाभारत, भागवत आदि लोगों को सुनाते रहे। भाण भट्टों के कारण ही हमारी संस्कृति आज तक जिंदा रही है।

मध्यकालीन समय इसीलिए आख्यानों का जनक माना जाता है। उस समय का प्रतिभावान कवि 'भालण' है। पुरानी गुजराती का वह कवि १४५९ से १५१४ में हो गया। वह प्रतिष्ठित विद्वान् था। संस्कृत का वह प्रकांड पंडित था। उसे 'संस्कृत का व्युत्पन्न पंडित' कहा जाता है। उसने पुराणों से एवं अन्य धर्म ग्रन्थों से वस्तु लेकर अनेक छोटे-बड़े आख्यान रचे। दूसरे कवियों से उसकी रस दृष्टि एवं कला दृष्टि विशेष कसी हुई थी। 'दयाराम' तक के कवियों ने 'भालण' से ही प्रेरणा पाई। 'कादंबरी' भालण की उत्तम रचना है। उसमें उसकी लाक्षणिकता, विशिष्टता, कलारसिकता, औचित्य बुद्धि और पांडित्य के दर्शन होते हैं। 'कादंबरी' गुजराती भाषा की अमूल्य कृति है।

भालण का समकालीन कवि 'पद्मनाभ' था। उसने 'कहान-डदे प्रबन्ध' लिखा जो वीररस का एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है। तत्कालीन समाज के रीतिरिवाज, मानस के चित्र रसिक शैली में बड़ी तेज कलम से चित्रित किए हैं। पुरानी गुजराती कविता के वे दोनों समर्थ प्रतिनिधि कवि हैं।

इसी समय में नाकर, भीम, मांडण, धीरो भगत, निरोत भगत, विष्णुदास, मधुसूदन व्यास, विश्वनाथ जानीं आदि अनेक कवि उल्लेखनीय हैं। 'मांडण' से लेकर 'अखो' और 'नाकर' से लेकर 'प्रेमानन्द' इन्हीं कवियों की व से प्रेरणा पा सके और गौरववान सिद्धि प्राप्त कर सके मध्यकालीन साहित्य सर्जन ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप सिद्धि के शिखर को सर करने में अपना सक्रिय य दिया है।

मध्यकालीन समय के अत्यन्त गौरववंत कवि हैं—नरसि प्रेमदीवानी मीरा, अखो, प्रेमानन्द और श्यामल भट्ट प्रेमानन्द को साहित्य जगत् ने कवि शिरोमणि बि दिया। वह था भाण भट्ट ही। आख्यानें करना उस मुख्य कार्य था। उसके आख्यान धार्मिक होते थे। उ द्रौपदी स्वयंबर, श्रृंगीऋषि आख्यान, सुभद्रा हरण, मलाख्या नागदमन, सुदामाचरित, अभिमन्यु आख्यान, दशमस्कं मामेरु आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। इनसे पौराणिक मा और सामाजिक संकुचिता के दर्शन होते हैं। उसने अप विशिष्ट शक्ति से पुरानी चीज को नयी बनाकर रखी वैसे मीरा ने भी हिन्दी, राजस्थानी एवं गुजराती में रचन की। 'पग घूंघरु बांध मीरां नाची रे…' हाथ में मंज पग में नूपुर पहन कर वह साहसी अपने प्रियतम के लि पागल बनी। 'क्या' करवन ? कया काशी ?…आ अनेक भजनों के द्वारा हमें हिन्दू संस्कृति के दर्शन होते है अखो गुजराती का कबीर है। उसने अखे गीता, पंचीकरण कैवल्य गीता आदि दयाराम ने दो सौ जितने ग्रन्थ र जिसमें ब्रजभाषा के भी ग्रन्थ हैं। दयाराम चौदह भाषा का ज्ञाता था। श्यामल भट्ट ने गुजराती में अनेक पहेलि लिखीं। प्रेमानन्द का मानवभाव युक्त संसारी रस, अ का बुद्धि वैभव, श्यामल का चातुर्य और रसमयी शैली नरसिंह और मीरा की उत्कट भक्ति, मध्यकालीन सम के काव्य साहित्य की अमूल्य और अनोखी अमृद्धि है।

मध्यकालीन युग का आखिरी एवं श्रेष्ठ कवि दयाराम है वह मनमोहक गरबी बनाता था। वह मध्याकालीन ए अर्वाचीन युग की कुंजी है। उसके साथ ही मध्यका अस्त हो जाता है और अर्वाचीन युग का आरम्भ होत है। अब तक साहित्य का माध्यम धर्म था। इधर अंग्रे आदि विविध प्रजाएँ भारत में आ रही थीं, जो अपने सा नए विचार और नई रश्में ले आ रही थीं जिसका समा पर असर होता ही रहता था। रूढ़ि चुस्तता में आग लगी

स्वदेश भावना जागृत हुई। नवीन शक्तियाँ इसी समय हर कोई मनुष्य में स्थान प्राप्त करने लगी थीं। इसीसे साहित्य की प्रेरक शक्ति देशोन्नति की भावना बनी। नर्मद और दलपत ने इसी समय साहित्य जगत को नई दिशा दी। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र माने जाते हैं उसी प्रकार गुजराती साहित्य में नर्मद को आधुनिक युग का निर्माता माना जाता है। भारतेन्दु की भाँति नर्मद ने गुजराती गद्य-पद्य, नाटक, निबन्ध कोश आदि साहित्यिक क्षेत्रों में हलचल मचायी। आपकी कविता देश प्रेम और समाज सुधार की भावनाओं से परिपूर्ण बनी। इनके समकालीन कवि दलपतराम ने ठीक ही कहा है—'यह कवि स्वदेशाभिमान, साहस, विद्वत्ता और देश भक्ति की दृष्टि से बड़ा ही उपयोगी था। वे दोनों एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी माने जाते हैं। दोनों में समाजोद्धार एवं देशोन्नति के भाव थे। नर्मद क्रान्ति और उग्रता के हामी थे और दलपत सौम्य और शान्ति के। नर्मद का जोश भारी था – 'सएुँ चलो जीतवा जंग ब्यूगलो बाजे' और 'डगलु भयु के ना एतवु ना हटवु' - मुर्दे को भी खड़ा करने वाले शूर थे। नर्मद को युग कवि माना गया है। उसकी शक्ति एवं उत्साह से साहित्य का सारा स्वरूप पलट गया उसने काव्य में नई भावनाएँ दीं। आख्यानों के स्थान पर उसने अंग्रेजी के उर्मि काव्य लिखे। दूसरे कविओं ने उसका अनुकरण किया। नर्मद और दलपत इसी युग के श्रेष्ठ कवि हैं। यदि इन्हें हिन्दी की भारतेन्दु और द्विवेदी युग की काव्य प्रवृत्ति को महत्त्व दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी।

इसी तरह पंडितों की शांत गहन विचारधारा को प्राप्त करके गुजराती का पद्य साहित्य सुपुष्ट हुआ जो साहित्य का सर्वस्वीकृत और समर्थ माध्यम हुआ। पंडित युग का सारा सर्जन गद्य और पद्य में हुआ। उससे गुजरात धन्य-धन्य हुआ क्योंकि इसी युग में पंडितों का बाहुल्य रहा। नरसिंह राव भोलानाथ कहते हैं—'संस्कृत से बीज और अंग्रेजी से अंकुर प्राप्त करके गुजराती साहित्य के वृक्ष की वृद्धि हुई है। आधुनिक गुजराती कविता का सूत्रपात करने वाले कवि नरसिंहराव हैं। हिन्दी में जैसा विरोध पंत और निराला को लेकर हुआ, वैसा विरोध नरसिंहराव को लेकर गुजराती में हुआ। जिस समय उनकी 'कुसुम माला' प्रसिद्ध हुई उसी समय किसी ने उसे Golden tragedy का आंशिक अनुवाद कहा और किसी ने 'रसगंधहीन पाश्चात्य कुसुम' कहा। आपने इसके अतिरिक्त 'हृदयवीणा', नुपुर झंकार आदि कविता ग्रंथ लिखे। इनकी कविता प्रगीत मुक्तक है। वर्ड्स्वर्थ की तरह वे भी प्रकृति के पुजारी हैं। उनकी कविता का एक नमूना—

'खलासी! बचाओ! अरे कोई आओ!—
दयासिंधु! आवुं, शिशु साथ लावुं!—

• • •

प्रेमसांकल जे रूडी मधुर वे श्रम उरनी
बीडती दृढ ते हने तुं कनक कडी वणमूलनी

• • •

बुद्ध चरित में वे लिखते हैं—

फरी आ रम्य शय्या मांही,
करूं शयन कदी एुँ नहीं।
त्रणवेला गयो राजन,
पाछो आप्यो वली वेल त्रण;
अवु राणीनु प्रीति पूर,
अेवुं अेनुं सौंदर्य भरपूर।
अंते बल करी छूटयो शयन था,
थार्यो शोक पक्षीन वमन था।
चाल्यो, श्याम रजनो मां चाल्यो,
मार्ग अयोति अनुपनो भाल्यो।

आपको अंग्रेजी एवं संस्कृत विपुल ज्ञान था। इनके साथी थे: पं० गोवर्धन त्रिपाठी, मणिलाल द्विवेदी, नरसिंहराव दिवेठिया, आनन्द शंकर ध्रुव, केशवध्रुव, ब० क० ठाकोर। इनके उपरांत न्हानालाल कान्त, कलापी जैसे समर्थ सर्जक गुजरात ने कभी एक ही साथ नहीं पाए हैं। इनकी बुद्धि अप्रतिम थी। प्रतिभाशील सर्जन शक्ति तो इन्हें ईश्वर प्रदत्त थी। नरसिंह ने गुजराती कविता का रूप पलट दिया। कान्त की कविता में कल्पना का विलास है फिर भी छन्दालंकार एवं रचना सौंदर्य की कमी नहीं है। ब० क० ठाकोर इसी धारा के विद्वान् समर्थक हैं। उनकी बौद्धिकता उच्चकोटि की थी। गुजराती कविता में 'सानेट'

का प्रयोग उन्होंने किया और प्रसिद्ध हुआ। ज्याँ ज्याँ नजर मारी हरे याही वधे छे आपनी' 'सौंदर्योपामता पहेलां सौंदर्य बनवु पडे' आदि तरुणाई के गीत राजकी कवि कलापी ने गाये। कलापी ने यद्यपि विद्यापीठ की शिक्षा-दीक्षा नहीं ली थी फिर भी स्वाध्याय से उन्होंने साहित्य के तत्त्वों को हृदयंगम कर लिये थे। दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातों पर उन्होंने गीत लिखे। पाठक उसे पढ़ते ही मनोमुग्ध हो जाते हैं। बोटादकर ने नारी जीवन के यथार्थ चित्र खींचे। गुप्त की तरह उनकी 'उर्मिला' विशेष प्रसिद्ध है। उनके गीतों में प्रकृति प्रेम, कुटुम्ब स्नेह, प्रभु भक्ति के दर्शन होते हैं। प्रचलित लोक गीतों की शैली में उन्होंने बहुत कुछ लिखा है—

सूनु थयु जग सामटु रे, भूमि डोलती भासे।
उनो अनिल आ एकलो रे, बहे घूसकां धीरे।
हाय! हणायली मातने रे चढ़ी अंतर चीरे।''

इसी युग में न्हानालाल भी एक उत्तम कवि हो गए। 'डोलेन' शैली और 'रास' आदि के लिए वे विशेष उल्लेखनीय हैं। काव्यों में भावों के साथ ही साथ वे सुदृढ़ संयोजन कर सके हैं। लयमाधुर्य, चारु, भावमयी उर्मिगीत आज भी गुजराती कविता के सुवर्णालंकार बने हुए हैं। इनके गीतों में प्रकृति, प्रणय, राष्ट्र प्रेम, रासगीत, चित्र काव्य, महाकाव्य आदि हैं।

एक नमूना—

आधे आधे छे मढूली जोगीनी मारा,
पासे छे फूलडांनी वाडी रे,
साधाशु जोग स्नेहगंगाने कांठडे,
वीणीशु फूल दांडी दांडी,
हो वीणो एवां फूलडां सखी।

कान्त के काव्य से गुजरात को उत्कृष्ट कोटि की चारु-मंजुल कविता प्राप्त हुई। खंड काव्य मिले। बालाशंकर से खमीर भरे गीत प्राप्त हुए। और कलापी से उर्मि-प्रेम भरे गीत। काव्य के साथ ही साथ इसी युग में सानेट, डोलेन शैली, अपद्यागद्य, आदि दौहिक परिवर्तन भी हुआ।

इसी तरह पंडित युग में अनेकानेक परिवर्तन हुए। न्हानालाल की अपद्यागद्य शैली का उनके साथ ही साथ लोप हो गया। पद्य को एक नयी दिशा प्राप्त हुई।

हिन्दी के महाकवि निराला की तरह नानालाल ने गुजरा में छन्दों के बन्धन तोड़े। उनकी 'वसंतोत्सव' एक ऐ सुन्दर रचना है। उनके गीत घर-घर गाए जाते हैं। नरि की प्रभाती, मीरा के भजन और दयाराम की गरबी तरह नानालाल के गीत अपूर्व शक्ति युक्त हैं। उनके छ लंकार में नवीन दृष्टि रही है। वे कल्पना के तो धनी संक्षेप में कहें तो नानालाल गुजराती कवियों के सिरम हैं। इनके अतिरिक्त अरदेशर फरामजी खबरदार ख्य नामा कवि हैं। जन्म से हैं तो पारसी, फिर भी संस्कार पूर्णतया ब्राह्मण हैं। इनके काव्यों में स्वदेशाभिमान, प्रकृ प्रेम और आध्यात्मिक अनुभव तीनों की छटा है। उन 'विलासिका' में देशाभिमान व्यक्त हैं, 'काव्य रसिका' प्रकृति प्रेम और 'कलिका' तथा 'दार्शनिक' में प्रेम त दर्शन की अभिव्यक्ति है। रासचंद्रिका में नानालाल तरह आपने रासों का संग्रह किया है। तत्वचिंतनात्मक क आपकी विशिष्टता है। गुजराती काव्य साहित्य में स्व भक्ति के गीत उनके बराबर अधिक संख्या में और कि ने नहीं लिखे हैं। आपने सभी तरह की रचनाएँ लिखी वीरता के भाव पेश करने में आप गुजरात में सबसे हैं। पद्य रचना के अनेक नवीन प्रयोग आपने किए नवीन छन्दों का उपयोग भी कर दिखाया है—

ज्यां ज्यां बसे एक गुजराती,
ज्यां ज्यां सदाकाल गुजरात!
ज्यां ज्यां गुजराती बोलाती,
त्यां त्यां गुर्जरीनी महोलात!

ललित आदि कविओं ने गुजराती काव्य को समृद्ध ब है। आरम्भ में उनका जीवन बड़ा ही संघर्षमय इसीलिए उन्होंने विषाद्, ग्लानि, असंतोष आदि विषयों काव्य रचना थी। उनकी एक रचना बड़ी सुन्दर है—

मठलो मजानी पेले तीर
संतो व्हाला,
अनेरी अमारी हलगीर।

आप पारिवारिक जीवन के कवि हैं। नारी के जीवन त्यागमयता, उनके द्वारा पुरुषों को मिलने वाली प्रे उनके प्रेम की स्वर्गीय आदर्श द्वारा उन्होंने नारी पूजा भावनाओं को बड़े कौशल से व्यक्त किया है। 'ना

नारायणी' कहकर उन्होंने उसका महत्व बढ़ाया है। 'जन्म-भूमि तु जयमंगल' और 'जावने स्वदेश काज कां न होमिये' जैसी गीत गुजरात में जनता के कंठ में निवास कर चुके हैं।

१९१५ के अरसे में गांधीजी नयी भावना और नई दृष्टि लेकर आ पहुंचे। और गुजरात को काव्य का अमर्यादित विषय प्राप्त हो गया। पुरानी मर्यादा के बन्धन टूट गए और कविता मुक्त गगन में विहार करने लगी। झवेरचन्द मेघाणी लोक काव्य लेकर अपनी कंठधारा से जनता को खमीर देने लगे। आप सौराष्ट्र के थे। और भाव युक्त कलम चलाने में प्रवीण थे। 'वेणी नां फूल', किल्लोल, युग वंदना एक लारो, बापुनां पारणाँ, रवीन्द्रवीणा आदि अनेक ग्रन्थ आपने लिखे। 'छल्लो कटोरो झेरनो आ पी जजो बापु'
सागर पीनारा अंजलि नव ठोलजो बापू''' गीत आज भी जनता की जीभ पर है।

गांधी युग की ऊष्मा लेकर अनेक नवीन कवि हुए जिनके गीतों में अर्थ गांभीर्य के साथ ही साथ सुन्दर काव्य तत्त्व भी रहा है। ब० क० ठाकोर के उपरान्त रामनारायण पाठक जैसे विज्ञ, रसज्ञ कड़क काव्य परीक्षक गुरु भी हुए। उमाशंकर, सुन्दरम् आदि ने अनेक सुन्दर गीतों की भेंट गुजरात को दी। श्री मनसुखलाल झवेरी, सुन्दर जी बेटाई, करसनदास माणेक, झीणा भाई देसाई [स्नेह रश्मि] पूजालाल, श्रीधराणी आदि अनेक सुप्रसिद्ध कवि आधुनिक समय में हुए हैं। सुन्दरम् की कविता का मुख्य विषय देश प्रेम और समाज विद्रोह है। काव्य मङ्गला और वसुधा आपके प्रसिद्ध संग्रह हैं। 'पूजालाल' पर महर्षि अरविंद घोष का प्रभाव है। सुन्दर जी बेटाई ने आदर्शवादी कविताएँ रची हैं। उन पर नानालाल और नरसिंहराव का प्रभाव है। मेघाणी ने देश और समाज की वर्तमान भावनाओं को सौराष्ट्र की रसधार और गीतों में चित्रित किया है। स्नेहरश्मि के गीतों में देशभक्ति है। उमाशंकर जोशी जी वर्तमान कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। ये गांधीवादी हैं और गांधी जी के संदेश को घर-घर पहुंचाने के टहेली हैं। इनकी विश्वशांति, गंगोत्री, प्राचीना, आदि अनेक अमर रचनाएँ हैं। आपने पंत जी जैसे गीत लिखे हैं फिर भी आप प्रगतिवाद के विरोधी हैं। सूफी काव्य का असर गुजराती काव्य पर है। 'बालाशंकर' ऐसे कवियों में मुख्य हैं। 'पतीले' और 'शैदा' ने उर्दू परम्परा की गजलों से गुजराती साहित्य का भंडार भरा है। उपर्युक्त कवियों की रचनाओं ने गुजराती काव्य साहित्य को गौरव प्रदान किया है। पूजालाल, श्रीधराणी आदि समर्थ कवि हैं। श्रीधराणी का 'पूजारी पाछो जा' सुन्दर गीत है। गांधी जी की जीवन दृष्टि से साहित्य में आमूल परिवर्तन हुआ है। हम यह जानते हैं कि नर्मद से दलपत तक के साहित्य में सामाजिक सुधार की परम्परा चली है। गांधी जी के आगमन से उसे वेग प्राप्त हुआ है। काव्य अधिकतर समाजाभिमुख हुआ।

नरसिंहराव के पश्चात् ब० क० ठाकोर की विचार धारा को ग्रहणकर, छन्दों के बन्धन तोड़ कर नए-नए छन्दात्मक प्रयोग कविता के क्षेत्र में हुए। १९३० के बाद क्रांति के द्वारा नवीन आदर्शों की बाढ़ आयी, जिसने युवा कवियों को रङ्ग दिए। सुन्दरम् कहते हैं—यह क्रान्ति केवल राजकीय न रही बल्कि प्रजा जीवन के अंग-अंग में बहने लगी जिसने कविता की सांसो सांस में एक नई तरल गति को जन्म दिया' फलस्वरूप अनेक नए गीत गुजराती साहित्य को प्राप्त हुए जिनमें विषय का वैविध्य ही नहीं, नावीन्य भी है। इसमें जीवन दृष्टि काव्य स्वरूप, भावना, भाषा, आदि महत्व के हैं। सुन्दरम् और उमाशंकर जैसे अत्यंत प्रतिभावान कवियों ने पाठकों को दिङ्मूढ़ कर दिए। इस नवीन कविता का गुण है लयमाधुर्य और आकार की चारुता। फिर भी अनेक ऐसी भी कवि रहे हैं जिन्होंने केवल हास्यास्पद कृतिओं का भी सर्जन किया है। जिसका प्रत्याघात साहित्य जगत् में हुआ। और नवीन कविता ने जन्म लिया जिसके अंतर्गत राजेन्द्र शाह, निरंजन भगत, बालमुकुन्द दवे, वेणि भाई पुरोहित, प्रियकांत मणियार, उशनस्, जयंत पाठक, प्रह्लाद पारेख आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी काव्य सृष्टि में लयमाधुर्य है—भावचारुता है और आकार सौष्ठव उदाहरणार्थ—

फूल होय ज्यां भमरो वण बोलाव्यो आवे रे

● ● ●

उनां रे पाणीनां अदभूत माछलां
एमां आसमानी भेज

एमां आतमानां तेज रे
साचां तोंये काचां जाणे काचनां बे काचलां
उना रे पाणी नां अदभूत माछलो

● ● ●

तारी आंखनो अफीणी
तारा बोलनो बंधाणी
तारा रुपनी पुनम नो पागल एकलो
तारी प्रीत बजावे पावो
तारी मस्तीनो मतवालो पागल एकलो

छन्दों की प्रवाहिता, उपयोग नवीन कविता के मुख्य लक्षण हैं। फिर भी उत्तम गीत दयाराम, न्हानालाल, उमाशंकर, सुन्दरम् ने ही दिये। ये उसके गुण हैं। नवीन कविता के अनेक दोष भी हैं। अर्थ गांभीर्य, प्रौढ़ता, गौरव हीनता की दृष्टि से विशेष समय और श्रम की आवश्यकता है जिनके लिए नवीन कविता में कोई स्थान नहीं।

हिन्दी साहित्य की तरह गुजराती में छायावाद, हालावाद आदि वाद प्रवेश नहीं कर सके हैं। अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव जरूर गुजराती पर है। इसका कारण गांधी जी और गांधी जी नवीन दृष्टि है। गांधी के बाद थोड़ा बहुत प्रभाव अरविन्द का भी है पर कम। साम्यवादी भावनाएँ अभी-अभी प्रवेश कर रही हैं। संस्कृत और अंग्रेजी काव्य शैली का सुन्दर समन्वय आधुनिक गुजराती काव्य में हुआ है।

यों तो गुजराती काव्य साहित्य के उत्थान-पतन के बारे में बहुत-बहुत लिखा जा सकता है। यह तो एक मात्र उसकी संक्षिप्त झांकी है। आशा है पाठक वर्ग इतने से यहाँ संतोष मानेंगे। गुजराती काव्य का भविष्य उज्जवल है और दिन-ब-दिन गुजराती काव्य अपने उच्चतम लक्ष्य के लिए कदम उठा रहा है।

● ● ●

गुजराती काव्य में लोक गीतों की भी भरमार रही है।

'मेंहदी तो वावी मालवे ऐनो रंग,
गयों गुजरात मेंदी रंग लाग्यो···।'

आज भी गूंज रहा है। लग्न के गीत, मरशीया, राजिया, गरबा [नृत्य] गीत, रास गीत आदि अनेक लोक गीत गुजराती में प्रचलित है। काव्य के संक्षिप्त इतिहास के साथ-साथ मैं कंठस्थ लोक साहित्य का भी दर्शन कराने अभिलाषा रखता हूँ। लोक साहित्य तलपदी भाषा में या बोलचाल की भाषा में अलिखित स्वरूप में आदि काल मध्य युग तक रहा। अर्वाचीन मुद्रण युग में लोक साहि को मुद्रित किया जा रहा है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को लो साहित्य का प्रवाह देती रही। ऐसा लोक साहित्य अके गुजरात में ही नहीं, सारे भारतवर्ष में और संसार क अन्य भाषाओं में भी है। ऐसे साहित्य में सत्व, सौरभ औ रसतत्व होते हैं जो हमें आनन्द विभोर कर देता है मानव हृदय और उसके स्थायी भाव सर्वत्र समान होने शौर्य, स्वार्पण, प्रेम, विरह, वात्सल्य आदि के अनुभव औ अनुभावना सर्वत्र होते हैं। भारतीय संस्कृति में एकत की वजह से अन्य भाषाओं के लोक साहित्य की तुलना में एक भाषा का लोक साहित्य दूसरी भाषा के लोक साहित्य से समान-सा प्रतीत होता है।

मध्यकाल में गुजरात के देवी पुत्र चारणों ने लोक साहित्य की धारा को पुनर्जीवित किया। उन चारणों ने वीरों का शौर्य, सन्तों की वाणी, आश्रयदाताओं की मुक्तकंठ से वाह-वाह गाई। ऐसे साहित्य में ऋतु वर्णनात्मक बारह-मासे, प्रेम और शौर्य के दुहे मरसिये उल्लेखनीय हैं। जैन कवियों ने भी मिश्रित भाषा में जैन रासा और फागुओं की रचनाएँ इसी हेत्वर्थ की। शैली ब्रज भाषा के अनुसार रही है।

पुरानी डिङ्गल भाषा मिट गई और चारणी भाषा प्रचलित हुई। 'काग कुडावण धन्य घडी' आदि दूहे गाए जाने लगे। इनमें कर्णप्रियता का प्रधान स्थान रहा है। प्रियु और धण्य के आठ प्रहर का संयोग शृंगार, प्रेमियों का विरह, वीरता का अर्ध्य, ऋतुवर्णन, वैराग्यबोध, करुण-प्रशस्तियाँ, स्वतन्त्र मुक्तक, पराक्रम और प्रेम कथाएँ जैसे, सोनहलामण, शेणी-विजाणद, मेह-उजली, गेला-मारु, ओठा-होथल, आणल-देवरा, कुंवर - राणा, नागमदे - नागवाल, लोडण-खामरा। ये गुजराती लोक साहित्य की प्रशंसनीय गीत गाथाएँ हैं।

भाट, मीर, मोतीसर, रावल आदि जातियों ने भी चारणों की तरह दूहा आदि के जरिए लोक साहित्य को जीवित रखा। समाज की स्त्रियों ने गीत, भजन, शादी के गीत,

मृत्यु के गीत, उत्सव के गीत, नवरात्रि के गरबे, रासड़े, व्रत गीत, क्रीड़ा गीत, हालरडे के जरिए लोक साहित्य की धारा बहाई जो आज विशेष उल्लेखनीय है। ऐसे गीतों के कुछ नमूने मैं दे रहा हूँ —

आव रे नार—नहि आवुं,

● ● ●

मारो छे मोर, मारी छे मोर

● ● ●

हंबों हंबो विछुडो

● ● ●

कांग लेवा गई ती गोरी कांग ल्यी

● ● ●

झम झम रे झांझरिया लाल

● ● ●

अच को मग को कांरे ली

● ● ●

सूरज उग्यो रे केवडियानी फणरो के व्हालेलां भले वायां रे

● ● ●

दूधे भरी रे तलावडी मोतीए बांधी पात्र

● ● ●

एक ते राज द्वारमां रमतां बेनीबा दादे ने एसीने बोलावियां

● ● ●

धडीए धडीए लाडण वहु कागल मोकले

पीडी स्नान, पस, फूल का आदि के समय गीत गाए जाते हैं:—

सीमडीए केम जाशो वरराजा

● ● ●

मोर तारी सोनानी चांच

बाराती के गीत—

सीता ने तोरण राम पधार्या

वर की विदा के समय—

आज अमे इडरियो गढ़ जी त्यां रे आनंदभर्या

● ● ●

परण्या हटले प्यारां लाडी चालो आपणे घेर रे

● ● ●

कन्या विदा—

दादा ने आंगण आंवलो आंवलो घेर गम्भीर जो

● ● ●

मांडव आज अणोहणो रे

देढ़ सौ दो सौ से अधिक इन गीतो में सङ्गीत, उर्मि-गहराई रसनिष्पत्ति, भाव प्रतीक, अलंकार और व्यंजकता में तीर की तरह हृदय को चुभा देने की ताकत है।

सीमंत के समय नारी माता बनने के लिए तैयारी करती है तब गाया जाता है —

'बांझियां—भेणां मार्डी दोयलां'

वात्सल्य के गीत—

सावरे सोनानुं माहु पारणियुं
ने धूधरी ना घमकार, बाला पोठो ने

● ● ●

तमे मारा देवना दीवेल छो
तमे मारा मागी लीधेल छो
आव्या त्यारे अमर थइने रहोः

मुग्ध शैशव के गीत—

अडको दडको दहीं दडाको

● ● ●

कहाणी कहूं कैया

गुर्जरी नारी समाज के गीतों में दांपत्य; गृह संसार, कौटुम्बिक जीवन; सामाजिक-ऐतिहासिक प्रसंगों के अनुरूप विषयों के दर्शन होते हैं। सायवा के सम्मुख लाड, प्रणय कलह, रूसणां और मनौती, हेता दिसे गुर्जर नारी गर्वित है। सौराष्ट्र की सागर पट्टी से लेकर सूरत के बारबें तक; पठार, इडर, पंच महाल के भील, दूबला, मुसलमान, पारसी, आदि लोगों का कंठस्थ गीत साहित्य लोक साहित्य है। न्हानालाल, बोटादकर और मेघाणी को लोक साहित्य की वजह से जनता के हृदय में चिरकाल तक स्थान मिला है। शिष्ट साहित्य की तुलना में लोक साहित्य कम नहीं है जो अर्वाचीन युग की संपत्ति है।

तमिल भाषा का संघ साहित्य

एन० चन्द्रकान्त मुदलियार

तमिल दक्षिण भारत की प्रमुख भाषा है। द्राविड़ परिवार की भाषाओं में यही सर्व पुरातन और समृद्ध भाषा है। अन्य सभी दाक्षिणात्य भाषाओं का उद्गम-स्थान तमिल ही है। मलयालम, कन्नड़ और तेलुगु का आदि रूप तमिल से अधिक सम्बन्ध रखता है। संस्कृत, पाली और प्राकृत भाषाओं का प्रचार जब दक्षिण में हुआ तब दक्षिण की सभी भाषाएँ संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित हुईं। उसी समय मणिप्रवाल नामक संस्कृत प्रधान शैली आविर्भूत हुई। मणिप्रवाल भाषा कृत्रिम होने से वह जनता में अधिक समय तक पनप नहीं सकी।

तमिल संस्कृत से अधिक प्रभावित न हो सकी। यह संसार की पुरातन मौलिक भाषाओं में एक प्रमुख भाषा है। ऋग्वेद काल से पूर्व ही तमिल भाषा संपन्न या समृद्ध हो चुकी थी। परन्तु तमिल के पुरातन साहित्य को समुद्र ने कवलित कर लिया। अतः यह निर्णय करना असम्भव सा प्रतीत होता है कि इस भाषा की प्रथम साहित्यिक रचना कब हुई। विद्वानों का दृढ़ और सुस्पष्ट मत है कि ईसा से कई सहस्र वर्ष पूर्व ही तमिल भाषा का साहित्य और उसकी संस्कृति विश्व भर में विदित हो चुकी थी। भारतीय भाषाओं में पुरातन और मौलिक भाषा होती हुई नवीनता से युक्त भाषा तमिल ही है। यह संस्कृत के समान मृत नहीं कही जाती है। समस्त आधुनिक विषयों को अभिव्यक्त करने में यह पूर्णतया समर्थ है। पचास हजार वर्ग मील में तमिल भाषा का व्यवहार होता है। इसे मातृ भाषा के रूप में अंगीकार करने वालों की जनसंख्या लगभग तीन करोड़ है। भारत की चौदह राष्ट्रीय भाषाओं में तमिल भी एक है। लंका, बर्मा, जावा और आफ्रिका आदि प्रदेशों में त[illegible] जनता फैली पड़ी है। पुरानी द्रविड़ सस्कृति का यदि परिचय पाना हो तो तमिल भाषा में प्राप्त संघ साहि[illegible] शिला लेख और ताम्रपत्रों का अध्ययन आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति को समग्र रूप से जानने के लिए त[illegible] और संस्कृत भाषा के साहित्य का सांगोपांग अध्ययन उ[illegible] होगा। ये दोनों भाषाएँ भारतीय वाङ्मय के गगन में [illegible] और चन्द्र के सदृश हैं। तमिल साहित्य में इन दोनों भाष[illegible] की, भगवान् शिव के दोनों नेत्रों से तुलना की गयी [illegible] इसमें संदेह नहीं कि दोनों भाषाएँ कई सहस्राब्दियों [illegible] ज्ञान बारिधि का केन्द्र बनी हुई हैं।

तीन सुप्रसिद्ध तमिल कवि संघ

पुरातन तमिल प्रदेश में साहित्य रचना की सुव्यवस्[illegible] पद्धति प्रचलित थी। राजाश्रय में तमिल भाषा और साहि[illegible] का विकास होता रहा। चेर, चोल और पांड्य राजा[illegible] ने तमिल भाषा के विकास में अधिक रुचि दिखाई। [illegible] दिनों राजाओं के देख-रेख में प्रामाणिव कवियों का [illegible] था। इन कवियों के संघ से प्रामाणित काव्य-ग्रन्थ ही जन[illegible] में आदर पाते थे। भाषा और साहित्य की वृद्धि के लिए अ[illegible] की साहित्य अकादमी जो प्रयास कर रही है वही कार्य तमि[illegible] के कवि संघों में होता रहा। तमिल साहित्य में तीन प्रमु[illegible] कवि संघों की चर्चा है। उसका विस्तृत विवरण यहाँ अभी[illegible] नहीं है। प्रथम और द्वितीय कवि संघों का समस्त तमि[illegible] साहित्य सागर प्रलय में लुप्त हो गया। इस समय अन्ति[illegible] और तृतीय कवि संघ की रचनाएँ प्राप्त हैं। उस काल

आज तक बिना किसी विघ्न-बाधा के तमिल भाषा का चतुर्मुखी विकास हो रहा है। आज तक उपलब्ध साहित्य का काल विभाग विद्वानों ने इस प्रकार किया है —

संघ काल
संघोत्तर काल
भक्ति काल
काव्य काल
मध्य काल और
आधुनिक काल

तीन कवि संघों की चर्चा ऊपर की गयी है। तमिल वाङ्मय का उदय उन्हीं कवि संघों से होता है। अगस्त्य मुनि उत्तर से दक्षिण आये। उन्होंने तमिल भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन कर 'अगत्तियम' नामक व्याकरण की रचना की। उसी को प्रथम संघ की रचना मानते हैं। वह अब उपलब्ध नहीं है। प्राप्त तमिल वाङ्मय में तोलगाप्पियर का 'तोलगाप्पियम' नामक व्याकरण ग्रन्थ ही प्रथम और प्रमुख रचना है। यह द्वितीय संघ की रचना मानी जाती है। अगस्त्य के बारह शिष्यों में तोलगाप्पियर भी एक थे। उन्होंने अपने व्याकरण ग्रन्थ में पूर्ववर्ती तमिल समाज का वर्णन किया है। व्याकरण ग्रन्थ को तमिल के विद्वानों ने पाणिनि से पूर्व का माना है। विषय की दृष्टि से रचयिता ने ग्रन्थ को तीन भागों में बाँटा है—(१) एपुत्तधिकारम [वर्ण विचार], (२) चोल्लधिकारम [शब्द विचार] और (३) पोरुलधिकारम [अर्थ विचार]। समस्त ग्रन्थ में १६०० सूत्र हैं। प्रत्येक विभाग में नौ-नौ अध्याय हैं। प्रथम विभाग में अक्षरों पर विचार किया गया है। दूसरे विभाग में प्रकृति-प्रत्यय और निर्वचन का विचार है। रचयिता की दूरदर्शिता इस अध्याय में स्पष्ट पायी जाती है। भाषा की विकासशीलता और सजीवता आदि को ध्यान में रखते हुए तमिल में अन्य भाषा के शब्दों के प्रवेश का द्वार खुला रखा गया है। शब्दों के लिंगों का निर्णय अतिवैज्ञानिक है। हिन्दी के समान तमिल में लिंग सम्बन्धी भ्रांति कभी नहीं होती। तीसरे विभाग में अर्थ विचार अर्थात् काव्यार्थ पर विचार किया गया है। इस विभाग में साहित्य को तीन प्रकार विभाजित किया है - (१) पाठ्य साहित्य, (२) गेय साहित्य और (३) नाटक साहित्य। तोलगाप्पियम में पाठ्य साहित्य का ही विमर्श हुआ। पद्य, छन्द, अलंकार, काव्य रूढ़ि और रस आदि का विवेचन इस विभाग का विवेच्य विषय है। काव्य प्रकाश के समान आठ ही रस यहाँ माना गया है।

तोलगाप्पियम में कवि प्रतिपाद्य विषय का अह्म [आन्तरिक] और पुरम [वाह्य] के नाम से विभाजन करते हैं। आन्तरिक को ही आप बीती या विषयी प्रधान कविता कहते हैं जिनमें अनुरागात्मक प्रेम प्रवृत्ति, भक्ति और अन्य भावात्मक विषयों का वर्णन होता है। पुरम या वाह्य कविता विषय प्रधान वर्णनात्मक है। इसमें समर, शासन, नीति आदि की व्याख्या होती है।

प्रथम और द्वितीय कवि संघों का साहित्य जब समुद्र के जलप्लावन में समाप्त हुआ तब आधुनिक मदुरै नगर में तृतीय कवि संघ की स्थापना हुई। तमिल साहित्य की गौरवगरिमा की दृष्टि से इस काल को स्वर्ण युग माना गया है। इस युग में रचित वाङ्मय को ही संघ साहित्य कहते हैं। इस काल की सभी रचनाएँ संप्रति उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध और मुद्रित ग्रन्थों के नाम ये हैं (१) एट्टुतोगै [आठ काव्य संग्रह], २ पत्तुप्पाट्टु [दस लम्बी कविताएँ) और (३) पतिनण्कीपकणक्कु [अठारह नीति ग्रन्थ]।

एट्टुत्तोगै में आठ ग्रन्थ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— (१) कलित्तोगै, (२) परिपाडल, (३) ऐंगुरुनूरु, (४) पतिट्टुप्पत्तु, (५) अगनानूरु, (६) पुरनानूरु, (७) नट्रिणै और (८) कुरुंत्तोगै।

ऊपर दिए गए ग्रन्थों में पतिट्टुप्पतु और पुरनानूरु ये दोनों ग्रन्थ विषय प्रधान वर्णनात्मक काव्य हैं। कलितोगै अंग्रेजी के सानट की तरह गीतों का संग्रह है। इसमें १५० गीत संगृहीत हैं। नायक-नायिक के अनुरागात्मक व्यवहार का चित्रण इस ग्रन्थ का विषय है। जगह-जगह पर प्रसंगवश रामायण, महाभारत, भागवत आदि की घटनाएँ उपमा के रूप में वर्णित हैं। तमिल जनता की प्रेम पद्धति, गृहस्थ जीवन, दाम्पत्य सुख आदि का सजीव वर्णन कलित्तोगै में मिलता है।

कुछ उदाहरण दिए जाते हैं

सखी! सुनो तो सही। एक बार हम गृहनिर्माण का खेल खेल रही थीं। एक युवक उस ओर जाते हुए हमारे बनाए

छोटे-छोटे घरों को पैर से मिटाकर हमको दुखी करने लगा। वही युवक एक बार हमारे घर आया और अपनी प्यास बुझाने को पानी माँगा। माँ के कहने पर मैं उसे पानी देने गयी। पानी देते समय उस युवक ने मेरे हाथ को पकड़ लिया। घबड़ा कर मैंने तुरन्त माँ को बुलाया। माँ दौड़ आयी। मैं लज्जा के मारे सच्ची बात न कह सकी। युवक को हिचकी आई कह कर मैंने बहाना किया। मेरी बात को सच मानकर माँ उस युवक को सहानुभूति से देखकर उसे स्पर्श कर उसे सांत्वना देने लगी। उस समय युवक ने कटाक्ष से देखा। उसके उस कटाक्ष ने मेरे हृदय का भेदन कर दिया। उसके कटाक्ष में अपूर्व स्नेह और कृतज्ञ भावना का मिश्रण था।

एक अन्य उदाहरण में दूती की सरस उक्ति इस प्रकार है। एक दूती नायक के प्रेम मार्गीय प्रयास की प्रशंसा करती हुई कहती है—

श्रीमन्! नायिका के प्रति तुम्हारा प्रेम सराहनीय है। किन्तु भयानक रात में बहुत दूर से नायिका मिलनार्थ आना ठीक नहीं। नायिका के प्रति तुम्हारा प्रेम प्रशंसनीय है। किन्तु पर्वतसंकुल गहन वन मार्ग से रात में यहाँ आना ठीक नहीं। नायिका के प्रति तुम्हारा आकर्षण श्लाघनीय है। किन्तु मदोन्मत्त गजों से पूर्ण मार्ग में यात्रा कर पहुंचना ठीक नहीं। इस प्रकार की वचन विदग्धता एवं स्वारस्य पूर्ण बातें-कलित्तोगै में हम देखते हैं।

एट्टुत्तोगै का एक उदाहरण इस प्रकार है

रात में विचरण करने वाले हाथी की पादध्वनि सुनकर खेती के रक्षक ने एक लघु पत्थर रज्जू के सहारे घुमाकर मारा। उस पत्थर ने पेड़ के पुष्पों को गिराया, कटहल के फलों को गिराया। मधुमक्खियों के छत्तों में घुसता हुआ पनस फल में आकर ठहर गया। इस प्रकार विस्मयकारक घटनाओं का वर्णन एट्टुत्तोगै में मिलता है। इस काव्य में ४०० कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं। उस काल में तमिल प्रदेश की सीमा तिरुवेंकटम [तिरुप्पति] से कन्या कुमारी तक थी। इस विस्तृत भूप्रदेश के कवियों की रचनाएँ इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। इन कविताओं में वर्णित-विषय राजाओं की वीरता, दान शीलता, शील प्रशंसा, वैयक्तिक आलोचनात्मक चित्रण ईश्वर, धर्म, युद्ध वर्णन, नगर वर्णन, नन्दों की चर्चा, पाटलि पुत्र और शोणनदी आदि हैं। पुरनानूरु में तमिल प्रदेश, शिक्षा, धर्म, कला-कौशल, तत्कालीन परिस्थिति आदि का वर्णन है। पतिट्टुप्पत्तु में धर्म; अर्थ और काम की प्रतिपादक कविताएँ हैं। इस ग्रन्थ में चेर देश और नरेशों का उल्लेख विशेष रूप से है। परिपाडल भक्ति रस का काव्य है। इसमें ७० लम्बी कविताओं का संग्रह है। संप्रति केवल २२ ही कविताएँ प्राप्त हैं, इन कविताओं की भाषा सरल और सरस है। प्रकृति वर्णन अतीव रमणीय है। मदुरै नगर, वैगै नदी और तिररुप्पुरम पर्वत का सजीव वर्णन इस ग्रन्थ में है। परिपाडल के समय तक उत्तरापथ के वैदिक धर्म का प्रचार पाण्ड्य-देश में हो चुका था। वैदिक, आचार, उपासना पद्धति और तमिल प्रदेश की संस्कृति का उल्लेख इस ग्रन्थ में है। एक कविता में भगवान् से इस प्रकार से प्रार्थना की गयी –

हे भगवन्, हम आप से सांसारिक सुख भोग या सुवर्ण की याचना नहीं करते हैं। हमारी अभीष्ट वस्तु आपका अनुग्रह, सतत भक्ति और धर्म का पालन ही है। अगनानूरु में विषयी प्रधान कविताओं का संग्रह है। इस ग्रन्थ में नवनन्दों की चर्चा है। भारत पर अलेक्जैण्डर द्वारा आक्रमण किए जाने पर नन्द राजाओं से अपनी विपुल धनराशि तथा सुवर्ण को गङ्गा में गाड़ कर सुरक्षित रखे जाने का उल्लेख है। तमिल प्रदेश का एक व्यापारी व्यापारार्थ उत्तरापथ गया। उसके वापस न आने पर व्यापारी की पत्नी नाना प्रकार की कल्पनाएँ करती हुई सोचती है कि नन्दों के गाड़े हुए सुवर्णों को प्राप्त करने के मोह में पड़कर कदाचित् मेरा पति मुझे भूल गया है। नट्रिणै में ४०० प्रेम गीतों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में १७५ कवियों की रचनाएँ प्राप्त हैं। इन कविताओं में इतिवृत्त कम है। प्रायः सभी कविताएँ भावात्मक हैं। नायक-नायिकाओं के मानसिक जगत् की विभिन्न परिस्थितियों का उल्लेख यहाँ पाया जाता है। उपमालंकार का औचित्यपूर्ण प्रयोग इस ग्रन्थ की विशेषता है। एक वियोग संतप्त नायक का उद्गार इस प्रकार है—

मेरा मन नायिका के निकट जाने को मुझे प्रेरित करता है। किन्तु मेरी बुद्धि धनोपार्जनार्थ जाने को कहती है। इन

दोनों परिस्थितियों के मध्यगत मेरे शरीर की दशा दो मदोन्मत्त हाथियों द्वारा खींची गयी रस्सी के समान क्षीण है।

नायक निश्चित समय पर नहीं आया। इस वियोग से व्यथित नायिका को सखी सान्त्वना देती है। इस पर नायिका कहती है कि मैं मर जाने को तैयार हूँ किन्तु मर जाऊँ तो मेरे नायक को भूल जाना पड़ेगा। यह मुझसे सम्भव नहीं।

कुरुन्तोगै में आठ-आठ पंक्तियों के २०४ कवियों की ४०१ कविताएँ संगृहीत हैं। नट्रिणै के समान ही इस ग्रन्थ की कविताएँ भावाभिव्यक्ति की कविताएँ हैं। नायक-नायिका के हृदयोद्गार और उमंगों का सजीव चित्रण यहाँ पाया जाता है। नारियों के केश में सुगन्धि होने का वर्णन भी इस रचना में प्राप्त है। ऐंगुरुनूरु में चेर नरेशों की प्रशंस्तियाँ अधिक हैं।

अन्तिम संघ की दूसरी प्रमुख रचना पत्तुप्पाट्टु है। इसमें दस विशालकाय कविताओं का संग्रह है। पाट्टु का अर्थ है लम्बी कविता। किसी-किसी कविता में ६०० तक की पंक्तियाँ हैं। ई० दूसरी शताब्दी में इसकी रचना हुई। इन दस कविताओं में कुमार कार्तिकेय [मुरुगन] की भक्ति-परक कविता महत्वपूर्ण है। इसका रचयिता नक्कीरर है। कुमार कार्तिकेय के निवास स्थानों का भक्तिपूर्ण वर्णन है। तमिल प्रदेश के शैव इस ग्रन्थ का बड़ा ही आदर करते हैं और शैव भक्ति साहित्य में इस ग्रन्थ का प्रथम स्थान है। ३१७ पंक्तियों में रचित इस पुस्तक में भगवान् स्कंद के षट्मुख और द्वादशकरों द्वारा किये गये वीरतापूर्ण कृत्य और उपकारों का वर्णन है। अन्य नौ कविताओं में तमिल प्रदेश के राजा, उनकी साहित्य और जन सेवा, दानशीलता, उदारता, शासन-प्रणाली, व्यापार, समर, नदी और पर्वतों का वर्णन है। प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के साथ नायक-नायिका की वियोगावस्था का चित्रण मनोज्ञ है। इस काल की तीसरी रचना १८ नीति ग्रन्थों का संग्रह है। इन्हें पति-नेण्कीषकणक्कु कहते हैं। आचार शिक्षण ही इन १८ ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय है। ईसा की प्रथम या द्वितीय शतक में उत्तरापथ से वैदिक, बौद्ध, जैन, आजीवक आदि नाना धर्मों का आगमन तथा उनका दक्षिण में जोरदार प्रचार ही इस प्रकार के नीतिसूक्तों के निर्मित होंने का कारण है। उस काल में आगंतुक धर्मों तथा स्थानीय शैव-वैष्णव धर्मों के मध्य धर्म प्रचार की स्पर्धा बढ़ गयी। सभी धर्माचार्यों ने और कवियों ने जनता को सन्मार्ग में प्रवृत्त करने के लिए नीति या शील प्रधान ग्रन्थों की रचना की। तमिल प्रदेश में द्विपद और चतुष्पद छन्दों का आविर्भाव इसी काल में हुआ। इन १८ नीति ग्रन्थों में १२ ग्रन्थ विषय प्रधान हैं जिनमें युद्ध वर्णन के साथ नैतिक विषयों का प्रतिपादन हैं। अवशिष्ट ६ ग्रन्थों में प्रेम सम्बन्धी बातों का वर्णन है। ये रचनाएँ चाणक्य नीति, विदुर नीति, शुक्र नीति आदि के समान हैं। कुछ ग्रन्थ तो संस्कृत के नीति श्लोकों का अनुवाद मात्र है। संघ काल के अन्त में शृंगारी काव्य धारा का एक प्रकार से अन्त हुआ। कविगण भक्ति और नीति की ओर प्रवृत्त हुए।

नीति के अठारह ग्रन्थों में तिरुक्कुरल और नालड़ियार प्रमुख रचनाएँ हैं। नालडियार में ४०१ चतुष्पदी हैं। धर्म, अर्थ, काम की व्याख्या करने वाले तीन विभागों में यह ग्रन्थ विभाजित है। अनेक व्यक्तियों द्वारा रचित होने के कारण एक ही आशय की आवृत्ति पायी जाती है। तमिल भाषा के वक्ता अपने भाषण की पुष्टि में कुरल और नालड़ियार का उद्धरण प्रमाण के रूप में प्रायः देते हैं। नालड़ियार के तीन पद्यों का आशय नीचे दिया जाता है—

नीच लोगों के निन्दा करने पर सज्जन उन पर क्रोध न कर उदासीन रहते हैं। नीच लोग अपने को बड़ा समझते हैं। वे अपनी निन्दा सुनकर क्रोधोन्मत्त होकर अपलाप करते हैं।

विपुल सम्पत्ति के होने पर सज्जन मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। इसके विपरीत दुर्जन अपनी अल्प समृद्धि से ही अपने को कुबेर या इन्द्र मानने लगता है।

सदा धर्म ज्ञान प्राप्त करो। यम से सदा डरो। अपनी निन्दा करने वालों को क्षमा करो। किसी को ठगो मत। दुर्जनों से दूर रहो। सत्संग करो।

अठारह नीतिग्रन्थों में सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वप्रमुख ग्रन्थों तिरुवल्लुवर की कृति तिरुवक्कुरल है। तमिल प्रदेश में कुरल व्यापक रूप से पढ़ा जाता है। इसका अनुवाद संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, लैटिन, तेलुगु और मलयालम आदि २०० भाषाओं में हो चुका है। वेद और वैदिक ग्रन्थों का सार ही कुरल है। अतः लोग इसे तमिल वेद कहते हैं। नालड़ियार के समान कुरल में भी धर्म, अर्थ और काम की

मध्य संघ एवं अन्तिम संघ का अस्तित्व क्रमशः ३७०० और १८०० वर्ष तक माना जाता है। मध्य संघ का स्थान ताम्रपर्णी नदी के तट पर कपाटपुरम नामक नगर था और इस काल की रचनाएँ मापुराणम्, इडौनुणुक्कम् , पन्निरूप-डलम्; भूतपुराणम्, पेरुङ्गलि इत्यादि मानी जाती हैं। नान्पाडक्कूडल या उत्तर मदुरै में अन्तिम संघ चला और कहा जाता है कि यहाँ नवकीरर, कपिलर, मांगुडिमरुदनार आदि महान कवि और औव्वैयार, पोन्नणियार, बस्मुलै आरियत्ति, वेल्लिवीदियार आदि कवयित्रियाँ भी थीं। इन संघों का और वहाँ के कवियों तथा आश्रयदाताओं का परिचय विस्तार से 'इरैयनार कलवियलुरै' नामक ग्रन्थ देता है; परन्तु आदि एवं मध्य संघों के दीर्घकाल तथा विवरणों पर वर्तमान विद्वान् लोग संदेह प्रकट करते हैं। साथ ही अन्तिम संघ के ग्रन्थों की उपलब्धियों के कारण उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर विद्वान लोग उसका आस्तित्व स्वीकार करते हैं। फिर भी निम्नांकित वाक्यांशों से तमिल संघ का आत्तित्य असंदिग्ध है। शिरुपाणाट्टुप्पडै का 'तमिल निलैपेटतागरु मरपिन् मदुरै' (तमिल को महत्त्व प्रदान करने वाला मदुरै) पुरनानूरु का 'तमिष् केषु कूडल' (तमिल के महत्व का केन्द्र मदुरै) मणिमेखलै का 'तेनू तमिष मदुरे' (दक्षिणी तमिल का मदुरै) तिरुप्पावै का 'संघत्तमिष्'— इत्यादि दसवीं शताब्दी केशिन्नमनूर के ताम्रपत्र में उत्कीर्णित पंक्ति महाभारतम् तमिल पडुत्तुम् मदुरापुरिच्चंगम् वैत्तुम्' (महाभारत की रचना तमिल में करने वाला मदुरै का संघ) तमिल संघ के अस्तित्व का असंदिग्ध परिचय देती है। अतः इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि चूँकि अधुना उपलब्ध संघकालीन ग्रन्थों में चेर, चोल एवं पाण्ड्य राजाओं का उल्लेख मिलता है, परन्तु तमिल प्रदेश पर तीसरी से नौवीं शताब्दी तक राज्य करने वाले पल्लव राजाओं का उल्लेख नहीं है। अतः संघ साहित्य का समय तीसरी शताब्दी के पूर्व का होना निश्चित है। आजकल मान्य सिद्धान्त है— 'संघ काल ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी और ईसवी दूसरी शताब्दी के मध्य का समय रहा होगा।

इस प्रकार संघ काल से आरम्भ होने वाले तमिल साहित्य की दो सहस्र वर्ष से अधिक लम्बी परम्परा को छः भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) संघ काल—ईसा पूर्व ३०० से २०० ईसवी तक
(२) संघोत्तर काल—२०० ईसवी से ६०० ईसवी तक
(३) भक्ति काल—ईसवी ६०० से १२०० तक
(४) टीका काल— १२०० से १६०० ईसवी तक
(५) सांप्रदायिक साहित्य काल – १६०० से १८०० ई० तक
(६) आधुनिक काल (योरोपीय संपर्क के पश्चात्)
१८०० ई० से

इन कालों में विचरित साहित्य की प्रमुख विशेषताओं तथा तत्कालीन तमिल भाषा एवम् तमिल भाषा भाषी जनता की परिस्थितियों पर आगे संक्षेप में विचार करेंगे।

संघ काल और संघोत्तर काल

तमिल प्रदेश के सांस्कृतिक एवम् साहित्यिक वैशिष्ट्य का समग्र स्वरूप एकत्र कहीं देखा जा सकता है तो संघ कालीन साहित्यों में ही वह सम्भव है। संघकालीन साहित्यों को विद्वानों ने 'पाट्टु (गीत) तोहै, (संकलन)' के नामों से विभक्त किया है। यथा पत्तुप्पाट्टु तथा एट्टुत्तोहै (दस गीत, आठ संकलन) इनके अतिरिक्त 'पदिनेण्कीष् कणक्कु' (अट्ठारह लघु) कविता संग्रह) भी इसी काल का माना जाता है। किन्तु इन सभी संघ-साहित्यों के पूर्व का प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ 'तोल्काप्पियम्' ही अधुना उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ है। कहा जाता है कि तोल्काप्पियम् द्वितीय संघ का ग्रन्थ था जिसके लेखक थे अगस्त्य के शिष्य तोल्काप्पियर। इस व्याकरण को ऐन्द्र व्याकरण से प्रभावित भी माना जाता है।

स्वनामधन्य तोलकाप्पियम् प्राचीन काव्य तीन भागों में विभक्त है। प्रथम एषुत्तधिकारम् जिसमें तमिल वर्णों पर विचार किया गया है; द्वितीय शोल्लधिकारम् जो वस्तुतः शब्द विचार है और तृतीय है पोरुलधिकारम् अर्थात् अर्थ विचार। इसके अन्तर्गत अहम् (लौकिक आनन्द) पुरम् (धर्म) कलवु (गुप्त प्रेम) कपु (पातिव्रत्य) पोरुल (अर्थ) यव्पाडु (रस) उवमै (उपमा) शेय्युल् (छन्द) मरबु (रूढ़ि शब्द) आदि नौ विषयों पर विचार किया गया है। अर्थ विचार के प्रथम दो विषय 'अहत्तिणै' और 'पुरत्तिणै' अथवा अहम् और पुरम (अर्थात् लौकिक आनन्द तथा धर्म सम्बन्धी तत्व) एक दूसरे के पूरक हैं। नायक एवम् नायिका का प्रेम पूर्ण

जीवन पारिवारिक जीवन कहलाता है जिसका साधन है अर्थ और जिसका धर्म ही शील है। इसका फल है आनन्द और आनन्द प्राप्ति का साधन है अर्थ और गृहिणी का साहचर्य पाकर तमिल परम्परा के अनुसार मोक्ष मार्ग का भी अवलंबन किया जा सकता है; इस कारण पारिवारिक जीवन का मोक्ष के साथ भी सम्बन्ध है। तथापि लौकिक सुख भोग अथवा 'अहम्' के लिए आनन्द ही प्रधान है; जीवन के शेष तत्त्वों के 'पुरम' अन्तर्गत लिया जाता है। तमिल साहित्य में रस सिद्धान्त को सर्वप्रथम प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी तोल्काप्पियम् को ही है। इस ग्रन्थ में बार-बार 'एन्मनार पुलवर' (इस प्रकार कवियों ने कहा) का प्रयोग होने से यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ की रचना के पूर्व ही अनेक साहित्यों की सृष्टि हो चुकी होगी। वैसे तो यह सर्वविदित सिद्धान्त है कि अन्यान्य साहित्यों की सृष्टि के पश्चात् ही व्याकरण की रचना होती है। तमिल के पश्चात् कालीन वैयाकरण भवणन्दि मुनिवर ने अपने ग्रन्थ 'नन्नूल' में कहा है 'इलक्कियम् कण्डदकु इलक्कणन् इयम्बलिन्' (साहित्य रचना के पश्चात् ही व्याकरण का अविर्भाव होता है। भाषा के समस्त अवयवों के सुव्यवस्थित नियमों की स्थापना करने के साथ ही तमिल जनता के जीवन के लिए भी परमावश्यक सिद्धान्तों का विवेचन करने वाले तोल्काप्पियम् के विषय गांभीर्य तथा विवेचन वैविध्य को देखकर इस निष्कर्ष पर पहुंचना अस्वाभाविक नहीं हैं कि इसके पूर्व ही अनेक तमिल साहित्यों का उद्भव हुआ होगा जो कालक्वलित होकर अप्राप्य हो गये।

पत्तुप्पाट्टु

यह आठ कवियों के द्वारा विरचित दस लम्बी कविताओं का संकलन है। इन दस कविताओं में पाँच 'आट्टुप्पडै' नामक रीति से सम्बन्धित है। आट्टुप्पडै का अर्थ है मार्ग-प्रदर्शन करना। उस काल में अनेक ऐसे कई कलाकार तमिल प्रदेश में रहे जो तमिलनाडु के समस्त प्रदेशों को अपना मानकर वहाँ परोपकार करने वालों की खोज में चलते और उन्हें अपनी कला कुशलता का प्रदर्शन कर उनसे पुरस्कार प्राप्त करते थे। तमिल कविताएँ गाकर प्रसन्न करने वाले कवि, वेष धारण कर चलने वाले कलाकर, याष् (वीणा का एक प्रकार) बजाने वाले पाणरु, नर्तकियाँ, नट आदि सर्वदा एक प्रदेश में जाया करते थे। प्रत्येक वर्ग के लोग परस्पर कह लेते कि लो, अमुक प्रदेश में जाओ। वहाँ एक दानी रहते हैं। उनसे मुझे पुरस्कार प्राप्त हुआ। यदि तुम भी जा कर उन्हें अपने कला प्रदर्शन से प्रसन्न करोगे तो तुम को भी योग्य पुरस्कार मिलेगा। कवियों में इस प्रकार की बातों की वर्णन रीति ही 'आट्टुप्पडै' कहलाती है। 'तिरुमुरुकाट्टुप्पडै' (लेखक : नक्कीरर्), 'पोरुनरुट्टुप्पडै' (लेखिका : मुडत्तामक्कण्णियार), 'शिरुपा णाट्टुप्डे (लेखक : मत्तत्तनार), पेरुम्पाणाट्टुप्पडै (लेखक : रुद्र कण्णनार) और 'कूत्तराट्टुप्पडै यामलै पडुकडाम्' (लेखक : पेरुं कौशिकनार) आदि पाँच आट्टुप्पडै पत्तुप्पाट्टु में रहते हैं। इनके अतिरिक्त नप्पूदनार रचित, कविता मुल्लैप्पाट्टु, रुद्रंकण्णनार के पट्टनप्पालै तथा कपिलर के कुरिंजिप्पाट्टु को 'अहप्पोरुल्' या शृंगार तत्त्व सम्बन्धी रचनाओं के रूप में लिया जाना जाता है। पाण्डिय राजा नेडुंचेरलादम की प्रशंसा में कवि भांगुडि मरुदनार को कविता मदुरैक्कांचि और नक्कीरर् की कविता नेडुनलवाडै पाण्डिय राजा, उसके राज्य एवम् वहाँ के लोगों के जीवन आदि का विस्तृत परिचय देती हैं। प्राचीन काल की तमिल संस्कृति एवम् जीवन की विशेषताओं के अतिरिक्त तमिल प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य का उन्मुक्त चित्रण भी इन कविताओं की उल्लेखनीय विशेषता है।

एट्टुत्तोहै

यह 'नटिणै', 'कुरुन्तोहै', एकुरुनूरु, कलित्तोहै, अहनानूरु पदिट्टुप्पत्तु, पुरनानूरु और परिपाडल, नामक आठ ग्रन्थों का संग्रह है। इनमें प्रथम पाँच ग्रन्थ अहप्पोरुल् पर आश्रित हैं, परवर्ती दो ग्रन्थ पुरप्पोरुल् पर और अंतिम ग्रन्थ अहं और पुरम् पर आश्रित हैं। अहप्पोरुल से वह आनन्द अभिहित किया जाता है। जिसकी अनुभूति मात्र हो सकती है, आलोचना या अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। यह 'काम' वाची है। धर्म एवम् अर्थ से सम्बन्धित पुरुप्पोरुल भौतिक होता है जिसका वर्णन दूसरों के सम्मुख किया जा सकता है अर्थात् जो अभिव्यक्त हो सकता है, इन ग्रन्थों में विशेष कर अहनानूरु एवं पुरनानूरु में क्रमशः शृंगार रस एवं वीर

रस का परिनिष्पन्न रूप पाया जाता है। और इनके अध्ययन अनुशीलन से तमिल समाज, राष्ट्र तथा तत्कालीन चेर चोल एवं पाण्ड्य राजाओं, उनकी राजनीति, धर्म, युद्ध तथा आर्थिक दशा का विस्तृत तथा काव्यगत पुष्ट परिचय प्राप्त होता है। इन आठ ग्रन्थों में से अहप्पोरुल के एक ग्रन्थ वाक्तित्तो है और पुरप्पोरुल के एक ग्रन्थ 'पुरनानूरु' के संक्षिप्त परिचय से इन ग्रन्थों की सामान्य विशेषता का परिचय अवश्य मिल सकता है।

'तोलकाप्पियम्' में उल्लिखित अहत्तिणै के एन्तिणै से सम्बन्धित कविताओं का संकलन कलित्तोहै है। एन्तिणै के पाँच भेदों के अनुरूप इस ग्रन्थ के भी पाँच भाग है। 'कलि' छन्द के विषयों में आबद्ध १५० कविताओं का संकलन होने के कारण इसका नाम 'कलित्तोहै' पड़ा है। पालैक्कलि (लेखक : पेरुंकडुङ्गो) कुरिंजिक्कलि (लेखक : कपिलर) मरुदक्कलि (लेखक : मरुदन् इलनाहनार मुल्लैक्कलि (लेखक : चोष्नूनल्लुरुद्रन्) और नेम्दर कलि (लेखक : नल्लन्दुवनार नामक इन पाँचों भागों में लौकिक प्रेम सम्बन्धी तत्वों का विशद काव्यात्मक विवेचन हुआ है और साथ ही इस काव्य में तमिष् लोगों के जीवन, विचार, स्वभाव, कार्य आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इस काव्य की प्रत्येक कविता में स्वस्थ प्रेम का चित्रण है मानव स्वभाव का वर्णन है, तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब है, आजनीति से सम्बग्न्धित गम्भीर तत्वों का विवेचन है और रचयिताओं के अनुभव-वैविध्य का पुष्ट प्रमाण भी है। इस काव्य के पाँच भाग तमिल प्रदेश में विभाजित भूमि के पाँच भागों पर आश्रित हैं, पालै भूमि बन और पर्वत के उस प्रदेश को कहा जाता है जो ग्रीष्मऋतु में अपनी हरीतिमा खोकर शुष्क हो जाता है और जहाँ के लोग व्याध कहलाते हैं। 'कुरिंजि' पर्वत और उससे सटे हुए प्रदेश को कहा जाता है और वहाँ के निवासी वेट्टुवर शिकारी) और कुरवर (एक प्रकार की खानाबदोश जाति) कहलाते हैं। नदी जल की सिंचाई से लहलहाने वाले खेतों और उनके आस-पास के प्रदेशों को 'मरुदम' कहा जाता है जहाँ के निवासी किसान होते हैं, वन और उसके निकटवर्ती प्रदेशों को (पर्वत और सम भूमि के मध्य का प्रदेश) मुल्लै कहा जाता है और वहाँ के लोग 'अहीर' या 'इडैयर' होते हैं और समुद्र तथा उसके आस-पास के 'नेयदल' प्रदेश के निवासी परदवर, नुलैयर (मछुआ) आदि नामों से अभिहित किये जाते हैं। कलित्तोहै के इन पाँच भागों में पाँच प्रकार के भू भागों में परस्पर प्रेम करने वालों के मध्य घटित होने वाली चारित्रिक विशेषताओं का कलागत वर्णन होने के साथ ही संघ कालीन जन जीवन का सुपुष्ट विवेचन भी हुआ है।

इसके विपरीत पुरनानूरु पुरप्पोरुल् पर आश्रित ग्रन्थ है जिसमें पौरुष, वीरता, प्रेम, करुणा, अनुग्रह आदि महान् जीवन तत्वों से पूर्ण सङ्गीतमय छन्दोबद्ध कविताओं का संकलन हुआ है। इस ग्रन्थ में १२८ राजाओं के सम्बन्ध में १५४ कवियों के रचित चारसौ पद्य हैं। प्रत्येक पद्य में यद्यपि किसी राजा के व्यक्तित्व की या उसके राज्य की अथवा उसकी सेना की प्रशंसा है, कहीं-कहीं अन्यथा या विपरीत भी है, फिर भी 'पुरनानूरु' के पद्य समन्वित रूप से तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब, मानवीय स्वभाव का चित्रण, राजनीति के गहन तत्व आदि प्रस्तुत करते हैं। वीररस पूर्ण 'पुरनानूरु' में तत्कालीन नारियों की वीरता का भी वर्णन यत्र तत्र प्राप्त होता है। जब एक तमिल नारी के मुख से यह पंक्ति सुनते हैं—'ईन्रु पुरन्तरुदल् एन्रलैक्कडने' (पुरनानूरु ३१२) अर्थात् पुत्र को जन्म देकर उसका पालन पोषण कर देश सेवा के लिए उसे अर्पित कर देना ही मेरा परम कर्तव्य है तब तमिलनाडु की वीर रमणियों तथा माताओं का उदात्त स्वरूप प्रत्यक्षीभूत होता है। तत्कालीन शासकों के उन्नत स्वभाव का संपूर्ण स्वरूप 'पुरनानूरु' की कविताओं में पाया जा सकता हैं। शासक लोग उस समय कृषि को राज्योन्नति के लिए परम आवश्यक कृत्य मानते थे और साथ ही कृषकों की रक्षा करना ही वे अपना प्रथम कर्तव्य मानते थे। इन बातों का परिचय इन पंक्तियों से उपलब्ध होता है—

> 'नीर् इन्रिअमैया याक्कैक्कुएल्लाम्,
> उण्डि कोडुत्तोर उयिर कोडुत्तोरे।'
>
> (पुरनानूरु—१८)
>
> 'पहडुपुरम् तरुनर् पारम् ओम्बिक्,
> कुडिपुरम् तरुहुवैयापिन्।'
>
> (पुरनानूरु—३५)

संघ कालीन अन्यान्य कवियों के साथ कई प्रसिद्ध कवयित्रियों के नाम भी लिये जाते हैं। जैसे—आदिमन्दियार, पेरुं-कोप्पेण्डु, अल्लूर् नन् मुल्लैयार, कच्चिप्पेट्टु, नन्नाहैयार, मार्पित्तियार, वेल्लिवीदियार, नक्कण्णैयार, ओक्कूर् माशात्तियार, औव्वैयार प्रभृति।

वस्तुतः संघ साहित्य द्वारा 'याडुम् ऊरे यावरुम् केलिर (पुरनानूरु १९२, सारा जग मेरा निवास स्थान है। सभी मेरे बन्धु बान्धव हैं।) वाले विश्वात्मवाद का साहित्यिक माध्यम से कलात्मक विवेचन हुआ है। लगभग दो सहस्र वर्षों के पश्चात् भी साहित्यका रसास्वादन करने की क्षमता रखने वाले संघ-साहित्य काल एवं प्रदेश की सीमाओं के भीतर संकुचित नहीं है, प्रत्युत वे आज तक नवीन ही बने रहते हैं जो उनके कालातीत सनातन भावसौन्दर्य का परिचय कराता है।

संघ काल की अनेक कृतियाँ नष्ट हो गयीं और कतिपय कृतियों का अंश मात्र उपलब्ध है, इसी कोटि में संप्रति उपलब्ध अधूरा ग्रन्थ 'मुत्तोल्लारिम्' आता है। जिसमें चेर, चोल एवं पाण्डिय राजाओं के सैन्य, पताका, यश, वीरता, देश, नगर इत्यादि पर, कृति के नाम से विदित होता है कि वेण्पा छन्द में रची हुई २७०० कविताओं की रचना हुई थी, परन्तु आजकल केवल १०५ कविताएँ उपलब्ध हैं। इसके रचयिता एवं रचना काल का भी कोई प्रमाण नहीं मिल रहा है। उपलब्ध कविताओं तथा पश्चात्कालीन टीकाओं के आधार पर यह माना जाता है कि इसके रचना-काल में चेर राजा मावेण्गो, चोल राजा पेरुनकिल्लि और पाण्डिय राजा उग्रप्पेरुवघुदि पारस्परिक मैत्री के साथ राज्य संचालन करते थे, वस्तुतः यह संघ-काल का अंतिम समय था।

संघ कालीन साहित्य संकलन 'पत्तिनेणकीष् कणक्कु' के अन्तर्गत निम्नांकित अठारह ग्रन्थों के नाम लिये जाते हैं। 'तिरुक्कुरल्' या 'मुप्पाल', 'नालडियार', 'नान् मणिक्क-डिहै', 'इन्नानार्पदु', 'इनियवै नार्पदु', 'कलकषिनार्पदु', 'कार नार्पदु', 'तिणैमीषि ऐम्बदु', 'तिणैमालै नूट्रैम्बदु', 'ऐन्तिणै ऐम्पदु', 'ऐन्तिणै ऐपुपद', 'तिरिकडुहम्', 'आचार क्कोवै', 'पषमोषि', 'शिरुपंचमूलम', 'कैन्निलै', 'मुदुमोषिक्कोजि' और 'ऐलादि'। इनमें श्रेष्टतम ग्रन्थ तमिल मरै या तमिल वेद कहलाने वाले तथा तिरुवल्लूवर विरचित 'तिरुक्कुरल' का का अपना अन्य तम स्थान है। प्रस्तुत ग्रन्थ छोटे-छोटे १३३० कुरल छन्दों का (कुरल 'दोहे' की भांति तमिल का एक छोटा-सा छन्द है) संग्रह हैं और उसके तीन प्रमुख भेद किये गये हैं। 'धर्म', 'अर्थ' एवं 'काम'—अर्थात् अहम्, पीरूल और इन्बम पर अरत्तुपाल, पोरुट्पाल, एवं कामत्तु-प्पाल के शीर्षकों वाले तीन खण्डों में 'तिरुकुरल' की रचना की गयी है। इन विभागों का तात्पर्य इतना ही है कि तिरुक्कुरल मानव को यह समझाना चाहता है कि वही सच्चा मानव है जो धर्म मार्ग के अवलंबन द्वारा अर्थ प्राप्ति करता है। और अपनी पत्नी के साथ आनन्द मय तथा प्रेम-पूर्ण जीवन यापन करता है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में में तिरुवल्लुवमालै में कहा गया है कि – 'संस्कृत में वेदों का अस्तित्व है तो तमिल में उसी के समान कुरल विद्यमान है।' तिरुक्कुरल के रचयिता तिरुवल्लुवर के जन्म स्थान, कुल तथा धर्म के सम्बन्ध में अब तक विद्वानों में एक मत नहीं हो पाया है। शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि विभिन्न धर्मावलंबियों ने अपने अपने धर्म के अनुयायी रूप में तिरुव-ल्लुवर को सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु किसी का मत सम्पूर्णतः मान्य नहीं हैं, वस्तुतः उनका किसी भी संप्रदाय विशेष की ओर सुझाव नहीं था। वे मानव मात्र को स्वीकार करते थे। उनके साम्य भाव तथा समन्वय प्रवृत्ति का परिचय उनका प्रथम 'कुरल' ही देता है :—

> 'अकर मुदल ऐपुत्तेल्लाम्,
> आदि भगवन् मुदट्रे उलदु'
> (वर्णों का प्रथम अकार है तो
> विश्व का आदि परमात्मा है।)

इसमें आदि भगवान कहकर उन्होंने ईश्वर को जो सम्बोधित किया है, वही उनकी समत्व भावना का परिचय देता है। वल्लूवर के प्रत्येक छन्द में जीवन का चिरन्तन सत्य निहित रहता है। उनका कुरल जीवन के कल्याणार्थ जीवन के सभी अंगों तथा पक्षों का विश्लेषण कर उदात्ततम तत्वों का प्रतिपादन करता है। निष्काम कर्म योग पर विशेष बल देने वाले कुरल को इसी कारण वेदों की

ऋचाओं के समान स्वीकार कर तमिलवेद (तमिल मरै) कहा गया है।

इसके पश्चात् संघोत्तर कालीन महाकाव्यों को देखते हैं। इस युग के दो सर्वोत्तम महाकाव्यों के नाम लिये जाते हैं;—'शिप्पधिकारम' और 'मणिमेखलै', 'शिलप्पधिकारम' के रचयिता चेर राजा शेंकुट्टुवन के भाई श्रमण इलंगो थे। इलंगो ने अपने काव्य के मदुरै नगर का विस्तृत वर्णन करने पर भी तमिल संघ का कहीं उल्लेख नहीं किया है; अतः इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि संघ काल के पश्चात् ही 'शिलप्पधिकारम' की रचना हुई होगी। साथ ही संघ कालीन रचनाओं की शैली से अपेक्षाकृत अधिक सरल शैली को इसमें ग्रहण किया गया है; प्राचीन कृतियों की तुलना में इसमें आर्यों की राजनीतियों तथा पौराणिक कथाओं को अधिक स्थान मिला है; ये तथ्य भी इस कृति को संघोत्तर कालीन मानने के पर्याप्त प्रमाण हैं। बौद्ध मताश्रित काव्य 'मणिमेखलै' कथानक की दृष्टि से 'शिलप्पधिकारम' के निकट है; पर भाषा, शैली, प्रतिपादित धर्म आदि के आधार पर देखा जाय तो विदित होगा कि 'मणिमेखलै' की रचना 'शिलप्पधिकारम' के समय के बहुत बाद को हुई होगी; साथ ही यह भी स्वीकृत तथ्य है कि 'मणिमेखलै' के रचयिता बौद्धमतावलम्बी 'शीत्तलै शात्तनार' और 'शिलप्पधिकारम' में आने वाले इलंगो के मित्र कवि 'शात्तनार' एक नहीं थे प्रत्युत भिन्न भिन्न समय के थे। महाकाव्य के समस्त काव्यगत औदात्त तथा शिल्पगत गांभीर्य से ओत प्रोत यह दोनों महा काव्य तमिल भाषा के गौरव के रूप में माने जाते हैं। 'शिलप्पधिकारम' का कथानक सती नारी कणकी के पायल या शिलम्बु से संबन्धित है, अतः उसका यह नामकरण हुआ। कण्णकी और उसके जीवन-साथी कोवलन तथा नर्तकी माधवी के जीवन से संबन्धित काव्य शिलप्पधिकारम् है और उसकी रचना के समय प्रसिद्ध पाण्डिय राजा नेडुंचेषियन् मदुरै में राज्य करते थे। इस काव्य को तमिल के प्रथम नाटकीय काव्य (Dramatie epic) के रूप में भी स्वीकृत किया जाता है। इस काव्य की एक और विशेषता यह भी है कि काव्य के नायक तथा नायिका के रूप में सामान्य नागरिकों को लिया गया है। यद्यपि काव्य में यत्र तत्र भले ही तत्कालीन चेर, चोल् तथा पाण्डिय शासकों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है फिर भी काव्य का वर्ण्य विषय समाज के सामान्य व्यक्तियों का जीवन ही है। कोवलन-कण्णकी का जीवन-काव्य 'शिलप्पधिकारम' वास्तव में जनसामान्य का काव्य है। कण्णकी के पति कोवलन और उसकी प्रेयसी नर्तकी की पुत्री मणिमेखलै का जीवन काव्य है ''मणिमेखलै' बौद्धमताश्रित यह काव्य तमिल भाषा में उपलब्ध सर्वप्रथम सांप्रदायिक महाकाव्य है। परन्तु जहाँ यह काव्य बौद्ध मत के तत्वों का काव्य गत प्रतिपादन करता है वहाँ अन्य मतों का खण्डन नहीं करता। वस्तुतः 'शात्तनार' ने बौद्ध धर्म के उदात्त सिद्धान्तों की सहायता से इस काव्य के द्वारा सामाजिक सुधार लाने का ही प्रयास किया है।

संघोत्तर काल के अन्त में आते-आते जनता के मध्य जैन बौद्ध धर्मों के प्रति क्रमशः श्रद्धा भाव घटने लगा। जिसके फलस्वरूप उन दोनों के विरुद्ध तमिलनाडु में शैव तथा वैष्णव परम्पराएँ अधिक व्यापक मात्रा में प्रचलित होने लगीं, इन दोनों परम्पराओं के कारण देश में सर्वत्र भक्ति धारा प्रवाहित होने लगी। पामर जनता के मध्य जिस भक्ति आन्दोलन को अभूतपूर्व सफलता मिली उसे राजाओं ने भी स्वीकार किया और इस भक्ति रस की अविच्छिन्न धारा के कारण सर्वत्र भक्ति रस से ओत-प्रोत गीतों की रचना होने लगी। इस भक्ति आन्दोलन के कारण तमिल साहित्य का भण्डार अत्यधिक समृद्ध हुआ।

भक्ति काल

पल्लव राजाओं के शासन काल में वेदेतर जैन तथा बौद्ध धर्मों का प्रभाव घट गया। और क्रमशः शैव तथा वैष्णव भक्ति संप्रदायों का विस्तृत आन्दोलन होने लगा।

सातवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी के बीच शैव भक्ति साहित्य की रचना अधिक मात्रा में हुई। पल्लवों के पश्चात् के चोल राजाओं का भी शैव सम्प्रदाय तथा भक्ति परम्परा को विकसित करने में विशेष हाथ रहा। इसी समय शैव सम्प्रदाय सम्बन्धी १४ दार्शनिक ग्रन्थों और १२ शैव स्तोत्र ग्रन्थों या तिरुमुरै का निर्माण हुआ जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ है—तेयारम (देव हार) तथा तिरुवाचकम् (भक्ति रस

पूर्ण ग्रन्थ) शैव सन्त नायन्मार कहलाते हैं जिनकी संख्या कुल ६३ है और जो तमिलनाडु के विभिन्न प्रदेशों के और विभिन्न जातियों के हैं। इन सन्तों में ब्राह्मण, किसान, धोबी, हरिजन इत्यादि अनेक जातियों के लोग पाये जाते हैं. इन सन्तों में 'अप्पर, सम्बन्धर सुन्दरर् और माणिक्कवाशगर्'—चार अधिक प्रसिद्ध हैं।

अप्पर

इनके दूसरे नाम हैं वागीशर् या नावुक्करशर्। इनका समय पल्लव राज प्रथम महेन्द्र वर्म का था (सन् ६०० ई० से ६३० ई० तक)। कहा जाता है कि अप्पर पहले जैन धर्मावलम्बी थे, पश्चात् अपनी बहन के प्रभाव से शैव सम्प्रदाय में दीक्षित हुए पश्चात् जैन धर्मानुयायी महाराज महेन्द्र वर्म को भी शैव सम्प्रदाय में लाये। इनके रचित ४९००० गीतों में से वर्तमान समय में उपलब्ध गीतों की संख्या केवल ३११० है जो भावगर्भित, विचारोत्तेजक तथा लयसमन्वित हैं। इतिश्रुति है कि जैनों की प्रेरणा से प्रथमतः जब महाराज ने अप्पर को कैद करने की आज्ञा दी तो वे निम्न प्रकार गर्जना करने लगे जिसमें क्रांतितत्त्व का बीज विद्यमान है —

'नामार्कुम् कुडि अल्लोम् नमनै अंजोम्,
नरकत्तिल् इडर्प्पडोम्, नडलै इल्लोम्,
एमाप्पोम्, पिणि अरियोम्, पणिवोम् अल्लोम्
इन्बमे एन्नालुम्, तुन्बमिल्लै।'

(अर्थात्—हम किसी की प्रजा नहीं हैं, यम से भी हम नहीं डरेंगे, नरक में भी हमें कोई कष्ट नहीं होगा, छल नहीं करेंगे, दुख का अनुभव भी हमें नहीं होगा, सिर नहीं झुकायेंगे, सर्वदा सुख ही सुख है, दुख नहीं है।)

परम शैव सन्त अप्पर में प्रगतिशील प्रवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं। समग्र मानव समुदाय को एक मानते हुए वे जाति विद्वेष का खण्डन करते हुये कहते हैं कि—

'शात्तिरम् पल पेशुम् शषक्करहाल्,
गोत्तिरमुम् कुलमुम् कोण्डु एन् शेयवीर'

(शास्त्रवाद करने वाले! गोत्र, कुल, आदि के साथ तुम क्या कर पाओगे?) समस्त जगत में ब्रह्मतत्त्व की अनुभूति करने वाले आध्यात्मिक सन्त अप्पर सर्वत्र परब्रह्म या अपने शिवजी के ही दर्शन करते हैं; वे शिव भक्ति को ज्ञान के समकक्ष मानते हैं और शिव भक्त में परमात्मा के ही दर्शन करते हैं, चाहे उसमें कुष्ट रोग, आमिष भोजन आदि अनेक बुराइयाँ ही क्यों न हों। यथा,

'अगमेल्लाम् कुरैन्दपुहु तोषुनोयराय,
आवुरित्तुतिन्रुषलुम् पुलैयरेनुम्
गंगैवार् शडैक्करन्दार्कु अन्बराहिल्,
अवर कण्डीर् याम् वणंगुम् कडवुलोरे।'

संबन्धर

सम्बन्धर या तिरुज्ञानसम्बन्धर के सम्बन्ध में यह विश्रुत तथ्य है कि उन्होंने पाण्डिय प्रदेश में जैनों को वाद-विवाद में पराजित किया और कून् पाण्डियन को शैव सम्प्रदाय में दीक्षित किया। शंकराचार्य ने उनको 'द्राविड़ शिशु' संज्ञा से सम्बोधित किया है। इसलिए कि सम्बन्धर् शैशव काल में ही महान ज्ञानी हो गए थे। उनके भावगर्भित सरस गीतों की संख्या १६००० हैं; परन्तु केवल ३८४० गीत ही उपलब्ध हैं। सम्बन्धर् के मधुर भक्ति पूर्ण गीत तमिलनाडु में बहुत प्रसिद्ध हैं।

सुन्दरर्

शिवजी को तमिल, सप्तस्वर, स्वरलाभ, मित्र इत्यादि कई रूपों में देखने वाले शिव भक्त सुन्दरर् ने ६२ शैव नायन्मारों के जीवन चरित्र की रचना की है, जिसका नाम है—'तिरुत्तोण्डर तोहै'। (सुन्दरर् को छोड़कर) उनके रचित ३८०० गीतों में से अब उपलब्ध गीतों की संख्या केवल १००० है।' पुण्यक्षेत्र' सम्बन्धी उनके संक्षिप्त विवरण अधिक उपयोगी हैं। उनका सर्वदा यही कहना रहा है कि 'भक्त अपने चित्त को शिवजी में अर्पित कर अनवरत उन्हीं की भक्ति में गाया करते हैं।'

उपरोक्त तीनों सन्तों की रचनाओं को 'तेवारम्' संज्ञा से अभिभूषित किया गया है। चौथे प्रसिद्ध शैव सन्त माणिक्कवाशगर की भक्ति रस प्लावित रचना' तिरुवाचकम्' अत्यन्त प्रसिद्ध है। उनकी दूसरी रचना' तिरुक्कोवैयार' मधुर भावना से ओत-प्रोत है। इन चारों और अन्य नायन्मारों के गीतों का आज भी तमिलनाडु की सामान्य जनता के बीच अत्यन्त सम्मान पूर्ण स्थान है और लोग प्रति दिन

विशेषकर धनुर्मास के प्रति दिवस प्रातःकाल गोष्ठी में इन शैव सन्तों के गीतों का भजन करते हुये नगर या गाँव एवं मन्दिर की परिक्रमा किया करते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शैव सन्त नम्बियाण्डार नाम्बि ने शैव सन्तों के भक्ति गीतों का संकलन किया और उन्हें ग्यारह समूहों में विभक्त कर 'तिरुमुरै' के नाम से जनता के मध्य प्रचारित किया इसका परिचय उमापति शिवाचार्य के तिरुमुरै कण्ठ पुराणम् से प्राप्त होता है। १२ वाँ तिरुमुरै 'पेरियपुराणम्' की रचना (महापुराण) अधिक काव्यात्मक हुई है; इसमें लेखक के नाम है 'शेक्किषार और इसका रचना काल १२ शती का पूर्वार्द्ध है। यह तमिल प्रदेश के शैव नायनमारों की भक्तिमयी दिनचर्या तथा उनके जीवन की विविध अद्भुत घटनाओं का सुन्दर वर्णनात्मक और काव्यात्मक विवेचन प्रस्तुत करता है।

वैष्णव साहित्य

शैव सम्प्रदाय तथा भक्ति साहित्य की श्री वृद्धि के काल में ही तमिलनाडु में आलवारों द्वारा वैष्णव भक्ति का प्रचार तथा तत् सम्बन्धी साहित्य की रचना होने लगी। वैष्णव भक्ति आन्दोलन की सफलता का सारा श्रेय इन आलवारों को ही है जो संख्या में १२ थे। 'तोलकाप्पियम्', 'कलित्तो है' और 'परिपाडल' आदि प्राचीन तमिल ग्रन्थों में विष्णु पूजा का उल्लेख प्राप्त होता है; फिर भी विस्तृत रूप से समग्र तमिल जनता के बीच तथा साथ ही सारे राष्ट्र में वैष्णव भक्ति आन्दोलन ने इन आलवारों के कारण ही गम्भीर तथा व्यापक रूप धारण किया। १२ आलवारों के नाम इस प्रकार है—

'पोय्हैयाष्वार', 'भूतत्ताष्वार', 'पेयाष्वार', 'तिरुप्पाणाष्दार', 'तिरुमषिशै आलवार', 'नम्माष्वार', 'मधुर कवि आष्वार', पेरियाष्वार', 'आण्डाल', 'तिरुमंगै आष्वार', 'तोण्डरडिप्पोडि आष्वार' और 'कुलशखराष्वार'—इन आलवारों ने १०८ वैष्णव स्थलों की महिमा गाई है। भक्ति रस से ओत-प्रोत इनके गीतों का संकलन कर नाथ मुनि ने 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' [चार हजार दिव्य गीत] प्रस्तुत किया है। भावना, कल्पना, सौंदर्य, माधुर्य, सरसता, सरलता इत्यादि से ओत-प्रोत आलवारों के भक्ति रस पूर्ण गीतों में काव्यगत औदात्त आद्यन्त पाया जाता है। इन आलवारों के गेय पदों का पारायण मन्दिरों में अब भी वेदों की भाँति किया जाता है। इन आलवारों में नम्माष्वार पेरियाष्वार और आण्डाल के नाम अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध है और सामान्य जनता के मध्य उनके गीतों का प्रचार सर्वाधिक है। नम्माष्वार या शठगोप ने ही मणिप्रवाल शैली में (संस्कृत तमिल मिश्रित भाषा) तिरुवायमोषि नामक एक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की है जो वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धान्तों तथा भक्ति रस का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत करता है। इनके अतिरिक्त नम्माषवार ने तीन और ग्रन्थों की भी रचना की है जिनके नाम हैं तिरुवाशिरियम्, तिरुविरुत्तम् और पेरिये तिरुवन्तादि।

तमिल प्रदेश के वैष्णव लोगों के बीच नालायिर दिव्य प्रबंधम् को वेदों की भाँति मान्यता प्राप्त है; इसका दूसरा नाम 'श्रीकोष' भी है। वेदों के विविध अंग-उपांगों के समान दिव्य प्रबन्धन् के भी अंग-उपांग विद्यमान हैं। नाथमुनि ने दिव्य प्रबन्धम् का संकलन कर उसके गीतों का क्रम निश्चित किया है और साथ ही संगीत शास्त्रीय नियमों के आधार पर उनके गाने की व्यवस्था भी प्रस्तुत की है। पेरियाषवार के 'तिरुप्पल्लाण्डु' के साथ प्रारम्भ होने वाले दिव्य प्रबन्धम् में चौबीस प्रबन्धों का संकलन हैं। उनमें नम्माषवार का 'तिरुवायमोषि' सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। इसे वैष्णव आचार्य देवान्त देशिकर ने 'उपनिषद् सार' या 'द्राविडोपनिषद' कह कर इसकी महानता को सिद्ध किया है। आलवारों में नम्मालवार का स्थान नायनमारों में माणिक्कवाशगर के समान हैं। उक्त आलवारों का नाम इसलिये नम्मषवार पड़ा कि सभी लोग श्रद्धा तथा आदर के भाव से उनको नम आलवार (हमारे आलवार) कहते थे। समस्त जगत में परमात्मा का अनुभव करने वाले नम्माषवार दवे के भक्ति रस में प्लावित गीतों की व्याख्या 'पेरिय वाच्चान पिल्ले' ने प्रस्तुत की है। इसके प्रसिद्ध आलवार थे—पेरियाष्वार, इनको विष्णुचित्त भी कहा जाता है। विष्णु परमात्मा के लिये वे पुष्पमालाओं ही नहीं, गीतमालायें भी बनाया करते थे। उनके प्रसिद्ध दो ग्रन्थ हैं। 'पेरियाष्वार तिरुमोषि' और तिरुप्पल्लाण्डु।' तमिल भाषा में सूरदास की भाँति बालकृष्ण का भावुकता पूर्ण और भक्ति समन्वित चित्रण प्रस्तुत करने का श्रेय

पेरियाष्वार को ही प्राप्त है। इन्हीं की सुपुत्री थीं भक्त कवयित्री आण्डाल-जिनको तमिल भाषा में राजस्थान की भक्तिन मीरा का स्थान दिया जाता है; हाँ, मीरा बाई का समय आण्डाल से बहुत पश्चात् का है। आण्डाल भगवान विष्णु के प्रेम में मस्त होकर गाया करती थीं। परमात्मा को उन्होंने अपने पति के रूप में स्वीकार कर लिया था। कहा जाता है कि एक दिन उनके पिता ने परमात्मा के लिए जो पुष्प माला बनाई थी उसे आण्डाल ने धारण कर लिया था; जब यह देखकर पिताजी क्रोधित हुए तो उन्हें रात को स्वप्न में आकर परमात्मा ने पेरियाषवार से कहा--'तुम्हारी पुत्री की माला ही मेरे लिए प्रिय है। 'इस प्रकार आण्डाल का सम्पूर्ण अधिकार परमात्मा पर था; इसी कारण उनका नाम आण्डाल या शासिका पड़ा; उनके पिता जी ने उनका विवाह श्रीरङ्गनाथ से कर दिया था; अतः उनको 'शूडिक्कोडुत्त नाच्चियार' (परमात्मा की परिणीता देवी) भी कहा जाता है। आण्डाल के भक्ति रस पूर्ण दो ग्रन्थ विख्यात हैं। 'तिरुप्पावै' और माधुर्य्य 'नाच्चियार तिरुमोषि'। आण्डाल के गीतों में भक्ति की सरस धारा प्रवहमान है। तमिलनाडु के घर-घर में आण्डाल का तिरुप्पावै (३० पदों की रचना) बड़ी भक्ति तथा अनुराग से गाया जाता है; विशेषकर धनुर्मास में उसका पारायण किया जाता है।

वैष्णव आलवारों के दिव्य प्रबन्धम् पर मणि प्रवाल शैली में अनेक भाष्य उपलब्ध है; वैष्णव आचार्य श्री रामानुज के समय में पर्याप्त मात्रा में दिव्य प्रबन्धम् पर भाष्यों की रचना हुई। अब भी इन सब भाष्यों को 'भागवत् विषयम्' कहकर सम्मानित किया जाता है। इन भाष्यकारों में मणवालमामुनि, अषहिय मणवाल जीयर, पिल्लै लोकाचार्य आदि प्रसिद्ध हैं।

भक्तिकालीन इन उपर्युक्त शैव वैष्णव सन्त कवियों की प्रबन्धात्मक कृतियों ने तमिल भाषा में पुनः प्रबन्ध सृष्टि के लिए मार्ग प्रशस्त किया। परिणामतः भक्ति काल के अन्त में अनेक प्रबन्ध काव्यों की रचना हुई। इसके प्रमाण में निम्नांकित रचनाओं को लिया जा सकता है—

[१] कोंगु वेलिर् नामक जैनाचार्य का 'पेरूंकदै' जिसमें उदयण-कथा को काव्य रूप दिया गया है।

[२] नन्दिवर्मन तृतीय के समकालीन कवि पेरुन्तेवनार का 'भारतवेण्बा।'

[३] ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण 'नन्दिक्कलम्बहम्' जिसके रचयिता का नाम अज्ञात है।

[४] 'शिलप्पाधिकारम्' और 'मणिमेखलै' के साथ पच महाकाव्य की श्रेणी में आने वाले तीन और काव्य 'चिन्तामणि', 'वलैयापति' और 'कुण्डलकेशि' इसी काल के रचे हुए हैं।

धर्मार्थकाममोक्ष पर विचार करने वाले काव्य चिन्तामणि को 'जीवक चिन्तामणि' भी कहा जाता है। इसके लेखक जैन मतावलम्बी तिरुत्तक्कत्तेवर थे। कहा जाता है कि कल्पना शक्ति, नाटकीयता तथा वर्णन वैविध्य के कारण यही काव्य परवर्ती महाकाव्यकारों के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करता था। किन्तु शेष दोनों काव्य जैन 'वलैयापति' और बौद्ध काव्य 'कुण्डलकेशि' आज तक अनुपलब्ध हैं; किन्तु उनके उद्धरण यत्र तत्र मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ वलैयापति का परिचय वैशिष पुराण देता है तो कुन्डलकेशि के कतिपय उद्धरण पुरत्तिरटटु में प्राप्त होते हैं, इनके अतिरिक्त इस काल में पाँच लघु काव्यों की भी रचना हुई हैं, वे इस प्रकार हैं :—

शूलामणि; नीलकेशि; उदयण कुमार कावियम्; यशोधर कावियम् और नाग कुमार कावियम्। इसी काल का सुप्रसिद्ध महाकाव्य कवि सम्राट् 'कम्बन की राम कथा' या 'रामायण' भी है। कम्बन ने अधिकांशतः आदि कवि वाल्मीकि की रामायण की छाया का अनुकरण किया है। यत्र तत्र अपनी मौलिक कल्पना, तमिल संस्कृति, काल एवं प्रदेश की दशा आदि के आधार पर उनके प्रसंगों के गठन में परिवर्तन भी प्रस्तुत किया है। अतः इसे अनुवाद नहीं कहा जा सकता; परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण से प्रभाव ग्रहण कर कम्बन ने अपनी उन्मेष पूर्ण प्रतिभा के बल पर राम कथा को नवीन मौलिक उद्भावनाओं के साथ महाकाव्य का रूप प्रदान किया है। इसे 'कम्बरामायणम्' के नाम से भी अभिसंज्ञित किया जाता है।

इसी समय में कलिंग युद्ध के विजयी प्रथम कुलोत्तुंगन् की प्रशंसा में कलिंगत्तुप्परणि (लेखक : जयंकोण्डार) ओट्ट-

ख्कूत्तर रचित 'तक्कयागप्परणि' विल्लिपुत्तूर आष्वार का 'भारतम्' (महाभारत), पुहृषेन्दि का नल वेणबा (नल चरित्र), अतिवीराम पाण्डियन का नैडदम (नैषध काव्य), इत्यादि सुन्दर काव्यों की भी सृष्टि हुई ।

टीकाकाल

उदात्त तत्त्वों से पूर्ण विविध प्रकार के साहित्यों की रचना के पश्चात् स्वाभाविक रूप से व्याकरण या काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना होने लगती है । वही परम्परा भक्ति काल के बाद के टीकाकाल में दिखाई पड़ती है । किन्तु यह भी सत्य है कि अकस्मात् उत्तम टीकाओं की रचना नहीं होती; पहले सामान्य टीका-रचना ही हुआ करती है । उसके पश्चात् क्रमशः गम्भीर भाष्यों की रचना होने लगती है । इस काल में तमिल के व्याकरण ग्रन्थों, तथा संघ कालीन एवं भक्ति कालीन ग्रन्थों के विविध प्रकार के भाष्यों की रचना होने लगी । 'तोलकाप्पियम' का भाष्य तमिल के प्रथम व्याकरण-भाष्यकाल इलम्पूरणार ने प्रस्तुत किया है । इसके अतिरिक्त, शेनावरैयर ने तोलकाप्पियम के शोल्लधिकारम् (शब्द विचार) तथा पेराशियर ने पोरलधिकारम् (अर्थ विचार) का भाष्य प्रस्तुत किया है । इसी काल के टीकाकार के रूप में नच्चिनार्किनियर भी माने जाते हैं जिन्होंने तोलकाप्पियम के वर्ण, शब्द तथा अर्थ विचारों का और 'पत्तुप्पाट्टु कलित्तो' है, जीवक चिन्तामणि जैसे साहित्य ग्रन्थों का भी भाष्य तैयार किया । यह भी स्वीकार किया गया है कि नच्चिनार्किनियर ने तिरुक्कुरल का भी भाष्य प्रस्तुत किया है; किन्तु आजकल तिरुक्कुरल पर परिमेलष्कर का भाष्य ही सर्व श्रेष्ठ माना जाता है; और उनका भाष्य बहुत प्रचलित एवं सरल भी है । अमृत सागर के पिंगल शास्त्र [याप्परुङ्गलम् याप्परुंगलक्कारिकै], दिवाकर के दिवाकरम्, दिवाकर के पुत्र पिंगल के पिंगलन्दै जैसे कोशों, पन्निरुपाटियल, वच्चणान्दिमालै, जैसे छन्द शास्त्रों और जैन सम्बन्धी भवणन्दि मुनिवर के तमिल व्याकरण ग्रन्थ नन्नूल का भी प्रणयन इसी काल में हुआ है । तमिल का अपना अधिक विख्यात व्याकरण नन्नूल ही है । संस्कृत व्याकरण शास्त्र का आधार लेकर 'दण्डि अलंकारम्' [दंडि के काव्यादर्श का अनुवाद] और वीर शौषियम नामक व्याकरण ग्रंथ की भी इस काल में रचना हुई । शिलप्पधिकारम् पर अडियाकुनल्लार का भाष्य भी इसी समय का है । इनके अतिरिक्त शिलप्पधिकारम् पर अनेक टीकाकारों तथा भाष्यकारों की रचनायें भी प्राप्त हुई हैं । फिर भी अडियाकुनल्लार का भाष्य ही अत्यन्त विश्रुत तथा श्रेष्ठतम् भाष्य के रूप में स्वीकृत है । इसी अवधि में वैष्णव साम्प्रदायिक ग्रन्थों की टीकाओं की भी रचना हुई ।

वस्तुतः भक्ति काल तथा टीका काल में ही तमिल भाषा एवं साहित्य का अपार विस्तार एवं प्रसार होने लगा; तमिल भाषा एवं साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव भी इस समय की रचनाओं में ही अधिकांशतः पाया जाता है । तमिल काव्य में संस्कृत परम्परा के अलंकार विधान तथा महाकाव्यों की रचना प्रक्रिया को भी इसी काल में स्वीकृत किया गया है । वास्तव में भक्ति एवं टीका कालों को विशेषकर भक्ति काल को तमिल भाषा तथा साहित्य का स्वर्णकाल अवश्य कहा जा सकता है ।

सांप्रदायिक साहित्य काल

विशेष रूप से सोलहवीं शताब्दी के पश्चात् और अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के पूर्व [सन् १८०० के पूर्व] तमिल भाषा में शैव सम्प्रदाय सम्बन्धी तत्त्व प्रतिपादन करने वाली असंख्य कृतियों की रचना हुई । साथ ही अनेक स्थल पुराण भी गाए गए । पवित्र स्थलों की प्रशंसा में लिखे गए ग्रन्थ तक्त-पुराणम कहलाए । शैव सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रंथकारों में राजा कृष्णदेवराय की सभा के 'हरिदासर' [इन्होंने शैव तथा वैष्णव दोनों के संघर्षों के उल्लेख के साथ—'इस समय विलक्कम' की रचना की है] चिदम्बरम के मरैज्ञान सम्बन्धर सिद्धान्त शिखामणि के रचयिता अम्बलवाण देशिकर आदि प्रमुख हैं ।

सत्रहवीं शताब्दी के शैव संप्रदाय के प्रचारक कवियों में कुमरगुरुपरर और शिवप्रकाशर के नाम तमिलनाडु में अत्यन्त श्रद्धा से लिए आते हैं । कुमरगुरुपरर ने उत्तर भारत में जाकर हिन्दी सीखी और उसके माध्यम से वहां शैव सम्प्रदाय का पर्याप्त प्रचार किया । शिव प्रकाशर वीरशैव सम्प्रदाय के प्रचारकों में से थे । इसके पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में शैव संप्रदाय के अनन्य, पर समदर्शी

कवि 'तायुमानवर' के उदात्ततम विचारों का परिचय प्राप्त होता है। सभी धर्मों को समान समझने वाले तायुमानवर सर्वत्र ब्रह्म को ही देखने वाले परम भागवत थे। इतिश्रुति है कि एक बार उद्यान में वे पूजार्थ फूल तोड़ने गए तो वहाँ प्रत्येक पौधे में फूल खिले हुये थे; सारा उद्यान फूलों के सौंदर्य से खिलखिलाआ हुआ थे। तब उनको लगा कि सर्वत्र वही परमात्मा पुष्पों के बीच में हँस रहा है। तब वे कैसे तोड़ते ? खाली हाथ लौट आए। अतः उनकी पूजा विधि इस प्रकार हो गई।

'निनैवे कोयिल, निनैवे सुगन्धम्, अन्बे
मंजननीर, पूशै कोक्कक्क वाराय परापरमे।'

[ध्यान ही मन्दिर हैं; ध्यान ही सुगन्ध है; प्रेम ही पवित्र जल है; हे परमात्मा ! मेरी पूजा स्वीकार नहीं करोगे ?]

उन्होंने अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुये समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का सन्देश दिया है कि हे परमात्मा ! मेरी एक मात्र कामना है कि सारा जग सुखी रहे; मुझे इससे भिन्न और कोई बात विदित ही नहीं है; जैसे

एल्लोरुम् इन्पुटिरुक्क निनैप्पदुवे,
अल्लामल वेरोन्ररियेन् परापरमे।'

उनके गीतों में संस्कृत के शब्द पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। वे मधुर एवं भावोत्तेजक हैं। तायुमानवर के अतिरिक्त इस काल के प्रमुख सांप्रदायिक साहित्यकारों में शिवज्ञान मुनिवर तथा कच्चियप्प मुनिवर के नाम लिए जाते हैं।

इन शैव सम्प्रदाय सम्बन्धी रचनाओं में मध्य १६०० ई० से १८०० ई० तक की अवधि में इसलाम तथा ईसाई धर्मों से सम्बन्धित कुछ ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ। उदाहरणार्थ सत्रहवीं शताब्दी के कवि 'उमर' का [उमरुप्पुलवर] शीरा पुराणम् हजरत मुहम्मद के जन्म, विवाह, व्यक्तित्व, धर्म स्थापन तथा सफलताओं का काव्यात्मक स्वरूप है। इसी प्रकार तिरुवावडुतुरै के सोमसुन्दर देशिकर के मुसलमान शिष्य और रामनाथपुरम राज्य के राज कवि 'शव्वादु पुलवर' का 'आण्डवर पिल्लैत्तमिष' मुहम्मद साहब पर लिखा हुआ काव्य है। उन्होंने मदीना नगर पर 'अन्तादि' शैली में [पहली कविता का अंत दूसरी कविता का आदि होगा।] एक और ग्रन्थ की भी रचना की है।

इसी काल के भक्तिरसपूर्ण गीतकार के रूप में गुणंगुडि मस्तान साहब का नाम लिया जाता है जिनके कतिपय गीत मात्र उपलब्ध हैं।

सत्रहवीं शताब्दी से तमिल साहित्य के विकास में ईसाइयों का भी महत्त्वपूर्ण योग रहा है। ईसाई पादरियों ने तमिल में अनेक ग्रन्थों की रचना की है। जनता के बीच ईसाई धर्म के उदात्त एवं गम्भीर तत्त्वों का प्रचार एवं तमिल भाषा में गद्य कृतियों द्वारा उन्हें प्रतिपादित करने का प्रथम कार्य इटली के राबर्टिनोबिलि ने किया। उनकी अनेक कृतियाँ अनुपलब्ध हैं। किन्तु उपलब्ध कृतियों से विदित होता है कि उन्होंने तमिल भाषा की प्रकृति के विरुद्ध संस्कृत के अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जिससे उसमें कृत्रिमता का अनुभव होता है। अर्थात् इस कथन से यही अर्थ लेना चाहिए कि कोई भाषा भले ही अन्य भाषाओं के आदान-प्रदान से विकसित हो, किन्तु वह आदान प्रदान भाषा की प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए। तमिल में आधुनिक गद्य साहित्य का प्रादुर्भाव करने का श्रेय जैसे भारत की अन्य भाषाओं के सम्बन्ध में स्वीकृत है, वैसे ही ईसाई धर्म प्रचारकों को ही प्राप्त होता है। हाँ, तथ्य यह भी है कि ईसाइयों ने प्रायः धार्मिक ग्रन्थों की ही रचना की है; धर्म प्रचार करने का ही उनका उद्देश्य रहा है। इसी परंपरा में फादर बेसिक, जान डि ब्रिटो आदि ईसाई पादरी लोग आते हैं। इटली के विद्वान् ईसाई मेशिनरी बेसिक का नाम तमिल विद्वानों के मध्य बड़े आदर के साथ लिया जाता है, उन्होंने तमिल भाषा को सीखकर, 'वीरमामुनिवर' के नाम से अनेक कृतियाँ तमिल में प्रस्तुत की हैं। उनमें ईसाई धर्म सम्बन्धी काव्य 'तेम्पावणि', व्याकरण ग्रन्थ 'ऐन्दिलक्कणत सोन्नूल विलक्कम', गद्य ग्रंथ 'वेदियर ओषुक्कम' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। 'तेम्पावणि में उन्होंने ईसा मसीह का सुमधुर जीवन काव्य प्रस्तुत किया है। उन्होंने तमिल लिपि में सुधार लाने का भी प्रयत्न किया। फादर बेसिक या बीरमामुनियर के सम्बन्ध में यह सर्वमान्य तथ्य है कि तमिल भाषा के सरल तथा व्यावहारिक रूप में गद्य साहित्य की रचना तथा विकास का मार्ग उन्हीं के द्वारा प्रशस्त हुआ। इसी कारण उनको 'तमिल उरै नडैयिन् तन्दै' (तमिल गद्य साहित्य के पिता) के नाम से आंशसित किया जाता है। 'तिरुक्कुरल'

के धर्मार्थ विभागों का उन्होंने लैटिन भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'वीरमामुनिवर' के तीन कोष बहुत प्रसिद्ध हैं। चतुरहरादि; तमिल-लैटिन अहरादि और पोर्तुगीशिय तमिल-लैटिन अहरादि (अहरादि-कोष) 'चतुरहरादि' में उन्होंने तमिल भाषा के शब्दों को अकारादि क्रम में लेकर चार भागों में कोष प्रस्तुत किया है। उनका 'परमार्थ गुरु कथै' तमिल भाषा का प्रथम उपहास-काव्य (salice) माना जाता है। जान डी ब्रिटो की तमिल भाषा में रचित कतिपय धार्मिक गद्य-कृतियाँ भी उपलब्ध हैं।

इस सांप्रदायिक साहित्य काल के सम्बन्ध में यह निश्चित है कि इस समय अधिकांशतः सांप्रदायिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करनेवाली कृतियों का ही उद्भव हुआ; विभिन्न संप्रदायों के सिद्धान्तों को प्रबन्धात्मक कृतियों का स्वरूप देकर सामान्य जनता के हृदय में उनको ऊँचा स्थान दिलाने का प्रयास किया गया; इसके पूर्व के टीकाकाल में अनेक तमिल व्याकरण ग्रन्थों का आगमन हुआ, जिससे 'तोलकाप्पियम्' तमिल भाषियों के लिये सरल हो गया था; इसी समय अनेक निघंटुओं तथा कोषों की भी रचना हुई थी। अठारहवीं शताब्दी तक की काव्य कृतियों में स्पष्टतः दो प्रकार की विशिष्ट शैलियों का प्रयोग पाया जाता है। कुछ कृतियों में प्राचीन काव्य परंपरा का अनुकरण किया गया है और कुछ में जन-मानस में अधिक प्रभाव डालनेवाली जन-गीत परंपरा का पालन किया गया है। इस परंपरा में 'शिन्दु', 'कुम्मि', 'पल्लु', 'कुरवंजि' जैसी शैलियों का प्रयोग हुआ है। इन शैलियों में रचित महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की अनेक कृतियाँ इस कथन का पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

अठारहवीं शताब्दी के पश्चात् का काल विशेष रूप से गद्य काल के नाम के अभिसंज्ञित किया जाता है। नवीन गद्य विकास के प्रमुख कारणों में योरोपीय सम्पर्क विशेष महत्त्वपूर्ण है। यहाँ अर्वाचीन साहित्य के सम्बन्ध में इतना कह देना पर्याप्त होगा कि वह सामान्य जनता का साहित्य है। उसमें जन जीवन के विविध पक्षों का कलात्मक उद्घाटन और जीवन की दैनिक समस्याओं एवं उनके समाधानों का विवेचन प्रस्तुत हुआ है' अर्वाचीन साहित्य दैनिक जीवन के अपेक्षाकृत अधिक निकट है और उसमें जीवन की प्रत्येक धड़कन तथा स्पन्दन का सुमधुर आख्यान है; संघ कालीन महाकाव्यों तथा भक्ति काल के प्रबन्ध काव्यों के पश्चात् उन्हीं की परंपरा में जीवन के सामयिक सत्य की अन्तरानुभूतियों की मार्मिक अभिव्यंजना के साथ कलात्मक तथा भावानुशायी विवेचन करने का महत्तम कार्य आधुनिक साहित्यकार कर रहे हैं। हाँ, गद्य साहित्य की विविध शैलियों का तो प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में हो रहा हैं; किन्तु काव्य-दिशा में महाकाव्य परंपरा छूट-सी गयी है; और लघु काव्यों, मुक्तक काव्यों और अधिक मात्रा में मुक्तक गीतों का ही प्रयोग बहुधा हो रहा है; इसका प्रमुख कारण मानव जीवन की वर्तमान संकुलता तथा सूक्ष्मतम समस्याओं की बहुलता ही है। तथापि आधुनिक तमिल भाषा में साहित्य की समग्र विधाओं का सफल एवं स्तुत्य प्रयोग अवश्य हो रहा है।

●

आधुनिक तमिल काव्य-धारा

कुमारी के० तुलसी

कन्नित्तमिषरशि
कालत्ताल इळवुलगिन
मुन्नै मोषिक्केल्लाम
मुन्दियवल एन्रालुम
पिन्नैप्पुदुमैक्कुम
पेदुम्बै इलंपेरणावाल।

तमिल के आधुनिक कवि चिदम्बर रघुनाथन के उपर्युक्त शब्दों के अनुसार तमिल रानी कन्या है, नित प्राचीना है, सबसे पुरातना है, किन्तु नित नव-यौवना है!

तमिल की उतनी गरिमा है कि वह अपने को अति प्राचीना भी कहला सकती हैं, और माधुर्य एवं आकर्षण में 'क्षणे क्षणे नवता' उत्पन्न करनेवाली रूपसी भी!

तमिल का काव्य-साहित्य आधुनिक युग में अपना पग धरकर सब दिशाओं में नूतन विकास पा गया है। प्राचीन काल के काव्य क्लिष्ट और छन्दों में शास्त्रीय रीति से आबद्ध रह गये थे। आधुनिक काल में महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती ने काव्य के द्वारा तमिल की कन्या को ('कन्नित्तमिल') एक दिव्य माधुर्य प्रदान किया, सरल-सरल शैली में उसे सिखाआ तथा जन-जागरण की भावनाओं को उसमें भर दिया। भारती के डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की पद्य रचना में वैसी भावना नहीं रही, वैसी संजीविनी शक्ति नहीं रही कि जड़ीभूत जनता को चैतन्य प्रदान करे। पुराने छन्दों और अलंकारों में आबद्ध कविता को मन के भावानुकूल छन्दों में भारती ने सजाया। महामना निराला की तरह भारती ने भी 'मैं शैली' ही अपनायी।

लगभग दो सौ पचीस गीत लिखकर तमिल के साहित्य-गगन में 'सूर' का तेज और 'शशि' की शीतलता बरसाने वाले कवि थे भारती। उनका जन्म सन् १८८२ ई० के दिसम्बर की ११वीं तारीख को, एट्टयपुटम में हुआ था।

'एन्दन पाट्टुत्तिरत्ताले, वैयत्तैप्
पालित्तिड वेण्डुम'—

काव्य विभव ले अपना
जग-पालन का वर देना'

कवि अपनी आस्था देवी पराशक्ति से ऐसी ही याचना करते थे।

'नल्लदोर वीणै शेय्दे अदै
नलंकेड प्पुपुदियिल एरिवदुण्डो?
सोल्लदि शिवशक्ति-एनैच्
चुडर मिगु अरिवुडन पडैत्तु विट्टाय्
वल्लमै तारायो—इन्द
मानिलम पयनुर वाषवदर्कें!'

निर्मित कर इक मधुर बीन को
दूर हटायें क्या मिट्टी में?
कहो प्रिये री शक्ति शिवे तुम
उज्ज्वल मेधावान बनाकर
भार रूप होने दोगी तुम?
शक्त नदी क्या कर पाओगी?
करने को जगती का मंगल।
कहो प्रिये री शक्ति शिवे तुम!

अपने को मधुर वीणा के समान माननेवाले कवि भारती में 'दास कबीर जतन से ओढ़ी' कहनेवाले कबीर का आत्म विश्वास पाते हैं। वे अपने को कवि कर्मनिरत सेवक मानते थे।

'एमक्कुत्तोषिल कवितै,
नाट्टुक्कुषैत्तल, इमैप्पोषुदुम सोरादिरुत्तल !'

काम हमारा कविता रचना
सदा देश की सेवा करना
प्रहरी सा नित जागृत रहना
कभी न थककर आहें भरना !

देश के स्वाधीनता-संग्राम में भारती प्रधान योद्धा थे। एक ओर कविता की प्रतिभा, दूसरी ओर अभाव का अत्याचार; एक ओर राष्ट्र-भक्ति की प्रज्ज्वलित वह्नि, दूसरी ओर पराशक्ति की पराभक्ति—ये थे भारती। ऐसी बहुमुखी प्रतिभा और व्यक्तित्व के कारण इनके गीतों में देश भक्ति और दैवी प्रेम के गीतों को विभिन्न रंगों में जगमगाते पाते हैं। दैवी भक्ति की गरिमा एक ओर इस प्रकार गुंजायमान है !

चित्तं तेलियुम-इंगु
सेयगै यनैत्तिलुम सेम्मै पिरन्दिडुय
वित्तैगल सेरुम नल्ल
वीर रुखु किडैक्कुम, मनत्तिडैत्
तत्तुवमुण्डाय—नेंजिर
चंचलम नींगि उरुधि विलंगुम।

मन निर्मल और कर्म श्रेष्ठतम
विद्याओं में बनें निपुणतम
वीरों का हो संग मधुरतम
तत्त्वज्ञान होगा हृदयंगम
नष्ट हृदय की चंचलता तम
नित्य मधुर मन होगा दृढ़तम

—ये हैं भक्ति की विशेषताएँ।

कवि में राष्ट्रीयता का इतना राग है कि कार्त्तिकेय से भी यही याचना करते हैं कि देश के भक्तों को बन्धन मुक्त करो !

अडियार पलरिंगुलरे
अवरै विडुवित्तरुलवा।
मुडिया मरैयिन मुडिवे-असुरर
मुडिवे करुदुम वडिवेलवने !

भक्त तुम्हारे बहुत यहाँ हैं
मुक्त करो तुम उन्हें कृपाली
अन्तहीन निगमान्त तुम्हीं हो
अन्त असुरों के तुम ही हो ?

भारती जन्मभूमि की कड़ी परीक्षा की घड़ी में जन्मे कवि थे ! अपनी भारत माता के अश्रुपूरित नयनों को कैसे वे भूल सकते थे ? अपनी माँ की शृंखलाओं को कैसे शृंगार समझ सकते थे ? कैसे अपने भाई-बंधुओं की मूर्च्छा-सी जड़ता से अनभिज्ञ रह सकते थे ? भारत की स्तुति गाते-गाते सब को प्रकृतिस्थ करने लगे कवि—

मन्नुम इमयमलै एंगल मलैये
मानिलमीदद्दु पोर्पिरिदिल्लैये
इन्नरुम नीर गंगैयारेंगल आरे
इंगदन माण्बिर्कै दिरेदुवेरे…

उज्ज्वल हिमगिरि शृंग हमारा
जग भर में वही इक न्यारा !
सुधामयी जाह्नवी हमारी
नहि समता इसकी रे कोई !
अनुपम उपनिषदों की निधियाँ
सभी हमारी और न ऐसी
कुन्दन-सा यह देश हमारा
वन्दन कर, सानी न हमारा।

प्रान्त-प्रान्त की दीवार भारती को अटका नहीं सकी। उनके लिए सिन्धु नदी प्रिय है, केरल की नवल किशोरियाँ प्यारी हैं, तेलुगू के गीत न्यारे हैं !

सिन्धुनदियिन मिशै निलविनिले
चेर नन्नाट्टिलं पेण्गलुडने
सुन्दरतेलुंगिनिल पाट्टिशैत्तु
तोणिगलोट्टि विलैयाडिवरुवोम !

धुली चन्द्रमा सिन्धु नदी पर
संग चेर की सुन्दरियाँ हों।
आन्ध्र मधुर के गीत गाकर
नैया में विहार करें हम।

हिन्दी के भारतेन्दु की तरह भारती ऐसे समय में पैदा हुए जब कि उनकी कलम प्रेम की रसधारा और भक्ति की मधु नदी मे ही निमज्जित नहीं रह सकी। विदेशी सभ्यता और शासन में बन्दिनी बनी अंधी जनता को कभी-कभी कड़े स्वर से जगाना पड़ा था। 'निज भाषा उन्नति है। सब उन्नति को मूल।' कहनेवाले भारतेन्दु की तरह भारती का भी कुछ सन्देश था तमिल की अपनी जनता के लिए—

शेन्तमिष् नाडेनुम पोदिनिले-इन्बत्
तेन वन्दु पायुदु कादिनिले।

● ● ●

मधुर तमिल का देश हमारा
जो श्रवणों में सिंचित करता
सदा स्निग्ध मधुरस धारा।

कवि के ऐसे गीतों में भारत का वैभवगान गुञ्जायमान है। चेतना शून्य भारतीयों की दुर्दशा पर उनके हृदय में से उमड़ती अश्रुधारा भी है। भारत का हर गरिमा और महिमा में कवि भारत माता की ही खूबी पाते हैं—

इन्दिरचित्तन इरण्डु तुण्डाग
एडुत्त विल यारुडै विल ? - एंगल
मंदिरत्ते यवदम भारत राणि
वयिरवि तन्नुडै विल !
शकुन्तलै पेट्रदोर पिल्लै सिंगत्तिनैन्
तट्टि विलैयाडि—नन्रु
उगन्द् दोर पिल्लैमुन भारत राणि
ओलियुरप्पेट्र पिल्लै
गाण्डीवम् एन्द्रि उलगिनै वेन्रदु
कल्लोक्क तोल तोल एवर एम्मै
आण्डरूल सेयबवल पेट्रु वलप्पवल
आरिय राणियिन तोल !
सागुम पोधुदिल इरु सेविक्कुण्डलम
तन्ददेवकोंडैक्कै ?—सुवैप्
पागु मोषियिर पुलवरगल पोट्रिडुम
भारत राणियिन कै।
पोक्कलत्ते पर ज्ञानमेय् गीतै
पुकन्रदेवरुडै वाय् ?—पगै
तीर्क्कत्तिरन्दरु पेरिनल भारत
देवि मलर्तिरु वाय्।
तन्दै इनिदुर तान अरसाल्वियुम
तैयलर तम्मुरवुम—इनि
इन्द उलगिल विरुम्बुगिलेन एन्रदु
एम अनै सेयद् उल्लम

इन्द्रजीत को चूर कराने उठा
बताओ धनु किसका ?
मंदिर की रानी, देवी
वह भैरवी है, घन्ड इसका।
वीर पूत जो शकुन्तला का
शेरों से नित खेल रहा।
पुत्र प्रतापी वह तो प्यारी
भारत ,माता-का लाल रहा।
शूर धनुष गाण्डीव अजाये
बोलो किसकी वज्र बाहु थी।
हमें पालती कृपा विधायी
आयी जननी की वज्र बाहु थी।
मृत्यु घड़ी में अपने कुण्डल
किये दान किसके कर ने ?
अमर शासक कीर्तिवादिका
भारत माता के कर ने।
रणवेदी पर ज्ञान दायिनी
'गीता' निकली थी किससे।
बैर मिटाने बल देने
जो देवी के पंकज मुख से।
पूज्य पिता को सुखी बनाने
राज्य विभव नारी का प्यार।
नहीं मुझे हों—यों बोला था
भारत माँ का हृदय उदार।

भारती ही ऐसे कवि थे, जिन्होंने प्रातःकाल भारत-माता को जगाने के लिए 'सुप्रभात' का मधुर गीत रचा था।

तोषुदुनै वाषत्ति वणंगुदर्किंगुन
तोण्डर पल्लायिरर शूषन्दु निर्किन्रोत्त
विषि तुयिलिग्न्टनै इन्नुम रनताये
वियप्पिदु कण्णु पल्लि एषुन्दरुलाये।
मदलैयर एषुप्पवुम ताय् तुयल्वायो
मानिलम पेट्रवल इह्दुणटायो
कुदलै मोषिक्किरंगादोरु तायो
कोमगले ! पेरुम भारतक्करशे !
विदमुरु तिन्मोषि पदिनेट्टुम कूरि
वेण्डियवारुनै प्पाडुदुम काणाय्
इदमुर वन्देमै आण्डरुलसेय्वाय्।
ईन्खले पल्लि एषुन्दवुलाये !

अभिवादन को भक्त तुम्हारे
पंक्ति बाँधकर जमा हुये हैं।
अब भी पलकें खुलीं नहीं क्या
माँ मेरी प्रिय भारत की
शिशु जगाये, माता निन्द्रालीन रहे।
भू देवि ! पुण्यप्रसविनि
तुम्हें क्यों यह विदित नहीं,
शिशु बोली सुन दयाहीन क्या
जननी होगी यहाँ कहीं।
बोलो रानी, भारतीय साम्राज्ञी !

अष्टदशी भाषाएँ ले नित
आतुर हो हम गान करें
बिनती सबकी कृपा करो अब
जन्मदायिनी माँ, जागो

हिन्दी के कवि 'नवीन' जूठे पत्ते चाटने वाले को देख दुनिया से पूछते हैं—क्यों न लगा दूँ आज आग मैं दुनिया भर को ? भारती देश में एक को भी भूखा देखना नहीं चाहते।

इनियोरु विधि शोयवोम—अहै
एन्नालुम काप्पोम
तनियोरुवनुक्कुणविलैयेनिल
जगत्तिनैयषित्तिडुवोम

नियम एक हो यहाँ जगत् का
नहीं एक को भोजन हो, तब
नहीं रहे जग,
सर्वनाश ही कर दो जग का !

भक्त कवि भारती अपने प्रियतम भगवान को ऐसे ही देखते हैं, जैसे कबीर प्रिय को पाकर गा उठे—'लाली मेरे लाल की, जित देखौं तिल लाल।' अपने नन्द के लाल (नन्द-लाला) को कवि कहाँ-कहाँ पाने लगे, जरा देखें तो।

काक्कैच्चिरगिनिले नन्दलाला-निनह्न
करिय निरम तोन्रुदैये नन्दलाला।
पाक्कुम मरंगलेल्लाम नन्दलाला-निनतन
पच्चै निरम तोन्रुदवे नन्दलाला,
केटकुमोलियिलेल्लाम नन्दलाला-निनतन
गीतमिशैक्कुदडा नन्दलाला !
तीक्कुल विरलै विट्टाल नन्दलाला—निन्नैत्
तीण्डुमिन्बम तोन्रुदडा नन्दलाला।

● ● ●

श्याम सलोना रंग तेरा
साँवले कौए में पाया।
नन्द के हे लाल ! तेरा
रङ्ग उन पंखों में पाया।
दिशि-दिशि के पेड़ों में प्यारे
दमकती हरियाली तेरी।
नंद के हे लाल, तेरी
चमकती हरियाली हेरी।

सुनूँ जहाँ भी शब्द कहीं भी
सुक्ता तेरा गीत पाया।
करूँ परस मैं अनल का तब
कान्ह परस रे तेरा पाया,
नंद के हे लाल तेरे
मधुर परस का सुख ही पाया।

पराशक्ति के भक्त भारती ने कृष्ण को सखा, जननी, शिशु, सम्राट, सेवक, एकामात्र शरण्या आदि विविध रूपों में पाया है।

मषैक्कुक्कुडै पशिनेस्तुणावेनतन
वाष्विनुक्कैंगल कण्णन ।

दारुण वर्षा में छत्र समान
क्षुधा निठुर में मधु भोजन—
— ये हैं संक्षेप में सखा कृष्ण ।

सुभद्रा जैसी प्रेयसी को अपना बनाने का उपाय दो पल में सुझाता धनुर्धारी कर्ण जैसे सेनानायक को काल के हाथ सौंपने का तरीका एक पल में बता देता—

केट्ट पोधुदु पोरुल कोडुप्पान कंणन
खेलि पोरुत्तिडुवान एन्नै
आट्टंगल आडियुम पाट्टुक्कल पाडियुम
आनन्द कूत्तिडुधान

● ● ●

उल्लत्तिले गर्वम कोण्डप्पोदिले
ओंगियडित्तिडुवान नेञ्जिल
गर्वत्तिनाल ओरु वार्तै सोन्नान अंगु
कारि उमिषन्दिडुवान
आपत्तिनिल वन्दु पक्कत्तिले निन्रु
अदनै विलक्किडुवान-सुडर
दीपत्तिले विथुम पूच्चिगल पोल वरुम
तीमैगल कोन्रिडुवान

मन की जो भी चाह रहे, यह
मन से हम को कान्ह दिलाता
हास औ परिहास लेता
हास्यमयी क्रीड़ा दिखाता ।
नाच गान से दुख भुलाता
प्यार के सब साथियों से
अतुल ही नित काह्न रहता ।
चूर होते गर्व से जो
क्रूर हो संहार करता ।
चोर मन की बोल सुनकर
थूक-कर वह दूर हटता
घोर विपदा की घड़ी में
पास आता विघ्न हरता ।
भस्म होते कीट जैसे
काह्न से दुख नाश पाते ।

कृष्ण कवि की जननी भी है । प्राणों में चैतन्य भरने वाला स्तन्यपान कराने वाली जननी है कण्णम्मा ! धरती उसकी गोदी है, माया की अमर कहानियां सुनाती हैं । उनमें कुछ मधुर हैं और कुछ कटु । विजयदायिनी कुछ कथाएँ हैं, तो अन्य हार का प्रहार करने वाली ।

चंदा और वर्षा की झड़ी लगती करिदमाला, ये अब खिलौने हैं, जो उस जननी ने अपने कवि शिशु के लिए रखे हैं । गिन-गिनकर हार जाए, तारों की ऐसी मणियाँ हैं, बन-बन के पर्वत अचल हैं, देश भर में कल-कल निनाद से बहने वाली नदियाँ हैं; उन सबको अपने उर में समाए रखने वाला सबसे बड़ा खिलौना भी है, जननी 'कण्णम्मा' के पास—वह है सागर करोड़ों की संख्या में इस जननी ने शास्त्र-निर्माण किया । उन सबसे श्रेष्ठ 'ज्ञान' नाम एक वस्तु भी साथ जोड़ दी । अपने शिशु को हँसाने के लिए झूठे मत मतान्तरों और वादों की भी सृष्टि कर दी ।

कण्णन (कृष्ण) कवि के लिए पिता भी हैं; सहस्रों नाम-धारी एक पिता—जिनका जन्म हुआ था गोकुल में; पले बढ़े गोरा जाति में । गौरव पाया द्विजों के बीच; वैश्यों में भी इनकी कम गरिमा नहीं । स्वयं श्यल हैं । किन्तु स्वर्णिम कन्याएँ उनकी प्रीति ध्वजाएँ हैं । फिर भी वे असंग हैं, झूठे शास्त्रों और विद्याओं को देख अट्टहास करने वाले—ये हैं पिता काह्न !

सेवक कन्हैया, अपना सनातन ब्रह्म का पद छोड़ कर भक्तों की भक्ति में बिक जाता है ।

'नाम बताओ, क्या है'—यूँ पूछूँ, तो कहता है—
'है नहीं कुछ—कहते काह्न सभी हैं मुझको ।'
'लोगे क्या मजूरी ?'—इसके उत्तर में,
'है नहीं अपना कहने को पत्नी अथवा पूत,
एक, अकेला, जराग्रस्त नहीं हूँ, फिर भी
वश की कहीं न गिनती मालिक ।
चाहता कुछ आधार हूँ,
प्रीत का मैं दास हूँ,
धन उसी पर कर दूँ ।—यों कहता सेवक

कन्हैया माँ, साथी, सद्गुरु और कृपा में एक साथ देवता और रक्षा करने में प्रहरी बन आया ।

शिष्य 'कण्णन' आचार्य के सभी उपदेशों का उल्लंघन करते हैं और साबित कर देते हैं कि वे परब्रह्म हैं ।

सद्गुरु कण्णन को युवतियों से घिरा हुआ पाकर शिष्य कवि चकित रह जाते हैं । वे उन्हें एकान्त में ले जाते हैं और यों उपदेश देते हैं ।

चित्ततिले शिवं नाडुवार इंगु
शेन्दु कलित्तुल गाब्लुवार-नल्ल
मत्त मद वेंगलिरु पोल-नडै
वायन्दिरुमान्दु तिरिगुवार-इंगु
नित्त निगषुवदनैत्तुमे—एन्दै
नीण्ड तिरुवरुलाल वरुम-इन्बम
शुद्ध सुखन्तनियानन्दम-एनच्
च्षुन्दु कवलैगल तल्लिये ।

चिन्ता को दूर भगाये
चित्त पर तू विजय पाता ।
हो विभोर निज अन्तर में-तू
उस अमर दशा में रम जाना ।
चित्त में शिव शंकर पाते
अमर राज के शासक जो हैं,
मत्त हैं, उन्मत्त गजों-से
प्रभुसक्त हैं, अनुरक्त नहीं हैं ।

कण्णम्मा नन्हीं-सी पुत्री हैं, तो कवि उसे जननी की आँखों से देखते हैं । छोटी-सी सारिका वह माँ की निधि है । बोलती हुई स्वर्णिम छवि है । ठुमक कर जब वह आती है, तब दिल कवि का रससिक्त हो जाता है । जब नाच-नाच कर फिरती है, तो कवि के प्राण उससे लिपट जाते हैं । 'आँसुओं में सहमे' उस अभिराम को देखकर कवि के हृदय से रक्त प्रवाह उमड़ पड़ता है । संक्षेप में वह हृदय में शोभित होने वाला अमर श्रृंगार है । जीवन को सुघर करने वाली वह अलौकिक निधि है ।

खेल बाल कन्हैया अपनी सखियों के बीच मशहूर हैं । अपनी सखी को वह मीठा फल ला देता और आधा खाते-खाते छीन लेता । 'हरिणी-सी सुन्दरी हो' कह कर खुशामद करता । सुन्दर फूल लाता और कहता कि 'आँखें मूँद लो, तुम्हें सजाऊँ ।'—पर फूल दूसरी को देकर ओझल होता ।

भारती ने कृष्ण को प्रियतम और प्रेयसी के रूप में भी पाया है । यही सबसे मधुर है विरहिणी की तड़प, जागरण और प्रतीक्षा के कारण बेचैनी, प्रियतम को सन्देश भेजना, घूँघट को हटाने के लिए आतुर प्रिय की चिढ़—ऐसे स्थलों में कवि की तन्मयता और प्रतिभा अनुभव करने की वस्तु है ।

प्रेयसी 'कण्णम्मा' के साथ कवि का ऐसा ही सम्बन्ध है, जैसे कवि 'निराला' का उनके प्रियतम परमात्मा के साथ है ।

तुम कर पल्लव झंकृत सितार
मैं व्याकुल विरह रागिनी
तुम प्रेममयी के कण्ठहार
मैं वेणी काल नागिनी ।

कवि 'निराला' की सी पंक्तियाँ हैं भारती की भी जब वे अपनी कण्णम्मा का वर्णन करते हैं ।

बीन हो री प्रियतमे तुम,
नाद करती उँगलियाँ मैं ।
हार हो तुम मधुमयी री
जड़ित उसका रतन हूँ मैं ।
मेघ की तुम धार मेरी,
री रँगीला मोर हूँ मैं ।
गीत लय की सुश्रुती हो ।
गान का माधुर्य हूँ मैं ।

आखिर में भारती अपनी शरण्या देवी कण्णम्मा के आगे आत्म समर्पण कर देते हैं ।

पोन्नै प्पोरुलै प्पुगषै विरुम्बिडुम
एन्नैक्कवलैगल तिन्नत्तगादेन्त
निन्नैच्चरणडैन्दे—कण्णम्मा
निन्नैच्चषणडैन्देन ।

नल्लदु तीयदु नामरियोमन्नै
नन्मैयै नाट्टुग तीमैयै ओट्टुग ।

धन, मान कीर्ति का भूखा मैं
मुझको चिन्ता न कवलित कर दे।
भले बुरे का भेद न जानूँ
कर कृपा तू, असत् को कर दूर मुझसे
सत् रहे मुझ में निरन्तर।

भारती के कृष्ण गीत इस दृष्टि से नवीन हैं कि उन्होंने कृष्ण को प्रायः सभी रूपों में देख लिया है। 'तात, मात, गुरु, सखा तू सब विध हित मेरो।' कह कर भक्त कवि तुलसी ने अपने आराध्य की भक्ति की। किन्तु भारती ही ऐसे कवि थे जिन्होंने कृष्ण को अपने सेवक और शिष्य के रूप में भी पाया।

भारती हर दिशा में युग प्रवर्तक कवि बने। क्रान्तदर्शी होकर नव भारत का भावी स्वप्न उन्होंने देखा। शरच्चन्द्र ने बंगाल की नारियों की मूक वेदना को अपनी कहानियों द्वारा वाणी दी। कवि भारती ने जग के आगे ललकार कर उसका गरिमा गान गाया। सामाजिक दृष्टि से भी उनकी सेवाएँ अतुल रहीं। काव्य को बन्धन में डालती हुई पुरानी वे शृंखलाएँ टूट-टूट कर चूर हुईं।

कवि भारती ने शंख में छुपी देश भक्ति की चिनगारी को फूँक दिया और आगे के कवियों ने स्वतन्त्रता की प्रज्वलित यज्ञवेदी ही तैयार कर दी।

कुछ लोग यहाँ तक अविचार कर बैठते हैं कि भारती की कविताओं को सामयिक कहते हैं। यह अनुचित है। आजकल की इस संकटकालीन परिस्थिति में जब कि हिमकिरीटिनी जननी पर आपत्ति घिरी रहती है। भारती के गीत ही हमें प्राण दिलाते आ रहे हैं। यही प्रमाणित करना है कि वे सामयिक परिधि को लाँघकर शोभित होने वाले कलाकार हैं।

भारती अपनी तैंतालीस वर्ष की अल्पायु में ही ऐसी प्रेरणा दे गए हैं कि उनके परवर्ती कवियों ने उससे बहुत कुछ ग्रहण किया है।

अब कवि देशिक विनायकम पिल्लै, नामक्कल रामलिंगम पिल्लै, एस० डी० एस० योगी, भारतीदासन—जैसी प्रतिभाएँ भारती के ही पथ का अनुसरण कर चमक उठती हैं। तमिल की आधुनिक कविताएँ सरस, सरल और मधुर छंदों में मुखरित होने लगी है। सरल से सरल बालक एक के हृदय को आप्यायित करने वाला सौलभ्य है उनमें।

देशिक विनायकम पिल्लै पहले बालकों के लिए अधिक कविताएँ लिखने लगे। अंग्रेजी कविता 'टाइगर' [tigar] का और फारस के कवि उमर खैय्याम के गीतों का अनुवाद प्रसिद्ध हैं। अपढ़ किसान की दृष्टि में भारती के गीत कैसे लगे इस एक मधुर गीत के द्वारा बड़े मार्मिक ढ़ङ्ग से चित्रित किया है कवि ने। सरस भावुकता उनकी कविता की विशेषता है। फारस के वेदान्तिक गीत के आधार पर रची उनकी कविता असाधारण है। 'यह जीवन नश्वर है। जीवन का पक्षी जाने कब तक यहाँ ठहरेगा! लो, उसने अपने पंख फैला दिए।' कवि के शब्दों में इस भाव को देखिए।

वाराय् नण्बा वरुत्तमेनुम
वाडै काल प्पोवैयिनै
नेरा वरुमिववसंतमेनुम
नेरुप्पिल वीशि एरवाय्।
तेरा वाष्विन परवैायनुम
सेल्लुम दूरम शिरिदेयाम्
पाराय् पाराय् परवैयदो
परक्कत्तिरगुम विरित्तदडा!

कविवर देशिक विनायकम ने तमिल कविता की सरसता को स्पृहणीय चारुता प्रदान कर दी।

भारती, कम्बन, दोनों की शैलियों और विचारधाराओं से से प्रभावित कवि थे एस० डी० सुब्रह्मण्य योगी। काली देवी के उपासक ये कवि जीर्ण पुरातनता के विरोधी थे। उनका स्वर्गवास हाल ही में हुआ। अहल्या पर उनका छोटा-सा काव्य उनकी नूतन प्रगतिगामी दृष्टि का परिचायक है। उनका विश्वास है कि उनके अन्तर से देवी ही गाती है, वे नहीं गाते। भक्ति जीवन और जगत् के बारे में स्वस्थ दृष्टि योगी की कविताओं के गुण हैं।

भारती की क्रान्ति और निर्भीकता मात्र से प्रभावित कवि हैं 'भारतीदासन' जो अपने को भारती के दास कहलाते हैं। उनकी कविताओं में निर्भीकता, प्रखरता और व्यंग्योक्ति

पाई जाती हैं। वे दलितों के वकील हैं और अंधविश्वासों के घोर विरोधी। चुभते पैने शब्द, इनके सहायक हैं। जो कुछ मन में उठे। निधड़क कह उठते हैं। साहस से भरी स्वच्छंद कल्पना कभी-कभी पाठकों में आशंका पैदा कर देती है। कि कवि कहीं समीचीनता के किनारों को तोड़ते तो नहीं। उनकी कविताएँ चिनगारियाँ ही बरसाती हों, सो बात नहीं, आँसू के फूल भी बिखेरते हैं।

नामक्कल रामलिंगम पिल्लै मद्रास राज्य के राजकीय कवि रह चुके हैं। उनके गीतों में सुधार, प्रेरणा और राष्ट्रभक्ति की भावनाएँ हैं। वे अधिकतर प्रचारात्मक गीत कहे जा सकते हैं। योगी शुद्धानन्द भारती ने भी तमिल में प्रचुर-मात्रा में गीत लिखे हैं। वे भी अधिकतर समाज और राष्ट्र के सुधार को दृष्टि में रखकर लिखे गए गीत हैं। उनमें कविता के गुण अपेक्षाकृत कम हैं।

भारती की कविताओं से प्रेरणा प्राप्त युवक कवियों में 'सोमु' भी एक है। उनकी कविताओं की शैली सरस है। किन्तु आध्यात्मिकता की ओर इनका अधिक झुकाव पाते हैं, गेय पद की सी माधुरी भी इनकी कविताओं में पायी जाती है।

'कम्बदायन' की कविताएँ गीत का माधुर्य लिए रहती है। आजकल, खेद है कि इनका ध्यान फिल्मी दुनिया की ओर अधिक जाने लगा है। अत: तमिल कविता क्षेत्र से जरा दूर से हैं।

नित्यप्रति लोकप्रिय बनने वाले फिल्मी गीतों में भी कविता का समावेश करने का श्रेय 'कण्णदासन' का है। उनकी कल्पना, छन्दों और शब्दों में नवीनता के कारण फिल्मी गीतों का स्वर भी बढ़ गया है। वहाँ भी काव्य की महक आने लगी है।

'तमिषगन', 'तुरैवन', 'शंकर' जैसे उदीयमान कवियों की कविताएँ आकाशवाणी की प्रेरणा पाकर दिशि-दिशि में गूँज उठती हैं।

आजकल की कविताओं में नए-नए प्रयोग होने लगे हैं भारती ही इन सबके अग्रदूत रहे, इसमें सन्देह नहीं। नव-नव निर्माण करते हुए नित नई योजनाओं में सफल हों, विकास पाते हुए भारत की हर विशेषता को तमिल के सरस गीतों का रूप देते हैं कवि उमाचन्द्रन। आकाशवाणी से तमिल के गीतों के ऐसे प्रयोगों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। स्वरबद्ध तानों में गुञ्जित होने वाली लोरियाँ, आदि सरस भावगर्भित गीत रचने में 'गुहन' का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक काव्य क्षेत्र में यथार्थवादी निर्भीक रचनाएँ करने में चिदम्बर रघुनाथन का नाम उल्लेखनीय है। प्रखर प्रतिभा-युक्त उनकी कविताओं में भावों की तीव्रता है। कभी-कभी किसी-किसी का खण्डन करने के लिए भी ये कविता का माध्यम लेने लगे हैं जो पाठकों को तनिक खटकता है।

आज की विशेष परिस्थिति में हर जोशीला युवक राष्ट्र और वीरता का पुजारी बन गया है। यों कहना अत्युक्ति नहीं है कि हर नव युवक या तो योद्धा बनने को तत्पर है। अथवा प्रतिभा रही तो कवि बनकर तूलिका चलाने को सन्नद्ध। भारत माता को अवश्य अभिमान करती होगी कि उसका हर पुत्र उसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गया है। इसके कवि पुत्रों की हर तूलिका तलवार की झंकार सुनाने लगी है।

जनसाधारण की बोली में कविता रचकर जनमानस को आह्लादित करने वाले कुछ कवि हैं, जिसमें कोत्तमंगलम सुब्बु और 'सुरभि' बहुत प्रसिद्ध हैं। सुब्बु की कविता के लिए तमिल की जनता बड़ी भीड़ में जाकर जम जाती है। उनका मधुर स्वर, मनोहारिणी मधुर भाषा और सरस भाव रसिक मधुपों के लिए सदा लोभ की वस्तु है। उनकी कविताओं का विषय बड़ा ही व्यापक है। बापू जी की अमर कहानी एवं कन्हैया की लीला से लेकर किसान मजदूरों की समस्या और रूसी राकेट तक सभी विषय उनकी कविताओं में शोभा पा जाती हैं। अपढ़ जनता की भाषा और मुहावरों का प्रयोग इनकी लोकप्रियता का रहस्य है। छोटा-सा उदाहरण लीजिए।

गोपी कन्हैया को पालने वाली यशोदा से ईर्ष्या करती हैं कि आखिर इनसे कन्हैया के लिए क्या किया है। सुब्बु की उस कविता का एक अंश सुनिए।

पालती जदुचन्द्र को तो चूर होती गर्व से
कुछ न गिनती गोपियों को,
मधुर ब्रज के वासियों को !

पालन-पोषण में भी वैसी
कौन बड़ाई दिखा रही यह !
नंद मुकुन्द की माँ बनने
योग्य न निज को दिखा रही यह !
जसुमति ने क्या कमाल किया
किशन कान्ह का जनम दिया
स्तन्य दिलाया पूतना का
पापिन उसने क्या और किया ?
बाँधा प्रभु को ओखली से
बड़े वृक्ष से टकराने
छुपा रखा माखन को छोड़ा
हर गली कान्ह को चकराने।
भूखा प्यासा फिरा बिचारा
घर-घर में माखन खाया
मीठा-मीठा नहीं खिलाया
मिट्टी ही खाने पाया।
नहलाया तो कभी नहीं था
भगतों के उस चंदन को
जमुना के उस कालिय से वह
गया नाचकर खेलन को।
कड़ी धूप में चला बिचारा
माँ क्या छत्री देती थी !
गोवर्द्धन की बड़ी पहाड़ी
उसकी उँगली लेती थी !
भूखा प्यासा गाय चराता
कभी न पाकर खाना
गैया मैया से ही सीखा
स्तन्य पान भी करना।

कभी न कुछ भी साज सजाया
कान्ह पियारा मेरा।
तुलसी की पत्तियों को पहने
झूम उठा बेचारा !
हरि ने गुड़िया कभी न पायी
वह भी क्या थी माता
बंसी की टुकड़ी को ले ले
नाचत गान बजाता।

ऐसी मधुर मौलिकता 'सुब्बु' की कविताओं का सरस विशिष्ट गुण है।

आजकल तमिल में सुन्दर कविताएँ रचने वाले उदीयमान कवियों की कमी नहीं है। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि कमी केवल उनकी प्रतिभा को पहचानने की है। आजकल तमिल की पत्र-पत्रिकाओं में मनोरंजन और रोचक कहानियों का आधिपत्य है। कविताओं को उनमें स्थान प्राय: मिलता ही नहीं। आकाशवाणी समय-समय पर उदीयमान कवियों को प्रोत्साहन दे पाती है। आज की ऐसी कठिन परिस्थितियों में निरादर की आँच से, आशंका होती है कि कवियों का कोमल-प्रतिभा-कमल कुम्हला तो नहीं जाएगा। सम्पादकों से क्या हम अनुरोध कर सकते हैं कि कविताओं को भी वे अपनी पत्रिकाओं में स्थान दें। वैसे तो कवियों के साथ ही भौतिक अभाव भी जन्मा हुआ सा है। प्रतिभा के कमल संभवत: अकिंचनता के पंक से ही खिलेंगे। फिर भी हम कवियों में सबको सहकर आगे बढ़ने का संकल्प पाते हैं। वे जानते हैं—

कविते ! कठिन है तव भूमि ही
श्रम भी यहाँ सुख सा रहा।

तेलुगु का काव्य साहित्य

●

बालशौरि रेड्डी

तेलुगु काव्य साहित्य का परिचय प्राप्त करने के पूर्व तेलुगु भाषा की प्राचीनता पर विचार कर लेना आवश्यक है। तेलुगु के पर्यायवाची शब्द 'तेनुगु' तथा 'आन्ध्र' भी हैं। तेलुगु भाषा आन्ध्र प्रदेश की १,०६,२८६ वर्गमील क्षेत्रफल की मातृभाषा है। इसके बोलने वालों की संख्या १९६१ की जनगणना के अनुसार ३,५९,८३,४४७ है। इसके अतिरिक्त मद्रास, ओडिसा, मैसूर, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र में भी तेलुगु भाषा-भाषी है। इनकी संख्या करीब ५० लाख तक की है। तेलुगु Italion of the east प्राच्य इटालियन भाषा नाम से प्रसिद्ध है।

तेलुगु की उत्पत्ति के संबन्ध में विद्वानों का विचार है कि आन्ध्र भूमि प्राचीन काल में श्री शैल, द्राक्षा राम और कालहस्ती नामक तीन प्रसिद्ध शैव तीर्थों के बीच व्याप्त थी, अतः तीन शिवलिंगों के मध्य भाग में व्याप्त भूमि त्रिकलिंग कहलायी, वही कालांतर में त्रिलिंग, तैलंग तेलुंगु व तेलुगु में परिणत हुई।

आन्ध्र शब्द का उल्लेख प्रथम ऐतरेय ब्राह्मणों में हुआ है। विश्वामित्र ने अपने पचास पुत्रों को आर्याश्रमधर्म से च्युत होने पर क्रुद्ध हो शाप दिया था—

···एतेंध्राः, पुंड्राः, शबराः, पुलिंदा, मूतिबा,
इत्यंदु-त्वा बहवो भवंति वैश्या मित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः

ऐतरेय ब्राह्मण—७ अध्याय, ३ खण्ड, १८

रामायण, महाभारत में ही नहीं, अपितु वायुपुराण, विष्णु पुराण इत्यादि पुराणों में भी आन्ध्र का उल्लेख हुआ है। किन्तु सात वाहन राजाओं के समय में आन्ध्र एक महा साम्राज्य के रूप में गठित हुआ। आन्ध्र राजाओं ने मगध पर भी शासन किया था, ऐतिहासिक प्रमाणों से इस कथन की हीं पुष्टि मिलती है।

सातवाहन राजाओं ने आन्ध्र देश की भाषा एवं साहित्य के विकास में योगदान नहीं दिया। क्योंकि वे आन्ध्र देश पर ही नहीं बल्कि महाराष्ट्र मैसूर इत्यादि प्रदेशों के भूभाग पर भी शासन करते थे अतः उन राजाओं ने प्राकृत को अधिकारी भाषा का पद दिया। इन्हीं सातवाहन राजाओं के काल में सोमदेव शर्मा ने 'कथा सरित्सागर' की रचना की थी उसमें बताया गया है कि 'बृहत्कथा' के रचयिता गुणाढ्य शालिवाहन अथवा सातवाहन के मन्त्री थे। इन कारणों से तेलुगु में साहित्य-रचना का कार्य कुछ विलम्ब से ही हुआ है ई० पूर्व प्रथम शती से हमें तेलुगु के शिलालेख उपलब्ध होते हैं। उसके पश्चात् जो साहित्य रचा गया, वह सब जैन व बौद्ध धर्मों तथा हिन्दू धर्म के बीच जो धार्मिक विद्वेष की अग्नि प्रज्वलित हुई, उसमें वह सब खाक हो गया है। यही कारण है कि तेलुगु साहित्य के इतिहास में एक युग अज्ञात युग नाम से व्यवहृत है। तेलुगु साहित्य के इतिहास का निम्न प्रकार से काल-विभाजन किया जा सकता है।

१ - अज्ञात युग ई० पू० २८ से १००० तक
२ —भालांतरीकरण युग अथवा कवित्रय युग ई० सन् १००२-१३५२ तक
३—सन्धि युग या श्रीनाथ युग ई० सन् १३५१-१५०० तक
४ —प्रबन्ध युग या रायल युग ई० १५०१-१७००
५—अर्वाचीन युग या संक्रांति युग ई० १७०१-१८५०
६—आधुनिक युग या नवीन युग ई० १८५१-आज तक

अज्ञात युग (ई० पू० २८ से १००० तक)

इस युग का साहित्य हमें उपलब्ध नहीं हुआ है। शिलालेखों में प्रयुक्त कविता को देख यही कहा जा सकता है कि इस प्रकार परिणति को प्राप्त कविता का उदय एक ही साथ न हुआ होगा। इसके अलावा पालकुरिकि सोमनाथ ने अपने युग के पूर्व की कविता की विधाओं का उल्लेख किया है। साथ ही ई० सन् १०२० को नन्नय भट्ट ने महाभारत जैसे प्रौढ़ महाकाव्य का प्रणयन किया। यदि नन्नय के पूर्व काव्य-रचना न हुई हो तो अचानक ऐसे महाकाव्य के सृजन की आशा हम नहीं रख सकते। अतः नन्नय के पूर्व तेलुगु में अवश्य उत्तम काव्यों की रचना हुई होगी। आज उस साहित्य के उपलब्ध न होने के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें प्रधान कारण यह माना जाता है कि मौर्य युग के पश्चात् आन्ध्र में बौद्ध एवं जैन धर्मों का उत्कर्ष हुआ। उस समय तेलुगु में जैन तथा बौद्ध साहित्य रचा गया। किन्तु धार्मिक विद्वेष के कारण वह सब जला दिया गया। इसी विद्वेषाग्नि में हिन्दू कवियों द्वारा रचित वाङमय भी भस्म हो गया है। इस युग में जो गीत और पद रचे गए, उन्हें लिपि-बद्ध करने का प्रयत्न नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त नन्नय के प्रादुर्भाव के पश्चात् शिष्टसमाज में गीत-वाङमय का आदर न रहा। क्योंकि गीत साहित्य देशी कविता (लोक कविता) माना गया। नन्नय ने मार्ग-कविता का श्री गणेश किया। पंडित समाज ने इसी कविता को मान्यता प्रदान की।

भाषांतरीकरण युग अथवा कवित्रय युग (ई० सन् १००१-१३५०)

इस युग में जितने भी काव्य रचे गए हैं प्रायः वे सभी संस्कृत के काव्यों तथा पुराणों के रूपांतर हैं। यह बात सही है कि तेलुगु के कवियों ने काव्य-रचना में स्वतन्त्रता अवश्य ली है, किन्तु प्रधानतः भाषांतरीकरण (रूपान्तर) ही कहा जा सकता है। ऐसे काव्य-ग्रन्थों में महाभारत, रामायण, मार्कण्डेय पुराण, हरिवंश पुराण, कुमार सम्भव आदि मुख्य हैं। बसव पुराण, पंडिताराध्य चरित्र आदि विशुद्ध मौलिक महाकाव्यों की भी रचना भी इस युग में हुई है, परन्तु अनूदित काव्यों की बहुलता होने के कारण इस युग का नामकरण भाषांतरीकरण किया गया है, साथ ही नन्नय, तिक्कना तथा एरीप्रेगडा जैसे महाकवियों (कवित्रय) ने महाभारत का रूपान्तर किया और इस युग का प्रतिनिधित्व किया। इन कारणों से इस युग का दूसरा नाम कवित्रय युग भी माना जाता है।

तेलुगु भाषा का उपलब्ध आदिकाव्य 'आन्ध्र महाभारत' है। इसका आविर्भाव धार्मिक धरातल पर हुआ है। उन दिनों में आन्ध्र देश में जैन तथा बौद्ध धर्मों का इतना व्यापक प्रचार हो गया था कि उनके प्रभाव से वैदिक धर्म मृतप्राय हो गया था। अतः वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के हेतु वेंगी के चालुक्यवन्शी राजा राजराज नरेन्द्र ने (ई० सन् १०२० में) अपने दरबारी कवि एवं पुरोहित नन्नय भट्ट को आदेश दिया कि वे 'आन्ध्र महाभारत' का प्रणयन करें। इसका कारण यह है कि महाभारत में वैदिक धर्म का अच्छा प्रतिपादन हुआ था। इस काव्य के सृजन के साथ धर्मच्युत जनता में वैदिक धर्म के प्रति पुनः विश्वास जागृत हो उठा। महाभारत की रचना में नन्नय को नारायण भट्ट की सहायता प्राप्त हुई थी। इसका बड़े ही आदर के साथ नन्नय ने उल्लेख किया है—'महाभारत के भयंकर युद्ध में अर्जुन को श्रीकृष्ण की जैसी सहायता प्राप्त हुई, वैसी सहायता मुझे 'महाभारत' की रचना में नारायण भट्ट से प्राप्त हुई है।

नन्नय भट्ट ने महाभारत के आदि पर्व एवं सभा पर्वों की रचना की और वन-पर्व के समाप्त होने के पूर्व ही उनका देहान्त हो गया। इनके अन्य ग्रंथ 'आन्ध्र शब्द चिंतामणि', 'इन्द्रसेनविजयम' और चाणमुडिका विलासमु हैं।

नन्नय के पश्चात् महाकवि तिक्कनाने विराट पर्व से लेकर अन्त तक शेष पन्द्रह पर्वों की रचना की तो एर्राप्रेगडा ने वन पर्व का शेषांश पूरा किया। तिक्कना कवि ब्रह्म नाम से विख्यात थे। तो एर्राप्रेगड़ा प्रबन्ध परमेश्वर नाम से। तिक्कना ने निर्वचनोत्तर रामायण लिखा और एर्राप्रेगड़ा ने नृसिंह पुराण को काव्य-रूप दिया।

इसी युग में नन्नेचोडकवि ने 'कुमार संभव' नाम से एक प्रबन्ध काव्य का सृजन किया। कतिपय विद्वानों का विचार है कि नन्नेचोडकवि नन्नय के पूर्व में हुए थे। कुछ लोग इन्हें नन्नय के परवर्ती कवि मानते हैं।

इस प्रकार एक ओर संस्कृत के काव्य ग्रन्थों के अनुकरण पर सुन्दर काव्यों का सृजन हो रहा था तो दूसरी तरफ वीर शैव धर्म का आश्रय लेकर पालकुरिकि सोमनाथ कवि ने देशी साहित्य का श्रीगणेश किया। सोमनाथ के काव्य-ग्रंथों में 'पंडिताराध्य चरित्रमु' और 'बसव पुराणमु' विशेष प्रख्यात हैं। इन ग्रन्थों में कवि ने देशी छन्द 'द्विपदा' का प्रयोग किया है। सोमनाथ ने 'वृषाधिप शतक' लिखकर शतक साहित्य का भी शुभारम्भ किया, सोमनाथ की कृतियों में काव्यत्व के साथ धार्मिक सिद्धान्तों का कलात्मक प्रतिपादन हुआ है। भावों का आवेग आपकी रचनाओं में पढ़ते ही बनता है। शैव सिद्धान्त के प्रचार में आपने साहित्य द्वारा अनुपम योगदान दिया है। अतः आपको The Brain of the Veera saivacult (वीरशैव शाखा का मस्तिष्क) बताया गया है।

इस युग के अन्य कवियों में वेमुलवाड भीमकवि भी नन्नय के समकालीन अथवा प्राचीन कवि भी माने जाते हैं। कुछ विद्वानों के विचार से ये नन्नय के परवर्ती कवि हैं। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में भी मतभेद हैं। बताया जाता है कि इन्होंने 'राघव पाँड वीयमु' नामक द्वर्थि काव्य का सृजन किया। तथा नृसिंहपुराण एवं कवि जनाप्रयम् नामक रीति ग्रंथ इनकी अन्य रचनाएँ हैं। परन्तु ये चाटूक्तियाँ लिखने में सिद्धहस्त थे। दूषण कविता का श्रीगणेश इन्होंने ही ही किया था। नायन सोमनाथ कृत 'उत्तर हरिवंश' और 'वसंत विलासमु' इस युग की विशिष्ट रचनाएँ हैं।

इस काल की विशेषता यह है कि गोन बुद्धरेडी ने द्विपद छंद में प्रथम 'रामायण' की रचना की जो रंगनाथ रामायण नाम से विख्यात है। इसमें अनेक प्रसंग हैं जो वाल्मीकि रामायण और तुलसी रामायण में भी नही हैं।[1] भास्कर रामायण का कृतित्व भी इसी युग में हुआ है जिसका प्रणयन पांच कवियों द्वारा हुआ है।

इस युग में काव्य के भावपक्ष एवं कला पक्षों का भी समुचित विकास हुआ है। साथ ही रस, छंद, अलंकार एवं व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों का भी सूत्रपात हुआ है। नन्नय ने 'आन्ध्र शब्द चिंतामणि' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा. इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके पूर्व ही तेलुगु में साहित्य रचा गया और तेलुगु भाषा एवं साहित्य का विकास हो चुका था। तभी तो भाषा निबद्ध की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त अथर्वणाचार्य ने 'अथर्वण कारिकावली' (व्याकरण), 'अथर्वण छन्द' प्रस्तुत किए। इस युग के अन्य शास्त्र ग्रन्थों में महाकवि तिक्कना कृत 'कवि वाग्बंध' तिप्पना द्वारा विरचित 'रतिशास्त्रमु', केतना कृत 'भाषा-भूषणमु' गौरन मन्त्री का लिखा 'लक्षण दीपिका', विन्नकोट पेद्दना कृत 'काव्यालंकार चूडामणि आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संधियुग या श्रीनाथ युग (ई० सन् १३५१-१५००)

इस युग में कवित्रय युग द्वारा प्रवर्तित काव्य-रीतियों तथा परवर्ती युग की विशेषताओं का सुन्दर संगम हुआ है। अर्थात् पूर्व युग की रीतियों का प्रतिनिधित्व करते हुए परवर्ती युग की पृष्ठभूमि श्रीनाथ ने अपनी प्रतिभा द्वारा तैयार की। इस प्रकार दो युगों की विशेषताओं की संधि-स्थल यह युग बना हुआ है। अतः इस काल का नामकरण सन्धि युग नाम से व्यवहृत करना अत्यन्त समुचित लगता है। चूँकि इन विशेषताओं का प्रतिनिधित्व श्रीनाथ महाकवि ने किया और उनके द्वारा प्रवर्तित रीतियों का इस युग के कवियों ने अनुकरण किया। इस कारण से यह श्रीनाथ युग भी कहलाता है।

इस युग में अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए और वे सब प्रतिभा के धनी थे। उन सबका परिचय देना संभव नहीं हैं। इस युग के कवि और काव्यों में मडिकि सिंगना के 'वसिसु पुराण और 'भागवत दशम स्कंध', जक्कय कवि कृत 'विक्रमार्क चरित्र', 'अनन्तामात्य के 'भोजराजीयमु' 'रसाभरणमु' और 'अनन्तुनि छन्दस्स', गौरन मन्त्री द्वारा विरचित 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' और 'नवनाथ चरित्र', निश्शंक कोम्मना का 'शिव लीला विलासमु', दूबगुन्ट नारायण कवि रचित 'पंच तंत्रमु' वेन्नेलकंटि सूरना का 'विष्णु पुराणमु', नन्दि मल्लैया का 'प्रबोध चन्द्रोदयमु', घंट सिंगगैया का 'वराह

[1] – विस्तृत विवरण के लिए इन्हीं पंक्तियों के लेखक द्वारा रचित 'तेलुगु साहित्य में रामचरित' (श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ) का अवलोकन करें।

पुराणमु', पिल्ललमर्रिपिनवीरना कृत 'श्रृंगार शाकुन्तलम्', 'जैमिनी भारतमु', 'नारदीय पुराणमु' तथा 'अवतार दर्पणमु', और दग्गुपल्लिदुग्गैया के 'नाचिकेतोपाख्यान' और 'काँचीपुरमहात्म्यमु' विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

यह युग यदि किन्हीं कवियों पर गर्व कर सकता है तो महाकवि बम्मेर पोतना तथा कवि सार्वभौम श्रीनाथ पर ही। पोतना ने भागवत को महाकाव्य का रूप दिया जिसमें काव्य कला एवं भक्ति का मधुर समन्वय हुआ है। महाभारत के पश्चात् आन्ध्र में यही काव्य अधिक लोकप्रिय हुआ है। पोतना ने श्रीकृष्ण की कथा लिखी, किन्तु वे श्रीरामचन्द्रजी के भक्त थे। भक्ति में तन्मय हो काव्य का सृजन प्रारम्भ करते और सुधावृष्टि होती। इस काव्य की प्रशस्ति पोतना के जीवन काल में इतनी अधिक हो गई थी कि सर्वज्ञ सिंगम नामक एक राजा ने इस कृति का भर्ता बनने की इच्छा प्रकट की, पोतना के अस्वीकार करने पर उन्हें सताया गया। अन्त में पोतना की ही विजय हुई थी।

पोतना ने कृषि-कार्य के साथ काव्य सर्जन भी किया ये राजाश्रय में जाना पाप की बात मानते थे। कवि सार्वभौम इनके साले थे। वे भी इनकी कविता पर मुग्ध थे। आन्ध्र का तत्कालीन जन-जीवन एवं आचार-विचार पोतना के काव्य में जैसे प्रतिबिम्बित हैं, अन्यत्र दुर्लभ हैं। पोतना के काव्य में भाव-पक्ष अत्यन्त सबल बन पड़ा है। इनकी अन्य कृतियाँ 'भोगिनी दण्डकमु', 'वीरभद्र विजयमु' तथा 'नारायण शतकम' हैं।

श्रीनाथ कवि ने तेलुगु काव्य साहित्य को प्रौढ़ता प्रदान की। भाषा और शैली को अधिक सक्षम, संपन्न एवं मधुर बनाया। तेलुगु कविता का अभिषेक कराया। कवियों का स्थान ऊँच किया। ये तेलुगु एवं संस्कृत के प्रकांड पंडित और कवि थे। इन भाषाओं पर श्रीनाथ का असाधारण अधिकार था इन्होंने अपना अधिकांश समय विद्या-गोष्ठी तथा काव्य रचना में व्यतीत किया। ये कोंडवीडु हथा राजमहेन्द्रवरम के रेड्डी राजाओं के दरबारों में प्रधान रत्न थे। समय-समय तत्कालीन प्रायः सभी दरबारों में जाकर स्वर्णाभिषेक प्राप्त किया। कवि सार्वभौम की उपाधि पाई। असंख्य विद्वानों को शास्त्रार्थ एवं कविता-स्पर्धा में पराजित कर विमल यश का आर्जन किया। श्रृंगार नैषध, काशीखण्ड, भीमखंड, मरुत्तराट चरित्र पलनाटि वीरचरित, भीमेश्वर पुराण, हर विलास, शिवरात्रि-महात्म्य आदि प्रबन्ध राजों का प्रणयन करके तेलुगु भारती को सब प्रकार से सम्पन्न किया। अपनी बहुमुखी प्रतिभा तथा विलक्षण कविता चातुर्य द्वारा जो काव्यादर्श स्थापित किया, वह भावी युग के लिए भी आदर्श और अनुकरणीय हो गया।

श्रीनाथ की कविता धारा गंगा की तरह अजस्र तथा निर्मल होती है। उक्ति-वैचित्र्य, चमत्कार, अलंकारों का प्रयोग शब्द, योजना, छन्दोवैविध्य आदि की दृष्टि से इनकी कविता अनुपम एवं अद्भुत बन पड़ी है। श्रीनाथ की कृतियों द्वारा तेलुगु काव्य-साहित्य स्वर्णिम एवं प्रकाशमान हो उठा है।[1]

प्रबन्ध युग अथवा रायल युग (१५०१-१७००)

तेलुगु साहित्य के इतिहास में यह युग स्वर्ण युग माना जाता है। अष्टादश वर्णनों से पूर्ण काव्य तेलुगु में प्रबन्ध काव्य नाम से व्यवहृत है। हिन्दी में महाकाव्य के जो लक्षण माने गए हैं, वे ही तेलुगु में प्रबन्ध काव्य के लिए निर्धारित किए गए हैं।

प्रबन्धों की प्रबलता के कारण यह प्रबन्ध युग कहा जाता है, कृष्णदेव राव ने इस युग का प्रतिनिधित्व किया, अतः यह रायल युग भी कहलाता है। सम्राट कृष्णदेव राव के समय विजय नगर (विद्या नगर) साहित्य तथा कलाओं का उत्तम केन्द्र हो गया था। राजा कृष्णदेव राय ने केवल कवियों के आश्रयदाता थे, अपितु वे स्वयं एक महाकवि भी थे। संस्कृत, तेलुगु, कन्नड, तमिल आदि भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत में जामवती परिणयमु इत्यादि कृतियों का सर्जन किया ही, साथ ही तेलुगु में 'आमुक्त मालयदा' नाम से आण्डाल अथवा गोदादेवी के चरित्र को एक प्रौढ़ प्रबन्ध काव्य का रूप दिया है यद्यपि इसमें वैष्णव धर्म का प्रतिपादन हुआ है। तथापि काव्य के

[1]—विस्तृत परिचय के लिए इन पंक्तियों के लेखक द्वारा रचित 'आन्ध्र भारती' पृष्ठ ८२-९७ (कलानिकेतन पटना ४) का अवलोकन करें।

समस्त लक्षणों से पूर्ण है। इसका साहित्यिक महत्व अन्य किसी काव्य से कम नहीं है।

कृष्णदेव के दरबार में अष्टदिग्गज नाम के आठ तेलुगु महाकवि थे। उनमें अल्लसानि पेद्दना प्रमुख थे। पेद्दना की कविता पर मुग्ध होकर राजा ने उनके वामपाद में गंडपेंडेर नामक स्वर्ण घंटिका ही नहीं पहनाई, अपितु उन्हें 'आन्ध्र कविता पितामह' नामक उपाधि से विभूषित किया तथा उनकी पालकी में अपना कन्धा भी दिया था। ऐसे काव्य रसिक एवं कला-पारखी थे।

पेद्दना ने 'स्वारोचिस मनुसंभव नामांतर मनुचरित्र' काव्य का प्रणयन किया। इस काव्य का प्रभाव परवर्ती कवियों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। कृष्णदेव राय ने प्रति वर्ष आठ दिनों में कवियों तथा अन्य कलाकारों की कलाओं का प्रदर्शन कराकर उन्हें अग्रहार, सोना, चाँदी, अमूल्य वस्त्र, इत्यादि के द्वारा पुरस्कृत कर प्रोत्साहन देते थे। कृष्णराय की सभा 'भूवन विजय' नाम से प्रसिद्ध थी जहाँ केवल कवि गोष्ठियाँ तथा अन्य कलाओं का प्रदर्शन होता था। कवियों को अपनी प्रतिभा का परिचय देने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। एक स्वस्थ प्रति-स्पर्धा ने तेलुगु काव्य साहित्य को अधिक समृद्ध भी बनाया और उसका स्तर भी ऊँचा हुआ।

कृष्णदेव राय के अन्य दरबारी कवियों ने सुन्दर प्रबन्ध काव्य राजों की सृष्टि की। नन्दितिमम्ना ने 'पारिजातापहरणः', तेनालि रामकृष्ण ने 'उद्भटा राध्य चरित्र' एवं 'पांडुरंग महात्म्य', धूर्णटी ने 'कालहस्ती महात्म्य', पिंगलिसूरना ने 'कला पूर्णोदय', 'प्रभावती प्रद्युम्नमु एवं' 'राघव पांडवीयमु', रामाराज भूषण (भट्टुमूर्ति) ने 'वसुचरित्र' 'हरिश्चन्द्रन-लोपाख्यान' राधामाधव कवि ने 'राधामाधवमु' प्रस्तुत किए। इस समय के अन्य कवियों में नादेंडल गोपन्ना, पिडुपर्ति सोमनाथुडु; अद्दं कि गंगाधर कवि मल्लारेड्डी आदि के नाम आदर के साथ लिए जा सकते हैं।

मोल्लांबा नामक कवयित्री ने सरल एवं सुबोध शैली में रामायण की रचना की। ये ही प्रथम कवयित्री मानी जाती हैं। यह रामायण सरसता तथा मधुरता के लिए विशेष विख्यात है। कृष्णदेव राय ने भी इस रामायण की प्रशंसा की है। वेमना जैसे सन्त कवि इस युग की देन हैं। कबीरदास की भाँति वेमना ने बाह्याडंबर, मूर्तिपूजा, अन्धविश्वास आदि का जोरों से खन्डन किया तथा सदाचार, अहिंसा, हृदय की निर्मलता की आवश्यकता पर बल दिया है। इन्हें आन्ध्र के कबीर कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस युग में पद साहित्य का भी शुभारंभ हुआ है और इस शाखा के जनक ताल्लपाक अन्नमाचार्य माने जाते हैं। इनके द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय अथवा पंथ पर चलकर क्षेत्रापा त्याग राज इत्यादि ने पद साहित्य तथा कर्नाटक संगीत के विकास में योगदान दिया है।

अन्नमाचार्य के पद कीर्तन अथवा संकीर्तन नाम से प्रसिद्ध हैं। रीति ग्रन्थ भी विपुल संख्या में रचे गए हैं। इस प्रकार सभी दृष्टियों से यह युग सम्पन्न रहा। काव्य अपने समस्त अंगों के सौंदर्य, कलात्मकता, प्रौढ़ता, परिपुष्टता, कोमलता, चमत्कारिता, रसपरिपाक इत्यादि गुणों से भूषित हो इस युग में प्रकट हुआ। संख्या की दृष्टि से ही नहीं, प्रामाणिकता और उत्तमता की दृष्टि से भी यह युग समृद्ध रहा। अतः यह स्वर्ण युग भी कहलाया।

अर्वाचीन युग अथवा संक्रांति युग (ई० सन् १७०२-१८५०)

आधुनिक युग के पूर्व का युग होने के कारण यह अर्वाचीन युग कहलाता है, और इस युग में प्रबन्ध युग तथा आधुनिक युग की सभी मुख्य प्रवृत्तियों का संगम हुआ है। अतः यह संक्रांति युग भी माना जा सकता है। इस युग में यक्षगान तथा शतक विपुल संख्या में रचे गए और अवधान कविता का जन्म भी इसी युग में हुआ। तेलुगु कविता आन्ध्र भूमि से बाहर तंजाऊर, मदुरा, पुदुक्कोटा, मैसूर इत्यादि राज्यों में आश्रय पाकर पनपने, पल्लवित एवं पुष्पित होने लगी। आन्ध्र के नायक वंशी राजाओं ने तेलुगु कवितालता को वह आदर और सम्मान देकर सींचा, जिस पर कोई भी साहित्य गर्व कर सकता है।

तंजाऊर के राजा रघुनाथ राय के दरबार में कवियों के साथ संगीतज्ञ तथा नर्तकों को भी आश्रय प्राप्त था। स्वयं रघुनाथ राय ने काव्य रचे, कवियों का सम्मान किया। गोष्ठियाँ चलायीं, साथ ही 'संगीत-सुधा' नामक एक ग्रंथ लिखा जो उनके संगीत-विद्या में निपुण होने का परिचय देता है। रघुनाथ राय का सभा-भवन 'लक्ष्मी विजय' अथवा 'इन्दिरा मन्दिर' नाम से विख्यात था। रघुनाथ राय ने 'अच्युताभ्युदय' नाम से अपने पिता जी की दिनचर्या को काव्य का रूप दिया। इस प्रकार तेलुगु साहित्य में एक नई विद्या को श्री गणेश करने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। रामायण इनका

दूसरा काव्य है। बाद इनके दरबार की एक कवयित्री ने इस तेलुगु काव्य का संस्कृत में रूपांतर भी किया।

रघुनाथ नायक के दरबारी कवियों में चेमकूर वेंकट कवि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका 'विजय विलासमु' नामक प्रबन्ध काव्य शृंगार साहित्य की अनुपम निधि है। यह एक उत्तम श्लेष काव्य भी है।

रघुनाथ राय कृष्णदेव राय की भाँति 'आन्ध्र भोज' कहलाए। संस्कृत में भी इन्होंने साधिकार पूर्वक रचना करके अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया है। इनके दरबारी कवयित्रियों में रामभद्राँबा और मधुर वाणी बहुत ही लोकप्रिय हैं। गोविन्द दीक्षितुलु रघुनाथराय के दरबार के बड़े संगीताचार्य भी हुए हैं। इस युग के कवियों द्वारा विरचित अनेक काव्य-ग्रन्थों में मनारुदास विलासमु' 'रघुनाथाभ्युदयमु', 'राजगोपाल विलासमु' 'उषापरिणयमु, 'विप्रनारायण चरित्रमु' 'सत्यभामा स्वांतनमु', 'शंकर विजयमु' 'आन्ध्र भासार्णवमु' 'रुक्मिणी परिणयमु', 'राधिका स्वांतनमु', 'रामविलासमु', 'कविजनरंजनमु', 'अनिरुद्ध चरित्र' गोपीनाथ रामायणमु' भारताभ्युदयमु, आन्ध्र चन्द्रलोकम आदि काव्य विशेष महत्व रखते हैं। आज भी अनेक तेलुगु पाँडुलिपियाँ अमुद्रित ही तंजाउर में स्थित, सरस्वती महल में पड़ी हुई हैं।

इस युग के अन्य राजाओं में विजयराघव नायक, मन्नारदेव, तथा महाराष्ट्र के राजा सरफोज, शहा जी आदि ने स्वयं काव्य, यक्षगान आदि लिखकर तेलुगु साहित्य के विकास में स्तुत्य प्रयत्न किया है। आन्ध्र के पिठापुरमु, बोब्बलि, विजय नगरमु (जिला विशाख), चन्द्रगिरि, पेनुगोंडा, नंधाल आदि के राजाओं ने अपने-अपने दरबारों में कवियों को आश्रय देकर तेलुगु काव्य भंडार को सम्पन्न किया है। क्षेत्रय्या इस युग के गात एवं पद कर्ता हैं।

रामदास ने अपने भक्ति पूर्ण गीतों द्वारा आंध्र देश को आप्लवित किया। दाशरथी शतक इनकी भक्ति का चरम उदाहरण है। शतक साहित्य इस युग में बाढ़ सा आया। परन्तु शृंगार रस की इस युग में प्रधानता रही। त्यागराज के गीत केवल कर्नाटक संगीत के शास्त्रीय पक्ष को ही उज्वल नहीं बनाते, अपितु भक्ति और विनय के उत्तम नमूने हैं। 'प्रह्लाद विजय' और 'नौका चरित्र' इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

इस युग में द्वर्थि एवं अर्थि काव्यों की रचना भी विस्तार पूर्वक हुई। कवियों ने अपने कौशल दिखाने के विचार से काव्य में अनेक विशिष्ट प्रयोग किए अत: इस युग में कला पक्ष का अच्छा विकास हुआ।

आधुनिक युग या नवीन युग ई० सन (१८५१-से आज तक)

वर्तमान समय में जो युग चल रहा है। वह आधुनिक अथवा नवीन युग ही तो कहा जाएगा। इसके अतिरिक्त नवीन प्रवृत्तियों का सूत्रपात इस युग में हुआ है। वह काव्य के उभय पक्षों में देखा जा सकता है। इस युग के प्रारम्भ में कुछ कवियों ने कविता को ही अपना ध्येय तथा व्यवसाय मानकर काव्य सर्जना की, तो कुछ कवियों ने असाधारण प्रतिभा प्राप्त कर सारे आन्ध्र का भ्रमण करके अन्य कवियों को चुनौती दी कि वे शास्त्रार्थ, गोष्ठी अथवा किसी भी प्रकार की कविता-स्पर्धा में उनसे प्रतिद्वंद्विता करें। इस ललकार को कुछ कवियों ने स्वीकार किया तो कुछ ने उनसे लोहा लिया। इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा में तिरुपति वेंकट कविद्वय तथा ओलेटि वेंकट पार्वतीश कविद्वय ने भाग लिया। तेलुगु काव्य साहित्य के इतिहास में यह एक अनुपम घटना है एक नया अध्याय ही इस घटना द्वारा प्रारम्भ हुआ है इस प्रतियोगिता का परिणाम है भारत (महाभारत) पर व्यंग्य काव्य गीरतम्। शतावधान तथा अष्टावधान के प्रदर्शन द्वारा आन्ध्र भूमि में कविता आन्दोलन ही प्रारम्भ हुआ। जनपदों में भी ग्रामीण लोग कविता के रस का आस्वादन करने में आनन्द का अनुभव करने लगे। इस प्रकार राज दरबारों से निकल कविता कामिनी कृषक एवं मजदूरों की झोपड़ियों में स्वच्छन्दता के साथ मुक्त वायु-मण्डल में विचरन करने लगी। उन साहित्यिक संग्रामों के श्रवण एवं स्मरण मात्र से पाठकों का शरीर पुलकित हो उठता है।

देश की पराधीनता देशवासियों को खटकने लगी। बंगाल में जो आन्दोलन हुआ, उसका प्रभाव आन्ध्र पर भी पड़ा। समाज-सुधारवादी आन्दोलन ने भी जोर पकड़ा। ब्रह्म समाज आर्य समाज आदि के कारण लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। राजनैतिक नवजागरण के परिणाम स्वरूप देश-प्रेम की भावना तीव्रतर होती गई। अत: राष्ट्रीय भावनाओं के आधारभूत साहित्य का सृजन हुआ। कृषक, मजदूर, ग्रामोद्धार, प्राचीन संस्कृति, हमारे जातीय आचार, भारत की प्राचीन गरिमा, आन्ध्र का पूर्ववर्ती वैभव कथावस्तु बने। इस राष्ट्रीय आन्दोलन के जन्मदाता स्वर्गीय गुरजाड अप्पा-

राव थे। उन्होंने 'देश-भक्ति' नामक गीत द्वारा लोगों में नव जागृति का शंखनाद किया।

श्री रायप्रोलु सुब्बाराव, विश्वनाथ सत्यनारायण, दुव्वूरि रामिरेडी, जाषुवा कोडालि सुब्बाराव, तुम्मल सीतारामसूर्ति गडियारम वेंकट शेसशास्त्री, कालोजी, दाशरथी, वेडुल सत्य-नारायण शास्त्री, सी० नारायण रेड्डी आदि ने राष्ट्रीयवाद के पोषण में असंख्य कविताओं तथा काव्यों का प्रणयन किया है।

दूसरी ओर प्राचीन रीति के समर्थन में महाकाव्यों का सर्जन भी होता रहा। कवीन्द्र रवीन्द्र की गीताँजली का प्रभाव आन्ध्र के नवयुवक कवियों पर ऐसा पड़ा कि उसके अनुकरण में उत्तम काव्यों की सृष्टि हुई। इस प्रकार "भाव कविता" (छायावाद) का उदय हुआ। इस आन्दोलन का प्रारम्भ रायप्रोलु सुब्बाराव द्वारा हुआ, किन्तु देवुलपल्लिकृष्णशास्त्री ने भाव कविता को अधिक सक्षम एवं संपन्न बनाया। भाव कविता आत्म परक प्रेम प्रधान होने के साथ ही गेयात्मकता एवं स्वच्छन्दता लिए हुए होती है। उक्तिवैचित्र्य तथा हृदय को छूने वाली मृदु मधुर शैली इसकी विशेषताएँ हैं। विल्ला वज्झुल शिवशंकर शास्त्री, नायनि सुब्बाराव नडूरि सुब्बा-राव, विश्वनाथ सत्यनारायण, अडिवि बापिराजु, वेन्नुल सत्यनारायण शास्त्री इत्यादि ने इस धारा को अधिक गति-मान और सम्पन्न बनाया है।

तेलुगु काव्य जगत में हालावाद का भी प्रवेश हुआ है। हालावाद के विश्व साहित्य को ही प्रभावित किया है। आचार्य रायप्रोलु सुब्बाराव ने प्रथम उमर खैय्याम की रुबा-इयों का तेलुगु रूपांतर किया, लेकिन वह लोकप्रिय न हुआ 'आन्ध्र कवि कोकिल' दुन्नूरि रामि रेड्डी ने 'पानशाला' का सृजन कर अपार यश प्राप्त किया। ये अरबी और फारसी के भी अच्छे विद्वान थे। अतः खैयाम की विचारधारा को पूर्ण अभिव्यक्ति देने में इन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। उमर अलीशाह आदि ने भी खैयाम की विचारधारा को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी में जिस प्रकार छायावाद एवं रहस्यवाद के विरोध में प्रगतिवाद का आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार तेलुगु में भाव कविता के विरुद्ध अभ्युदय कविता का प्रादुर्भाव हुआ। इस धारा के उन्नायक यशस्वी कवि श्रीरंगम श्रीनिवासराव (श्री श्री) हैं। श्री श्री ने प्राचीन कविता-संप्रदायों को त्याग गीत शैली को जन्म दिया, जिसमें काव्यत्व के साथ लय, रस एवं भाव की प्रधानता होती है। श्री २ ने कविता का उद्देश्य समाज के सभी क्षेत्रों में जागृति पैदा करना बताया है। इस वाद के पोषण में आरुद्र नारायण बाबू रमणा रेड्डी, रेंटाल गोपाल कृष्ण अनिशेहि सुब्बाराव, वेल्लस कोंड रामदास, दासरथी, पट्टाभि, आदि ने प्रशंसनीय योग-दान दिया है।

कुछ ऐसे भी कवि आज तेलुगु काव्य-साहित्य को समृद्ध बनाने में तल्लीन हैं जो किसी वाद-विशेष के अनुयायी नहीं, प्राचीन धारा के समर्थकों की संख्या अधिक है। नवीन धारा के कवियों में पुट्टपर्ति, करुणश्री, जाषुवा आदि सुन्दर काव्य प्रदान कर अत्यन्त लोकप्रिय हो चुके हैं।

आज पुरानी मान्यताएँ हर क्षेत्र में बदल रही हैं; जीवन जगत् तथा समाज के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। संसार में नित्य प्रति मानव जीवन को प्रभावित करने वाले परिवर्तन हो रहे हैं। अतः उन युगान्तकारी परिस्थितियों का चित्रण भी तेलुगु काव्य में होता आ रहा है। मानवतावाद तथा शाँतिवाद के पोषण में काफी रचनाएँ लिखी गई हैं। उन सबका नामोल्लेख करना भी यहाँ पर सम्भव नहीं है। तेलुगु काव्य साहित्य का आधुनिक युग सभी दृष्टियों से अत्यन्त ही सम्पन्न है। सैकड़ों उत्तम कवि और काव्य इस युग की उपज हैं। तेलुगु काव्य साहित्य इतना समृद्ध है कि भारतीय भाषाओं में बहुत कम भाषाओं में ही ऐसे काव्य उपलब्ध हैं। इस युग के प्रमुख काव्यों में एकान्त सेवा, सौंदर नन्दनमु, श्रृणकंकणमु, जड़कुच्चुलु, हृदयेश्वरी, कृष्णपक्षमु, उर्वशी-प्रवासमु सौभद्रुनि प्रणययात्रा, शशिदूतमु, कृषरीवलुडु, आराधना, आन्ध्र प्रशस्ति, शशिद्वतमु, फिरदौसी गब्बितमु, शिव भारतमु, शिव तांडवमु, पेनुगोंड लक्ष्मी एंकि-पाटल रामायण कल्पवृक्ष, महाप्रस्थानमु, रुधिर ज्योति त्वमे-वाहमु, रुद्रवीणा, अग्निधारा, आकलिमन्टलु, नूतिलोगोंतुकलु, फिडेलगेयालु, नागार्जुन सागर, कर्पूर वसंत रायलु, नागो-डव, महान्ध्रोदयमु आदि अत्यन्त आदर के साथ पढ़े जाते हैं और इन काव्यों की लोकप्रियता ही उनकी उत्तमता का परिचायक है। तेलुगु काव्य साहित्य विविधता, उत्तमता तथा प्रामाणिकता की दृष्टि से भी अत्यन्त उन्नत है। अतः हम विश्वास कर सकते हैं कि तेलुगु काव्य साहित्य का भविष्य उज्वल है।

तेलुगु काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

ए० सी० कामाक्षिराव, एम० ए०

सन् १८५७ का वर्ष भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राजनीतिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व तो है ही, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्य की दृष्टि से भी इसका महत्व कम नहीं है। १८५७ में प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध प्रारंभ हुआ और उसके साथ ही साथ सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्य के क्षेत्रों में विद्रोह का वातावरण तैयार होने लगा। इससे कुछ वर्ष पूर्व ही राजा राममोहन राय के द्वारा ब्रह्म-समाज की स्थापना हो चुकी थी, और १८५७ में आर्य समाज की स्थापना हुई। इन दोनों संस्थाओं का प्रभाव लोक जीवन पर अधिक पड़ा। जनता में एक प्रकार का नव-जागरण सा होने लगा। लोग अपने धार्मिक, आर्थिक एवं साहित्य के अधः पतन की ओर दृष्टिपात करने लगे। उस समय देश-भर में अज्ञान एवं अविद्या का अंधकार छाया हुआ था। अंधविश्वासों का बोल बाला था। जनता में अपनी जाति धर्म एवं साहित्य से कोई प्रेम नहीं रह गया था।

आत्म-विस्मृत जनता अंग्रेजी शासकों की व्यवस्था को दैवी-विधान समझकर चैतन्य हीन जीवन बिता रही थी।

तेलुगु प्रान्त की स्थिति इससे भिन्न नहीं थी। जनता को प्रबुद्ध करने की क्षमता रखने वाले कवि एवं लेखकों का स्रोत सूख सा गया था। इस सिलसिले में १८५७ के पूर्व के तेलुगु साहित्य के सम्बन्ध में थोड़ा सा परिचय प्राप्त करना प्रासंगिक होगा।

विजय नगर के साम्राज्य के पतन के बाद आन्ध्र साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो गए थे और दक्षिण में मदुरै और तंजाऊर आदि स्थानों में आन्ध्र राजाओं के छोटे-छोटे राज्य रह गये थे। उन दिनों में साहित्य राज-दरबार की वस्तु रह गया था। आश्रयदाता राजाओं की कृपा पर कवियों का जीवन निर्भर था। सहज ही कवि अपने आश्रयदाताओं को सतुष्ट करने के उद्देश्य से शृंगार-काव्यों की रचना करके अपनी काव्य-कला का प्रदर्शन करते थे। कविता कवियों के लिए जीविका का साधन मात्र बन गई थी। कवि अपने काव्यों को क्लिष्ट भाषा एवं कल्पनाओं से भर कर अपने पाँडित्य का उत्कर्ष दिखाने में होड़ सी लगाते थे। उनके काव्यों में भाव एवं विचारों की अपेक्षा कला-पक्ष के प्रति अधिक आग्रह था। अतः दरबारी कविता के सभी दोष उनमें आ गए थे। एक और बात भी यहाँ उल्लेखनीय है। तेलुगु की साहित्यिक भाषा एवं लोक-व्यवहार की भाषा में जमीन-आसमान का अंतर रहता था। अतः साहित्य लोक-जीवन पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ हो गया था।

१८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध की विफलता के बाद आंध्र प्रदेश में समाज-सुधार का युग आया। यही समाज-सुधार का आन्दोलन तेलुगु साहित्य में युगांतर उपस्थित करने वाला प्रबल कारण बना। साहित्य में भी पुरानी परम्परा के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा भी समाज-सुधार के आन्दोलन में ही निहित है।

कन्दुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु इस युग के महान व्यक्तियों में अग्रगण्य थे, जिन्होंने समाज में क्रांति लाने का प्रयास किया। वे समाज-सुधार आन्दोलन के नेता थे। वे ब्रह्म-समाज के अनुयायी थे और तेलुगु-अंग्रेजी और संस्कृत के

अच्छे पंडित थे। आन्ध्र-प्रदेश में उन्होंने ब्रह्म-समाज की स्थापना की और उसके द्वारा समाज में व्याप्त अज्ञान' अंध-विश्वास, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, और बहु-विवाह आदि कुरीतियों के अन्त करने का कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने अनुभव किया कि समाज-सुधार के लिए साहित्य का आश्रय लेना आवश्यक ही नहीं हितकर भी है। इसके लिये साहित्य की भाषा को यथा संभव सरल एवं सुबोध बनाना अनिवार्य था। अपने विचारों के प्रचार के लिये पंतुलुजी ने सरल एवं सुबोध परन्तु व्याकरण निष्ठ तेलुगु गद्य में लेख, कहानियाँ, उपन्यास, नाटक तथा एकाँकी आदि लिखना प्रारम्भ किया। इस तरह एक ओर उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा समाज-सुधार का आन्दोलन चलाया तो दूसरी ओर तेलुगु भाषा को साधारण जनता की पहुँच के भीतर लाकर तेलुगु साहित्य में एक युगान्तर उपस्थित किया। उन्होंने ही पहली बार तेलुगु-गद्य साहित्य की भिन्न भिन्न प्रवृत्तियों का सूत्रपात किया।

वीरेशलिंगम् पंतुलुजी ने भाषा-सम्बन्धी सुधारों का जो कार्य प्रारम्भ किया उसे विस्तृत करके उसे एक आन्दोलन का रूप देने का श्रेय गिड्गु राममूर्ति पंतुलुजी को है। उनका कथन था कि समाज के सर्वतोमुखी विकास के लिये शिक्षा की निताँत आवश्यकता है। शिक्षा को मातृ-भाषा के द्वारा सुलभ बनाने के लिये पुस्तकों में ऐसी भाषा का उपयोग करना चाहिए जिसका शिष्ट-जन व्यवहार करते हैं। शिष्ट-जनों में प्रचलित भाषा में गद्य एवं पद्य दोनों लिखे जाने चाहिए ताकि समस्त जनता उसे समझ सके। राममूर्ति पंतुलुजी का यह आन्दोलन 'व्यावहारिक भाषा आन्दोलन' के नाम से प्रसिद्ध है और आधुनिक तेलुगु साहित्य में क्रान्ति लाने वाले कारणों में यह प्रथम है। राममूर्ति पंतुलुजी के साथ-साथ गुरजाड़ अप्पाराव ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया। यद्यपि पहले परम्परा के पक्षपाती पंडित वृन्द ने इस आन्दोलन का विरोध करने इसका उपहास करने, तथा इसे दबाने की चेष्टा की, किन्तु समय के साथ इस आन्दोलन में शक्ति आ गई और आज तेलुगु का अधिकांश साहित्य-रचना शिष्ट व्यावहारिक भाषा में हो रही है।

गुरजाड अप्पाराव समाज सुधारक ही नहीं एक सहृदय साहित्यकार भी थे। उन्होंने सबसे पहले व्यावहारिक-भाषा में तेलुगु में गीत-रचना की, और 'कन्या शुलकमु' नामक एक नाटक भी लिखा। उनका विश्वास था कि जनता की भाषा ही सजीव भाषा है और उसमें सौंदर्य तथा प्रेषणीयता की जो छटा है; और सरस-मुहावरों का जो माधुर्य है, वह साहित्यिक-भाषा में नहीं आ सकता। इसलिये उन्होंने शिष्टजनों में प्रचलित तेलुगु में ही साहित्य-रचना आरम्भ की।

तेलुगु कविता में आधुनिक युग पहला उत्थान (१९००-१९२०)

बीसवीं सदी की प्रथम विंशति में तेलुगु कविता की वस्तु, भाषा एवं शैली में परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। कविता अब तक दरबार की वस्तु थी। उसे दरबार की सीढ़ियों से उतार कर जन-चेतना की वस्तु बनाना, लोक-जीवन के बीच उसे प्रतिष्ठित करना, परम्परा की जड़ता से आविष्ट एवं शृंगार के बन्धनों से आबद्ध काव्य-कन्या को मुक्त करके उसे वैविध्य-पूर्ण लोक जीवन से अलंकृत करना परम आवश्यक था। तिरुपति वेंकट कवुलु (तिरुपति कवि एवं वेंकट कवि) नामक कवि-द्वय ने यह कार्य सम्पन्न किया। ये दोनों संस्कृत एवं तेलुगु के निष्णात पंडित थे और प्रतिभा-संपन्न कवि थे। ये प्राचीन एवन् आधुनिक युगों के सन्धिकाल के कवि थे। इसलिये इनकी कविता में पुरानी एवन् नई शैली का गंगा-जमुना संगम दीखता है। इन्होंने कविता को जन-जीवन की वस्तु बनाया और स्थान स्थान में घूमकर लोगों को अपनी काव्य सुधा का पान कोराया। इनके कई शिष्य-प्रशिष्य आगे चलकर आधुनिक कविता के सशक्त कवि बने।

तेलुगु की आधुनिक कविता को तेलुगु में 'भाव-कवित्वमु' या 'नव्य कवित्वमु' कहते हैं। यह दो रूपों में व्यक्त हुई—खंड काव्य और गीत। तेलुगु में 'खंड काव्य' का मतलब उस कविता से जिसमें न्यूनाधिक निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं : —

१—यह आकार प्रकार में छोटा होता है।

२ यह किसी ऐसी घटना अथवा अनुभूति पर आश्रित होता है जिसने कवि के हृदय को उद्वेलित किया हो।

३—घटना की अपेक्षा इसमें भाव की प्रधानता होती है।

४—इसमें प्रकृति के प्रति कवि का नूतन दृष्टिकोण दीखता है। कवि प्रकृति में स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म को पहचान कर उससे आत्मीयता का अनुभव करता है।

५—इसमें सौंदर्य-बोध एवं सौंदर्योपासना प्रधान है।

६—यह अतीन्द्रिय प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। कवि अपने कल्पना-लोक की प्रिया से प्रणय की अनुभूति करता है।

इस समय तक भारत में स्वराज्य का आन्दोलन शुरू हो गया था। १८८५ ई० में स्थापित अखिल भारतीय काँग्रेस दिनों दिन बल-पकड़ने लगी थी। तिलक जी एवं गोखले जैसे नेता देश को स्वतन्त्र बनाने के प्रयत्न में लगे थे। स्वदेश, स्वजाति और स्वराज्य के भाव रूप ग्रहण करते हुये दिखाई देने लगे। राष्ट्रीयता की हल्की बयार सारे वातावरण में फैलने लगी। आन्ध्र प्रदेश में एक ओर समाज सुधार का आन्दोलन और दूसरी ओर राष्ट्रीय-भावों की जागृति दोनों ने युवक कवियों पर प्रभाव डाला। दोनों के मूल में पुरानी-व्यवस्था के प्रति विद्रोह का ही भाव था। सहज ही युवक कवि इनसे प्रभावित हुये।

तेलुगु कविता को नवीन पथ पर ले चलने का श्रेय दो महान कवियों को मिलना चाहिये। वे हैं रायप्रोलु सुब्बारावजी तथा गुरज़ाड अप्पारावजी। इन दोनों के रास्ते भिन्न हैं। जहाँ सुब्बारावजी पांडित्य पूर्ण भाषा, शैली एवं छन्दों में खंड-काव्यों की रचना की, वहाँ गुरज़ाड अप्पारावजी ने व्यावहारिक लोक-भाषा में गीतों की रचना की। जहाँ सुब्बारावजी कविता की वस्तु, अलंकार विधान एवं प्रति-पादन के ढङ्ग में नवीनता ले आकर कविता को एक नया मार्ग दिखाया वहाँ अप्पारावजी ने कविता की भाषा को लोक-भाषा के निकट ले आकर उसके द्वारा समाज-सुधार कार्य में सहायता ली सुब्बारावजी को समाज-सुधार के प्रति उतना आग्रह नहीं था, जितना काव्य को नये मार्ग पर चलाने के प्रति था। किन्तु अप्पारावजी को कविता एवं अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, लक्ष्य सिद्धि के साधन थीं।

रायप्रोलु सुब्बारावजी कवि-ब्रह्मा थे। सहज प्रतिभा सम्पन्न होने के साथ-साथ उन्हें अंग्रेजी एवं बँगला साहित्य का अच्छा ज्ञान था और शांतिनिकेतन में गुरुदेव के साहचर्य में रहने का सौभाग्य भी प्राप्त था। नवीन-अलंकार विधान। नये कवि-समयों का निर्माण मृदु-मधुर शब्द योजना आदि का भव्य रूप पहली बार हम उनकी रचनाओं में पाते हैं। वे सौंदर्योपासक थे। प्रकृति सुन्दरी का अनन्त सौंदर्य देख-परख कर उसे उन्होने अपनी कविताओं में साकार करने का प्रयास किया। वे अपनी कविता यों शुरू करते हैं -

मामिंड कोम्म मीद कल मन्त्र
परायणुडैन कोकिल
स्वामिकि म्रोक्कि यभिनव
ध्वनि धारण कुद्यमिंचितिन्॥

(आम की डाली पर मधुर मन्त्र पढ़ने में निरत कोकिल स्वामी की वन्दना करके मैं इन नवीन कविताओं को सुनने लगा) उनका 'तृण-कंकणमु' आधुनिक तेलुगु कविता की आदि कृति है, जिसमें नव्य कविता के सभी लक्षण न्यूनाधिक रूप में दिखाई पड़ते हैं। सुब्बारावजी परम देश भक्त हैं। उन्हें अपने देश एवं संस्कृति का गर्व है। वे कहते हैं —

ए देशमेगिना एंदुगालिडिना
ए पीठमेक्किना एवं रेदुरचिना
पोगडरा नी तल्लि भूमि मारतिनि
निलुपरा नी जाति निंडु गर्वम्मु।

(किसी भी देश में जाओ, कहीं भी कदम रखो, किसी भी पद पर तुम पहुँच जाओ, और किसी से भी तुम मिलो, तुम अपनी माता-भारत-भूमि की प्रशंसा करो और अपनी जाति का मान बनाये रखो।)

साथ ही अपनी आन्ध्र-माता और आन्ध्र संस्कृति के प्रति उनका अनुराग भो अधिक था। उनकी निम्नलिखित कविता देखिए : -

ए प्रफुल्ल पुष्पंबुल नीखरुनकु
पूज सलिपितिनो येनु पूर्वमंदु
कलद येनि पुनर्जन्म कलुगु गाक
मधुरमैन तेनुगु मातृ-भाष।

(जानेकिन विकसित फूलों से मैंने ईश्वर की पूजा की कि मैं तेलुगु भाषा-भाषी हुआ। यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मेरी मातृ-भाषा वही मधुर तेलुगु भाषा हो।)

सुब्बारावजी ने 'हेरमिट' और 'डोरा' नामक अंग्रेजी कविताओं के आधार पर 'ललिता' एवं 'अनुमति' नामक खंड काव्य लिखे और 'तृण कंकणमु', 'कष्ट-कमला', तथा जड कुच्चुलु' नामक मौलिक रचनाएँ की ।

गुरज़ाड अप्पारावजी ने गीत-रचना के द्वारा तेलुगु कविता में नया मार्ग प्रशस्त किया । उनका 'मुत्याल सरालु' नामक गीत-संग्रह तेलुगु प्राँत में प्रसिद्ध है । उनका 'देश भक्ति' नामक निम्नलिखित गीत आन्ध्र प्रदेश में 'बन्दे मातरम्' के समान लोकप्रिय है ।

देशमुनु प्रेमिचुमन्ना
मंचियन्नदि पेंचुमन्ना,
वोट्टिमाटलु कट्टिपेट्टोय;
गट्टिमेल तल पेट्टवोय ।
देशाभिमानं नाकु कद्दनि
वोट्टि गोप्पलु चेप्पुकोकोय
पूनियेदैनानु वोक मेल
कूर्चि जनुलकु चूपवोय ।
स्वंत लाभं कोंत मानुकु
पोरुगुवारिकि तोडुपडवोय,
देशमंटे मट्टि कादोय
देशमंटे मनुषुलोय ।

(भाई, देश से प्रेम करो, और भला बनना सीखो । बातें बनाना छोड़ो और भलाई का कोई ठोस काम करो । मुझे भी देश-भक्ति है, ऐसी डींग मत मारो । लोगों की कोई न कोई भलाई करो । स्वयं का भाव जरा छोड़कर, पड़ोसी की मदद करो । देश का मतलब मिट्टी से नहीं, देश का मतलब आदमियों से है ।

रायप्रोलु सुब्बारावजी तथा गुरज़ाड अप्पारावजी से प्रेरणा प्राप्त करके कई युवक कवि साहस करके आन्ध्र-भारती के मन्दिर को नवीन काव्य कुसुमों से सजाने लगे । पुरानी परंपरा के प्रति विद्रोह एवं नवीनता के प्रति आग्रह इनकी कविताओं का मुख्य गुण था । अब तक अंग्रेजी शिक्षा देश भर में व्याप्त हो चुकी थी और युवक वर्ड्सवर्थ, कीट्स शैली जैसे अंग्रेजी कवियों की कविताओं से परिचित हो चुके थे । इसी समय सर सी० आर० रेड्डी जी की समीक्षा-पुस्तक 'कवित्व तत्व विचारम्' प्रकाशित हुई । रेड्डी जी अंग्रेजी एवं तेलुगु के प्रकांड पंडित थे । विलायत में अध्ययन करके लौटने के पश्चात् उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा, जिसमें उन्होंने तत्कालीन पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र के नियमों की दृष्टि से तेलुगु के प्राचीन काव्यों की आलोचना की और एक दो कवियों को छोड़कर दूसरे सभी प्रसिद्ध तेलुगु कवियों की रचनाओं का खन्डन किया और उन्हें निरर्थक एवं निर्जीव घोषित किया । उनका कथन है कि भाव ही कविता का प्राण है, और भावहीन, एवं अलंकार भार से बोझिल कविता नहीं है, चाहे वह और कुछ भले ही हो । रेड्डीजी के सभी विचारों की मीमांसा करना इस लेख का आशय नहीं है । इतना कहना प्रस्तुत लेख के लिए पर्याप्त है कि उस समय के वातावरण के लिए इस पुस्तक से काफी प्रोत्साहन मिला । जो युवक-कवि प्राचीन परम्परा का विरोध करना चाहते थे, उन्हें इस पुस्तक से नैतिक-बल प्राप्त हुआ और कवि, वस्तु, भाषा, छन्द तथा अलंकार सम्बन्धी बंधनों को तोड़कर कविता करने लगे । इस उत्थान के कवियों में अब्बूरि राम कृष्णराव, पिंगलि-लक्ष्मीकांतम्, काटूरि वेंकटेश्वर राव और दुव्वूरि रामिरेड्डी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

द्वितीय उत्थान (१६२०-१६३५)

इस युग में पहुंचते-पहुँचते नवीन कविता की जड़ें जमने लगीं थी । नवीन कविता के प्रचार एवं प्रसार के लिए 'साहिती समिति' नामक एक समिति स्थापित हुई । उसके तत्वावधान में 'साहिती' नामक एक मासिक पत्र निकलने लगा जिसमें सभी प्रकार की नयी कविताएँ छपने लगीं । अंग्रेजी शिक्षा की व्याप्ति होने लगी थी । उन दिनों में मछलीपट्टणम और राजमहेन्द्रवरम आधुनिक शिक्षा के केन्द्र थे ।

यहाँ अध्यापन का कार्य करने वाले सर वेंकटरत्नम नायुडु तथा आचार्य कूलड्रे नामक दो सज्जनों ने कई युवकों को आधुनिक अंग्रेजी साहित्य एवं विचार-धारा की ऐसी शिक्षा दी कि उनके यहाँ शिक्षा-प्राप्त कई युवक आगे चलकर नवीन-काव्य के निर्माण में अत्यधिक सफल हुए । अब तक देश की स्थिति हर दृष्टि से बदलने लगी थी । सामंतवादी

व्यवस्था समाप्त हो रही थी और पूँजीवाद सभ्यता का विकास होने लगा था। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की लहर देश-भर में व्याप्त हो गई थी। अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के कारण युवकों में प्राचीन युग की मान्यताओं के प्रति श्रद्धा कम होने लगी थी। वे रूसो और वालटेयर जैसे मनीषियों की विचारों से परिचित ही नहीं प्रभावित भी हो चुके थे और स्वतन्त्रता के स्वप्न देखने लगे थे। महात्माजी के स्वतन्त्रता-आन्दोलन ने कई युवकों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से देश की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। शिक्षित नवयुवक अपने स्वप्नों को जीवन में सत्य बनाने में असमर्थ थे। उनके हृदय पर आधुनिक अंग्रेजी काव्य का जो प्रभाव पड़ा था उसमें और वास्तविक जीवन में कहीं सामंजस्य नहीं था। वे अपने मन के विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए तड़प उठे। किन्तु विदेशी शासन में यह भी सम्भव नहीं था। इस मानसिक क्षोभ एवं कुन्ठा से अभिभूत कवि एक ओर समाज में प्रचलित सभी परम्पराओं के विरुद्ध आवाज उठाने लगा तो दूसरी ओर अपने लिए छाया-लोक में आश्रय खोजने लगा। फलतः इस युग की कविताओं में प्रधानतः निम्नलिखित लक्षण दिखाई देने लगे :—

१—कवि अपनी कविता की वस्तु के चयन में वैविध्य एवं विलक्षणता दिखाने लगे। उनकी कविताओं में वस्तु-विषय गौढ़ था - उसके प्रति कवि का राग-विराग एवं प्रतिक्रिया प्रधान थी।

२—वैयक्तिकता की प्रवृत्ति की प्रमुखता होने के कारण कविता आत्म-निष्ठ होती गई। अभिव्यंजना में भी नवीनता आ गई। भाषा, अलंकार-विधानतया छन्द में नये प्रयोग होने लगे। कविताएँ अधिकतर गीतात्मक थीं और उनमें कल्पना का आधिक्य था। कवियों के लिए वास्तविकता की अपेक्षा कल्पना अधिक सत्य थी।

३—प्रकृति के प्रति कवियों का दृष्टिकोण सर्वथा नवीन था। वे उसके स्थूल रूप की अपेक्षा सूक्ष्म को अधिक पहचानने लगे उससे तादात्म्य का अनुभव किया। उनका हृदय इतना उदार था कि प्रकृति के सुख-दुःख उनके अपने सुख-दुःख बने। यही नहीं सारी प्रकृति कवि की सहचरी सी दीखने लगी और कवि अपनी ही भावनाओं की छाया प्रकृति में अनुभव करने लगे। प्रायः सभी कवि प्रकृति में नारी रूप को देखा।

४—तात्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होने से प्रायः कवियों की कविताओं में निराशा, वेदना एवं दुख का आधिक्य था। उन्होंने सारे संसार को दुःखमय पाया।

५—इस युग के सभी कवि सौन्दर्योपासक थे। इसलिए जहाँ कुछ कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य से अभिभूत होकर उसकी उपासना की तो कुछ अपने कल्पना-लोक की प्रेयसी के सौंदर्य से आविष्ट होकर उससे प्रेम करने लगे। वह अस्थि-मांस की मानवी नहीं, बल्कि कवि की अनुभूति में साकार होने वाली छाया की मूर्ति थी। इसी प्रेयसी के प्रति प्रेम प्रकट करना, उसके विरह में वेदना का अनुभव करना, उसके दिव्य सौन्दर्य का वर्णन करना कवियों के लिये प्रिय था। यही नहीं इन कविताओं में प्रेम का जो उदात्तीकरण देखने में आया है वह इससे पूर्व दुर्लभ है।

६—कविताओं की भाषा, अभिव्यंजना की पद्धति, अलंकार विधान, तथा छन्द आदि पूर्ववर्ती कवियों से सर्वथा भिन्न थे।

इस युग के कवियों में शिवशंकर शास्त्री, देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, वेदुल सत्यनारायण, विश्वनाथ सत्यनारायण, दुव्वूरि रामि रेड्डी, बापिराजु, बसवराजु, अप्पाराव, नंडूरि सुब्बाराव नायनि सुब्बाराव और जाशुवा आदि उल्लेखनीय हैं।

शिवशंकर शास्त्री जी साहिती समिति के अध्यक्ष थे और संस्कृत, बंगला आदि कई भाषाओं के ज्ञाता तथा सहृदय कवि हैं। नवीन मार्ग के कवियों के नेता, मार्ग दर्शक एवं मित्र के रूप में इन्होंने बहुत से किशोर-कवियों को प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाया। इनको कविताओं में प्रेम का बढ़ा भव्य रूप मिलता है। अपनी प्रेयसी के प्रथम-दर्शन के प्रभाव का कवियों वर्णन करते हैं :—

अय्ययो, येल चूचित वद्लु नन्नु
आदिनम्मुन मधुर सायाह्नमन्दु
देहलिनि निलिच मोहिनी दृष्टि तोड
पथमु वेंबडि जनेडि विभ्रांत हृदयु !
जर्जरति मय्ये नकट, ना सरल चित्त,
मिप्पटिकैन बाध शमिप लेदु;
चिलुक कुन्टिव येनि नी स्नेह पूर
मतितरालपमु सुमि जीविताश नाकु !
एमि हृदयापहरिणी, यिंकनैन
करुण वहियिंचि वीनिनि कावगदवे !
बहुल तापमुचे मति भ्रंश मोंदि
विवशमै पोये; अय्ययो वेर्रिनैति !

(हाय ! पथ से होकर जाने वाले मुझ भ्रांत हृदय को तुमने अपनी देहली पर खड़े होकर उस तरफ मोहक दृष्टियों से क्यों देखा ? उससे मेरा सरल चित्त जर्जरित हुआ है । अब तक उस दर्द का शमन नहीं हुआ । यदि तुम अपने स्नेह की वर्षा नहीं करोगी तो मेरे जीने की आशा नहीं है । हे हृदय हारिणी, अब तो कृपा करके इसकी रक्षा करो । अत्यधिक विरह ताप से मति भ्रष्ट हो विवश हो गया है । हाय, मैं पागल हो गया हूँ ।)

अपने कल्पना-लोक की अपूर्व सुन्दरी के प्रेम से पीड़ित नंडूरि सुब्बारावजी ने 'येंकि पाटलु' के नाम से कई गीत लिखे । उनकी येंकि उनके छाया-लोक एक के अद्वितीय ग्रामीण युवति है, जो प्रिय-प्राणा और प्रवीणा है । वह फूलों की भाषा जानती हैं, और प्रिय के मन को पहचानती हैं । वह उन्हें कहानियाँ और गीत सुनाती हैं । कवि कहते हैं -

येंक वंटि पिल्ल ले दोय, ले दोय,
येंकि ना वोंकिंक शदोय, शदोय,
मेल्लो पूसल पेरु,
तल्लो पूवुल सेरु,
कल्लेत्तिते सालु
कनकाभि सेकालु येंकि ॥
पदमु पाडि दन्डे
पापालु पोवाल !
कतलू सेप्पि दंडे
कलकाल मुन्डाल ! येंकि ॥

(येंकि जैसी युवति नहीं है । वह मेरी ओर अब नहीं आएगी । उसके गले में गुरियों की माला है, केशों में फूल हैं, वह आँखें उठाकर देखे तो बस कनकाभिषेक सा होता है । यदि वह गीत गाए तो सभी पाप धुल जाते हैं; कहानी सुनाये तो वह चिरकाल तक मन में रह जाय ।)

इन गीतों की भाषा ऐसी है कि अपढ़-जनता भी इस गीत को समझ ले । फलतः सुब्बारावजी के ये गीत बहुत ही लोकप्रिय हैं ।

देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री काव्य-कानन में स्वच्छन्द विहार करने की अभिलाषा रखने वाले कवि कोकिल हैं । परम्परा बन्धन आदि से उनका घोर विरोध हैं । वे कहते हैं—

क्रौर्य कौटिलय कल्पित कठिन दास्य
शृङ्खलमुलु तमंतने चेदरि पोव
गगनतलमु मर्मोगग गंठ मेत्ति
जगमुनिड स्वेच्छा गान भरुलनितु ॥

(मैं ऊँची आवाज से ऐसे गीत गाऊँगा कि क्रूर, कुटिल, कल्पित एवं कठोर दास्य की जंजीरें अपने आप टूट जायँ सारा आकाश मेरे गीतों से गूँज उठे और मेरी काव्य-निर्झर सारे संसार में भर जाय ।)

प्रकृति के प्रति इनका अनुराग बड़ा ही मार्मिक है । वे अनुभव करते हैं कि निशि में छाया की तरह खड़े होकर उन्हें निमन्त्रण दे रहा है ।

एवरोहो, ईनिशीथि
नेगसि नीडवोले निलिचि
पिलुतु खेरो, मूमकनुलु
मोय लेनि चूपुलतो
एव रोहो !
एव रोहो !

(कौन हैं ? कौन है वह जो इस निशीथ से उठकर छाया की तरह खड़े हो, मूक आँखों से, भार-बोझिल दृष्टियों से, मुझे बुला रहा है ? कौन है ? कौन है ?)

अपने को प्रकृति में लीन कर देने की कवि की इच्छा बड़ी स्पृहणीय हैं :—

आकुलो नाकुनै पूवुलो बूवुनै
मोम्मलो गोम्मनै, नुनुलेत रेम्मनै

ई यडवि दागि पोना
एट्लैन
निचटने यागि पोना ?

(पत्तों में पत्ता, फूलों में फूल, डालियों में डाली और कोमल टहनी बन इस वन में क्यों न छिप जाऊँ. क्यों न यहीं रह जाऊँ ?)

'कृष्ण पक्ष' कृष्ण शास्त्री जी की करुण रसात्मक कविताओं का संग्रह है। कवि को दुःख की बड़ी तीव्र अनुभूति है। किन्तु उस दुःख में ही उन्हें असीम तृप्ति मिलती है। दुःख उनकी सम्पत्ति है।

मीरु मनसारगा नेडवनीरु नन्नु –
नन्नु विडुवुडु ! ओकसारि नन्दुविडिचि
नंत नेकांत यवनिकाभ्यंतरमुन
वेक्कि वेक्कि रोदिंतुनु-विसुवुलेक
विरति लेक दुर्भर शोक विषय गीतु
लेडिच वैतु; एलुंगेत्ति एडिचवैतु ।

(आप मुझे जी भरकर रोने नहीं देते ! मुझे छोड़ दीजिए। एक बार छोड़ देने से मैं एकांत में यवनिका के पीछे फूट-फूट कर रुदन करूँगा। बिना ऊबे, बिना थके, दुर्भर शोक के गीत गाऊँगा; ऊँचे स्वर में रो पड़ूँगा।

कवि अनुभव करते हैं कि सारी सृष्टि प्रेम के स्निग्ध बन्धन में बँधी हुई हैं।

उसका कण'कण प्रेम के शासन से शासित है। फूल सौरभ बिखेरते हैं, चन्द्र चाँदनी छिटकाता है, पानी बहता है और हवा चलती है, तो इसी प्रेम के कारण। कवि उस प्रेम-मूर्ति ईश्वर का ही रूप सारी प्रकृति में देखता है, प्रकृति के कण-कण में तादात्म्य का अनुभव करता है। ऐसे प्रेमाधिदेव के चरणों में क्या भेंट चढ़ाई जाय ? कवि कहते हैं :—

गाढ लज्जानुताप संकलित हृदय.
नीरज दलाल शलु कन्नीटि चुक्क
गाक, मनसार वलपूर, गलत दीर
गांकगा ने मोसंग गलनु नीकु ? ,

(हे हृदयाधिदेव, प्रगाढ़ लज्जानुताप संकलित हृदय कमल दलों से टपकने वाली अश्रु-बिन्दु के सिवा हार्दिक भाव से, प्रेम से, आनन्द से मैं और क्या भेंट तुम्हें चढ़ा सकता हूँ।

इसी प्रकार प्रकृति के उपासक एवं सौंदर्योपासक कवि इस युग में कई हुए हैं दुव्वूरि रामिरेड्डी, विश्वनाथ, सत्य-नारायण, बसवराजु, अप्पाराव, वेदुल सत्यनारायण अडिवि बापीराजु और नायनि सुब्बाराव इसी वर्ग के हैं। विस्तार भय से उनकी कविताओं से उद्धरण देने का लोभ हम संव-रण कर लेते हैं।

इस युग में देश-भक्ति एवं समाज-सुधार सरस कविताएँ भी लिखी गयीं हैं। उनमें एक दो व्यक्तियों को उद्धृत करके आगे बढ़ेंगे। बसवराजु अप्पाराव गीत-रचना में बेजोड़ हैं। भावना का उद्दाम वेग एवं संगीतात्मक प्रवाह उनके गीतों के प्रधान गुण हैं। वैसे तो उन्होंने कई विषयों से सम्बन्धित गीत लिखे, किन्तु गाँधी जी के महत्व का निम्नलिखित गीत बहुत ही लोक-प्रिय है।

कोल्लायि गट्टिते नेमि, मा गांधि
कोमटै पुट्टिते नेमि ?
वेन्नपूसा मनसु
कन्नतल्ली प्रेम
पंडंटि मोमु पै
ब्रह्म तेजस्सु ॥ कोल्लायि……

(हमारे गाँधी अंगोछा पहनें तो क्या हुआ ? वैश्य होकर जन्में तो क्या हुआ ? उनका मन नवनीत जैसा है, उनमें माता का सा प्रेम है, उनके मुख-मण्डल पर ब्रह्म-तेज झल-कता रहता है।

वेदुल सत्यनारायणजी की निम्नलिखित कविता में फूल की अभिलाषा देखिए :

नीचपु दास्यवृत्ति मननेरनि शूरत
मातृ देश सेवा चरणम्मुनं
दसुवुलर्पण सेसिनवारि पार्थिव श्री
चेलुवारु चोट, तदस्रमु चुलन् विकसिंचि
वासनल् वीचुचु शालपोवगवलें
ददुत्त समाधि मृत्तिकन् !

फूल की अभिलाषा यह नहीं है कि वह देवमूर्ति को अलंकृत करे या ललनाओं के केशों या गले मे रहकर उनकी शोभा

बढ़ाए या राजाओं के पैरों पर लोटे। वह चाहता है जिन लोगों ने नीच दासता को नहीं सहकर मातृ-देश की सेवा में अपने प्राणों की बलि दी, ऐसे लोगों की मिट्टी जहाँ मिली वहाँ अपनी पूर्ण कान्ति के साथ विकसित होकर, सौरभ विकीर्ण करते हुये, मैं वहीं मिट्टी में समा जाना चाहता हूँ।

तृतीय उत्थान (१९३५-१९४३)

लगभग सन् १९३२ तक इस नवीन कविता (भाव कविता) के प्रति विरोधी स्वर सुनाई पड़ने लगे। इसका मुख्य कारण यह था कि पिछले उत्थान की कविता में कल्पना की मात्रा इतनी अधिक हो गई कि कविता वास्तविकता से दूर पड़ने लगी। जन जीवन तथा काव्य-वस्तु में कहीं भी कोई सम्बन्ध नहीं था। कविता का वायुवी वातावरण तथा कल्पना-लोक जन-जीवन की भीषण वास्तविकता की पृष्ठ-भूमि पर कुछ हास्यास्पद से प्रतीत होने लगे। समाज की आर्थिक विषमता तथा अपने चारों ओर के क्षुधा-पीड़ित एवं अभाव ग्रस्त मानव समूह के प्रति सहृदय कवि निरपेक्ष नहीं रह सकते थे सौंदर्योपासना की जो प्रवृत्ति इसके पहले देखी गई थी, उसके प्रति विरोध, असुन्दर, भयानक एवं अरोचक यथार्थता के प्रति आग्रह कवियों में स्पष्ट दीखने लगा। विदेश के भौतिकवाद का प्रभाव धीरे-धीरे कवियों पर पड़ने लगा था। कविता की वस्तु एवं शैली में क्रान्ति लाने का उद्-बोधन श्रीरंगम श्रीनिवासरावजी (श्री० श्री०) की कविता में पहली बार सुनाई पड़ा। कवि किसी नये संसार की पुकार सुनते हैं : —

मरो प्रपंचं
मरो प्रपंचं
मरो प्रपंचं पिलिचिंदि !
पदंडि मुन्दुक,
पदन्डि त्रोसुकु
पोंदां. पोदां पै पैकि !

(अर्थात् एक नये संसार ने पुकारा है। बढ़ते चलो, ढकेलते चलो, चलो हम लोग आगे की ओर बढ़ चलें।

एमुकलु क्रुल्लिन
वयस्सु मल्लिन
सोमरु लारा ! चावंडि !
नेत्तुरु मन्डे,
शक्तुलु निंडे,
सैनिकुलारा ! रा रंडि !

(जिनकी हड्डियां सड़ी-गली है, जो बूढ़े हैं, जो सुस्त हैं, वे मरे ! जिनका रक्त जल रहा है, जिनमें शक्ति भर-पूर ऐसे सैनिकों आओ

श्री० श्री० अपनी कविता के लिए किन-किन प्रसाधनों की अभिलाषा करते हैं देखिये —

सिंदूरं, रक्त चन्दनं,
बन्धूकं, सन्ध्यारागं,
पुलि चंपिन लेडि नेत्तुरू,
एगरेसिन एर्रनि झण्डा
रुद्रालिक नयन ज्वालिक,
कलकत्ता कालिक नालिक,
कावालोय नव कवनानिकि।

(नवीन कविता के लिए सिंदूर, रक्त-चन्दन, बन्धूक पुष्प, सांध्य राग, बाघ के मारे हिरण का खून, भवानी की आँखों की ज्वाला कलकत्ता काली की जीभ चाहिए।

अपनी नई कविता की परिभाषा वे यों देते हैं :—

कदलेदी, कदलिंचेदी,
मारेदी मार्पिंचेदी
पाडेदी पाडिंचेदी
पेनु निद्दुर वदलिंचेदी
मुनुमुदुकु साङ्गिंचेदी
परिपूर्णपु ब्रदुकिच्चेदी

(कविता वैसी हो जोर खुद पसीजे और दूसरों को भी द्रवित करे, खुद बदले और दूसरों में परिवर्तन लाये, खुद गाए और दूसरों से गवावे, सुस्ती और आलस्य को दूर करे, आगे की ओर ले जावे और पूर्ण जीवन प्रदान करे।)

कविता के लिए कोई भी चीज अनर्ह नहीं है। सभी कविता-मय हैं। वे कहते हैं : -

कुक्क पिल्ला,
अग्गि पुल्ला,
सब्बु बिल्ला,
हीनंगा चूडकु देन्नी
कवितामयमोय अन्नी।

कुत्ते का पिल्ला, दियासलाई, साबुन की टिकिया, किसी को नीच मत मानो। सभी कवितामय हैं।)

कवि सामाजिक-शोषण से पीड़ित हो, जीवन से ऊब गये हैं जीवन उन्हें कड़ुवा लगता है। वे कहते हैं :—

लेदु सुखं
लेदु सुखं जगत्तुलो
ब्रदुकु वृथा! चदुक वृथा,
कवित वृथा! वृथा, वृथा!
मनमंता बानिसलं,
गानुगत्तुं, पीनुगुलं!
वेनुक दगा, मुदु दगा'
कुडियेडमल दगा, दगा!
मनदी ओक ब्रदुकेना?
कुक्कलवले, नक्कलवले!
मनदी ओक ब्रदुकेना!
संदुललो पंदुलवले!

(सुख नहीं है इस जग में। जीवन वृथा है पढ़ाई बेकार है, कविता वृथा है। हम सब गुलाम हैं, कोल्हू हैं, शव हैं, आगे धोखा है, पीछे धोखा है, दायें बायें धोखा ही धोखा है। क्या हमारा जीवन कोई जीवन है। कुत्तों की तरह लोमड़ियों की तरह, गलियों में भटकने वाले सुअरों की तरह हमारा जीवन क्या कोई जीवन है?)

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि श्री० श्री० की कविता में मानसिक क्षोभ एवं कुण्ठा की तीव्र अनुभूति है, वे कविता की वस्तु, भाव, भाषा एवं छन्द सभी में ऐसी क्रान्ति लाना चाहते हैं ताकि कविता यथार्थता को प्रतिबिम्बित करे। आगे चलकर श्री० श्री० का अनुकरण करने वाले बहुत से कवि हो गये। इसी बीच द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। देश और विदेशों की स्थित में एक प्रकार की अस्तव्यस्ता एवं अराजकता की दशा आ गई। श्री० श्री० की कविताओं से प्रेरणा प्राप्त करके तेलुगु के युवक कवि यथार्थवादी, अति यथार्थवादी (Sur-realism) कविताएँ लिखने लगे। कविता की शैली में श्री० श्री० ने क्रान्ति करके उनके लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया था। स्वयं श्री० श्री० भी अति यथार्थवादी कविताएँ लिखने लगे। १९१४ के प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त यूरोप की कविता में अति यथार्थवादी की प्रवृत्ति दीख पड़ी थी। वही प्रवृत्ति द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में तेलुगु कविता में दीख पड़ी। संप्रदाय एवं परम्परा के प्रति विद्रोह, निराशा एवम् कुण्ठा, तज्जनित अशक्त क्रोध, रूखापन, कविता के क्षेत्र में नये प्रयोग करने की अदम्य इच्छा, अपने मानसिक व्यतिक्रम शब्द चित्र प्रस्तुत करने की असफल चेष्टा, भौतिक सुखों के उपभोग की तीव्र लालसा, और उस प्रयत्न में असफल होने से खीज आदि के आधार पर अति यथार्थवादी कविता का निर्माण होने लगा। उस कविता का एक नमूना देखिए—

मनिषिकि लव अफ मदर कन्ट्री
जीवितानिकि आर्ट एण्ड पोयेट्री,
अक्लेंदु! अन नेसिसेरी,
फरगेट एव्री एस्टरडे
डोंट थिंक आफ दि लास्ट मिनिट

परम्परा को तोड़ने की कैसी उद्दाम लालसा है। कहते हैं—मनुष्य के लिए मातृ देश का प्रेम (love of mother country) जीवन के लिए कला और कविता (art and Poetry) आवश्यक नहीं है। (unneccessary) कल की बात को भुला दो। अन्तिम क्षण की बात मत सोचो (Forget very yesterday don't think of the east minute) स्पष्ट है कि भाषा, शैली एवं विचारों की जो मर्यादा है, उसे तथा कथित कवि ने एक दम ठुकरा दिया है और रबड़ छन्द में अंग्रेजी शब्दों के योग से कविता की रचना की है।

किन्तु इस प्रकार की कविता तेलुगु प्रदेश में बहुत दिन तक नहीं चली। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के साथ-साथ इस कविता का जीवन भी समाप्त हुआ।

चौथा उत्थान (१९४३ से)

सन् १९४३ आँध्र प्रदेश में प्रगतिवादी लेखकों का सम्मेलन हुआ। सन १९४० में स्थापित अखिल भारतीय साम्यवादी दल के प्रचार से, तथा संसार के रङ्गमञ्च पर बदलती हुई परिस्थिति के प्रभाव से तेलुगु के कवियों पर मार्क्स का और समाजवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ने लगा। इसके दो चार साल पहले ही कवि श्री० श्री० ने साम्यवाद की शंख ध्वनि सुन ली थी और उससे आकृष्ट एवं विमुग्ध से हो गए थे। भविष्यद्वक्ता की तरह उन्होंने कहा था -

वस्तुन्ना योस्तुन्नाय
जगन्नाथ रथचक्राल्
रथ चक्राल, रथ चक्रा
लोस्तुन्नायोस्तुन्नाय !
वडलो, कडु जडिलो
पेनु चलिलो तेग नवसि कुमुलु
मी बाधलु, मी गाथलु
अवगाहन न कवुताय !
पतितुलार, भ्रष्टुलार !
दगा पडिन तम्मुलार !
मी कोसं कलं पट्टि
आकाशपु दारुलंट
अडावुडिग वेलिपोये
अरुचुकुस्टु वेलिपोये
जगन्नाथुनि रथचकाल
रथ चक्र प्रलय घोष
मूमार्गं पट्टिस्तानु !
भूकंपं पुट्टिस्तानु !

(जगन्नाथ के रथ के चक्र आ रहे हैं ! आ रहे हैं ! लू में, मूसलाधार पानी में, जाड़े में जर्जर होकर तड़पने वाली तुम्हारी तकलीफें मैं समझता हूँ। हे पतित, भ्रष्ट, एवं ठगे गये भाइयो, तुम्हारे लिए मैं कलम लेकर, आकाश के मार्ग से, तेजी से जाने वाले जगन्नाथ के रथ-के चक्रों को भूमि की ओर घुमाऊँगा, भूकम्प कर दूँगा।)

रूस से प्रेरणा प्राप्त तथा मार्क्सवाद एवं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित ये कवि अभ्युदय कवि कहलाते हैं। इनकी कविताओं में पूँजीपति एवं पूँजीवाद के प्रति विद्रोह तथा श्रमजीवियों के प्रति सहानुभूति स्पष्ट लक्षित होती है।

१९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ। हैदराबाद रिसायत में रजाकारों का उपद्रव दिनोंदिन बढ़ने लगा। हैदराबाद रियासत की जनता हर तरह से प्रताड़ित, पीड़ित एवं अपमानित होने लगी। इस भीषण राक्षस-लीला से कई युवक कवि क्षुब्ध हो उठे। निजाम के शासन से प्रजा को मुक्त करने के लिये साम्यवादी दल ने प्रजा का आन्दोलन शुरू किया। तेलगाना के कई युवक कवि इस आन्दोलन के प्रति खिंच आए। वैसे तो पहले से ही साम्यवादी विचारधारा को कई कवियों की सहानुभूति प्राप्त थी। दाशरथी 'आरुद्र' जैसे कवि श्री० श्री० के चरण चिन्हों पर चलते हुये प्रगतिवादी कविता करने लगे। दाशरथी कहते हैं :—

अनादिगा सातुतोंदि
अनंत संग्रामं
अनाथुडिकि आगर्भ
श्रीनाथुडिकि मध्य।
सेद्यं चेसे रैतुकु,
भूमि लेदु पुट्रलेदु,
रैतुल रक्तं आगे
जमीनदार्ल केस्टेटलु।

(अनाथ और आगर्भ श्रीनाथ के बीच अनादि काल से अनंत संग्राम चल रहा है। खेती करने वाले किसान को तो भूमि नहीं है, किसान का रक्त पीने वाले जमींदारों के तो 'एस्टेट' हैं।)

और भी —

लेदु, लेदु, विलुव लेदु,
रक्तानिकि, प्राणानिकि,
श्रमकू, सौजन्यानिकि,
रमणी रमणीय मणिहृदयानिकि,
विलुव लेदु, विलुव लेदु।

(नहीं है, मूल्य नहीं है, रक्त, प्राण, परिश्रम, सौजन्य, लेखक, श्रमजीवी तथा रमणीय रमणी के हृदय का कोई मूल्य नहीं है।)

'आरुद्र' कहते हैं :—

नुव्वु एक्क दलचुकोन्न रैलु
एपुडू ओक जीवित कालं लेटु,
एन्नाळ्ळू पूल्लू निरीक्षिंच लेक
एक्केस्तावेदो ओक बंडि।

(तुम जिस रेल में चढ़ना चाहते हो, वह सदा एक जीवन काल देर (लेट) से आती है। सालों प्रतीक्षा नहीं कर सकने के कारण तुम किसी न किसी गाड़ी में चढ़ जाते हो।

और —

एमर्रा बाधितुलारा,
लेवर्रा बानिसलारा,
मीरे ओक कट्टुक ट्टिते,
मीरे ओक पट्टि पट्टिते
कोट्टेंदुकु कोइजलुंडवु
पट्टेंदुकु पग्गलुंडवु

(ऐ पीडित, ऐ गुलाम उठो, उठो। यदि तुम एक हो जाओ यदि तुम निश्चय कर लो तुम्हें मारने के लिए चाबुक नहीं रहेंगे, बाँधने के लिए रस्सी नहीं रहेंगे।)

इस युग में प्रगतिवादी के अलावा कुछ ऐसे कवि भी हुये हैं, जो किसी भी राजनीतिक मतवाद के अनुयायी न होकर शुद्ध साहित्य की दृष्टि से काव्य रचना करते आये हैं। किंतु इनकी कविता का शिल्प एवं छन्द आदि सर्वथा नये हैं। श्री नारायण रेड्डी की कविता में भाव एवं भाषा का बड़ा मधुर समन्वय मिलता है। वे कहते हैं :—

चन्द्र मन्डलानिकि
सवाल चेसिन
'साइंटिफिक मनिषि'
साटिवाण्णि जयिंपलेक
'आर्ट' शरणुवेडुतुन्नपुडु
'नरहृदयान्ने परिशोधिंपलेनि
उरु मेधलु वृथा, वृथा' अंटू
परिहासं चेस्तुंदि
प्रकृति लोनि परमाणुवु।

(चन्द्रमन्डल तक जाने की कोशिश करने वाला वैज्ञानिक आदमी जब अपने साथी को जीतने में असमर्थ होकर 'अणु' की शरण लेता है, तब प्रकृति का अणु उसकी हँसी उड़ाती हुई कहती 'मानव हृदय की खोज करने की शक्ति नहीं रखने वाली तुम्हारी तेज बुद्धि वृथा है।')

और भी—

वेदनये कवित्वानिकि
वीज प्रायं सुमा !
मञ्चु गुड्डलु कप्पुकोन्न
मानवुल मेदल्लो
वेडि किरणालंदिंचे
वाडे कवि वाडे रवि
साटिवाल्लु मूढत्वपु
सारा मैकं लो पडि
प्रेलुतुन्टे जागृति दी
पालेत्तिन वाडु कवि

(कविता की बीज वेदना ही है। बर्फ के परदे जब मानव के मस्तिष्क को ढँक लेते हैं, तब वहां तक गरम किरणों को पहुंचाने वाला ही कवि है, वही रवि है। जब साथी अज्ञान रूपी शराब के नशे में प्रलाप करने लगते हैं, तब जागरण की ज्योति जलाने वाला ही कवि है।)

श्रीनारायण रेड्डी प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। उन्होंने असंख्य मुक्तक रचनाओं के अलावा 'अजंता सुन्दरी', 'नागार्जुन सागरं' और 'कर्पूर वसंत रायलु' नामक काव्य भी लिखे हैं, जो भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक हैं।

इन 'अभ्युदय' कवियों के अलावा इस युग में उन कवियों की संख्या भी कम नहीं है, जो प्राचीन परम्परा के अनुसार छन्दोबद्ध कविता लिख रहे हैं। इनमें श्री विश्वनाथ सत्यनारायण प्रमुख हैं। उनका 'रामायण कलप वृक्षमु' रामायण की कथा को लेकर लिखा हुआ महाकाव्य है, जिसमें कवि की मौलिक उद्भावना का सुन्दर परिचय मिलता है। वैसे तो श्री विश्वनाथ सत्यनारायण की प्रतिभा सर्वतोमुखी हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना और कविता का मतलब यह कि साहित्य की प्रत्येक प्रवृत्ति उनकी कलम के स्पर्श से मधुर हो उठी है। लेकिन रामायण कल्पवृक्ष उनकी कीर्ति-पताका है।

तेलुगु और हिन्दी में छायावादी कविता

•

चा० सूर्यनारायण मूर्ति

यूरुप में पुवर्जागरण के बाद जो स्वछन्दतावादी काव्य-धारा चल पड़ी उसके प्रभाव से भारत के साहित्यिक क्षेत्र में भी एक ऐसी धारा प्रवाहित होने लगी; जो विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नामों से अभिहित हुई है। हिन्दी में वह 'छायावादी' कहलाई तो तेलुगु में उसे 'भाव कविता' कहा जाने लगा। हिन्दी में भारतेन्दु के समय से लेकर द्विवेदी युग तक जो इतिवृत्तात्मक काव्य-धारा अपने स्वछन्दतावादी दृष्टिकोण को लेकर बह रही थी, तेलुगु में भी आधुनिक युग के स्रष्टा स्व० कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु के समय में उसी प्रकार की कविता लिखी जाती थी। बंगाल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के साथ नई अभिव्यक्ति पूर्ण कविता का जो प्रचलन हुआ उसका भाव दोनों भाषाओं के साहित्यों पर पर्याप्र पड़ा था। आधुनिक युग में अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन ने दोनों भाषाओं को समान रूप से प्रभावित किया। इसके अलावा दोनों भाषाओं की छायावादी कविता पर राजाराम मोहनराय और स्वामी दयानन्द सरस्वती के ब्रह्म-समाज और आर्य समाज की विचार धारा का भी प्रभाव पड़ा है। आगे संक्षेप में दोनों भाषाओं की छायावादी कविता पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा।

छायावादी कविता साहित्य की वह विधा है, जिससे कवि का वस्तु और वर्णन के प्रति अत्यन्त ही वैयिक्तक दृष्टिकोण होता है, जो यथार्थ की अपेक्षा वैयक्तिक आदर्श की ओर अधिक उन्मुख रहता है। वह भावावेग को जितनी प्रधानता देता है उतनी तर्कशीलता को नहीं। उसमें इन्द्रियातीत सौन्दर्य के अन्वेषण की प्रवृत्ति प्रमुख रहती है जिससे वह वास्तविकता से दूर किसी स्वप्निल संसार में बिहार करने लगता है। भावानुभूति की वैयक्तिकता के कारण वह इतना आत्मनिष्ठ लक्षित होता है कि सारी सृष्टि को अपनी अनुगामिनी बनाकर उस पर स्वयं छा जाने की महत्वाकांक्षा रखता है। इस प्रकार की विशिष्ट भाव भूमि को लेकर जब वह अपनी अनुभूति को वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करने लगता है। तव वह अपने अन्तर के संगीत को प्रधानता देकर वह जिस रूप में फूट पड़ता है उसी रूप में गा उठता है। इस प्रक्रिया में वह प्रायः पूर्व निर्धारित रूढ़ियों और नियमों का उल्लंघन कर जाता है। इस प्रवृत्ति व ली कविता में प्रकृति चित्रण का विशिष्ट स्थान है। छायावादी कवि की दृष्टि में प्रकृति जड़ या मूक नहीं है, वह उसकी सहचरी है; उसके दुख में दुखी और सुख में सुखी दिखाई पड़ती है। उसके प्रकृति के प्रति इसी दृष्टिकोण के कारण छायावाद का नाम भी चल पड़ा अर्थात् छायावादी कविता वह कहलाई जिसमें कवि अपने ही भावों की छाया प्रकृति में देखता हुआ लक्षित होता है और तदनुरूप शैली के द्वारा उनका वर्णन करता है। इसके लिए वह प्रकृति का मानवीकरण करके उसे चेतन रूप में प्रस्तुत करता है। वह प्रकृति के वाह्य रूप से प्रभावित न होकर उसके अन्दर अपने हृदय का अन्वेषण करने लगता है। संक्षेप में ये ही छायावादी कविता की विशेषताएँ हैं जिनसे विदित होता है कि वह उतनी वस्तुपरक नहीं जितनी भावपरक या आत्मनिष्ठ है। इसी विशेषता के कारण यह कहा गया है कि छायावादी कविता स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है और वह काव्य

की इतिवृत्तात्मकता से असंतुष्ट होकर अतिरंजित कल्पना, प्रतीकात्मक शैली और विशेषण-विपर्यय आदि नये अलंकारों के द्वारा सूक्ष्म सौन्दर्य के अन्वेषण में प्रवृत्त हुई। आगे चलकर इसमें मूकगान, नीरव रोदन, मधुर पीड़ा आदि परस्पर विरोधी तत्वबोधक शब्दों का प्रचलन हो गया, जो छायावादी कविता की पहचान के साधन मात्र रह गए।

इस विशिष्ट दृष्टिकोण से लिखी गई कविता को तेलुगु में 'भाव कविता' कहा गया है, जिसका अर्थ यह है कि कवि की दृष्टि वस्तुपरक नहीं बल्कि भावपरक है। इन भाव कवियों की एक सामान्य प्रवृत्ति है प्रेम, जिसे सब प्राकृतिक व्यापारों में देखने का वे प्रयास करते हैं। भाव कविता के प्रथम वैतालिक वेंकट पार्वतीश्वर (कवि द्वय) यही मानवीय भावना वृक्षों के व्यापारों में देखते हैं, और कहते हैं —

पेड़ों में कलियाँ लगती हैं
फिर कलियाँ विकसित होती हैं।
तुम तो सौरभ फैलाते हो
ये कार्य सभी क्यों होते हैं?
प्रेम के लिए ही होते हैं।

('प्रेम कोरकु' का अनुवाद)

इसी प्रकार सूर्य किरणों की उष्णता, इन्दु किरणों की शीतलता और नक्षत्रों की मन्द ज्योति में भी वे यही प्रेम का व्यापार देखते हैं।

'आशा-निराशा' नामक कविता में भी वे यही प्रेम प्रकृति के व्यापारों में देखते हैं। इस भाव को सुन्दर शब्द चित्र के द्वारा वे अभिव्यक्त करते हैं -

पिछवाड़े के सप्तपर्ण कदली तरु के पास
वापी जल सिंचित, पोषित—
आम्र वृक्ष में आया नवारुण
किसलय सविलास
देख उसे पाने की आशा से
कोयल मीठे स्वर में कूक उठी सहित हुलास
किसलय रहित डालियों में
छोटे फूल हुये विकसित
देख जिन्हें भ्रमरी गाती
है गीत प्रभाती उल्लसित।
देखते ही देखते जाने क्यों
नष्ट किसलय, फूल बिखर गए!
कोयल का मुँह लटक गया है,
भ्रमरी के भी भाव गये।
विषम विश्व में यह कोई बात नहीं।।

('आशा-निराशा का अनुवाद')

प्रेम के साथ-साथ विरह भी अवश्यंभावी है। श्रीरायप्रोलु सुब्बाराव इसी प्रकार प्रेम को अपना ध्येय बनाकर, विरह में प्रकृति को अपनी सहचरी के रूप में देखते हैं, जो कभी उसके प्रति सहानुभूति दिखाती है और कभी उपहास सा करती है। उनके विरहगन्ध के गीत का अर्थ बताने के लिए झाड़ियाँ सिर उठाती हैं और दिशाओं में फैली संध्या हँसते हुये अपने रागारुण होठों से उपहास सा करती है। इनकी कविता में यद्यपि वस्तु और शिल्प की दृष्टि से नया दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है तथापि भाषा और छन्दों में पुरानी पद्धति दृष्टिगोचर होती है; अर्थात् प्राचीन काव्य का भाषा और नियमबद्ध छन्दों को ही इन्होंने ग्रहण किया।

भाव कवियों में श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री जी का नाम सर्व प्रसिद्ध है। इनकी कविता में स्वछन्द प्रेम भावना अपने मधुरतम रूप को लेकर पाठकों को सम्मोहित करती है। अपनी प्रेयसी के नेत्रों का वर्णन वे इन शब्दों में करते हैं—

आमे कन्नुललो ननन्तांबरंपु
नीलि नीडलु; कलत्रु
विनिर्मलांबु

पूर गंभीर शांत कासारचित्र
हृदयमुललोनि गाटंपु निदुरचाय
लंदु नेड नेड ग्रम्मु;
सन्ध्यावसान

समयमुन नीपपादप शाखिकाग्र
पत्र कुटिल मार्गमुललोपल बसिंचु

इरुल गुसमुसल् वानिलो निपुड्ड नपुड्ड
विनबड्डुचुनु`ड्डु;

मरिकोन्नि वेललंदु

वानकारु मब्बुल मेयिवन्ने वेनुक
दागु बाष्पम्मुलामे नेत्रामुलल्लोन
वोंचुचु`ड्डुनु;

ऐ:दियो अपूर्व मधुर

रक्तिस्फुरियिंचु कानि अर्थम्भु कागि
भावगीतम्मुलवि ....

(उसकी आंखों में अनन्त अम्बर की नीली छायाएँ हैं। निर्मल जल से पूर्ण गंभीर और शाँत सरोवर के समान हृदयों की गहरी निद्रा की छायाएँ कहीं-कहीं छा जाती हैं। संध्यावसान के समय नीप वृक्ष के शिखाग्र पत्रों के बीच में रहने वाले अन्धकारों की फुसफुसाहट की अव्यक्त ध्वनि कभी-कभी सुन पड़ती है। फिर कभी-कभी वर्षा ऋतु के काले बादलों के बाष्पबिन्दु उसके नेत्रों में छिपे रहते हैं। उसके नेत्रों से किसी अपूर्व मधुर रक्ति का स्फुरण होता है; किन्तु वे ऐसे भावगीत हैं जो समझ में नहीं आते ···)
इसमें कवि की ऊँची कल्पना, प्रकृति के साथ वर्ण्य विषय तादात्म्य, अभिव्यञ्जना की शैली और भाषा की कमनीयता विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। यद्यपि इनकी रचनाएँ संख्या की दृष्टि से कम हैं किन्तु फिर भी वस्तु, कल्पना, शैली और अभिव्यक्ति आदि की दृष्टि से इनकी तुलना छायावादी श्री सुमित्रानन्दन पन्त से की जा सकती है। जिस प्रकार पन्त रात्रि में नक्षत्रों के द्वारा किसी का मौन निमन्त्रण पाते हैं उसी प्रकार कृष्ण शास्त्री भी निशीथ में किसी की पुकार सुनते हैं और पूछ बैठते हैं।—

है मुझको कौन बुलाता
निशि में छायासम आता
गूँगी बोझिल चितवन से
कौन बुलाता इङ्गित से ॥

('एवरु' शीर्षक कविता)

ये अपने को प्रवासी मानते हुये भावप्रवण कल्पना के द्वारा अपना परिचय देते हैं :—

'मधुर, सुषमा और सुधा गान शोभित मञ्जुल गंधर्व लोक मेरा प्रथम निवास स्थान है। मैं एक वियोग-गीतिका हूँ। किसी रात को निद्रा की चन्द्रिका के मार्ग से होकर मैं चल पड़ी। किसी विपंची से विरह गीत निकलने लगा। तो उस वियोगिनी के हृदय राग की वेदना-रेखा बनकर मैं उसकी चञ्चल किसलयोपम उँगलियों से छूटकर इस अनन्त विश्व में आ गई। उस दिन से लेकर सब दिशाओं में न जाने किसके लिये अथक और अपलक होकर अप्सराओं की अनुराग वीथियों, किन्नरियों के रम्य कंठों, सावन के बादलों से आश्लिष्ट तारों की पंक्तियों और मारुत के तीव्र पंखों में रात दिन घूमने लगी। यह तो अनन्त और निरर्थक तथा अथक अन्वेषण है। इस प्रवास की यात्रा में इसी प्रकार मैं दिशाओं और आकाश में एक उच्छ्वास के समान, मौन बाष्पकण की भाँति और तीव्र अभिलाषा की तरह फैल जाऊँगी।' कवि का यह परिचय उनकी चिरन्तन सौंदर्यान्वेषण की प्रवृत्ति का द्योतक है। इनकी कविता में जो भाव सबलता पाई जाती है, वह बहुत ही उच्चकोटि की है और अत्यधिक वैयक्तिक आवेश को लिये हुये हैं। ये तेलुगु के भाव कविता के प्रतिनिधि कवि माने जा सकते हैं। प्रेम की आर्द्रता के साथ चिर वियोग की वेदना के भी गीत इनके मिलते हैं। 'वैतालिक' के संपादक ने इनके बारे में यह जो कहा है कि ये कविता के लिए जीवित रहते हैं पूर्णत: सच है। इन्हीं के समान प्रेम और विरह के गीत गाने वाले हैं श्री वेदुल सत्यनारायण। इन्होंने मानों वेदना का वरण ही कर लिया और जब तक हृदय और प्रेम की आकाँक्षा जीवित रहती है, तब तक रोते हुये जीवित रहना चाहते हैं, चाहे विश्व में उथल-पुथल क्यों न हो जाय भाव कवियों में श्री स्वामी शिवशंकर शास्त्रीजी का भी विशिष्ट स्थान है, जिन्होंने 'साहिती समिति' के अध्यक्ष रहकर उसके द्वारा भाव कविता के विकास में बहुत योगदान दिया इनकी प्रसिद्धि काव्यकृति 'हृदयेश्वरी' है जिसमें इन्होंने प्रेम और वेदना' मिलन और वियोग के हृदयोद्गार गाये हैं। उनकी 'हृदयेश्वरी' का जन्म पुष्प मास की पूर्णिमा में हुआ। उसने कवि का वरण किया और अन्त में अपने विलास विभ्रमों को कवि के हृदय में स्मृति रूप में छोड़कर अदृश्य हो गई। उसी स्मृति को हृदय में संजोकर कवि जीवन यापन करते हैं

और पुष्प-पूर्णिमा की ज्योत्स्ना में जलते रहते हैं। वस्तु, भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना स्व० प्रसाद के 'आँसू' से की जा सकती है। इस प्रकार की भावधारा से यह विदित होता है कि भाव-कवि प्रकृति को किस प्रकार अपने हृदय की छाया के रूप में देखता है।

प्रकृति किसी को दुख में सांत्वना भी देती है। श्री 'मुरया' अपनी 'चिन्नि पूलु' (छोटे फूल) नामक कविता में प्रकृति का इसी रूप में वर्णन करते हैं :—

> चिंता ग्रस्त रहा करता जब
> मैं दुख पीड़ित रहता था जब
> बोले मुझसे वे छोटे फूल
> 'आ पास हमारे चिंता भूल
> छोड़ो दुख, हलका करना मन'
> यह वह मेरे मित्र गए बन।'

इसी प्रकार नहर का पानी, जुगनू, झींगुर आदि भी कवि के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं और दुख की घड़ियों में सांत्वना प्रदान कर जीवन में आशा का संचार करते हैं। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने 'किन्नेर सानि पाटलु' में 'किन्नेरसानि' नाम की नदी विशेष का मानवीकरण के द्वारा पति से मिलने की उत्कंठा से दौड़नेवाली नवोढ़ा के रूप में वर्णन किया 'माँ स्वामी' शीर्षक अपने विश्वेश्वर शतक में श्री सत्यनारायण जी ने अपने जीवन का बंजर के रूप में वर्णन करके बहुत सुन्दर शब्द चित्र उपस्थित किया है। 'स्वामी, मेरे जीवन की भूमि आपकी करुणा की मेघमाला की मधुरता से वंचित होकर दुख के ग्रीष्मकालीन सूर्यातप के उष्णाधिक्य से जल गई और उसमें दरारें पड़ने से वह बंजर बनी हुई है। जब तक आपकी करुणा की मूसलाधार वर्षा नहीं होगी तब तक यह कृषि के योग्य नहीं बनेगी।' इनकी इस कोटि की कविता नव्यता लिए हुए भी प्राचीन पद्धति के छंदों में ही चली है।

इन कवियों के अलावा स्व० बसवराजु अप्पाराव, सर्वश्री अब्बूरि रामकृष्ण राव, विश्वसुन्दरम्मा, रामचन्द्र अप्पाराव आदि कवियों की रचनाएँ भाव कविता के सुन्दर उदाहरण हैं। बसवराजु अप्पाराव की भावुकता कल्पना की दुरूहता से रहित सरलता को लिए हुए हैं, अभिव्यक्ति परस्पर विरोधी तत्वों के सहारे होती है। कोकिल का मधुर गान उनके हृदय के टुकड़े कर देता है और वे गा उठते हैं कि हे कोयल, अपनी मधुरता से मेरे मन को मत काटो। इसके सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखने की है और वह यह है कि वैयक्तिक अनुभूति प्रधान होने के कारण इन कवियों की यह भाव कविता साधारण पाठक के हृदय को स्पंदित करने में कभी-कभी असमर्थ हो गई है।

हिन्दी की छायावादी कविता के उन्नायक श्री सुमित्रानन्दन पंत, श्रीमती महादेवी वर्मा, स्व० जयशंकर प्रसाद और निराला हैं। इसके प्रारम्भिक विकास में श्री पंतजी का बहुत बड़ा योगदान रहा या यों भी कहा जा सकता है कि वास्तविक रूप से छायावादी कविता ने इन्हीं से स्वरूप ग्रहण कर लिया। यद्यपि यह कहा जाता है कि इनके पहले ही उसका सूत्रपात हो चुका था। छायावाद की जितनी प्रधान प्रवृत्तियाँ हैं वे सब इनमें पायी जाती हैं। प्रभात के पक्षियों के कलकल रव को आश्चर्य के साथ सुनकर वे विहंगिनी से पूछते हैं—

> प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!
> तू ने कैसे पहचाना ?
> कहाँ-कहाँ हे बाल विहंगिनि,
> पाया यह स्वर्गिक गाना ?

जैसे कि पहले दिखाया जा चुका है सारी प्रकृति शांत निशीथ में इनको अपने विभिन्न अंगों के द्वारा मौन निमन्त्रण देती है जिसका अनुभव करके कवि के मन में जिज्ञासा का आरोप करके कवि उसके साथ अपने अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं और उसमें अपने ही भावों की छाया का दर्शन कर लेते हैं। इन्होंने छाया, पल्लव, आँसू, बादल आदि कविताओं में जिस सूक्ष्म सौन्दर्य का अन्वेषण करने का प्रयत्न किया, जिस कमनीय भाषा और शैली को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, वह आगे चलकर छायावादी कवियों के लिए मार्ग-दर्शक बन गई यद्यपि इनकी सी अनुभूति बहुत कम कवियों में दिखाई पड़ती है। खड़ी बोली को कोमल तथा काव्योपयुक्त बनाने में इनका योग अनुपम रहा। इनकी कविता की विशेषता यह है कि समय-

समय पर यद्यपि उसकी वस्तु और शैली में परिवर्तन दिखाई पड़ता है, तथापि अनुभूति की तीव्रता में कोई अन्तर नहीं आया ।

श्रीमती महदेवी वर्मा अपनी भावधारा के नवनवोन्मेष की सुन्दर बेला में अपने जीवन का परिचय कितनी कमनीय कल्पना के द्वारा देती हैं—

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास
देव वीणा का टूटा तार
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार
रत्न वह प्राणों का श्रृङ्गार,
नई आशाओं का उपवन
मधुर वह था मेरा जीवन ॥

यह कल्पना कवयित्री की अतींद्रिय सौन्दर्य भावना का परिचय देती है जो छायावादी कविता की प्रधान विशेषता है ।

स्व० प्रसाद की कविता में तो सूक्ष्म सौन्दर्यान्वेषण की प्रवृत्ति की चरम सीमा पायी जाती है ।

प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रति प्रसाद की सौन्दर्यमयी दृष्टि इनकी प्रत्येक कविता में लक्षित होती है । उनका यह दृष्टिकोण उनके नाटकों तक में पाया जाता है । चन्द्रगुप्त का प्रसिद्ध गीत 'अरुण यह मधुमय देश हमारा, जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा' उनकी विराट कल्पना, सौन्दर्य भावना, प्रकृति को मोहक से मोहक रूप में वर्णित करने की प्रवृत्ति और तदनुरूप कमनीय भाषा युक्त शैली का अच्छा परिचायक है । उनका 'आँसू' तो छायावादी कविता का उत्कृष्टतम उदाहरण है ।

प्रकृति का सुन्दर चित्रण मानवीकरण के द्वारा स्व० निराला में भी मिलता है । वे यमुना की लहरों में साधारण सी कल-कल की ध्वनि नहीं सुनते बल्कि अतीत के गौरव गान सुनते हैं -

यमुने ! तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान,
पथिक प्रिया सी जाग रही है,
किस अतीत के गौरव गान ॥

इनकी एक विशेषता यह है कि इन्होंने काव्य के सब पुराने बन्धनों को भाव, छन्द और अभिव्यक्ति में तोड़ लिया और अपना एक अलग निराला मार्ग बना लिया ।

स्थानाभाव के कारण दोनों भाषाओं के उपरोक्त कवियों पर ही यत्किंचित प्रकाश डाल कर संतोष कर लिया जाता है यद्यपि विषय बहुत विस्तृत है । ऊपर के विवेचन के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि छायावादी दृष्टिकोण दोनों भाषाओं के कवियों में समान रूप से पाया जाता है, जिसमें न्यूनाधिक मात्रा में उसके सब तत्वों का समावेश मिलता है । दोनों भाषाओं में इस कोटि की अधिकतर कविता प्रायः मुक्तक काव्यों में गीत शैली ही में मिलती है यद्यपि शास्त्रीय छन्द पद्धति में भी रचना हुई है । दोनों की एक सामान्य विशेषता यह भी है कि यह कविता आत्माश्रयी या विषयीगत अधिक होकर भावप्रवण कवियों की निजी संपत्ति बन गई और लोक-जीवन से दूर जा पड़ी, जिसके परिणाम स्वरूप तेलुगु में अभ्युदय कविता और हिन्दी में प्रगतिवादी कविता के रूप में विकास हुआ ।

मलयालम की काव्य धारा

●

कुन्नुकुषि कृष्णन कुट्टी

"संस्कृत हिमगिरि गलिता
द्राविड़ भाषा कलिन्दजा मिलिता,
केरल भाषा गंगा
विहरतु मे हृत्सरस्वदासंगा ।।"

श्री कोवुण्णी नेट्टुंगाटी ने अपने केरल कौमुदी नामक ग्रंथ में मलयालम भाषा के संबन्ध में यह पद्य लिखकर उसकी यों व्याख्या की है :—

"साक्षात् संस्कृत रूपी हिमालय से निकलकर द्राविड़वाणी अर्थात् तमिष, तेलुगु, कन्नड़, तुलु, मराठी इन पंच भाषाओं में प्रधान तमिष रूपी कालिन्दी से वाणीरूपी-वाणी में अन्तर्भूत होने के कारण अन्तर्वाहिनी होकर अपर द्राविड़-रूपी सरस्वती नदी से–मिलित होकर रहने वाली मलयालम भाषा रूपी गंगा मेरे हृदय रूपी समुद्र में सदा प्रवाहित होती रहे ।"

विख्यात भाषा सेवी गुण्टर्ट ने लिखा है–"मलयालम भाषा द्रमिल नामक तमिष की एक शाखा है। चूँकि तेलुगु, कन्नड़, तुलु, कुटक आदि शाखाओं की अपेक्षा वह तमिष के सूत्रों से अधिक मेल खाती है अतः एक उपभाषा है।" [१] इस प्रकार संस्कृत जन्या, तमिष शाखा आदि विविध मत मलयालम भाषा के संबन्ध में प्रचलित हैं जिसके पुष्टीकरण के लिए पण्डितों ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं।

भाषा के प्रयोग विशेषों के अध्ययन से सिद्ध होता है कि ये दोनों मत पूर्णतया सत्य न होकर अंशतया यथार्थ हैं। इस पर एक विशद चर्चा करने के बाद स्व० आर० नारायण पणिक्कर ने एक स्वीकार्य मत को स्पष्ट किया है :—"इतना कहने से अब यह स्पष्ट हुआ होगा कि मलयालम मूल द्राविड़ की एक स्वतंत्र शाखा है और कन्नड़ चेन्तमिष, तेलुगु आदि भाषाओं की बहन है ।" [२]

किसी जमाने में समस्त दक्षिण में एक भाषा प्रचलित थी जिसको भाषाविदों में "मूलद्रविड़"- संज्ञा दी है। कालान्तर में प्रादेशिक विभिन्नताओं एवं अन्य कारणों से एक-एक जन समूह के एक-एक बोली बनी जो अन्त में साहित्यिक बनी थी । ये प्रादेशिक भाषाएं मूल द्रविड़ की शाखाएं बनीं जो दक्षिण की वर्तमान भाषाएं हैं। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि आजकल इस मत को आधार प्राप्त हो रहा है कि यही मूल द्रविड़ भाषा समस्त भारतीय भाषाओं की मूल भाषा थी । कहा जाता है कि भारतीय भाषाओं के दो कुल—आर्य एवं द्रविड़ी—भ्रामक हैं जो भारतीय जनता की एकता को जान बूझकर खण्डित करने के उद्देश्य से विदेशी भाषाविदों द्वारा बनाये गये हैं। क० मु० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा के भाषा पण्डित श्री राव ने भारतीय भाषाओं की मूलभाषा के प्रमाण स्वरूप एक कात्स्य कृत्स्न के किसी सूत्र ग्रंथ की सूचना देते हुए लगभग दो वर्षों के पहले एक भाषण दिया था । पता नहीं, उन्होंने उस नवीन तत्व को प्रकाशित किया है कि नहीं । अस्तु !

रामचरितम

मलयालम भाषा के स्वरूप निर्धारण में इतनी कठिनाइयाँ इसीलिए उत्पन्न हो रही हैं कि मलयालम में रचे कोई प्रामाणिक प्राचीन ग्रंथ अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं ।

---

१. गुण्टर्ट- 'मलयाल भाषा व्याकरणम' की भूमिका में
२. आर० नारायण पणिक्कर—केरल भाषा साहित्य चरित्रम, भाग—१

अब तक के उपलब्ध ग्रंथों में प्राचीन ग्रंथ 'रामचरितम' नामक काव्य है। इसे रामचरितम पाट्टु कहते हैं।

'पाट्टु' शब्द का अर्थ है गीत। लेकिन आज जिस अर्थ में पाट्टु शब्द प्रयुक्त होता है उस अर्थ में काव्य शास्त्र में पहले यह शब्द व्यवहृत नहीं होता था।' 'लीलानिलकम' नामक रीतिग्रंथ में पाट्टु के बारे में यों कहा गया है :

"द्रमिड़ घन्साताक्षर निबन्धम
एनुका मोना वृत्त विशेष युक्तम् पाट्टु।"[१]

एनुका, मोना वृत्त विशेषों से युक्त और द्रमिड़ संघाताक्षर निबन्धम पाट्टु है। (निबन्धम का निबद्धम पाठान्तर भी है) एनुका वही है जिसमें चारों पादों के द्वितीयाक्षर समान रहते हैं। इसको पादानुप्रास भी कहते हैं। मोना वही है जिसमें एक पाद के आद्यक्षर के साथ उसी पाद के उत्तर भाग के आद्यक्षर की समानता हो।" मणिप्रवालम[२] में उल्लिखित वसन्त-तिलकादि वृत्तों से भिन्न छन्दोभेदादि को वृत्तविशेष कहा गया है।

विख्यात विदेशी साहित्यान्वेषी एवं भाषा शास्त्री श्री गुण्टर्ट को ही रामचरितम के प्रस्तुतीकरण का श्रेय मिला था। तदनन्तर १९१० ई० के पश्चात् ही इस ग्रंथ पर साहित्यिक खोज की गयी थी। इस काव्य में कुल १८१४ पाट्टु (गीत) हैं जिनमें पाट्टु के सभी लक्षण विद्यमान हैं। यद्यपि सभी साहित्य-इतिहासकारों ने इसके काल निर्णय एवं कवि निर्णय करने का यत्न किया था तो भी निश्चित रूप में दोनों निर्णीत नहीं हुए हैं। महाकवि उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर की राय है कि इस काव्य के प्रणेता कोल्लम वर्ष ३७१ (ई० ११९६) के वेणाट[३] के राजा श्री वीर रामवर्मा हो सकते हैं।[४] अब रही इसके रचनाकाल की बात। इस विषय में डा० के० एम० जोर्ज, जिन्होंने रामचरितम एवं उसकी भाषा और प्राचीन मलमालम भाषा पर अनुसंधान किया था, का कहना है—"यह मानने में कठिनाई नहीं कि रामचरितम का काल १४ वीं सदी के पूर्व का है।"[५]

जो भी हो, ठीक ही कहा गया है—"यद्यपि यह नहीं कह सकते कि कविता के अत्युन्नत अधित्यकाओं तक नहीं पहुँच गया है तो भी रामचरितम का काव्यगुण, भाषा वैजात्य से उत्पन्न दुरूहता को छोड़ देने पर, किसी भी काल के सहृदय को रस प्रदान करने योग्य है।"[६]

रामचरितम के ही काल में और तत्पश्चात् मलयालम में अनेक काव्य रचे गये जो 'पाट्टु' कहलाये जाते हैं। साहित्य समीक्षकों का मत है कि पाट्टु का यह काल तमिष भाषा प्रभाव का काल है। क्योंकि पाट्टु ग्रंथों की भाषा में तमिल की गहरी छाप पड़ी हुई है। केरल के दक्षिणी कोने में जो पहले तिरुवितांकूर से मिला हुआ था और अब मद्रास राज्य में मिलाया गया है,तमिष मिश्रित भाषा बोली एवं लिखी जाती थी जिसके कारण साहित्य में उसकी छाप पड़ना स्वभाविक है। उलकुटैय पेरूमाल पाट्टु, अंचुतम्पुरान पाट्टु आदि यद्यपि पाट्टु शैली में रचे ग्रंथ हैं तो भी पाट्टु की उपर्युक्त विशेषताएँ इनमें नहीं हैं।

मणिप्रवालम

पाट्टु के समय मलयालम भाषा पर तमिष का जो तीव्र प्रभाव पड़ा था वह धीरे-धीरे कम होता गया और वह संस्कृत की वशवर्तिनी बनती गयी। वह सम्बन्ध इतना अधिक बढ़ा कि संस्कृत एवं मलयालम का एक संकलित रूप प्रचलित हुआ जिसको 'मणिप्रवालम' नाम दिया गया है।

कहा जाता है कि नंपूतिरी ब्राह्मणों के कारण ही मणि-

---

१. लीला निलकम—शिल्प १, सूत्र ११
२. वही —शिल्प १, सूत्र १—" भाषा संस्कृत योगो मणिप्रवालम"
३. भुतपूर्व तिरुवितांकूर रियासत का अविकसित प्रथम रूप।
३. उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर-केरल साहित्य चरित्रम भाग—१
४. डा० के० एम० जोर्ज-साहित्य चरित्रम प्रस्थानंगलिलूटे।
६. पी० के० परमेश्वरन नायर—मलयालम भाषा साहित्य चरित्रम।

प्रवालम नामक एक भाषा शैली एवं साहित्य रूप का जन्म हुआ था। ये नंपूतिरी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और चूंकि मलयालम में आशय प्रकटन की क्षमता उनमें नहीं रही अतः संस्कृत मिश्रित एक खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया जो आगे चलकर साहित्यिक भाषा बन गयी।

यद्यपि मणिप्रवालम मलयालम और संस्कृत की एक खिचड़ी भाषा है और कहीं-कहीं इस भाषा में लिखित कविताएँ हास्यास्पद बनी हुई हैं तो भी मलयालम भाषा एवं साहित्य के एक परिवर्तन को यह सूचित करती है। ईसा की १०वीं सदी से मणिप्रवालम युग प्रारम्भ होता है। चरित काव्य, चम्पू काव्य, सन्देश काव्य एवं अन्य काव्य आदि कितने ही प्रकार के काव्य ग्रन्थ इस काल में रचे गये थे। ये सभी ग्रंथ मलयालम साहित्य भंडार के महत्वपूर्ण रत्न हैं। इनमें अधिकांश ग्रंथों में श्रृंगार रस को जो प्रधानता दी गयी है वह मलयालम साहित्य में सुलभ नहीं है। इन ग्रंथों के रचयिता साधारणतया नंपूतिरी ब्राह्मण थे। वे अत्यधिक विलासी थे। समाज के उच्च स्थान पर विराजमान होकर जीवन की सभी सुख-सुविधाओं का भोग कर रहने वाले इन नंपूतिरियों को श्रृङ्गार रस के अतिरिक्त अन्य किसी भी रस के बारे में सोचने का मौका भी नहीं मिलता था। सामन्ती युग का और नंपूतिरियों को राजाओं की अति घनिष्ठ मैत्री भी प्राप्त थी। इतना भी नहीं इतिहास का यह एक तथ्य है कि किसी भी खानदान की महिला के साथ किसी एक नंपूतिरी का 'सम्बन्ध' रहे तो वह उस खानदान के लिए महत्व की बात मानी जाती थी। इस कारण से भी नंपूतिरी ब्राह्मणों के श्रृङ्गार रस की तीव्रता बढ़ सकती थी। कि बहुना, मणिप्रवालम के ये काव्य उस समय के समाज के नैतिक पतन के प्रतीक हैं।

विख्यात भाषा-शास्त्री एवं साहित्यान्वेषी श्री इलंकुलम कुंजन पिल्लै की राय में 'वैशिक तंत्रम' नामक काव्य से मणिप्रवालम काव्यों का प्रारम्भ होता है। नाम से ही इस ग्रंथ में चर्चित विषय का आभास मिल सकता है। वेश्या-वृत्ति में अति परिचय-संपन्ना एक माता अपनी 'परिचयहीना' पुत्री को वेश्या वृत्ति के अमूल्य (?) तत्वों का उपदेश देती है। काव्य की दृष्टि से यह काव्य आस्वदनीय है।

श्रृङ्गार रस मिश्रित यह मणिप्रवालम धारा अनर्गल रूप में बहते-बहते 'चन्द्रोत्सवम्' नामक काव्य तक पहुँची। इस काल के बीच में विविध प्रकार की रचनाएँ निकली। १२–१३ सदी में चम्पुओं की रचना हुई जिनकी भी भाषा मणिप्रवालम थी। कहा जाता है कि 'उण्णियच्ची चरितम' मलयालम का प्रथम चंपू काव्य है। उल्लूर की राय में अमोघराघवम् ही प्रथम चंपू है। उल्लूर ने शायद केरल में विरचित प्रथम चंपू के रूप में अमोघराघवम् को स्वीकारा होगा। लेकिन इसकी भाषा संस्कृत है, अतः मलयालम का प्रथम चंपू उण्णियच्ची चरितम् है। उण्णिच्चिरूतेवी चरितम् भी इसी के समकक्ष प्रतिष्ठित चंपू काव्य है।

१४ वीं सदी में आकर इसी मणिप्रवालम धारा में संदेश काव्यों की रचना प्रारम्भ हुई। विश्वकवि कालिदास के 'मेघ सन्देशम्' की प्रेरणा इसके पीछे भी रही जैसे अन्य भाषाओं में भी रही थी। शुक सन्देश, कोक सन्देश, काक सन्देश, उण्णु नीली सन्देश आदि कितने ही सन्देश काव्यों की रचना हुई थी। सन्देश काव्यों का यह रचना काल मलयालम काव्य का एक अति पुष्कल काल माना जा सकता है। साहित्य इतिहासकारों का मत यह है कि कवि लक्ष्मीदास का शुक सन्देश केरल का प्रथम सन्देश काव्य है। अनन्तर काल में कोकिल सन्देश, चातक सन्देश, भ्रमर सन्देश आदि अन्य काव्य भी रचे गये। लेकिन सब संस्कृत में थे। मणिप्रवालम सन्देश काव्यों की श्रृङ्खला में एक अति विशिष्ट स्थान उण्णुनीली सन्देशम को प्राप्त है। इस रचना के काल एवं कवि के सम्बन्ध में भी निश्चित रूप में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। काव्य से व्यक्त होता है कि नायक एवं कवि एक ही व्यक्ति था। नायक अपनी प्रिया अण्णुनीली के साथ रात के समय सो रहा था तो एक यक्षिणी उसको उठाकर उड़ गयी। नायक ने नारायण मन्त्र जपना प्रारम्भ किया तो यक्षिणी का अंग-विच्छेद हुआ और नायिका से दूरस्थ स्थान तिरुवनन्तपुरम के विख्यात पद्मनाभ स्वामी मन्दिर के पास पहुँचा। वहाँ आदित्य वर्मा नामक अपने एक राजकुमार मित्र से मिला

तो उसके द्वारा नायिका को सन्देश पहुँचा दिया १४ वीं सदी के आसपास विचरित यह काव्य "उण्णियच्ची चरितम्" से लेकर चन्द्रोत्सव तक लम्बी मणिप्रवालम माला के मध्यमणि के रूप में प्रशोभित है "[1]

इसके बीच अाट्टप्रकारम, अनन्तपुरम-वर्णनम् आदि ग्रन्थ भी रचे गये थे जो प्रचलित धारा के प्रतिकूल थे। मन्दिरों के रङ्गमंचों पर हास्यरस प्रधान कला- अभिनयय चलाये जाते थे उनकी व्यवस्थाएँ अट्टप्रकारम में निहित हैं। अनन्तपुरम वर्णनम में निरुवन्तपुरम नगर का वर्णन किया गया है जिसमें कहीं-कहीं भक्ति का भी समावेश है।

इसकाल में अनेक फुटकर श्लोक एवं मुक्तक भी लिखे गये जिनका भी प्रधान विषय शृंगार था। मणिप्रवालम शैली की इस अनियंत्रित गति के बीच करीब १३८५-१४०० ईस्वी के समय❀ लीलानिलकम नामक एक रीति ग्रन्थ रचा गया। मलयालम साहित्य में अपने ढंग का यह एक अनूठा ग्रन्थ है। इसमें आठ शिल्प या विभाग हैं। भाषा का स्वरूप एवं भेद, व्याकरण, छन्द, रस एवं अलङ्कार आदि की इन शिल्पों में विवेचना की गयी है। सूत्र श्लोक संस्कृत में देकर भाषा काव्यों से उद्धरणियाँ दी गयी हैं और उनकी व्याख्या की गयी है।

निरणम कवित्रय

जैसे उन्नति के पश्चात् पतन एवं पतन के अनन्तर उन्नति का होना स्वाभाविक है वैसे ही साहित्य क्षेत्र में जब नैतिक पतन का एक काल प्रमुख रहता है तब नैतिकता के उद्धरण का स्वाभाविक प्रयत्न होता ही है; भारत की यह एक विशेषता है। भारत की संस्कृति तो नैतिकता पर ही प्रतिष्ठित है। भारतीय संस्कृति के दर्पण स्वरूप जो हिन्दी साहित्य है उसमें भी हम यह प्रक्रिया देख सकते हैं।

मलयालम साहित्य में जब विलासी-सुखी नंपूतिरियों की शृङ्गार-रस-पूर्ण मणिप्रवालम रचनाएँ अधिशासन करती रही तो केरल की नैतिकता अथाह गर्त तक पहुँच गयी थी जिसका प्रतिबिंब उस काल के काव्यों में देख सकते हैं। इस नैतिक पतन के काल में तीन महान कवियों ने साहित्य क्षेत्र पर पदार्पण किया जो निरणम कवि या कण्णश पणिक्कर नाम से विख्यात हुए। ये तीनों एक ही कुटुम्ब के थे। इनके नाम है माधव पणिक्कर, शङ्कर पणिक्कर और राम पणिक्कर। ये निरणम नामक स्थान के रहने वाले थे अतः निरणम कवि कहलाये।

पणिक्करों ने भारतीय संस्कृति की एवं उस संस्कृति की अजस्र वाहिनी संस्कृत भाषा की गहराइयों तक डुबकियाँ लगायी थीं। संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति से इन्हें जो मानसिक संस्कृति उपलब्ध हुई थी उसी के आधार पर अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने केरलीय समाज की मलिनता एवं अनैतिकता को दूर करने का यत्न किया। यद्यपि ये भक्ति के प्रत्यक्ष प्रचारक और किसी भी संप्रदाय के दीक्षित उपासक नहीं थे तो भी इन्होंने भक्ति का जो प्रकाश उस काल के अन्धकार में फैलाया था उसी ने अनन्तर काल में हुए भक्त वरेण्य महाकवि तुन्चत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन को भी मार्ग दिखाया था।

निरणम कवियों में प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी विशेषताएँ लिए हुए हैं और उनके कारण वे विख्यात भी हैं। खेद की बात यह है कि कण्णश कवियों एवं उनकी रचनाओं पर आवश्यक एवं अपेक्षित अध्ययन करने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया है।

इन कवियों में श्री माधव पणिक्कर को भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान है। सबसे पहले भारतीय भाषाओं में किसी में भी श्रीमद्भगवद्गीता का भाषान्तरीकरण किया गया तो वह मलयालम भाषा में था और उस भाषान्तरीकरण का श्रेय प्राप्त है माधव पणिक्कर को। माधव पणिक्कर की गीता केवल एक भाषान्तरीकृत रचना नहीं है। उन्होंने गीता के सभी तत्वों को ३२८ छन्दों में सन्निवेशित किया है। मूल गीता पढ़ने से जो प्रयोजन पाठक को होता है ठीक वही प्रयोजन इस भाषान्तरीकरण से भी प्राप्त होता है। संस्कृत एवं मलयालम भाषाओं पर उनका अनुपम अधिकार, गीता तत्वों का

---

१. इलंकुलम कुन्जन पिल्लै-साहित्य चरित्रम् प्रस्थानंगलिलूटे

❀ श्री इलंकुलम कुन्जन पिल्लै-लीलानिलकम् की भूमिका

अपार ज्ञान और महद् तत्वों को सरल भाषा में सरल रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता-ये सभी गुण उनके गीता-अनुवाद में परिलक्षित होते हैं।

शंकर पणिक्कर भी एक प्रतिभावान कवि थे। यद्यपि उनकी एक ही रचना अब तक उपलब्ध हुई है, जो महाभारत के आधार पर लिखी गयी है, तो भी उसमें आपकी काव्य कुशलता व्यक्त होती है। श्री पी० के० परमेश्वरन नायर की राय में ❀ महाभारतम के आधार पर विरचित प्रथम मलयालम काव्य यही हो सकता है।

काव्य कृतियों की संख्या, कल्पना शक्ति एवं काव्य सौष्ठव में कण्णश पणिक्करों में प्रमुख स्थान राम पणिक्कर को प्राप्त है। जिन्होंने रामायण, भागवतम्, महाभारतम्, शिवरात्रि माहात्म्य आदि अति सुन्दर काव्य लिखे थे। इनकी रामायण को मलयालम में महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्मीकि रामायण के रूप-भावों का ठीक अनुकरण करके ही राम पणिक्कर ने इसकी रचना की थी।" यह ग्रंथ आद्यन्त अमृतमय है, उसके प्रत्येक छन्द में जो शब्द सुख एवं अर्थ चमत्कार है वह किसी भी सहृदय को आनन्द विभोर कर देगा ही।[1] मलयालम के भक्त भवि एवुत्तच्छन ने यद्यपि अध्यात्म रामायण का स्वतंत्र अनुवाद किया था तो भी कई प्रसंगों पर राम पणिक्कर की रामायण का भी अनुकरण किया था। इनका भागवतम् भी अति विख्यात है। यह कहा जा सकता है कि काव्य गुण की दृष्टि से भागवतम् रामपणिक्कर की प्रमुख रचना है।[2] इस प्रकार लगभग चार-पाँच सौ वर्षों के पहले जब कि केरल के साहित्य क्षेत्र में विलासिता से जन्य अनैतिकता एवं श्रृङ्गार की अधिकता रही, कण्णश पणिक्करों ने गीता, रामायण, भारत भागवत आदि भारतीय संस्कृति के मूलाधार भूत ग्रंथों को मलयालम में प्रस्तुत कर भक्ति भावना की जो पक्की नींव बनायी थी उसी के ही ऊपर अन्तर काल के एवुत्तच्छन जैसे कवियों ने भक्ति भाव के अति-विशाल महल खड़े किये थे।

पणिक्कर कवियों ने अपने काव्यों में एक विशेष प्रकार के छन्द को प्रयुक्त किया था जो निरणम छन्द कहलाता है। उनके पश्चात् अनेक कवियों ने इस छन्द का अनुकरण किया है लेकिन जिस मनोहारिता के साथ पणिक्करों द्वारा इसका प्रयोग हुआ वैसा कभी न हुआ था।

वीरगाथाएँ

हिन्दी की वीरगाथाओं का स्मरण दिलाने वाले कुछ उत्तम वीरकाव्य मलयालम में लिखे गये हैं जिनको 'वटक्कन पाट्टु' कहते हैं। ये काव्य ऐसे एक जमाने की सूचना देते हैं जब सभी समस्याएं हस्त शक्ति एवं तलवार की धार के आधार पर निर्णीत हो जाती थीं। केरल के विख्यात वीर पुरुषों एवं नारियों का अत्युज्वल चित्र इन वटक्कन पाट्टु में पाये जाते हैं। आरोमल चेकवर, तच्चोली उतेनन (उतेनन, उदयनन का विकृत रूप है) तच्चोली चन्तु, पालाट्टु कोमन आदि वीर पुरुष और उण्णियार्चा, मातु आदि वीर महिलाएं उनमें कुछ हैं। इन काव्यों में केरल की परम्परागत वीरता के अलावा यहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि पहलुओं का एवं रीति-नीतियों का भी चित्रण है। इन महत्वपूर्ण वीरगाथाओं के रचना-काल या रचयिता के बारे में किसी भी प्रकार का पता नहीं लगा है। भाषा के आधार पर माना जाता है कि इन वीर काव्यों की रचना लगभग चार सौ वर्ष पहले हुई होगी। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इन वीरगाथाओं का आरंभ कहाँ से, कब हुआ, विकास कब हुआ और यह कब तक जारी रहा। समय-समय पर अनेक वीरकाव्य मलयालम में हुए हैं। लेकिन संस्कृत भाषा एवं साहित्य के असाधारण प्रभाव के कारण संस्कृत के पीछे पागल होकर मलयालम को भाषा पद देने को भी हिचकने वाले लोगों ने शायद स्थानीय कथाओं के आधार पर रचे इन शुद्ध मलयालम रचनाओं को 'साहित्य' की सूची में सम्मिलित न किया होगा। यही इस धारा की अव्यक्तता का कारण हो सकता है।

❀ मलयालम साहित्य चरित्रम में

1. उल्लूर एम० परमेश्वर अय्यर-केरल साहित्य चरित्रम, भाग—१
2. आर० नारायण पणिक्कर-केरल भाषा साहित्य चरित्रम, भाग—१

कृष्णगाथा

कुछ काल के बाद शुद्ध मलयालम में ऐसी एक विशिष्ट रचना की सृष्टि हुई जिसको मलयालम साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त हुआ। वह रचना है कृष्णगाथा या कृष्णपाट्टु। इस काव्य में लीला-लोलुप भगवान कृष्ण की उत्पत्ति से लेकर स्वर्गारोहण तक की कथा अति सुन्दर रूप में बतायी गयी है। अनर्गल प्रवाहिनी सरस भाषा, बीच-बीच में अलंकारों की लड़ियाँ और मौलिक, अचुम्बित कल्पनाओं का समावेश--इन गुणों से कृष्णगाथा का स्थान मलयालम साहित्य में अत्युन्नत है।

इसके लेखक के बारे में भी ठीक-ठीक पता नहीं लगा है। कवि चेरूशेरी नंमूतिरी कहलाये जाते हैं। इसमें चेरूशेरी उनके कुटुम्ब का नाम एवं नंमूतिरी जाति का नाम है। वास्तविक नाम अज्ञात है। काव्य में कवि ने लिखा है:--

"आज्ञया कोल भूपस्य
प्राज्ञस्थोदय वर्मणः
कृतायां कृष्ण गाथायाम्
..................."

इससे यह पता लगता है कि ये कोल राज्य (कोलत्तु नाटु नामक रियासत) के राजा उदयवर्मा के आश्रित रहे थे और उनकी आज्ञा पाकर कृष्णगाथा लिखी थी। भाषा चरित्तम नामक साहित्य-इतिहास ग्रंथ के लेखक स्वर्गीय गोविन्दपिल्लै के इस मतको कि चेरूशेरी १४७८ एवं १५७५ के बीच जीवित रहे, अन्य इतिहासकारों ने भी मान लिया है। भागवतम के दशम स्कन्ध के आधार पर लिखे गये इस काव्य का वैशिष्ट्य उसकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर व्यक्त नहीं किया जा सकता।" चेरूशेरी में जो कल्पना-विकास और अलंकार चातुरी है वह मलयालम साहित्य अन्य किसी कवि मेंनहीं है।"[1] यद्यपि सूरसागर अत्यथाह एवं अत्याकर्षक काव्य सागर ही है तो भी जैसे श्रीकृष्ण बाल लीलाओं का वर्णन उसमें प्रथम गणनीय है वैसे ही कृष्णगाथा का बाललीला वर्णन अनूठा है। एक सरल साधारण भाषा छन्द को, जो मंजरी या गाथा छन्द कहलाया जाता है, लेकर सरस एवं चलती भाषा में काव्य रचना कर चेरूशेरी ने अनन्तर काल के कवियों को, यहाँ तक कि बीसवीं सदी के कवियों को भी अत्यधिक प्रभाहित किया है।

एषुत्तच्छन

भक्ति की पृष्ठ भूमि तो तैयार हो गयी। आचार्य शंकर को जन्म देनेवाली इस भूमि में आध्यात्मिकता के बीज तो अवश्य बोये गये हैं। निरणम कवियों तथा अनन्तर काल के चेरूशेरी ने श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण महाभारतादि ग्रंथों के द्वारा केरल के साहित्य जगत् में सांस्कृतिक नवोत्थान एवं आध्यात्मिक विप्लव का जो रंगमंच तैयार किया था उसी पर तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन प्रविष्ट हुए थे यद्यपि चेरूशेरी की कृष्णगाथा शुद्ध मलयालम की रचना है तो भी संस्कृत ने मलयालम को फिर भी इस प्रकार स्वाधीन कर लिया था कि पुरानी मणिप्रवालम शैली जारी रही। मणिप्रवालम की धाक इतनी जमी थी कि मलयालम में काव्य रचना करने वाले कवि भी नहीं माने जाते थे। दृढव्रती एषुत्तच्छन ने मलयालम को पूर्णरूप से संस्कृत की दासता से मुक्त किया और शुद्ध मलयालम में सरस भक्ति धारा प्रवाहित की। वास्तव में एषुत्तच्छन काल की माँग को पूर्ण करने के लिए जन्मे थे।

केरल की यह छोटी भूमि अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त था और उनके शासक रह-रहकर आपस में लड़ते थे। अरबियों तथा पुर्तगालियों के आगमन से यहाँ के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में और भी कई उलझनें उत्पन्न हुई। यहाँ छोटे-छोटे राजाओं की विलासिता के फलस्वरूप राजाश्रय प्राप्त कवियों द्वारा जो शृंगार रस-प्रधान मणि प्रवालम कविाएँ लिखी गयी थीं उन्होंने जनता को बुरी तरह प्रभावित कर दिया। जहाँ देखो भक्ति भावना की कमी ही कमी। सांस्कृतिक एवं नैतिक स्तर गिर रहा था। इन्हीं परिस्थितियों में एषुत्तच्छन का आविर्भाव हुआ।

दूसरे भारतीय भक्त कवियों से भी एषुत्तच्छन को प्रेरणा मिली थी। हिन्दी के प्रसिद्ध भक्त कवि महात्मा कबीर

१. स्व० पी० के० नारायण पिल्लै-कृष्ण गाथा की भूमिका में

सूर, तुलसी आदि का प्रभाव दक्षिणी भाषाओं पर भी पड़ा। कंपर, तुकाराम, कनकदास आदि कवियों ने भक्ति भावना को प्रधानता देकर विविध दक्षिणी भाषाओं में में रामायणादि ग्रंथों की रचना की। इस प्रकार दक्षिण भारत में सोलहवीं सदी सांस्कृतिक परिवर्तन का एक युग था। इन्हीं परिस्थितियों ने और केरल की विशेष परिस्थितियों ने एषुत्तच्छन को एक भक्त कवि बना दिया। वे एक प्रकाण्ड पण्डित थे, वेद पुराणेतिहास के वेत्ता थे, विरक्त और परम भक्त थे।

जिस प्रकार तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को नायक बनाकर रामायण लिखी थी उसी प्रकार एषुत्तच्छन ने भी रामकथा को ही सांस्कृतिक पुनरुद्धार का साधन बनाया। उन महान आचार्य ने चुन लिया भी अध्यात्म रामायण को। अध्यात्म रामायण को उन्होंने अधिक आध्यात्मिक बनाने का ही यत्न किया जो आगे स्पष्ट हो जाएगा। एषुत्तच्छन की कविता शैली अनुकरणीय है।" उन्होंने ऐसी एक कविता शैली अपनायी थी जिसमें अपने हृदय के आस्तिक्य बोध और पराशक्ति के प्रति विश्वास प्रतिबिंबित हो सके। इस रीति में एषुत्तच्छन की कविता आत्म प्रतिबिंबात्मक है। उतनी आत्मीयता भी उनमें भी प्रतिपादित कथा की मधुरिमा और महिमातिशयों में मन विलीन कर कवि ने जो गीत, गाये वे सीधे जनता के हृदय में जा पहुँचे। जनता भी उसमें विलीन हुई।'[1] एषुत्तच्छन की कविता भक्त रस-संपूर्ण एवं अन्तर्मुखी है। जब कभी भगवान का नाम कहने का अवसर प्राप्त होता तब वे एक या दो शब्द में संतृप्त नहीं होते। भगवान के नामों की एक छन्दोबद्ध माला ही बना देते हैं। रामायण में इस प्रकार के अनेक प्रसंग हैं। जहाँ 'परमात्मा' शब्द मात्र से काम चल सकता वहाँ भक्त शिरोमणि एषुत्तच्छन लिखते हैं :—

"नील नीरद नभन् निर्मलन् निरंजनन्
नील नीरज दल लोचनन् नारायणन्
नील लोहित सेव्यन् निष्कलन् नित्यन् परन्
काल देशानुरूपन् कारुण्य निलयनन्
पालन परायणन् परमात्मा........"

अध्यात्म रामायण मूल की भक्ति भावना से भी बढ़कर अधिक भक्ति भाव एषुत्तच्छन ने प्रकट किया है। मूल में विराध की आत्मा की स्तुति इस प्रकार है :

प्रणम्य रामं प्रणतार्ति हारिणम्
भव प्रवाहो परमं घृणाकरम्
प्रणम्य भूयः प्रणनाम दण्डवत्
प्रपन्न सर्वार्ति हरं प्रसन्न धीः ॥

इसमें भगवान के चार विशेषण शब्द हैं। लेकिन एषुत्तच्छन इससे संतृप्त नहीं हुए। उसी पद्य का अनुवाद उन्होंने इस प्रकार किया :

राघवं प्रणतार्ति हारिणं घृणाकरम्
राकेन्दु मुखं भव भंजनं भयहरम्
इन्दिरा रमणमिन्दीवर दल श्याम—
मिन्द्रादि वृन्दारक वृन्द वन्दित पदम्
सुन्दरं सुकुमारं सुकृति जन मनो—
मन्दिरं रामचन्द्रं जगदामभिरामम् ॥

भक्ति रस में सर्वांग विलीन होकर कविता करते-करते तुंजन कभी-कभी अपने को भी भूल जाते हैं। भागवतम् के कालियमर्दनम प्रसंग में भगवान कृष्ण को कालिय नाग द्वारा डंसते हुए अपने अन्तर्नेत्रों से देख लिया तो कवि पुकार उठे—"भगवान पापी लोगों को ऐसा ही करना आता है, अतः आप मेरे हृदय कमल में आकर विराजें, और कहीं न जाएं।" पार्थ सारथी कृष्ण को सर्वालंकार विभूषित देखकर (महाभारत में) भक्त वरेण्य कवि कहते हैं—जैसे मेरे हृदय में आसीन हैं उसी प्रकार भगवान कृष्ण रथ में विराज रहे हैं।

जग-जीवन के संबंध में एषुत्तच्छन के अपने कुछ विचार हैं जिन्हें उन्होंने अपनी रचनाओं में समय-समय पर व्यक्त किया है। मानव जीवन क्षणिक है, भोग आदि क्षणप्रभा चंचल है, आयु तात्कालिक है, पत्नी सुख स्वप्न समान है। मनुष्य में अहं न हो। शरीर पंच भूतात्मक है, जो नश्वर है। मनुष्य में एक ही नित्य और सत्य है, वह उसकी आत्मा है। आत्मा ही ईश्वर है। जीवात्मा परमात्मा का प्रतिबिंब है। रागद्वेषादियों का

१. पी० के० परमेश्वरन नायर—मलयालम साहित्य चरित्रम.

प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़ता, फिर भी ये ही मुक्ति मार्ग की बाधाएं हैं। मानव निस्संग हों, मगर उसके कुछ कर्म हो। फलेच्छा के बिना ही कर्म करना चाहिए। तब कर्म और मन में संग नहीं होता। इस प्रकार मन जब शुद्ध बन जाता है तब भक्ति के जरिये मुक्ति मिल जाती है। इत्यादि।

रामायण, भारत, भागवतम् आदि के अलावा उनकी और एक विशिष्ट रचना है हरिनाम कीर्तनम्। आकार में यह रचना श्री शंकर के भजगोविन्दम् के समान छोटी है तो भी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तत्वों की दृष्टि से यह एषुत्तच्छन की ही नहीं समस्त मलयालम की अति गंभीर रचना है।

पून्तानम

एषुत्तच्छन के बाद भक्ति की उस परम्परा को आगे ले जाने के लिए पून्तानम नामक कवि का जन्म हुआ। वे भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे। विख्यात केरलीय संस्कृत पंडित एवं नारायणीयम के रचयिता मेलपुत्तूर नारायण भट्टतिरी और पून्नानम समकालीन माने जाते हैं।

पून्तानम की कविताएं आत्मानुभूति से उत्पन्न हुई थी। सन्तानाभाव से दुखित पून्तानम भगवत्कृपा से एक बच्चे के पिता बन गये। लेकिन वह बच्चा अन्नप्राशन के ही दिन में मृत हुआ। इससे पून्तानम के भावुक हृदय पर गहरी चोट लगी। तब से उनका ध्यान ईश्वर पर केन्द्रित हुआ। सन्तान वियोग से क्षतविक्षत हृदय से भक्ति रस सम्मिश्रित कविता फूट निकली जिसका नाम है "ज्ञानप्पाना"। पाना मलयालम का एक छन्द विशेष है। नाम के अनुसार ही इसमें ज्ञान की बातें पाना छन्द में बतायी गयी है। वे कहते हैं :—

उण्णि कृष्णन मनस्सिल कलिक्कुम्पोल।
उण्णिकल मट्टु वेणमो मक्कलाय।

अर्थात् जब बालकृष्ण हृदय में खेल रहे हैं तब सन्तान के रूप में दूसरे बच्चों की क्या आवश्यकता है। इसके बाद पून्तानम ने अपने जीवन का अधिकतर समय श्रीकृष्ण मन्दिर में ही बिताया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अन्त में पून्तानम सशरीर बैकुण्ठ सिधारे। "केरल में हुए भक्तों में पून्तानम अद्वितीय हैं। उन्होंने जो ज्ञान दीपिका जला रखी थी वह आज भी समुज्वलता के साथ जल रही है।"[1]

ज्ञानपाना के सिवाय उन्होंने कुमारहरणप्पाना, सन्तान गोपालम पाना, भाषा कर्णामृतम आदि काव्य भी लिखे हैं। लेकिन उनकी सबसे विशिष्ट रचना ज्ञानप्पाना ही है। यह सरल मलयालम में लिखी गयी कविता है जो भाषा की सलता एवं भाव गम्भीरता में कबीर के दोहों की याद दिलाती है। कला की दृष्टि से यह कविता सुन्दर नहीं हो सकती क्यों कि पून्तानम का उद्देश्य भावों को अभिव्यक्त करना था, कलापूर्ण काव्य रचना नहीं था।

ज्ञानाप्पाना की कुछ पंक्तियां देखिए :

कंटु कंटंगिरिक्कुम जनंगले कंटिन्लेन्नु वरुत्तुन्नतुम भवान
रंटु नालु दिनमकोण्टोरुत्तने तण्टि लेट्टि नटत्तुन्नतुम भवान
मालिका मुकलेरिय मन्नन्टे नोलिल माराप्पु केट्टुन्नतुम भवान।

(अर्थात् जो लोग हमारी आंखों के सामने हैं उनको देखते ही देखते अदृश्य कर देना आपकी लीला है। दो-चार दिनों में एक आदमी को धनी बनाना और उसी प्रकार महल में रहने वाले महाराजाओं को भिखारी बनाना आपकी लीला है।)

महात्मा कबीर के ही समान पाखंडियों के विरुद्ध आवाज उठाने में भी पून्तानम पीछे नहीं थे। वे दिखावटी भक्ति पर आघात करते हैं :—

शान्ति चेयतु पुलतुवानायिट्टु
संध्ययोलम नटक्कुन्नितु चिलर"

(पूजादि कर्म कर कुटुम्ब कोपालने के लिए कुछ लोग संध्या तक घूमते फिरते हैं।)

'अर्थाशक्कु विरुति विलिकवान्
अग्निहोत्रादि चेयथुन्नितु चिलर"

---

१. के० वासुदेवन मूसत—पून्तानम कृनिकल

कुछ लोग अर्थ की आशा से अग्निहोत्रादि क्रियाएं करते हैं।)

मानव जीवन की नश्वरता तथा क्षणिक जीवन की विशेषता के बारे में वे करते हैं :—

कूटियल्ला पिरक्कुन्न नेरत्तम
कूटियल्ला मरिक्कुन्न नेरत्तुम
मध्ये यिंगने काणुन्न नेरत्तु
मत्सरिक्क न्नतेन्तिन्नु नाम वृथा
अर्थमो पुरुषार्थ मिरिक्क्वे
अर्थतिन्नु कोतिक्कुन्नतेन्तु नाम !

(अर्थात् न तो हम सब एक साथ जन्म लेते हैं और न एक साथ मर जाते हैं बीच में (जन्म एवं मृत्यु के) जब हम आपस में मिल जाते हैं तब इस प्रकार मात्सर्य क्यों दिखाएं ? जब हमारे पास पुरुषार्थ रूपी अर्थ है तब अन्य प्रकार के अर्थ की इच्छा क्यों !)

इस प्रकार "भक्ति तथा तात्विक विचार हिल मिल-कर ललित कोमल रूप में बहने वाली पून्तानम की कविता अननुकरणीय है। क्यों कि वह उनके स्वायत्त एक विशेष मानसिक भाव का प्रतिबिंब है। कवि पंडित नहीं थे अतः कविता में विकलताएं अधिक हैं। फिर भी उस काव्य में लहराने वाला भक्ति रस असुलभ है, कवित्व के उन्नत शृंगों को चूमने वाला है।"[१]

आट्टक्कथा काव्य

इस काल के बाद काव्य धारा दो प्रमुख शाखाओं में प्रवाहित होने लगी। एक आट्टक्कथा और दूसरी ओट्टन तुल्लुल। आट्टक्कथा साहित्य मलयालम साहित्य भंडार की एक विशेष निधि है जिसकी समानता करनेवाली रचनाएं अन्य भाषाओं में नहीं हैं। यह शाखा अति वृहद् एवं प्रौढ़ है ओट्टन तुल्लल साहित्य भी बृहद् है लेकिन वह धारा केवल एक व्यक्ति के नाम एवं कर्म में सीमित है जो मलयालम के लोकप्रिय जन कवि कुंचन नंपियार हैं।

आट्टक्कथा या कथाकलि एक दृश्यकला के रूप में संपूर्ण रूप में केरल की है। लेकिन उसका साहित्य जयदेव कृत विख्यात गीतगोविन्दम के आधार पर रचा गया है। पौराणिक कथाओं को अनेक दृश्यों में विभाजित कर नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है दृश्यों के प्रारम्भ में संस्कृत छन्द में संस्कृत में या मलयालम में श्लोक दिये गये हैं और पात्रों के बीच का वार्तालाप राग ताल युत गीतों में दिया गया है। १७ वीं सदी से यह साहित्य-शाखा पुष्कलता को प्राप्त करने लगी। कोट्टयन्तु तंपुरान, उण्णायी वारियर, इरयिम्मन नंपी आदि आट्टक्कथा शाखा के विख्यात साहित्यकार हैं। इन आट्टक्कथाओं में सभी रसों को प्रमुखता दी जाती है, विशेषकर शृङ्गार, वीर एवं रौद्र को। 'उण्णायी वारियर का "नलचरितम" (चार दिवस की कथा) आट्टक्कथा काव्य इस शाखा का अति विशिष्ट काव्य माना जाता है जिसमें पुराण-प्रसिद्ध नल-दमयन्ती की कथा का नाटकीय प्रस्तुतीकरण है।

तुल्लल काव्य

कथाकलि में कथापात्र वेश भूषाओं की सहायता से रंगमंच पर करांगुलियों, भृकुटियों, नेत्रों एवं हस्त-मुद्राओं द्वारा अभिनय करते हैं—आद्यन्त वे मूक हैं। लेकिन तुल्लन एक ही पात्र द्वारा अभिनीत कथा-काव्य है। पुराण की कथाओं को सुन्दर एवं गेय छन्दों में काव्य रूप दिया जाता है जिसे 'नट' मंच पर गाता है और अभिनय करता है। वेश-भूषाएं कथाकली नट की वेश-भूषाओं से मिलती-जुलती हैं। कुंचन नंपियार इस कला के एवं काव्य धारा के प्रणेता माने जाते हैं। इन्होंने दर्जनों तुल्लल काव्य लिखे हैं। अनायास भाषा शैली, अत्याकर्षक शब्द चयन, अनुप्रास की बहुलता आदि से अनुगृहीत नंपियार मलयालम के सर्वप्रथम एवं सर्वप्रमुख मौलिक हास्य कवि हैं। इससे भी बढ़कर जनता की भाषा को साहित्य का पद देने के लिए नंपियार ने प्रत्यक्ष रूप में प्रयत्न किया था। स्वयं नंपियार ने लिखा है कि साधारण भट-जनों के 'पटैयणी' नामक उत्सव में गाने के लिए उचित भाषा मलयालम ही है। कटु-कठिन संस्कृत भाषा हो तो लोग डर जाएंगे। १८वीं सदी में नंपियार ने धीरता के साथ यह उद्घोषणा की थी।

१. पी० के० परमेश्वरन नायर-मलयालम साहित्य चरित्रम

केरल के सामाजिक जीवन का वास्तविक प्रतिबिंब किसी भी मलयालम काव्य में दिखाई पड़ता हो तो वह केवल नंपियार के तुल्लल काव्य हैं। उनके सभी काव्यों में केरलीय जनता का यथार्थ चित्रण मिलता है। कथा का घटनास्थल स्वर्ग लोक में हो, असुरपुर में, इन्द्रप्रस्थ में हो या कहीं भी हो, वहाँ आप नंपियार के जमाने के केरल की सामान्य जनता को उन्हीं नामों में उन्हीं की भाषा बोलते हुए पायेंगे। यद्यपि नंपियार राजाश्रय पाकर रहने वाले कवि थे तो भी इतने निर्भीक थे कि राज्य शासन सम्बन्धी अनीतियों एवं असमानताओं का ज्यों का त्यों वर्णन अपने काव्यों में करते थे। इनकी प्रतिभा महान थी इन्होंने ६० तक तुल्लल काव्य और अन्य अनेक काव्य लिखे थे। साहित्यान्वेषकों के मतानुसार राघवीयम महाकाव्य, सीता राघवम नाटक, लीलावती वीथि आदि प्रौढ़ ग्रंथों के रचयिता और विख्यात संस्कृत कवि रामपाणिवादन हमारे नंपियार के अलावा दूसरा कोई नहीं हो सकता। जो भी हो, इतना तो हमें अवश्य मानना पड़ेगा कि नंपियार के तुल्लल काव्यों ने मलयालम काव्य शाखा में एक परिवर्तन उपस्थित किया था जिसके फलस्वरूप उसमें नवीनता का उदय हुआ था।

उसी सदी में रामपुरत्तु वारियर नामक और एक उल्लेखनीय कवि थे। इन्होंने वंचिप्पाट्टु (नौका गीत) छन्द में 'कुचेल वृत्तम' नामक काव्य लिखा जिसमें श्रीकृष्ण एवं उनके बालसखा कुचेलन (सुदामा) की कला अत्याकर्षक रूप में बतायी गयी है। कवि स्वयं गरीब थे अतः स्वानुभवों के ही आधार पर उन्होंने सुदामा की गरीबी का अतिकरूणाजनक वर्णन किया है। कहीं-कहीं वारियर का काव्य नरोत्तम दास के सुदामा चरित की भी अपेक्षा उत्तम बन गया है।

नवीनता की ओर:

इस काल में केरल में रह-रह कर अशान्ति फैलती रही जिससे यहाँ का अन्तरिक्ष समय-समय पर विक्षुब्ध होता रहा। हैदरअली एवं टीपू सुलतान के आक्रमण, गोरों का बलपूर्वक जम जाना, गोरों के विरूद्ध वीर सेनानी पषशी राजा एवं वेलुत्तम्बी द्वारा किये गये संग्राम, सामन्ती शासन की समाप्ति आदि के कारण साहित्य जगत् में भी एक प्रकार का ह्रास होने लगा। फिर भी इन विषम एवं विकट परिस्थितियों के बीच भी जन्मजात कवियों की वाणियाँ काल की गति को भी तोड़कर गूँज उठी। विख्यात भक्त-संगीतज्ञ-गीतकार तिरूवितांकूर के राजा श्री स्वाति तिरूनाल इनमें प्रथम गणनीय हैं। स्वाति तिरूनाल ने अनेक भाषाओं में भगवान पद्मनाभ के कीर्तन लिखे; जिनमें ३७ हिन्दी गीत भी हैं।

ब्रिटिश शासन काल में उल्लेखनीय प्रगति मलयालम काव्य धारा में नहीं हुई। लेकिन भाषा में अवश्य कुछ प्रगति हुई। वह तो अधिकांशतः मिशनरियों के कर्म से है। इससे मलयालम गद्य साहित्य का विकास हुआ, अंग्रेजी शिक्षा रीति के अनुरूप गद्य ग्रंथ मलयालम में लिखे जाने लगे। नंपियार के जमाने से लेकर आधुनिक नवोत्थान के समय तक के बीच दो व्यक्तियों के नाम उल्लेखनीय हैं-- श्री ए० आर० रामराज वर्मा और उनके मामा केरल वर्मा वलिय कोयिलतंपुरान। कुमार संभवम, मेघ सन्देशम आदि काव्य, शाकुन्तलम नाटक आदि के अनुवादों द्वारा और अन्य मौलिक काव्यों द्वारा इन दोनों ने मलयालम काव्य शाखा को संपुष्ट किया। केरल-पाणिनीयम नामक व्याकरण ग्रंथ एवं भाषा भूषणम नामक काव्य-शास्त्र ग्रंथ के द्वारा ए० आर० रामराज वर्मा ने भाषा एवं साहित्य की बड़ी सेवा की है। कोयित्तम्पुरान का मौलिक काव्य 'मयूर सन्देश' मलयालम की एक अत्युत्कृष्ट रचना है।

इनके समय में द्वितीयाक्षर प्रास पर एक अति गंभीर विवाद छिड़ गया था जिसके प्रास पक्ष में कोयित्तम्पुरान और प्रास विरोधी पक्ष में रामराज वर्मा नेतृत्व कर रहे थे। आज यह विवाद निरर्थक एवं हास्यास्पद माना जाता है तो भी इससे एक महान समस्या निर्धारित हुई। वह यह कि कविता में प्रास (तुक) की अपेक्षा अर्थ को प्रधानता देनी चाहिए। और प्रास के भ्रम में अर्थ की बलि न करनी चाहिए। आधुनिक कविता पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा है।

रामराज वर्मा युग के साथ ही मलयालम में संस्कृत काव्य-नाटकों के अनुवाद का एवं मौलिक महाकाव्य रचना का

काल चला। संस्कृत में ऐसा एक भी उत्कृष्ट नाटक नहीं होगा जिसका इस काल में मलयालम अनुवाद न निकला हो। यह भी नहीं एक ही नाटक के अनेक अनुवाद निकलने लगे थे।

कवि-त्रिमूर्ति

कुछ वर्ष बाद भाव एकदम बदल गया। अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव, विश्व महायुद्ध की प्रतिक्रिया, भारतीय देशीय भावना की अत्यावश्यकता आदि ने साहित्य में गण्यमान परिवर्तन कर दिया। जैसे अन्य भारतीय भाषाओं में इसके परिणाम स्वरूप जो नवीन परिवर्तन हुआ था, वही मलयालम में भी हुआ। कुमारन आशान, उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर, वल्लत्तोल नारायण मेनन--ये तीन महाकवि इस नवीन युग के त्रिमूर्ति हैं। तीनों संस्कृत के के पंडित थे, भारतीय संस्कृति के अनन्य आराधक थे और कैरली के उपासक थे।

आशान

इनमें कुमारन आशान मानव प्रेम के गायक एवं दार्शनिक थे। उनके भाव गंभीर एवं गहरे थे। उनका कहना है कि जगत् का सार-सर्वस्व प्रेम ही है। उनका 'वीण पूवु' (झडा फूल) नामक खण्ड काव्य जब निकला तब मलयालम ने एक नवीन काव्य-सृष्टि का दर्शन किया जिसमें नवीन भाव भरे थे। करूणा, प्ररोदन, नलिनी, चंडाल भिक्षुकी, लीला, चिन्ताविष्टयाय सीता आदि इनकी अन्य विख्यात रचनाएँ हैं। इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त श्री बुद्ध चरितम काव्य, प्रबोध चन्द्रोदयम नाटक आदि का अनुवाद भी इन्होंने किया।

आशान की कविताओं में, विशेषकर उनके खण्डकाव्यों में पूर्वी एवं पश्चिमी काव्यादर्शों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है। मलयालम कविता में रोमान्टिसिज्म का मोहक विकास भी आशान की कविताओं के द्वारा ही हुआ था। आशान ने भारत के प्रमुख नगरों में निवास किया था और इस कारण उनका दृष्टिकोण विशाल बना जो उनकी प्रत्येक कविता में परिलक्षित होता है। उनके कलकत्ता प्रवास के काल में श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द दर्शन से तथा रवीन्द्र जी की विचार धाराओं से प्रत्यक्ष रूप में परिचित हुए थे जिसका संस्कार उनकी कविताओं को सुसंस्कृत करने में सहायक रहा।

चूंकि आशान स्वयं अवर्ण जाति के थे और सवर्ण जातियाँ अवर्णों पर अत्याचार कर रही थी अतः आशान स्वतः समाज सुधारक बने थे। उन्होंने अपनी कविता द्वारा यह उद्घोषणा की--"कड़े नियमों को हटा दो, नहीं तो कालान्तर में ये ही नियम स्वयं तुम्हें हटा देंगे।" ऐसी एक सुधीर उद्घोषणा मलयालम ने तब तक नहीं सुनी थी। आखिर वह सफल हुई भी। कड़े सामाजिक नियम ढीले पड़े। अपने एक काव्य में उन्होंने एक ब्राह्मण युवती एवं एक हरिजन युवक को मिथुन बनाया था जिसने केरल के सामाजिक अन्तरिक्ष में अनेक काल तक विचार-लहरें उठायी थीं। लेकिन आशान की वाणियों के विरुद्ध ऊँगली उठाने की भी शक्ति किसी में नहीं रही, क्योंकि उनकी एक-एक पंक्ति सच्ची भारतीयता, आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता के संकर धातु पर उट्टेखित थी। हमेशा वे नपे-तुले शब्दों का ही प्रयोग करते थे। संक्षेप में "सदियों पहले एषुत्तच्छन की कविताओं ने जो किया था, वही आज आशान की कविताएँ कर रही हैं।" ❀

वल्लत्तोल

स्वर्गीय वल्लत्तोल नारायण मेनन आधुनिक मलयालम के अनुगृहीत कवि हैं। सच्ची भारतीय संस्कृति पर प्रतिष्ठापित उनके काव्य शिल्प पर मलायालम गर्व कर सकती है। वल्लत्तोल ने ही मलयालम में राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम का भाव संचारित किया था। स्वतंत्रता, संग्राम, गाँधी जी का अतिशक्त नेतृत्व, देशीयता का भाव आदि से प्रेरणा पाकर वल्लत्तोल ने अनेक सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने गाँधी जी पर 'एन्टे गुरुना-थन' (मेरे गुरुदेव) नामक एक कविता लिखी जो आद्यन्त देशीय भावना से ओत-प्रोत है। इस कविता में

❀ उल्लाट्टिल गोविन्दन कुट्टिनायर-आशान्टे सीता काव्यम की भूमिका।

उन्होंने बापू के बारे में लिखा। "वही भूमि जो गीता की माता बनी है, इस प्रकार के एक दृढ़व्रती कर्मयोगी को जन्म दे सकती है; हिमवद्विन्ध्याचल मध्यदेश में ही इस प्रकार के एक सिंह को देख सकते हैं जो शान्त प्रकृति का है; उसी देश में जिसमें गंगा बहती है, इस प्रकार के मंगल फलदायी कल्प वृक्ष उग सकता है।"

वल्लत्तोल ने पुराण की कथाओं को अधुनाधुन रूप में काव्य बद्ध करके मलयालम भाषी जनता में नवीन भावों को भरने का जो सफल यत्न किया वह सराहनीय है। उन कविताओं की, चाहे वह राम के बारे में हो या कृष्ण के बारे में, या किसी अन्य पुराण-पुरुष के बारे में, प्रत्येक पंक्ति में देशीयता का भाव भरा होगा। कर्म भूमियुटे पिंचुकाल (कर्म भूमि का नन्हा पाद) नामक कविता में काली मर्दन करने वाले बालकृष्ण की वर्णना है तो भी उन्होंने उसमें भी कर्म भू भारत की असामान्य क्षमता को ही स्पष्ट किया है। बन्धनस्थ अनिरुद्ध, कोच्चु-सीता, मग्दलेना मरियम आदि अनेक विख्यात खण्ड काव्य हैं। बाल्मीकी रामायण एवं ऋग्वेद के मलयालम भाषान्तरीकरण के द्वारा वल्लत्तोल भारतीय साहित्य में अमर रहेंगे।

उल्लूर

आशान एवं वल्लत्तोल के समकालीन और त्रिमूर्तियों में एक होने पर भी उल्लूर एवं परमेश्वरअय्यर इन दोनों से भिन्न हैं। वे अति पक्व मतिमान, शीलवान एवं अति गम्भीर पण्डित थे। उमाकेरलम नामक जो महाकाव्य उन्होंने लिखा है उसके समान प्रौढ़-गम्भीर, सुन्दर, लक्षण-संयुक्त महाकाव्य आधुनिक मलयालम में दूसरा नहीं है। संस्कृत प्रभावित उनकी अति गम्भीर शैली, अनुस्थूल वाहिनी शब्द धारा आदि का परिचय उमा केरलम में प्राप्त होता है। उल्लूर की विशेषता यह भी है कि इतनी प्रौढ़ भाषा एवं भाव के धनी होकर भी उन्होंने अति सरल मलयालम में लघु कविताएँ एवं गीत लिखे हैं। प्रेम-संगीतम नामक कविता इसका उदाहरण है और अति विख्यात है कर्ण भूषणम, पिंगला, भक्ति मंजरी आदि उनके बहुचर्चित सुन्दर काव्य ग्रंथ हैं।

उल्लूर को इससे भी अधिक और एक महत्वपूर्ण स्थान मलयालम में प्राप्त हुआ है। वह इस कारण से कि उन्होंने प्राचीन एवं नवीन साहित्य का विशद-वैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुसंधान किया था जिसके फलस्वरूप कैरली को एक प्रामाणिक-प्रौढ़ एवं बृहद् साहित्य का इतिहास प्राप्त हुआ है। एक साहित्य समीक्षण, अन्वेषक एवं प्रोत्साहन दाता के रूप में उल्लूर ने मलयालम साहित्य की जो सेवा की है वह चिरकाल तक स्मरणीय है।

इटप्पल्ली शैली

उपर्युक्त त्रिमूर्तियों के ही काल में मलयालम काव्यधारा में और एक उल्लेखनीय शाखा फूट निकली जो दो व्यक्तियों की सृष्टि थी और उन्हीं दो व्यक्तियों में सीमित रहकर उन्हीं के साथ विलीन हो गयी थी। इसे इटप्पल्ली शाखा या शैली कहा जाता है। इटप्पल्ली राघवन पिल्लै नामक एक युवक इसके प्रवर्तक थे। शुद्ध निष्कपट प्रणय का शुद्ध मलयालम में एवं शुद्ध द्रविड़ छन्दों में अभिव्यंजन ही इटप्पल्ली शैली कि विशेषता है। उनकी कविताएं निराशा प्रधान थी। आखिर निराश प्रणयी के रूप में राघवन पिल्लै ने आत्महत्या की।

इनके पश्चात् चंगम्पुषा कृष्ण हिलैने उस धारा को सजग एवं सक्रिय बना दिया। उन्होंने राघवन पिलै की कहानी के आधार पर रमणन नामक जो दुखान्त काव्य लिखा था उसको इतनी सार्वजनिकता मिली जो किसी अन्य आधुनिक काव्य को प्राप्त नहीं हुई थी। चंगम्पुषा जन्म-जात कवि थे। उनकी प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त थीं। आपने दर्जनों काव्य लिखे सैकड़ों कविताएं लिखी। गीतगोविन्द, साँग अफ साँग्स, उमर खैयाम की रुबाइयाँ आदि का भी अति मनोहर अनुवाद किया। इस प्रकार चंगम्पुषा ने अपनी अल्पायु में ही मलयालम में इतना उन्नत स्थान प्राप्त किया जो किसी भी अन्य कवि को प्राप्त नहीं हुआ था। इटपल्ली राघवन पिल्लै ने जिस शैली का प्रारम्भ कर दिया चंगम्पुषा ने उसको पूरा किया। चंगम्पुषा के काल में और उनके बाद अनेक कवियों ने उनकी शैली का अनुकरण करने का विफल यत्न किया है और कुछ आज भी कर रहे हैं। लेकिन उनकी कविता में सरस कोमल कान्त

पदावली, संगीतात्मकता, ताल लय, सरस अभिव्यंजना, निष्कपट एवं तीव्र प्रेमानुभूति, अत्युच्च निराशा भाव आदि की जो अक्किष्ट सुन्दरता है वह किसी को भी प्राप्त नहीं है। इसलिए ही पहले बताया गया कि इटप्पल्ली शैली दो ही व्यक्तियों तक सीमित है। मलयालम के एक विख्यात साहित्य समालोचक का यह मत कि वर्तमान युवा पीढी की मलयालम कविताएं चंगम्पुषा की कविताओं की प्रतिध्वनि मात्र हैं, एक सीमा तक वास्तविक है।

वर्तमान कवि

वर्तमान काव्य शाखा में श्री जी शंकर कुरूप का स्थान सर्वोन्नत है। एक प्रकृति गायक के रूप में आपने काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया था। अनन्तर काल में क्रमिक रूप में विकसित होते-होते आपकी काव्य प्रतिभा ने आज मानवता प्रेम एवं दार्शनिकता को अपनाया है। आपकी कविताएँ प्रौढ़ हैं। इतनी प्रौढ़ कि कुछ आलोचक कहते हैं कि वे कविताएँ सामान्य जनता तक नहीं पहुँच पायी हैं। उत्तुङ्ग एवं गम्भीर आशय उनमें सन्निवेशित हैं। आप रवीन्द्रनाथ ठाकुर से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। काव्य शाखा की प्रवृत्तियों की और विकास क्रम की दृष्टि से सुमित्रानन्दन पन्त एवं शंकर कुरूप की गति समानान्तर है। प्रतीकवाद से प्रभावित सुन्दर कविताएँ रचने में जी को असामान्य सफलता मिली है। अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दी से सम्पर्क रखने के कारण आप हिन्दी की छायावादी कविताओं से भी प्रभावित हुए हैं। सूर्यकान्ती, पंकज-गीतम आदि इसके उदाहरण हैं।

सर्वश्री वेण्णिक्कुक्लम गोपाल कुरूप, पाला नारायण नायर वैलोप्पिल्ली, श्रीधर मेनन, पी० कुंविरामन नायर, बालामणि अम्मा मुनुकुलन पार्वती अम्मा आदि ख्याति प्राप्त अन्य वर्तमान जीवित कवि हैं। इनमें पाला नारायण नातर और वैलोप्पिल्लि मँझली पीढ़ी के कवियों में प्रमुख हैं। भारत भर में पर्यटन कर जीवन के कटु सत्यों से प्रत्यक्ष रूप में परिचित होने से 'पाला' की कविताओं में जीवन की गंध है। आजकल आप 'केरलम वलरून्नु' नामक काव्य खण्डशः प्रकाशित कर रहे हैं जो पिछले दस-पंद्रह वर्षों में मलयालम काव्य शाखा को उपलब्ध रचनाओं में अत्युत्कृष्ट है।

अधुनाधुन काल में मार्क्सियन विचार धारा एवं प्रगतिशील विचार धारा से अनेकानेक कवि प्रभावित हुए जिनमें वयलार रामवर्मा, केटामंगलम पप्पुकुक्टी, पी० भास्करन ओ० एन० वी० कुरूप आदि प्रमुख हैं। इसके कारण नये भाव-रूपों में कविताएँ रची गयी। विदेशी विचार-धाराओं के स्थान पर भारतीयता जब से घर करने लगी, तब से इन प्रगतिशील कवियों की कविताओं में भी परिवर्तन हुआ। आज ओ० एन० वी० कुरूप जैसे कवियों को व्यक्त हो गया है कि सच्ची भारतीयता के आधार पर भी अच्छी-अच्छी प्रगतिशील कविताएं लिखी जा सकती हैं। यह काव्यधारा के एक परिवर्तन बिन्दु का सूचक है। हाल ही में हुए चीनी आक्रमण ने समस्त भारत को जाग्रत कर दिया। विभिन्न विचार धारा वाले कवि देश रक्षा हित समाहित हुए—सब का एक ही लक्ष्य रहा, एक ही आवाज में सब ने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के गीत गाये। हर्ष के साथ कहना पड़ता है कि कुछ वर्षों से सुप्त पड़ी मलयालम काव्य धारा अन्य भारतीय भाषाओं के साथ जाग उठी है और हम यह आशा करेंगे कि कुछ महती साहित्यिक सृष्टियों का बीजावपन इस जागरण काल में अवश्य होगा।

●

मलयालम का काव्य साहित्य

एन. आई. नारायान्

भारत के सुदूर दक्षिण का प्रान्त केरल प्रकृति की सुन्दरता, जलवायु की अनतितीक्ष्णता धरती की उर्वरता शिक्षा का प्रचार आदि अनेक विशेषताओं के कारण अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस प्रान्त की भाषा मलयालम द्राविड़ गोत्र की भाषाओं में एक है।

मलयालम का साहित्य दसवीं शताब्दी से लेकर अविरत गति से उन्नति के पथ पर अग्रसर होता आ रहा है। इसमें काव्य साहित्य की धारा अपेक्षाकृत अधिक संपन्न है। दसवीं शताब्दी के पूर्व केरल में साहित्य की रचना तमिल और संस्कृत में होती थी जब कि मलयालम केवल बोलचाल की भाषा के रूप में रहती थी। मलयालम को साहित्यिक भाषा का रूप देने में संस्कृत भाषा एवं आर्य ब्राह्मणों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उत्तर भारत से आये हुए विद्वान ब्राह्मणों ने मलयालम में बहुलता से संस्कृत शब्दों तथा यत्र-तत्र संस्कृत की विभक्तियों को भी जोड़कर एक प्रकार की खिचड़ी भाषा बनायी जो 'मणिप्रवालम' नाम से अभिहित थी। यही लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित रही। इस समय के अधिकांश कवि संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान एवं अभिजात वर्गीय थे। वे काव्य शास्त्र के नियम, तत्व, शैली, छन्द आदि में पूर्णतया संस्कृत का अनुकरण करते थे। इसी समय जनसाधारण की भाषा और छन्दों में भी कवितायें लिखी जाती थीं जिनमें आवश्यकता के अनुसार संस्कृत से स्वीकृत शब्दों का, मलयालम के तत्कालीन रूप तथा वर्णमाला के अनुसार परिवर्तन किया जाता था। अतः उनको अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। मणिप्रवाल काव्यों में शृङ्गार तथा हास्य की प्रधानता रहती थी और उनका मुख्य लक्ष्य मनोरंजन मात्र था। लेकिन जन भाषा के काव्यों में आध्यात्मिक भावना को अधिक प्रश्रय मिला।

पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् भाषा के रूप और साहित्य की गति में परिवर्तन हुआ। मणिप्रवालम तथा जन भाषा के सामंजस्य से आधुनिक साहित्यिक भाषा बनी। काव्य-रचना में जनता के मनोरंजन के साथ ही साथ सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक उन्नति पर भी ध्यान दिया गया। किन्तु काव्य की शैली में संस्कृत और जन भाषा की प्राचीन परम्पराओं से परिवर्तन नहीं हुआ। लगभग उन्नीसवीं शताब्दी तक यह धारा प्रवाहित रही। तत्पश्चात् पाश्चात्य तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रभाव से मलयालम में आधुनिक शैली के काव्यों की रचना आरंभ हुई। इस प्रकार के विकास को ध्यान में रखते हुए मलयालम के काव्य-साहित्य का विकास तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल।

आदिकाल (ई० दसवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक) जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है मलयालम का आरम्भ कालीन साहित्य मणिप्रवाल तथा जन भाषा की दो धाराओं में विकसित हुआ। इनमें मणिप्रवाल धारा की मुख्य तीन विधायें थीं——चम्पू, सन्देश काव्य और लघु काव्य।

मणिप्रवाल——चंपू——भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित विविध हस्तमुद्राओं सहित संस्कृत नाटकों का जो अभिनय केरल में प्रचलित था वह 'कूत्तु और कूटियाट्टम्' नाम से प्रसिद्ध था। अब तक उस अभिनय प्रणाली का पूरा ह्रास नहीं हुआ है। भारत के अन्य सभी प्रान्तों में संस्कृत नाटकों का अभिनय एवं भरतमुनि के नाट्यशास्त्र

के सिद्धान्तों का प्रयोग गतिहीन हो गये तब केरल के सांस्कृतिक वातावरण में उनका संरक्षण हुआ। कुत्तु के रूप में अभिनीत होने के लिए अनेक चम्पू ग्रन्थों की रचना की गयी। इनमें पद्य संस्कृत छन्दों में तथा संस्कृत बहुत भाषा में था। गद्य पूर्णतया छन्दमुक्त नहीं था। गद्य में प्रायः मलयालम के लोक गीतों में प्रचलित ढीले लचीले छन्दों का प्रयोग किया जाता था। भाषा अपेक्षाकृत सरल थी। इन चंपू ग्रंथों में 'उण्णियच्चि चरितम्' 'उण्णिच्चिरुतेवी चरितम्' और 'उण्णियाटी चरितम्' अधिक प्राचीन हैं। आगे चलकर एक सौ से अधिक चंपूग्रंथों की रचना हुई। उनमें पुनम नम्पूतिरी का 'रामायणम चंपू' विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो रामकथा के सभी मार्मिक प्रसंगों को आधार बनकर विशाल रूप में लिखा गया है। इसमें कवि की मौलिक प्रतिभा का अपूर्व विलास लक्षित होता है। इसके वर्णनों में मनोरंजकता, आलंकारिकता और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य है। शृंगार तथा हास्य के सम्यक् सम्मिलन से यह काव्य अत्यन्त आकर्षक है। इसमें यत्र-तत्र तत्कालीन सामाजिक दोषों का भी हास्यपूर्ण चित्रण किया गया है। मषमंगलम् नम्पूतिरी का 'नैषधम् चंपू' एकाग्रता, काव्यसौष्ठव आदि की दृष्टि से 'रामायणम चंपू' की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण और अपनी सर्वाङ्गीण सुन्दरता से सहृदयों को आनन्द में आप्लावित करने वाली रचना है। इनके अतिरिक्त उच्चकोटि के अनेक चम्पू काव्य मलयालम में हैं जिनका विस्तृत विवेचन इस छोटे निबन्ध में अनपेक्षणीय है।

सन्देश काव्य

मलयालम के सन्देश काव्य महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' के अनुकरण पर विरचित हैं। 'उण्णुनीली सन्देश' और 'कोकसन्देश' इस धारा के प्राचीन काव्यों में श्रेष्ठ हैं। दोनों का रचना काल ई० चौदहवीं शताब्दी माना जाता है। इनके रचयिताओं के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक उल्लेख अब तक प्राप्त नहीं हुआ। 'कोकसन्देश' में नायक नायिकाओं का वास्तविक विरह नहीं होता। नायक एक व्योमचारी के द्वारा अपने अपहृत होने का स्वप्न देखकर नायिका के विरह का अनुभव करता है और एक चक्रवाक को सन्देशवाहक के रूप में अपनी प्रियतमा के निकट भेजता है। किन्तु 'उण्णुनीली सन्देश' का विरह वास्तविक है। इसमें बताया गया है कि नायक निद्रा में एक गंधर्व के द्वारा तिरुवन्तपुरम पहुँचाया गया और वहाँ से उस समय के युवराजा आदित्यवर्मा को सन्देश वाहक के रूप में भेजा गया। दोनों काव्यों में कालिदास के ही अनुकरण पर नायक की विरह व्यथा, सन्देशवाहक के मिलन, नायिका के घर पहुँचने का मार्ग तथा बीच के दर्शनीय स्थान, नायिका की विरह व्याकुल दशा आदि का सजीव वर्णन किया गया है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से दोनों उच्चकोटि के सन्देश काव्य हैं।

लघु काव्य—(खण्ड काव्य)

मणि प्रवाल में अधिक संख्या में लघु काव्य पाये जाते हैं जो प्रायः प्रेम संबन्धी और शृङ्गार-रस प्रधान हैं। 'चेरिपच्ची' इस प्रणाली का एक लघुकाव्य है जिसमें अपनी प्रियतमा से विरहित रहने वाले एक नायक के मन में चन्द्रोदय के दर्शन से उत्पन्न विविध भावों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'कौणोत्तरा' 'उत्तरा चन्द्रिका' 'इलयच्ची' 'इट्टियच्ची' 'मल्लिनिलावु' 'मारलेखा' 'मारचेमन्तिका' आदि अनेक विलासिनी नायिकाओं के आधार पर लिखी हुई कविताओं के अंश भी यत्र-तत्र पाये जाते हैं। इनकी शैली वर्णन अलंकारों की प्रचुरता आदि पर संस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके साथ ही उनके रचयिताओं की प्रतिभा और उचितज्ञता के प्रमाण भी उन काव्यों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। उनमें संयोग शृंगार को प्रधानता दी गयी है। ग्यारहवीं शताब्दी में विचरित 'वैशिक तंत्र' में वेश्यावृत्ति के लिए ज्ञातव्य तत्वों का उपदेश है जो तत्कालीन समाज की विलासिता का परिचय देता है। चौदहवीं शताब्दी में रचित 'अनन्तनुरवर्णनम्' 'श्री कृष्णस्तवम्' 'दशावतारचरितम्' आदि लघुकाव्यों में संयोग शृङ्गार के स्थान पर भक्ति तथा अन्य भावों को स्थान दिया गया है। लेकिन यह काव्यादर्श का परिवर्तन नहीं माना जा सकता क्यों कि पन्द्रहवीं शताब्दी में रचित 'चन्द्रोत्सव' शृंगार-रस-प्रधान काव्यों में सर्वोत्कृष्ट है। इसके कथानक का आधार भेदिनी वेण्णिलावु नामक एक वेश्या के द्वारा आयोजित चन्द्रोत्सव है। इसके रचयिता का नाम

अज्ञात है। संयोग शृंगार की प्रचुरता होने पर भी यह काव्य शब्दार्थों के अपूर्व सामंजस्य से अत्यन्त सुन्दर रचना है।

लोक भाषा के गीत और काव्य

मणि प्रवाल काव्यों के विकास-काल में ही जन-साधारण की भाषा में रचित एवं उनके जीवन के अनुप्राणित अनेक गीत भी लिखे जाते थे। जिनमें 'कृषिप्पाट्टु' (कृषिगीत) 'तुम्पि पाट्टु' (नृत्यगीत) आट्टु पाट्टु' (चावल का पौदा लगाते समय गाये जाने वाले गीत) 'सर्पपाट्टु' (सर्प गीत) आदि मुख्य हैं। इनमें भी संस्कृत के कतिपय शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है किन्तु तत्सम शब्दों का नितांत अभाव है।

जन-भाषा के काव्यों में 'रामचरित' सबसे प्राचीन माना जाता है। इसका कथानक रामायण के युद्धकाण्ड का है। इसमें कुल १५६ अध्यायों में १८११ गीत हैं। उस समय की द्राविड़ वर्णमाला के अनुसार इसमें प्रयुक्त संस्कृत शब्दों का रूप-परिवर्तन किया गया है जैसे इरामन् (राम) इलक्कणन् (लक्ष्मण) आदि। कथानक में भी मूलरामायण से यत्र-तत्र किंचित् परिवर्तन किया गया है। इस काव्य के गुण में शब्दों की सरलता, वर्णनों की स्वाभाविकता, पदों की गेयता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। विद्वानों का मत है कि इसकी रचना तेरहवीं शताब्दी में हुई है।

चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के समय मलयालम का काव्य साहित्य एक ही परिवार के तीन श्रेष्ठ कवियों से अनुग्रहीत हुआ जो निरणम कवि नाम से प्रख्यात है। वे थे माधव पणिक्कर, शंकर पणिक्कर और राम पणिक्कर। तीनों ने अपनी कविताओं में एक ही छन्द का प्रयोग किया है।

माधव पणिक्कर की रचना 'भगवद्गीता' है जिसमें श्रीमत् भगवद् गीता के सात सौ श्लोकों का भाव तीन सौ अठाईस गीतों में अवतरित किया गया है। वास्तव में यह गीता का अनुवाद नहीं; उन्होंने इसमें अपने ग्राह्य-त्याज्य विवेक और मौलिकता का अच्छा परिचय दिया है। यही भारत की जन भाषा में गीता का सर्व प्रमथ अनुवाद है। गीता के निगूढ तत्वों का प्रकाशन करने में कवि को अपूर्व सफलता मिली है।

शंकर पणिक्कर की 'भारतमाला' में १३६३ गीतों के द्वारा भागवत के दशमस्कन्ध तथा महाभारत की संपूर्ण कथा संक्षेप में प्रस्तुत की गयी है। उन्होंने काव्य के अत्यन्त मार्मिक स्थानों को पहचानकर उनको आकर्षक रूप प्रदान करने में अपनी मौलिक प्रतिभा और उचितज्ञता का अच्छा परिचय दिया है।

इन कवित्रियों में रामपणिक्कर सबसे श्रेष्ठ थे। उनके काव्यों में 'रामायणम्' 'भारतम्' 'भागवतम्' और 'शिवरात्री माहात्म्यम्' मुख्य हैं। उन्होंने मूल-कथानक के वृथा-स्थूल अंशों को सूचना मात्र देकर त्याग दिया है और मार्मिक स्थानों का अधिक विस्तृत वर्णन किया है। अतः उनके काव्यों में मौलिकता का अंश अधिक पाया जाता है। उन्होंने संस्कृत शब्दों के समुचित प्रयोग से मलयालम के शब्द भण्डार को समृद्ध करने के साथ ही मणि-प्रवाल-श्लोकों की अपेक्षा जन भाषा की गीत शैली को उच्चतम स्थान प्रदान किया। अतः मलयालम के काव्य साहित्य के विकास में उनका स्थान अमर है।

मलयालम के आदिकालीन काव्यों में चेरुश्शेरी की 'कृष्णगाथा' सर्वोत्कृष्ट है जिसका रचनाकाल पन्द्रहवीं शताब्दी माना जाता है। मधुर-कोमल-कान्त पदावली एवं नाना-रस स्निग्ध भावों के असुलभ सम्मिलन से यह काव्य कैरली का कण्ठहार बना है। चेरुश्शेरी का वास्तविक नाम, जीवनवृत्त आदि का कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। संस्कृत में उनका ज्ञान अत्यन्त गहरा था। उन्होंने जन साधारण की भाषा में संस्कृत के सरल शब्दों का ऐसा सम्मिलन किया है कि वह काव्य विद्वानों तथा साधारण लोगों को समान रूप से आकृष्ट कर सका। इसका आधार भागवत के दशमस्कन्ध की कथा है। इसमें श्री कृष्ण की बाल लीलाओं, रासलीलाओं तथा लोक रक्षण के कार्यकलापों का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है। अनुपम शब्द सौन्दर्य, अर्थ की गंभीरता, अकृत्रिम अलंकारों की प्रचुरता, गानात्मकता, कवि कल्पना के चमत्कार आदि गुणों के सामंजस्य से यह काव्य अत्यन्त लोकप्रिय है। इसमें शृंगार, हास्य, वात्सल्य आदि रसों का अपूर्व

परिपाक भी देखा जा सकता है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी में सूरदास की कविताओं के सारे गुण कृष्ण गाथा में परिलक्षित हो सकते हैं।

इस समय के कवियों में पून्नानम नम्पूतिरी का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'ज्ञान पाना' 'भाषाकर्णामृत' 'कुमारहरण पाना' आदि उनकी कविताओं में श्रेष्ठ हैं। उनकी प्रत्येक पंक्ति कृष्ण भक्ति के सुधारस से स्निग्ध हैं। 'कुमारहरण पाना' में अपने पुत्र की अकालमृत्यु के कारण उत्पन्न व्यथा की तीव्रता को भक्तिभावना एवं दार्शनिक विचारों में विलीन करने का प्रयत्न किया गया है। उनके स्तुति गीतों का माधुर्य शताब्दियों से केरलीय जनता के अन्तस्थल में भक्ति भावना का संचार कर रहा है।

मध्यकाल

मलयालम साहित्य के मध्यकाल का आरम्भ तुञ्चत्तु एषुत्तच्छन के समय से माना जाता है। उनके जन्म तथा जीवन के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद हैं। फिर भी यह प्रमाणित है कि वे सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जीवित रहते थे। उस समय केरल का राजनैतिक और सामाजिक जीवन नितांत अव्यवस्थित था। सारा प्रान्त छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था और उनके शासकों का पारस्परिक संघर्ष हुआ करता था। उन शासकों पर ब्राह्मणों का बड़ा प्रभाव चलता था। जनता वर्णव्यवस्था के आतंक से परेशान रहती थी। समाज में उच्छृङ्खलता एवं विषय लालसा व्याप्त थीं। इस प्रकार की परिस्थितियों में एषुत्तच्छन ने आध्यात्मिकता और नैतिकता को लिए केरलीय जीवन के क्षेत्र में पदार्पण किया। उन्होंने घोषित किया कि सारे लोग, चाहे ब्राह्मण हों चाहे चण्डाल, समान रूप से भगवद् भक्ति के अधिकारी हैं। उनके सन्देश का स्वर ऐसा मुखरित हुआ कि सारी जनता जाग्रत हो उठी। फलस्वरूप वर्णव्यवस्था के आघात से टूटी हुई हिन्दू धर्म की कड़िया जुड़ गयीं और जनता आध्यात्मिकता के पवित्र तीर्थ में आमज्जित हुई।

एषुत्तच्छन के काव्यों में 'अध्यात्म रामायणम्' और 'महाभारतम्' सबसे श्रेष्ठ हैं। कहा जाता है कि 'हरिनामकीर्तनम्' 'चिन्तारत्नम्' 'रामायणम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्' 'देवीमाहात्म्यम्' और 'भागवतम्' भी उन्हीं के द्वारा रचित हैं किन्तु उनके कर्तृत्व के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। 'हरिनाम कीर्तनम्' मलयालम में लिखा हुआ एक उपनिषद् माना जाता है। 'अध्यात्मरामायणम्' और 'महाभारतम्' पूर्णतया मौलिक नहीं; उनका आधार संस्कृत के 'अध्यात्मरामायण' और 'महाभारत' है लेकिन उनमें मूल ग्रंथों के दीर्घ वर्णनों एवं कम प्रभावशाली प्रसंगों को छोड़कर मौलिक तथा अन्य कवियों के भावों का उचित सामंजस्य किया गया है। एषुत्तच्छन ने एक लाख बीस हजार श्लोकों में रचित मूल महाभारत के त्याज्य ग्राह्य अंशों को पहचानने तथा मौलिक अंशों को जोड़ने में अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है। उन्होंने अत्यन्त मनोयोग से आध्यात्मिक तथा दार्शनिक तत्वों का सरल वर्णन करके भक्तिभावना को उद्दीप्त करने का सफल प्रयत्न किया है। वे रामानुजाचार्य के विचारों से बहुत प्रभावित थे। एषुत्तच्छन की भक्ति मलयालम साहित्य की भव्य विभूति है।

मलयालम की आधुनिक साहित्यिक भाषा के जन्मदाता के रूप में उनका सर्वाधिक महत्व है। उन्होंने उस समय तक प्रचलित मणिप्रवालम तथा जन भाषा के स्थान पर ऐसी भाषा को अपनाया जिसमें संस्कृत और मलयालम के शब्दों का समुचित संकलन किया गया। उनकी शैली में भावप्रकाशन की क्षमता और सरलता समान रूप से विद्यमान थीं। अलंकारों में कहीं कृत्रिमता का लेशमात्र भी नहीं था। उन्होंने मलयालम के पुराने छन्दों का परिष्कार करके ऐसे छन्दों का निर्माण किया जिनमें नियमबद्धता के साथ ही ढीलापन भी था।

एषुत्तच्छन ने काव्यशास्त्र का अगाध ज्ञान भी प्राप्त किया था। साहित्यिक सुन्दरता, आध्यात्मिक गंभीरता और गेयता के योग से उनकी कविता अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी। अतः अभी तक के मलयालम कवियों में एषुत्तच्छन का सर्वोच्च स्थान बना ही रहता है।

मध्यकालीन गीति काव्य—

एषुत्तच्छन के समय के पूर्व गीति काव्यों की जो सरिता जन-हृदय को साहित्य की सुधा से आप्लावित करते हुए प्रवा-

हित हो रही थी वह उनके पश्चात् भी निरन्तर चलती रही। इस प्रकार के गीतिकाव्यों में 'वटक्कन पाट्टुकल' (उत्तरी गीत) जो उत्तर केरल में प्रचलित थे, सबसे महत्वपूर्ण हैं। इनकी रचना का समय सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना जाता है। इनमें उत्तर केरल के वीर योद्धाओं के साहस एवं युद्धकौशल का रोमांचकारी वर्णन मिलता है। वीर रस के साथ ही शृंगार करुण एवं अद्भुत का सुन्दर सामंजस्य भी इन काव्यों में देखा जा सकता है। इन गीति काव्यों की भाषा पूर्णतया जन साधारण की है किन्तु यह आदिकाल की जन भाषा की अपेक्षा अधिक परिमार्जित तथा सुन्दर है। कथाकथन की सरलता, वर्णनों की ऋजुता और कल्पनाओं की स्वाभाविकता इन काव्यों की मुख्य विशेषतायें हैं. अब भी खेतों में काम करने वाली स्त्रियाँ बड़े आनन्द से इनको गाया करती हैं जो इनकी लोकप्रियता का प्रमाण है। आरोमल चेकवर, तच्चोल्ली ओतेनन, तच्चोली चन्तु, पालाट्ट कोमन आदि वीर योद्धाओं को नायक बनाकर लिखेहुए इन काव्यों के अन्दर केरल के तत्कालीन सामाजिक जीवन में विवाह, त्योहार, उत्तराधिकार, धार्मिक भावना, शिक्षा, स्त्रीस्वातन्त्र्य, युद्ध, विनोद, आचार, व्यवहार आदि के संबन्ध में जो नियम प्रचलित थे उन सब का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि के न होने पर भी इन काव्यों का अकृमित्र सौन्दर्य अत्यन्त आकर्षक है। इसी समय दक्षिण केरल में भी इसी प्रकार के गीतिकाव्यों की रचना हुई। उनमें 'अञ्चु तम्पुरान पाट्टु' (पाँच राजाओं के गीत) 'इरविकुट्टिपिल्लै पोरू' (इरविकुट्टि पिलै का युद्ध) आदि मुख्य हैं। इन काव्यों की रचना तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर की गयी है। इनके अतिरिक्त अनेक भक्ति प्रधान गीत भी पाये जाते हैं। तमिल भाषा क्षेत्र से दक्षिण केरल का निकटतम सम्बन्ध होने के कारण इन गीतों में तमिल का अधिक प्रभाव लक्षित होता है। उपर्युक्त उत्तरी तथा दक्षिणी गीतिकाव्यों में साहित्यिकता की अपेक्षा जीवन का स्पन्दन अधिक दिखाई पड़ता है।

एषुत्तच्छन ने साहित्य की जिस शैली का सूत्रपात किया था उसी को अपनाते हुए उनके शिष्यों में करुणाकरन, देवनारायणन, गोपालन, सूर्यनारायणन आदि कवियों ने भी अनेक काव्यों की रचना की। इस शैली के परवर्ती काव्यों में कोट्टयम केरल वर्मा के द्वारा अनूदित 'वाल्मीकि रामायण' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने 'वैराग्य चन्द्रोदय' 'पाताल रामायण' 'बाणयुद्ध', 'भीष्मोपदेश', आदि काव्यों की भी रचना की है। इनके अतिरिक्त तत्कालीन राजनैतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं के आधार पर विरचित अनेक काव्य भी मिलते हैं।

कथकलि

केरलीय कलाओं में कथकलि का स्थान सर्वोच्च है जो समस्त संसार को अभिनय कला की चरम सीमा का परिचय दे रहा है। कथकलि का साहित्य मलयालम की एक विशेष काव्यधारा के रूप में विकसित है। कोट्टारक्करा तम्पुरान ने कोषिकोट के राजा मानवेदन के 'कृष्णनाट्टम' के अनुकरण पर रामायण की कथा को आठ भागों में विभाजित करके आठ कथकलि ग्रंथों की रचना की। वे हैं—पुत्रकामेष्टि, सीतास्वयंवर विच्छिन्नाभिषेक, खरवध, बालिवध, तोरणयुद्ध सेतुबन्धन और युद्ध। को तम्पुरान के 'बकवध' 'कल्याणसौगन्धिक' 'किर्मीरवध' और 'कालकेय वध' उच्चकोटि के कथकलि काव्य हैं। अठारहवीं शताब्दी में यह धारा अत्यन्त विकसित हुई। तिरुवितांकूर के तत्कालीन राजा राम वर्मा ने तीन कथकलि ग्रन्थों की रचना की—'राजसूत्र' 'पाञ्चाली स्वयंबर' और 'कल्याण सौगन्धिक'। ये तीनों उच्चकोटि की रचनायें हैं। उनके उत्तराधिकारी अश्वति नक्षत्रज रामवर्मा ने चार कथकलि ग्रंथ लिखे जो साहित्य, संगीत एवं अभिनय को दृष्टि से श्रेष्ठ और सुन्दर हैं। वे हैं—'रुग्मिणी स्वयंवर', 'पूतनामोक्ष' 'अम्बरीष चरित' और 'पौण्ड्रक वध'।

कथकलि ग्रंथों के रचयिताओं में सर्व श्रेष्ठ कवि उण्णायि वारियर हैं। उन्होंने निषधराजा नल की कथा को चार भागों में विभाजित करके चार कथकलि ग्रंथों का प्रणयन किया जिनमें कथकलि को नाटक के निकट लाने का प्रयत्न किया गया है। उण्णायि वारियर को पात्र चित्रण में अपूर्व सफलता मिली है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों का अनुकरण नहीं किया और परवर्ती

कवि उनका अनुकरण नहीं कर सके। उनकी भाषा अनर्गल थी और भाव बहुत गंभीर।

मलयालम के कथकलि ग्रंथों की संख्या एक सौ से अधिक है जिनमें पच्चीस-तीस तक साहित्य में चिर प्रतिष्ठा पा चुके हैं जिनका नामोल्लेख तक इस छोटे निबन्ध में संभव नहीं है।

तुल्लल :—अठारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में कुञ्चन नंप्यार के जन्म से मलयालम साहित्य में एक नवयुग का उदय हुआ। उन्होंने तुल्लल नामक एक नाट्य-विधा का अविष्कार किया जो उस समय तक प्रचलित 'कूत्तु' 'कूटियाट्टम' और 'कथकलि' की हस्तमुद्राओं की दुरूहता एवं रूढ़िबद्धता से दूर रहने के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी। इसमें एक ही नट था जो निराली वेषभूषा में रंगमंच पर आकर ताल लय के अनुसार गीत गाते हुए अभिनय करता था। नंप्यार ही ने तुल्लल काव्यों की भी रचना की। उनकी कविताओं में शब्द सौन्दर्य तथा भाव गंभीरता का अपूर्व सामंजस्य रहता था। उनकी कविता का मुख्य लक्ष्य जनता का मनोरंजन करने के साथ ही समाजगत दोषों का वास्तविक चित्र अङ्कित करके उनका सुधार करना भी था जिसके लिए उन्होंने अपनी असुलभ हास्य पटुता से काम लिया। वे मलयालम में हास्य रस के सम्राट माने जाते हैं। उन्होंने एक सौ से अधिक तुल्लल काव्यों की रचना की है जिनका आधार पौराणिक कथायें हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'श्रीकृष्णचरित' 'पंचतंत्र' 'एकादशी माहात्म्य' 'नलचरित' 'शिवपुराण' 'शीलावती' 'रामायण' (चौदह छन्द) आदि अनेक काव्य भी लिखे हैं। मलयालम में एषुत्तच्छन के बाद उन्हीं को सर्वोच्च स्थान और लोकप्रियता प्राप्त हैं।

अठारहवीं शताब्दी के समय मलयालम में अनेक गेय काव्यों की भी रचना हुई जिनमें रामरत्तु वारियर का 'कुचेलवृत्तम्' (सुदामा चरित) सबसे महत्वपूर्ण है। वारियर भी सुदामा के समान दरिद्र थे। कहा जाता है कि उन्होंने राजा मार्तण्ड वर्मा की आज्ञा से इस काव्य की रचना की और राजा ने भी श्रीकृष्ण का अनुकरण करते हुए कवि को दरिद्रता से मुक्त कर दिया। कवि के व्यक्तिगत अनुभवों ने इस काव्य को भावोज्ज्वलता, कलात्मकता और तन्मयता प्रदान की हैं। यह नरोत्तम दास के 'सुदामा चरित' की अपेक्षा विशालता और काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत श्रेष्ठ है। 'गिरिजा कल्याणम्' भी रामपुरत्तु वारियर के द्वारा विरचित एक प्रौढ़ काव्य है जिसका कथानक 'कुमार संभव' में वर्णित पार्वती विवाह है। भावों और कल्पनाओं की गंभीरता के कारण यह काव्य जनसाधारण के लिए अग्राह्य सा हो गया है।

इस समय साधारण कोटि के अनेक कवियों ने भी मलयालम साहित्य को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया था जिनका उल्लेख करना इस छोटे निबन्ध में अपेक्षित नहीं है।

आधुनिक काल

मलयालम साहित्य के आधुनिक काल का उदय उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। इस युग के आरंभ कालीन कवियों में केरलवर्मा तम्पुरान, राजराज वर्मा तम्पुरान, के० सी० केशवपिल्लै, कोटुङ्ङल्लूर कुञ्जुकुट्टन तम्पुरान, कोच्चुण्णि तम्पुरान, वेण्मणि अच्छन नंपूतिरी वेण्मणि महनन पूतिरी ओरवंकरा नंपूतिरी, शीवोल्लि नंपूतिरी, कोट्टारत्तिल शंकुण्णि आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस समय की कविताओं में तत्कालीन जन जीवन से कथानकों का चयन हुआ है और भाषा और शैली में सरलता आ गयी है। मौलिक काव्यों का प्रणयन करने के साथ ही संस्कृत के अधिकांश श्रेष्ठ काव्यों और नाटकों का अनुवाद भी किया गया। उस समय के कवियों में अनुवाद के द्वारा कवियश प्राप्त करने की सनक इतनी बढ़ गयी थी कि संस्कृत के सभी श्रेष्ठ काव्यों और नाटकों का मलयालम में अनुवाद हो गया।

केरल वर्मा तम्पुरान का 'मयूरसन्देश' सन्देशकाव्यों की धारा में महत्वपूर्ण रचना है क्यों कि इसके कथानक का आधार कवि के अपने जीवन का अनुभव है। उन्होंने राज कोप के कारण कारागार में रहते हुए इसकी रचना की इसके पश्चात् संस्कृत के महाकाव्यों की शैली से केरल के कवि आकृष्ट हो गये। मलयालम का सर्वप्रथम महाकाव्य अषकत्तु पम्दनाभकुरूप का 'रामचन्द्रविलास' है। इसके

बाद पन्तलम केरलवर्मा का 'रूग्मांगदचरितम्' के० सी० केशवपिल्लै का 'केशवीयम्' उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर का 'उमाकेरलम्' वल्लत्तोल नारायण मेनन का 'चित्रयोगम्, कोच्चुण्णि तम्पुरान के 'पाण्डवोदयम्' और 'मलयांकोल्लम्' कट्टक्कयत्तिल चेरियान माप्पिलै का 'श्रीयेशुविजयम्' के० वी० सैमण का 'वेदविहारम्' आदि अनेक महाकाव्यों का प्रणयन हुआ। इनमें 'केशवीयम्' भावों की गंभीरता, वर्णनों की स्वाभाविकता, भाषा और शैली की सुन्दरता आदि गुणों से उच्चकोटि का महाकाव्य है। 'उमाकेरलम्' ऐतिहासिक कथानक के आधार पर विरचित होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण है। 'वेदविहारम्' मलयालम के प्राचीन छन्दों में रचित है जब कि अन्य सभी महाकाव्यों में संस्कृत के छन्दों का प्रयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त मलयालम में संस्कृत के अनेक महाकाव्यों का अनुवाद भी हुआ है। इन काव्यों की भाषा और विषय-वस्तु के विधान में आधुनिकता होने पर भी शैली प्राचीन ही रही। किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजी शिक्षा के फल स्वरूप काव्य की शैली में भी परिवर्तन हुआ।

बीसवीं शताब्दी का उदय होने के पूर्व ही मलयालम में आधुनिक खण्ड काव्यों की रचना आरंभ हुई। ए० आर० राजराज वर्मा तम्पुरान का मलयविलासम् मलयालम का सर्वप्रथम खण्ड काव्य माना जाता है जो ई० १८९५ में लिखा गया। यह पाश्चात्य साहित्य के आत्मगीतों Tyrics की शैली में विरचित है। इसके पश्चात् उसी शैली पर के० सी० केशव पिल्लै का 'आसन्नमरण चिन्ता शतकम्' सी० एस० सुब्रह्मण्यन पोट्टी 'ओरु विलाम्' (एक विलाप) वी० सी० बालकृष्ण पणिक्कर के विलापम्' और विश्वरूपम' आदि कवितायें प्रकाशित हुईं। वी० सी० बालकृष्ण षणिक्कर की कविताओं में पश्चिमी प्रभाव अधिक स्पष्ट है।

खण्ड काव्यों की धारा समुचित विकास महाकवि कुमारन आशान के 'वीणपूंवु' गिरा हुआ फूल से हुआ जिसकी रचना १९०८ में हुई। वे बचपन से ही केरल के प्रसिद्ध संत श्रीनारायण गुरु के आध्यात्मिक चैतन्य से प्रभावित हुए थे। जब वे अपनी उच्चशिक्षा के लिए कलकत्ते में रहते थे तब उन पर श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहन राय, बंकिम चन्द्र चटर्जी, माइकेल मधुसूदन दत्त, रवीन्द्र नाथ ठाकुर आदि का भी गहरा प्रभाव पड़ा। अतः उनकी कविताओं में उच्चभावों तथा दार्शनिक विचारों की गम्भीरता सोने में सुगन्ध के समान विद्यमान है। 'वीणपूंवु' के अतिरिक्त उन्होंने 'नलिनी' 'लीला' 'प्ररोदनम' 'चिन्ताविष्टयाय सीता' (चिन्ताविष्टा सीता) 'दुरवस्था' 'चण्डालभिक्षुकी' 'करुणा आदि उच्चकोटि के खण्डकाव्य भी लिखे। कुमारन आशान की सभी कविताओं आधार प्रेम है जो सत्वाग्नि में जलकर वासना के कलंक से पूर्णतया मुक्त है। 'वीणपूवु' एक प्रतीकात्मक खण्डकाव्य है जिसमें उन्होंने गिरे हुए एक फूल का वर्णन करते हुए ऐसी एक नायिका का अत्यन्त प्रभावोत्पादक चित्रण किया है जिसने अपने पवित्र प्रेम की असफलता के कारण जीवन की तिलांजलि दे दी। 'नलिनी' की नायिका नलिनी भी दिव्य प्रेम की बलिवेदी पर मृत्यु को मधुर बनाने वाली है। 'लीला' में सामाजिक नियमों की तीव्र ज्वाला में अपने जीवन को होम देने वाले प्रेमी-प्रेमिकाओं कोदुरन्त कथाचित्रित है। प्ररोदनम' ए० आर० राज-राजवर्मा तम्पुरान के अकाल निधन को आधार बनाकर लिखा हुआ एक विलापकाव्य हैजो इस धारा के मलयालम काव्यों में सर्वश्रेष्ठ है। चिन्ताविष्टा सीता' पौराणिक नायिका होने पर भीनितांत नवीन रूप से प्रत्यक्ष होती है।

'दुरवस्था' और चण्डाल भिक्षुकी' के अन्दर पवित्र प्रेम का आकर्षक चित्रण होने पर भी यह स्पष्ट है कि कवि का वास्तविक उद्देश्य जाति-पाँति और छुआछूत के नियमों से अपमानित एवं पीड़ित लोगों का उद्धार करना है। केरल के हरिजनों तथा निम्नजाति के लोगों का उद्धार करने में इन दोनों काव्यों का योगदान अविस्मरणीय है। 'करुणा' में श्री बुद्ध के शिष्य उपगुप्त की कृपा से मुक्ति पथ पर आरूढ़ होनेवाली वेश्या वासवदत्ता की कहानी है। कुमारन आशान के काव्यों का मुख्य गुण उनके भावों और विचारों की गम्भीरता है। उनके काव्यों में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों का गुंफन होने के साथ ही जीवन की आलोचना भी है। उनकी भाषा में भाव प्रकाशन की क्षमता और उज्वलता समान रूप से रहती

है। उनके शब्द नपे-तुले और भावाभिव्यंजना में सक्षम हैं। उनकी कविताओं में अनावश्यक या निरर्थक शब्द नहीं पाये जा सकते। मलयालम के आधुनिक काव्य साहित्य के पथ प्रदर्शक एवं सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में उनका नाम अमर है।

कुमारन आशान के समसामयिक कवियों में वल्लत्तोल नारायण मेनन का नाम पहले आता है। ई० १९१० में रचित 'वधिर विलाप' उनके व्यक्तिगत अनुभव एवं अनुभूति की सुन्दर अभिव्यंजना है 'गणपति' 'बन्धनस्थनाय-अनिरुद्धन' (बन्दी अनिरुद्ध) 'ओरु कत्तु' (एक खत) 'शिष्यनुम मकनुम' (शिष्य और पुत्र) 'मग्दलना मरियम' (मेरी मग्दलेना) 'कोच्चु सीता' (छोटी सीता) आदि उनके श्रेष्ठ खण्डकाव्य हैं। इन काव्यों के अतिरिक्त उन्होंने अनेक छोटी-छोटी कवितायें भी लिखी हैं जो 'साहित्य मन्जरी' के आठ भागों में संग्रहीत हैं।

प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण करने में वल्लोल की लेखनी बहुत सफल निकली है। उनकी भाषा अत्यन्त कोमल और शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों की अकृतिम सुन्दरता से ओतप्रोत है। उनके खण्डकाव्यों का आधार पौराणिक कथायें तो हैं किन्तु सभी पात्रों में नवीन व्यक्तित्व और विचारों का समावेश किया गया है जिससे स्वाभाविकता की सीमा का उल्लङ्घन कभी नहीं हुआ है। 'मग्दलना मरियम' का कथानक बाइबिल से स्वीकार किया हुआ है।

वल्लत्तोल मलयालम के राष्ट्रकवि के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। 'साहित्य मन्जरी' की अनेक कवितायें देश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना उद्‌बुद्ध करनेवाली हैं। उन्होंने हमारी स्वतन्त्रता के आन्दोलन में केरल की जनता को उत्तेजित करने का सफल प्रयत्न किया है। भारत और केरल की प्राचीन संस्कृति के प्रति उनकी अटल श्रद्धा रही। भारत की एकता में बाधा उपस्थित करनेवाली जाति-पाँति, छुआछूत, धार्मिक संघर्ष आदि पर उन्होंने घोर प्रहार किया है। उनकी कविता का मुख्य गुण माधुर्य है।

उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर भी इस समय के एक श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी रचनाओं में कवि प्रतिभा की अपेक्षा विद्वता की झलक अधिक दिखायी पड़ती है। संस्कृत और अंग्रेजी में उन्होंने अगाध ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने आधुनिक खण्डकाव्यों की धारा से प्रभावित होकर अपनी सफल लेखनी चलायी। उनकी अनेक कवितायें किरणावली और 'तारहारम' में संगृहीत हैं। 'मषतुल्ली' (वर्षा की बूंद) 'पेरियाट्टिनोटु' (पेरियार से) आदि कवितायें आत्म-गीत के अच्छे उदाहरण हैं। 'सौभ्रात्र गानम' 'उद्‌बोधनम' 'तप्तचिंता' आदि कवितायें उपदेशप्रधान हैं जिनमें जाति-पाँति के भेद तथा पारस्परिक द्वेष का दोष स्पष्ट करते हुए श्रेष्ठ मानवीय गुणों को ग्रहण करने का आह्वान किया गया है। 'वीरवैराग्यम' 'दिव्यसान्त्वनम' 'हीरा' 'कपिल वास्तुविले कर्मयोगी' 'कबीरदास' वीरमाता' 'महामेरुविटे मनस्तापम' आदि पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर रचित कवितायें हैं जिनमें त्याग, प्रेम, वीरता आदि गुणों की प्रशंसा की गयी है। मिथ्यापवाद' में श्रीबुद्ध का महत्व स्पष्ट करने के साथ ही उनके विरोधियों के पतन का चित्रण भी किया गया है। 'पिंगला' चारित्रिक पतन से नारी के उद्धार की कथा है। 'कर्ण भूषण' और 'भक्तिदीपिका' पौराणिक कथाओं के आधार पर विरचित हैं। 'चित्रशाला' में भारतीय नारी के अतीत कालीन गौरव की गाथा है।

उल्लूर की कविताओं में गम्भीर भावों और कल्पनाओं की प्रचुरता है। भाषा भी विद्वता पूर्ण और उज्ज्वल है। दूर की कल्पनाओं, उक्तिवैचित्रयों और संस्कृत शब्दों की प्रचुरता ने उनकी कविता को कृत्रिमता का एक परिवेष दिया है। उनके अनेक खण्डकाव्यों में एकाग्रता का अभाव भी दिखायी पड़ता है। अतः कुमारन आशान और वल्लत्तोल के समान उल्लूर लोकप्रिय कवि न बन सके।

इन कवित्रयों के पथ पर आये हुए प्रतिभाशाली साहित्यकारों में कुट्टिपुरतु केशवन नायर, वेण्णिकुलम गोपाल कुरुप, नालप्पाटु नारायण मेनन, पी० कुंजुरामन नायर, के० एम० पणिक्कर, पल्लत्तु रामन, के० के० राजा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कुट्टिपुरतु केशवन नायर और वेण्णिकुलम गोपाल कुरूप की विशेषता उनकी सुन्दर शैली की है। दोनों ने भावों की गहराई तक पैठ जाने का प्रयत्न नहीं किया है। 'काव्योपहार,' 'नव्योपहार,' 'प्रपंच' आदि केशवन नायर की कवि-

ताओं के संग्रह हैं। गोपाल कुरूप की कवितायें 'पुष्पवृष्टि 'सौन्दर्यपूजा' 'सरोवर' 'मानसपुत्री' 'वेल्लित्तालम' (चांदी की थाली) 'वसन्तोत्सव' 'केरल श्री' आदि में संगृहीत हैं। नालघाट्ट् नारायण मेनन की कविताओं में 'लोकम्' 'सुलोचना' 'कण्णुनीर तुल्ली' (आंसू) 'चक्रवालम' 'पौरस्त्यदीपम्' आदि प्रसिद्ध हैं जिनमें 'कण्णुनीर तुल्ली' (आंसू) उच्चकोटि की रचना है। मलयालम के विलापकाव्यों में इसका उच्च स्थान है। भावों की गम्भीरता, विचारों की स्पष्टता और कला की सुन्दरता के कारण यह काव्य बहुत लोकप्रिय हो गया है। पी० कुञ्जुरामन नायर भारतीय तथा केरलीय संस्कृति के उपासक और प्रगतिवादी विचारधाराओं के विरोधी हैं। भावों की एकाग्रता और तन्मयता का अभाव उनकी कविताओं का मुख्य दोष है। 'वासन्ति पूक्कल' 'मणिवीणा' 'पूम्पाट्कल' (तितलियाँ) 'अन्तित्तिरी' (सन्ध्यादीप) आदि उनकी कविताओं के अठारह संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। के० एम० पणिक्कर की कविताओं में भी काव्यकला की प्राचीन रूढ़ियों का प्रभाव देखा जाता है। 'अपक्वफल' प्रेमगीति' 'कविताकौतुक' आदि में उनकी कवितायें संगृहीत हैं। पल्लतु रामन की रचनाओं में निम्नकोटि की जनता के उद्धार की पुकार मुखरित हैं। के० के० राजा भाव प्रधान गीतों की रचना में निपुण हैं।

इसी समय आधुनिक कविता के क्षेत्र में दो कवियों ने पदार्पण किया जो एक हो लतापर उत्पन्न दो कोमल पुष्पों के समान थे। वे थे--एटप्पल्लि राघवन पिल्लै और चङ्ङम्पुषा कृष्णपिल्लै। इन्होंने भाव प्रधान गीतों का क्षेत्र बहुत विकसित किया। उनकी कविता का आधार शोक से सिंचा हुआ प्रेम था। भाव और भाषा की सुन्दरता, सरलता और गेयता एटप्पल्लि की कविताओं की विशेषतायें थीं। यदि विधि की निर्दयता ने उनको जवानी के उदय में ही कालयवनिका के अन्दर तिरोहित नहीं किया होता तो उनकी लेखनी से मलयालम का साहित्य बहुत धन्य हुआ होता।

चङ्ङम्पुषा कृष्णपिल्लै बड़े भावुक कवि थे। उन्होंने जीवन के स्वीकृत सिद्धान्तों का समर्थन या काव्य-शास्त्र के नियमों का पालन नहीं किया। किन्तु जीवन के प्रति उनका अपना कोई दृष्टिकोण भी नहीं था। वे अपने तरल हृदय में उठते हुए भावों का ज्यों का त्यों चित्रण करते थे। जब कभी उनके मन में जीवन के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता था तब उनकी कविता हँस पड़ती थी किन्तु दूसरे ही क्षण में कवि की निराशा और शोकतीव्रता से अनुप्राणित होकर वह रो पड़ती थी और सहृदयों को रुलाती थी। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान नहीं दिया कि कविता में किस बात का संवरण और किस बात का प्रकाशन करना वांछनीय है। भावों की ऊष्मलता उनकी कविताओं में सर्वत्र विद्यमान है।

जीवन के निरन्तर कष्टों ने उनको प्रगतिवादी बनाया। सुख की खोज में वे विलासिता के शिकार भी बने। प्रकृति के सौन्दर्य से उनका बड़ा आकर्षण था। फलतः उन्होंने आर्थिक असमानता, प्रेम की मादक हँसी और करुण रुदन एवं प्रकृति की सुन्दरता को अपनी रचनाओं का मुख्य विषय बनाया। विषादमय प्रेम के चित्रण में उनको अपूर्व सफलता मिली। कवि के आँसुओं से सनी हुई उन कविताओं में जन हृदय को द्रवीभूत करने। और नयनों को आर्द्र करने की शक्ति थी। निसर्ग सुन्दर शैली, सरस कोमल शब्दों के मेल तथा गेयता के कारण उनकी कवितायें जनता को मोह सकी। खण्ड काव्यों और कविता संग्रहों के रूप में 'बाष्पांजलि' 'हेमन्त चन्द्रिका' 'मणिवीणा 'रक्त पुष्पङ्ङल' (रक्तपुष्प) 'रमणन' 'देवता' आदि उनको चालीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें 'रमणन' सबसे लोकप्रिय हुआ जो अंग्रेजी के Pastoral elegy की शैली पर लिखा गया है। इसके कथानक का आधार उनके आत्ममित्र एटप्पल्ली राघवन पिल्लै के दारुण अन्त से सम्बन्धित था। यह भी इसको लोकप्रियता का दूसरा कारण बना। चङ्ङम्पुषा कृष्णपिल्लै की भाषा और शैली का बड़ा ही प्रभाव मलयालम के काव्यसाहित्य पर अब तक विद्यमान है।

आधुनिक मलयालम साहित्य के वर्तमान कवियों में जी० शंकर कुरूप का स्थान सर्वोच्च है। उनके आरम्भ कालीन कविताओं की मूल प्रेरणा प्रकृति सौन्दर्य, प्रेम और देशभक्ति थी। वे कवितायें 'साहित्यकौतुक' के चार भागों में संग्रहीत हैं। इसके पश्चात् वे प्रकृति में सजीवता के दर्शन

करने और छायावादी एवं रहस्यवादी कविताओं की रचना करने लगे। उन पर कविवर रवीन्द्र नाथ ठाकुर और सुमित्रानन्दनपन्त का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। आरम्भ में उनके प्रतीकों का सन्देश केवल प्रेम था लेकिन आगे चलकर उन्होंने जीवन की समस्यायें, साम्राज्यवाद, श्रमिक धनिक वर्ग का संघर्ष, युद्ध आदि को चित्रित करने के माध्यम के रूप में भी प्रतीकों का प्रयोग किया। इन कविताओं में कहीं-कहीं कल्पना की दुरूहता खटकने वाली है। फिर भी कम से कम शब्दों के द्वारा व्यंग्य प्रधान शैली में भावों का प्रकाशन करने की उनकी क्षमता प्रशंसनी है।

जी० शंकर कुरूप पूर्णतया जीवन की समस्याओं से विमुख होकर अन्तर्मुख नहीं रहे। परिस्थिति से प्रेरणा पाकर उन्होंने पीड़ित एवं अपमानित मानव जीवन का भी मार्मिक चित्रण किया है। उनके राष्ट्रीय गीतों में भावों की तीव्रता विद्यमान है। उनकी राष्ट्रीयता विश्वव्यापी है जिससे प्रेरित होकर उन्होंने साम्राज्यमोह का ग्रास बने हुए छोटे राज्यों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। इन कविताओं में भावों और विचारों का सामंजस्य परिलक्षित होता है। उनकी इतिवृत्त प्रधान रचनाओं में भी भावगीतों की सुन्दरता है। 'साहित्य कौतुक' (चार भाग) 'नवातिथि' 'सूर्य कान्ति' 'चेंकतिरुकल' (लाल किरणें) 'मुत्तुकल' (मोती) 'निमिष' 'पूजापुष्प' 'इतलुकल' (पंखुड़ियां) 'पथिकन्टे पाट्टु' (पथिक का गीत) 'अन्तर्दाह' 'वन गायक' 'पाथेय' आदि उनकी रचनाओं के संग्रह हैं। मलयालम की कवियित्रियों में बालामणि अम्मा, मेरी जोण तोट्टम्, मुतुकुलम पार्वती अम्मा, कुत्ताट्टुकुलम मेरी जोण, कटत्तनाट्टु माधवी अम्मा, सुगतकुमारी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बालामणि अम्मा की आरम्भ कालीन कविताओं में मातृत्व की भावना छलक पड़ती थी जब कि वे अपने शिशु के अन्दर सभी ऐहिक और पारत्रिक शक्तियों के दर्शन करती थीं। इसके पश्चात् उनकी कल्पना पारिवारिक जीवन में परमात्मा और परमसत्य की खोज करने लगी। उनकी वर्तमान कविताओं का विषय विशाल संसार है जिसमें विश्वप्रेम और परमात्मा के असीम महत्व के अज्ञात तत्वों के दर्शन करती हैं। दार्शनिकता और रहस्यात्मकता के कारण उनकी कविताओं में दुरूहता का दोष दिखाई पड़ता है। मलयालम की एकमात्र रहस्यवादी कवयित्री के रूप में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। 'अम्मा' (माँ), 'कूप्पुकै' (अंजलि) 'स्त्री हृदय' आदि तेरह पुस्तकों में उनकी कवितायें संग्रहीत हैं।

एटप्पल्लि राघवन पिल्लै और चङ्ङम्पुषा कृष्ण पिल्लै की शैली का अनुकरण करते हुए काव्यरचना करनेवाले कवियों की संख्या मलयालम में कम नहीं है। उनमें पी० भास्करन, पाला नारायणन नायर, जी० कुमार पिल्लै, तिरुकुरिश्शि सुकुमारन नायर, एम० पी० अप्पन, वैलोप्पिल्लि श्रीधर मेनन, एन० वी० कृष्ण वारियर, अक्कित्तम्, एटश्शेरी गोविन्दन नायर, ओलप्पमण्णा, ओ० एम० अनुजन, वलयार रामवर्मा, ओ० एन० वी० कुरूप केटामंगलम पप्पुकुट्टी, तिरूनल्लूर करुणाकरन, पुतुश्शेरी रामचन्द्रन, किलीमानूर रमाकान्तन, वेल्लायणि अर्जुनन, के० वी० देव आदि मलयालम कविता की श्री वृद्धि मे योग देने वाले हैं।

पाला नारायणन नायर की आरंभ कालीन कविताओं में इतिवृत्तात्मकता अधिक रहती थी लेकिन आजकल की रचनायें केरल के प्राचीन गौरव और संस्कृति से अनुप्राणित हैं। आधुनिक कवियों में वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनन का स्थान अधिक ऊंचा है। भावों की सुन्दरता, विषयों की गम्भीरता, एवं शैली की नवीनता के कारण उनकी कविता का बड़ा सम्मान होता है। उनकी विचारधारा मानव-संस्कृति के इतिहास तथा वैज्ञानिक आविष्कारों की प्रगति को आधार बनाकर आशा का आलोक लिये शिवं की ओर अग्रसर होने वाली है। श्रीधर मेनन की कविता तरल भावों से उन्मत्त होकर नहीं नाचती। वह गौरव और गम्भीरता के साथ मन्द-मन्द चली आती है।

मलयालम के आधुनिक कवियों में अधिकांश भावप्रधान गीतों की रचना करने वाले हैं। कतिपय कवियों की रचनाओं में प्रगतिवादी विचारधारा का प्रभाव भी लक्षित होता है। उनकी कविताओं का विस्तृत विवेचन इस स्थान पर अनुचित है। यह हर्ष की बात है कि मलयालम कविता का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है।

मलयालम की आधुनिक कविता

एन० वेंकटेश्वरन्

"केरल" भारत के दक्षिण कोने में स्थित एक छोटा सा सुन्दर राज्य है। यह राज्य अपने असाधारण एवं अनुपम प्राकृतिक वैभव और सौन्दर्य के कारण समस्त विश्व में अत्यन्त विख्यात प्रदेश माना जाता है। इस छोटे से कमनीय राज्य की पूर्व सीमा में सह्य-पर्वत की गगनचुम्बी चोटियाँ विराजमान हैं, जो अनादि काल से अपनी अनुपम गरिमा और सुषमा एकदम मूक होकर प्रकट करती रहती हैं। इस सुन्दर भू-भाग के पश्चिम की सीमा में अरब महा सागर की तरंगाकुल छटा अपने अनन्त संगीत को निरन्तर मुखीरित करती है। इस प्रकार इस देश की एक ओर ऊँचे-ऊँचे हरे-भरे पर्वत-श्रृङ्गों के मूक नृत्य हैं तो दूसरी ओर आरपार विहीन अनन्त समुद्र के मधुर संगीत हैं। अतः वास्तव में यह छोटा सा सुन्दर प्रदेश प्राकृतिक नृत्य और संगीत की सुखद गोद में सिकुड़ कर सो रहा है और अपनी आनन्दमय निद्रा में अनेक अलौकिक स्वप्नों का सृजन निरन्तर करता रहता है। अपनी अनुपम प्राकृतिक सुषमा के कारण यह राज्य समस्त विश्व को निरन्तर अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। इस उपजाऊ भू-खण्ड के भीतर कितनी ही छोटी-छोटी एवं गहरी-भरी नद-नदियाँ पश्चिमोन्मुख होकर प्रवाहित हो रही हैं। यहाँ के पहाड़ों में कितने ही ऊँचे-ऊँचे महान वृक्ष आकाश मूक नक्षत्रों से प्रेमालाप कर रहे हैं। इस सुन्दर देश के महान पहाड़ों की सुखद तराइयों की गोद में अथवा यहाँ की कल-कल करती हुई नद-नदियों के कमनीय किनारों पर कभी कोई भावुक युवक खड़ा होकर पूरब या पश्चिम की तरफ़ अपनी प्यासी आँखें फेरता हो तो उसके सामने या तो पर्वत-पंक्तियों की ऊँचाई के गंभीर एवं रहस्यमय दृश्य नजर आते हैं, नहीं तो अनन्त समुद्र की गहराई के नयनाभिराम नृत्य एवं कर्णमधुर संगीत उसे अपनी ओर खींच लेते हैं। कभी उस जिज्ञासु को उत्सुक दृष्टियाँ ऊपर के नीले आकाश की तरफ़ पड़ जाती हैं तो वहाँ के धवल मेघों के झुण्डों के बीचों बीच आँख-मिचौनी का खेल खेलते रहने वाले सूरज, अथवा चाँद और तारे दिखाई पड़ते हैं। कभी उस अनन्त आसमान में बादलों के मध्य में कड़कती हुई बिजलियों की चमक और दमक उसके नयनों को चका-चौंध कर डालती हैं और कानों को फोड़ा करती हैं। अतः इसमें कोई सन्देश नहीं है कि केरल के अपूर्व असाधारण प्रकृति-वैभव से बिलकुल प्रभावित और अनुप्राणित हुए बिना कोई मानव वहाँ कदापि नहीं रह सकता है। वास्तव में केरल को प्रकृति देवी का पवित्र क्रीड़ा-क्षेत्र कह सकते हैं। जो प्रकृति का का क्रीड़ा-क्षेत्र है वही कविता की रंगभूमि है। अतः यदि केरल को हम अपनी बाहरी दृष्टि से देख कर प्रकृति का नन्दन-कानन कह सकते हैं तो निस्सन्देह अपने अनुभव के नयनों से देखने पर उसे कविता का लल्ला-क्षेत्र भी मान सकते हैं, क्योंकि प्रकृतिक-सौन्दर्य ही मानव के हृदय में भावों तथा कल्पनाओं का सृजनकर देता है और उसके काव्य-जगत् के वैभवों को बराबर बढ़ाता रहता है।

केरल की प्रादेशिक भाषा का नाम मलयालम अथवा कैरली है। मलयालम एक अत्यन्त मधुर, अतीव, वैज्ञानिक एवं शक्ति-पूर्ण सुन्दर सरल भाषा है। यह द्राविड़ कुल की सजीव, प्रचलित तथा विकसित चार प्रमुख भाषाओं में से एक है। तमिल, तेलुगु, कन्नड ये तीनों भाषाएँ मलयालम की सगी सहोदरियाँ, मानी जाती हैं। यह निश्चित रूप से कहा जाता है कि तमिल भाषा से मलयायम की सबसे अधिक घनिष्ठता दीख पड़ती है। लेकिन तमिल

से बिलकुल पृथक एवं स्वतन्त्र हो कर अपना विकास करते रहने की वजह से मलयालम का अपना महत्व भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अधिक माना जाता है। साहित्यिक दृष्टि से भी मलयालम की सर्वतोमुखी उन्नति हम देख सकते हैं। पद्य और गद्य दोनों प्रकार के श्रेष्ठ साहित्य मलयालम में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। आधुनिक युग में तो मलयालम साहित्य का बहुमुखी विकास हो रहा है। इस भाषा के पद्य-साहित्य का भण्डार अनेक काव्यरत्नों से भरा पड़ा है। उन सब का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय भी इन सीमित पंक्तियों में प्रदान करना बिलकुल कठिन प्रतीत होता है। अतः यहाँ केवल बीसवीं सदी के कुछ इने-गिने प्रमुख कवियों तथा उन की रचनाओं का विहंगावलोकन मात्र करने का प्रयत्न किया जायगा।

मलयालम के नवीनयुग के काव्य-साहित्य के विषय में लिखते समय सबसे पहले हमारे सामने तीन यशस्वी स्वर्गीय महाकवियों की त्रिमूर्ति प्रत्यक्ष होती है। अतः उन के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित किये बिना नहीं रहा जाता। वे सुविख्यात महाकवि, श्री कुमारन आशान, श्री वल्लत्तोल नारायण मनोन और श्री उल्लूर परमेश्वर अय्यर हैं। उन तीनों कवि-महारथियों ने आधुनिक युग के मलयालम काव्य-क्षेत्र के वैभवों को बहुत अधिक बढ़ाने की सफल साधना की है। उनकी अनुपम एवं आदर्श सेवाओं से मलयालम की जितनी वृद्धि और पुष्टि हुई है उतनी कदाचित् दूसरे कवियों के द्वारा अब तक नहीं हो सकी है। वे ऐसे युग में अपनी नवीनतम एवं मौलिक काव्य-रचना की तपस्या कर रहे थे जब कि मलयालम में केवल संस्कृत साहित्य के अनुकरण पर प्राचीन परम्परा की इतिवृत्तात्मक एवं पौराणिक कविताओं का सृजन मात्र हो रहा था। अतएव उन को हम नवीन युग के निर्माता और नेता कवि मानते हैं। आधुनिक कविता के प्रथम प्रवर्तक होने कारण उनका विशेष महत्व भी अवश्य है।

इन महाकवियों में स्वर्गीय श्री कुमारन आशान् जाति के अछूत थे। सन् १६०८ से श्री आशान् की काव्य-रचना का काल प्रारंभ होता है। उन्हीं दिनों में उनकी कविता में अपने समय से पहले के तथा समकालीन कवियों की अपेक्षा एकदम नवीन, मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी अनुभूतियों की मधुर ध्वनि मुखरित होने लगी। श्री आशान् के पहले के प्रायः सभी कवि काव्य-रचना के महत्वपूर्ण कार्य को केवल ताश या शतरंज के खेल, निरर्थक गप्पें मारने की प्रणाली आदि की तरह मामूली मनोरंजन को कार्यक्रम से बढ़कर कोई विशेष महत्व नहीं देते थे। लेकिन इसके विरुद्ध आशान् ने अपनी नवीन एवं मौलिक काव्य-साधना में सहृदयों के अंतर्जगत के भीतर की प्रसुप्त अनुभूतियों को जगा देनेवाली सच्चाई और मार्मिकता भर देना अत्यंत आवश्यक समझा। अतः उन्होंने जब मिट्टी में मिलने वाले किसी साधारण मुर्झाये फूल को देखकर प्रेमियों के क्षणिक जीवन की रहस्य-भरी पीड़ाओं का मार्मिक वर्णन करने का प्रयास किया तब तो वह मलयालम के लिए एकदम अपरिचित और अभूतपूर्व घटना हो गयी। इतिवृत्तात्मक तथा पौराणिक कथाओं को अपने काव्यों का विषय बनाकर लक्षण-शास्त्रों के अनुकूल बड़े-बड़े महाकाव्यों की रचना करने वाले अन्य कवियों के बीच में जब श्री आशान् ने "वीणपूव" (पतित पुष्प) नामक अपना नवीनतम खंड-काव्य प्रस्तुत किया तब जनता पर उसका प्रभाव असाधारण और अवर्णनीय हो गया। "वीण पूवु" श्री कुमारनआशान का ही नहीं, बल्कि मलयालम का भी अपने ढंग का सर्वप्रथम प्रतीकात्मक एवं छायावादी खंड-काव्य माना जाता है। उस काव्य का विषय ही नहीं, अपितु भाव, कल्पना, रचना शैली, भाषा-सौष्ठव, तत्वदर्शन आदि सब कुछ एकदम मौलिक, नवीन, रोचक, एवं मार्मिक हुए हैं। उसका कथानक बिलकुल साधारण और सरल होने पर भी नितान्त दार्शनिक एवं समस्या प्रधान है।

कविवर श्री आशान् ने अपने "वीण पूव" नामक खंड-काव्य में प्रतीकात्मक ढंग से एक "पतित पुष्प" की साधारण कथा का वर्णन किया है। उनकी कविता की वह प्रतीकात्मकता उस समय के मलयालम साहित्य में बिलकुल नवीनतम विशेषता मानी गई। अपने प्यारे पतित पुष्प की दुरवस्था देखकर व्यथित होने वाले प्रेमी मधुकर का मर्म भेदक रुदन सुनकर कविवर श्री कुमारन आशान् विश्व के रंगमंच पर अनेक ऐसे ही क्षणिक जीवनों के दर्द भरे चित्रों का हृदय-विदारक नृत्य देखने लगते हैं।

अकस्मात् कवि के दार्शनिक विचारों के पंख फड़फड़ाते हैं और वे बहुत बड़ी व्यथा का अनुभव करते हुए यह स्वीकार करते हैं कि इस संसार में गुणवानों की मृत्यु बहुत जल्दी होती है। यहाँ जो सचमुच अतीव प्यारे और सुन्दर होते हैं उनकी आयु क्षणिक होती है। वे आसमान के इन्द्र-धनुष, विद्युत्छटा धवलमेघ आदि अनेकों सुन्दर दृश्यों के क्षणिक जीवन का बार-बार स्मरण करके व्याकुल होते हैं। स्वयं अपने कई दार्शनिक तत्वों के प्रकाश में उस "पतित पुष्प" के नश्वर जीवन का भी कोई शाश्वत रहस्य समझने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार किसी गिरे हुये कुसुम के क्षणिक जीवन की दर्द-भरी कहानी का वर्णन करने के बहाने कवि ने प्रत्येक प्रेमी "नर" अथवा "नारी" की जिन्दगी के रहस्यों और अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति बड़ी सूक्ष्मता की है।

"वीण पूवु" की तरह श्री कुमारन आशान् ने अपने काव्य-जीवन के सोलह वर्ष के अल्प काल के अन्दर "नलिनी", "लीला", "श्री बुद्धचरितम" "ग्रामवृक्षत्तिले कुयिल", "प्ररोदनम्", "चिंता विष्टयाय सीता", "दुरवस्था", "चंडाल भिक्षुकी", "करुणा", "पुष्पवाटी", "नव माला", "मणिमाला", "बालरामायणम्", आदि कितने ही अनुपम काव्य-रत्नों को मलयालम--भाषा-देवी के चरणों पर समर्पित किया है। उनकी "नलिनी" में एक प्रेम-वंचिता साध्वीर मणी की दर्द-भरी कहानी प्रस्तुत है। "लीला" में सामाजिक एवं प्रादेशिक अनाचारों तथा अत्याचारों की प्रज्वलित अग्नि में स्वयं आहुति बन जाने वाले दो आदर्श युव-मिथुनों की मर्मस्पर्शी करुण-कथा है। "प्ररोदनम्" में कवि ने अपने गुरुवर्य साहित्यकार ए० आर० राजराज वर्मा के निधन पर हृदय-विदारक विलाप किया है। कवि के हृदय की गुरु भक्ति, भावुकता, कोमलता और मार्मिकता का संपूर्ण परिचय "प्ररोदनम्" में मिलता है। "चिन्ता विष्टयाय सीता" में कवि ने पतिव्रता-नारी सीता देवी के असह्य दुःखों का आत्म-कथात्मक वर्णन किया है। रामायण की पौराणिक सीता अपने पति श्री रामचन्द्र के द्वारा अन्याय पूर्वक परित्यक्त हो जाती है तो किसी दिन बाल्मीकि मुनि के आश्रम में एकान्त में बैठी हुई वह अपनी दुर्विधि पर आँसू बहाने लगती है। उस समय वह एक आधुनिक प्रगतिशील नारी की तरह अपने प्रियतम के कतिपय आचरणों की कड़ी आलोचना भी करने का साहस प्रकट करती है। नारी-हृदय की कोमलता, दृढ़ता, सहिष्णुता और प्रेम परता का स्वाभाविक एवं मार्मिक परिचय श्री आशान् की "चिंता-विष्टयाय सीता" में हमको अवश्य प्राप्त होता है।

"दुरवस्था" में एक चण्डाल-युवक को कोई ब्राह्मण-कन्या प्यार करती है और सामाजिक बंधनों की अवहेलना करके उससे अन्त में ब्याह कर लेती है। इस क्रांतिकारी घटना को चित्रित्त करते हुए कवि अपने अनेक प्रगतिशील सुधारवादी विचारों के गंभीर गर्जन सुना देते हैं। यह एक विशिष्ट बातें हम श्री आशान् की कविता में देखते हैं कि वे शारीरिक एवं विलासमय प्रेम की अपेक्षा आत्मोन्मुख एवं उत्सर्ग पूर्ण आदर्श प्रेम का वर्णन करना ही अधिक पसन्द करते हैं। हिन्दू-धर्म के अन्दर प्रचलित जाति-भेद, वर्ण-भेद आदि के विषय में उनके विचार प्रौढ़ गंभीर एवं क्रांतिपूर्व हैं। "करुणा" नामक उनके खंड-काव्य में बौद्ध कालीन उपगुप्त और वासवदत्ता की प्रसिद्ध कथा का नवीनतम सरस आख्यान मिलता है। "श्री बुद्ध चरित" "लैट आफ एष्या" नामक अंग्रेजी-काव्य का एक प्रकार से अनुवाद मात्र है तो भी उसमें कवि ने अपनी रसज्ञता और मौलिकता भी खूब प्रकट की है। "चंडाल भिक्षुकी" भी बुद्ध-धर्म की एक प्रचीन कथा है। उसमें कवि ने आधुनिक हिन्दू-धर्म के जाति-भेद सम्बन्धी अनाचारों और अत्याचारों पर कुठार प्रहार करने का जबरदस्त प्रयत्न किया है। इन काव्य-ग्रन्थों के अलावा श्री आशान् के कई श्रेष्ठ आलोचनात्मक गद्य-ग्रन्थ भी विद्यमान हैं।

श्री कुमाराशान की कविता में भावों के अनुकूल भाषा-प्रवाह, शब्दचयन, शिल्प-सौष्ठव आदि गुण मिलते हैं। अनियंत्रित आन्तरिक्त भावों को अभिव्यक्त करने में उनके सा॑क एवं ध्वन्यात्मक शब्द सर्वदा सफल रहे हैं। तुकबन्दी, प्रास, अनुप्रास आदि का चमत्कार दिखाने के लिये वे कदापि निरर्थक शब्दों का अनावश्यक प्रयोग नहीं करते थे। उनकी कविता का लक्ष्य केवल गानमाधुर्य प्रदान करना मात्र नहीं रहा है। अपने जिज्ञासु पाठकों

को यथासम्भव चिन्ताशील एवं तत्वान्वेषक बनाने की ओर विशेष रूप से वे तत्पर रहते थे। इस लिये कई लोग उनकी कविताओं को कहीं-कहीं क्लिष्ट एवं दुरुह भी कहा करते हैं। जीवन सम्बन्धी उनके दार्शनिक विचार इतने सुनिश्चित, प्रभावजनक प्रौढ, एवं गम्भीर हैं कि वे कभी-कभी सचमुच एक भावुक कवि की अपेक्षा अपने को ज्यादा विचारवान दार्शनिक के रूप में प्रकट करते हैं। हिन्दी के कविवर जयशंकर प्रसाद की तरह श्री आशान् भी एक प्रौढ़ दार्शनिक कवि हैं। श्री आशान् की कबिता में सर्वत्र उनके महान व्यक्तित्व की अमिट छाप अवश्य पायी जाती है।

श्री आशान् की कविता में तत्वचिन्ता और भावना की प्रधानता है। उनकी तत्व-चिन्ता जीवन की नश्वरता और कठिनाइयों से उत्पन्न होकर अज्ञेय विश्वात्मा की रहस्यपूर्ण क्रीड़ाओं का मर्म समझने का प्रयास करने वाली एवं प्रचलित दार्शनिक मान्यताओं की व्याख्या करने वाली होती है। उनके दार्शनिक विचारों में बुद्धदेव के दुःखवाद तथा करुणाधर्म का विशेष प्रभाव दीख पड़ता है। निराशा और विरक्त की अधिकता, नियतिवाद का समर्थन, रहस्योंन्मुख साधना, संयम और तपस्या का संदेश, अशरीरी एवं आत्मोन्मुख प्रेम का महत्व, उत्सर्गपूर्ण जीवन की श्रेष्ठता, आस्तिकता की दृढ़ता आदि कई महत्वपूर्ण विषय उनकी तत्वचिंता की विशाल परिधि के अन्तर्गत मिलते हैं। उनकी मर्मस्पर्शी अनूभूतिपूर्ण सूक्तियाँ चिरस्मरणीय बन जाती है। इसी प्रकार उनकी कविता की भावपूर्ण पंक्तियाँ सर्वथा पाठकों के हृदय में पूरा असर डालने वाली होती है। अपनी रचना में यथासंभव एकानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति करने के कारण वे मानव-मन के विभिन्न भावों की सूक्ष्म-व्यंजना करने में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सफल निकले हैं। सर्वदा भावव्यंजना पर बल देने के कारण श्री आशान् के काव्यों में गीतात्मकता का समावेश हो गया और धीरे-धीरे उनकी कविता चित्रमय संगीत बन गयी। अतएव "करुणा" "चांडाल भिक्षुकी" आदि अनेक श्रेष्ठ खण्ड काव्य पद्य नाटकों की तरह विविध पात्रों के द्वारा केरल रङ्गमंचों पर बहुधा अभिनीत होते हैं। यह सभी लोग मानते हैं कि श्री आशान् एक सौन्दर्य-निष्ठ कवि, जागरुक कलाकार, और महान तत्वान्वेषी साधक थे जिन्होंने अपने देश और भाषा की अनुपम सेवा अवश्य की है।

श्री कुमारआशान् के समकाकीन कवि होने पर भी मलयालम के आधुनिक काव्य-क्षेत्र में श्री वल्लत्तोल नारायण मेनोन का अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान है। वे प्रकृति के पुजारी, आशावादी, प्रगतिशील सौन्दर्योपासक महाकवि थे। उनको मलयालम के 'आस्थान कवि' का सम्मान भी प्रदान किया गया है। श्री आशान् की मृत्यु के समय श्री वल्लत्तोल की अवस्था तो लगभग ४५ वर्ष की थी। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। पहले उन्होंने भी केरल की प्राचीन परम्परा के अनुकूल "चित्र-योगम्" नामक एक लक्षणयुक्त महाकाव्य की रचना की और महाकवि का नाम कमाया। "केरात चरितम्", "व्यासावतारम्", "सल्लापपुरम", "आरोग्यचितामणि" "चन्द्रिका स्वयंवरम्", "कीचक वधम्", ऋतु विलासम्" आदि नई सुन्दर रचनाओं के द्वारा श्री वल्लत्तोल प्रारम्भ से ही प्रसिद्ध हो चुके थे। लेकिन उन रचनाओं में हम वल्लत्तोल को अपने वास्तविक रूप में पूर्णतया नहीं पाते हैं। श्री कुमारन् आशान् की तरह जब उन्होंने भी सन् १९१० में "बधिरविलाप" नामक अपने स्वानुभूतिपूर्ण आत्मकथात्मक एवं मार्मिक खण्ड-काव्य की रचना की तभी से उनका नवीनतम एवं मौलिकरूप प्रकट होने लगा। "बधिर विलाप" में उन्होंने अपने बहरे होने की दर्दभरी कहानी का अनुभूतिपूर्ण वर्णन किया है। उस खंड-काव्य में कवि की व्यक्तिगत अनुभूति की तीव्रता और मार्मिकता की अत्यन्त प्रभावजनक अभिव्यक्ति हुई है। मनुष्य के जीवन में श्रवणेन्द्रियों का अभाव कितना दुखदायक होगा, इसका सच्चा परिचय प्रदान करने में कविवर वल्लत्तोल की बराबरी शायद ही दूसरा कोई कवि कर सकेगा। पाठकों की सच्ची और गहरी सहानुभूति का पात्र बन जाने का अवसर भी कवि को अपने उ काव्य के द्वारा प्राप्त होता है। इसलिये "बधिर विलाप" को ही अपने रचयिता को साधारण लोगों के अत्यंत निकट ले जाकर सम्मिलित करने का श्रेय दिया जा

सकता है। इस साधना में पूर्णरूप से इस काव्य को सफलता अवश्य प्राप्त हुई है। "वधिर विलाप" की तरह श्री वल्लत्तोल के दूसरे खंड-काव्यों में "गणपति", "बंधनस्थनाय अनिरुद्दन", "ओरुकत्तु", "शिष्यनुमूमकनुम्", "मगदलन मरियम" आदि प्रमुख माने जाते हैं। इन खंड-काव्यों कीतरह श्री वल्लतोल ने सैंकड़ों सामयिक राष्ट्रीय, राजनैतिक, एवं सामाजिक फुटकर कविताएँ भी की हैं। उन सबके संग्रह "साहित्य मंजरी" के विविध भागों में उपलब्ध होता है। "साहित्यमंजरी" के अब तक कुल आठ भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री वल्लत्तोल प्रकृति–सौन्दर्य के अनन्य पुजारी हैं। वे परम देशभक्त एवं सुधारवादी हैं उनकी फुटकर रचनाओं में सामयिक एवं राजनैतिक वातावरण का सरस एवं स्वाभाविक चित्रण मिलता है। उन्होंने देश के महान् नेताओं की कीर्ति-गाथायें भी यथेष्ट गायी हैं। राष्ट्रीय नेताओं के रचनात्मक विचारों का समर्थन और प्रचार केरल की जनता के बीच में करने में श्री वल्लत्तोल की कवितायें अन्य कवियों की रचनाओं की अपेक्षा अधिक सफल सिद्ध हुई हैं। इसलिये श्री वल्लत्तोल को केरल के लोग अपने राष्ट्रीय एवं युगप्रवर्तक कवि मानते हैं।

श्री वल्लत्तोल केवल प्रकृतिसौन्दर्य के महान आराधक ही नहीं, बल्कि प्राचीन भारत के महत्व और गौरव के कीर्तिगायक भी हैं। राष्ट्रपिता गांधी जी के राष्ट्रीय एवं धार्मिक सिद्धान्तों का प्रभाव उनकी कविता पर बहुत गहरा पाया जाता है। सामयिक मान्यताओं तथा विचार धाराओं के साथ स्वयं हिल मिलकर तत्कालीन लोक-हितकारी सिद्धान्तों, भावों, विचारों तथा कल्पनाओं का विवेकपूर्ण वर्णन करना श्री वल्लत्तोल की काव्य-कला की एक बड़ी विशेषता है। उनकी कई रचनाओं में हम उनको सचमुच साम्यवादी एवं क्रांतिकारी विचारों के प्रबल समर्थक के रूप में भी पाते हैं। वे एक जैसे महान, मानवतावादी विश्वप्रेमी, लोकहितकारी, युग-प्रवर्तक कवि हैं जो साधारण मनुष्य के महत्व और लघुत्व दोनों के सच्चे अभिज्ञाता और प्रबल प्रचारक हैं। अतः उनकी कविता में हमको आदर्शोन्मुख यथार्थवादी आकर्षक चित्र बहुत अधिक मिलते हैं।

श्री वल्लत्तोल की कविता कर्णमधुर, प्रसादगुण-विशिष्ट एवं सरल है। इसी कारण से इस समय भी केरल के लोगों के बीच में उनकी रचनाओं का प्रचार औरों की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ता जा रहा है। श्री आशान् की तरह वे अपने दुरुह दार्शनिक सिद्धातों को भी कविता के कोमल कलेवर में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न नहीं करते। इसलिये उनके काव्यों की सरसता और प्रवाह में कहीं किसी प्रकार की कमी या बाधा कदापि नहीं दीख पड़ती। उनकी कविता में स्वाभाविक कल्पनाओं के कलात्मक चमत्कार अपने सहज सौन्दर्य को अत्यन्त आकर्षक ढङ्ग से अभिव्यक्त करते हैं। मानव-हृदय के विविध भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति करने में वे सर्वथा समर्थ एवं सफल सिद्ध हुये हैं। श्री वल्लत्तोल की किसी रचना में कहीं पाठकों को क्लिष्टता का अनुभव बिलकुल नहीं होता। जहाँ श्री आशान् अपने पाठकों को दार्शनिक उलझनों तथा जीवन की दुःखपूर्ण जटिलताओं में फँसाकर अत्यन्त व्याकुल एवं चिंतित बना डालते हैं और उन्हें जीवन की सच्चाई से एकदम भयभीत बनाकर कहीं एकांत में भाग जाने के लिये विवश कर डालते हैं वहाँ श्री वल्लत्तोल अपने प्रेमी पाठकों के हृदय में अत्यधिक उत्साह, उमंग, उन्मेष, और आनन्द भर देना चाहते हैं और उन्हें सदैव प्रसन्न एवं प्रफुल्ल बनाकर कर्तव्योन्मुख साधना करने के लिए यथासम्भव प्रोत्साहित करते रहते हैं। श्री आशान् की कविता में दुःखवाद की जड़ता का आधिक्य है तो श्री वल्लत्तोल की कविता में प्रगतिवाद की चेतना ही ज्यादा विद्यमान है।

श्री वल्लत्तोल ने मलयालम भाषा के कई प्राचीन प्रादेशिक छन्दों का प्रयोग स्वच्छन्दता-पूर्वक करके अपने काव्यों की केरलीय लोक-गीतों के समकक्ष सरल एवं लोकप्रिय बनाया जिससे उनकी प्रसादगुणयुक्त, संगीतमयी, सहज-मन्थर-गति से चलनेवाली वाणी केरल की साधारण जनता की "हृदय-वाणी" बन गयी है। उनका काव्य-क्षेत्र भी बहुत ही विराट और विस्तृत है। सर्व-धर्म-सम-भाव, सर्वोदय, हरिजनोद्धार, सत्याग्रह आदि अभिनव आदर्शों को भी उन्होंने तथा सम्भव अपनी कविता का विषय बनाया है। इसी प्रकार अपने समय के परतन्त्र

भारत की दुर्दशा का वर्णन करते हुए प्राचीन भारत की वैभवपूर्ण समृद्धि और विश्वप्रेममय संस्कृति की तरफ अपने पाठकों को आकर्षित करने में उनकी रचनाएँ सर्वथा सफल पायी जाती हैं। हिन्दी के राष्ट्रीय कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की तरह प्राचीन पौराणिक कथाओं तथा घटनाओं को आधुनिक युग के अनुकूल बनाकर वर्णन करने में श्री वल्लत्तोल की बराबरी शायद ही मलयालम के दूसरे कवि कर सके हैं। इसी प्रकार मानव के व्यक्तिगत प्रेम-भाव की सच्ची व तीव्र अनुभूति को अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढङ्ग से अपने मार्मिक शब्दों के द्वारा प्रस्तुत करने में श्री वल्लत्तोल को ईर्ष्याजनक सफलता मिली है। अपने काव्यों के पात्रों के भीतर स्वयं प्रतिष्ठित होकर उनके साथ पूर्णरूप से तादात्म्य प्राप्त करके जब वे प्राचीन अथवा नवीन स्त्री-पुरुषों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं, तब हम उन पात्रों के चरित्रों को सर्वथा स्वाभाविक, सुन्दर एवं सजीव पाये बिना नहीं रहते। आधुनिक युग के अनुकूल लाक्षणिक भङ्गिमाएँ और मनोवैज्ञानिक उलझनें भी उनकी कविता में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है। विचार और भाव तथा कल्पना और कला का सुन्दर संयमपूर्ण संगम उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है। वे मानव समाज की सभ्यता, संस्कृति, सौन्दर्य, प्रेम, सुख, दुःख, जीवन, मृत्यु आदि के अच्छे मर्मज्ञ होने के कारण सम्पूर्ण मानवता के प्रचारक एवं युग-प्रवर्तक कवि बन सके हैं। उनकी कविता मानव की मङ्गल-कामना से ओत-प्रोत, कला और कल्पना के सूक्ष्मतम तत्वों से परिपुष्ट, मलयालम के नवीन युग की सबसे बहुमूल्य साहित्य-सम्पत्ति बनी हुई है। इसी कारण से श्री बल्लतोल्ल को अपने जीवन-काल में ही मलयालम के एकमात्र "विश्व-विख्यात कवि" की प्रतिष्ठा और सम्मान पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

उपर्युक्त महाकवि श्री कुमारन आशान और श्री वल्लत्तोल की तरह श्री उल्लूर परमेश्वर अय्यर भी मलयालम के आधुनिक काव्य-साहित्य के अधिनायक कवियों में सर्वथा प्रथम श्रेणी के अधिकारी माने जाते हैं। वे संस्कृत, अंग्रेजी, तमिल और मलयालम के प्रकाण्ड पंडित और प्रतिभाशाली कवि तथा श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। मलयालम के वर्तमान साहित्य-क्षेत्र में जो इने-गिने कवि और साहित्यकार अपने अथक प्रयत्न और अविराम अध्ययन के बल पर बड़ी प्रतिष्ठा और कीर्ति के पात्र बने हुए हैं उनमें श्री उल्लूर का नाम ही सर्वप्रथम लिया जाता है। बीसवीं शताब्दि के आरंभकाल में जब संस्कृत के अनुकरण पर मलयालम में इतिवृत्तात्मक एवं वर्णन-प्रधान काव्यों की रचना होती थी तभी श्री उल्लूर काव्य-साधना के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। उन्होंने उन दिनों संस्कृत छन्दों का अवलंबन करके कई फुटकर कवितायें कीं। उसके बाद "उमाकेरलम्" नामक एक विशिष्ट ऐतिहासिक महाकाव्य लिखकर उन्होंने महाकवि का नाम भी प्राप्त किया। समुद्र "शतकम्", "स्यमन्तकम्", "अक्षयपात्रम्", "मोट्टुसूची", आदि खण्ड-काव्य उनकी प्रारंभिक रचनायें हैं। "सुजातोद्वाहम्" नामक एक श्रेष्ठ चंपू-काव्य उनकी असाधारण विद्वत्ता और प्रतिभा का प्रत्यक्ष परिचय प्रदान करने वाला प्रौढ़ ग्रन्थ है। "वन्चीशगीति" "सरला", "विष्णुमाया", "देवकी", "पद्मिनी", "सत्यवती", "कलावती", "अंबरीष चरितम्", "तंकम्मा", "देवयानी", "गजेन्द्रमोक्षम", "ओरु नेर्चा", "मङ्गल मंजरी" आदि उनके बीसों लघु काव्य मिलते हैं। श्री आशान और श्री वल्लत्तोल की तरह श्री उल्लूर ने कई श्रेष्ठ खण्ड-काव्य प्रादेशिक मलयालम के छन्दों में भी लिखे हैं। ऐसे काव्यों में 'किरणावली", "अमृत-धारा", "काव्य-चन्द्रिका", "कर्ण-भूषणम्", "भक्ति दीपिका", "पिंगला", "तप्तहृदयं" आदि अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

श्री आशान और श्री वल्लतोल की अपेक्षा श्री उल्लूर ने मलयालम के पद्य-साहित्य के भण्डार को अपने अनेक अमूल्य काव्य-रत्नों से अत्यधिक परिपुष्ट एवं सम्पन्न बनाया है। उन्होंने न केवल पद्य-साहित्य की ही श्रीवृद्धि की है, बल्कि गद्य-साहित्य कई प्रमुख अंगों को भी संपुष्ट करने की सफल साधना है। "विज्ञान दीपिका" नाम से उनके आलोचनात्मक खोजपूर्ण प्रौढ़ लेखों के सुन्दर संग्रह मिलते हैं। श्री उल्लूर ने मलयालम के सैकड़ों प्राचीन ग्रंथों का संशोधन और संपादन करके उन्हें अपनी विद्वत्ता-पूर्ण भूमिकाओं तथा समीक्षात्मक लेखों के साथ प्रकाशित

कराने का महान कार्य किया है। कितनी अज्ञात प्राचीन कृतियों की गवेक्षणा करने का कठिन कार्य भी उन्होंने बड़ी सफलता से पूरा किया है। उनके बहुमूल्य जीवन के करीब पैंतीस वर्षों के महान अध्ययन और सूक्ष्म अनुसंधान के फलस्वरूप मलयालम भाषा तथा साहित्य पर एक बहुत बड़ा प्रामाणिक इतिहास-ग्रंथ तैयार हुआ है जिसका प्रकाशन पाँच बड़े-बड़े भागों में केरल विश्वविद्यालय की तरफ से संपन्न हुआ है। केरल की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, इतिहास आदि विविध बातों का पूर्ण परिज्ञान श्री उल्लूर केलिए उपर्युक्त एक मात्र महान ग्रन्थ से उपलब्ध किया जा सकता है। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं है कि केवल उस बृहत् के कारण ही श्री उल्लूर का नाम केरलीय साहित्य-संसार में अनन्त काल तक अवश्य चिरस्मरणीय एवं अमर रहेगा। हिन्दी के महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त व पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय और महान समालोचक तथा साहित्य के इतिहास-लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल व बाबू श्याम सुन्दर दास—इन चारों महापुरुषों की साहित्य सेवाओं का सम्पूर्ण समन्वय हम मलयालम के एक मात्र महाकवि श्री उल्लूर में अवश्य पाते हैं।

श्री उल्लूर की रचनायें प्रायः पौराणिक घटनाओं तथा पात्रों पर अवलंबित है। उनमें अनेक श्रेष्ठ सूक्तियाँ मिलती हैं। उनके काव्य विचार-प्रधान एवं उपदेशात्मक होते हैं। भाव-प्रधानता का गुण उनमें कम पाया जाता है। संस्कृत साहित्य के "महाभारत" के प्रति श्री उल्लूर की असीम श्रद्धा और ममता दीख पड़ती है। इसलिये उन्होंने अपने कई श्रेष्ठ खण्ड-काव्यों की रचना "महाभारत" के आख्यानों के आधार पर ही की है। वे भारतीय संकृति और सभ्यता की अनन्य पुजारी है। यद्यपि उनकी रचनाओं से विदित होता है कि प्राचीन ऋषियों के तपस्यामय आस्तिक युग के प्रति श्री उल्लूर की असीम श्रद्धा थी, तो भी नवीनयुग के सुधारवादी तथा क्रांतिकारी विचारों की अवहेलना वे कदापि नहीं करते थे। उनमें आधुनिक युग के अनेक प्रगतिशील विचारों का समर्थन करने की उदारता और सहिष्णुता भी दीख पड़ती है। उनकी सामयिक विषयों पर लिखी कई मुक्तक कवितायें इस बात का समर्थन करने के लिये पर्याप्त प्रमाण मानी जाती हैं।

वास्तव में मानव-हृदय के कोमल भावों की अनुभूतिपूर्ण अभिव्यन्जना करने की अपेक्षा, उसके प्रतिभावान मस्तिष्क के गम्भीर विचारों तथा सिद्धांतोंका विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण करने में ही श्री उल्लूर को अधिक सफलता प्राप्त हुई है। अतः उनकी कविता पढ़कर कोई सदय पाठक कवि की अद्भुत कल्पना-चातुरी और अगाध पांडित्य की जितनी प्रशंसा करने लगता है उतनी उनकी भावुकता, मार्मिकता, और उद्भावना की सच्चाई के विषय में नहीं कर पाता है। अनुभूति की सच्चाई और तीव्रता की अपेक्षा उनकी कविता में कल्पना का चमत्कार और उपदेशों की भरमार ज्यादा है। कभी-कभी उनकी रचनायें इतनी विस्तृत और व्यापक बन जाती है कि उनकी रोचकता का बिलकुल ह्रास हो जाता है। पाठक उनको पूरा-पूरा पढ़े बिना बीच में छोड़कर अन्यत्र चले जाने के लिये अधिक उत्सुक बन जाता है। श्री उल्लूर एक बड़े कलावादी कवि नहीं कहे जा सकते। उनकी दृष्टि में काव्य रचना का कार्य, सौन्दर्यो पासना अथवा भावाभिव्यन्जना के लिये ही नहीं बल्कि लोक सेवा और जन संस्कार के लिये की जाने वाली साधना मात्र है। इसलिये उनकी कविता में सहजानुभूति और अन्तःस्फूर्ति के चेतनामय जागरण के बदले कल्पना प्रसूत उपदेशात्मक शुष्कता और जड़ता ही अधिक है।

श्री उल्लूर ने अपनी कविता के द्वारा केरल की जनता का उद्धार करने का प्रयत्न अवश्य किया है। उन्होंने साहस, परिश्रम, करुणा, मैत्री, बलिदान, प्रेम, सत्य, अहिंसा, आस्तिकता, त्याग, सामाजिकता, नैतिकता आदि मानव-जीवन के लिए जितने ही श्रेयस्कर विषय होते हैं उन सब पर अनेक महत्वपूर्ण सन्देश और सूक्तियाँ अपने देश के लोगों के सामने प्रस्तुत की हैं। अतः श्री उल्लूर मुख्यतः आधुनिक युग के विचारवान पौराणिक कवि हैं। उनके काव्यों में शास्त्रज्ञान, कलात्मक संयम, नैतिक गरिमा आदर्श-निष्ठा का बड़ा सुन्दर योग मिलता है। वे एक अनुभूति- सम्पन्न भावुक कवि की अपेक्षा एक सदाचारी, कर्मनिष्ठ, उद्योगी आचार्य की तरह अपने उपदेशात्मक एवं

विचार प्रधान काव्यों के द्वारा हमको जीवन की यात्रा के लिए सबसे सही रास्ता बता देना ही अधिक पसन्द करते हैं। यद्यपि उनके उपदेशों के अनुसार आदर्श जीवन बिताने में लोगों की सच्ची कठिनाइयों को भी वे स्वयं समझकर यथासम्भव दूर करने का प्रयत्न अपने कविता में ही करते हैं तो भी साधारण भूले-भटके मानवों के साथ एकात्मक होकर होने या हँसने की क्षमता उनमें कम दीख पड़ती है। अतः उनकी कविता पाठकों की भीतरी नैसर्गिक प्यास बुझाने में सफल नहीं होती। उनके अन्तर्जगत के भीतर गुदगुदी और पीड़ा जगा देने की कला श्री उल्लूर बहुत कम प्रकट करते हैं इसलिए श्री उल्लूर आधुनिक मलयालम-साहित्य के पोषकों में अग्रगण्य महाकवि और साहित्यकार होते हुए भी केरल के साधारण लोगों की हार्दिक प्रीति और सहानुभूति के अधिकारी नहीं बन सके हैं। लोग उनको बड़े आदर के साथ दूर से प्रणाम करने के अलावा दिल देकर अपनी ओर खींच लेने के लिए विशेष उत्सुक और तत्पर नहीं दिखाई देते। अतः श्री उल्लूर की कविता की लोकप्रियता के विषय में इतना ही बताया जा सकता है कि केरल के साहित्य प्रेमी विद्वान लोगों के सामने वे सर्वदा "परम पूज्य पद" पर विराजमान रहेंगे और उनकी सेवाओं का स्मरण बड़े आदर और सम्मान के साथ अवश्य किया जायगा। हाँ, साधारण जनता भी उनको कदापि नहीं भूल सकेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

उपर्युक्त तीनों अग्रगामी कवियों ने अपनी कठिन तपस्या और निरन्तर साधना के द्वारा मलयालम के वर्तमान काव्य जगत को अत्यधिक वैभवपूर्ण एवं आलोकमय बनाया है। अतः मलयालम के आधुनिक कविता के अरुणोदय-काल को इन 'त्रिमूर्तियों का युग' कहते हैं क्योंकि उनके दिखाये नवीनतम प्रकाशपूर्ण मार्गों का अवलम्बन करके ही प्रायः अन्य सभी प्रतिभा-सम्पन्न एवं भावुक कवि अपनी-अपनी व्यक्तिगत मौलिकता और विशिष्टता लेकर मलयालम के अभिनव काव्य-जगत में अत्यधिक सुगमता के साथ अग्रसर हो रहे हैं। ऐसे गण्यमान कवियों में सर्वश्री महाकवि जी शंकर कुरूप, वेण्णिक्कुलम गोपाल कुरूप, वल्लत्तोल गोपाल मेनोन, कुट्टमत्तु कुन्नियूर कुंजिकृष्ण कुरूप, नालप्पाट्टु नारायण मेनोन, सरदार के० एम० पणिक्कर, कुटिटप्पुरत्तु केशवन नायर, पल्लत्तुरामन, पी० कुन्जिरामन नायर, के० के० राजा, एन० गोपाल पिल्ला, एम० आर० कृष्ण वार्यर, वी० उण्णिकृष्णन् नायर आदि बीसों कवियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार इस युग की कई श्रेष्ठ कवयित्रियों की सफल एवं प्रशस्त काव्य-साधना का समुज्वल इतिहास भी यहाँ सर्वथा स्मरणीय है। उन कवयित्रियों में सर्वश्री नालप्पाट्टु बालामणियम्मा, के० माधवी अम्मा, मेरी जोणतोट्टम, मुतुकुलम पार्वती अम्मा, मेरी जोणकूत्ताट्टुकुलम आदि अवश्य प्रथम गणनीय हैं। यद्यपि उन सबकी सेवाओं का संक्षिप्त परिचय देना भी यहाँ सम्भव नहीं है, तो भी उनमें कम से कम महाकवि श्री जी शंकर कुरूप, श्री नालप्पाट्टु बालामणियम्मा, श्री के० एम० पणिक्कर, श्री वेणिकुलम गोपालकुरूप आदि दो-चार प्रमुख कवियों की काव्य साधना के विषय में थोड़ा-बहुत लिखे बिना रहना सर्वथा अनुचित होगा।

श्री जी० शंकर कुरूप सन् १६१७ से लेकर आज तक अपनी श्रेष्ठ रचनाओं से मलयालम भाषा के काव्य-साहित्य की श्रीवृद्धि निरन्तर करते रहनेवाले लोकप्रिय महाकवि हैं। वे आधुनिक समय के जीवित कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उनको मलयालम के "रविबाबू" भी कहते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मलयालम के अभिनव काव्य जगत में उनका स्थान सर्वथा अनुपम एवं अद्वितीय है। यद्यपि महाकवि आशान्, वल्लत्तोल और उल्लूर इन त्रिमूर्ति कवियों के साथ ही श्री जी० शंकरकुरूप भी मलयालम के काव्य जगत में अवतीर्ण हुए हैं, तो भी वे अपने लिए एकदम मौलिक एवं पृथक् मार्ग का आविष्कार करने में तथा अपने समकालीन कवियों से भिन्न अभूतपूर्व एवं अमूल्य काव्य-रत्न प्रस्तुत करने में अत्यधिक सफल सिद्ध हुए हैं अतएव उनकी रचनाओं में मलयालम के वर्तमान काव्य-साहित्य के सम्पूर्ण वैभव, नूतन कल्पनाओं, प्रेरणाओं तथा उद्भावनाओं स्पष्ट प्रतिनिधित्व, और मानव की चिरन्तन एवं सामयिक प्रवृत्तियों का चरम विकास हम अवश्य पा सकते हैं। प्रारम्भकाल में वे एक सौन्दर्योपासक प्रकृति-प्रेमी और

भावुक कवि के रूप में रङ्गमंच पर प्रकट हुए। उन दिनों की उनकी कविता की भाषा और शैली श्री वल्लतोल के समान सरल, सङ्गीतमय एवं उन्मेषप्रद थी। श्री उल्लूर चमत्कारपूर्ण उल्लेखों और अलंकारों का प्रभाव भी उन पर पड़ा था। लेकिन उनकी कविता के लक्ष्य और आदर्श में महाकवि "रवीन्द्र बाबू" की रहस्यवादी कविताओं का विशेष प्रभाव दीख पड़ता है। स्वयं श्री जी० शंकर कुरूप ही अपनी कविता के सम्बन्ध में यह व्यक्त कर चुके हैं कि महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर से बढ़कर उनकी भावना के क्षितिज और आदर्श-बोध के कुसुम का विकास दूसरे किसी कवि ने कदापि नहीं किया है। अतः श्री कुरूप की कविता में रवीन्द्रबाबू के अनुकरण की आकर्षक आभा दीख पड़ती है तो आश्चर्य नहीं है। लेकिन उनके अनुकरणों में भी कवि के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की अमिट छाप स्पष्ट रूप से विद्यमान है जिससे उनकी मौलिक कवित्वशक्ति का अनुभव पाठकों को सर्वथा प्राप्त होता है। अंग्रेजी के कवि शैली की कविताओं से भी श्री कुरूप काफी प्रभावित हुए हैं। अतः उनकी रचनाओं में इसके कई सुन्दर प्रमाण भी मिलते हैं।

श्री जी० शंकर कुरूप की प्रारम्भिक रचनाओं का संग्रह "साहित्य कौतुकम्" नामक चार भागों में प्रकाशित हुआ है। उन चारों भागों में हम उनकी सौंदर्योन्मुख काव्य-साधना के परिणाम के रूप में कई श्रेष्ठ फुटकर कविताएँ पाते हैं जिनमें प्रकृति के विविध सुन्दर दृश्यों का सजीव वर्णन कियां जाता है। प्रकृति के पुजारी होते हुए भी कवि केवल आनन्दोपलब्धि के लिए वर्णना-प्रधान, चमत्कारपूर्ण, गानात्मक कविताएँ करके सन्तुष्ट नहीं हुए, अपितु उनके द्वारा रहस्यात्मक साधना करके जीवनऔर विश्व के मर्म का अनुसंधान करने की चेष्टा भी करते हैं। कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में भी इस प्रकार की रहस्योन्मुख साधना के कई उज्वल प्रमाण मिलते हैं। अतएव उनको मलयालम के रहस्यवादी कवि की प्रतिष्ठा प्रारम्भ काल से ही प्राप्त हो चुकी थी। केरल के लोग महाकवि श्री जी० शंकर कुरुप को मलयालम के सर्वप्रथम "मिस्टिक कवि" और "सिम्बोलिक कवि" मानते हैं। हैं। हिन्दी के छायावादी और रहस्यवादी कवियों की तरह उनका भी मलयालम के काव्य-साहित्य में विशेष स्थान माना जाता है। इसी प्रकार केरल के लोग अपने इस प्रिय कवि का पूरा नाम लेने के बदले केवल "जी" के एकाक्षरी नाम से ही उनकी चर्चा किया करते हैं। इसलिये उनका नाम भी "जी" पड़ा है। इसी नाम से वे अधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय बने हुये हैं। वास्तव में इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महाकवि "जी" मलयालम के आधुनिक काव्यजगत के "जी" अर्थात् "चेतना" अथवा "प्राण" ही हैं।

इस समय महाकवि "जी" की रचनायें बहुत मिलती हैं। "साहित्य कौतुकम्" नामक चार श्रेष्ठ संग्रहों में उनकी प्रारम्भिक कविताएँ प्रकाशित हुईं। उनके बाद "नवातिथि", "सूर्यकान्ति", "ओटक्कुषल", "चेंकतिरुकल", "मुत्तुकल", "इत्तलुकल", "पूजापुष्पम", "निमिषम्", "पथिकन्टे पाट्टु", "अन्तर्दाहम", "वनगायकन्", "वेल्लिप्परवक्ल", "स्वातंत्र्योदयम्", "विश्वदर्शन", आदि अनेक उत्तम काव्य-संग्रह निकले हैं। "मेघच्छाया" और "विलास लहरी" उनके दो अनूदित काव्य हैं जो संस्कृत के "मेघसन्देश" तथा "उमरखयाम" के आधार पर रचे हुये हैं। "इलं चुण्ट्कल" और "ओलपीपी" बालकों के लिये लिखी उनको सरल कविताओं के संग्रह हैं। "सन्ध्या", "सागरगीत" आदि उनकी रचनाएँ भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं। उनके "विश्वदर्शन" नामक नवीनतम काव्य-संग्रह को इस वर्ष साहित्य एकादमी ने मलयालम की सर्वश्रेष्ठ कविता घोषित करके कवि को पुरस्कार भी प्रदान किया है। महाकवि "जी" ने अपने आदर्श कवि रवीन्द्र बाबू की विश्व विख्यात रचना "गीतांजलि" का मलयालम अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। वे हिन्दी के कवि जयशंकर प्रसाद की कविता कामायनी का पद्मानुवाद भी कर रहे हैं। महाकवि "जी" केवल पद्म में ही नहीं बल्कि गद्य में भी रचनाएँ करते हैं। उनका गद्य हिन्दी की सुविख्यात कवयित्री महादेवी वर्मा के हिन्दी गद्य के समान कवित्वपूर्ण एवं चित्रात्मक शैली का होता है। श्रीमान् "जी" के सम्पादकत्व में "तिलकम्" नामक एक श्रेष्ठ मासिक पत्रिका मलयालम में प्रकाशित होती है जिसमें उत्तम कविताओं के अलावा ज्ञानप्रद प्रौढ़ लेखों,

निर्भरता की अनुभवगम्य वास्तविकता तथा तीव्रत उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है। वे अपने जीवन के तीव्र एवं सच्चे अनुभवों को नंगे शब्दों में चित्रित करके पाठकों के सामने प्रस्तुत करना मात्र अपना कर्तव्य मानते हैं। व्यक्ति के जीवन की कठोर व्यथाओं तथा असह्य अभावों की करुण-गाथा सुनाना ही वे अपनी रचनाओं का मुख्य उद्देश्य समझते हैं। उनकी कविता में दुःखवाद, निराशावाद और पलायनवाद की अधिकता रहती है। कभी-कभी आत्महत्यावाद का समर्थन भी वे खूब करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे प्रायः अपने अनुभवों तथा अभावों के प्रति सच्चे और ईमानदार रहते हैं। इसलिए उनकी कविता में सच्चाई की अभिव्यक्ति पायी जाती है, जिससे वे बड़ी आसानी से अपने पाठकों की सहानुभूति के पात्र बन जाते हैं। सामाजिक एवं राष्ट्रीय कवियों की अपेक्षा अधिक लोक-प्रिय बनने का भाग्य भी उन्हीं को प्राप्त होता है। मलयालम के ऐसे कवियों में स्वर्गीय श्री एटप्पल्ली राघवन पिल्लै और स्वर्गीय श्री चंगमपुषा कृष्ण पिल्लै के नाम सर्वथा प्रथम गणनीय हैं। ये दोनों कवि एटप्पल्ली गाँव में पैदा हुए और एकसाथ जीवनयात्रा करने लगे। हम इन दोनों को एक ही शाखा पर बैठे एक ही स्वर में गाने वाले दो प्रेमगायक पक्षी कह सकते हैं। यद्यपि श्री एटप्पल्ली राघवन पिल्लै अपने अभावपूर्ण एवं असह्य जीवन से स्वयं आत्महत्या करके ही छुटकारा पा सके थे, तो भी उनकी रचनाएं केरल के युवक-युवतियों के बीच में सर्वदा अमर प्रभाव अवश्य डालती रहती हैं। श्री चंगमपुषा कृष्ण-पिल्लै अपने साथी के आकस्मिक अभाव से अत्यन्त आकुल हुए और अपने अपार दुःख को अमरत्व प्रदान करने के लिए उन्होंने "रमणन्" नामक एक गीति का नाटक भी रचा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज 'रमणम्' मलयालम के अभिनव काव्यों में सबसे अधिक लोक-प्रिय एवं प्रचलित ग्रन्थ हैं। इसके कुल बत्तीस संस्करण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं, यद्यपि यह कभी कहीं पाठ्य पुस्तक के रूप में नहीं नियत हो सका है।

स्वर्गीय कवि श्री चंगमपुषा कृष्ण पिल्लै अपने साथी स्वर्गीय एटप्पल्ली राघवन पिल्लै के साथ सन् १९३४ में मलयालम के काव्य जगत में अकस्मात् प्रत्यक्ष हुए। वे दोनों तरुणकवि एक ही वृक्ष पर खिले दो कुसुमों के समान अपनी ओर केरल की समस्त जनता को बराबर आकर्षित करते रहे। उनकी कविता में जो वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति और मार्मिकता प्रकट हुई उससे केरल के लोग अभूतपूर्व ढंग से प्रभावित हुए। लेकिन श्री राघवन पिल्लै ने अपने प्रेमोन्मुखी जीवन की विषमताओं से अत्यन्त अधीर और निराश होकर सन् १९३६ में ही आत्महत्या कर डाली। इन दो वर्षों के अल्पकाल में उन्होंने मलयालम को अनेकों भावप्रधान मर्मस्पर्शी कवितायें समर्पित की थीं। उनकी रचनाओं में वैयक्तिक प्रेम और निराशा, समाज के अत्याचार और अपमान, असमानता और दरिद्रता, उपेक्षा और तिरस्कार आदि विषयों पर लिखी मर्म-भेदक एवं शोक पूर्ण फुटकल कवितायें मिलती हैं। "तुषारहारम्", "हृदयस्मितम्", "नवसौरभम्", "मणिनादम्", आदि काव्य संग्रह उनके शाश्वत यश के प्रत्यक्ष स्मृतिसौध हैं।

तरुणकवि श्री राघवन पिल्लै की आकस्मिक आत्महत्या का जो कठोर आघात श्री कंगमपुषा कृष्ण पिल्लै को उस समय झेलना पड़ा था। उसी के फलस्वरूप उन्होंने उपर्युक्त "रमणन्" नामक गीतिका-नाटक की रचना की थी। "रमणम्" का कथानक श्री राघवन पिल्लै के जीवन की दर्दभरी एवं सच्ची घटनाओं पर आधारित है। उस रचना की लोकप्रियता के विषय में पहले ही यहाँ बताया जा चुका है। "रमणन्" के अलावा श्री चंगमपुषा कृष्ण पिल्लै ने केवल अपनी छत्तीस वर्षों की अल्पायु के समय के अन्दर पच्चासों खंडकाव्य, गीतिका-नाटक, फुटकर कवितायें आदि रची हैं। उनमें "वाष्पांजलि", "आराधकन्". "हेमन्त चन्द्रिका", "मदिरोत्सवम्", "मणिवीणा" "कलाकेलि", "मयूरनमाला", "देवयानी", "रक्तपुष्पंगल", "संकल्प कांति", "वत्सला", "तिलोत्तमा", "श्रीतिलकम्", अपराधिकल्", "ओणप्पूक्कल", "मोहिनी", "देवता", "सुधांगदा", "चूड़ामणि", "अमृतबीचि", "उद्यानलक्ष्मी", "स्पन्दिक्कुन्न अस्थिमाटम्", "आकाश गंगा", "दिव्यगीतम्", "देवगीता", "मानसेश्वरी", "यवनिका", "निवृत्ति", "निरूम्नतीच्चूला", "स्वरराग

सुधा", "मग्दल मोहिनी", "श्मशानत्तिले तुलसी", आदि आदि अनेक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। उन ग्रन्थों के कई संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। वास्तव में तरुण कवि श्री चंगमपुषा के समान आधुनिक काल में मलयालम के दूसरे किसी कवि ने इतनी बड़ी संख्या में लोकप्रिय काव्य-ग्रन्थ प्रस्तुत नहीं किये हैं। अतएव उनकी अकाल मृत्यु के बाद भी केरल के लोग उनको अपनी भाषा के सर्वश्रेष्ठ "जनीयकवि" मानकर सम्मानित करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। किसी प्रकार के धर्मभेद, जातिभेद, वर्णभेद, स्त्री-पुरुष भेद, आयु-भेद अथवा ग्रामभेद की भावना के बिना उसकी कर्णमधुर ललित-कोमलकान्त पदावलियों से सुरचित एवं सुसज्जित सरस, सुन्दर तथा मार्मिक कविताओं का प्रचार और प्रसार केरल में आज भी तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है जिसे देखकर हमको यह मानना ही पड़ता है कि वे केरल के 'जनमानस के प्रियतम कवि" अवश्य हैं। उनकी रचनाओं की इतनी बड़ी लोक प्रियता और अपूर्व आकर्षकता का सबसे प्रधान कारण यही है कि उनके अच्छे बुरे सभी काव्य एक सीधे-सादे साधारण मानव के हृदय की अगाधता से फूट निकलनेवाले सरल एवं सच्चे उद्गार अवश्य हैं जिनमें कपट या कृत्रिमता का लेशमात्र भी नहीं दीखता है, जो प्यासे पाठकों के मन के अज्ञात एवं अगाध कोनों पर भी अपना स्वाभाविक प्रभाव डालते हैं, और जिनके शब्द-चयन और शिल्पसौन्दर्य में संगीत-माधुरी और गानात्मकता का अपूर्व गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

स्वर्गीय श्री चंगमपुषा कृष्ण पिल्लै मलयालम के एक ऐसे श्रेष्ठ कलाकार और स्वच्छन्द कवि थे जो अपने समकालीन अथवा पूर्वकालीन अन्य किसी महान कवि की रचनाओं अथवा मार्गों का अनुकरण बिलकुल नहीं करते थे। वे सर्वथा पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहकर मनमाने ढंग से काव्य-साधना करते थे। वे किसी की निन्दा या प्रशंसा की जरा भी परवाह नहीं करते थे। अतः आधुनिक समय के अन्य कई कवियों की तरह उन्होंने किसी प्रकार के सिद्धान्त, "वाद" अथवा आदर्श का समर्थन या खण्डन करने के लिये अपनी कविता का उपयोग नहीं किया है। किसी प्रकार के अनुशासन के घेरे में बन्द रहना भी उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं था। वे किसी तरह के जीवन सिद्धांत अथवा कल्पित लक्ष्य के पीछे पागल होने के लिये भी तैयार नहीं थे। काव्य साधना करते समय वे अपने जीवन के शुष्क वर्तमान और स्थूल जगत की तीव्र अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यक्ति मात्र से अपने को सम्पूर्ण कृतार्थ मानते थे। किसी विषय के सम्बन्ध में अपना कोई निश्चित एवं सुदृढ़ सिद्धांत वे नहीं बता देते। उनके विचार और भाव सदैव परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। वास्तव में असन्तोष और निराशा, आशक्ति और विरक्ति, असहिष्णुता और विद्रोह, प्रेम और पीड़ा आदि ही उनकी अश्रुपूर्ण काव्य-धारा से उद्गम केन्द्र हैं।

श्री चेंगमपुषा के काव्यों की एक विशेषता यह भी है कि उनमें अभिव्यन्जित भावों के साथ कवि को भी हम पूर्ण रूप से तल्लीन पाते हैं। जीवन की क्षणिक एवं तात्कालिक अनुभूतियों की सच्चाई के मार्मिक और रोचक चित्र प्रस्तुत करते समय कवि स्वयं उनमें प्रविष्ट होकर रोते अथवा हँसते हुए दिखाई देते हैं। अतः उनकी कविता के सभी सजीव चित्र उन्हीं के जीवन से प्रेरित और अनुप्राणित माने जाते हैं। उनके हास्य में विवेक का और रुदन में संयम का स्वाभाविक नियन्त्रण कदापि नहीं रहता। उनको हम बहुधा एकदम बाँध तोड़कर हँसते हुए या रोते हुए ही पाते हैं। यह असंयत हास्य और रुदन उनके काव्यों की स्वाभाविकता और यथार्थता की रक्षा सदैव करते हैं। कल्पित हास्य अथवा रुदन के कृत्रिम चमत्कार उनकी कविता में कहीं नहीं नजर आते वे झूठा अभिनय करना बिलकुल नहीं जानते अथवा नहीं चाहते। 'अतएव उनकी प्रायः सभी रचनायें एक भोग-प्रिय तरुण एवं भावुक कवि की सहज और भोगोन्मुख अभिलाषाओं, उद्भावनाओं और अनुभूतियों से ओतप्रोत रहती हैं। यद्यपि श्री चेंगमपुषा के काव्यों में समय के अनुसार विद्रोह और क्रांति के उत्तेजक उद्गार काफी मिलते हैं और उनको कभी साम्यवादी विचारों का समर्थन करते हुए भी पाते हैं, तो भी वे एक क्रांतिकारी अथवा सुधारवादी कवि नहीं माने जा सकते हैं। उनके अन्तिम दिनों की रचनाओं में हम उनके एक पक्के पश्चात्ताप ग्रस्त व्यथित मानव के रूप में पाते हैं। वे एकदम पूर्ण

कहानियों और आलोचनाओं का प्रकाशन भी खूब हो रहा है।

जिस कवि का ध्यान जितना ही भावों की मार्मिक अभिव्यंजना की ओर केन्द्रित होगा, वह उतना ही सरस कवि होगा। महाकवि "जी" ऐसे ही कवि हैं। उनकी कविता में भावों को गोचर और सजीव करके अभिव्यक्त करने की अपूर्व क्षमता सर्वत्र प्रकट होती है। रमणीयता की दृष्टि से उनकी रचनायें व्यंग्य-प्रधान है। लाक्षणिक तथा प्रतीकात्मक प्रयोगों के द्वारा अमूर्त को मूर्त रूप देने में वे सर्वत्र सफल हुए हैं। उनकी लाक्षणिकता रूढि पर स्थित न होकर प्रायः प्रयोजन पर आधारित है। वे अपनी प्रतिभा तथा सूझ-बूझ के बलपर प्रयोजन के अनुसार अपनी चारों तरफ़ प्रकृति के रमणीय क्षेत्र से नवीन से नवीन लाक्षणिक प्रयोगों की सृष्टि करने में अतीव सफल हुए हैं। हिन्दी की रहस्यवादी और छायावादी कविता के सर्वमान्य सभी लक्षण महाकवि "जी" की मलयालम रचनाओं में भी हम अवश्य पाते हैं। करुणा, की भावना, सौन्दर्य दर्शन, परोक्षसत्ता के प्रति आकुलता नारी के प्रति नवीन दृष्टि, प्रकृति प्रेम, निराशा की भावना वैयक्तिकता का भाव आदि हिन्दी के छायावादी काव्यों के विषय पक्ष के गुण माने जाते हैं। महाकवि की रचनाओं में ये सभी गुण यथेष्ट मात्रा में विद्यमान हैं। इसी प्रकार शैली-पक्ष की दृष्टि से देखा जाय तो श्रीमान "जी" की कविता में लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय और शब्दों का नवीन प्रयोग बहुत अधिक मिलते हैं इन सबके अलावा महाकवि "जी" की कविता में सामयिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों का वास्तविक और आकर्षक चित्रण भी समुचित ढंग यथास्थान हम पा सकते हैं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि वे केवल एक अलौकिक, काल्पनिक एवं स्वप्न द्रष्टा कवि मात्र नहीं है, बल्कि यथार्थवादी, जागरुक, समझदार, दार्शनिक और कलाकार भी हैं जो अपनी समस्याओं को सुलझा कर जीवन के कठिन मार्ग को यथासंभव सुगम और सुखप्रद बनाने का प्रयत्न करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। अतः वे कदापि एक पलायन वादी कवि नहीं हैं। उनकी कविता में विश्वप्रेम की भावना सर्व प्रधान पायी जाती है। उनकी दृष्टि में प्रकृति प्रेम मानव प्रेम, देशभक्ति, समाजसुधार आदि समस्त विषयों का एक मात्र लक्ष्य है—विश्वप्रेम—विश्वशांति इस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वे ईश्वर, मनुष्य, प्रकृति सब प्रकार के विषयों की चर्चा अवश्य करते हैं। अतः महाकवि "जी" सर्वथा एक विश्वप्रेमी कवि और कलाकार हैं, जिनके सभी विचार और भाव सदैव विश्व-मंगल की पवित्र कामना लिये हुए हैं।

महाकवि "जी" अपनी कविताओं के द्वारा जो महान सन्देश देते हैं वह केवल एक जाति या देश के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए होता है। अन्य महान कवियों की भाँति उनकी कविता सर्वथा जीवन से अनुप्राणित है और जीवन की अभिव्यक्ति ही उसका मुख्य उद्देश्य है। उनके साहित्य में समस्त संसार के विविध विषयों का सुन्दर आभास प्राप्त होता है। अतः उनकी काव्य-साधना का क्षेत्र भी विश्वव्यापक बना हुआ है जिसमें धर्म, समाज, देश, मानव, दर्शन, सभ्यता, संघर्ष, प्रकृति, आदि अनेक विषयों पर असंख्य विचार बिखरे हुए मिलते हैं। आधुनिक, वैज्ञानिकता, भौतिकवाद, राजनैतिक संघर्ष और सामाजिक विषमता का चित्रण भी महाकवि "जी" अत्यन्त प्रभावजनक ढंग से करते हैं। इस दृष्टि से वे एक बड़े प्रगतिशील और क्रांतिकारी कवि माने जाते हैं।

महाकवि "जी" की तरह लोकप्रिय कवि न होने पर भी श्री नालप्पाट्टु बालामणियम्मा का मलयालम के आधुनिक पद्य साहित्य में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कवितायें भावगीतों की श्रेणी में आती हैं। सहृदयों की मानसिक अनुभूतियों को जगाकर गुदगुदी मचाने की अद्भुत कला का चमत्कार उनके गीतों में सर्वत्र विद्यमान है। स्त्री-हृदय और मातृहृदय के अत्यन्त रहस्यमय भावों को सुन्दरतम आकार देकर मूर्त रूप में अभिव्यक्त करने की अपूर्व क्षमता उनकी काव्य-कला की सबसे बड़ी विशेषता है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री श्री महादेवी वर्मा की तरह वे भी सौन्दर्योपासना और रहस्यानुसंधान

को अपनी रचनाओं के प्रेरणा-स्रोत मानती हैं। सौन्दर्य की समाराधना करने के लिए वे प्रकृति और नारी-हृदय के पवित्र क्षेत्रों को ही उपयुक्त विषय बनाती है। इसी प्रकार रहस्य की खोज में अन्तर्मुखी यात्रा करते समय उनको दार्शनिक एवं आस्तिक बनाना अनिवार्य हो जाता है। अतः श्री बालामणियम्मा की रचनाओं में प्रकृति-सौंदर्य, भाव-सौंदर्य और तत्व-सौन्दर्य तीनों अपनी चरम-सीमा में अभिव्यक्त हुए हैं। उनकी सबसे प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय रचना "अम्मा" नामक काव्य है। "कूप्पुकै", "कुटुम्बिनी ', "धर्म मार्गत्तिल", "स्त्रीहृदयम्", "भावन-यिल", "प्रभांकुरम्" आदि कई काव्य-संग्रह भी उनके कीर्ति स्तम्भ हैं।

स्वर्गीय सरदार श्री के० एम० पणिक्कर भी महाकवि उल्लूर की तरह मलयालम साहित्य की श्री वृद्धि करने वाले महान लेखक, आलोचक एवं कवि थे। वे सन् १९१४ से लेकर अपनी मृत्यु तक मलयालम में उत्तम से उत्तम कवितायें बराबर करते रहे। प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार की सभी प्रवणतायें उनके काव्यों में समान रूप से प्रकट हुई हैं। उनके लिए कविता, कहानी, उपन्यास, चम्पू, नाटक आदि सभी प्रकार की रचनाएं करना बाएं हाथ का खेल मात्र था। उनकी कविताएं सरल, सुबोध एवं विचार-प्रधान हैं। कल्पना-पक्ष और भावपक्ष दोनों का सुन्दर संयमपूर्ण सामंजस्य हम उनकी कविता में देख पाते हैं। वे एक प्रगतिवादी या छायावादी कलाकार नहीं, बल्कि अपने इतिवृत्तात्मक काव्यों में कलापूर्ण अभिव्यक्ति लाने में बड़े सफल साधक-कवि अवश्य थे। "चिन्ता तरंगिणी", "अमृत लहरी" आदि उनके विचार-प्रधान एवं तत्वान्वेषक काव्य हैं। "प्रेम-गीति", बालिकामृतम्", "चाटूक्तिमुक्तावलि" आदि उनकी लिखी शृङ्गार-रस-प्रधान सरस रचनायें हैं। "पंका परिणयम्", "सुकुमार विजयं", सिनिमातारम्" आदि उनके हास्य-रसपूर्ण काव्य-ग्रंथ हैं। इनके अलावा उन्होंने कई उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध आदि भी लिखे हैं। श्री पणिक्कर की बहुभाषाभिज्ञता, विद्वत्ता, अनुभव और वैभवपूर्ण जीवन के सजीव चित्रों से उनकी रचनाएं ओत-प्रोत हैं। अपने जीवन में सरकारी कर्मचारी और ओहदेदार होने की वजह से उनको प्रायः अपने देश केरल से बहुत दूर रहना पड़ता था, तो भी श्री पणिक्कर ने अपनी मातृभाषा मलयालम की जितनी बड़ी एवं बहुमुखी सेवा की है, उसका मूल्यांकन करना बिलकुल कठिन कार्य है।

केरल के लोग श्री वेण्णिक्कुलम गोपाल कुरूप को भी मलयालम के आधुनिक महाकवियों की प्रथम पंक्ति के सर्वथा अधिकारी मानते हैं। वे महाकवि वल्लत्तोल के सफल अनुगामी कहे जाते हैं। उनके काव्य सरस, संगीत-मय एवं सरल हैं। शिल्प-सौन्दर्य की मौलिक अभिव्यक्ति में उनकी समता करने वाला दूसरे कवि मलयालम में बहुत कम मिलते हैं। भाव-संयम और विचार-सौन्दर्य उनकी कविता की पंक्ति-पंक्ति में अत्यन्त मौलिक एवं आकर्षक ढङ्ग से अभिव्यक्ति होते हैं। सरलता और गाना-त्मकता उनकी रचनाओं के निसर्ग-सिद्ध गुण हैं। मनुष्य-जीवन की भिन्न-भिन्न सुन्दर स्नेहपूर्ण एवं सुसंस्कृत पहेलुओं पर स्पष्ट भावात्मक एवं विचारोत्तेजक चित्र प्रस्तुत करने की कला में वे अतीव निपुण हैं। जीवन की विषमताओं तथा जटिलताओं की तरफ कदापि भटक जाने की भूल किये बिना वे सदैव उसकी सुन्दरता और मधुरिमा को ओर आकर्षित होने वाले कलाकार हैं। उनकी रच-नाओं में "सौन्दर्यपूजा", "वसन्तोत्सवम्", "पुष्पवृष्टि, "वेल्लित्तालम्", "मानसपुत्री", "सरोवरम्", "केरलश्री' आदि काव्य-संग्रह बहुत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हैं। उनकी कविता की सरलता चित्रात्मकता, मार्मिकता और भाव-निर्भरता सर्वथा श्री वेण्णिक्कुलम" के अनितर-साधारण व्यक्तित्व के महत्व को उद्घोषित करने वाली विशेष-ताएं हैं।

उपर्युक्त "त्रिमूर्ति युग" के अनेकों कवियों के अलावा आधु-निक मलयालम के काव्य-जगत में अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व और जीवन-समीक्षा को लेकर अवतीर्ण होने वाले बीसों श्रेष्ठ कवि मिलते हैं। वे किसी दूसरे कवि के अनुकरण पर कविता करना अनुचित मानकर स्वतन्त्र रूप से अपनी इच्छा के अनुसार काव्य-साधना करते हैं। उनमें कई कवि ऐसे होते हैं जो केवल आत्माभिव्यंजन और वैयक्तिक कठिनाइयों व दुःखों का चित्रण मात्र करके सन्तुष्ट होते हैं। आत्म-

कर सकी। खण्ड-काव्य परम्परा का इन्हीं के हाथों श्री गणेश हुआ और इस विधा ने महाकाव्य का स्थान हड़प लिया। ये कवित्रय प्रतिभावान पुरुष थे और काव्याध्यवसाय में दत्तचित्त रहे थे। अंग्रेजी वाङ्मय से वे परिचित और टेनीसन्, कीट्स, शैली आदि प्रसिद्ध अंग्रेजी कवियों की रचनाओं से प्रभावित थे। कवीन्द्र रवीन्द्र जैसे भारतीय विभूतियों की युगान्तरकारी रचनाओं से आकृष्ट थे। कुमार नाशान की कविताओं की भावात्मकता ने दार्शनिक चिन्तनों से मिलकर अपूर्व काव्य गरिमा को अभिव्यंजित किया है। इनके दर्शन की आधारशिला नितांत भारतीय है। उपनिषदादि धार्मिक ग्रंथों के सूक्तों का नवीन तथा सुन्दर ढंग से वर्णन हुआ है। तत्कालीन सामाजिक असमताओं का विप्लवात्मक एवं उद्बोधनात्मक ध्वनि-स्वर से खण्डन किया। इस दृष्टि से आज भी आशान् श्रेष्ठ समाज परिष्कर्ता के रूप में स्मरणीय हैं। उल्लत्तोल ने विस्तृत तथा विविध विषयों को अपनाया और विविध शैलियों का प्रयोग किया। मानव जीवन के सच्चे तथा गहरे और स्वानुभूतिमय चित्र प्रस्तुत करने में वे सिद्ध-हस्त थे। करुण रस की अभिव्यक्ति करते समय वे पाठकों की अवबोध क्षमता पर ध्यान देते थे। कवि ने पौराणिक घटनाओं एवं पात्रों के द्वारा आधुनिक युग का विश्लेषण किया। वल्लत्तोल पर पश्चिमी काव्य शैली तथा भावों का ठोस प्रभाव पड़ा था, फिर भी वे भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की तिलांजलि नहीं कर सके। उल्लूर इन्हीं दोनों महाकवियों के समकालीन थे और अपने समयुगीन कवियों में सर्वाधिक पण्डित थे। उनकी काव्य-भाषा संस्कृत-निष्ठ रही है। उनकी अधिकतर कवितायें धर्मोपदेश से बोझिल हैं। उन्होंने खण्डकाव्य में भी महाकाव्य की-सी शैली अपनायी है। उनका काव्य-जगत अतुल्य रहा और वे अपने क्षेत्र में अजेय भी रहे।

सन् १९४९ तक होते-होते इन तीनों महाकवियों का रचनाकाल समाप्त हो जाता है। वस्तुतः प्रस्तुत काव्यकाल मलयालम साहित्य का स्वर्ण काल माना जा सकता हैं। काव्य में प्रयुक्त छन्द शैली परम्परागत रही। संस्कृत एवं द्राविड़ छन्दों के विस्तृत क्षेत्र का उपयोग किया गया है। प्रामाणिक अलंकारों का उचित प्रयोग और शब्दयोजना में सजकता आदि बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। गत तीन चार दशकों के मलयालम काव्य जगत में जी० शंकर कुरूप का नाम विशेष रूप से प्रसिद्धि पा चुका है। प्रारम्भ काल से ही 'जी' की कवितायें केवल कल्पना परक नहीं थी, प्रत्युत भावदीप्त भी थी। कवि के प्रकृति प्रेम ने अनुभूति की तीव्रता को सचेत कर दिया और उसने कवि को रहस्यवादी भी कर दिया। विश्वप्रकृति और उसके कार्य कलापों में जो अवाच्य शक्ति की अनुभूति है है उसकी चेतना से कवि अनुप्राणित हैं। 'जी' की रहस्यात्मकता की यही आधार शिला रही है। अनुभूति की रहस्यमय संकीर्णता को कवि ने सिम्बलों के माध्यम से स्पष्ट करने की चेष्टा की है। रहस्यात्मकता तथा प्रतीक पद्धति का आलम्बन स्वभाव 'जी' के विशेष शिल्प-विधान का परिचायक है और उनमें यह सहज स्वभाव-सा दिखता है। अन्य मलयालम कवियों के बीच में उनकी वैयक्तिकता यह है। मगर प्रस्तुत स्वभाव मात्र से 'जी' का कवि-धर्म सीमित नहीं रहता। जीवन सम्बन्धी मार्मिक अवबोधता तथा समाजगत विषमताओं का उद्भास कवि में सहजात- सापेक्षित गुण है। अतएव विषय ग्रहण का क्षेत्र व्यापक रहा है। साधारण विषय की स्वीकृति में भी उसकी महान उपादेयता लक्षित होती है। कवि देश-प्रेम के चित्रण में जागरूक हैं।[1] "राष्ट्र की समृद्धि एवं एकत्व को उद्वाहन-शक्ति कौन-सी है, इसका ज्ञान चिन्तक कवि में गहरे मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के हेतु जो स्वर अनुगुन्जित कर रहे थे उसे अब स्वतंत्र भारत के लोकोत्तर गुणालाप का रूप देकर संसार के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास वे अक्षुण्ण बनाये रखते हैं।" प्रस्तुत सजग देश प्रेम ने कवि में मानव मात्र के प्रति विशुद्ध एवं सात्विक अनुराग की सृष्टि की है और यथार्थ मानववादी दृष्टि कोण से उनकी रचनायें महान बनने लगी हैं। उनकी तूलिका सतत साधनाशील है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव 'जी' पर जो गहरा पड़ा था उसके युगान्तरकारी फल का उपभोग मल-

१. मलयालम साहित्य का इतिहास—साहित्य अकेदमी

यालम काव्य-धारा ने अपनी युग-प्रेरणाकी पूर्ति में यथेष्ट किया है। काव्य-शैली के बाह्य उपकरणों की उन्नति में 'जी' उदार हैं। मलयालम के स्वच्छन्द छन्दों की अवि-च्छिन्नता में आपका योगदान है। बिंबविधान के द्वारा सुन्दर ध्वन्यात्मक प्रयोग करके आपने अपना पृथक् व्यक्तित्व स्थापित किया है।

देश प्रेममय यथार्थ कल्पना को देखिये। कवि भारतजननी के सम्मुख श्रद्धावनत हैं।

"हे हिमगिरिमुकुट समुज्ज्वल माँ! हम तुम्हारा मनोहर वदन नयन भर देखें, हृदय भर देखें। हमारे अस्सी करोड़ करों में तुम अपना नव चैतन्य भर दो। हमारे अस्सी करोड़ नयनों को तुम अपने दिव्य दर्शन दो। तुम्हारे मणिरथ का भ्रमण-रव हमारे अस्सी करोड़ हृदयों में एक ही स्वर-ताल से प्रतिध्वनि कर दो।

एव नवीन सुन्दर कविता[1] निषलुकल नीलुन्नू (छायायें बढ़ती हैं) का थोड़ा परिचय प्राप्त करें। प्रस्तुत कविता अपने प्रणेता की प्रतिभा तथा वैयक्तिकता का साक्षात् परिचय देने वाली है। जीवन और मरण की छायाओं के विलक्षण मिलनमंच पर खड़ा होकर कभी आगे को और कभी पीछे को देखने वाली है—मनुष्यात्मा। उन्मुक्त आकाश मार्ग से, युग-युग से लेकर भटकते फिरने वाली आत्मा को एक क्षणिक विश्राम-स्थान मिला। वही मनुष्य शरीर है। विविध प्रकार की अनुभूतियों के अविराम स्रोतों ने पंचेन्द्रियों से ही बहकर उस आत्मा का तर्पण किया। आज वह वाहगृह (शरीर) बिलकुल पुराना हो गया है। उसके प्रति ममता भाव तो बढ़ता जाता है। फिर भी आज उसे छोड़कर ही जाना पड़ेगा। अन्त में 'मुरलीरव-मधुरमुख' कोई पथिक आकर बुलायेगा। तब इस गृह के किवाड़ों को बन्द किये ही बिना मैं जाऊँगा। सार्थवाह व्यूहों की अविराम गति से निबिड़ आकाश मार्ग से अब लक्ष्यहीन होकर यात्रा करनी है। निस्वन होकर आया और निस्वन होकर जाऊँगा। यह जगत इतना दरिद्र है क्या, कि मैं भूख से मर जाऊँ?······पारावास्य गृह में रहा था मैं। 'तेनत्यक्तेन भुंजी था', सुना था। मैं जानता हूँ वह मेरी ही वाणी है।·········।" यही है जी शंकर कुरुप का भाव लोक!

सन् १९३० से '३५ तक के समय में मलयालम काव्य-जगत में सर्वाधिक मुखरित नाम चंङम्पुषा कृष्ण पिल्लै का है। कीट्स और शैली के प्रेमगीतों से कृष्ण पिल्लै पूरे प्रभावित थे। उनकी कविताओं में कवि के अन्तर्गत की अभिव्यक्ति होती है। कविता का विषय प्रेमपरक है, जो व्यक्तिगत अनुभवों से अनुप्राणित भी हैं। जीवनगत विषमताओं के संग्राम से पीड़ित और प्रेमजन्य निराशा से व्याकुल कवि के वैयक्तिक कुण्ठावाद का स्वर उन कवि-ताओं की विशेषता है। यह वेदना तीव्र एवं संवेदनशील है और युवक हृदयों को अधिक मोहित कर सकी। इस प्रकार चंङम्पुषा की कवितायें सामान्य जनता के भी कण्ठस्थ होने लगीं फलतः कृष्ण पिल्लै जनसाधारणों के कवि के रूप में नामी हो गये। इनके संतत सहचरी मित्र थे, इड़प्पल्लि राघवन पिल्लै, जो कृष्णपिल्लै के ही समान विषादात्मक कवि थे। उनमें वेदना की तीव्रता अधिक था और अन्त में उन्होंने प्रेमनिराश हो आत्महत्या कर डाली। वर्तमान काल से कवि पीड़ित थे और भूतकाल के सपने देखते थे। जीवन अन्धकारमय है, यहाँ निराशा और मरण ही वरणीय है, यही भाव उनकी कविताओं में ध्वनित होता था।

चंङम्पुषा कम उम्र में ही परलोक सिधार गये। फिर भी उनकी काव्य सम्पत्ति समृद्ध है। कवि के लिए जीवन कलुषित तथा दूभर रहा था। जीवन में प्रकट होने वाले निर्दय और कपट व्यवहारों का चित्रण करने में उनकी तूलिका सूक्ष्म रही थी। "इस कपट संसार में मेरा दिल निष्कपट है, यही मेरी पराजय का कारण है।" इस निष्कपटता की दुहाई ने लोगों को कवि की ओर आकृष्ट कर दिया और कवि उनके प्यारे बन गये। वस्तुतः चङम्पुषा की कवितायें सरस, कोमल, कांत पदावली से अतीव सुन्दर रही थीं। इसके अलावा उनकी गीत शैली सर्वहारी रही थी। भावुक हृदय की तीव्र प्रेमानुभूति ने जनहृदय को मुग्ध कर लिया। उनकी मनोहर गीतशैली के कारण गानगन्धर्व का उपनाम आपको

१. कविता १९६३, कवितासमित, त्रिवेंद्रम।

रूप से दुःखवादी, निराशावादी अथवा पलायनवादी बन जाते हैं। आदर्श-हीन एवं लक्ष्य रहित भोगपरायण जीवन बिताने के कारण उनको कई बार पश्चात्ताप के आँसू भी पोंछने पड़े थे। इन सब बातों से हम इतना ही बता सकते हैं कि श्री चेंगमपुषा की कविता और उनके वास्तविक जीवन के बीच में अगाध और अभिन्न सम्बन्ध अवश्य रहता है। उन्होंने अपने अश्रुपूर्ण जीवन की शुष्कता और सच्चाई के स्वाभाविक घेरे के बाहर किसी भी हालत में अपनी कविता कामिनी को हटा ले जाने का प्रयत्न नहीं किया है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उन्होंने जब कभी जो कुछ सुनाया है और जो कुछ लिखा है वह सब उस वक्त उनकी दृष्टि में सौ फी सदी सत्य अवश्य था। उसी तात्कालिक सत्य से अनुप्राणित होकर ही उनकी अनियन्त्रित जीवन लीला का मार्मिक संगीत सदा के लिये विश्व में मुखरित हो उठा है।

केरल में अपनी वैयक्तिक लालसाओं की असफलता में निराश होकर आँसू बहाने वाले अनेकों तरुण कवि आज भी श्री चेंगम्पुषा और श्री एटप्पल्ली का अनुकरण करते रहते हैं। लेकिन उनकी रचनाओं में वह मौलिकता, मार्मिकता और मधुरिमा बिल्कुल नहीं मिलती है। इसलिए यहाँ उन सबकी चर्चा करने की विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। ऐसे अनेक दुःखवादी प्रेमगायक कवियों की तरह आधुनिक मलयालम में बहुत से राष्ट्रवादी, समाजवादी, साम्यवादी, क्रांतिवादी, शांतिवादी, विध्वंसवादी एवं प्रगतिवादी तरुण कवि भी मिलते हैं। प्रायः उन सबकी रचनाएँ राष्ट्र और समाज की वर्तमान दुर्दशा दूर करने के महान उद्देश्य को लेकर लिखी हुई हैं। एक समत्व-सुन्दर एवं सुखपूर्ण भविष्य की मधुर कल्पना से प्रेरित होकर विषमता और वेदना से ग्रसित वर्तमान की कड़ी आलोचना करने की मुख्य प्रवृत्ति ही हम ऐसे कवियों में ज्यादा पाते हैं। संहार और विध्वंस की तीव्र शंखध्वनि मुखरित करने का अदम्य उत्साह भी उन कवियों में बहुत अधिक है। उनकी रचनायें कभी-कभी अत्यन्त सामयिक एवं प्रचारात्मक बन जाती हैं। आधुनिक समय के उदीयमान तरुण कवियों में सर्वश्री पी० भास्करन, वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनोन, एन० वी० कृष्ण वार्यर, एम० पी० अप्पन, पाला नारायण नायर, नालंकल कृष्ण पिल्लै, वयलार रामवर्मा, इटश्शेरि गोविन्दन नायर, अक्कित्तम्, ओलप्पमण्णा, ओ० एम० अनुजन, ओ०एन० वी० कुरूप आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सब कवियों को एक ही स्तर अथवा श्रेणी के कवि कदापि नहीं कह सकते। इनमें प्रत्येक कवि की अपनी निजी विशेषता और पृथक् दृष्टिकोण अवश्य है। इनमें कुछ कवि प्रयोगवादी भी पाये जाते हैं। इनमें कुछ प्रमुख कवियों की काव्य-साधना का संक्षिप्त परिचय देना भी स्थानाभाव के कारण असम्भव नहीं है। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन सभी उदीयमान कवियों की उत्साहभरी सेवाओं के फलस्वरूप मलयालम का आधुनिक काव्य-साहित्य भारत की ही नहीं, बल्कि विश्व भर की इतर भाषाओं के काव्य-साहित्यों के सम्मुख अपना सम्मुन्नत शीर्ष उठाने योग्य अवश्य बना हुआ है। आशा है आगे भी मलयालम अपने श्रेष्ठ काव्य-साहित्य की प्रगति और विकास पूर्वाधिक तीव्र गति से करती रहेगी और विश्व-साहित्य में भी अपने लिए गण्यमान्य स्थान पाने में सर्वथा समर्थ सिद्ध होगी।

मलयालम काव्य में नये प्रयोग

एन० चन्द्रशेखरन नायर

किसी भाषा के काव्यवाङ्मय के नये प्रयोग का क्या तात्पर्य है ? अनेक वर्षों के भीतर परम्परा से ईषद् अन्तर दिखाने वाली कविता की उद्भावना कहीं, चाहे हो, परन्तु फिर भी वह अंततः कविता तो ही है। काव्य अथवा 'कविता' शब्द के भाव-बोध की अपनी सीमा होती है। इसी सीमा-परिधि के भीतर रहते हुए कैसे नये-नये प्रयोग किये जा सकते हैं, यह प्रश्न वस्तुतः चिन्तनीय है। समयानुकूल तथा परिस्थिति जन्य अन्तर तो मिलेगा ही। काव्य के प्रणेता मनुष्य हैं जो समाज जीवी हैं। अतएव विषय-ग्रहण में पृथक् याने नयी अनुभूतियों की अवतारणा का होना स्वाभाविक है। अठारहवीं सदी के और बीसवीं सदी के जगत्व्यापार में, भावजगत में पर्याप्त अन्तर मिलेगा। इसका असर काव्य-व्यापार पर भी पड़ सकेगा। यह काव्य की गत्यात्मकता का परिचायक है। प्रस्तुत वस्तुसम्बन्धी गतिशीलता शैली के सम्बन्ध में भी लागू हो सकती है। भावानुकूल शैली अपेक्षित है जो व्यापकता अथवा परिष्कृति-बोधक है।

पूर्वकालीन कवियों की अभिव्यंजना शैली को दृष्टि में रखकर उचित व्यंजना की नयी उद्भावना की जा सकती है। यह शब्दों के बिम्ब-विधान में सावधान रहकर ध्वनि-मूलक स्पष्टता में चमत्कारिता लाने की बात है। छन्दों के विषय में परम्परा के विपरीत नया प्रयोग होना और उसे तुरन्त ही स्वीकृति मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

उपर्युक्त विवेचना की दृष्टि से पिछले दो दशकों के मलयालम काव्य-वाङ्मय की संक्षिप्त चर्चा यहाँ की जा रही है।

मलयालम की काव्य-धारा आज अगत्यात्मक नहीं है। मगर काव्यास्वादन करने में आवश्यक संवेदनात्मक अभिनिवेश का ह्रास हो रहा है। काव्य के आशयग्रहण में अपेक्षित बुद्धिपरक प्रयास आज सुक्षम नहीं दिखता। उपन्यास एवं लघु कथाओं से अथवा सिनेमा आदि मानसिक परितोष की सुगम सामग्री से अधिकांश लोग, चाहे वे पढ़े-लिखे ही क्यों न हो, आत्मतृप्त हो जाते हैं। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि काव्य की गीत शैली से जनता अधिक आकृष्ट है। कविता के स्थान पर गीत का प्रभुत्व होता दिखाई पड़ता है। यह आकर्षण उस गीत की साहित्यिक विशिष्टता या संगीत-सम्बन्धी शास्त्र-बोध के प्रति अभिरुचि के कारण नहीं है, प्रत्युत उसकी सरल शब्दावली तथा मधुर स्वर-लहरी और समष्टि रूप में उसकी चमत्कारिता के कारण है। 'सेक्स' का नग्न शब्द चित्र खींचकर चमत्कार लाया जा सकता है। मतलब यह है, काव्य-वाङ्मय के आधुनिक चर्चा करते समय आस्वादन पक्ष की बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

मलयालम के भूतकालीन काव्यों में परिलक्षित अपरसीम काल्पनिक भव्यता का संस्पर्शन आज विरले ही बन्द है। उसके स्थान पर सहज बोधगम्य गीतों ने धाक जमा लिया है। इसका यह आशय नहीं है कि मलयालम में सुरुचि पूर्ण उदात्त काव्य-शिल्पों का सृजन नहीं होता।

मलयालम के 'काल्पनिक युगीन' महा कवित्रय थे कुमारनाशान, वल्लत्तोल नारायण मेनोन और उल्लूर परमेश्वर अय्यर। इन्होंने क्लासिक काव्य-विधाओं को लेकर साहित्य-जगत में पदार्पण किया था। मगर पीछे इनके काव्य की गति रोमान्टिक क्षेत्र की सम्पूर्ण विशेषताओं को ग्रहण

मिला था। आपकी कविताओं में समाजवादी दृष्टिकोण की झलक मिलती है। इनकी अधिकतर रचनाएँ द्राविड़ छन्दों में और गीत शैलियों में हैं।

गत काल्पनिक युग की काव्यशैलियों का प्रभुत्व वर्तमान कालीन काव्यवाङ्मय पर हुआ है। उनमें भावगीतों का खूब प्रचलन है। काव्य में वैयक्तिक कुण्ठावाद, जैसे चन्ङम्पुषा की कविता में तीव्रतर रहा था, आज की कविता में भी कहीं-कहीं होता है। मगर सम्पूर्ण निराशावाद के परिधान में नहीं। विप्लव परक अंश भी मिलता है। प्रेमानुभूति की नवीन अभिव्यक्ति, प्रकृति पर मानवीय आरोप, और नयी अभिव्यंजना की प्रयोग क्षमता आज की कविता की विशेषतायें हैं। कविता पूर्वाधिक बौद्धिक होती जा रही है। जीवन की समीपता पा लेने के कारण कविता की काल्पनिक पृष्ठभूमि में वास्तविकता का परिवेश दिखता है। परिश्रमी कविता की रोमान्टिक शैली के अनुकरण का आज लोप होता जा रहा है। इस विशाल विश्व के असंख्य कार्य-कलापों और वस्तुओं को काव्य-विषय के अन्तर्गत पाया जा सकता है। जीवन के भौतिक अभावों से उत्तप्त निम्न स्तर के मनुष्य काव्यनायक होते दिखते हैं। काव्य-वाङ्मय के इस स्वतन्त्र भाव-ग्रहण के साथ-साथ शैलीगत स्वतन्त्रता को भी अपनाया गया है। पश्चिमी साहित्य की युद्धोत्तर प्रवृत्तियों का अनुशीलन अनुसरण मलयालम काव्य पर प्रभाव डाल सका है। गत दो आगोल युद्ध की भीषण क्षति ने मानव मन के चिर-संचित सुन्दर संकल्पों को तितर-बितर कर दिया है। एतद्विषयक प्रश्नों ने चिंतकों और साहित्यकारों के बुद्धि-मण्डल को मथ दिया है। इसके प्रतिक्रिया-स्वरूप काव्य-साहित्यादि क्षेत्रों पर भी अस्वस्थता तथा आकुलता का अभिक्रमण हो पाया है। भारतीय साहित्य में उपर्युक्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त राष्ट्रीय जागरण की चेतना का भी संस्पर्शन था। मलयालम काव्य वाङ्मय इस गति के साथ बढ़ता जा रहा है। "[1] वैज्ञानिक अववोधना तथा तदनुकूल जीवन वीक्षण हो रहा है। परिणाम वाद, आपेक्षिक सिद्धांत, परमाणु सिद्धांत, आदि तथ्य चिंतनों ने मानव के जीवन दर्शन एवं विश्वासों में जो क्रान्ति मचा दी है उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़े बिना रह नहीं सकता। मलयालम वाङ्मय में प्रस्तुत क्रान्ति का प्रसार हो रहा है। जहाँ वेदांत, पुर्जन्म संहिता, दर्शन आदि प्रेरणा स्रोतों ने काव्ययुगों को संचालित रखा था वहाँ आज शास्त्रयुगीन भौतिक विज्ञान भाषा वाङ्मय पर प्रभाव डाल रहा है।"[2] "मलयालम काव्य आज अपने लिये अन्तर्भाव और नयी शैली की खोज में है। अनुनिमिष संकीर्ण होने वाला समयुगीन जीवन और संकीर्ण मूल्यों के क्षेत्र में अवस्थित अराजकता के साथ काल्पनिकता मेल नहीं खाती। मगर काल्पनिकता के सद्भावों की अवहेलना भी सही नहीं जा सकती। आत्माभिव्यक्ति पर आस्था रखने वाले हमारे कवियों के सामने यह प्रश्न बड़ा ही विलक्षण प्रतीत होता है। अतएव इस प्रश्न का हल करने में सजग रहते हैं दूसरे आगोल युद्ध के बाद (१६४५ से १६५५ तक के) दशक को The pirk Decade नामक संज्ञा पश्चिमी साहित्य में दी गयी है। इसी प्रकार मलयालम साहित्य के सम्बन्ध में भी उक्त दशक को 'लाल साल' की संज्ञा क्यों न दी जाय? केवल पिछले साहस, बालिश विप्लव मोह और क्षणिक विकारावेश का संभ्रामक आक्रमण ही तब सामूहिक जीवन और साहित्य पर हुआ था।...मगर आज हमारे कवि जीवन को गम्भीर तथा असीम सत्ता के समक्ष नम्रशीर्ष तीर्थयात्रियों के समान जा पहुँचे हैं। आज एकान्त ध्यान तथा सुदीर्घ तपस्या जीवन से भागकर नहीं, प्रत्युत जीवनोन्मुख होकर—के उत्प्रेरक एकमात्र अंतदर्शन कविता की समस्त चेतना का निदान माना जाता है।"

मार्क्सवाद से प्रभावित कवितायें मलयालम में मिलती हैं। केटा मंगलम पप्पुकुक्ट्टी के 'कटत्तुवंची' 'अवल परन्नु' आदि संग्रहों में समाज के निम्न स्तर के किसान-मजदूरों के दयनीय और स्थितिशील जीवन के करुण चित्र अंकित हुए हैं।

आधुनिक मलयालम कविता की गति का परिचय देने वाली कवितायें हैं पी० भास्करन की कवितायें। उनकी

१. मलयालम साहित्य का इतिहास
२. कविता १६६३

कवितायें अधिकतर गीतशैली की हैं। भावावेग को संयमित रूप से सकरूण चित्रित करने की क्षमता उनमें है। 'ओकुंक वल्लप्पोषुम' (कभी स्मरण करो) नामक कविता देखिये। पतिगृह जाते समय अपनी बाल्य सखी को पड़ोसी प्रेमी युवक का संदेश है–'कभी याद करो।' इन परिसीमित शब्दों का उपयोग करके अपनी भारी हृदय-व्यथा को उस संदर्भ पर व्यक्त किया है। भाव गीतों की सुन्दर अभिव्यक्ति एम० पी० अप्पन की कविताओं में मिलती है। कुछ कवितायें वीर रसद्योतक हैं। कविता में प्रसाद गुण है।

स्त्री के हृदय की सुन्दर कल्पनाओं को चित्रित करने में बालामणि अम्मा ने सफलता पायी है। नारीत्व से बढ़ कर मातृत्व के भाव शिल्पों की प्रधानता उनकी कविता में है। अधिकतर कविताओं में रहस्यात्मकता का समावेश हो पाया है। उदात्त संकल्प और नर्मबोध का उत्तम उदाहरण है[1]—विश्वामित्र नामक उनकी लम्बी कविता। युगों के पश्चात्, स्वयं अपने जीवन व्यापारों का विश्लेषण करके मुनीश्वर विश्वामित्र देखते हैं, प्रशान्त भाव से तटस्थ दृष्टि से! वह जीवन कैसा जटिल और अशांत रहा था।

स्वानुभूति परक विषयों के साथ ही जीवन के नानामुख दृश्यों तथा देशीय भावों को अभिव्यंजित करने में दत्त-चित्त हैं, पाला नारायणन नायर। आपका अन्तर्नयन सजग है और सर्गशक्ति गतिशील। सुख-दुःखमय धरती पर खड़े होकर आप स्वर्ग की कल्पना कर सकते हैं। अतः आप की कविताओं में कल्पना सौन्दर्य के साथ यथार्थ चित्रण भी पर्वत्र पाये जाते हैं। शब्द चयन में कवि सावधान रहते हैं जिसके कारण पाठकों के सामने विगत मर्मस्पर्शी चित्र अनावृत हो जाते हैं। 'आशा मट्टोन्निल्ला' (और कोई आशा नहीं) नामक कविता में देखिये—

"दूर कैलाश पर अब भी तप करने वाले गिरिजापति के मौली-बंधन से गिरकर मेरी जननी मातृ-भूमि के मानस उत्सव की भाँति गङ्गा नदी, सिंधु के साथ साभिराम नाचती-गाती-बहती ही जाती है।"

कवि के 'केरलम वलरुन्नु' (केरल बढ़ता है) काव्य संग्रहों में मातृ देश से सम्बन्धित बहुमुखी भाव समाहित हैं। बहुचर्चित एक सुन्दर कविता अमृत-कला का एक पद्य मलालम में ही पढ़िये :—

"लहरि पिटिच्चु मदिच्च वलाहक—
नटिकळारंङिय गगन तलंङलि—
लह मह मिकया मृदुहसित द्युति
पोषियुमुडुक्कळ कटाक्षिक्कुम्पोल
पंदमिटरुँ पटि परिभवलज्जा
भरितमुखत्तोडु भूवलयत्ति—
न्नभिमुखगतियाय् शशिकलिके नी
यणियर पूकुकिलनुचितमल्ले?"

'हे शशिकलिके, भरिभत्र लज्जाभरित मुख को लेकर भूवलय की ओर लड़खड़ाते-से चरणों से जाकर शयनागार में प्रवेश करेगी तो, वह अनुचित नहीं है क्या, जबकि उन्मद वलाहक नटियों के विहारित गगन तलों में अहमह-मिकया मृदुहसित द्युति बरसाने वाले नक्षत्र देखते रहते हैं?' 'इस मनोहर भावचित्र के भीतर से कवि की तप्त कल्पनाओं को सचेत करनेवाला एक अनुभूत रूप की छाया भी भासित होती है।'[3]

सहज कल्पना तथा तदनुयोज्य बिम्बविधान का सुन्दर सामंजस्य वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनोन की कविताओं की विशेषता है। मानुषिक भावों की कलामय एवं तीव्र अभिव्यक्ति के साथ वैज्ञानिक अवबोधता भी उनमें विद्यमान है। उनकी कल्पना की सुमगता के लिए उत्तम उदाहरण है 'माम्पषम' (आम्रफल) नामक कविता। आँगन के छोटे आम्र वृक्ष में नयो-नयी फूटी आम्र मंजरिकाओं को पुत्र ने खेलते हुए तोड़ डाला। "मंजरिका तोड़ता है तो आप क्या खायगा" कहकर माता ने मारा तो पुत्र ने वेदना से

---

1. कविता १९६२
2. 'अमृत कला' एन० बी० एस०
3. भूमिका—अमृतकला।

विह्वल होकर कहा, "आम चुनने को मैं नहीं आऊँगा।" शब्दों को मिलाकर कहने में तुम असमर्थ हो, मगर भविष्य दर्शन करने वाले देवज्ञ हो। माघ की तप्त गर्मी से 'नव आम्र का मरतक फल सौगन्धिक स्वर्ण बनने के पहले ही आम गिरने की प्रतीक्षा किये बिना ही उस माता का कोकिल पिंजरा छोड़ परलोक को उड़ गया।" आगे की पंक्तियाँ दिल को शाश्वत चोट पहुँचाने वाली हैं। "उस छोटे आम्र वृक्ष का प्रथम मधुर फल गिरा। वह उस आँगन में वैसा ही पड़ा रहता है। माता की आँखें अश्रु कलुषित हो गयीं। पड़ोस के बच्चे बड़े ही उत्साह से अपने घर के आमों के मधुर फलों को उठा लेते हैं। उन बच्चों के लिये वासन्तिक त्योहार है, लेकिन इधर उस माता की आँखें आँसुओं से अन्धी वर्षा की सृष्टि करती हैं। थोड़ी देर वहाँ खड़ी रही। फिर अपने दुष्कर्म फल जैसे उस फल को उठा लिया और अपने प्यारे की कब्र पर रखकर कहा—"नन्हा! तेरे नन्हे हाथ से उठाये जाने के लिए और तुझे खिलाने के लिये यह फल आया है। मगर, बच्चा! तू रूठ कर चला गया। फिर भी जब तक इसे, मेरा बेटा नहीं खायेगा तो मुझे चैन नहीं।......" कैसी उदात्त मधुर काव्य-भावना है! इस कविता में प्रयुक्त बिम्ब-विधान-कौशल भी दृष्टव्य है।

ओ० एन० वी० कुरुप, इडश्शेरी गोविन्दन कुट्टि नायर और वयलार रामवर्मा की कवितायें साधारण जनता के जीवन का अधिक संस्पर्शन करने वाली हैं। समकालीन जीवन का ठोस स्पन्दन इनकी कविताओं में मिलता है। गतानुगतिकता, रुठी, अन्धविश्वास, स्थितिशील सामाजिक असमतायें इनके विरुद्ध इन युवकवियों के विप्लपटक उद्-बोधन केरलीय जनजीवन पर प्रभाव डाल रहे हैं। ये केरली के प्रिय कवि बन रहे हैं। ओ० एन० वी० कुरुप के काव्य-जीवन में क्रमिक विकास हो रहा है। एक गति-शील स्वस्थ काव्य स्रोत का पूर्वाधिक गहरा तथा व्यापक विकास! वयलार रामवर्मा के काव्य जीवन में यह व्यापक विकास नहीं मिलता। उनकी कविता का भाव क्षेत्र सीमित है। मगर इडश्शेरी की रचनायें इन दोनों की रचनाओं से भिन्न है। उनके सामने विस्तृत पुराण कथायें फैली पड़ी हैं। उनका नवीन ढङ्ग से पुनराख्यान करना भी कम महत्वपूर्ण प्रयास नहीं है। रचना शैली में भी नवीनता मिलती है। 'अम्पाटियिलेक्कु वीण्टुम' (फिर ब्रज की ओर) नामक कविता का अंश देखिए—"कृष्ण ब्रज की ओर लौट आता है। रथ चलाता है दारुक। दारुक ब्रज तथा कृष्ण के बारे में सोचता है। बीच में रथ लो, रुक गया! रथ ब्रज में पहुँचा है। कालिन्दी में नहाने जाने वाली गोपिकायें सूत से पूछती हैं, हे सूत, तुमने रथ क्यों रोक दिया? 'ये' हमें नहीं जानते। जल्दी ले जाओ। बिलम्ब न करो। ये (कृष्ण) माता जी को देखने जा रहे हैं..." इत्यादि। यह नवीन कविता पौराणिक कथा का उपजीवन करते हुए बढ़ती है। फिर भी यह भावलोक भारतीय है। "सुख दुःख दोनों ही स्पृहणीय हैं, अत्यन्त सुलभ सुखागार महल उत्पीड़न का कारण है। बीच-बीच में मीठे के बाद नमकीन रहे। हे, विरोधियों! वह अभंगुर सुख भोग तुम्हारे लिये हो जाये। वियोग एवं विघ्न से रहित सिद्ध प्रणय तुम भोगो। एक बूँद रक्त को न बहाकर प्राप्त विजय तुम भोगो। मुझे इन निम्नोन्नत मार्गों से रथ चलाने में मजा आता है।" इस प्रकार की प्रतिपादनरीति में नवीनता का अभाव नहीं। इस कविता का छन्द प्रयोग भी अपूर्व प्रचलित है।

एक अंग्रेजी काव्य-विधा 'सोनट' (चतुर्दशपदी) का अनु-करण भी मलयालम काव्य में हुआ है। इसे मलयालम में 'गीतक' की संज्ञा दी गयी है। गीतक परम्परा का मलयालम में आदि प्रवर्तक प्रोफेसर पी० शंकरन नम्पियार थे। सोनट का जन्म पहले पहल इटली में हुआ। बाद में सर तोमस व्याह (Sir Thomas Wyatt) ने इसका इंग्लैंड में प्रचार किया। अंग्रेजी सोनट के बाह्य और आभ्यन्तर नियमों का यथातथ पालन मलयालम 'गीतक' में नहीं हुआ। चौदह पंक्तियों में एक ही आशय और एक ही रस की अभिव्यक्ति उसमें होती है। प्रास-विचार में भी अंग्रेजी की व्यवस्थित रीति अपनायी नहीं जाती थी। मलयालम में इस काव्य विधा का समर्थ प्रचलन उन्नीस सौ तीस से उन्नीस सौ पच्चास तक के समय में हुआ। वेण्णिक्कुलम गोपाल कुरुप का नाम यहाँ विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने मधुर लय-ताल से गीतकरीति की अनेक रचनाएँ की हैं। जी० शंकर कुरुप, के० के० राजा, एम०

पी० अप्पन, के०एम० पणिक्कर, वैलोप्पिल्ली, अक्कित्तम, उल्लूर आदि कवि इस काव्य विधा के नामी कवि हैं। पश्चिमी काव्य वाङ्मय में 'सोनट' का जो विशेष मनोहारिता दृश्यमान थी वह मलयालम गीतक में उसी रूप में उतनी नहीं मिलती थी। जीवन के नाना विध प्रश्नों की अभिव्यक्ति करने में यह विधा सक्षम नहीं थी। अतः मलयालम काव्य धारा ने अन्य उपादानों का आश्रय स्वीकार करके अपनी गत्यात्मकता का परिचय दिखाया। नयी-नयी उद्भावनायें लेकर प्रतिभावान कवि मलयालम काव्य-धारा को गतिशीतल बनाये रखने के पुनीत प्रयत्न में दत्तचित्त हैं। पी० कुंजिरामन नायर, सुगत कुमारी, चेरियान के चेरियान, ओलप्पमण्णा, जी० कुमारपिल्लै, सी० जी० मण्णाम्मूड़, सी० कृष्णन नायर, ओ० एम० अनुजन, सी० माधवन पिल्लै, वेल्लायणी अर्ज्जुन आदि अनेक प्रसिद्ध कवियों के नाम और भी आते हैं।

पिछले अर्द्ध दशक के भीतर ऐसी कुल कविताओं का प्रणयन होता दिखाई पड़ता है जिसका प्रेरणा स्रोत टी० एस० इलियट है। अस्तव्यस्त और अव्यवस्थित ग्रंथि-बन्धन, पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों का क्षणिक तथा सूत्ररूप उल्लेख, आधुनिक जटिल जीवन के चित्रों पर प्राचीन प्रशान्त दृश्यों का आरोप, भाव-शिथिलता के साथ ही शिथिल छन्द प्रयोग, आदि इस प्रकार की कविताओं की विशेषतायें हैं। मलयालम काव्य में यह नयी प्रवृत्ति सबसे पहले एन० वी० कृष्ण वरियर की कविताओं द्वारा प्रकट हुयी। अक्कित्तम, एन० एन० कक्काट, अय्यप्प पणिक्कर, मधवन अय्यपत्त ये युवकवि इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

अय्यप्प पणिक्कर की कविता 'कुरुक्षेत्र' का सामान्य परिचय कर लीजिये।

> 'धर्म क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे
> समवेता युयुत्सवः
> मामका पाण्डवश्चैव
> किम कुर्वत सञ्जय!

धृतराष्ट्र के उस प्रश्न की इस युग में पुनारावृत्ति होती है। "भूमेखला के उस पार, प्रकंपित होकर आया हुआ हे नक्षत्र! तू जग जा, आकाश में; इस धरा का रक्त प्रवाहित हो, नब्ज चले। हे मेरे जीवन-प्रेम तारक! देख, नीचे को; वही मेरा संसार है। हम मनुष्यों का रंगमंच, क्या तू नहीं सुनता, हम मनुष्यों के नृत्य करने वाले संकटों के मौनगीतों को?......हम अपने को बेचते हैं। आँखें आंसू पीती हैं, नाड़ियाँ तप्त रक्त पीती हैं। खाल खरोंचती हैं हड्डियां।......

> सुखं देहि हृषिकेश
> सुखं देहि जनार्दन

मनुष्यों की छाती को फाड़कर खेलते हुए गिरिजाघर और मंदिर आकाश के नीचे सोल्लास खड़े हैं। वेदों की आँखें फोड़ डालकर फिर उनपर 'विश्वासी' चश्मे लगा देते हैं।"

अय्यप्प पणिक्कर अपनी कविता के द्वारा यही सन्देश देते हैं "बोधिसत्व की छाया और जरुसलें के टीलों की शरण नहीं लेनी चाहिये। हम अपनी कल्पना के दिव्य गर्भ से स्वयं उद्भूत हो जायें। धर्माधर्म विवेचन में अज्ञ मनुष्य वही अर्ज्जुन है। मगर इस संसार में धर्मा-धर्म विवेचन करने के पश्चात् जीवन कैसे बिताया जा सकता है? अतएव "भ्रांत बनें हम, स्वप्नों के कान्त बनें।"

स्पष्ट है, कवि कल्पना की पौराणिक पृष्ठभूमि में नवीन चित्रों का आवाहन करते हैं। विचारों की भट्टी में जलने वाला आधुनिक मनुष्य पुराण पुरुषों से सम्बन्धित नीति संहिता में शान्ति का आश्रय ढूंढ़ता हो। इस कविता की छन्द योजना बिलकुल नवीन है। कहीं गद्य जैसी है तो कहीं अव्यवस्थित द्राविड़ छन्द जैसी।

एन० एन० कक्काट की 'नगरत्तिले कण्वन' (नगर के कण्व) नामवली कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें—

> गली में, आग्निक नयनों के प्रकाश में
> कँधे से कँधे मिलाकर रमण चले।
> (कंठः स्तम्भित बाष्प वृत्ति कलुषश्चिन्ता जड़ दर्शनम्]
> फिर भी, दोनों के बीच
> लॉरी के नीचे पिस-पिस मेंढक जैसे
> सूने में पड़े हैं निमिष मरे
> दुपहिये वाली टाक्सियाँ
> भौं-भौं कर भागी जाती है
> ....
> याद नहीं उस प्रियंवदा को?
> आज वही लेडी टैपिस्ट है।"

कवि आज भी उस पुराने कण्व की अवस्थिति मानते हैं। मगर अब कण्व मालिनी नदी के तट पर आश्रम जीवन नहीं बिताते। वे नगर में किराये वाले किसी कमरे में हैं। कण्व की प्रिय पुत्री शकुन्तला और उसकी प्यारी सहेलियाँ अनुसूया और प्रियंवदा सब पात्र किसी न किसी रूप में, नगर में मिलेंगे।

इस कविता में प्रयुक्त बिम्ब-विधान में नवीनता है। एकत्रित शिथिल चित्रों की प्रस्तुत कविता में इलियट का स्पष्ट प्रभाव लक्षित है।

भारतीय साहित्य के बीच आदान-प्रदान का शुभ प्रारम्भ हुआ है। मलयालम के कवि इस अपूर्व अवसर का सदुपयोग करें तो आशातीत सफलता प्राप्त की जा सकती है। दुर्भाग्य से अंग्रेजी को छोड़कर भारतीय भाषाओं के मर्मज्ञ कवि मलयालम में दुर्लभ हैं। राष्ट्र भाषा हिन्दी और उसके विस्तृत साहित्य से परिचय प्राप्त हुये कवि विरले ही हैं।



कन्नड़ काव्य का आलोचनात्मक इतिहास

एन० एस० दक्षिणामूर्ति

भारत की प्रमुख भाषाओं में कन्नड भी एक है जो एक समृद्ध भाषा है और जिसकी एक स्वस्थ साहित्य-परम्परा है। भाषा शास्त्रियों ने इसको द्राविड परिवार की भाषाओं में स्थान दिया है। पर, यह ध्यान देने की बात है कि इस भाषा पर संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है और इसमें लगभग साठ प्रतिशत संस्कृत के शब्द प्रयुक्त होते हैं। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कन्नड के प्राचीन काव्य-ग्रंथों का अध्ययन संस्कृत के ज्ञान के अभाव में संभव नहीं है। प्राचीनकाल से ही कर्नाटक और कन्नड भाषा पर्याप्त ख्याति प्राप्त हैं। साहित्य की प्राचीनता की दृष्टि से विचार करने पर विदित होगा कि द्राविड परिवार की भाषाओं में तमिल के पश्चात् कन्नड का ही नाम आता है।

कन्नड-काव्य-गंगोत्री

कन्नड-काव्य-गंगोत्री कब फूट पड़ी, यह बतलाना कठिन है। सबल प्रमाणों के अभाव में हम 'इदमित्थम्' कहकर किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकते। हाँ, अद्यावधि उपलब्ध प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा ग्रंथों के आधार पर इस संबंध में अनुमान किया जा तकता है। कर्नाटक में अनेक प्राचीन शिलालेख पाये जाते हैं; इसा पूर्व तीसरी शती से यहाँ बराबर अनेक शिलालेख निर्मित हुए हैं। प्राचीन शिलालेखों में हल्मिडि शिलालेख का नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य है जिसकी भाषा कन्नड है जब कि उसके पूर्व के शिलालेखों की भाषा प्राकृत या संस्कृत है। बेलूर के समीप हल्मिडि नामक ग्राम में उपलब्ध होने के कारण उस शिलालेख को 'हल्मिडि शिलालेख' कहा गया। उसका समय लगभग ४५० ई० माना जाता है। उसमें अंकित कन्नड पद्य[1] इस बात को मानों घोषित करता है कि कन्नड में दूसरी-तीसरी शती से ही स्वस्थ साहित्य-निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो गया था। उस शिलालेख के अध्ययन से यह प्रकट होने लगता है कि जनता में यद्यपि शुद्ध कन्नड का प्रचार था, तथापि पंडित-समाज में संस्कृत मिश्रित कन्नड का सम्मान था। भाषा व्याकरण -सम्मान तथा परिपुष्ट थी। हल्मिडि शिलालेख के बाद बादामि तथा श्रवणबेलगोल के शिलालेखों के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं। बादामि-शिलालेख एक महत्वपूर्ण शिलालेख है। उसमें कन्नड का अपना छन्द 'त्रिपदी' का प्रयोग हुआ है। श्रवणबेलगोल के लगभग ३० शिलालेखों में कन्नड के कई सुन्दर पद्य अंकित हैं जिसमें जैन मुनियों के वैराग्य तथा तप-माहात्म्य का वर्णन है। पट्टदकल्लु में उपलब्ध एक शिलालेख (आठवीं शती) में 'अचलन्' नामक कवि ने एक नट श्रेष्ठ की प्रशंसा की है। उपलब्ध शिलालेखों में यही प्रथम शिलालेख है जिसमें कन्नड-कवि का नामांकन हुआ है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कन्नड-काव्य-धारा के प्रारंभिक स्वरूप को समझने के लिए हमें प्राचीन शिलालेखों का आधार ग्रहण करना पड़ता है, उसके अतिरिक्त और कोई प्रत्ययजनक साहित्यिक सामग्री उपलब्ध नहीं है।

---

१. द्रष्टव्य Ephigrabica Carnatika XI Cy. 43:

'कविराजमार्ग'

कन्नड की प्राचीनतम उपलब्ध साहित्यिक कृति 'कविराजमार्ग' है। उसका रचनाकाल १वीं शती (ई०) माना जाता है। 'कविराजमार्ग' के रचयिता के विषय में विद्वानों में मतभेद है। उसके रचयिता राष्ट्रकूट सम्राट (अमोघवर्ष अथवा) नृपतुंग (सन् ८१४—८७७) हैं अथवा उनके दरबारी कवि जयालुव (अथवा श्री विजय) हैं, इसका निर्णय नहीं हुआ है। यद्यपि यह अलङ्कार ग्रन्थ है, तथापि कन्नड-काव्य-धारा के संबंध में विचार करते समय उसका उल्लेख अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। उसमें श्री विजय, कवीश्वर, पंडित, चंद्र और लोकपाल—इन प्राचीन कवियों के नाम बतलाये गये हैं। गद्य लेखकों में विमल, उदय, नागार्जुन, जयबंधु और दुर्विनीत के नाम लिए गये हैं। 'कविराजमार्ग' से यह ज्ञात होता है कि उस समय कन्नड में काव्य-रचना की दो पद्धतियाँ प्रचलित थीं—बेदडे और चित्ताण। 'कविराजमार्ग' के रचयिता ने कन्नड भाषा प्रदेश का वर्णन कर इस प्रदेश के लोगों के संबंध में जो अभिप्राय व्यक्त किया है, वह अवश्य ध्यान देने योग्य है—"इस देश के लोग शब्द का अर्थ जानकर बोलने में समर्थ हैं। जो बोला जाता है उसको समझने और उसकी आलोचना करने में भी ये लोग दक्ष हैं। सचमुच ये लोग पंडित हैं और 'काव्य-प्रयोग-पारंगत' हैं।" (I ३८)

कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी भाषा में भी हो, लक्ष्य ग्रंथों की रचना के उपरांत ही लक्षण ग्रंथों की रचना होती है। 'कविराजमार्ग' लक्षण ग्रंथ है, अतः यह सहज ही कहा जा सकता है कि उसकी रचना के पूर्व कन्नड में पर्याप्त साहित्य का निर्माण हुआ होगा। 'कविराजमार्ग' के रचयिता ने अपने ग्रन्थ में यत्र-तत्र प्राचीन काव्यों से कतिपय पद्य उद्धृत किये हैं, परन्तु खेद है कि वे प्राचीन काव्य उपलब्ध नहीं हुए हैं।

स्वर्ण काल

कन्नड-काव्य-धारा की गतिविधि को दृष्टि में रखकर हम कन्नड-काव्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित कर सकते हैं—(१) स्वर्ण काल (९वीं शती से १२वीं शती), (२) स्वतंत्र काल (अथवा शिव भक्ति प्राधान्य-काल १२वीं शती से १४वीं शती), (३) विष्णु-भक्ति-प्राधान्य काल (१५वीं शती से १९वीं शती तक) और (४) आधुनिक काल (१९वीं शती से•••)। महाकवि पंप की रचनाओं से कन्नड-काव्य के इतिहास के स्वर्ण काल का प्रारंभ होता है। पंप की रचनाएँ ही कन्नड का प्राचीनतम उपलब्ध काव्य ग्रंथ हैं। उनके पूर्व निश्चय ही अनेक कवि हुए थे, परंतु 'आदि कवि' होने का गौरव पंप को प्राप्त हुआ। जिस भाँति वाल्मीकि संस्कृत के आदि कवि हुए उसी भाँति महाकवि पंप कन्नड के आदि कवि हुए। उनके काव्यों के आलोक में पूर्व कवियों के मंद प्रकाश हो गये। दो महाकाव्यों—आदि पुराण और विक्रमार्जुन विजय अथवा पंप-भारत की रचना कर पम्प शाश्वत यश प्राप्त कर गये। उनको पाकर कन्नड 'महाकवि' की जननी हुई।

पम्प का जन्म दुन्दुभी संवत् (९०२ ई०) में हुआ था। वेंगि मंडल के वेंगिपलु के निवासी वत्स गोत्रोद्भव माधव सोमयाजी उनके वंश के मूल पुरुष थे। उनके वंशज वैदिक धर्म के अनुयायी थे। परंतु पम्प के पिता अभिरामदेवराय ने यह विचार कर जैन धर्म स्वीकार किया था कि "धर्मों में जिनेंद्र-धर्म सर्वोत्तम है।"

पम्प ने अपनी ३९वें वर्ष की वायु में अर्थात् सन् ९४१ में दो महाकाव्यों की रचना की। उन्हीं के कथनानुसार आदि पुराण की रचना उन्होंने तीन मासों में की और विक्रमार्जुन विजय या पम्प-भारत की रचना छः मासों में की। आदि पुराण धार्मिक काव्य है तो पम्प-भारत लौकिक काव्य है। कन्नड के प्रायः सभी जैन कवियों ने पम्प का यह आदर्श—(एक धार्मिक काव्य और एक लौकिक काव्य रचने का—) ग्रहण किया है। जैन कवियों की दृष्टि में रामायण, महाभारत आदि लौकिक काव्य ही हैं। जैन-धर्म से संबन्धित काव्य धार्मिक काव्य हैं। पम्प के आदि पुराण में आदि तीर्थंकर पुरुदेव और उनके पुत्र भारत-बाहुबलि के चरित्र वर्णित हैं। यद्यपि वह जैन धर्म से सम्बन्धित काव्य है, तथापि उसमें कवि की प्रतिभा प्रकट हुई है। उसमें उत्तम काव्य के लक्षण विद्यमान हैं। महकवि पंप की यशोदीप्ति का प्रमुख आधार उनका पम्प भारत है। पंप-भारत की रचना व्यास-भारत के अनुसार हुई है, परन्तु पम्प ने उसमें कतिपय परिवर्तन कर दिये

हैं। उनकी दृष्टि में जो प्रसंग अनावश्यक हैं, उन्हें छोड़ दिये हैं। उन्होंने अपने आश्रयदाता चाक्लुय राजा अरिकेसरी और महाभारत के अर्जुन में अभेद स्थापित कर दिया है। उनके काव्य के नायक अर्जुन हैं। महाभारत से कथा-सूत्र ग्रहण कर उन्होंने अर्जुन की विजयगाथा का वर्णन किया है। अर्जुन की विजय अरिकेसरी की ही विजय है, क्योंकि अर्जुन के चरित्र में कवि ने अरिकेसरी के चरित्र की प्रतिष्ठा की है और इस कारण पंपभारत का दूसरा नाम **"विक्रमार्जुन विजय"** है। अरिकेसरी की समस्त उपाधियाँ अर्जुन पर आरोपित हैं। पंप-भारत के अर्जुन अरिकेसरी के समान "सामंत चूडामणि" हो गये हैं! इस प्रकार पम्प-भारत एक **इतिहास काव्य** हो गया है जिसमें तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का भी सुन्दर वर्णन मिलता है।

पंप-भारत की कथा १४ आश्वासों में व्याप्त है। उसमें परिलक्षित होने वाले प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार है—(१) द्रौपदी केवल अर्जुन की पत्नी हैं, पंच-पांडवों की पत्नी नहीं हैं। (२) अर्जुन ने संन्यासी वेश में सुभद्रा का अपहरण नहीं किया। सुभद्रा-अर्जुन में परस्पर प्रेम था। श्रीकृष्ण की सहायता से, बलराम की आँखों से बचकर वे दोनों इन्द्रप्रस्थ चले गये। (३) पंप-भारत के अनुसार शिशुपाल का वध श्रीकृष्ण के चक्र से नहीं हुआ, बल्कि अर्घ्य की थाली से हुआ। (४) व्यास महाभारत में दुर्योधन के भयचकित होकर वैशंपायन सरोवर में छिपने का वर्णन है तो पंप-भारत में भीष्म से जल-मंत्रोपदेश ग्रहण कर दुर्योधन के वैशंपायन सरोवर में छिपने का वर्णन है। (५) अंत में, कवि ने सुभद्रा और अर्जुन को राज्याभिषिक्त किया है जब कि व्यास-भारत में द्रौपदी और युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का वर्णन है। इस प्रकार कथा में परिवर्तन करने और अरिकेसरी को काव्य के नायक बनाने के कारण कवि को यत्र-तत्र कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है तथा औचित्य-भंग भी करना पड़ा है। परन्तु महाकवि की अद्भुत प्रतिभा और कला के कारण वे बातें खटकती नहीं है।

पंप-भारत में सर्वत्र हम पंप के महान् व्यक्तित्व का दर्शन कर सकते हैं। उनकी अपार कल्पना-चातुरी और "हित-मित' शब्द देखकर पाठक दाँतों तले उंगली दबाने लगते है। उनके ग्रंथ की आलोचना यहाँ संभव नहीं हैं, संक्षेप में तीन बातें बतलायी जा सकती हैं—

(१) पंप-भारत के वर्णन पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुए हैं। वे मानों चित्रपट की भाँति हमारे नेत्रों के समक्ष प्रस्तुत हो जाते हैं।

(२) पंप-भारत के नायक अरिकेसरी—विक्रमार्जुन हैं प्रतिनायक कर्ण हैं। नायक की वीरता और गुणों का वर्णन करना कवि का उद्देश्य है। परन्तु, प्रतिनायक के चित्रण में भी कवि ने कमाल कर दिया है। कर्ण का चरित्र-चित्रण करते समय कवि ने कर्ण के त्याग और वीरता का मार्मिक वर्णन किया है। पंप के कर्ण का साहित्यलोक में **पृथक् स्थान** है। महाभारत वस्तुतः **'कर्ण रसायन'** है। पंप के ही शब्दों में सुनिए—"महाभारत के पात्रों में आप किसी का स्मरण करना चाहते हों तो और किसी का स्मरण न कीजिए, कर्ण का स्मरण कीजिए— हृदय से कर्ण का स्मरण कीजिए कर्ण की सच्चाई कर्ण का त्याग, कर्ण कीवीरता और कहाँ देखेंगे? कर्ण से महाभारत 'कर्ण रसायन' हुआ—

नेनेयदिरण भारतदोलिन् पेर्रारुमनोंदे चित्तदिं
नेनेवोडे कर्णनं नेनेय कर्णनोलार् दोरे कर्णनेरू
कर्णन कडुनन्नि कर्णनलवंकद कर्णन चागमेंदु
कर्णन पडेमातिनोल पुदिदु कर्णरसायनमलतेभारतम ॥ (XII २१७)

(३) ऊपर पंप की कल्पना-चातुरी और हित-मित शब्दों के सम्बन्ध में कहा गया है। पंप-भारत में उनकी मनोहारिणी कल्पना के कई उदाहरण मिलते हैं।

पंप 'स्वर्णकाल' के प्रतिनिधि कवि हैं। उनके दोनों काव्य चम्पू शैली में हैं। पीछे के कवियों ने पंप का ही मार्ग ग्रहण किया। अतः कन्नड़ साहित्य के इस आदिकाल में अनेक चम्पू काव्यों का प्रणयन हुआ। इस कारण इस काल को कुछ विद्वान 'चम्पू-काव्य-काल' कहना अनुपयुक्त नहीं समझते। कन्नड़ साहित्य में पम्प, पोन्न और रन्न **रत्नत्रय** नाम से प्रसिद्ध हैं। पोन्न ने अपने विषय में बहुत कम कहा है, पर आत्म प्रशंसा अधिक की है। राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण

तृतीय (अथवा कन्नर से उनको उभय कवि चक्रवती की उपाधि मिली थी उनकी तीन रचनाएँ हैं–(१) शांति-पुराण (२) भुवनैक रामाभ्युदय (रामायण) तथा (३) जिनाक्षरमाले। स्व० आर० नरसिंहाचार्य जी ने अपनी पुस्तक 'कविचरिते' में पोन्न की और एक रचना 'गत प्रत्यागत' का उल्लेख किया है। उनका अनुमान है कि रचना संस्कृत में होगी।

'रत्नत्रय' में पंप और पोन्न के पश्चात् रन्न का नाम लिया जाता है। रन्न का व्यक्तित्व भी पंप के व्यक्तित्व के समान ही अत्यंत महान है। रन्न का दूसरा नाम रत्न भी है। वे चवुंडराय और चालुक्य सम्राट तैलप के आश्रय में रहे। उनकी तीन रचनाएँ हैं––(१) अजित पुराण (२) गदायुद्ध तथा (३) रन्नकन्द (निघंटु)। इनके अतिरिक्त 'चक्रेश्वर चरित' तथा 'परशुराम चरित' भी उनकी ही रचनाएँ कही जाती हैं जो अनुपलब्ध हैं। अजितपुराण के आधार पर रन्न की जन्म तिथि ६४६ ई० ठहरती है। अजित पुराण बारह आश्वासों का जैन-धार्मिक ग्रंथ है। दानचिंतामणि अत्तिमब्बे के लिए रत्न ने उसकी रचना की थी। 'गदायुद्ध' रन्न की चिरकीर्ति का आधार है। वह कन्नड़-साहित्य-भांडार का एक अनुपम रत्न है, उसका दूसरा नाम 'साहस भीम विजय' है। पंप ने अपने आश्रयदाता अरिकेसरी को नायक बना कर पंप-भारत की रचना की तो रन्न ने अपने आश्रयदाता सत्याश्रय को नायक बनाकर गदायुद्ध अथवा साहस भीम-विजय की रचना की। पंप के अरिकेसरी 'अर्जुन' हैं तो रन्न के सत्याश्रय 'भीम' हैं। यह ध्यान देने की बात है कि कथा में परिवर्तन करने के कारण रन्न को पंप के जैसे कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। क्योंकि, 'महाभारत' की कारण भूता द्रौपदी पंप-भारत में अर्जुन की धर्मपत्नी है जब कि गदायुद्ध में वह भीम की धर्म पत्नी है। वेणीसंहार के समय पंप को भीम का आश्रय' ग्रहण करना पड़ा, पर रन्न के सामने ऐसा कोई प्रश्न नहीं था।

रन्न को पंपभारत से प्रेरणा मिली थी। पंप-भारत के तेरहवें आश्वास को पढ़कर उसके आधार पर उन्होंने एक स्वतन्त्र काव्य 'गदायुद्ध' की रचना की। महाभारत की एक घटना को लेकर उन्होंने एक अभूतपूर्व 'रसार्णव' ही प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने गदायुद्ध में सिंहावलोकन क्रम से समस्त भारत की कथावस्तु बतलायी। गदायुद्ध की सबसे बड़ी विशेषता उसकी नाटकीयता है। विद्वानों का कथन है कि गदायुद्ध पहले नाटक के रूप में लिखा गया हो, बाद में उसको चंपू-काव्य का जामा पहना दिया गया हो। स्व० बी० एम० श्रीकंठय्या जी का 'गदायुद्ध नाटक' इस कथन का साक्षी है। कहना न होगा कि गदायुद्ध काव्य का प्रत्येक स्थान नाट्यपूर्ण है। उसके आकर्षण संभाषण दृश्य काव्य के आनन्द प्रदाता हैं। उनमें करुण और वीर रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। पंप की भाँति रन्न ने भी अपने काव्य के प्रतिनायक दुर्योधन का महत्व घटाया नहीं है। रन्न का दुर्योधन 'महानुभाव' है। वह 'ट्राजिक हरो' है। यह उक्ति प्रसिद्ध हो गया है कि 'रन्न का भीम जीतकर हार गया, दुर्योधन हार कर जीत गया।'

गदायुद्ध आकार में पंप-भारत से छोटा है, पर प्रकार में उससे किसी प्रकार कम नहीं है। रन्न का रस निरूपण, चरित्र चित्रण तथा भाषा-शैली अत्यन्त उत्कृष्ट है। उनका काव्य पढ़कर कोई भी कह सकता है कि वह एक 'महाकृति' हैं; रन्न वर कवि हैं, चिर कवि हैं, महाकवि हैं।

'रत्नत्रय' की चर्चा के उपरांत दसवीं शती के एक प्रसिद्ध कवि नागवर्मा प्रथम के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। 'छन्दोंबुधि' और 'कर्नाटक कादंबरी' के प्रणेता नागवर्मा प्रथम राचमल्ल (९७४––९८४ ई०) के भाई रक्कस गंग के मंत्री चावुंडराय के आश्रम में रहे थे। वेंगिपलु के ब्रह्मण वंश में उनका जन्म हुआ था। उनको 'वर्मा' क्यों कहा गया, वह कौतूहलवर्धक प्रश्न है। क्योंकि, ब्राह्मणों में 'शर्मा' का व्यवहार है, 'वर्मा' का नहीं। वह युद्धवीर थे, संभव है इसी कारण उनको 'वर्मा' कहा गया हो।

नागवर्मा की 'कर्नाटक कादंबरी' महाकवि बाणभट्ट (तथा उनके पुत्र भूषण भट्ट) कृत संस्कृत कादंबरी का चंपू-शैली में अनुवाद है। अपने कतिपय गुणों के कारण वह अनुवाद होते हुए भी स्वतंत्र कृति का गौरव प्राप्त करता

है। परिमार्जित भाषा, शब्द-चमत्कार, सरस वर्णन और प्रभावपूर्ण शैली उसमें दर्शनीय हैं। बाण की कादंबरी में समासों का प्राधान्य है तो कर्नाटक कादंबरी में सुन्दर हलेगन्नड (प्राचीन कन्नड) भाषा तथा मार्ग-देसी (संस्कृत-कन्नड़) मिश्रित शैली वर्तमान हैं। बाण की कादम्बरी गंगा-प्रवाह के समान अथवा मूसलधार वर्षा के समान चलती है तो नागवर्मा की कादम्बरी वर्षा के अनन्तर बहनेवाली निर्मल जल धारा के समान चलती है। परन्तु, इस कारण काव्यात्मक गुण कहीं भी कम नहीं हुए हैं।

नागवर्मा की यह विशेषता है कि उन्होंने महाकवि पंप, रन्न आदि द्वारा अपनायी है। गयी काव्य-पद्धति से भिन्न अन्य प्रकार की पद्धति अपनायी। इस काल के कवियों ने प्रायः धार्मिक काव्यों में अद्भुत और शांत रसों एवं लौकिक काव्यों में वीर और रौद्र रसों को प्रधानता दी है। परन्तु, नागवर्मा ने अपने काव्य में वीर रस के साथ शृंगार को प्रमुखता दी है।

बारहवीं शती के प्रारम्भ में जीवित कवि नाग चन्द्र के विषय में यहाँ विचार करना आवश्यक हो जाता है जिन्होंने मल्लिनाथ पुराण और रामचन्द्र चरिते पुराण (रामायण) की रचना की है। नागचन्द्र इस काल के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। उन्होंने अपने को **अभिनव पम्प** कहा है और पंप की शैली का अनुकरण करते हुए रामायण की रचना की है जो 'पंप-रामायण' के नाम से प्रख्यात है। वह जैन धर्मावलंबी थे, उनके गुरु बालचन्द्र तथा मेघचन्द्र यति थे। कहा जाता है कि नागचन्द्र ने चालुक्य तथा होय्सल राजाओं के यहाँ सम्मान प्राप्त किया था।

मल्लिनाथ पुराण उनका धार्मिक काव्य है। उसमें १६ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ की जीवन-गाथा का वर्णन है। राम चन्द्र चरिते पुराण अथवा पंप-रामायण उनका लौकिक काव्य है। कन्नड़ साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थों में पंप-रामायण का नाम भी लिया जाता है। कहना न होगा कि पंप-रामायण की रचना 'जैन पुराण' के ढंग पर हुई है। उसमें कुलधरों का वर्णन; इक्ष्वाकु राजाओं का जिन दीक्षा ग्रहण; दशरथ का वैराग्य; अयोध्या, मिथिला, किष्किन्धा, लंका तथा राम के वन गमन प्रसंगों में जिन दीक्षा वर्णन; विद्याधर, चारण, भाट तथा संसार के विरक्त भट्टारकों का व र्न आदि द्रष्टव्य हैं। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि उत्कृष्ट काव्य-कला के कारण ही पंप-रामायण को कन्नड़ साहित्य में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है। रस परिपाक, पात्रों के चरित्र चित्रण, भाषा-शैली इत्यादि सभी दृष्टियों से पंप-रामायण खरा उतरती है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में नागचन्द्र ने विशेष निपुणता दिखाई है। राम के चरित्र में उन्होंने मानव सहज दुर्बलताओं का चित्रण कर, अन्त में उनके द्वारा जिन-दीक्षा ग्रहण और कैवल्य प्राप्ति का वर्णन किया है। उनके द्वारा चित्रित लक्ष्मण राग-द्वेष, काम-क्रोधादि से युक्त हैं। रावण का वध उन्हीं के हाथों से होता है। पंप-रामायण में रावण के पात्र विशेष महत्व है। वह पंडित, ज्ञानी, गुणवान तथा धीमान है। पर, एक नारी के मोह में पड़ कर अधः पतित हो जाता है। उसका चित्रण कवि ने 'दुरन्त नायक' के रूप में किया है। नागचन्द्र ने सीता का चित्रण सती साध्वी और पतिव्रता के रूप में किया है। मन्दोदरी भी पतिव्रता नारी है, पर वह अपने पति के हितार्थ सीता को समझाती है कि सीता रावण में अनुरक्त हो जावें। इस कारण उसकी गरिमा लुप्त हो जाती है।

नागचन्द्र की प्रकृति शांत रस के अनुकूल है। वीर की अपेक्षा शांत रस का उन्होंने अधिक वर्णन किया है। उनकी शैली शांत-वातावरण को क्षमता के साथ चित्रित कर सकती है। इस कारण उनकी भाषा सरल, सुबोध और कोमल है।

ऊपर जिन कवि-काव्यों की चर्चा हो गयी, उनके अतिरिक्त दुर्गसिंह का पंचतंत्र, शांतिनाथ का सुकुमार चरित, नयसेन का धर्मामृत, ब्रह्मशिव का समयपरीक्षे तथा कर्णपार्य का नेमिनाथ पुराण—इन कवि-काव्यों के नाम भी 'स्वर्णकाल' में उल्लेखनीय हैं। इस काल में, कंति नाम की एक कवियित्री भी हुई थी, पर उसके सम्बन्ध में अधिक विवरण ज्ञात नहीं हो सका है। नयसेन ने अपने 'धर्मामृत' में कन्नड कविता में संस्कृत शब्दों के अधिक प्रयोग का खण्डन किया है। नयसेन के पूर्व के कवियों की भाषा में संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग दिखाई पड़ता

है। यह प्रवृत्ति उनको पसन्द न आयी। उनका प्रश्न था कि "शुद्ध कन्नड में क्या संस्कृत मिलायी जा सकती है। क्या कोई प्राज्ञ घी और तेल को एक साथ मिलाएगा ?" इससे स्पष्ट है कि नयसेन के समय (सन् ११९२) में ही साहित्यिक क्रांति के बीज वर्तमान थे।

समग्र रूप में 'स्वर्णकाल' की प्रवृत्तियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल के कवियों में जैनों की संख्या अधिक है, जिनके द्वारा कई मौलिक महाकाव्य रचे गये। जैन कवियों ने प्रायः दो प्रकार के काव्य लिखे हैं—धार्मिक या आगमिक और लौकिक। लौकिक काव्यों में तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों और जन-जीवन के चित्र मिलते हैं। इस काल के कवियों ने रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों से अपने काव्यों के लिए सामग्री ग्रहण की है। प्रायः सभी कवियों ने चंपू-शैली में काव्य-रचना की है और कन्द, रगले अक्कर, त्रपदी जैसे कन्नड छंद तथा तथा संस्कृत वृत्तों का प्रयोग किया है। इस काल में वैसे तो सभी रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है, पर लौकिक काव्यों में अदभुत और शांत एवं धार्मिक काव्यों में वीर और रौद्र रसों को प्रामुख्य दिया गया है। केवल नागवर्मा प्रथम की कादम्बरी शृङ्गार प्रधान काव्य है।

स्वतन्त्रकाल

१२ वीं शती के उत्तरार्द्ध में कर्नाटक में राजनैतिक, धार्मिक और साहित्यिक क्रांति हुई। इस क्रांति के अग्रदूत थे महात्मा बसवेश्वर। उन्होंने लोगों की अपनी भाषा के आत्म-स्वरूप को पहचानने की शिक्षा दी, स्वाभिमान को पुनः जागृत किया एवं परस्पर मतभेद विस्मृत कर संगठित समाज के रूप में कार्य करने का मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि इन्होंने धार्मिक दृष्टि से कहा था कि 'अपने स्वरूप को पहचानने से ही उद्धार हो सकता है, तथापि साहित्यिक क्षेत्र में उसका बहुत अच्छा परिणाम हुआ। कन्नड़ कविता को संस्कृत पद जाल से मुक्त करने की शंख-ध्वनि गूंज उठी। कन्नड़ कविता 'मार्ग' (संस्कृत मिश्रित कन्नड़) से 'देसि' (शुद्ध कन्नड़ अथवा सरल कन्नड़) की ओर उन्मुख हुई। कन्नड़ कविता की भाषा केवल पंडित रंजनी न होकर साधारण जनता की आस्वाद्य भी हो गयी। 'देसि' के अनुकूल स्वतन्त्र विषय और छन्दों का भी प्रयोग होने लगा। सारांश यह है कि कन्नड़ काव्य की धारा 'स्वतन्त्र' चिंतन-तरंगों से अग्रगामी हुई। इस कारण इस काल को **'स्वतन्त्र काल'** कहा गया है।

'बचन' (भावात्मक गद्य गीत) का प्रादुर्भाव इस काल की एक विशेषता है। 'वचन' कहने वाले अनेक सन्त महात्मा इस काल में हुए जो वीरशैव धर्म के अनुयायी हैं। उनके बचनों में हम रहस्यवादी कवियों की सी भाव-लहरियाँ भी देख सकते हैं। वचनकार भक्त कवियों तथा अन्य वीरशैव कवियों की रचनाओं में शिव-भक्ति प्रकट हुई है, अतएव इस काल को 'शिव-भक्ति प्राधान्य काल' कहना अनुपयुक्त न होगा।

इस काल में भी कतिपय चंपू काव्य लिखे गये। परन्तु उनमें प्राचीन परम्परा का पालन ही नहीं कुछ नवीन प्रयोग भी दृष्टिगोचर होते हैं जो स्वतन्त्र चिंतन के फल हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये जिनमें नयी काव्य-पद्धति का अवलोकन किया जा सकता है। राघवांक, नेमिचंद्र जन्न आदि की रचनाएं उदाहरण के रूप में ले सकते हैं। इस काल में वीरशैव कवियों का प्राधान्य होने पर भी जैन तथा ब्राह्मण कवियों का महत्व किसी प्रकार कम नहीं है। वीरशैव कवियों की रचनाओं में शिव-लीलाएं तथा शिव-भक्तों के चरित्र वर्णित है तो जैन तथा ब्राह्मण कवियों की रचनाओं में क्रमशः तीर्थंकर चरित तथा विष्णुचरित वर्णित हैं। इस काल की रचनाओं की आत्मा 'भक्ति रस' है। जैन कवियों के काव्यों में वीर और शांत को प्रमुखता दी गई है। केवल 'लीलावती' नेमिचंद्र कृत शृंगार प्रधान काव्य है। जैसा कि पहले ही कहा गया है, इस काल की काव्य-भाषा में परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़े। 'र' और 'ऱ्' (शकट रेफ) एवं 'ल' और 'ल'(ಖ) का भेद लुप्त होने लगा। छन्दों में रगले, त्रिपदी, षट्पदी और कन्द का अधिक प्रयोग इस काल में द्रष्टव्य है।

स्वातंत्र्य- सूत्र के कर्णधार महात्मा बसवेश्वर इस काल के प्रतिनिधि कवि हैं। बसवेश्वर के पूर्व जेडरदासिमय्या, शंकर दासिमय्या, मेरेमिडय्या, सकलेशमादरस, अल्लमप्रभु

(अथवा प्रभुदेव) जैसे संत कवियों के नाम लिए जाते हैं। इनमें अल्लमप्रभु का व्यक्तित्व विशेष आकर्षक है। उनका निर्भीक व्यक्तित्व हमको कबीर के व्यक्तित्व का स्मरण दिलाता है। वे भक्तों के गुरु और महाज्ञानी थे। वे धर्म और संप्रदाय की संकीर्णता से सर्वथा मुक्त थे। उन सत्यभाषी की आलोचना के खड्ग प्रहार से कोई नहीं बच सके, वीरशैव धर्म भी उससे वंचित न हुआ। उनके वचन उनकी अभूतपूर्व साधना के प्रमाण हैं।

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, सत्य-प्रेमी बसवेश्वर (अथवा बसवण्णा) को सामाजिक कुप्रथाएँ तथा अंधविश्वास समाज के विकास के विघ्न प्रतीत हुए। वीरशैव-दीक्षा ग्रहण कर वे राजनैतिक तथा धार्मिक क्षेत्र के नेता हुए और उन्होंने सामाजिक सुधार के भी कार्य किये। वे कलचुर्य बिज्जल के मंत्री रहे और उनकोअप ने व्यक्तित्व से प्रभावित किया। कल्याण में उन्होंने 'अनुभव-मंटप (भक्तों की मंडली) की स्थापना की। अचल शिव-भक्ति से उन्होंने जंगमों (भक्तों) की सेवा की और सर्वश्रेष्ठ भक्त कहलाये। उनके कारण वीरशैव धर्म का उद्धार हुआ, वह कर्नाटक और आंध्र में सर्वत्र व्याप्त हुआ।

बसवेश्वर एक श्रेष्ठ 'वचनकार' हैं। उनके वचनों में एक भावुक कवि का उदात्त हृदय अभिव्यक्त हुआ है। भक्ति-ज्ञान-वैराग्य से पूर्ण उनके वचन ललित, सरल, सुबोध तथा चित्ताकर्षक हैं। उनका प्रभाव अमिट है। उनमें जन-साधारण के जीवन से सम्बन्धित शब्दावली और अलंकारों का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण—"कीचड़ में पड़े पशु के समान मैं बार-बार हाहाकार कर रहा हूँ।" उनके वचनों में यत्र-तत्र समाज की कटु आलोचना भी की गयी है। "देव लोक, मर्त्यलोक कुछ भी नहीं है। सत्य कहना ही देव लोक है, मिथ्या कहना ही मर्त्यलोक है। आचार ही स्वर्ग है और अनाचार ही नरक है।" जैसे वचन उनके व्यक्तित्व के परिचायक हैं। उन्होंने अपने वचनों के द्वारा मानवता का—विश्वधर्म का जो अमोघ संदेश दिया है, वह कथमपि विस्मरणीय नहीं है।

बसवेश्वर के समकालीन वचनकार अथवा संत कवियों में चेन्नबसवेश्वर, सिद्धराम और अक्क महादेवी के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं। चेन्नबसवेश्वर ने अल्लमप्रभु से "महाज्ञानी" की प्रशंसा प्राप्त की। सिद्धराम कर्मयोगी कहलाये। अक्क महादेवी एक पहुँची हुई भक्तिन थीं। इसके पूर्व हम कंति नाम की कवयित्री का नामोल्लेख कर चुके हैं। उनके बाद, कन्नड़ कवयित्रियों में अक्क महादेवी (अथवा महादेवियक्का) का ही नाम आता है। परन्तु, अनुभव जन्य हृदय-गीत अथवा अध्यात्मपूर्ण गद्यगीत गानेवाली कवयित्रियों में उनका ही नाम प्रथमत: लिया जाता है। अक्क महादेवी की तुलना हम हिन्दी कवयित्री मीराबाई से कर सकते हैं। अक्कमहादेवी और मीरा के जीवन-चरित तथा साधना में आश्चर्य-जनक समानता दृष्टिगोचर होती है। मीरा ने गिरधर गोपाल को अपना पति माना तो अक्का ने चेन्नमल्लि-कार्जुन को। मीरा के समान ही अक्का ने भी राज प्रासाद के वैभव और अन्त:पुर को त्यागा तथा संतों की संगति में रहकर लोक-मर्यादा की सीमा का अतिक्रमण किया। प्रेम पुजारिन अक्का के वचनों में उनके 'प्रणय-कातर-हृदय' की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। "हर! देखो, मैंने अनन्तकाल से तप किया कि तुम मेरे पति होओ···" "हे अलि-संकुल! हे आम्र वृक्ष! हे चद्र कांति! हे कोकिल! मैं तुम लोगों से एक प्रार्थना करती हूँ। मेरे स्वामी चेन्नमल्लिकार्जुन को देखो तो मुझे उनके दर्शन कराना!" इस प्रकार के उनके बचन उन महीयसी महिला के भावुक हृदय का सुन्दर परिचय कराते हैं।

कन्नड़ साहित्य में उपर्युक्त बचनकार कवियों का विशेष महत्व है। 'वचन-साहित्य' कन्नड़ की अपनी विशेषता है। इन वचनकार कवियों के अतिरिक्त, इस काल में हरिहर, राघवांक नेमिचन्द्र, रुद्रभट्ट, पाल्कुरिके सोमनाथ, जन्न, आंडय्या, मल्लिकार्जुन प्रभृति कवियों ने अपनी रचनाओं से कन्नड़-कविता का अलंकार किया है। हरिहर ने रगले छंद में 'शिवगण-रगले' की रचना कर 'रवले-कवि' नाम से कन्नड़-साहित्य में प्रसिद्धि प्राप्ति की। हरिहर के पूर्व के कवियों ने रगले छंद का प्रयोग नाम मात्र के लिए किया था, किंतु हरिहर ने 'रगले' का अधिक प्रयोग कर गीतात्मक काव्य का नया मार्ग प्रशस्त किया। इन्होंने 'पम्प शतक', 'रक्षा शतक' और मुडिगय अष्टक' की रचना वृत्तों में की तथा 'गिरिजा कल्याण'

नामक प्रबन्ध काव्य की रचना चंपू-शैली में की। इस प्रकार हम हरिहर की काव्य-पद्धति में प्राचीन तथा नवीन गुणों का संगम देखते हैं।

हरिहर के समान ही राघवांक भी एक क्रांतिकारी कवि हैं। वह हरिहर के भानजे थे और शिष्य भी। उन्होंने 'षट्पदी'[1] छंद के प्रयोग के द्वारा कन्नड-काव्य लोक में नूतन मार्ग को अवतीर्ण किया। वह षट्पदी के जनक कहलाये। उनका 'हरिश्चन्द्रकाव्य' वार्धक षट्पदी में है। वह निश्चय ही एक सुन्दर महाकाव्य है। उसकी विशेषता उसकी नाटकीयता तथा वर्णन-वैचित्र्य है। कन्नड के श्रेष्ठ काव्यों में उसकी गणना होती है। 'सिद्धराम पुराण, 'वीरेश्वर चरित', 'शरल चारित्र्य' और 'हरिहर-महत्व' राघवांक की अन्य रचनाएं हैं। हरिहर और राघवांक दोनों वीरशैव कवि हैं, उसकी रचनाओं में शिव-भक्ति-भाव प्रकट हुआ है।

'लीलावती' और 'नेमिनाथ पुराण' के प्रणेता नेमिचन्द्र महाकवियों की श्रेणी में स्थान पाने योग्य हैं। उनकी दोनों रचनाएं चंपू-शैली में है। उन्होंने पूर्व के जैन कवियों का ही मार्ग अपनाया है, एक धार्मिक काव्य और लौकिक काव्य की रचना की है। 'नेमिनाथ पुराण', जिसमें २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र है, उनका धार्मिक काव्य है। 'लीलावती' लौकिक काव्य है जिसकी कथा धार्मिक काल्पनिक है। उसका प्रधान रस श्रृंगार है, उसमें स्थान स्थान पर मनोहर वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। हिन्दी-प्रेम गाथा-काव्यों की भांति 'लीलावती' में भी हम 'प्रेम की पीर' का दर्शन करते हैं।

ब्राह्मण कवि रुद्रभट्ट का 'जगन्नाथ' विजय भी चंपू-शैली में रचा गया है। उसमें १८ आश्वासों में श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन है। उसमें 'भक्ति रस' का प्राधान्य है। वात्सल्य के भी अच्छे चित्र मिलते हैं। रुद्रभट्ट द्वारा चित्रित कतिपय चित्र हमें सूरसागर के चित्रों का स्मरण दिलाते हैं।

मधुर नामक कवि ने नेमिचन्द्र और जन्न को 'कर्नाटक-कृति के सीमा-पुरुष' कहा है नेमिचन्द्र के विषय में यह कथन भले ही अतिशयोक्ति हो, पर जन्न के विषय में नहीं। जन्न जैन धर्म के अनुयायी थे। वी बल्लाल नरसिंह के आश्रम में रहकर वह 'कवि चक्रवर्ती' उपाधि से भूषित थे। उनका 'यशोधर चरित' काव्य 'कन्द' छन्द में रचा गया है। उसमें चार अवतरणतथा ३११ पद्य हैं। आकार की दृष्टि से वह छोटा काव्य है। पर, प्रकार की दृष्टि से वह एक महाकाव्य है। आकार बड़ा होने मात्र से कोई काव्य महाकाव्य नहीं हो सकता और उसी प्रकार आकारछोटा होने से कोई काव्य महाकाव्य से हीन नहीं हो सकता। जन्न का 'यशोधर चरित' इस बात का प्रमाण है कि छोटी रचना में भी महाकाव्य के गुण विद्यमान रहते हैं। 'यशोधर-चरित' के वर्णन, रस-निरूपण, पात्रों के चित्रण तथा भाषा-शैली अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं। 'अनन्तनाथ पुराण' जन्न की एक और कृति है, वह चंपू-शैली में है। वह धार्मिक काव्य है, पर उसमें उत्तम काव्य के गुण विद्यमान है।

पाल्कुरिक सोमनाथ वीर शैव थे। उन्होंने कन्नड़ और तेलुगु दोनों भाषाओं में काव्य-रचना की है। कन्नड़ में उन्होंने सात ग्रंथ लिखे हैं जिनमें 'शील संपादने' और सोमेश्वर शतक' के नाम उलेखनीय हैं।

आंडय्या का 'कब्बिगर काव' स्वतन्त्रकाल की प्रवृत्तियों का मनोहर उदाहरण है। उसमें कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया है कथावस्तु, वर्णन, भाषा शैली आदि सभी दृष्टियों से वह एक मौलिक काव्य प्रतीत होता है। उसमें शुद्ध कन्नड़ का सौन्दर्य है, संस्कृत शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है।

'सूक्ति सुधार्णव' के संपादक मल्लिकार्जुन का नामोल्लेख यहाँ आवश्यक हो जाता है। उन्होंने प्राचीन कवियों के काव्यों से उत्तम अंश लेकर 'सूक्तिसुधार्णव' का संपादन किया। कन्नड़ के संपादित ग्रंथों में यही प्रथम ग्रंथ है। मल्लिकार्जुन ने स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना भी की होगी। पर उनकी ऐसी कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई है।, 'सूक्तिसुधार्णव' में यत्र-तत्र उनकी कविताएं मिलती हैं।

विष्णु-भक्ति-प्राधान्य काल

१५वीं शताब्दी में कन्नड़-काव्य-धारा में पुनः परिवर्तन

१. यह छः चरणों का छंद है। इसके छः प्रकार हैं— शर, कुसुम, भोग, भामिनी, परिवधिनी और वर्धक

के चिह्न दृष्टिगत होने लगे। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना १४वीं शती (१३३६ ई०) में हो गयी थी। विजयनगर के राजाओं ने साहित्य के विकास में महत्व-पूर्ण योगदान दिया। विशेषतः श्रीकृष्णदेवराय (१५०९–२९ ई०) के राजत्वकाल में कन्नड़ और तेलुगु साहित्य को अधिक प्रोत्साहन मिला। किन्तु, १७वीं शती में जब विजय नगर साम्राज्य की कथा केवल इतिहास मात्र में शेष रह गयी, तब एक प्रकार से कन्नड़-संस्कृति विचित्र हो गयी। तथापि, मैसूर राजाओं के आश्रय में कन्नड़-साहित्य और अन्य ललित कलाओं को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

१५वीं और १९वीं शती के बीच के कन्नड़-साहित्य क अध्ययन करने से हम भली भाँति यह जान सकते हैं कि इन चार शतियों में कन्नड़-साहित्य में कई नूतन प्रवृत्तियों का आगमन हुआ और साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ। 'वैष्णव-वाङ्मय' का विकास इसी समय हुआ। कुमार-व्यास, लक्ष्मीश, पुरंदरदास, कनकदास तथा 'दासकूट' (वैष्णव-भक्त-समाज) के अन्य कवियों की रचनाओं से कन्नड़-साहित्य फूला-फला। ये कवि इस काल के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचनाओं में विष्णु-भक्ति की निर्मल धारा बही है, अतएव, इस काल को विष्णु-भक्ति-प्राधान्य काल कहना अनुचित नहीं है। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि इस काल में वीर शैव और जैन कवि भी हुए। इस काल के अन्तिम चरण में हम प्राचीनता से आधुनिकता की ओर बढ़ने वाली काव्य-धारा का दर्शन करते हैं।

नारणप्पा को, जो कुमार-व्यास के नाम से अधिक प्रख्यात हैं, हम इस काल के प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। उनके समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। स्थूल रूप से कहा जा सकता कि वह १४००–१४३० ई० के आसपास वर्तमान थे। 'कन्नड़-भारत' (जिसको कर्णाट-भारत-कथा-मंजरी अथवा गदुगिन-भारत भी कहते हैं) उनकी 'महा-कृति' है। 'ऐरावत' उनकी रचना कही जाती है, पर उस सम्बन्ध में मतभेद है। महाकवि पंप के पश्चात् 'समग्र' भारत की रचना करने वाले कवियों में कुमारव्यास का ही नाम लिया जाता है। यहाँ 'समग्र' का अर्थ महाभारत के अठारह पर्व नहीं है, प्रत्युत् कथा की दृष्टि से प्रमुख भाग हैं। कुमारव्यास ने आदि पर्व से गदापर्व के अन्त तक दस पर्वों की रचना की है।[1] सम्भवतः शेष पर्वों की रचना करना उनका उद्देश्य नहीं रहा है। क्योंकि, गदा-पर्व के अन्त में कवि ने 'फल-श्रुति' की है।

कुमार व्यास भक्त कवि हैं। उनके काव्य के नायक श्रीकृष्ण हैं। स्वयं कवि ने उसे स्पष्ट किया है। उनकी दृष्टि में 'वीरनारायण ही कवि हैं, कुमारव्यास केवल लिपिकार हैं।' गदग में वीरनारायण जी का मन्दिर है। कुमार-व्यास के इष्टदेव वीरनारायण हैं, अतः उन्हीं के नाम पर कुमारव्यास ने 'कन्नड-भारत' की रचना की है। उनकी रचना का आधार व्यास-भारत अवश्य है, पर वह व्यास-भारत का अनुवाद नहीं है, एक स्वतन्त्र महाकाव्य है। उसमें कर्नाटक और कन्नड-जन-जीवन के चित्र सुन्दरता के साथ अंकित हैं। कवि-प्रतिभा, भक्ति-रस और 'कन्नडपन' के दर्शन उसमें कर सकते हैं।

काव्य के प्रारम्भ में कवि ने महाभारत का महत्व इस प्रकार व्यक्त किया है—"राजाओं के लिए 'वीर', द्विजों के लिए 'परम वेद का सार', योगी जनों के लिए 'तत्व-विचार', मंत्रि-जनों के लिए 'बुद्धि-गुण', बिरहियों के लिए 'शृंगार' और विबुध जनों के लिए 'अलंकार' हो इस प्रकार कुमारव्यास ने 'काव्य के गुरु' भारत की रचना की।" उन्होंने अपनी काव्य-रचना के सम्बन्ध में जो उक्तियाँ कहीं हैं, वे गर्वोक्तियाँ नहीं हैं। उनके काव्य का महत्व आज भी उसी प्रकार स्वीकार किया जाता है जिस प्रकार शताब्दियों पहले स्वीकार किया जाता था।

कुमारव्यास का 'भारत' नव रसों का निलय है। शृङ्गार, हास्य, वीर, करुण आदि रसों के चित्रण में कवि ने अद्भुत सफलता प्राप्त की है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में उन्होंने पूर्ण कुशलता का प्रदर्शन किया है। उनके श्रीकृष्ण कर्ण, अर्जुन, भीम, दुर्योधन, द्रौपदी, अभिमन्यु आदि पात्र साहित्य-जगत् में अमर हो गये हैं। मनोहर वर्णन, उत्तम संभाषण, औचित्य का निर्वाह, मध्य-कालीन कन्नड की सहज स्वाभाविक मधुरता, शैली की प्रभावशीलता आदि अनेकों गुण कुमारव्यास की रचना में ...

---

१. शेष छः पर्वों की रचना श्रीकृष्णदेवराय की आज्ञा के अनुसार तिम्मण्णा कवि ने की है।

में विद्यमान हैं। आधुनिककाल के प्रसिद्ध कवि कुवेंपु (डा० के० बी० पुट्टप्पा) जी ने कुमारव्यास के 'भारत' के विषय में ठीक ही कहा—

कवि कुमारव्यास गाएगा
तो कलियुग द्वापर हो जाएगा।
'भारत' नेत्र-समक्ष नाचेगा
तन में विद्युत-नद लहराएगा ॥

कुमार व्यास की कल्पना-चातुरी अमोघ है। सभी आलोचकों ने तत्सम्बन्ध में विचार प्रकट किया है और प्रशंसात्मक शब्द कहे हैं अलंकारों में कुमार व्यास को रूपक बहुत प्रिय है। इसके द्वारा वह शीघ्र ही पहचाने जाते हैं। कन्नड़ साहित्य में रूपक सम्राट्' के नाम से वह प्र यात हैं। उनकी रचना में भामिनी षट्पदी छन्द का प्रयोग हुआ। वह काव्य-सौन्दर्य से ही नहीं नाद-सौन्दर्य से भी युक्त है, गमक-कला' में प्रवीण गायक जब'भारत गाने लग जाता है तब पाठक रस सागर में निमज्जित होकर आत्म विस्मृत हो जाते हैं। सारांश यह कि कुमार व्यास का महाभारत लोकप्रिय 'महाकृति' है जो कन्नड़-साहित्य के अमूल्य रत्नों में एक है।

इस काल अन्य वैष्णव प्रबन्धकार कवि किसी न किसी प्रकार कुमार व्यास से प्रभावित हैं। ऐसे कवियों में प्रथमतः कुमार वाल्मीकि का नाम उल्लेखनीय है। उनके देश-काल के सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत मत नहीं है। उनकी दो रचनाएँ 'तीखे'रामायण' और 'ऐरावण कालग (ऐरावण का युद्ध) प्राप्त हुई हैं। उनकी रामायण एक बृहद काव्य है। उसमें युद्ध काण्ड का अधिक विस्तार है। उसमें कवि की भक्ति भावना प्रकट हुई है। उसके राम विष्णु के अवतार हैं, मन्थरा दासी नहीं है, माया की अवतार है। तुलसीरामायण की भाँति तोखे-रामायण के भी वक्ता-श्रोता शिव-पार्वती हैं। तोखे-रामाण वाल्मीकि-रामायण का अनुवाद नहीं है, उसके कवि ने अध्यात्म-रामायण का भी आधार ग्रहण किया है। तोखे रायायण में भामिनी षट्पदी का प्रयोग हुआ है। उसकी भाषा-शैली में गति है, आकर्षण है। मुख्य रूप से वह एक भक्ति-काव्य है।

'कन्नड़-महाभागवत' के कवि चाटुविट्ठलनाथ पर भी कुमार व्यास का प्रभाव पड़ा है। उनका भी भामिनी षट्पदी में है। 'कन्नड़-भागवत' १२ सहस्र पद्यों से पूर्ण भक्ति-काव्य है। उसमें हरि-गुण, हरि-भक्ति और उसे प्राप्त करने के साधनों का वर्णन मिलता है।

'कर्नाटक-कवि-चूत-वन-चैत्र' कहलानेवाले लक्ष्मीश ने कन्नड़ जैमिनि भारत' की रचना वार्धक षट्पदी में की है। उनके काव्य में भक्ति रस की ही प्रधानता है। 'यह कृष्ण चरितामृत' कवि ने स्वयं कहा है। उनके काव्य में शृङ्गार आदि सभी रसों का प्रसंगानुसार वर्णन है। मृदु मधुर पंजों से युक्त उनकी कविता कर्नाटक में अत्यन्त लोकप्रिय हुई है। लक्ष्मीश कन्नड़ महाकवियों के वर्ग में स्थान पाने योग्य हैं। अन्य प्रबन्धकार वैष्णव कवियों में गोपकवि और नागरस के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस काल में ऐसे कीर्तनकार वैष्णव कवि हुए जिन्होंने कन्नड़ साहित्य और कर्नाटक संगीत को अनुपम देन दी है। उन भक्तों के सकाज को कन्नड़ में 'दासकूट' और उनके द्वारा रचित साहित्य को 'दास-वाङ्मय' कहते हैं। 'दास-वाङ्मय' मध्वाचार्य जी के दार्शनिक सिद्धांतों से प्रभावित है। प्रायः सभी दास (भक्त) मध्वसंप्रदाय के अनुयायी हैं। नरहरितीर्थ जी को 'दाशकूट' के मूलपुरुष कहा जाता है। परन्तु, वस्तुतः श्रीपादराय जी से 'दास वाङमय' की अविरक्त परम्परा चली। संप्रदाय में प्रसिद्ध यह श्लोक ध्यान देने योग्य है—

नमः श्रीपादराजाय नमस्ते व्यास योगिने।
नमः पुरन्दरार्याय विजयार्याय ते नमः॥

कन्नड़ मे धर्म ग्रन्थों को रूपांतरित करने के साहसपूर्ण कार्य का श्रीगणेश श्री पादराय जी ने ही किया। उन्होंने पूजा के समय वेद-परायण की भांति कन्नड़ में रचित पदों का गायन भागवतों (भक्त;गायकों) द्वारा कराने की हरिपाटी चलायी। स्वयं उन्होंने कुछ प्रगीतात्मक रचानाएँ की जिनमें 'भ्रमरगीत' 'वेणुगीत' और 'गोपी गीत' प्रसिद्ध हैं।

यह कहा गया है कि विजयनगर के राजा श्रीकृष्णदेवराय के समय कन्नड़-साहित्य अधिक विकसित हुआ। उनके ही समय व्यासराय पुरन्दरदास, कनकदास प्रभृति प्रसिद्ध वैष्णव कवि हुए। पुरन्दरदास और कनकदास व्यासराय

के शिष्य थे। व्यासराय जी ने सरल कन्नड़ में भक्तिपूर्ण पदों की रचना की है।

पुरन्दरदास 'दासश्रेष्ठ' (भक्त श्रेष्ठ) कहलाये। गुरु व्यासराय जी ने उनकी प्रशंशा करते हुए कहा था—'भक्त हो तो पुरन्दरदास के सलान होना चाहिए।' श्री कृष्ण देवराय के राजत्वकाल में पुरन्दर दास रहे होंगे। ऐसा कहा जाता है कि उनका वास्तविक नाम वरदप्प-नायक था। वे धनी-मानी कुल में जन्में थे। एक संदर्भ में उन्होंने परम विरक्त होकर अपनी सारी संपत्ति त्याग दी और व्यासराय जी से मंत्रोपदेश ग्रहण कर भक्त हो गये। उन्होंने कई पद गाये हैं। कहा जाता है (और स्वयं उन्होंने इसका उल्लेख किया है) कि उनके पदों की संख्या चार लाख और ७५ हजार है। उनके पद विविध राग-रागिनियों में हैं जो कर्नाटक-संगीत-भारती के कंठ-हैं। कर्नाटक संगीत के प्रसिद्ध गायक स्वामी त्यागराज जी को भी पुरन्दररास जी से प्रेरणा मिली थी। पुरन्दर दास जी के पदों में भक्ति, वैराग्य, विनय, समाज-विमर्श, समाज-प्रबोध, कृष्ण-लीलाएं आदि सभी विषय मिलते हैं। कृष्ण-लीलाओं से संबंधित उनके पदों की तुलना हम सूरदास जी के पदों से कर सकते हैं। पुरन्दरदास जो के पद कर्नाटक में अत्यन्त लोकप्रिय है, उनको "पुरन्दरोप-निषद्" कहा गया है।

कनकदास पुरंदरदास जी के समकालीन थे। वह भी एक पहुँचे हुए भक्त थे। हरिभक्तिसार, रामध्यान-चरित्र, नल-चरित्र तथा अन्य फुटकर गीतों की उन्होंने रचना की है। पुरंदरदास जी व्यक्तित्व के समान ही उनका भी व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। अन्य वैष्णव भक्त गायकों में वादिराज, जगन्नाथदास, विजयदास, प्राणेश इत्यादि के नाम लिए जाते हैं। कन्नड साहित्य में भी वचनकार संत कवियों की भाँति ही इन हरि भक्त कवियों का भी महत्व-पूर्ण स्थान है।

इसके पूर्व यह कहा गया है कि इस काल में वीरशैव और जैन कवि भी हुए। वीरशैव कवियों का रचनाओं में प्रधान रूप से शिव-भक्ति-भावना प्रकट हुई। निजगुणशि-वयोगी, मुप्पिन षडक्षरी, सर्वभूषण, लक्कण्णा, गुब्बि मल्लणार्य प्रभृति संत कवियों तथा चामरस, विरूपाक्ष पंडित, षडक्षर देव जैसे प्रबंध-कवियों के नाम यहाँ उल्ले-खनीय हैं। इनमें निजगुणशिवयोगी, चामरस और षडक्षर देव के सम्बन्ध में दो-चार बातें कहना आवश्यक है। निजगुणशिवयोगी एक पहुँचे हुए साधक थे। उनकी रचनाओं में 'शंभुलिंग' की छाप है। उनमें प्रगीतात्मक गुण विद्यमान हैं। उनकी भाषा सरल, स्वच्छ तथा स्फूर्तिदायक है। चामरस कुमारव्यास के समकालीन कहे जाते हैं। उनकी रचना 'प्रभुलिंग लीले' में अल्लम प्रभु का चरित-वर्णन है। उनकी भाषा-शैली आकर्षक तथा संभाषण, वर्णन और पात्र-चित्रण हृदयंगम हैं। चामरस कन्नाड के एक श्रेष्ठ कवि हैं। षडक्षर देव की रचनाएं हैं—राजशेखरविलास, शबरशंकरविलास, बसवराविजय और वीरभद्रदंडक। इस काल के श्रेष्ठ प्रबन्धकारों में षडक्षर-देव का नाम अवश्य गिना जाना चाहिए।

इस काल के जैन कवियों में रत्नाकरवर्णि अत्यन्त ख्याति प्राप्त हैं। 'भरतेश वैभव' उनका प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसमें शृंगार के कई श्रेष्ठ चित्र मिलते हैं। त्रिलोकशतक और अपराजितेश्वर शतक उनकी रचनाएं हैं। भरतेश वैभव की विशेषता यह है कि वह सांगत्य (गेय) छन्द में है, उसमें प्रबन्धात्मक तथा गीतात्मक दोनों गुण विद्यमान हैं।

सन् १७०० के आसपास कर्नाटक में सर्वज्ञ नाय के एक कवि हुए जो क्रांति पुरुष हैं। महात्मा कबीर की भाँति उन्होंने भी समाज की कुरीतियों और अन्धविश्वासों का खंडन किया है। बहुत कुछ अस्वीकार करने का साहस लेकर वे अवतीर्ण हुए थे, उनके समान निर्भीक व्यक्ति वाले कवि बहुत कम देखे जाते हैं। उनके देश-काल आदि के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है। यहाँ तक कि उनका असली नाम क्या था, यह भी अज्ञात ही है। 'सर्वज्ञ' उनकी उपाधि रही होगी अथवा सर्वज्ञ परमेश्वर के नाम पर उन्होंने अपनी बानी त्रिपदी छन्द में कही होगी।

ऊपर यह कहा गया है कि विजयनगर के पतन के बाद मैसूर राजाओं के आश्रय में कन्नड-साहित्य की प्रगति हुई। मैसूर के राजा चिक्कदेवराज (सन् १६७२–१७०४) कवि-लेखकों के आश्रयदाता ही नहीं, स्वयं भी कवि थे।

उन्होंने जयदेव के गीत-गोविंद के ढङ्ग पर कन्नड में 'गीत-गोपाल' की रचना की है। उनके आश्रय में रहकर तिरुमलार्य और चिक्कुपाध्याय ने क्रमशः 'चिक्कदेवराज-विजय' और 'दिव्यसूरिचरित' चम्पू-काव्य लिखे। होन्नम्मा नामक कवयित्री ने उन्हीं के आश्रय में रहकर 'हदिबदेय धर्म' (पतिव्रता-धर्म) की रचना सांगत्य (गेय) छन्द में की। इसी काल में हेलवनकट्टे गिरियम्मा और एक कवयित्री हुई जिन्होंने सांगत्य छन्द में 'चन्द्रहास-कथा' तथा गीत-शैली में 'सीता-कल्याण', 'ब्रह्म-कोरवंजी' और फुटकर गीतों की रचना की।

१९वीं शती में उत्पन्न मुद्दण (वास्तविक नाम नंदलिके लक्ष्मीनारायण, (समय—सन् १८६९-१९०१) इस काल के अन्तिम कवि हैं। उनको हम संधिकाल के कवि कह सकते हैं जिनकी रचनाओं में हम 'आधुनिक काल की नूतन प्रवृत्तियों का अवलोकन करते हैं। उनका 'रामपट्टा-भिषेक' वार्धक षटपदी में है।

आधुनिक काल

आज दिन कर्नाटक में जो कन्नड व्यवहार में है, उसे होसगन्नड (आधुनिक कन्नड) कहते हैं। कहा जा सकता है कि १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में होसगन्नड-साहित्य का प्रारम्भ हुआ। अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति कन्नड भी पश्चिमी प्रभाव से वंचित न रह सकी। पुनर्जागरण इस काल की प्रमुख विशेषता है। अंग्रेजी भाषा व साहित्य के अध्ययन से यहाँ के कवि-लेखकों को नयी प्रेरणा मिली। इस काल में गद्य के विविध प्रकारों का जहाँ एक ओर विकास हुआ वहाँ दूसरी ओर 'नयी कविता' (होस कविते) भी पल्लवित-पुष्पित हुई। शेक्सपीयर, मिल्टन, वर्ड्स्वर्थ, कीट्स, शेली आदि अंग्रेजी-कवियों की कविताओं से आकर्षित होकर यहाँ के कवियों ने जनता को उनसे परिचय कराने के उद्देश्य से कतिपय अंग्रेजी कविताओं का कन्नड रूपान्तर प्रस्तुत किया और तद्द्वारा नयी कविता का श्रीगणेश किया। एस० जी० नरसिंहाचार्य ऐसे व्यक्तियों में प्रथम हैं, जिन्होंने २०वीं शती के प्रारम्भ में अंग्रेजी कविताओं का रूपान्तर प्रस्तुत किया। 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग भी उन्होंने किया था। 'कविता की भाषा जन-साधारण की भाषा होनी चाहिए', अंग्रेजी कवि वर्ड्स्वर्थ के इस कथन का तथ्य उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। उनकी कविता की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है। वर्ड्स्वर्थ की 'To the cuckoo' से एक पद्य यहाँ उद्धृत किया जा सकता है—

Thrice welcome, darling of the spring !
Even yet thou art to me
No bird, but an invisible thing,
A Voice a mystery.

इसका अनुवाद एस० जी० नरसिंहाचार्य जी ने इस प्रकार किया है—

बारो बसंतद कंद बा बा बारो
हारुव हक्कि नीनल्ल
सारुव दनि मायद गंटु कण्णिगे
तोरद् हुरुलामि सुलिवे ॥[१]

इसी समय पंजे मंगेशराव जी ने भी कुछ अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद किया। मैसूर में नरसिंहाचार्य जी का प्रयोग चल रहा था तो मंगलूर में पंजे जी का। उनकी 'उदय-राग' संजेय हाड्डु (सांध्य गीत), तेंकण गालियाट (पूर्व-पवन-क्रीड़ा) आदि कविताओं में नव स्फूर्ति और नव लास्य है। "Twinkle, Twinkle, Little Star" नामक कविता के रूपान्तर की इन प्रथम पंक्तियों को देखिए—

टिमटिमाओ, टिमटिमाओ, ऐ नक्षत्र !
मैं विस्मित हूँ, यह बड़ा विचित्र।
घन गगन में, बहुत दूर तुम
टिमटिमाते वज्र सम तुम ॥

१. आओ वंसत के बालक, आओ,
उड़नेवाली चिड़िया तुम नहीं,
ध्वनि गूँजती, पर कातर नेत्रों को
तुम अगोचर होकर चलते हो ॥

इसमें सरलता तथा लालित्य है। यह एक स्वतन्त्र गीत-सा है। नरसिंहाचार्य और पंजे जी ने अनुवाद के अतिरिक्त कतिपय स्वतन्त्र कविताएं लिखी हैं।

हट्टंगडि नारायणराय जी भी इस उदयकाल के कवियों में एक हैं। वह कन्नड में नये छन्द, नयी वस्तु और भाषा-शैली लाने के पक्ष में थे। 'आंग्ल कवितासार' में उनकी अनूदित कविताओं -ा संग्रह है।

मंजेश्वर गोविंद पै .जे मंगेशराय जी के शिष्य थे। वह एक बड़े विद्वान, कवि, समालोक तथा पुरातत्व वेत्ता थे। उन्होंने सर्वप्रथम आधुनिक कन्नड में खंड काव्य का प्रणयन किया, सरल रगले छन्द के कई नूतन प्रयोग किये एवं 'प्रास' के प्राचीन नियम से—उस बन्धन से कविता को मुक्त किया। उनकी कविता 'कन्नडिगर तायि' (कन्नड भाषियों की माता) अत्यन्त लोकप्रिय है जिसमें 'प्रास' का नियम नहीं पाला गया है। उसका प्रथम पद्य इस प्रकार है—

आओ माता, दर्शन दो, हे कन्नड माता!
आशिष दो, पालोनिज पुत्रों को जन्मदात्री माता!
हमारी भूलें सहती तुम
दुलार से हमें बढ़ाती तुम
हमारा जीवन हो तुम
तुम्हें भूल नहीं सकते हम
तन कन्नड, मन कन्नड, वाणी कन्नड हमारी हे माता॥

उत्तर कर्नाटक में कन्नड के प्रचार कार्य में जिन कवियों ने भाग लिया, उनमें शान्त कवि जी का नाम आदर के साथ लिया जाता है। उस समय उत्तर कर्नाटक में मराठी का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, तब शान्त कवि जी ने 'श्री विद्यारण्य-चरित्र' जैसी रचनाओं के द्वारा लोगों में 'कन्नड-प्रेम' जागृत किया। उनकी ये पंक्तियाँ देखिए—

कन्नड कन्नड
वह वस्तु तुम्हारी है
कन्नड सुनो कन्नड-भाषी॥ टेक॥
पञ्च वर्णों का, पंच रूपों का, पंच स्थानों का
दर्पण॥
कर्नाटक यह
वर्णनीय यह
नमन करो कर्नाटक देवी को॥

'रक्षिसु कर्णाटक देवी' (कर्नाटक देवी, रक्षा करो) उनकी एक लोकप्रिय कविता है।

स्वर्गीय बी० एम० श्रीकंठय्या जी नयी कविता के कर्णधार हैं। यद्यपि उनकी रचना "इंग्लिश गीतेगलु" अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद-संग्रह है तथापि उसमें नूतन प्रवृत्तियों की शंखध्वनि है, उसने क्रांति का भेरी-नाद किया है। कर्नाटक में नवजीवन का संचार करने वाले महानुभाव हैं बी० एम० श्रीकंठय्या (उपनाम 'श्री')। उन्होंने ही 'कर्नाटक हमारा है, कन्नड हमारी है, हमारी धमनियों में कन्नड प्रवाहित है' भाव जागृत किया। वे कन्नड के कण्व हैं, आधुनिक युग के प्रवर्तक हैं। उन्होंने जो नवीन काव्य-मार्ग प्रशस्त किया, उसके पथिक हैं डी० बी गुंडप्पा, श्रीनिवास (मास्ति वेंकटेश ऐयंगार), बी० सीतारमय्या, कुवेंपु आदि। वसंतकुसुमांजलि, निवेदन, महात्मागांधी, अन्तःपुर-गीत आदि डी० बी० गुंडप्पा जी की रचनाएं हैं। अरुण, मलार, रामनवमी, नवरात्रि, सुनीता आदि श्रीनिवास की रचनाएं हैं। बी० सी० की रचनाओं में दीपगलु (दीप), गीतगलु (गीत), नेललु-बेलकु (छाया-प्रकाश) आदि के नाम मुख्य हैं। कुवेंपु (के० बी० पुट्टप्पा) जी के २०-२५ कविता-संग्रह प्रकाशित हुए है जिनमें कला-सुन्दरी, पांचजन्य, कोललु (मुरली), प्रेम-काश्मीर, अग्निहंस, पक्षिकाशि, कोकिले मत्तु सोवियेट रष्या (कोयल और सोवियत रूस) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त कुवेंपु जी ने दो प्रबंधकाव्य लिखे हैं—श्रीरामायणदर्शनम् और चित्रांगदा। श्रीरामायणदर्शनम् अतुकांत महाकाव्य है। कन्नड-साहित्य में श्रीरामायणदर्शनम् की रचना एक उल्लेखनीय घटना है। आधुनिक काल में, जब कि 'मुक्तक' की ओर ही लोगों का अधिक झुकाव है, कुवेंपु जी ने 'प्रबन्ध' लिखकर नवीनता प्रदर्शित की। उनकी 'रामायण' को साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है। कुवेंपु जी की यह विशेषता है कि उन्होंने युगानुकूल भाव ग्रहण किये हैं, इस कारण उनकी कविताओं में अपूर्व आकर्षण है। हिन्दी के जैसे कन्नड में विविध वादों का नारा नहीं है। तथापि, हमको छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि के उदाहरण

कन्नड-काव्यों में मिल जाते हैं। कुवेंपु जी की रचना 'कोयल और सोवियत रूस' में प्रगतिवादी विचारधाराएँ देखी जा सकती हैं।

धारवाड़ में 'गेलेयर गुंपु' (मित्र-मंडली) की ओर से बहुत महत्वपूर्ण कार्य हुए। द० रा० बेंद्रे जी के नेतृत्व में विनायक (वी०के० गोकाक), रसिकरंग (रं० श्री० मुगलि), मधुर चेन्न, विनीत रामचन्द्र आदि कवियों ने आधुनिक कन्नड कविता को चैतन्य प्रदान किया है। कुवेंपु और बेंद्रे जी आधुनिक काल के अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हैं। बेंद्रे जी का उपनाम 'अंबिकातनयदत्त' है। उनकी लगभग बीस रचनाएँ (काव्य) हैं जिनमें कृष्णकुमारी, सखीगीत, नादलीला, गंगावतरण, हृदय समुद्र, मुक्तकंठ, सूर्यपान आदि के नाम उल्लेख योग्य हैं। उनकी रचनाओं में वैविध्य है। उनकी कविताओं में हम युग-दर्शन कर सकते हैं। उनकी कविताओं की आलोचना के लिए यहाँ स्थान नहीं है, एक वाक्य में कहना हो तो कह सकते हैं कि वे कन्नड-जनता के अत्यन्त प्रिय कवि हैं।

जी० बी० राजरत्नम आधुनिक युग के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने बोलचाल की मुहावरेदार कन्नड में 'रत्नन पदगलु' '(रत्न के पद) की रचना की है। उसमें हालावाद की झलक है, पर समाज की विषमता और अन्याय पर भी कटाक्ष किया गया है।

आधुनिककाल के अन्य कवियों में चेन्नवीर कणवि, गंगाधर चित्ताल, आनंदकंद, पु० ति० नरसिंहाचार, परमेश्वर भट्ट, सिद्‌य्या पुराणिक, एम० बी० सीतारमय्या इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान युग में कन्नड-कविता की जो धारा चल रही है, उसको 'नव्य-कविता' कहा जाता है। यह प्रत्येक जीवंत भाषा का लक्षण है कि उसके काव्य में परिवर्तन होते रहते हैं। कन्नड-कविता में भी इस प्रकार के परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। कहा जा सकता है कि लगभग सन् १९५० से 'नव्य-कविता' प्रवाहित है। कुछ विद्वानों के कथनानुसार 'नव्य-कविता' का श्रीगणेश विनायक की 'नव्य-कविताएँ', चेन्नवीर कणवि से संपादित 'नव्य ध्वनि' और रसिकरंग की 'ओं अशांतिः' रचनाओं से होता है। आज श्रीगोपालकृष्ण अडिग इस 'नव्य-कविता' का प्रवर्तन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। कई नवयुवक कवि इस मार्ग पर चल रहे हैं। कहना न होगा कि आज के इस काव्य-मार्ग पर वर्तमान अंग्रेजी साहित्य के युग-प्रवर्तक कवि और आलोचक टी० एस० इलियट का प्रभाव पड़ा है।

उपसंहार

अब तक हमने कन्नड-काव्य के स्वरूप को समझने का प्रयास किया है। कन्नड-काव्य-साहित्य की प्रमुख विशेषताओं की ओर यहाँ संकेत मात्र किया गया है, पूर्ण अध्ययन यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

कन्नड़ के काव्य साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास

रा० य० धारवाड़कर

कन्नड़ साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। उसकी परम्परा करीब एक हजार वर्ष से पहले से चलती आ रही है। अब मैसूर राज्य में निवस करनेवाले करीब दो करोड़ से भी अधिक कन्नड़ भाषा-भाषी लोगों को यह अत्यन्त प्रिय साहित्य बना हुआ है। तमिल, तेलुगु, मलयालम् भाषाओं के साथ यह द्राविड़ भाषा-वर्ग की भाषा है। द्राविड़ भाषा की बुनियाद और अत्यन्त प्राचीन आर्यकरण का सम्बन्ध इन दोनों का सुन्दर समन्वय कन्नड़ भाषा एवं साहित्य ने किया है जो भारतीय साहित्य का प्राण है।

कन्नड़ में लिखित सर्वप्रथम शिलालेख हल्मिड़ी का है जिसका काल पाँचवीं सदी (ई० ४५०) है। उसकी भाषा तथा बन्दिश को देखकर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उस समय में कन्नड़ भाषा को साहित्य रूप मिल गया था। सातवीं सदी का बादामी शिलालेख भी इसी बात का समर्थन करता है।

लेकिन कन्नड़ में प्राप्त सर्वप्रथम ग्रन्थ राष्ट्रकूट नरेश नृपतुंग या अमोघ वर्ष रचित "कविराजमार्ग" है। इसका नाम ही सूचित करता है कि यह ग्रंथ कवियों को राजमार्ग दिखाने वाला है। कवि ही न हों तो उनके लिए राजमार्ग क्यों? यह प्रश्न उद्भूत हो सकता है। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है। उस समय में कवि थे, यह बात उक्त ग्रंथ से ही स्पष्ट हो जाती है।

साहित्य के इतिहास में बोली पहले, उसके बाद व्याकरण आता है। हम जान चुके हैं साहित्य पहले, तदुपरांत साहित्य नियंत्रण। यह तो निःसंदेह है कि 'कविराजमार्ग' के पहले कन्नड़ साहित्य था चूंकि नृपतुंग ने अपने ग्रन्थ में प्राचीन कन्नड़ की बात कही है; विमलोदय, नागार्जुन, दुर्विनीत आदि ने 'गद्याश्रम गुरुता प्रतीतियं' कहा है; और विमलोदय तो एक प्रगल्भ लेखक थे। यही नहीं, बल्कि तेरहवीं सदी के केशिराज ने गजग, गुणनन्दि, मनसिज, असंग, चंद्रभट्ट, गुणवर्म, श्री विजय आदि साहित्यकारों के नाम भी लिये हैं। किंतु खेद है कि इनमें से अनेक कवियों की कृतियाँ हमें अब तक नहीं मिल रही हैं। सत्रहवीं सदी के भट्टाकलंक वैयाकरण कहते हैं—"षण्णवति सहस्र प्रमित ग्रन्थस्य चूड़ामणि अभिदानस्य उपलब्धमात्।" छियानव्बे हजार ग्रन्थ (ग्रंथ = अनुष्टुप छंद) की इस "चूड़ामणि" का व्याख्यान तुंबलूराचार्य ने कन्नड़ में किया है, ऐसा उल्लेख देवचन्द्र की राजावलीक थे" (सन् १८३८) में मिलता है। कहा जाता है कि "ओड्डाराधने" नामक ग्रन्थ भी काफी प्राचीन है। कन्नड़ साहित्य की यह एक अपूर्व संपत्ति है।

करीब एक हजार वर्ष की व्याप्ति के कन्नड़ साहित्य का काल विभाजन नाना प्रकार से करने का प्रयत्न किया जाता रहा है। एक तो यह कि अधिक संख्या में साहित्य सृजन करने वाले कवियों के संप्रदाय की दृष्टि से किया जाने वाला काल विभाजन दूसरा यह कि साहित्य के भाव या रस की दृष्टि से किया जाने वाला काल विभाजन। तीसरा यह कि जिस काल में जो अधिक संख्या में साहित्यिक रूप दिखाई पड़े उनकी दृष्टि से किया जाने वाला काल विभाजन। चौथा यह कि जिस काल में जो सर्वश्रेष्ठ कवि हुए उनके नाम पर किया जाने वाला काल विभाजन।

यहाँ एक और बात का जिक्र करके आगे बढ़ूं। वह यह कि एक अनुमान भी है कि बौद्ध ही कन्नड़ भाषा के आदि

कवि रहे होंगे। सन् के प्रथम भाग से कन्नड़ में ग्रन्थ रचना होती रही होगी, बौद्ध धर्म के नाश के साथ-साथ बौद्ध ग्रंथों का नाश भी हुआ होगा। जो भी हो, प्रथम काल विभाजन के अनुसार सन् दसवीं सदी से बारहवीं सदी तक अधिक संख्या में जैनों ने कन्नड़ में साहित्य सृष्टि की, अतः यह काल जैनयुग कहलाता है। बारहवीं सदी से पंद्रहवीं सदी तक वीरशैवोंने कन्नड़ की भी वृद्धि की, अतः यह काल वीरशैव युग कहलाता है, पन्द्रहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक ब्राह्मणों ने अधिक संख्या में कन्नड़ साहित्य सरस्वती की आराधना की, अतः यह काल ब्राह्मण युग कहलाता है। आजकल सभी संप्रदाय वाले कन्नड़ साहित्य का लालन-पालन करने लगे हैं। रस या भाव की दृष्टि से कन्नड़ साहित्य का काल विभाजन इस प्रकार किया जाता है—क्षात्रयुग, मतप्रचार युग, सार्वजनिक युग और वैज्ञानिक युग। साहित्य के रूप की दृष्टि से दसवीं सदी से बारहवीं सदी तक गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू साहित्य नामक प्रगल्भ साहित्यरूप का बोलबाला रहा, अतः वह 'चंपूयुग' अभिहित हुआ। बारहवीं सदी से पन्द्रहवीं सदी तक वीरशैव कवियों ने विशेषतः आज के रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाँति अपने हृदयों के उद्गार वचनों में अभिव्यक्त किये, अतः वह युग 'वचन युग' कहलाया। तदुपरांत के काल में कुमार व्यास आदि ने 'षट्पदि' नामक छन्द का उपयोग किया तो वह 'षट्पदियुग' का काल कहलाया। और इधर विज्ञान एवं गद्य को प्राधान्यता मिली, तो आधुनिकाल गद्यकाल कहलाता है किन्तु इसका अर्थ नहीं कर लेना चाहिये कि उपरोक्त काल विशेष में दूसरे प्रकार के साहित्य की सृष्टि नहीं हुई। इसका यही लिया जाना चाहिये कि काल के नाम के अनुसार अधिक साहित्य का सर्जन हुआ। अन्त में जिस काल में जो कवि अधिक लोक प्रिय हुए उनके नाम से साहित्यिक काल विभाजन हुआ जैसे प्रथमयुग में पम्प महाकवि हुए, इस लिए उसका नाम पड़ा 'पम्पयुग', दूसरे में बसवेश्वर महान् वीरशैव सन्त कवि हुए, अतः उसका नाम पड़ा "बसवयुग", तीसरे में कुमार व्यास श्रेष्ठ कवि हुए, अतः उसका नाम पड़ा "कुमार व्यासयुग"। इनके उपरांत का काल सामान्य रूपसे 'आधुनिक काल' माना जाता है।

कन्नड़ का सुरवि, कवि सम्राट् था, दसवीं सदी का पम्प महाकवि। वह स्वयं कवि भी था, कलि भी था। बाह्य और क्षात्र तेज के सुन्दर समन्वय की परंपरा भी पम्प से ही शुरू हुई। वह श्रेष्ठ जैन कवि था। उसने एक और नवीन परंपरा का श्रीगणेश किया। वह यह कि कवि होकर एक धार्मिक काव्य और एक लौकिक काव्य का प्रणयन किया। उसने अपनी चालीस वर्ष की आयु में ही "आदि पुराण" नामक महाकृति लिखकर अपनी कीर्ति-पताका फहराई। इस ग्रंथ का मूलाधार है जिनसेनाचार्य का संस्कृत 'पूर्व पुराण'। नाना जन्मों के मूष में पककर भोग से त्याग को ओर मुड़ने वाले आदि तीर्थंकर का जन्मवृत्त इस ग्रंथ में वर्णित है। इसमें कवि का कथन है कि उसके धर्म का, काव्य धर्म का अवलोकन किया जाय।

'आदि पुराण' में जिनागम को प्रकाशित करने वाला पम्प महाकवि 'विक्रमार्जुन विजय' अथवा 'पम्प महाभारत' नामक लौकिक काव्य का स्रष्टा बन गया है। उसकी लेखनी की अलौकिक प्रतिभा का सौन्दर्य इसमें साकार हो उठी है। 'आदि पुराण' को तीन महीने में लिखा है तो पम्प भारत को छः महीने में। अपने प्रभु अरिकेसरी को अर्जुन से तुलना करके व्यास के महाभारत को 'विक्रमार्जुन विजय' बना दिया है। उसने कहा है—"व्यासमुनींद्र रुंद्र वचनामृत वार्धियनीसुवें कवि व्यास नेंब गर्व मेन गिल्ल।" अर्थात् व्यास मुनि की वचनामृत वारिधि में मैं तैरूँगा, कवि व्यास कहलाने का गर्व मुझे नहीं है।" उस कथन में सुसंस्कृत मन तथा नम्रता यद्यपि है तथापि समस्त भारत की कथा को अपूर्व रूप से सुनाया है। वैदिक धर्म में जैन कवियों को यद्यपि विश्वास नहीं था तथापि रामायण—महाभारत की पकड़ से निकल जाना उनको असंभव हुआ। रामायण महाभारत तो समूचे भारत को मिलाने वाले सेतु बने हुए हैं। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्या-कुमारी तक रामायण महाभारत की ओर लोगों का खिंचाव कम नहीं हुआ है। ये कथाएँ जन-जीवन के ताने-बाने हैं। सीता के साथ रोकर, राम के साथ स्थिरता से खड़े होकर, द्रौपदी के साथ आगबबूला होकर, भीम के साथ क्रोधित होकर, धर्मराज के साथ धर्म राज्य स्थापित करने में ये अमर रच-

नाएँ समस्त भारत के मन को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हुई हैं। द्रौपदी के बारे में पम्प ने ही कहा है कि उसका केशपाश ही महाभारत की लड़ाई का मूल बन गया। उसके बाद रन्न कवि ने तो द्रौपदी के केश-पाश का बिलकुल ऱड़कती भाषा में वर्णन किया है जिससे भीम का लहू खौलने लगा। पम्प की वाणी मृदु एवं संयमित है। छोटे में बड़ा अर्थ सूचक जैसे "देखने में छोटे लगें, घाव करे गंभीर।" समालोचकों ने तो उसको कन्नड़ का कालिदास कहा है। फूल तो अपने आप खिलता है और अपना सौरभ फैलाता है। किंतु वह अपने पीछे एक बीज छोड़ देता है ताकि उसकी संतान की वृद्धि हो, यह उसका एक बढ़िया गुण है। उसी प्रकार पम्प स्वयं कवि था, इतना ही नहीं, वह अपने पीछे एक काव्य-परंपरा की देन देकर गया है।

पम्प के उपरांत पोन्न ने भी 'शांति पुराण' नामक धार्मिक ग्रंथ और 'भुवनैक रामाभ्युदय' नामक लौकिक ग्रन्थ लिखा। उसने पम्प के कदम पर कदम रखा। उसको 'कवि चक्रवर्ति' उपाधि भी मिली। 'शांति पुराण' में १६वें जैन तीर्थंकर शांतिनाथ का चरित्र अंकित किया गया है। परन्तु उसमें एक भी 'आदि पुराण' की तरह हृदय-स्पर्शी संनिवेश नहीं है। 'आदि पुराण' के सामने 'शांति पुराण' फीका पड़ा है। किंतु पम्प के 'विक्रामर्जुन विजय' की तरह अपने नरेश की तुलना श्रीराम से करके 'भुवनैकय रामाभ्युदय' लिखा पोन्न ने। उसने स्वयं अपनी प्रशंसा कर ली है कि मैं कालिदास से भी श्रेष्ठ हूँ। ऐसा लगता है कि उस समय के कवि संस्कृत कवियों की भाँति होड़ा-होड़ी करने में वीरता दिखाते रहे होंगे।

पोन्न के उपरांत रन्न कवि हमारे सम्मुख आता है। वह ग्यारहवीं सदी का माना जाता है। उसका नाम ही सूचित करना है कि वह अमूल्य रत्न ही था। पंप के मार्ग का ही उसने भी अनुसरण किया। उसने भी 'अजित-पुराण' नामक धार्मिक ग्रंथ और 'साहस भीम विजय' नामक लौकिक ग्रन्थ की रचना की। पंप ने अर्जुन को कथानायक बना लिया है तो रन्न ने भीम को। पंप ने अरिकेसरी की प्रशंसा की है तो रन्न ने सत्याश्रय को भीम से तुलनाकरके प्रशंसा की है। 'साहस भीम विजय' का दूसरा नाम है "गदायुद्ध।"

पंप की तरह रन्न की कीर्ति भी सुस्थिर खड़ी है उसके लौकिक काव्य 'गदायुद्ध' पर ही। यह काव्य महाभारत की कथा पर—खासकर गदा और साप्तिक पर्वों में आई हुई कथा पर—अवलंबित है। वस्तु पर सुन्दर काबू, परिपूर्ण पात्र निर्माण, नाटकीय शैली, सुन्दर संनिवेश रचना-कौशल, समुद्रघोष की भाँति गरजने वाली अद्भुत वीर शैली आदि ने 'गदायुद्ध' को कन्नड़ साहित्य में चिर शाश्वत स्थान दिया है। रन्न की द्रौपदी पावक की पुत्री है। उसका भीमसेन से मिलना तो अनिलानिल के संयोग की भाँति, काव्य भर में उन्हीं की तूती, उन्हीं का गर्जन रन्न का व्यक्तितत्र भी उतना ही मनोज्ञ है। वह तो अंग्रेजी साहित्य के मिलन के समान है। रन्न और मिल-टन समान धर्मी हैं। मिल्टन की तरह रन्न भी काव्य को एक तपस्या मानने वाला है। "नानृषिः कुरुते काव्यं" रन्न का काव्य पढ़ते समय हमें ऐसा लगता है कि मानों हम मिल्टन का Paradise lost (पेरडाइज् लॉस्ट) पढ़ रहे हों। व्यक्तित्व की दृष्टि से देखा जाय तो दोनों में उतना ही अगम्य आत्म विश्वास दीखेगा। मिल्टन ने paradise last में अपने काव्य के बारे में which watsyet unattemted on prose or rhyme कहा है, उसी प्रकार रन्न ने भी कहा है :—

आरातीय कवीश्वर
राऱु मुन्नार्तरिल्ल वाग्देवियभं—
डारद मुद्रे्यनोडेदं
सारस्वतमेनिप कवितेयोक कविरत्नं ॥

भावार्थ यह कि सारस्वत कविता में कवि रत्न के समान वाग्देवी के भण्डार की मुद्रा को तोड़ने वाले कवीश्वर प्राचीन काल में कोई नहीं हुए हैं। रन्न को हमेशा यह प्रज्ञा रही है कि वह स्वयं महाकवि है। जौहरी को दूकान के रत्नों की परीक्षा करनी चाहिये, इसे छोड़कर वे आदि शेष की फणि पर के रत्न की परीक्षा करने के के लिए जायँ तो मूर्खता होगी। उस रत्न पर हाथ चलाते ही आदमी जलकर भस्म हो जाय। उसी प्रकार रन्न के कृति-रत्न की समालोचना करने की इच्छा रखने वालों को

एक छाती नहीं, आठ चाहिए। इसी आशय की उसकी रचना है--"रत्न परीक्षकानां कृति रत्न परीक्षकनेनेंदु फणिपतिय फणा। रत्नमुमं रन्नन कृति रत्नमुमं पेल परीक्षिपंगेंटेदेंये।।"

पंप, पोन्न और रन्न इस रत्नत्रयी के काल में ही करीब चावुण्डराय, कर्नाटक कादंबरी का नागवर्म, दुर्गसिंह नागेन्द्र, नयसेन आदि कवियों ने काव्यों की रचना की। जैन कवियों को भी रामायण महाभारत की ओर कितना आकर्षण था। ग्यारहवीं सदी के नाग चन्द्र के मथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य लिखना हो तो श्री रामचन्द्र के बारे में ही लिखना चाहिए। विषय अच्छा हो तो, काव्य की रचना किसी प्रकार से की जाय तो चले। कलाकार चाहे जितना भी चतुर क्यों न हो, उससे रचित लोहे का चना क्या उपादेय हो सकेगा? विषय ठीक हो तो सब ठीक, अच्छा हो तो सब अच्छा।

नायक नन्यनागे कृति विश्रतमागदुदात्त राघव नायकनागे विश्रुतमनेधुदु विस्मय कारियल्तु का। लायसदिं विनिर्मिसिद कंठिके कांचनमालेयंतुपा देय मेनिक्कुमे विषयमोघ दोड़ाबुदुमोप्पलाकुमे।।

तात्पर्य यह कि नायक यदि दूसरा हो तो कृति विश्रुत नहीं होगी, यदि राघव नायक हो तो विश्रुत होगी। लोहे की कंठी कांचनमाला बनेगी। विषय उत्तम हो तो कृति भी उत्तम होगी।

कन्नड़ साहित्य का दसवीं सदी से बारहवीं सदी तक का काल जैनयुग और पंडित युग था। किन्तु यह कहा जा सकता है कि कवि की निजी आशा-आकांक्षाएं, आर्त-भावनाएं, हृदय की पुकारें सर्वप्रथम कन्नड में आई वीरशैव साहित्य से ही। इस वीरशैव युग के मूर्धन्य थे। श्री बसवण्ण जी। श्री बसवण्णजी का जीवन ही एक अद्भुत चमत्कृति है, प्रवाद है। अपने जीवन के तीस-बत्तीस वर्ष के अल्पकाल में वे प्रबल प्रभंजनकी तरह कन्नड देश भर घूमे। हवा के हाथ लगे सूखे पत्ते जैसे उन्नत आकाश तक चढ़ जाते हैं वैसे ही अत्यन्त दीन-दलित भी उनके पुण्य प्रभाव से अपने जीवन को सार्थक बना सके। बागे वाडी के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर, वैदिक धर्म के कर्मकांड को उखाड़ फेंककर कल्याण नगरी जाकर, वहां बिज्जल राजा के मंत्री होकर, समस्त विश्व को ही अपना परिवार समझकर जनमन को सुधारने का काम उन्होंने किया। निशित समाज-समालोचना, काव्यमयी शैली, सुन्दर उपमाएं, उदार अंतः करण, मोहक व्यक्तित्व और उदात्त तत्वदर्शन के कारण बसवण्णजी के वचन कन्नड साहित्य की रत्न-खानें हैं। उनकी एकेक बात एकेक मुक्ता फल है। बोली--बात के बारे में वे स्वयं कहते हैं--"बात मोती की माला की तरह हो, माणिक की दीप्ति के समान हो, स्फटिक की शलाका की भांति हो, लिंग (परमात्मा) उसे सुन रीझ के कहे कि हां, बात यह है।" ये बातें उनके सारे वचनों को लागू होती हैं। उनकी बातें भी मोती के हार थीं, माणिक की दीप्ति थीं, स्फटिक की शलाका थीं। बसवण्णजी का व्यक्तित्व हमें विदित होता है उनके वचनों से ही। "ऊर सीरेगे अगस बड़िबड़िवंते होन्नेन्नदु, मण्णेन्नदु एंदु हलबुत्तिद्देनय्या" (गाँव की साड़ी के लिए जैसे धोबी चिंता करता है वैसे ही मैं भी सुवर्ण मेरा, भूमि मेरी कहके प्रलाप करता हूँ प्रभो), "एन्न चित्त अतिय हण्णु नोडय्या, होरगे रंजक ओलगे गिजक" (मेरा चित्त गूलर का फल, बाहर लाल, अन्दर बीजभरा), "इक्कुक कै मुगिदरे भक्तनागबल्लुदे?", (चिमटा यदि हाथ जोड़े तो क्या वह भक्त होगा?) आदि में उनकी विनम्रता, "ऊर मुंदे हाल हक्क हरियुत्तिरलि लज्जेगेडलेके, नागगेड़लेके? बिज्जलन भंडार वेनगे-कय्या?" (गाँव के सामने दूध की नदी बहती रहे, लाज क्यों त्यागूं? शरम क्यों छोडूं? बिज्जल का खजाना मेरे लिए क्यों?), "भवि बिज्जकगद्धुगेय केकगे कुक्किकुं ओलैसिहनेंदु आडुतिपरय्या प्रमथरू। कोडुवेनवारिगुत्तरव, सले कैगूलि माड़ियादरू निम्न निलविगे कुदिवेनललदे अन्यक्के कुदिदोड़े होले दण्ड" (भवि बिज्जल के सिंहासन के नीचे बैठकर सेवा कर रहा हूँ, कहते हैं प्रमथगण। उनको मैं उत्तर दूंगा कि मैं रोजी करके तुम्हारी स्थापना के लिए रहने के लिए पक रहा हूँ, उबल रहा हूँ, औरों के लिए पकूं उबलूं तो मुझे कठोर दण्ड मिले), "आरु मुनिदेम्मनेनु माडुवरू? अरु मुनिदेम्मनेनु माडुवदु? नम्न कुन्निगे कूस कोड़बेड़, नम्म सोणगगे तलिगेयल्लिवक-बेड़, न्याय निष्ठुरि, दाक्षिण्यपर नानल्ल, लोक विरोधी, शरणरिगं जुवेनल्ल" (क्रोध करके कौन क्या करेगा?

गाँव नाराज होकर क्या करेगा ? अपने पिल्ले को शिशु न देना, हमारे कुत्तेर को थाली में न खिलाना, न्याय निष्ठुरी हूँ, दाक्षिण्य पर, संकोची मैं नहीं हूँ, लोक विरोधी शरणों से मैं न डरूंगा ।" इन वचनोंमें उनकी धीर प्रतिज्ञा दीख पड़ती है। बसवण्णजी ने लोगों को क्या संदेश दिया ? उन्होंने उदात्त जीवन के तत्व को अत्यंत सरल शैली में सुनाया है। आदमी को क्रोधी नहीं बनना चाहिए, क्रोध तो पागलपन की राह है। सच्चे शरण (भक्त) को सब सहन करना चाहिए। सब लोगों की भलाई की कामना करने वाले हैं कूड़ल संगमदेव के शरण। उद्धरेत् आत्मना आत्मानं। अपने पत्तल में जब गधा मरा पड़ा है तब औरों के पत्तल की मक्खियाँ उड़ाने की क्या जरूरत ? लोगों की टेढी तुम क्यों सीधी करोगे ? अपनी टेढ़ी को सीधा कर लो। अपने-अपने तन को, अपने-अपने मन को धीरज धरने को कहो, शान्तनिर्मल कर लो। पड़ोसी के लिए दुःख करना कूड़ल संगम देव को पसंद नहीं। बसवण्णजी के अनुसार यह संसार तो करतार की कर्मशाला है। यहाँ इस संसार में जो पसंद आवें वे वहाँ—परलोक में पसंद आवें। स्वर्ग और मर्त्य अन्यत्र नहीं है। आचार ही स्वर्ग है, अनाचार ही नरक , 'जी, कहकर चार अच्छी बातें करें तो स्वर्ग है, 'अरे' कहकर निष्ठुर बातें करें तो नरक है। इस महापुरुष का नाम इस युग के लिए सचमुच यथार्थ है।

जैसे अलग-अलग सोतों से जल आकर जलाशय में इकट्ठा होता है वैसे ही १२ वीं सदी में शिवशरणों (भक्तों) से स्थापित 'अनुभव मंडप' में नाना प्रकार के, नाना स्तर के, भिन्न-भिन्न श्रेणी के, अलग-अलग पेशों के लोग आकर शामिल हुए। कन्नड़ में वचन साहित्य निर्माण होने लगा। कन्नड़ में वचन युग मानों साहित्य का प्रजा प्रभुत्व का युग रहा। समाज सुधारक, धर्मोद्धारक बसवेश्वर जी संस्पर्श से लकड़हारे, रस्सी बनाने वाले, चावल कूटने वाले, जुलाहे, चमार, अस्पृश्य सभी ने मिलकर साहित्य की सृष्टि की। इससे साहित्य को नई संवेदना, नई अनुभूति, नई अभिव्यक्ति मिली। इस समय के वचनकारों में अल्लम-प्रभु, सकलेश मादरस, चेन्नबसव, सिद्धराम आदि के नाम स्मरणीय हैं।

अक्क महादेवी का नाम तो एक बड़ा नाम है। उड़नड़ि में जनमी इसने निर्णय किया कि शिव ही मेरा वल्लभ है। वहाँ के कौशिक नामक जैन नरेश ने जब इसके साथ विवाह करना चाहा तो उसने साफ कहा कि जो वीरशैव नहीं है उससे शादी नहीं करूंगी। वह आजीवन विरक्त रही। काव्य-मयता की दृष्टि से उसके वचन बसवेश्वर के वचनों के निकट आते हैं।' तेरणिय हुळु तन्नस्नेहदल्लि मनेयमाड़ि, तन्ननूलु तन सुत्ति साव तेरनंते मन बंदुद बयसि बेवुत्ति इने" (तेरणी कीड़ा जैसे अपने स्नेह से घर बना कर, अपना सूत अपने चारों ओर लपेटकर मर जाता है वैसे मैंने अपनी मर्जी के अनुसार चाहकर तप रही हूँ), "कोल तुदिय कोड़गनंते, नियण तुदिय बोबे यंते आडि-देनय्य नीनाड़िसिदंते" (जिस तरह तुमने खेलाया, नचाया उस तरह मैं कपि की तरह, गुड़िया की तरह खेली) कह कर उसने संसार की माया का वर्णन किया है "कायक्के नेरळागि काडित्तु माये, प्राणक्के मनवागे काडित्तु माये, मनक्के नेनहागि काडित्तु माये, जगद जंगुलिगालिगे बेंगोल-नेत्ति काडित्तु माये" (काया की छाया, प्राण का मन, मन की याद, जनसमूह की पीठ की लाठी बनकर माया ने पीड़ा दी थी), पुरुष को स्त्री रूप में, स्त्री को पुरुष रूप में माया सताती है। बसवण्णजी ने कहा कि यह संसार साँप-सपेरे के स्नेह की तरह है तो अक्क महादेवी ने एक पग आगे बढ़ाकर कहा कि साँप के दाँत उखाड़कर सांप को खिला (खेला) सके तो साँप का संग ही अच्छा। जीवन के प्रलोभनों से पलायन करना सच्ची विरक्ति नहीं। जीवन संग्राम में पड़कर, घुसकर प्रतिभटनकर, जूझकर जीतना ही सच्चे जीवन का मार्ग है।" पहाड़ पर घर बना कर मृगों से डरें तो क्या होगा ? समुद्र के किनारे पर घर बनाकर लहरों से डरें तो क्या होगा ? हाट में घर बनाकर शोरगुल से ऊबें तो क्या होगा ? लोक में पैदा होके आने पर स्तुति-निंदा आवें तो नाराज़ हुए बिना समाधानी बन जाना चाहिये।" यह है अक्क महादेवी जी का दिव्य व्यक्तितत्व। आपका हर एक वाक्य एकेक भावगीत, एकेक गीतिकाव्य है।

करीब तेरहवीं सदी में दो उदात्त कवि हुए—हरिहर और राघवांक। हरिहर क्रांति कवि था। वस्तु, छंद, तथा

काव्य दृष्टियों से कन्नड़ साहित्य में उसने नया मार्ग दिखाया। सामान्य रूप से अपने समकालीन लेखकों के के लिए समग्र काव्य रचना करने का श्रेय हरिहर को ही मिलता है। 'बसवराज देवर रग के' 'नंबियण्णन रग के' 'पंपाशतक, 'रक्षाशतक' आदि आपकी रचनाएं श्रेष्ठ हैं। हरिहर का भानजा राघवांक से रचित 'हरिश्चन्द्र' काव्य तो एक अद्भुत साहित्य कृति है। पात्र परिपोषण, नाटकीयता, करुणारस आदि से इस काव्य ने जन-मन को तुष्टि-संतुष्टि देकर अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। इसी समय का एक दूसरी रचना जन्न का 'यशोधर चरित्र' है जो कि उत्तम साहित्यिक जैन कृति है। इस काल में नेमिचन्द्र, रुद्रभट्ट, आंडय्य, केशिराज, चौंडरस, भीम कवि आदि प्रधान कवि हुए जिनकी रचनाएं कन्नड साहित्य की अमूल्य निधियां हैं।

इस समय के उपरांत कन्नड साहित्य में षट्पदि युग आया। इस काल में विशेषतः ब्राह्मण कवियों ने कन्नड में साहित्य सृजन किया। उनमें चौदहवीं सदी के कुमार व्यास, पंद्रहवीं सदी के कुमार वाल्मीकि, सोलहवीं सदी के व्यासराय, पुरंदरदास, कनकदास तथा लक्ष्मी के नाम आदर के साथ लिए जाते हैं।

कुमारव्यास से रचित गदग का भारत तो वही कहानी सुनाता है जो कि महाभारत में है। किन्तु उसकी सुन्दरता तो निराली छटा से जगमगाती है। कुमारव्यास का काव्य वस्तु आकाश-सा विशाल, उसके पात्र श्रवण बेलगोल के गोमटेश्वर की मूरत के जितने ऊंचे। उसकी शैली सुकोमल, बंदिश मुलायम। उसने स्वयं अपनी रचना के बारे में कहा है—"नरेशों को वीरता, द्विजों को परम वेद का सार योगीश्वरों को तत्व विचार, मंत्रियों को बुद्धि-गुण, विरहियों को शृङ्गार, विद्यापरिणतों को अलंकार, काव्य को गुरु है।" आकाश को हथेली में भरना असाध्य ही नहीं, दुःसाध्य है। अतः इस काव्य के बारे में अधिक विवरण देना नहीं चाहते हैं। कुमारव्यास ने भारत की रचना की तो कुमार वाल्मीकि ने रामायण लिखी। लक्ष्मीश ने भारत के अश्वमेध यज्ञ पर्व की कथा को विस्तार से सुनाया।

इसी समय में करीब-करीब, कन्नड़ में एक विशिष्ट परंपरा शुरू हुई और वह है—दास साहित्य परम्परा। 'दासकूट' के हरिदास सभी विशेषतः वैष्णव सम्प्रदाय के हैं। १३वीं सदी में अपरोक्ष ज्ञानी, हनुमंत के अवतार माने जाने वाले श्रीमन् मध्वाचार्य ने वैष्णव या मध्व सम्प्रदाय का श्रीगणेश किया। श्रीमन् मध्वाचार्य जी के तत्वज्ञान का संग्रह इस प्रकार किया जाता है—

श्रीमन् मध्वमते हरिः परतरः
सत्यं जगत्

आचार्य जी के सभी शिष्य कहते हैं—"न माधव समो देवो न च मध्व समो गुरुः।" श्रीमन् मध्वाचार्य जी ने दक्षिण में उडुपि में जन्म लिया था तथापि बदरी, बंगाल, आसाम आदि का पर्यटन किया था। कहा जाता है कि बंगाल में चैतन्य पंथ पर आपका काफी प्रभाव पड़ा। विजयनगर के काल में हंसी विजयनगर वैष्णवों का पवित्र यात्रा स्थान बन गया था। "तबे आइलेन प्रभु विद्यानगरी" यों चैतन्य चरितामृत में कहा गया है।

आचार्य जी ने तत्व संस्कृत में सुनाया उसको संगीत द्वारा सामान्य जनता की डयोढ़ी तक पहुँचाने का श्रेय वैष्णव हरिदासों को मिलता है। उनमें नरहरितीर्थ (आप का पूर्वाश्रम का नाम स्वामी शास्त्री जी था, आप मूल्यतः ओढ़ देशवासी रहे), श्रीपादराय (करीब १४८६), श्री व्यासराय (आपने विजयनगर का कुछयोग बताया था (करीब १४४७), श्री वादिराज (करीब १६००), श्री पुरन्दरदास (करीब १५६४), श्री विजयदास (करीब १६८२), कनकदास (ये गड़रिये कुल के वैष्णव थे), प्रसन्न वेंकट (करीब १६८०), जगन्नाथदास (करीब १७२७) प्रधान सन्त हैं। इनमें भी पुरन्दरदास जी दास श्रेष्ठ कहलाये हैं। इनके गुरु व्यासरायजी कहते हैं दास हैं तो पुरन्दर दास जी।" पुरन्दरदासजी आज के महाराष्ट्र के पुरन्दरगढ़ के निवासी थे। जब कभी हरिकीर्तन शुरू किया जाता है तब प्रथमतः यह कहा जाता है "नमः श्री पादराजाय, नमस्ते व्यास योगिने, नमः पुरन्दरार्याय विजयराजाय ते नमः।" पुरन्दरदास जी ने इस संसार को त्याग दिया रक्षाक्षि संवत्सर, पुन्यभास के अमावस्या के दिन। कहा जाता है कि इस दासवर ने ४ लाख ७५ हजार कीर्तनों की रचना की थी। यह विश्चय हुआ है

क इनकी चतुःशत सांवत्सरिक पुण्यतिथि १९६४ जनवरी १४ को समूचे राष्ट्र में मनाई जाय। इसकी तैयारियाँ भी हो रही हैं। राज्य सरकार ने इस समारोह को मनाने के लिये एक अलग समिति कायम की है। केन्द्र सरकार ने पुरन्दरदास के डाक टिकट प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया है। ऐसे महान सन्त के सम्बन्ध में अधिक लिखने के लिए समय की कमी है, तथापि दास श्रेष्ठ के दो कीर्तनों को यहाँ उधृत करता हूँ। दास श्रेष्ठ के अनुसार जाति या कुल मुख्य नहीं है, मानव को वैष्णव बनकर रहना चाहिये, यह सच है पर होलेय (अस्पृश्य) गाँव के बाहर नहीं, अन्दर ही है।" होलेय होरगिहने ऊरोल गिल्लवे ? नामक पद में वे कहते हैं––
"अछूत बाहर है ? गाँव में नहीं है ? शील के अनुसार जो नहीं चलता वही अछूत हैं; राजा को जो वंचित करता है वही अछूत है, आशा दिलाकर वचनभंग करने वाला अछूत है; परनिंदा, आत्मस्तुति करने वाला अधिक अछूत है।'

पुरन्दरदासजी के तत्व विचारों में अखण्ड मानवता बोलती थी। वे एक सुन्दर कीर्तन में कहते हैं :––

धर्मवे जयवेंब दिव्य मंत्र
मर्म वनु तिळिदु आचरिसबेकु

(धर्म ही की विजय, यह एक दिव्य मन्त्र है। इसका मर्म जानकर आचरण करना चाहिये।) आगे चलकर वे कहते हैं इसी कीर्तन में कि जो विष दे उसको षड्रसान्न खिलावे जो असूया करे उसका पोषण करे, जो तलवार भोंके उसका नाम अपने पुत्र का रखे, जो पीठ पीछे निंदा करे उसको नमस्कार करे, जो हत्या करावे उसकी प्रशंसा करे, जिससे अनबन हो उसकी स्तुति करे।

पुरन्दरदास जी की तरह कनकदास भी श्रेष्ठ संत कवि थे। वे अपने एक कीर्तन में कहते हैं कि किसी के बारे में चिंता नहीं करनी चाहिये। वे कहते हैं––"हे मन दुखी न होना। चट्टान के गर्भ में पैदा होने वाले मेंढकों को किसने आहार-अन्न दिया ? कागिनेले के आदि शवराय को सभी की परवाह है, चिंता है। वही सबकी रक्षा करेगा, इसमें संदेह नहीं।"

दासों के उपरांत के श्रेष्ठ कवियों में समाज का कटुसमालोचक, निर्भय वक्ता कवि सर्वज्ञ है। यद्यपि उसका जन्म धारवाड़ जिले में पार्वत्य प्रदेश में हुआ था तथापि उस प्रदेश का अनुबन्ध उसकी कृतियों में नहीं है। प्रज्वल अग्निकुन्ड-से उसके मनको किसी प्रकार की उपाधि नहीं है। तेलुगु के वेमना की भाँति तीन पंक्तियों की अपनी कविताओं द्वारा समाज की पीठ पर ऐसा कोड़ा मारा है कि धारियाँ उभर आयें। इधर-उधर के जलाशय का पानी पीकर, कमरिया ओढ़कर, झुण्ड से अलगाये हाथी की तरह देश भर चक्कर काटे हुए सर्वज्ञ की आँखों से कोई भी अन्याय शायद ही बच जाय। उसको तो निजी देह का अभिमान भी नहीं है। वह कहता है––

तन्दे विप्रनु अल्ल
तयि मालियु अल्ल
चन्द्रशेखरन वरदिंद पुट्टिद कन्द तानेन्द सर्वज्ञ ॥

(पिता विप्र नहीं है। माता मालिन नहीं है। चन्द्रशेखर के वर, प्रसाद से जन्मा बालक हूँ मैं सर्वज्ञ)

सभी पेशेवरों की कटु आलोचना उसने की है। "यह सच है कि तेली परमेश्वर को नहीं देख सकता। एणांकधर (शिव) भी भूमि पर उतर आवे तो उससे भी कोल्हू का कार्य लिये बिना वह नहीं रहेगा।" तेली के बारे में यों कहा तो उसने सुनार के बारे में यों कहा है––"सुनार का बालक अभी नादान है, ऐसा मत कहो। पैदा होते ही वह अपने साथ संड़सा लाता है।" जो भी हो, सर्वज्ञ की दृष्टि विधायक है, न कि विघानक। समस्त मानवता के लिए लागू होने वाली उसकी यह बात यथा योग्य है––

ऊरेल्ल नेंटरु
केरियल्लवु बलग
धारुणिय नेरेयाद बळिकिन्नु यारन्नु बिडलि सर्वज्ञ।

समस्त गाँव रिश्तेदार, सारी गली नातेदार, सारी धरती पड़ोसिन, तब किसको तजूँ सर्वज्ञ)

मैसूर नरेशों के शासनकाल में तिरुमलार्य, चिक्क देवराय आदि ने साहित्यिक रचनाएँ कीं। दक्षिण कन्नड़ जिले रत्नाकर वर्णीने अपनी काव्यमयी शैली में योग-भोग का सुन्दर समन्वय किया है।

सारांश यह कि अखण्ड हजार वर्षों में अधिक प्राचीन कन्नड़ साहित्यधारा में हम कई मेधावी कवियों को पाते हैं। उनमें कतिपय योद्धा भी थे, अच्छे शासन-प्रबन्धक भी थे, अद्वितीय समाज सुधारक भी थे। साहित्य के स्वरूप की दृष्टि से काव्य, छंदस, व्याकरण, अलंकार, वैद्यक, ज्योतिष, गणित, क्षेत्रज्ञान, प्राणि-विज्ञान और तत्व विचार विवरण के शास्त्र ग्रन्थों को हम पाते हैं।

नई कन्नड़ का कवि जब जागा तब कन्नड़ का वातावरण हीनिराला था। भारत दासता में था। कर्नाटक पाँच भागों में बँट गया था। समाज में दंभ, पाखण्ड, असूया कपट, असमानता आदि का ही बोलबाला था। नये कन्नड़ कवि को इन सबसे जूझना पड़ा। अपने इस काम के लिए उसको प्राचीन काल का जड़ काव्य-रूप ठीक नहीं जँचा। इसीलिए उसने सुप्रसिद्ध छः वृत्तों में प्रास का दास बनकर अपनी कवितायें नहीं सुनाईं। उसकोनये युग की नईधाराओं की ओर देखना पड़ा। वस्तु में भी उसको नये अँशों को खोजना पड़ा।

कन्नड़ की इस भूमि तथा बोली की जागृति की बात और उसकी गरिमा की प्रज्ञा करीब-करोब हर एक कवि के काव्य में दिखाई पड़ती है। नाना वेष धारण करके रात में गला घोंटने वाली कोशिशों के प्रति सतर्क रहने की चेतावनी के० वि० पुट्टप्पने दी है डा० मुगली जी अच्छी फसल के बदले में सडियल घास को देखकर गम खा गये हैं, "विनायक" जी स्नेह बढ़ाते लूटने वालों की कृति देखकर नाराज हुए, 'अंबिकातनय दत्त' जी ने "जागृत घन, कृति घन, विस्मृति घन, बड़े लोग" कह कर स्पर्धा की बात उठाकर "मर्दों की बलि" माँगी। 'आनन्दकन्द' जी ने कन्नड़ बोली की मधुरिमा का गीत सुनाया—
"कितनी मधुर बोली यह कन्नड़, मन को तृप्त करनेवाली मोहन सुधा है।" सा० रा० को तो कन्नड़ भूमि की घास भी पवित्र तुलसी बन गई, कन्नड़ की शिला शालिग्राम बन गई।

लेकिन कन्नड़ की यह जागृति कर्नाटक में राष्ट्रीय भावना के मार्ग में विघातक नहीं बनी। आवेश उन्माद में, अभिमान पागलपन में परिणमित नहीं हुआ। राष्ट्रीयता और देश-देश की बोली का अभिमान दोनों एद दूसरे का हाथ धरकर अग्रसर हुए हैं। कन्नड़ कवि जितना कर्नाटकी है उतना ही भारतीय भी हैं इसीलिए बेंद्रेजीतरस खाते हैं कि केवल गिनती के लिए तैंतीस करोड़ लोग हैं। उनमें "बेकार आधी स्त्रियाँ, आधे अछूत" का शोर गुल···मानवता की दुहाई, नागरिकता की बढ़ाई, गोरी छाया की बढ़ती के आज के समय में भी राजनैतिक द्रोह के लिए "नर बलि" देना भी एक पूजा है!

"मुर्गी काटो तो नाराज होने वाले हैं, बकरा काटे तो पूछने वाले हैं······चिड़िया की भाँति आदमी को काटा, आदमी का खून किया तो भी क्या? अपने आपको मार लिया!" इस पाशवी दमनकारी शासन की कड़ी आलोचना की। पुट्टप्प ने साम्राज्य तृष्णा का, वह जिस रूप में भी आवे, खूब खण्डन किया।

**"कालो का हो, चाहे गोरों का, चाहे किन्हीं का,
साम्राज्य तो किसानों की लूट के लिए है।
विजय नगर? मुगल शासन? अंग्रेज?**
·································

**"तलवार विदेशी हो तो पीड़ा?
अपने ही यदि भोंकें तो वह फूल?"**

कन्नड कवि की उदार दृष्टि केवल देशाभिमान तक सीमित नहीं रही, अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द भी उसके दृष्टि-पथ में है। अटमबंब, जेट विमान के इस काल में कोई राष्ट्र दूर नहीं रह सकता। जापान-हिन्दुस्तान आज नहीं तो कल धारवाड़ हुगली। कोई कवि "मेंड़ पर बैठकर" ऊँघ नहीं सकता। इसीलिए बेंद्रे जी ने "अवतार के लिए एकेक अभिषेक किया, दुलहिन की तरह शोभनेवाली" भूदेवी से तृप्त होने के लिए प्रार्थना की है। पुट्टप्प को रूस की कोयल दिखाई पड़ी, मैसूर की कोयल नहीं। अध्ययन के लिए आँक्सफोर्ड गये हुए कन्नड़ के एक विद्वान को इंगलैंड का प्राकृतिक सौन्दर्य भी भयानक लगा! अफ्रिका की "काजल पर सांध्य-लालिमा" जब उदित हुई तब 'विनायक' में उत्पन्न भावनाएँ थी।

"अबसीनिया की कत्तल, निर्गवियों की दासता, सुमालियों की टीस, कालिमा पोतनेवाली कृतियाँ ये रक्तवर्ण की हैं। आफ्रिका के लोगों में नहीं हैं मांस पेशियाँ—गुलामों

का लोक वह—मानव से दबाया हुआ, कुचला हुआ पाताल !"

यह तो है कन्नड कवि की अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति, सौहार्दता इसी प्रकार समाज में वर्तमान अंध—परम्परा, वेषों का स्वांग कन्नड काव्य में अभिव्यक्त है। सा० रा० की "पानी बरस रहा था", दिनकर देसाई की "भिक्षुक", बेंद्रे की "जार कृष्ण कथा में सींग पैदा करने वाली विधवा" कविताएं हमारे समाज के अंध संस्कारों के स्मारक हैं।' 'विधवा' अंधे धर्म का स्मारक यदि हो तो "अवर्णनीय अर्वाचीन सौंदर्य" (Fashion) धर्म का विडंबन है। एक तो प्राचीन धर्म, दूसरा नवयुग का 'धर्म।' दोनों में ज्ञानने आंखें नहीं खोलीं। प्राचीन को भिड़कने के आवेश में नई रोशनी के लोगों का पसन्द किया हुआ समुद्र मार्ग दोनों में शृङ्खलाए हैं हाथ की शृङ्खला पैर में पड़ने वाली इतना ही····"चाहे अंधा हो, चाहे काना, यदि काला ऐनक हो तो नयनों का क्या बखान करूं खाक !"

इससे यह न समझें कि कन्नड काव्य केवल आंदोलित समुद्र है। नवीन कन्नड के अर्धनारी नटेश्वर के रूप में क्रोध भी है, कृतज्ञता भी; शूरता भी है, सुन्दरता भी है। है। आनन्द अविरत सोते, प्राकृतिक सौंदर्य नारी की रमणीयता, माता की सहनशीलता, शिशुओं की तुतली बोली—सबने कन्नड काव्य-मन्दिर को अलंकृत किया है। पुट्टप्पा जी का काव्य तो विशेषतः पर्वतीय सुन्दर हरीनिमा से भरा; अप्सर भूमि। उनकी रचना "तेने हक्कि" चिर स्मरणीय। कवि ने क्रोध के अवसर पर पांच जन्य बजाया, तो भी उनके काव्य की रीत "मुरली" की मधुर-ध्वनि; "नविल" (मोर) का नर्तन; अप्सर संगीत ···बेंद्रे जी की कविताएं" "पातरगित्ति पक्क" (तितली का पंख), "मूडलमने" (पूर्व दिशा गृह), "चलिया के" (शीतकली), "मुगिल मारिग" (गगन मुखपर)···सभी चिर परिचित···और भी सैकड़ों कवियों ने प्रकृति-सौंदर्य के गीत गाये हैं। "तलमे" (प्रेम), "विरहिणी", "ओड़-नाडि" (हमजोली), 'ओलुमे' (प्यार), "सखीगीत',, "बासिग" (सिरमौर या हार), "मैसूरु मल्लिगे' (मैसूर चमेली), तो स्त्री-सौंदर्य प्रेम के—अनन्त मुख-जीवन प्रकाश—

"यारिगरुपिसलिदनु मालेय
यार पोरलोल गिरिसलि ?"

अर्थात् किसको अर्पण करूं यह माला ? किसके गले में पहनाऊं ?

इस विरह वेदना से—

"साथी की चाह से चिंता की, दुखी हुआ। अन्त को तुमने आकर मेरी चिंता मिटा दी, मेरा दुख दूर किया।"— इस संतृप्ति तक कन्नड़ प्रणय काव्य-वल्लि पुष्पित हुई है। गृहणी ने "प्रीति-पूर्णिमा" में "शृंगार गौरी" की पूजा पायी है—

"बालिदु कनसल्ल, गोलिन तिनिसल्ल,
नन्नि-हिग्गिन हासतोट !
नानोंदु मामर, नी मल्लिगेय बल्लि···"

अर्थात् "जीवन सपना नहीं, दुख का आहार नहीं, प्रेम—हर्ष का नया चमन है ! मैं एक आम्र वृक्ष हूं, तू मल्लिका-लता···।" इस भांति कन्नड़ प्रणय काव्य ने दाम्पत्य सत्य की घोषणा की है।

"मैसूरु मल्लिगे" (मैसूर मल्लिका) तो स्त्री सौन्दर्य वादित वीणा है ? उस संध्याराग से लिखा कमल। सौन्दर्य की नागर रमणी के चितवन के इशारे के समान वहां काव्य झूम उठा है।····'शारदा' जैसी प्रेमी-प्रेमिकाओं की कविताएं अब एक ओर रहने दें; कवि अपने गांव की स्त्री का चाहे जितना भी वर्णन करे तो उसको तृप्ति नहीं, इतनी प्रीत है उससे। इसके प्रति इतना अभिमान है, इतनी करुणा है, इतना अन्तःकरण है। उसके गांव के 'पटवारी की लड़की' एक ऐसी सुन्दर रमणी है। इसके प्रति कवि में अपनी बहनों से भी अधिक प्रीत है। 'पटवारे की लड़की रतन जैसी लड़की' किन्तु 'उम्र अधिक होने पर' भी उसकी शादी नहीं हुई है। उसका सौन्दर्य ! प्रातःकालीन अप्सर वर्ण का-सा !···ऐसी का पाणिग्रहण करने के लिए पानी ढोने योग्य तावरेकेरे ग्राम के ज्योतिषी के पोते को आना चाहिए ? उस लड़के को तो वह तनिक भी पसंद नहीं करती। क्या पीतांबर रेशम की साड़ी के बराबर सूत की साड़ी ? अतः वह इनकार कर देती है (इस कपूर-

पुतली की चातुरी भी सराहनीय है।) उसके पिता जी के पूछने पर पाणिग्रहण के इनकार का कारण बताती है—"ज्योतिषी के घर में भोजन देर से होता है" "हंस पड़े पिताजी।" (और क्या कर सकते थे। हम नहीं सुन सकते कि भोजन की देरी के कारण शादी को इनकार करने वाले निर्दयी भी इस संसार में हैं।) तदुपरांत सत्यांश बाहर आता है। मुग्धा कहती है—तावरेकेरे के ज्योतिषी का पोता मेरे बाल से भी अधिक काला है।" ऐसा काला-कलूटा इस सुन्दरी को, इस पुतली को चाहता है ?—

"हमारे गाँव की लाड़ली शक्कर की गुड़िया को ऐसा काला पुरुष देखे ? पटवारी के घर का तोरण ही बताता है—जिस राह से आये थे उस राह से लौटने पर चुंगी देने की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

स्त्री सौन्दर्य के अन्तःकरण की भाँति ही शिशुओं की प्रीति 'कडलेपुरि' (चबेना), 'तुत्तूरि' (तुरही), 'मुछन मातु' (मुन्ने की बात) में चित्रित हुई है।

ऐसे हृदय-अंतःकरण के काव्य के साथ ही ज्ञान के नंदा-दीप जलाने वाली कविताएँ भी निकली हैं। मुगली जी की "निन्नपार करुणे" (तेरी अपार करुणा), वी०सी० की "कस्मै देवाव", मधुर चेन्न की "नन्न नल्ल" (मेरा प्रियतम) कविताएँ, बेंद्रे तथा मास्ति की अनेककविताएँ, डी० वी० जी० की 'मंकुतिम्मन कग्ग'—आदि कविताएँ आत्मा की वेदना के निरंतर प्रश्नार्थक को अलग-अलग रूप से हल करने में परिश्रम कर चुकी हैं। "श्रद्धावान् भजते यो माम्" कहकर परमात्मा ने यद्यपि अभय दिया है, "संशयात्मा विनश्यति" भी साफ़-साफ़ कहा है तथापि भक्ति के विषय में संशय डोलायमान हुए बिना न रहेगा। कोई भी देवता आवे, ऐसा लगता है कि विश्वास तो सनातन है, सदा रहने वाला है।

इस प्रकार आधुनिक काव्य में 'विडम्बन काव्य' कुछ हद तक नया है। चाहे साहित्य में हो, चाहे जीवन में हो, आवेश की अति से हवा भरे आकाश दीप की तरह जब व्यावहारिक बुद्धि भूमि को छोड़कर ऊपर उड़ जायगी तब हास्य का सोता फूट पड़ता है। इधर २०–२५ वर्षों में कन्नड़ साहित्य में, जीवन में ऐसी विपरीत परिस्थितियाँ उद्भूत हुई हैं। उन सबको बेंद्रे, विनायक, राजरत्नं आदि ने अपने विडम्बन काव्यों में अभिव्यक्त किया है। बेंद्रेजी की कविता 'मला मला खटमल, मला मला खटमल' यदि केवल परिहास हो तो राजरत्नं का "हार्मोनियं हरण" सुन्दर विडम्बन काव्य है।

···"नारियल तथा भारत की स्वतन्त्रता" के बीच का सम्बन्ध सुनाने वाले कवि, "स्कूल मास्टर बेंत की ध्वनि के कवि" आदि विपरीत बुद्धि वाले "विमर्शक वैद्य" के 'डोज़' के लिए तैयार हुए हैं। राजरत्नं ने ठीक ही कहा है "अब के साहित्य-जीवन की विकृतियों को तथा अतियों को कलैया खिलाई है इन विडम्बनकारों ने।

अन्त में आधुनिक विद्याभ्यास और जीवन की प्रगति के साथ-साथ नये-नये देशों का जीवन और वातावरण हमारे काव्य में किस तरह अभिव्यक्त हुए हैं, यह देखा जा सकता है। प्राचीन 'पांड्व, चोल, चेर' राज्य तो आज हमारे रसोई घर, दीवानखाना बन गये हैं। जीवन इससे भी आगे बढ़ गया है। इंग्लैंड, जर्मनी, इटली···अनेक देशों का वर्णन कन्नड काव्य में पाया जाता है। स्वर्गीय भास्कर राय ने गद्य में जो सेवा की है उसे पेशावर सदाशिवराय ने और 'विनायक' ने काव्य में किया है। सदाशिवराय की "वरुण को ललकार" कविता इटली की वर्षा ऋतु का सुन्दर चित्र उपस्थित करने वाला 'ओड़' है। रिमझिम-रिमझिम पड़ने वाली वर्षा, मार्ग के दोनों ओर के खेत सब नई सृष्टि; मेनका लास्य। किन्तु इस कविता से अधिक सुन्दर है उनकी कविता "लारेंझो इल् मन्नि-फिको।"···भारत के सीमा बन्धन में, कायदे-कानूनों के बन्धन में दम रोककर, कदम-कदम पर कटु आलोचना के तेज बाण सहकर कसाई की गंदगी में गोता खाने वाले कर्नाटकी को इटली का स्वतन्त्र वातावरण उत्तेजक बन गया होगा। आशा-पक्षि पंख फैलाकर उड़ा होगा। विशाल उस सुन्दर क्षितिज में "दृग् बंध; दिग् बंध" सब स्वछन्द, उन्मुक्त···भूमि ही उठकर आकाश के आलिंगन के लिए उत्सुक हुई हो, इटली की एक सुवर्ण रात्रि पर की कविता में वर्णित हुई है। 'लारेंझो' एक सुन्दर उत्सव है। देश के सभी युवक-युवतियाँ उसमें भाग लेते हैं। उस दिन की

नृत्य शाला में किसी प्रकार के सन्देह और संकोच के लिए गुञ्जाइश नहीं है। सभी "पवन की भाँति पावन।" पार्श्व वाद्य जैसे-जैसे बजता जाता है वैसे-वैसे बिजली की बत्तियों का प्रकाश कम होता जाता है। सफेद—नीला—कम नीला—अन्त को काला अन्धकार···प्रथमतः इटली की महक, तिस पर ऐसा उत्सव ! परम्परा के भार से टूटी रीढ़ की हड्डी के कन्नड कवि को सब नया दीखा है। वह भी आनंद सागर में तैरने लगता है—

"लारेंभो इल् मन्निफिको
गीत सौंपा है ले लो
आज के इस उत्सव में
यौवन की उमंग में
हे गुरु तुमको अग्रपीठ
सीखा आज तुम्हारा पाठ।"

वहाँ चारों ओर "वेनीशिया का सुन्दर शीशा है", सार्देनिया की शराब का मजा है···" लोग ?—

"तुम कौन हो ? मैं स्पान्य
तुम कौन हो ? मैं ग्रेक्य
यह इताल्य,···वह जर्मान्य"

इस यौवन के राज्य में किस चीज की कमी है ?

"चारों ओर अंधेरा छाया,
चारों ओर सौरभ माया
चारों ओर सुन्दरियों की काया। .."

कन्नड़ कवि को सभी सम्मोहक, उन्मादक लग रहा है। अपनी परंपरा को दूर हटाकर कवि नये जीवन का दर्शन करना चाहता है—

"जीवन के दो मुख हैं
एक सुख का, एक दुख का
कल का ज्ञान किसको है हे सुख ?
आज है संपूर्ण सुख।"

उमर खय्याम भी तो कहता है—

"Ah ! fill the cup ! What boots it to repeat
How time is slipping beneath our feet,
Unborn tomorrow, dead yesterday,
Why fret about if today be sweet !"

पेजवर जी की इस दृष्टि के साथ ही 'विनायक' जी के काव्य में भारतीय दृष्टि अधिक दिखाई पड़ती है। महात्मा गाँधी जी ने एक बार इंग्लैंड के मजदूरों से कहा था—"तुम्हारे लिए मुझ में करुणा हैं, मेरे आँसू हैं, पर मैं उनको अपने लोगों के लिए बचाकर रखता हूँ। वे उनको तुम लोगों की अपेक्षा अधिक आवश्यक हैं। 'विनायक' जी की मनोभावना भी उसी प्रकार की। इंग्लैंड में रहने पर भी, इंग्लैंड के प्रकृति-सौंदर्य से आकर्षित होने पर भी "यह मेघश्याम है कहकर क्रोध से श्वेतद्वीप में सभी लोग निंदा करते रहे तो बच्चे पिल्ले भी देख घबराकर वर्ण-द्वीष···" सीखने को परिस्थिति उनके मन से दूर नहीं होगी। मार्सेल के नातदभि को देख फ्रांस की सुन्दरता से आनन्द पाने पर भी, एक तरह की अतृप्ति यह है कि भारत में कर्नाटक में ऐसी वस्तुएं नहीं हैं—

"तुम्हारे नन्दनवन में छूटने वाले फौवारे
इसकी फोटोग्राफी है मैसूर में
जीवन की आभा है यहाँ—तुम्हारी साँस में"

यह स्वाभाविक है कि इस समालोचक की दृष्टि को 'लारेंभो' जैसे उत्सव पसन्द नहीं आते। वह आजादी, वह उमंग—तनिक संतुलन खोने का भय। इस दृष्टि को वह सौन्दर्य बेहया औरत को खूबसूरती···आफादी स्वैर वृत्ति··! ऐसे एक प्रसंग में 'विनायक' जी ने "नाट्यशाला" नामक एक कविता लिखी है। उसका सौन्दर्य उनको कतई आकर्षित नहीं करता।

"इन्द्र का राज्य नहीं है यह, इन्द्रियों का राज्य है। टिमटिमाता स्वर्ग···त्रिशंकु की अमरपुरि··· सावधान !" सौ दिन अच्छी जिन्दगी बसर करके सात दिन होली मनाने की रीत है यह। जीवन न जाने किस अन्धकारपूर्ण मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। इङ्गलैंड में Six O'clock Sex O'clock उदित हुआ है।

"समाज सारा नाट्यशाला बनकर
कौटुम्बिक जीवन ही नदारद-सा,
दिन का सारा जीवन होली हो रहा है
प्रेम काम बन रहा है

मर्द हो तो बस है, मर्द (पति) वह,
औरत हो तो बस है, औरत (पत्नी) वह,
यहाँ तक उतर गया है संकर···"

गली-गली एक अहल्या हो तो कौन पतितपावन उसको उबारेगा ? ठोकर लगे पत्थर और बन जायं ! "घड़ा भर रहा है"···यह भी एक दर्शन···वह भी एक दर्शन···। आधुनिक कन्नड़ कवि ने दोनों को चित्रित किया है। 'नीति' चाहे गला कसने वाली रस्सी हो, चाहे रेशम का अलंकार हो, दोनों काव्य में उपस्थित हैं।

छन्द और काव्य के रूपों का विषय भी ऐसा ही है। षट्पदि-वृत्तों के प्रकारों के अलावा नये-नये ताल-लय-छन्द भी आये हैं। साहित्य के रूपों में अष्टषट्पदी, ओड़, विडंबन काव्य, संगीत प्रधान काव्य सभी ने नई रोशनी देखी है। छन्दों में सर्वत्र नई दृष्टि।

"स्वच्छन्द छन्ददल्लि
जलक्रीड़ा वृत्तदल्लि
······················
गीतवनोरेद् नेंदु गीळ् माड़बेड़"

अर्थात् "स्वच्छन्द छन्द में, जलक्रीड़ा वृत्त में···गीत कहा अतः तुच्छ न करना।" "क्या किसी ने समुद्र को बंदी बना दिया है?" "शरधि को न देना षट्पदी की दीक्षा।"—यह है छन्द, काव्य वस्तु को पिरोने की दृष्टि।

कुल मिलाकर, प्रदेश—बोली, देश, अंतर्राष्टीय भावना, समाज, प्रकृति, प्रणय, शिशु साहित्य, तत्वज्ञान, विडंबन काव्य, विदेशों का जीवन, वातावरण ये सब आधुनिक कवि की काव्य-प्रज्ञा के द्योतक हैं। वर्तमान कन्नड़ काव्य के सुनहले सपने हैं। जितनी अच्छी कृषि होगी उतनी ही अधिक अच्छी फसल मिलेगी। जितना अधिक गहरा खोदा जायगा खतना ही सुन्दर सलिल बाहर निकल आयगा। जितनी फसल है उतने ही लोग काटने के लिए आगे आने लगे तो कन्नड़ का सौभाग्य। कन्नड़ का नंदनवन अनेक गीतों से भरे!

कन्नड़ काव्य साहित्य का विहंगम अवलोकन

डॉ० के० कृष्णमूर्ति

यही पाप है, यही पुण्य है; यही हित है, यही अहित है; यही सुख है, यही दुःख है—आदि को हृदयंगम बनाने का संकेत ही प्राचीन श्रेष्ठ कवियों का लक्ष्य है।'—[कविराज मार्ग १-१८०]

कन्नड़ की काव्य-परम्परा ५०० ई० से आरम्भ होती है। प्राप्य प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'चित्ताण' (सं० चित्रायतन) 'बेदंडे' (सं० वैदण्डिका); 'ओत्र-निगे' आदि लोकप्रिय छन्दों में गेय-पदों का सर्वाधिक प्रचार कर्नाटक में था। ये अधिकतर मात्रिक छन्द में होते थे और देशी शब्दों की बहुलता इनमें लक्षित होती थी। लेकिन गंग, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसल आदि के दरबारों में परिष्कृत एवं पुरस्कृत काव्य-परम्परा इससे भिन्न थी। इस शैली में संस्कृत के महाकाव्य, नाटक, गद्यकाव्य तथा स्तोत्र जैसे साहित्य-रूपों के वैभव को आत्मसात् करने वाला एक नया विधान गोचर हुआ जिसे 'मार्ग' 'चम्पूमार्ग' अथवा 'वस्तुक' काव्य कहते हैं। इस शिल्प में विस्तृत कथानक, विशिष्ट चरित्र-चित्रण, विविध रसों की व्यंजना, संस्कृत के अनेक छन्द, लोक-नीति, राजनीति, भक्ति-वैराग्य की महिमा, धर्मोपदेश आदि [आदर्शों से अनुप्राणित विधान] शिष्ट समाज में अत्यन्त प्रचलित था। शतियों से कन्नड़ के महाकवियों को प्रेरित करने वाले आदर्शों में संस्कृत के महाकाव्यों की महती परम्परा, प्रचलित धर्म-भावना, लोकप्रिय कथानक राजदरबारों में मान्यता-प्राप्ति की आकांक्षा तथा भक्ति-वैराग्य का आवेश महत्वपूर्ण हैं। लगभग ८ वीं सदी से आरम्भ हुई इस 'मार्ग शैली' की अविच्छिन्न परम्परा १६ वीं सदी तक कन्नड़ साहित्य में बनी रही जो इसकी उदात्त शैली की सजीवता-सार्थकता का प्रमाण है। हाँ, इस परम्परा में कालोचित परिवर्तन का ध्यान भी बराबर रखा गया था। इस लम्बे अरसे में लगभग दो हजार से अधिक कवियों की काव्य-साधना का महत्व विदित होता है। इस कविता-सरिता में जैन, स्मात्त, वैष्णव, वीरशैवादि सम्प्रदायों की विशिष्ट धाराएं समय-समय पर आ मिली हैं और उसके पात्र को बढ़ाने, उसकी विशिष्टता को आकर्षण बनाने तथा उसमें विविध रसों को तरंगायित करने में समर्थ हुई हैं। १२०० ई० तक उपर्युक्त 'देशी' तथा 'मार्ग' दोनों ही शैलियों में अभिव्यक्ति का माध्यम हलेगन्नड़ (हले प्राचीन) ही रही। पीछे यह 'हलेगन्नड़' मार्ग शैली के 'कंदवृत्तों' में ही सीमित हो गई। अन्य रचना-भेदों में नडुगन्नड़ (मध्यवर्ती कन्नड़) का प्रयोग होने लगा। १७ वीं सदी तक वचन, षट्पदी, रगले (सं० रघट), त्रिपदी, गीत आदि छन्दों में इसका प्रचार-प्रसार होता रहा। २० वीं सदी के आरम्भ से कुछ एक समर्थ कवियों ने आंग्ल साहित्य की वस्तु तथा अभिव्यंजना प्रणाली के भव्य आदर्शों की रक्षा तथा निर्वाह 'होसगन्नड' (नयी कन्नड़) में करना शुरू किया। इधर नई कविता के नाम से अभिनव कौतुकपूर्ण प्रयोग करने वाले कुछ एक प्रतिभाशील कवियों ने जन-मन को चकित करने का प्रयास भी किया है।

इस संक्षिप्त लेख में कन्नड़ काव्य साहित्य का स्थूल परिचयात्मक उल्लेख मात्र संभव है। कन्नड़ काव्य साहित्य का व्यवस्थित ऐतिहासिक विकास-क्रम, उसकी असंगत समीक्षा अथवा कवियों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व-कृतित्व-निरूपण इस लेख का उद्देश्य नहीं। अतः संक्षेप में यहाँ कन्नड़ काव्य में निहित लोकविधायिनी तथा धर्मबोधिनी प्रवृत्तियाँ,

नवीन आविष्कार एवं प्रयोग आदि का वैशिष्ट्य चुने हुए कवियों की निर्दिष्ट कृतियों के सहारे निरूपित करना ही अभीष्ट है।

कन्नड़ साहित्य में उपलब्ध प्रथम रचना काव्य नहीं, अपितु लक्षण ग्रन्थ है, जिसका नाम 'कविराजमार्ग' है। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष नृपतुंग (८१५-८७७ ई०) या उनके दरबारी कवि की यह कृति प्रायः दण्डी के 'काव्यादर्श' की छाया है। यह कन्नड़ वाङ्मय का अति-प्राचीन सूत्र होने के साथ-साथ लक्ष्यपदों के उद्धरण के कारण अपने समय के काव्य-स्वरूप का संकेत भी है। सबसे बढ़कर उसमें कर्नाटक प्रदेश, यहाँ की भाषा, यहाँ के निवासी आदि के सम्बन्ध में जो आदरसूचक उद्‌गार व्यक्त हुए हैं, उनसे कृतिकार की जीवन-साहित्य-सम्बन्धी-समन्वय-भावना का परिचय भी मिलता है :—

१. कावेरी से गोदावरी तक व्याप्त वसुधा-बलय-विशेष ही कन्नड-जनपद (कर्नाटक प्रदेश) है [१-३६]
२. यहाँ के निवासी पद-प्रयोग-पटु तथा उक्ति-भंगिमा की सूक्ष्मता को ग्रहण करने में समर्थ हैं, स्वभाव से चतुर हैं, अध्ययन प्रक्रिया के बिना ही काव्य-प्रयोग निष्णात हैं। [१-३८]
३. यहाँ के निवासी सुभट हैं; कवि हैं, सुप्रभु हैं, सुभग हैं; अभिजात हैं; गुणी हैं; स्वाभिमानी हैं, अत्युग्र हैं; गभीरचित्त हैं; विवेकी हैं। [२-२८]
४. अन्यों के अंतरंग की विशेषताओं को सर्वजन-सुलभ बना सकनेवाला वाणी का विशेषज्ञ है। गागर में सागर भर सकनेवाला इससे भी श्रेष्ठ है। छंदोविधान में चतुराई प्रदर्शित करने वाले का स्थान इससे भी ऊँचा है। अबाध गति से महान् 'मार्ग'-ग्रंथों का निर्माता ही सर्व श्रेष्ठ है।

संसार में वाणी के विशेषज्ञ अल्प हैं। उनमें भी नीतिविद् इने-गिने हैं। उनमें भी 'कविता-नीति' में निष्णात वरकवि विरल हैं। [१-१५-१७]

'कविराजमार्ग' के अनुशीलन से निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध हो सकते हैं। कन्नड़ काव्य-रचना में, विशेषतः पद्य के प्रतिचरण में द्वितीयवर्ण में प्रास तथा पाद के अंत में यति का त्याग कविजनों में लक्षित होते हैं। कवियों में अति प्रचलित 'कंद' (देखिए—प्राकृत का 'स्कंधक' एवं संस्कृत का 'आर्यागीति') एवं विशेष रूप से संस्कृत के वर्णवृत्त 'ख्यात-कर्नाटक वृत्त' (स्रग्धरा, महास्रग्धरा, शार्दूलविक्रीड़ित, मत्तेभविक्रीड़ित, उत्पलमाला तथा चम्पकमाला) ही प्राचीन कवियों में प्रचुर परिमाण में लक्षित होते हैं। शब्दार्थालंकारों में आसक्ति, व्याकरण शुद्धि का आदर्श, संस्कृत-कन्नड़ की पदावलियों के सम्मिलित प्रयोग में औचित्य का ध्यान, कहावतों और लोकोक्तियों का नीति-निरूपण में सर्वाधिक महत्व आदि विशेषताएँ 'कविराजमार्ग' में स्पष्ट रूप से उल्लिखित मिलती हैं।

'कविराजमार्ग' में श्रीविजय, कवीश्वर, पंडित चन्द्र, लोकपाल आदि प्राचीन रचनाकारों का उल्लेख मिलता है। किन्तु इनमें से किसी की भी कोई रचना प्राप्य नहीं है। यह अवश्य ही कन्नड़ साहित्य का दुर्भाग्य ही माना जाएगा। महाकवियों में मूर्धन्यस्थान के अधिकारी प्रथम कविश्रेष्ठ पम्प (९४१ ई०) हैं जिन्हें 'विकासशील कन्नड का सनातन स्वामी सत्कवि' की उपाधि प्राप्त हुई है। नृपतुंग एवं पम्प के युगों के बीच कई कृतियाँ हुई होंगी, लेकिन वे अनुपलब्ध हैं। इनमें गुणवर्म-रचित 'शूद्रक' तथा 'हरिवंश' विशेष उल्लेख योग्य हैं जो क्रम से लोक-विधायक एवं धर्मबोधक काव्यरूपों के प्रवर्त्तक माने जा सकते हैं। पम्प, पोन्न, रन्न आदि जैन महाकवियों ने जो परम्परा अपनाई है उसमें गुणवर्म की शैलीअनुसरण का प्रमाण मिलता है। इन महाकवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा १ लेषपर्यायोक्ति-अलंकार-विधान के माध्यम से की है और काव्य के कथानायकों से अपने प्रभुओं की अभिन्नता दर्शाई है। यही लोकविधायक काव्यरूप का आदर्श है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कवि ने जैन पुराणों के आधार पर धर्म-कथा-काव्य भी लिखा है। पूर्ववर्त्ती कृतियों में काव्य-धर्म का वैशिष्ठय तथा परवर्ती रचनाओं में धर्म की महिमा गोचर है। पहले में लोक-व्यवहार तथा दूसरे में लोकोत्तर आगम-विचार हैं; एक में वीर रस की प्रधानता और दूसरे में शांत रस की विशेषता है; एक अपने आश्रयदाताओं को समर्पित तथा दूसरा धर्मदीक्षागुरु को श्रद्धा से अर्पित है;

भोग पहले का तथा मोक्ष दूसरे का ध्येय है; एक मानव-मात्र को ध्यान में रखता है तो दूसरा सम्प्रदाय के अनुयायियों को उद्बुद्ध करने वाला है। दोनों में उपर्युक्त भेदक लक्षणों के अतिरिक्त साम्य की कई प्रवृत्तियाँ भी गोचर होती हैं। भाषा का रूप-निर्धारण, छंद-योजना, काव्यांगों का वर्णन-विन्यास, चम्पू शैली, उपदेशात्मकता आदि की दृष्टि से दोनों में कोई उल्लेख योग्य अंतर नहीं है। आधुनिक समीक्षकों की विवेचनात्मक-पद्धति के अनुसार प्राचीन धर्मग्रंथों की अपेक्षा लोक-विधायक काव्य-ग्रन्थों का साहित्यिक मूल्यांकन ऊँचा रहा है।

काल की दृष्टि से ही नहीं अपितु गुणसम्पन्नता की दृष्टि से भी पम्प कन्नड़काव्य के सीमा पुरुष (शिरोमणि) ठहरते हैं। 'विक्रमार्जुनविजय' या 'पम्पभारत' आपकी लौकिक कृति है और धार्मिक रचना 'आदिपुराण' है। कवि की गर्वोक्ति है कि 'दुन्दुभि संवत्सरोद्भव, दुन्दुभिगभीरनिनद और प्रकटयशोदुन्दुभि हूँ।' आप अन्यतम कवि होने के साथ-साथ असाधारण वीर योद्धा भी रहे हैं :

> "पम्प धात्रीवलयनिलिम्प्
> चतुरङ्गबलभयंकरण्
> निष्कम्प, ललितालंकरण
> पञ्चशरैकरूप अपगतपाप"
> [आदिपुराण १४–४६]

कन्नड़ काव्य के स्वर्ण युग के मुकुटप्राय पम्प ही हैं। आप 'कवितागुणार्णव, सरस्वतीमणिहार, सुकविजनमनोमानसोत्तंसहंस' आदि उपाधियों के अधिकारी सहज ही माने जा सकते हैं। आपकी कवित्व-शक्ति चिरनवीन है, महार्णव की भाँति अथाह है। 'कवितागुणार्णव' की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

'विदित्, प्रातीतिक्, कोमल, अतिसुभग, सुन्दर, सूक्तगर्भ
विचारक्षम उचितपद श्रव्य अथच अव्याकुल आदि०
—[आदि पुराण १–२६]

यही सूची मात्र नहीं है, निश्चय ही उनकी अद्वितीय काव्य-साधना के परिचायक गुण हैं।

आदिपुराण में प्रधानतः 'संसारसार' (धर्म) का निरूपण है। धर्म-अमृतरस को ही प्रश्रय दिया गया है। इतने पर भी काव्य-धर्म का कहीं भी अभाव नहीं है। प्रथमतीर्थंकर (आदितीर्थेश्वर) का चरित एक 'वाक्यमाणिक्यकोश' है। कवि का वाग्विलास सरस्वती-विलास को भी प्रांजल बनाने वाला है। उन पंक्तियों में वाग्वधू की छाप अंकित है।

इस महत्काव्य के १६ सर्ग हैं। यह जिनसेन के संस्कृत काव्य का अंधानुकरण या अनुवाद नहीं है। इसमें कवि की प्रतिभा की चमक, काव्यकला की कांति तथा रस-सिद्धि का आलोक है। चरितनायक आदिनाथ का भवावलियों (कई जन्मों) में कथानक की सूत्रबद्धता के सहारे पूर्वार्ध में भोगविलास का वैभवपूर्ण चित्रण तथा उत्तरार्ध में उनकी नश्वरता अंकित है। आदिनाथ के पुत्र भरत एवं बाहुबलि के प्रकरण में स्थूल पराक्रम तथा अधिकारमद का शान्ति-वैराग्य के साथ द्वंद्व दिखाते हुए धर्मविजय की स्थापना का मंगलघोष सुनाया गया है।

पम्प की सर्वतोमुखी प्रतिभा 'पम्पभारत' में पूर्णतः प्रस्फुटित हुई है। समर्थ नाटककार की भाँति आप मूल कथानक में प्रसंगानुसार संकोच-विस्तार की प्रक्रिया में असाधारण उद्भावनाशक्ति का परिचय देते हैं। कथावस्तु में परिवर्तन विक्रमधन अर्जुन को काव्यनायक सिद्ध करने हेतु हुए हैं। इसमें १४ सग है प्रति सर्ग के आरम्भ और अन्त में अर्जुन की प्रशंसा के व्याज से अपने आश्रयदाता अरिकेसरी का गुणगान किया है। अन्त में धर्मराज की जगह अर्जुन ही साम्राज्य का अधीश्वर माना गया है। भले ही इन प्रसंगोद्भावनाओं से सहमत न हों, किन्तु उसके पात्रानरूपण-कौशल पर सभी मुग्ध हुए जाते हैं। नागानन्द एवं वेणीसंहार जैसी कृतियों के मर्मज्ञ पम्प की वर्णनशैली में नाटकीय सौंदर्य का निर्वाह देखा जाता है। प्रकृति-चित्रण में भी अलंकार विधान का औचित्य उत्तम है। एक ही पद में पात्र के शील वैचित्र्य को गुंफित करनेवाला शब्दचित्रकार है—पम्प। धीरोदात्त कर्ण के प्रति अपूर्व सहानुभूति दिखाकर उसे उत्कृष्ट Tragic Hero के रूप में चित्रित करने वाला है—पम्प। दुर्योधन में औद्धत्य की अपेक्षा औन्नत्य के दर्शन करने वाला है पम्प। कृष्णभक्ति से इनका कोई सरोकार नहीं हैं। उदाहरण के लिए दो उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं :

हठधर्मिता में दुर्योधन, सचाई में कर्ण, पौरुष में भी सपराक्रम में शल्य, अत्युन्नति में अमर-सिंधूद्भव भीष्म पितामह चापविद्या में कुम्भोद्भव (द्रोणाचार्य), अप्रतिम साहस में अर्जुन धर्म में निर्मलचित्तवाला धर्मराज--इन्हीं से भारत लोकादृत है।

[पम्प भारत का अन्तिम छन्द]

कर्ण के निधन पर शोक

भाई, भारत में और किसी को जानो नहीं, सोचो नहीं; एकाग्रता से ध्यान लगाओ तो केवल कर्ण का ही स्मरण करो;

कर्ण की बराबरी कौन करे ?

कर्ण की ऊँचाई, सत्यसंधता, अद्भुत व्यक्तित्व की महिमा, अन्यतम त्यागशीलता, पग-पग पर कर्ण की बड़ाई होने के कारण ही भारत 'कर्णरसायन' सिद्ध हुआ है।'

[पम्प भारत १२-२१७]

संस्कृत तथा कन्नड़ दोनों में पहुँच रखने के नाते 'उभय कवि चक्रवर्ती' उपाधि से विभूषित कन्नड़ कवियों में पोन्न, (जो पम्प के समकालीन थे,) ही शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं। शांतिपुराण-धर्म-ग्रथ-ही इनकी एक मात्र उपलब्ध कृति है। लोकविधायक काव्य 'भुवनैक-रामाभ्युदय' अप्राप्य हैं। इन्होंने अपने को कालिदास से चौगुना प्रतिभा संपन्न कहा है। इतने पर भी कालिदास के हजारों पदों का भावानुवाद-किया है। पम्प-सदृश सहृदयता से संपन्न न होने पर भी पांडित्य में पंप से भी बढ़कर हैं। जीवन-काल में ही इनकी कृति की एक हजार पाण्डुलिपियाँ ताड़पत्रों पर अंकित हो बितरित हुई थीं जो इनकी रचना की महिमा का प्रमाण है।

शांतिपुराण १६वें तीर्थंकर शांतिनाथ की जीवनी तथा उनके पूर्वजन्म-वृत्त का निरूपण है। इसका मूल्यांकन कवि के ही शब्दों में 'पुराणचूडामणि,' 'न भूतो न भविष्यति' आदि वर्णनों से विदित हो सकता है। परवर्ती रचनाकारों ने भी इसका महत्व माना है। इनकी वस्तु-वर्णन-शैली का एक नमूना देखिए—

त्रिजगदभिष्टुता, त्रिजगदाश्रयिणी, त्रिजगज्जनस्तुता
त्रिजगदुपासिता, त्रिजगदुल्लसिता, त्रिजगन्मनोहरा
त्रिजगदलंकृता, त्रिजगदेकमता, त्रिजगत्सुखास्पदा
त्रिजगदघच्छिदा, त्रिजगदीशनुतावर शांति की कथा

[१२-५५]

राष्ट्रकूट दरबार का गौरव बढ़ाने वाले यदि पोन्न रहे, तो चालुक्य सम्राट् तैलप (६७३-६६७) के दरबार की शोभा बढ़ाने वाले थे--रन्न। आप भी 'कविचक्रवर्ती थे। आपकी धर्म-कथा 'अजितपुराण' तथा लोक-विधायिनी कथा 'साहस भीम विजय' या 'गदायुद्ध' हैं। रन्न में पंप की सी प्रतिभा थी, पोन्न सदृश पांडित्य प्रदर्शन नहीं था। 'अजित पुराण' की वस्तु-योजना सरस-भवावलियों (पूर्व-जन्म-वृत्तांत) का व्यर्थ-विस्तार नहीं है। उनकी निम्नांकित आत्मश्लाघा में कोई अतिशयोक्ति नहीं है--

कवि मुखचन्द्रं, कविचक्रवर्ती
कविराजशेखर, कविराजं
कविजनचूडारत्नं
कवितिलकं कविचतुर्मुखम् कविरत्नं।१-८१

[इधर पं० के० जगन्नाथशास्त्री जी ने इस कृति का हिन्दी में अनुवाद किया है। उसका संशोधन-कार्य जारी है। आशा है वह अविलंब ही सहृदयों को सुलभ हो जाएगा।]

'गदायुद्ध' में अपने आश्रयदाता सत्याश्रय की कथानायक भीम से एकरूपता स्थापित कर प्रशंसा की है। आधुनिक युग में हमें अत्यधिक प्रभावित करने वाले अंश हैं--उनकी रचना का धड़धड़ाता वाक्प्रवाह; Tragic दुर्योधन के शील-निरूपण में कवि की असीम समवेदना और सहज ही उद्भुत नाटकीय कौशल-संबाद योजना का सौष्ठव। कुरुकुलार्क के अस्त का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण महाकवि रन्न की महती देन है। करुण रस-प्रतिपादन में भी उनका कौशल द्रष्टव्य है। कर्ण के निधन के अवसर पर दुर्योधन का विलाप देखिए--तेरे रहने पर ही यह राज्य सार्थक है, तेरे रहने पर ही इस सिंहासन की शोभा है; तेरे रहने पर ही यह श्वेतछत्र महिमामण्डित है; तेरे रहने पर ही संतान के साहचर्य की तृप्ति; तेरे बिना,

मञ्जराज ये किस काम के।' [५-३७,गदायुद्ध संग्रह]
वीर-रस के प्रकरण में रन्न का कौशल देखिए :—
'वह निर्जित रव, कंठीरवनिरस्तघन रव क्रोधारुणनयन ने सुना तो पानी के भीतर ही पसीना छूटने लगा।
यों प्रस्वेद से प्लावित दुर्योधन रोषावेश न सह सका, जलमंत्र की परवाह न की, क्रोध से तिलमिला उठा। उस अवसर पर जलस्तंभ मंत्र के रमणीय परिणाम नष्ट हुए। स्वाभिमान से परिचालित सुयोधन गरज उठा—मानो रसा से कालाग्निरुद्र निकला हो, सरोवतर मध्य से साहसगर्वालंकृत निकला हो—-'कहाँ है वह भीम, कहाँ है वह' इतना कह रोषारुणनेत्र धार्त्तराष्ट्र ने गदा उछालना शुरू किया।' (५-३७.संग्रह)

समीक्षकों ने आपकी काव्य- प्रतिभा से प्रभावित हो आपको 'शक्तिकवि,' 'सरस्वतीभांडारमुद्रा भंग करने वाला असहाय कवि' आदि उपाधि से विभूषित किया है।

१० वीं सदी के बाद नई पीढ़ी के कवियों के लिए यही काव्य-शैली आदर्श प्राय रही। तीन शतियों तक चली इस परम्परा में उल्लेख योग्य कृतिकार, कृतियाँ, आदि का परिचय यों दिया जा सकता है—

समय	कृतिकार	कृतियाँ
लगभग.११००ई	नागचन्द्र या अभिनव पम्प	१ पम्प रामायण
		२ मल्लिनाथ पुराण
"११७०ई.	नेमिचन्द्र.	१ अर्धनेमि पुराण
		२ लीलावती
"१२००ई.	जन्न.	१ यशोधरचरित
		२ अनंतनाथ पुराण
"१२३५ई	आण्डय्या	कब्बिगर काव

भवावलियों का विस्तार, काव्यांग-निरुपण, रस-व्यंजना, शैली आदि की दृष्टि से ये चम्पू पद्धति की कृतियाँ मिलती जुलती हैं।

नागचन्द्र की जैन रामायण में नवीनता का निर्वाह आदि पम्प की प्रतिभा का स्मरण दिलाता है। नागचन्द्र का रावण आज भी आदर्श Tragic Hero लगता है। 'लीलावती' में संस्कृत के गद्यलेखक सुबंधु की कथाशैली का अनुगमन लक्षित होने पर भी, वर्णन-विधान में अनुपम आकर्षण है। जन्न की कृतियों में शृंगार का विपरीत-विपर्यस्त चित्रण अद्वितीय बन पड़ा है। तत्सम का सर्वथा परित्याग एवं तद्भव-देशी के व्यवहार से ठेठ कन्नड़ का प्रयोग आंडय्याजी की महाकाव्य-रचना-शैली का अपूर्व आकर्षण है।

ब्राह्मण धर्मानुयायी महानुभावों ने भी इस अवधि में लोक विधायक काव्य रचने की ओर अभिरुचि दिखाई थी। कादम्बरी (नागवर्म ९९० ई०), पञ्चतंत्र (दुर्गसिंह १०२० ई०), जगन्नाथ विजय (रुद्रभट्ट १२०० ई०), अभिनव-दशकुमारचरित तथा नलचम्पू (चण्डरस १३००ई०) आदि इसके प्रमाण हैं। इन कृतियों में संस्कृत मूल की छाप अवश्य पड़ी है। पर इन्हें अनुवाद-मात्र नहीं कहा जा सकता है। कृतिकारों की मौलिक उद्भावना-शक्ति इन वर्णनों में गोचर हुई मिलती है। लोकनीति का कांता-सम्मित प्रतिपादन इनका प्रयोजन है। अतः हास्य आदि अन्य रसों का भी वर्णन हुआ है। संस्कृत के उपाख्यान कन्नड़ में चम्पूशैली में किस प्रकार जीवित हैं, यह इसका प्रमाण है। 'जगन्नाथविजय' में (रुद्रभट्ट) विष्णु पुराण के आधार पर भक्तिरस की महिमा अंकित हुई है।

ऊपर हम कन्नड़ साहित्य के स्वर्णयुग का दिग्दर्शन करा आये हैं। इस प्रौढ़ युग में पंडितों कलाप्रेमियों को अति प्रिय मार्ग-सम्प्रदाय फला-फूला। १२०० ई० के आसपास इस साहित्य में नई क्रांति की सूचनाएँ दिखाई पड़ीं। इसे बसवण्णा जैसे वीरशैव वचनकारों की स्फूर्ति का परिणाम कह सकते हैं। हंपीनिवासी हरिहर तथा राघवाङ्क इसके अध्वर्यु माने जा सकते हैं। रूढ़िगत नर-स्तुति और पुराणवीरों के प्रशस्ति-गान बंद हुए। साक्षात् शिव तथा शिवशरणों का माहात्म्य काव्य-विषय बन गया। कंदवृत्तों की भांति 'रगले' जैसे देशी छंदों का प्रचलन बढ़ा। इस नई विधा के प्रवर्तक हरिहर कहे जा सकते हैं। परवर्ती अनेक कवि हरिहर का ही चरित-मार्ग अपना कर चले। 'रे मानव। देहधारी मृत्युसेवी साधारणों को इन्द्र, चन्द्र, रवि, कर्ण, दधीचि, बलीन्द्र आदि की असाधारण उपाधियों से विभूषित करते वाणी का अपमान मत करो। तू हमारे हम्पी के सर्वेश की सौम्यता-सुन्दरता की सतत आराधना, स्तुति और स्मरण कर, इन उक्तियों

का अनुसरण परवर्ती समस्त वीरशैव कवि बड़े आदर से करते हैं। इनकी कृतियों के नायक साधारण मानव हैं, नरेश या कोई देवता नहीं। भक्ति की महिमा इन नर-सामान्यों को महामानव बनाने वाली सिद्ध हुई है। हरिहर अपने को 'पम्पापुरीश विरूपाक्ष का साक्षात् सुपुत्र' मानता है। राघवांक ने उसकी प्रशंसा 'कर्नाटककाव्यलक्षण दीक्षाचार्य,' 'शिवयोगचक्रेश्वर,' 'मर्त्यलोक का महादेव' आदि अभिधानों से की है। 'गिरिजाकल्याण' मार्गशैली में वर्णित इसकी कृति है इससे भी अधिक लोकप्रिय हैं उसके ३२० 'रगले'। इनमें बड़े भक्ति भाव से बसवण्ण, अल्लमप्रभु, अक्क महादेवी जैसे ऐतिहासिक व्यक्तित्वों तथा लोकविख्यात 'नम्बि' आदि पुराने शिवभक्त श्रेष्ठों की महिमा वर्णित है। इनमें भक्ति-तरंगिणी का उच्छल प्रवाह सहज ही उमड़ा हुआ है। यह 'रगले' अंग्रेजी के Blank Verse सा छन्द माना जा सकता है। हरिहर के कथानकों में कर्नाटक की जनता के संस्कारों में पोषित आदर्श जीवनचित्र देखे जा सकते हैं। रगले का एक नमूना देखिए —

पाताल एक पाद से
ब्रह्माण्ड अन्य चरण से
जटाएँ पीठ पर झूल रही हैं
मौलि में सुरसरी छलछलाती रहे
मस्तक में शशि-कला सोहती रहे
—'कुम्हार गुण्डय्या का रगले'

हरिहर ने नव-रसों का उत्साहपूर्ण चित्रण किया है। भक्ति के अपूर्व उद्धारों से परिपूर्ण 'पक्षाशतक' 'पम्पा-शतक' शतक-द्वय का भी प्रणयन किया है। हरिहर की यह नई प्रज्ञा राघवांक में विशेष प्रतिभा मंडित हुई। रगले बाधक जैसी षट्पदियों में परिणत हुआ। षट्पदी रगले की अपेक्षा अधिक जनप्रिय भी हुई। राघवांक की प्रतिज्ञा है—'हम्पीपति की स्तुति करनेवाली वाणी अन्य देवताओं, भवियों के गुणगान में प्रवृत्त हो तो मैं मनसिजारि का भक्त नहीं हूँ', 'कृतिचौर्य का अपराध मुझसे न होगा, यह मेरा दृढ़ संकल्प है।'

आपके प्रसिद्ध षट्पदी काव्य 'हरिश्चन्द्र काव्य' सिद्धराम-पुराण' और 'सोमनाथ चरित' हैं। वस्तु-योजना, वर्णन-शैली, छंदोविधान आदि की दृष्टि से राघवांक नई पीढ़ी-वालों के आदर्श मार्गदर्शक ठहरते हैं। हरिश्चन्द्र का पौराणिक आख्यान इनके हाथों एक शिवभक्त की सत्य-परीक्षा का रूप धारण करनेवाला बन पड़ा है। नाटकीय कथोपकथन का अदभुत चमत्कार इसका आकर्षण है। 'हर ही सत्य है' यही इसका तत्व-सार है। मानव-जीवन को सुखमय बनाने हेतु काव्य-निर्माण करने वालों में राघवांक का स्थान सर्वोपरि है। 'हरिश्चन्द्र काव्य' का एक उद्धरण लीजिए—क्रूर ब्राह्मण के घर में चन्द्रमती-रोहिताश्व की दुर्दशा का सजीव चित्रण देखिए।

स्वामी बड़ा क्रोधी हैं,
स्वामिनी महामूर्खा, सुतनिराधूर्त,
पुत्रवधू हृदयहीना,
इतर परिजन दुर्जन
पड़ोसी मिथ्यावादी,
पशु सारे ठूँठ,
पग पग पर बिगड़ने वाले,
जानलेई पिटाई, मनमानी गालियाँ
खटपट मचाना, सिर पर,
सवार रहना, गलतियाँ ढूँढना
क्रूर माता के प्रकोप,
को न सह पाने से,
रानी तथा राजपुत्र रोज
मरते मरते बचे हैं।
[हरिश्चन्द्र काव्य ८२]

राघवांक के अन्य चरितनायक विख्यात वीर शैवशरण सिद्धराम, वीरशैवधर्म की रक्षा के लिए कृतसंकल्प इतिहास प्रसिद्ध वीर आदय्या एवं शिवगणों में अग्रणी वीरभद्र प्रमुख हैं।

हरिहर-राघवांक की प्रभविष्णुता से प्रेरित होकर भीम कवि ने (१३८० ई०) सुबोध कन्नड में 'बसवपुराण'[1] का प्रांजल अनुवाद किया है। भामिनी षट्पदी में इसकी रचना हुई है। यह तेलुगु में था और पाल्कुरिके सोमनाथ इसके मूल लेखक थे। कन्नड में इसका घर-घर प्रसार

१. हाल में जदगनिवासी पुट्टराज गवाई जी कृत इसका हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित है। ले०

इसकी लोकप्रियता का परिणाम है। इसकी शैली की सरसता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि परवर्ती काव्य-रचना वार्धक की अपेक्षा भामिनी में ही समादृत मानी गई। वस्तुक या मार्गशैली में उपलब्ध प्रास, यति, गण, गद्य-पद्य, लक्षण, व्याकरण, रस, भाव, अलंकार आदि के देशी षट्पदी या वर्णक में विनियोग का उनका कौशल स्तुत्य है। यहाँ बसवण्णा की अवतार लीला बड़ी मनोरम शैली में चित्रित है। 'श्रीपरमज्योति-स्वरूप को दिया दर्शाने के समान' यह ग्रंथ महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

चामरस (लगभग १४०० ई०) एक दूसरे महाकवि हैं जिन्होंने भामिनी षट्पदी के मृदुमधुर छंद का सशक्त प्रयोग किया है। आपने वीरशैवों के महात्मा ज्ञाननिधि अल्लम प्रभुदेव का गौरव-गान गाया है। पौराणिक आख्यानों से अपनी रचना का पार्थक सूचित करते हुए आप लिखते हैं कि—

मरे हुए लोगों का वृत्त नहीं, जन्म के ताप से संतप्त
कर्म के अन्धकार में बिलबिलाने वालों की गाथा नहीं;
समय कटता नहीं, इसलिए ठलुए श्रोताओं से भरी मतिमत्तों की गोष्ठी नहीं;
सत्यशरण ही इस प्रभुलिंगलीला का मर्म जानने वाले हो सकने हैं।

कवि को पूरा भरोसा है कि प्रभुदेव साक्षात् शिवजी हैं। उनकी विरक्ति की ऊँचाई, माया-कोलाहल के निरूपण का ढंग, शिवशरणों का उद्धार, अध्यात्म का महोन्नत आदर्श आदि का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन चामरस की विशेषता है। तत्वनिरूपण के समस्त गुणों का प्रयोग किस प्रकार संभव है, इसका प्रमाण इस महाकवि में गोचर है। आपकी सहज प्रतिभा, वाक्यविन्यास की सरसता, भक्ति की गहराई किसी भी सहृदय को मोह लेने वाली है। संस्कृत, मराठी, तेलुगु, आदि भाषाओं में इनकी कृतियों का अनुवाद हो चुका है।

वीरशैव भक्त कवियों ने षट्पदी-शैली का गांभीर्य-विस्तार बढ़ाया था। पीछे दो शतियों तक कन्नड़ के प्रतिनिधि-कवि के रूप में विख्यात कुमारव्यास (१४०० ई०) कुमार बाल्मीकि (१५०० ई०) लक्ष्मीश (१५५० ई०) विरूपाक्ष पण्डित (१५८० ई०) आदि महाकवियों ने इसका संवर्धन किया है। इन महानुभावों की काव्य-साधना के फलस्वरूप यह शैली सर्वाधिक गौरवान्वित हुई। लोक जीवन में भक्ति का जो ऊँचा स्थान मिला था, वही इस युग में विशेष सत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। महाभारत, रामायण, भागवत, पुराण, इतिहास जो राष्ट्र की महती सांस्कृतिक साधना के द्योतक हैं इस काल में कवियों के उपजीव्य बने और भिन्न-भिन्न भाषाओं में इनका पुन-रुत्थान दिखायी पड़ा। कन्नड़ में यह युग इस प्रवृत्ति का प्रमाण है। कन्नड़ में महाभारत को नव-जीवन प्रदान करने वाले महाकवि कुमार व्यास हैं। आपके भाव का तेज, भाषा का ओज वीर रस-व्यंजना में जिस प्रकार लक्षित है उसी प्रकार माधुर्य-प्रसाद का परिपाक शृङ्गार के चित्रण में गोचर है। करुण-रस का निरूपण (पत्थर के कलेजे को भी पिघला) देने वाला है। आदि से अन्त तक कथा-सूत्र का निर्वाह है। भक्तों के प्रति अनुग्रह दिखाने हेतु अवतीर्ण भगवान कृष्ण के लीला-विलास तथा महिमा-स्तोत्र काव्य-सौष्ठव से गुंफित हैं। आपकी भक्ति-भावना का आवेश देखिए :—'वीरनारायण ही कवि है, कुमार व्यास केवल लिपिकार है।' यह मेरी घोषणा है कि पटिया-खड़िया की घिसाई-पिटाई मुझसे कभी नहीं हुई; प्रयुक्त कवि का परिवर्तन कभी नहीं हुआ; बड़े-बड़े कवीश्वरों के वर्णन-विधान का अनुकरण नहीं हुआ; रचना की समाप्ति तक वर्णों के लिखने की आवाज़ रुकी नहीं;...।' जनता की ऐसी मान्यता है कि आप चिरंजीवी अश्वत्थामा की स्फूर्ति से ही काव्य रचने वाले महात्मा हैं। कर्नाटक भर में आज भी जन-मन को मुदित-मोहित करने वाली कृति कुमारव्यास भारत है। परिमाण, विस्तार, काव्य की कांति आदि की दृष्टि से षट्पदी-परम्परा में कुमारव्यास का अन्यतम स्थान है।

इसी परम्परा में रामायण की रचना करने वाले कुमार बाल्मीकी कुमार-व्यास की बराबरी नहीं कर सकते। योग्यता, समादर की दृष्टि से कुमार-बाल्मीकि साधारण ठहरते हैं। यहाँ अनुवाद का क्रम अधिक निभाया गया है।

लक्ष्मीश-रचित जैमिनि भारत कुमारव्यास-कृत भारत के समकक्ष ठहर सकता है। नादमाधुर्यपूर्ण शैली, अलंकार का वैचित्र्य, सबसे बढ़कर जन-जीवन को सचाई से प्रतिबिंबित करने वाली 'चन्द्रहास', 'चण्डी' की प्रासंगिक कथाओं का बंध आदि के कारण इसका काव्य-गौरव बढ़ा हुआ है। रसमय प्रसंगों का चमत्कारपूर्ण आयोजन इस कृति का अद्भुत आकर्षण है। धर्मराज का अश्वमेध-प्रकरण इसका वर्ण्य है। फिर भी सीता-परित्याग, अर्जुन-बभ्रुवाहन का युद्ध, प्रमिलार्जुन प्रसंग आदि की योजना से वर्णन-विस्तार का साधन सुलभ हो गया है। 'भामिनी' की जगह 'वार्धक' षट्पदी के सफल प्रयोग का श्रेय लक्ष्मीश को मिलना चाहिए। विरूपाक्ष पंडित लक्ष्मीश के टक्कर के पण्डित होते हुए भी उनकी कृत चेन्नबसवपुराण, लक्ष्मीश की जैमिनि की भाँति लोक में आदृत न हो पायी। संभवतः उसका धार्मिक वातावरण इसका कारण रहा होगा। विशुद्ध लौकिक दृष्टि से भी जैमिनि का काव्यत्व कम महत्व का नहीं है। धर्म-भावना ही उसके काव्य-सौन्दर्य की कसौटी नहीं है। लेकिन चेन्नबसवपुराण में नवों रसों को सहज ही चित्रित करने योग्य-कथा-वैविध्य नहीं के बराबर है। इतने पर भी कवि ने अष्टादशवर्णन सम्बन्धी पांडित्य के सहारे इस कमी को दूर करने का सफल प्रयास किया है।

आने वाले युग के हरिदासों के तत्वबोधक भक्ति गीतों की समानता निजगुण शिवयोगी (१५००ई०) की ललित रचनायें प्राञ्जल पदयोजना में लक्षित होती है। आप वीरशैव वाग्गेयकारोंके उत्तम प्रतिनिधि हैं। आपकी 'कैवल्य पद्धति' में पाँच स्थल माने गये हैं। 'शिव-करुणा प्रार्थना', 'जीव-संबोधन' 'नीतिक्रियाचर्या', 'योग-प्रतिपादन' तथा 'ज्ञान-प्रतिपादनन'। परवर्ती काल में 'कैवल्यकल्प वल्वरी' (सर्पभूषण शिव योगी) 'कैवल्यदर्पण' (बाललीला महांत शिवयोगी) आदि वैराग्य-गीत-साहित्य की आदर्श कृतियां हैं। निज गुण शिव योगी जी में 'परमानुभव बोध'' 'परमार्थ गीत', 'अनुभवसार' जैसे गीत-काव्य भी लिखे हैं। इनमें वेदांत का सूक्ष्म रहस्य भी सुबोध कन्नड़ में मार्मिक ढंग वर्णित है। यही इनकी सबसे बड़ी देन है। इनसे प्रभावित महालिंगरग ने सौ साल बाद 'अनुभावमृत' की रचना की। यह एक सुन्दर षट्पदी काव्य है। निजगुण जी की रचना का एक नमूना देखिए—'विवेकी वह है जो ऐहिक-आमुष्मिक की समन्वित साधना में परिणत है—शिशु स्तनपान के समय एक से चूसना और दूसरे पर हाथ फेरते रहने की भाँति, भोगानुभव से भरपूर नरजन्म में ही परलोक की साधना में वह तल्लीन रहता है।'

कन्नड़ साहित्य में भावगीतों का विकास अंकित करते समय निजगुण जी की वैराग्यबोधिनी कृतियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हृदयमार्दव, छंदोवैविध्य, दृष्टि-वैशाल्य, भाषालालित्य आदि के कारण निजगुणजी के नीतिबोधक गीतों का काव्य से इतिहास में ऊँचा स्थान है। लोकगीत की धुन के अनुकरण पर लोक साहित्य का निर्माण अति प्राचीन काल से होता आया होगा। लेकिन कन्नड़ साहित्य में सर्वज्ञ की 'त्रिपदियों' में इसका परिष्कृत रूप पहले-पहल दिखाई पड़ा। आपकी प्रत्येक 'त्रिपदि' मुक्ता के समान है। इनमें कोई कथा नहीं, कोई विशेष वर्णन नहीं, पांडित्य नहीं, शास्त्र-विचार नहीं। फिर भी जन-जीवन के प्रतिक्षण के व्यवहार से संबद्ध नीति-नियमों का सुन्दर दृष्टांतों के द्वारा बड़ा अच्छा विवेचन इनमें मिलता है। लोकानुभव, व्यवहार-ज्ञान की विटमीन है इनकी प्रत्येक त्रिपाद। कहावतों की खूबी, बोलचाल की सादगी, व्यंग्य का खरापन, विवेक की विद्युत् एक साथ बड़ी विलक्षणता से त्रिपदि में सम्मिलित होकर कर्नाटक की जनता की जिह्वा पर नाच उठते हैं। सर्वज्ञ कर्नाटक के जनकवि ही नहीं, अपितु लोकगुरु भी हैं। एक उदाहरण लीजिए:

'दाँतों से घिरी हुई जीभ की भाँति ही दुर्जनों से घिरे रहनेवाले सज्जन की स्थिति होती है।'

'महल में एहसान मन्द होकर रहने की अपेक्षा टूटे-फूटे मन्दिर में पनाह लेना भला; दुत्कारे जाकर पक्वान खाने के बजाय रूखी-सूखी बासी खा लेना ही बेहतर।'

'ध्यान-रूपी बाती, मौन-रूपी घी आदि से स्वानुभव-रूपी रोशनी की लौ अज्ञान को भस्मसात् कर देने वाली होती है।''

कर्नाटक में संगीत के शास्त्रीय अध्ययन का इतिहास कब से शुरू होता है, यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, 'वचन', 'त्रिपदि', 'रगले', 'सांगत्य', 'षट्पदी' आदि की धुनें

यहाँ लोकप्रिय रही हैं। लेकिन लगभग १५०० ई० के आसपास श्रीपादराय से प्रवर्तित 'दासपंथ' के गीतकारों ने शास्त्रीय संगीत का स्वर-संधान 'कीर्त्तन' 'स्तोत्र' 'गीत' आदि में किया। पहले बसवण्णा के युग से 'गद्य वचनों की बाढ़ सी आई थी इस युग में 'सुलादि', 'उपभोग' आदि 'पद्यगीतों' का प्रवाह ही उमड़ता दिखाई पड़ा। इस परंपरा में विष्णु भक्ति--पोषक पौराणिक कल्पनाएँ अधिक हैं; भावगीतों की सी माधुरी भी यत्र-तत्र झाँकती भर है; लेकिन काव्य-दीप्ति पूरी मात्रा में नहीं है। हरिदासों में पुरन्दरदास, जगन्नाथदास, कनकदास आदि भक्त--महानुभाव उल्लेख योग्य हैं। कर्नाटक में घर-घर गृहिणियाँ भक्ति भाव से जो गीत गाती हैं उसका एक चरण नीचे दिया जाता है--

भाग्यलक्ष्मी आओ माँ।।
पैरों की घुँघरू झनझनाकर
पग पर पग रखती हुई
सज्जन-सधुओं की पूजा-बेलापर
दही के मथने पर निकले नवनीत की भाँति आओ माँ।

कनकदास जी ने अनेक पद्यगीतों के अतिरिक्त हरिभक्तिसार 'नलचरित' (षट्पदी में) तथा 'मोहन तरंगिणी' (सांगत्य में) का भी प्रणयन किया है। इनकी भाषा सरल-सरस है। कथा रोचक है। भक्ति का अपूर्व वैभव है। कनकदास जी के जीवन से सम्बन्ध कई अतुल कथाएँ लोक में प्रचलित हैं। इन्हीं कारणों से ये रचनायें आज भी चाव से पढ़ी जाती हैं।

मैसूर नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर (१६७२-१७०४ ई०) के जीवन काल में उबारा पण्डितों ने प्राचीन चम्पूशैली का संस्कार आरम्भ किया। यह युग चम्पूकाव्य का पुनरुत्थान सूचित करने लगा। तिरुमलार्य ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में 'चिक्कदेवराजविजय' काव्य रचा। उभय-कविता-विशारद षड्क्षरदेव ने 'राजशेखर विलास' 'वृषकेन्द्रविजय' तथा 'शबर शंकर विलास' का प्रणयन किया। इनका चमत्कार-पूर्ण वर्णन-विधान बड़ा मोहक है। आप रसप्रतिपादन में भी कुशल हैं। कथा निरुपण में शिवभक्ति का उद्रेक आकर्षक है। तमिल में माँ प्रचलित सत्येन्द्र चोल की लोक कथा पर 'राजशेखर विलास' आधारित है। शिव की महिमा का गुणगान करने के साथ-साथ कवि ने कथा में शृंगार-पोषक प्रकरणों का भी विधान किया है। इनकी उत्प्रेक्षाएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं-- 'राजा को कीर्तिकामिनी सुरसरिता में स्नान कर चुकी है; गगन की नीलिमा ही पसरी हुई कुंतल-राशि है; राजा के प्रताप-सूर्य के आतप में केश सुखा लेती है; नक्षत्र सुमन-माला से केश-रचना करती है; चन्द्रिका की उज्ज्वल पोशाक धारण कर लेती है; चन्द्रप्रभा के दर्पण में सौंदर्य निहार लेती है।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'वृभेषन्द्रविजय' बसवण्णा की जीवनी का पौराणिक शैली में वर्णन-प्रधान काव्य है। 'शबरशंकर विलास' आकार में छोटा है। पर किरातार्जुन का प्रसंग इसमें सरस तथा भक्तिभाव-पूरित ढंग से चित्रित है।

'सरसजनमानित' षडक्षरदेव द्वारा पोषित यह परम्परा १९ वीं तथा २० वीं के आरम्भ तक कवियों द्वारा अपनाई गई थी। बसप्पशास्त्री जी इस श्रेणी के कवियों के सिरमौर कहे जा सकते हैं। 'शाकुंतल नाटक' इनकी बड़ी प्रसिद्ध अनुवाद-रचना है। मूल की विशेषताओं की रक्षा इसमें हुई है। आप 'अभिनव कालिदास' माने जाते हैं'। 'सावित्री चरित' इनकी मौलिक काव्य-रचना है। साहित्य प्रेमी इनका बड़ा आदर करते हैं।

२० वीं शती के आरम्भ में पाश्चात्य काव्यधारा के संपर्क से एक नये काव्ययुग का सूत्रपात हुआ। आंग्ल भाषा के महाकवियों की उपलब्धियों को अपनी भाषा की प्रकृति के अनुकूल आत्मसात् करने हेतु नई भाषा, नया छन्दोविधान अनिवार्य हुए। परम्परा-प्रास कविसमय, आदिप्रास, सन्धि-समास आदि के नियमों में शिथिलता आवश्यक हो गई। पुरानी, मध्ययुगीन तथा लोक साहित्य की प्रादेशिक कन्नड़ से शब्दकोश को संमृद्ध बनाकर नयी लय-ताल से नये छन्दों का आविष्कार कर पॉलग्रेव की Golden Treasury से सरस गीतों के आदर्श पर नई काव्य-रचना का श्रीगणेश 'बी० एम्० श्री० (बी० एम श्री कंठया) के हाथों हुआ। नई पीढ़ी के रचना-कारों के पथ-प्रदर्शन का श्रेय आपको ही मिलना चाहिए। आप नई कन्नड़ काव्य-धारा के मूल-प्रवर्तक हैं। आपकी 'अंग्रेजी के गीत' रचना कन्नड़ काव्य साहित्य के परिवर्तन का स्मारक है। प्रकृति-चित्रण,

सौंदर्य-दर्शन, मौलिक भावोन्मेष, राष्ट्रीय भाव-विलास, जीवन-समीक्षा आदि काव्योपयोगी विषय कवियों को उपलब्ध हुए। इसी युग में गोविन्द पै, पंजे मंगेशराव आदि कवि नये-नये प्रयोग करते दिखाई पड़े। स्व० गोविन्द पै (नन्दादीप, गोल्गोथा, इत्यादि) आदि-प्रास का परित्याग कर देते हैं, पर पुरानी कन्नड़ की गठन उपेक्षा नहीं करते। प्रगीत (ode), शोकगीत (Elegy), गीत (cyric) चतुर्दशपादियाँ (sowet), कथाकाव्य (stoy peus), व्यंग्य (satre) आदि काव्य-शैलियों का अनुकरण या स्वतन्त्र विकास पहले दो दशकों में अधिक था। मंगेशराव जी ने प्राप का निर्वाह करते हुए अनेक मनोहर शिशु-गीत लिखे हैं। नई प्रवृत्तियों की ओर आकर्षित कवि कई हैं, लेकिन उनमें अधिकतर आरम्भशूर ही हैं। निष्ठा से इस क्षेत्र में महत्व की साधना करने वालों में 'कुवेंपु (के० वी० पुट्टप्पा) तथा 'अंबिकातनयदत्त' (द० रा० बेन्द्रे प्रमुख हैं। दोनों साधक साहित्य अकादमी से सम्मानित भी हुए हैं। इनके बारे में विस्तृत विवेचन पीछे किया जाएगा। राजदरबारों में पुरस्कृत 'उदात्त' नायक, रमणीय' वर्णन-विधान, 'अलंकृत' शैली अब विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गई। जनसाधारण की सततवेदना-प्रसन्नता ही काव्य-वस्तु बनती गई।

'वसन्तकुसुमांजलि' (डी० वी० गुण्डप्प) सुन्दर भावगीतों का संकलन है। इसमें परम्परागत प्रास, अलंकार आदि का भी उपयोग हुआ है। 'मंकुतिम्मन कग्ग'—मूर्ख तिम्मा का काव्य—आपका अद्भुत रचना है जिसमें वेदांत की नई सूत्रपरक सूक्ति-व्याख्या प्रभावशालिनी बन पड़ी। एक नमूना देखिए—

धरती से अंकुर फूटते समय शहनाइयाँ नहीं बजतीं,
फल भरित होते समय तुरही नहीं बजाई जाती,
प्रकाश का वितरण करने वाले सूर्य-चन्द्रमा मौन हैं;
रे मंकुतिम्मन ! तू अपने ओंठ सी ले।'

श्री मास्ति वेंकटेशय्यगार जी प्रधानतः कथालेखक हैं। काव्यक्षेत्र में भी निजी गीत-शैली की छाप छोड़ते आये हैं। 'अरुण' 'बिन्नह' 'मलार' जैसे संग्रह इसका प्रमाण हैं। 'मलार' में (somets) चतुर्दशपदियों की रचना में इनकी पहुँच देख सकते हैं। 'गौडरमल्लि' 'रामनवमी जैसे लोककथा प्रधान आख्यान-काव्यों में आपने कोलरिज के मनोभावों का मनोहर समावेश किया है। इनकी रचनाओं में भाव की अपेक्षा विचार ही कहीं-कहीं प्रधान हो उठते हैं।

श्री द० रा० बेन्द्रे आधुनिक कन्नड़ साहित्य के युग-निर्माताओं में माने जाते हैं। आपकी शैली में भाषा पर अचूक अधिकार, अर्थ-विस्तार की क्षमता तथा उत्प्रेक्षा-अतिशयोक्ति की दीप्ति अद्भुत चमत्कार उत्पन्न करने वाली हैं। भाषा का शक्ति-सत्व साररूप में बेन्द्रे जी के काव्य में उपलब्ध है। बहुमुखी वस्तु-योजना के साथ-साथ आपके काव्य की व्याप्ति भी विशाल और विस्तृत है। दर्शन-अनुभूति, प्रतिभा-पाण्डित्य, ताल-लय-अलंकार, शब्द-श्लेष-अर्थ-कांति, भाव-रस, नादोन्माद भावावेशयथार्थ-परमार्थ आदि सबका समन्वित रस-परिपाक ही बेन्द्रे जी की शैली है, व्यक्तित्व है। आपकी दिव्य काव्य-साधना में लोकगीतों की मार्मिक उक्तियाँ उन्नत काव्य-शिखर पर पहुँचने वाली बन जाती हैं। नृत्य की भंगिमा के अनुरूप पद-योजना की नादात्मक वक्रता नमूना देखिए—

बिगर्यागि
तिगर्यागि
निद्रीय भगर्यागि
गाल्लीगू हुगुरगि, कुणियोणु बा।

इनकी मनोहारिणी काव्य-कलना का यह चित्र देखिए।

हूव हडगिगेयनु होत्त
भूमिताइ जोगिति
मैं तुम्ब कुणियुतिहलु
अनन्त कालइ गति

(**भावार्थ**—भूमाता रूपिणी जोगिन फूल रूपी देवी की डोली ढोकर आत्मविभोर हो अनन्त काल में नाच उठी है।)

'सखी गीत', 'गरि', 'नारलीले', 'गंगावतरण', 'अरलु-मरलु' आपके उल्लेखयोग्य काव्य-संग्रह हैं।

आवेशमयता, नादोन्मत्तता, भावोद्रिक्तता तथा भाषादीप्ति की स्फूर्ति बेन्द्रेजी को है तो कुवेंपु (के० वी० पुट्टप्पा) को काव्य-प्रतिभा 'काव्यविद्या-परिचय' से परिष्कृत 'सतताभ्यास-प्रयत्न' से परिपुष्ट परमसिद्धि-लाभ के लिए अनवरत

प्रस्तुत करते हैं। ये तीनों अपना मार्ग (प्रयोगवादी) नव्य-काव्य के पथ पर बनाते आ रहे हैं। बेंद्रे, कुवेंपु, गोकाक आदि प्रतिभाशील कवि भी कभी-कभी इस श्रेणी की रचनाएँ लिखते दिखाई देते हैं।

स्वच्छंदधारा का अनुगमन करने पर भी इधर प्रगति के नाम पर एक नया पंथ निर्माण करने का आग्रह श्री गोपालकृष्ण अडिग में मिलता है। यह साधना भी उपेक्षणीय नहीं है। 'चण्डेमद्दले' (करताल-ठोंक) 'भूमिगीते' इन दोनों संकलनों में आपके काव्य-विकास की उपलब्धियों को देख सकते हैं। व्यक्ति-समाज, भावना--बुद्धि, तन-मन आदि में गोचर होनेवाले विच्छेद की तहों को टार्च के सहारे दिखाने की अद्भुत कला अडिगजी की निजी विशेषता है। राजनीति में, सामाजिक जीवन में, व्यक्ति के आचरण में सर्वत्र आपको धोखा, छल-प्रपंच ही निरीक्षण-सीमा में आते हैं। आपके काव्य में तीव्र भावानुभूति तथा सूक्ष्म बुद्धि संयत्रता समान रूप से प्रतिबिंबित मिलती है। सामयिक जीवन के छिद्रों को उद्घाटित करने के लिए प्रयुक्त प्रतिमा-विन्यास, काम-विकार तथा बीभत्स को हेय नहीं मानता। इसी का अतिरेक नये कवि रामचन्द्र शर्मा जी की मनोवृत्ति में देखा जा सकता है। 'एलुसुत्तिन कोटे' (सप्तप्राकार का किला) मनोविश्लेषण काव्यात्मक दिग्दर्शन मात्र है। इस अत्याधुनिक काव्य-परम्परा का (Shock) विधान धीरे-धीरे काव्यप्रेमियों को लगने लगा होगा, ऐसा माना जा सकता है।

●

आधुनिक कन्नड काव्य की प्रवृत्तियाँ

य० हनुमय्या, एम० ए०

कन्नड साहित्य का आधुनिक काल सन् १९२० से माना जाता है। अंग्रेज शासन के स्थापित हो जाने पर जन-जीवन में निष्क्रियता पैदा हो गई थी। कन्नड साहित्य भी बीसवीं सदी तक जीवन्मृत सा हो गया था। नवोदय के पहले पुरानी परम्परा साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं रही। अंग्रेजों के सम्पर्क में आकर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर जनजीवन में नई भाव धारा तथा विचार धारा का संचार हो पाया था। पाश्चात्य हवा खाकर निश्चेष्ट जन-जीवन में नया उन्मेष हुआ। साहित्य जो उस जनता की भाव धारा तथा चिंतन का प्रतिबिंब है, नई स्फूर्ति पाकर विकसित होने लगा।

नवीं सदी से आईहुई साहित्य परम्परा, साहित्य प्रकार तथा भाषा आधुनिक भावधारा की अभिव्यक्ति के लिए असमर्थ रही। पुराने काल में कवि वस्तुनिष्ठ होता था आधुनिक काल में आकर उनको व्यक्तिनिष्ठ होना पड़ा। पहले कवि के व्यक्तित्व को विकास के लिए अवकाश नहीं था। अब इस नये क्षेत्र में कवि को यह अवकाश प्राप्त हुआ।

अंग्रेजी शिक्षा तथा अंग्रेजी सभ्यता से सम्पर्क पाकर जैसे भारतीय मनीषियों में नई प्रज्ञा पैदा हुई। वैसे ही कन्नड भाषा-भाषी जनता में भी हुई। देशाभिमान, भाषाभिमान तथा आत्माभिमान नये प्रेरणा पाकर बढ़ने लगे। इन मानसिक तथा हार्दिक लहरों को नई अभिव्यक्ति मिली जो भाव गीतों के रूप में प्रकट हुई।

कन्नड काव्य क्षेत्र में इस नई भावधारा को बहाने का श्रेय श्रद्धेय बी० एम० श्रीकंठय्या को प्राप्त है। ये मैसूर विश्वविद्यालय के अंग्रेजी प्रोफेसर थे। वैसे ही कन्नड साहित्य के अच्छे पंडित थे। इन्होंने पहले अनूदित अंग्रेजी कविताओं के द्वारा कन्नड काव्य की श्री वृद्धि की। पुरानी परम्परा को छोड़ नई अभिव्यक्ति के लिए नई शब्द योजना, नये छन्द तथा नई काव्य-वस्तु का भन्डार को खोल दिया।

इनके अनूदित गीतों का ऐतिहासिक महत्व है। ये गीत केवल वस्तु की दृष्टि से अनुवाद हैं, बल्कि ये कन्नड की ही कविता है। इनमें नई शब्द योजनाएँ छन्द तथा नई भाव धारा एकाएक कन्नड में दिखाई पड़ी। कन्नड भाषा तथा साहित्य के प्रति विशिष्ट अभिमान उसको समृद्ध करने की तीव्र अभिलाषा बढ़ी। इसके लिए अंग्रेजी काव्य का प्रभाव कन्नड काव्य पर अनिवार्य हो गया। यह वांछनीय भी था।

श्रद्धेय 'श्री' जी से उद्घाटित आधुनिक काव्य को बहुत दिशाओं से बढ़ावा मिला। आधुनिक शिक्षा के कारण इस समय के कवि पाश्चात्य विचार धारा तथा चिन्तन से प्रभावित हुये बिना न रह सके। इस नई अनुभूति से नई-नई लहरें उठीं। जिनको अभिव्यक्ति देना अनिवार्य हो गया। यों भावगीतों के लिए कन्नड में रास्ता खुल गया।

प्राचीन कन्नड काव्य में भी भावगीत के रूप यत्र-तत्र मिलते हैं। पर अब भावगीत काव्य के एक महत्वपूर्ण प्रकार के रूप में सामने आया। जीवन का एक सरस क्षण प्रकृति का का कोई सुन्दर रूप जीवन की छोटी सी घटना—ये सब काव्य वस्तु बन सकती है, ऐसी भावना एकदम नई थी। प्राचीन काव्य में कवि के वैयक्तिक विकास के लिए अवकाश

नहीं था। नया काव्य बुद्धि-भावों की कुशल काम की अपेक्षा स्फूर्ति पर निर्भर रहता है। प्राचीन काव्य जीवन का समग्र चित्रण कर सकता था। आधुनिक काव्य में कुछ है, विशिष्ट अनुभूतियाँ ही काव्य में स्थान पा सकती है। इस काव्य में व्यक्ति ही, प्रधान हो गया।

नए शिक्षा प्राप्त बहुत से नए कवि इस ओर आकृष्ट हुए। श्री० के 'कन्नड बाउटा' 'इंगलिश गीतगलु' के साथ-साथ दक्षिण कन्नड के पंजे मंगेशराव धारवाड में दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे, मैसूर तथा उनका बंगेलेयर गुंपु (मित्त गोष्ठि) मैसूर में श्री० के० वि० पुट्टप्पा (कुवेंपु) आदि प्रतिभावान कवियों की कविताओं में भावधारा उमड़ने लगी।

काव्य में इस नये उन्मेष के होने से शब्द सृष्टि में क्राँति हो गई। सहज ही बहुत से नए शब्द पैदा हुये। पुरानी परम्परा की गम्भीर भाषा चलती भाषा का रूप धारण करने लगी। पहले चलती भाषा में काव्य रचना न होती थी। अब गद्य तथा पद्य की भाषा का भेद जाता रहा। जनता की भाषा काव्य की भाषा बनी। यह सब असाधारण परिवर्तन स्वच्छंद पाश्चात्य विचार धारा का प्रभाव था। यों कन्नड साहित्य में रोमांटिक भावना बल पाकर विकसित होने लगी।

इस नई भावना के प्रबल होने के कारण, इसकी अभिव्यक्ति के लिए जैसे नई परिमार्जित सरल भाषा की जरूरत पड़ी उसी तरह नए छन्दों की जरूरत पड़ी। परम्परा छंद कभी-कभी भाव प्रकाशन करने में असमर्थ होते हैं। अनुरूप छंदों का निर्माण हुआ। पुराने छंदों में उचित परिमार्जन हुआ जैसे विचारधारा तथा भावधारा में 'स्वच्छंदता' (romaticism) आ गई वैसे ही छंदों में भी। नए छंदों का आगमन हुआ, पुराने छंद बहुत कुछ छूट गये; कुछ नई परिस्थिति के अनुरूप परिमार्जित हुए।

मुक्त छंद (सरल रगले Blank Verse) तथा (Sonnets) दोनों कन्नड को अंग्रेजी की देन है। इस युग के सब कवियों ने इन दो विदेशी छंदों को देशी बनाकर बहुत प्रयोग किया है। इस युग की चोटी की कृति 'रामायण दर्शनम्' महाकाव्य में यह मुक्त छंद पराकाष्ठा को पहुंचा है। इस श्रेष्ठ महाकाव्य के कर्तृ 'श्री कुवेंपु' ने इस काव्य में बहुत ही सहज भाव से 'महाछंदस्' (Miltonc) तथा 'महोपमा' (Homeric Cinity) का बहुत समर्थ रीति से बहु मात्रा में प्रयोग किया है। (इस महाकाव्य को साहित्य अकाडेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इस प्रकार पुराने देशी छंद तथा संस्कृत के वृत्त पुराने पड़ गये और नये-नये छंद सामने आकर कन्नड काव्य क्षेत्र में खेल रहे हैं।

उन्नीस सौ बीस से अब तक जो काव्य निर्माण कन्नड में हुआ है, जो कवि पैदा हुये हैं, जिन्होंने कन्नड काव्य को संपन्न किया है, उनके बारे मे परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

इस आधुनिक युग के प्रवर्तन का श्रेय पूज्य श्री बी० एम० श्रीकंठय्या 'श्री' को प्राप्त है। जैसे पहले ही बताया है, ये अंग्रेजी के प्रोफ़सर थे कन्नड के विद्वान भी और कवि भी। इन्होंने बहुत सी कविताएँ तो नहीं रची हैं। इनके 'अंग्रेजी गीत' के प्रकाशन के साथ ही नये युग, नई अभिव्यक्ति तथा नई भावधारा का उन्मेष होता है। ये बहुत सुन्दर अनूदित गीत है। इस संग्रह के पहले कविता 'काणिके' (भेंट) में इस संग्रह के उद्देश्य के बारे के कहते हैं। इसमें कन्नड भाषा के बारे में तीव्र अभिलाषा व्यक्त की गई है। उसकी दूसरी कृति 'कन्नड बाउटा' में (कन्नड की ध्वजा) देशाभिमान की, स्वातन्त्र्य-प्रियता की भावना से भरी सुन्दर स्फूर्तिदायक कविताएँ हैं। 'श्री' जी युग के श्रेष्ठ कवि न होने पर भी युग निर्मातृ के रूप में कन्नड साहित्य में चिर स्मरणीय है।

इस तरह उद्घाटित आधुनिक कन्नड काव्य को सम्पन्न करने में, समर्थ करने में कई प्रतिभावान कवियों ने काव्य निर्माण किया। कन्नड भाषा भाषी क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से तीन भागों में बट गया था जो अब एक हुआ है मैसूर राज्य (एकीकरण के पहले) उत्तर कर्नाटक (जो बम्बई तथा हैदराबाद में मिला था) तथा दक्षिण कन्नड (जो पहले मद्रास से मिला था)।

इस युग के आरम्भ काल में शिक्षा का इतना प्रचार नहीं हुआ था जितना आजकल हुआ है। केवल कुछ प्रमुख नगर

ही शिक्षा के केन्द्र थे। यहीं साहित्य सृजन कार्य भी हुआ करता था। कन्नड भाषा भाषी क्षेत्र में (जिसे अब मैसूर राज्य कहते हैं) उत्तर में धारवाड, पश्चिम में मंगलूर और बीच में मैसूर—ये शिक्षा के केन्द्र थे धारवाड में श्री दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे, तथा उनका 'गेलेयर बलगा' (मित्रों की गोष्ठी) मंगलूर में पंजे मंगेशराय मैसूर में 'श्री' तथा उनके शिष्य आदि इस नई भावधारा को पकड़ कर काव्य रचना करने लगे।

उत्तर कर्नाटक के कवियों में 'बेन्द्रे' श्री मुगली, श्री बेटगेरी कृष्ण शर्मा, गोकाक, मधुर चेन्ना, नरेगल्ल, नारायण संगम आदि प्रसिद्ध हुये हैं। इनमें बेन्द्रे ऐसे कवि हुये हैं जिन्होंने कविता ही नहीं बनाई कवियों को भी बनाया। 'काव्य शास्त्र विनोदों' के द्वारा नए कवियों को मार्ग दर्शन किया। दूसरी दिशा में सामान्य जनता में काव्याभिरुचि बढ़ाई।' इस तरह अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा कार्यों से इन्होंने कन्नड काव्य को सम्पन्न तथा समर्थ बनाया।

बेन्द्रे जी की करीब बीस कृतियाँ 'कृष्ण कुमारी' से लेकर अब तक प्रकाश में आई है। भाषा और छंदों में, साहित्यिक भाषा से लेकर जनता की चलती भाषा में इन्होंने काव्य रचना की है। काव्य वस्तु में भी अपार वैविधता है। छायावादी युग के कवियों जैसे ही इन्होंने अपने आस पास की ही वस्तु लेकर काव्य रचना की (यद्यपि कन्नड साहित्य में इस काव्य धारा को किसी वाद के अन्तर्गत नहीं लाते, तथापि वह तत्वत: Romantic साहित्य ही बेन्द्रे जी की कविता में प्रकृति सौंदर्य है, स्त्री पुरुष का प्रेमानुराग है, देश प्रेम, समकालीन जीवन की समस्याएँ हैं, दार्शनिक अनुभूतियाँ अमूर्त के विचार है। इस तरह इनका काव्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है। आपका काव्य संकलन 'अरलु-मरलु' को साहित्य अकाडेमी का पुरस्कार प्राप्त है।

यह श्रीमंत कवि युग के साथ बदलती हुई भावधारा के साथ नये नये प्रयोग कर रहे हैं। छायावादी प्रगतिवादी तथा रहस्यवादी कविताएँ रचकर अब प्रयोगवाद तक आ गए हैं आप पर जैसे पाश्चात्य कवियों तथा भावधारा का प्रभाव पड़ा वैसे ही प्राच्य मनीषि तथा दर्शन का प्रभाव है। श्री अरविंद के दर्शन से आप बहुत प्रभावित हुये हैं।

छायावाद के दूसरे कवियों में श्री विनायक प्रमुख कवि हैं। पहले आप सौंदर्योपासक कवि हैं। छायावादी युग के कवि आगे चलकर 'नव्य' कवि हो गए है। कन्नड काव्य में प्रयोगवादी नव्य काव्य का सम्प्रदाय चलाया।

दूसरे प्रमुख कवि मुगली तथा आनंद कंद का काव्य क्षेत्र सीमित है। मुगली की काव्य वस्तु ज्यादातर अमूर्त होती है। आप अब तक छायावादी कवि ही बने रहे हैं। आनन्द कन्द जी का काव्य क्षेत्र थोड़ा विस्तृत है।

इधर मैसूर में 'श्री' जी के अंग्रेजी गीतों के प्रकाशन के बाद बहुत से प्रतिभावान कवि दिखायी पड़े। इनमें श्री कुवेंपु, पु० ति० नरसिंहाचार, राजरत्न आदि प्रसिद्ध हैं। 'श्री' के नेतृत्व में ये कवि काव्य रचना में लगे।

'कुवेंपु' ने श्री के काव्य मार्ग को खूब बढ़ाव किया। श्री केवल युग प्रवर्तक ही रह गये। अपार मात्रा में आपने रचनाएँ नहीं की। 'कुवेंपु' ने खूब काव्य रचनाएँ की। आपके बीसों काव्य संकलन निकल चुके हैं। अब भी आपकी लेखनी से श्रेष्ठ कृतियाँ आ रही हैं। आपके प्रथम संकलन 'कोललु' (बांसुरी) लेकर 'रामायण महादर्शनम्' तक आपका काव्य क्षेत्र विशाल है।

आपकी रचनाओं में प्रकृति गीत ही अधिक तथा प्रमुख है। आपका जन्म ही प्रकृति की गोद में हुआ था। आपको प्रकृति से प्रेरणा मिली, काव्य स्फूर्ति मिली। आपने उपमा तथा रूपकों को भी प्रकृति से लिए हैं। प्रकृति आपके काव्य जीवन का एक अनिवार्य अंग बना हुआ है।

आपकी कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन है। 'पांचजन्य' की आवाज में क्रांति की ध्वनि है। 'प्रेम काश्मीर' में आप मधु विहार करते हैं। 'अग्नि हंस' की उपासना में ये लीन होते हैं। इस तरह आपका काव्य लोक विस्तृत है।

'चित्रांगदा' आपका सुन्दर खंड काव्य है। 'रामायणदर्शनम्' इस युग का महाकाव्य है। इस श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना कर आप आधुनिक कन्नड के कवि श्रेष्ठ हुए हैं। 'रामायण महादर्शनम्' की कथा वस्तु पुरानी होने पर भी उसमें बहुत सी नवीन बातें हैं। दृष्टिकोण आधुनिक है, दर्शन नवीन

है। यह नौ सौ पृष्ठों का बृहत् काव्य है। यह आपकी काव्य साधना की चरम सिद्धि है।

इन समकालीन कवियों में मास्ति वेंकटेशरयंगरि प्रमुख है। आपने एक महत्वपूर्ण काम किया है। आपके काव्य संकलन 'अरुण', 'तावरे', 'चलुवु', 'बिन्नह' की रचनाएँ सुन्दर है। आपने पद्य और गद्य की भाषा का भेद निकाल दिया।

इस तरह इस छायावादी युग के सैकड़ों कवि हुए। कन्नड काव्य भूमि को उपजाऊ बनाया। इनमें बहुत से श्रेष्ठ कवि हुए जिन्होंने कन्नड साहित्य को सम्पन्न किया है। इनमें श्री वी० सीतारामय्या, राजरत्न, पु० तिनरहिाचार्य अधिक महत्वपूर्ण है। जिनकी काव्य रचना श्रेष्ठ रही है।

उन्नीस सौ बीस से चली कन्नड काव्य धारा अनेक क्षेत्रों में होती आयी है। अब नव्य काव्य का उदय हुआ है। इस क्षेत्र में बहुत से आधुनिक कवि काव्य रचना कर रहे हैं। इनमें भी बहुत से प्रतिभावान सामने आ रहे हैं। इनमें श्री गोपालकृष्ण अडिग बहुत प्रमुख हैं। ये छायावादी काव्य क्षेत्र से नव्य क्षेत्र में आगये हैं और उसको अपना क्षेत्र बना लिया है।

इस तरह चालीस साल का कन्नड काव्य बहुमुखी होकर विकसित हुआ तथा बहुत से कवियों को काव्य साधना के लिए विस्तृत क्षेत्र मिला। इस काल का काव्य किसी भी साहित्य से कम नहीं रहा। इस युग की मेरु कृति 'रामायण दर्शनम्' इस युग का श्रेष्ठ प्रतिनिधि रहेगा।



उड़िया कविता

रमेशचन्द्र कौशिक

वाक्य विचार, अर्थ विचार, तथा शब्द विचार की दृष्टि से उड़िया भाषा भारतीय आर्य भाषा कुल की ही एक शाखा है। प्राचीन आर्य मध्य एशिया से जो भाषा अपने साथ पंजाब में लाए उससे वैदिक संस्कृत की उत्पत्ति हुई। आगे चलकर इसका संशोधित साहित्यिक रूप संस्कृत कहलाया। साधारण जनता उस समय जिस भाषा का प्रयोग करती थी, वह प्राकृत कहलायी। कालानुसार इसके दो भेद हुए, पहली प्राकृत और दूसरी प्राकृत। पहली प्राकृत को पाली भी कहते हैं। तथागत ने अपने उपदेश इसी भाषा में दिये। दूसरी प्राकृत को प्राकृत ही कहते हैं। भाषा शास्त्रियों ने देश भेद के आधार पर इसके कई भेद किये हैं शौरसेनी प्राकृत, मागधी प्राकृत, अर्ध मागधी प्राकृत, तथा महाराष्ट्री प्राकृत। प्राकृत भाषायें जो कभी जन साधारण द्वारा बोली जाती थी, परिष्कृत होते होते साहित्यिक भाषायें बन गई और उनके स्थान पर जनता में जो भाषा प्रचलित हुई उसे अपभ्रंश को संज्ञा दी गई। भाषा विज्ञ इस तथ्य से भली भाँति परिचित हैं कि संसार की अन्य वस्तुओं की भाँति भाषा भी परिवर्तनशील है। जो भाषा किसी समय जन साधारण में प्रचलित होती है, धीरे-धीरे वही परिमार्जित होकर तथा व्याकरण के नियमों में बंधकर साहित्यिक भाषा बन जाती है। इसी प्रकार अपभ्रंश भी साहित्यिक भाषा बनी और सातवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक प्रयोग में आती रही। विभिन्न प्राकृत भाषाओं से अपभ्रंश विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित हुई। अर्ध मागधी प्राकृत से जिस अपभ्रंश का उदय हुआ वह प्राच्य अपभ्रंश कहलाई। चौदहवीं शताब्दी तक आते-आते इसका भी युग बीत गया और इसके स्थान पर आई तीन आधुनिक भाषायें जिन्हें हम उड़िया, बंगला तथा असमी कहते हैं। जिस प्रकार हिन्दी का किंचित आदि रूप 'बौद्धगान और दोहा' में मिलता है, उसी प्रकार उड़िया, बंगला और असमी का आदि रूप भी इसमें मिलता है। उड़िया साहित्य के पंडित यह मानते हैं कि 'बौद्धगान और दोहा' उड़िया काव्य, काव्य-गंगा का गौमुख है, किन्तु आज जो उड़िया प्रचलित है उसकी धारा सरलादास की रचनाओं से प्रारम्भ होती है।

संस्कृत साहित्य में जो स्थान बाल्मीकि तथा हिन्दी साहित्य में चन्दवरदाई का है वही स्थान उड़िया साहित्य में आदि कवि सरलादास का है। इनका जन्म कटक जिले के कनकपुर नामक ग्राम में हुआ था। इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित निर्णय नहीं हो पाया है। डा० अर्धबल्लभ महन्ती के अनुसार आदि कवि सरलादास उत्कल नरेश कपिल नरसिंह देव (१३२८-१३५२ ई०) के समकालीन थे। इनके अनुसार सरलादास के ग्रन्थों में जो भाषा पाई जाती है, वे कपिल नरसिंह देव के समय में बोली जाती थी। प्रमुख आलोचक कृष्णचन्द्र पाणिग्राही ने भी लिखा है कि सरलादास नरसिंह देव के समय में जीवित थे, क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में उसकी राज्य विजयों का बार-बार उल्लेख किया है।

सरलादास के समय में संस्कृत का व्यापक प्रभाव था, किन्तु उन्होंने तुलसीदास की भाँति लोक भाषा में अपने ग्रन्थों की रचना की। इनकी भाषा संस्कृत से अप्रभावित शुद्ध उड़िया मानी जाती है। इनके काव्य में प्रयुक्त अनेक

शब्द आज प्रचलित नहीं हैं। विशिष्ट समालोचक गोपीचन्द शर्मा ने लिखा है कि उड़िया भाषा शैशव अवस्था में थी। उसे सरलादास ने परिपुष्ट कर यौवन के द्वार तक पहुंचा दिया इनके नाम के अनुसार इनकी भाषा भी सरल है। उड़िया साहित्य में ये जन-कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने तीन ग्रन्थों की रचना की--रामायण, महाभारत और भागवत। डा० अर्धबल्लभ महन्ती ने अपने ग्रन्थ 'उड़िया साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि उनकी आश्चर्यजनक उर्वर कल्पना, प्रभावशाली अभिव्यक्ति, समकालीन सामाजिक जीवन के चित्र, मल्लयुद्धों तथा युद्ध क्षेत्रों के सजीव, ओजपूर्ण वर्णन अप्रतिम हैं। कवि के युद्ध वर्णन की एक छटा इस प्रकार हैं—

अधरे रदन चपि, रे रे—कार करि
दुहे धरा धरि हुइ, हिले मरा मरि।

● ● ●

पदाघाते पृथितले, कंपें तिनि पुर
दुइ वीर गदाधर, करन्ति समर।
उठान्त पड़न्त पुणि, गड़ान्त महि रे
पृथ्वी कंपे दुहिंक, गदा अघात रे।

(अधर और दांतों को दबाकर, रे रे की आवाज कर, दो योद्धा आमने सामने लड़ते हैं, एक दूसरे पर वार करते हैं। ... उनके पदाघात से त्रिलोक कम्पित है, दो वीर गदायुद्ध करते हैं। कभी उठते हैं, कभी गिरते हैं, कभी लेट जाते हैं। इनके गदा आघात से पृथ्वी कम्पित है।)

महाभारत में कवि ने समाज तथा चरित्रों को ऐसे उड़िया रङ्ग में रङ्ग दिया है, जिससे युधिष्ठिर, अर्जुन, दुर्योधन द्रोपदी, गान्धारी प्रभृति ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे ये उड़ीसा के ही नर-नारी हैं। कवि सृष्टि की यही विशेषता है। कवि ने अपनी उर्वर कल्पना-शक्ति से दुष्ट शकुनि का जो चित्रण किया है उसके आगे शेक्सपीयर का जैगो फीका पड़ जाता है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से पता चलता हैं कि कवि को इतिहास, भूगोल, राजनीति, चिकित्सा, वास्तु, राज्य-शासन, मनोविज्ञान आदि का अच्छा ज्ञान था। कुछ विद्वानों ने इस ग्रन्थ को विश्व-कोष की संज्ञा दी है। छः शताब्दियाँ बीत जाने पर भी उड़ीसावासी इस ग्रन्थ को भुला नहीं सके हैं। श्रीयुत विजयचन्द्र मजूमदार ने अपनी पुस्तक टिपीकल सलेक्शन्स फ्राम उड़िया लिटरेचर भाग १ में लिखा है —

'यह अति ध्यान देने योग्य है कि इस उड़िया कवि ने बंगाल में ख्याति प्राप्त की और उसका महाभारत पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग से पहले ही बंगला में अनुवादित हो चुका था।'

उड़िया साहित्य में सरलादास का पूर्ववर्ती कोई कवि उल्लेखनीय नहीं है। उनसे पहले की कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी कुछ रचनायें मिलती हैं, जो इतिहास में 'कोइली साहित्य' के नाम से प्रसिद्ध हैं परवर्ती कवियों में शंकरदास, बलरामदास, जगन्नाथदास, जसुवन्तदास, अनन्तदास तथा अच्युतानन्द दास उल्लेखनीय हैं। इन कवियों का रचना काल १५वीं से १६वीं शताब्दी तक रहा। शंकरदास ने 'उषा विलास' की रचना की। इसमें श्रीकृष्ण लीला का वर्णन है। वस्तुतः यह ग्रन्थ मौलिक न होकर विश्वनाथ पाठजोशी कृत संस्कृत ग्रन्थ 'उषा विलास' का उड़िया रूपान्तर है। जगन्नाथदास ने भागवत, बलराम ने रामायण, अच्युतानन्द ने ब्रह्मशाँकुलि तथा अड़ाकार संहिता की रचना की। जैसा कि इन ग्रन्थों से पता चलता है, यह सभी वैष्णव कवि थे, किन्तु कुछ अंशों में बौद्ध धर्म के शून्यवाद तथा तन्त्रवाद से भी प्रभावित थे।

उड़िया काव्य का मध्ययुग उपेन्द्र भंज की रचनाओं से प्रारम्भ होता है। इनका रचना काल सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक माना जाता है। यह काल उड़िया साहित्य में भंजयुग के नाम से प्रसिद्ध है। भंज राजवंशी थे। ये गंजाम जिला स्थित घुमसर राज्य के राजा नीलकंठ भंज के ज्येष्ठपुत्र थे। इनके पिता तथा पितामह धनंजय भंज भी कवि थे। किन्तु जो ख्याति इन्हें मिली, वह इनके पिता और पितामह को नहीं। इनके सम्बन्ध में किसी कवि ने लिखा है—

जन्मे राजकुले वैभव कुले
अतुल सुख सदने

तेजिसे सम्भोग आरम्भिले जोग
वीणा पाणि आराधने ।

(इन्होंने वैभव तथा अतुल सुख से संपन्न राजकुल में जन्म लेकर भी राजसी भोगविलास को त्याग दिया और योग धारण कर सरस्वती की आराधना में जीवन विताया ।)

भंज ने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें वैदेही बिलास, लावण्यवती, रस पंचक, सुभद्रा परिणय, चित्र काव्य बन्धोदय, कोटि ब्रह्मांड सुन्दरी अधिक प्रसिद्ध है । भंज राम भक्त थे । वैदेही बिलास में राम कथा का ही चित्रण है । इसमें कवि ने ५२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है और सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति 'ब' अक्षर से प्रारम्भ होती है । अलंकारों का जितना अधिक प्रयोग इस ग्रन्थ में हुआ है, कदाचित् ही किसी अन्य ग्रन्थ में हो ।

एक उदाहरण इस प्रकार है--

विचारइ माल जमकरे कवि मने
बुले राम-राम-राम नेत्रि छिनि बने
बृहत भानु भानु-भानु प्रभा ताप नाहीं
बृत तमाल माला मालाति लता जाहीं
बहंहि निर्भर भर भर अविरत
बिशेष तरंग रङ्ग रङ्गनि सोभित
बही चन्द्र-चन्द्र-चन्द्र सीतल छुबात
बहे मन्द-मन्द-मन्द सुत करे रुत
बिनचे वन-वन-वन कुस कन जथा
बृष्टि मधुर मधुर-मधुर जे तथा ।
विभ्राजित भृङ्ग भृङ्ग भृङ्ग करे केलि
बनी-बनी बनिता की पुष्पाहार भड़ी ।

(कवि माल यमक में छन्द लिखने का विचार कर रहा है । सुन्दर रामचन्द्र मृगनयनी सीता को संग लेकर, जिस वन में विहार करते हैं, उस बन में तमाल वृक्षों पर मालती लतायें आच्छादित हैं । अतः सूर्य और दावानल का ताप उन्हें अनुभव नहीं होता । उस बन में तरङ्ग-मालिनी गिरि-निर्झरणी झर-झर करती प्रवाहमान है । प्रस्फुटित रङ्गीने कुसुम समूह शोभित हैं । समीर चन्दन, कर्पूर और जल की शीतलता को वहन कर बन में बह रहा है । कोकिल मधुर स्वरों में गा रही है । सघन मेघों से जैसे फुहार झरती है, वैसे ही उस बन में महुआ गाछ से मधु और पुष्प-पराग झर रहा है । भृङ्गराज वृक्ष से भ्रमर केलि कर रहा है । बन फूल ऐसे खिले हुए हैं मानों कोई सुन्दरी हास-परिहास कर रही है । वह बन नाना प्रकार के सुमनों से विमंडित शोभा धारण किए है ।)

लावण्यवती कवि का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है । इसमें सिंहलद्वीप की राजकुमारी लावण्यवती तथा कर्नाट देश के राजा चन्द्रभानु के संयोग वियोग की काल्पनिक कथा है । ग्रन्थ सुखांत है । 'रस पंचक' में रसों के आधार पर रचनायें हैं । 'सुभद्रा परिणय' का कथानक पौराणिक है । चित्र काव्य बन्धोदय जैसा नाम से ही विदित है 'चित्र काव्य' है । 'कोटि ब्रह्मांड सुन्दरी' लावण्यवती की भांति काल्पनिक प्रेमाख्यान है ।

उपेन्द्र काव्य में शब्दों की कठिनता के कारण भाव उपलब्धि में कठिनता होती है । वैदेही विलास' और 'कोटि ब्रह्मांड सुन्दरी' की भाषा अत्यंत कठिन है । इतनी कठिन भाषा में उड़िया में अन्य ग्रन्थ नहीं है । इस काल में उड़ीसा में ब्राह्मण धर्म की प्रधानता के कारण संस्कृत का प्रभाव था । कवि अपने काव्य को पंडितों में भी सम्मानित कराना चाहता था । अतः इन्होंने काव्य रचना के लिए अलंकार बहुल कठिन भाषा को अपनाया, किन्तु इनकी भाषा आचार्य केशवदास की भाषा के समान कर्ण कटु नहीं है । सरल भाव, कल्पना सौष्ठव, स्थायी भावों का विकास, वर्णन की स्वाभाविकता, संगीतमयता आदि कुछ ऐसे गुण इनके काव्य में मिलते हैं, जिन्होंने इनकी रचनाओं को अन्तःपुर तथा वीरांगनाओं से लेकर कृषकों और पंडितों तक प्रसिद्ध कर दिया । लोग इनके साहित्य की चर्चा करने में गौरव अनुभव करते थे । कवि की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि ये मूलतः रस राज श्रृंगार के कवि थे । अनेक वर्णनों में रीतिकालीन कवियों की भाँति अश्लील भी हो गये हैं ।

भंज की प्रसिद्धि के कारण उनके बहुत से अनुगामी हुए । इनमें देव दुर्लभदास ने 'रहस्य मञ्जरी' अभिमन्यु सामन्त सिंहार ने 'विदग्ध चिन्तामणि', दीनकृष्णदासने 'रसकल्लोल'

तथा भक्त चरण ने 'मथुरा मङ्गल' की रचना की है। ये सभी वैष्णव थे। इन्होंने अपने ग्रन्थों में राधा-कृष्ण की मधुरा भक्ति के बहाने शृङ्गारी भावना वासना को अभिव्यक्ति दी। लौकिक प्रेम और वाह्य सौंदर्य का अलंकारिक वर्णन किया। सात्विक सौन्दर्य का इनकी रचनाओं में सर्वथा अभाव है। प्रकृति का चित्रण उद्दीपक रूप में है। मध्ययुगीन इन कवियों में लक्षण ग्रन्थों की प्रधानता रही। नायिका भेद इनका प्रेरणा स्रोत था। राधा-कृष्ण के मिलन का एक चित्र 'विदग्ध चिन्तामणि' में इस प्रकार है—

प्राणकू प्राण मनकू मन
रूपधन सगे रूपधन
बदने बदन नयने नयन
अधरे अधर आस्वादन से
हृदये हृदय
बाँहें बाँहें पादे पादे नाहीभेद से।

उड़िया कविता का आधुनिक काल फकीर मोहन सेनापति (१८४३-१९१८ ई०) की रचनाओं से प्रारम्भ होता हैं। इस समय तक पश्चिमी प्रभाव बङ्गाल के माध्यम से उड़ीसा में पहुंच चुका था, जिसके फलस्वरूप कविता के विषय और शैली में क्रांति हुई, जो उसे मध्ययुगी वातावरण से पृथक् करती है। राजनैतिक तथा राष्ट्रीय चेतना की रश्मियाँ उस समय लोक मानस में प्रवेश कर रही थी। सेनापति उन रश्मियों के प्रथम वाहक थे। वे कई भारतीय भाषाओं के पंडित थे। इन्होंने मूल संस्कृत से उड़िया में रामायण और महाभारत का अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त गीत काव्य, भजन, खन्ड काव्य, हास्य तथा व्यंगपरक रचनाएँ लिखीं। महात्मा बुद्ध पर एक प्रबन्ध काव्य का प्रणयन किया। फकीर मोहन का दूसरा रूप उपन्यासकार है, किन्तु वह इस लेख का विवेच्य विषय नहीं है। फकीर मोहन की कविता ने जो मोड़ लिया, उसका स्पष्ट रूप हमें राधानाथ राय (१८४२-१९०८) और मधुसूदन (१८५३-१९१२) की रचनाओं में मिलता है। मधुसूदन के सम्बन्ध में कवि-आलोचक मायाधर मानसिंह ने लिखा है। कवि ने ईश्वर, नैतिक जीवन तथा मानवीय आत्मा के सर्वव्यापी स्वर्गिक मिलन को परिष्कृत अभिव्यक्ति दी है। उसने हिम मंडित हिमालय के उच्च शिखरों से लेकर दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं तक में ईश्वर के दर्शन किए हैं। उन्होंने किसी साहित्यिक गौरव का मिथ्यारोपण नहीं किया और न किसी प्रकार के गुरूडम को प्रश्रय दिया। उनके साहित्य के अधिकाँश भाग आत्मपरक गीतों, वीर गीतों, सम्बोधन गीतों तथा चतुष्पदियों से भरा है। वे समस्त रचनाएँ उच्चतर जीवन के वातास में साँस ले रही हैं। नदी-प्रति, आकाश-प्रति, ध्वनि, हिमाचल पर सूर्योदय आदि रचनाओं को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

राधानाथ का समय उड़िया साहित्य में 'राधानाथ युग' के नाम से अभिहित है। राधानाथ ने उड़ीसा के वास्तविक जीवन को अभिव्यक्ति दी। उड़िया कविता के नये क्षितिज खोले। सरल भाषा, स्वाभाविक अलंकरण, साधारण वस्तु तथ्य, शब्द तथा अर्थ की एकरूपता को राधानाथ के काव्य में महत्व मिला। जिसने मध्ययुगीन (रीतिकालीन) काव्य परम्परा को पूर्णतया खण्डित कर दिया। राधानाथ के पूर्ववर्ती उड़िया कवि काव्य उपादान के लिए मथुरा, वृन्दावन, द्वारका अयोध्या, कुरुक्षेत्र, हिमालय और गङ्गा-जमुना के तटों पर भटकते रहे। राधानाथ प्रथम कवि था, जिसने उड़ीसा के गौरवमय प्राचीन इतिहास को वाणी दी। उसने कहीं अन्यत्र न भटककर वहाँ के हरितवनों, विशाल झीलों, सुन्दर पर्वत शृंखलाओं, मनोरम सागर तटों, कलकल करते नदी-नालों ऊँचाइयों से गिरते पारदर्शी झरनों के गीत गाये, जिसे पढ़कर उड़ीसा ने अपने जातीय जीवन को पहचाना। चिलिका एक ऐसी ही रचना है इ में प्राकृतिक सौंदर्य तथा जातीय गरिमा की झाँकी है। चिलिका उड़ीसा की एक विशाल झील है जो सौंदर्य और धनधान्य की प्रतीक मानी जाती है। रचना के प्रारम्भ में ही कवि ने लिखा है—

उत्कल-कमला विलास दीर्घिका
मराल मालिनी नीलाम्बु चिलिका
उत्कलर तुहि चारु अलंकार
उत्कल भुवने सोभार भंडार।

संस्कृत साहित्य में जिस प्रकार कालिदास का प्रकृति-चित्रण समानता नहीं रखता। उसी प्रकार उड़िया साहित्य में

राधानाथ का प्रकृति चित्रण बेजोड़ है। कवि मूलतः प्रवन्ध-कार है कुछ गीति रचनाएँ भी लिखी है। इनकी रचनाएँ चिलिका, महायात्रा, चन्द्रभागा, नदी केश्वरी, महेन्द्रगिरि, उर्वशी, बेणी संहार, पार्वती, वाणहरण आदि उल्लेखनीय हैं।

नन्द किशोर और गंगाधर महर राधानाथ की परम्परा के पारवर्ती कवि हैं। नन्द किशोर के गीत लोक परम्परा और लोक धुनों पर आधारित हैं। इनकी रचनाओं में गाँवों के विविध चित्र अंकित हैं, जो अपनी सजीवता के कारण लोक मानस में रमे हुये हैं। महर अपनी काव्य पुस्तक तपस्विनी' के कारण लोकप्रिय है। इसमें कवि ने सीता का आदर्श नारी के रूप में चित्रण किया है। इस रचना में कवि का चिन्तात्मक तथा संगीतात्मक भाषा शैली पर असाधारण अधिकार देखने को मिलता है।

पं० गोपवन्धु (१८७७-१९२८ ई०) के समय में सत्यवादी स्कूल नाम से साहित्यकारों का एक दल सामने आया, जिसमें स्वयं गोपवन्धु तथा उनके सहयोगी सम्मिलित थे। एक प्रकार के सत्यवादी स्कूल पुनरुदयवादी था जिसमें राष्ट्र के प्रति उत्सर्ग-भावना, सादा जीवन उच्च विचार तथा वैदिक संस्कृति के पुनरुत्थान के प्रयत्न सन्निहित थे। गोपवन्धु असहयोग आन्दोलन के नेता भी थे। बन्दीगृह में लिखा उनका कारा-कविता ग्रंथ उड़िया साहित्य की अमूल्य निधि है। पंडित नीलकण्ठ दास और गोदावरी मिश्र गोपवन्धु के सहयोगी थे। दास ने 'कोणार्क' नामक एक अत्यन्त सुन्दर काव्य रचना से तथा मिश्र ने राष्ट्रीय गीतों से उड़िया काव्य की वृद्धि की।

सत्यवादी स्कूल की परिसमाप्ति पर 'सबुज युग' (हरा युग) नाम से एक नई धारा चली। इसके प्रवर्तन का श्रेय सची राउत राय को है। राय के अतिरिक्त अन्नदाशंकर राय और वैकुण्ठराय पटनायक इस धारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचनाओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव है। इन कवियों ने भावपक्ष तथा कलापक्ष को एक नई दिशा दी। सची राउतराय की रचना की बानगी इस प्रकार है —

हठात मने पड़िया
सहस्त्र फाल्गुन थिला तुमरि आखिरे
सहस्त्र जनहर हस थिला तमरि ओठरे
तथापि मूँ भावथिली पीई सारिछी सबू राम
पड़ी रहिछी शून्य कलस

• • •

आज कहे मूँ निजेकू निज डाकि
सबू विराट फाँकी
दीर्घ जुगर विच्छेद अवसाद
कण तुम्हरि प्रेमर अनुवाद

(अचानक याद आता है, तुम्हारी आँखों में सहस्त्रों फागुन थे। तुम्हारे होठों पर सहस्त्रों चन्द्रमाओं की हँसी थी, तो भी मैंने सोचा कि मैंने सब रस पी लिया है और केवल शून्य कलश पड़ा रह गया है। आज मैं स्वयं से कहता हूँ, यह सब विराट वंचना है। दीर्घ युगों का विच्छेद और अवसाद क्या तुम्हारे प्रेम का अनुवाद है ?)

जिस प्रकार हिन्दी में छायावाद के उन्नायक ही प्रगतिवादी आन्दोलन के प्रवर्तक बन बैठे, उसी प्रकार सबुजवाद का ह्रास होने पर सची राउत राय, अनन्त पटनायक, मनमोहन मिश्र आदि कम्युनिष्ट विचार-धारा से प्रभावित हो, प्रगतिवादी खेमें में आ गए। राधा मोहन गडनायक और डा० मायाधर मानसिंह इन वादों की सीमाओं से मुक्त रहने वाले प्रमुख कवि है। गडनायक सौन्दर्य, प्रेम तथा राष्ट्रीय भावनाओं के कवि है। इनकी रचनाओं पर गाँधीवाद का प्रभाव है। गडनायक संचयन में इनकी कविताएँ संग्रहीत है। डा० मानसिंह भी प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। धूप, हेमपुष्प, अक्षयता आदि में इनकी काव्य रचनाएँ संकलित हैं। नरेन्द्र शर्मा का 'प्रवासी के गीत' जिस प्रकार हिन्दी भाषी तरुण वर्ग में बड़े उत्साह से पढ़ा जाता है, उसी प्रकार मानसिंह की 'धूप' अपनी रोमांटिक भावना के कारण उड़िया तरुण वर्ग में प्रसिद्ध है। यह उदाहरण दृष्टव्य है -

एहि सहकार तले
सेसिन प्रियार कर कंकन भिड़ि थिला मोर गले
चाँदनी राति उठि थिला माती मलय परस पाइ
बन पाखी दुरे करुणा मधुरे जाउ थिला किवागाई
ज्योत्सना ओ छाया रचि थिला माया चित्र ए तरुतले

सहचरि मोर प्रणय विभोर भिड़ि थिला मोर गले एह सहकार तले ।

(इसी आम्र वृक्ष के नीचे उस दिन प्रिया के कर कंकन मेरे गले से लिपटे थे । मलय का स्पर्श पाकर चांदनी रात उस दिन मस्त थी । पता नहीं वन पाखी कहीं दूर करुण मधुर स्वर में क्या गा रहा था ? तरु चले चाँदनी और छाया ने मिलकर माया चित्र बना लिया, मेरी प्रिया ने प्रणय विभोर हो मेरे कण्ठ में बाहुपाश डाल दिया । इसी आम्र वृक्ष के नीचे —)

उड़िया कविता की अधुनातम धारा नई कविता है, जिसके पोषकों में दुर्गाचरण परिडा, राजेन्द्र किशोर पण्डा, मनोज-दास, वान्छानिधि महन्ती, चौधरी हेमकान्त मिश्र, विनोद चन्द्र नायक, रत्नाकर पाढ़ी, व्रजनाथरथ प्रभृति के नाम हैं । नई कविता के सम्बन्ध में आज हिन्दी में जो परिचर्या छिड़ी है, वह यहाँ भी विद्यमान है । डा० मायाधर मान-सिंह जैसे प्रसिद्ध कवियों तथा आलोचकों से उसे सहानुभूति नहीं मिल रही । इसमें कुछ दोष नये कवियों का भी है, जो नये भाव बोध के नाम पर अपनी रचनाओं में अस्पष्टता को प्रश्रय दे रहे हैं, किन्तु इसमें भी कुछ तो ऐसा नहीं है, जिसकी उपेक्षा की जा सके । इस सम्बन्ध में प्रभात कुमार त्रिपाठी का विचार ध्यान देने योग्य है : उड़िया की नई कविता वस्तुतः अभी संक्रमण काल से गुजर रही है, किन्तु उसकी वर्तमान सूक्ष्म स्थिति से ही उसकी आगत सम्भाव-नाओं का अनुमान सरलता से लग जाता है । उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है, नये युग के नये मानव व्यक्ति को अपने सहज, सरल, स्वाभाविक यथार्थ और लघु रूप में देखने का आग्रह ।

उर्दू काव्य का संक्षिप्त इतिवृत्त

प्रकाश पण्डित

हिन्दी काव्य की तरह उर्दू शायरी का नवीन काल भी १८५७ ई० की क्रान्ति के बाद शुरू होता है। इससे पूर्व दो सौ वर्षीय उर्दू शायरी अपवादों को छोड़ कर बादशाहों के कसीदों (प्रशंसा-काव्य) सूक्तिमाला और इश्किया गजलों तक ही सीमित थी। मानसिक विलास प्रियता, नैराश्य, पलायन, व्यक्तिवाद, आध्यात्मिकता, अवसन्नता इत्यादि प्रवृत्तियों को विभिन्न 'रदीफों' और काफियों' में व्यक्त करने और शाब्दिक बाजीगरी दिखाने को ही (जिसे 'नाजुक-ख्याली' कहा जाता था) काव्य की पराकाष्ठा माना जाता था। ऐसा होना एक प्रकार से अनिवार्य भी था क्योंकि जब तक शांत तथा स्थिर सामाजिक जीवन में भौतिक तथा चिंतनात्मक परिवर्तन उत्पन्न न हों, साहित्य के लिए भी, जो जीवन का प्रति रूप है, नये मार्ग नहीं खुलते। ऐसे परिवर्तनों के लिए किसी बड़ी सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है जो १८५७ ई० से पूर्व भारत के दीर्घ जागीरदारी काल में कहीं नजर नहीं आती। परिस्थितियों में परिवर्तन अवश्य हुए। राज्य बदलते रहे, खून की नदियाँ भी बहीं किन्तु इन समस्त बातों का सामूहिक सामाजिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वह जहाँ था, वहीं रहा। ऐसी स्थिति में, जब कि देश का सामाजिक जीवन शताब्दियों तक एक विशेष वातावरण में सीमित और एक विशेष डगर पर चुपचाप चलता रहा हो, साहित्य तथा काव्य में अपेक्षित उत्थान की तलाश व्यर्थ होगी। प्राचीन उर्दू शायरी को यदि माशूक की जुल्फों से उसे जाने और सीने पर नजरों के तीर खा कर हाय-तौबा मचाने से फुर्सत न मिली तो इसमें उनका उतना दोष नहीं जितना उस काल की व्यवस्था का था। वह व्यवस्था ही ऐसी थी जो शायर को जीवन की मूल समस्याओं के प्रति विमुख होकर 'मय-ो-मीना' में डूबने, मस्त अलस्त रहने या अधिक से अधिक 'खुदा से लौ लगाने' की प्रेरणा देती थी। अतएव जो शायर राजदरबारों की हाजिरी में थे वे

> गर यार मय पिलाये, तो फिर क्यों न पीजिये,
> जाहिद नहीं, मैं शैख नहीं, कुछ वली नहीं।
>
> —'इन्शा'

की रट लगाते रहे और जिनकी रसाई दरबारों तक न हो सकी, आर्थिक दरिद्रता ने उन्हें निराशावादी बना दिया और जीवन उनके समीप 'रात को रो रो सुबह करने' और 'दिन को ज्यों त्यों शाम करने' का नाम रह गया और यह सिलसिला इतनी दूर चला, इतना शक्तिशाली हो गया कि अठारहवीं सदी के मध्य में जब 'नजीर' अकबराबादी ने शायरी की इन प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह किया, शायरी को नवाबों की विलासितापूर्ण महफिलें और नींद की पींग में डूबे शायरों की पकड़ से निकाल कर बीच चौराहे में खड़ा करने का प्रयत्न किया और—

> टुक हिर्सो हवा को छोड़ मियाँ,
> मत देश-विदेश फिरे मारा!
> कज्जाक[1] अजल[2] का लूटे है,
> दिन रात बजा कर नक्कारा।

---

[1] —डाकू।
[2] मृत्यु।

क्या बधिया, भैंसा, बैल, शुतर,
क्या गउएँ पल्ला सर भारा।
क्या गेहूँ, चावल, मोठ मटर,
क्या आग, धुआं और अंगारा।
सब ठाठ पड़ा रह जायगा जब,
लाद चलेगा बंजारा।

ऐसे शेर कह कर मनुष्य और उसकी सामाजिकता को काव्य-विषय बनाया तो लकीर के फकीरों ने उन्हें बाजारू और घटिया शायर कह कर नजर-अंदाज कर दिया। यहाँ तक कि उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में जब 'गालिब' ने गजल के 'तंग दामन' को फैलाने और उसमें दार्शनिकता समाने की कोशिश की तो उन्हीं महानुभावों ने उन पर मोहमलगो (अर्थ हीन शेर कहने वाला) का आरोप लगाया और चौथाई सदी बाद तक --

रुखे रोशन[1] के आगे शम्यअ,
रख कर वो ये कहते हैं।
उधर जाता है देखें या,
इधर परवाना आता है।

ऐसे काव्य को ही महान काव्य का दर्जा देते रहे।

१८५७ ई० की असफल क्रान्ति के बाद भारत की राजनीति में असाधारण और मौलिक परिवर्तन हुए। शताब्दियों की जागीरदारी व्यवस्था पतनशील हुई और उसके स्थान पर पश्चिम से आई हुई औद्योगिक तथा व्यापारिक व्यवस्था उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। सामान्य राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों से सामाजिक जीवन तथा मानव विचारों में भी परिवर्तन होने लगे। जीवन की जर्जर परम्पराओं पर कुठाराघात हुआ, नए ढंग से वर्गीकरण हुआ और मध्यम वर्गीय लोगों ने पश्चिमी विद्या-विज्ञान को अपनाना शुरू किया। प्रत्यक्ष है कि इस सार्वभौम परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर होना भी अनिवार्य था। इसी सामाजिक परिवर्तन ने कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी जन्म दिया जो चैतन्य रूप से साहित्य तथा काव्य को बदलती हुई परिस्थितियों के साथ-साथ चलाना चाहते थे। उर्दू के जिन महान लेखकों और शायरों ने उस समय परिवर्तनशील परिस्थितियों को अंगीकार किया और विकासोन्मुख जीवन का साथ दिया उनमें सर सय्यद, 'हाली', 'आजाद' और 'शिबली' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १८६७ ई० में 'आजाद' ने सर्व प्रथम उर्दू शायरी को 'नज्म' नामी काव्य-रूप से परिचित कराया और लाहौर में कर्नल हालरायड (डायरेक्टर शिक्षा विभाग पंजाब) की सहायता से ऐसे मुशायरों की नींव रखी जिनमें शायर को गज़ल का 'मिसरा तरह' देने के बजाय नज्म के लिए कोई उपयोगी विषय दिया जाता था। स्वयं 'आजाद' ने प्राकृतिक दृश्यों पर बहुत सी नज्में लिखीं। उनके सम्मुख दो मौलिक सिद्धांत थे। एक तो काव्य विषय का अनुक्रम और दूसरे 'हुस्न' इश्क की तंग गली से निकल कर अन्य सांसारिक विषयों का प्रयोग। लेकिन 'आजाद' का काम अधूरा रहता यदि इस आन्दोलन का नेतृत्व 'हाली' अपने हाथ में न लेते। हाली साहित्य द्वारा एक उद्देश्य सिद्ध करना चाहते थे और निःसन्देह उन्होंने इससे बहुत महत्वपूर्ण बल्कि महान उद्देश्य सिद्ध किया। 'मुसद्दस' जैसी कल्याणकारी नज्म लिखकर उन्होंने प्राचीन शायरी के कलेवर को ही नहीं उसकी आत्मा को भी बदल डाला और फिर 'मुकदमा शेर' -ो शायरी जैसा महान आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखकर ही रही सही कसर पूरी कर दी। शायरी को दैवीय प्रेरणा और शायर को अलौकिक प्राणी मानकर प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हो रहने वाले लोगों को पहली बार ऐसी तर्क पूर्ण बातों से चौंकाया कि :—

'कायदा है कि जिस कदर सोसाइटी के ख्यालात, उसकी रायें, उसकी आदतें, उसकी खाबतें (रुचियां) उसका मेलान (प्रवृत्ति) और मजाक बदलता है, उसी कदर शे'र की हालत बदलती रहती है; और यह तब्दीली बिल्कुल बेमालूम होती है, क्योंकि सोसाइटी की हालत देखकर शायर कसदन (संकल्प करके) अपना रंग नहीं बदलता बल्कि सोसाइटी के साथ-साथ वह खुद भी बदलता है।'

(मुकदमा शे'र-ो-शायरी)

अधिक विस्तार में न जाकर 'हाली' के काम को समझने के लिए यह कह देना पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी काव्य को रीति काल की दलदल से

[1]—प्रकाशमान मुखड़े।

निकालकर उपयोगिता तथा राष्ट्रवाद की राह पर लगाया था, उसी प्रकार 'हाली' ने उर्दू की कृत्रिम इश्किया शायरी की चूलें हिला दीं और न केवल अपने काल के शायरों और साहित्यकारों का बल्कि आने वाली पीढ़ी का भी पथ-प्रदर्शन किया।

'हाली' के बाद उर्दू साहित्य में एक अन्तिम काल आता है जिसमें पश्चिमी साहित्य से जानकारी बढ़ी, पश्चिम का काव्य-साहित्य चूंकि अपने जागीरदारी काल की मंजिलों से गुजरकर बहुत आगे निकल चुका था, इसलिए उससे प्रभावित होने वाले उर्दू शायरों ने विषम-वस्तु के क्षेत्र को विस्तृत करने के साथ-साथ कलात्मक परिपक्वता भी प्रदान की। इस प्रसङ्ग में अजमत उल्ला खाँ का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने उर्दू शायरी में नये छन्दों की आवश्यकता, अंग्रेजी काव्य रूपों के प्रसार भाषा में हिन्दी शब्दों तथा प्रयोगों के समावेश से समृद्धि पैदा करने और विचार और भावों के नैसर्गिक प्रकटीकरण पर जोर दिया तथा उर्दू शायरी में पहली बार गजल के कल्पित 'माशूक' को हाड़-मांस प्रदान करके उसके लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग किया।[1] इससे पूर्व माशूक के लिए पुल्लिङ्ग इस्तेमाल होता था जिसे प्रत्यक्ष रूप से फारसी से लिया गया था। लेकिन अजमत उल्ला की शायरी केवल रोमांटिक यथार्थवाद तक ही जो अपने आप में बहुत बड़ा कारनामा था। सीमित रही। सामूहिक रूप से आधुनिक उर्दू शायरी को पाताल से निकाल कर आकाश तक पहुंचाने का श्रेय 'इकबाल' के सिर आता है।

'इकबाल' के साथ-साथ या कुछ पहले 'अकबर' इलाहाबादी, 'चकबस्त', 'हसरत' मोहानी, 'सरवर' जहाँबादी, 'इस्माइल' मेरठी इत्यादि अपने समय के प्रमुख शायरों ने साहित्य और समाज तथा साहित्य और राजनीति के संबंध को काफी सुदृढ़ किया लेकिन उनमें से अधिकाँश की नज्में राजनीतिक नारों से आगे न बढ़ सकीं। 'इकबाल' की शायरी का प्रारम्भ भी यद्यपि राजनीतिक नज्मों से हुआ किन्तु अपने समकालीन शायरों की अपेक्षा उनका राजनीतिक बोध काफी आगे था। उन्होंने भारतीय राजनीति के लगभग समस्त पहलुओं को अपनी शायरी में स्थान दिया—लेकिन यद्यपि चिन्तन के बाद इसी विशेषता ने उनमें गहराई पैदा की और वह न केवल अपने युग के महान शायर बने अपितु एक दार्शनिक भी। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के गीत गाए, देश की मिट्टी का कण-कण उन्हें देवता नजर आया। देश में एक 'नए शिवाले' की नींव रखने के उन्होंने मनसूबे बांधे. भारतवासियों की मौलिक समस्याओं पर गहरी दृष्टि डाली और श्रम जीवियों को जागरूक होने का संदेश दिया। १९१७ ई० में जब रूस में महान् क्रांति हुई और संसार के छठे भाग में श्रमिक वर्ग ने साम्राज्य और पूँजीवाद का तख्ता उलट दिया तो 'इकबाल' ने इसे 'बतने गेती' (जगत की कोख) से 'आफताबे ताजा' (नव प्रभात) का नाम दिया और इसके साथ ही उस रोमांटिक क्रांतिवाद की परिपाटी पड़ी जो 'जोश' मलीहाबादी के हाथों निखरती-सँवरती आधुनिक काल के प्रगतिशील शायरों की सम्मति तथा काव्य विषय बनी। 'हाली' और 'इकबाल' के बिना आधुनिक उर्दू शायरी को आज की मंजिल पर पहुंचने के लिए शायद बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती।

१८५७ ई० के बाद आधुनिक उर्दू शायरी देश तथा मानव प्रेम और साम्राज्य विरोध की मंजिलें तय करती हुई जब प्रथम महायुद्ध के बाद नये क्रान्तिकारी मोड़ पर पहुंची तो एक बार पुनः उसमें गतिरोध उत्पन्न हुआ। नई राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ शायरों से कुछ ऐसी माँगें करने लगीं जिन्हें स्वंय 'इकबाल' भी पूरा न कर सके (और उन्होंने इस्लाम की दुनिया में जा शरण ली।) देश में स्वतन्त्रता का आन्दोलन इतना प्रबल हो गया और किसानों और मजदूरों के संगठन और विद्रोह के भय से साम्राज्ञी अत्याचार इतना बढ़ गया कि राजनीतिक नेताओं की भाँति लेखक तथा कवि भी इस असमंजस में पड़ गए कि आगे बढ़ें या वहीं रुक जाएँ—ऐसे नाजुक, महत्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक मोड़ पर कथा साहित्य में प्रेमचन्द और काव्य साहित्य में 'जोश' मलीहाबादी उर्दू साहित्य के नेतृत्व के लिए आगे बढ़े। प्रेमचन्द ने साहित्य में यथार्थवाद की नींव डाली और 'जोश' ने रोमांसवाद को आगे बढ़ाया और अपनी एजी-

[1]—इस प्रसंग में आगे चलकर 'अख्तर' शीरानी ने उर्दू शायरी के माशूक पर 'सल्मा' 'अजरा' आदि स्त्री-नामों की अमिट मुहर लगा दी।

टेशनल नज्मों द्वारा अंग्रेजी शासन और उसके अन्याय तथा अत्याचारों पर आक्रमण किए। स्वतन्त्रता संग्राम में मर मिटने के लिए नौजावानों को ललकारा। हर प्रकार की राजनीतिक समझोते बाजी पर लानतें भेजीं और साम्यवाद के उगते हुए सूरज की ओर ऐसा स्पष्ट संकेत किया कि उनके बाद आने वाला प्रत्येक प्रगतिशील शायर उस सूरज के प्रकाश में नहा गया। इन्हीं दो महान् साहित्यकारों के नेतृत्व में लेखक और शायर एक यात्री दल का रूप धारण कर गए और इस दल ने १९३५ ई० में 'प्रगति शील-लेखक-संघ की बुनियाद डाली।

प्रगतिशील लेखक संघ की बुनियाद डालने वाले और उसके घोषणापत्र के प्रस्तावक सैय्यद सज्जाद जहीर, डाक्टर मुल्कराज आनन्द आदि ऐसे तरुण परन्तु पूर्ण रूप से शिक्षित साहित्यकार थे जिन्होंने अपने प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य और उसकी धाराओं का भी गहरा अध्ययन किया था। 'साहित्य को जीवन का प्रतीक' बनाने के साथ-साथ वे उसे 'भविष्य के निर्माण का प्रभाव शाली साधन' भी बनाना चाहते थे और चाहते थे कि 'भारत का नया साहित्य हमारे जीवन की मौलिक समस्याओं को अपना विषय बनाए ये भूख, निर्धनता, सामाजिक विषमता तथा परतन्त्रता की समस्याएँ हैं।'

यह आवाज इतनी प्रभावशाली और सक्रिय थी कि न केवल तरुण शायर और लेखक इससे प्रभावित हुए बल्कि उस समय के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों ने भी इसका स्वागत किया। काव्य साहित्य को उस समय तक 'आजाद', 'हाली', 'शिबली', 'इकबाल' और 'जोश जो चिंतनशीलता प्रदान कर चुके थे, नई पौध के शायरों ने उसे और भी विशाल किया और आज जब हम १९३५ ई० के बाद की उर्दू शायरी का अवलोकन करते हैं तो इसकी असाधारण प्रगति पर आश्चर्य किए बिना नहीं रह सकते। आज की उर्दू शायरी को किसी कोण से देख लीजिये; वह संसार की उन्नत से उन्नत भाषा के काव्य-साहित्य का मुकाबिला कर सकती है।

इस दिशा में आधुनिक काल के जिन प्रतिभाशाली शायरों ने उर्दू शायरी को अपने खूने-जिगर से सींचा उनमें सर्वश्री 'फिराक' गोरखपुरी, 'जिगर' मुरादाबादी (स्वर्गीय) फैज अहमद 'फैज', मजाज (स्वर्गीय) 'जज्बी', सरदार जाफरी, 'हफीज' जालंधरी, 'अख्तर' शीरानी (स्वर्गीय) 'साहिर' लुधियानवी, 'कतील' शिफाई, न० म० 'राशिद', मख्दूम' मुहीउद्दीन, 'शकील' बदायुनी, 'मजरुह' सुलतानपुरी, 'अदम', जा निसार 'अख्तर', अहमद 'नदीम' कासमी, अख्तर-उल इमान, यूसुफ 'जफर' क्यूम 'नजर' इत्यादि सैंकड़ों शायरों का काफिला है जो निर्धारित मंजिलों और स्थापित मील स्तंभों को पीछे छोड़ता आगे और आगे बढ़ता चला जा रहा है। क्योंकि--

सितारों से आगे जहाँ और भी हैं,
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं।

पंजाबी कविता का इतिहास

•

शमशेर सिंह 'अशोक'

पंजाब अथवा पंचनद प्रदेश आर्य सभ्यता तथा संस्कृति का मूल स्रोत एवं आदि स्थान है। इसीलिए भारतीय साहित्य में पंजाबी भाषा तथा साहित्य का विशेष महत्व है। समय के दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो हम पंजाबी कविता के इतिहास को मुख्यतया पांच भागों में बाँट सकते हैं—[१] आदि काल निकास तथा विकास (लगभग प्रथम शताब्दी से १४६९ ई० तक), [२] पूर्व मध्यकालः सिक्ख गुरु और उस समय की विविध विचार धरायें [सन् १४६९ से १७०८ ई० तक] [३] उत्तर-मध्य काल मुगल साम्राज्य का पतन [सन् १७०९-से १८०० ई० तक] [४] सिक्ख राज्य १८०१-१८४९ ई० तक] [५] अंग्रेजी राज्य का आदि अन्त आधुनिक काल [सन् १८५० से १९४७ ई० तक] और [६] स्वाधीनता का युग [१९४७-१९६४] इस काल-विभाजन के अनुसार पंजाबी कविता के आधुनिक युग की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं— परम्परावादी कविता, प्रयोगवादी कविता, उपयोगवादी कविता, रहस्यवादी कविता, छायावादी कविता, स्वच्छन्दता-वादी कविता, प्रतीकवादी कविता, और प्रगतिवादी कविता। अब हम उपर्युक्त काल-विभाग को सम्मुख रखते हुए पंजाबी कविता का क्रमशः संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

आदि काल (निकास तथा विकास)

पंजाबी भाषा का निकास तथा विकास पश्चिमोत्तरीय प्रकृति अथवा अपभ्रंश से हुआ है। इस पश्चिमोत्तरीय प्रकृति अथवा अपभ्रंश को सुप्रसिद्ध भाषातत्वज्ञ तथा अन्वेषक सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' अथवा 'Linguistie survey of india' के प्रथम भाग में तृतीय प्रकृति अथवा अपभ्रंश के नाम से अभिहित किया है। संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार महाकवि भास, कालिदास, विशाखदत्त, शूद्रक आदि ने अपने नाटकों में और आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण 'सिद्ध हैम शब्दानुशासन' में इस तृतीय प्राकृत अथवा अपभ्रंश के कतिपय उदाहरण, जो पंजाबी भाषा के ही पुरातन रूप हैं, इतस्ततः उद्धृत किये हैं, जैसे कि—

> वायसु उड्डावन्ति अर पिउ दिट्ठउ सह सत्ति।
> अद्धा वलया मुइ गया, अद्धा फुट्ट तड़ति॥
> पुत्तें जाएँ कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मएणु।
> जा वप्पी की मुंहड़ी चम्पिज्जइ अवरेणु॥
> (प्राकृत व्याकरण)

न केवल आचार्य हेमचन्द्र ने ही इस प्रकार के उदाहरण दिए हैं अपितु तत्सामयिक अन्य जैन कवियों ने भी इस प्रकार के दोहे लिखे हैं जो शब्द योजना की दृष्टि से प्राचीन पंजाबी के ही पूर्व रूप हैं जिस तरह कि मुनि रामसिंह पाहुड़दोहा में लिखते हैं—

> मुंडिय मुंडिय मुंडिय,
> सिरु मुंडिउ चित्तु ण मुंडिया।
> चित्तहं मुंडण जिं कियउ,
> संसारहं खंडण तिं कियउ॥१३५॥
> हउं सगुणी पिउ णिग्गुणउ,
> णिल्लक्खण णीसंग।

राकहं अंग वसन्तयहं,
मिलिहु ण अंगिहि अंग ॥१००॥
—पाहुड़ दोहा

इसी तरह संस्कृत नाटककारों में से भी राजा शूद्रक आदि ने कुछ ऐसे ही प्रमाण दिये हैं, जैसे कि मृच्छकटिक के एक-दो वाक्य हैं—

जइ मम वअणं सुणी अदि।
—यदि मेरे बचन सुने जाते।

शिल मुंडिद तुण्ड मुंडिदे,
चित्त ण मुंडिद कीश मुंडिदे ?

(अर्थात्—शिर मूंड़ दिया, तुण्ड मूंड़ दिया, पर यदि चित्त न मूंड़ा तो क्या मूंड़ा ?

इन अपभ्रंश काव्य-कृतियों की तरह १२वीं शताब्दी के राजस्थान के ग्राम्यगीत 'ढोला मारु रा दूहा' में भी इसी तरह के पंजाबी भाषा के चिर परिचित रूप यत्र-तत्र पाये जाते हैं, जैसे कि—

ढाढी हेक संदेसड़ो लग ढीले पहुँचाय।
जोबन जाय ग्राहुणो, वेगे रउ धरि आय॥
सी आलै तौ सी पड़ै, ऊन्हालै लू वाय।
बरसालै मुइं चीकणी, चालण रूत्तत काइ॥

'ढोला मारु रा दूहा' के अतिरिक्त महाराष्ट्र तथा राजस्थान के वीर रसात्मिक पवाड़े, जिनमें से पञ्जाबी पउड़ी (चौड़ी अथवा पवड़ी का जन्म हुआ और इसी समय के सिद्ध योगियों की आध्यात्मक काव्य-रचनाओं के राग गुण्ड (गोंड), रामग्री (रामकली), कालंगड़ा, अनासी (धनासरी), आसावरी, सबद-सलोक, प्राण सांकली (प्राण संगली) आदि पदों का, जिन का अनुसरण पंजाब के अन्य सन्त-भक्त कवियों तथा सिक्ख गुरुओं ने अपनी बानी में किया पंजाबी कविता के क्रमिक विकास का एक प्रमाण है।

सिक्ख योगियों अथवा नाथों का सम्प्रदाय, जो कन्नफटा नाम से प्रसिद्ध है, बौद्ध धर्म की महायान शाखा का ही एक विकृत रूप है। यह सम्प्रदाय, जिसका पंजाब के साथ घनिष्ठतम सम्बन्ध रहा है, प्रसिद्ध योगी मत्स्येन्द्रनाथ अथवा मीन पा सिद्ध ने कायम किया था। इन योगियों की आध्यात्मिक काव्य-रचनाएँ, जिनकी कुछ-कुछ झलक श्री गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत सिद्ध गोष्ठि (राग रामकली महला १ नामक वाणी से स्पष्ट रूप में मिलती है, भाषा विज्ञान के दृष्टि-कोण से बड़ी रहस्यात्मक हैं। सिद्धों की बानी, जिसमें पुरानी राजस्थानी, रेखता आदि सभी भाषाओं का सम्मिश्रण है, अधिकांशतः अपभ्रंश तथा संस्कृत मिश्रित भाषा में है जिस पर सभी प्रान्तों के आलोचक अपनी-अपनी भाषा होने का अधिकार अथवा स्वत्व जमाते हैं। पंजाबी भाषा के प्रसिद्ध अन्वेषक डाक्टर मोहन सिंह जी ने सिद्ध योगियों की आध्यात्मिक रचनाओं को पंजाबी का पूर्व रूप करार दिया है। (देखो, History of Panjabi Lİteratvre, 1957, Pvnjabi section pp.13)

१०वीं १२वीं शताब्दी में जब भारत पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ तो एक नया सम्प्रदाय सूफियों के नाम से भारत में आया। सिद्ध योगी इस समय भीषण यवनोपद्रव से त्रसित होकर उत्तर प्रदेश की हिमाच्छादित पर्वत घाटियों कैलाश, सुमेरु आदि में चले गये। सूफियों ने, जो इस्लाम और भारतीय वेदान्त के विचारों से शुरू ही से प्रभावित थे, एकेश्वरवाद का प्रचार भारतीय प्रादेशिक भाषाओं में, जिनमें से पंजाबी भाषा भी एक थी, करना शुरू किया, जिससे गोरख, चर्पट आदि के बाद सूफी कवि मसूद कृत सस्सी पून्नूँ, मुल्ला दाऊद कृत छन्दनामा और रेखता, अमीर खुसरो कृत बुझारतां (पहेलियाँ) और वार (युद्ध काव्य) और शेष फरीदुद्दीन शकरगंज कृत शब्द-श्लोक, निशात नामा, पद्धति नामा आदि काव्य-रचनाएँ लिखी गईं। लाहौर के प्रसिद्ध कवि चन्द वरदाई का पृथ्वीराज रासो नामक महाकाव्य भी; जिसने पंजाबी शब्दों का बाहुल्य है, इसी समय की एक विख्यात काव्य-रचना है।

शेख फरीदुद्दीन शकरगंज अयोधनी [मुलतानी] जिनका समय सन् १२९५ से सन् १३८८ ई० तक है, इस समय के सर्वश्रेष्ठ सूफी कवि थे। उनके शब्द श्लोकों के प्रमाण ये हैं—

(१) बेड़ा वन्ध न सकिओ, बन्धन की बेला।
भर सरवर जब ऊछलै तब तरण दुहेला॥
हत्थन लाइ कसुम्भड़े जल जासी ढोला।
—रागु सूही शेख फरीद की

(२) नढ्ढी कन्त न राविश्रा ढ्डी थी मई आस ।
धन कूकेंदी गोर में तैं सहना भिलो आस ।।
(३ इक फिक्का न गालाइ, सभना महि सच्चा धणी ।
हिआउ न कैहो ठाहि, माणक सम अमोलवे ।।

इस प्रकार पंजाबी कविता का यह आदि काल अपभ्रंश काल से शुरू होकर सूफी कवि शेख फरीद्दीन शकरगंज के समय तक पंजाबी भाषा तथा कविता को सुव्यस्थित तथा ठेठ टकसाली रूप देकर समाप्त हो जाता है ।

पूर्व मध्यकाल—सिक्ख गुरु और तत्सामयिक विचार धाराएँ (१४६६-१७०८ ई० तक)

शेख करीद के बाद १४वीं शताब्दी से १७०८ ई० तक पंजाबी कविता का पूर्व मध्यकाल है । इस काल के कवियों को हम निम्नाँकित पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं — [१] सिक्ख गुरु और उनके कवि, [२] तत्सामयिक सन्त तथा सूफी कवि [३] किस्साकार तथा फुटकर कवि, [४] भट्ट एवं ढाडी कवि और मुस्लिम कवि ।

अब इन सब में से पहले सिक्ख गुरु और उनके अनुयायियों तथा दरबारी कवियों को ही लीजिए । सिक्ख गुरुओं में से क्रमानुसार गुरु नानक (१४६९-१५३९ ई०), गुरु अङ्गद देव (१५०४-१५५२ ई०), गुरु अमरदास (१४७९-१५७४ ई०), गुरु रामदास (१५३८-१५८४ ई०), गुरु अर्जुनदेव (१५६३-१६०६ ई०), गुरु तेग बहादुर (१६२१-१६७५ ई०), और गुरु गोविन्दसिंह जी (१६६६-१७०८ ई०) के नाम वर्णनीय हैं । गुरु नानक ने गुरुमुखी वर्णमाला का आविष्कार करके अनेक राग रागिनियों में बहुत सी बानी रची जो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में संग्रहीत हैं । उनके बाद गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव, गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्दसिंह जी ने भी उन्हीं का अनुगमन तथा अनुसरण किया । सिक्ख गुरुओं ने अपनी बानी में जिन राग रागिनियों को प्रमुख स्थान दिया वे श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में क्रमानुसार इस तरह हैं—सिरो राग, माझ, गौड़ी, आसा, गूजरी, देव गन्धारी, बिहागड़ा, वडहंस, सोरठि अनासरी, जैतसरी, टोड़ी, बैराड़ी, तिलङ्ग, सूही, बिलाबल, गोंड, रामकली, नट नारायण, माली गउड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरवी, बसन्त, सारंग, मलार, कान्हड़ा, कल्याण प्रभाती विलास और जजैवन्ती । इनके अतिरिक्त श्री गुरु ग्रंथ जी की बानी में श्लोक, गाथा, फुनहे, चौबोले, सवये, रड्ड और दोहा छन्दों का प्रयोग भी किया गया है ।

डाक्टर मोहन सिंह जी के कथनानुसार गुरु नानक के समय से पहले न केवल इन राग रागनियों का ही प्रचलन था अपितु ढोला, टप्पा, काफी, रेखता, बारहमासा अथवा द्वाजद माहा, नसीहत, नामा, वार [पौड़ी], श्लोक, दोहा, चौपाई बैत, पट्टी, पैंतीस अक्खरी तथा बावन अक्खरी, चौंतीसी, सीहरफी, झूलना, विष्णुपद, उक्खणे, सोरठा, रुबाई, कुण्डलिया, थित्ति, सतवारा, गीत तथा गाउण, पहरे, प्रहेलिका, सद्द, अलाहणियाँ [वैण], घोड़ी, अंजुली, साल नामा, चौपदे, माझ, रायसा [रासो] सोहिला, आरती, रहरास आदि का भी पर्याप्त मात्रा में प्रचार था जिस कारण गुरु वाणी में यत्र-तत्र इनका वर्णन यथास्थान पाया जाता है । [देखिए डा० मोहनसिंह कृत History of Punjabi Literature 1956]

दशम बादशाह श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपने बृहदाकार दशम ग्रंथ में शब्द हजारा के अतिरिक्त शेष सब आध्यात्मिक काव्य-रचनाओं में और उनके दरबारी कवि राम, श्याम आदि ने अन्य चण्डी चरित्रोक्ति विलास तथा त्रिया चरित्रोपाख्यान आदि रचनाओं में कवित, सवैया, अरिल्ल, मधुसार, भुजंग प्रयात, नाराज, अर्ध नाराज, नीसाणी शिरखुली, (शिरखंडी), अनङ्ग शेषर आदि छन्दों को बहुतायत से अपनाया है । सिक्ख कवियों में से भाई बहलो, बाबा सुन्दर, भाई गुरुदास भल्ला, सायुजन, सोढी मिहरवान, हरि जी, बाला, हरिया, भाई दरबारी आदि; सन्त तथा सूफी कवियों में से भक्त छज्जू, कान्हा, जल्हन शाह हुसैन, वीलू सुथरा, मुल्ला अब्दी आदि; भट्ट, चारण तथा ढाडी कवियों में से कल्य, जल्य, जालप, मथुरा, भिक्खा टोड़ा मीर सत्ता, बलवन्ड अब्दुल्ला, नत्थमल, मुश्की छबीला, अमृत राय अणीराय आदि और किस्साकार अथवा प्रबन्धकार कवियों में से कवि दमोदर गुलाटी, पीलू हाफिज, बरखुरदार, अहमद गुज्जर आदि के नाम, जिन्होंने न केवल अपनी रागात्मक

भक्ति भावात्मक तथा फुटकर कविताओं से ही पंजाबी साहित्य को गौरवान्वित किया, प्रत्युत हीर राँझा सस्सी पुन्नूँ मिरजा साहिबाँ यूसुफ जुलैखा आदि किस्सा-काव्य तथा प्रबन्ध काव्य देकर पंजाबी साहित्य का मुख उज्ज्वल भी किया है।

उत्तरवर्ती मध्यकाल (१७०८-१८०० ई०)

गुरु गोविन्द सिंह जी के बाद सन् १७ ९ में नादरशाह और सन् १७४७-१८६७ के आक्रमण तक पंजाब का वायुमंडल हमेशा राजनैतिक अशांति से आच्छादित रहा। सर्वप्रथम बाबा बन्दा बहादुर तथा उनके साथी सिक्खों के मुगल सैनिकों के साथ युद्ध, फिर लाहौर के प्रसिद्ध शासक सूबा खान बहादुर जकरिया खान मीर मन्नू आदि सिक्खों पर आक्रमण तथा जुल्म इसके साथ ही औरङ्गजेब आलमगीर के बाद बहादुर शाह जहाँदारशाह, फर्रुखसियर और मुहम्मदशाह, अहमद शाह आलिमगीर शाह आलिम का क्रमशः एक दूसरे को धकेल कर दिल्ली के राज्य सिंहासन पर आसीन होना और फिर पिशावर की ओर से नादिरशाह दुर्रानी तथा अहमद शाह अबदाली के भारत पर आक्रमण आदि ऐतिहासिक घटनाएँ कोई मामूली न थीं, पर फिर भी कवि हाकिम राय ने बन्दा बहादुर की वार कवि नजाबत ने वारनादिरशाह की कवि चिरागुद्दीन ने हीर राँझा का किस्सा, कवि नाहर सिंह पेशकार ने कथा रूप बसन्त की, कवि राजा खुशहाल राय ने विशनपदे कवि मुकबिल तथा वारिसशाह ने किस्से हीर राँझा के आदि बड़ी सफल काव्य-रचनाएँ कर ही डालीं। इसी तरह कवि गुरुदास गुणी कृत कथा हरि राँझण भी जो कि भाषा विभाग पंजाब सरकार की ओर से देव नागरी अक्षरों में छप चुकी है इसी समय की एक अनुपम काव्य-रचना है। इनमें से वार नामक युद्ध काव्य पौड़ी छन्दों में लिखे गए और शेष सब काव्य-रचनाएँ दोहा, चौपाई दुवैया, झूलना, काफी बैत आदि छन्दों में तैयार हुईं। किस्सा काव्य के अतिरिक्त इस समय में बुल्लाशाह, अली हैदर, सुलतान बाहू आदि सूफी कवियों ने कुछ काव्य-रचनाएँ रहस्यवाद छायावाद तथा प्रतीकवाद का रूप देकर सूफिआना तौर पर इशक हकीकी का प्रदर्शन करने के लिए भी लिखीं। इस समय की पंजाबी कविता के कुछेक कवियों के नाम यथाक्रम इस प्रकार हैं –

१ कवि नजाबत—(१२वीं शती हिजरी)
२—कवि शाह जहान मुकबिल (१२वीं शती हिजरी)
३—कवि सय्यद वारिस शाह (११३५-११८० हिजरी)
४—कवि बुल्ला शाह (१६८०-१७४६ ई०)
५—राजा खुशहाल राय (१२वीं शती हिजरी)
६—सय्यद अली हैदर (११०१-११९१ हिजरी)

सिक्ख राज्य का समय (१८००-१८४९ ई०)

अहमद शाह अबदाली के आठ आक्रमणों के साथ ही, जो उसने पंजाब तथा भारत पर किये, सन् १७४७ ई० से १७६७ ई० तक सिक्खों की बारह मिसल नामक सरदारियाँ कायम हुईं, जिनके नाम ये हैं—[१] मिसल भंगी सरदारों की [२] मिसल राम गढ़ियां, [४] मिसल कन्हैयाँ [४] मिसल नकैयाँ [५] मिसल डल्लेवालियाँ [६] मिसल करोड़ियाँ [७] मिसल शहदों की [८] मिसल सिंह पुरियों की [९] मिसल निशानों वाली, [१०] मिसल शुक्र चक्कियाँ [११] मिसल फूलकियाँ और [१२] मिसल आहलू वालियाँ। इनमें से मिसल फूलकियाँ ने तीन रियास्तें—नाभा, पटियाला और जींद कायम कीं और अपने राज्य दरबारों में कवियों को उचित अधिकार देकर और उनसे बहुत सा साहित्य लिखवा कर पंजाबी कविता को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। कवि रामसिंह 'पंजाबी' और बाबा रामदास जी दरबार पटियाला के दो गण्य मान्य पंजाबी कवि थे। कवि रामसिंह की पंजाबी सीहरफियाँ और बाबा रामदास जी के शिरखण्डी छन्द पटियाला में किसी समय बड़े प्रसिद्ध थे, जैसे कि बाबा रामदास का एक छन्द है –

> छुट्टे आयुध शूरियां हो सम्मुख जुट्टे।
> लुट्टे सब सुख पूरियां, अरि उलट पलुट्टे ॥
> हुट्टे दानव धूरियां, कप पैर न पुट्टे।
> कुट्टे गह गज जूरियां शिर धट जिमि फुट्टे ॥

—गण प्रस्तार प्रकाश पृष्ठ २८।

रियासत पटियाला के अतिरिक्त रियासत नाभा, जीन्द और कैथल में भी कितने ही पंजाबी कवि भाई सन्तोख सिंह, पण्डित तारासिंह, ज्ञानसिंह, ज्ञानदास, साहिब सिंह, मृगेन्द्र आदि हो चुके हैं। इसी तरह आहलू वालिया मिसल के अधीन रियासत कपूरथला, मिसल भंगियों में से राजा अजीतसिंह के अधीन रियासत लाडवा, भाई भूपसिंह के अधीन रियासत रोपड़ में भी कितने ही पंजाबी कवि हो चुके हैं जिनका पता पंजाबी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज करने से चलता है।

शुक्र चक्कियां मिसल में से पंजाब केसरी रणजीत सिंह के दरबार में हिन्दी कवि ग्वाल, जिनके पंजाबी छन्द भी खोज करने से मिलते हैं, कवि हाशम, सवाई सिंह तथा अन्य कवि इमाम बखश, हमिद शाह, अहमद यार, कादर यार, केशवदास, पीर मुहम्मद, कान्हसिंह बंजा, सोभा बलोच, गणेश दास 'पिंगल', शाह मुहम्मद, सरदार अमीर सिंह, अमरसिंह आदि हिन्दी और पंजाबी दोनों भाषाओं के उत्कृष्ट कवि थे।

इनके अतिरिक्त इसी समय के पंजाबी कवियों में ग्राम भूदन मालेर कोटला के महाकवि सन्तरेण लेखक श्री गुरु नानक दिग्विजय उदासी बोध, याझां पंजाबी आदि, साधु गुलाबदास (गुलाब चमन, अवधत तोरा, आदि) कवि जोगसिंह (किस्सा हीर रांझा और सीहरफी हीर आदि के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। कवि जोगसिंह की हीर कवितावली तो इतनी उत्कृष्ट है कि उसके आधार पर कवि भगवानसिंह नथाना, सन्त बजारा सिंह आदि ने भी हीर रांझा के किस्से पंजाबी कवितों में ही लिखे हैं, परन्तु वे उनको इतना मनोरम रूप नहीं दे सके जितना कि कवि जोग सिंह ने दिया है।

अंग्रेजी राज्य का आदि-अन्त आधुनिक काल (१८५०-१९४७ ई०)

सन् १८४९ ई० में दूसरे सिक्ख-अंग्रेज युद्ध की समाप्ति के बाद पंजाब पर अंग्रेजों का पूर्णतया आधिकार हो गया। पंजाब में अंग्रेजी शिक्षा के साथ ही छापाखाने अथवा मुद्रणालय खुलने लगे और लुधियाना के ईसाई मिशन प्रेस में सबसे पहले पंजाबी की पुस्तकें नये टाईप के गुरुमुखी अक्षरों में, जो अभी कलकत्ता से नया ढलवा कर मंगवाया गया था, छपनी शुरू हुईं। लेखकों के अतिरिक्त इस समय के पंजाबी कवियों में से कवि गंगाराम, जरगर, अमृतसरी, पण्डित श्रद्धा राम, फिल्लौरी, भाई किशन सिंह आरिफ, मौलवी दिल पजीर भेरे वाला, बीबी मखफी मुलतान वाली, साईं फजल शाह, अरूड़ा राय भट्ट लाहौरी, बरदा पिशावरी, भाई भगवान सिंह नथाना, सन्त बजारा सिंह फीरोजपुरी, भाई बहादुर सिंह, साहिब सिंह गुलाब दासिये, साधु ईसरदास लुहारा (जिला लुधियाना, ज्ञानी दित्त सिंह भाई गुरुमुख सिंह, प्रोफेसर आरिएन्टल कालेज लाहौर, ज्ञानी ज्ञानसिंह अमृतसरी, ज्ञानी ज्ञानसिंह लौंगोवाल (पटियाला), डाक्टर चरणसिंह आदि की काव्य-कृतियाँ वर्णनीय हैं।

किस्सा-कवियों में से गंगाराम जरगर, किशन सिंह आरिफ, मौलवी दिल पजीर, फजल शाह, भाई भगवान सिंह नथाना, साधु ईसर दास, सन्त बजारा सिंह आदि के नाम विख्यात हैं। सुधारक कवियों में से सन्त बहादुर सिंह, साहिब सिंह गुलाब दासिये, ज्ञानी दित्त सिंह, ज्ञानसिंह तथा डाक्टर चरण सिंह इतने प्रसिद्ध हैं कि किसी विशेष परिचय के मुहताज नहीं हैं। इनमें से एकाकी ज्ञानी दित्त सिंह की काव्य कृतियाँ शीरीं फरहाद, सुलतान पुआड़ा, मीरां मनौत, दम्भ विदारण, दुर्गा प्रबोध, राज प्रबोध, सिक्ख बच्चे दी शहीदी, सिंघणियाँ दे सिदक आदि दो दर्जन से कम नहीं हैं। डाक्टर चरण सिंह जी, जो सबसे बडे सुधारवादी कवि थे, परन्तु वे ज्ञानी दित्त सिंह की तरह परम्परावादी कवि होते हुए भी पंजाबी कविता में कुछ नयी प्रवृत्तियों के जन्म दाता थे। उनकी परम्परावादी काव्य-कृतियों में से श्री अटल प्रकाश (छन्दो बद्ध काव्य) और प्रयोगवादी काव्य-कृतियों में से केसरी चर्खा विचारणीय हैं। पंजाबी के प्रसिद्ध कवि तथा लेखक डाक्टर भाई साहिब वीरसिंह जी 'पद्म विभूषण' (१८७२-१९५७ ई०) इन्हीं डाक्टर चरण सिंह के सुयोग्य सुपुत्र थे।

डाक्टर चरण सिंह के बाद भाई वीर सिंह जी उनके स्थानापन्न हुए। भाई वीर सिंह का रचनाकाल सन् १९०५

ई० से सन् १९५७ ई० तक है। इस अर्द्ध शताब्दी में भाई साहिब ने राणा सूरत सिंह [खण्ड काव्य], भटक हुलारे, बिजलीआं दे हार, लहिरां दे हार, लहिर हुलारे, कम्बादी कलाई, मेरे साईआं जीउ, प्रीति वीणा आदि अत्युत्तम काव्य-रचनाएँ पंजाबी संसार को दीं और इन काव्य-रचनाओं में शिरखण्डी (Blank verse), रूबाई, काफी, छप्पय, कवित्त, दोहा, दवैया आदि अपनाये।

भाई वीरसिंह की कविता में परम्परावाद, प्रयोगवाद, रहस्य वाद और छायावाद ये सभी गुण पाए जाते हैं। राणा सूरत सिंह उनका एक खंड-काव्य है जिसकी सारी की सारी कथा वस्तु कल्पना पर आधारित है। शेष उनकी सभी काव्य रचनाएँ इससे भिन्न एक प्रकार के कोष-काव्य अथवा फुटकर कविताओं के संग्रह मात्र हैं।

भाई वीरसिंह से प्रेरणा लेकर प्रोफेसर पूर्णसिंह (१८८१-१९३१ ई०) और डाक्टर दीवानसिंह कालेपाणी (१९१४-१९४४ ई०) स्वच्छन्दतावादी कवियों के रूप में कविता के मैदान थे। प्रोफेसर पूर्णसिंह जी एम० एस-सी०, राम तीर्थ के अनुयायी थे। ये स्वच्छन्दतावादी कवि इसलिए कहे जाते हैं कि इनकी कविता में रीति काव्य अथवा पिंगल के अनुसार छन्द-वजन का कोई बन्धन नहीं था। इन्होंने भाई वीरसिंह से प्रेरित होकर न केवल शिरखंड छन्द को ही अपनाया अपितु उसे पूर्णतया नीसाणी शिरखुली का रूप विशुद्ध सैलानी छन्द ही बना डाला। इनके दो काव्य संग्रह खुल्ले घुण्ड और खुल्ले मैदान इनकी प्रतिभा के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसी तरह डाक्टर दीवान सिंह जी काले पाणी भी, जो दूसरे यूरोपीय महायुद्ध के समय में जापानियों के कारागार में शहीद कर दिए गए, प्रो० पूर्णसिंह की तरह अपनी ही किसम के एक अद्वितीय प्रगतिवादी कवि थे। 'वगदे पाणी' उनका अनुपम कविता-संग्रह प्रसिद्ध है। इन दोनों कवि रत्नों की भाव पूरित स्वच्छ तथा प्रगतिवादी कविताओं के यथाक्रम ये दो उदाहरण हैं:—

देश को आशीर्वचन—
वस्सण तेरे महल ते माड़ीआं
वस्सण होर वद्ध खुश निक्कीआं
निक्कीआं झुग्गीआं!
वस्सण तेरे बाग तेरीआं बहारां
फुल्लण ते फल्लण तेरीआं पैलीआं
जीण तेरे पिपल ते अम्ब पिआरे
जीण तेरीआं सदा सावीआं बोहड़ां
जीण तेरे माल डङ्गर,
जीण जट्टीआं दुद्ध चोण वालीआं।

[खुल्लै मैदान]

इह सम वड्डे धर्मा वाले, भरमा वाले
मजहबां वाले, मुलकां वाले, समझां अते समाजां वाले
अकलां अते कनूनां वाले, दुकानदार फंदे लाला वैठे
लुट्टण हक्क पराए।
कद गरसन इह कसाई, मुह चिट्टे चिट्टे मन काले
काले।

(वगदे पाणी)

इन दोनों कवियों के अतिरिक्त इस समय परम्परावादी स्वच्छन्द तथा प्रगतिवादी कवियों में से प्रो० मोहनसिंह धनी-राम चातृक, एस० एस० चरणसिंह शहीद मौला बखश कुशता बलदेव चन्द्र बेकल, बाबा बलवन्त, हरीन्द्र सिंह रूप, प्रीतम सिंह सकीर, फिरोजदीन शरफ, कर्त्तार सिंह दुग्गल, विधाता सिंह तीर, हीरा सिंह दर्द, करतार सिंह बलग्गण, अवतार सिंह आजाद, अमृत कौर (प्रसिद्ध नाम-अमृता प्रीतम), देवेन्द्र सत्यार्थी; प्यारा सिंह सिहराई आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। किस्साकार कवियों में से भी पंडित कालिदास गुज्जरांवालीआ, किशोर चन्द बछोवालीआ, दौलत राम, मुहम्मद बूटा गुजराती, लाहौरा सिंह, ज्ञानी जोधसिंह, कर्त्तार सिंह कलास वालीआ, बिशन सिंह, सोहन सिंह घुक्के वाली प्रो० विद्या सागर आदि जिन्होंने अनुपम किस्से अथवा प्रबंध काव्य लिखकर पंजाबी साहित्य को उन्नति के मार्ग पर लाकर खड़ा किया, किसी तरह भुलाए नहीं जा सकते। इस समय की स्त्री कवियों में से बीबी हरिनाम कौर, अमर कौर बलजीत कौर बल, अमृत कौर [अमृता प्रीतम] प्रभुजोत कौर, कुशल स्पालौ, तृप्त कौर बी० ए०, रसीदा सलीम सीमीन एम० ए० आदि के नाम भी वर्णनीय हैं।

अंग्रेजी राज के आधुनिक युग का यह प्रथम भाग सन् १९४७ ई० तक समाप्त हो जाता है। इस युग की पंजाबी कविता

का झुकाव विशेषतया स्वच्छन्दतावाद, प्रगतिवाद प्रतीकवाद तथा समाजवाद की ओर अधिक होने के कारण शिरखंडी सैलानी छन्द [नीसाणी शिरखुंडी का एक विकृत रूप], गजल, अनन्त तुकों के गीत आदि का प्रचलन ही विशेषतया अधिक रहा।

स्वाधीनता का युग (१९४७-१९६४ ई०)

सन् १९४७ ई० में अंग्रेजी राज की समाप्ति और देश के भारत तथा पाकिस्तान नामक दो भागों में विभाजित होने पर पंजाबी कविता का आधुनिकतम युग शुरू हुआ। इस युग की पंजाबी कविता में पश्चिमी साहित्य और उसके साथ ही गान्धीवादी, स्वच्छन्दतावादी, छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी आदि विचारधाराओं की अधिक बाढ़ आने पर पंजाबी कविता कुछ ऐसा रूप धारण कर गई है जिसके कारण गद्य और पद्य में भेद भाव इतना कम रह गया है कि अब हम उसको गद्य कहें या पद्य, यह निश्चय करना कोई साधारण बात नहीं है। नयी विचार धारा के कवियों में से तखतसिंह, संतोषसिंह धीर, जगतार सिंह पपीहा, सज्जनसिंह, सुरजीत रामपुरी, अजायबसिंह आदि प्रसिद्ध है। कवि अवतार सिंह 'आजाद' ने इस स्वच्छन्दतावादी युग में भी मर्द अगम्भड़ा, विश्वनूर महाबली आदि महाकाव्य लिख कर एक प्रकार से नये सिरे से महाकाव्य परम्परा का उद्घाटन किया है और वह भी दोहा छन्दों में जो प्राकृत अथवा अपभ्रंश के ही चिर परिचित तथा चिर स्मरणीय रूप हैं। पंजाबी कविता का भविष्य क्या होगा, यह बात अभी विचारणीय है।



कश्मीरी काव्य

●

पृथ्वीनाथ पुष्प

कश्मीरी कविता ने जिस वातावरण में आँख खोली, वह सामाजिक और राजनीतिक उपद्रवों से विषण्ण हो चुका था। लोग दुनिया के कड़वे यथार्थ से घबड़ाकर अध्यात्म की मीठी कल्पनाओं में समाश्वासन ढूँढ़ रहे थे। ऐसे संकट की घड़ी में हमारे कवियों ने भी आध्यात्मिक समन्वय का आसरा लेकर उनके सामने मानवता का एक प्यार भरा सन्देश रखा। ललद्यद के तीस वर्ष बाद नन्दर्योश (नरउद्दीन) की वाणी में भी इस सन्देश की गूंज साफ सुनाई पड़ती है। जिसमें ज्ञान भक्ति और सदाचार द्वारा आध्यात्मिक और आधिभौतिक सन्तुलन की प्रेरणा प्रकट हुई है।

नुन्दर्योश की शिष्य-परम्परा 'येश' (अर्थात् ऋषि परम्परा कहलाई और इसमें जीवन की तपोमयता के साथ-साथ आचार और विचार की सरल पवित्रता के द्वारा मानव प्रेम की साधना पर ही जोर दिया गया है।

नुन्दर्योश के बारे में जो सुन्दर लोकगीत और संलापगीत आज भी प्रचलित है, उनसे साफ ज्ञात होता है कि नुन्दर्योश साहित्य की परम्परा कम से कम सोलहवीं शती तक जारी रही होगी, जब कि वर्तमान येश-नामा लिपिबद्ध किया गया। इस संग्रह में नुन्दर्योश की पत्नी जयद्यद तथा सन्त महिला शामद्यद आदि के वाणी के नमूने भी उद्धृत हैं।

इसके पश्चात् जैन-उल् आबिदीन बडशाह १५वीं शती के काल में कश्मीरी साहित्य की अपनी एक प्रगति रही। बडशाह के पोते हस्सनशाह के दरबार में भी कश्मीरी भाषा का बड़ा आदर रहा। उसके कवि गणक प्रशस्त की एक निराली रचना आज भी उपलब्ध हैं 'सुख दुख चरित' जिसके चार अध्याय हैं विद्यापरिश्रम, मदनशास्त्र, जन्मजरामरण और तानप्रकाश। शेष साहित्य लुप्त है।

गीति-काव्य

आश्चर्य की बात है कि १६वीं शती में मृतप्राय कश्मीरी कविता को फिर से सजीव करने का श्रेय भी एक नारी को ही है और वह नारी हैं 'हबा खातून।'

ललद्यद के वाक्यों का छन्दोविधान परिष्कृत और कसा हुआ नहीं था, उसमें लचीली लय का एक मनोरम संगीत था पर हबाखातून ने फारसी की बहरों का सहारा लेकर एक संयत छन्दोविधान की स्थापना की। ऐसा लगता है कि उसके पहले ही लोकगीतों के द्वारा कश्मीरी कविता के आकार प्रकार में परिवर्तन हो चुका था, पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हबाखातून ने कश्मीरी गीत काव्य की एक नई विधा को विकसित किया जिसमें आत्म निवेदन की कोमलता, मार्मिकता और संगीतमयता वैसी ही प्रबल है जैसी ललद्यद के मुक्तकों में तीव्रता, स्पष्ट वादिता और दर्शन-गम्भीरता।

हबाखातून का जीवन ही एक ऐसा करुण काव्य है, जिसका अर्थ पीड़ा से होता है और इति विरह से। कश्मीर के शासक यूसुफ शाह चक की प्रेमिका बनने पर उसके कुछ दिन सुख से कट गये तो उसने रोमांस के मधुर राग भी अलापे, पर उल्लास की मस्ती उनमें भी नहीं, मानों बीते जीवन का अवसाद उसका पीछा कर रहा हो। उसके कवि हृदय पर क्या-क्या बीती थी, यह उसकी इन धड़कनों से स्पष्ट होता है –

किस आशा पर प्राण टिकेंगे, किस आशा पर ?
सखि वह तो सुध मेरी भूले,
नाम नहीं मेरा लेता, वह नाम नहीं लेता मेरा ।
उर्सा मना रही है दुनिया
'ईद' है आई हर प्रेमी की
प्रिय बिन 'ईद' भी कैसी ? वह नाम नहीं लेता मेरा ।
भीतर ही भीतर सुलगाया
झोंक दिया भट्टी में मुझको
क्षार हुआ चम्पा तन मेरा, वह नाम नहीं लेता मेरा ।
गला दिया है हिम-सा मुझको
व्याकुल कर डाला झरना-सा
भटकाया है सरिता जैसा-वह नाम नहीं लेता मेरा ।

कश्मीरी मौसीकी [संगीत संहिता] के सर्वप्रथम सम्पादन का श्रेय भी हबाखातून को ही दिया जाता है । आजकल शादी व्याह के अवसरों पर जो लोकगीत कश्मीर में गाये जाते हैं, उनमें से अधिकांश या तो हबाखातून के बताये जाते हैं या अरणिमाल के ।

अरणिमाल ने १८वीं सती में वही काम किया जो हबाखातून ने १६वीं शती में । हबा के बाद कई एक कवियों ने उसकी गीति प्रणाली को अपना कर वेदान्त और सूफी मत के सामंजस्य से प्रेरित कविता की और मुगलकाल में एक साधिका रूप भवानी (अलक्ष्येश्वरी) ने ललद्यद की अध्यात्म-परम्परा को पुनः जीवित भी किया, पर उसकी पद्य रचना में वह भावमयता नहीं जो लल 'वाख्यों' की विशेषता है ।

मुगलों के बाद कश्मीर की राजनीतिक स्थिति और भी विप्लवाकुल रही । समाज की नींव हिल उठी तो आध्यात्मिकता अकर्मण्य निराशा का केन्द्र बनकर रह गई, और तुकबन्दियों में 'उपसार' के जटिल रहस्य की दुहाई दी जाने लगी । इन परिस्थितियों में किसी ऐसी कवि प्रतिभा की आवश्यकता थी जो कविता की सखी शिराओं में नई अभिव्यक्ति का संचार कर सके, और इसी आवश्यकता की पूर्ति अरणिमाल ने की ।

अरणिमाल साकार वेदना थी, उसका निठुर पति मुन्शी भवानीदास काचरू फारसी 'बहरे तबील' का विख्यात कवि था, पर अरणिमाल के प्रति उतना ही निर्मम जितना वह उसके प्रति साभिलाषा थी । अतः उस परित्यक्ता तपस्विनी ने अपने पाषाण हृदय प्रियतम के विछोह में तड़प-तड़प कर अपनी दर्द भरी धड़कन को ही करुण मधुर गीतों में शब्द-बद्ध कर दिया । मांसल होते हुये भी उसका प्रेम पवित्र है और तीव्र होते हुये भी कोमल । इसमें वही समर्पण है जो मीरा की पदावली का सर्वस्व है । प्रतीक्षा के जो भावपूर्ण चित्रण अरणिमाल ने किये हैं वे कश्मीरी साहित्य में बेजोड़ हैं ।

अरणिमाल के वेदनागीत भी कश्मीरी-मौसीकी का श्रृंगार बन चुके हैं ।

गीत काव्य की यह परम्परा १८वीं शती के अन्त तक जारी तो रही पर बहुत कुछ घिस गई । फिर भी कश्मीरी-मौसीकी के संग्रहों में अज्ञात कवियों के सैकड़ों गीति ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें प्रायः स्त्री की ओर से भी आत्मनिवेदन है और कश्मीर के प्राकृतिक परिवेश में आस-उदास का चित्रण बहुत सुकुमार हैं । हाँ ! स्वरों में मिलन का उल्लास उतना नहीं, जितना विरह-व्यथा की कम्पन है ।

रहस्यराग

चार सौ वर्ष की लम्बी यात्रा में कश्मीरी-गीतियों का जो अध्यात्म स्वर बजता ही रहा, वह उन्नीसवीं शती में पुनः जोर से गूँज उठा । लोकगीतों से जान पड़ता है कि १८वीं शती में भी इस तरह की उत्कृष्ट कविता होती रही है ।

रहस्य काव्यों की परम्परा कश्मीरी साहित्य की एक संपन्न पूँजी है । करमबुलन्द खान, शाह, गफूर और स्वछक्राल जैसे मस्त कलन्दरों के बाद १९वीं शती के आरम्भ में महमूदगामी ने फारसी कवि निजामी के 'पंजगंज' को कश्मीरी जामा पहनाकर इस परम्परा को एक नई दिशा दी । पर प्रबन्ध काव्य की चर्चा करने वाले से पहले मुक्तक कविता का कुछ और परिचय जरूरी है ।

महमूदगामी की गजलों में फारसी तसव्वुफ की लय साफ सुनाई पड़ती है ।

तमसीलेआदम मसनवी में उसने जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्धों को पानी और बुलबुले आदि प्रतीकों द्वारा चित्रित किया है ।

'सूरत' में 'पानी' है, 'ख्वाब' में 'ताबीर'
वैसे ही जैसे 'गुलाब' में 'सुगन्धि व्याप्त है।
मैं एक 'जर्रा' हूँ, 'आफताब' से मेरा मेल होगा

महमूद के समकालीन परमानन्द ने इस अध्यातम-तत्व को 'परापूजा' के प्रतीक द्वारा यों ध्वनित किया —

देह की गुफा के अन्दर सच्चिदानंद लिंग
मन के पीठ पर निःसंग बैठा है।

अत: 'अमरनाथ यात्रा' के रूपक में आध्यातम-यात्रा को ही झलकाते हुए उसने पुकारा —

गुफा के अन्दर तुम अपनी अंतर गुहा में जा पहुँचे—
दूसरे देवी देवताओं को छुट्टी तो दी।

इस परापूजा से ही वह 'सहज विचार' सम्भव है, जिसका तत्व-'पानृ रोस्त पान स्वरून' अर्थात् आपसे रहित अपने आपको स्मरण करना है। 'कुल त छाय' सनवी में उसने प्रतिपादित किया है कि पेड़ के साथ रहने से ही छाया को सूर्य दर्शन हो सकते हैं।

दूसरे सूफी कवियों ने भी ऐसी ही आध्यात्मिक एकता के तराने गाए, जिनकी टेक यही है कि—

'सु छु नोन म्य छु ठौर पननुय पानस'
(वह तो प्रकट है : मेरा आपा ही मेरा आवरण है :)

हसन सफी मकबूलशाह, शमस फकीर, रहमान डार और बहावखार आदि ने संकीर्णता और कट्टरता पर रहस्य गंभीर चोटें की। इनकी रचनाओं में तसव्वुफ, वेदान्त और शैव दर्शन एक जबान होकर बोलते सुनाई पड़ते हैं। शमस फकीर ने तो वेदांत और शैव-दर्शन की कई परिभाषाओं को बड़ी सफ़ाई से अपने छन्दों में उतारा है।

जाति भेद को प्राय: इन सभी कवियों ने धिक्कारा है। अजीज दरवेश ने कुफ्र इस्लाम का समन्वय एक सुन्दर रूपक में यों किया है—

जब उस प्रियतम ने मुखड़े पर बाल बिखेर दिए,
कुफ्र और इसलाम (के कजिये) मिटा दिए,
उजाला और अँधेरा गले मिल गये—
मेरा 'जाने जानों', आड़ में छिपा।

अत: वह विवेक के पुल से पार उतरने का उपदेश करता है, क्योंकि—

'इससे आगे फनि फील्लाह
(अर्थात्-'दिव्य में अन्तर्लीनता है')
'वहाँ हिन्दू है न मुसलमान !'

हसन के शब्दों में—

ओलिमव छ्यन द्युत काब्र बुतखानस'
[अर्थात्— पंडितो और मुल्लाओं ने ही काबे को बुतखाने से अलग कर दिया।]

धार्मिक उद्गार

धार्मिक कविता भी उन दिनों खूब हुई। जहाँ एक ओर शिव, पार्वती राम और कृष्ण के भजन कीर्तन और चरित गाये गये, वहाँ दूसरी ओर हजरत ने मुहम्मद की शान में नाते कहीं गई और मेरेजनामे लिखे गये। कई रचनाओं में विशेषकर कृष्णदास वनपूह और अब्दुल अहद नादिम की 'लीलाओं' और 'नातों' में उत्कृष्ट कविता का भी उन्मेष हुआ है। कुछ एक गीतों में तो भावमय सरलता का चित्रण अपूर्व है।

इस प्रकार की कविता में विषय और भाषा पर हिन्दू और मुसलमान दर्शनों की छाप अनिवार्य थी, फिर भी आध्यातम की मूलभूत एकता का राग दोनों में फूट पड़ा है और यह राग प्रबन्ध काव्य में और भी गम्भीर होता गया।

प्रबन्ध काव्य

अब तक हम पौराणिक प्रबन्ध काव्य के साथ ही ऐतहासिक चरित्र काव्य का आरम्भ भी देख चुके हैं। बडशाह के शासन काल '१५वीं शती' में जहाँ 'वाणासुरबध' लिखा गया, वहाँ जैन चरित भी रचा गया, परन्तु बाद में किसी ऐतहासिक चरित्र काव्य की सूचना तक नहीं मिलती। हाँ १७वीं शती में साहिब कोल ने कृष्णावतार लिखा जिसकी शैली ने बाद में लीला काव्य की विद्या प्रचलित की और राम तथा कृष्ण के आख्यानों पर काव्य लिखे जाने लगे। साहिब काव्य के इस काल का कृष्ण सुदामा प्रसंग काफी आकर्षक है। किन्तु इस विषय पर सबसे सुन्दर काव्य है

की उद्भावना खूब हुई है। वेदना को जाग्रत करने में कवि को विशेष सफलता मिली है। काव्य के परिशिष्ट 'लवकुश चरित' में सीता का करुण निवेदन तो कश्मीरी साहित्य में बिलकुल निराली चीज है।

बसन्तागमन के उल्लास का सबसे गतिशील चित्रण भी इसी काव्य म मिलता है—

'आ ही गई बहार, बुल बुल बोलो तो
हमारे यहाँ आ जाओ—उत्सव मनाऊँगी
'कठकुश' विदा हो गया,
गरजा नहीं जलधारा
नींद से जाग उठो—अभी सुबेला है।
चम्पई तन को महका कर निकलो भी संबुल,
जमीन के नाम आजादी का खत लेकर।
नरगिस है प्याला लिये तुम्हारी प्रतीक्षा में,
हमारे हाँ आ जाओ—उत्सव मनाऊँगी।'

कथा वस्तु की दृष्टि से भी 'रामावतार चरित' विलक्षण है। इसमें सीता को मन्दोदरी की बेटी और महामाया का अवतार बताया गया है। [मलय रामायण में भी यही अनुश्रुति सुरक्षित है।] कुश के जन्म की बात भी यहाँ निराली है, कुशा के एक तिनके से उसे बाल्मीक ने उपजाया है।

बाद के राम काव्यों में १९वीं शती का 'शंकर रामायण' और २०वीं के आरम्भ का 'विष्णु प्रताप रामायण' भारी भरकम होते हुए भी पठनीय है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, महमूदगामी ने कश्मीरी-प्रबन्ध काव्य को फारसी प्रेम स्थानों की डगर पर डाल दिया। उसके 'युसुफ-जुलेखा', 'शीरीं खुसरो' और 'लैला व मजनूं' का उद्देश्य जायसी के पद्मावत की तरह लौकिक प्रेम में अध्यामिकता की उद्भावना है, अर्थात् इश्के मजाजी में इश्के हकीकी की तरनुमानी है। इसी उद्देश्य से मकबूल कालावरी ने 'गुलरेज' और बली उल्लाह मत्तू तथा 'जरीफ ने 'हीमाल' लिखे। दोनों ने फारसी काव्यों को सामने ही रख कर रचना की, फिर भी दोनों में मौलिकता का अच्छा परिचय दिया है, विशेषकर मकबूल ने। करुणा का जो चित्रण 'गुलरेज' में हुआ है वह भाषा और भाव के सामंजस्य का एक उत्कृष्ट आदर्श है। 'हीमाल' की कथा-वस्तु मूलतः ईरानी नहीं, कश्मीरी लोक वार्ता से उद्धृत है। रचना की दृष्टि से यह काव्य साहित्यिक सहकार का एक निराला नमूना है क्योंकि इसका कथानक वली उल्लाह मत्तू ने लिखा है और गीत रचे हैं जरीफ ने। मजे कि बात तो यह कि दोनों का रस संयोजन अनुपम है।

इनके अतिरिक्त भी कश्मीरी में दर्जनों प्रेमाख्यान हैं, जिनमें से अधिकाँश फारसी, पंजाबी अरबी और उर्दू के कुशल रूपानान्तर हैं, जैसे 'किस्म-ए-खंजरि इश्क' 'जौहरि इश्क' 'जेबा निगार' 'गुलबकावली' 'चन्द्रवदन' और 'सोहनी मेंहवाल' पर 'जैनमुख अरब' और 'मुमताजे बेनजीर' का स्तर काफी ऊँचा है। फारसी किस्मों पर आधारित कई रचनाएँ ऐसी भी हैं जिन्हें लहजतजुर्मा नहीं कहा जा सकता। जैसे 'कलील-व-दिमनु, हारून रसीद' 'सुलतान महमूद गजनवी', गुरबा व-मौश और 'हातिम-ताई'।

कश्मीरी जनता में जो दास्ताने सबसे लोकप्रिय रही हैं वे हैं सामाजिक व्यंग्य, जिनसे हँसी मजाक के साथ-साथ शिक्षा की भी प्रेरणा मिलती है। इन खंड काव्यों में मकबूल का ग्रीस्तिनामा [किसान चरित्र] विशेष महत्व का है, क्योंकि इसमें यद्यपि किसानों की खिल्ली उड़ाई गई है फिर भी उनके जीवन की बेबसी और बिडम्बना का यथार्थ चित्रण है। व्यंग्य काव्य की रचना उन दिनों जोरों पर थी। 'ग्रीस्तिनामा' के जवाब में एक मुकदमानामा' लिखा गया, और स्वयं मकबूल ने पीरनामा और मल्लानामा' में पीरों और मुल्लाओं पर फब्तियाँ कसी और उनके पाखंड पर से परदा सरका दिया। बीसवीं शती के आरम्भ में बहाव परे ने अपने कश्मीरी 'शाहनामे' में शहर आशोब' भी लिखा है। जिसमें उस समय की अफरातफरी का अच्छा व्यंग्य-चित्रण हुआ है।

बहावपरे ने कश्मीरी साहित्य को जो शाहनामा दिया है वह फारसी मूल का अनुवाद-मात्र नहीं, कई बातों में एक स्वतं रचना है विशेषकर जङ्गों के वर्णन में और अपने समय के वस्तु चित्रण में। बहाव के बाद कई जङ्गनामे लिखे गए। जिनमें से अधिकाँश तो फारसी काव्यों के पर्याय से ज्ञात होते हैं। फिर भी 'खावरनामा' और सामनामा' लोकप्रिय हो चुके हैं।

पर सबसे प्रिय जङ्गनामे हैं कर्बला के विषय पर लिखे गए मर्सिये, जो भाषा के ओजपूर्ण प्रवाह और करुण के द्रावक चित्रण में बेजोड़ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महमूदगामी का समय कश्मीरी कविता के लिए बहुत ही सक्रिय रहा पर उसके शिष्यों में एक 'रसूलमीर' ही था जिसने रहस्यात्मकता का मोह छोड़कर लौकिक प्रेम की मांसल अभिव्यक्ति को ही अपना ध्येय बनाया। पर फारसी गजल के अत्याधिक अनुकरण ने उनकी कविता के रोमांस की मनोरम भावभङ्गिमा को बहुत ही कृत्रिम स्वर दिया। फिर भी उसकी कई गजलों में रूप चित्रण खूब रहा है।

शायद इसलिए कई आधुनिक कवि उसके प्रभाव को अनायास ही ग्रहण कर बैठे। यहाँ तक कि आधुनिक काल का कवि मजहूर भी बड़े गर्व से इस युगप्रवर्तक प्रभाव को स्वीकार करता है।

आधुनिक काल

वैसे तो मजहूर की पहली पद्य-रचना हवा खातून के एक गीत से प्रेरित है और मकबूल की गुलेरजा' ने भी उसे कश्मीरी काव्य की ओर खींचा है पर जिस समय उसने कश्मीरी भाषा को अपनाया उस समय कश्मीरी कविता में ठहराव सा आ गया था। रचनात्मक प्रतिभा के अभाव में साधारण कोटि के तुक्कड़ पुरानी लकीर पीटे जा रहे थे जीवन की असारता का रोना रोने वाली तुकबन्दियों में कभी-कभी ही सप्राण अभिव्यक्ति का एक आध स्वर सुनाई पड़ता था। प्रधानता पिछले शब्द गुम्फन की ही थी।

ऐसी परिस्थिति आकस्मिक नहीं थी। उन दिनों कश्मीर का वातावरण 'रजिडेण्टशाही' के छल बल से उखड़ा उखड़ा था द्विराजी शिकंजे में कसी हुई जनता की सामाजिक राजनीतिक चेतन अँगड़ा उठी तो वरसों की अन्धाधुन्ध की हलचल ने एक आन्दोलन का रूप धर लिया। कश्मीरी कविता इससे प्रभावित ही नहीं होती रही बल्कि इसे अनुप्रेरित भी करती रही।

कश्मीर के जनआन्दोलन की यह पृष्ठभूमि आधुनिक कश्मीरी साहित्य में खूब झलक उठी है। सुविधा के लिए हम इस काल को तीन भागों में बाँट सकते हैं :-

१—सन् १९३८ से पहले,
२—सन् १९३८ ई० से १९४७ ई० तक;
३—सन् १९४७ ई० के पश्चात्।

सन् १९३८ ई० से पूर्व तो पीरजादा गुलाम अहमद मजहूर का ही रचनात्मक महत्व रहा। वास्तव में वही आधुनिक कविता का अगुआ है। 'प्यार के साज पर तान लय लेकर' उसकी गजलों ने 'गुल' और 'बुलबुल' के प्रतीकों में एक नई अर्थ गम्भीर ध्वनि की उद्भावना की और अपने 'वतन' को प्रमाद की नींद से जगाते हुए गाया—

'सवेरे सवेरे बेदार हो जा, ऐ गुले बोस्ता
बुलबुल के फसाने सुन।
पौ फटी खोल दे मस्तानी आँखें
बुलबुल के ....।'

'ग्रीस्तिकर' [किसान कुमारी] में उसने रोमाँस के रस से ओतप्रोत शैली में कर्मठ किसान कन्या की सहज मधुरता के गीतिचित्र प्रस्तुत किए हैं। इसी कविता के द्वारा मजहूर ने महाकवि टैगोर का ध्यान अपनी ओर खींचा था। कोशिर जनान' [कश्मीरी नारी] में उसने सदियों से मौन कश्मीरी नारी की वेबशी का उच्छ्वास सुनाया है मानो सदियों से पराधीन कश्मीरी का दुखी दिल चीख उठा हो।

सन् १९३८ ई० में जनता और शासन की जो टक्कर हुई उससे प्रेरित होकर मजहूर ने भी जागरण और क्रांति का सप्राण सन्देश गाया और जनता को एक नए युग की अवतारण के लिए निमन्त्रित किया :

'गूँजों की बस्ती को जगाना है
तो जीरबम को रहने दो,
भूचाल लाओ, आँधी को बुलाओ,
जोर से गरजो, तूफान उठाओ।'

आश्चर्य की बात नहीं जो मजहूर ने साम्प्रदायिक भाई चारे पर बहुत जोर दिया। उसका विश्वास था कि कश्मीरी में हिन्दू मुसलिम दूध और शक्कर की तरह घुल मिल गए हैं। जनता को आश्वासन दिलाते हुए हुये उसने गाया।

'जाड़ा बीत ही जाएगा, बर्फ पघल ही जाएगी
बहार लौट के आएगी।
मजहूर! प्रेम का साज तैयार रखो।
फूल खिलेंगे अपने आप —
तुम जरा बहाना तो बन जाओ।'

आजादी के संघर्ष में जोखम उठाने वालों को उसने ढारस बँधाया कि "पर्वत-शिखर 'नई भोर' के प्रकाश" से जगमगा उठे हैं।

उन दिनों उसने सामूहिक आशावाद के जो नग्मे रचे, उनमें कश्मीरी कविता एक नई लय से परिचित हो गई।

सन् १९३४ ई० के लगभग "अम्बारदार" और 'फाजिल' ने अंग्रेजी-कविता के कुछ सुन्दर अनुवादों और अनुकरणों से रोमाँस काव्य की एक नई धारा भी बहानी चाही, पर वे इस दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़ पाए। अतः आरम्भ में मजहूर अकेले ही कश्मीरी कविता को घिसी पिटी परम्परा से मोड़कर नई परिस्थितियों के अनुकूल करता रहा, पर बहुत शीघ्र उसे एक योग्य साथी मिल गया। सन् १९३८ ई० के लगभग अब्दुल अहद 'आजाद' रहस्यवाद की डगर छोड़कर राष्ट्रीय सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर जोरदार कविता करने लगे। शुरू २ में वह 'इकबाल' से प्रभावित रहा और 'नाल-ए-इबलीस' के अनुकरण पर उसने 'शिकव-ए-इबलीस' लिखा जिसमें मानव समाज को बदलने की चेतना अँगड़ा उठी।

आजाद ने हर तरह की भौगोलिक, राष्ट्रीय जातिगत और साम्प्रदायिक संकीर्णता के विरुद्ध आवाज उठाई और देश भक्ति, सामाजिक न्याय और आर्थिक समता आदि विषयों पर इनकलाबी कविता की। मानवता ही उसका उद्देश्य रही और मानवता ही आराध्य। सच्ची देशभक्ति ने उसे यह सोचने पर विवश कर दिया कि—

'कल्हण गनी और सर्फी जिस जल से पनप उठे,
वही जल हमारे लिए आज हलाहल क्यों?'

पर देशभक्ति भी जब मानवता की राह में रोड़े अटकाये तो उसे धता बताते हुए झिझिकी नहीं। समाज की विषमता को देखकर उसकी चेतना दरिया में बोल उठी।

'ऊँच नीच और सीमाबन्धन देखकर
मैं आपे से बाहर हो जाता हूँ
दौड़ा फिरता हूँ जान लड़ाता हूँ
एकता और समता की खोज में
मुझे तो जिन्दगी का आनन्द
यात्राओं और गन्तव्यों में ही मिलता है!'

इसी तरह आजाद ने कश्मीरी कविता में मानववाद की जो अन्तरराष्ट्रीय सुर छेड़ा उसे उसके साथियों फानी, काफूर नाज और आसी के अलावा महजूर जैसे बुजुर्गों ने भी प्रतिध्वनित किया। केवल पीड़ित जनता की वकालत कश्मीरी कविता का प्रिय विनोद बनने लगा। और तो और रहस्यवाद के भावप्रवण और कल्पनाभ धुर वयोवृद्ध कवि मास्टर जी ने भी 'करनवि-तारख न अपार' जैसी कविताओं में समय की नदी उस पर 'वर्गहीन समाज' की उज्ज्वल दुनिया में पहुँचने की अभिलाषा घोषित की। इससे पहिले 'वहिदे मनुश चययि न औश' में उन्होंने मानव की शाश्वत विवशता और लाचारी का रहस्यात्मक राग अलापा था, और तार्किक जिज्ञासा के बावजूद आत्मसमर्पण की भावात्मक व्यवस्था की थी।

परिस्थितियों से बाध्य होकर जब कश्मीर की जनता ने सन् १९४६ ई० में 'कश्मीर छोड़ दो' तहरीक चलाई तो कवियों ने भी समर्थन किया। 'महजूर' ने 'पय बोबलय जब जमानस सूत्य' में पुरानी व्यवस्था को ललकारा, 'आंसी' ने हलवाले झन्डे का तराना लिखा, और 'आरिफ' ने 'नगर कारवाँ सौन ब्रौंह ब्रौंह पकान गव' शीर्षक लम्बी कविता में इस आन्दोलन की 'वीरगाथा' गाई। रजवाड़ा शाही की दमनीति का सामना करते हुए कश्मीरी जनता ने क्या-क्या यातनाएँ सही और क्या-क्या बलिदान किए। इन सभी बातों का उत्तेजक वर्णन 'आरिफ' ने चतुराई से किया है। इससे पहले उसने 'मजूरिन्ज' (मजूदरिन) में एक ऐसी दुल्हन के जबान दिल की उजड़ी बहारों का दर्दीला संगीत समोह दिया था, जो रेशम खाने में मजदूरी करने पर मजबूर थी। ऐसे ही 'धुस्सा' में उसने कारीगरों की बेबसी के नक्शे उतारे हैं।

राजनीतिक मतभेद के कारण 'आजाद' ने 'कश्मीर छोड़ दो' आन्दोलन का साथ तो नहीं दिया, पर सामाजवादी मानववाद की अभिव्यक्ति में उसकी कविता अग्रसर रही। भारत का बँटवारा होते ही जब कश्मीर पर कबाइली हमला हुआ तो उसके मानववाद का महत्व यथार्थ से संयुक्त होता दिखाई दिया। खेद की बात है कि अपने काव्य का यह गौरव देखने से पहले ही वह उसी वर्ष चल बसा।

गद्य विकास

सन् ११४७ ई० के पश्चात् कश्मीरी कविता ने कई करवटें ली। पहले दो वर्ष तो शत्रु के प्रतिरोध और नई आजादी के संरक्षण की उमङ्ग ही गूँजती रही। उसके बाद नए कश्मीर के निर्माण की मूलभूत अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए 'आर्थिक' प्रजातन्त्र की स्थापना और विश्वशान्ति की

प्रतिष्ठा पर जोर दिया जाने लगा। 'जमीन किसान की' आन्दोलन ने भी कश्मीरी कविता में प्रबल समर्थन पाया। इस महत्वपूर्ण विषय पर कविताएँ ही नहीं, गीतिनाट्य और नाच गीत भी रचे गए जिनमें 'नादिम' की रचना विशेष सफल रही।

दीनानाथ 'नादिम' ने क्रांति की उत्कृष्ट रागिनी गाकर कश्मीरी जनता को 'स्वदेशी' और 'विदेशी' सभी प्रकार के शत्रुओं से सचेत कर दिया है। पीड़ित पोषित वर्ग से उसकी समवेदना भावुकता या आवेश पर निर्भर नहीं, बल्कि गहरी अनुभूति से उमड़ आई है। उसे जिन्दगी से प्यार है, जिन्दगी के साजो सामान से प्यार है, जीवन व्यापारों से उसे प्यार है, पर अभावग्रस्त मानव को जीवन से प्यार करने का सौभाग्य ही कहाँ। इसलिए वह किसान को उभारता है कि—

'हर साल धरती माता के भाग्य को अपने हल की नोक से बदलने वाले इसी हल की नोक से अपना 'भाग्य' तो उखाड़ ले।'

'बम्बुर यम्बरजल' गीतिनाट्य में उसने अपने कश्मीर की एक प्राचीन लोककथा को नई समस्याओं का वाहक बनाकर अपने देश की नई बहारों को खिजां से बचाने का दृढ़ संकल्प चित्रित किया है।

नूर मुहम्मद 'रोशन' ने भी मुक्तक कविताओं के अतिरिक्त कई संगीत रूपक लिखे हैं। ऋतुओं के वैभव पर उल्लासमय रचनाओं में उसने लोकगीत शैली के कुछ सफल प्रयोग किए हैं। 'नादिक' की तरह मुक्त छन्द से भी उसने काम किया है और शब्दों के भावानुकूल गुम्फन में विशेष सतर्कता और चातुरी दिखाई है।

नवोदित कवियों में 'प्रेमी', 'राही', 'कामिल', 'मजबूर', 'अलमस्त' और 'फिराक' बड़े होनहार दिखायी देते हैं। 'प्रेमी' ने 'लोरी' 'लडीशाह', 'जोड़ी के गीत' 'खलिहान के गीत' रेडांवली के गीत और घुमक्कड़ भिखमङ्गों के गीत आदि कई लोक शैलियों में नवयुग की मनोरम धड़कनें सुनाई हैं। 'शरदऋतु' शीर्षक एक लम्बी रचना में उसने ग्राम के उल्लास को एक नई आशा का आलोक दिखाया है, और नाचगीत के बहुत सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किए हैं। 'कामिल' की 'मसम्नर' में नए प्रयोगों की एक महत्वपूर्ण साधना है, और 'साकीनामा' में उसने नये दृष्टिकोण को एक प्राचीन टेकनीक में पेश किया है। और 'राव-रूपी' संगीत रूपक में भी उसके नये प्रयोग आकर्षक हैं। नई चेतना को नए यथार्थ और आदर्श के संतुलन में चित्रित करने का एक सफल प्रयत्न 'राही' की गजलों और लम्बी कविताओं में मिलता है। रूप, रूस और गन्ध के चित्र उभारने में उसकी चातुरी ने रचनाओं को बहुत ही आकर्षक बना दिया है। 'कतिरोज' 'गटिजौल' कहाँ रह पाएगा घटाटोप अन्धकार) में उसने नए युग की प्रभाती पाई है और 'बहार आव व्यपि लाल शान और शौर मरान' (बहार आ गई फिर प्यार से भटकती) के मुक्त छन्द में नई बहार के शुभागमन का आह्लाद छलक उठा है—

> 'बहार आ गई और दिल चल पड़े
> बादमावरी में उत्सव मनाने,
> 'निशात' की कल्पना ने उत्सुकता की
> गिरहें खोल दीं
> 'डल' लहरा उठी, यौवन मधु-आसव लिए
> 'शालामार' की राह ताकता रहा,
> और 'विशाखी' चोरी-छिपे अठखेलियाँ करती
> दौड़ पड़ी 'चश्माशाही' की ओर
> आज पर्वतों ने नए परिधान पहन लिए
> नई नीलिमा आकाश पर निखर उठी
> कश्मीर की रगों में आज नया खून ठाठें मार
> रहा है,
> इसलिए कवि नए प्यालों से
> जीवन का नया रस बाँट रहा है आज
> इसलिए तो 'राही' छेड़ रहा है गीत नए
> जीवन के।'

और आज की कश्मीरी कविता सचमुच नए प्यालों से जीवन का नया-नया रस बाँटकर ही अपना भविष्य उज्ज्वल बना पाएगी।

असमिया काव्य

•

विरंची कुमार बरुआ

असमिया एक भरपूर आर्य भाषा है। उड़िया और बङ्ला की तरह यह भी प्राच्य अपभ्रंश से निकली है। इसके प्राचीनतम लिखित साहित्य का उदाहरण तेरहवीं शती का मिलता है, जो धर्म-विषयक है और संस्कृत से निकला हुआ। पन्द्रहवीं शती में शंकर देव का नव्य-वैष्णव आन्दोलन उठा तब से असमिया साहित्य उभरना आरम्भ हुआ। सोलहवीं शती के अन्त तक के इस सन्त साहित्य में रामायण-महाभारत-भागवत के अनुवाद थे, वैष्णव सिद्धान्त ग्रन्थों के भाष्य, और 'बरगीत' और 'अंकिया नाट' नाम से चलते धार्मिक गीत और नाटक।

अधिक विकास असमिया साहित्य का सत्रहवीं शती से हुआ जब आहोम राजाओं का आश्रय मिला और पहली बार उसका विषय, देवी-देवताओं से भिन्न, इतिहास और मानव चरित्र बना। इसी समय यहाँ एक ओर अनगिन 'बुरंजियों' की रचना हुई और दूसरी ओर 'चरितपुथियों' की। बुरंजियाँ आहोम राजदरबारों का ऐतिहासिक वृत्त हैं और चरितपुथी वैष्णव सन्तों की जीवनियाँ। अठारहवीं शती का अन्तिम और उन्नीसवीं का आरम्भिक काल, गृह-कलह और धार्मिक संघर्षों के कारण, अन्धकार का युग रहा। उन्नीसवीं शती की तीसरी दशक में अंग्रेजी प्रभुत्व पैठा, फिर अमरीकी मिशनरी आये। ये अपने साथ, धर्म-प्रचार के अन्य साधनों में, एक प्रेस भी लाये और फिर इनके द्वारा असमिया का प्रथम मासिक 'अरुणोदय' भी प्रकाशित हुआ, अनगिन मिशनरी धार्मिक पुस्तकें भी, और स्कूलों के लिए विविध पाठ्य ग्रन्थ भी।

पर जिसे 'साहित्य' कहें ऐसा लेखन बीसवीं शती से ही आरम्भ हुआ जब चन्द्रकुमार अग्रवाल, लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, हेमचन्द्र गोस्वामी और पद्मनाथ गोहाँई बरुआ नामक चार तरुण मित्र कलकत्ते से शिक्षा प्राप्त करके लौटे और 'जोनाकी' (जुगनू) मासिक का प्रकाशन शुरू किया गया। इसके बाद तो असमिया में कोमल-कोमल गीतों, देश-भावनापूर्ण कविताओं, विषय-विषय के निबन्धों और नाटक-कहानी-उपन्यासों की ही रचना नहीं हुई, लोकगीत-लोकवार्ताओं के संग्रह और ऐतिहासिक गवेषणा का कार्य भी हुआ। यहीं आधुनिक असमिया साहित्य के पुनर्जागरण का उत्स माना जाता है।

स्वभावतः इन चारों मित्रों और उनकी बन्धुमण्डली ने प्रेरणा और स्फूर्ति अंग्रेजी साहित्य से ली और ये सभी प्रेम और सौन्दर्य और राष्ट्रीय नव जागरण के गायक थे। सबमें सबसे प्रतिभाशाली लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ थे, जिन्होंने नया स्वर ही नहीं दिया, साहित्य को नये रूप और नयी शैलियों का ऐश्वर्य भी दिया। प्रेम, प्रकृति, वीरगाथाएँ और देश भावना इनके काव्य का प्रधान विषय थे; और 'आमार जन्म-भूमि' तथा 'मारे देश' में इनकी राजनैतिक कविताएँ संग्रहीत हुई हैं। कमलाकान्त भट्टाचार्य एक और ऐसे ही देश भावनाओं के कवि थे जिनके 'चिन्ता' और 'चिन्ता-तरंग' दो संग्रह हैं। चन्द्रकुमार अग्रवाल वैष्णव मानवता और ऑगस्त कौन्त से प्रभावित थे; उनका कुछ काव्य 'बीन बैरागी' में संकलित हुआ है।

दार्शनिक और आध्यात्मिक भावनाओं के दो कवि और थे। दुर्गेश्वर शर्मा और नीलमणि फूकन। 'मानसी', 'सन्धानी'

और 'जिंजिरी' कूकन के ही संग्रह हैं जिनमें अन्तिम कारा-जीवन को और अन्य दोनों उसकी सत्य और सौन्दर्य की पिपासा को प्रतिबिम्बित करती हैं। विल्टन-वर्ड्स्वर्थ आदि से प्रभावित हितेश्वर बॅड़ॅबॅरुआ एक अन्य प्रतिभाशाली कवि थे जिन्होंने असमिया काव्य में अतुकान्त, गद्यगीत, सानेट, विलापिका आदि का प्रारम्भ किया। 'कमतातुर ध्वंस' और 'युद्ध क्षेत्रत आहोम रमणी' इनके ख्यात ऐतिहासिक काव्य हैं। एक और उल्लेखनीय कवि इस काल के अम्बिकागिरि रॉयचौधुरी हैं जो प्रतीकवादी सुन्दर और क्रान्तिकारी देश भक्त के नाते भी विख्यात हैं।

इन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कवियों में ही एक और हैं रघुनाथ चौधुरी जो 'विहगी कवि' नाम से प्रसिद्ध हैं, क्योंकि पक्षी और पुष्प ही उनके काव्य का प्रधान विषय रहे। 'सादरी', 'केतेकी' और 'दहीकटरा' इनकी कृतियाँ हैं जिनमें 'केतेकी' अर्थात् बुलबुल, वो अपने स्वर-भाव के लिए बेजोड़ मानी जाती है। कालिदास की कृतियों ने इन्हें बहुत प्रभावित किया है। यतीन्द्रनाथ दुआरा के काव्य में नैतिकता-विमुक्त निराशावाद की रोमण्टिक विकृति अभिव्यक्त हुई है। इनका बड़ा योगदान शब्द-सम्पदा और छन्द-विविधता के रूप में हुआ और 'कथा कविता' अर्थात् गद्य-काव्य के सफल असमिया लेखक भी यही हैं। छन्द के विषय में देवकान्त बरुआ ने भी चमत्कार किया है।

इसी काल में जिन कई असमिया महिलाओं ने भी उल्लेखनीय रचनाएँ दीं उनमें सबसे प्रतिभासम्पन्न नलिनीबाला थीं। इनके जीवन के व्यापक दर्द और दुःख से छलछलाये तीन काव्य-संग्रह हैं—'सन्धियार सुर', 'सपेंनार सुर', और 'परशमणि'। धर्मेश्वरी बॅरुआनी दूसरी रहस्यवादी कवयित्री हैं जिनके 'फुलर शराई' आएर पॅरेंग' दो संग्रह हैं। सुप्रभा गोस्वामी, प्रीति बरुआ, शुचिव्रता रॉयचौधरी आदि अन्य उल्लेखनीय नाम हैं जिनका गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में योगदान हुआ।

इस प्रकार, गत महायुद्ध-पूर्वी असमिया कविता के प्रधान विषय दैवी या मानवी प्रेम, प्रकृति और देश भावना थे। इसके बाद, विशेषकर तरुण पीढ़ी में, समाजवाद और मार्क्सवाद पैठा और जीवन को भी जटिल और परस्पर विरोधी समस्याओं से जकड़ा हुआ देखा जाने लगा। स्वभावतः काव्य का रूप और स्वर दोनों बदले और योरोपीय प्रतीकवाद और नयी काव्य तकनीकों का आकर्षण फैला। कलकत्ते में शिक्षा पाने के कारण इन तरुणों पर, इलियट आदि के साथ-साथ बुद्धदेव बसु, जीवनानन्द दास और अमिय चक्रवर्ती आदि आधुनिक बङ्ला कवियों का विशेष प्रभाव आया।

नयी विषय वस्तु, नयी शैली, नये स्वर की इस कविता का सर्वप्रथम प्रयोग हेम बॅरुआ द्वारा हुआ। फिर नवकान्त बॅरुआ और महेन्द्र बोरा भी आगे आये। प्रतिष्ठित असमिया मासिक 'रामधनु' से इस नयी कविता के विकास और प्रसार को बड़ा सहारा पहुँचा है, विशेषकर इसलिए कि इन तरुण कवियों के लिए साहित्य ही सामाजिक एवं राजनैतिक विषयों की चर्चा और विचार आन्दोलनों के प्रचार का माध्यम है। सम्भवतः इसीलिए असमिया नयी कविता अभी पत्रकारिता से बहुत ऊँचे नहीं उठ पायी; सच तो, सही और पूरे अर्थों में नयी कविता का अभी यहाँ जन्म ही होना बाकी है।

सिन्धी काव्य

•

कु० पोपटी हीरानन्दाणी

यह एक माननीय सत्य है कि हरएक देश में साहित्य का श्री गणेश काव्य से ही हुआ है। वह काव्य कहानी के रूप में सरल भाषा में चारण या भाट गाया करते थे। सिन्ध के राजदरबारों में भी उनके पूर्वजों के साहस तथा पराक्रम की गाथाएँ गायी जाती थीं, तथा उनके मनबहलाव के लिये उन्हें लम्बी प्रेम-कहानियाँ भी सुनाई जाती थीं। इन गीत-कहानियों को सिन्धी में हम किस्सा कहते हैं। कहते हैं कि ग्यारहवीं शताब्दी में एक सिन्धी कवि अरब देश गया था, वहाँ उसने खुद का बनाया हुआ सिन्धी में महाभारत का किस्सा अरब बादशाह को गाकर सुनाया था और कई सोने के सिक्के इनाम में प्राप्त किया। मुगल सम्राट अकबर के दरबार में एक कवि ने मारुई का किस्सा गाकर बादशाह को खूब प्रसन्न किया था। यह लोक कहानी प्रत्येक सिन्धी-जन जानता है। उमर नाम के बादशाह ने झोपड़ी में रहने वाली एक सुन्दर कन्या को अपने महल में भगा कर लाया। वह कन्या थी मारुई। मारुई उमर से बोली 'तू राजा है तो क्या हुआ? हम गरीब सोने के महल को नहीं, अपनी इज्जत को महत्व देते हैं। तुम्हारे इन गहनों, कपड़ों की मुझे कोई परवाह नहीं। मैं तुम्हारे दिये हुए तेल से अपने बालों को संवार नहीं सकती। मुझे मेरे गाँव छोड़ आओ। अगर मैं यहाँ तड़प-तड़प कर मर जाऊँ तो मेरी लाश मेरे ही गाँव को भेज देना।')

सिन्ध में ऐसे बहुत से किस्से प्रचलित थे। समय की निठुरता और लोगों की लापरवाही के कारण वे किस्से समूचे रूप में आज हमें मिल नहीं सकते। इनमें से सिर्फ इने-गिने दोहे ही मिल पाते हैं। एक किस्सा 'दोदे चनेसर जो किस्सो' अपने बहुत से दोहों के साथ मिलता है। इस किस्से में एक जगह वर्णन है कि राजा के मर जाने के बाद सरदारों ने बड़े राजकुमार चनेसर से कहा कि तू राजगद्दी पर बैठ जा। चनेसर ने कहा मैं अपनी माता जी से पूछ कर आता हूँ। माँ ने ऐसा बेकार बेटा देखा तो वह खीज उठी। वह कहने लगी—

मूं जणियो मांइ पुट्ठु करे, पर थी पिएँ तूं धीअ।
वेही आतण विच में, पान्दियूं कतिजि टीह॥

'मैंने तो तुम्हें पुत्र के रूप में जन्म दिया था, पर तू बेटी ही बन बैठा। अब घर में बैठे और सूत कातने के लिए कपास से पूनियाँ बना कर दे।' उसकी बीबी ने भी टोका—

चाची चगाया चये मुरस मुंहिजे रवे।
अमें हुँयूसी ब जणियूं हाणे थियूंसी टे॥
मन वेही आतण विच में पान्दियूं कते ढे।
हू घर में कमु करे, छा जाणे राज मां?

'तुम घर में बैठ जाओ। सास ठीक कहती है, तू घर का काम ही जानता है, राज्य करने की सूझ-बूझ तुम्हें कहाँ? ठीक ही हुआ, हम केवल दो स्त्रियाँ थीं, अब काम-काज में हाथ बँटाने वाली तीसरी भी मिली।'

इन सादी कहानी-गीतों को छोड़ आगे बढ़ें और काव्य-नियमों अनुसार कविता रचने वाले कवियों को ढूढ़ें तो ज्ञात होगा कि सिन्धी भाषा में कविता करने वाला कवि ही नहीं रहा। सिन्ध देश पर अरगून राज्य करने लगे तो अरबी भाषा दरबारी बोली बन बैठी। इसलिए पढ़े लिखे

लोगों ने अरबी को साहित्यिक पद दे दिया। कवि गण भी इसी भाषा में ही कविता करने लगे। बाद में कल्होड़ा-टाल्पुर तथा मीर खानदान के मुसलमानों ने हुकूमत की। उन्होंने फारसी भाषा को अपनाया। जो भी हिन्दू अब पढ़ता था वह फारसी जरूर सीखता था। अब सिन्धी कवि फारसी भाषा में कविता करने लगे। फारसी का प्रभाव बहुत दिनों तक चला। बाद के कवि सिन्धी में काव्य रच कर एक पुस्तक छपवाते थे तो फारसी में सात पुस्तक रच देते थे। लेकिन साधारण जन अपनी सरल सीधी भाषा सिन्धी में ही गुनगुनाया करते थे। ऐसे कवियों का नाम न पाकर उनके काव्य की झलक उनकी सरल कविता से मिल ही जाती है—

अदा गुल गुलाब जा, तूं ओरें अचु,
मोगी आहीं मुँह में तूं गरियो आहीं गचु!
छो सड़ीं छा खे, तूं चौ खणी सचु,
'जढ़हिं चप पट्यमि, तढ़हिं बागाई अ ब ठि विधिमि'

'ऐ गुलाब के फूल। तू इतना दुःखी क्यों है? तुम्हारा मुख मुरझाया हुआ क्यों है?' गुलाब ने कहा 'क्या करूँ? अब पांखुरियाँ खोल मुस्कराया था, अब ही माली ने तोड़ कर भट्टी में डाल दिया। (गुलाब-पानी निकालने के लिए।)

पहला कवि जिनके दोहे प्रामाणिक रूप में सिन्धी भाषा में हम पाते हैं, वे हैं—काजी काजन। इनके जन्म की तिथि न जान कर केवल निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इनकी मृत्यु ईसवीं सन् १५५१ में हुई। इनकी सिन्धी कविता हिन्दी दोहों का अनुकरण करती चलती है। इनकी काव्य-रचना में वर्णन-शक्ति तथा कल्पना-शक्ति है तथा इनकी वाणी में नदी का सा बहाव स्पष्ट दीख पड़ता है। काजी काजन के बाद शह अब्दुल करीम बुलड़ीअ वारो कवि हुए। इनका जन्म १५३६ में हुआ। कुरान की कहावतों तथा लोक कहानियों को विषय आधार बनाकर ये कविता करने लगे। इनके दोहे सरल और रसीली भाषा में रचे गये हैं। तीसरा कवि है – अबूअलहसीन। वे पहले कवि थे जिन्होंने अपनी कविताओं की पुस्तक खुद छपवाई। अबूअलहसीन ऐसे और भी चार पाँच कवि हुए हैं। जिनकी रचनाएँ मजहबी बातें, जैसे कि नमाज पढ़ने के नियम और नमूने रोजा रखने की रीति आदि विषयों पर ही आधारित थीं।

अब सिन्धी साहित्य आकाश में रवि उदित हो ही गया। इनका नाम था शाह अब्दुल लतीफ भिटाई। हम प्रेम पूर्वक इन्हें भिटाई शाह, लालण लालु, भिटाई छोटु आदि नाम से पुकारते हैं। इनका जन्म १६८९ में हुआ और वे १७५२ में स्वर्गवास कर गए। इस महान कवि का पद कालिदास, शेक्सपीयर या गेटे से किसी प्रकार भी कम नहीं। ऐसा कवि सिन्ध प्रदेश को छोड़कर और कहीं पैदा होता तो वहाँ के लोग इसकी प्रशंसा में सहस्रों पुस्तक रच देते। सिन्ध लोग अरब, अफगानिस्तान आदि देशों से आये हुये आक्रमणकारियों से सामना करने में इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें साहित्य-रत्नों को इकट्ठा करने का अवसर ही नहीं मिलता था। शाह साहब के काव्य-रचनाओं को एकत्र कर ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने का श्रेय एक अंग्रेज श्री अर्नेष्ट ट्रम्प को ही हैं। बाद में सर राछटी सोरले ने कवि के जीवन तथा रचनाओं का अनुवाद कर अंग्रेजी में 'शाह अब्दुल लतीफ आफ भिट' नामक पुस्तक छपवाई। उसके बाद डा० गुरुबखशाणी ने शाह जी रसालो' नामक पुस्तक में सिन्धी में ही शाह की समूची कविताओं का संग्रह छपवाया। अब हाल ही में सिन्ध के सर्वश्रेष्ठ कवि शेख इयाज ने इन कवि के काव्य संग्रह का उर्दू भाषा में अनुवाद (कविता के रूप में ही अनुवाद है) किया है और पाकिस्तान सरकार से दस हजार रुपया इनाम पाया हैं।

सर एछ० टी० सोरले ने कुछ ही दिन पहले संसार के महा कवियों पर पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने लिखा है कि निः-संदेह शाहअब्दुललतीफ महानतम कवि हैं।

शाह लतीफ के काव्य का आधार तसव्वुफ अथवा सूफीमत है। सूफीमत कहता है कि पहले एक खुदा था अर्थात् पहले वहिदत थी। उस वहिदत (एक) से कसिरत (अनेकता) पैदा हुई। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि खुदा को अपने आपको देखने की इच्छा हुई। यह संसार खुदा का नूर है, उसका जलवा है। इस तसव्वुर के दो पहलू हैं। एक मार्ग वह है जो शरीयत (अर्थात् धार्मिक बन्धन का अनुकरण) से तरीकत (अर्थात् चरित्र और नीति तक और तरीकत से मैरिफत (अर्थात् खुदा की पहचान) तक और अंत में

हकीकत (अर्थात् खुदा से एक ही जाना) तक ले जाता है दूसरा मार्ग मजाजी इश्क [मानव का मानव के प्रति प्रेम] से हकीकी इश्क [मानव का ईश्वर से प्रेम] तक ले जाता है। शाह लतीफ ने दूसरा मार्ग ही अपनाया है। इसलिए इनकी कविता में मानव-सुन्दरता का अनोखा वर्णन है। किन्तु मानव और सौंदर्य में कवि ईश्वर-सौन्दर्य का विश्व दर्शन कराते हैं।

चोद्हीं अ चद्रं उभरीं सहसें करी सींगार
पलक प्रियां जे न परीं जे हीला करीं हजार
जाहिरो तू समु जमार ताहिड़ो दमु दोस्त जो।

शाह लतीफ

ऐ चन्द्रमा! तू सहस्रों शृंगार कर चौदहवीं का चाँद बने, हजार उपाय लेकर सुन्दर बनने का यत्न करे, तो भी तू मेरे प्रियतम के सौन्दर्य के सामने खड़ा नहीं हो सकता। तुम्हारे सारे आयु की सुन्दरता मेरे साजन के एक क्षण की सुन्दरता के बराबर भी नहीं है।

शाह साहब की कविता का रूप हिन्दुस्तानी दोहे जैसा है। वह दोहा जिसे हम दोहीड़ा कहते हैं ज्यादातर तीन पंक्तियाँ लेकर चलता है। परन्तु दो, तीन, चार पंक्तियों का भी होता है। कविता में शाह ने वाई कहने का श्रीगणेश किया। शाह लतीफ ने सिन्धी राग को ऊँची पदवी पर बिठाया। इनका रचा हर एक दोहीड़ा हम गा सकते हैं, इनकी वाईनों को काफी के रूप में गा सकते हैं। इन्होंने सुर हुसेनी राग का निर्माण किया था जो कि असली सिंधी राग है। सिंधी धुन पर लोक गीत गाना हमें शाह ने ही सिखाया। जब वे जीवित थे इनके यहाँ बहुत से गायक आया करते थे। वे संगीत बिना रह नहीं सकते थे। आज किसान से लेकर नवाबों रईसों के आगे गाने वाली नर्तकियों तक, शाह की काफियाँ गाती हैं। सिन्ध की मरु भूमि शाह के गीतों की गूँज से हरी भरी हो गयी।

सिन्धी में कहते हैं कि कविता का प्राण है—प्रेम-भावना। शाह का प्रेम देखिए—

गोलियाँ गोलियाँ म लहां, शाल म मिलां हात
जेरे अन्दर जी ज्योति, शाल म उझाणी मूं थिये

'मैं अपना प्रियतम ढूढ़ता फिरूँ, पर मेरी उससे मुलाकात ही न हो। मिलन होते ही तड़पन की आग ठंडी हो जाती है। आग ही न रही तो प्रेम कैसा?'

शाह लतीफ के प्रेम का नाम है—दर्द। अगर मैं एक बार अपने दर्द का जिकर कर बैठूँ तो पशु आवाज करना छोड़ दे, पर्वतों में दहाड़ आ जाए, भूमि जल उठे, उसके छाती पर कोमल पौधा ही न उग सके वे कह उठते हैं।

शाह लतीफ सिन्ध का प्रतिनिधि है। जिसे सिन्ध तथा सिंधियों का रहन सहन, आचार विचार देखने की इच्छा हो वह शाह लतीफ की कविताओं का पाठ कर ले। सिन्धी किसान मछुआ, धोबी, कुम्हार, व्यापारी, राजा, रानी, राजकुमारी, मानिनी, सती, मनाने वाली बीबी, रूप पर गर्व करने वाली नारी, स्वाभिमानी नर, जिद्दी पुरुष, कौआ, घोड़ा, ऊँट, वर्षा से गीली जमीन, विद्युत्, क्षोभित समुद्र, जंगली फल फूल, घास, सबके सब अपने शरीर तथा आत्मा के साथ वहाँ सजीव रूप में मिलेंगे, आपको।

शाह लतीफ सार्थक रूप से वाक्पति हैं। उन्होंने सिन्धी भाषा को धन्य कर दिया, धनी बना दिया, उसके माँग में सिन्दूर भर दिया, उसे अलंकृत कर दिया और अमर कर दिया। अकेले ऊँट को इन्होंने बीस संज्ञाओं से पुकारा, वर्षा होने की क्रिया को पूरी दस क्रियाएँ बना डाला। सिन्धी की उपभाषाओं के शब्द, उर्दू, फारसी, अरबी, हिन्दी, पंजाबी शब्द इनके यहाँ आकर सुन्दरतम हो गए हैं।

इनका काव्य साहित्य-सागर का कार्य दे रहा है। इनकी रचनाओं में कहानीकार को कहानियाँ, नाटककार को नाटक निबन्धकार को निबन्ध, भाषा-विज्ञानी को अपना विषय मिल जाता है।

शाह लतीफ के बाद इनके पद-चिन्हों को पकड़ कर चलने वाले कवियों की झड़ी सी लग गई। उन सब में श्रेष्ठ था सचल सरमस्त। शाह के साथ सचल का नाम ऐसे जोड़ा जाता है जैसे कि गंगा के साथ यमुना का। सचल की कविता ऊँची उड़ान ले उड़ती है। इसमें झरने की खिलखिलाहट तथा समुद्र का गर्जन है। यह सचल निडर तथा मस्त कवि थे। मजहबी पागलपन से उसे चिढ़ थी। वे कृष्ण गोपाल के प्रति कविता करते थे। ये कहते हैं—

मुख बिच मुरली पेरें घुँघरू,
तू थै थै नाच नचावन्दा है
लालण लाल तोहे लज नहीं
आवन्दी, तू हर किसी नू भावंदा है

हे कृष्ण ! तू मुख पर मुरली धारण कर पैरों में घुँघरू, बाँधकर नाचता है। तुझे लाज नहीं आती ? तू हर एक को क्यों भाता है ?

कवि सचल विद्वान थे। वे बहुत सी भाषाएँ जानते थे। उन्हें फारसी का ज्ञान था। फारसी में भी उनकी बहुत सी रचनाएँ हैं। उनकी सिन्धी ज्यादातर सिन्धी की उपभाषा सराइकी [मुलतानी] ही है।

शाह सचल के साथ-साथ त्रिवेणी समान तीसरे कवि का संगम होता है। वे हैं—चैनराइ; जो कि सामी के नाम से प्रसिद्ध हैं। शाह सचल की कविता का आधार सूफीमत है और सामी के काव्य का आधार वेदान्त हैं। इन्होंने बाईस हजार श्लोक रचे हैं जो उत्तर सिन्ध से शिकारपुर प्रदेश की मधुर भाषा में खो गए हैं। इन सब के सब श्लोकों में वेदान्त की शिक्षा शीतल स्रोत की भांति बहती रहती है और पाठक माया, अविद्या, साधु-महिमा, साधु संगति' अज्ञानी, ज्ञानी, मूर्ख, ईश्वर [जो ही इनके श्लोकों के शीर्षक हैं] आदि विषयों पर कविता पढ़ते समय आन्तरिक आनन्द के सागर में डुबकियाँ लगाता रहता है।

इसके बाद शाह सचल के अनुयायी कवियों ने सूफीमत-सम्बन्धी काव्य का सागर पलट दिया। रूहल, बेदल, बेकस, मुराद आदि कवियों ने ईरानी तसव्वुफ और भारतीय वेदांत का विवाह सम्पन्न कर दिया, फलस्वरूप सिन्ध-भूमि में एक ऐसी संस्कृति पैदा हुई जिसमें दोनों देशों के लक्षण एक दूसरे में समाकर हँसने लगे। सिन्धी हिन्दुओं के मन से छुआछूत का भूत निकल गया। उनमें ब्राह्मण तथा शूद्र जातियां बिल्कुल नहीं रही [सिन्धी ब्राह्मणों में आज अगर ब्राह्मण मिलेगा तो उसके बाप पञ्जाब से कुछ ही दिन पहले सिन्ध में पधारे होंगे। सिन्ध में हमारे यहाँ कच्छ [cuteh] देश से धोबी, पंजाब और राजस्थान से भङ्गी, उत्तरप्रदेश से पकाने वाले भैये इसी तरह काम करने वाले आते थे। आज का सिन्धी हिन्दू मन्दिर बनवाएगा तो उसमें दीवारों पर श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा गौतम बुद्ध के चित्र, और एक तरफ शंकर जी की मूर्ति तो दूसरे तरफ श्री लक्ष्मीनारायण की और बीच में सिखों का गुरु ग्रंथ साहब विराजमान होगा। वे कट्टर नहीं होते, अल्लाह या ईश्वर उनके व्यवहार में समान स्थान रखता है। इसी प्रकार सिन्ध के मुसलमानों के मन से भी मजहब का पागलपन कुछ मात्रा में कम ही हो गया। इन कविगण अपनी कविताओं में राम रहीम को एक साथ बिठाया और खुद मुसलमान होकर भी जोगी, सामी, तपस्वी, आदि फकीर का वर्णन किया करते थे।

अब ऐसा समय आया कि जब कविता बढ़ते-बढ़ते रुककर खड़ी हो गई। उस समय के कवि संख्या में बहुत थे परन्तु न वे आगे बढ़े न मुड़े, बस एक ही जगह गोल-गोल फिरते रहे। वे तसव्वुफ की रूढ़ी से अपने आपको छुड़ा नहीं पाते थे। इनके पहले जो कवि हुये, वे सन्त-कवि थे, दरवेश थे इसलिये सूफीमत उनके जीवन में समा गया था। लेकिन इस समय के कवि सन्त न होकर भी तसव्वुफ का आधार लिये कविता करने लगे। इसलिए वे स्त्री-शरीर के सौंदर्य वर्णन रूपी भँवर में घूमते रहे। उन्होंने सनोबर जैसे लम्बे सुबल जैसे घुँघराले बालों और नरगिसी आँखों वाले ईरानी दिलवर को सिन्ध में बुला लिया। कविताओं में परवाने जलकर खाक हो गए, शमा पिघलने-गलने लगी; बुलबुल गुल से बिछुड़ कर रोने लगी। साकी मय से भरी बोतल लिये खड़ा रहा, आशिक बेहोश होकर गिरने लगे। वे कवि थे महमद गुल 'गुल' मीर हुसनअली, मीर अब्दाल-हसीन खान 'सांगी', गुलाममुहम्मद शाह 'गदा' आदि। सिन्धी जनता पर इन कवियों का प्रभाव बिल्कुल ही नहीं पड़ा। वे कवि राज्य करने वाले सत्ताधारी पुरुष या उनके सम्बन्धी थे। उनका काव्य बस, इने गिने, पढ़े लिखे आदमियों तक ही सीमित रहा। इन्होंने बहुत सी रचनाएँ की, बहुत सी पुस्तकें छपवाई पर साहित्यकारों को छोड़ और किसी को इनमें से किसी का नाम तक याद नहीं। शाह सचल रूहल आदि के काव्य और इन कवियों के काव्य में बहुत बड़ा अन्तर है। दोनों ने सूफीमत-प्रधान कविताएँ की हैं, तो भी अन्तर स्पष्ट है। शाह की नायिकाएँ सिन्धी नारियाँ हैं। वे गुलाब के फूल जैसी सुन्दर हैं। पत्तों जैसे हरे रङ्ग की चद्दर ओढ़ती हैं रूठे हुये पति को मनाती हैं, परदेश गये हुये प्रियतम के आगमन के लिए व्याकुल रहती हैं, उसके लिये दुआएँ माँगती हैं, पति की दासी बनकर रहना चाहती हैं, अपनी भूमि के लिये उन्हें प्यार है, अपने सम्बन्धियों के लिये उन्हें मोह है, लेकिन ऊपर कहे जाने वाले कवियों की नायिकाएँ ईरानी नारियाँ हैं, शोख, तेज

मिजाज वाली। उनकी आँखें खंजर चुभो देती हैं, उनके गाल पर जो तिल है वह आशिक का चुराया हुआ दिल है। परन्तु काव्य प्रवाह अधिक देर तक रुक न सका। अब ऐसा नर-कवि आया जो कविता का हाथ पकड़ कर उसे नयी सड़क पर ले आया। वे कवि थे किशिनचन्द 'बेवस'। इन्होंने कविता को वाणी तथा विषय में नूतनता ला दी। काव्य रूढ़ियों से मुक्त हो गया। न तो उसे तसव्वुफ का आधार लेना पड़ा और न तो उसे अरबी फारसी शब्दों का मुँह ताकना पड़ा। 'बेवस' बोलचाल की सीधी सादी भाषा मे कविता करने लगे और आशिक माशूक को छोड़कर किसान, मजदूर, नीले आकाश, देशप्रेम, गरीब की झोपड़ी गुलाब का फूल आदि विषय लेकर आगे बढ़े। इनके अलंकार, इनकी शब्दावली, इनके विचार ईरान की संस्कृति में नहीं परन्तु भारत की संस्कृति में पले हुये हैं।

आधुनिक सिन्धी काव्य के पिता 'बेवस' ही हैं। वे धनवान को ललकार कर कहते हैं :—

लालु थियो तुहिंजों दुशालो कहिं जे लहूं छाण मां
खून दिल कहिंजों बखे थो तुंहिंजे गिल गाढ़हाण मां

ऐ धनवान् ! तुम्हारा यह दुशाला इसलिए लाल है क्योंकि किसी मजदूर ने अपना रक्त बहाया है। तुम्हारे गाल इसलिये गुलाबी हैं क्योंकि किसी हृदय की उमंगे और अरमान कुचले गये हैं जिसके कारण वहाँ रक्त बहा है।

महात्मा गाँधी जी के प्रति कवि कहता है :—

तू किरोरों हिन्दुवासियुनि बे जबाननि जी जबान।
तुंहिंजी खामोशी बताये तेजु तूफानी बयान॥

तू कोटि-कोटि भारतवासियों की वाणी है। तुम्हारे बोलने से करोड़ों हिन्दूवासी बोल उठते हैं। अगर तू चुप रहता है तो तुम्हारी चुप्पी तूफान के आगमन की खबर देती है।

कवि 'बेवस' के नेतृत्व को मानकर बहुत से कविगण आगे बढ़े। उन कवियों में कुछ ऐसे भी हैं जो 'बेवस' के यहाँ पाठशाला में छात्र ही थे। (कवि 'बेवस' स्कूल के अध्यापक ही थे) आज वे माननीय कवि हैं। हरि 'दिलगीर', हून्दराज, 'दुखायल' (जो हिन्दी में भी कविता करते हैं), प्रभु 'वफा' इनमें से हैं। इन कवियों के काव्य पर 'बेवस' का प्रभाव स्पष्ट है।

एक कवि है जो 'बेवस' को आधुनिक काव्य का नेता मानने से साफ इन्कार करता है। वे हैं कवि लेखराज 'अजीज'। अजीज की कविता 'बेवस' के पहले जो कवि पधारे थे उनका अनुगमन कर चलती है। वे रूढ़िबद्ध कवि हैं। इन विद्वान कवि ने गजल, मसनवीयां, नजमें, रुबाईयाँ खूब लिखी हैं। वे सिन्धी भाषा के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है, तथा उर्दू फारसी का ज्ञान भी रखते हैं। इनकी शैली प्रभावशाली तथा काव्य नियम-बद्ध है। काव्य-नियम की जानकारी तथा नियम-बद्ध काव्य जोड़ने में इनका सामना कोई सिन्धी-कवि नहीं कर सकता। किन्तु वे जनता के कवि न होकर केवल पढ़े लिखे लोगों का माननीय कवि ही है। साधारण लोग इनकी कविता समझ ही नहीं पाते। पाकिस्तान बनने से पहले सिन्ध में जहाँ भी मुशायरा (कवि सम्मेलन) होता था, वे जीत लेते थे। इन्होंने कई दीवान (काव्य संग्रह) रचे हैं, अब हाल ही में इनका 'सुराही' नामक पुस्तक प्रकाशित हुयी है, जिसमें यथाशक्ति कुछ सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। तो भी वहाँ यार और महबूब जहाँ तहाँ सूरज जैसी तपन पैदा करते देखने में आता है।

कवि अजीज के ठीक उलटे एक लोकप्रिय कवि थे जिनका कुछ दिन पूर्व चालीस वर्ष की छोटी आयु में स्वर्गवास हो गया है। वे प्राइमरी स्कूल तक शिक्षा पाकर जनता के आगे उन्हीं की बोली में, उन्हीं के विचार, उन्हीं के वर्णन करने की रीति से रख देते थे। वे हैं परसिरामु 'जिया'। इनकी कविता में एक सरल हृदया पत्नी परदेश गए हुए पति का पत्र न पाकर पोस्टमैंन से विनय करती है कि पत्र ला दो, मैं तुझे एक रुपया खर्च दे दूँगी, कपड़े धोते २ एक गृहिणी राशन में मिले गन्दे चावल मिलने पर सरकार को भला बुरा कह देती है, दहेज न दे सकने वाले पिता की पुत्री समाज को उलहना देती है, संसार में दिखावेपन की वजह से कवि का हृदय परेशान हो उठता है आदि।

अजीज और जिया के बीच सेतु के रूप में काम करने वाले कवि भी हैं—हमारे यहाँ। वे हैं कवि खीअलदास 'फानी', डा० हरू सदारङ्गाणी 'खादम' और प्रो० कल्याण आहवाणी ये गजल लिखते हैं अजीज की भाँति और साथ साथ गीत भी लिख देते हैं। परन्तु इनका काव्य हृदय-प्रधान न होकर मस्तिष्क-प्रधान ही होता है।

देश का बटवारा हुआ और सिन्धी-साहित्य का भी बटवारा हो गया। कुछ साहित्यकार सिन्ध में रह गये, कुछ भारत में आ गए। सिन्ध में रहने वाले कवि अपने साथियों से दुआ सलाम कहने लगे और उन्हें यादों के पयाम भेजने लगे और भारत में आये कवि तड़प-तड़प कर भूमि तथा जल का स्मरण कर रोने लगे।

वतनु वियो जिनि हथां, नाहे तिनि आरामु,
कढ़हि विसारे कीन को, कहिं खां पहिंजो गामु,
नदियूं हिति बि जामु, पर सिन्धू में को साहूथनि।
(राही)

हमसे अपनी जन्म भूमि बिछुड़ गई। अब हमें चैन कैसे मिल सकता है? कभी कोई अपना गाँव भूल सका है? हाँ, यहाँ भी बहुत सी नदियाँ हैं, लेकिन हमारे प्राणों में तो सिन्धु (नदी) ही बसी हुई है।

इसी प्रकार अजीज हरिकान्त आदि अनेक कवियों ने सिन्ध के प्रति अपनी विह्वलता प्रकट की है।

परन्तु ऐसा नहीं कि सिन्धी कवि बस सिन्ध का स्मरण ही करते रहे। कवि का हृदय सत्यं शिवं सुन्दरम् की खोज में व्यस्त रहता है। सिन्धी काव्य में विषयों का चित्रण मिलेगा।

सिन्धी कवि नारायण श्याम तथा गोवर्धन भारती की रचनाओं में हृदय के गूढ़तम भावों की झलक है। श्याम की कविताओं में गाँभीर्य तथा माधुर्य का अनोखा मेल है। (आधुनिक सिन्धी काव्य में सिन्ध में सबसे श्रेष्ठ कवि शेख-इयाज हैं और हिन्द में रहने वालों में नारायण श्याम। परन्तु शेख इयाज निःसन्देह ही महाकवि हैं। पाकिस्तान में रहने वाले सिन्धी कवियों पर उर्दू का थोड़ा बहुत प्रभाव है और इस्लामी मजहब की भीनी-भीनी बू धीरे-धीरे उनके काव्य में समा रही है। परन्तु शेख इयाज पूर्ण रूप से शाह अब्दुल लतीफ के उत्तराधिकारी हैं। उनके काव्य में से टैगोर, कालिदास, मीरा, शाह लतीफ सभी महाकवि झाँक कर मुस्करा रहे हैं। पाकिस्तान से सिन्धी साहित्य मुक्त रीति से आ नहीं सकता इसलिए वहाँ के साहित्यकारों को ठीक ठीक हम जान नहीं पाते इसलिए शेख-इयाज का नाम लेकर हमें बरबस उन्हें अपने देश की सीमाओं तक ही छोड़ना पड़ता है।)

भारत में रहने वाले सिन्धी कवि युग की गति और विचार से साथ-साथ कदम मिलाकर चलते हैं। उनकी कविताओं में भारतीयता झिलमिलाया करती है, मनुष्य अपनी उपस्थितियों से लड़ता दीख पड़ता है। वह आधुनिक दौड़-धूप के युग का सामना करते हाँफता रहता है। देखिए - गोवर्धन भारती, जिनकी कविता में हृदय के भाव नाचते रहते हैं, उमंगें गाया करती है और तमन्नाएँ अंगड़ाइयाँ लेकर उठती हैं, क्या कहते हैं—

मतां छिड़िकीं मुसीबत खां,
मुसीबत दाजु तुंहिजो आ
न कजि पासो कशाले खां,
कशालो ताजु तुंहिजो आ
मतां हिबकीं हवाउनि खां,
हवा ते राजु तुंहिजो आ
न थिजि लुकुमो जमाने जो,
जमानो खाजु तुंहिजो आ
कदां सरसी सन्दुइ सोभिया,
कयामत जा ककर कारा
हलियो हलु विख वधाईंदो,
अजा आो कागले वारा।
(भारती)

ऐ काफले में चलने वाला। मुसीबत से मत घबरा, मुसीबत तो तुम्हारा दहेज है। कठिनाइयों से दूर मत भाग, कठिनाई तो तुम्हारा मुकुट है। तेज हवाओं से मत डर हवाओं पर तुम्हारा ही राज्य है। जमाने का ग्रास मत बन, जमाना तो तुम्हारा खाद्य-पदार्थ है। अगर कष्ट झेलना भी पड़ा, तो अच्छा ही होगा, तुम्हारी शोभा बढ़ जायेगी। इसलिए आगे बढ़ो और बढ़ता ही रहा।

सिन्धी लोग विवाह-उत्सव पर गीत गाने का बहुत शौक रखते हैं। इन गीतों को 'लाड्डो' कहा जाता है। वर या वधू के घर में रात का खाना खाने के बाद औरतें इकट्ठी हो जाती हैं, आटा गूँथने वाली मोटी थाली को उल्टा रख एक औरत अंगूठी से उस पर ताल देती है, जवान स्त्रियाँ बीच-बीच में उठकर नाचती हैं और वर की माँ पहले गाना गाती हैं। ऐसे 'लाड्डो' लोक-गीतों में अधिक हैं।

हम सिन्धी बच्चे को माता की बीमारी measles swall dox chicken pox etc) हो जाने पर गीत गाकर माता शीतला देवी (काली अथवा गौड़ी) की आराधना करते हैं। उन गीतों को हम 'ओराणो' कहते हैं। हमारे कवियों ने हमें बहुत से ओटाणे भी रचकर दिए हैं।

इन लोग गीतों के अलावा, कवियों ने हमारे जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अन्य बातों पर भी लेखनी चलाई है।

सिन्धी काव्य की सेवा करने वाले आज कई नौजवान कवि हैं सुगन आहूजा, एम० कमल, कृष्ण 'राही' मोती 'प्रकाश' इन्दुर भोजवाणी, सुरेश 'जिगर', अर्जुन 'हासिद', अर्जुन 'सिकायल', अर्जुन 'शाद', हीरो ठकुर, रोचो 'ख्वाबी', लखमीचन्द्र प्रेम' निर्मल वासदेव इनमें से प्रमुख हैं जिनकी रचनाओं में उमंग तथा भाव बहते चलते हैं।

सिन्धी कवि उर्दू तथा हिन्दी दोनों भाषाएँ जानते हैं। इसलिए हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं का प्रभाव इनकी रचनाओं पर होना अनवार्य है। फिर भी यों कहें कि उर्दू भाषा का कुछ अधिक ही प्रभाव है, इन पर तो गलत न होगा। दो एक कवियों को छोड़ और सभी कवि गजल रचने का शौक रखते हैं। गजल रचयिताओं में अजीज, एम कमल, सुगन आहूजा, हरु सदारङ्गाणी तथा नारायण श्याम सफल गए हैं। वे रुबाइयाँ भी सफलतापूर्वक रच लेते हैं। गजल में वे केवल इश्क का वर्णन नहीं करते, अपितु सांसारिक व्यवहार तथा दार्शनिक विचार भी भर लेते हैं।

संक्षेप में यों कहते हैं – सिन्धी काव्य के तीन युग हैं। पहले युग का द्वार शाह लतीफ ने खोला। उन्होंने ससुई-पुन्हूँ, सुहिणी-मेहार, मूमल-राणो, लीला-चनेसर आदि लोक कहानियों का आधार लेकर स्त्री-पुरुष सम्बन्धित प्रेम को विश्व-प्रेम का रूप दे दिया। उन्होंने संसार के प्रत्येक मनुष्य को नायिका बनाकर प्रियतम की तलाश में भेज दिया। इस युग में अन्य कवियों ने तसवुफ, सूफीमत तथा वेदान्त की धाराओं को एक दूसरे में मिलाकर एक सागर सा बना दिया जो कि दार्शनिक-विचार मोती देता रहा और लोगों के हृदय को धोता रहा।

फिर 'बेवस' युग का आरम्भ हुआ। कवि बेवस ने लोगों को उनका जीवन ही दिखाया। वे अपने आपको पहचानने लगे। वे जान गए कि हमारा भारत देश गुलाम है, हम गरीबों को धनवान लोग लूटते हैं, स्त्री देवी है, बालक अबोध है, तेज बरसात में झोपड़ी गिर जाती है, ताजमहल प्रेम की समाधि है, आदि। ये सब ऐसी बातें थीं, जिन्हें लोग अपनी ही कह सकते थे। वे सजग हो गए। अब कविगण गाते थे और लोग उनकी आवाज में अपनी आवाज मिला देते थे।

देश के बटवारे से तीसरा युग शुरू हो गया। काव्य रोता तड़पता रहा। फिर रोना बन्द हो गया और काव्य सोता रहा, ऐसा जान पड़ता था जैसे कविता निराश और हताश होकर पड़ी रही है। परन्तु पंछी उड़ने से पहले कहीं बैठ कर अपने पंख छाँट लेता है, चोंच से उन्हें सहला देता है। उसी तरह सिन्धी-कविगण कुछ समय तक विमूढ़ होकर पड़े रहे। परन्तु पंछी फड़फड़ाहट कर उड़ान लेता है, बाद में। सिन्धी कविता भी अब उड़ ही रही है।

आधुनिक सिन्धी-काव्य में तीन बातें स्पष्ट देखने को मिलेंगी

१—काव्य-शब्दावली—सिन्ध में रहते हुये वातावरण अनुसार कविजन काव्य में उर्दू फारसी शब्द काम में लाते थे। उनकी शैली ही ऐसी बन गई। अब भारत में आकर उन्होंने वह ही शैली बनाये रखी। उनकी कविता तो गठीली, गम्भीर, ऊँची कोटि की रही। परन्तु वे जनता से अलग हो गए। नवजवान कविजन जो यहाँ ही आकर आगे बढ़े, उनमें से एक वर्ग वह था जो कि हिन्दी की ओर झुका और दूसरा वह था जो उर्दू की तरफ गया। पहले तो इन दोनों की भाषा में बिगाड़ सा आ गया, क्योंकि वे शब्दों को तोड़-मरोड़ लेते थे। परन्तु अब उनकी भाषा मार्जित हो चली है। दोनों ने बीच का रास्ता अपना लिया है अर्थात् एक ने हिन्दी के साथ सिन्धी का सुलझाव किया है दूसरे ने उर्दू के साथ सिन्धी का समझौता।

२—काव्य-रूप—सिन्ध में कविता के दो चार रूप ही थे। दोहीड़ा, वाई, मसनवी, गजल और कुछ लोकगीत के नमूने बेल्हण, छलो, मीडिड़ो, आदि। यहाँ आकर बुजुर्ग कवियों ने तो बस इनमें रुबाई और गीत शामिल कर दिए परन्तु नौजवानों ने टप्पे, तुक्ते, कत्ले, सानेट, अदब लतीफ, आजाद नजम, सोरठे, तराइल आदि सब नमूनों पर हाथ कलम

आजमाई और इसमें सफलता प्राप्त की। सिन्धी कवि हिन्दी छन्दों से तथा फारसी वजन से लाभ उठा सकता है।

३—सिन्धी कवियों को विषय का ख्याल रखना पड़ता है। वे सिन्धी लोक-कहानियों से नायिकाएँ लेते हैं, भारतीय परम्परा अनुसार विषय निभाते हैं तथा मुसलमानी धार्मिक बातों को जानते हुए उनसे भी लाभ उठा लेते हैं। सिन्धी कविता में संगीत पर सर देने वाले राजा राइढ़िमाच का वर्णन होगा, मेनका के सौंदर्य की चकाचौंध होगी तथा कर्बला की युद्ध का दृश्य भी होगा।

परन्तु सिन्धी कवि सौंदर्य-वर्णन, चाहे वह मानव-सौंदर्य हो या नैसर्गिक, सिन्धी परम्परा के अनुसार चलने का यत्न करता है। इसे हम 'जमाल्याती शायरी' कहते हैं। जमाल माने सुन्दरता, जमाल्याती माने वह सौंदर्य जो खींच सके, मोह सके। यह परम्परा शाह लतीफ से चलते-चलते पाकिस्तान के शेख-इयाज और भारत के नारायण श्याम तक आ पहुंची है। इस प्रकार की कविता संस्कृत काव्य में जहाँ तहाँ है, रवीन्द्र के काव्य में तथा उर्दू के फिराक गोरखपुरी में और हमारी कवियित्री सुश्री महादेवी वर्मा के काव्य में भी है। इस प्रकार की कविता करते समय कवि जिस रङ्ग में रँगा रहता है, वह रङ्ग पढ़ने वाले पर भी चढ़ा ही देता है। रवीन्द्रनाथ ने कहा 'तू इतनी सुन्दर है जैसी संध्या'। एक संध्या ऐसी थी जिसकी सुन्दरता का पान कवि ने अपने कर्म तथा मन-इन्द्रियों से अनुभव की थी। अब किसी सुन्दरी को देखकर उसे वह ही सौन्दर्य-आभास होता है जो सन्ध्या समय हुआ था। पढ़ने वाले ने भी जब तक किसी सन्ध्या को सुन्दर न पाया होगा तब तक वे किसी सुन्दरी को सन्ध्या समान सुन्दर नहीं मानेगा। इसी तरह महादेवी जी की अचिन्त्य वेदना भी वही पाठक अनुभव कर सकता है जो अकारण ही रोने पर मजबूर हो गया होगा। कवियित्री की कविता पढ़ वे कविता में समाकर एक प्रकार का आनन्द अनुभव करेगा। हमारे सिन्धी कवि यों कहते हैं—

(१) तुम्हारे पद चिह्न हैं या रोशिनी फैलाती ज्योति है
तुम्हारी चाल है या दीपक राग है?

श्याम

(२) तुम्हारा यौवन सफेद दूध समान है।
तुम्हारा तन माखन जैसा कोमल है।
दूध मक्खन तो सुन्दर है ही।
चन्द्रमा तो केवल 'छाछ' सी है।

श्याम

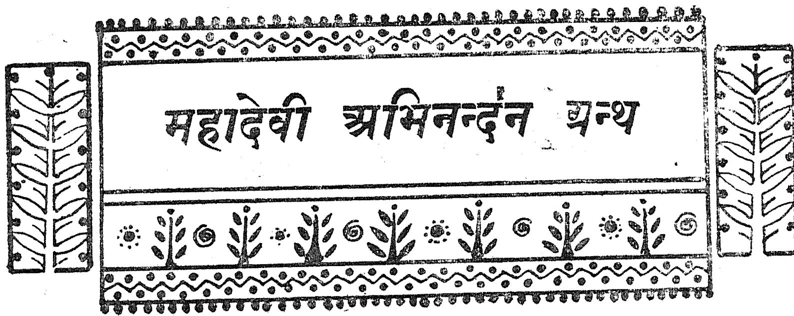
[३] कौमुदी दर्पण है, नीरवता चाँदी की है।
इस समय शान्ति अपनी सुन्दरता देख
देखकर गाती रहती है।

श्याम

[४] यह कोमल शरीर मानो बजता हुआ साज है।
यह मधुर रूप है या राग बिहाग है?

यह सौंदर्य कवि केवल आँखों से नहीं देखता। इसे तो मन की आँख देख लेती है। इसलिये ही तो कवि नैसर्गिक तथा मानव सौंदर्य को एक दूसरे में मिला देता है या प्रेम को दर्द के रूप में जो दर्द भी विश्व दर्द बन जाता है विराट तथा सूक्ष्म, देखता और दिखाता है।

इस प्रकार अब सिन्धी कविता हर क्षेत्र में आगे बढ़ती चल रही है भविष्य में बढ़ती रहेगी यही विश्वास है।


महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ

मंगलम्—विषयसूत्र

महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ

आयोजक

भारती परिषद्, प्रयाग

[*अखिल भारतीय सांस्कृतिक संस्थान*]

बहादुरगंज, इलाहाबाद

संयोजक - प्रकाशक

श्री श्रीधर शास्त्री

महामन्त्री

भारती परिषद्, प्रयाग

सम्पादक

श्री देवदत्त शास्त्री

नया बैरहना, इलाहाबाद

क्षतम्

खण्ड में—परिषद् का परिचय तथा श्रीमती महादेवी वर्मा के छाया चित्रों के साथ-साथ उनके प्रति व्यक्त किए गए युग पुरुषों के उद्गार हैं।

भूति

खण्ड में— महादेवी के काव्य में निहित समस्त तत्वों का विश्लेषण, उनकी काव्य साधना, रचनात्मक सौंदर्य, चित्रकला, गद्य गरिमा आदि विषयों का आलोचन, पर्यवेक्षण, और अनुशीलन है।

अनुभूति

खण्ड में—महादेवीवर्मा की समस्त कृतियों पर विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं।

विभूति

खण्ड में—हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, मराठी, तमिल, तैलुगु, कन्नड, मलयालय, बंगला आदि भारतीय भाषाओं की कवयित्रियों के जीवन और कृतित्व का परिचय दिया गया है।

सम्भूति

खण्ड में—उपर्युक्त सभी भारतीय भाषाओं के काव्य का इतिहास दिया गया है।

